।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
592

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितं

श्रीपद्ममहापुराणम्

हिन्दीटीका–अकारादिश्लोकानुक्रमणी सहित

(षष्ठ भाग : उत्तर खण्ड - II)

सम्पादक एवं टीकाकार
आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
(श्रीधराचार्य)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

श्रीपद्ममहापुराणम् (1-7 भाग) – आचार्य शिव प्रसाद द्विवेदी

ISBN : 978-93-85005-30-5 (set)

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129

वाराणसी 221001

दूरभाष : (0542) 2335263

e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण : 2016

₹ 7500 (सात भाग–सम्पूर्ण)

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए

अंसारी रोड़, दरियागंज

नई दिल्ली 110002

दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537

e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर

पोस्ट बॉक्स न. 2113

दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पोस्ट बॉक्स न. 1069

वाराणसी 221001

मुद्रक :

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

|| Shri ||

Chaukhamba Surbharti Prakashan

592

Śrīmanmaharṣikṛṣṇadvaipāyanavyāsaviracitaṁ

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM

Hindi Commentary with Śloka Index

(Part VI : Uttara Khaṇḍa - II)

Edited with Hindi Commentary by :

Acharya Shivprasad Dvivedi

(Shridharacharya)

Chaukhamba Surbharti Prakashan

Varanasi

विषयानुक्रम

६. उत्तर खण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ

अध्याय	विषय	पृष्ठ

अध्याय	विषय	पृष्ठ

एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

गणतीर्थं ततो गच्छेत्तीर्थयात्रापरायणः। त्रिविष्टपमिति प्रोक्तं गणैस्तु चन्दनातटे ॥१॥

त्रिविष्टपे नरः स्नात्वा पौर्णमास्यां समाहितः ।
संशयो नाऽत्र कर्त्तव्यो मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२॥
चतुरो वार्षिकान्मासान्स्थितो यस्तु त्रिविष्टपे ।
सोऽपि पुण्यो महाभागे रुद्रलोकेमहीयते ॥३॥

गणतीर्थे नरः स्नात्वाकृष्णाष्टम्यामुपोषितः। बकुलासंगमेस्नात्वास्वर्गंगच्छतिमानवः ॥४॥

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा बकुलेशं विलोक्य च ।
गणेश्वरप्रसादेन गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥५॥

इदं पवित्रं परमं पुण्यायुष्यविवर्धनम्। श्रुत्वा तु लभते पुण्यं गङ्गास्नानसमं नरः॥६॥

अत्र स्थित्वा निराहारो जितेन्द्रियः समाहितः ।
जपत्येवं परंदेवं गणेश्वरं मनोरमम् ॥७॥
सम्प्राप्नोत्यखिलान्भोगान्सत्यं सत्यं वरानने ! ।
अत्र राजा सोमवंश्यो विश्वदत्तः स वीर्यवान् ॥८॥

तेन तपो महत्तप्तं बहुकालं सुरेश्वरि !। गाणपत्यं तदा प्राप्तं श्रीगणेशप्रसादतः ॥९॥

वसिष्ठो वामदेवश्च कहोडः कौशीतको मुनिः ।
भरद्वाजोऽङ्गिराश्चैव विश्वामित्रोऽथ वामनः ॥१०॥

एते वै मुनयः सर्वे पुण्यरूपा महेश्वरि !। नित्यं सेवां प्रकुर्वन्ति श्रीगणेशप्रसादतः॥११॥

गणतीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— तीर्थ यात्री को वहाँ से गणतीर्थ में जाना चाहिए गणों ने चन्दना नदी के तट पर उसको स्वर्ग कहा है ॥१॥ मनुष्य पूर्णिमा के दिन त्रिविष्टप तीर्थ में स्नान करके ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता हैं इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥२॥ जो व्यक्ति बरसात के चार महीनों तक इस त्रिविष्टप तीर्थ में निवास करता है । वह भी पुण्यवान् महाभाग रुद्रलोक में पूजित होता है ॥३॥ इस गणतीर्थ में जो मनुष्य जन्माष्टमी के दिन स्नान करके उपवास करता है और तत्पश्चात् वह बकुला नदी के सङ्गम में स्नान करके स्वर्ग में जाता है ॥४॥ उस तीर्थ में स्नान करके तथा बकुलेश का दर्शन करके गणेश्वर की कृपा से गाणपत्य को प्राप्त करता है ॥५॥ यह आख्यान अत्यन्त पवित्र और पुण्य को बढाने वाला है इसका श्रवण करके मनुष्य गङ्गा में स्नान करने का पुण्य प्राप्त करता है ॥६॥ यहाँ पर रहकर जो मनुष्य निराहार और जितेन्द्रिय होकर गणेश्वर का जप करता है ॥७॥ वह सम्पूर्ण भोगों को प्राप्त करता है यह मैं सत्य कह रहा हूँ । यहाँ पर सोमवंशीय राजा परक्रमी विश्वदत्त था ॥८॥ हे सुरेश्वरि ! उस राजा ने बहुत समय तक महान् तप किया और उसने गणपति की कृपा से गाणपत्य प्राप्त कर लिया ॥९॥ वसिष्ठ, वामदेव, कहोड, कौशीतक मुनि, भरद्वाज, अङ्गिरा, विश्वामित्र, वामन ॥१०॥ हे महेश्वरि ! ये सभी मुनिजन

अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो लभते धनम् । अविद्यो लभतेविद्यां मोक्षार्थीमोक्षमाप्नुयात् ॥१२॥
किमन्यद्बहुनोक्तेन भूया भूयो वरानने । योऽत्र स्नानं प्रकुर्वीत पूजनं वा करोति च ॥१३॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्। शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवेशिवरूपिणे ॥१४॥
नाऽन्तरं देवि ! पश्यामि श्रीविष्णोश्च प्रसादतः ॥१५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे गणतीर्थं नामाऽष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

एक सौ उनतालिसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

साभ्रमत्युत्तरे कूले त्वग्नितीर्थमिति श्रुतम् । तस्याश्चोत्तरपूर्वेण नातिदूरे कृतास्पदम् ॥१॥
तीर्थं पालेश्वरं नाम चण्डी यत्र प्रतिष्ठिता । पीठं तद्योगमातॄणां सर्वसिद्धिविधायकम् ॥२॥
यत्र ताः सर्वदेवानां कार्यार्थे मातरः स्थिताः ।
परमंयत्नमास्थाय लोकानुग्रहकारणात् ॥३॥
त्रिरात्रमुषितो भूत्वा तस्मिंस्तीर्थेदृढव्रतः । अभिगच्छेत्तमीशानं देवेशंचण्डिकेश्वरम् ॥४॥

पुण्य स्वरूप हैं और श्रीगणेश की कृपा से नित्य ही उनकी सेवा करते हैं । ऐसा करने वाला पुत्रहीन मनुष्य पुत्र को प्राप्त कर लेता है, निर्धन धन को विद्याहीन विद्या को और मोक्षार्थी मोक्ष को प्राप्त कर लेता है॥११॥ हे वरानने ! बहुत सी दूसरी बातों को कहने से कोई लाभ नहीं है । जो मनुष्य यहाँ स्नान करके पूजन करता है ॥१२॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के परमपद को प्राप्त करता है । विष्णु स्वरूप शिव और शिव स्वरूप विष्णु में कोई भी भेद मुझे श्रीविष्णु भगवान् की कृपा से नहीं प्रतीत होता है ॥१३-१५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमा महेश्वर संवादान्तर्गत गणतीर्थ माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ अड़तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३८।।

अग्नि पालेश्वर आदि तीर्थों की महिमा का वर्णन

महादेवजी ने कहा— साभ्रमती के उत्तर तट पर अग्नि तीर्थ को सुना गया है । उसके सन्निकट में उत्तर पूर्व दिशा में पालेश्वर तीर्थ है ॥१॥ वहाँ पर चण्डी प्रतिष्ठित हैं । वह सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला योगमातृकाओं का पीठ है ॥२॥ वहाँ पर वे सभी देवताओं का कार्य करने के लिए (मातृकाएँ) स्थित है । वे वहाँ सम्पूर्ण जगत् पर कृपा करने के लिए अत्यन्त प्रयास पूर्वक स्थित हैं ॥३॥ उस तीर्थ में दृढव्रत होकर तीन रात्रियों तक निवास करके देवेश चण्डिकेश्वर का दर्शन करने के लिए जाना

साभ्रमत्यां कृतस्नानो मातृतीर्थस्यसन्निधौ । समाधिविधिनायुक्तोगच्छेद्वैमातृमण्डलम् ॥५॥
गोसहस्त्रप्रदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः । अग्नितीर्थे नरः स्नात्वा चामुण्डादर्शने कृते ॥६॥
न भयं जायते तस्य रक्षोभूतपिशाचजम् । गोखुरा च नदी यत्र साभ्रमत्यां तु संगता ॥७॥
तत्र तीर्थसहस्त्राणि तिष्ठन्तीति सुरेश्वरि । श्राद्धं तत्र प्रकर्तव्यं तिलचूर्णेन पार्वति ॥८॥

पिण्डान्दत्त्वाद्विजान्भोज्य अक्षयं पदमाप्नुयात् ।
यत्र कुकर्दमोराजा पापिष्ठोदुर्धरःखलः ॥९॥

मूढोऽहङ्कारसयुक्ता द्विजानां परनिन्दकः । गोघ्नोपि बालहा चैव पापिष्ठो दुर्दमः सदा ॥१०॥
राज्यं च कुर्वतस्तस्य पुरे पिण्डारसंज्ञके । तदा मृतिः समापन्ना धर्मे योगे सुरेश्वरि ॥११॥
मृतोऽसौ तत्र संजातः प्रेतरूपो महेश्वरि । पीतास्यः शुष्कतुण्डश्च पीतरोमाऽथकर्कशः ॥१२॥
उच्चैस्तरो बहुरोमा क्षुत्पिपासाप्रपीडितः । वायुभक्षं प्रकुर्वाणः प्रगच्छति इतस्ततः ॥१३॥
बहुप्रेतैः समायुक्तो हाहेतिकरुणं रुदन् । किंकर्तव्यमिति प्राहुः प्रेतास्ते वै समीपगाः ॥१४॥

तेऽपि तदा रोदमानाः क्षुत्पिपासादिपीडिताः ।
अन्ये प्रेता दुरात्मानो राज्ञः संगतिमाययुः ॥१५॥
राज्ञा सार्द्धं च गच्छन्ति लोकान्विजनकान्बहून् ।
नोदकमथवा चान्नं न मार्गे दृश्यते कदा ॥१६॥

ते प्रेतादुष्टरूपाश्च विचरन्ति महीतले । भक्षन्ति शवमांसानि पिबन्ति रुधिरं सदा ॥१७॥
एवं कुकर्दमो राजा सदा तैः परिवारितः । कदाचिद्दैवयोगेन गुरोराश्रममन्वगात् ॥१८॥
पूर्वजन्मकृतं पुण्यं तेन योगेन संगतः ॥१९॥

चाहिए ॥४॥ मातृतीर्थ के सन्निकट साभ्रमती में स्नान करने वाले मनुष्य को समाधि की विधि से मातृमण्डल में जाना चाहिये ॥५॥ अग्नि तीर्थ में स्नान करके जो चामुण्डा का दर्शन करता है वह एक हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करता है ॥६॥ उसको राक्षस, भूत तथा पिशाचों का भय नहीं रहता है । जहाँ पर गोखुरा नदी साभ्रमती में मिलती है ॥७॥ हे सुरेश्वरि ! वहाँ पर हजारों तीर्थो का निवास होता है । हे पर्वति! वहाँ पर तिल के चूर्ण से श्राद्ध करना चाहिए ॥८॥ पिण्डदान करके तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर मनुष्य अक्षय पद को प्राप्त करता है । वहाँ पर कुकर्दम नामक पापिष्ठ, अत्यन्त दुष्ट राजा था । वह अज्ञ, अहङ्कार युक्त तथा ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला था । वह दुर्दम, गोघाती, बालघाती और पापिष्ठ था ॥९-१०॥ वह पिण्डार नामक नगर का राजा था । हे सुरेश्वरि ! उसकी मृत्यु धर्मयोग में हुयी॥११॥ महेश्वरि वह मरकर वहीं पर प्रेत हो गया । उसका मुख पीला और शुष्क था । उसके रोएँ पीले और कर्कश थे ॥१२॥ उसके शरीर में बहुत अधिक रोएँ थे । भूख तथा प्यास से पीडित होकर वायु का भक्षण करता था और इधर-उधर दौड़ता रहता था । अनेक प्रेतों के साथ वह हाय-हाय करके करुण क्रन्दन करता था ॥१३-१४॥ वे भी उसके साथ भूख और प्यास से व्याकुल होकर रोते रहते थे ॥१५॥ वे राजा के साथ अनेक निर्जन प्रदेशों में जाते थे । उन सबों को मार्ग में कहीं भी अन्न जल नहीं मिलता था॥१६॥ दुष्ट रूप वाले वे प्रेत पृथिवी पर घूमते थे वे मूर्दों के माँस को खाते थे और खून पीते थे ॥१७॥ इस

पार्वत्युवाच

किं कृतं तेन वै पुण्यं वद विश्वेश्वरप्रभो। अयं पापी दुरात्मा च ब्राह्मणानांचदुःखदः ॥
सत्संगतिः कथं जाता तन्मे दुस्तरतो वद ॥२०॥

महादेव उवाच

एतेन नरदेवेन पूर्वजन्मनि यत्कृतम्। तत्सर्वं कथयिष्यामि शृणु त्वं नगनन्दिनी ॥२१॥
पूर्वजन्मन्ययं देवि ब्राह्मणो वेदपाठकः। सम्पूज्य च महादेवं कृत्वा चातिथिपूजनम्॥२२॥
भोजनं कुरुते नित्यमसौ वाडवसत्तमः। तेन पुण्यप्रभावेन पुरे पिण्डारसञ्ज्ञके ॥२३॥
राजा वै तत्र संजातःकुकर्दमइति श्रुतः। कर्मणा मनसा चैव न कृतं पुण्यमेव च॥२४॥
तेनदैवाभियोगेन मृतो वै प्रेतराडभूत्। पूर्वजन्मकृतं पुण्यं न नश्यति सुरेश्वरि ! ॥२५॥
तेन पुण्याभियोगेन संगतो गुरुणाऽऽश्रमे। कहोडो वर्तते तत्र तेन दृष्टोऽथ प्रेतराट्॥२६॥
शुष्कास्यः शुष्करूपश्च पीतवर्णः करालकः ।
गम्भीराक्षो महापापी दुष्टैःप्रेतैश्चसंयुतः ॥२७॥
ऊर्ध्वरोमा जटायुक्तः कालरूपो भयङ्करः। एवं दृष्ट्वा तदा देवि विह्वलो वाऽवोऽभवत् ॥२८॥

कहोड उवाच

अस्मिन्मनोरमे चाऽहं स्थाने वै परमाद्भुते। अग्निपालेश्वरे तीर्थे नित्यं तिष्ठामिभूमिप ॥२९॥
यजमानस्त्वमस्माकं कथंजातोऽसि प्रेतराट्। दुरात्मा दुष्टरूपश्च कालरूपो भयङ्करः ॥३०॥
केन कर्मविपाकेन जातो वै भूतले शुभे ॥३१॥

तरह से वह कुकर्दम नामक राजा उन प्रेतों के साथ कभी दैव योग से अपने गुरु के आश्रम में गया ॥१८॥ उसके साथ दूसरे जन्म का पुण्य मिल गया था ॥१९॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे विश्वेश्वर प्रभो आप यह बतलाये कि उसने पूर्व जन्म में कौन सा पुण्य किया था । यह तो पापी दुष्ट और ब्राह्मणों को दुःख देने वाला था । उसकी यह दुस्तर सङ्गति कैसे हुयी ? आप बतलायें ॥२०॥ **महादेवजी ने कहा—** हे पार्वति! इस राजा ने कौन सा पुण्य पूर्व जन्म में किया था यह मैं बतलाता हूँ हे देवि ! पूर्वजन्म में यह वेदपाठी ब्राह्मण था । महादेवजी की पूजा करके अतिथि पूजन करके ही वह प्रतिदिन भोजन करता था । उसी पुण्य के प्रभाव से वह पिण्डार का राजा हुआ । उसका विख्यात नाम कुकर्दम था । उसने मन, वाणी और कर्म से कभी भी पुण्य कर्म नहीं किया ॥२१-२४॥ वह दैव योग से मरकर प्रेतों का राजा हुआ । हे सुरेश्वरि! पूर्व जन्मों में किए गये पुण्य कभी विनष्ट नहीं होता है ॥२५॥ उसी पुण्य के कारण वह अपने गुरु के आश्रम में गया वहाँ पर कहोड थे, वे उस प्रेतराज को देखा ॥२६॥ उसके मुख और शरीर सूखे थे । वह पीले वर्ण का और भयानक था । उसकी आँखें धसी हुयी थीं वह महापापी था दुष्ट प्रेत उसके साथ थे ॥२७॥ उसके रोएँ खड़े-खड़े थे, जटाधारण किए था तथा काल के समान भयङ्कर था । हे देवि ! उसको इस प्रकार का देखकर ब्राह्मण भयभीत हो गये । **कहोड ने कहा—** राजन् ! इस परम मनोहर और अद्भुत स्थान के अग्निपालेश्वर तीर्थ में मैं सदा रहता हूँ ॥२८-२९॥ तुम मेरे यजमान हो अब प्रेतराज कैसे हो गये हो ? तुम दुरात्मा और दुष्ट रूप वाले तथा काल के समान भयङ्कर हो ॥३०॥ तुम किस कर्म

प्रेत उवाच

शृणु वाडव ! मे पापं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् ।
अहं कुकर्दमो राजा पुरे पिण्डारसंज्ञके ॥३२॥

तत्रस्थेन मया देव यत्कृतं तच्छणुष्व हि । ब्रह्मणां हिंसनं चैव पुराऽसत्यादिभाषणम् ॥३३॥
प्रजानां पीडनं चैव जीवानां हिंसनं सदा । गवां वै दुःखकर्ताऽहं ब्राह्मणव्रतलोपनः ॥३४॥

अस्नातः सर्वदा विप्र ! सज्जनानां विदूषकः ।
विष्णुनिन्दापरो नित्यं वैष्णवानां च निन्दकः ॥३५॥

दुराचारो दुरात्मा च वृषलीसंयुतः सदा । तत्र तत्र प्रभुञ्जानो नाऽहं शौचपरायणः ॥३६॥
तेन कर्माभियोगेन मृतो वै द्विजराट्ततः । प्रेतयोनिं प्रपन्नोऽस्मि दुःखी जातोह्यनेकधा॥३७॥

यस्य माता पिता नास्ति यस्य स्वजनबान्धवाः ।
तस्य बन्धुर्गुरुर्मातापितापि गुरुरेव च ॥३८॥

इति ज्ञात्वा तु भो ब्रह्मन्मुक्तिं दातुं त्वमर्हसि ॥३९॥

कहोड उवाच

शृणु त्वं नृपतिश्रेष्ठ ! करिष्ये वचनं तव । मुक्तिं यास्यति वै सद्यो भवांस्त्विहनसंशयः॥४०॥
एकादश पुरोगाश्च प्रेतायेतव संगताः । ते चापि मुक्तिमायान्ति सुतीर्थेऽस्मिन्विशेषतः ॥४१॥
तदा वै तेन विप्रेण तीर्थे गत्वा सुरेश्वरि !। सर्वैश्च कारयामास तिलपिण्डोदकक्रियाः॥४२॥

न मासो न तिथिर्देवी तीर्थे गत्वा पुनः पुनः ।
कर्तव्यं श्राद्धकर्मादि ब्रह्मणोक्तं पुरा मम ॥४३॥

के परिणाम स्वरूप प्रेत हुए हो ?॥३१॥ **प्रेत ने कहा—** ब्राह्मण मैंने जो पूर्व जन्म में पाप किया है उसे आप सुनें मैं पिण्डारपुर का राजा कुकर्दम हूँ । उस स्थान पर जो मैंने किया उसे आप सुनें । पहले मैं ब्राह्मणों को मारता था असत्य बोलता था ॥३२-३३॥ मैं सदा प्रजाओं को दुःख देता था और प्राणियों की हिंसा करता था मैं गौओं को दुःख देता था और ब्राह्मणों के व्रत को मिटा देता था ॥३४॥ हे विप्र! मैं सदा विना स्नान किये रहता था, सज्जनों की निन्दा करता था मैं सदा विष्णु भगवान् की निन्दा करता था और वैष्णवों की निन्दा करता था ॥३५॥ मैं दुराचारी, दुष्ट और वेश्या के सङ्ग में रहता था । मैं विभिन्न स्थानों में भोजन करता था मैंने कभी पावित्र्य का पालन नहीं किया ॥३६॥ हे द्विजराट् ! इसीतरह के कर्मो को करते समय मेरी मृत्यु हो गयी । मैं प्रेतयोनि में चला गया हूँ और अनेक दुखों से दुःखी हूँ॥३७॥ जिसके माता, पिता और स्वजन बान्धव नहीं होते हैं उसके माता-पिता, गुरु और बान्धव गुरु ही होते हैं ॥३८॥ हे ब्रह्मन् ! इसी बात को जानकर आप मुझे मुक्ति प्रदान करें ॥३९॥ **कहोड ने कहा—** राजवर्य मैं तुम्हारा कार्य करूँगा तुम शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करोगे इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है॥४०॥ तुम्हारे आगे-आगे चलने वाले जो ग्यारह प्रेत हैं वे भी इस सुन्दर तीर्थ में मुक्ति प्राप्त करेंगे इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥४१॥ उस समय विप्रतीर्थ में जाकर हे सुरेश्वरि ! उन सबों से तिल पिण्डोदक क्रिया करवाये ॥४२॥ हे देवि ! इस तीर्थ में बार-बार जाकर श्राद्ध कर्म करना चाहिए उसके लिए कोई मास अथवा तिथि निर्धारित नहीं है यह ब्रह्माजी ने कहा है ॥४३॥ हे देवेशि ! कर्मकर लेने के पश्चात् वे

कृते कर्मणि देवेशि मुक्तास्ते तीर्थराजके। विमानवरमारूढास्ते गता मामकीं पुरीम् ॥४४॥
सङ्गता गोखुरा यत्र साभ्रमत्या सुरेश्वरि। तत्र स्नानं च दानं च कोटियज्ञफलं लभेत् ॥४५॥
यात्राऽग्नितीर्थ वर्तेत कपालेश्वरसञ्ज्ञकम्। तत्रमुक्तिस्तुसंप्रोक्ता सत्यंसत्यं भवेद्ध्रुवम् ॥४६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशतसाहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसंवादेऽग्निपालेश्वरमहिमा नाम एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३९॥

एक सौ चालीसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

भोदेव्यन्यत्प्रवक्ष्यामि हिरण्यासङ्गमं महत् ।
यदा साभ्रमती गङ्गा सप्तस्रोताः पुराऽभवत् ॥१॥
तदा सा ब्रह्मतनया सप्तस्रोताः प्रकीर्तिता । सप्तमं तद्धिरण्याख्यं स्रोतइत्यभिधीयते ॥२॥
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पापी सद्गतिमाप्नुयात् ।
ऋक्षुमञ्जुमयोर्मध्ये सत्यवान्नामपर्वतः ॥३॥
तस्य प्राक्सुमहत्तीर्थं हिरण्यासङ्गमं शुभम् । तत्र स्नात्वा च पीत्वा च शुभां गतिमवाप्नुयात्॥४॥
वनस्थल्यां ततो गच्छेद्दृष्ट्वा नारायणं हिरम् ।
तीर्थमप्सरसां पुण्यं हिरण्यासङ्गमेश्वरम् ॥५॥

सब मुक्त हो गये वे श्रेष्ठ विमान पर बैठकर मेरे लोक में चले गये ॥४४॥ हे सुरेश्वरि जहाँ पर साभ्रमती के साथ गोखुरा नदी मिली है, वहाँ पर स्नान करके दान करना करोड़ों यज्ञों का फल देने वाला कहा गया है ॥४५॥ जहाँ पर कपालेश्वर नामक अग्नि तीर्थ हो वहाँ पर मुक्ति की प्राप्ति में किसी प्रकार का संशय नहीं है, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥४६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत अग्नि कपालेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन नामक एक सौ उनतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३९।।

हिरण्या सङ्गम तीर्थ की महिमा का वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवि ! मैं हिरण्या सङ्गम नामक द्वीप का माहात्म्य बतलाता हूँ जब प्राचीन काल में साभ्रमती सात स्रोतों वाली हो गयी ॥१॥ उसी समय से वह ब्रह्मपुत्री सप्तस्रेता कहलाने लगी । उसके सातवें स्रोत का नाम हिरण्या है ॥२॥ उस तीर्थ में स्नान करके पापी मनुष्य की सद्गति हो जाती है । ऋक्षु और मञ्जुम इन दोनों के बीच में सत्यवान् नामक पर्वत है ॥३॥ इससे पहले हिरण्या सङ्गम नामक महान् तीर्थ है । वहाँ पर स्नान करके और जल पीकर मनुष्य सुन्दर गति को प्राप्त कर लेता है॥४॥

यत्रोर्वशी पुरा जाता समस्ताप्सरसां शुभा । नरनारायणौ तत्र तपस्तेपतुरुत्तमम् ॥६॥
हिरण्यासङ्गमे रम्ये महापापहरे शुभे। यत्र वै ऋषयः सर्वे मज्जन्ति वीतकल्मषाः ॥७॥
वसिष्ठाद्याश्च ये विप्रा वालखिल्यादयश्च ये ।
यत्र मज्जन्ति देवेशि हिरण्या सह सङ्गमे ॥८॥
यत्र हिरण्मयं रूपं स्नानाद्वै भवति ध्रुवम् । कपिलागोसहस्रस्य दानेनैव तु यत्फलम्॥९॥
तत्फलं समवाप्नोति हिरण्यासङ्गमे सदा। दशाश्वमेधे यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥१०॥
तदनन्तगुणं प्रोक्तं हिरण्यासङ्गमे पुनः । तुलापुरुषादाने च यत्फलं समवाप्नुयात्॥११॥
तत्फलं लभते मर्त्यो हिरण्यासङ्गमे सदा। हिरण्याक्षो महादैत्यस्तेन तप्तं महत्तपः ॥१२॥
हिरण्यसदृशं तत्र शरीरमभवत्पुरा। जनमेजये तथा राज्ञि यत्र स्नानं प्रकुर्वति॥१३॥
ब्रह्महत्या गता देवि ! हिरण्यासङ्गमे तदा । विश्वामित्रोऽथ राजर्षिः स्नानार्थं वै समागतः ॥१४॥
स्नानं कृत्वा विशेषेण गतोऽसौ मामकीं पुरीम् ॥१५॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चाऽथ सुरेश्वरि ! ।
स्नानं येऽत्र प्रकुर्वन्ति ते गच्छन्ति शिवालयम् ॥१६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे हिरण्यासङ्गमतीर्थं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

उसके पश्चात् वनस्थली तीर्थ में जाय और नारायण श्रीहरि का दर्शन करके पवित्र अप्सरा तीर्थ में स्नान करके हिरण्या सङ्गमेश्वर का दर्शन करे ॥५॥ वहीं पर सभी अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी अप्सरा हुयी थी वहीं पर नर और नारायण ने उत्तम तप किया था ॥६॥ महापापों को भी दूर करने वाले हिरण्या सङ्गम में ही सभी निष्पाप ऋषिगण स्नान करते हैं ॥७॥ हे देवि ! वसिष्ठ आदि तथा बालखिल्य आदि ऋषिगण हिरण्याा सङ्गम में स्नान करते हैं ॥८॥ वहाँ पर स्नान करने से सुवर्ण के समान रूप हो जाता है । हजार कपिला गायों के दान करने से जिस फल की प्रापित होती है ॥९॥ उस फल की प्राप्ति हिरण्या सङ्गम में सदैव होती है । सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण के समय दशाश्वमेध तीर्थ में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥१०॥ उसके अनन्त गुणाफल हिरण्या सङ्गम में होती है । तुला पुरुष का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति हिरण्या सङ्गम में सदैव होती है । हिरण्याक्ष नामक महादैत्य ने महान् तप किया था ॥११-१२॥ उससे उसका शरीर हिरण्य के समान सुन्दर हो गया जहाँ पर राजा जनमेजय स्नान कर रहे थे वही पर ब्रह्महत्या हिरण्या सङ्गम पर गयी । राजर्षि विश्वामित्र भी वहाँ स्नान करने के लिए गये ॥१३-१४॥ स्नान करके वे मेरे लोक में चले गये ॥१५॥ हे सुरेश्वरि ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इनमें से जो भी यहाँ स्नान करते हैं वे सभी शिवलोक में जाते हैं ॥१६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत हिरण्या सङ्गम तीर्थ वर्णन नामक एक सौ चालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४०॥

एक सौ एकतालिसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

ततो देवि ! प्रवक्ष्यामि हिरण्यासंगमादनु। धर्मावती नदी यत्र सङ्गता सह गङ्गया॥१॥
तत्र स्नात्वा नरो धन्यस्त्रिदिवं यात्यसंशयम् ।
यत्र धर्मकृतं तीर्थं यः पश्यति स पुण्यभाक् ॥२॥
श्राद्धं तत्रैव ये कुर्युर्मुच्यन्ते पितृजादृणात्। ततश्च मधुरातीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्॥३॥
स्नातव्यं मधुरातीर्थे द्रष्टव्यो मधुहाहरिः। यत्र विश्रान्तवान्कृष्णो जरासन्धभयाकुलः॥४॥
कंसासुरवधे वृत्ते गन्तुकामः कुशस्थलीम्। उषित्वा सप्तरात्रं तु देवश्चन्दनातटे॥५॥
भोजवृष्ण्यन्धकवृतो वीरैर्यादवपुङ्गवैः। मधुरातीर्थमासाद्य स्नानं कृत्वा विधानतः॥६॥
मधुरादित्यनामानं यत्र स्थापितवान्हरिः। अष्टादशसहस्राणि विप्राणां यज्ञशालिनाम्॥७॥
स्थापयित्वा ययौ दत्त्वा दानानि विविधानि च ।
तत्र तीर्थसहस्राणि तिष्ठन्ति च सुरेश्वरि ! ॥८॥
श्राद्धं तत्र प्रकर्तव्यं पितृणां हितकाम्यया। न भेतव्यं जरासन्धान्मत्तीर्थे वसतां सदा॥९॥
इत्युक्तवा तान्द्विजान्कृष्णः प्रययौ द्वारकां प्रति ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा मधुरार्कं प्रपूजयेत् ॥१०॥
माघस्य शुक्लसप्तम्यां कपिलागोप्रदानतः। चिरसौख्यानि भुक्त्वेह पदमादित्यमाव्रजेत्॥११॥
शृणु सुन्दरि ! वक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
यं श्रुत्वा मुच्यते लोको ब्रह्महत्यादिपातकात् ॥१२॥

मधुरा आदि तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

,**महादेवजी ने कहा**— हे देवि ! अब मैं हिरण्या सङ्गम के पश्चात् जहाँ पर धर्मावती नदी गङ्गाजी से मिलती है उसका वर्णन करता हूँ ॥१॥ वहाँ पर स्नान करके धन्य मनुष्य स्वर्गलोक में अवश्य जाता है। वहाँ पर जो पुण्यवान् व्यक्ति धर्म के द्वारा बनाये गये तीर्थ का दर्शन करता है वह पुण्यवान् है ॥२॥ वहाँ पर श्राद्ध करने वाले लोगों पितृगण के मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद सभी पापों के विनाश के लिए मधुरा तीर्थ में स्नान करना चाहिए और मधुसूदन श्रीहरि का दर्शन करना चाहिए ॥३-४॥ कंसासुर का वध करने के पश्चात् द्वारका जाने की इच्छा वाले श्रीभगवान् चन्दना के तट पर सात रात्रियों तक निवास किए॥५॥ भोज, वृष्णि तथा अन्धक वंशीय वीरों के साथ श्रेष्ठ यादवों के साथ श्रीभगवान् मधुरा तीर्थ में जाकर विधि पूर्वक स्नान करके ॥६॥ श्रीहरि ने मधुरा दिव्य की स्थापना की और वहाँ पर यज्ञ करने वाले अठारह हजार ब्राह्मणों को स्थापित किया ॥७॥ उनकी स्थापना करके वे उनको अनेक प्रकार का दान दिए। वहाँ पर हजारों तीर्थों का निवास है ॥८॥ पितरों के कल्याण की कामना से वहाँ श्राद्ध करना चाहिए। मेरे तीर्थ में निवास करने वालों को जरासन्ध से भयभीत नहीं होना चाहिए ॥९॥ इस तरह से उन ब्राह्मणों से कहकर श्रीहरि द्वारका चले गये। उस तीर्थ में स्नान करके मधुरार्क की पूजा करनी चाहिए ॥१०॥ वहाँ पर मधुशल सप्तमी के दिन कपिला गौ का दान करने से मनुष्य इस लोक में सुख भोगकर आदित्य लोक

एकस्मिन्समये देवि ! माण्डव्यऋषिसत्तमः। गङ्गाद्वारे महापुण्यं तप्तवांस्तुमहत्तपः ॥१३॥
पत्राशी च फलाशी च वायुभक्षकरः सदा। अहोरात्रं सदा देवि विष्णुध्यानपरायणः ॥१४॥
योगाभ्यासरतो नित्यं नित्यं धर्मपरायणः। तस्मिन्देशे तु वै देवि राजा वै विश्वमोहनः ॥१५॥
गजाश्वरथपत्तीनां सम्पदो बहुला भुवि। सोमचन्द्रति विख्यातः पुत्रस्तस्य सुलक्षणः॥१६॥

एकदा तु तदा देवि ! गतो ह्याखटके वने ।
तत्र गत्वा तदा तेन कृत्वा ह्याखेटकक्रिया ॥१७॥

स्वात्मानं रमयामास स्वलोकैः परिवारितः। क्रीडारते तदा राज्ञि रात्रिर्जाता सुरेश्वरि॥१८॥
तस्यां रात्रौ तदा राजा ह्युवासाखेटके वने। तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां मुहूर्ते ब्रह्मसंज्ञके॥१९॥

हृतोऽश्वोऽथ विशेषेण चौरेणाऽत्र दुरात्मना ।
तदा हाहेति शब्दोऽभूत्क्व गतः क्व गतो हरिः ॥२०॥
तदा राज्ञो भयात्सर्वे गन्तुकामाः समुत्सुकाः ।
चौरेणाऽपहृतश्चाऽश्व इत्येवं सम्वदन्ति हि ॥२१॥

निरीक्षमाणास्ते सर्वे हरिद्वारं समागतः। ऋषिस्तत्र तु माण्डव्यस्तपस्तपति नित्यशः ॥२२॥
ध्यानेन च समायुक्तो दृष्टोऽसौतैर्भटैस्तदा। अयं चौरः सदा पापी ध्यानं कृत्वा प्रतिष्ठते॥२३॥
बद्ध्वाश्वं तु समायातो ज्ञात्वाराजभटैस्तदा। एवं विचार्य ते सर्वे गृहीत्वा तं महामुनिम् ॥२४॥
राज्ञे निवेदयामासुस्तं चौरं मुनिसत्तमम्। अश्वापहारी ह्यानीतश्चौरोऽयं नृप सर्वदा॥२५॥
आज्ञा दत्ता तदा तेन शूलिकारोपणे पुनः। तदा तैस्तुभटैः सर्वैर्मिलित्वा बन्धनं कृतम्॥२६॥
पश्चाद्वैशूलिकाप्रोतस्तत्क्षणात्तु कृतस्तदा। न ज्ञातं तेन तत्कर्म शूलिकायाः प्रतोदनम्॥२७॥

में जाता है ॥११॥ हे सुन्दरि ! मैं पुराना इतिहास कहता हूँ तुम सुनो उसको सुनकर मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है ॥१२॥ हे देवि ! एक समय ऋषिश्रेष्ठ ! माण्डव्य गङ्गाद्वार में महान् तप किए। वे सदा भगवान् विष्णु का ध्यान करते थे तथा फल, पत्ता और वायु का आहार करते थे ॥१३॥ वे धर्म परायण रहने वाले थे सदैव योगाभ्यास करते थे । हे देवि ! उस देश के राजा विश्वमोहन थे ॥१४-१५॥ उनके राज्य में हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकों की संख्या बहुत थी । उनके पुत्र का नाम सोमचन्द्र था । वह सुन्दर लक्षणों से युक्त था । एक बार वे राजा आखेटक वन में गये वहाँ पर उन्होंने आखेट किया ॥१६-१७॥ वे अपने लोगों के साथ वहाँ प्रसन्न थे । राजा के क्रीडा करते हुए रात हो गयी ॥१८॥ हे सुरेश्वरि उस दिन राजा उस आखेट वन में ही निवास किए । रात्रि के बीत जाने पर ब्राह्म मुहूर्त में॥१९॥ किरीट नामक दुष्ट चोर ने उनके घोड़े को चुरा लिया । उस समय हाहाकार मच गया लोग कहते थे घोड़ा कहाँ गया ?॥२०॥ उस समय राजा के भय से सबलोग जाने के लिए तैयार हो गये उन लोगों ने कहा किसी चोर ने घोड़े को चुरा लिया है ॥२१॥ वे सब खोजते हुए हरिद्वार आये । वहाँ पर माण्डव्य ऋषि सदैव तप करते थे ॥२२॥ उनको ध्यानस्थ हुए सैनिकों ने देखा और उन सबों ने कहा यह महापापी चोर है ध्यान में बैठा है ॥२३॥ यह घोड़े को बाँधकर आ गया है । इस तरह से जानकर वे सैनिक महर्षि को पकड़कर ॥२४॥ राजा को बतलाये कि यही चोर है । यही अश्व को चुराता है और हमलोग इसको लाये हैं ॥२५॥ उस समय राजा ने कहा कि इसको शूली पर चढा दो । उसके बाद सभी सैनिक मिलकर

यतो योगसमारूढोविष्णुध्यानपरायणः। शूलिकाप्रोतनं ज्ञातं कतिचित्कालयोगतः ॥२८॥

माण्डव्योऽहमृषिश्रेष्ठःकेन कर्म त्विदं कृतम् ।
त्रिकालज्ञानी सर्वज्ञो भगवांस्तद्व्यचिन्तयत् ॥२९॥
धर्मस्य च इदं कर्म न चान्यस्य कदाचन ।
योगारूढः य धर्मात्मा गतोऽसौ धर्मसन्निधौ ॥३०॥
तत्र गत्वा ह्यवाचेदं शृणु त्वं धर्म ! साम्प्रतम् ।
त्वं वै धर्मइति ख्यातो लोके वेदे च सर्वदा ॥३१॥
शूलिकाप्रोतनं कर्म कथं चैव त्वया कृतम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो देव न संशयः ॥३२॥

धर्म उवाच

शृणुष्व त्वं द्विजश्रेष्ठ पूर्वजन्मनि पातकम्। तदहं कथयिष्यामि कृपां कुरु ममोपरि॥३३॥
बालत्वे तु इदं कर्म पूर्वजन्मजपातकम्। तच्छृणुष्व महाप्राज्ञ भवेऽस्मिन्पातकं कृतम् ॥३४॥
एकस्मिन्समये विप्र त्वं गतो विजने वने । तत्र गत्वा त्वया विप्र जीवः शलभसञ्ज्ञकः ॥३५॥

आरोपितः सवैशूल्यां कर्मणा तेन दुःखितः ।
राज्ञा शूलेऽर्पितस्त्वं वै कर्मणानेन सुव्रत ॥३६॥

सर्वथैव प्रभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । अल्पमात्रमिदं कर्म त्वया भुक्तं न संशयः॥३७॥

सुखीभवतु विप्रेन्द्र ! गच्छत्वं हि यथेच्छया ।
एतद्वाक्यं ततः श्रुत्वा माण्डव्यो द्विजसत्तमः ॥३८॥

उवाच वचनं तत्र स कोपादरुणेक्षणः ॥३९॥

ऋषि को बाँध दिए ॥२६॥ उसके पश्चात् उन सबों ने उनको शूली पर चढ़ा दिया । लेकिन महर्षि को उस शूलि के प्रोतन क्रिया का पता नहीं चला ॥२७॥ क्योंकि वे योग समारूढ तथा भगवान् विष्णु का ध्यान करने में लगे थे ॥ कुछ समय के पश्चात् उनको शूलि के प्रोतन का पता चला ॥२८॥ मैं तो ऋषि श्रेष्ठ माण्डव्य हूँ इस काम को किसने किया है । वे त्रिकाल ज्ञानी तथा सर्वज्ञ थे उन्होंने विचार किया ॥२९॥ यह कार्य धर्मका है किसी दूसरे का नहीं हो सकता है । वे योगारूढ धर्मात्मा ऋषि धर्म के पास गये॥३०॥ वहाँ जाकर उन्होंने कहा धर्म तुम सुनो तुम लोक तथा वेद में धर्म रूपसे विख्यात हो ॥३१॥ तुमने शूलिका प्रोतन कर्म क्यों किया । हे देव ! मैं इस बात के आपसे सुनना चाहता हूँ ॥३२॥ **धर्म ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! आपने पूर्वजन्म में जो पाप किया है उसे सुनें । आप मुझ पर कृपा करें मैं उसे बतला देता हूँ ॥३३॥ आपने बाल्यावस्था में यह पाप कर्म किया था । हे महाप्राज्ञ इस जन्म में आपने पाप किया है ॥३४॥ हे विप्र ! एक बार आप निर्जन वन में गये थे । वहाँ पर जाकर आपने शालभ नामक जीवन को शूली पर चढा दिया । उसीसे दुखित होकर राजाने आपको शूल पर चढाया है । यह उसी कर्म का फल है ॥३५-३६॥ किए गये सभी पुण्य एवं पाप कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है। आपने इस अल्प भी कर्म को भोगा है ॥३७॥ हे विप्रेन्द्र ! आप सुखी होकर अपनी इच्छा के अनुसार

माण्डव्य उवाच

रे पापिष्ठ ! दुराचार ! किंकृतं बहुपातकम् ।
येन कृत्वा इदं कर्म शूलिकायाः प्रतोदनम् ॥४०॥
मम वाक्यप्रकोपेण शूद्रस्त्वं भव सर्वथा। कियता कालयोगेन वंशे वै चन्द्रसञ्ज्ञके॥४१॥
जातो विदुरनामाख्यो विष्णुभक्तिपरायणः । तीर्थयात्रामिषेणैव गतः साभ्रमतींनदीम् ॥४२॥
यत्र धर्मावतीसञ्ज्ञो वर्त्तते च सुरेश्वरि। तत्र वै कृतवान्स्नानं विदुरो धर्मरूपवान् ॥४३॥
त्यक्तं तत्र हि शूद्रत्वं धर्मावत्यां न संशयः ।
एतस्मात्कारणाद्देवियेऽत्र स्नानं प्रकुर्वते ॥४४॥
ते नराः पुण्यकर्माणो गच्छन्ति परमं पदम् ।
अत्र श्राद्धं च दानं च ये कुर्वन्ति नरा भुवि ॥
इह लोके परामृद्धिं प्राप्य तैर्दिवि मुद्यते ॥४५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे साभ्रमतीमाहात्म्येमधुरादितीर्थमाहात्म्यं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१॥

जायँ । इस बात को सुनकर ब्राह्मण श्रेष्ठ माण्डव्य ने क्रोध से आँखे लाल करके कहा ॥३८-३९॥ **माण्डव्य महर्षि ने कहा—** अरे दुराचारी पापी ! मैंने कौन सा महान कर्म किया था जिसके चलते मेरे साथ शूलिका प्रोतन किया गया ॥४०॥ मेरे वाक्य जन्य प्रकोप से तुम शूद्र हो जाओ । कुछ समय बाद तुम चन्द्र वंश में उत्पन्न होओगे ॥४१॥ उसके फल स्वरूप वे विदुर हुए । वे तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में साभ्रमती नदी में चले गये ॥४२॥ वहाँ साभ्रमती और धर्म विद्यमान है । वहाँ पर धर्म का रूप धारण किए हुए वे स्नान किए ॥४३॥ वहाँ पर उन्होंने धर्मवती नदी में शूद्रत्व का त्याग कर दिया । अतएव हे देवि ! जो लोग यहाँ पर स्नान करते हैं ॥४४॥ वे पुण्य कर्म करने वाले मनुष्य परमपद में जाते हैं । यहाँ पर जो संसारी मनुष्य श्राद्ध और दान करते हैं वे लोग इस लोक में परम समृद्धि को प्राप्त कर स्वर्ग में आनन्दानुभव करते हैं ॥४५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत मधुरादि तीर्थ के महात्म्य वर्णन नामक एक सौ एकतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४१।।

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

कम्बुतीर्थे नरः स्नात्वा कृत्वा वा पितृतर्पणम् ।
अर्चयेद्देवदेवेशं नारायणमनामयम् ॥१॥

दत्त्वा दानानिविधिवद्ब्राह्मणेभ्ये विधानतः । विष्णुलोकमवाप्नोति तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ॥२॥
अत्र राजर्षिणा पूर्वं विश्वामित्रेण धीमता । तपस्तप्तं विशेषेण प्रजाकामेन सुन्दरि ! ॥३॥
वायुभक्षो निराहारो यत्रासीदनिलाशनः । विष्णुपूजापरोनित्यं विष्णुध्यानपरायणः ॥४॥
तापोसोऽनेन सञ्जातः प्रजाकाममवाप्तवान् । प्रजाकामो नरो यश्च कम्बुतीर्थं हि गच्छति ॥५॥
स प्रजां लभते नित्यं सत्यं सत्यं वरानने ! ॥६॥

इतिकम्बुतीर्थमाहात्म्यम्

ततोगच्छेत्सुरश्रेष्ठे तीर्थनाम कपीश्वरम् । सन्निधौ रक्तसिंहस्य महापातकनाशनम् ॥७॥
बध्यमाने पुरा सेतौ रामरावणविग्रहे । गृहीत्वा पर्वतश्रेष्ठं विशेषात्कपिभिः कृतम् ॥८॥
नाम्ना कपीश्वरादित्यं चक्रुस्तीर्थमनुत्तमम् । यत्र तीर्थे नरः स्नात्वा कृत्वा वा पितृतर्पणम् ॥९॥
दृष्ट्वा कपीश्वरादित्यं मुच्यते ब्रह्महत्यया । तत्र स्नानं प्रकर्तव्यं चैत्राष्टभ्यां विशेषतः ॥१०॥
हनुमत्प्रमुखैस्तत्र स्नातं यत्र दिनत्रयम् । कपितीर्थप्रभावोऽयं भवत्यै समुदीरितः ॥११॥

अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पूजयित्वा कपीश्वरम् ।
रूपवान्बहुभोगश्च जायते नाऽत्रसंशयः ॥१२॥

कम्बु तीर्थ तथा कपीश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्रीमहादेवजी ने कहा— मनुष्य कम्बुतीर्थ में स्नान करके तथा पितरों का तर्पण करके वहाँ अनामय भगवान् नारायण की पूजा करे ॥१॥ वहाँ पर ब्राह्मणों को विधि पूर्वक दानों को देकर मनुष्य भगवान् विष्णु के प्रभाव से विष्णु लोक में जाता है ॥२॥ हे सुन्दरि ! यहाँ पर राजर्षि विश्वामित्र ने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से तप किया ॥३॥ वे वहाँ पर निराहार तथा वायु का पान करते थे । वायु ही उनका भोजन था । वे सदा भगवान् विष्णु का ध्यान और विष्णु की पूजा करते थे ॥४॥ उससे वे प्रजा को प्राप्त कर लिए । जो मनुष्य सन्तान प्राप्ति की इच्छा से कम्बू तीर्थ में जाता है ॥५॥ हे वरानने यह सत्य है कि वह पुत्र को प्राप्त कर लेता है ॥६॥ इस तरह कम्बुतीर्थ का माहात्म्य पूरा हुआ । उसके बाद वह कपीश्वर तीर्थ में महापातक का विनाश करने वाले रक्तसिंह के पास जाय ॥७॥ राम रावण युद्ध के समय सेतु निर्माण के समय विशेष रूप से वानरों ने पर्वत श्रेष्ठ को लेकर इस तीर्थ को बनाया ॥८॥ वे सब कपीश्वर दिव्य नामक श्रेष्ठ तीर्थ को बनाये । वहाँ पर मनुष्य स्नान करके तथा पितृ तर्पण करके ॥९॥ कपीश्वर तीर्थ का दर्शन करके ब्रह्महत्या से छूट जाता है । यहाँ पर विशेष रूप से चैत्रमास की अष्टमी तिथि को स्नान करना चाहिए ॥१०॥ वहाँ पर हनुमान इत्यादि ने तीन दिन तक स्नान किया । कपितीर्थ का माहात्म्य मैंने तुम्हें सुनाया ॥११॥ इस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके तथा कपीश्वर की पूजा करके रूपवान् तथा अनेक भोगों

बलं वाञ्छति यो लोको धर्मं वा पुत्रमेव च ।
सर्वं स तु लभेन्नित्यं कपितीर्थप्रभावतः ॥१३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे कपितीर्थमाहात्म्यं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२॥

एक सौ तिरालीसवाँ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

एकधारं ततो गच्छेत्तीर्थं परमपावनम् । एकधारे नरः स्नात्वा एकरात्रमुपोषितः ॥१॥
अर्चयन्स्वामिदेवेशं कुलानां तारयेच्छतम् । स्वामितीर्थसमं ज्ञेयं यत्र तीर्थेऽवगाहनम् ॥२॥
रुद्रलोकं नरो गच्छेत्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः । यत्र स्नात्वा च पीत्वा च ब्रह्मलोकं च गच्छति॥३॥
ते लोकाः पुण्यकर्माणस्तटेऽस्मिन्संवसन्ति ये ।
न भयं विद्यते तेषां खड्गधारादिकं च यत् ॥४॥
तत्सर्वमाशु नश्येत तीर्थे ह्येकप्रधारके ॥५॥

इत्येकधारतीर्थवर्णनम्

सप्तधारं ततो गच्छेत्तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् । सप्तसारस्वतं नाम यत्कृते मुनिभिःकृतम् ॥६॥
त्रेतायुगे मङ्क्तितीर्थं कृतं मङ्क्तिमहर्षिणा । द्वापरे पाण्डुपुत्रैस्तु सप्तधारं प्रवर्त्तितम् ॥७॥

वाला हो जाता है ॥१२॥ जो मनुष्य संसार में धन या बल या पुत्र प्राप्त करना चाहता है वह कपितीर्थ के प्रभाव से इन सभी वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है ॥१३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत कपितीर्थ माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ बयालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४२।।

एक धारा और सात धारा के माहात्म्य का वर्णन

श्रीमहादेवजी ने कहा— वहाँ से परम पवित्र एक धार तीर्थ में जाय । एक धार में स्नान करके मनुष्य एक रात उपवास करे ॥१॥ वहाँ वह देवेश स्वामी की पूजा करके अपने वंश के सौ पीढ़ियों को तार देता है । उसे स्वामी तीर्थ के समान जानना चाहिए जहाँ वह तीर्थ में स्नान करे ॥२॥ वह मनुष्य इस तीर्थ के प्रभाव से रुद्रलोक में जाता है । वहाँ स्नान करके और उसके जल को पीकर मनुष्य ब्रह्मलोक में जाता है ॥३॥ इसके तट पर रहने वाले लोग पुण्य कर्मा हैं उन लोगों को खड्ग धारा इत्यादि का भय नहीं होता है ॥४॥ ये सबके सब एक धारा तीर्थ के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं ॥५॥ **यहाँ एक धारा तीर्थ का वर्णन समाप्त हुआ ।** उसके पश्चात् सर्वोत्तम तीर्थ सप्तधारा में जाय । उसका नाम मुनियों ने सप्त

सप्तधारकतां प्राप्तं तीर्थं हरजटाच्युतम्। सप्तरूपाणि गङ्गाया यानि लोकेषु सप्तसु ॥८॥
वहन्ति तानि पुण्यानि तीर्थेऽस्मिन्सप्तधारके ।
सप्तधारे कृतं श्राद्धं पितृणां तृप्तिदायकम् ॥९॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् । यच्छ्रुत्वा देवदेवेशि ब्रह्मलोकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥१०॥
कौषीतकस्य पुत्रो वै मङ्किनामाऽतिविश्रुतः। विष्णुध्यानरतो नित्यं विष्णुलोकप्रपूजकः॥११॥
वेदाध्ययनकर्त्ता च अग्निहोत्रपरायणः। सुरूपाविश्वरूपेति स्त्रियौ द्वेस्तस्तु तद्गुहे ॥१२॥
ताभ्यां पुत्रविहीनाभ्यांदृष्ट्वादेविविशङ्कितः। किंकर्तव्यमितिध्यायन्नतिचिन्तापरोऽभवत् ॥१३॥
स्थिरो वंशस्तु पुत्रेण ह्यन्यथा नरकं व्रजेत् ।
एवं चिन्तां प्रकुर्वाणो न सुखं लभते क्वचित् ॥१४॥
तदा स्वगृहमुत्सृज्य गतो वै गुरुसन्निधौ। नमो वै गुरवे तुभ्यं देवानामुपकारिणे॥१५॥
त्वं नाथः सर्वलोकानां ब्राह्मणानां च रक्षकः ।
यज्ञानांत्वंप्रकर्त्ताचद्विजराजनमोस्तुऽते ॥१६॥
अपुत्रोऽहं तु विप्रर्षे किं कर्त्तव्यं मया प्रभो ! ।
वद त्वं तु यथा सर्व पुत्रो भवति निश्चितम् ॥१७॥
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च। यन केनाऽप्युपायेन पुत्रस्य जननं चरेत्॥१८॥
इति वाक्यं तु संस्मृत्य ह्यागतस्तवसन्निधौ ॥१९॥

सारस्वत तीर्थ रखा है ॥६॥ त्रेतायुग में मङ्की महर्षि ने मङ्की तीर्थ बनाया । द्वापर युग में पाण्डवों ने सप्तधारा तीर्थ का प्रवर्तन किया ॥७॥ शङ्करजी की जटा से निकला हुआ तीर्थ सात धाराओं वाला हो गया। लोकों में गङ्गाजी के जो सात नाम है और सात रूप हैं । वे ही पवित्र धाराएँ सप्त धारा तीर्थ में प्रवाहित होते हैं । सप्त तीर्थ में किया गया श्राद्ध पितरों को तृप्ति प्रदान करता है ॥८-९॥ हे देवि ! मैं प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ उसको सुनकर हे देवेशि ! मनुष्य ब्रह्मलोक में जाता है ॥१०॥ कौषीतक महर्षि के पुत्र मङ्की के नाम से प्रख्यात थे । वे सदा भगवान् विष्णु का ध्यान करते थे और विष्णुलोक की पूजा करते थे ॥११॥ वे वेदाध्ययन और अग्निहोत्र करते रहते थे । उनके घर में सुरुपा और विश्वरूपा दो स्त्रियाँ थीं ॥१२॥ हे देवि ! उन दोनों को पुत्रहीन देखकर ऋषि शङ्कित हो गये । क्या करना चाहिए सोचते हुए चिन्तित हो गये ॥१३॥ वंश तो पुत्र से ही स्थिर रहता है अन्यथा नरक में जाना पड़ता है । इस प्रकार से चिन्ता करते हुए उनको कहीं भी सुख नहीं मिलता था ॥१४॥ इसके बाद वे घर छोड़कर अपने गुरु के पास गये गुरुदेव आपको नमस्कार है आप तो देवताओं का भी उपकार करने वाले हैं ॥१५॥ हे नाथ! आप ही देवताओं और मनुष्यों की रक्षा करने वाले हैं । हे द्विजराज ! आपको नमस्कार है आप यज्ञों के करने वाले हैं ॥१६॥ हे विप्रर्षे ! मैं पुत्रहीन हूँ अतएंव मुझे क्या करना चाहिए । आप उन सभी उपायों को बतलाएँ जिससे कि पुत्र की प्राप्ति हो ॥१७॥ पुत्रहीन की गति नहीं होती है स्वर्ग तो नहीं ही होता है । अतएव किसी भी उपाय से पुत्र प्राप्त करना चाहिए ॥१८॥ इस वाक्य का स्मरण करके मैं आपके सन्निकट आया हूँ ॥१९॥ **गुरु ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! आप साभ्रमती नदी में जाओ । हे मुनिश्रेष्ठ !

गुरुरुवाच

गच्छ त्वं मुनिशार्दूल यत्र साभ्रमती नदी। तत्रगत्वामुनिश्रेष्ठ पुत्रान्वैप्राप्स्यसे ध्रुवम् ॥२०॥

तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य नमस्कृत्य तु दण्डवत् ।
स गतो विप्रराजस्तु नदीं साभ्रमतीं प्रति ॥२१॥

मङ्किनामा तु विप्रर्षिस्तत्र गत्वा तपो महत्। अतप्यत तदा देवि यावद्वर्षचतुष्टयम् ॥२२॥

तत्र तीर्थं कृतं तेन मङ्किना ब्रह्मवादिना। त्रेतायुगे तदा देवि तदा तीर्थं महाद्भुतम् ॥२३॥

जातं तत्र न सन्देहः पुत्रदं सार्वकामिकम् । अद्याऽपिमङ्कितीर्थाभं न भूतं न भविष्यति ॥२४॥

स वै द्विजवरो मङ्किः पुत्रान्प्राप्य यथासुखम् ।
भोगान्नानाविधान्भुक्त्वा स गतो मन्दिरं मम ॥२५॥

एतदाख्यानकं दिव्यं पवित्रं परमं महत्। पुत्रसौख्यादिकं सर्वं लभते श्रवणादतः ॥२६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे सप्तधरतीर्थमहिमा नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥

वहाँ जाकर तुम पुत्रों को प्राप्त करोगे ॥२०॥ गुरु की बात सुनकर मुनि ने उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और वे विप्र साभ्रमती नदी कि लिए चल दिए ॥२१॥ वहाँ पर जाकर वे मङ्की नामक विप्र चार वर्षों तक महान् तप किए ॥२२॥ ब्रह्मवादी उन मङ्की ऋषि ने वहाँ तीर्थ बना दिया । हे देवि ! त्रेतायुग में वह महान् तीर्थ था ॥२३॥ वह तीर्थ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला और पुत्र प्रदान करने वाला हुआ । आज भी मङ्कि तीर्थ के समान कोई तीर्थ नहीं है और न होगा ॥२४॥ वे ब्राह्मण श्रेष्ठ मङ्की सुख पूर्वक पुत्रों को प्राप्त करके अनेक प्रकार के भोगों को भोगकर अन्त में कैलास को प्राप्त किए ॥२५॥ यह आख्यान परम दिव्य और पवित्र है इसको सुनने से सभी सौख्य तथा पुत्र को मनुष्य प्राप्त करता है ॥२६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत सप्तधारा तीर्थ की महिमा वर्णन नामक एक सौ तैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४३॥

एक सौ चौवालिसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

ब्रह्मवल्लीमहत्तीर्थं ततो गच्छेत्सुरेश्वरि !। तस्य तीर्थस्य स्वरूपं साक्षाच्छृणुसुरोत्तम ॥१॥
यत्र साभ्रमतीतोयं ब्रह्मवल्लयम्भसा सह । युज्यते ब्रह्मतीर्थं तत्प्रयागेन समं स्मृतम् ॥२॥
तत्र पिण्डप्रदानेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी । पितृणां जायते नूनं ब्रह्मणो वचनं यथा ॥३॥
गयाश्राद्धसमं पुण्यं ब्रह्मवल्ल्यां विशेषतः। यत्र ज्ञात्वा प्रकुर्वन्ति पितरस्तृप्तिमाप्नुयुः ॥४॥
गोदानं भूमिदानं च अन्नदानं तथैव च । एतद्दानसमं पुण्यं ब्रह्मवल्ल्यां विशेषतः ॥५॥
अत्रैव सनकाद्यास्तु स्नात्वा च विधिपूर्वकम् ।
परं ब्रह्मपदध्यानाद्विष्णुलोकमवाप्नुयुः ॥६॥
पुष्करे चैव गङ्गायां क्षेत्रे चाऽमरकण्टके। तत्र गत्वा तु देवेशि यत्फलं लभते नरः ॥७॥
तत्फलं समवाप्नोति ब्रह्मवल्ल्यां विशेषताः। चन्द्रसूर्योपरागे च दानं मे ददते नराः ॥८॥
तत्फलं समवाप्नोति ब्रह्मवल्ल्यां सुरेश्वरि । भूताः प्रेताः पिशाचाश्चयेकेचिद्दुष्टयोनयः ॥९॥
दिव्यरूपधरास्ते च शङ्खचक्रगदाधराः । तेऽपि स्वर्गे हि गच्छन्ति स्नानंकृत्वासुरेश्वरि॥१०॥
धृत्वा तुलसिजां मालां नारायणमनुस्मरन्। वैकुण्ठं दिव्यमानन्दं याति वै पदमव्ययम् ॥११॥

इति ब्रह्मवल्लीतीर्थमाहात्म्यम्

वृषतीर्थं ततो गच्छेत्खण्डतीर्थेति विश्रुतम् । तत्र स्नात्वा दिवं गावो गोलोकं च पुराश्रिताः॥१२॥
खण्डरूपेण धर्मेणया गावो लोकमातरः । शापात्प्रच्याबितास्तेन खण्डतीर्थमथोच्यते ॥१३॥

ब्रह्मबल्ली आदि अनेक तीर्थों की महिमा का वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे सुरेश्वरि ! वहाँ से ब्रह्म बल्ली नामक महान् तीर्थ में जाना चाहिए । हे देवि ! उस तीर्थ की महिमा का तुम साक्षात् श्रवण करो ॥१॥ जहाँ पर साभ्रमती का जल ब्रह्मबल्ली नामक नदी के साथ मिलता है । वहाँ पर प्रयाग के ही समान ब्रह्मतीर्थ है ॥२॥ ब्रह्माजी के वचनानुसार वहाँ पर पिण्डदान करने से पितरों को बारह वर्ष तक तृप्ति बनी रहती है ॥३॥ विशेषत: गया श्राद्ध के ही समान ब्रह्मबल्ली में किया गया श्राद्ध पुण्यप्रद होता है । इस तरह जानकर ही पितरों की तृप्ति के लिए वहाँ श्राद्ध करना चाहिए ॥४॥ गोदान, भूमिदान अन्नदान ब्रह्मबल्ली में एक समान होते हैं ॥५॥ यहाँ पर विधि पूर्वक स्नान करके सनकादि महर्षियों ने विष्णु लोक को प्राप्त किया ॥६॥ हे देवेशि ! पुष्कर तीर्थ, गङ्गाजी तथा अमरकण्टक क्षेत्र में जाने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥७॥ उस फल की प्राप्ति ब्रह्मबल्ली में स्नान करने से ही हो जाती है । यहाँ पर चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण के समय मनुष्य गोदान देता है ॥८॥ भूत प्रेत पिशाच आदि जो दुष्ट यानि के जीव हैं वे भी दिव्य रूप धारण करके शङ्ख, चक्र और गदाधारी हो जाते हैं । हे सुरेश्वरि ! वे भी स्नान करके स्वर्ग जाते हैं ॥९-१०॥ तुलसी की माला धारण करके तथा भगवान् नारायण का सेवन करते हुए वे दिव्य आनन्दमय निर्विकार वैकुण्ठ में जाते हैं ॥११॥ इस तरह ब्रह्म वल्ली तीर्थ का माहात्म्य पूरा हुआ । वहाँ से वृष तीर्थ जाना चाहिए यह विख्यात तीर्थ हैं । प्राचीन काल में वहाँ पर स्नान करके गौएँ द्युलोक से गोलोक में चली गयी ॥१२॥ खण्ड रूप से जो गौएँ लोक माता हैं वे वहाँ से शाप के कारण पतित हो गयी हैं । उसी समय से वृष तीर्थ को खण्ड तीर्थ कहा जाता है ॥१३॥

पार्वत्युवाच

शापो हि लोकमातृणां गवां कस्यपुराऽभवत् ।
कथंलोकात्परिभ्रष्टा:कथं धर्मेणरक्षिता: ॥१४॥

महादेव उवाच

पुरा वृषेण गोलोके क्रीडता सह मातृभि:। मुक्तं तथा शकृन्मूत्रं पतितं हरमूर्धनि ॥१५॥
ततस्तासां ददौ शापंतेन दोषेण वै हर:। नष्टसञ्ज्ञा: स्वलोकाच्च गावोयास्यथमेदिनीम् ॥१६॥
गाव: शप्ता भगवता संप्रसाद्य पुनर्हरम् । प्राप्स्यामहे पुनर्लोममिति देवं ययाचिरे॥१७॥

हर उवाच

यदा साभ्रमतीतीर्थे ब्रह्मवल्लीसमीपत:। खण्डसंज्ञह्रदे स्नात्वा स्वर्गं वै प्राप्स्यथ ध्रुवम्॥१८॥
ततस्तस्मिन्ह्रदे स्नात्वां गावो गोपतिना सह ।
स्वर्गं गता: शुद्धतमा महादेवसमीपत: ॥१९॥
गोह्रदे तु नर: स्नात्वा कृत्वा वै पितृतर्पणम् ।
गवां लोकमवाप्नोति दाहप्रलयवर्जितम् ॥२०॥
तत्र स्थित्वा निराहारो गोपिण्डं च ददाति वै ।
स नर: सुखमेधेत यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥२१॥
गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं प्राप्यते ध्रुवम्। तत्फलं समवाप्नोति खण्डतीर्थे न संशय: ॥२२॥
गृहीत्वावृषमूत्रं च तीर्थे य: पिबते नर:। तत्क्षणादेव शुद्धि: सयात्खण्डतीर्थे न संशय:॥२३॥
खण्डतीर्थात्परंतीर्थं न भूतं न भविष्यति । ये गच्छन्ति सुरश्रेष्ठे ते नरा:पुण्यभागिन: ॥२४॥
तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठे गवां पूजनमाचरेत् । वृषभं च तत: पूज्य स्नानं कृत्वासमाहित: ॥२५॥

पार्वतीजी ने कहा— प्राचीन काल में लोक माताओं को किसने पाप दिया था वे कैसे गो लोक से गिर पड़ीं और धर्म ने उनकी रक्षा की ॥१४॥ **महादेवजी ने कहा—** प्राचीन काल में मातृकाओं के साथ गोलोक में क्रीडा करते हुए वृष ने वहाँ पर मल-मूत्र का त्याग कर दिया और वह शङ्करजी के शिर पर गिरा ॥१५॥ उसी समय शिव ने उसी दोष के कारण शाप दिया कि ज्ञानहीन गायें गोलोक से तुम लोग भूलोक में जाओ ॥१६॥ शङ्करजी के शाप से अभिशप्त गायों ने शङ्करजी को प्रसन्न करके कहा कि हमलोग अपने लोक में कब आयेंगी ?॥१७॥ **शङ्करजी ने कहा—** जब तुम लोग साभ्रमती के ब्रह्म बल्ली के सन्निकट खण्ड ह्रद में स्नान करोगी तो फिर गोलोक में आओगी ॥१८॥ उसके बाद वृष के साथ उस ह्रद में स्नान करके शुद्ध होकर महादेव के सन्निकट से स्वर्ग चली गयी ॥१९॥ गोह्रद में स्नान करके तथा वहाँ पर पितरों का तर्पण करके मनुष्य दाह एवं प्रलय से रहित गोलोक में चले जाते हैं ॥२०॥ वहाँ पर निराहार रहकर जो मनुष्य गोपिण्ड प्रदान करता है वह मनुष्य प्रलय काल पर्यन्त सुख प्राप्त करता है॥२१॥ करोड़ गायों का दान करने से जिस फल की प्राप्त होती है उस फल को मनुष्य खण्ड तीर्थ में प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य बैल के मूत्र को लेकर इस तीर्थ में पीता है तो उसकी उसी क्षण खण्ड तीर्थ में शुद्धि हो जाती हैं ॥२२-२३॥ खण्ड तीर्थ से बड़ा तीर्थ न तो हुआ और न होगा । हे देवि ! जो मनुष्य वहाँ जाते हैं वे पुण्यवन् हैं ॥२४॥ हे सुरश्रेष्ठ ! वहाँ जाकर गौओं की पूजा करनी चाहिए । और स्नान करके

पूजनाद्वैन न संदेहो गोलोके तु वसेच्चिरम्। तत्र गत्वा विशेषेण स्वर्णगां वितरन्ति ये ॥२६॥
ते नरा भुञ्जते सौख्यं यावदिन्द्राश्चतुर्दश । दशधेनुं ततः कृत्वा यो ददाति द्विजातये ॥२७॥
खण्डतीर्थे सुरश्रेष्ठे तदनन्तफलं स्मृतम्। तत्र गत्वा तु कर्त्तव्यं पिप्पलारोपणं बुधैः ॥२८॥
तत्कृते सति देवेशि पितृलोकं स गच्छति। पञ्चवामलकीर्दिव्या ये कुर्वन्ति प्ररोपणम् ॥२९॥
इह लोके सुखं भुत्तवा हरिलोकं व्रजन्ति ते ॥३०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे खण्डतीर्थं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥

एक सौ पैंतालिसवाँ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

ततो गच्छेन्महत्तीर्थं सङ्गमेश्वरमुत्तमम् । यत्र हस्तिमती पुण्या साभ्रमत्या हि सङ्गता॥१॥
शापं कौडिन्यमुनितः प्राप्य शुष्काऽभवन्नदी ।
बहिश्चर्येति नाम्ना वै लोके ख्यातिमुपागता ॥२॥
तत्तीर्थं संप्रवक्ष्यामि पुण्यं त्रैलोक्यविश्रुतम्। सर्वपापहरं पुण्यं त्रैलोक्ये चाऽपि विश्रुतम्॥३॥
यत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं प्रगच्छति ॥४॥

बैल की भी पूजा करनी चाहिए ॥२५॥ पूजन करने वाला दीर्घ काल तक गोलोक में निवास करता है । वहाँ जाकर विशेष रूप से जो लोग स्वर्ण निर्मित गौ का दान करते हैं ॥२६॥ वे मनुष्य चौदह इन्द्रों के काल तक सुख प्राप्त करते हैं । जो मनुष्य दश गायों को बनाकर ब्राह्मण को दान करते हैं ॥२७॥ हे देवि! उन लोगों को अनन्त फल की प्राप्ति होती है । विद्वानों को वहाँ जाकर पिप्पल को रोपना चाहिए॥२८॥ हे देवेशि ! ऐसा करने वाला पितृलोक में जाता है । अथवा जो लोग दिव्य पाञ्च आवले का वृक्ष लागते हैं ॥२९॥ वे लोग इस लोक में सुख भोगकर श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥३०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत खण्ड तीर्थ का वर्णन नामक एक सौ चौवालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पुर्ण हुआ ।।१४४।।

सङ्गमेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्रीमहादेवजी ने कहा— वहाँ से महान् तथा उत्तम तीर्थ सङ्गमेश्वर जाना चाहिए । वहीं पर पवित्र हस्तीमती नदी साभ्रमती से मिलती है ।१॥ वह कौण्डिन्य मुनि के शाप के कारण शुष्क हो गयी है । वह लोक में बहिश्चर्या के नाम से विख्यात है ॥२॥ उस त्रैलोक्य विख्यात तीर्थ का वर्णन मैं तुमसे करता हूँ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि एतच्छापस्य कारणम् ।
यथेह शुष्करूपा हि जाताशापस्यकारणात् ॥५॥
यत्र साभ्रमती पुण्या गङ्गा नाम महानदी। तत्र हस्तिमती नाम गङ्गया सह सङ्गता ॥६॥
तत्राऽऽरब्धं च मुनिना तपो वै परमं महत् ।
शर्वं बहुगते कालऋृषिणापरमात्मना ॥७॥
अराधितो हृषीकेशो नारायणनिरञ्जनः। तस्यास्तटे तु देवेशि वर्षाणि च बहून्यपि॥८॥
गतानि च विशेषेण मुनिस्तस्य तु पार्वति । कदाचिद्दैवयोगाच्च वर्षाकालः समागतः ॥९॥
नदी तत्र तु सम्पूर्णा कालयोगेन सुव्रते। तत्कौण्डिन्येनऋृषिणा स्थानं त्यक्तं तदा निशि॥१०॥
रात्रौ दुःखं महज्जातं हाहेतिकरुणं रुदन्। किंकर्त्तव्यमिति ध्यायन्नतिचिन्तापरोऽभवत् ॥११॥
आश्रमोहि महादिव्यऋृषिणैव समायुतः । स गतो वारियोगेन हस्तिमत्यां सुरोत्तमे॥१२॥
फलानि चैव मूलानि पुस्तकानि बहून्यपि । तानि तस्यां गतान्येव वारियोगेन सुन्दरि ॥१३॥
स कौण्डिन्यऋृषिश्रेष्ठः शशाप तां नदीं किल ।
उदकेन विना त्वं च भविष्यसि कलौ युगे ॥१४॥
एवं स दत्त्वा वै शापं हस्तिमत्यै महेश्वरि । गतोऽसौ विप्रप्रवरो विष्णुलोकं सनातनम् ॥१५॥
अद्याऽपि वर्तते तीर्थं सङ्गमेश्वरसञ्ज्ञकम्। यद्दृष्ट्वा मुच्यते पापी ब्रह्महत्यादिपातकात् ॥१६॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे
सङ्गमेश्वरतीर्थमहिमा नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

वह त्रैलोक्य विख्यात होने के साथ-साथ पुण्य प्रद तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाला तीर्थ है ॥३॥ वहाँ पर तीर्थ में स्नान करके तथा शङ्करजी का दर्शन करके मनुष्य रुद्रलोक में जाता है ॥४॥ हे देवि ! सुनो इस शाप का कारण मैं बतला रहा हूँ । जिससे कि यह इस लोक में शुष्क नदी हो गयी ॥५॥ जहाँ पर पवित्र साभ्रमती गङ्गा नामक महानदी है वहीं पर हस्तीमती साभ्रमती में मिलती है ॥६॥ वहाँ पर शाण्डिल मुनि ने महान् तप किया और बहुत दिनों के बाद शिवजी ने मुनि को दर्शन दिया ॥७॥ मुनि ने निरञ्जन भगवान् नारायण की आराधना बहुत वर्षों तक उस नदी के तट पर की ॥८॥ हे पार्वति ! उन मुनि के बहुत वर्ष बीत गये एक बार सौ योग से वर्षा का समय आया ॥९॥ हे सुन्दर व्रत वाली ! काल योग से नदी जल से भर गयी । उसके कारण कौण्डिन्य ऋषि ने उस स्थान को रात्रि में त्याग दिया॥१०॥ उनको उस रात में बड़ा कष्ट हुआ और वे हाय-हाय करके करुण रुदन किए और सोचने लगे कि मुझे क्या करना चाहिए ॥११॥ ऋषि के साथ अत्यन्त दिव्य आश्रम भी नदी में बह गया ॥१२॥ फल, मूल और बहुत सी पुस्तकें भी पानी के साथ नदी में चली गयीं ॥१३॥ ऋषिश्रेष्ठ कौण्डिन्य ने नदी को शाप दे दिया कि कलियुग में तुम जल रहित होकर सूख जाओगी ॥१४॥ हे महेश्वरि ! इस प्रकार से ऋषि ने नदी को शाप देकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णु लोक में चले गये ॥१५॥ वहाँ आज भी सङ्गमेश्वर तीर्थ है, उसका दर्शन करके पापी भी ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ॥१६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत सङ्गमेश्वर तीर्थ वर्णन नामक एक सौ पैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४५॥

एक सौ छियालिसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

ततो गच्छेत देवेशि ! तीर्थं रुद्रमहालयम् । केदारानुपमं साक्षाद्रुद्रेण परिनिर्मितम् ॥१॥
श्राद्धं तत्रैव कर्तव्यं पितॄणां तृप्तिकारणम् । तत्र श्राद्धप्रदानेन पितरः सपितामहाः ॥२॥
तृप्ताः समभिगच्छन्ति रुद्रस्य परमं पदम् । वृषमुत्सृजते यस्तु तत्र रुद्रमहालये ॥३॥
कार्त्तिक्यामथ वैशाख्यां रुद्रेण सह मोदते । केदारउदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥४॥
अत्र तु स्नान मात्रेण मुक्तिभागी न संशयः ।
एकस्मिन्समये देवि ! त्यक्त्वा कैलासमागतः ॥५॥
साभ्रमतीं महागङ्गां ज्ञात्वा लोकहिताय वै । तत्र स्नात्वा च पीत्वा च कृत्वा तीर्थमनुत्तमम् ॥६॥
ततोऽहं च स्वकं स्थानं कैलासं प्रति भामिनि ।
तदनन्तरं महापुण्यंतीर्थं जातं महालयम् ॥७॥
रुद्रमहालयमितिलोकेख्यातिंगमिष्यति । कार्त्तिक्यामथ वैशाख्यां येगच्छन्तिसुरोत्तमे ॥
न तेषां विद्यते दुःखं सर्वसंसारजं पुनः ॥८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्सहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वर सम्वादे रुद्रमहातीर्थं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

रुद्रमहातीर्थ की महिमा का वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवेशि ! उसके पश्चात् रुद्र महालय तीर्थ में जाना चाहिए वहाँ पर साक्षात् रुद्र ने अनुपम केदार का निर्माण किया है ॥१॥ वहाँ पितरों को तृप्त करने वाले श्राद्ध को करना चाहिए वहाँ पर श्राद्ध करने से पितामहों के साथ पितृगण ॥२॥ तृप्त होकर रुद्र के परम पद में चले जाते हैं । उस रुद्रमहालय तीर्थ में जो वृषोत्सर्ग कार्तिक पूर्णिमा अथवा वैशाखी के दिन करता है वह रुद्र के साथ आनन्दानुभव करता है । केदार का जल पीकर उसका पुनर्जन्म नहीं होता है ॥३-४॥ यहाँ पर केवल स्नान करने वाला मुक्ति का भागी हो जाता है । हे देवि ! एक बार मैं कैलास को त्यागकर साभ्रमती गङ्गा को लोक हितकारी जानकर आया और साभ्रमती में स्नान करके और उसका जल पीकर तथा उसको सर्वोत्तम तीर्थ बनाकर ॥५-६॥ अपने स्थान कैलास चला आया । उसके बाद वह महालय महान् तीर्थ हो गया॥७॥ वह लोक में रुद्र महालय के नाम से विख्यात हो गया । हे सुरोत्तम कार्तिक अथवा वैशाखी के दिन जो लोग रुद्र महालय में जायेंगे उन लोगों को संसार का कोई भी दुःख नहीं होगा ॥८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत रुद्र महालय तीर्थ वर्णन नामक एक सौ छियालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४६॥

एक सौ सैंतालिसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

देवि वै श्रूयतां तीर्थं देवानामपि दुर्लभम्। खड्गतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
खड्गतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वा खड्गेश्वरं शिवम् ।
न नरोदुर्गतिंगच्छेत्स्वर्गलोकं प्रगच्छति ॥२॥
खड्गधारेश्वरं देवं यः पश्यति सुरोत्तमे। कार्त्तिक्यां तु विशेषेण पूजनं तत्र कारयेत्॥३॥
अयं विश्वेश्वरो देवः सर्वदा भुवि वल्लभे। सर्वं ददाति सर्वेशो वाञ्छितार्थप्रदायकः॥४॥
वैशाखे राज्यकामार्थी यः पश्यति तमीश्वरम् ।
तमर्थं लभते क्षिप्रं विश्वनाथप्रसादतः ॥५॥
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्दीपैर्वा नगनन्दिनि !। फलप्रदानैर्बिल्वैश्च विश्वेशं पूजयेत्ततः ॥६॥
धनधान्यप्रदं चाऽऽशु पुत्रपौत्रादिसम्पदः। प्राप्यन्ते नात्रसंदेहः श्रीविश्वेश्वरपूजनात् ॥७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे खड्गतीर्थं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७॥

खड्गतीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवि ! देवताओं के लिए भी दुर्लभ खड्ग तीर्थ को सुनो वह सभी पापों का विनाशक है ॥१॥ खड्ग तीर्थ में स्नान करके तथा खड्गेश्वर का दर्शन करके मनुष्य दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है वह स्वर्ग में जाता है ॥२॥ हे सुरोत्तमे ! खड्गेश्वर देव का जो दर्शन करता है तथा कार्तिक पूर्णिमा के दिन उनकी विशेष पूजा करवाता है ॥३॥ हे प्रिये ! ये खड्ग धारेश्वर देव उसको इसलोक में सबकुछ प्रदान करते हैं । वे वाञ्छित अर्थ को प्रदान करने वाले हैं ॥४॥ राज्य प्राप्त करने की इच्छार वाला मनुष्य उनका यदि वैशाखी के दिन दर्शन करता है तो वह अपने अभिप्रेत अर्थ को विश्वनाथ की कृपा से शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ॥५॥ हे नगनन्दिनि ! धूप, दीप, पुष्प, नैवेद्य, फल तथा विल्व चढाकर शिवजी की पूजा करनी चाहिए ॥६॥ वह पूजा शीघ्र ही धन-धान्य तथा पुत्र-पौत्र को प्रदान करने वाली विश्वेश्वर की कृपा से होती है इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत खड्गतीर्थ के माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ सैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४७।।

एक सौ अड़तालिसवाँ अध्याय

महादेव उवाच

साभ्रमत्यास्तटे तीर्थं गयातीर्थादनुत्तमम् । चित्राङ्गवदनं नाममालार्काधिष्ठितं शुभम्॥१॥
कल्पपादपसन्तानैर्मन्दारैश्चोपशोभितम् । चूतनिम्बकदम्बैश्च काश्मर्यश्वत्थतिन्दुकैः ॥२॥
तस्मादपहरेत्कुष्ठं योजनस्मृतिविभ्रमात्। यस्य संजायते कुष्ठं तस्य मालार्ककोहरेत्॥३॥

या तु वेदोक्तविधिना नारी तत्राऽभिषिञ्चति ।
मृतवत्साऽथवा वन्ध्या पुत्रं प्राप्नोति साऽचिरात् ॥४॥
सन्ध्यास्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
कृतं भास्करभक्तेन मालार्के ह्यक्षयं भवेत् ॥५॥

अत्र गत्वा तु देवेशि ! श्रीरवेर्व्रतमाचरेत्। इह लोके सुखं भुक्त्वा रवेर्लोकं हि याति वै ॥६॥
मृतवत्सो हि राजर्षिस्तत्र गत्वाऽकरोत्तपः। सराजाप्राप्तवान्पुत्रं श्रीमालार्कप्रसादतः ॥७॥
अत्र गत्वा विशेषेण उपवासी जितेन्द्रियः । मालार्कं पूजयेद्योवैमुक्तिभागीभवेद्ध्रुवम् ॥८॥
वसिष्ठप्रमुखा विप्रा देवा इन्द्रादयः सदा। निवसन्ति सुरश्रेष्ठे मालार्के रविसन्निधौ ॥९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे मालार्कतीर्थं नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

मालार्क तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

महादेवजी ने कहा— साभ्रमती के तट पर विद्यमान चित्राङ्गवदन नामक तीर्थ है, यह गया तीर्थ से भी श्रेष्ठ है तथा मालार्क से अधिष्ठित है ॥१॥ यह कल्प वृक्ष सन्तान वृक्ष तथा मन्दार वृक्ष से सुशोभित है । आम, निम्व, कदम्ब, काश्मरी, अश्वत्थ, तिन्दुक के भी वृक्ष से सुशोभित है ॥२॥ अतएव योजन भर दूर से भी स्मरण करने से यह तीर्थ कुष्ठ रोग के विनष्ट कर देता है । जिसको कोढ हो जाता है उसको मालार्क दूर कर देता है ॥३॥ जो नारी वहाँ पर वेदोक्त विधि से माला को सिञ्चती है, वह मृतवत्सा हों या बन्ध्या हो तो वह शीघ्र ही पुत्र प्राप्त करती है ॥४॥ सन्ध्या, स्नान, जप, होम स्वध्याय तथा देवार्चन जो सूर्यभक्त भक्ति पूर्वक यहाँ करता है उसको अक्षय फल की प्राप्ति होती है ॥५॥ हे देवि ! यहाँ जाकर श्रीसूर्य का व्रत करना चाहिए । ऐसा करने वाला इस लोक में सुख भोगकर सूर्य के लोक में जाता है॥६॥ मृतवत्स राजर्षि ने वहाँ जाकर तप किया । वह राजा ने मालार्क कृपा से पुत्र को प्राप्त कर लिया ॥७॥ वहाँ जाकर विशेष रूप से जितेन्द्रिय होकर उपवास करने वाला मालार्क की पूजा करने वाला व्यक्ति मुक्ति का पात्र हो जाता है ॥८॥ वसिष्ठ आदि ब्राह्मण तथा इन्द्र आदि देवता सुरश्रेष्ठ मालार्क के सन्निकट निवास करते हैं ॥९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत मालार्क तीर्थ माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ अड़तालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधरचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४८।।

एक सौ उनचासवाँ अध्याय

महादेव उवाच

तीर्थादस्मात्परंतीर्थं मालार्कान्तरतःस्थितम्। चन्दनेश्वरमागच्छेदामोदस्थानमुत्तमम् ॥१॥
दुःखासनस्यरुधिरं पीत्त्वा भीमो महाबलः। प्रतिज्ञामात्मनःसर्वांपूरयित्वासुदारुणाम् ॥२॥
कराभ्यां रुधिराक्ताभ्यां द्रौपद्याः केशबन्धनम्।
कृत्वा दत्त्वा द्विजातिभ्यस्तीर्थयात्रां ततोऽगमत् ॥३॥
साभ्रमत्यास्तटे रम्ये गतो वै भ्रातृभिः सह। आनीतः साभ्रमत्यां यः स्वर्गाच्चन्दनपादपः ॥४॥
स तु लिङ्गतया जातः पुण्यतीर्थप्रभावतः। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च कृत्वा वै पितृतर्पणम्॥५॥
न नरो निरयं गच्छेद्रुद्रलोकमवाप्नुयात्। चन्दनेशं ततो दृष्ट्वा विश्वेशं लोकशङ्करम् ॥६॥
पूजयेच्च यथाशक्त्या यत्र गत्वा न शोचति।
यत्र कैवर्तको राजा पूजांकृत्वाह्यनेकशः ॥७॥
स गतः शिवलोकं तं यत्र गत्वा न शोचति।
मज्जन्ति ऋषयो यत्र यत्र देवःसनातनः ॥८॥
साक्षाद्विष्णुः परमात्मा नित्यं तिष्ठति भूतिदः।
इयं साभ्रमती धन्या धन्यो विश्वेश्वरः प्रभुः ॥९॥
यत्र तीर्थान्यनेकानि जातानि भुवि पार्वति!।
अत्र चामर्दकीपुण्यैःफलैर्नानाविधैःशुभैः ॥१०॥

चन्दनेश्वर के माहात्म्य का वर्णन

महादेवजी ने कहा— वहाँ से पाप विनाशक जम्बूतीर्थ में जाना चाहिए। वह कालिकाल में मनुष्यों के लिए स्वर्ग की सीढ़ीं के समान विद्यमान है ॥१॥ महाबलवान् भीम दुःशासन के खून को पीकर अपनी सारी भयङ्कर प्रतिज्ञाओं को पूरा किए ॥२॥ खून से सने हुए हाथों से उन्होंने द्रौपदी के बालों को बाँधा। तदन्तर ब्राह्मणों को दान देकर वे तीर्थ यात्रा करने के लिए चले गये ॥३॥ वे अपने भाइयों के साथ मनोहर साभ्रमती के तट पर गये। स्वर्ग से जो चन्दन का वृक्ष लाया गया था वह लिङ्ग स्वरूप हो गया। उस तीर्थ के प्रभाव से ऐसा हुआ था। वहाँ स्नान करके तथा उसका जल पीकर एवं पितृतर्पण करने वाला मनुष्य नरक में नहीं जाता है वह शिवलोक में जाता है। उसके बाद चन्दनेश्वर का दर्शन कर लोक कल्याण करने वाले विश्वेश हैं ॥४-६॥ उनकी अपनी शक्ति के अनुसार पूजा करके मनुष्य को किसी प्रकार का शोक नहीं होता है। वहाँ पर कैवर्तक नामक राजा अनेक प्रकार से पूजा करके ॥७॥ शिवलोक में चला गया, जहाँ जाकर जीव को सोचना नहीं पड़ता है। जहाँ सनातन देव है वहाँ पर ऋषिगण स्नान करते हैं ॥८॥ वहाँ पर ऐश्वर्य प्रदान करने वाले परमात्मा विष्णु सदैव निवास करते हैं। यह साभ्रमती धन्य

कर्त्तव्यमर्घदानं च विधिना तत्र सुन्दरि ! ॥११॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे चन्दनेश्वरमाहात्म्यं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४९॥

एक सौ पचासवाँ अध्याय

महादेव उवाच

जम्बूतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानार्थं पापनाशनम् । कलिकाले च यत्पुंसां स्वर्गसोपानवत्स्थितम् ॥१॥
यत्र जाम्बवता पूर्वं दशाङ्गे पर्वतोत्तमे । स्थापितं चर्क्षराजेन लिङ्गं सुरगणार्चितम् ॥२॥
रामेण हि यदा पूर्वं हतो वै रावणोऽसुरः। तदा जाम्बवता दिक्षु भेरीघोषैःप्रघोषितम् ॥३॥
जितं वै रामचन्द्रेण रावणो निहतो रणे । लब्ध्वा सीतेति संघुष्य स्नानंतीर्थवरेशुभे॥४॥
स्थापितं तत्र लिङ्गं तु स्वनाम्ना तु सुरेश्वरि ! ।
तत्र स्नात्वा नरः सद्यः स्मृत्वा रामं सहानुजम् ॥५॥
जाम्बवन्तेश्वरं स्नात्वा रुद्रलोके महीयते। यत्रयत्र हि भो देवि ! श्रीरामस्मरणंकृतम् ॥६॥
भवबन्धविमोक्षो हि दृश्यते सचराचरे। अहं रामस्तु विज्ञेयो रामो वै रुद्रएव च ॥७॥

है और विश्वेश्वर प्रभु भी धन्य हैं ॥९॥ हे पार्वति ! जहाँ पृथिवी पर अनेक तीर्थ है वहाँ पर अमर्दकी पुण्यों से तथा अनेक प्रकार के शुभ फलों से ॥१०॥ हे सुन्दरि ! विधिपूर्वक अर्घ देना चाहिए ॥११॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत चन्दनेश्वर माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ उनचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४९।।

जाम्बवन्त तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— वहाँ से पाप विनाशक जम्बूतीर्थ में स्नान करने के लिए जाना चाहिए । वह कलिकाल में मनुष्यों के लिए स्वर्ग सोपान के समान हैं ॥१॥ वहाँ पर दशाङ्ग नामक उत्तम पर्वत पर जाम्बवान् नामक ऋक्षराज देवगणों से पूजित लिङ्ग की स्थापना की है ॥२॥ जब पूर्वकाल में श्रीरामचन्द्रजी रावण का वध किया । उस समय जाम्बवान ने भेरी बजाकर उसकी दशो दिशाओं में घोषणा करायी ॥३॥ श्रीरामचन्द्रजी ने युद्ध में रावण को मार दिया । सीताजी प्राप्त हो गयीं इस बात की घोषणा करके श्रेष्ठ तीर्थ में उन्होंने स्नान किया ॥४॥ सुरेश्वरि उन्होंने अपने नाम से लिङ्ग की स्थापना की । वहाँ पर स्नान करके तथा लक्ष्मणजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करके ॥५॥ जाम्बवन्तेश्वर तीर्थ में स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है । हे देव ! जहाँ पर श्रीराम का स्मरण किया जाता है ॥६॥ वहाँ सर्वत्र सम्पूर्ण संसार का बन्धन विनष्ट हो जाता है । मुझको ही राम समझो और राम ही रुद्र हैं ॥७॥ हे देवि ! ऐसा जान

एवं ज्ञात्वा तु ते देवि ! न भेदो वर्त्तते क्वचित् ।
रामरामेति रामेति मनसा ये जपन्ति च ॥८॥
तेषां सर्वार्थसिद्धिश्च भविष्यति युगे युगे । अहं हि सर्वदा देवि श्रीरामस्मरणं चरे ॥९॥
यं श्रुत्वा तु पुनर्देवि ! न भवो जायते क्वचित् ।
काश्यां हि निवसन्नित्यं श्रीरामं कमलेक्षणम् ॥१०॥
स्मरामि सततं देवि ! भक्त्या च विधिपूर्वकम् ।
जाम्बवता तदा पूर्वं स्मृत्वा रामं सुशोभनम् ॥११॥
जाम्बवन्तमितिख्यातं प्रस्थाप्यजगतांगुरुम् । तत्र स्नात्वाचभुक्त्वाचकृत्वादेवस्यपूजनम्॥१२॥
शिवलोकमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश । अत्र हि स्नानमात्रेण यथा जाम्बवतो बलम् ॥१३॥
तथा वै बलमाप्नोति श्रीविश्वेशप्रसादतः । अत्र गत्वा तु भूदानं पुमान्यश्च करोति वै ॥
फलं सहस्रगुणितं जाम्बवन्तेशदर्शनात् ॥१४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे जाम्बवन्ततीर्थमाहात्म्यं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५०॥

लेने से कहीं भी भेद नहीं प्रतीत होता है ॥८॥ ऐसा जानने वाले लोगों को सर्वत्र सिद्धि प्रत्येक युग में होगी । हे देवि ! मैं सदैव श्रीराम का स्मरण करता हूँ ॥९॥ हे देवि ! उसको सुनकर पुनः संसार में नहीं आना पड़ता है । काशी में निवास करते हुए मैं कमलनयन श्रीराम का निरन्तर स्मरण भक्ति पूर्वक सविधि करता हूँ । उस समय जाम्बवान् ने सुन्दर श्रीराम का स्मरण करके ॥१०-११॥ जाम्बवान् नामक प्रसिद्ध तीर्थ की स्थापना की । वहाँ पर स्नान करके तथा जलपान करके तथा जाम्बन्तेश्वर की पूजा करके ॥१२॥ चौदह इन्द्रों के काल पर्यन्त के लिए जीव रुद्रलोक को प्राप्त करता है । यहाँ पर स्नान करने मात्र से जाम्बवान् के ही समान बल जीव श्रीविश्वेश्वर की कृपा से प्राप्त कर लेता है । वहाँ पर जो मनुष्य पृथिवी का दान करता है उसको जाम्बवन्तेश के दर्शन की अपेक्षा हजार गुना फल प्राप्त होता है ॥१३-१४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत जाम्बवन्त तीर्थ का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ पचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५०॥

एक सौ एकयावनवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अस्मात्तीर्थात्परं तीर्थमिन्द्रग्राममतितिस्मृतम्। यत्र स्नात्वा पुरा शक्रो विमुक्तो घोरकिल्बिषात्॥१॥

पार्वत्युवाच

केनेह कर्मणा शक्रः प्राप्तवान्घोरकिल्बिषम् ।
विपाप्मा च कथंसोऽभूदितिविस्तरतोवद ॥२॥

महादेव उवाच

इन्द्रः सुरशेवरः पूर्वं नमुचिश्चाऽसुरेश्वरः। अशस्त्रवधमन्योन्यं समयं तो प्रचक्रतुः॥३॥
अथेन्द्रस्तु नभोवाणीनिर्देशान्नमुचिं तदा। जघान फेनमादाय ब्रह्महत्या तदाऽभवत्॥४॥
पप्रच्छ च गुरुं शक्रः पापनिर्णाशिकारणम्। बृहस्पतेरथाऽऽदेशात्साभ्रमत्युत्तरे तटे॥५॥
अस्मिन्स्थाने समागत्य स्थानंचक्रेसुरेश्वरः। तस्येह स्नानमात्रेण गतपापस्यतत्क्षणात्॥६॥
पूर्णेन्दुधवला कान्तिः शरीरे समजायत्। धवलेश्वरमीशानं स्थापयामास वृत्रहा॥७॥
इन्द्रनाम्ना च तल्लिङ्गं विश्रुतं पृथिवीतले। पूर्णिमायां तथा दर्शे संक्रान्तौ ग्रहणे तथा॥८॥
श्राद्धे कृते पितॄणां तु तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी। धवलेश्वरमासाद्य यः कुर्याद्विप्रभोजनम्॥९॥

एकस्मिन्भोजिते विप्रे सहस्रं भोजितं भवेत् ।
हिरण्यभूमिवासांसि दातव्यानि स्वशक्तितः ॥१०॥

धवलेश्वर माहात्म्य वर्णन पूर्वक शिवजी की पूजा से नन्दी तथा किरात दोनों को शिव के गणत्व की प्राप्ति

महादेवजी ने कहा— इस तीर्थ से श्रेष्ठ तीर्थ इन्द्रिय ग्राम को कहा गया है। वहाँ पर स्नान करके इन्द्र पाप मुक्त हो गये ॥१॥ **पार्वतीजी ने कहा—** किस कर्म को करने के कारण इन्द्र को भयङ्कर पाप लग गया। और वे कैसे पाप रहित हो गये इस बात को आप विस्तार से कहें ॥२॥ **महादेवजी ने कहा—** प्राचीन काल में देवताओं के राजा इन्द्र और असुरों के राजा नमुचि ने परस्पर में यह प्रतिज्ञा की कि हम दोनों में से कोई भी शस्त्रास्त्र से एक दूसरे को नहीं मारेगा ॥३॥ इन्द्र ने आकाशवाणी सुनकर नमुचिका फेन से बध कर दिया। उस समय इन्द्र को ब्रह्महत्या लग गयी ॥४॥ इन्द्र ने ब्रह्महत्या के निरास का साधन बृहस्पति से पूछा बृहस्पति के आदेश से इन्द्र साभ्रमती के उत्तर तट पर आये ॥५॥ इस स्थान पर आकर उन्होंने अपने रहने का स्थान बनाया। यहाँ पर स्नान मात्र करने से उसी क्षण पाप का विनाश हो गया ॥६॥ और पूर्ण चन्द्रमा के समान इन्द्र की धवल कान्ति हो गयी। इन्द्र ने वहाँ पर धवलेश्वर नामक शिव की स्थापना की ॥७॥ पृथिवी पर वह लिङ्ग इन्द्र के नाम से प्रख्यात हुआ। पूर्णिमा, अमावस्या, संक्रान्ति तथा ग्रहण में यहाँ पर श्राद्ध करने से पितरों को द्वादश वर्ष पर्यन्त तक तृप्ति बनी रहती है। जो व्यक्ति धवलेश्वर तीर्थ में आकर ब्राह्मण भोजन करता है ॥८-९॥ वहाँ पर एक ब्राह्मण को भोजन कराने से एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल होता है। वहाँ पर अपनी शक्ति के अनुसार

शुक्ला गौर्ब्राह्मणे देया सवत्सा च पयस्विनी ।
अत्राऽऽगत्य तु यो विप्रो रुद्रजाप्यादिकं चरेत् ॥११॥
तत्कृतं कोटिगुणितं श्रीमहेशप्रसादतः । अत्र तीर्थे नरो यस्तु उपवासादिकं चरेत् ॥१२॥
स एव सर्वकामाढ्यो भवत्येव न संशयः। विल्वपत्रं समानीय यः पूजयति तं प्रभुम् ॥१३॥
धर्ममर्थं च कामं च लभते मानवो भुवि। सोमवारे विशेषेण ये गच्छन्ति नरोत्तमाः ॥१४॥
तेषां रोगं तथा दोषं शमयेद्धवलेश्वरः । रवौ वाऽथ विशेषेण ह्यर्चनं कुरुते यदा ॥१५॥
तेषां महिमा तु भो देवि ! न ज्ञातः कर्हिचिन्मया ।
दूर्वया चार्कपुष्पैर्वा कह्लारैः कमलैर्दलैः ॥१६॥
पूजनं कुर्वते येऽत्र ते नराः पुण्यभागिनः । श्वेतार्कपुष्पमानीय धवलेशं प्रपूज्यतु ॥१७॥
वाञ्छितं लभते नित्यं धवलेशप्रसादतः । कृते वै नीलकण्ठस्तु सर्वेषां शङ्करः सदा ॥१८॥
त्रेतायुगे स विख्यातो हरो वै भगवान्प्रभुः। द्वापरे शर्वसंज्ञस्तु कलौ वै धवलेश्वरः ॥१९॥
अत्राऽर्थे यत्पुरावृत्तं तच्छृणुष्व सुरेश्वरि !। नन्दिनामा पुरा वैश्य इन्द्रग्रामे समावसत्॥२०॥
शिवध्यानपरो भूत्वा शिवपूजां चकार सः। नित्यं तपोवनस्थं हि लिङ्गं धवलसञ्ज्ञकम्॥२१॥
उषस्युषसि चोत्थाय प्रत्यहं शिववल्लभः। नन्दी लिङ्गार्चनरतो बभूवाऽतिशयेन हि ॥२२॥
यथाशास्त्रेण विधिना पुष्पार्चनपरोऽभवत् । एकदा मृगयालुब्धः किरतो भूतहिंसकः ॥२३॥
पापी पापसमाचारश्चरन्साभ्रमतीतटे । अनेकश्वापदाकीर्णे हन्यमानो मृगाञ्छरैः ॥२४॥

सुवर्ण, भूमि तथा वस्त्र का दान करना चाहिए ॥१०॥ ब्राह्मण को उजली तथा बछड़े से युक्त गौ का दान देना चाहिए । यहाँ पर आकर जो ब्राह्मण रुद्र के मन्त्र तथा रुद्र सूक्त का जप करता है ॥११॥ उसके द्वारा किया गया वह कार्य सौ गुना फलप्रद होता है । इस स्थान पर जो मनुष्य उपवास आदि करता है ॥१२॥ उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं इसमें कोई भी संशय नहीं है । जो व्यक्ति विल्वपत्र लाकर धवलेश्वर की पूजा करता है ॥१३॥ वह मनुष्य भूलोक में धर्म, अर्थ और काम को प्राप्त करता है । जो श्रेष्ठ मनुष्य विशेष रूप से धवलेश्वर की पूजा करते हैं ॥१४॥ उन लोगों के रोगों तथा दोषों को धवलेश्वर दूर करते हैं । यदि कोई रविवार के दिन इनकी विशेष रूप से पूजा करता है ॥१५॥ हे देवि ! उन मनुष्यों की महिमा को मैं नहीं जान सकता हूँ । दूर्वा, अकवन के पुष्प कह्लार तथा कमल से ॥१६॥ जो मनुष्य यहाँ पर पूजन करते हैं वे मनुष्य पुण्यवान् हैं । श्वेत आक को लाकर धवलेश्वर की पूजा करते हैं ॥१७॥ मनुष्य धवलेश की कृपा से वाञ्छित अर्थ को प्राप्त करता है । सत्ययुग में शङ्करजी सर्वत्र नीलकण्ठ थे ॥१८॥ त्रेतायुग में वे हर के नाम से प्रख्यात हुए । द्वापर में वे शर्व के नाम से प्रसिद्ध हुए और कलियुग में वे धवलेश्वर हो गये ॥१९॥ हे सुरेश्वर ! इस स्थान पर जो प्राचीन इतिहास हुआ उसे तुम सुनो प्राचीन काल में इन्द्र ग्राम में नन्दि नामक वैश्य रहते थे ॥२०॥ वे सदा शिवजी का ध्यान करते थे और उनकी पूजा करते थे । वे प्रतिदिन उष:काल की बेला में जगकर धवल नामक लिङ्ग की शिव भक्त नन्दी अत्यधिक पूजा करते थे ॥२१-२२॥ शास्त्रीय विधि से पुष्प से पूजा करते थे । एक बार आखेट का लोभी एक किरात जो जीवों की हिंसा करता था वहा गया ॥२३॥ पाप करने वाला पापी साभ्रमती के तट पर अनेक जीवों से परिपूर्ण वन में बाण से मृगों को वह मारता था ॥२४॥ इस तरह से जीवों को मारने

एवं विचरमाणोऽसौ किरातो भूतहिंसकः । यदृच्छया गतस्तत्र यत्र लिङ्गं सुपूजितम् ॥२५॥
धवलेश्वरविख्यातमनेकाश्चर्यमण्डितम् । दृष्टं सुपूजितं लिङ्गं नानापुष्पैः फलैस्तथा॥२६॥
एवं लिङ्गं समालिङ्ग्य गतः साभ्रमतीतटे। तत्र पीत्वा पयः सोऽथ मुखं गण्डूषपूरितम्॥२७॥
कृत्वा चैकेन हस्तेन मृगमांसं समुद्वहन् । करेणैकेन पूजार्थं विल्वपत्राणि वै दधत्॥२८॥
शीघ्रमागत्य लिङ्गान्ते तदा पूजां समाहरत् । पुष्पाणि तानि सर्वाणि विधूतानि इतस्ततः॥२९॥
स्नापनं तस्य लिङ्गस्य कृतं गण्डूषवारिणा। करेणैकेन पूजार्थं बिल्वपत्राणि सोऽर्पयत् ॥३०॥
द्वितीयेन करेणैव मृगमांसं समार्पयत् । दण्डप्रणामसंयुक्तः सङ्कल्पं मनसाऽकरोत् ॥३१॥
अद्यप्रभृति पूजां वै करिष्यामि प्रयत्नतः । त्वं मे स्वामी च भक्तोऽहमद्यप्रभृति शङ्कर ॥३२॥
एवं नियमवान्भूत्वा किरातो गृहमागमत् । तथा प्रभातसमये देवायतनमागतः ॥३३॥
नन्दी ददर्शतत्सर्वं किरातेन च यत्कृतम् । अव्यवस्थं च तद्दृष्ट्वा अमेध्यं शिवसन्निधौ ॥३४॥
विधूतानि च सर्वाणि हिंसकेन दुरात्मना । चिन्तायुक्तोऽभवन्नन्दी जातं किं चित्रमद्य मे॥३५॥
कथितानि च विघ्नानि शिवपूजारतस्य हि। उपस्थितानि तान्येव मम भाग्यविपर्ययात्॥३६॥
एवं विमृश्य सुचिरं प्रक्षाल्य शिवमन्दिरम्। यथागतेन मार्गेण नन्दी स्वगृहमागमत्॥३७॥
ततो नन्दिनमालक्ष्य पुरोधागतमानसम् । अब्रवीद्वचनं तं तु कस्मात्त्वं गतमानसः ॥३८॥
पुरोहितं प्रति तदा नन्दी वचनमब्रवीत्। अद्य दृष्टं मया विप्र ! अमेध्यं शिवसन्निधौ॥३९॥
केनेदं कारितं तत्र न जानामीह किञ्चन । ततः पुरोधा वचनं नन्दिनं चाब्रवीत्तथा ॥४०॥

विचरण करता हुआ किरात, भाग्यवशात् वहाँ गया जहाँ पर वह सुपूजित लिङ्ग था ॥२५॥ अनेक आश्चर्यों से मण्डित धवलेश्वर लिङ्ग को उसने अनेक पुष्पों और फलों से पूजित देखा ॥२६॥ इस तरह के लिङ्ग का आलिङ्गन करके वह साभ्रमती के तट पर गया । वह जल पीकर कुल्ले से अपने मुख को भरकर॥२७॥ एक हाथ से मृग के मांस को ले जाते हुए एक हाथ से पूजा करने के लिए विल्व पत्र को धारण किए था ॥२८॥ शीघ्र लिङ्ग के सन्निकट आकर उसने पूजा की । उसने सारे पुष्पों को इधर-उधर फेंक दिया॥२९॥ उसने अपने कुल्ले के जल से शिवजी को स्नान कराया । एक हाथ से उसने विल्वपत्र को चढ़ाया । दूसरे हाथ से उसने मृग का मांस चढ़ाया ॥३०॥ दण्ड प्रणाम पूर्वक उसने मन में सङ्कल्प किया कि आज से मैं पूजा करूँगा । हे शङ्कर ! आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका भक्त हूँ ॥३१-३२॥ इस तरह से नियम करके वह किरात अपने घर आया फिर प्रातःकाल वह मन्दिर में आया ॥३३॥ नन्दी ने जो किरात ने किया था उन सबों को देखा उसको शिवजी के सन्निकट व्यवस्था हीन और अपवित्र देखकर ॥३४॥ नन्दी ने जान लिया कि दुष्ट व्याध ने ही इन वस्तुओं को विखेर दिया है । इसे देखकर नन्दी को चिन्ता हुयी कि मेरा क्या अनर्थ हो गया ॥३५॥ उस शिव की पूजा करने वाले को उन्होंने विघ्न बतलाया और कहे कि यह सब मेरे भाग्य के दोष से हुआ है ॥३६॥ इस तरह दीर्घकाल तक विचार करके उन्होंने शिव मन्दिर को धोया और नन्दी जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से घर आये ॥३७॥ उसके बाद नन्दी को उदास देखकर पुरोहित ने पूछा कि तुम उदास क्यों हो ?॥३८॥ उस समय नन्दी ने पुरोहित से कहा हे विप्र ! आज मैंने शिवजी के सन्निकट अपवित्र वस्तु को देखा है ॥३९॥ वहाँ पर इस कार्य को किसने किया है, इस बात को मैं नहीं जानता हूँ । उसके पश्चात् पुरोहित ने नन्दी से कहा ॥४०॥ जिसने पुष्प आदि की

येन विस्खलितं तत्र पुष्पादीनां प्रपूजनम् । सोऽपि मूढो न संदेहः कार्याकार्येषु मन्दधीः ॥४१॥
तस्माच्चिन्ता न कर्तव्या त्वया पुनरपि प्रभो ! ।
प्रभाते च मया सार्धं गम्यतां तच्छिवालयम् ॥४२॥
निरीक्षणार्थं दुष्टस्य तस्य दण्डं करोम्यहम्। एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नन्दी तस्य पुरोधसः॥४३॥
आस्थितः स्वगृहे नक्तं दूयमानेन चेतसा । तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामाहूय च पुरोधसम् ॥४४॥
गतः शिवालयं नन्दी समं तेन महात्मना। प्रक्षाल्य पूजनं कृत्वा नानारत्नपरिच्छदम् ॥४५॥
पञ्चोपचारसंयुक्तं कृत्वा वै ब्राह्मणैः सह। एवं यमद्वयं जातं स्तुवानस्य तु नन्दिनः ॥४६॥
आयातोऽसौ महाकालस्तथा रूपो महाबलः ।
कालरूपो महारौद्रो धनुष्पाणिः प्रतापवान् ॥४७॥
तं दृष्ट्वा भयसंत्रस्तो नन्दी तत्र न्यलीयत । पुरोधाश्चैव सहसा भयतीतस्तदाऽभवत् ॥४८॥
किरातेन कृतं तत्र यथापूर्वमपि स्खलन् । तां पूजां स पदाहत्य बिल्वपत्रं समार्पयत् ॥४९॥
नैवेद्येन पलेनैव किरातः शिवमार्चयत्। दण्डवत्पतितो भूमावुत्थाय स्वगृहं गतः ॥५०॥
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं चिन्तयामास वै चिरम् ।
पुरोधसा तदा नन्दी सह व्याकुलचेतसा ॥५१॥
तेनाहूतास्तदा विप्रा बहवो वेदवादिनः। निवेदितं च तत्सर्वं किरातेन च यत्कृतम् ॥५२॥
किंकार्यमद्य भो विप्राः ! कथ्यतां च यथातथम् ।
संप्रधार्य ततः सर्वे मिलित्वा धर्मशास्त्रतः ॥५३॥
ऊचुः सर्वे तदा विप्रा नन्दिनं जातशङ्कितम् ।
ईशविघ्नं समुत्पन्नं दुर्निवार्यं सुरैपि ॥५४॥

पूजा को विखेर दिया है, वह मूर्ख हैं इसमें कोई भी सन्देह नहीं है वह क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इस बात को नहीं जानता है ॥४१॥ अतएव आप अब चिन्ता न करें । प्रातःकाल आप मेरे साथ शिवालय में चलें ॥४२॥ उस दुष्ट को देखने के लिए उसे मैं दण्डित करूँगा । पुरोहित की बातों को सुनकर नन्दी ॥४३॥ रात्रि में दुःखी मन से पड़े रहे । उस रात्रि के बीत जाने पर पुरोहित को बुलाकर नन्दी मन्दिर गये ॥४४॥ उन महात्मा के साथ नन्दी शिवालय में गये उनको धोकर अनेक रत्नों से उन्होंने पूजन किया ॥४५॥ ब्राह्मणों के साथ पञ्चोपचार पूजा करके स्तुति करते हुए नन्दी को दो घड़ी बीत गये॥४६॥ उसी समय अत्यन्त काला महा बलवान वह काल के समान अत्यन्त भयङ्कर तथा हाथ में धनुष लेकर प्रतापी किरात आया ॥४७॥ उसको देखकर भयभीत नन्दी छिप गये उस समय पुरोहित भी सहमे और भयभीत हो गये ॥४८॥ किरात ने भी पहले के ही समान उस पूजा को पैर से हटाकर विल्वपत्र चढ़ाया॥४९॥ नैवेद्य रूपी मांस को किरात ने चढ़ाया । वह साष्टाङ्ग प्रणाम करके किरात उठकर अपने घर गया ॥५०॥ उस महा आश्चर्य को देखकर पुरोहित और नन्दी ने व्याकुलता पूर्वक विचार किया ॥५१॥ उसने बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा कि विप्रों इस विषय में क्या किया जाय ? उसने किरात की सारी क्रियाओं को बतलाया और कहा कि आप लोग वास्तविक बात बतलायें । उसके पश्चात् सबोंने धर्मशास्त्रानुसार विचार करके ॥५२-५३॥ शङ्कित नन्दी से कहा शङ्करजी के विषय में उत्पन्न विघ्न को देवता भी निवारण नहीं

तस्मादानय लिङ्गं त्वं स्वगृहे वैश्यसत्तम !। तथेति मत्वाऽसौ नन्दीं शिवस्योत्पाटनं महत् ॥५५॥
कृत्वास्वगृहमानीय प्रतिष्ठाप्ययथाविधि । सुवर्णपीठिकां कृत्वा नवरम्भासुशोभिताम् ॥५६॥
उपहारैरनेकैश्च पूजयामास वै तदा । अथापरेद्युरायातः किरातः शिवमन्दिरम् ॥५७॥
यावद्विलोकयामास लिङ्गमैशं न दृष्टवान् । मौनं विहाय सहसा सक्रोशमिदमब्रवीत् ॥५८॥

हे शम्भो ! क्व गतोऽसि त्वं दर्शयाऽत्मानमद्य वै ।
यदि नो दर्शनं हेयं त्यक्ष्याम्यद्य कलेवरम् ॥५९॥
हे शम्भो हे जगन्नाथ ! त्रिपुरान्तक शङ्कर ! ।
हे रुद्र हे महादेव ! दर्शयात्मानमात्मना ॥६०॥
एवं साक्षेपमधुरैर्वाक्यैः क्षिप्त्वा सदाशिवम् ।
किरातोऽसौ क्षुरिकया धीरो वै जठरं स्वकम् ॥६१॥
विभिद्याऽऽशु ततो बाहुमासाद्योच्चैरुषाऽब्रवीत् ।
हे शम्भो ! दर्शयात्मानं कुतो मां त्यज्य यास्यसि ॥६२॥
इति क्षिप्त्वा ततोऽन्त्राणि मांसमुद्धृत्य सर्वतः ।
तस्मिन्गर्ते करेणैव किरातः सहसाऽक्षिपत् ॥६३॥
स्वच्छं च हृदयं कृत्वा साभ्रमत्यां निमज्जतु ।
तथैव जलमानीय बिल्वपत्रं त्वरान्वितः ॥६४॥

पूजयित्वा यथान्यायं दण्डवत्पतितो भुवि। यदा ध्यानस्थितस्तत्र किरातः शिवसन्निधौ ॥६५॥
प्रादूर्भुतस्तदा रुद्रः प्रमथैः परिवारितः। कर्पूरगौरो द्युतिमान्कपर्दी चन्द्रशेखरः ॥६६॥
तंगृहीत्वा करेरुद्र उवाच परिसान्त्वयन् । भो भो वरीमहाप्राज्ञ मद्भक्तोऽसि महामते ! ॥६७॥

कर सकते हैं ॥५४॥ अतएव हे वैश्य ! तुम उस लिङ्ग को अपने घर लाओ उसी बात को मानकर वैश्य शिवजी को उखाड़कर अपने घर लाया विधि पूर्वक उनकी प्रतिष्ठा की फिर नवीन केलों से सुशोभित करके तथा सुवर्ण का पीठ बनाकर ॥५५-५६॥ अनेक प्रकार के उपहारों से शिवजी की पूजा की । उसके बाद दूसरे दिन किरात शिवजी के मन्दिर में आया ॥५७॥ उसने सब ओर देखा किन्तु शिवलिङ्ग को नहीं देखा। उसने मौन व्रत तोड़कर क्रोध करके कहा ॥५८॥ हे शम्भो ! तुम कहाँ गये मुझे दर्शन दो । यदि दर्शन नहीं देते हो तो मैं अपना शरीर त्याग दूँगा ॥५९॥ हे शम्भो ! हे जगन्नाथ ! हे रुद्र ! हे त्रिपुरान्तक ! आप अपने आप दर्शन दें ॥६०॥ इस तरह से अपेक्षा पूर्ण मधुर वचनों से शिवजी को आक्षेप करके किरात ने छूरी से अपने पेट को ॥६१॥ छोड़कर शीघ्र ही अपनी भुजा को ऊपर उठाकर क्रोध करके जोर से कहा हे शम्भो ! आप दर्शन दें मुझको त्यागकर कहाँ जाओगे ॥६२॥ इस तरह से आक्षिप्त करके आपने अपनी आँत और माँस को अपने हाथ से ही निकलाकर उस गढे में डाल दिया ॥६३॥ उसने अपने हृदय को स्वच्छ करके और साभ्रमती में डुबकी लगाया । उसी प्रकार से मुँह में पानी भरकर और शीघ्रता से विल्पपत्र लाकर ॥६४॥ विधि पूर्वक पूजा करके दण्ड के समान पृथिवी पर गिर पड़ा उसके बाद वह किरात शिवजी के सन्निकट ध्यान कर रहा था ॥६५॥ उसी समय रुद्र प्रमथ गणों के साथ प्रकट हो गये। कर्पूर के समान गौर वर्ण के शिवजी के शिर पर चन्द्रमा थे और वे जटा धारण किए हुए थे ॥६६॥

वरं वृणीष्व भो भक्त ! यत्ते मनसि वर्त्तते ।
एवमुक्तः स रुद्रेण महाकालो मुदान्वितः ॥६८॥
पपात दण्डवद्भूमौ भक्तया परमया युतः । ततो रुद्रमुवाचेदं न वरं प्रार्थयाम्यहम्॥६९॥
अहं दासोऽस्मि ते रुद्र ! त्वं मे स्वामी न संशयः ।
एतच्छ्लाध्यतमं लोके देहि जन्मनि जन्मनि ॥७०॥
तवं माता पिता च त्वं च त्वं बन्धु श्च सख च मे ।
त्वं गुरुस्त्वं महामन्त्रो मन्त्रैर्वेद्योऽसि सर्वदा ॥७१॥
निष्कामं वाक्यमाकर्ण्य किरातस्य तदा भवः ।
ददौपार्षदमुख्यत्वं द्वारपालत्वमेव च ॥७२॥
तदा डमरुनादेन नादितं भुवनत्रयम्। भेरीझङ्कारशब्देन शङ्खानां निनदेन च ॥७३॥
तदा दुन्दुभयो नेदुः पटहाश्च सहस्रशः । नन्दी तं नादमाकर्ण्य विस्मयात्त्वरितो ययौ॥७४॥
तपोवनं यत्र शिवः स्थितः प्रमथसम्वृतः। किरातो हि तथा दृष्टो नन्दिनाच तदाभृशम्॥७५॥
उवाच प्रसृतो वाक्यं स नन्दी विस्मयान्वितः ।
किरातं स्तोतुकामोऽसौ परमेण समाधिना ॥७६॥
इहानीतस्त्वया शम्भुस्त्वं भक्तोऽसि परन्तप ! ।
त्वद्भक्तोऽहमिह प्राप्तो मां निवेदयशङ्करे ॥७७॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य किरातस्त्वरयान्वितः । नन्दिनं च करे गृह्य शङ्करं समुपागतः ॥७८॥
प्रहस्य भगवान्रुद्रः किरातं वाक्यमब्रवीत् । ब्रूहि कोऽसौ त्वया नीतो गणानामिह सन्निधौ॥७९॥

शिवजी ने उसको अपने हाथ से पकड़कर कहा तुम मेरे भक्त हो । तुम महाप्राज्ञ हो वीर ॥६७॥ हे भक्त तुम्हारी जो इच्छा हो वह वरदान माँगो । रुद्र के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर प्रसन्न होकर उस किरात ने ॥६८॥ श्रेष्ठ भक्ति से युक्त होकर पृथिवी पर गिरकर शिवजी को दण्डवत् किया और कहा कि मैं आपसे वरदान नहीं माँगता हूँ ॥६९॥ हे रुद्र ! मैं आपका दास हूँ और आप मेरे स्वामी हैं इसमें कोई भी संशय नहीं है । मेरी यही भावना प्रत्येक जन्म में हो यही वरदान आप दें ॥७०॥ आप मेरे माता, पिता बन्धु और मित्र हैं । गुरु और महामन्त्र हैं आप मन्त्रों के द्वारा ही जानने योग्य हैं ॥७१॥ किरात के निष्काम, वाक्य को सुनकर शिवजी ने उसको अपना मुख्य पार्षद और द्वारपाल बना दिया ॥७२॥ उस समय डमरु की ध्वनि से त्रैलोक्य निनादित हो गया भेरी और शङ्ख की भी ध्वनि होने लगी ॥७३॥ उसी समय हजारों दुन्दुभि और पटह बज उठे । नन्दी वैश्य उस ध्वनि को सुनकर आश्चर्यित होकर शीघ्रता से वहाँ गये॥७४॥ जहाँ तपोवन में शिवजी प्रमथों के साथ विद्यमान थे । नन्दी ने किरात को उस प्रकार से देखा ॥७५॥ नन्दी ने नम्रता पूर्वक आश्चर्यित होकर कहा । वे बड़ी ही श्रद्धा पूर्वक किरात को स्तुति करने के लिए कहे । तुमने यहाँ पर शम्भु को लाया है तुम शम्भु के भक्त हो । मैं तुम्हारा भक्त हूँ और यहाँ आया हूँ मेरे विषय में शङ्करजी से कहो ॥७६-७७॥ उसके उस वचन को सुनकर किरात ने उसका हाथ पकड़कर शङ्करजी के पास गया ॥७८॥ जोर से हँसकर शङ्करजी ने किरात से कहा बतलाओ तुम किसको यहाँ गणों के सन्निकट

किरात उवाच

त्वद्भक्तोऽसौ तदा देव तव पूजारतो ह्यसौ। प्रत्यहं रत्नमाणिक्यपुष्पैश्चोच्चावचैरिह ॥८०॥
जीवितेन धनेनाऽपि पूजितोऽसि न संशयः ।
तस्माज्जानीहि भो स्वामिन्नन्दिनं भक्तवत्सल ! ॥८१॥

महादेव उवाच

जानाम्यहं महाभाग ! नन्दिनं वैश्यवर्तनम्। त्वं मे भक्तः सखाचेति महाकालमहामते ॥८२॥
उपाधिरहिता ये च ये निष्कपटमानसाः। ते प्रियास्ते च मे भक्तास्ते विशिष्टानरोत्तमाः॥
तावुभौ स्वीकृतौ तेन पार्षदत्वेन शम्भुना ॥८३॥
ततो विमानानि बहूनि तत्र समागतान्येव महाप्रभाणि ।
किरातवर्येण स वैश्यवर्य उद्धारितस्तेन महाप्रभेण ॥८४॥
कैलासलोकमापन्नौ विमानैर्वेगवत्तरैः। सारूप्यमेव संप्राप्तावीश्वरस्य महात्मनः ॥८५॥
नीराजितौ गिरिजया पुत्रवत्तो गणावुभौ। उवाचेदं ततो देवी प्रहस्य गजगामिनी॥८६॥
यथा त्वं हि महादेव ! तथा चैतौ न संशयः ।
सारूप्येण च गत्या च हास्यभावैः सुपूजितैः ॥८७॥
देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा किरातोवैश्य एव च। सद्यःपराङ्मुखौ भूत्वाशंकरस्य च पश्यतः ॥८८॥
ऊचतुस्त्वरया युक्तौ गणौ रुद्रस्य पश्यतः। उभावप्यनुकम्प्यौ च भवताहित्रिलोचन॥८९॥
तव द्वारि स्थितौ नित्यं भवावस्ते नमो नमः ।
तयोर्भावं स भगवान्विदित्वा प्रहसन्भवः ॥९०॥
उवाच परया भक्तया भवतोरस्तु वाञ्छितम्। ततः प्रभृति द्वावेतौ द्वारपालौबभूवतुः ॥९१॥

लाये हो ॥७९॥ हे देवि ! यह आपका भक्त और आपकी पूजा में लीन रहता है । प्रतिदिन रत्न माणिक तथा अनेक प्रकार के पुष्पों से ॥८०॥ जीवन तथा धन से आप इसके द्वारा पूजित हैं । हे भक्तवत्सल ! आप इस नन्दी को स्वीकार करे ॥८१॥ महादेवजी ने कहा कि मैं नन्दी वैश्य की क्रियाओं को जानता हूँ । हे महाबुद्धिमान ! महाकाल तुम मेरे भक्त और मित्र हो ॥८२॥ जो उपाधि रहित तथा निष्कपट मन वाले वे भक्त तुम्हारे और मेरे दोनों के भक्त हैं वे विशिष्ट नरोत्तम हैं ॥८३॥ उन दोनों को शिवजी ने अपने पार्षद रूप में स्वीकार कर लिया उसी समय वहाँ पर अत्यन्त चमकते हुए वहाँ पर अनेक विमान आये। महाकान्ति सम्पन्न उस किरातवर्य ने वैश्यवर्य का उद्धार कर दिया ॥८४॥ वे दोनों अत्यन्त वेग सम्पन्न श्रेष्ठ विमानों से कैलास लोक में आये और वे दोनों शङ्करजी के सारूप्य को प्राप्त कर लिए ॥८५॥ उन दोनों को पार्वतीजी ने पुत्र के समान जानकर आरती की उस समय गजगामिनी पार्वतिजी ने जोर से हँस कर कहा ॥८६॥ हे महादेव ! जैसे आप हैं उस तरह के ये दोनों भी है ये सारूप्य, गति तथा हास्य के द्वारा पूजित हैं ॥८७॥ देवी के इस वचन को सुनकर किरात और वैश्य, शीघ्रता से अपना मुख पीछे कर लिए और शङ्करजी को देखकर सामने ही शीघ्रता से वे दोनो गण शङ्करजी के समक्ष कहे हे त्रिलोचन आप हम दोनों पर कृपा करें ॥८८-८९॥ हम दोनों आपके द्वारपाल हो जायँ आपको बारम्वार नमस्कार है । उन दोनों के भाव को जानकर शिवजी जोर से हँसते हुए ॥९०॥ वड़े प्रेम से कहे तुम दोनों को अभिप्रेत अर्थ प्राप्त हो जाय । उसी समय से ये दोनों द्वारपाल हो गये ॥९१॥ वे शिवजी के द्वार पर रहकर मध्याह्न

शिवद्वारि स्थितौ देविमध्याह्नेशिवदर्शिनौ। एको नन्दी महाकालोद्वावेतौशिवल्लभौ ॥९२॥
ये पापिनोऽप्यधर्मिष्ठा अन्धा मूकाश्च पङ्गवः ।
कुलहीना दुरात्मानः श्वपचाद्या हि मानवाः ॥९३॥
यादृशास्तादृशाश्चान्य आराध्य धवलेश्वरम् । गतास्तेऽपि गमिष्यन्ति नाऽत्र विचारणा ॥९४॥
अत्र स्नानं च दानं च सान्निध्यं शङ्करस्य च ।
साभ्रमत्यां कृतस्नाना धवलेश्वरपूजकाः ॥९५॥
ते रुद्रलोकं गच्छन्ति नाऽत्रकार्या विचारणा ।
अत्र स्नानं च दानं च येकुर्वन्तिनरोत्तमाः ॥९६॥
धमार्थकामभोगांश्च भुक्त्वा यान्ति हरालयम् ।
चन्द्रसूर्योपरागे च पितुःसांवत्सरे दिने ॥९७॥
यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलंप्राप्नुयाद्ध्रुवम् ।
स्वर्गात्कामदुधादेविनित्यमायातिसर्वथा ॥९८॥
आगत्य तं शिवं देवं समभ्यर्च्य यथा तथा ।
सा गच्छति सुरश्रेष्ठेस्वर्गंप्रतिनसंशयः ॥९९॥
तेन दुग्धाभियोगेन लिङ्गं तद्धवलीकृतम्। धवलेश्वरं नाम ततः सञ्जातं भुवि सर्वदा॥१००॥
जन्तवोऽत्र सदा देवि म्रियन्ते कालनोदिताः ।
ते ते शिवपदं यान्ति यावच्चान्द्रदिवाकरौ ॥१०१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्रयां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे धवलेश्वरमाहात्म्यं नामैकपञ्चाशदधिकशतततमोऽध्यायः ॥१५१॥

में शिवजी का दर्शन करते थे । नन्दी और महाकाल ये दोनों शिवजी के प्रिय हैं ॥९२॥ जो पापी, अधार्मिक, अन्धे गूंगे तथा लंगड़े कुलहीन, दुष्ट और चाण्डाल आदि भी मनुष्य हैं ॥९३॥ चाहे जिस प्रकार के हों, वे धवलेश्वर की पूजा करके शिवजी के लोक में जाते हैं इसमें किसी प्रकार का विचार नहीं करना चाहिए ॥९४॥ साभ्रमती में स्नान करके दान करके दान करने वाले तथा धवलेश्वर की पूजा करने वाले जो जीव हैं । वे रुद्रलोक में जाकर शिवजी के सान्निध्य को प्राप्त करते हैं इस विषय में कोई भी विचार नहीं करना चाहिए । जो श्रेष्ठ मनुष्य यहाँ पर स्नान और दान करते हैं ॥९५-९६॥ वे धर्म, अर्थ तथा काम इस लोक में भोगकर शिवजी के लोक में जाते हैं । चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण के समय अथवा अपने पिता की पुण्य तिथि को ॥९७॥ जिस फल को प्राप्त करते हैं उसी फल को प्राप्त करते है । हे देवि ! स्वर्ग से प्रतिदिन आकर कामधेनु ॥९८॥ जिस किसी प्रकार से शिवजी की पूजा करके हे देवि ! वह स्वर्ग चली जाती है ॥९९॥ उस दुग्धाभिषेक के द्वारा वह शिवलिङ्ग धवल हो गया है । उसी के कारण उस शिवलिङ्ग का नाम धवलेश्वर है ॥१००॥ हे देवि ! काल के द्वारा प्रेरित होकर जो जीव यहाँ मर जाते हैं वे सभी तब तक शिवलोक में निवास करते हैं जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं ॥१०१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत धवलेश्वर माहात्म्य का वर्णन नामक एक सौ एकावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५१।।

एक सौ बावनवाँ अध्याय

महादेव उवाच

तीर्थानां प्रवरं तीर्थं साभ्रमत्यास्तटे स्थितम् ।
बालापइतिविख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१॥
तपस्विधारितं तीर्थं विबुधानां समाश्रयम् । तत्र कन्या तपस्तेपे परमं सुदृढव्रता॥२॥
कन्या कण्वमुनेःसाध्वीरूपेणाऽप्रतिमा भुवि ।
बालाबालावतीनामकुमारीब्रह्मचारिणी ॥३॥
व्रतं चचार सावित्र्या नियमैर्बहुभिर्युता। भर्ता मे भास्करो भूयादिति निश्चित्य भामिनि! ॥४॥
समास्तस्याःसमाक्रान्तादशसाभ्रमतीतटे । चरन्त्यानियमांस्तांस्तान्भत्तयापरमदुश्चरान् ॥५॥
तस्यास्तु तेन वृत्तेन तपसा व्रतचर्यया । भत्तया च भगवान्प्रीतः परया भक्तिसम्पदा॥६॥
आजगमाऽऽश्रमपदं देवदेवो दिवाकरः । आस्थाय रूपं विप्रर्षेः प्रविष्टस्त महामनाः ॥७॥
सा तं दृष्ट्वोग्रतपसा वरिष्ठं ब्रह्मवित्तमम्। वानप्रस्थविधानेन पूजयामास तं द्विजम् ॥८॥
उवाच रविभक्ता सा कल्याणी तं तपोधनम् ।
भगवन्मुनिशार्दूल ! किमाज्ञपयसिप्रभो ॥९॥
सर्वं तुभ्यं यथाशक्ति दास्यामि स्वतनुं विना ।
सूर्यभक्ताऽस्मि ते पाणिं दास्यामि न कथञ्चन ॥१०॥
व्रतैश्च नियमैश्चापि तपोभिश्च तपोधन !। सूर्यस्तोषयितव्यो मे देवस्त्रिभुवनेश्वरः॥११॥
इत्युक्तवत्यां तस्यां तु स्मयन्निव निरीक्ष्य ताम् ।
उवाच नियमस्थां तां सान्त्वयन्निव भास्करः ॥१२॥

बालावती वृत्तान्त तथा बालपेन्द्र तीर्थ का माहात्म्य

महादेवजी ने कहा— साभ्रमती नदी के तट पर विद्यमान सभी तीर्थों में श्रेष्ठ वालापेन्द्र तीर्थ भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है ॥१॥ तपस्वियों से परिपूर्ण यह तीर्थ देवताओं का आश्रय है । वहाँ पर सुदृढ व्रत वाली कन्या ने श्रेष्ठ तप किया ॥२॥ कण्व मुनि की साध्वी तथा अप्रतिम रूप वाली कन्या का नाम बालावती था । वह ब्रह्मचारिणी कुमारी थी ॥३॥ उसने सूर्य के समान अपना पति बनाने का निश्चय करके अपने नियमों का पालन करते हुए सावित्री व्रत किया ॥४॥ ऐसा करते हुए उसके साभ्रमती के तट पर दश वर्ष बीत गये । वह नियम पूर्वक अनेक कठोर नियमों को करती थी ॥५॥ उसके द्वारा किये गये व्रत से तथा तपस्या एवं परम भक्ति से प्रसन्न होकर ॥६॥ भगवान् सूर्य ऋषि के आश्रम में विप्रर्षि का रूप धारण करके आये ॥७॥ उसने वरिष्ठ तपस्या से देदीप्यमान ब्रह्मवेत्ता उन विप्रर्षि को देखी और वानप्रस्थ विधि से उनकी पूजा की ॥८॥ उस सूर्य भक्ता ने उन तपोधन से कहा हे मुनिश्रेष्ठ भगवन् ! आपकी कौन सी आज्ञा है ॥९॥ अपनी शक्ति के अनुसार मैं अपने शरीर को छोड़कर सब कुछ दूँगी । मैं सूर्य का भक्त हूँ अतएव मैं आपको अपना हाथ नहीं दे सकती हूँ ॥१०॥ हे तपोधन ! व्रत, नियम तथा तपस्या से मुझे त्रिभुनेश्वर सूर्य को प्रसन्न करना है ॥११॥ उसके इस तरह कहने पर मुस्कुराकर तथा उसको देखकर उस

उग्रं चरसि कल्याणि ! तपः परमदुष्करम् ।
यदर्थं च समारम्भस्त्व बाले ! तथैव तत् ॥१३॥
तपसा लभ्यते सर्वं सर्वं तपसि तिष्ठति । देवत्वं प्राप्यते भद्रे तपसा मोक्षएव च ॥१४॥
इमानि पञ्च सुभगे बदराणि प्रतीच्छ मे । दत्त्वा स बदराण्यस्यै पञ्चेत्युक्त्वा रविर्ययौ॥१५॥
अपृष्ट्वा तां तु कल्याणीं ब्रह्मरूपी विहायताम् ।
स्थितोऽसौनातिदूरेणइन्द्रग्रामेमहायशाः ॥१६॥
स्थित्वा जिज्ञासया भावं तस्याश्च ब्राह्मणो रविः ।
बदराणामुपवनं कारयामास भास्करः ॥१७॥
ततः सा प्रयता बाला प्राञ्जलिर्विगतश्रमा । पाकाय बदराणां सा पावकंसमशिश्रयत् ॥१८॥
अपचत्परमा देवि बदराणि महाप्रभा। तस्याः पचन्त्याःसुमहान्कालोऽगाच्चसुरेश्वरि ॥१९॥
भस्मपुञ्जो महाञ्जातो दिनं च क्षयमन्वगात्। हुताशनेन दग्धस्तु महान्वै काष्ठसञ्चयः॥२०॥
पादौ प्रक्षाल्य सा पश्चात्पावके चारुदर्शने । ददाह बदरार्थं च ब्राह्मणप्रियकाम्यया ॥२१॥
दग्धा दग्धा पुनः पादावुपर्याधार्यतेऽनघे। अथाऽस्याः कर्मतद्दृष्ट्वा प्रीतोदेवोदिवाकरः ॥२२॥
ततः सदंर्शयामास कन्यायै रूपमात्मनः। उवाच परमप्रीतस्तां कन्यां सुदृढव्रताम् ॥२३॥

सूर्य उवाच

प्रीतोऽस्मि बाले भक्त्या ते तपसा व्रतचर्यया ।
यस्मादभिमतः कामो बालेसम्पद्यतांतव ॥२४॥
अस्मिंस्तीर्थे तपोयुक्ता मद्गेहे त्वं निवत्स्यसि ।
इदं च तीर्थप्रवरं तवनाम्नाच लक्षितम् ॥२५॥

नियम का पालन करने वाली को सान्त्वना प्रदान करते हुए सूर्य ने कहा ॥१२॥ हे कल्याणि ! तुम उग्रतप कर रही हो । तुम जिसके लिए पूजा कर रही हो वह तुमको प्राप्त होगा ॥१३॥ तपस्या से सबकुछ मिलता है और तपस्या में ही सबकुछ स्थित है । हे भद्रे ! तपस्या से देवत्व और मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥१४॥ हे सुभगे ! ये पाँच बैर के फल हैं इनकी रक्षा करो । उसको उन बैर के फल को देकर और पाँच बतलाकर सूर्य चले गये ॥१५॥ उस कल्याणी से आज्ञा लिए बिना वे ब्राह्मण का रूप छोड़कर वे महा यशस्य कुछ दूर जाकर इन्द्रग्राम में रुक गये ॥१६॥ वहाँ रहकर उसके भाव को जानने की इच्छा से सूर्य ने बैर का उपवन ही बना दिया ॥१७॥ उसके पश्चात् सावधान वह बाला हाथ जोड़कर बैरों के पकने के लिए अग्नि का आश्रयण किया ॥१८॥ उस महाकान्ति सम्पन्न बाला बैरों को पका दिया । हे सुरेश्वरि ! उसके पकने में बहुत अधिक समय बीत गया ॥१९॥ दिन बीत गया और वहाँ पर भस्म का समूह हो गया । अग्नि के द्वारा जलाया गया कष्ठ समूह भस्म हो गया ॥२०॥ उसके बाद दोनों पैरों को घोकर ब्राह्मण का प्रिय करने की इच्छा से मनोहर अग्नि को जलाया ॥२१॥ बार-बार पैरों के जलने पर वह बार-बार अग्नि पर पैरों को रखती थी । उसके इस कर्म को देखकर सूर्य प्रसन्न हो गये ॥२२॥ उन्होंने कन्या को अपना रूप दिखया । और अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने सुदृढ़ व्रत वाली उस कन्या से कहा ॥२३॥ **सूर्य ने कहा—** हे बाले ! तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ अतएव मैं तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करता हूँ ॥२४॥ इस तीर्थ में

बालापइति विख्यातं साभ्रमत्यास्तटे स्थितम् ।
विख्यातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्मर्षिभिः स्तुतं पुरा ॥२६॥
बालातीर्थेनरः स्नात्वा त्रिरात्रमुषितःशुचिः । रक्तादित्यमुखं दृष्ट्वा सूर्यस्योदयनं प्रति॥२७॥
सूर्यलोकमवाप्नोतिनाऽत्रकार्या विचारणा। सूर्यवारेऽथ संक्रान्तौ सप्तम्यां तु विशेषतः ॥२८॥
विषुवत्ययने चाऽपि चन्द्रसूर्यग्रहेऽपि च। स्नात्वा संतपयेद्देवान्पितृनथ पितामहान् ॥२९॥
गुडधेनुं ततो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो गुडौदनम् । करवीरैर्जपापुष्पै रक्तादित्यप्रपूजनम्॥३०॥
ये कुर्वन्ति नरास्ते वै सूर्यलोके वसन्ति वै ।
रक्तां धेनुं नरो दद्यादेकं चैव धुरन्धरम् ॥३१॥
सयज्ञफलमाप्नोति न नरो निरयम्व्रजेत्। व्याधितोमुच्यते रोगाद्बद्धोमुच्येतबन्धनात् ॥
तीर्थेऽस्मिन्पिण्डदानेन तृप्तिं यान्ति पितामहाः ॥३२॥

महादेव उवाच

तथान्यदपि माहात्म्यं तीर्थस्याऽस्य तपोधने। श्रूयतां यत्पुरावृत्तंव्यासेनकथितंमहत् ॥३३॥
पुराऽत्र महिषो वृद्धो जरया जर्जरीकृतः। अशक्तो भारमुद्वोढुं सार्थवाहस्तमत्यजत्॥३४॥
स निदाघे जलं पातुं जगाम च महानदीम्। दैवात्पङ्के निमग्नोऽसौततोमृत्युवशंगतः ॥३५॥
प्लावितास्थिर्जले पुण्ये तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ।
कान्यकुब्जेश्वरसुतो राजा जातिस्मरोऽभवत् ॥३६॥

तपस्या करने वाली तुम मेरे गृह में निवास करोगी और यह श्रेष्ठ तीर्थ तुम्हारे नाम से प्रख्यात होगा ॥२५॥ साभ्रमती के तट पर विद्यमान इसका नाम बालाप होगा । प्राचीन काल में महर्षियों ने इस विख्यात तीर्थ की स्तुति की ॥२६॥ इस बालाप तीर्थ में स्नान करके तीन रात तक पवित्रता पूर्वक निवास करने वाला सूर्य के लाल मुख को सूर्योदय काल में देखकर सूर्य लोक में जायेगा इसमें कोई संशय नहीं है । रविवार संक्रान्ति तथा सप्तमी तिथि को विशेष रूप से ॥२७-२८॥ विषुव काल तथा अयन प्रारम्भ होकर चन्द्रमा तथा सूर्य का ग्रहण होने पर मनुष्य को चाहिये कि इस तीर्थ में स्नान करके पितरों का तर्पण करे ॥२९॥ उसके पश्चात् गुडधेनु का ब्राह्मणों को दान करे और उन्हें गुड़ में पके भात को खिलाना चाहिए । करबीर तथा जपा पुष्प से जो रक्तादित्य की पूजा करते हैं ॥३०॥ वे सभी सूर्य लोक में निवास करते हैं । वहाँ एक लाल गौ और एक लाल सांड का दान देना चाहिए ॥३१॥ ऐसा करने वाला मनुष्य यज्ञ के फल को प्राप्त करता है वह नरक में नहीं जाता है । ऐसा करने वाला व्याधि से मुक्त हो जाता है और सभी रोगों से मुक्त हो जाता है तथा बद्ध व्यक्ति बन्धन से मुक्त हो जाता है । इस तीर्थ में पिण्डदान करने से पितृगण तृप्त हो जाते हैं ॥३२॥ **महादेवजी ने कहा**— हे तपोधन ! इस तीर्थ के दूसरे माहात्म्य को जिसको पहले व्यास जी इतिहास के रूप में कहा था उसे सुनो ॥३३॥ प्राचीन काल में यह एक महर्षि वृद्धापा के कारण जर्जर हो गये थे । वे भार ढोने में असमर्थ हो गया तो उनके स्वामी ने उसको त्याग दिया ॥३४॥ गर्मी के दिन में वे जल पीने के लिए नदी में गये दैववशात् कीचड़ में फंस गये और मर गये ॥३५॥ उनकी हड्डियाँ उस पवित्र तीर्थ के जल में बह गयीं । उस तीर्थ के प्रभाव से वे कान्य कुब्ज के राजा का जाति स्मर पुत्र हुआ ॥३६॥ अपने वृतान्त और तीर्थ के प्रभाव का स्मरण करके आकर उसने

संस्मृत्य च स्ववृत्तान्तं प्रभावं तीर्थजं महत् ।
आगत्य तज्जलेस्नात्वा ददौदानान्यनेकशः ॥३७॥

स तत्र स्थापयामास देवदेवं महेश्वरम। अत्र तीर्थे नरः स्नात्वा सम्पूज्यमहिषेश्वरम्॥३८॥
रक्तादित्यमुखं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। साभ्रमत्युदकं यत्र पूर्वतः पश्चिमं व्रजेत्॥३९॥
प्रयागादपि तत्पुण्यं सर्वकामप्रदं महत् ॥४०॥

दत्तं द्विजेन्द्रेषु हुतं यदग्नौ श्राद्धं कृतं जाप्यमिहाऽक्षयं स्यात् ।
गोभूतिलाः काञ्चनवस्त्रधान्यं शय्यासनं वाहनछत्रदानम् ॥४१॥
यं यं वाञ्छयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ।
श्रीमहेशप्रसादाच्च तीर्थस्याऽस्यप्रभावतः ॥४२॥

बालापेन्द्रमिदं तीर्थं पुण्यं पापहरं सदा। यं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे वीतरागाः सदैव तु॥४३॥
यत्र माहिषनामेति श्वेताख्यं पुण्यदं महत्। यत्र स्नात्वा तु देवेशि पुनर्जन्म न विद्यते ॥४४॥
गोदावर्यां कृते स्नाने यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते देवि अत्र तीर्थे न संशयः ॥४५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
बालापेन्द्रतीर्थं नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५२॥

जल में स्नान करके अनेक प्रकार का दान किया ॥३७॥ वहाँ पर उसने देवाराध्य महेश्वर की स्थापना की इस तीर्थ में स्नान करके महिषेश्वर की पूजा करके मनुष्य ॥३८॥ फिर रक्त दिव्य का मुख देखकर सभी पापों से मुक्त हो जाता है । जहाँ साभ्रमती का जल पूर्व से पश्चिम की ओर जाय ॥३९॥ वह प्रयाग से भी अधिक पवित्र तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है ॥४०॥ यहाँ पर श्रेष्ठ ब्राह्मण को दिया गया दान, अग्निहोत्र, तथा श्राद्ध करना, जप करना, अक्षय फल प्रद होता है । गौ, पृथिवी, तिल, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न, शय्या, आसन तथा छाता का दान ॥४१॥ करने वाला जो-जो चाहता है श्रीमहेश की कृपा तथा तीर्थ के प्रभाव से उन सभी वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है ॥४२॥ यह बालापेन्द्र तीर्थ पवित्र तथा पापों को विनष्ट करता है । उसका दर्शन करके सभी मुनिजन सदैव बीत राग रहते हैं । जहाँ पर महिष नाम वाला तथा श्वेत पुण्य प्रद तीर्थ है हे देवेशि ! वहाँ पर स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता है ॥४३-४४॥ गोदावरी नदी में स्नान करने से मुनष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है हे देवि ! इस तीर्थ में स्नान करके वह उसी फल को वह प्राप्त कर लेता है ॥४५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत बालापेन्द्र तीर्थ का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ बावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५२॥

एक सौ तिरपनवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अन्यत्तीर्थं प्रवक्ष्यामि दुर्धर्षेश्वरमुत्तमम्। यस्य स्मरणमात्रेण पापोऽपिपुण्यवान्भवेत् ॥१॥
वृत्ते दैवासुरे युद्धे दैत्ये च निधनं गते। दुर्धर्षं च व्रतं कृत्वा यत्र भार्गवनन्दनः ॥२॥
समाराध्य महादेवं दुर्धर्षं लोककारणम्। मृतसञ्जीवनीमाप यत्र विद्यां हि त्र्यम्बकात् ॥३॥
दैत्यार्थमुशनस्तीर्थं विख्यातं जगतीतले। काव्यतीर्थे कृतस्नानं पूज्य देवं महेश्वरम् ॥४॥
दुर्धर्षेश्वरसञ्ज्ञं वै सर्वपापैः प्रमुच्यते। अत्र वृत्तं तु श्रोतव्यं त्वया च नगनन्दिनि॥५॥
पुरा यदा भवेद्युद्धं वृत्रवासवयोरिह। तदाऽसुरैर्जिता देवा मघवान्वै सुरेश्वरः ॥
किंकर्त्तव्यमिति ध्यात्वा गतोऽसौ तं गुरुं प्रति ॥६॥

इन्द्र उवाच

अस्माकं त्वं गुरुः साक्षाद्देवानां पालकः सदा।
ऋषीणां त्वं वरः श्रीमान्कृपां कुरु दयानिधे ! ॥७॥
वृत्रेण निर्जितोऽहं च क्व गच्छामि च सुव्रत ! ॥८॥

बृहस्पतिरुवाच

शृणु देवेन्द्र ! वक्ष्यामि येन त्वं हि सदा सुखी।
मम वाक्यं कुरुष्वैव यदीच्छस्यात्मनः शुभम् ॥९॥
साभ्रमत्यां तदा गच्छ तत्र गत्वा सुखी भव।
दुर्धराख्योयत्र देवोनित्यंतिष्ठतिभूतिदः ॥१०॥

दुर्धर्षेश्वर माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— मैं दुर्धर्षेश्वर नामक उत्तम तीर्थ का वर्णन करता हूँ। उसका स्मरण करने मात्र से पापी भी पुण्यवान् हो जाता है ॥१॥ देवासुर युद्ध के समाप्त हो जाने पर और दैत्यों के मारे जाने पर दुर्धर्ष व्रत करके जहाँ पर शुक्राचार्य ने ॥२॥ दुर्धर्ष तथा लोकों के कारण स्वरूप शिवजी की आराधना करके मृतसंजीवनी विद्या को (दैत्यों के लिए) प्राप्त किया वह भूलोक में उशना तीर्थ विख्यात हुआ। उस उशना तीर्थ में स्नान करके तथा महेश्वर की पूजा करके मनुष्य ॥३-४॥ सभी पापों से मुक्त हो जाता है। हे पार्वति ! यहाँ पर जो हुआ उसको तुम्हें सुनना चाहिए ॥५॥ प्राचीन काल में जब वृत्रासुर और इन्द्र में युद्ध हुआ उस समय दैत्यों ने इन्द्र और देवताओं को परास्त कर दिया। उस समय अब क्या करना चाहिए यह विचार करके इन्द्र बृहस्पति के पास गये ॥६॥ **इन्द्र ने कहा**— आप हम देवताओं के पालक और गुरु हैं। आप ऋषियों में श्रेष्ठ हैं आप हे दयानिधे ! कृपा करें ॥७॥ हे सुव्रत ! वृत्रासुर ने मुझे परास्त कर दिया है मैं कहाँ जाऊँ ॥८॥ **बृहस्पति ने कहा**— हे देवेन्द्र ! आप सुनें मैं उस साधन को बतलाता हूँ जिससे तुम सदा सुखी रहोगे। यदि तुम आत्मकल्याण चाहते हो तो मेरी बात मानो ॥९॥ तुम साभ्रमती में स्नान करके सुखी हो जाओ। वहाँ पर दुर्धर नामक शिवजी सदैव रहते हैं ॥१०॥ वे

ददाति वाञ्छितान्कामान्सत्यं सत्यं सुरेश्वर ! ।
गुरोर्वचनमाकर्ण्यसगतस्तांनदींप्रति ॥११॥
तत्र स्नात्वा तु देवेशो महेशं तमपूजयत्। स्नानाच्च पूजनादेव सन्तुष्टः श्रीमहेश्वरः॥१२॥

महादेव उवाच

यं यं प्रार्थयसे नित्यं तत्सर्वं हि ददाम्यहम् ।
श्रुत्वा वाक्यं तु देवेशोह्युवाचपरमम्वचः ॥१३॥

इन्द्र उवाच

त्वं नाथः सर्वलोकानां त्वमेवकारणम्परम्। त्वंहि विश्वेश्वरो देवःसर्वदालक्ष्यसेमया॥१४॥
यदि त्वं मे प्रसन्नोऽसि विश्वेश्वर सुरेश्वर !। वृत्रं जहि महादेव एष कामो महान्मम॥१५॥

महादेव उवाच

तव वाक्यात्तु देवेश वृत्रोऽसौ निहतो मया ।
मया यद्दीयते शस्त्रं तद्‌गृह्णीष्वसुरेश्वर ॥१६॥
तेनैव चाऽस्त्रयोगेन हनिष्यामि न संशयः ॥१७॥

इन्द्र उवाच

किमस्त्रंवद विश्वेश ! येन वृत्रं हि हन्म्यहम् ।
वज्रादप्यधिकं किं तन्निर्मितंतुत्वयाकदा ॥१८॥

महादेव उवाच

इदं पाशुपतं ह्यस्त्रं निर्मितं त मया पुरा। न दत्तं कस्यचिच्छक ! तवार्थे रक्षितं मया॥१९॥
अत्र स्नातं त्वया देव पूजनं वै त्वया कृतम् ।
अतो गृह्णीष्व मे शस्त्रं येन वृत्रंहनिष्यसि ॥२०॥

सभी वाञ्छित कामनाओं को पूर्ण करते है यह मैं सत्य कहता हूँ । बृहस्पति के वचन को सुनकर वे साभ्रमती नदी में गये वहाँ पर स्नान करके उन्होंने महेश्वर की पूजा की । स्नान तथा पूजन करने के कारण शङ्करजी प्रसन्न हो गये ॥११-१२॥ **महादेवजी ने कहा**— तुम जो कुछ भी चाहते हो वह मैं सब कुछ दूँगा । इस बात को सुनकर इन्द्र ने कहा ॥१३॥ **इन्द्र ने कहा**— हे नाथ ! आप ही सभी लोकों के स्वामी और सर्वश्रेष्ठ कारण हैं आपको ही मैं विश्वेश्वर रूप से देखता हूँ ॥१४॥ यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो हे देवताओं के स्वामिन् विश्वेश्वर ! आप वृत्रासुर को मार दें यही मेरी सबसे बड़ी इच्छा है ॥१५॥ महादेवजी ने कहा हे इन्द्र ! तुम्हारे कहने से ही मैंने वृत्रासुर को मार दिया है, मैं जिस शस्त्र को दे रहा हूँ उसे तुम ग्रहण करो उसी अस्त्र से तुम वृत्र को मारोगे ॥१६-१७॥ **इन्द्र ने कहा**— हे विश्वेश्वर ! वह कौन सा अस्त्र है जिससे मैं वृत्रासुर को मार दूँगा उसे आप बतलायें । क्या वह वज्र से भी श्रेष्ठ है ? उसका निर्माण आपने कब किया ॥१८॥ **महादेवजी ने कहा**— यह पाशुपतास्त्र है इसका मैंने पहले ही निर्माण किया है । हे शक्र ! इसे मैंने किसी को भी नहीं दिया है इसे तुम्हारे लिए ही मैंने सुरक्षित रखा है ॥१९॥ हे इन्द्र ! तुमने स्नान किया है और पूजन भी तुमने किया है अतएव तुम मेरे शस्त्र को ले लो । इसे तुम वृत्रासुर को मारोगे । उसके बाद शङ्करजी की कृपा से इन्द्र ने उसे ले लिया । उस

श्रीमहेशप्रसादाच्च प्राप्तं मघवता ततः। तेन पाशुपतास्त्रेण हतो वृत्रो महाबलः ॥२१॥
तत्सर्वमत्र सञ्जातं दुर्धर्षेशप्रसादतः। स्नानमात्रात्तु देवेशि पूजनादेव साम्प्रतम्॥२२॥
तीर्थप्रभावात्सम्प्राप्तं सत्यं सत्यं वरानने ! । एवं ज्ञात्वा तु देवेशि तत्रवै स्नानमाचरेत् ॥
दर्शनं तु महेशस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥२३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
दुर्धर्षेश्वरमाहात्म्यं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततततमोऽध्यायः ॥१५३॥

एक सौ चौवनवाँ अध्याय

साभ्रमत्यास्तटे गुप्तं तीर्थं परमपावनम्। खड्गधारमितिख्यातं कलौ गुप्तं भविष्यति ॥१॥
यत्र प्रसङ्गतः स्नात्वा पीत्वा वाऽऽपो यदृच्छया।
सर्वपापविनिमुक्तो रुद्रलोकेमहीयते ॥२॥
यत्र साभ्रमती पुण्या कश्यपाऽनुगता सती। रुद्रेण हि जटाजूटे धृता पातालगामिनी ॥३॥
खड्गधारेति वै नाम्ना रुद्रस्तत्रैव संस्थितः। यत्र स्नात्वा दिवं याताः पापिनोऽपि सुरेश्वरि !॥४॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। किरातेन कृतं यच्च व्रतं परमदुष्करम्॥५॥

पाशुपतास्त्र से इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा ॥२०-२१॥ यह सब कुछ दुर्धर्षेश्वर की कपृा से हुआ। हे देवि! केवल स्नान करने से तथा पूजन करने से ही इस समय ॥२२॥ तीर्थ के प्रभाव से हुआ है। हे वरानने! मै सत्य कहता हूँ। हे देवि ! इसी बात को जानकर वहाँ पर स्नान करना चाहिए। शङ्करजी का दर्शन सभी पापों का विनाशक है ॥२३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत दुर्धर्षेश्वर तीर्थ का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ तिरपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधरचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५३॥

खड्गधारेश्वर माहात्म्य

साभ्रमती नदी के तट पर गुप्त अत्यन्त पवित्र तीर्थ खड्गधारेश्वर है। वह कलियुग में गुप्त हो जाता है ॥१॥ वहाँ पर प्रसङ्गवशात् भी स्नान करके और उसके जल को पीकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक में जाता है ॥२॥ वहाँ पवित्र साभ्रमती कश्यप महर्षि का अनुगमन करने वाली पाताल गामिनी को शिवजी ने अपने जटाजूट में धारण किया ॥३॥ वहाँ पर रुद्र खड्ग धार के नाम से विद्यमान हैं। वहाँ पर स्नान करने वाले पापी जीव भी स्वर्ग चले गये ॥४॥ यहाँ के प्राचीन इस इतिहास को लोग कहते हैं कि वहाँ पर किरात ने अत्यन्त दुष्कर व्रत किया ॥५॥ **पार्वतीजी ने कहा—** उस किरात का नाम क्या

पार्वत्युवाच

किंनामा वै किरातोऽभूत्किं तेन व्रतमाहितम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि यथातथ्येन कथ्यताम् ॥६॥
न ह्यन्यो विद्यते लोके त्वां विना वदतांवरः ।
तस्मात्कथय भो देव ! सर्वंशुश्रूषवेहितम् ॥७॥

महादेव उवाच

आसीत्पुरा महारौद्रश्चण्डो नाम दुरात्मवान्। क्रूरः शठोनैष्कृतिकोभूतानांचभयावहः ॥८॥
जालेन मत्स्यान्दुष्टात्मा घातयत्यनिशं ततः। भल्लैर्मृगाञ्छ्वापदांश्च कृष्णसारान्सशल्लकान् ॥९॥
खगान्नानाविधांश्चैव विद्ध्वा कांश्चित्प्रपातयेत् ।
पक्षिणो घातयन्क्रुद्धो बर्हिणश्च विशेषतः ॥१०॥
लुब्धको हि महापापो दुष्टो दुष्टजनप्रियः। भार्या तथाविधा तस्य पुंश्चलीचमहाभया ॥११॥
एवं विहरतस्तस्य बहुकालो व्यवर्त्तत। एकदा निशि पापीयाञ्छ्रीवृक्षोपरि संस्थितः ॥१२॥
कोलं हन्तुं धनुष्पाणिः शरं संयोज्य कामुके ।
एवंनिशागतातस्यजाग्रतोऽनिमिषस्यहि ॥
माघमासे सितायां वै चतुर्दश्यां नगात्मजे ! ॥१३॥
श्रीवृक्षपत्राणि बहूनि तत्र संछेदयामास रुषाऽन्वितोऽपि ।
श्रीवृक्षमूले परिवर्त्तमानं लिङ्गं च तस्योपरि ता निपेतुः ॥१४॥
श्रीवृक्षपर्णानि च दैवयोगाज्जातं च सर्वं शिवपूजनं तत् ॥१५॥
गण्डूषकारिणा तेन स्नापनं च महत्कृतम्। अज्ञानिना च तेनैव पुष्कसेन दुरात्मना ॥१६॥

था ? और उसने कौन सा दुष्कर व्रत किया ? इन सारी बातों को मैं सुनना चाहती हूँ उसको आप ठीक-ठीक बतलाइये। हे बोलने वालों में श्रेष्ठ आपको छोड़कर इसको दूसरा कौन बतला सकता है ? अतएव हे देव ! सभी सुनना चाहने वालों के कल्याण के लिए आप बतलायें ॥६-७॥ **महादेवजी ने कहा—** प्राचीन काल में चण्ड नामक दुष्ट था। वह क्रूर, शठ, कृतघ्न और जीवों के लिए भयङ्कर था ॥८॥ वह दुष्ट प्रतिदिन जाल से मछलियों को मारा करता था। वह भल्ल बाण से मृगों, जीवों कृष्ण सार मृगों तथा साहिलों को मारता था ॥९॥ अनेक प्रकार के पक्षियों को बेधकर उन सबों में से कुछको पटक देता था। वह क्रोध करके पक्षियों को विशेष रूप से मयूरों को मारता था ॥१०॥ वह महापापी बहेलिया दुष्ट तथा दुष्टों का प्रिय था। उसी तरह से उसकी पत्नी व्यभिचारिणी तथा बहुत भयङ्कर थी ॥११॥ इस तरह से विहरण करते हुए उसके बहुत समय बीत गये। एक बार वह रात्रि में विल्व वृक्ष के ऊपर बैठा था ॥१२॥ बराह को मारने के लिए अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर बैठे हुए तथा सदैव जागते हुए रात बीत गयी॥१३॥ हे पार्वति ! माघ मास की चतुर्दशी तिथि को क्रोध से भरकर बहुत से बिल्व पत्रों को उसने छेद दिया॥१४॥ उस बिल्व वृक्ष के नीचे विद्यमान लिङ्ग पर वे पत्ते गिरे। और संयोगवशात् उन सबों से शिवजी की पूजा हो गयी ॥१५॥ उसने कुल्ले के जल से शङ्करजी को स्नान करा दिया। वह अज्ञानी पुष्कस ने इस कार्य

माघमासेऽसितेपक्षे चतुर्दश्यां विधूदये। पुष्कसो हि दुराचारो निष्पन्नो गतकल्मषः ॥१७॥
तस्य भार्या प्रचण्डा च आगता तस्य सन्निधौ ।
निराशा च निराहारा यत्राऽसौ पुष्कसः स्थितः ॥१८॥
न प्राप्तः शूकरस्तेन मृगोऽपि महिषोऽपि वा ।
अशनार्थंच तस्यैव अन्नमादायभामिनी ॥१९॥
तेन दृष्ट्वा प्रचण्डा सा आयान्ती क्रूरलोचना ।
सा तस्य भार्यानद्याम्वै जलमध्येपपातह ॥२०॥
तावत्तयोक्तश्चण्डात्मा एहि शीघ्रञ्चभक्षय। समानीतं त्वदर्थं च मत्स्यमांसं मयाऽधुना ॥२१॥
कृतं किं मूढ पूर्वेद्युर्मांसं पार्श्वे न दृश्यते। नाऽशितं च त्वया मूढ कुटुम्बं लङ्घते तव ॥२२॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं चण्डायाश्चण्डरूपवान्। शिवरात्र्युपवासने रात्रौ जागरणेन च ॥२३॥
शुद्धान्तःकरणो जातः स्नातुं नद्यां शुचिव्रतः ।
यावत्स्नाति स दुष्टात्मा तावच्छ्वा तत्र चाऽगतः ॥२४॥
शुना तदा भक्षितं च सर्वमांसं सुरेश्वरि !। चण्डा प्रकुपितातंच श्वानंहन्तुमुपस्थिता ॥२५॥
निवारिताहि चण्डेन चण्डाप्रकुपितातदा। न हन्तव्यस्त्वयाचैष किमनेनाऽशुभं कृतम् ॥२६॥
तयोक्तं भक्षितं चान्नमनेनैव दुरात्मना। किं त्वं भक्षयिता मूढ भविताऽद्य बुभुक्षितः ॥२७॥

पुष्कस उवाच

यच्छुना भक्षितं चान्नं तेनाऽहं परितोषितः। किमनेन शरीरेण नश्वरेण गतायुषा॥२८॥
ये पुष्यन्ति शरीरं वै सर्वभावेन भामिनि ! ।
मूढास्ते पापिनो ज्ञेयालोकद्वयबहिष्कृताः ॥२९॥

को किया ॥१६॥ माघमास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन चन्द्रोदय के होने पर वह दुराचारी पुष्कस निष्पाप हो गया ॥१७॥ उसकी प्रचण्डा नाम की पत्नी उसके पास आयी जहाँ पर वह पुष्कस था। वह निराश और निराहार थी ॥१८॥ उसने शूकर, मृग अथवा महिष किसी को भी नहीं पाया। वह उसके खाने के लिए अन्न लेकर आयी थी ॥१९॥ उसने क्रूर नेत्रों वाली पचण्डा को आती हुयी देखा। उसकी पत्नी नदी के जल में गिर पड़ी ॥२०॥ उसने उस दुष्ट से कहा शीघ्र आओ और खा लो ॥२१॥ तुम्हारे लिए मैं मछली का मांस लायी हूँ ॥२१॥ अरे मूर्ख तुमने कल क्या किया कि सन्निकट में मांस नहीं दिखता है। मूर्ख तुमने खाया नहीं सारा परिवार उपवास किया है ॥२२॥ चण्डा की इस तरह की वाणी सुनकर प्रचण्ड रूप वाला वह शिवरात्रि को उपवास और जागरण करने के कारण ॥२३॥ शुद्ध अन्तःकरण वाला हो गया और पवित्र व्रत वाला स्नान किया तब तक एक कुत्ता वहाँ आया ॥२४॥ सुरेश्वरि उस कुत्ते ने सारा मांस खा लिया। क्रुद्ध होकर प्रचण्ड कुत्ते को मारने के लिए उठी ॥२५॥ उसको चण्ड ने रोका वह चण्ड उस पर क्रुद्ध होकर कहा तुम्हें इसको नहीं मारना चाहिए, इसने क्या बिगाड़ा है ?॥२६॥ उसने कहा भोजन खा लिया है ठसको खिलाने वाले तुम आज भूखे रहोगे क्या ?॥२७॥ **पुष्कस ने कहा—** इस कुत्ते ने जो खा लिया है उससे मैं सन्तुष्ट हूँ इस नश्वर और बूढ़े शरीर से क्या लाभ है ?॥२८॥

तमान्मानंपरित्यज्यकामंचापिदुरात्मताम् । स्वस्थाभावविमर्शेनतत्त्वबुद्ध्यास्थिराभव ॥३०॥
अहमेतच्छरीरं वै खड्गधारव्रतेन च। त्यक्ष्याम्यद्य वरारोहे ! किं चिरञ्जीवनेन मे ॥३१॥

महादेव उवाच

इत्युक्त्वा खड्गमाकृष्य यावद्भिनत्ति कं स्वकम् ।
आगताश्च गणास्तावद्बहवः शिवनोदिताः ॥३२॥
विमानानि बहून्यत्र आगतानि तदन्तिके। दृष्ट्वा स चैव तान्येवं विमानानि गणांस्तथा॥
उवाच परया भक्त्या पुष्कसोऽपि च तान्प्रति ॥३३॥

पुष्कस उवाच

कस्मात्समागता यूयं सर्वे रुद्राक्षधारिणः। सर्वे स्फटिकसङ्काशाः सर्वे चन्द्रार्धशेखराः ॥३४॥
कपर्दिनश्चर्मपरीतवाससो भुजङ्गभोगैः कृतहारभूषणाः ।
श्रियान्विता रुद्रसमानवीर्या यथातथं भो ! वदतोचितं मम ॥३५॥
पुष्कसेन तदा पृष्टा ऊचुस्ते रुद्रपार्षदाः ॥३६॥

गणाऊचुः

प्रेषिताः स्मो वयं चण्ड ! शिवेन परमेष्ठिना ।
आगच्छ त्वरितो भूत्वा सस्त्रीको यानमारुह ॥३७॥
लिङ्गार्चनं कृतं यच्च त्वयारात्रौ शिवस्य च ।
तेन कर्मविपाकेन प्राप्तोऽसि परमां गतिम् ॥३८॥
तथोक्तो वीरभद्रेण उवाच प्रहसन्निव। किं मया सुकृतं चीर्णं पापिनापुष्कसेन हि ॥३९॥
मृगयारसिकेनैव मूढेन च दुरात्मना। पापाचारो ह्यहं नित्यं कथं सर्गे वसाम्यहम्॥४०॥

भामिनि जो लोग हर प्रकार से शरीर को पोषते हैं वे अज्ञानी, पापी तथा दोनों लोकों से बहिष्कृत होते हैं॥२९॥ अतएव इस शरीर को छोड़कर दुष्टता तथा कामनाओं को भी त्याग कर अपने में स्थित होकर स्वस्थ भाव से तत्त्व बुद्धि से स्थिर हो जाओ ॥३०॥ हे सुन्दरि ! मैं आज खड्ग धार व्रत के द्वारा इस शरीर का त्याग करूँगा बहुत दिनों तक जीने से कौन सा लाभ है ?॥३१॥ **महादेवजी ने कहा**— यह कहकर उसने तलवार खींचकर अपने को काटा उसी समय शिवजी से भेजे गये बहुत से गण वहाँ आ गये ॥३२॥ उसके सन्निकट बहुत से विमान भी आ गये । उसने उन शिव गणों और विमानों को देखकर पुष्कस ने भी अत्यन्त भक्ति पूर्वक उन सबों से कहा ॥३३॥ **पुष्कस ने कहा**— आप सभी रुद्ररूपधारी यहाँ क्यों आये हैं । आप सभी स्फटिक के समान चन्द्रमा को धारण किए हैं ॥३४॥ आप सभी जटाधारी और मृगचर्म धारी विषैले सर्पों के हार और भूषण धारण करने वाले, ऐश्वर्य सम्पन्न तथा रुद्र के समान पराक्रमी हैं । आपलोग इस बात को बतलायें ॥३५॥ उस पुष्कस के द्वारा पूछे जाने पर उन रुद्र के पार्षदों ने कहा ॥३६॥ **गणों ने कहा**— ऐ चण्ड ! हमलोग परमेष्ठी शिवजी के द्वारा भेजे गये हैं । शीघ्रता से पत्नी के साथ आओ और इस विमान पर बैठो ॥३७॥ तुमने शिव रात्रि में जो शिवार्चन किया है उसी कर्म के परिणाम स्वरूप तुमने परम्पद प्राप्त किया है ॥३८॥ उस तरह वीरभद्र से कहे जाने पर उस किरात ने जोर से हँसते हुए कहा मैं तो पापी पुष्कस हूँ मैंने कौन सा पुण्य किया है ?॥३९॥ आखेट की

कथंलिङ्गार्चनं चाऽद्य कृतमस्ति तदुच्यताम्। परं कौतुकमापन्नः पृच्छामि कृपया वद ॥४१॥

वीरभद्र उवाच

देवदेवो महादेवो यो गङ्गाधरसञ्ज्ञकः। परितुष्टोऽद्यते चण्ड ! सभार्यस्य उमापतिः ॥४२॥
प्रासङ्गिकं त्वया चाऽद्य कृतमर्चनमेव च। कोलं निरीक्षमाणेन बिल्वपत्राणि चैव हि ॥४३॥
छेदितानि त्वया चण्ड पतितानि तदैवहि। लिङ्गस्यमस्तके तानि तेनत्वं सुकृती प्रभो !॥४४॥
तवैवं जागरो जातो महावृक्षोपरि ध्रुवम्। तेनैव जागरेणैव तुतोष जगदीश्वरः ॥४५॥
छलेनैव महाभाग ! कोलसन्दर्शनेन हि। शिवरात्रिदिनं व्याधप्रसङ्गेनाऽप्युपोषितम् ॥४६॥
तेनोपवासेन च जागरेण तुष्टो ह्यसौ देववरो महात्मा।
तव प्रसादाय महानुभावो ददाति सर्वान्वरदो वरांश्च ॥४७॥
एवमुक्तस्तदा तेन वीरभद्रेण धीमता। पुष्कसोऽपि विमानाग्र्यमारुरोह च पश्यताम् ॥४८॥
गणानां देवतानां च सर्वेषां प्राणिनामपि। तदा दुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ॥४९॥
वीणावेणुमृदङ्गानि लास्यनाट्ययुतानि च। जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरो गणाः ॥५०॥
चामरैर्वीज्यमानो हि च्छत्रैश्च विविधैरपि। महोत्सवेन महता ह्यानीतः शिवसन्निधौ ॥५१॥
पुष्कसोऽपि तदा प्राप्तस्तीर्थस्नानशिवार्चनात्।
किं पुनः श्रद्धया भक्त्या शिवाय परमात्मने ॥५२॥
पुष्पादिकं फलं गन्धं ताम्बूलाक्षतमेव च। ये प्रयच्छन्ति लोकेऽस्मिंस्ते रुद्रा नाऽत्रसंशयः ॥५३॥

महादेव उवाच

तदाप्रभृति तत्तीर्थं खड्गधारेति विश्रुतम्। एतत्तीर्थं कलौ गुप्तं भविष्यति सुरेश्वरि ! ॥५४॥

उत्कण्ठा से युक्त दुष्ट तथा अज्ञानी मैं पापी हूँ स्वर्ग में कैसे रह सकता हूँ ?॥४०॥ मैंने आज से लिङ्गार्चन कैसे किया इसे आप बतलायें। मुझे अत्यन्त उत्कण्ठा है अतएव पूछता हूँ आप कृपा करके बतलायें॥४१॥ **वीरभद्र ने कहा—** ये गङ्गाधर नामक देवाराध्य महादेव हैं हे चण्ड आज पत्नी सहित तुम प्रसन्न हो॥४२॥ तुमने प्रसङ्गवशात् अर्चना की है। वाराह को देखते हुए तुमने विल्वपत्रों को तोड़ा और वे उसी समय नीचे लिङ्ग के मस्तक पर गिरे अतएव तुम पुण्यवान् हो ॥४३॥ इस तरह से तुम विल्ववृक्ष पर जागरण किए उस जागरण से शिवजी सन्तुष्ट हैं ॥४४-४५॥ हे महाभाग ! वराह दर्शन के व्याज से तुम व्याधे के द्वारा शिवरात्रि के दिन उपवास हो गया ॥४६॥ उस उपवास तथा जागरण के द्वारा देवश्रेष्ठ शिवजी प्रसन्न हो गये। तुम्हारी प्रसन्नता के लिए वरदान देने वाले शिवजी तुमको सभी वरदान प्रदान किए हैं ॥४७॥ इस तरह बुद्धिमान वीरभद्र के द्वारा कहे जाने पर वह पुष्कस भी सबों के सामने ही श्रेष्ठ विमान पर चढ़ गया॥४८॥ वह सभी गणों, देवताओं तथा सभी जीवों के सामने ही विमान पर चढ़ा उस समय अनेक दुन्दुभि, भेरी और तुरीयाँ बज उठीं ॥४९॥ नृत्य और नाट्य के साथ, वीणा वेणु और मृदङ्ग पर गन्धर्वों ने गीत गाया और अप्सराओं ने नृत्य किया ॥५०॥ चामरों से हवा किये जाते हुए तथा अनेक छत्रों से महान महोत्सव के साथ उस पुष्कस को शिवजी के सन्निकट लाया गया ॥५१॥ उस समय पुष्कस भी शिवजी की पूजा करने से तीर्थ स्नान का फल प्राप्त कर लिया। जो लोग श्रद्धा और भक्ति पूर्वक शिवजी को पुष्प, आदि तथा फल चन्दन, पान तथा अक्षत समर्पित करते हैं उन लोगों के विषय में क्या कहना

माघमासेऽथ वैशाखे कार्त्तिक्यां च विशेषतः ।
स्नानं ये च प्रकुर्वन्ति मुक्तास्ते नगनन्दिनि ! ॥५५॥
वसिष्ठो वामदेवश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः । स्नानार्थे वै समायान्ति देवं द्रष्टुं पिनाकिनम् ॥५६॥
त्रियुगे वर्त्तते लिङ्गं कलौ नैव तु पार्वति !। विश्वामित्रेण ऋषिणादत्तशापो ह्यहं तदा ॥५७॥

पार्वत्युवाच

कथं शापस्तु ऋषिणा दत्तश्चैव सुरेश्वर ! । तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो देव ! न संशयः ॥५८॥

महादेव उवाच

एकस्मिन्समये देवि ! विश्वामित्रो महातपाः ।
आगतः खड्गधारेऽस्मिंस्तीर्थे वै परमाद्भुते ॥५९॥
साभ्रमत्यां कृतस्नानो दर्शनं कृतवान्मम। तत्र तिष्ठति नित्यं वै पूजां कुर्वन्ननेकधा॥६०॥
तत्रकोऽपि महादुष्टः कौलिकः पापरूपधृत् ।
मांसं दत्तंतदातेन शिवस्योपरि भामिनी ॥६१॥
दृष्ट्वा तदपि मांसं च विश्वामित्रोऽथ वै पुनः ।
अब्रवीच्च तदा तत्र दुष्कृतं पापिना कृतम् ॥६२॥
न दत्तस्तस्य दण्डो हि शर्वेण परमात्मना । तस्मादहं हि निश्चित्य शापं दास्ये न संशयः ॥६३॥
विचार्यैवं तदा तेन शप्तोऽहं देवि वै तदा। अस्मिनकलियुगे घोरे गुप्तस्त्वं भव सर्वथा॥६४॥
इति दत्त्वाऽथ वै शापं गतवान्मुनिसत्तमः । तदाप्रभृति भो देवि गुप्तोऽहमृषिशापतः ॥६५॥
मम स्थाने विशेषेण पूजनं कुरुते यदि। तेषां हि दुरितं यच्च नश्यते तत्क्षणादपि॥६६॥

है ?॥५२-५३॥ **महादेवजी ने कहा—** उसी समय से वह तीर्थ खड्गधार के नाम से प्रसिद्ध हो गया हे सुरेश्वरि ! यह तीर्थ कलियुग में गुप्त हो जायेगा ॥५४॥ हे नगनन्दिनि ! माघ मास में वैशाख में तथा कार्तिक के पूर्णिमा के दिन जो लोग यहाँ पर स्नान करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं ॥५५॥ वसिष्ठ, वामदेव, भरद्वाज तथा गौतम वे सब यहाँ पर स्नान करने के लिए तथा शिवजी का दर्शन करने के लिए आते हैं॥५६॥ तीन युगों में लिङ्ग रहता है और कलियुग में नहीं रहता है महर्षि विश्वामित्र ने मुझको शाप दे दिया था ॥५७॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे सुरेश्वर ! आपको ऋषि ने क्यों शाप दिया ? हे देव ! मैं इस बात को आपसे सुनना चाहती हूँ ॥५८॥ **महादेवजी ने कहा—** हे देवि ! एक समय महातपस्वी विश्वामित्र इस अत्यन्त अद्भुत तीर्थ में आये ॥५९॥ साभ्रमती में स्नान करके उन्होंने मेरा दर्शन किया । वे वहीं पर नित्य रहकर मेरी अनेक प्रकार से पूजा करने लगे ॥६०॥ वहाँ पर कोई महादुष्ट तथा पापी कौलिक (औघड़) ने शिवजी के ऊपर माँस चढ़ा दिया ॥६१॥ उस मांस को देखकर विश्वामित्र ने रोका फिर भी वहा पापी मांस चढा ही दिया ॥६२॥ फिर भी शिवजी ने उसको दण्ड नहीं दिया अतएव मैं इनको शाप दूँगा यह उन्होंने निश्चय कर लिया ॥६३॥ इस तरह से विचार करके महर्षि ने मुझे शाप दे दिया कि भयङ्कर कलियुग में हे शिव ! आप गुप्त हो जायँ ॥६४॥ इस तरह से शाप देकर मुनि चले गये । हे देवि ! उस समय से मैं ऋषि के शाप के कारण गुप्त हूँ ॥६५॥ मेरे स्थान पर यदि कोई विशेष रूप से

मृन्मयीं मामकीं मूर्तिं कृत्वा ये पूजयन्ति वै ।
अत्र स्थाने विशेषेण मामके तु वसन्ति हि ॥६७॥
खड्गधारेश्वरइतिनाम्ना ख्यातः कलौ युगे । कृते वै मन्दिरं नाम त्रेतायां गौरवः स्मृतः ॥६८॥
द्वापरे विश्वविख्यातः कलौ खड्गेश्वरः स्मृतः ।
दक्षिणं भागमाश्रित्य मम स्थानं सुरेश्वरि ! ॥६९॥
इति ज्ञात्वा तु तत्रैव कृत्वामूर्तिं सदा बुधः ।
पूजनं कुरुते नित्यं वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ॥७०॥
धमार्थकाममोक्षांश्च लभते मानवो भुवि। धूपं दीपं च नैवेद्यं तथा वै चन्दनादिकम् ॥७१॥
येऽर्पयन्ति हि देवेशि लोकनाथे महेश्वरि !। न दुःखं तु भवेत्तेषां सत्यं सत्यं वरानने ! ॥७२॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे खड्गधारेश्वरमाहात्म्यं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय: ॥१५४॥

एक सौ पचपनवाँ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

खड्गधाराद्दक्षिणतस्तीर्थं परमपावनम् । दुग्धेश्वरमिति प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
यस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा दुग्धेश्वरं हरम् ।
पुमान्सद्यो विमुच्येत दुःखात्पापसमुद्भवात् ॥२॥

पूजा करता है उसके सारे पाप उसी समय विनष्ट हो जाते है ॥६६॥ जो लोग मेरी मिट्टी की मूर्ति बनाकर मेरी पूजा मेरे स्थान पर करते हैं वे मेरे लोक में निवास करते हैं ॥६७॥ कलियुग में खड्गधार के नाम से यह तीर्थ विख्यात है, सत्य युग में इसका नाम मन्दिर था । त्रेता में गौरव इसको कहा गया है । द्वापर में विश्व विख्यात इसका नाम है और कलियुग में खड्गधार इसको कहा गया है । मेरा स्थान दक्षिण दिशा में है ॥६८-६९॥ इस बात को जानकर मेरी मूर्ति बनाकर जो विद्वान् मेरी पूजा करते हैं वे वाञ्छित फल को प्राप्त करते हैं ॥७०॥ वे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्त करते है । धूप, दीप, नैवेद्य तथा चन्दन आदि हे महेश्वरि जो लोक नाथ पर चढाते हैं, उनको कभी भी दुख नहीं होता है यह मैं सत्य कहता हूँ ॥७१-७२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमा-महेश्वर संवादान्तर्गत खड्ग धारेश्वर माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ चौवनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५४॥

दधीचि वृत्तान्त तथा दुग्धेश्वर माहात्म्य

श्रीमहादेवजी ने कहा— खड्गधारेश्वर के दक्षिण ओर अत्यन्त पवित्र तथा सभी पापों को विनष्ट

दधीचिना तपस्तप्तं साभ्रमत्यास्तटे शुभे। चन्द्रभागा महापुण्या गङ्गया सङ्गता यतः ॥३॥

तत्र स्नानं च दानं च जपः पूजा तपस्तथा ।
सर्वमक्षयतां याति दुग्धतीर्थप्रभावतः ॥४॥

पार्वत्युवाच

दुग्धेश्वरससमुत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि वै प्रभो । महिमादुग्धतीर्थस्य कथ्यतां च सुरेश्वर ! ॥५॥

महादेव उवाच

पुरा दैवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः। पलायनपरा भूत्वा दधीचाश्रममागताः ॥६॥
मुक्त्वा तत्रायुधान्येव गता देवा दिशोदश । पश्चात्कोलाहलं श्रुत्वा दधीचोदैत्यसंभवम् ॥७॥

पीतवांस्तानि शास्त्राणि जलेनाऽऽप्लाव्य भार्गवः ।
कालेन ते सुराः सर्व अस्त्राण्यादातुमुत्सुकाः ॥८॥

गुरुणा सहिताः सर्वे परस्परमुदान्विताः। नकुलैः सहसर्पाश्च क्रीडन्ते ते परस्परम्॥९॥
एवम्विधान्यनेकानि साश्चर्याणि तदाश्रमे। पश्यन्तो विबुधाः सर्वे विस्मयं परम गताः ॥१०॥
ददृशुस्ते मुनिवरमासनोपरि संस्थितम् । यत्र साभ्रमती पुण्या मिलिता चन्द्रभागया ॥११॥
वर्चसा परमेणैव भ्राजमानं यथा रविम्। विभावसुद्वितीयं च सुवर्चो भार्यया सह॥१२॥

यथा ब्रह्मा हि सावित्र्या तथाऽसौ मुनिसत्तमः ।
दृष्टः सुरवरैःसर्वैःप्रणिपातपुरःसरम् ॥१३॥

ऊचिरे तं तदा देवा बृहस्पतिपुरोगमाः । त्वं दाता त्रिषु लोकेषु विदितः पूर्वमेव च॥१४॥

करने वाला दुग्धेश्वर तीर्थ है ॥१॥ उस तीर्थ में स्नान करके तथा दुग्धेश्वर शिवजी का दर्शन करके मनुष्य पाप जन्य दुःख से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥२॥ महर्षि दधीचि ने साभ्रमती नदी के तट पर तप किया वहाँ पर चन्द्रभागा नदी साभ्रमती गङ्गा से मिलती है ॥३॥ वहाँ पर स्नान, दान, पूजा, जप तथा तप करना ये सब अक्षय है । दुग्धतीर्थ के प्रभाव से हो जाते हैं ॥४॥ **पार्वतीजी ने कहा**— हे सुरेश्वर ! आप दुग्धतीर्थ की महिमा को पूर्ण रूप से बतलायें । हे प्रभो मैं दुग्धेश्वर तीर्थ की उत्पत्ति को सुनना चाहती हूँ॥५॥ **महादेवजी ने कहा**— पूर्वकाल में दैत्यों ने देवताओं को पराजित कर दिया । देवता भागकर दधीचि महर्षि के आश्रम में चले गये ॥६॥ वहीं पर आयुधों को छोड़कर देवता विभिन्न दिशाओं में भाग गये । उसके बाद दैत्यों के कोलाहकर को सुनकर महर्षि दधीचि ॥७॥ जल के साथ मिलकर उन सभी शस्त्रों को पी गये । समयानुसार देवता उन अस्त्रों को लेने के लिए उत्सुक होकर आये ॥८॥ सब देवता बृहस्पतिजी के साथ प्रसन्नता पूर्वक वहाँ पर नेवले के साथ सर्पों को क्रीडा करते हुए देखा ॥९॥ इस प्रकार के अनेक आश्चर्यों को उस आश्रम में देखते हुए वे अत्यन्त आश्चर्यित हो गये ॥१०॥ देवताओं ने मुनि को आश्रम पर बैठे हुए देखा वहाँ पर साभ्रमती के साथ चन्द्रभागा नदी मिली हुयी है ॥११॥ वे अत्यधिक कान्ति से सूर्य के समान सुशोभित थे । वे अपनी पत्नी के साथ दूसरे अग्निदेव के समान सुशोभित थे॥१२॥ ये मुनि लगते थे जैसे सावित्री देवी के साथ ब्रह्माजी बैठे हों । देवताओं ने साष्टाङ्ग प्रणाम पूर्वक उनका दर्शन किया ॥१३॥ उनसे बृहस्पति आदि देवताओं ने कहा आप त्रैलोक्य में दाता रूप से पहले से ही विख्यात हैं ॥१४॥ हमलोग आपके सन्निकट याचना करने के लिए आये हैं । हम सभी लोग

याच्ञार्थं च वयं सर्वे त्वत्सकाशं समागताः ।
भयभीता वयं सर्वेऽस्त्राणि नो दातुमर्हसि ॥१५॥
इत्युक्तोमुनिवर्योऽसौ देवानाह महामतिः। पीतानि तानि भो देवा जलेनाप्लाव्य मन्त्रतः ॥१६॥
ततो देवाऽब्रुवन्विप्रं दैत्यानां निधनाय च। देह्यस्थीनि त्वरा विप्र ! दत्तानीति द्विजोऽवदत्॥१७॥
इत्युक्त्वा तान्स्वपत्नीं स प्रेषयामास चाऽऽश्रमम् ।
तदोवाच द्विजो हृष्टो देवान्स्मित्वा महामतिः ॥१८॥
पीतानि तानि भो देवा गृह्णीध्वं च यथातथम् ।
इत्म्युक्त्वा च द्विजो देवि योगमास्थाय योगवित् ॥१९॥
ततोऽब्रुवन्सुरा विप्रं स्मयन्तंछलयागिरा । त्वयिजीवतिभोब्रह्मन्कुतोऽस्थीनिलभामहे ॥२०॥
प्रहस्योवाच विप्रर्षिस्तिष्ठध्वं क्षणमेकतः । स्वयमेव च भो देवास्त्यक्ष्याम्यद्य कलेवरम्॥२१॥
इत्युक्त्वा स द्विजो देवि ! योगमास्थाय योगवित् ।
ब्रह्मलोकं गतः सद्यो यतो नाऽऽवर्त्तते पुनः ॥२२॥
ततः सर्वे सुरास्तत्र दृष्ट्वा तं विलयं गतम् ।
चिन्तयन्तः सुरगणाः कथं च विशसामहे ॥२३॥
सुरभिं चाह्वयामास तामुवाच शचीपतिः । कलेवरं द्विजेन्द्रस्य लीढ त्वं वचसा मम॥२४॥
तथेति च वचो मत्वा तत्क्षणादेव लिह्य तत् ।
निर्मांसं च कृतं सद्यस्तया धेन्वा कलेवरम् ॥२५॥
जगृहुस्तानि चाऽस्थीनि चक्रुः शस्त्राणि वै सुराः ।
तस्य वंशोद्भवं त्वस्त्रमासीद्ब्रह्मशिरस्तथा ॥२६॥

भयभीत हैं आप हमलोगों के अस्त्रों को प्रदान करें ॥१५॥ इस तरह से कहने पर मुनिवर्य ने देवताओं से कहा देवताओं मैंने उन सभी अस्त्रों को पानी में मिलाकर मन्त्र से पी लिया है ॥१६॥ इसके बाद देवताओं ने उन दैत्यों को मारने के लिए आप अपनी हड्डियों को दे दें । **महर्षि ने कहा—** दे दिया मैंने ॥१७॥ इस तरह कहकर उन्होंने अपनी पत्नी के आश्रम में भेज दिया । उसके बाद वे महाबुद्धिमान् हर्षित होकर देवताओं से कहे ॥१८॥ हे देवताओं ! मैंने अस्त्रों को पी लिया है उसको जैसे हो निकाल लो । हे देवि! यह कहकर वे योगधारण करके बैठ गये ॥१९॥ उसके पश्चात् मुस्कुराते हुए महर्षि से देवताओं ने कहा हे ब्रह्मन् ! आपके जीवित रहने पर हम आपकी अस्थिओं को कैसे पा सकते हैं ॥२०॥ जोर से हँसकर महर्षि ने कहा एक क्षण ठहरो । देवताओं मैं स्वयम् अपने शरीर का त्याग करता हूँ ॥२१॥ हे देवि ! वे ब्राह्मण यह कहकर योग धारण करके ब्रह्मलोक में चले गये जहाँ से कोई इस संसार में नहीं आता है॥२२॥ उसके बाद उनको मरे हुए देखकर देवता सोचने लगे कि हमलोग इनको काटें कैसे ॥२३॥ इन्द्र ने सुरभि गौ को बुलाया और कहा तुम मेरे कहने से द्विजेन्द्र के शरीर को चाटो ॥२४॥ उसने कहा ठीक है और उसी क्षण चाटकर उनके शरीर को मांस रहित बना दिया ॥२५॥ देवताओं ने उन हड्डियों को ले लिया और उससे अपने अस्त्रों को बनाया । उनके रीढ की हड्डि से ब्रह्मशिरः नामक अस्त्र बना शस्त्रों और

शस्त्राण्यस्त्राणि कृत्वा ते महाबलपराक्रमाः ।
ययुर्देवास्त्वरायुक्ता वृत्रघातनतत्पराः ॥२७॥
ततः सुवर्चास्तु दधीचपत्नीं संप्रेषितायासुरकार्यसिद्धये ।
विलोकयामास समेत्य तत्र मृतं पतिं देहमथोविशस्तम् ॥२८॥
ज्ञात्वा तु तत्सर्वमथो सुराणां कृत्यं तदानीं च चुकोप साध्वी ।
ददौ तदा शापमतीव रुष्टा तदा सुवर्चा ऋषिवर्यपत्नी ॥२९॥
अहो सुरा दुष्टतराश्च सर्वे ह्यनेकशप्ताश्च तथैव लुब्धाः ।
तस्मात्तुसर्वे ह्यप्रजा भवन्तु सेन्द्राः सुराऽद्यप्रभृतीत्युवाच ॥३०॥
एवं शापं ददौ तेषां सुराणां सा तपस्विनी ।
उपविश्याऽश्वत्थमूले साभ्रमत्यास्तटेस्थिता ॥३१॥
सगर्भा सा सती साध्वी स्वोदरं विददार ह ।
निर्गतोजठराद्गर्भो दधीचस्य महात्मनः ॥३२॥
साक्षाद्रुद्रावतारोऽसौ पिप्पलादो महाप्रभुः। प्रहस्य जननी गर्भमुवाच वचनं महत् ॥३३॥
सुवर्चास्तं पिप्पलादं चिरं तिष्ठास्य सन्निधौ ।
अश्वत्थस्य महाभाग सर्वेषां शुभदो भव ॥३४॥
तथैव भाषमाणा सा सुवर्चास्तनयं प्रति। पतिं प्रत्यागमत्साध्वी परमेण समाधिना॥३५॥
एवं दधीचपत्नी सा पतिना स्वर्गमास्थिता । ते देवाः कृतशस्त्रास्त्रा दैत्यान्प्रतिसमुत्सुकाः ॥३६॥
आजग्मुश्चेन्द्रमुख्याश्च महाबलपराक्रमाः । कामधेनुः प्रसुस्राव ययौ यत्र द्विजक्षयः ॥३७॥
मुनेः प्रभावतो दुग्धं लिङ्गरूपं व्यजायत । दुग्धेश्वरमिति ख्यातं देवि साभ्रमती तटे ॥३८॥

अस्त्रों को बनाकर वे देवता महाबल और पराक्रम सम्पन्न हो गये और वृत्रासुर को मारने के लिए शीघ्रता पूर्वक गये ॥२६-२७॥ उसके बाद दधीच की पत्नी सुवर्चा जिसको महर्षि ने देवताओं का कार्य करने के लिए भेज दिया था, वह आकर देखी कि उनके पति मर गये हैं और उनके शरीर को चीर दिया गया है ॥२८॥ यह सारा कार्य देवताओं ने किया है यह जानकर वह क्रुद्ध हो गयीं । वे अतीव रुष्ट होकर देवताओं को शाप दीं ॥२९॥ अरे ये देवता अत्यन्त दुष्ट हैं लोभी होने के कारण अनेक प्रकार से शप्त हैं । अतएव आज से इन्दु आदि सभी देवता प्रजाहीन हो जायँ ॥३०॥ इस तरह से उस तपस्विनी ने उन देवताओं को शाप दे दिया । उन्होंने साभ्रमती के तट पर अश्वत्थ वृक्ष के मूल में बैठकर शाप दिया॥३१॥ गर्भिणी उन्होंने अपने पेट को चीर दिया उनके गर्भ से महर्षि दधीच का गर्भ निकला ॥३२॥ वे साक्षात् रुद्र के अवतार महर्षि पिप्लाद हुए । माता ने जोर से हँसकर उस गर्भ से कहा ॥३३॥ सुवर्चा उस गर्भ को दीर्घ काल तक पिप्पल के सन्निकट बैठाये रहीं और कहीं सबका कल्याण करने वाला बनो ॥३४॥ इस तरह पुत्र को कहने वाली सुवर्णा साध्वी परम समाधि के द्वारा अपने पति के पास चली गयीं ॥३५॥ इस तरह से महर्षि दधीच की पत्नि अपने पति के साथ स्वर्ग में निवास की । वे देवता अपने शस्त्रास्त्रों का निर्माण अत्यन्त उत्सुक होकर दैत्यों के पास आये ॥३६॥ अत्यन्त वल और पराक्रम से सम्पन्न

तदा प्रभृति तीर्थं हितन्नाम्ना प्रथितं भुवि। अतुलं यस्य माहात्म्यं श्रवणात्पातकापहम् ॥३९॥
ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या दुग्धेश्वरसमुद्भवम्। तेऽपि पापविनिर्मुक्ता यान्ति रुद्रपदं महत् ॥४०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
दुग्धेश्वरमाहात्म्यं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

एक सौ छप्पनवाँ अध्याय

महादेव उवाच

दुग्धेश्वरस्य पूर्वे तु तीर्थं परमपावनम्। चन्द्रभागेति वै नाम्ना नदी तत्र तु सङ्गता ॥१॥
तत्र चन्द्रेश्वरो देवो नित्यं तिष्ठति पुण्यदः। यो हरः सर्वदा व्यापी लोकानां सुखदो महान् ॥२॥
अत्र स्नानं प्रकुर्वन्ति ध्यानं कुर्वन्ति नित्यशः।
तत्फलं प्राप्नुयुस्ते वै साभ्रमत्यां शिवार्चनात् ॥३॥
सामेनाऽत्र तपस्तप्तं कालं बहुतरं किल। तस्माचन्द्रेश्वरो नाम स्थापितो वै महेश्वरः ॥४॥
शुक्रेणाऽपि तपस्तप्तं चन्द्रभागासमीपतः। अतस्तीर्थाधिकं तीर्थं पावनं सर्वदा भुवि ॥५॥
कलौ गुप्तं तु ऋषिणा कारितं वै सुरेश्वरि !।
यत्र हेममयं लिङ्गं दृश्यते नाऽत्रसंशयः ॥६॥

कामधेनु भी उस स्थान पर गयी जहाँ पर महर्षि की मृत्यु हुयी थी और वहाँ पर दुग्ध क्षरण किया ॥३७॥ मुनि के प्रभाव से वह दुग्ध ही लिङ्ग बन गया। हे देवि ! वह साभ्रमती के तट पर दुग्धेश्वर के नाम से विख्यात है ॥३८॥ उसी समय वे वह तीर्थ उसी नाम से पृथिवी पर विख्यात है। उसका अतुलनीय माहात्म्य है। उसके सुनने से पापों का नाश हो जाता है ॥३९॥ जो लोग भक्ति पूर्वक दुग्धेश्वर की उत्पत्ति को सुनते हैं, वे लोग भी पाप रहित होकर रुद्रलोक में जाते हैं ॥४०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत दुग्धेश्वर माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ पचपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५५।।

चन्द्रेश्वर तथा चन्द्रभागा के माहात्म्य का वर्णन

महादेवजी ने कहा— दुग्धेश्वर के पूर्व दिशा में अत्यन्त पवित्र चन्द्रभागा नदी जहाँ साभ्रमती नदी में मिलती हैं ॥१॥ यहाँ पर पुण्य प्रदान करने वाले चन्द्रेश्वर देव विद्यमान हैं। वे हमेशा व्यापक तथा लोगों को महान् सुख देने वाले हैं ॥२॥ यहाँ पर जो लोग स्नान करके ध्यान करते हैं उस फल को लोग साभ्रमती में शिवार्चन करने से प्राप्त करते हैं ॥३॥ यहाँ पर मेना ने बहुत समय तक तपस्या किया। उन्होंने ही यहाँ पर चन्द्रेश्वर महादेव की स्थापना की ॥४॥ शुक्राचार्य ने भी चन्द्रभागा के समीप तपस्या

अत्र स्नात्वा च पीत्वा च कृत्वा वै शिवपूजनम् ।
ये नराः सङ्गमिष्यन्ति धर्मार्थांल्लभन्ति ते ॥७॥
वृषोत्सर्गादिकं कर्मये कुर्वन्ति विशेषतः । भुक्त्वा स्वर्गपदं ते वै पश्चाद्यान्ति हरालयम् ॥८॥
स्नानार्थे प्रत्यहं देवि ! चन्द्रभागासमीपतः । आगमिष्यन्ति ये लोकास्ते ज्ञेयाः पुण्यभागिनः ॥९॥
गत्वा परतटे ये वै ह्यर्चयन्ति च तं शिवम् ।
चन्द्रेश्वरेति नामानं श्रीहरं पापकृन्तनम् ॥१०॥
अत्र गत्वा विशेषेण रुद्रजाप्यादिकं तथा। ये कुर्वन्ति नरश्रेष्ठास्ते ज्ञेयाः शिवरूपिणः ॥११॥
सर्वदा तु सुरश्रेष्ठे येऽत्र स्नानं प्रकुर्वते । ते नरा विष्णुरूपा हि विज्ञेया नाऽत्रसंशयः ॥१२॥
येऽत्र श्राद्धंप्रकुर्वन्ति तिलपिण्डेन वा पुनः । तेऽपिविष्णुपदं यान्ति पिण्डदानप्रभावतः ॥१३॥
अत्र दानं प्रकर्त्तव्यं स्नानं वै विधिपूर्वकम् ।
यत्र स्नात्वा तु मुच्यन्ते ब्रह्महत्यादिकिल्बिषात् ॥१४॥
तटेऽस्मिन्ये विशेषेणवटं चारोपयन्ति ते । मृताः शिवपदं यान्ति यावचन्द्रदिवाकरौ ॥१५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे चन्द्रेश्वरचन्द्रभागामहिमा नाम षट्पञ्चादधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥

की इसीलिए यहा अन्य तीर्थो से अधिक पावन तीर्थ पृथिवी पर विद्यमान है ॥५॥ हे सुरेश्वरि ! कलियुग में ऋषि ने इस तीर्थ को गुप्त कर दिया है । वहाँ पर सुवर्णमय लिङ्ग दिखता है ॥६॥ यहाँ पर स्नान करके तथा इसका पानी पीकर तथा शिवजी का पूजन जो लोग करेंगे वे लोग सद्गति को प्राप्तकर धर्म आर अर्थ को प्राप्त करेंगे ॥७॥ जो लोग यहाँ पर वृषोत्सर्ग आदि कर्म को करते हैं वे लोग स्वर्ग भोग करने के बाद शिवलोक में जाते हैं ॥८॥ हे देवि ! जो लोग चन्द्रभागा के समीप स्नान करने के लिए आयेंगे वे पुण्य के पात्र हैं ॥९॥ जो लोग दूसरे तट पर जाकर पाप विनाशक चन्द्रशेवर शिवजी की अर्चना करते हैं ॥१०॥ तथा वहाँ पर रुद्रजाप्य (रुद्रसूक्त का पाठ) आदि करते हैं वे मनुष्य शिव स्वरूप हैं॥११॥ हे पार्वति ! जो लोग यहाँ पर सदा स्नान करते हैं उन मनुष्यों को निःसन्देह विष्णु स्वरूप जानना चाहिए॥१२॥ जो लोग यहाँ पर श्राद्ध तिल के पिण्ड से करते हैं वे भी पिण्डदान के प्रभाव से विष्णुलोक में जाते हैं ॥१३॥ यहाँ पर विधि पूर्वक स्नान तथा दान करना चाहिए । यहाँ पर स्नान करने वाले ब्रह्महत्या जन्य पाप से छूट जाते हैं ॥१४॥ इस तरह जो लोग विशेष रूप से यहाँ बट वृक्ष रोपते हैं वे मृत्यु के बाद शिवलोक में तब तक रहते हैं जब कि आकाश में सूर्य, चन्द्रमा हैं ॥१५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत चन्द्रभागा तथा चन्द्रेश्वर की महिमा वर्णन नामक एक सौ छप्पनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५६।।

एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय

महादेव उवाच

दुग्धेश्वरसमीपेतु तीर्थं चातीवपावनम्। रम्यं तत्पिप्पलादस्य नाम्ना वै प्रथितं भुवि ॥१॥
यत्र कृत्वा तपः पूर्वं मातुर्वचनतो मुनिः। उत्पादयामास कृत्यां वडवानलसम्मिताम्॥२॥
पितुरानृण्यमन्विच्छन्दधीचस्य महात्मनः। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥३॥
साभ्रमत्यास्तटे गुप्तं पिप्पलादं सुरेश्वरम्। तत्र स्नात्वा तु भो देवि ! मुक्तिभागी भवेन्नरः॥४॥
आरोपणं पिप्पलानां कर्त्तव्यं विधिपूर्वकम्। कृते सति महादेवि मुच्यते कर्मबन्धनात्॥५॥

पार्वत्युवाच

किमर्थं सा तु कृत्या वै चोत्पन्ना तां निबोधय ।
तया वै कृत्यया पूर्वं किं कृतं वद मे प्रभो ! ॥६॥
येन पुत्रेण साऽऽनीता पितुरानृण्यकारणात् ॥७॥

महादेव उवाच

दधीचऋषिवर्योऽसौ ह्यागतस्तपः कारणात्। अत्र तेन महत्तप्तमृषिणा परमात्मना॥८॥
तत्र कोलासुरो नाम विघ्नार्थं वै समागतः। तेन विघ्नं बहुतरं कृतं वै नाऽत्रसंशयः ॥९॥
तद्दृष्टं तु सुपुत्रेण कहोडेन च धीमता। कृत्या ह्युत्पादिता तत्र हननार्थं सुरेश्वरि ! ॥१०॥

पिप्पलाद तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— दुग्धेश्वर के सन्निकट ही अत्यन्त पवित्र पिप्पलाद महर्षि के नाम से पृथिवी पर तीर्थ विख्यात है ॥१॥ वहाँ पर वे मुनि अपनी माता की आज्ञा से तप करके बडवानल के समान कृत्या को उत्पन्न किये थे ॥२॥ वे अपने पिता दधीच का ऋण चुकाने के लिए उस कृत्या को उत्पन्न किये थे । वहाँ पर स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्या को दूर कर देता है ॥३॥ साभ्रमती के तट पर पिप्पलाद शिव गुप्त हैं । हे देवि ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य मुक्ति का पात्र बन जाता ॥४॥ यहाँ पर विधि पूर्वक पिप्पलों को रोपना चाहिए । हे महादेवि ! ऐसा करके मनुष्य कर्मों के बन्धन से छूट जाता है ॥५॥ **पार्वतीजी ने कहा**— उन्होंने किसलिए कृत्या को उत्पन्न किया इस बात को आप मुझे बतलाइये । उस कृत्या ने पहले क्या किया ? हे प्रभो ! इसे बतलाइये ॥६॥ जिसके लिए अपने पिता से आनृण्य चाहने वाले ऋषि ने उसको उत्पन्न किया ॥७॥ **महादेवजी ने कहा**— ऋषिश्रेष्ठ दधीच यहाँ तप करने के लिए आये थे । उन परम ऋषि ने वहाँ पर महान् तप किया था ॥८॥ वहाँ पर कोलासुर विघ्न करने के लिए आया और उसने बहुत अधिक विघ्न भी किया ॥९॥ उसको उनके पुत्र कहोड ने देख लिया और उसको

तया वै निहतो दैत्यः कोलो नाम महासुरः ।
तस्मात्तीर्थं महज्जातं कलौ गुप्तं तु पार्वति ! ॥११॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
पिप्पलादतीर्थं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥

एक सौ अठावनवाँ अध्याय

महादेव उवाच

पिप्पलादात्ततस्तीर्थात्पिचुमन्दार्कमुत्तमम् । तीर्थंसाभ्रमतीतीरेव्याधिदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥१॥
पुरा कोलाहले युद्धे दानवैर्निर्जिताः सुराः । वृक्षेषु विविशुस्तत्रसूक्ष्माःप्राणपरीप्सया ॥२॥
तत्र बिल्वे स्थितः शम्भुरश्वत्थे हरिरव्ययः। शिरीषेऽभूत्सहस्त्राक्षोनिम्बेदेवः प्रभाकरः ॥३॥
एवमादि यथायोग्यं वृक्षेषु विबुधास्तथा। यावत्कोलाहलोदैत्यो विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥४॥
हतो महाहवे तावत्स्थितास्ते वृक्षमाश्रिताः। येन येन हि यो वृक्षो विबुधेनसमाश्रितः ॥५॥
स तु तन्मयतां यातस्तस्मात्तं न विनाशयेत् ।
इति सूर्यस्य विश्रामात्पिचुमन्दार्कमुत्तमम् ॥६॥

मारने के लिए उन्होंने कृत्या को उत्पन्न किया ॥१०॥ उस महाअसुर कोलासुर को कृत्या ने मार दिया, उसके कारण वहाँ महान् तीर्थ हो गया । किन्तु कलियुग में वह गुप्त है ॥११॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत पिप्पलाद तीर्थ वर्णन नामक एक सौ सत्तावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५७।।

एक सौ अठावनवाँ अध्याय

निम्बार्कदेवतीर्थ माहात्म्य का वर्णन

महादेवजी ने कहा— उस पिप्पलाद तीर्थ से अत्यन्त पवित्र पिचुमन्दार्क नामक तीर्थ साभ्रमती के तट पर उत्पन्न हुआ । वह व्याधि तथा दौर्गन्ध को विनष्ट करता है ॥१॥ प्राचीन काल में कोलाहल युद्ध में दैत्यों ने देवताओं को परास्त कर दिया और देवता सूक्ष्म रूप धारण करके वृक्षों में प्रवेश कर गये जिससे कि उनके प्राणों की रक्षा हो ॥२॥ शिवजी विल्व में प्रवेश कर गये और श्रीहरि पिप्पल वृक्ष में प्रवेश कर गये । इन्द्र शिरीष में प्रवेश किये और सूर्य निम्ब में प्रवेश किए ॥३॥ इसी तरह सभी देवता यथायोग्य वृक्षों में प्रवेश कर गये । उसी समय प्रभविष्णु भगवान् विष्णु ने कोलाहल दैत्य को मार दिया ॥४॥ जब तक महायुद्ध में कोलाहल मारा गया तब तक देवता वृक्ष में ही रहे । जिस जिस वृक्ष को देवता अपना आश्रय बनाये रहे ॥५॥ वह वृक्ष उस देवमय हो गया अतएव वृक्षों को विनष्ट नहीं करना चाहिए । सूर्य

तीर्थं रोगहरं स्नानात्साभ्रमत्यास्तटेऽभवत्। अत्र गत्वा विशेषेण तं रविंयदिपूजयेत् ॥७॥
पूजयित्वा सुरश्रेष्ठे ! लभते वाञ्छितंफलम् ।
अत्र द्वादशनामानि गत्वा यवैपठन्ति च ॥८॥
ते नराःपुण्यकर्माणो यावज्जीवंनसंशयः । आदित्यंभास्करं भानुंरविं विश्वप्रकाशकम्॥९॥
तीक्ष्णांशं चैव मार्तण्डं सूर्यं चैव प्रभाकरम् ।
विभावसुं सहस्राक्षं तथापूषणमेव च ॥१०॥
एवं द्वादशनामानि यः पठेत्प्रयतः सुधीः । धनं वै पुत्रपौत्रांश्च लभते नगनन्दिनि !॥११॥
एकैकं नामआश्रित्य योऽर्चयेत नरो भुवि । सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपागरः ॥१२॥
क्षत्रियो लभते राज्यं वैश्यो धनमवाप्नुयात् ।
शूद्रो वै लभते भक्तिं तस्मात्सूक्तं परं जपेत् ॥१३॥
निम्बार्कतः परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।
अत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुक्तिभागी भवेद्ध्रुवम् ॥१४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
निम्नार्कदेवतीर्थं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५८॥

के रहने से पिचुमन्द (निम्ब) उत्तम है ॥६॥ वह तीर्थ रोग को विनष्ट करने वाला साभ्रमती के तट पर हो गया । वहाँ जाकर यदि कोई उस सूर्य की विशेष रूप से पूजा करता है ॥७॥ तो हे सुरश्रेष्ठ ! उसकी पूजा करके मनुष्य वाञ्छित फल को प्राप्त करता है । यहाँ पर जो मनुष्य सूर्य के बारह नामों का पाठ करता है वे मनुष्य अपने जीवन भर पुण्यवान् रहते हैं । आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, विश्वप्रकाशक ॥८॥ तीक्ष्णांशु, मार्तण्ड, सूर्य, प्रभाकर, विभावसु, सहस्राक्ष एवं पूषा ॥९-१०॥ इस तरह से सूर्य के बारह नामों को जो मनुष्य सावधानी पूर्वक पढ़ते हैं, वे हे पार्वति पुत्र-पौत्र तथा धन को प्राप्त करते हैं ॥११॥ इसमें से एक-एक नाम लेकर सूर्य की यहाँ जो लोग पूजा करते हैं, वे सात जन्मों तक वेद पारंगत तथा धनाढ्य ब्राह्मण होते हैं ॥१२॥ क्षत्रिय राज्य प्राप्त करता है और वैश्य धन प्राप्त करता है, शूद्र भक्ति को प्राप्त करता है अतएव इस सूक्त को अवश्य पढना चाहिए ॥१३॥ निम्बार्क से श्रेष्ठ तीर्थ न होगा और न हुआ । यहाँ पर स्नान करके तथा जल को पीकर मनुष्य मुक्ति का भागी होता है ॥१४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत निम्बार्क तीर्थ वर्णन नामक एक सौ अठावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५८।।

एक सौ उनसठवाँ अध्याय

महादेव उवाच

तस्माद्दूरतरे देवि ! सिद्धक्षेत्रमनुत्तमम् । अनिरुद्धो वृतः पूर्वमुषार्थे चित्रलेखया ॥१॥
नीतो बाणासुरपुरं तिष्ठति स्म गृहे पुरा । पाशैर्बाणैश्च संरुद्धः कोटराक्षीमथाऽस्मरत् ॥२॥
साक्षाद्या वैष्णवी शक्तिः सदा रक्षणतत्परा ।
सेयं देवी नदीतीरे कृष्णेनात्र प्रतिष्ठिता ॥३॥
जित्वा बाणासुरं सङ्ख्ये द्वारकां प्रति गच्छता ।
अनिरुद्धस्य स्तोत्रेण साक्षात्सान्निध्यमागता ॥४॥
तत्र तीर्थे नरःस्नात्वा वर्षमेकं प्रयत्नतः । कोटराक्षीमुखं दृष्ट्वा लक्ष्मीमाप्रोतिपुष्कलाम् ॥५॥
सिद्धतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटरवासिनीम् ।
सिंहयुक्तेन यानेन रुद्रलोके महीयते ॥६॥
यस्यां वै स्मरणादेव मुक्तः सोऽपि वरानने ! ।
अतो येऽत्र प्रगच्छन्तिम ते नरा मुक्तिभागिनः ॥७॥
तत्र गत्वा विशेषेण स्नानंकृत्वा तु पार्वति ! ।
कोटराक्ष्यास्ततःस्तोत्रं पठेद्वैबुद्धिपूर्वकम् ॥८॥
कोटराक्षी विश्वरूपा महामाया बलाधिका । त्रिपुरा त्रिपुराघ्नी च शिवावैशिवरूपिणी ॥९॥
कन्या सारस्वती प्रोक्ता दुर्गा दुर्गतिहारिणी ।
भैरवी भैरवाक्षी च लक्ष्मीदेवीजनप्रिया ॥१०॥
एतानि बहुधोक्तानि नामानि च सुरेश्वरि ! । ये पठन्ति नरश्रेष्ठास्तेयान्ति शिवसन्निधौ ॥११॥
अनिरुद्धकृतं स्तोत्रं ये जपन्ति मनीषिणः । मुच्यन्ते कष्टबन्धात्ते सत्यं सत्यं वरानने ॥१२॥

कोटरा तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवि ! उससे दूर उत्तम सिद्धक्षेत्र है । पूर्वकाल में वहाँ पर चित्रलेखा ने ऊषा के लिए अनिरुद्ध का वरण किया था ॥१॥ लाये गये उनको बाणासुर की नगरी में पाश तथा बाण से बँधे हुए पड़े रहे । उसके बाद उन्होंने कोटराक्षी देवी का स्मरण किया ॥२॥ वे साक्षात् वैष्णवी शक्ति हैं और सदा रक्षा करने का काम करती हैं । उस देवी को भगवान् कृष्ण ने इस नदी के तट पर प्रतिष्ठित किया था ॥३॥ बाणासुर को परास्त करके जब वे द्वारकापुरी जा रहे थे । अनिरुद्ध के स्तोत्र से प्रसन्न वे साक्षात् सन्निकट में आयीं ॥४॥ वहाँ पर मनुष्य प्रयत्न पूर्वक एक वर्ष तक स्नान करके तथा कोटराक्षी देवी का दर्शन करके पुष्कल मात्रा में लक्ष्मी को प्राप्त करता है ॥५॥ इस सिद्ध तीर्थ में स्नान करके तथा कोटर में निवास करने वाली देवी का दर्शन करके सिंह युक्त विमान के द्वारा रुद्रलोक में जाकर पूजित होता है ॥६॥ उस देवी के ही स्मरण करने से अनिरुद्ध भी मुक्त हुए थे । यहाँ पर जो मनुष्य जाते हैं वे मुक्ति के पात्र हैं ॥७॥ हे पार्वति वहाँ पर विशेष रूप से स्नान करके कोटराक्षी स्तोत्र को ध्यान पूर्वक पढ़े ॥८॥ कोटराक्षी, विश्वरूपा, महामाया बलाधिका, त्रिपुरा, त्रिपुरघ्नी, शिवा, शिवरूपिणी, कन्या, सरस्वती, दुर्गा दुर्गतिहारिणी, भैरवी भैरवाक्षी लक्ष्मीदेवि जनप्रिया ॥९-१०॥ हे सुरेश्वरि ! इन बार-बार कहे गये नामों का जो श्रेष्ठ पुरुष पढ़ते हैं वे शिवजी के लोक में जाते हैं ॥११॥ जो मनीषी जन अनिरुद्ध के द्वारा बनाये गये इस स्तोत्र को पढ़ते हैं । हे वरानने मैं सत्य कहता हूँ वे लोग बन्धन मुक्त हो जाते हैं ॥१२॥ कोटरा

तीर्थानां परमं तीर्थं कोटरानिर्मितं भुवि। दर्शनादेव नश्यन्ति पापानां राशयस्तथा॥१३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कोटरातीर्थ नामैकोनषट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

एक सौ साठवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अस्मात्तीर्थात्परं तीर्थं तीर्थराजेतिविश्रुतम् । सप्तनद्यो वहन्त्यत्र चन्दनोदकमिश्रिताः ॥१॥

अन्यतीर्थाच्छतगुणं स्नानं चाऽत्र विशिष्यते ।
देवानां प्रवरो देवो यत्राऽऽस्ते वामनः स्वयम् ॥२॥

द्वादश्यां माघमासस्य दद्याद्यस्तिलधेनुकाम् । विमुक्तः सर्वपापेभ्यःकुलानांतारयेच्छतम्॥३॥

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥४॥

तीर्थेऽस्मिन्भोजयेद्यो वै ब्राह्मणान्गुडपायसैः। एकस्मिन्भोजितेविप्रे सहस्त्रंभोजितंभवेत् ॥५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां उत्तरे खण्डे वामनतीर्थं नाम षष्ठाधिकशततमोऽध्यायः ॥१६०॥

देवी के द्वारा निर्मित यह तीर्थ सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है । उसका दर्शन करने मात्र से पापों की अनेक राशियाँ नष्ट हो जाती है ॥१३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत कोटरातीर्थ का वर्णन नामक एक सौ उनसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५९।।

वामनतीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— इस तीर्थ से तीर्थराज के नाम से विख्यात जहाँ पर चन्दन से मिश्रित सात नदियाँ प्रवाहित होती हैं ॥१॥ अन्यत तीर्थों से सौ गुना अधिक यहाँ पर स्नान करने का फल होता है । वहाँ पर देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् वामन स्वयं विद्यमान हैं । माघ मास की द्वादशी तिथि को जो वहाँ पर तिल धेनु का दान करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर अपनी सौ पीढ़ी को तार देता है ॥२-३॥ यहाँ पर मनुष्य सावधानी पूर्वक तिल मिश्रित जलदान करता है । उसको हजार वर्ष तक श्राद्ध करने का फल प्राप्त होता है । इस रहस्य को पितृगण ही बतलाते हैं ॥४॥ यहाँ पर जो मनुष्य गुड तथा दूध में बने खीर का भोजन ब्राह्मणों को कराना चाहिए । यहाँ एक ब्राह्मण को भोजन कराने से एक हजार ब्राह्मणों के भोजन कराने का फल होता है ॥५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत वामन तीर्थ वर्णन नामक एक सौ साठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६०।।

एक सौ एकसठवाँ अध्याय

महादेव उवाच

सोमतीर्थं ततो गच्छेद्गुप्तं साभ्रमतीतटे। पातालात्तत्र निर्गत्य कालाग्निरभवद्भवः॥१॥
सोमतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा सोमेश्वरं शिवम् ।
सोमपानफलंसाक्षाद्भवतीतिन संशयः ॥२॥
रूपवान्सुभगो भोगी सर्वशास्त्रविशारदः। नरो भवति लोकेऽस्मिन्परत्र च शिवंव्रजेत्॥३॥
अत्रेतिहासं वक्ष्यामि शृणु सुन्दरि ! तत्त्वतः ।
यं श्रुत्वा मुच्यते चाऽत्र ब्रह्महत्यादिपातकात् ॥४॥
कौषीतकेन ऋषिणा तपस्तप्तं विशेषतः । निराहारः स वै जातः पर्णाशनरतः परम् ॥५॥
वायुभक्षस्तपः कुर्वन्नात्मध्यानपरायणः। एवं बहुयुगं तत्र तप्तं तेन महत्तपः ॥६॥
कदाचिद्दैवयोगेन सुप्रसन्नो महेश्वरः। यद्यत्प्रार्थयसे विप्र ! तत्सर्व प्रददाम्यहम्॥७॥

कौषीतक उवाच

तव प्रसादाद्देवेश अत्र लिङ्गं प्रजायताम्। अत्र सोमेश्वरइति ख्यातो देवो भवेद्ध्रुवम् ॥८॥
यत्र स्नात्वा च भुक्त्वा च वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ।
अत्र स्थाने विशेषेण रुद्रजाप्यादिकं यदि ॥९॥
कुर्वन्ति ये नरश्रेष्ठा धर्मानर्थाल्लभन्ति ते । अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम्॥१०॥
राज्यकामी तु तद्राज्यं लभते नाऽत्र संशयः ।
यदिचेत्त्वं प्रसन्नोऽसितत्सर्वदेहिमे प्रभो ॥११॥

सोमतीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— उसके पश्चात् साभ्रमती के तट पर गुप्ततीर्थ सोमतीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर पाताल से निकलकर शङ्करजी कालाग्नि हो गये ॥१॥ मनुष्य सोमतीर्थ में स्नान करके और सोमेश्वर शिव का दर्शन करके सोमपान करने का साक्षात् फल होता है ॥२॥ वह रूपवान, सुन्दर तथा भोगों को भोगने वाला तथा सभी शास्त्रों में निपुण हो जाता है । और मृत्यु के पश्चात् शिवलोक में जाता है ॥३॥ हे सुन्दरि ! सुनो यहाँ पर घटित इतिहास को मैं बतलाता हूँ । उसको सुनकर मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है ॥४॥ ऋषि कौशीतक ने विशेष रूप से यहाँ तपस्या की । उन्होंने आहार का त्यागकर दिया और वे पत्तों को ही खाने लगे ॥५॥ वायु का पान करने वाले वे तपस्या कर रहे थे और आत्मा का ध्यान करते थे । इस तरह से वहाँ पर अनेक युगों तक तपस्या करते रहे और महान् तप किये ॥६॥ एक बार दैवयोग से शिवजी उन पर प्रसन्न हो गये और उन्होंने कहा विप्र ! आप जो-जो चाहें वह मैं दूंगा॥७॥ **कौषीतक ने कहा—** हे देवेश ! आपकी कृपा से यहाँ पर लिङ्ग उत्पन्न हो जाय । और वे सोमेश्वर के नाम से विख्यात हों ॥८॥ यहाँ पर स्नान करके तथा भोजन करके मनुष्य अपने वाँछित फल को प्राप्त करते हैं ॥९॥ वे नरश्रेष्ठ धर्म और अर्थ को प्राप्त करें पुत्रहीन को प्राप्त कर लें और निर्धन धन को प्राप्त कर लें । राज्य को चाहने वाले राज्य को प्राप्त कर लें । यदि आप प्रसन्न हैं तो इन सबों को

महादेव उवाच

तदा चैव सुरेशेन सर्वं दत्तं द्विजन्मने । तदा प्रभृति तत्तीर्थं सोमलिङ्गेति विश्रुतम् ॥१२॥
चन्दनैर्वा विल्वपत्रैर्येऽर्चयन्ति सदा शिवम् । लभन्ते मानुषे देहे सौख्यंपुत्रादिसंभवम् ॥१३॥

सोमवारे तथा प्राप्ते यो गच्छति हरालयम् ।
वाञ्छितं लभते नित्यंसोमलिङ्गप्रसादतः ॥१४॥
अत्र गत्वा तु यो देवि ! यद्ददाति फलादिकम् ।
यस्य कामनया चैव स तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥१५॥

श्वेतैर्वा करवीरैश्च पारिजातैस्तथा पुनः । येऽर्चयन्ति च तं देवं श्रीमहेशंपिनाकिनम् ॥१६॥
ते लभन्ते सुरश्रेष्ठे शैवं पदमनुत्तमम् ॥१७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे सोमतीर्थवर्णनं नामैकषष्ठाधिकशततमोऽध्यायः ॥१६१॥

एक सौ बासठवाँ अध्याय

महादेव उवाच

ततो गच्छेत्तथा देवि ! तीर्थं कापोतिकं पुनः ।
यत्र साभ्रमतीतोयं प्राचीनं सम्प्रवर्त्तते ॥१॥

पिण्डं ददाति यस्तत्र पितृतर्पणपूर्वकम्। वन्यैः फलैस्तथापुष्पैः सदा पर्वणि पर्वणि ॥२॥

आप प्रदान करें ॥१०-११॥ **महादेवजी ने कहा—** उस समय शङ्करजी इन सभी वरदानों को ब्राह्मण को दे दिया । उसी समय से वह तीर्थ सोमलिङ्ग के नाम से प्रख्यात है ॥१२॥ जो लोग यहाँ चन्दन अथवा विल्वपत्र से शिवजी की पूजा करते हैं वे मानव शरीर में पुत्र इत्यादि के सुख को प्राप्त करते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य सोमवार के दिन वहाँ शिवजी के मन्दिर में जाता है वह सोमलिङ्ग की कृपा से अभिप्रेत फल को प्राप्त करता है ॥१४॥ हे देवि ! यहाँ पर जाकर जो फल आदि का दान जिस कामना से करता है वह उसको निश्चित रूप से प्राप्त करता है । उजले पुष्पों से या करवीर से या पारिजात पुष्प से जो लोग वहाँ पर शिवजी की पूजा करते हैं हे सुरश्रेष्ठ ! वे लोग शिवजी के उत्तम लोक को प्राप्त करते हैं ॥१५-१७॥
इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत सोमतीर्थ वर्णन नामक एक सौ एकसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६१।।

कपोताख्यान और कपोत तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवि ! उसके पश्चात् कपोत तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर साभ्रमती नदी का जल पूर्व की ओर बहता है ॥१॥ जो मनुष्य यहाँ पितृतर्पण पूर्वक पिण्डदान बनैले फल तथा पुष्पों

काकादिभ्यश्च श्वादिभ्यो बलिं सन्ददते तु यः ।
यमस्य पन्थानं सोऽपि ससखं निरस्तरेन्नरः ॥३॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा वैशाख्यां गौरसर्षपैः ।
पूजयेद्देवमीशानं प्राचीनेश्वरमुत्तमम् ॥४॥
आत्मानं तारयेत्सोऽथ पितॄनथ पितामहान् । कपोतो यत्र चात्मानं दत्त्वा चाऽतिथये मुदा ॥५॥
स्तुतो देवगणैः सर्वैर्विमानेन दिवं गतः । तदाप्रभृति तत्तीर्थं कापोतमिति विश्रुतम् ॥
तत्र स्नात्वा नरः पीत्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥६॥

पार्वत्युवाच

कपोतेन कथं दत्तं शरीरं च वद प्रभो ! । निमित्तं किं तथा देव नाहं वेद्मि सुरेश्वर !॥७॥

महादेव उवाच

अत्र तीर्थेऽतिदेवेशि वटो वै परमो महान् । तस्य शाखा ह्यनन्ताश्च दृश्यन्ते विपुला भुवि ॥८॥
तत्र जीवा वसन्तीह पक्षिणो बहवस्तथा । कपोतेन गृहं तत्र कारितं तु सुरेश्वरि !॥९॥
तत्र तिष्ठति पक्षीशो नित्यं विष्णुपरायणः । कुटुम्बेन समायुक्तो शाखायां वसति ध्रुवम् ॥१०॥
एकस्मिन्वासरे देवि ! द्वादश्यां विष्णुवासरे ।
श्येनस्तत्र समायातो ह्यतिथित्वेन भामिनि ! ॥११॥
कपोत ! भो देहिमांसं तव शारीरकं मम। नो चेच्छापं प्रदास्यामि इत्युक्तं नगनन्दिनि ! ॥१२॥
अद्य वै वासरे विष्णोः क्षुधार्तोऽहं समागतः ।
तस्माद्देयं हि मांसं मे क्षुधार्ताय त्वया प्रभो ! ॥१३॥
श्येनोक्तं तत्तु वै श्रुत्वा कपोतो वैष्णवो महान् ।
तेन दत्तं तदा देविशरीरं नाऽत्रसंशयः ॥१४॥

से प्रत्येक पर्व पर करता है ॥२॥ साथ ही काकबली और श्वानबली भी देता है वह मनुष्य अपने मित्रों के साथ यम मार्ग को पार कर जाता है ॥३॥ उस तीर्थ में वैशाखी के दिन पीली सरसों के द्वारा प्राचीनेश्वर नामक शिवलिङ्ग की जो पूजा करता है, वह अपने को पितरों को पितामहों को भी तार देता है । वहीं पर कपोतने अपने शरीर को अतिथि को प्रसन्नता पूर्वक प्रदान कर दिया ॥४-५॥ उसकी स्तुति सभी देवताओं ने की और वह विमान से स्वर्ग लोक चला गया । वहाँ पर स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्या को भी विनष्ट कर देता है ॥६॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे प्रभो ! आप यह बतलायें कि कबूतर ने अपना शरीर क्यों दिया ? उसका कारण क्या था ? इस बात को मैं नहीं जानती हूँ ॥७॥ **महादेवजी ने कहा—** हे देवेशि ! इस तीर्थ में अत्यन्त महान बटवृक्ष था उसकी अनन्त शाखाएँ में पृथिवी पर फैली थीं ॥८॥ वहाँ अनेक पक्षी निवास करते थे । हे सुरेश्वरि ! कबूतर ने यहाँ पर अपना गृह बना लिया ॥९॥ सदा विष्णु भगवान् के भक्त तथा पक्षियों के स्वामी वहीं पर निवास करते थे वे शाखा पर अपने परिवार के साथ रहते थे ॥१०॥ हे देवि ! एक दिन द्वादशी तिथि को वहाँ पर बाज नामक पक्षी अतिथि के रूप में आया ॥११॥ उसके कहा हे कपोत मुझे तुम अपने शरीर का मांस दो अन्यथा मैं तुमको शाप दे दूँगा॥१२॥ आज द्वादशी के दिन मैं भूख से व्याकुल हूँ और आया हूँ । अतएव हे प्रभो ! आप भूखे को

तेन दानप्रभावेण तीर्थं जातं सुरोत्तमे । कापोतकं महत्तीर्थं पावनानां च पावनम् ॥१५॥
अत्र तीर्थे नरः स्नात्व कृत्वा वै शिवपूजनम् ।
ददाति चातिथिभ्यश्च मिष्टमन्नं सुरोत्तमे ॥१६॥
इह लोके सुखं भुक्तवा याति विष्णोः परं पदम् ।
दत्त्वा वै स्वशरीरं तु कपोतोऽथ महात्मने ॥१७॥
स गतो वैष्णवं तत्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ । अतो गत्वा तु भो देवि अतिथिं पूजयेत्सदा॥
पूजिते चातिथौ तत्र सर्वं च लभते ध्रुवम् ॥१८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कापोततीर्थं नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६२॥

एक सौ तिरसठवाँ अध्याय

महादेव उवाच

तीर्थानां प्रवरंतीर्थं महापातकनाशनम्। गोतीर्थमिति ख्यातं काश्यपह्रदसमीपतः ॥१॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।
गोतीर्थे तु ततः स्नात्वा भ्रश्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥२॥

मांस देना चाहिए ॥१३॥ वाज की उस वाणी को सुनकर महान् वैष्णाव कबूत्तर ने हे देवि ! अपना शरीर उसको समर्पित कर दिया ॥१४॥ हे सुरोत्तमे ! उस दान के प्रभाव से वहाँ तीर्थ हो गया । वह कपोत नामक तीर्थ सर्वाधिक पवित्र और महान् है ॥१५॥ इस तीर्थ में स्नान करके तथा शिवजी की पूजा करके अतिथियों को मीठा भोजन करना चाहिए ॥१६॥ ऐसा करने वाला इस लोक में सुख भोगकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । वह कबूतर अपना शरीर दान करके विष्णुलोक में जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं तब तक रहने के लिए चला गया । अतएव हे देवि ! वहाँ जाकर सदा अतिथि की पूजा करनी चाहिए॥१७-१८॥ वहाँ पर अतिथि की पूजा करने वाला मनुष्य अपनी सारी अभिप्रेत वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है ॥१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत कपोत तीर्थ वर्णन नामक एक सौ बासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६२।।

गोतीर्थ का माहात्म्य

महादेवजी ने कहा— कश्यप ह्रद के सन्निकट महापातक को विनष्ट करने वाला और तीर्थों में श्रेष्ठ गो तीर्थ है । ब्रह्म हत्या इत्यादि जो कोई भी पाप है वे सबके सब गोतीर्थ में स्नान करने से विनष्ट हो

गावः कृष्णां तनुं प्राप्य पूर्वपातकयोगतः । यत्र तीर्थे ततः स्नात्वा शुक्लत्वं पुनरागताः ॥३॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दत्त्वा गोभ्यो गवाह्निकम् ।
गोमातॄणां प्रसादेन मातॄणामनृणी भवेत् ॥४॥
गोतीर्थे तु नरो गत्वा स्नात्वा गां तु पयस्विनीम् ।
ददाति विप्रमुख्येभ्यः स याति ब्रह्मणः पदम् ॥५॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशतसाहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे साभ्रमतीमाहात्म्ये गोतीर्थं नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३॥

एक सौ चौसठवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अत्र तीर्थं महच्चान्यत्कश्यपाख्यं सुरेश्वरि ! ।
यत्र ह्रदो महानासीन्नगदेवविनिर्मितः ॥१॥
तत्र कुशीश्वरो नाम देवो यत्र विराजते । यत्र कुण्डं तथा रम्यं कश्यपेन विनिर्मितम् ॥२॥
तत्र स्नात्वा तु भो देवि न नरो निरयं व्रजेत् ।
अग्निहोत्रकरा विप्रा नित्यं वेदपरायणाः ॥३॥
निवसन्ति महादेवि काश्यपायां बहुश्रुताः । यथा काशी तथा चेयं नगरी ऋषिनिर्मिता ॥४॥
काश्यपेन यतश्चात्र तप्तं बहुतरं तपः । गङ्गा वै तपसा येन आनीतेशजटोद्भवा ॥५॥

जाते हैं ॥१-२॥ पूर्व पातक के कारण काली गौ का शरीर प्राप्त करके इस तीर्थ में स्नान करके श्वेत हो गयी ॥३॥ उस तीर्थ में स्नान करके तथा गौ को दिनभर का भोजन प्रदान करके गो माताओं की कृपा से मनुष्य मातृऋण से मुक्त हो जाता है ॥४॥ मनुष्य गोतीर्थ में स्नान करके तथा दुधारू गौ का दान ब्राह्मण को देकर ब्रह्माजी के लोक में जाता है ॥५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत गो तीर्थ वर्णन नामक एक सौ तिरसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६३।।

कश्यप ह्रद का माहात्म्य

महादेवजी ने कहा— हे सुरेश्वर ! यहाँ पर कश्यप नामक महान् तीर्थ है । वहाँ पर नागदेव के द्वारा निर्मित ह्रद था ॥१॥ वहाँ पर कुशेश्वर विराजमान हैं, वहीं पर महर्षि कश्यप ने अत्यन्त मनोहर कुण्ड बनाया ॥२॥ हे देवि ! वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य नरक नहीं जाता है । वहाँ पर सदा अग्निहोत्र करने वाले तथा वेदपाठी ब्राह्मण निवास करते हैं । हे देवि ! वे कश्यप में बहुश्रुत ब्राह्मण रहते हैं । काशी के ही समान यह नगरी ऋषि निर्मित है ॥३-४॥ यहाँ पर कश्यप ने बहुत अधिक तपस्या की और वे ही

सा गङ्गा काश्यपी देवि ! महापातकनाशिनी ।
यस्या दर्शनमात्रेण मुच्यन्ते दुष्टकिल्बिषात् ।।६।।

गोदानं च प्रशंसन्ति रथदानं तथैव च । श्राद्धं कृत्वा तु तत्रैव दानं देयं प्रयत्नतः ।।७।।
कलौ युगे तथा घोरे महापातकनाशनम् । कश्यपाख्यं समं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।।८।।
यत्र वै देवताः सर्वा ऋषयो वीतकल्मषाः । नित्यं तिष्ठन्ति देवेशि तीर्थराजप्रसादतः ।।९।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे साभ्रमतीमाहात्म्ये काश्यपह्रदमाहात्म्यं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१६४।।

एक सौ पैंसठवाँ अध्याय

महादेव उवाच

भूतालयं ततो गच्छेत्तीर्थं पापहरं परम् । भूतालयो वटो यत्र यत्र प्राची तु चन्दना ।।१।।
भूतालयेनरःस्नात्वा कृष्णाष्टभ्यामुपोषितः । यस्तु कृष्णतिलान्दद्यान्न स प्रेतोऽभिजायते ।।२।।
पितॄनुदिश्य यो दद्यादुदकुम्भं तिलैः सह । पूर्वजान्प्रेतभावात्स मोचयेन्नाऽत्र संशयः ।।३।।

यस्य नाम्ना नरः स्नाति प्रेतत्वात्स विमुच्यते ।
चतुर्दश्यामथाऽष्टम्यांप्रभाते विमलोदके ।।४।।

शङ्करजी की जटा से साभ्रमती गङ्गा को लाये थे ।।५।। वह कश्यपी गङ्गा महापापों को विनष्ट करने वाली हैं । उसका दर्शन करने मात्र से दुष्ट मनुष्य भी पाप से मुक्त हो जाते हैं । श्राद्ध करके वहाँ दान करना चाहिए ।।६-७।। कश्यप नामक तीर्थ के समान कोई भी तीर्थ न हुआ और न होगा । यह कलियुग में महापापों को विनष्ट करने वाला होता है ।।८।। हे देवि ! वहाँ पर उस तीर्थराज की कृपा से सदा सभी देवता और ऋषिगण निवास करते हैं ।।९।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत साभ्रमती माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में काश्यप ह्रद का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ चौसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६४।।

भूतेश्वर तीर्थ और वैद्यनाथ माहात्म्य

महादेवजी ने कहा— वहाँ से परम पाप विनाशक भूतेश्वर नामक तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ पर भूतालय नामक वट वृक्ष है । प्राची चन्द्रमा नदी है ।।१।। कृष्णाष्टमी के दिन भूतालय में स्नान करके उपवास करें । जो व्यक्ति वहाँ पर काली तिल का दान करता है वह प्रेत नहीं होता है ।।२।। जो व्यक्ति पितरों की तृप्ति के लिए जल भरे घड़े और तिल का दान करता है । वह अपने पूर्वजों को प्रेत योनि से मुक्त कर देता है ।।२-३।। चतुर्दशी अथवा अष्टमी को प्रातःकाल स्वच्छ जल में मनुष्य जिसके नाम से

तीर्थे भूतालये स्नात्वा दृष्ट्वा भूतालयं वटम् ।
भूतेश्वरप्रसादेन भूतेभ्यो न लभेद्भयम् ॥५॥

इतिश्रीभूतेश्वरतीर्थम्

अतस्तीर्थात्परं तीर्थं घटेश्वरमितिस्मृतम्। यत्र स्नात्वा तु तं दृष्ट्वा मुक्तिभागी भवेद्ध्रुवम् ॥६॥
यत्र साभ्रमतीतीर्थं घटो वै परमो महान् । दृष्ट्वा चैव महादेवं मुच्यते नाऽत्रसंशयः ॥७॥
तत्र गत्वा विशेषेण प्लक्षपूजां करोतियः । मनसाऽभीप्सितान्कामाँल्लभते मानवो भुवि॥८॥

इतिघटेश्वरतीर्थम्

ततो गच्छेन्नरो भक्तयावैद्यनाथेति विश्रुतम्। तत्र स्नात्वा नरस्तीर्थे शिवपूजनतत्परः॥९॥
पितॄन्संतर्प्य विधिना सर्वयज्ञफलं लभेत्। विजयो देवसंभूतः सर्वपापक्षयङ्करः ॥
यं दृष्ट्वा विविधान्कामान्प्राप्नुयुस्ते नराः सदा ॥१०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
वैद्यनाथतीर्थमाहात्म्यं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥

स्नान करता है । वह प्रेतयोनि से मुक्त हो जाता है ॥४॥ भूतालय तीर्थ में स्नान करके तथा भूतालय वट का जो दर्शन करता है उसे भूतेश्वर की कृपा से भूतों का भय नहीं होता है ॥५॥ **इस तरह भूतेश्वर तीर्थ का वर्णन पूरा हुआ ।** इसके बाद अत्यन्त श्रेष्ठ तीर्थ घटेश्वर को बतलाया गया है । वहाँ पर स्नान करके तथा उसका दर्शन करके मनुष्य मुक्ति का पात्र हो जाता है ॥६॥ वहाँ साभ्रमती तीर्थ और महान् वट है वहाँ पर महादेवजी का दर्शन करके मनुष्य मुक्त हो जाता है । इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥७॥ वहाँ पर जाकर जो विशेष रूप से प्लक्ष (पाकड़ वृक्ष) की पूजा करता है वह मनुष्य पृथिवी पर अपने समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है ॥८॥ **इस तरह बटेश्वर तीर्थ का वर्णन समाप्त हुआ ।** वहाँ से मनुष्य विख्यात वैद्यनाथ तीर्थ में जाय वहाँ पर स्नान करके जो मनुष्य शिवजी की पूजा करता है ॥९॥ वह अपने पितरों का तर्पण विधिपूर्वक करके सभी यज्ञों का फल प्राप्त करता है । वहाँ सभी पापों को विनष्ट करने वाला देवताओं का जो हुआ विजय उस स्थान का दर्शन करके मनुष्य सदा अपनी समस्त कामनाओं को पूर्ण कर लेता है ॥१०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत वैद्यनाथ तीर्थ माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ पैंसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६५॥

एक सौ छाछठवाँ अध्याय

महादेव उवाच

वैद्यनाथात्परं तीर्थं सर्वसिद्धिप्रदायकम्। तीर्थानामुत्तमं तीर्थं देवतीर्थमनुश्रुतम्।।१।।
विभीषणाद्राक्षसेन्द्राद्गृहीत्वा करमोजसा। प्रारब्धो धर्मपुत्रेण राजसूयो महाक्रतुः।।२।।
दिग्जये दक्षिणे जाते नकुलेन हि पाण्डुना। साभ्रमत्यास्तटे देवि पाण्डुरार्येति विश्रुता।।३।।

स्थापिता परया भक्तया भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी।
स्नातः साभ्रमतीतोये पाण्डुरार्यां नमस्य च।।४।।
अणिमाद्याः सिद्धयोऽष्टौ तथा मेधां महीससीम्।
नरः प्राप्नोति वै नूनं नाऽत्र कार्या विचारणा।।५।।

पाण्डुरार्यां नमस्कृत्य शुद्धभावेन मानवः। संवत्सरकृता पूजा ज्ञातव्या तत्त्वबुद्धिभिः।।६।।
तत्र तीर्थे तनुं त्यक्तवा पाण्डुरार्यासमीपतः। कैलासशिखरं प्राप्य चण्डेश्वरगणो भवेत्।।७।।
पुरा हनूमता तत्र तपस्तप्तं सुदुष्करम्। समुद्रप्लवने शक्तिर्जाता तीर्थप्रभावतः।।८।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
पाण्डुरार्यातीर्थं नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६६।।

पाण्डुरार्या तीर्थ का माहात्म्य

महादेवजी ने कहा— वैद्यनाथ के पश्चात् सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला सभी तीर्थों में श्रेष्ठ देवतीर्थ को सुना गया है ।।१।। राक्षसेन्द्र विभीषण से अपने पराक्रम के द्वारा कर लेकर, धर्मराज के पुत्र ने राजसूय नामक महायाग प्रारम्भ किया ।।२।। नकुल नामक पाण्डव ने दक्षिणा दिया पर विजय प्राप्त करके साभ्रमती नदी के तट पर पाण्डुरार्या नामक तीर्थ की स्थापना की ।।३।। उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले इस तीर्थ की स्थापना की । साभ्रमती में स्नान करके और पाण्डुरार्या को नमस्कार करके ।।४।। अणिमा आदि सिद्धियों तथा महती मेधा मनुष्य निश्चित रूप से प्राप्त कर लेता है ।।५।। शुद्ध भाव से पाण्डुरार्या को नमस्कार करके उसको जानना चाहिए कि मैंने संवत्सर की पूजा कर ली ।।६।। उस तीर्थ में पाण्डुरार्या के सन्निकट शरीर को त्याग कर मनुष्य मनोहर कैलास पर्वत पर जाकर चण्डेश्वर नामक गण हो जाता है ।।७।। प्राचीन काल में हनुमानजी ने वहाँ पर अत्यन्त कठिन तपस्या करके समुद्र लाँघ जाने की शक्ति को प्राप्त किए थे ।।८।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवदान्तर्गत पाण्डुरार्या तीर्थ वर्णन नामक एक सौ छियासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६६।।

एक सौ सड़सठवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अत्र तीर्थात्परं तीर्थं चण्डेश इति विश्रुतम्। यत्र चण्डेश्वरो देवो नित्यं तिष्ठति भूतिदः ॥१॥
यं दृष्ट्वा मुच्यते पापादज्ञानादथवा कृतात्। सर्वाभिर्देवताभिश्च मिलित्वा नगरं कृतम् ॥
चण्डेश इति विख्यातं नाम्ना चैव महेश्वरि ! ॥२॥

इति चण्डेशतीर्थम्

अत्र तीर्थात्परं तीर्थं गाणपत्यं ततो भुवि। साभ्रमत्यां समीपे तु विख्यातं देवि निर्मितम्॥३॥
तत्र स्नात्वा नरो देवि मुच्यते नाऽत्रसंशयः ।
मन्ये साभ्रमतीतीरे जनानां हितकाम्यया ॥४॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरान्तानि यानि च ।
तानि सर्वाणि सन्त्यज्य तीर्थे वै परमाद्भुते ॥५॥
श्राद्धं करोतियस्तत्र रुद्रभक्त्या जितेन्द्रियः । फलं प्राप्नोति शुद्धात्मा सर्वयज्ञसमुद्भवम्॥६॥
पितॄनुदिश्य यत्किंचिद्गणतीर्थे प्रदीयते । तत्सर्वं जायते क्षिप्रं गणनाथप्रसादतः ॥७॥
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा वृषं विप्राय दापयेत् ।
सर्वलोकानतिक्रम्य स गच्छेत्परमां गतिम् ॥८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे गणतीर्थं नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६७॥

चण्डेश तीर्थ और गणेश तीर्थ का माहात्म्य

महादेवजी ने कहा— इस तीर्थ के पश्चात् विख्यात चण्डेश तीर्थ है । वहाँ पर चण्डेश्वर नामक महादेव सदैव विराजमान रहते हैं ॥१॥ इनका दर्शन करके मनुष्य ज्ञात तथा अज्ञात पापों से मुक्त हो जाता है । सभी देवताओं ने मिलकर यहाँ नगर का निर्माण किया ॥२॥ हे महेश्वर ! उसी नगर का नाम चण्डेश हो गया । **इस तरह चण्डेश तीर्थ का वर्णन समाप्त हुआ** । इस तीर्थ के पश्चात् गाणपत्य तीर्थ है । हे देवि ! इस विख्यात तीर्थ का निर्माण साभ्रमती के समीप हुआ है ॥३॥ हे देवि ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य मुक्त हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है । मेरे मतानुसार साभ्रमती के तीर पर इसका निर्माण लोगों के कल्याण के लिए हुआ है ॥४॥ सागर पर्यन्त जितने भी तीर्थ हैं, उन सबों को छोड़कर इस अत्यन्त अद्भुत तीर्थ में रुद्र की भक्ति से प्रेरित होकर जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर श्राद्ध करता है, वह शुद्ध आत्मा वाला मनुष्य सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है ॥५-६॥ पितरों की तृप्ति के लिए गण तीर्थ में जो कुछ भी दान किया जाता है वह सब कुछ गणनाथ की कृपा से हो जाता है ॥७॥ उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य ब्राह्मण को बैल दान दे । वह सभी लोकों को पार करके परम गति को प्राप्त करता है ॥८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवदान्तर्गत गणतीर्थ और चण्डेश तीर्थ वर्णन नामक एक सौ सड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६७।।

एक सौ अड़सठवाँ अध्याय

महादेव उवाच

ततो गच्छेन्महादेवि ! वार्त्रघ्न्या गिरिकन्यया ।
शक्रश्चैव तया साध्व्या सङ्गमं यत्र लब्धवान् ॥१॥

तत्र स्नानं प्रकुर्वन्ति नरा नियतमानसाः। दशानामश्वमेधानां यत्फलं स्नानकृल्लभेत् ॥२॥

तत्र यः कुरुते श्राद्धं पिण्डान्वै तिलचूर्णजान् ।
पुनाति पुरुषो वंशान्सप्तसप्तपरावरान् ॥३॥
सम्पूज्य विधिवत्स्नात्वा सङ्गमे गणनायकम् ।
न विघ्नैरभिभूयेत लक्ष्म्यानैवविहीयते ॥४॥

पार्वत्युवाच

कस्मिन्कार्यसमारम्भे समायातः पुरन्दरः । स्वर्गलोकादिमं लोकमेतदाख्यातुमर्हसि ॥५॥
वार्त्रघ्नी च नदी केन निरुक्तेन निगद्यते । पुरन्दरपुरं देवं ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥
सम्भावयति योऽजस्रं मम तत्संगमं वद ॥६॥

महादेव उवाच

अस्मिंश्चैव तु भूलोके प्रश्नोऽयं समभूत्पुरा ।
युधिष्ठिरेति विख्यातो राजा वै धार्मिको महान् ॥७॥

पृष्टवान्स तु भीष्माय धर्मिणे ज्ञानरूपिणे। तेनोक्तं यत्तु तद्देवि ! प्रवक्ष्यामि तवाऽग्रतः॥८॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। वृत्रवासवयोर्युद्धमभीवल्लोमहर्षणम् ॥९॥

भीष्म युधिष्ठिर संवदान्तर्गत भूतेश्वर की कृपा से इन्द्र द्वारा वृत्रासुर के पराजय का वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवि ! वहाँ से वृत्रासुर कों विनष्ट करने वाली वृत्रघ्नी नदी और साध्वी गिरिकन्या नदी का सङ्गम है । वहीं पर इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था ॥१॥ निश्चित मन वाले मनुष्य वहाँ पर स्नान करते हैं । वहाँ पर स्नान करने से दश अश्वमेध यागों को करने का फल प्राप्त होता है ॥२॥ वहाँ जो मनुष्य तिल के चूर्ण से श्राद्ध में पिण्डदान करते हैं वह अपने सात पीढ़ी बाद के और सात पीढ़ी पहले के पूर्वजों को पवित्र कर देता है ॥३॥ सङ्गम में विधि पूर्वक स्नान करके तथा गण नायक की पूजा करके मनुष्य न तो विघ्नों से अभिभूत होता है और न तो वह कभी भी लक्ष्मी से बिहीन होता है ॥४॥ **पार्वतीजी ने पूछा—** किस कार्य को करने के लिए वहाँ पर इन्द्र स्वर्गलोक से भी श्रेष्ठ इस लोक को प्रख्यात करने आये थे ॥५॥ वार्त्रघ्नी नदी किस प्रकार से कही जाती है । उसकी निरुक्ति क्या है इन्द्र का नगर तो देवतामय है वेदघोष से ध्वनित रहता है । जो गिरिकन्या से सदा सङ्गम करती है उसको आप बतलायें ॥६॥ **महादेवजी ने कहा—** इस भूलोक में प्राचीन काल में यह प्रश्न उठा था । युधिष्ठिर नामक विख्यात तथा महान् राजा थे ॥७॥ उन्होंने धार्मिक तथा ज्ञान स्वरूप भीष्मजी से इस प्रश्न को पूछा था। भीष्मजी ने जो उत्तर दिया हे देवि ! उस उत्तर को तुम्हारे समक्ष कहता हूँ ॥८॥ वृत्रासुर और इन्द्र के बीच ग्यारह हजार वर्ष तक भयङ्कर युद्ध होता रहा ॥९॥ वृत्रासुर ने इन्द्र को अन्त में परास्त कर दिया । इन्द्र

ततः पराजितः शक्रः कृत्वा वृत्रेण सम्विधम् ।
अद्रोहे स रणं त्यत्तवा जगामशरणं मम ॥१०॥
वार्त्रघ्न्यासङ्गमे पुण्ये तोषयामास शङ्करम्। अथान्तरिक्षेऽहं देवि दर्शनं दत्तवांस्तदा ॥११॥
मम गात्रात्तु यद्भस्म पतितं काश्यपीतटे। भस्मगात्रेति तत्पुण्यं लिङ्गं देवि निर्मितम्॥१२॥
भूतेश्वरं भस्मागात्रं ब्रह्मणा सम्प्रतिष्ठितम्। तस्य वै दर्शनादेव ब्रह्महत्यालयं व्रजेत् ॥१३॥
यो मुच्यते सर्वपापेभ्यः श्राद्धं कृत्वा युगादिषु ।
तदहं सुप्रसन्नोऽभूदिन्द्रायसुमहात्मने ॥१४॥
यद्यत्त्वं वाञ्छसे देव तत्सर्वं हि ददामि ते। अनेन वज्रयोगेन शीघ्रं वृत्रं हनिष्यसि ॥१५॥

शक्र उवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन दितिजं च दुरासदम्। वज्रेण निहनिष्यामि पश्यस्ते सुरोत्तम् !॥१६॥

महादेव उवाच

एवमुत्तवा तदा इन्द्रो गतवांश्चासुरं प्रति। तदा दुन्दुभयो नेदुर्देवसैन्ये विशेषतः ॥१७॥
मृदङ्गडिण्डिमाश्चैव भेरीतूर्याण्यनेकशः। असुराणां च सर्वेषां वृत्तिलोभो महानभूत् ॥१८॥
वलवान्मघवा चैव क्षणेन समजायत। तमाविष्टं ततो ज्ञात्वा ऋषयः पन्नगास्तथा ॥१९॥
स्तुवन्ति शक्रमीशानंस्तुत्वाजयजयेति च। गच्छतस्तस्य शक्रस्य युद्धकामस्यसन्निधौ॥२०॥
ऋषिभिः स्तूयमानस्य रूपमासीत्सुदुर्भरम् । वृत्रस्य सहसा देवि ! तदा सङ्ग्राममूर्धनि॥२१॥
अभवन्यानि लिङ्गानि शरीरे तानि मे शृगु। ज्वलदास्योऽभवद्धोरोवैवर्ण्यमभवत्परम् ॥२२॥
गात्रकम्पश्च सुमहाञ्छ्वासः सोष्मा व्यजायत ।
रोमहर्षश्च तीव्रोऽभूच्छ्वासश्चैव महानभूत् ॥२३॥

ने युद्ध करना छोड़कर मेरी शरणागति की ॥१०॥ उसने वार्त्रघ्नी नदी के सङ्गम पर शङ्करजी को प्रसन्न किया। उसके पश्चात् मैंने इन्द्र को अन्तरिक्ष में दर्शन दिया ॥११॥ मेरे शरीर से भस्म काश्यपी नदी के तट पर गिरा हे देवि ! उससे भस्मलिङ्ग नामक लिङ्ग हो गया ॥१२॥ ब्रह्माजी ने भस्म गात्र भूतेश्वर की प्रतिष्ठा कर दी । उसका दर्शन कर लेने मात्र से ब्रह्महत्या विनष्ट हो जाती है ॥१३॥ वहाँ युगादि तिथियों में श्राद्ध करके मनुष्य मुक्त हो जाता है । उसके कारण मैं महात्मा इन्द्र पर प्रसन्न हो गया ॥१४॥ मैंने कहा इन्द्र तुम जो कुछ भी चाहो वह मैं तुम्हें दे रहा हूँ । इस वज्र के द्वारा तुम वृत्र का वधकर सकोगे । **इन्द्र ने कहा—** हे भगवन् ! हे सुरोत्तम ! मैं आपकी कृपा से उस भयङ्कर असुर को आपके सामने ही मारूँगा॥१५-१६॥ **महादेवजी ने कहा—** यह कहकर इन्द्र असुर के समक्ष गये । उस समय देवताओं की सेना में विशेष रूप से दुन्दुभियाँ बजीं ॥१७॥ और मृदङ्ग, डिंडिम, भेरी और तूरियाँ भी बजीं । सभी असुरों को वृत्ति का लोभ हो गया ॥१८॥ बलवान् इन्द्र क्षणभर में वृत्र के पास पहुँचे । इन्द्र को आविष्ट जानकर सभी ऋषि और सर्पगण ॥१९॥ शक्र और शङ्करजी का जयजयकार करके उनकी स्तुति करने लगे। युद्ध करने की इच्छा से जाते हुए इन्द्र के पास ऋषिगण भी स्तुति कर रहे थे । उस समय इन्द्र का रूप भयङ्कर हो गया था हे देवि ! युद्ध में वृत्रासुर के शरीर में जो अचानक चिह्न उत्पन्न हुए उसे मैं कह रहा हूँ तुम सुनो । उसका मुँह जलने लगा उसमें दीनता छा गयी ॥२०-२२॥ उसका शरीर रोमाञ्चित हो गया

निष्पपात महाघोरा उल्का:पार्श्वप्रपेदिरे। गृध्रा वटा:श्येनकङ्कावाचोऽमुञ्चन्सुदारुणा: ॥२४॥
वृत्रस्योपरि ते सर्वे चक्रवत्परिबभ्रमु:। तत: स गजमास्थाय इन्द्रस्तत्र समागत: ॥२५॥
वज्रोद्योतकरस्तत्र शक्रस्तं दैत्यमासदत्। अमानुषमथो नादं स मुमोच सुरेश्वर: ॥२६॥
वृत्रासुरस्य यतत: शक्रो वज्रमपातयत्। सवज्र: सुमहातेजा: कालाग्निसदृशो महान् ॥
समुद्रस्य तटे वृत्रं शक्रो दैत्यमपातयत् ॥२७॥
ततो नाद: समभवत्पुनरेव समन्तत: ॥२८॥
वृत्रं चिनिहतं दृष्ट्वा सर्वदेवभयङ्करम्। पुष्पवृष्टिस्तु महती इन्द्रमूर्ध्नि पपात ह॥२९॥
वृत्रं हत्वा स मघवान्दानवेशं भयङ्करम्। स्तूयमानोऽमरै: सार्द्धं देवदानीं तमाविशत्॥३०॥
अथ वृत्रशरीरात्तु निर्गतं तेज उत्तमम्। ब्रह्महत्या महाघोरा रौद्रा लोकभयङ्करी॥३१॥
करालवदना सा च विकृता कृष्णपिङ्गला। कपालमालिनी चैव शुकृशा नगनन्दिनि !॥३२॥
रुधिराक्ता च पापिष्ठामीनगन्धाऽतिभीषणा। सा निष्क्रम्यमहादेवि तादृग्रूपाभयावहा॥३३॥
इन्द्रमन्वेषयामास तदा वै सुरसत्तमे !। निर्धावती तत: सा त दृष्ट्वा शक्रं महौजसम्॥३४॥
कण्ठे जग्राह देवेन्द्रं सुलग्ना साऽभवत्तदा। स च तस्मिन्समुदभ्रान्तो ब्रह्महत्याकृतेभये ॥३५॥

निलीय विसमध्येऽसौ स्थितो वर्षगणान्बहून्।
तया गृहीतो भो देवि ! निश्चेष्ट: समपद्यत ॥३६॥
तस्या व्यपोहने शक्र: प्रयत्नं च चकार ह।
न शक्तोऽभून्महादेविब्रह्महहत्यांव्यपोहितुम् ॥३७॥

और तेजी से श्वास चलने लगा ॥२३॥ उसके पास ही अत्यन्त भयङ्कर उल्कापात हुआ। गृध्र, वट, बाज, और कङ्क पक्षी भयङ्कर ध्वनि करने लगे ॥२४॥ वे सब वृत्र के ऊपर चक्र के समान मड़राने लगे। उस समय इन्द्र भी हाथी पर चढ़कर वहाँ आ गये ॥२५॥ चमकते हुए वज्र को लेकर इन्द्र उस दैत्य के पास पहुँच गये। उसके पश्चात् इन्द्र ने वहाँ पर भयङ्कर गर्जना की ॥२६॥ वे प्रयास पूर्वक वृत्रासुर पर वज्र का प्रहार किए। वह महान् वज्र कालाग्नि के समान तेज: सम्पन्न था ॥२७॥ इन्द्र ने समुद्र के तट पर वृत्रासुर को मार दिया उस समय चारो ओर ध्वनि होने लगी ॥२८॥ सभी देवताओं द्वारा वृत्रासुर को मरा हुआ देखकर इन्द्र के शिर पर अत्यधिक पुष्पों की वृष्टि हुयी ॥२९॥ भयङ्कर दानवों के स्वामी वृत्रासुर को मारकर देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए इन्द्र उस देवदानी में प्रवेश कर गये ॥३०॥ उसके बाद वृत्र के शरीर से उत्तम तेज निकला वह सम्पूर्ण लोकों को भयभीत करने वाली भयङ्कर ब्रह्महत्या थीं ॥३१॥ उसका मुख भयङ्कर था वह विकृत आकार वाली और वह काली तथा पीली थी। कपालों की माला पहनी थी, अत्यन्त कृश थी ॥३२॥ खून से लथपथ, पापिनी थी, उसके शरीर से मछली की दुर्गन्धि आ रही थी और वह भयङ्कर थी। वह निकलकर उस तरह के भयङ्कर रूप वाली ॥३३॥ हे सुरासत्तमे ! इन्द्र को खोजने लगी। दौड़ती हुयी वह महातेजस्वी इन्द्र को देखकर ॥३४॥ उनकी गर्दन पकड़ ली और उनमें लग गयी। आश्चर्यचकित इन्द्र, ब्रह्महत्या के द्वारा भयभीत होकर कमल नाल में प्रवेश करके अनेक वर्षो तक पड़े रहे। हे देवि ! ब्रह्महत्या के द्वारा पकड़ लिए जाने के कारण वे चेष्टा विहीन हो गये ॥३५-३६॥

तया गृहीतमात्रस्तु देवेन्द्रो मेषरूपधृत्। पितामहमुपागम्य शिरसा प्रत्यपूजयत् ॥३८॥
ज्ञात्वा गृहीतं शक्रं तु द्विजप्रवरहत्यया। ब्रह्मा सञ्चिन्तयामास तदा वै सुरसत्तमे ॥३९॥
सा चिन्त्यमाना ब्रह्माणमुपगम्याऽब्रवीद्वचः ।
प्राप्ताऽस्मि भगवन्देव ! त्वत्सकाशं हि मानद ! ॥४०॥
यत्कर्त्तव्यं मया देव तद्भवान्वक्तुमर्हति। तामुवाच महाभागे ब्रह्महत्यां पितामहः ॥४१॥
स्वरेणमधुरेणाऽथ संक्षेपेण यथातथम्। मुच्यतां देवराजोऽयं मत्प्रियं ० कुरु भामिनि !॥
ब्रूहि किं ते करोम्यद्य कामं त्वं किमिहेच्छसि ॥४२॥

हत्योवाच

शक्रादपगमिष्यामि वचनात्ते सुरोत्तम !। देवदेव नमस्तेऽस्तु निवासं च ददस्व मे ॥
त्वया कृतेयं मर्यादा लोकसंरक्षणार्थिना ॥४३॥

महादेव उवाच

तथेति तां प्रतिज्ञाय हत्यां चाऽपि पितामहः ।
उपायमथः शक्रस्य ब्रह्महत्यापनोदने ॥४४॥
ततोवह्निं समाहूय ब्रह्मा वचनमब्रवीत्। शक्रहत्याचतुर्थांशं जातवेदो गृहाण भोः ॥४५॥

अग्निरुवाच

मम मोक्षस्य को हेतुर्ब्रह्महत्याकृते प्रभो !। एतदिच्छामि विज्ञातुंतत्त्वतो लोकपूजित !॥४६॥

ब्रह्मोवाच

यस्त्वां ज्वलन्तमासाद्य न होष्यति नरः क्वचित् ।
बीजौषधितिलानग्रे फलमूलसमित्कुशान् ॥४७॥

उसको दूर करने का प्रयास इन्द्र ने की किन्तु वे उसे दूर नहीं कर सके ॥३७॥ उसके द्वारा पकड़े जाने के कारण मेष (बकरे) का रूप धारण करने वाले इन्द्र ब्रह्माजी के पास आकर उनको प्रणाम किए और उनकी पूजा किए ॥३८॥ वृत्रासुर की ब्रह्महत्या के द्वारा पकड़े गये इन्द्र को जानकर हे पार्वति ! ब्रह्माजी ने सोचा ॥३९॥ सोची जाती हुयी ब्रह्माजी के पास आकर कहीं । हे देव ! हे मानद ! मैं आपके पास आयी हूँ ॥४०॥ हे देव ! मुझे क्या करना चाहिए यह आप बतलायें । उस ब्रह्म हत्या को ब्रह्माजी ने॥४१॥ मधुर स्वर से कहा देखो इन्द्र मेरे प्रिय है, तुम इनको छोड़कर मेरा प्रिय कार्य करो । ब्रह्महत्या ने कहा बतलाएँ मैं तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य करूँ ?॥४२॥ **ब्रह्महत्या ने कहा—** हे सरोत्तम ! मैं आपकी बात मानकर इन्द्र को छोड़ दूँगीं । हे देव आप मेरे लिए निवास स्थान बतलायें । संसार की रक्षा करने वाले आपने यह मर्यादा की है ॥४३॥ **महादेवजी ने कहा—** ब्रह्माजी ने ब्रह्महत्या से कहा ठीक है इन्द्र की ब्रह्मा को दूर करने का उपाय भी उन्होंने बतलाया । उसके पश्चात् अग्नि को बुलाकर ब्रह्माजी ने कहा इन्द्र की ब्रह्महत्या अग्नि के चतुर्थांश को अग्नि स्वीकार करें ॥४४-४५॥ **अग्नि ने कहा—** मुझे ब्रह्महत्या को दूर करने का कौन सा साधन है ? हे लोकपूजित मैं उसे जानना चाहता हूँ ॥४६॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** जो मनुष्य प्रदीप्त अग्नि को जलती हुयी देखकर औषधि का बीज तथा तिल का फल, मूल,

तदैव त्यक्ष्यति त्वाच्च तत्रैव च निवत्स्यति ।
ब्रह्महत्याहव्यवाह व्येतु ते मनसो ज्वरः ॥४८॥
ततः स परिजग्राह तद्वचो हव्यकव्यभुक्। पितामहश्च भगवांस्तथा तदलभत्प्रियम्॥४९॥
ततो वृक्षौषधितृणान्याहूय स पितामहः । इममर्थं महाभागे वक्तुं समुपचक्रमे ॥५०॥
ततो वृक्षौषधितृणैस्तथैवोक्तं यथातथत्। व्यथितान्यग्निवद्देवि ब्रह्माणं वाक्यमब्रुवन्॥५१॥
अस्माकं ब्रह्महत्यायाः कथयाऽन्तं पितामह ! ।
स्वभावनिहिता तस्मान्नपुनर्हन्तुमर्हसि ॥५२॥
वयमग्निं तथा शीतं वर्षं च पवनेरितम्। सहामः सततं देव ! तथा च्छेदनभेदनम्॥५३॥
ब्रह्मोवाच
अकारणं नरो यस्तु युष्मच्छेदनभेदनम् । करिष्यति महामोहात्तमेषाऽनुप्रयास्यति ॥५४॥
महादेव उवाच
ततो महौषधितृणैरोमित्युक्तं महात्मभिः । ब्रह्माणमपि संपूज्य जग्मुश्चाऽथयथागतम् ॥५५॥
आहूयाप्सरसो देवस्ततो लोकपितामहः । वाचा मधुरया प्राह सान्त्वयन्निव सत्तमे ॥५६॥
इयं वृत्रादनुप्राप्ता ब्रह्महत्या वराङ्गनाः । चतुर्थमस्या भागं च मयोक्तं संप्रतीच्छथ ॥५७॥
अप्सरस ऊचुः
ग्रहणे कृतबुद्धीनां देवेश ! तव शासनात् । सम्मोक्षसमयोऽस्माकं चिन्तनीयः पितामह !॥५८॥
पितामह उवाच
रजस्वलासु नारीषु यो वै मैथुनमाचरेत्। तमेषा यास्यति क्षिप्रं व्येतु वो मनसा ज्वरः ॥५९॥

समिधा और कुश का होम नहीं करेगा ॥४७॥ उसी समय तुमको छोड़कर ब्रह्महत्या वहीं पर निवास करेगी। अतएव अग्नि तुम चिन्तित नहीं होओ ॥४८॥ उस समय हव्य और कव्य को खाने वाले अग्नि ने ब्रह्महत्या को स्वीकार कर लिया । और ब्रह्माजी ने भी उसको विभक्त कर दिया ॥४९॥ उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने वृक्षों, औषधियों (अन्नों) तथा तृणों को बुलाकर वैसे ही कहा । यह सुनकर वे सब भी दुःखी हो गये और उन सबों ने अग्नि के ही समान ब्रह्माजी से कहा ॥५०-५१॥ हे पितामह ! हमलोगों को भी आप ब्रह्महत्या को दूर करने का उपाय बतलायें । हमलोग तो स्वभाव से ही मारे गये हैं, आप फिर हमलोगों को न मारें ॥५२॥ हमलोग तो अग्नि, शीत, वर्षा तथा वायु के झोकों को वर्दास्त करते हैं तथा छेदन और भेदन को भी वर्दास्त करते हैं ॥५३॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— जो मनुष्य व्यर्थ ही आपलोगों का छेदन और भेदन करेगा उन अज्ञानियों को यह ब्रह्महत्या पकड़ लेगी ॥५४॥ **महादेवजी ने कहा**— उसके बाद महौषधियों और तृणों ने कहा ठीक है । उन सबों ने ब्रह्माजी की पूजा की और वे सब लौट गये॥५५॥ इसके बाद ब्रह्माजी ने अप्सराओं को मधुर वाणी से सान्त्वना देते हुए कहा ॥५६॥ वराङ्गनाओं यह ब्रह्महत्या वृत्रासुर के शरीर से आयी है । इसके चतुर्थ भाग को तुमलोग मेरे कहने से स्वीकार करो॥५७॥ **अप्सराओं ने कहा**— हे देवेश ! हमलोग इसको स्वीकार करने के लिए तैयार हैं । किन्तु इस ब्रह्महत्या से हम छूट कैसे पायेंगी ? इस बात को आप बतलायें ॥५८॥ **पितामह ने कहा**— जो

महादेव उवाच

तथेति हृष्टमनसः प्रत्युक्ता ह्यप्सरोगणाः। स्वानि स्थानानि संप्राप्य रेमिरे शैलजे तदा॥६०॥
ततश्च लोककृद्देवः पुनरेव पितामहः। अपः संचिन्तयामास ततस्तांश्च समागमन्॥६१॥
ताश्च सर्वाः समागम्य ब्रह्माणममितौजसम्। इदमूचुर्वचो देवि प्रणिपत्य पितामहम्॥६२॥
इमाः स्म देव सम्प्राप्ता स्त्वत्सकाशमरिन्दम।
शासनात्तव देवेश समाज्ञापय तत्प्रभो !॥६३॥

ब्रह्मोवाच

इयं वृत्रादनुप्राप्ता पुरुहूतं भयानका। ब्रह्महत्याचतुर्थांशं यूयमस्याः प्रतिच्छथ॥६४॥

आपऊचुः

एवं भवतु लोकेशे यत्त्वं वदसि नः प्रभो !।
मोक्षस्य समयं नस्त्वं संचिन्तायितुमर्हसि॥६५॥
त्वं हि देवेन्द्र सर्वस्य जगतः परमा गतिः।
कोऽन्येभ्यो हि प्रसादोऽपि यः कृच्छ्रान्नः समुद्धरेत्॥६६॥

ब्रह्मोवाच

अल्पामेवमतिंकृत्वा यो नरो बुद्धिमोहितः। श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि युष्मासु प्रतिमोक्षति॥६७॥
तमेव यास्यति क्षिप्रं तत्रैव च निवत्स्यति। ततो वै भवति मोक्षइति सत्यं ब्रवीमि वः॥६८॥

महादेव उवाच

ततो विमुच्य देवेन्द्रं ब्रह्महत्या सुरेश्वरि !। गताऽतिहृष्टो देवेशो ह्यभवद्देवशासनात्॥६९॥
एवं शक्रेण सम्प्राप्ता ब्रह्महत्या पुरा युगे। अस्मिंस्तीर्थे तपस्तप्तवा शुद्धात्मा त्रिदिवं ययौ॥७०॥

मनुष्य रजस्वला नारियों के साथ मैथुन करे यह ब्रह्महत्या उसी को लग जायेगी अतएव तुमलोग निश्चिन्त हो जाओ॥५९॥ **महादेवजी ने कहा—** उसके बाद अप्सराएँ प्रसन्न मन से अपने स्थान पर आकर रमण करने लगीं॥६०॥ उसके पश्चात् संसार की सृष्टि करने वाले, ब्रह्माजी ने जलों का चिन्तन किया और वे सब आ गये॥६१॥ वे सब अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माजी के पास आकर उनको प्रणाम करके कहे हे अरिन्दम! हमलोग आपके सन्निकट आपके आदेश से आये हैं, आप आदेश करें॥६२-६३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** यह भयानक ब्रह्महत्या वृत्रासुर से आकर इन्द्र को लग गयी है, इसके चतुर्थांश को तुमलोग स्वीकार करो॥६४॥ **जलों ने कहा—** हे प्रभो ! हे देवेश ! हमलोग आपकी आज्ञा मानते हैं। किन्तु इस ब्रह्महत्या से हमलोगों की मुक्ति कैसे होगी ?॥६५॥ हे देवेश ! आप तो सम्पूर्ण जगत् के परम गति हैं। दूसरों की कृपा क्या होगी जो कष्ट से हमारा उद्धार करेगा॥६६॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** जो मोहित बुद्धि वाला अज्ञानी मनुष्य जल में थूके, मूत्र और मल त्याग करे उससे तुमलोगों को इससे मुक्ति मिलेगी। यह ब्रह्महत्या शीघ्र ही उसके पास चली जायेगी और तुमलोग ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाओगे यह मैं सत्य कह रहा हूँ। **महादेवजी ने कहा—** हे सुरेश्वरि ! उसके बाद ब्रह्महत्या ने इन्द्र को छोड़ दिया ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त कर इन्द्र भी प्रसन्नता पूर्वक चले गये॥६७-६८॥ इस तरह इन्द्र ने पूर्व युग में ब्रह्महत्या प्राप्त किया

अश्वमेधं ततः कृत्वा विपाप्मा समपद्यत । इति साभ्रमतीतीर्थे वार्त्रघ्नीयं नगात्मजे !॥७१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
वार्त्रघ्नीमाहात्म्यं नामाऽष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६८॥

एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

महेश उवाच

ततः परंदेवनदीवार्त्रघ्नी सङ्गमात्किल। प्रविष्टा भद्रया सार्धं सागरं वरुणालयम् ॥१॥
समुद्रोऽपि तया तावदागम्य प्रियकाम्यया। साभ्रमत्यानुरागेण कृतवान्प्रियमेलनम् ॥२॥
भद्रा वाऽपि सुभद्रा या वयस्या सा नदी पुरा ।
सहायमकरोन्मार्गे साक्षाच्छ्री रूपधारिणी ॥३॥
तयोस्तु सङ्गमः पुण्यः सागरस्योत्तरेतटे। तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा मृष्टंवारिदाति यः ॥४॥
नमस्कृत्य वराहाय वारुणं स्थानमाप्नुयात् । प्रविश्य भगवान्विष्णुस्तेन मार्गेण सागरम् ॥५॥
जित्वा वै दानवान्सर्वान्देवानां परिपन्थिनः । देवो यज्ञवराहश्च संक्षोभ्य मकरालयम् ॥
क्रीडित्वा सुचिरं कालं कर्दमालेन निर्ययौ ॥६॥

पार्वत्युवाच

देवयज्ञवराहस्य साभ्रमत्यां प्रवेशनम् । निर्गमं कर्दमालेन ब्रूहि त्वं मम विस्तरात्॥७॥

था । वे इसी तीर्थ में तपस्या करके शुद्ध हो गये और स्वर्ग में चले गये ॥६९॥ उसके बाद अश्वमेध याग करके पाप रहित हो गये । हे नगात्मजे इस तरह से साभ्रमती के तट पर वार्त्रघ्नी तीर्थ विद्यमान है ॥७०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुरण के छठे उत्तर खण्ड के शिव पार्वती संवादान्तर्गत वार्त्रघ्नी माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ अड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६८।।

वाराह तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

शङ्करजी ने कहा— उसके पश्चात् देवताओं की वार्त्रघ्नी नाम की नदी भद्रानदी के साथ वरुणालय समुद्र में प्रवेश कर गयी है ॥१॥ वह नदी अपने प्रियतम सागर को प्राप्त करने के लिए साभ्रमती के प्रति प्रेम होने के कारण गयी सागर ने भी प्रिया मिलन किया ॥२॥ भद्रा और सुभद्रा दोनों नदियाँ पहले सखियाँ थीं । साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा उसने मिलन में सहायता की ॥३॥ उन दोनों का पवित्र सागर के उत्तर तट पर है । उस तीर्थ में स्नान करके जो मनुष्य मीठे जल का दान करता है ॥४॥ वराह भगवान् को प्रणाम करने वह वरुण के लोक में जाता है । भगवान् विष्णु उसी मार्ग से सागर में प्रवेश किए थे ॥५॥ वे देवताओं के शत्रु सभी दानवों को जितकर भगवान् वाराह ने सम्पूर्ण सागर को मथ दिया । दीर्घकाल तक

महादेव उवाच

अन्तर्भूक्रीडितमिदं वराहस्य हरेः पुरा। तत्सर्वं कथयिष्यामि शृगुत्वं नगनन्दिनि ॥८॥

योऽयं वै भगवान्साक्षाद् धृतवान्सौकरं वपुः ।

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं रूपं धृत्वा सुरेश्वरः ॥९॥

धृत्वावै पृथिवीं देवीं निर्गतः कर्दमालयम्। तत्र तीर्थं महज्जातं वराहाख्यं तु सुन्दरि ! ॥१०॥

तत्र स्नाति नरो यस्तुमुक्तिभाक्सन संशयः। अत्र श्राद्धं प्रकुर्वीत पितृणां मुक्तिहेतवे ॥

विमुक्तस्तैः समं लोकं प्रयाति सुखदं महत् ॥११॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे वाराहतीर्थ नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥

एक सौ सत्तरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अत्र तीर्थात्परं तीर्थं सङ्गमाख्यमिति श्रुतम्। यत्र साभ्रमती गङ्गामिलितासागरेण तु ॥१॥

तत्र स्नानं च दानं च कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ।

यत्र स्नात्वा तु मुच्यन्ते महापातकिनोऽपि ये ॥२॥

तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं स्वानां च हितमिच्छता ।

यत्र वै तु कृते श्राद्धे पितृलोके वसेदध्रुवम् ॥३॥

क्रीडा करके वे निकले ॥६॥ पार्वतीजी ने कहा हे देव भगवान् वराह कर्दमाल से निकले उसको आप मुझे विस्तार से बतलायें। **महादेवजी ने कहा—** श्रीभगवान ने यह क्रीडा पृथिवी के भीतर किया। हे पार्वती! उसे मैं विस्तार के साथ कहता हूँ सुनो ॥७॥ देवताओं के स्वामी श्रीभगवान् ने ही देवताओं का कार्य करने के लिए शूकर का शरीर धारण कर लिया ॥८॥ वे पृथिवी देवी को धारण कर्दमाल से निकले। हे सुन्दरि! वहाँ वराह नामक महान् तीर्थ हो गया ॥९॥ वहाँ पर जो मनुष्य स्नान करता है वह मुक्ति का भागी होता है। पितरों की मुक्ति के लिए यहाँ पर श्राद्ध करना चाहिए ॥१०॥ वह मनुष्य अपने पितरों के साथ ही मुक्त होकर महान् सुख को प्राप्त करता है ॥११॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत वराह तीर्थ वर्णन नामक एक सौ उनहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६९।।

सङ्गम तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— इस तीर्थ के बाद सङ्गम तीर्थ को सुना गया है। यहाँ पर साभ्रमती गङ्गा सागर से मिलती हैं ॥१॥ वहाँ पर विधि पूर्वक स्नान और दान करना चाहिए। वहाँ पर स्नान करके

यत्र वै सागरो देवो नित्यं मिलति गङ्गया। ब्रह्महा तत्र मुच्येत किमन्यैरितरैरघैः ॥४॥
यत्र तीर्थन जानन्ति लोका वै मन्दबुद्धयः। तदा वै मम नाम्ना च कर्तव्यं तीर्थमुत्तम् ॥५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्सास्यां संहितायां उत्तरे खण्डे सङ्गमतीर्थं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

सङ्गमस्य समीपे तु सत्तीर्थं लोकविश्रुतम्। आदित्याख्यं परं तस्मान्न भूतं न भविष्यति ॥१॥
यस्य वै दर्शनं कार्यं स्नानं वै पुष्करेण तु ।
पूजनं चार्कपुष्पेण करवीरैस्तथा पुनः ॥२॥
तत्र श्राद्धं च दानं च कुर्युर्वै मानवाः सदा ।
इदमादित्यकं तीर्थं पवित्रं पापनाशनम् ॥३॥
दर्शनात्पुण्यदं तीर्थं महापातकिनामपि ॥४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे आदित्यः तीर्थमाहात्म्यं नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

महापातकी जीव भी मुक्त हो जाते हैं ॥२॥ अपने पूर्वजों का कल्याण चाहने वाले को वहाँ श्राद्ध करना चाहिए। वहाँ पर श्राद्ध करने वाला निश्चित रूप से पितृलोक में निवास करता है ॥३॥ वहाँ पर सागर देवता सदा गङ्गा के साथ मिलते हैं। वहाँ पर ब्रह्महत्या भी भक्त हो जाता है दूसरे पापों की कौन सी बात है ॥४॥ मूर्ख संसारी जीव वहाँ के तीर्थ को नहीं जानते हैं। उस समय उनको मेरे नाम से तीर्थ करना चाहिए ॥५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवदान्तर्गत सङ्गम तीर्थ वर्णन नामक एक सौ सत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७०।।

आदित्यतीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— सङ्गमतीर्थ के सन्निकट में आदित्य नामक सत् तीर्थ लोक विख्यात है। इस आदित्य तीर्थ से श्रेष्ठ तीर्थ न तो हुआ और न होगा ॥१॥ उसका दर्शन पुष्कर में स्नान करके करना चाहिए। अर्क पष्प से पूजा करे तथा करवीर पुष्प से पूजा करे ॥२॥ मनुष्यों को वहाँ सदा श्राद्ध और दान करना चाहिए। यह आदित्य तीर्थ पुण्यमय तथा पापों का नाश करने वाला है ॥३॥ यह तीर्थ दर्शन करने से पापियों को भी पुण्य प्रदान करता है ॥४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत आदित्य तीर्थ वर्णन नामक एक सौ एकहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७१।।

एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

तस्मात्तीर्थात्परं तीर्थं नीलकण्ठेति विश्रुतम्। तस्य वै दर्शनं कार्यं मुक्तिं चैवेच्छता सदा॥१॥
बिल्वपत्रैस्तथा धूपैर्दीपैर्वाऽथ सुरेश्वरि ! । वाञ्छितं लभते मर्त्यो नीलकण्ठस्य दर्शनात्॥२॥
उपवासपरो देवि निर्जनेऽसौ स्थितः सदा । यद्यद्वाञ्छन्ति ये लोकास्तेषां तत्तद्ददाति च॥३॥
कलौ सा तु महादेवि विख्याता काश्यपीति वै ॥४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
नीलकण्ठमाहात्म्यं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥

एक सौ तिहतरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

दुर्गया सङ्गता यत्र देवि साभ्रमती नदी। सङ्गमः सागरेणाऽथ स्नानं तत्र समाचरेत् ॥१॥
वीतदोषा भविष्यन्ति कलौ वे नाऽत्रसंशयः ।
यत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं दुर्गयासङ्गमे तथा ॥२॥
तत्र गत्वा विशेषेण ब्राह्मणानां च भोजनम् ।
दानं गोमहिषीणां च कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥३॥

नीलकण्ठ तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— उस तीर्थ के पश्चात् नीलकण्ठ विख्यात तीर्थ है । मुक्ति चाहने वाले को उस तीर्थ का सदा दर्शन करना चाहिए ॥१॥ विल्वपत्र, धूप, दीप से पूजा करके नीलकण्ठ का दर्शन करने वाला अपने मनोवाञ्छित फल को प्राप्त करता है ॥२॥ हे देवि ! सदा उपवास करके निर्जन स्थान में विद्यमान है रहने वाले मनुष्य जो-जो चाहता है उन सारी वस्तुओं को उनको प्रदान करते हैं ॥३॥ हे देवि ! कलियुग में वह नदी काश्यपी के नाम से विख्यात है ॥४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत नीलकण्ठ माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ बहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७२।।

साभ्रमती माहात्म्य वर्णन

महादेवजी ने कहा— जहाँ पर साभ्रमती नदी दुर्गा नदी से मिलती है वही उसका सागर से सङ्गम स्थान है वहाँ पर स्नान करना चाहिए ॥१॥ ऐसा करने वाले सभी दोष से कलियुग में रहित हो जायेंगे। जहाँ पर दुर्गा के साथ सङ्गम हुआ है, वहाँ पर श्राद्ध करना चाहिए ॥२॥ वहाँ पर जाकर विशेष रूप से

इयं धन्या धन्यतमा पवित्रा पापनाशिनी । यां दृष्ट्वा चापि भोदेवि मुच्यते पातकैर्नरः ॥४॥
यथा गङ्गा तथा चेयं ज्ञेया साभ्रमती नदी। कलौ देवि विशेषेण बहुकालफलप्रदा॥५॥
यदि चेच्छतशो जिह्वा मुखे वै मामके सति ।
तस्याअपिन शक्नोमिगुणान्वक्तुंकदाचन ॥६॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वर सम्वादे साभ्रमतीमाहात्म्यं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय: ॥१७३॥

एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

महादेव उवाच

श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि व्रतं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते लोको ब्रह्महत्यादिपातकात् ॥१॥
उत्पत्तिः स्वप्रकाशस्य भक्तानांसुखहेतवे। तिथिर्वाऽपि समासोवैसञ्जातःपुण्यकारकः॥२॥
यस्य नाम गृणन्देवि मुक्तिमाप्नोतिशाश्वतीम्। स एव परमात्मा च कारणानांचकारणम्॥३॥
विश्वात्मा विश्वरूपी च सर्वेषां भगवान्प्रभुः। द्वादशार्का धृता येन नृसिंहेनमहात्मना ॥
स एव प्रकटीजातो भक्तानां शमभीप्सया ॥४॥

पार्वत्युवाच

अवताराह्यसङ्ख्याताः कथिताः सुरसत्तम !। नृसिंहाख्यं परं धाम वद विश्वेश्वरप्रभो ! ॥
येन विज्ञानमात्रेण सुखलोकमवाप्नुयात् ॥५॥

ब्राह्मणों को भोजन करायें और विधिपूर्वक गायों और भैसों का दान करना चाहिए ॥३॥ हे देवि ! यह तीर्थ धन्य और धन्यतम है, हे देवि ! उसका दर्शन कर लेने से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ॥४॥ इस साभ्रमती नदी को गङ्गाजी के समान ही मानना चाहिए । हे देवि ! कलि में यह विशेष रूप से फल प्रदान करती है ॥५॥ यदि मेरे मुख में सैकडों जीभ होती तो भी मैं इसके गुणों का वर्णन नहीं कर सकता था॥६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत साभ्रमती माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ तिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७३।।

नृसिंह जयन्ती व्रत का वर्णन

महादेवजी ने कहा— हे देवि ! सुनो मैं त्रैलोक्य में दुर्लभ व्रत का वर्णन करता हूँ । उसका श्रवण करके मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है ॥१॥ स्वयं प्रकाश श्रीभगवान् की उत्पत्ति भक्तों को सुख देने के लिए होती है । उनकी वह तिथि और वह महीना भी पुण्यप्रद है ॥२॥ हे देवि ! जिनका नामोच्चारण करने वाला मुक्ति प्राप्त कर लेता है वे ही परमात्मा सभी कारणों के भी कारण हैं ॥३॥ वे

महादेव उवाच

हिरण्यकशिपुं हत्वा देवदेवं जगद्गुरुम्। सुखासीनं तदुत्सङ्गे स्थितो वचनमब्रवीत् ॥६॥
प्रह्लादो ज्ञानिनां श्रेष्ठो हन्तृहन्तारमुत्तमम् ॥७॥

प्रह्लाद उवाच

नमस्ते भगवन्विष्णो नृसिंहाद्भुतरूपिणे। त्वद्भक्तोऽहं सुरश्रेष्ठ त्वां पृच्छामि च तत्त्वतः ॥८॥
स्वामिंस्त्वयि ममाऽभिन्नाभक्तिर्जाताह्यनेकधा ।
कथं तेऽहंप्रियोजातःकारणंवदमेप्रभो ॥९॥

नृसिंह उवाच

कथयामि महाप्राज्ञ श्रृणुष्वैकाग्रमानसः । भक्तेर्यत्कारणं वत्स प्रियत्वस्य च यत्पुनः ॥१०॥
पुरा कस्य द्विजस्याऽपि जातस्त्वं नाऽप्यधीतवान् ।
नाम्ना तु वसुदेवो हि वेश्यायामतिलम्पटः ॥११॥
तस्मिञ्जन्मनि नैवञ्च चकार सुकृतं कियत्। भुक्त्वा मधुधृतं चैव वेश्यासंगमलालसः॥१२॥
मद्व्रतस्य प्रभावेण भक्तिर्जाता तवाऽनघ ! ॥१३॥

प्रह्लाद उवाच

विस्तराद्वद देवेश कस्य पुत्रस्य किं व्रतम्। वेश्यायां वर्तमानेन कथञ्चिद्धि कृतं मया ॥
ममोपरि कृपां कृत्वा सर्वं कथय साम्प्रतम् ॥१४॥

नृसिंह उवाच

सृष्ट्यर्थं तु पुरा ब्रह्मा चक्रे ह्येतदनुत्तमम्। तद्व्रतस्य प्रभावेण निर्मितं सचराचरम् ॥१५॥

श्रीभगवान् सबों की आत्मा हैं और सम्पूर्ण जगत् उनका शरीर है । जिन श्रीनृसिंह भगवान् ने बारहो आदित्यों को धारण किया वे ही भगवान् भक्तों का कल्याण करने की इच्छा से प्रकट हुए ॥४॥ **पार्वतीजी ने पूछा—** हे देवश्रेष्ठ ! श्रीभगवान् के असंख्य अवतार कहे गये हैं अतएव हे विश्वेश्वर श्रीनृसिंह का वर्णान करें । जिसके जान लेने से संसार सुख प्राप्त करता है ॥५॥ **महादेवजी ने कहा—** हिरण्यकशिपु को मारकर सुख पूर्वक बैठे हुए जगद्गुरु श्रीभगवान् की गोद में बैठकर अपने पिता को मारने वाले श्रीभगवान् से श्रेष्ठ ज्ञानी प्रह्लाद ने कहा ॥६-७॥ **प्रह्लाद ने कहा—** हे नृसिंह रूपधारी भगवन् विष्णो ! आपको नमस्कार है । हे सुरश्रेष्ठ ! मैं आपका भक्त हूँ और आपसे मैं तत्त्वत: पूछता हूँ ॥८॥ हे भगवन् ! आपके विषय में मैंने अनेक प्रकार की भक्ति की है । मैं आपको कैसे प्रिय हो गया उसका मुझे कारण बतलायें॥९॥ **नृसिंह भगवान् ने कहा—** हे वत्स ! भक्ति होने और तुम्हारे प्रिय होने का कारण मैं बतलाता हूँ तुम सुनो॥१०॥ प्राचीन काल में तुम किसी ब्राह्मण के घर पैदा हुए किन्तु वेदाध्ययन नहीं किए । तुम्हारा नाम वासुदेव था और तुम वेश्या के अत्यन्त प्रेमी थे ॥११॥ उस जन्म में तुम कोई भी पुण्य कर्म नहीं किए। तुम वेश्या के साथ सङ्गम करने की लालसा में सदा घी और मधु खाते थे । मेरे इस व्रत के प्रभाव से तुम मेरी भक्ति उत्पन्न हो गयी ॥१२-१३॥ **प्रह्लादजी ने कहा—** हे देवेश ! आप विस्तार पूर्वक बतलायें कि मैं किसका पुत्र था और मैंने कौन सा व्रत किया । जब मैं वेश्या में आसक्त था तो कैसे व्रत किया। आप मुझ पर कृपा करके इस समय सारी बातें बतायें ॥१४॥ **भगवान् नृसिंह ने कहा—** प्राचीन काल

ईश्वरेण व्रतं चीर्णं वधार्थं त्रिपुरस्य च। व्रतस्याऽस्य प्रभावेण त्रिपुरस्तु निपातितः ॥१६॥
अन्यैश्च बहुभिर्देवैर्ऋषिभिश्च पुरातनैः। राजभिश्च महाप्राज्ञैर्विहितं व्रतमुत्तमम् ॥१७॥
व्रतस्याऽस्य प्रभावेण सर्वे सिद्धिमवाप्नुयुः। मम ते वै प्रियाजाता दिविभोगाननेकशः ॥१८॥
भुक्त्वा मयि विलीनास्तु प्रह्लाद ! त्वं विशस्व माम् ।
कार्यार्थमवतारस्ते मच्छरीरात्पृथग्ततः ॥१९॥
न तेषां पुनरावृत्तिर्महाकल्पशतैरपि। दरिद्रो लभते लक्ष्मीं धनदस्य च यादृशी ॥२०॥
ततः कामीलभेत्कामं राज्यार्थीराज्यमुत्तमम्। आयुष्कामोलभेदायुर्यादृशंचशिवस्यहि ॥२१॥
अवैधव्यकरं स्त्रीणां पुत्रदं भाग्यदं तथा। धनधान्यकरं चैव तथा शोकविनाशनम् ॥२२॥
स्त्रियो वा पुरुषा वाऽपि कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम् ।
तेभ्यो ददाम्यहं सौख्यं भुक्तिमुक्तिफलं तथा ॥२३॥
बहुनोक्तेन किं वत्स व्रतस्याऽस्य फलस्याहि ।
मद्व्रतस्यफलंवक्तुं नाऽहंशक्तोनशङ्करः ॥२४॥

प्रह्लाद उवाच

भगवांस्त्वत्प्रसादेन श्रुतं व्रतमनुत्तमम्। व्रतस्याऽस्य फलं श्रोतुं त्वयिमेभक्तिकारणम् ॥२५॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि व्रतस्याऽस्य विधिं परम् ।
कस्मिन्मासे भवेदेव कस्मिंश्चिद्वासरे प्रभो ! ॥२६॥
एतद्विस्तरतो देव ! वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्। विधिना येन वै स्वामिन्समग्रफलभाग्भवेत् ॥२७॥

में ब्रह्माजी सृष्टि करने के लिए इस सर्वोत्तम व्रत को किए थे। उसी व्रत के प्रभाव से वे चराचर जगत् की सृष्टि किये ॥१५॥ त्रिपुर का वध करने के लिए शङ्करजी ने इस व्रत को किया था। इसी व्रत के प्रभाव से उन्होंने त्रिपुरासुर को मारा ॥१६॥ दूसरे भी महाप्राज्ञ अनेक देवताओं, ऋषियों, विभिन्न राजाओं ने इस व्रत को किया ॥१७॥ इस व्रत के प्रभाव से सबों ने सिद्धि प्राप्त की। वे सब मेरे प्रिय हैं और स्वर्ग में अनेक भोगों को भोगे भी ॥१८॥ वे सब उन भोगों को भोगकर मुझमें विलीन हो गये। हे प्रह्लाद तुम भी मुझमें प्रवेश कर जाओ। कार्य विशेष के लिए मेरे शरीर से अलग तुम्हारा अवतार हुआ है॥१९॥ वे सभी सैकड़ों कल्पों के बीत जाने पर भी इस संसार में नहीं आयेंगे। उस व्रत के कारण दरिद्र कुबेर के समान लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है ॥२०॥ उसी के प्रभाव से कामी काम को प्राप्त करता है और राज्य चाहने वाला राज्य को प्राप्त करता है। आयु चाहने वाला शिवजी की आयु के समान आयु को प्राप्त करता है ॥२१॥ इस व्रत के प्रभाव से स्त्रियाँ विधवा नहीं होती हैं, यह व्रत पुत्र और सौभाग्य प्रदान करने वाला है। यह धन-धान्य प्रदान करने वाला तथा शोक का विनाशक है ॥२२॥ स्त्री अथवा पुरुष जो कोई भी इस व्रत को करता है, उसे मैं भोग तथा मोक्ष रूपी फल प्रदान करता हूँ ॥२३॥ हे वत्स ! इस व्रत के विषय में बहुत अधिक क्या कहना है ? इस व्रत के प्रभाव को न तो मैं और न शिवजी ही कह सकते हैं ॥२४॥ **प्रह्लाद ने कहा—** हे भगवन् ! आपकी कृपा से इस सर्वोत्तम व्रत को मैंने सुना आपमें जो मेरी भक्ति है उसी के कारण मुझे इस व्रत का फल सुनने के लिए प्रेरित करती है ॥२५॥ अब मैं इस व्रत की विधि को सुनना चाहता हूँ। हे प्रभो ! यह व्रत किस मास तथा किस तिथि को किया जाता है ॥२६॥

नृसिंह उवाच

प्रह्लाद वत्य भद्रन्ते शृणुष्वैकमना व्रतम्। वैशाखेऽसितपक्षे तु चतुर्दश्यां समाचरेत्॥२८॥
ममाविर्भावसंयुक्तं मम सन्तुष्टिकारणम्। शृणु पुत्र ममोत्पत्तिं भक्तानां सुखहेतवे॥२९॥
पश्चिमायां दिशायां च सञ्जातं कारणान्तरात्।
मौलिस्तानमिदं क्षेत्रं पवित्रं पापनाशनम्॥३०॥
तस्मिन्क्षेत्रे तु विख्यातो ब्राह्मणो वेदपारगः।
हारीतइति नाम्ना च ज्ञानध्यानपरायणः॥३१॥
तस्य स्त्री तु महापुण्या सतीरूपासदाप्रभो!।
लीलावती तु नाम्ना च भर्तुर्वशपरा सदा॥३२॥
ताभ्यां तपो महत्तप्तं कालं बहुतरं सुत!। एकविंशयुगाश्चैव यातास्तत्र न संशयः॥
तस्मिन्क्षेत्रे तु वै ताभ्यां प्रत्यक्षो वाऽभवत्तदा॥३३॥

नृसिंह उवाच

यं यं वाञ्छयसे ब्रह्मं स्तं ददामि न संशयः।
ताभ्यामुक्तं तदा तस्मै दीयते चेद्वरोमम॥३४॥
त्वादृशो मम पुत्रस्तु ह्यघुनैव भवत्विति। मयोक्तं तु तदा वत्स पुत्रोऽहं ते न संशयः॥३५॥
विश्वकर्मा ह्यहं साक्षात्परमात्मा परात्परः। उदरेऽहं न वत्स्यामियतोऽहं वैसनातनः॥३६॥
हारीतेन तदा चौकतं भवत्वेवं न संशयः। तदाप्रभृति वै क्षेत्रे स्थितोऽहं भक्तकारणात्॥३७॥
अत्राऽऽगत्य प्रकुर्वीत दर्शनं भक्तसत्तमः। तस्याहं सकलां बाधां नाशयामि निरन्तरम्॥३८॥

जिस विधि से यह व्रत समग्र फल को प्रदान करे उसे आप विस्तार पूर्वक कहें ॥२७॥ **नृसिंह भगवान् ने कहा**— हे प्रह्लाद वत्स ! तुम एकाग्रमना होकर सुनो । वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन इस व्रत को करना चाहिए ॥२८॥ यह तिथि मेरे अविर्भाव से युक्त तथा मुझको सन्तुष्ट करने वाली है । हे वत्स ! सुनो मेरी उत्पत्ति भक्तों को सुख देने के लिए होती है ॥२९॥ किसी कारणवशात् मेरी उत्पत्ति भक्तों को सुख देने के लिए होती है किसी कारणवशात् मेरी उत्पत्ति सायंकाल हुयी थी । यह मौलि स्तान नामक क्षेत्र अत्यन्त पवित्र और पापनाश करने वाला है ॥३०॥ उस क्षेत्र में वेद पारंगत हारीत नामक ब्राह्मण विख्यात थे । वे निरन्तर ज्ञान तथा ध्यान में लगे रहते थे ॥३१॥ उनकी पत्नी का नाम लीलावती था वह महापवित्र और सती स्वरूपा थी और सदैव अपने पति के वश में रहती थी ॥३२॥ पुत्र उन दोनों ने बहुत समय तक तपस्या की । इस तरह से उन दोनों के इक्कीस युग बीत गये । उस क्षेत्र में मैं उन दोनों के समक्ष प्रकट हो गया ॥३३॥ **नृसिंह भगवान् ने कहा**— ब्रह्मन् ! आप जो-जो चाहें वह सब कुछ आप दोनों को प्रदान करूँगा । उन दोनों ने कहा हे प्रभो ! यदि आप वरदान देते हैं तो आप मुझे अपने ही समान पुत्र प्रदान करें । हे वत्स ! उस समय मैंने कहा मैं आपका पुत्र हो जाता हूँ ॥३४-३५॥ मैं साक्षात् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाला हूँ, परात्पर परमात्मा हूँ । सनातन होने के कारण मैं तुम्हारे उदर में नहीं निवास करूँगा ॥३६॥ उस समय हारीत ने कहा ऐसा ही कीजिए । उसी समय से मैं उस क्षेत्र में अपने भक्त के कारण स्थित हूँ ॥३७॥ जो मेरा श्रेष्ठ भक्त आकर यहाँ मेरा दर्शन करेगा उसकी

एतस्मात्कारणाच्चैव व्रतं वै विधिपूर्वकम् । ये कुर्वन्ति नरश्रेष्ठा नतेषां विद्यते भयम् ॥३९॥
वालरूपमयं ध्यात्वा ताभ्यां सह विशेषतः। पूजनं कुरुते रात्रौ स वै नारायणोभवेत्॥४०॥
चतुर्भुजं महादंष्ट्रं कालरूपं दुरासदम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशं यमकोटिदुरासदम् ॥४१॥
सिंहवच्च मुखं यस्य नरवच्चाऽङ्गसंयुतम् । श्रीनृसिंहं दिव्यसिंह कालरूपं भजेत्सदा ॥४२॥

एवं ज्ञात्वा विशेषेण यः स्थानं मामकं व्रजेत् ।
व्रतं पवित्रं परमं श्रीकदम्बप्रदं महत् ॥४३॥
अन्ते मुक्तिप्रदं चैव भक्तानां च न संशयः ।
येन वै क्रियमाणेन सहस्त्रद्वादशीफलम् ॥४४॥

स्वातीनक्षत्रसंयोगे शनिवारे तु मद्व्रतम्। सिद्धियोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥४५॥
योगैः सर्वैश्च संयोगं हत्याकोटिविनाशनम्। एतदन्यतरे योगे मद्दिनं पापनाशनम् ॥४६॥
विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लङ्घयेत्स तु पापकृत्। अकर्त्ता नरकं याति यावचचन्द्रदिवाकरौ॥४७॥
प्राप्ते मम दिने वत्स दन्तधावनपूर्वकम्। ममाऽग्रे व्रतसङ्कल्पं मद्भक्तो विजितेन्द्रियः ॥४८॥

अद्याऽहं ते विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां नय ।
व्रतस्थेननकर्त्तव्यं दुष्टसम्भाषणादिकम् ॥४९॥

ततो मध्याह्नसमये नद्यादौ विमले जले। गृहे वा देवखाते वा तडागे वाऽथ शोभने॥५०॥
वैदिकेन तु मन्त्रेण स्नानं कुर्याद्विचक्षणः। मृत्तिकागोमयेनैव तथा धात्रीफलेन च॥५१॥
तिलैश्च विधिवत्स्नायात्सर्वपपौघशान्तये। परिधाय शुभे वस्त्रे नित्यकर्म समारभेत् ॥५२॥

मैं सदैव सारी बाधाओं को विनष्ट कर दूँगा ॥३८॥ इसीलिए इस व्रत को विधि पूर्वक श्रेष्ठ मनुष्य करते हैं । उनको किसी प्रकार का भय नहीं होता है ॥३९॥ मेरे इस बाल रूप का ध्यान करके उन ब्राह्मण दम्पती के साथ रात्रि में पूजा करते हैं वे नारायण स्वरूप हो जाते हैं ॥४०॥ मेरी चार भुजाओं से युक्त बड़े-बड़े दाँत वाली तथा भयङ्कर करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान और करोड़ों यमों के लिए दुष्प्राप्य सिंह के समान मुख तथा मनुष्य के समान अङ्ग से युक्त काल स्वरूप दिव्य सिंह नृसिंह का भजन करना चाहिए॥४१-४२॥ विशेष रूप से मेरे इस प्रकार के रूप को जानकर जो मेरे स्थान पर जाता है श्रीकदम्ब प्रद यह महान् व्रत अन्त में भक्तों को मुक्ति प्रदान करता है । इस व्रत को करने से एक हजार द्वादशी व्रत करने का फल प्राप्त होता है ॥४३-४४॥ स्वाती नक्षत्र से युक्त तथा शनिवार के दिन वणिज करण और सिद्ध योग में करने पर इन सभी योगों से युक्त होने पर मेरा व्रत करोड़ों हत्याओं जन्य पाप को विनष्ट कर देता है । इससे भिन्न प्रकार के योगों में मेरा व्रत पाप नाशक होता है ॥४५-४६॥ मेरे दिन को जानकर भी जो इसका उल्लंघन करता है वह पापी है । इस व्रत को नहीं करने वाला तब तक नरक में निवास करता है । जब तक कि चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं ॥४७॥ मेरे व्रत का दिन आने पर हे वत्स ! दन्तधावन करके मेरे सामने सङ्कल्प जितेन्द्रिय रहकर करे कि आज मैं व्रत करूगा उसे आप निर्विघ्न पूरा करें । व्रती को दुष्टों के साथ बातचित नहीं करना चाहिए ॥४८-४९॥ उसके पश्चात् दो पहर की वेला में नदी आदि के स्वच्छ जल में या घर में या देव निर्मित कुण्ड में, या सुन्दर सरोवर में वैदिक मन्त्र पढकर स्नान करना चाहिए । मिट्टी, गोबर या आँवला के फल से तथा तिल से विधि पूर्वक स्नान करना चाहिए।

ततो गृहं विलिप्याऽथ कुर्यादष्टदलं शुभम्। कलशं तत्र संस्थाप्य ताम्रं रत्नसमन्वितम् ॥५३॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं तण्डुलैः परिपूरितम् ।
हैंमी च तत्र मन्मूर्ति स्थाप्य लक्ष्म्या समन्विताम् ॥५४॥
निर्माय शक्तयास्वर्णेन स्नाप्यपञ्चामृतैस्ततः। ततोब्राह्मणमाहूय आचार्यंनाऽतिलासेलुपम्॥५५॥
शास्त्रज्ञमग्रतः कृत्वा ततो देवं समर्चयेत्। मण्डपं कारयेत्तत्र पुष्पस्तबकशोभितम्॥५६॥
ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैः पूज्योऽहं च यथाविधि ।
उपचारैः षोडशभिर्मन्मन्त्रैर्नियोगाश्च यः ॥५७॥
ततः पौराणिकैर्मन्त्रैः पूजनीयो विशेषतः। चन्दनं च सकर्पूरं घनकुङ्कुममिश्रितम् ॥५८॥
कालोद्भवानि पुष्पाणि तथा तुलसीदलानि च ।
श्रीनृसिंहाय यो दद्यात्स मुक्तो नाऽत्र संशयः ॥५९॥
कृष्णागुरुमयं धूपं सर्वदा हरिवल्लभम्। हरये गुरवे दद्यात्सर्वकामार्थसिद्धये ॥६०॥
महादीपः प्रकर्त्तव्यो ह्यज्ञानध्वान्तनाशनः। महानीराजनं कुर्याद्घण्टानादपुरःसरम् ॥६१॥
नैवेद्यं शर्करां चाऽपि भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ।
ददामि ते रमाकान्त सर्वपापक्षयं कुरु ॥६२॥

इति नैवेद्यमन्त्रः

नृसिंहाच्युत ! देवेश तव जन्मदिने शुभे। उपवासं करिष्यामि सर्वभोगविवर्जितः॥६३॥
तेन प्रीतो भव स्वामिन्पापं जन्मनिराकुरु। रात्रौ जागरणं कार्यं गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥६४॥

जिससे कि सारे पाप समूह नष्ट हो जायँ । स्वच्छ वस्त्र धारण करके नित्य कर्म करे ॥५०-५२॥ उसके पश्चात् गृह को लिप कर वहाँ पर सुन्दर मण्डल बनाये । वहाँ पर ताम्बे के कलश को रत्न से युक्त करके स्थापना करके ॥५३॥ उसके ऊपर चावल से भरकर पूर्णपात्र रखे उस पर लक्ष्मीजी के साथ मेरी सुवर्ण की मूर्ति की स्थापना करे ॥५४॥ अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण की मूर्ति बनवाये । फिर उसको पञ्चामृत से स्नान कराये । उसके पश्चात् लोभ रहित ब्राह्मण आचार्य को बुलाकर ॥५५॥ उन शास्त्रज्ञ आचार्य को सामने बैठाकर श्रीभगवान् की पूजा करे । वहाँ पर पुष्पों तथा स्तम्भों से युक्त मण्डप बनाये ॥५६॥ उस ऋतु के पुष्पों से विधि पूर्वक मेरी पूजा करे । मन्त्रों तथा विनियोगों के साथ मेरी षोडशोपचार पूजा करे॥५७॥ फिर विशेष रूप से मेरी पौराणिक मन्त्रों से पूजा करे । कपूर और कुङ्कुम से युक्त चन्दन मुझको समर्पित करे ॥५८॥ तत्काल में उत्पन्न होने वाले पुष्पों तथा तुलसी दलों को जो नृसिंह भगवान् पर चढ़ता है वह निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है ॥५९॥ काले अगरु से युक्त धूप श्रीहरि को सदैव प्रिय है । अपने गुरु तथा श्रीहरि को अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए समर्पित करना चाहिए ॥६०॥ अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले दीप को निवेदित करना चाहिए और घण्टा को बजाते हुए महानीराजन करना चाहिए॥६१॥ हे रमाकान्त ! मैं आपको भक्ष्य तथा भोज्य नैवेद्य से युक्त शर्करा समर्पित करता हूँ आप मेरे समस्त पापों का नाश कर दें ॥६२॥ यह नैवेद्य का मन्त्र है । फिर प्रार्थना करे हे नृसिंह ! हे अच्युत ! आपके जन्मदिन के अवसर पर सभी भोगों से रहित होकर उपवास करूँगा ॥६३॥ हे स्वामिन् आप प्रसन्न होकर जन्म भर के पापों को विनष्ट कर दें । गीत तथा वाद्य की ध्वनि करते हुए रात्रि में जागरण करना चाहिए ॥६४॥

पुराणपठनं नित्यं श्रीनृसिंहकथाश्रयम् । ततः प्रभातसमये स्नानं कृत्वा ह्यनन्तरम् ॥६५॥
पूर्वोक्तेन विधानेन पूजयेन्मां प्रतर्पयन् । वैष्णवं कारयेच्छ्राद्धं मदग्रे स्वस्थमानसः ॥६६॥
ततो दानानि देयानि वक्ष्यमाणानि यान्तुत । पात्रेभ्यः सद्विजेभ्यो हि लोकद्वयजिगीषया ॥६७॥
सहस्वर्णमयो देवयो मम सन्तोषकारकः । गोभूतिलहिरण्यादि प्रददाति द्विजातये ॥६८॥
शय्यासतूलिका देया सप्तधान्यसमन्विता । अन्यानि च यथाशक्तयादेयानिनिजशक्तितः ॥६९॥

वित्तशाठयं न कुर्वीत यथोक्तफलकाङ्क्षया ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्तेभ्यो दद्यात्सुदक्षिणाम् ॥७०॥

निर्धनैरपि कर्त्तव्यं देयं शक्तयनुसारतः । सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते ॥
मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्त्तव्यं मत्परायणैः ॥७१॥

ततः प्रार्थनामन्त्रः

मद्वंशे ये नरा जाता ये शविष्यन्ति मानवाः ।
तानुद्धरस्व देवेश दुःखदाद्भवसागरात् ॥७२॥

पातकार्णवमग्नस्य व्याधिभिश्चाम्बुचारिभिः । जीवैस्तु परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥७३॥
करावलम्बनं देहि शेषशायिञ्जगत्पते ! । व्रतेनाऽनेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदो भव ॥७४॥

एवं प्रार्थ्य ततो देवं विसृज्य च यथाविधि ।
उपहारादिकं सर्वमाचार्याचनिवेदयेत् ॥७५॥
दक्षिणाभिश्च सन्तोष्य ब्राह्मणांश्च विसर्जयेत् ।
मम ध्यानसमायुक्तो भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥७६॥

श्रीनृसिंह की कथामय पुराण का पाठ करना चाहिए । फिर प्रातःकाल स्नान करके उसके बाद ॥६५॥ पूर्वोक्त विधि से पूजा करके मुझे सन्तुष्ट करे । मेरे सामने स्वस्थ मन वैष्णव श्राद्ध करे ॥६६॥ जिन सबों को मुझे कहना है उन दानों को मुझे लोकों को जीत लेने की इच्छा से योग्य ब्राह्मणों को देना चाहिए॥६७॥ मुझको सन्तुष्ट करने वाला हजारों स्वर्णमय उत्सव करना चाहिए । गौ, पृथिवी, तिल, सुवर्ण, ब्राह्मण को देना चाहिए । गद्दा और रजाई के साथ शय्या दान करना चाहिए । साथ में सात प्रकार का अन्न देना चाहिए । इसके अतिरिक्त भी अपनी शक्ति के अनुसार दान करना चाहिए ॥६८-६९॥ यथोक्त फल प्राप्त करने के लिए कंजूसी न करे । उसके पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिए ॥७०॥ निर्धन व्यक्ति को भी अपनी शक्ति के अनुसार दान करना चाहिए । मेरा व्रत करने में सभी वर्णों का समान रूप से अधिकार है । मेरी भक्ति करने वाले मेरे भक्तों को तो विशेष रूप से मेरे व्रत को करना चाहिए । **उसके बाद निम्नांकित मन्त्रों से प्रार्थना करे** । हे देवेश ! मेरे वंश में उत्पन्न जो मनुष्य हैं उन सबों को आप इस दुखद संसार सागर से उद्धार करें ॥७१-७२॥ जिसमें व्याधि रूपी जलचर संचरण करते हैं उस पाप सागर में मग्न मैं अत्यन्त भयभीत हूँ और दुःखी हूँ ॥७३॥ हे शेषशायी जगत् के स्वामिन् इस व्रत के द्वारा; हे देवेश ! आप भोग तथा मोक्ष प्रदान करें ॥७४॥ इस तरह प्रार्थना करके श्रीभगवान् का विसर्जन करे और समस्त उपहारों को आचार्य को दे दे ॥७५॥ दक्षिणा के द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके ब्राह्मणों

अकिञ्चनेन नियतमुपोष्या च चतुर्दशी । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नाऽत्रसंशयः ॥७७॥
यइदं शृणुयाद्भक्तया व्रतं पापप्रणाशनम् । तस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥७८॥
पवित्रं परमं गुह्यं कीर्तयेद्यस्तु मानवः । सर्वकामानवाप्नोति व्रतस्याऽस्य फलं सदा ॥७९॥
यइदं कुरुते शक्तया काले मध्याह्नसञ्ज्ञके । लीलावत्या सह ऋषिं श्रीनृसिंहं तथैव च ॥८०॥

पूजयेत्परया भक्तया मुक्तिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ।
तस्मिन्क्षेत्रे तु यो गत्वा श्रीनृसिंहं प्रपूजयेत् ॥८१॥

वाञ्छितं लभते नित्यं श्रीनृसिंहप्रसादतः । श्रीनृसिंहमहद्रूपकालकोटिदुरासद ! ॥८२॥
भैरवेशहरार्तिघ्न बालरूप ! नमोऽस्तु ते । श्रीनृसिंहाय रूपाय बालाय बालरूपिणे॥८३॥
व्यापकाय सुनन्दाय स्वात्मप्रकटरूपिणे । सर्वजीवात्मकायैव विश्वेशाय स्वरात्मने ॥८४॥

मार्तण्डमण्डलस्थाय दयासिन्धो ! नमोऽस्तु ते ।
चतुर्विंशस्वरूपाय कालरुद्राग्निरूपिणे ॥८५॥

जगदेकस्वरूपाय नृसिंहाय नमोऽस्तु ते । भाले दधार यो देवो नृसिंहो वीरभद्रजित्॥८६॥
द्वादशादित्यबिम्बानि सुतप्तानि प्रमाणतः । तत्र सिन्धुर्महापुण्या नदी रम्या विशेषतः॥८७॥
तस्याः समीपे नगरं वर्त्ततेऽद्यापिसुन्दरि ! । मौलिस्तानेतिविख्यातं सर्वदादेवनिर्मितम्॥८८॥
वसतिर्वर्त्तते तत्र हारीतस्य महात्मनः । लीलावती तु तत्रैव तिष्ठते नाऽत्र संशयः ॥८९॥
प्रतिशब्दो भवेत्तत्र सिन्धुनद्याः समीपतः । कलौयुगे तु सम्प्राप्ते म्लेच्छावैपापचारिणः ॥९०॥

को विदा करे और मेरा ध्यान करते हुए बान्धवों के साथ भोजन करे ॥७६॥ अकिञ्चन व्यक्ति यदि सावधानी पूर्वक चतुर्दशी को उपवास करता है तो वह सात जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है ॥७७॥ जो मनुष्य इस पाप विनाशक व्रत को भक्ति पूर्वक श्रवण करता है, वह उसके सुनने मात्र से ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥७८॥ जो मनुष्य इस व्रत को पढ़ता है अपने सभी कामनाओं को पूर्ण करके इस व्रत के फल को प्राप्त करता है ॥७९॥ जो इस व्रत को माध्याह्न में करता है लीलावती के साथ ऋषि और नृसिंह भगवान् का पूजन भक्ति पूर्वक करता है वह शाश्वत मुक्ति को प्राप्त करता है । उस क्षेत्र में जाकर जो नृसिंह भगवान् की पूजा करता है ॥८०-८१॥ वह श्रीनृसिंह भगवान् की कृपा से अपने वाञ्छित अर्थों को प्राप्त करता है । उसके बाद वह प्रार्थना करे हे महान् रूप वाले श्रीनृसिंह ! हे करोड़ों कालों के लिए दुष्प्राप्य! हे भैरवेशार्तिघ्न ! हे बालरूप ! आपको नमस्कार है । श्रीनृसिंह रूप वाले, बालक तथा बाल शरीरक ॥८२-८३॥ हे व्यापक ! हे सुन्दर ! हे अपने को प्रकट करने वाले ! हे सर्वजीव स्वरूप ! हे विश्वेश ! हे स्वारात्मन् ! हे मार्तण्ड मण्डल में रहने वाले, हे दया सागर ! आपको नमस्कार है । चौबीस स्वरूप वाले तथा काल रुद्राग्नि स्वरूप वाले भगवान् नृसहिं को नमस्कार है ॥८४-८५॥ जगत् स्वरूप नृसिंह भगवान् को नमस्कार है । वीर भद्र को जीतने वाले जिन भगवान् नृसिंह ने अपने ललाट भाग में स्वरूप द्वादश आदित्य को धारण किया उन भगवान् नृसिंह को नमस्कार है । वहाँ पर समुद्र तथा मनोहर नदी विद्यमान हैं ॥८६-८७॥ उसके सन्निकट में आज भी अत्यन्त सुन्दर नगर है । वह देवताओं के द्वारा निर्मित है । उस नगर का नाम मौलिस्तान है ॥८८॥ वहीं पर माहात्मा हारीत का निवास है और लीलावती भी वहीं रहती है ॥८९॥ वहाँ पर सिन्धु नदी के समीप उनकी ध्वनि आती है । कलियुग के आने पर पापी

निवसन्ति तु तत्रैव बहवो नाऽत्रसंशयः। नृसिंहजन्मनि यथा शब्दोऽभूदद्भुतः परः ॥९१॥
नृसिंहेति नृसिंहेति य उच्चैर्नदते नरः। तादृशः प्रतिशब्दो वै जायते नगनन्दिनि ! ॥९२॥
ब्रह्महा हेमहारी वा सुरापो गुरुतल्पगः। सिन्धौ गत्वा विशेषेण स्नानंकुर्वीतयोजनः ॥९३॥
मुच्यते नाऽत्रसन्देहः श्रीनृसिंहप्रसादतः। दशरात्रिप्रमाणेन मानवा ये वसन्ति हि ॥९४॥

ते ज्ञेयाः पुण्यकर्माणो नाऽसत्यं मामकंवचः ।
निवसन्तिकलौतत्र वर्णायेद्विजपूर्वकाः ॥९५॥
म्लेच्छवत्तेऽपि विज्ञेया वेदबाह्याः सुरोत्तमे ! ।
मांसं खादन्ति ते तत्र मद्यपानंपपुःसदा ॥९६॥

अतो ह्यधर्मरूपास्ते पापिष्ठा नाऽसंशयः। सन्ध्याहीना यथाविप्रा वेदबाह्यास्तथैव च॥९७॥
निवसन्ति पुरे तस्मिनपश्चिमायां सुरेश्वरि !। एकमेवपरं तीर्थं नृसिंहाख्यं सुविस्तरम् ॥९८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे नृसिंहोत्पत्तिर्नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

मलेच्छ ॥९०॥ बहुत अधिक निवास करेंगे इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं हैं । नृसिंह जन्म के समय जैसा अत्यन्त अद्भुत शब्द हुआ ॥९१॥ वहाँ पर जो मनुष्य जोर-जोर से हे नृसिंह ! हे नृसिंह !! कहता है हे पार्वति वैसा ही शब्द इस समय होता है ॥९२॥ ब्रह्मघाती, सुवर्ण की चोरी करने वाला, सुरापायी तथा गुरुतल्पग भी कोई मनुष्य उस सिन्धु नदी पर जाकर स्नान करता है, तो वह भगवान् नृसिंह की कृपा से मुक्त हो जाता है । जो मनुष्य वहाँ पर दश रात्रियों तक निवास करते हैं ॥९३॥ मैं सत्य कहता हूँ कि उन मनुष्यों को पुण्यवान् समझना चाहिए । कलि में वहाँ पर जो ब्राह्मण आदि निवास करते हैं ॥९४॥ हे सुरोत्तमे ! उन मनुष्यों को भी म्लेच्छ के ही समान वेद वाह्य मानना चाहिए ॥९५॥ अतएव वे अधर्म स्वरूप और अत्यन्त पापी हैं । सन्ध्या नहीं करने वाले ब्राह्मणों के समान वेद वाक्य है ॥९६-९७॥ हे सुरेश्वर ! ऐसा वे ही हैं जो उस पश्चिम की नगरी में निवास करते है । केवल नृसिंह तीर्थ ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है । उसका नाम मात्र सुनकर सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥९८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत नृसिंह की उत्पत्ति वर्णन नामक एक सौ चौहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७४॥

एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

भगवन्सर्वतत्त्वज्ञ ! श्रीविष्णोस्त्वत्प्रसादतः । श्रुता नानाविधाधर्मालोकनिस्तारहेतवः ॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि गीतामाहात्म्यमप्यहम्। श्रुतेन येन देवेश हरौभक्तिर्विवर्धते ॥
तद्वदस्वाऽधुना देव ! यद्यहं तव वल्लभा ॥२॥

ईश्वर उवाच

असतीपुष्पसङ्काशं खगेन्द्रासनमच्युतम् । शयानं शेषशय्यायां महाविष्णुमुपास्महे ॥३॥
कदाचिदासने रम्ये सुखासीनं मुरद्विषम्। आनन्दयित्री लोकानां लक्ष्मीः पप्रच्छ सादरात् ॥४॥

श्रीरुवाच

शयालुरसि दुग्धाब्धौ भगवन्केन हेतुना। उदासीनइवैश्वर्यं जगन्ति स्थापयन्निव ॥५॥

ईश्वर उवाच

इति देव्या वचः श्रुत्वा मुरभिज्ज्ञानगर्भितम् ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा विस्मयस्मेरलोचनः ॥६॥

श्रीभगवानुवाच

नाऽहं सुमुखि निद्रालुर्निजं माहेश्वरं वपुः। दृशातत्त्वानुवर्त्तिन्यां पश्याम्यन्तनिमग्नया॥७॥
कुशाग्रया धिया देवि यदन्तयोगिनो हृदि। पश्यन्ति यच्च वेदानां सारंमीमांसते भृशम्॥८॥
तदेवमक्षरं ज्योतिरात्मरूपमनामयम्। अखण्डानन्दसंदोहनिस्पन्दि द्वैतवर्जितम्॥९॥
यदाश्रया जगद्वृत्तिर्यन्मया चाऽनुभूयते। न येन रहितं किंचिज्जगत्तत्वं चराचरम् ॥१०॥

श्रीमद्भगवद् गीता के प्रथम अध्याय का माहात्म्य

पार्वतीजी ने कहा— हे सभी तत्त्वों के ज्ञाता प्रभो ! आपकी कृपा से मैंने भगवान् विष्णु सम्बन्धी अनेक धर्मों को सुना है जो लोक का उद्धार करने वाले हैं ॥१॥ अब मैं गीता का उत्तम माहात्म्य सुनना चाहती हूँ। हे देवेश ! उसके सुन लेने से भक्ति बढ़ती है। हे देव ! यदि मैं आपकी बल्लभा हूँ तो उसे आप मुझे सुनाइये ॥२॥ **ईश्वर ने कहा—** अतसी (अलसी) के पुष्प के समान सुन्दर कान्ति वाले और गरुडवाहन शेषशय्या पर सोये हुए अच्युत महाविष्णु भगवान् की हम उपासना करते हैं ॥३॥ एक बार मुर नामक राक्षस के शत्रु भगवान् जब सुख पूर्वक बैठे थे उस समय लोकों को आनन्द देने वाली लक्ष्मीजी ने आदर पूर्वक उनसे पूछा ॥४॥ **श्रीदेवी ने कहा—** हे भगवन् ! आप किस कारण से क्षीर सागर में शयन करते हैं ऐश्वर्य की प्राप्ति करके उदासीन के समान जगत् को स्थापित करके आप रहते है ॥५॥ **शङ्करजी ने कहा—** श्रीदेवी के इस ज्ञान पूर्ण वचन को सुनकर श्रीभगवान् विस्मय से विकसित नेत्र वाले होकर कहे ॥६॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** सुन्दरि ! मैं सोते नहीं रहता हूँ अपनी तत्त्वानुवर्ति नेत्रों को मूंद कर देखता हूँ। देवि योगिजन अपनी कुशाग्र बुद्धि के द्वारा अपने हृदय में जिस तत्त्व को देखते हैं उसी को मैं देखता हूँ। बहुत विचार करके जो वे वेदों के सार को देखते हैं ॥७-८॥ वही जो निर्दोष अक्षर ज्योति, अखण्ड आनन्द को प्रवाहित करने वाले जो अभेदमय है। जिसके अधीन संसार की वृत्ति का

निर्मथ्य बहुधालोक्य वेदशास्त्राम्बुधिं सुधीः ।
द्वैपायनो यदासाद्य गीताशास्त्रं निसृष्टावान् ॥११॥
यदाऽस्थायमहानन्दमानन्दीकृतमानसः । निद्रालुरिव देवेशि दुग्धाब्धौ प्रतिभामि वै ॥१२॥
इतितस्य मुरारातेर्मितमानन्दवद्वचः । साहर्षोत्फुल्ललोलाक्षीलक्ष्मीः श्रुत्वाविसिस्मिये॥१३॥

श्रीरुवाच

भवानेन हृषीकेशध्येयोऽस्ति यमिनां सदा । तस्मात्त्वत्तः परंयत्तछ्रोतुं कौतूहलं हि मे॥१४॥
चराचराणां लोकानां कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः ।
यथास्थितस्ततोऽन्यस्तवं यदि मां बोधयाऽच्युत ! ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच

मायामयमिदं देवि वपुर्मे न तु तात्त्विकम् । सृष्टिस्थित्युपसंहारक्रियाजालोपबृंहितम् ॥१६॥
अतोऽन्यदात्मनो रूपं द्वैताद्वैतविवर्जितम् । भावाभावविनिर्मुक्तमाद्यन्तरहितं प्रिये ! ॥१७॥
शुद्धसंवित्प्रभालाभं परानन्दैकसुन्दरम् । रूपमैश्वरमात्मैक्यागम्यं गीतासं कीर्तितम् ॥१८॥
इत्याकर्ण्य वचो देवि देवस्याऽमिततेजसः । शङ्कमानाऽऽह वाक्येषु परस्पर विरोधिषु ॥१९॥
स्वयं चेत्परमानन्दमबाङ्मनसगोचरम् । कथं गीतावोधयति इति मे च्छिन्धि संशयम् ॥२०॥

ईश्वर उवाच

श्रियः श्रुत्वा वचो युक्तमितिहासपुरःसरम् । आत्मनुगामिनीं दृष्टिं गीतां बोधितवान्प्रभुः ॥२१॥
अहमात्मा परेशानि परापरविभेदतः ।
द्विधा ततः परः साक्षी निर्गुणो निष्कलः शिवः ॥२२॥

अनुभव होता है । जिससे रहित जगत् का कोई भी तत्त्व चराचर में नहीं है ॥९-१०॥ वेद शास्त्र के रूप में समुद्र का मन्थन करके विद्वान् महर्षि व्यास ने गीताशास्त्र की सृष्टि की ॥११॥ जिस महा आनन्द को अपनाकर आनन्दित अन्तःकरण वाला मैं क्षीर सागर में सोते हुए के समान प्रतीत होता हूँ ॥१२॥ इस तरह से श्रीभगवान् के संक्षिप्त तथा आनन्दमय वचन को सुनकर हर्ष से विकसित तथा चञ्चल नेत्रों वाली लक्ष्मीजी ने कहा । **श्रीदेवी ने कहा—** हे हृषीकेश ! योगिजन तो सदैव आपका ही ध्यान करते हैं अतएव आपसे भी श्रेष्ठ तत्त्व होने के कारण मैं उसे जानना चाहती हूँ । मुझे इस विषय में बड़ा ही कौतूहल है॥१३-१४॥ आप चराचरात्मक सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि और संहार करने वाले हैं । यदि आप से भी भिन्न श्रेष्ठ तत्त्व है तो अच्युत उसे आप बतलायें ॥१५॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे देवि ! मेरा यह शरीर मायामय हैं, तात्त्विक नहीं है । यह सृष्टि, स्थिति तथा संहार रूपी क्रिया जाल से बँधा हुआ है ॥१६॥ इससे भिन्न मेरा जो रूप है वह भेद तथा अभेद दोनों से रहित है । वह भाव तथा अभाव एवं आदि और अन्त से रहित है ॥१७॥ वह शुद्ध ज्ञान स्वरूप तथा सुन्दर एवं परमानन्द स्वरूप है । वह मेरा रूप गीता शास्त्र में वर्णित है और वह ईश्वर तथा आत्मा के ऐक्य स्वरूप है ॥१८॥ अमित ओजस्वी श्रीभगवान् की इस वाणी को सुनकर लक्ष्मीजी इन परस्पर विरोधी वाक्यों को सुनकर उसके विषय में शङ्का करती हुयी कहीं ॥१९॥ यदि वह स्वयं परमानन्द स्वरूप तथा वाणी और मन का विषय नहीं है तो उसको गीता के वाक्य कैसे बतलाते हैं ? मेरे इस संशय को आप दूर करें । **शिवजी ने कहा—** लक्ष्मीजी के युक्ति युक्त

अपरः पञ्चवक्त्रोऽहं द्विधा तस्याऽपि संस्थितिः ।
शब्दार्थभेदतो वाच्यो यथाऽऽत्माऽहं महेश्वरः ॥२३॥
गीतानां वाक्यरूपेण यन्निरुच्छिद्यते दृढः । मदीयपाशबन्धोऽयं संसारविषयात्मकः ॥२४॥
यदाभ्यासपराधीनौ पञ्चवक्त्रमहेश्वरौ । इति तस्य वचः श्रुत्वा गीतासारमहोदधेः ॥२५॥
इदं परविभेदेन बुध्यते भवभीरुभिः । तमपृच्छदिदं लक्ष्मीरङ्गप्रत्यङ्गसंस्थितम् ॥
माहात्म्यं सेतिहासं च सर्वं तस्यै न्यवेदयत् ॥२६॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु सुश्रोणि ! वक्ष्यामि गीतासु स्थितिमात्मनः ।
वक्त्राणि पञ्च जानीहि पञ्चाध्यायाननुक्रमात् ॥२७॥
दशाध्याया भुजाश्चैक उदरं द्वौ पदाम्बुजे । एवमष्टादशाध्याया वाङ्मयी मूर्तिरैश्वरी ॥२८॥
विज्ञेया ज्ञानमात्रेण महापातकनाशिनी । अतोऽध्यायं तदर्धं वा श्लोकमर्द्धं तदर्धकम्॥
अभ्यस्यति सुमेधा यः सुशर्मेव समुच्यते ॥२९॥

श्रीरुवाच

सुशर्मानामको देव ! किञ्जातीयःकिमात्मकः ।
कुत्रत्यस्तस्य वै मुक्तिःकेनाऽजायतहेतुना ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

सुशर्मा नाम दुर्मेधाः सीमा पापात्मनामभूत ।
जातोऽनात्मविदाम्वंशे विप्राणां क्रूरकर्मणाम् ॥३१॥

वचन को सुनकर श्रीभगवान् ने इतिहास पूर्वक आत्मा का अनुसरण करने वाली दृष्टि स्वरूप गीता का ज्ञान कराये ॥२०-२१॥ हे परेशानि लक्ष्मीजी ! मैं ही आत्मा और परमात्मा हूँ । उसके अतिरिक्त मैं साक्षी, निर्गुण, निष्कल और शिव स्वरूप हूँ ॥२२॥ मैं दूसरा पञ्चवक्त हूँ वह भी दो प्रकार का है । मैं शब्द तथा अर्थ के द्वारा वाच्य हूँ । मैं आत्मा और महेश्वर हूँ ॥२३॥ गीता के वाक्यों के द्वारा जिसका उच्छेद किया जाता है, वह मेरा संसार विषयक पाशबन्ध है ॥२४॥ पञ्च वक्त्र और महेश्वर दोनों अभ्यास के अधीन है। इस तरह के श्रीभगवान् के वाक्य को सुनकर जो गीता शास्त्र रूपी महासागर का सार है ॥२५॥ संसार के भय से भयभीत रहने वाले स्व और पर के भेद से जानते हैं । उसको पूर्णरूप से विद्यमान गीता शास्त्र के माहात्म्य तथा इतिहास के बारे में लक्ष्मीजी ने पूछा और श्रीभगवान् ने लक्ष्मीजी को पूर्ण रूप से बतलाया ॥२६॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे सुन्दरि ! मैं गीता शास्त्र में अपनी स्थिति को बतलाया हूँ उसे तुम सुनो । तुम गीता के क्रमशः पाञ्च अध्यायों को उसका मुख जानो ॥२७॥ फिर उसके दश अध्याय भुजा हैं । एक उसका उदर है । दो अध्याय उसके दोनों चरण हैं । इस तरह गीता के अठारहो अध्याय ईश्वर परमात्मा की वाङ्मयी मूर्ति है ॥२८॥ यह ज्ञान मात्र से पापों की विनाशिका है । अतएव एक अध्याय या आधा अध्याय या एक श्लोक या आधा श्लोक या उसके भी आधे का अभ्यास जो करता है वह सुशर्मा के समान कहा जाता है ॥२९॥ **श्रीदेवी ने कहा—** हे देव ! सुशर्मा किसका नाम है । उनकी जाति कौन सी थी । उनका स्वरूप क्या था ? उसकी मुक्ति कहाँ हुयी और किस साधन से

न ध्यानं न जपो होमो न चैवाऽतिथिपूजनम् ।
केवलं विषयेष्वेव बलाढ्येनाऽभिवर्त्तते ॥३२॥
कृषिकर्मरतो नित्यं पर्णजीवी सुराप्रियः। मांसोपहारी सुचिरं कालमेवं निनाय सः ॥३३॥
आनेतुकामः पर्णानि पर्यटन्नृषिवाटिकाम् । ततः स तत्र दष्टोऽभूत्कालसर्पेण मूढधीः ॥३४॥
कालधर्मं समासाद्य गत्वा च निरयान्बहून् । पुनरागत्य मर्त्येषु बलीवर्दत्वमीयिवान् ॥३५॥
पङ्गुना केन विक्रीतः स स्वजीवनहेतवे। नयन्पृष्ठेन शरदः सप्ताऽष्टौ कष्टतोऽनयत् ॥३६॥
कदाचित्पङ्गुना सोऽपि चिरमावर्त्तितो जवात् ।
पपात तरसा भूमौ मूर्च्छां च प्रतिपेदिवान् ॥३७॥
विकलाङ्गो विवृत्ताक्षः फेनसन्ततिमुद्गिरन् । न जीवति न मृत्युं वा प्रतिप्रेदे स्वकर्मणा ॥३८॥
कौतुकाकृष्टलोकेऽस्मिंस्तस्मिञ्जनसमागमे । श्रेयसेतस्य सुकृति कश्चित्पुण्यं वितीर्णवान् ॥३९॥
चर्माणि स्वान्यनुस्मृत्य ददुरन्ये च केवन। गणिका काऽपि तत्रस्था लोकयात्रानुवर्तिनी॥४०॥
अज्ञातनिजपुण्या सा किंचिदुत्सृष्टवत्यभूत्। परेतनगरीमादौस नीतः कालकिङ्करैः ॥४१॥
गणिकादत्तपुण्येन पुण्यवानितिमोचितः। पुनरागत्य भूलोकं कुलशीलवतां गृहे ॥४२॥
द्विजन्मनामसौ जज्ञे जातिं स्वामनुसंस्मरन्। काले महति जिज्ञासुः श्रेयः स्वाज्ञाननोदनम्॥४३॥
उपेत्य गणिकां दत्तं ख्यापयित्वा स पृष्टवान् ।
आचष्ट मां शुको नित्यं पञ्जरस्थः पठत्यसौ ॥४४॥

हुयी ॥३०॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** मूर्ख सुशर्मा पापियों की पराकाष्ठा था । वह अज्ञानी तथा क्रूरकर्म करने वाले ब्राह्मणों के वंश में उत्पन्न हुआ था ॥३१॥ वह ध्यान, जप, होम तथा अतिथि पूजन नहीं करता था और अधिक बलवान् होने के कारण विषयों में ही आसक्त रहता था ॥३२॥ सदा कृषि करताा था, पत्तों को बेंचकर अपनी जीविका चलाता था । मदिरा उसको प्रिय थी । वह मांस खाता था, इस तरह से उसके वहुत अधिक समय बीत गये ॥३३॥ वह पत्तों को लाने के लिए ऋषि की वाटिका में घूम रहा था, उसी समय उसको काल सर्प ने काट लिया ॥३४॥ उसकी मृत्यु होने के बाद वह अनेक नरकों में गया । फिर संसार में आकर वह बलिवर्द (लदुआ बैल) हो गया ॥३५॥ किसी लङ्गड़े ने उसको अपनी जीविका चलाने के लिए उसे खरीद लिया । वह आनी पीठ पर काठ लेकर सात आठ वर्ष वड़े कष्ट से बिताया ॥३६॥ एक बार लङ्गड़े ने उसको देर तक वेग से दौड़ाया । उससे वह पृथिवी पर गिरकर मूर्छित हो गया ॥३७॥ उसका शरीर व्याकुल था आँखे खुल गयी थीं और वह फेन उगल रहा था । वह अपने कर्मों के फल स्वरूप जीता था न मरता था ॥३८॥ लोगों के जुट जाने पर लोग उसको कौतुक पूर्वक देख रहे थे । उसके कल्याण के लिए किसी पुण्यवान् ने उसको पुण्य प्रदान किया । कुछ लोगों ने अपने कर्मों का स्मरण करके उसे प्रदान किया । कोई गणिका जो अपनी लोक यात्रा चलाती ॥३९-४०॥ वह अपने अज्ञात पुण्यों को प्रदान की । यमराज के दूत उसको यमराज की नगरी में ले गये । लेकिन गणिका के पुण्य के कारण उसको पुण्यवान् जान कर छोड़ दिये । फिर वह संसार में आकर सद्वंश तथा सत्शील सम्पन्न ब्राह्मणों के घर में जन्म लिया । वह अपने पूर्व जन्मों का स्मरण करता था । समय से अपने अज्ञान को दूर करने वाले ज्ञान का जिज्ञासु हो गया ॥४१-४३॥ वह गणिका के द्वारा प्रदत्त ज्ञान को वतलाकर

तेन पूतान्तरात्माहं तत्पुण्यं पर्यकल्पयम्। ताभ्यां शुकस्तु कृष्टोऽसौ व्याख्यातुमुपचक्रमे॥४५॥
आख्यायिकां पुरावृत्तां स्मृत्वा जातिं निजामपि ॥४६॥

शुक उवाच

पुरा विद्वानहं भूत्वा वैदुष्यस्मयमोहितः। रागद्वेषेण विद्वत्सु गुणवत्स्वपिं मत्सरी ॥४७॥
कालेनाऽहं ततः प्रेत्य प्राप्य लोकाञ्जुगुप्सितान् ।
सोऽहं करिकुलेऽभूवं सद्गुरावतिनिन्दकः ॥४८॥
काले धर्मणि दुष्कर्मा पितृभ्यां च वियोजितः ।
निदाघेऽध्वनि सन्तप्ते ह्यानीतो मुनिपुङ्गवैः ॥४९॥
पालितः पञ्जरस्थोऽहमाश्रमे महदाश्रये। आवर्तयद्भ्यो गीतानामाद्यमध्यायमादरात् ॥५०॥
श्रुत्वा ऋषिकुमारेभ्यः पाठं चकारवं मुहुः। एतस्मिन्नन्तरे कश्चिद्वागुरिश्चौरकर्मकृत् ॥
मामाहृत्य तदाऽक्रीणादिति वृत्तमुदाहृतम् ॥५१॥

श्रीभगवानुवाच

अध्यायोऽयं पुराऽम्नातो येन पापमनोदयम् ।
पूतान्तरात्मा येनाऽसौ मोचितश्च द्विजोत्तमः ॥५२॥
एवमन्योन्यमाभाष्य तन्माहात्म्यं प्रशस्य च। ते जपन्तोऽनिशं धीरामुक्तिं गेहे प्रपेदिरे ॥५३॥

पूछा। उसने कहा कि पिञ्जरे में स्थित शुक पक्षी पढ़ता है ॥४४॥ उसी के कारण मैं पुण्यात्मा हूँ उसे ही मैं पुण्य मानती हूँ। उन दोनों शुक को पिंजरे से निकाल कर उससे पूछा तो उसने उसकी व्याख्या करना प्रारम्भ किया ॥४५॥ वह अपने पूर्वजन्म की कथा को तथा जीवन को स्मरण करके कहा ॥४६॥ **शुक पक्षी ने कहा—** पूर्व जन्म में मैं विद्वान् था किन्तु वैदुष्य के गर्व से मोहित हो गया। विद्वानों से भी राग द्वेष करता था और गुणवान् से ईर्ष्या करता था ॥४७॥ समयानुसार मेरी मृत्यु हो गयी और निन्दित लोकों में मैं गया। अपने सद्गुरु की अत्यन्त निन्दा करने वाला मैं हाथी हुआ ॥४८॥ पापी मैं समयानुसार अपने माता-पिता से अलग हो गया श्रेष्ठ मुनियों ने मुझे गर्मी के संतप्त मार्ग में लाया॥४९॥ उसके बाद मुझे महापुरुषों के आश्रम में पिञ्जरों में रखकर पाला गया। वे लोग आदर पूर्वक गीता के पहले अध्याय का अभ्यास करते थे ॥५०॥ ऋषिकुमारों से सुनकर मैंने बार-बार उसका पाठ किया। उसी समय चोरी करने वाले बहेलिया ने मुझको चुराकर बेंच दिया। इस तरह से मैंने अपना वृत्तान्त सुनाया ॥५१॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** यह पहला अध्याय है इसके कारण पाप सदा के लिए विनष्ट हो जाता है। जिससे पवित्र आत्मा वाला वह ब्राह्मण मुक्त हो गया ॥५२॥ इस तरह दोनों एक दूसरे से कहकर और उसके माहात्म्य की प्रशंसा करके उसका निरन्तर जप करते हुए वे दोनों अपने घर में ही मुक्ति प्राप्त कर

तस्मादध्यायमाद्यं यः पठते शृणुते स्मरेत् । अभ्यसेत्तस्य न भवेद्भवाम्भोधिर्दुरुत्तरः ॥५४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे सतीश्वरसम्वादे गीतामाहात्म्ये पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय: ॥१७५॥

एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

आदिमस्यैवमाख्यानमुदीरितमनुत्तमम् । शृणु माहात्म्यमन्येषामध्यायानामपीन्दिरे ! ॥१॥
दक्षिणस्यां दिशि श्रीमानसीदाम्नायवादिनाम्। पुरे पुरन्दराह्वाने देवशर्मेति विश्रुतः ॥२॥
अर्चितातिथिराम्नातो वेदशास्त्रविशारदः। आहर्ता क्रतुसङ्घानां तापसानां प्रियः सदा ॥३॥
देवान्सन्तर्पयामास हव्यैर्हुतवहं चिरम्। न चोपलेभे धर्मात्मा शान्तिमेकान्तिकीं ततः ॥४॥
निःश्रेयसं स जिज्ञासुस्तापसाननुवासरम्। सिषेवे सत्यसङ्कल्पानानल्पैरेव कल्पकैः ॥५॥
एवमाचरतस्तस्य काले महति गच्छति । मुक्तकर्मा ततः कश्चित्प्रादुरासीत्पुरा भुवि ॥६॥
अनुभूतनिराकाङ्क्षी नासाग्रन्यस्तलोचनः । शान्तचेताः परं ब्रह्म ध्यायन्नानन्दनिर्भरः ॥७॥
पादौ तस्योपसंगृह्य प्रणतेनाऽन्तरात्मना। चकार विधिवत्तस्मै विद्वानतिथिसत्क्रियाम्॥८॥

लिए॥५३॥ अतएव जो इस प्रथम अध्याय को पढ़ता, सुनता और स्मरण करता है, तथा उसका अभ्यास करता है वह इस दुस्तर संसार सागर में नहीं गिरता है ॥५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवदान्तर्गत गीता के प्रथम अध्याय के माहात्म्य वर्णन करने वाले एक सौ पचहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७५।।

वेद में विख्यात गीता के द्वितीय अध्याय का माहात्म्य

श्रीभगवान् ने कहा— मैंने पहले अध्याय की कथा कहा । हे लक्ष्मि ! अब दूसरे भी अध्याय का माहात्म्य सुनो ॥१॥ दक्षिण दिशा मे वेद वादियों का ऐश्वर्य सम्पन्न पुरन्दर पुर नामक नगरी में देवशर्मा नामक ब्राह्मण विख्यात थे ॥२॥ वे अतिथियों का पूजन करते थे वेदाध्ययन करते थे और वेद शास्त्र में निपुण थे । वे अनेकों यज्ञों को करने वाले तथा तपस्वियों के प्रिय थे ॥३॥ वे बहुत दिनों तक हविष्यान्न से अग्नि में होम करके देवताओं को तृप्त किए किन्तु वे धर्मात्मा एकान्तिक शान्ति को नहीं प्राप्त कर सके॥४॥ वे मुक्ति प्राप्ति के साधन को जानने के जिज्ञासु बनकर प्रतिदिन तपस्वियों की सेवा बहुत कल्पों तक किए ॥५॥ इस तरह से उनके आचरण करते हुए बहुत समय बीत गये उसी समय पृथिवी पर मुक्त कर्म उत्पन्न हुए ॥६॥ निराकांक्षता का अनुभव करने से वे अपनी नासिकाओं के अग्रभाग में नेत्रों को लगाये रहते थे । शान्तचित्त वाले परब्रह्म का ध्यान करते हुए आनन्द से परिपूर्ण रहते थे ॥७॥ उनके

तं च शुद्धेन भावेन परितुष्टं तपस्विनम्। प्रणतः परिपप्रच्छ निर्वाणस्थितिमात्मनः ॥९॥
स तस्मै कथयामास पुरेऽसौ पुरनामनि। मित्रवन्तमजापालमुपदेष्टारमात्मवित् ॥१०॥
स चाऽभिवन्द्य तत्पादावेत्य सौपुरमूर्जितम्। तस्योत्तरदिशो भागे ददर्श विपुलं वनम् ॥११॥
मारुतान्दोलितानेककुसुमामोदसुन्दरम् । उन्मत्तभ्रमरोद्गीतनादापूरितदिङ्मुखम् ॥१२॥
तस्मिन्वने सरित्तीर निषीदन्तं शिलातले। मित्रवन्तं ददर्शाऽथ सानन्दस्तिमितेक्षणम् ॥१३॥

अपिस्वाभाविकंवैरंहित्वाऽन्योन्यं विरोधिभिः ।
सत्त्वैरावृतमुद्यानेमन्दस्यन्दनभास्वति ॥१४॥

शान्तेषु मृगयूथेषु दशानन्दमनोज्ञया। कृपानुविद्धयाभूमिं निषिञ्चन्तमिवामृतम्॥१५॥
उपेत्य विनयेनामुन्मनाः प्रीतमानसः। किंचिदानम्रशिरसा तेनाऽपि स तु सत्कृतः ॥१६॥
उपतस्थे ततो विद्वान्मित्रवन्तमनन्यधीः। समाप्तध्यानकालं स पर्यपृच्छत्समाहितः॥१७॥

देवशर्मा वाच

आत्मानं वेत्तुमिच्छामि तदमुष्मिन्मनोरथे। लब्धसिद्धिमुपायं मामुपदेष्टुं त्वमर्हसि॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

परामृश्य क्षणं सोऽपि मित्रवानिदमब्रवीत् ॥१९॥

मित्रवानुवाच

विद्वन्विद्धि पुरावृत्तमुच्यमानमिदं मया। अस्ति गोदावरीतीरे प्रतिष्ठानाभिधं पुरम् ॥
तत्र दुर्दमनामाऽऽसीदन्वये च मनीषिणाम् ॥२०॥

तत्राऽस्ति विक्रमो नाम सेव्यमानो महीपतिः ।
दानानि प्रत्यहंगृह्णन्वर्त्तते उदरम्भरिः ॥२१॥

चरणों को पकड़कर प्रणत मन से उन्होंने उनकी सविधि अतिथि सत्कार किए ॥८॥ शुद्ध भाव से संतुष्ट उन तपस्वी से उन्होंने आत्मा के निर्वाण के विषय में पूछा ॥९॥ उन्हाने उन ब्राह्मण को बतलाया कि पुर नामक नगर में मित्रवान् नामक बकरी पालने वाले आत्मोपदेश करते हैं ॥१०॥ उनको प्रणाम करके वे सौपुर में आये । उसके उत्तर दिशा में उन्होंने विस्तृत वन को देखा ॥११॥ वह वन वायु से हिलाये गये अनेक पुष्पों की सुगन्धि से सुन्दर बना था । वहाँ पर मदमत्त भौरों की गुञ्जन से दिशाएँ मुखरित थीं॥१२॥ उस वन में नदी के किनारे शिला के ऊपर बैठे हुए तथा आनन्द से स्तम्भित नेत्र वाले मित्रवान् को उन्होंने देखा ॥१३॥ जिन सबों ने स्वाभाविक बैर त्याग दिया था ऐसे जीव उनको घेर कर बैठे थे उस वन में सूर्य की गति मन्द थी ॥१४॥ मृग समूह शान्त था दश आनन्द से मनोहर तथा कृपा से युक्त वहाँ की भूमि को वे अमृत से सिंच रहे थे ॥१५॥ नम्रता पूर्वक उनके पास आकर उदासीन मन वाले वे प्रसन्न मन से कुछ शिर झुकाकर उन्होंने उनका सत्कार किया ॥१६॥ अनन्य मना वे उनके पास आकर उपस्थित हुए। ध्यान काल के समाप्त हो जाने पर उन्होंने सावधानी पूर्वक पूछा ॥१७॥ **देवशर्मा ने कहा—** मैं आत्मा को जानना चाहता हूँ । मेरे इस मनोरथ के विषय में आप सिद्ध उपाय का उपदेश करें ॥१८॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** क्षण भर विचार करके मित्रवान् बोले । **मित्रवान् ने कहा—** हे विद्वन् ! आप अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त को जानें मैं उसे बतला रहा हूँ । गोदावरी नदी के तट पर प्रतिष्ठान पुर नामक नगर है । वहाँ

कालेन कालपाशेन वद्धानीतो यमालयम् । निरयेषु समग्रेषु यातनाअनुभूय च ॥२२॥
कस्मिंश्चित्स कुले जातो दुर्वृत्तानां द्विजन्मनाम् ।
भवान्तरानुवर्तिन्या विद्यया स पुरस्कृतः ॥२३॥
उपयेमे दुराधर्षां कन्यकामधमे कुले । कालेन सा वयो हित्वा शैशवं यौवनं ययौ ॥२४॥
पीनस्तनी च सुश्रोणी मदविह्वललोचना । पतिं न सेहे दुर्वृत्तं चकमे स्वपतीन्परान् ॥२५॥
वृत्तिमाहर्तुकामेऽस्मिन्निर्गता सा पुराद्बहिः । सङ्गता कामुकेनाऽसौ चिरं चाण्डालजन्मना ॥२६॥
दधे गर्भमसौ तस्मात्सा च कन्योपपद्यते । सैव भार्याऽपि तस्यासीत्पूर्वपापप्रसङ्गतः ॥२७॥
सैववृद्धा ततः काले डाकिनी समजायत । कुसङ्गात्कुमतिर्जाता दुष्टनारीप्रसङ्गतः ॥२८॥
चखाद व्याधितं व्याधमसृगास्वादलालसा । भ्रमन्ती विपिनेघोरे जनैदृष्ट्वा बहिष्कृता ॥२९॥
परेतलोकमासाद्य व्याधौ व्याघ्रोऽन्यवर्त्तत । नरकान्दारुणान्भुत्तवा जीवहिंसाप्रभावतः ॥३०॥
सापि कालेन दुष्टात्मा मृत्युवेगमुपागता । निरयानेत्य दुर्धर्षानजाऽजायतमद्गृहे ॥३१॥
तामन्या अप्यहं विद्वन्पालयन्काननान्तरे । अपश्यन्द्वीपिनं घोरं जिघांसन्तमिवाऽखिलम् ॥३२॥
समालोक्य तमायन्तं भयेन प्रपलायितम् । अजायूथं परित्यज्य मया मरणभीरुणा ॥३३॥
उपदुद्राव स द्वीपी पूर्ववैरमनुस्मरन् । अजा तु तत्समीपेऽगात्सत्वरं सीरदन्तिके ॥३४॥
तत्र सा भयमुत्सृज्य हित्वा वैरमनर्गला । अवतस्थे स च द्वीपी तूष्णीमासीदमत्सरः ॥३५॥
तं तथाविधमालोक्य सा वक्तुपचक्रमे । द्वीपिन्नभीप्सितं भुङ्क्ष्य मां समुद्धृत्य सादरः॥३६॥

मनीषियों के वंश में दुर्दम नामक पुरुष थे ॥१९-२०॥ वहाँ पर विक्रम नाम राजा सुवेवित थे । वे प्रतिदिन दानों को लेकर अपना पेट भरते थे ॥२१॥ समय से कालपाश में काल उनको बाँधकर यमलोक लाया। सभी नरकों में यातना भोगकर ॥२२॥ किसी दुर्वृत ब्राह्मण के वंश में उनका जन्म हुआ । वे जन्मान्तर की विद्या से युक्त थे ॥२३॥ उन्होंने अधम वंश की कन्या दुराधर्षा से विवाह किया । समयानुसार वह अपनी बाल्यावस्था को छोड़कर युवती हो गयी ॥२४॥ उसके स्तन मोटे थे सुन्दर कमर थी और मद से चञ्चल उसके ने थे । उसने अपने दुराचारी पति को नही वर्दास्त किया और दूसरों को अपना पति बना लिया ॥२५॥ वह अपनी वृत्ति को प्राप्त करने के लिए गाँव से बाहर गयी और वह चाण्डाल पति के साथ सङ्गति कर ली ॥२६॥ उसने उससे गर्भ धारण किया और उससे कन्या उत्पन्न हुयी । वही पूर्व पाप के कारण उसकी पत्नी हुयी ॥२७॥ समयानुसार वृद्धा होकर डाकिनी हो गयी । दुष्ट नारी के प्रसङ्ग के कारण उसकी बुद्धि खराब हो गयी ॥२८॥ माँस के आस्वाद की लालसा से उसने रोगी व्याध को खा लिया । उसको वन में घूमती हुयी देखकर लोगों ने उसका बहिष्कार कर दिया ॥२९॥ व्याधि के कारण मरने के बाद वह व्याघ्र को लौटा दिया । जीव हिंसा के प्रभाव से भयङ्कर नरकों को भोगकर वह दुष्टा समयानुसार मर गयी । भयङ्कर नरकों में जाकर वह मेरे घर में बकरी हुयी ॥३०-३१॥ हे विद्वन् ! उस बकरी को वन में पालते हुए मैंने भयङ्कर सिंह को देखा जो सबों को मार देना चाहता था ॥३२॥ उसको आते हुए देखकर मैं बकरी समूह को छोड़कर मृत्यु के भय से भाग चला ॥३३॥ अपने पूर्वजन्म के वैर को याद करके वह सिंह मुझको दौड़ाया । उस सिंह के समीप वह बकरी शीघ्रता से आयी ॥३४॥ वहाँ पर वह वैर तथा अनावश्यक वैर को त्यागकर खड़ी हो गयी । वह सिंह भी मत्सर रहित होकर चुपचाप खड़ा था॥३५॥

नेयं भवति ते बुद्धिः कथं वैरमतिं त्यजः। इत्याकर्ण्य तदा वाक्यं प्राह द्वीपी विमत्सरः ॥३७॥
स्थानेऽस्मिन्मे गतो द्वेषः क्षुत्पिपासा च निर्ययौ ।
न प्रार्थयामि तेन त्वां समीपे समुपस्थिताम् ॥३८॥
सेवमुक्ता पुनःप्राह जानाऽहं निर्भयाकथम्। किमत्र कारणं वेत्सि यदि मे वक्तुमर्हसि ॥३९॥
एवमुक्ता पुनर्द्वीपी तामाहाऽजां न वेदम्यहम् ।
पुरोगतमिमं प्रष्टुं महान्तमितिनिर्गतौ ॥४०॥
ताभ्यामुभाभ्यामागत्य पृष्टोऽहं बहुविस्मयः। अहं च सहितस्ताभ्यामपृच्छंवानरेश्वरम्॥४१॥
मयापृष्टः स विप्रेन्द्रमब्रवीत्सादरं कपिः। श्रृणु वक्ष्याम्यजापालवृत्तमत्र पुरातनम् ॥४२॥
इदमायतनं पश्य पुरो वनगतं महत्। अत्र त्र्यम्बकलिङ्गं हि द्रुहिणेन प्रतिष्ठितम् ॥४३॥
सुकर्मानाम मेधावी पुर्यपास्ते तपश्चरन्। वनपुष्पाण्यपाहृत्यसुरपूज्यं पुरोभवम् ॥४४॥
संस्नाप्य सरिदम्भोभिः केवलं कर्मणा वसन् ।
काले महति तस्यागादतिथिःकश्चिदन्तिकम् ॥४५॥
उपाहृत्य फलाहारं स तस्मै पर्यकल्पयत्। तेनाऽऽतिथ्येन सम्प्रीतः सुकर्माणमभाषत॥४६॥
किमिदं कर्मणोमूलं फलं भुत्तवा तु तिष्ठसि ।
गतानुगतया वृत्त्या किं वा केवलमीहसे ॥४७॥
स एवमुक्तः प्रायेणप्रीतेनाऽऽत्मविदा तदा। प्रत्युवाच वचः स्पष्टमात्मनो हितमुत्तमम् ॥४८॥
विद्वन्न वेद्मि तत्त्वेन फलमेतस्य कर्मणः। बुभुत्सया परः शम्भुः सेव्यते केवलं यया ॥४९॥

उसको उस प्रकार का देखकर बकरी कहने लगी; हे सिंह ! तुम मुझको प्रेम पूर्वक खा लो यही तुमको अभिप्रेत है ॥३६॥ तुम्हारी बुद्धि ऐसी नहीं है तुमने वैर का त्याग क्यों किया ? यह सुनकर मत्सर रहित होकर सिंह ने कहा ॥३७॥ इस स्थान पर मेरा द्वेष समाप्त हो गया और भूख प्यास भी समाप्त हो गये। इसलिए समीप में आयी हुयी तुमको मैं खाना नहीं चाहता हूँ ॥३८॥ इस तरह से कहने पर बकरी ने फिर कहा मैं निर्भय क्यों हो गयी हूँ । इसका कारण क्या है ? यदि आप इसे जानते हो तो बतलाइये॥३९॥ इस तरह से कहने पर उस सिंह ने कहा मैं इसका कारण नहीं जानता हूँ । सामने विद्यमान महान पुरुष से पूछने के लिए वे दोनों गये ॥४०॥ वे दोनों आकर अत्यन्त आश्चर्य के साथ मुझसे पूछे मैंने भी उन दोनों के साथ वानरेश्वर से पूछा । मेरे द्वारा पूछे जाने पर उस वानरेश्वर ने कहा हे मंडेरिए ! सुनो यहाँ पर जो पहले घटना हुयी उसे मैं कहता हूँ ॥४१-४२॥ तुम इस वन में विद्यमान इस महान् गृह को देखो यहाँ पर ब्रह्माजी ने शिवलिङ्ग की स्वयं स्थापना की ॥४३॥ उनकी उपासना सुकर्मा नामक मेधावी तपस्वी तपस्या करते हुए करते थे । वन से पुष्पों को लाकर मै प्राचीन काल में देव पूजक हो गया ॥४४॥ केवल नदी के जल से उस लिङ्ग को स्नान कराकर वहाँ रहता था । इस तरह बहुत समय बीत जाने पर उसके पास एक अतिथि आये ॥४५॥ उसके लिए फलाहार लाकर उन अतिथि को प्रदान किए । उस आतिथ्य से प्रसन्न होकर उन्होंने सुकर्मा को कहा ॥४६॥ इस कर्म से क्या लाभ है जबकि तुम फल और मूल खाकर रहते हो । इस अनुचर की वृत्ति से तुम क्या चाहते हो ?॥४७॥ इस तरह से उस आत्मज्ञानी ने प्रसन्न होकर पूछा । इस पर उसने अपने कल्याण की बात बतलायी ॥४८॥ हे विद्वन् ! मैं इस कर्म के फल

फलमेतस्य सेवायाः परिपाकं कपर्दिनः । यन्मां समनुगृह्णासि संस्पृश्यात्ममनोरथम् ॥५०॥
तस्यैवं सूनृतं वाक्यं श्रुत्वा प्रीतस्तपोधनः । द्वितीयमालिलेखाऽसौ गीताध्यायं शिलातले ॥५१॥
आदिदेशाऽऽशुतं विप्रं पठनाभ्यसनाय च । फलिष्यत्यात्मनः स्वैरं परितस्ते मनोरथः ॥५२॥
इत्यत्तवाऽन्तर्दधे धीमान्पुरतस्तस्य पश्यतः ।
विस्मितस्तस्य चाऽऽदेशात्सोऽन्वतिष्ठदनारतम् ॥५३॥
ततः कालेन महता भावितात्मा प्रसन्नधीः । यत्रयत्र चचाराऽसौ शान्तं तत्तत्तपोवनम् ॥५४॥
न द्वन्द्वबाधा नैव क्षुत्पिपासा नच वा भयम् ।
तपसा तस्य जानीहि द्वितीयाध्यायजापिनः ॥५५॥

मित्रवानुवाच

एवमुक्तश्च तेनाऽहंख्यापयित्वापरांकथाम् । अनुज्ञातःप्रसन्नेनच्छागीव्याघ्रयुतोऽगमम् ॥५६॥
गत्वा शिलातलेऽपश्यमध्यायं लिखितंपठेत् ।
तस्यैवावर्त्तनादाप्तं तपसः पारमुत्तमम् ॥५७॥
तेन त्वमपि कल्याणनित्यमाहर्तुमर्हसि । अध्यायं तेन ते मुक्तिरदूरस्था भविष्यति ॥५८॥
देवशर्मा समादिष्टस्तेन मित्रवता स्वयम् । अभ्यर्य प्रणतो भूत्वा पुरन्दरपुरं ययौ ॥५९॥
तत्राऽऽत्मविदमासाद्य देवतायतने क्वचित् । वृत्तमेतन्निवेद्यादावध्यायमपठत्ततः ॥६०॥
शिक्षितस्तेन पूतात्मा पठन्नध्यायमादरात् । द्वितीयमाससादोच्चैर्निरवद्यं परं पदम् ॥६१॥

को ठीक-ठीक नहीं जानता हूँ । इसी बात को जानने की इच्छा से शिवजी की सेवा करता हूँ ॥४९॥ इस कर्म का फल तथा शिवजी की उपासना का परिणाम और यदि आपकी कृपा मुझ पर है तो मेरे मनोरथ को जानकर ॥५०॥ बतलायें उसके इस मधुर वाणी को सुनकर प्रसन्न उस तपस्वी ने शिला के ऊपर गीता के दूसरे अध्याय को लिख दिया ॥५१॥ उसने उस ब्राह्मण से कहा कि तुम इसको पढ़ो और इसका अभ्यास करो ॥५२॥ इस तरह से कहकर वह देखते ही देखते अन्तर्धान हो गये । उनके आदेश से आश्यर्चित वह उसका निरन्तर पालन करने लगा ॥५३॥ उसके बहुत दिनों बात प्रसन्न होकर वह जहाँ-जहाँ चलता था वहाँ-वहाँ वह तपोवन शान्त हो गया ॥५४॥ वहाँ पर किसी प्रकार के न द्वन्द्व की बाधा थी न भूख प्यास लगती थी और न किसी प्रकार का भय था । उस द्वितीयाध्याय का जप करने के कारण यह बस जानो ॥५५॥ **मित्रवान् ने कहा—** इस तरह से उसके द्वारा कहे जाने पर मैं इस श्रेष्ठ कपि को प्रख्यात करके उसकी आज्ञा प्राप्त करे मैं उस बकरी और व्याघ्र के साथ चला गया ॥५६॥ जाकर मैं शिला के ऊपर लिखे हुए अध्याय को देखा और पढ़ा । उसी के अभ्यास करने के कारण मैं तपस्या के उत्तम पार को जान लिया ॥५७॥ यदि उत्तम कल्याण मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो तो उस अध्याय का अभ्यास करो । उसको तुमको शीघ्र ही मुक्ति मिल जायेगी ॥५८॥ उस मित्रवान् के द्वारा आदेश प्राप्त करके तथा नम्रता पूर्वक अर्चना करके देवशर्मा स्वर्ग चले गये ॥५९॥ वहाँ किसी ज्ञानी को मन्दिर में प्राप्त करके इस इतिहास को बतलाकर इस अध्याय का पाठ करने लगे ॥६०॥ पवित्रात्मा होकर वे उसके द्वारा शिक्षित होकर द्वितीय अध्याय का आदर पूर्वक जोर-जोर से पढ़ने के कारण परंपद को प्राप्त कर लिया ॥६१॥

द्वितीयस्येदमाख्यानं कथितं शृणु साम्प्रतम्। तृतीयस्याऽथ वक्ष्यामि माहात्म्यमपि चेन्दिरे !॥६२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे गीताद्वितीयाध्यायमाहात्म्ये सतीश्वरसम्वादे षष्ट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय: ॥१७६॥

एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

जनस्थाने जडो नाम द्विजन्मा कौशिकान्वयी ।
हित्वा जात्युचितं धर्मं वणिग्वृत्त्यां मनो दधे ॥१॥

व्यसनी परदारेषु दीव्यन्नक्षैः पिबन्मधु। मृगयानिरतो नित्यं कालमेवं निनाय सः ॥२॥
क्षीणे वित्ते ततो रात्रौ चौर्यमारब्धवांस्ततः। प्रतिपेदे धनं तेन यज्वानां यष्टुमर्थिनाम् ॥३॥
सदूरमगमत्तेनवाणिज्यायोत्तरांदिशम् । कास्तूरिमगुरुं कृष्णं चामरांश्चन्द्रिकोज्ज्वलान् ॥४॥
गृहीत्वा वृत्य चानिन्ये पञ्चषादध्वयोजनात्। अथाऽपरस्मिन्नहि प्रियादर्शनदोहनि ॥५॥
दूरमध्वानमुल्लङ्घ्य रवावस्तमिते सति। ध्वान्ते प्रसर्पति स्वैरं दिशो दश तरोस्तले ॥६॥

गतो वशं स दस्यूनां निजवध्ने तैश्च सत्वरम् ।
धर्मलोपादसौ जज्ञे घोरक्षोग्रतरो ग्रहः ॥७॥

हे लक्ष्मी ! मैंने यह दूसरे अध्याय का माहात्म्य बतलाया अब मैं तृतीय अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ सुनो ॥६२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के शिवगौरी संवादान्तर्गत भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ छिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७६।।

जड़ ब्राह्मण की कथा तथा श्रीमद्भगवद् गीता के तृतीय अध्याय का माहात्म्य

श्रीभगवान् ने कहा— जन स्थान में कौशिक वंश में उत्पन्न एक जड़ नामक ब्राह्मण था । वह ब्राह्मणोचित कर्म का परित्याग करके वणिक् वृत्ति में मन लग लिया ॥१॥ वह परस्त्री परायण हो गया, मदिरा पीता था और जूआ खेलता था । वह सदा आखेट करता था इस तरह से उसका बहुत समय बीत गया ॥२॥ धन समाप्त हो जाने पर वह रात्रि में चोरी करने लगा । उसके बाद यज्ञ करने वाले लोगों की उसने सम्पत्ति प्राप्त कर ली ॥३॥ वह वहाँ से व्यापार करने के लिए बहुत दूर उत्तर दिशा में चला गया। वह कस्तूरी, काला अगरु और सफेद चमर लेकर पाँच छह योजन दूर चला गया । उसके बाद वह दूसरे दिन प्रिया दर्शन करने की इच्छा से ॥४-५॥ बहुत दूर का रास्ता पार करके सूर्यास्त हो जाने पर जब अन्धकार हो गया तो वह पेड़ों के नीचे घूम रहा था ॥६॥ उसके बाद वह डाकुओं के हाथ में पड़ गया

पिपासितो बुभुक्षार्तो लेलिहानश्च सृक्किणी ।
ऊर्ध्वकेशोऽतिजङ्घालः पृष्ठलग्नोदरोमहत् ॥८॥
अस्थिमात्रशरीरोऽभूद्वृत्तनयनो भृशम्। अत्राऽन्तरे सुतस्तस्य धर्मात्मावेदकोविदः ॥९॥
पर्यपालयदत्यर्थं दिदृक्षुस्तं तदाऽगमत्। नित्यमन्वेषयन्वार्त्तां गान्थेभ्योनोपलब्धवान्॥१०॥
ततः कदाचिदायाते सहायिनी च मानवे। तस्माद्विदितवृत्तान्तः शुशोच पितरं बहु ॥११॥
ततो विमृश्य मेधावी चिकीर्षुः पारलौकिकम् ।
वाराणसीं ससंभारः स गन्तुमुपचक्रमे ॥१२॥
मार्गे निवासान्सप्ताऽष्टौ नीत्वा तस्य तरोस्तले ।
सन्ध्यां पचक्रमे कर्तु यत्राऽस्य निहतः पिता ॥१३॥
तत्राऽध्यायं सगीतानां तृतीयं संजजाप ह। ततो घोरस्वरस्तत्र व्योममध्येपरामृशत्॥१४॥
ददर्श घोरमाकाशात्पतन्तं पितरं ततः। विस्मयेन भयेनाऽपि विकलीकृतचेतनः॥१५॥
तेजसा भूयसा व्याप्तमालुलोके पुरोऽम्बरे। किङ्किणीकोटिसंकीर्णं तेजसाव्याप्तदिङ्मुखम्॥१६॥
विमानमग्रतोऽपश्यद्दिव्यमव्यग्रचेतनः। तत्राऽपश्यत्समारूढं दिव्याभिः स्त्रीभिरावृतम्॥१७॥
संस्तूयमानं मुनिभिः पितरं पीतवाससम्। प्रणतस्तं समालोक्य युयुजे तेनचाऽऽशिषा ॥१८॥
ततोऽपृच्छदिदं वृत्तंसच तस्मैन्यवेदयत्। दुस्त्यजात्कर्मणो वत्स वपुषोपुण्यकारणात्॥१९॥
मोचितोऽस्मि त्वया दैवादध्यायं जपतान्तिके ।
तन्निवर्त्तस्व जपतः साम्प्रतं त्वामुपस्थितम् ॥२०॥

और उन सबों ने उसको मार दिया। धर्म का लोप हो जाने के कारण वह अत्यन्त उग्रग्रह (पिशाच) हो गया ॥७॥ प्यासा भूखा वह अपने ओठों को चाटता था उसके बाल खड़े थे, शरीर बहुत बड़ा था उसका पेट पीठ से सट गया था ॥८॥ उसके शरीर में केवल हड्डियाँ थीं और उसके नेत्र अत्यन्त भयावने थे। उसका पुत्र जो धर्मात्मा और वेदज्ञ था ॥९॥ उसको देखने की इच्छा से बहुत प्रतीक्षा करने के बाद उसको देखने चला। सदा उसको खोजते हुए उसके विषय में कोई समाचार नहीं पाया ॥१०॥ उसके बाद एक उसके सहाय के आने पर उससे सारा वृत्तान्त जान लिया और अपने पिता के विषय में सोचने लगा॥११॥ उसके बाद विचार करके वह मेधावी उसकी पार लौकिक क्रिया करना चाहा। वह सभी समाग्रियों के साथ वाराणसी जाने लगा ॥१२॥ रास्ते में सात आठ जगह रुक कर वह वहीं सन्ध्या करने लगा जहाँ पर उसका पिता मरा था ॥१३॥ वहाँ पर वह गीता के तीसरे अध्याय का पाठ कर रहा था। उसके पश्चात् उसको आकाश में भयङ्कर ध्वनि सुनायी पड़ी ॥१४॥ उसने देखा कि उसके पिता जिनका आकार भयङ्कर था, आ रहे थे। वह आश्चर्य और भय से व्याकुल हो गया ॥१५॥ उसने अत्यन्त तेज से व्याप्त अपने सामने आकाश में देखा कि करोड़ों किरणों से व्याप्त दिशाएँ हो गयीं उन्होंने शान्ति पूर्वक देखा कि उनके सामने दिव्य विमान है। यह भी देखा कि उसमें दिव्य स्त्रियाँ बैठी थीं ॥१६-१७॥ उन्होंने देखा कि उनके पिता की स्तुति मुनिगण कर रहे हैं और वे पिताम्बर धारण किए हैं। अपने पुत्र को झुके हुए देखकर पिता ने उनको आशीर्वाद दिया ॥१८॥ उसके बाद उनके इतिहास के विषय में पुत्र ने पूछा तो पिता ने बतलाया कि हे वत्स ! पाप कर्म करने के कारण उन्हें यह प्रेत का शरीर मिला है ॥१९॥ हे वत्स ! तुमने

वाराणसीं यदर्थं यत्तदनुष्ठितमात्मनः ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

एवमुक्तः स च प्राह पितरं दीप्ततेजसम् ॥२२॥

सूत उवाच

हितं ममाऽनुशाधि त्वं कार्यमन्यन्मया तु किम् ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

ततः प्राह पिता पुत्रं कार्यमेतत्त्वयाऽनघ ! ॥२४॥
यन्मयाऽऽचरितं कर्म भ्रात्रा मम तु तत्कृतम् ।
स यातो नरकंघोरं तं मोचयितुमर्हसि ॥२५॥

अन्ये मदन्वये ये वै निरयं प्रतिपेदिरे । ते च मोचयितव्यास्ते इति मेऽस्ति मनोरथः ॥२६॥
इत्येवमुक्तः पुत्रस्तं पुनःप्राह कृताञ्जलिः । कर्मणाकेन तान्सर्वान्मोचयामि तदाऽऽदिश ॥
एवं निवेदितो वाक्यं पितासुतमवाच ह ॥२७॥

पितोवाच

येनाऽहं मोचितो वत्स ! तदनुष्ठातुमर्हसि ॥२८॥
अनुष्ठाय तदुत्पन्नं तेभ्यः पुण्यं समुत्सृज। ततोऽहमिव ते सर्वे पूर्वे संत्यज्य यातनाम्॥२९॥
गमिष्यन्त्यचिरेणैव तद्विष्णोः परमम्पदम् । स संदिष्टोऽवदत्पुत्रो यद्येवं तातनारकान् ॥३०॥
सर्वानपि विमोक्ष्यामि यदि ते रोचते वचः। एवमस्तु शिवं भूयादुपपन्नं महत्प्रियम् ॥३१॥
इत्यादिश्य पिता पुत्रं ययौविष्णोःपरम्पदम्। सोऽपितस्मात्परावृत्यजनस्थानंप्रपद्यच ॥३२॥

भाग्यवशात् इस अध्याय को मेरे सन्निकट जप किया इसलिए मैं मुक्त हो गया हूँ । अब तुम इस समय जप के द्वारा मुझे विदा करो, वाराणसी जिस कार्य को करने के लिए जा रहे थे, उसको तुमने कर दिया॥२०-२१॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** इस तरह कहने पर पुत्र ने कहा आप मुझे आज्ञा दें कि मुझे क्या करना चाहिए ?॥२२॥ **सूतजी ने कहा—** आप मुझे आज्ञा दें कि मुझे क्या करना चाहिए ?॥२३॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे निष्पाप ! पुत्र तुमको यह करना चाहिए ? कि मैंने जैसा कर्म किया है उसी तरह का कर्म मेरे भाई ने भी किया है । वह भी मेरे वंश में उत्पन्न दूसरे भी जो लोग नरक में गये है उन सबों को तुम्हें मुक्ति दिलाना चाहिए ॥२४-२५॥ इस तरह से कहे जाने पर पुत्र ने फिर हाथ जोड़कर कहा कि आप मुझे आदे दें कि मैं उन सबों को मुक्ति कैसे दिलाऊँ ? इस तरह से कहे जाने पर पिता ने पुत्र से कहा ॥२६-२७॥ **पिता ने बोले—** हे वत्स ! जिस पाठ से तुमने मुझको मुक्त किया है उसी से तुम उन सबों को मुक्त करो ॥२८॥ उस कर्म का अनुष्ठान करके उससे उत्पन्न पुण्य को उन सबों को समर्पित कर दो । उससे मेरे ही सामने वे सब यम यातना से निकल कर ॥२९॥ शीघ्र ही श्रीभगवान् विष्णु के परम्पद में चले जायेंगे । आदेश पाकर पुत्र ने पिता से कहा तात आज ही मैं उस तारक अध्याय का जप करता हूँ ॥३०॥ मैं सबों को मुक्त कर दूँगा । यदि आपको मेरी यह बात अच्छी लगे तब ऐसा ही करूँ । तुम्हारा कल्याण हो । तुमने मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य किया है ॥३१॥ इस तरह से पिता पुत्र को आदेश देकर

सुन्दरस्य पुरः शौरेश्चालये कालमभ्यगात् । स कुर्वाणः समादीनिपित्राचयदुदीरितम् ॥३३॥
उत्ससर्ज कृतं पुण्यं मोचयिष्यन्स नारकान् ।
अत्रान्तरे पदे विष्णोर्यातनापदमीयुषः ॥३४॥
नारकान्मोचयिष्यन्तः किङ्करा यममभ्ययुः । तेन ते पूजिताः सर्वे सत्क्रियाभिरनेकधा ॥३५॥
कुशलं परिपृष्टास्ते सर्वतः सुखमूचिरे। यमं सत्कृत्य मेधावी पितृलोकमहेश्वरः ॥३६॥
हेतुमागमनेऽपृच्छत्ते च तस्मै न्यवेदयन् । विद्धि कीनाशनाथ त्वं शेषपर्यङ्कशायिना ॥३७॥
शौरिणा प्रहितानस्मान्समादेष्टुं त्वदन्तिके। अस्मन्मुखेन देवस्त्वांकुशलंपरिपृच्छति ॥३८॥
नारकान्प्राणिनः सर्वान्विमोक्तुं च नियच्छति ।
इत्याकर्ण्य समादिष्टं विष्णोरमिततेजसः ॥३९॥
नतेनमूर्ध्नासम्भाव्यदध्यौकिञ्चनचेतसा । विमुक्तान्निरयात्सर्वांस्तान्विलोक्यमदोत्कटा ॥४०॥
स तैरनुगतः सर्वैर्विष्णोरायतनं ततः। ययौ स वरयानेन यत्राऽऽस्ते दुग्धवारिधिः ॥४१॥
तदन्तरुदितानेकसूर्यकोटिसमप्रभम् । इन्दीवरदलश्याममालुलोके जगद्गुरुम् ॥४२॥
शय्याफणिफणारत्नमरीच्यामिश्रतेजसम् । विलोक्यमानमानन्दनिर्भरं प्रीतमानसम् ॥४३॥
भावानुर्गर्दृगालोकैः श्रिया प्रेम्णोक्षितं मुहुः । योगिभिः परितो जुष्टं ध्याननिष्पन्दतारकैः ॥४४॥
स्तूयमानं महेन्द्रेण पराजेतुं विरोधिनः। आम्नायवचसामन्ते ब्रह्मणो निःसृतैर्मुखात् ॥४५॥

भगवान् विष्णु के परम्पद में चले गये । वह भी वहाँ से लौटकर जन स्थान में आया ॥३२॥ सुन्दर पुर के श्रीभगवान् के मन्दिर में गया और शम आदि का पालन करते हुए उसके पिता ने जो कहा था ॥३३॥ उसका अनुष्ठान करके उससे उत्पन्न पुण्य को उन नारकीय जीवों को समर्पित कर दिया । उस समय भगवान् विष्णु के परम्पद में नरक से जाने की इच्छा वाले ॥३४॥ नारकीय जीवों को मुक्त कराने की इच्छा से विष्णु दूत आये और यमदूतों ने उन लोगों के विषय में यम से कहा । यम ने उन लोगों की पूजा की और उनका अनेक प्रकार से सत्कार किया ॥३५॥ कुशल पूछने उन सबों ने सर्वत्र सुख बतलाया । यम का सत्कार करके मेधावी महेश्वर ने अपने पितरों का उद्धार किया । उनके आने का कारण पूछने पर उन सबों ने यमराज को बतलाया कि हे यम ! हमलोग शेष पर्यन्तशयी श्रीभगवान् के द्वारा भेजे गये आपके पास आये हैं । श्रीभगवान् हमलोगों के माध्यम से आपका कुशल पूछे हैं ॥३६-३८॥ वे सभी नारकीय जीवों को छोड़ देने के लिए कहे हैं । अमित तेजस्वी भगवान् विष्णु के द्वारा दिए गये संदेश को सुनकर॥३८-३९॥ यम अपना शिर झुकाकर उनका समादर किए और कुछ हृदय में विचार किए । नरक से छूटे हुए और मदोत्कट उन सबों को देखकर उन सबों के साथ यम भगवान् विष्णु के लोक में गये। वे श्रेष्ठ विमान से क्षीरार्णव में गये ॥४०॥ उसके भीतर करोड़ों सूर्य की कान्ति के समान कान्ति वाले नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले श्रीभगवान् का दर्शन किए ॥४१-४२॥ शय्या बने हुए शेष नाग के फण के रत्नों की कान्ति से श्रीभगवान् की कान्ति मिश्रित हो रही थी । प्रेम पूर्वक मन से देखे जाते हुए आनन्द से परिपूर्ण ॥४३॥ उनको भाव भरे नेत्रों से लक्ष्मीजी बार-बार देख रही थीं । ध्यान करने के कारण जिनके आखों की पुतली निस्तब्ध थी ऐसे योगिजन उनकी चारो ओर से सेवा कर रहे थे ॥४४॥

मूर्तिमद्भिर्वचोभिश्च गीयमानं गुणोत्करम् । सम्प्रीतं चाप्युदासीनमपि सर्वायुयोनिषु ॥४६॥
योगसञ्चितपुण्यानां यौगपद्येन जन्तुषु । विलोकभानमात्मानमखिलं सचराचरम् ॥४७॥
आगोदयन्तमालोकैरात्मानंदीप्तिपूरितैः । आबिभ्राणं वपुर्व्यापिद्योतितंभोगिनस्त्विषा ॥४८॥
इन्दीवरदलश्यामं ज्योत्स्नयेव नभस्तलम् । विलोक्य तं स तुष्टाव धियाबहुलया नतः ॥४९॥

यम उवाच

नमः समस्तनिर्माणनिर्मलीभूतचेतसे । वदनोद्गीर्णवेदाय विश्वरूपाय वेधसे ॥५०॥
बलवेगसुदुर्धर्षदानवेन्द्रमदद्रुहे । नमः स्थितो च सत्त्वाय विश्वाधाराय विष्णवे ॥५१॥
नमः पातकसङ्घातजिष्णवेऽखिलदेहिनाम् । ईषदुन्मीलल्ललाटनेत्राग्निप्रभवार्चिषे ॥५२॥
त्वं हि सर्वस्य लोकस्य गुरुरात्मामहेश्वरः । विसृज्य वैष्णवान्सर्वानतस्त्वमनुकम्पसे ॥५३॥
व्यापयन्नखिलं लोकं मायया परिवृंहितम् । न तया परिभूतोऽसि न च तत्प्रभवैर्गुणैः ॥५४॥
अन्तरा वर्तमानोऽपि न ताभ्यामभिभूयसे । दृशा विषयवर्तिन्या निगृहीतमना अपि ॥५५॥
तया फलाभिगामिन्या आत्मन्येवाऽभिलीससे । न तवाऽस्ति महिम्नोऽन्तो यथानिरवधिः स्वयम् ॥५६॥
मौनमेवाऽत्र युक्तं मे विषयोऽसि कथं गिराम् ।
इति स्तुत्वा ततो वाक्यमिदमाह कृताञ्जलिः ॥५७॥

इन्द्र शत्रुओं को पराजित करने के लिए उनकी स्तुति कर रहे थे । वेद के अन्तिम भाग में ब्रह्माजी के मुख से निकले हुए वेदान्त वाक्य शरीर धारण करके श्रीभगवान् के गुणों की स्तुति कर रहे थे । सभी योनियों के विषय में प्रसन्न रहकर भी उदासीन रहने वाले ॥४५-४६॥ योग के द्वारा जिन लोगों ने पुण्यों को किया था उन जीवों को एक समय में देखत हुए तथा चराचर के सम्पूर्ण आत्माओं को देखते हुए ॥४७॥ आपने प्रकाश पूर्ण अवलोकन से आत्मा को आनन्दित करते हुए तथा सर्पो की कान्ति से प्रकाशित शरीर वाले॥४८॥ नील कमल के समान श्याम वर्ण के श्रीभगवान् को चाँदनी के प्रकाश से प्रकाशित आकाश के समान देखकर यमराज ने नम्र बुद्धि से प्रणाम करके स्तुति की ॥४९॥ **यम ने कहा**— सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने के कारण जिनका अन्तःकरण निर्मल है, उन भगवान् को नमस्कार है, जिन्होंने सम्पूर्ण को अपने से उच्चारण किया है ऐसे विश्वरूप तथा ब्रह्म स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥५०॥ बल के वेग से दुर्धर्ष बने दानवेन्द्र से द्रोह करने वाले, सत्त्व स्वरूप तथा विश्व के आधार भूत भगवान् विष्णु को नमस्कार है ॥५१॥ समस्त शरीर धारियों के पातक समूह को जीत लेने वाले जिन भगवान् के ललाट के नेत्रों की अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं, ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥५२॥ आप ही सम्पूर्ण लोकों के गुरु, आत्मा और महेश्वर हैं अतएव वैष्णवों को छोड़कर आप सबों पर अनुकम्पा करते हैं ॥५३॥ माया से समृद्ध सम्पूर्ण लोक में आप व्यापक रूप से विद्यमान है । आप माया से न तो कभी अभिभूत होते हैं और न उसके गुणों से अभिभूत होते हैं ॥५४॥ यद्यपि आप उन दोनों के भीतर विद्यमान हैं फिर भी उन दोनों से आप कभी अभिभूत नहीं होते हैं । विषय विषयिणी नेत्र से आप अपने मन को वश में रखते हैं ॥५५॥ फल को प्राप्त करने वाली माया को आप अपने भीतर ही लीन कर देते हैं । जिस तरह आप अनन्त हैं उसी तरह आपकी महिमा भी अनन्त है ॥५६॥ इस विषय में मेरा चुप हो जाना उचित है क्योंकि आप वाणी का विषय कैसे बन सकते हैं ? इस तरह से स्तुति करके यम ने हाथ जोड़कर

विनियोगादमीयुक्ता देहिनो निर्गुणा मया। समादिश यदन्यन्मे कार्यमस्ति जगद्गुरो !।।५८।।
इतिविज्ञापितस्तेन तमाह मधुसूदनः। मेघगम्भीरया वाचा सिञ्चन्निव सुधारसैः ।।५९।।
पापादुद्धार्यते लोको मया समयवर्तिना। त्वयि विन्यस्तभारोऽहं नाऽनुशोचामि देहिनः ।।६०।।
तदाचर निजं कर्म प्रयाहि स्वं निकेतनम् ।।६१।।

श्रीभगवानुवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः सोऽपि स्वपुरमाययौ ।
सोऽपि स्वजातिजान्सर्वान्निरयस्थाननेकशः ।
उद्धृत्य वरयानेन विष्णुलोकं ययौ स्वयम् ।।६२।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे गीतातृतीयाध्यायमाहात्म्ये सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१७७।।

एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

चतुर्थस्याऽपिमाहात्म्यमाख्यास्याम्यधुनाशृणु। बदरीत्वंसमुत्सृज्य येन कन्ये दिवंगते।।१।।

कहा।।५७।। शरीरधारी विनियोगवशात् इन सबों को मेरे द्वारा कार्यों में लगाये ये शरीरधारी निर्गुण हैं हे जगद्गुरो ! मेरा जो दूसरा कार्य हो उसे आप बतलायें ।।५८।। इस तरह से यमराज के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर श्रीभगवान् ने उनसे मेघ के समान गम्भीर वाणी के अमृत रस से सींचते हुए के समान कहे।।५९।। समयवर्ती मैंने लोकों का पाप से उद्धार कर दिया है । शरीर धारियों का भार तुम पर छोड़ देने के कारण मैं उनके विषय में नहीं सोचता हूँ ।।६०।। अतएव तुम अपने कार्य का निर्वाह करो और अपने घर जाओ।।६१।। **श्रीभगवान् ने कहा—** इस तरह से कहकर वे देव अन्तर्धान हो गये और यमराज भी अपनी नगरी में आ गये । वह सुकर्मा भी अपनी जाति के नरक में गये जीवों का उद्धार करके श्रेष्ठ विष्णु लोक में स्वयं चले गये ।।६२-६३।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत भगवद् गीता के तृतीय अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ सत्तहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७७।।

गीता के चतुर्थ अध्याय का माहात्म्य वर्णन

श्रीभगवान् ने कहा— मैं चौथे अध्याय का भी माहात्म्य बतलाता हूँ सुनो । इसके प्रभाव से बदरीत्व का परित्याग करके दो कन्याएँ स्वर्ग चली गयीं ।।१।। **श्रीदेवी ने कहा—** बदरीत्व का त्याग करके

श्रीरुवाच

कथं कन्ये दिवं याते बदरीत्वं विसृज्य वै ।
ते के चाऽऽस्तां पुरा देव ! कथं प्राप्ते तु मुख्यताम् ॥२॥
एतद्वेदितुमिच्छामिनाथवक्तुं त्वमर्हसि । न तु तृप्यामि शृण्वन्ती परमां च कथामिमाम् ॥३॥

श्रीभगवानुवाच

अस्ति भागीरथीतीरे नाम्ना वाराणसीपुरी। भरतो नाम युक्तात्मा तत्र विश्वेश्वरालये ॥४॥
नित्यमात्मरतस्तुर्यं जपत्यध्यायमादरात्। तदभ्या साददुष्टात्मा न द्वन्दैरभिभूयते ॥५॥
काले कदाचन क्रीडन्ययौ स नगरद्बहिः। उपान्त्यवर्तिनो देवान्दिदृक्षुःस तपोधनः ॥६॥
विशश्राम तयोर्मूले बदर्योर्न्यपतत्फले। उपधाय तयोरेकामन्वामालम्ब्य चाऽङ्घ्रिणा॥७॥
तपस्विनि ततो याते बदर्योश्च तयोर्द्वयम्। शुष्कं निष्पत्रशाखं स दिवसैः पञ्चषैरभूत् ॥८॥
गृहे क्वचन विप्राणां जज्ञाते कन्यके ततः। वर्धमानं तयोर्युग्मं सप्तभिः परिवत्सरैः ॥९॥
विहत्य दूरदेशेभ्यो यतिमायान्तमैक्षत। गृहीत्वा चरणौ तस्य वचः सूनृतमब्रवीत्॥१०॥
त्वत्प्रसादादेव मुने मोचितं द्वन्द्वमावयोः। उत्सृज्य बदरीभावं मानुष्यं प्रतिपद्यते॥११॥
एवमुक्तो मुनिस्ताभ्यां विस्मृतः प्रत्युवाच सः ।
कदा वत्से युवां केन हेतुना मोचिते मया ॥१२॥
युवयोर्बदरीत्वे च हेतुं ब्रूतं न वेद्म्यहम्। ऊचतुः कन्यके तस्मै बादर्ये हेतुमात्मनः ॥१३॥
आदौ विमोचने तस्माद्दुस्त्यजादपि कारणम् ।
अस्ति गोदावरीतीरे तीर्थं पुण्यप्रदं नृणाम् ॥१४॥

दो कन्यायें कैसे स्वर्ग गयीं । हे देव ! वे दोनों पहले कौन थीं और बाद में मुख्यता को कैसे प्राप्त कर लीं ॥२॥ हे नाथ ! मैं इसको जानना चाहती हूँ उसे आप बतलाएँ । इस श्रेष्ठ कथा को सुनने से मुझे तृप्ति नहीं होती है ॥३॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** गङ्गा नदी के तट पर वाराणसी पुरी है । वहाँ विश्वेश्वर के मन्दिर में भर नाम के आत्मज्ञ थे ॥४॥ वे सदा आत्मा का ध्यान करते हुए चतुर्थ अध्याय का जप करते थे । उसका अभ्यास करने के कारण शुद्ध आत्मा वाले वे द्वन्दों से अभिभूत नहीं होते थे ॥५॥ एक बार क्रीडा करते हुए वे नगर से बाहर गये । वहाँ के सन्निकट में रहने वाले देवताओं का दर्शन करने की इच्छा से वे तपस्वी वहाँ गये थे ॥६॥ वे किसी बदरी वृक्ष के नीचे विश्राम किए उसी समय बैर के दो फल गिर पड़े । उन दोनों में से एक को उन्होंने तकिया बना लिया और दूसरे पर अपने पैर को रख लिया ॥७॥ वहाँ से तपस्वी के चले जाने पर वे दोनों बैर को दोनों पेड़ पाँच छह दिन में सुखकर सूखे शाखाओं और पत्तों वाले हो गये ॥८॥ उसके बाद वे दोनों किसी ब्राह्मण के घर कन्या के रूप में जन्म लिए । वे सात परिवत्सर पर्यन्त बढ़ती रहीं ॥९॥ दूर देशों से विचरण करके आते हुए संन्यासी को उन दोनों ने देखा। उस यति के चरणों को पकड़कर उन दोनों ने सुन्दर वाणी से कहा ॥१०॥ हे मुने ! आपके प्रभाव से हम दोनों मुक्त हो गयीं, हम दोनों ने बैरत्व को त्यागकर मनुष्यत्व को प्राप्त कर लिया है ॥११॥ उन दोनों के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर मुनि उन दोनों को भूल गये थे, उन्होंने पूछा वत्से ! तुम दोनों का कब मैंने किस साधन से मुक्त किया है ?॥१२॥ तुम दोनों बैर का पेड़ कैसे हो गयी उसको मैं नहीं

छिन्नपापमितिख्यातं परां कोटिमवापयत्। तत्र सत्यतपानाम तपस्तेपे सुदारुणम् ॥१५॥
ग्रीष्मे महति दीप्तानां मध्यगोजातवेदसाम्। वर्षासु जलधाराभिर्नित्यमासिक्तमूर्द्धजः ॥१६॥
शिशिरे च वसन्नाप्सु बिभ्रत्कण्टकितां तनुम्।
विशुद्धः सततं काले तपस्तप्त्वा स संयमी ॥१७॥
आत्मन्येव मतिं चक्रे परां प्राप्य सुनिर्वृतिम्।
सदा फलानि विभ्रत्सु सान्द्रच्छायेषु शाखिषु ॥१८॥
निर्मत्सरेषु सत्त्वेषु बद्धा प्रीतिं परामपि। तपः फलानुसंधाने वैदुष्ये नोपपादितम् ॥१९॥
ब्रह्माऽप्येनं स्वयं पृच्छन्नुपतस्थे तमन्वहम्। तेन सङ्कोचहीनत्वाद्ब्रह्मण्यनुगतेऽन्वहम् ॥२०॥
तद्ध्यानानुगतव्यक्तिर्ववृधे तस्य तत्तपः। विमुक्तकल्पं मन्वानः समृद्धादात्मनः पदात् ॥२१॥
अन्तरायशतं चक्रे ततो भीतः पुरन्दरः। आहूयाप्सरसां मध्यादावां तुल्यं समादिशत् ॥२२॥
कुरुतं तत्तपोविघ्नमनेनाऽऽचरितंयुवाम्। योमां पदादवष्टभ्य स्वराज्यं भोक्तुमिच्छति ॥२३॥
इतिसन्देशमापन्ने पुरस्ताच्च बिडौजसः। गोदावरीगमच्छाव स मुनिर्यत्र वर्तते ॥२४॥
मृदङ्गैर्मन्दगम्भीरैर्वेणुभिः कलवादिभिः। कलंगीतंसमारब्धं तन्वङ्गीभिः समन्वितम् ॥२५॥
उद्वहन्त्यौपृथुश्रोणीघनपीनपयोधरे। स्मयस्मेरमुखाम्भोजे किञ्चिदाकुञ्चितालके॥२६॥
मणिकुण्डलगृष्टांसे पुण्डरीकोज्ज्वलेक्षणे। तनुमध्ये सुवृत्तोरुवहन्त्यौ च समे पदे ॥२७॥

जानता हूँ तुमलोग बतलाओ। उन दोनों कन्याओं ने बैर का पेड़ होने के कारण को बतलाया ॥१३॥ पहले उससे मुक्त होना कठिन होने के कारण भी बतलाया। गोदावरी नदी के तीर पर पुण्यप्रद तीर्थ है॥१४॥ उस तीर्थ का नाम छिन्न पाप था। वह श्रेष्ठ कोटि का तीर्थ हो गया। वहाँ पर सत्यतषा मुनि कठोर तपस्या कर रहे थे ॥१५॥ ग्रीष्म ऋतु में दोपहर की बेला में वे अग्नियों के बीच में रहते थे। वर्षाकाल में वे सदा जल की धारा से सदा बालों के भिंगाये रहते थे ॥१६॥ शिशिर ऋतु में कण्टकित शरीर वाले वे जल के भीतर रहते थे सर्वदा तपस्या करने के कारण वे विशुद्ध संयमी हो गये थे ॥१७॥ वे श्रेष्ठ शान्ति को प्राप्त करके आत्मविषयिणी बुद्धि को बना लिए थे। वे सदा फल युक्त वृक्षों की घनी छाया में रहते थे ॥१८॥ मत्सर रहित जीवों के प्रति भी अत्यन्त प्रेम करते थे। तप के ही फल का अनुसन्धान करने में वे वैकुण्ठ को नहीं प्राप्त कर सके ॥१९॥ ब्रह्माजी भी उनसे पूछने के लिए प्रतिदिन आते थे। उनके साथ कोई सङ्कोच नहीं होने के कारण उनके पास ब्रह्माणी भी आती थीं ॥२०॥ उनके ही ध्यान में लगे रहने के कारण उनका तप बढ़ गया। अपने पद से मुक्त के समान मानते हुए इन्द्र उनके समक्ष सैकड़ों विघ्न किए। क्यों इन्द्र उनकी तपस्या से भयभीत थे। अप्सराओं के बीच से हम दोनों को बुलाकर हमदोनों को उन्होंने आदेश दिया ॥२१-२२॥ तुम दोनों इसके आचरण में विघ्न करो। वह मुझको मेरे पद से हटवाकर स्वराज्य प्राप्त करना चाहता है ॥२३॥ इन्द्र के इस सन्देश को प्राप्त करके इन्द्र के समक्ष ही गोदावरी के तट पर हम दोनों उस मुनि के पास आयीं ॥२४॥ मन्द तथा गम्भीर ध्वनि करने वाले मृदङ्गों तथा वेणुओं से जो मनोहर बोलते थे उन सबों से सुन्दरियों के साथ मनोहर गीत गाना प्रारम्भ किया ॥२५॥ मोटी जङ्घाओं तथा कठोर तथा उन्नत स्तनों तथा मुस्कान युक्त मुख कमलों तथा घुंघराले केशों से युक्त हम दोनों ॥२६॥ कन्धे तक लटकने वाले मणि रचित कुण्डलों एवं कमल के

आनर्तां यो वनस्याऽर्थे स्वरताललयानुगाम् ।
दर्शयन्त्यौ स्वतः कृत्स्नां गतिं भावानुगामिनीम् ॥२८॥
मृदूपक्रममुत्पन्नं मन्दम्मन्दं विवर्द्धनम् । गर्जयामास दिक्चक्रं तत्तयोर्नृत्यमानयोः ॥२९॥
ततोऽङ्गहारवेगेन वायुर्वासः सुशीतलः। ईषदुच्छ्वसिते चैले दर्शयन्त्यौ पयोधरौ ॥३०॥
उद्धर्षयन्ती कन्दर्पमुल्बणा गतिरावयोः । कोपमुत्पादयामास मुनेरविकृतात्मनः ॥३१॥
ततः शापं ददौ कोपाज्जलमुत्सृज्यपाणिना। बदरीत्वं प्रपद्येथां जाह्नवीरोधसीति नौ॥३२॥
आवाभ्यां पारतन्त्र्येण यद्दुश्चरितमास्थितम्। तत्क्षमस्व विनम्राभ्यां मुनिः पश्चात्प्रसादितः ॥३३॥
ततः शापविमोक्षं नौ कल्पयामास पुण्यधीः ।
भरतागमनान्तोऽयमिति सत्यतया मुनिः ॥३४॥
मर्त्येषु जन्मलाभश्च स्मृतिश्चातीतजन्मनाम् । आवयोरन्तिकं गत्वा बदरीभूतयोस्ततः ॥३५॥
स्मरता तुर्यमध्यायं भवता निष्कृतिः कृता। तत्तावत्प्रणमावस्त्वां शापादेव न केवलात् ॥३६॥
घोरादेव तु संसारात्त्वयैतेन विमोचिते ।

श्रीभगवानुवाच

एवमुक्तो मुनिस्ताभ्यामतिप्रीतमनास्ततः ॥३७॥
पूजितस्ते समामन्त्र्य यथागतमसौ ययौ । कन्ये चतुर्थमध्यायं जपेतां नित्यमादरात् ॥३८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणेपञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डेगीतातुर्याध्यायमाहात्म्ये
अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७८॥

समान सुन्दर नेत्रों वाली तथा गोल जङ्घाओं वाली तथा एक समान चरणों वाली स्वर ताल से युक्त उस वन में भाव युक्त सारी गति को दिखाती हुयी हम दोनों नृत्य करती थी ॥२७-२८॥ उत्पन्न मृदुउपक्रम धीरे-धीरे बढ़ता गया । उन दोनों के नृत्य से दिङ्मण्डलअलंकृत हो गया ॥२९॥ उसके बाद अङ्गों के हार के वेग से हवा धीरे-धीरे चलने लगी थोड़ा सा वस्त्र के हट जाने पर हमलोग का स्तन दिखने लगता था॥३०॥ हमदोनों की गति ने काम की उग्रता बढ़ा दिया । उसने विकार हीन मुनि के क्रोध को उत्पन्न कर दिया ॥३१॥ उसके पश्चात् हाथ से जल को गिराकर मुनि ने हम दोनों को गङ्गा तट पर बैर का वृक्ष हो जाने का शाप दे दिया॥३२॥ परतन्त्र होने के कारण हम दोनों ने जो पाप किया उसको आप क्षमा कर दें यह कहकर मुनि को हमलोगों ने प्रसन्न किया ॥३३॥ पवित्र बुद्धि वाले वे हमलोगों के शाप की सीमा बतलाया कि भारत के आ जाने पर तुम दोनों का शाप समाप्त हो जायेगा ॥३४॥ फिर तुमलोगो का मनुष्य जन्म होगा और पूर्वजन्म की याद बनी रहेगी । बैर बनी हुयी हम दोनों के सन्निकट जाकर ॥३५॥ चतुर्थाध्याय का पाठ करने वाले आपने हमलोगों का उद्धार किया । इसीलिए हम दोनों आप को प्रणाम करती हैं, केवल शाप से ही नहीं अपितु आपने हम दोनों को भयङ्कर संसार से मुक्त कर दिया ॥३६॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— इस तरह से उन दोनों के द्वारा कहे जाने पर प्रसन्न होकर मुनि को इन दोनों ने पूजा की और मुनि भी जैसे आये थे वैसे ही चले गये । वे दोनों कन्यायें भी आदर पूर्वक प्रतिदिन चतुर्थ अध्याय पाठ करने लगीं ॥३७-३८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के लक्ष्मी तथा विष्णु संवादान्तर्गत श्रीमद्भगवद् गीता के चतुर्थ अध्याय के महात्म्य वर्णन नामक एक सौ अठहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७८।।

एक सौ उन्नासीवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

पञ्चमस्याऽधुना देवि ! माहात्म्यंलोकपूजितम् ।
कथयामिसमासेनसावधानाश्रृणुप्रिये ॥१॥
पिङ्गलो नाम भद्रेषु पुरुकुत्सपुरे द्विजः । अवदाते कुले जातो विश्रुते वेदवादिनाम् ॥२॥
कुलोचितानि शास्त्राणि तथा वेदान्विसृज्य सः ।
तौर्यत्रिके मतिं चक्रे वादयन्मुरजादिकम् ॥३॥
कृतश्रमस्ततस्तत्र गीते नृत्ये च वादने । परां प्रसिद्धिमासाद्य नृपसद्म विवेश सः ॥४॥
समातस्थे स तेनाऽसौ पुरा भूमिभुजा सह ।
परदारानुपाहृत्य बुभुजेताननन्यधीः ॥५॥
तत उत्सिक्तगर्वोऽयं सूचमानो निरङ्कुशः । परच्छिद्राणिचाऽमुष्मै विविक्तेसनिरन्तरम् ॥६॥
तस्याऽसीदरुणानाम भार्याहीनकुलोद्भवा । भ्रमत्यन्वेषयन्ती सा कामुकेन विहारिणी ॥७॥
तमन्तरायं मन्वाना निशीथिन्यां निजालये । निजघान शिरश्छित्त्वा निचखानमहीतले ॥८॥
वियोजितस्ततः प्राणैरुपेत्य यमसादनम् । दुर्जयान्नरकान्भुक्त्वा गृध्रोऽभूद्विजने वने ॥९॥
भगन्दरेण रोगेण साऽपि हित्वा वरां तनुम् ।
उपेत्य नरकान्घोराञ्जज्ञे तत्र वने शुकी ॥१०॥
कणानादातुकामां तां सञ्चरन्तीमितस्ततः । विददार नखैस्तीक्ष्णैर्गृध्रो वैरमनुस्मरन् ॥११॥

पिङ्गल नामक ब्राह्मण का वृत्तान्त वर्णन पूर्वक भगवद् गीता के पाञ्चवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन

श्रीभगवान् ने कहा— हे प्रिये ! तुम सावधान होकर सुनो । अब मैं पाञ्चवें अध्याय का लोक पूजित माहात्म्य कहता हूँ ॥१॥ भद्र प्रदेश के पुरुकुत्स नामक नगर में विख्यात वेदवादी ब्राह्मणों के वंश में पिङ्गल नामक ब्राह्मण थे ॥२॥ वे अपने वंशोचित शास्त्रों तथा वेदों का परित्याग करके वाद्य वादन में अपने मन को लगा लिए । वे मुरज इत्यादि वजाते थे ॥३॥ उन्होंने, गीत, नृत्य और वाद्य वादन में परिश्रम करके बहुत अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की और वे फिर राजगृह में प्रवेश कर गये ॥४॥ पहले वे राजा के साथ रहते थे और परस्त्रियों को लाकर अनन्यमना होकर उन सबों का उपभोग करते थे ॥५॥ उसके पश्चात् अत्यन्त गर्वित होकर वे निरङ्कुश हो गये । दूसरों के दोषों को एकान्त में उसको सूचित करते थे॥६॥ उनकी पत्नी का नाम अरुणा था और वह हीन वंश में उत्पन्न हुयी थी वह घूम-घूमकर कामुक व्यक्ति का अन्वेषण करती थी उसके साथ बिहार करती थी ॥७॥ पिङ्गल को वह अपने कार्य में विघ्न मानकर रात्रि में अपने ही गृह में मार दी और उसका शिर काट कर पृथिवी में गाड़ दी ॥८॥ मर जाने के बाद पिङ्गल यमलोक में गये और वहाँ भयङ्कर नरकों को भोगकर वे विजन वन में गृध्र हो गये ॥९॥ भगन्दर रोग के कारण वह स्त्री भी मरकर भयङ्कर नरक में जाकर उसी वन में शुकी हो गयी ॥१०॥ वह कणों का प्राप्त करने के लिए इधर-उधर घूमती हुयी उसको देखकर गृध्र ने उसे अपने नखों से उसके वैर को

नृकपाले पयः पूर्णे निपतन्तीं ततःशुकीम् । अभिदुद्राव गृध्रोऽपि निजघ्नेसचजालिकैः ॥१२॥
पत्नी वियोजिता प्राणैर्नृकपालं जले ततः । तत्रैव निममज्जाऽसावेत्य क्रूरतरः खगः ॥१३॥
पितृलोकं प्रपेदाते नीतौ तौ यमकिङ्करैः। प्राक्कृतं दुष्कृतं कर्म स्मरन्तौ भयभागिनौ॥१४॥
ततो यमः समालोक्य तयोः कर्म जुगुप्सितम् ।
अकस्मादेव तत्स्नानान्मरणे सुकृतं महत् ॥१५॥
अनुजज्ञे ततो लोकमीप्सितं गन्तुमेतयोः। महापातकसङ्घातैरपि दुर्धर्षमानसौ ॥१६॥
ततो विस्मयमापन्नौ स्मृत्वा तो दुष्कृतं निजम् ।
उपेत्य प्रणतौ भूत्वा वैवस्वतमपृच्छताम् ॥१७॥

गृध्रशुक्यावूचतुः

सञ्चितं दुष्कृतं पूर्वमावाभ्यामपिगर्हितम् । लोकानामीप्सितानांतु को हेतुस्तद्वदस्वनौ ॥१८॥
एवमुक्तस्ततस्ताभ्यामाह वैवस्वतो वचः ॥१९॥

यम उवाच

आसीद्गङ्गातटे नाम्ना बटुर्ब्रह्मविदुत्तमः । एकाकी निर्ममः शान्तो वीतरागो विमत्सरः ॥२०॥
गीतानां पञ्चमाध्यायमावर्त्तयति सर्वदा । तेन पुण्येन पूतात्मा बुद्ध्वा ब्रह्म सनातनम् ॥२१॥
पापीयानपि यं श्रुत्वा तनुमुत्सृष्टवानसौ। निर्मलीकृतदेहस्य गीताभिर्भावितात्मनः ॥२२॥
तत्कपालजलं प्राप्य युवां यातौ पवित्रताम्। तद्गच्छतंयुवांलोकान्मनोरापथिस्थितान् ॥
गीतानां पञ्चमाध्यायमाहात्म्येन पवित्रितौ ॥२३॥

याद करके चिर दिया ॥११॥ जल भरे मनुष्य की खोपड़ी में गिरती हुयी उसके पीछे वह गृध्र भी दौड़ और किसी जाल वाले ने उसे जाल में फँसा कर मार दिया ॥१२॥ उसकी पत्नी मरकर मनुष्य की खोंपड़ी में जल में गिरी और वहीं पर वह डूब गयी वहाँ आकर वह अत्यन्त क्रूर पक्षी भी डूब गया, उन दोनों को यमदूत पितृलोक में लाये । अपने पूर्वकृत पापों को स्मरण करके वे दोनों भयभीत थे ॥१३-१४॥ उसके बाद यमराज ने उन दोनों के निन्दित कर्मो को देखकर और अचानक मरते समय में जल स्नान को महान पुण्य माने ॥१५॥ उन्होंने उन दोनों को अभिप्रेत लोक में जाने की अनुमति प्रदान कर दी । उन दोनों का मन दुर्धर्ष पाप समूह से युक्त था ॥१६॥ उसके बाद अपने पापों का स्मरण करके वे आश्चर्यित थे । वे दोनों यमराज के सन्निकट आकर उनसे पूछे ॥१७॥ गृध्र तथा शुकी दोनों ने कहा हमदोनों ने पूर्व जन्म में निन्दित पाप को सञ्चित किया है फिर भी अभिप्रेत लोक में जाने का कारण क्या है ?॥१८॥ उन दोनों से इस प्रकार पूछे जाने पर यमराज ने कहा ॥१९॥ **यम बोले—** गङ्गा के तट पर उत्तम ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मचारी रहता था । वह अकेले रहता था, वह ममता रहित, शान्त, बीतराग और मत्सर रहित था ॥२०॥ गीता के पाञ्चवें अध्याय का निरन्तर पाठ करता था । उस पुण्य से वह सनातन ब्रह्म को जानकर पुण्यात्मा हो गया था । उस अध्याय का श्रवण करके उसने पापी शरीर का भी त्याग कर दिया । गीता के द्वारा पवित्र हुए उसका शरीर निर्मल हो गया था ॥२१-२२॥ कपाल के जल को प्राप्त करके तुम दोनों भी पवित्र हो गये । अतएव तुम दोनों अभिप्रेत लोकों में जाओ । गीता के पाञ्चवें अध्याय के माहात्म्य से वे

श्रीभगवानुवाच

एवं तौ बोधितौ तेन मुदितौ समवर्तिना। व्योमयानं समारुह्य जग्मतुर्वैष्णवं पदम् ॥२४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे गीतपञ्चमाध्यायमाहात्म्य एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७९॥

एक सौ अस्सीवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

षष्ठाध्यायस्य माहात्म्यं प्रवक्ष्यामि वरानने!। यदाकर्णयतांनृणां मुक्तिःकरलेस्थिता ॥१॥
अस्ति गोदावरीतीरे प्रतिष्ठानं पुरंमहत् । पिप्पलेशाभिधानोऽहं यत्राऽस्मिस्मेरलोचने॥२॥
यत्र गोदावरीवारिशीकरैरेव शीतलैः। हंसाः पक्षपुटैः कीर्णैर्हरन्ति यमिनां श्रमम् ॥३॥
स्फुरत्पद्मावलीकोशपरागसुरभीकृतम् । श्लाघ्यं गोदावरीतोयं येन ते निर्जरा नराः॥४॥
धिक्सुधामौषधीशस्यविकृत्क्षयविधायिनीम् । महाराष्ट्ववधूकानां मज्जन्तीनांमुनीश्वराः ॥५॥
स्पृशन्ति तत्र वक्त्राणि फुल्लपफजशङ्कया। यत्र खेलन्महाराष्ट्रः क्वणत्कङ्कणसुन्दराः ॥६॥
हरन्ति ध्वनयोऽलीनां मनांस्यपि तपस्विनाम् ।
अत्युच्चसौधशिखरविहारिवनितामुखम् ॥७॥

दोनों पवित्र हो गये थे ॥२३॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** उस समवर्ती यमराज की इस तरह की वाणी सुनकर वे दोनों प्रसन्न हो गये और विमान पर चढ़कर वे दोनों भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥२४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के श्रीभगवान् तथा लक्ष्मी के संवादान्तर्गत गीता के पाञ्चवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ उनासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७९।।

श्रीमद्भगवद् गीता के छठे अध्याय का माहात्म्य वर्णन

श्रीभगवान् ने कहा— हे सुन्दरि ! मैं गीता के छठे अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ । उसका श्रवण करने वाले मनुष्य के हाथ में मुक्ति हो जाती है ॥१॥ गोदावरी नदी के तट पर प्रतिष्ठानपुर नामक महान नगर है । हे प्रसन्न नेत्रों वाली ! वहाँ मैं पिप्पलेश के नाम से स्थित हूँ ॥२॥ वहाँ पर हंसों के पङ्ख से छिड़के गये गोदावरी के ठंढ़े जल विन्दुओं से संयमी पुरुषों का श्रम दूर हो जाता है ॥३॥ वहाँ पर विकसित कमल के पुष्पों के पराग से गोदावरी का प्रशंसनीय जल सुगन्धित रहता उसके कारण वहाँ के लोग जरा रहित बन जाते हैं ॥४॥ औषधीश की सुधा को धिक्कार है क्योंकि उससे विकार और क्षय भी होता है । उस नदी में स्नान करने वाली रमणियों के हाथ के ध्वनि करने वाले कङ्कनों से सुन्दर बने हुए भौंरे उन रमणियों के मुख का स्पर्श कमल समझ करते हैं ओर उन भ्रमरों की गुनगुनाहट मुनियों के भी मन

पश्यन्ननुदिनं यत्र क्षीयते मृगलाञ्छनः । अत्युच्चसौधवलभीमहामणिमरीचिभिः ॥८॥
चुम्ब्यन्ते मुनिगन्धर्वैर्दूर्वाचन्दनचञ्चलैः । यस्मिन्नाधूयमानानां पताकानां समीरणैः ॥९॥
गतश्रमा रवेर्याने भवन्ति रथवाजिनः । राशीकृतैर्मलयजैरसङ्ख्यातैर्वणिग्गणैः ॥१०॥
यस्मिन्नुपलशेषोऽसो लक्ष्यते मलयाचलः । पुञ्जीकृतानि दृश्यन्ते यत्र मुक्ताफलान्यपि ॥११॥
नगरीदेवताहास्यस्तबका इव सर्वतः । तत्र ज्ञानश्रुतिर्नाम्ना मेदिनीवल्लभोऽभवत् ॥१२॥

यस्मिन्नुद्धरति क्षोणीं शेषोऽयं मणिसन्निभाम् ।
अपि प्रतापमार्तण्डमण्डलीतीव्रतेजसि ॥१३॥
नित्यमध्यवरधूमेन श्यामलाः कल्पशाखिनः ।
असाधारणदातृत्वं पश्यन्त इव लज्जया ॥१४॥

यदध्वरपुरोडाशवर्वणास्वादलम्पटाः । न तत्यजुः सुपर्वाणः प्रतिष्ठानपुरं मनाक ॥१५॥

यस्य दानाम्बुधाराभिः प्रतापज्योत्स्नयाऽनिशम् ।
मखधूमैश्च सम्पुष्टा ववृषुः समये धनाः ॥१६॥

स्वल्पमात्रमपि क्वाऽपिन पदं प्रापुरीतयः। नीतयः प्रसरन्तिस्म यस्मिञ्छासतिमेदिनीम् ॥१७॥
वापिकूपतडागानां छद्मनायोऽनुवासरम्। हृदयस्थानिमेदिन्या निधानानिव्यलोकयत् ॥१८॥

पाण्डुराभिः पताकाभिः प्रसादो यस्य राजते ।
वियद्गङ्गातरङ्गौघैर्हिमाद्रिरिव सानुमान् ॥१९॥

दानैस्तपोभिर्यज्ञैश्च प्रजानां पालनेन च । तुष्टाः स्वर्गौकसस्तस्मै वरं दातुं समागमन्॥२०॥

को आकृष्ट करती है । अत्यन्त ऊँचे महलों के शिखर पर विचरण करती हुयी वनिताओं का मुख ॥५-७॥ देखते हुए चन्द्रमा प्रत्येक दिन क्षीण होते जाते हैं । अत्यन्त ऊँचे महल की बल भी की मणियों की चञ्चल कान्ति ॥८॥ मुनिजन तथा गन्धर्व दूर्वा, एवं चन्दन से स्पृष्ट होते हैं । वहाँ फहराते हुए पताकाओं की वायु से सूर्य के रथ के घोड़ों का श्रम समाप्त हो जाता है । असंख्य वणिक समूह के द्वारा एकत्रित किए गये चन्दनों से ॥९-१०॥ उस नगर में बचे हुए पत्थरों के टुकड़ें मलयाचल के समान प्रतीत होते हैं वहाँ पर एकत्रित की गयी मोतियाँ भी दिखायी देती हैं ॥११॥ वह नगरी देवताओं के हास्य गुच्छ के समान पूर्णरूप से प्रतीत होती है । वहाँ के राजा का नाम ज्ञानश्रुति था ॥१२॥ उस नगर में मणि के समान पृथिवी को ये शेष धारण करते हैं राजा के प्रताप रूपी सूर्य मण्डल के तीब्र तेज में भी प्रतिदिन किए जाने वाले यज्ञ के धूम से कल्प वृक्ष श्याम वर्ण के हो जाते हैं । मानो राजा के असाधारण दान कर्तृत्व को देखकर वे लज्जित हो जाते हों ॥१३-१४॥ जहाँ के यज्ञों के पुरोडाशों का आस्वाद लेना चाहने वाले देवता उस नगरी का कभी त्याग नहीं करते हैं ॥१५॥ जिसके द्वारा किये जाने वाला दान के जल की धाराओं से और निरन्तर रहने वाली प्रताप रूपी ज्योत्स्ना (चाँदनी) तथा यज्ञों के धूम से पुष्ट बने मेध समयानुसार वर्षा करते थे ॥१६॥ वहाँ पर कहीं भी इतियाँ अपना बिल्कुल स्थान नहीं प्राप्त करती थीं । उस राजा के प्रशासन काल में सर्वत्र नीतियाँ फैली हुयी थीं ॥१७॥ जो नगर, वापी, कूप तथा सरोवरों के व्याज से जो प्रतिदिन हृदय में विद्यमान पृथिवी के खजानों को देखता था ॥१८॥ उस नगर के महल धवल पताकाओं से वहाँ के महल सुशोभित होते थे । जिस तरह आकाश गङ्गा के तरङ्ग समूह के द्वारा शिखरों

ततोऽन्तरिक्षमार्गेण धुन्वानाः पक्षसंहतीः । मृणालधवलादेविदेवहंसा विनिर्गताः ॥२१॥
त्वरया गच्छतां तेषामन्योन्यं तत्र भाषिणाम् ।
भद्राश्वप्रमुखा द्वित्राः पुरस्तान्निर्ययुर्जवात् ॥२२॥
पाश्चात्यहंसा ऊचुस्तान्पुरस्ताद्गच्छतो जवात् ॥२३॥

पाश्चात्यहंसाऊचुः

कथं वेगेन निर्याता भवन्तः पुरतः स्थिता। सर्वैर्मिलित्वा गन्तव्यमस्मिन्नध्वनि दुर्गमे ॥२४॥
प्रकाशमानं पुरतस्तेजःपुञ्जं न पश्यथ । ज्ञानश्रुतेर्महीभर्तुः पुण्यमूर्त्तेरतिस्फुटम् ॥२५॥

श्रीशिव उवाच

निशम्येति वचः सम्यक्पाश्चात्यानांपुरःस्थिताः ।
हंसाहसित्वासावज्ञमूचुर्वचनमुच्चकैः ॥२६॥

पुरःस्थितहंसाऊचुः

रैक्याभिधस्य दुर्धतेजसो ब्रह्मवादिनः। किं नु ज्ञानश्रुतेरस्य राज्ञस्तीव्रतरं महः ॥२७॥

श्रीशिव उवाच

इति शुश्राव हंसानां गिरो ज्ञानश्रुतिर्नृपः । अत्युच्चसौधभवनमारुह्य च सुखं स्थितः॥२८॥
ततः सारथिमाहूय भूपालो विस्मयान्वितः । संदिदेश महात्माऽसौ रैक्य आनीयतामिति॥२९॥
ततोऽवधार्य भूपालवचः पीयूषगर्भितम् । निर्जगाम महोनाम्ना सारथिः प्रथमन्मुदम् ॥३०॥
यत्र वाराणसीनाम नगरी मुक्तिदायिनी। यत्र विश्वेश्वरोनाम ह्युपदेष्टा जगत्पतिः ॥३१॥
ततो गयाभिधे क्षेत्रे यत्र देवो गदाधरः। उद्धर्तुमखिलाँल्लोकान्वसत्युत्फुल्लालोचनः ॥३२॥

से युक्त हिमालय को देख रही हों ॥१९॥ दान, तपस्या तथा यज्ञों के द्वारा और प्रजाओं के पालन से सन्तुष्ट हुए देवता उस राजा को वरदान देने के लिए आये ॥२०॥ उसके अन्तरिक्ष मार्ग से अपने पङ्खों को फड़फडातें हुए । हे देवि ! मृणाल के समान धवल हंस निकले ॥२१॥ शीघ्रता से जाते हुए वे परस्पर में बोलते हुए भद्राश्व इत्यादि दो तीन प्रमुख हंस उन सबों के सामने वेग से निकले ॥२२॥ पीछे रहने वाले हंस वेग से जाते हुए उन सबों से कहे ॥२३॥ **पीछे के हंसों ने कहा—** आपलोग आगे रहने वाले हैं आप लोग क्यों वेग से जा रहे हैं ? इस दुर्गम मार्ग में सबों को मिलकर चलना चाहिए ॥२४॥ क्या तुमलोग सामने चमकते हुए तेजः समूह को नहीं देखते हो ? वह पुण्य मूर्ति तथा राज ज्ञानश्रुति का स्पष्ट रूप से तेज है ॥२५॥ **शिवजी ने पार्वतीजी से कहा—** पीछे वाले हंसों की वाणी को अच्छी तरह से सुनकर आगे चलने वाले हंस हँसकर अनादर पूर्वक जोर से कहे ॥२६॥ **आगे के हंसों ने कहा—** ब्रह्मज्ञानी तथा दुर्धर्ष तेज से सम्पन्न रैक्यके तेज के सामने राजा ज्ञानश्रुति का अत्यन्त तेज क्या है?॥२७॥ **श्रीशिवजी ने कहा—** हंसों की इस वाणी को राजा ज्ञानश्रुति ने सुना । उस समय अत्यन्त उच्च भवन के ऊपर राजा सुख पूर्वक बैठे थे ॥२८॥ उसके बाद वह राजा अपने सारथि को बुलाकर कहे तुम महात्मा रैक्य को बुला लाओ ॥२९॥ राजा की अमृतमयी वाणी को सुनकर महो नामक सारथि अपनी प्रसन्नता को बढ़ाते हुए निकल पड़ा ॥३०॥ जहाँ पर वाराणसी नामक मुक्ति दायिनी नगरी है और जहाँ पर जगत्पति स्वयं विश्वेश्वर उपदेश करने वाले हैं ॥३१॥ उसके बाद गया नामक क्षेत्र है जहाँ पर भगवान् गदाधर प्रसन्न

ततो गौरीगुरोः सर्वैस्तीर्थैरनेकधा। पर्यटन्गंतवान्यत्र केदारः पापदारणः ॥३३॥
यमालोक्य सकृन्मर्त्या मुक्ताः स्युर्नाऽत्र संशयः ।
महापापविनिर्मुक्ता भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥३४॥
ततो गौडेषु निर्यातोयत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तमः। यस्यावलोकनादेव नराः स्वर्लोकगामिनः॥३५॥
ततो द्वारावतींप्रागान्नगरींमुक्तिदायिनीम्। यत्राऽऽस्तेगोमतीतीरेरुक्मिणीवल्लभोहरिः ॥३६॥
स्नात्वा च गोमतीतीर्थे पञ्चकृष्णान्विलोक्य च ।
मर्त्यो मुक्तिमवाप्नोति भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥३७॥
ततः समुद्रमासाद्य सोमनाथं विलोक्य च। भुक्तिमुक्तिप्रदं देवं ततो निरगमत्सुधीः ॥३८॥
अवन्तिकांपुरीम्प्राप्तोभुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् । यत्रोमयासुखंक्रीडन्महाकालोऽस्तिशङ्करः ॥३९॥
अथोङ्कारं समासाद्य शर्मदं नर्मदातटे। भुक्तिमुक्तिप्रदातारं त्वरया निर्गतस्ततः॥४०॥
अश्वमेधकरं नाम्ना नगरं पर्यटंस्ततः । यत्र शार्ङ्गधरः साक्षादास्ते लक्ष्मीपतिः स्वयम्॥४१॥
ततो विष्णुगया प्राप्ताः कुण्डलोणारसञ्ज्ञितम् ।
यत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते बन्धनान्नरः ॥४२॥
ततः कोल्हपुरं नाम गतो रुद्रगयां प्रति। आस्ते भगवती यत्र लक्ष्मीर्भक्तिप्रदायिनी॥४३॥
पञ्चनद्यां नरः स्नात्वा महालक्ष्मीविलोक्य च ।
भुत्तवाभोगान्यथाकामंभक्तिंचप्रतिपद्यते ॥४४॥

नेत्रों वाले तथा सभी जीव का उद्धार करने के लिए विद्यमान है ॥३२॥ उसके पश्चात् वह हिमालय के सन्निकट सभी तीर्थो में अनेक बार पर्यटन करते हुए वह सारथि पाप विनाशक केदार क्षेत्र में गया ॥३३॥ उन केदार भगवान् का एक बार दर्शन करके मनुष्य मुक्त हो जाते हैं । वे महापापों से मुक्त होकर अपने मनोभिलषित भोगों को भोगकर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥३४॥ उसके बाद वह गौड प्रदेश में गया जहाँ पर भगवान् पुरुषोत्तम हैं उनका दर्शन करने मात्र से मनुष्य स्वर्ग प्राप्ति के भागी हो जाते हैं ॥३५॥ उसके पश्चात् वह मुक्ति प्रदान करने वाली गोमती नदी के तट पर रुक्मिणी बल्लभ भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं वहाँ गया ॥३६॥ गोमती नदी में स्नान करके तथा पाँच कृष्णों का दर्शन करके मनुष्य अपने मनोऽनुकूल भोगों को भोगकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥३७॥ उसके बाद समुद्र में जाकर तथा भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले देव सोमनाथ का दर्शन करके वह वहाँ से चल पड़ा । उसके बाद भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली अवन्तिका पुरी (उज्जैन) आया । वहाँ पर महाकाल शङ्करजी पार्वतीजी के साथ सुख पूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥३८-३९॥ उसके पश्चात् कल्याण प्रदान करने वाले नर्मदा नदी के तट पर विद्यमान ओङ्कारेश्वर जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं उनका दर्शन करके वह वहाँ से शीघ्रता से चल पड़ा ॥४०॥ उसके बाद अश्वमेधकर नगर में आया जहाँ पर शार्ङ्ग धनुषधारी भगवान् लक्ष्मीपति विद्यमान हैं ॥४१॥ उसके पश्चात् वह कुण्डलोणार नामक विष्णु गया, जहाँ पर मनुष्य स्नान करके और वहाँ का जल पीकर संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥४२॥ तदनंतर वह रुद्र गया नामक कोल्हापुर आया । वहाँ पर भक्ति प्रदान करने वाली लक्ष्मीजी विद्यमान हैं ॥४३॥ पञ्चनदी में स्नान करके तथा महालक्ष्मी का दर्शन करके मनुष्य

ततोऽमलगिरिं नाम नगरीं प्रतिपद्य च। नन्दिकेश्वरमारुह्य सोमनाथोऽस्ति यत्र तु ॥४५॥
दृष्ट्वा चतुर्भुजं देवे वरदानोद्यतं शिवम्। सोमानं नृणां मुक्तिर्भवत्येव न संशयः ॥४६॥
तुङ्गभद्रानदीतीरे दृष्ट्वा हरिहरं ततः। युगे युगे भुजा यस्य पतन्त्यवनिमण्डले॥४७॥
यद्विलोक्य नराःसर्वे रम्यंहरिहरम्वपुः। भुक्त्वा भोगान्यथाकाममंमुच्यन्तेबन्धनान्नराः ॥४८॥

स्वर्गे कल्पशतं स्थित्वा मुक्तसंसारबन्धनाः ।
ततः स्वामिनमालोक्य लोकानां स्वामिनं विभुम् ॥४९॥

यमालोक्य न पश्यन्तिनिरयंजातुचिन्नराः। स्वर्गे कल्पशतंस्थित्वामुक्तसंसारवासनाः ॥५०॥
मुक्तिं च प्रतिपद्यन्ते नाऽत्रकार्याविचारणा। ततः श्रीशैलमासाद्यसिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥५१॥
गिरिजावल्लभो यत्रमल्लिनाथोऽभिधानतः। उद्धर्तुमखिलाँल्लोकान्संसाराम्भोधिमध्यतः ॥५२॥

स्वर्गे कल्पशतं स्थित्वा मुक्तसंसारबन्धनाः ।
मुक्तिं च प्रतिपद्यन्ते नाऽत्रकार्या विचारणा ॥५३॥

ततःश्रीशैलमासाद्य सिद्धगन्धर्वसेवितम्। गिरिजावल्लभो यत्र मल्लिनाथोऽभिधानतः ॥५४॥
उद्धर्तुमखिलाँल्लोकान्संसाराम्बुधिमध्यतः । काले काले परं ज्योतिर्यः सन्दर्शयतेस्वयम् ॥५५॥
अवलोकयतां नृणां यमनुस्मरतामपि। दूरे तिष्ठन्ति सन्त्रस्तां दूरं निरययातनाः ॥५६॥

स्वर्गे लोके सुखंभुत्तवा भुक्तसंसारबन्धनाः ।
मुक्तिं च प्रतिपद्यन्ते मानवानाऽत्रसंशयः ॥५७॥
रामोऽस्ति सानुजः सार्यं जानक्याऽपि ततो गतः ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते नरकाद्ध्रुवम् ॥५८॥

अपने मनोऽनुकूल भोगों को भोगकर भक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥४४॥ वहाँ से अमलगिरि नामक नगरी में आकर जहाँ पर नन्दिकेश्वर पर बैठे हुए सोमनाथ विद्यमान हैं ॥४५॥ वरदान देने के लिए उद्यत चतुर्भुज शिव सोमनाथ का दर्शन मनुष्यों की निश्चित रूप से मुक्ति देता है ॥४६॥ उसके पश्चात् तुङ्गभद्रा नामक नदी के तट पर विद्यमान हरिहर जिनकी भुजा प्रत्येक युग में पृथिवी पर गिरती है उनको दर्शन करके॥४७॥ जिनका दर्शन करके सभी मनुष्य अपने मनोऽनुकूल भोगों को भोगकर संसार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥४८॥ संसार के बन्धन से मुक्त होकर स्वर्ग में सौ कल्पों तक निवास करके तथा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् का दर्शन करके जिनका दर्शन करके मनुष्य कभी भी नरक में नहीं जाते हैं, स्वर्ग में सौ कल्पों तक निवास करके संसार के बन्धन से मुक्त हुए मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। इस विषय में विचार नहीं करना चाहिए। वहाँ से सिद्धों और गन्धर्वों से सेवित श्रीशैल पर आकर ॥४९-५१॥ जहाँ पर मल्लीनाथ नामक शिवजी संसार सागर से सभी जीवों का उद्धार करने के लिए स्वयं ज्योति होने के कारण समय-समय पर स्वयं दर्शन देते हैं ॥५२॥ वे लोग स्वर्ग में सौ कल्पों तक निवास करके संसार के बन्धन से मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥५३॥ वहाँ से सिद्धों गन्धर्वों से सेवित मल्लिनाथ नामक शिवजी संसार सागर से सभी जीवों का उद्धार करने के लिए समय-समय से स्वयं दर्शन देते हैं ॥५४-५५॥ जिनका दर्शन करने वाले तथा स्मरण करने वाले से डर कर नरक यातना दूर रहती है ॥५६॥ स्वर्गलोक में सुख भोगकर संसार के बन्धन से मुक्त मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। इसमें किसी भी प्रकार का

कल्पकोटिशतं भुक्त्वा स्वर्गलोकसुखंनराः ।
मुक्तसंसारवर्त्मानो मुक्तिंयान्तिनसंशयः ॥५९॥

ततो निवृत्य आयातः पश्यन्भीमरथीतटे । द्विभुजं विट्ठलं देवं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥६०॥
यत्र गोदावरीजन्मस्थानं ब्रह्मगिरिर्महान् । गौतमालयमासाद्य यत्राऽऽस्तेत्र्यम्बकोहरः ॥६१॥
अरुणावरुणयोमध्ये यत्र गोदावरीनदी । तत्र स्नात्वा च पीत्वा च ब्रह्महत्याविलीयते ॥६२॥
असङ्ख्यतीर्थसम्पन्नं दृष्ट्वा ब्रह्मगिरिं नराः । मुक्तिमेव प्रपद्यन्ते मुक्ताः संसारदुःखतः ॥६३॥
गौतम्युभयतीरस्थतीर्थान्वेषणकौतुकी । ततो जगाम सूतस्तु मथुरां पापनाशिनीम् ॥६४॥
यत्र स्वायम्भुवं देवं भजन्ति सुरमानवाः । आद्यं भगवतःस्थानं महन्मुक्तिप्रदायकम् ॥६५॥
त्रैलोक्येशजनिस्थानं विख्यातं वेदशास्त्रयोः । नानादेवगणैर्जुष्टं द्विजर्षिगणसेवितम् ॥६६॥
कालिन्दीकूलसंशोभि ह्यर्धं चन्द्रप्रभाकृति । सर्वतीर्थनिवासैकपूर्णमानन्दसुन्दरम् ॥६७॥
गोवर्धनगिरिप्रख्यं पुण्यद्रुमलतावृतम् । द्विषड्वनं महापुण्यं विश्रान्तिश्रुतिसारभृत् ॥६८॥
ततः काश्मीरनगरमपश्यत्प्रत्यगुत्तरम् । दृष्ट्वा धर्मधुरं क्षेत्रं कुरुक्षेत्रं समन्ततः ॥६९॥
यत्राभ्रँल्लिहगेहानां पङ्क्तयः शङ्खपाण्डुराः । ता जाता धूर्जटेः स्पष्टअट्टहासदशा इव ॥७०॥
भक्तिप्रसादमालानां सुवर्णकलशैर्वृतम् । स्वः सिन्धुपतितानीव हेमपद्मानि मारुतैः ॥७१॥
यत्र प्रासादशिखरे नीलपट्टपताकिकाः । शैवालवलया भान्ति स्वसिन्धोर्लतिका इव ॥७२॥

संशय नहीं है ॥५७॥ वहाँ पर राम, लक्ष्मण और जानकी विद्यमान हैं, वहाँ पर स्नान करके और वहाँ का जल पीकर मनुष्य नरकों से छूट जाता है ॥५८॥ करोड़ों कल्प तक स्वर्गीय सुख भोगकर मनुष्य संसार मार्ग से मुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं । वहाँ से लौटकर सारथि भीमरथी नदी के तट पर भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले द्विभुज भगवान् विट्ठल देव का दर्शन करके जहाँ पर गोदावरी नदी की उत्पत्ति का स्थान ब्रह्मगिरि है उस गौतमालय में वह आया, वहाँ पर त्र्यम्बक शिवजी हैं ॥५९-६१॥ जहाँ पर अरुणा और वरुणा नदियों के बीच में गोदावरी नदी है । वहाँ पर स्नान करके और उसका जल पीकर ब्रह्महत्या का नाश हो जाता है ॥६२॥ असंख्या तीर्थों से युक्त ब्रह्मगिरि का दर्शन करके मनुष्य संसार के दुःख से मुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥६३॥ गौतमीनदी के दोनों तट पर विद्यमान् तीर्थों का अन्वेषण करके वह सारथि पापनाशिनी मथुरापुरी में गया ॥६४॥ वहाँ के मनुष्य तथा देवता स्वायम्भुव देव की उपासना करते हैं । वह श्रीभगवान् का पहला स्थान है । वह मुक्ति प्रदान करने वाला है ॥६५॥ त्रैलोक्य के स्वामी का जन्म स्थान वेदों तथा शास्त्रों में विख्यात है । वह अनेक देव समूह से तथा ब्राह्मणों एवं ऋषियों से सेवित है ॥६६॥ यमुना के तट पर सुशोभित वह अर्द्धचन्द्रमा के आकार का है । वह सभी तीर्थों के निवास का एक मात्र सुन्दर तथा आनन्द से परिपूर्ण स्थान है ॥६७॥ गोवर्धन पर्वत के समान तथा पवित्र वृक्षों एवं लताओं से घिरा है । उस पर बारह महापवित्र वन हैं और वह श्रुतियों का सार स्वरूप है ॥६८॥ उसके बाद पश्चिम और उत्तर दिशा में उसने कश्मीर नगर को देखा । उसके बाद धार्मिक कुरुक्षेत्र का दर्शन करके वह ॥६९॥ वहाँ पर शङ्ख के समान गगनचुम्बी भवनों की पंक्तियाँ विद्यमान हैं । वे सब शङ्करजी के अट्टहास के समान हैं ॥७०॥ वे भक्तिप्रसादसमूह तथा सुवर्ण के कलशों से सुशोभित है । वहाँ पर सेवार की लताएँ आकाश गङ्गा की वायु से प्रेरित होकर गिरे हुए स्वर्णिम कमल के समान प्रतीत होती

यत्र काश्मीरमाश्रित्य नित्यं वसति भारती। नो चेद्युगपदेवेदं कथं लिखति वाङ्मयम् ॥७३॥
विश्रामन्त्याः सरस्वत्याश्चिरं यत्र मदालसाः ।
मृणालचञ्चवो हंसा वाहनानि चरन्त्यमी ॥७४॥
कलाविशेषं प्रहिता यत्र बोद्धुं विरिञ्चिना। ताराइव विराजन्ते हंसा याताः समन्ततः॥७५॥
स्थलपद्मानि दृश्यन्ते करस्पर्शसुखानि च। शयनाय नितम्बिन्या यस्मिन्दानववैरिणा॥७६॥
उपन्यासैर्द्विजातीनां यत्र न श्रूयते स्फुटम्। मूकोऽपि निर्जरो वाचा पदकल्लोलडम्बरः ॥७७॥
यस्मिन्नध्वरधूमेन व्याप्तं गगनमण्डलम्। अपि च क्षालितं मेघैः कालिमानं न मुञ्चति ॥७८॥
गलितायाः सुधायास्तु यत्राऽध्वरमहार्चिषा। लाञ्छितं छद्मना स्थानं दृश्यते तुहिनत्विषि ॥७९॥
जन्माभ्यासवाशादेव पठन्ति बटवः स्वयम्। यत्रोपाध्यायसान्निध्यमाश्रित्य सकलाः कलाः ॥८०॥
यत्र ब्राह्मणपत्नीनां कङ्कणध्वनिहुङ्कृतिः। लुम्पत्यनुदिनं भ्राम्यद्भ्रमराणां च गर्जितम्॥८१॥
यत्र ब्राह्मणपत्नीनां कपोलफलकं मुहुः। स्पृशन्समीरणो मन्दं वाति शापभयादिव॥८२॥
माणिक्येश्वरनामाऽसौ यत्र शीतांशुशेखरः। वसन्त्यनुदिनं देवो वरदानाय देहिनाम्॥८३॥
अर्चितोभूपतीञ्जित्वामणिकेशेनचाऽऽदूतः । माणिक्येश्वरइत्याख्यांतदाप्रभृतियो दधौ ॥८४॥
राज्ञा काश्मीरदेवेशदिग्जयोत्सक्कारिणा। असौ सुपूजितो यस्मान्माणिक्वैर्भूरिभूतिभिः॥८५॥
संसेवमानं तद्वारिच्छायां शकटिकोपरि। कण्डूयमानमङ्गानि यन्ता रैक्यमपश्यत॥८६॥

हैं ॥७१॥ वहाँ के भवनों के शिखर पर लगी नीले वस्त्र की पताकायें तथा सेवार की लतायें स्वर्गङ्गा (आकाश गङ्गा) की लता के समान शोभती हैं ॥७२॥ वहाँ पर काश्मीर में सरस्वती देवी सदा निवास करती हैं। अन्यथा वह समकाल में ही भाषा को कैसे लिखता है ॥७३॥ मद से अलसायी हुयी सरस्वती देवी दीर्घकाल तक विश्राम करती हैं और उनके वाहन हंस यहाँ पर अपनी चोंच मृणाल (कमलनाल) लिए हुए विचरण करते हैं ॥७४॥ वहाँ पर ब्रह्माजी के द्वारा कला विशेष को सीखने के लिए भेजे गये हंस चारो ओर तारा के समान सुशोभित होते हैं। छूने में सुखद स्थूल कमल दिखायी देते हैं। रमणियों के शयन करने के लिए श्रीभगवान् के द्वारा लगाये गये हैं ॥७५-७६॥ ब्राह्मणों के वेदाध्ययन के कारण देवताओं की मूक वाणी तथा पद समूह स्पष्ट नहीं सुनायी देते हैं ॥७७॥ वहाँ के यज्ञों के धूम से व्याप्त आकाश मण्डल मेघों के द्वारा प्रच्छादित होने पर अपनी कालिमा को नहीं त्यागता है ॥७८॥ वहाँ पर यज्ञों की महान् ज्योति से निकले हुए अमृत से बर्फ के व्याज से ढँका हुआ स्थान वर्फ की कान्ति में दिखायी देता है ॥७९॥ वहाँ जन्म से ही अभ्यास के कारण छात्र गण अपने उपाध्याय के सन्निकट में सभी कलाओं को स्वयं पढ़ते हैं ॥८०॥ वहाँ ब्राह्मणों की पत्नियों के कङ्गन की ध्वनि से निरन्तर घूमने वाले भौरों की गुजन ध्वनि नहीं सुनाई देती है ॥८१॥ वहाँ के ब्राह्मणों की पत्नियों के गाल को बार-बार स्पर्श करने वाली वायु शाप के भय से मन्दगति से चलती है ॥८२॥ वहाँ पर माणिक्येश्वर नामक शङ्करजी शरीर धारियों को वरदान देने के लिए प्रतिदिन निवास करतें हैं ॥८३॥ राजाओं को जीतकर राजा मणिकेश ने इनकी स्थापना की थी इसी कारण इनका नाम माणिक्येश्वर है ॥८४॥ कश्मीर के स्वामी राजा दिग्विजय महोत्सव करते इन शङ्करजी की पूजा माणिक्यों तथा विपुल मात्रा में विभूतियों से की ॥८५॥ उस सारथि

राज्ञाऽपि कथितैस्तैस्तैश्चिह्नैः परिचितं जवात् ।
प्रणतः सारथी रैक्यं प्रणम्यतमभाषत ॥८७॥

सारथिरुवाच

कस्मिन्ब्रह्मन्किन्नामाऽसि स्वच्छन्दोऽसि निरन्तरम् ।
किमर्थमत्र विश्रान्तः किञ्च कर्तुं चिकीर्षसि ॥८८॥

श्रीशिव उवाच

इत्याकर्ण्य च तद्वाक्यं परमानन्दनिर्भरः । स्मृत्वा सारथिमित्यूचे वयं पूर्णमनोरथाः ॥८९॥
परंकेनाऽपि बहुना परिचर्याविधायिना। भवितव्यं मनोवृत्तिं जानताऽस्माकमेव हि ॥९०॥
हृदयस्थितमादाय रैक्याभिप्रायमादरात्। शनैर्निरगमद्यन्ता यत्राऽऽस्ते वसुधाधिपः ॥९१॥
ततः प्रणम्य भूपालं यथावृतं न्यवेदयत्। बद्धाञ्जलिपुटोहृष्टः सारथिः स्वामिदर्शनात् ॥९२॥
ततो निशम्य तद्वाक्यं विस्मयस्मेरलोचनः। श्रद्धालुरभवद्भूपो रैक्यसम्भावनाविधौ ॥९३॥
आदायाश्वतरीयुग्मयुक्तां शकटिकामगात्। मुक्ताहारदूकूलानि सहस्रं च गवां नृपः ॥९४॥

गतोऽसौ तत्र यत्राऽऽस्ते योगी काश्मीरमण्डले ।
तन्निवेद्य पुरो राजा दण्डवत्पतितो भुवि ॥९५॥
आनम्य परयाभत्तया रैक्यो राज्ञे चुकोप ह ।
रे शूद्र ! मामकं वृत्तं न जानासि दुरीश्वर ! ॥९६॥

गृहाण शकटीमेतामुत्याप्याऽश्वतरीयुताम्। वस्त्राणि मुक्ताहारांश्च गाश्च दोग्ध्रीरपि स्वयम् ॥९७॥
इत्थमाज्ञप्तवान्भूपो रैक्यस्य भयमादधे। ततः शापभयाद्राजा तत्पदाम्भोरुहद्वयम् ॥९८॥

ने देखा कि गाड़ी के ऊपर स्थित महर्षि रैक्य उसकी छाया को जल से वचने के लिए सेवन कर रहे हैं॥८६॥ राजा ने भी विभिन्न चिह्नों से चिह्नित रैक्य को बतलाया। सारथि ने भी झुककर महर्षि को प्रणाम करके कहा ॥८७॥ **सारथि ने कहा**— हे ब्रह्मन्! आपका क्या नाम है? आप सर्वदा स्वच्छन्द हैं। आप यहाँ पर क्यों आराम कर रहे हैं? आप क्या करना चाहते हैं ॥८८॥ **शिवजी ने कहा**— परम आनन्द से भरे हुए महर्षि सारथि के वाक्य को सुनकर कहे, हमारे सारे मनोरथ पूर्ण हैं ॥८९॥ किन्तु यहाँ पर मेरी बहुत सेवा करने वाले किसी को होना चाहिए ॥९०॥ रैक्य के मन में विद्यमान अभिप्राय को जानकर सारथि धीरे से वहाँ से निकल कर राजा के पास गये ॥९१॥ हाथ जोड़कर प्रसन्न सारथि ने राजा का दर्शन करके तथा प्रणाम करके सारा वृत्तान्त बतलाया ॥९२॥ उसके बाद सारथि के वाक्य को सुनकर आश्चर्य से विकसित नेत्र वाले राजा ने रैक्य का समादर करना चाहा ॥९३॥ वे दो घोड़ियों से युक्त गाड़ी पर मोती के हारों वस्त्रों तथा हजारों गायों को लेकर राजा वहाँ गये जहाँ पर कश्मीर मण्डल में योगी रैक्य निवास करते थे। वे सबकुछ निवेदित करके पृथिवी पर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किए ॥९४-९५॥ राजा परम भक्ति से युक्त थे किन्तु रैक्य राजा पर क्रुद्ध हो गये। कहे दुष्ट शूद्र राजन्! तुम मेरे वृत्त को नहीं जानते हो॥९६॥ घोड़ियों से युक्त इस शकटी को उठाकर ले जाओ। वस्त्रों, मोती के हारों और गायों को भी स्वयं ले जाओ ॥९७॥ रैक्य के द्वारा इस तरह आज्ञात राजा भयभीत हो गये। फिर शाप के भय से राजा

गृह्णन्भत्तया प्रसीदेति ब्रह्मन्नित्यूचिवान्स्वयम् ॥९९॥

राजोवाच

भगवंस्तवमाहात्म्यमेतदत्यद्भुतं कुतः । प्रसन्नीभूय भगवान्नाख्याहि मम तत्त्वतः ॥१००॥

रैक्य उवाच

गीतानांषष्ठमध्यायं जपामि प्रत्यह नृप ! । तेनैव तेजोराशिर्मे सुराणामपि दुःसहः ॥१०१॥

श्रीशिव उवाच

गीतानां षष्ठमध्यायं रैक्यादभ्यस्य यत्नतः । ज्ञानश्रुतिर्महीपालो मुक्तिमाप ततः सुधीः ॥१०२॥

रैक्योऽपि सुखमालेभेमाणिक्येश्वरसन्निधौ। गीतानां षष्ठमध्यायंजपन्मोक्षप्रदायकम् ॥१०३॥

मरालवेषमास्थाय वरदानार्थमागताः ।
दिवौकसोऽपि निर्जग्मुः स्वैरं विस्मयकारिताः ॥१०४॥

इममध्यायमप्येकं यो जपेत्सततं नरः । सोऽपि तत्पदवीमेति विष्णोरेव न संशयः ॥१०५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
गीताषष्ठाध्यायमाहात्म्ये अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८०॥

ऋषि के दोनों चरणों को ॥९८॥ पकड़कर भक्तिपूर्वक राजा ने कहा ब्रह्मन् ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायँ॥९९॥ **राजा ने कहा—** भगवन् ! आपका यह अद्भुत माहात्म्य कैसे है ? आप प्रसन्न होकर मुझे इसे ठीक-ठीक बतलायें ॥१००॥ **रैक्य ने कहा—** मैं गीता के छठे अध्याय का प्रतिदिन पाठ करता हूँ इसीलिए मेरी तेजो राशि देवताओं के भी लिए दुःसह है ॥१०१॥ **श्रीशिवजी ने कहा—** गीता के छठे अध्याय का रैक्य से अभ्यास करके राजा ज्ञानश्रुति ने मुक्ति प्राप्त कर ली ॥१०२॥ रैक्य भी मणिक्येश्वर के सन्निकट सुख प्राप्त किए । वे मोक्ष प्रदान करने वाले गीता के छठे अध्याय का अभ्यास करते थे॥१०३॥ हंस का वेष धारण करके वरदान देने के लिए आये और आश्चर्य चकित होकर वे वहाँ से चले गये ॥१०४॥ इस एक अध्याय का भी जो मनुष्य निरन्तर पाठ करता है वह निश्चित रूप से भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥१०५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत एक सौ अस्सीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८०॥

एक सौ एक्यासीवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

अथ ते वर्णयिष्यामि सप्तमाध्यायगौरवम्। यदाकर्ण्यसुधापूरपूर्तिर्भवति कर्णयोः ॥१॥
अस्तिपाटलिपुत्राख्यं दुर्गमुत्तुङ्गगोपुरम् । तत्राऽभूद्ब्राह्मणो नाम शङ्कुकर्णो दयार्णवः॥२॥
वैश्यवृत्तिं समासाद्य धनमर्जितवान्बहु। पितृन्न तर्पयामास पूजयामास नो सुरान्॥३॥
पार्थिवान्पूजयाञ्चक्रे धनार्जनपरायणः। तुरीयपाणिग्रहणमङ्गलार्थं गृहान्तरे ॥४॥
तनुजैर्बन्धुभिः सार्धं सम्प्रतस्थे कदाचन। रजन्यां धर्मकल्पायां निद्रालोस्तस्य दोस्तले॥५॥
दशतिस्म समागत्य दन्दशूकः कुतश्चन। स दष्टमात्रोऽसाध्यात्मा मणिमन्त्रौषधादिभिः ॥६॥
क्षणैः कतिपयैरेव गतासुरभवत्ततः। पिचुमन्ददलैर्नालैरवकुण्ठितविग्रहम् ॥७॥
तमारोप्य तरुस्कन्धे सूनवो गृहमाययुः। ततः कालेन बहुना ततो जातः सरीसृपः॥८॥
तद्वासनानिबद्धात्मा जन्मपूर्वमनुस्मरन्। वञ्चयित्वा सुतानेतान्पूरयामि गृहाद्बहिः ॥९॥
तद्वासनानिबद्धात्मा जन्मपूर्वमनुस्मरन्। वञ्चयित्वा सुतानेतान्पूरयामि गृहाद्बहिः ॥१०॥
आत्मनः कोटिसङ्ख्याकं यत्राऽऽस्ते स्थापितं वसु ।
ततो नारायणबलिं श्रद्धया परयाऽन्विताः ॥११॥
कृतवन्तः परे तस्य सूनवो हि द्विजन्मनः। एकदा स्वप्नमागत्य पीडितः सर्पजन्मना॥१२॥
अभाषयमनोवृत्तं पुत्राणामग्रतः पिता। ततस्ते प्रातरुत्थाय परं विस्मयमोहिताः ॥१३॥
इतरेतरमाख्याय पश्यन्तस्ते निरङ्कुशाः। एकस्तत्र पितृस्नेहादुद्धर्तुमपि वाञ्छति ॥१४॥

शङ्कुकर्ण ब्राह्मण के वृत्तान्त के माध्यम से गीता के सातवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन

श्रीभगवान् ने कहा— अब मैं तुम्हें गीता के सातवें अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ । जिसके श्रवण करने से कानों के अमृत प्रवाह की पूर्ति होती है ॥१॥ पाटलिपुत्र नामक किला उन्नत गोपुर से युक्त है । वहाँ पर दया सागर शङ्कुकर्ण नामक ब्राह्मण थे ॥२॥ वे वैश्य वृत्ति को अपनाकर बहुत अधिक धन अर्जित किए । वे न तो पितरों को तृप्त किए और न देवताओं की पूजा किए ॥३॥ धनार्जन में लगे हुए वे राजाओं की पूजा किए । गृह के भीतर मङ्गल के लिए उन्होंने चतुर्थ विवाह किया ॥४॥ पुत्रों और बान्धवों के साथ एक बार वे धर्म स्वरूप रात्रि में प्रस्थान किए । सोए हुए उनके हाथ के नीचे ॥५॥ कहीं से आकर सर्प ने काट लिया । मणि मन्त्र आदि से असाध्य स्वरूप काटने मात्र से कुछ क्षणों में वे मर गये । नीम के पत्तों से और नालों से उनके शरीर को बाँधकर ॥६-७॥ उनको वृक्ष की शाखा पर रखकर उनके पुत्र घर आ गये । बहुत दिनों के बाद वे सर्प हो गये ॥८॥ पूर्वजन्म की वासना से निबद्ध शरीर वाले पूर्व जन्म का स्मरण करते हुए अपने पुत्रों को धोखा देकर गृह से बाहर धन को गाड़ दिए ॥९॥ जहाँ पर उनको करोड़ों संख्या में धन था उसके बाद श्रद्धा से युक्त उनके पुत्र ने नारायण बलि ॥१०॥ उनके दूसरे पुत्र किए । एक बार वे सर्प शरीर से पीड़ित होकर स्वप्न में ॥११॥ अपने पुत्रों के समीप आकर बतलये । उसके पश्चात् प्रात:काल जगकर अत्यन्त आश्चर्यित वे सब ॥१२॥ निरङ्कुश होने के कारण एक दूसरे से कहकर देखते रहे । उसके बाद अपने पिता के प्रति स्नेह होने के कारण एक पुत्र की अपने

अन्यो द्रविणलोभेन निहन्तुं सर्पमीहते। इतरस्तु पितृस्नेहरसमोहितमानसः ॥१५॥

किम्वा अहिमयो न स्याच्छोचन्नोदिदिति केवलम् ।

मध्यमस्तु ततः पुत्रो वञ्चयित्वा सहोदरौ ॥१६॥

केनाऽपि च्छद्मनोत्थाय जगाम निजमालयम् ।

ततः शनैः समाहूय गृहिणीं गुणशालिनीम् ॥१७॥

कुद्दालहस्तो निरगाद्यत्राऽऽस्ते पन्नगः पिता ।

तेनाऽविदितवित्तेन चिह्नैर्निश्चित्यतत्त्वतः ॥१८॥

स्थानमागत्य तं हन्तुं वल्मीकं लोभबुद्धितः ।

भार्ययोत्सार्यतेमृत्स्ना स्वयं तेन च खन्यते ॥१९॥

निखन्यमानादत्युग्रो वल्मीकादहिरुत्थितः। ततो गरलगण्डूषैर्निर्गतैरतिदुःसहैः॥२०॥

गिरः स कथयाञ्चक्रे फणी फुत्कारमारुतैः ॥२१॥

अहिरुवाच

कस्त्वं किमर्थमायातः कथं वा खन्यते बिलम् ।

केन वा प्रहितो मूढ ! तदाख्याहि ममाऽग्रहतः ॥२२॥

पुत्र उवाच

पुत्रस्तेऽहं शिवोनाम हेमग्रहणकौतुकी। आगतो रात्रिलब्धस्यस्वप्नस्य तु सुविस्मितः ॥२३॥

शिव उवाच

इत्थमाकर्ण्य पुत्रस्य गिरं लोकविगर्हिताम्। वक्तुमारभत स्पष्टं हसन्नुच्चैःफणी तदा ॥२४॥

सर्प उवाच

यदिपुत्रोऽसि मे तूर्णं मामुन्मोचय बन्धनात्। निक्षेपार्थाय संजातं पन्नगं पूर्वजन्मनः ॥२५॥

पिता का उद्धार करने की इच्छा हुयी ॥१३॥ दूसरा धन के लोभ के कारण सर्प को मारना चाहा । दूसरा पिता के स्नेह के कारण मोहित हो गया ॥१४॥ उसने सोचा कि कौन सा उपाय किया जाय कि ये सर्प योनि में न रहें । मध्यम पुत्र ने अपने दोनों भाइयों को धोखा देकर ॥१५॥ किसी बहाने उठकर अपने घर में गाया उसने गुणशालिनी पत्नी को बुलाकर ॥१६॥ हाथ में कुदाल लेकर सर्प शरीर धारी पिता के पास गया अज्ञात धन वाले उसने चिह्नों के माध्यम से ठीक से जानकर ॥१७॥ उसके स्थान पर आकर लोभ की बुद्धि से सर्प को मारने के लिए बील को खनने लगा और उसकी पत्नी मिट्टी हटाने का काम करती थी ॥१८॥ खने जाने वाले बल्मीक से भयङ्कर सर्प निकला वह विष के कुल्लों से अत्यन्त दुःसह था॥१९॥ फुत्कार की वायु से वह सर्प कहा ॥२०॥ तुम कौन हो ? और क्यों आये हो ? इस बील को क्यों खन रहे हों । मूर्ख किसने तुम्हें भेजा है उसको मुझे बतलाओ ॥२१॥ **पुत्र ने कहा—** मैं तुम्हारा शिव नामका पुत्र हूँ और स्वर्ण लेना चाहता हूँ । रात्रि में उसको मैंने स्वप्न में अत्यन्त विस्मय पूर्वक देखा है ॥२२॥ **शिवजी ने कहा—** पुत्र की इस तरह की लोक निन्दित वाणी को सुनकर सर्प जोर से हँसते हुए कहा ॥२३॥ **सर्प ने कहा—** यदि तुम मेरे पुत्र हो तो शीघ्र मेरा उद्धार करो । पूर्व जन्म में धन को छिपाकर रखने के ही कारण मैं सर्प हो गया ॥२४॥ **पुत्र ने कहा—** हे पितः ! आप बतलायें कि आपकी

पुत्र उवाच

पितः ! कथं ते मुक्तिः स्यादित्याचक्ष्य ममाऽग्रतः ।
परित्यज्याऽखिलं लोकमागतोऽस्मि यथा निशि ॥२६॥

पितोवाच

न तीर्थानि न दानानि न तपांसि न चाऽध्वराः ।
मामुन्मोचयितुं पुत्र प्रभवन्ति च सर्वथा ॥२७॥

गीतानां सप्तमाध्यायमन्तरेण सुधामयम् । जन्तोर्जरामृत्युदुःखनिराकरणकारणम् ॥२८॥
सप्तमाध्यायिनं विप्रं मदीये श्राद्धवासरे । भोजय श्रद्धया पुत्र ! तेन मुक्तिर्न संशयः ॥२९॥

अन्यानपि द्विजान्वत्स ! वेदविद्याविशारदान् ।
सम्भोजय यथाशक्ति परमश्रद्धयान्वितः ॥३०॥

इत्याकर्ण्य पितुर्वाक्यमुरगत्वमुपेयुषः । ते सर्वे सूनवोऽकुर्वन्यथादिष्टं ततोऽधिकम् ॥३१॥
शङ्कुकर्णस्ततः श्रीमानुत्सृज्य तनुमौरगीम् । कृत्वा विभागं पुत्राणां दिव्यं देहमुपाददे ॥३२॥

विभज्य दत्तं पित्राय द्रव्यं तत्कोटिसङ्ख्यया ।
तेन ते सूनवः सर्वे मुमुदः साधुवृत्तयः ॥३३॥
वापीकूपसरोयज्ञदेवप्रासादहेतवे ।
अन्नशालां ततोऽकुर्वन्पुत्रास्ते धर्मबुद्धयः ॥३४॥

सप्तमाध्ययजपतो मुक्तिभाजोऽभवंस्ततः । षष्ठमिष्टतमं ज्ञात्वा निर्वाणार्पितदृष्टयः ॥३५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
गीतासप्तमाध्यायमाहात्म्यंनामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

मुक्ति कैसे हो सकती है ? क्योंकि सम्पूर्ण लोकों का परित्याग करके मैं रात्रि में आया हूँ ॥२५॥ **पिता बोले—** तीर्थ, दान, तपस्या और यज्ञ से मेरा उद्धार सम्भव नहीं है ॥२६॥ केवल अमृतमय गीता के सातवें अध्याय से ही जीव के जरा, मृत्यु इत्यादि दुःखों से मुक्ति सम्भव है ॥२७॥ हे पुत्र ! मेरे श्राद्ध के समय गीता के सातवें अध्याय का पाठ करने वाले ब्राह्मण को श्रद्धा पूर्वक भोजन कराओ, उससे निश्चित रूप से मुक्ति हो जाती है ॥२८॥ हे वत्स ! वेद विद्या में निपुण दूसरे भी ब्राह्मणों को अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक भोजन कराओ ॥२९॥ सर्पत्व प्राप्त अपने पिता की वाणी को सुनकर वे सभी जैसा पिता ने कहा था उससे भी अधिक किया ॥३०॥ उसके बाद शङ्कुकर्ण सर्प शरीर का त्याग करके पुत्रों को धन बाँटकर दिव्य शरीर धारण कर लिए ॥३१॥ पिता के द्वारा विभाग करके करोड़ों की संख्या में द्रव्य प्राप्त करके देने के कारण साधु वृत्ति वाले पुत्र प्रसन्नता का अनुभव किए ॥३२॥ बावली कुआँ सरोवर तथा यज्ञ देवताओं की प्रसन्नता के लिए धार्मिक बुद्धि वाले वे पुत्र अन्नशाला का निर्माण किए ॥३३॥ सप्तमाध्याय का जप करने से वह मुक्त हो गया । छठे अध्याय को इष्टतम मानकर वे सब निर्वाण करना चाहे ॥३४-३५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत गीता के सातवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ एकासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८१॥

एक सौ बयासीवाँ अध्याय

शिव उवाच

अष्टमाध्यायमाहात्म्यं शृणुवक्ष्यामि पार्वति। यस्य श्रवणमात्रेण परां मुदमवाप्स्यसि॥१॥
आमर्दकं पुरं नाम्ना विश्रुतं दक्षिणापथि। द्विजन्मा भावशर्मेतितत्राऽ ण्ऽ सीद्गणिकापतिः॥२॥
खादन्मांसं पिबन्मद्यं चोरयन्साधुसपदः। रममाणः परस्त्रीभिराखेटककुतूहली॥३॥
अत्यवाहयदत्युग्रो गरीयासं मनोरथम्। सुहृदा विटगोष्ठ्यां च तालीफलसुधारसम्॥४॥
निपीय कण्ठपर्यन्तमजीर्णेनाऽतिपीडितः। मृतः कालेन पापात्मा जातस्तालीतरुर्महान्॥५॥
तस्य च्छायामुपाश्रित्य निबिडामतिशीतलाम्। अभूतां दम्पती कौचिद्ब्रह्मराक्षसतां गतौ॥६॥

देव्युवाच

किंजातीयौ किमात्मानौ किंवृत्तावित्युदीरय। कर्मणा केन वा देव ब्रह्मराक्षसता तयोः॥७॥

शिव उवाच

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रार्थकोविदः। सदाचारोऽभवत्कश्चिद्द्विजो नाम कुशीवलः॥८॥
जाया च तस्य कुमतिनामधेया दुराशया। स सभार्यो महादानान्याददानोऽतिलोभवान्॥९॥
महिषीं कालपुरुषं हयादीननुवासरम्। अप्रयच्छन्द्विजातिभ्यो दानलब्धां वराटिकाम्॥१०॥
कालेन दम्पती प्रेतौ ब्रह्मराक्षसरूपिणौ। पर्यटन्तौ महीमेतां क्षुत्तृषाकुलविग्रहौ॥११॥
विशश्रमतुरागत्य मूलं तालीतरोस्ततः। कथमेतन्महादुःखमावयोरगपगच्छति॥१२॥

ताली वृक्ष रूप धारण करने वाले विप्र भावशर्मा के आख्यान के माध्यम से गीता के आठवें अध्याय का माहात्म्य

शिवजी ने पार्वतीजी से कहा— हे पार्वति ! मैं आठवें अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ उसे सुनो। उसके सुनने मात्र से तुम अत्यन्त प्रसन्न होगी ॥१॥ दक्षिणापथ में आमर्दक नामक नगर विख्यात था। वहाँ पर वेश्या के स्वामी भावशर्मा नामक ब्राह्मण थे ॥२॥ वे मांस खाते थे, मदिरा पीते थे, और सज्जनों की सम्पत्तियों को चुराते थे । वे पर स्त्री के साथ रमण करते थे और उत्कण्ठा पूर्वक आखेट करते थे॥३॥ उनका मनोरथ अत्यन्त उग्र और महान् था । विटों की गोष्ठी में अपने मित्रों के साथ ताड़ी गले तक पीकर अत्यन्त पीड़ित होकर वह मर गया और ताड़ का अत्यन्त महान् वृक्ष हो गया ॥४-५॥ उसकी घनी और शीतल छाया में दो ब्रह्मराक्षस दम्पती रहते थे ॥६॥ **देवी ने पूछा—** आप यह बतलायें कि वे किस जाति के थे । दोनों का व्यवहार कैसा था और किस कर्म को करने के कारण वे दोनों ब्रह्मराक्षस हो गये ?॥७॥ **शिवजी ने कहा—** एक कुशीलव नामक ब्राह्मण थे । वे सदाचारी सभी शास्त्रों के तत्त्वज्ञ और वेदवेदाङ्गों के तत्त्व के ज्ञाता थे ॥८॥ उनकी पत्नी का नाम कुमति था, वह दुष्ट अन्तःकरण वाली थी, वे अपनी पत्नी के साथ महादानों को लेते थे तथा अत्यन्त लोभी थे । वे प्रतिदिन भैंस काल पुरुष और घोड़ों आदि का दान लेते थे और दान प्राप्त वस्तुओं में से ब्राह्मणों को कौड़ी भर भी दान नहीं करते थे ॥९-१०॥ समयानुसार वे दोनों मरकर ब्रह्मराक्षस हो गये थे । भूख और प्यास से व्याकुल होकर वे दोनों पृथिवी पर घूमते रहते थे ॥११॥ अन्त में वे उस ताल वृक्ष के नीचे आकर विश्राम करते थे । हमदोनों का यह

कथं वा जायते मुक्तिर्ब्रह्मराक्षसयोनितः। इति पृष्टो गृहिण्याऽसौ ब्राह्मणः समभाषत ॥१३॥
ब्रह्मविद्योपदेशेन बिनाऽऽध्यात्मविचारणात्। विना कर्मविधिज्ञानात्कथं मुच्येत सङ्कटात् ॥१४॥

भार्योवाच

किंतद्ब्रह्म किमध्यात्मं किंकर्मपुरुषोत्तम !। एतावदुक्ते तत्पत्न्या यदाश्चर्यमभूच्छृणु ॥१५॥
अष्टमाध्यायश्लोकार्धश्रवणात्सतरुस्तदा । विहाय तालीरूपं तद्बभूव द्विजसत्तमः ॥१६॥
सद्यो ज्ञानविधूतात्मा विमुक्तः पापकञ्चुकात् ।
तन्माहात्म्याद्विनिर्मुक्तो दम्पती तो बभूवतुः ॥१७॥
एतावदेवमुक्तं च दैवान्निर्गत्य तन्मुखात्। ततोऽन्तरिक्षादायातं क्वणत्किङ्किणिकं शुभम्॥१८॥
दिवि दिव्याङ्गनावक्त्रचन्द्रमण्डलमण्डितम्। अप्सरोवदनाम्भोजभ्राम्यद्भ्रमरसङ्कुलम् ॥१९॥
निर्मथ्यमानदुग्धाब्धिवेलाडिण्डिरपाण्डुरैः । गङ्गातरङ्गसुभगैश्चामरैरुपशोभितम् ॥२०॥
गायद्गन्धर्वसुभभगं नृत्यत्सुरवधूशतम्। दिव्यं विमानमारूढौ दम्पती जग्मतुर्दिवम् ॥२१॥
अत्रत्यंवृत्तमखिलमेतद्विस्मयकारकम् । ततो लिलेख मेधावी श्लोकार्धमिदमादरात् ॥२२॥
ययौ वाराणसीं नाम नगरीं मुक्तिदायिनीम्। आराधयितुमन्विच्छन्देवदेवं जनार्दनम्॥२३॥
स तत्र कर्तुमारेभे तपः परमुदारधीः। अत्राऽन्तरे जगन्नाथो देवदेवो जनार्दनः ॥२४॥
पृष्टो दुग्धाब्धिसुतया संयोज्य करसम्पुटम्। निद्रापथं विहायैव स्थीयते कथ्यतामिति ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

काश्यां भागीरथीतीरे तपस्यतितरां द्विजः। भावशर्माऽतिमेधावी मद्भक्तिरसपूरितः ॥२६॥

महादुःख कैसे दूर होगा ?॥१२॥ हमलोगों की ब्रह्म राक्षस की योनि से मुक्ति कैसे मिलेगी ? इस तरह से पत्नी के द्वारा पूछे जाने पर ब्राह्मण ने कहा ॥१३॥ ब्रह्मविद्या के उपदेश के बिना तथा अध्यात्म चिन्तन के बिना और कर्म विधि को जाने बिना सङ्कट से मुक्ति कैसे होगी ?॥१४॥ **पत्नी ने कहा—** वह ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है ? तथा हे पुरुषोत्तम कर्म क्या है ? इस तरह उनकी पत्नी के कहने पर जो आश्चर्य हुआ उसे सुनो ॥१५॥ आठवें अध्याय के आधे श्लोक को सुनकर ताली का वृक्ष द्विजश्रेष्ठ हो गया ॥१६॥ उसकी आत्मा निष्पाप हो गयी और वह पापों से मुक्त हो गया । उसके माहात्म्य से वे दोनों पति-पत्नी भी मुक्त हो गये ॥१७॥ भाग्यवशात् उसके मुख से इतना ही उच्चारण हुआ । फिर वहाँ जिसके घूघरूँ बज रहे थे ऐसा सुन्दर विमान स्वर्ग से आया । वह अप्सराओं के मुख चन्द्र से मण्डित था । अप्सराओं के मुख कमलों के चारो ओर भौरें घूम रहे थे ॥१८-१९॥ मथे गये दुग्ध सागर से निकले फेन के समान तथा गङ्गा के तरङ्ग के समान सुन्दर चामरों से वह सुशोभित था ॥२०॥ उसमें गन्धर्व सङ्गीत कर रहे थे और सैकड़ों अप्सरायें नृत्य कर रही थीं । उस दिव्य विमान पर वे दोनों पति-पत्नी चढ़ गये और स्वर्ग चले गये ॥२१॥ इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्मय कारक है । उसके पश्चात् मेधावी ने उस आधे श्लोक को आदर पूर्वक लिख लिया ॥२२॥ वह मुक्ति प्रदान करने वाली वाराणसी नगरी में गये । वे देवाराध्य भगवान् जनार्दन की आराधना करना चाहते थे ॥२३॥ अत्यन्त आदर बुद्धि वाले वे तप करना प्रारम्भ किए । उसी समय जगन्नाथ देवाराध्य भगवान् जनार्दन से लक्ष्मीजी ने हाथ जोड़कर पूछा । आप

जपन्गीताष्टमाध्यायश्लोकार्थं नियतेन्द्रियः। सन्तुष्टवानहं देवि ! तदीयतपसा भृशम्॥२७॥
चिरं विचारयन्नेव तत्तपःसदृशं फलम्। दातुमुत्कण्ठितमना वर्तेयं साम्प्रतं प्रिये !॥२८॥

पार्वत्युवाच

हरिः प्रसन्नभूतोऽपि चिन्तां प्राप यदि प्रभो ! ।
भावशर्ता हरेर्भक्तः प्राप्तः किन्तत्फलं पुनः ॥२९॥

श्रीमहादेव उवाच

ततः प्रसादमासाद्य प्रसन्नस्य मुरद्विषः। सुखमात्यन्तिकं प्राप भावशर्मा द्विजोत्तमः॥३०॥
लेभिरे पदवीं सर्वे तदीया अपि वंशजाः। तत्कर्मवशतो ये वै सम्प्राप्ता यातनां पुरा॥३१॥
एतदेवाऽष्टमाध्यायमाहात्म्यं किञ्चिदेव ते। कथितं मृगशावाक्षि ! द्रष्टव्यं तु सदैव च॥३२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
गीताष्टमाध्यायमाहात्म्यं नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्याय: ॥१८२॥
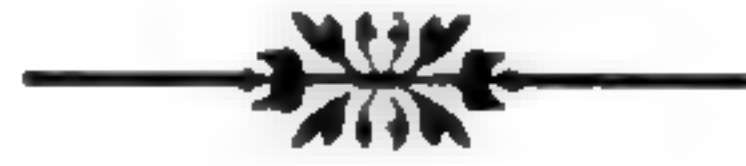
सोना क्यों छोड़कर बैठे हैं ?॥२४-२५॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** काशी में गङ्गा के तट पर कोई ब्राह्मण अत्यन्त तपस्या कर रहा है। उसका नाम भावशर्मा मेधावी है वह मेरी भक्ति के रस से परिपूर्ण है॥२६॥ वह जितेन्द्रिय होकर गीता के आठवें अध्याय का पाठ करता है। हे देवि ! मैं उसकी तपस्या से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ॥२७॥ उसकी तपस्या के अनुकूल फल का मैं विचार कर रहा हूँ। उसको वरदान देने के लिए मैं उत्कण्ठित हूँ॥२८॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे प्रभो ! यदि प्रसन्न हरि भी चिन्तित हुए तो आप बतलायें की भाव शर्मा को कौन सा फल मिला ?॥२९॥ **श्रीमहादेवजी ने कहा—** उसके पश्चात् श्रीहरि की कृपा प्राप्त करके भावशर्मा अत्यधिक सुख प्रप्त किए॥३०॥ भावशर्मा के वंश वाले भी उसी पद को प्राप्त किए। जो पहले यातना भोगते थे वे भावशर्मा के कर्म से मुक्त हो गये॥३१॥ मैंने अष्टमाध्याय का तुमको थोड़ा सा माहात्म्य बतलाया है। हे मृगनयनी इसको सर्वत्र जानना चाहिए॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के शिव पार्वती संवदान्तर्गत गीता के आठवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ बयासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥१८२॥

एक सौ तीरासीवाँ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि नवमाध्यायमादरात् । संशृणुष्व स्थिरीभूय तुहिनाचलकन्यके ! ।।१।।
अस्ति माहिष्मतीनाम नगरी नर्मदातटे । तत्राऽऽसीन्माधवो नाम द्विजन्मा स शिवो द्विजः।।२।।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः कालेकालेऽतिथिप्रियः। अर्जयित्वा बहुधनं विद्ययैव विशुद्धधीः ।।३।।
महान्तमध्वरंकर्तुं समारेभे कदाचन। आलम्भनार्थमानीतश्छागः पूजितविग्रहः ।।४।।
वाचमूचेह सन्नुच्चैर्जगद्विस्मयकारकः। किमेतैर्बहुभियागैर्विधिवद्विहितैरपि ।।५।।
विनश्वरफलैर्जन्मजरामरणहेतुभिः । एतावत्यपि मे विप्र ! दशेयं दृश्यतामिति।।६।।
छागस्यैवं वचोऽतीव कुतूहलपरं जनाः। निशम्य विस्मयं याताः कृतमण्डपवासिनः ।।७।।
ततो बद्धाञ्जलिपुटो द्विजातिस्तिमितेक्षणः । प्रणम्य श्रद्दधानस्तमपृच्छच्छागमादरात् ।।८।।

द्विज उवाच

किंजातीयः किमात्मा त्वं किंवृत्तमिति मे वद ।
केन वा कर्मणाऽवाप्तं छागत्वमिति कारणम् ।।९।।

छाग उवाच

आसम्पुरा द्विजातीनामन्वये चाऽतिनिर्मले। आहर्ता क्रतुसङ्घानां वेदविद्याविशारदः ।।१०।।
एकदा मम गेहिन्या पुत्ररोगप्रशान्तये। छागः प्रयाचितो मत्तश्चण्डिकाभक्तिनम्रया।।११।।
ततो निहन्यमानस्य चण्डिकामण्डपस्थले। छागस्य जननी मां तु शशाप ब्रह्मवादिनी ।।१२।।

माधव ब्राह्मण की कथा पूर्वक नवें अध्याय का माहात्म्य

श्रीमहादेवजी ने कहा— हे हिमालय पुत्रि ! अब मैं तुमको नवें अध्याय का माहात्म्य सुनाता हूँ उसे सुनो ।।१।। नर्मदा नदी के तट पर माहिष्मती नामक नगरी है । वहाँ पर शिवजी के साथ माधव नामक ब्राह्मण था ।।२।। वह वेदों तथा वेदाङ्गों के तत्त्व को जानने वाला तथा समय-समय से अतिथि की पूजा करता था । शुद्ध बुद्धि वाले ने अपनी विद्या से ही बहुत धन अर्जित किया ।।३।। उसने एक बार महान् यज्ञ करना प्रारम्भ किया । पूजित छाग को वह काटने के लिए लाया ।।४।। उसने जोर से यह कहा विधि पूर्वक किए गये इन अनेक यज्ञों से कौन सा लाभ है ? इन सबों का फल नष्ट होने वाला होता है ऐसे यज्ञों से कौन सा लाभ है । हे विप्र ! आप मेरी दशा तो देखें ।।५-६।। छाग की इस तरह की वाणी को उस मण्डप में रहने वाले लोगों ने सुना ।।७।। उसके बाद आश्चर्यित नेत्रों वाले ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर उसको प्रणाम किया और उससे पूछा ।।८।। **ब्राह्मण ने कहा—** तुम किस जाति की आत्मा हो ? तुम्हारा वृत्तान्त क्या है ? यह मुझे बतलाओ कि किस कर्म के कारण छाग हुए हो ?।।९।। **छाग ने कहा—** मैं पूर्वजन्म में अत्यन्त निर्मल ब्राह्मणों के वंश में उत्पन्न हुआ था । मैं वेद विद्या में निपुण तथा अनेक यज्ञों को करता था ।।१०।। एक बार मेरी पत्नी जो चण्डी देवी की भक्ति करती थी पुत्र के रोग को प्रशान्त करने के लिए छाग माँगी ।।११।। उसके बाद मारे जाने वाले छाग की माँ जो चण्डिका मन्दिरा में विद्यमान थी

अशास्त्रीयाध्वना पाप मत्सुतं यज्जिघांससि। द्विजात्यधम तेन त्वमजायोनिमवाप्स्यसि ।।१३।।
ततोऽहंप्रेत्यकालेन छागोऽभूवं द्विजोत्तम !। निस्तीर्य चानेकविधा योनिसंतापयातनाः ।।
जातिस्मरत्वमप्यस्ति पशुयोनिमुपेयुषः ।।१४।।

विप्र उवाच

त्वदीयजन्मशुश्रूषाकुतूहलरसोन्मुखम् । मनःसर्वान्द्विजानेतानपि तत्कथयाऽखिलम्।।१५।।

छाग उवाच

कदाचिन्मर्कटोऽभूवमाहितुण्डिकशिक्षया ।।१६।।
क्रीडद्भिर्वीक्षितो डिम्भैर्नृत्यन्प्रतिगृहाङ्गणे। उदारानात्मनो दारान्विलोक्यतनयानपि ।।१७।।
क्रियापराङ्मुखो जातस्त्यक्तनर्तनसम्भ्रमः। ततोवर्तुलदण्डैश्च दुःसहैसहितुण्डिकः।।१८।।
मामुच्चैस्ताडाञ्चक्रे रुषा लोहितलोचनः। ततोऽहं मूर्च्छितोऽभूवं क्षरत्क्षतजसंततिः ।।१९।।
आजिघ्रन्नन्नमुदकमगमं कालधर्मताम्। ततोऽहमासीच्छुनक परिभ्राम्यन्गृहे गृहे ।।२०।।
कुक्षिम्भरिरहं मार्गे त्यक्तोच्छिष्टान्नभक्षकः। कदाचिदाविशंश्चासन्नात्मवेश्ममहानसम् ।।२१।।
बुभुक्षितो भक्षयितुं स्थालीस्थापितमोदनम्। जिघ्रन्भूमितलंपश्यन्दिशो दशशनैर्भयात् ।।२२।।
शङ्कमानोजनरवात्पार्श्वे च विलिहन्निव। ततः कदाचिदागत्य वीक्षितस्तनुजैर्निजैः।।२३।।

जायया च जरत्याऽहं ताडितो लगुडादिभिः ।
ततो भग्नकटिर्यातो बहुशोणितमुद्वहन् ।।२४।।

निर्जगाम बहिर्गेहात्कथंचिन्मूर्च्छयाऽऽकुलः। अङ्गेषु पूतिगन्धेषु क्रिमिगर्भेषु कालतः ।।२५।।

ततः कदश्वतां प्राप्तः शौण्डिकस्य च वेश्मनि ।
अश्वोऽभवमहंविद्वन्मृतः कालक्रमादिह ।।२६।।

उसने मुझको शाप दे दी। वह ब्रह्मवादिनी थी ।।१२।। अरे ! पापी तुम जो अशास्त्रीय विधि से मेरे पुत्र को मार रहे हो हे अधम ! ब्राह्मण उसके कारण तुम छाग की योनि में जाओगे ।।१३।। हे द्विजोत्तम ! उसके बाद मैं मरकर अनेक योनियों को पारकर तथा यातनाओं को पारकर छाग हो गया। पशु योनि में होने पर भी मुझको पूर्व जन्म की यादगारी है ।।१४।। **विप्र ने कहा**— तुम्हारे जन्म को सुनने की इच्छा वाले इन सभी ब्राह्मणों को भी अपनी सारी कथा सुनओ ।।१५।। **छाग ने कहा**— एक बार मैं मदारी की शिक्षा से शिक्षित बानर हो गया। मैंने देखा कि वह बच्चों के साथ खेल रहा हूँ प्रत्येक घर में नाचने वाले सुन्दर नारियों तथा उनके बच्चों को भी देखकर अपने नाचने का काम करना छोड़ दिया। उसके बाद मदारी ने गोल दण्डों से जिसको वर्दास्त करना असह्य था उससे आँखें लाल करके क्रोध पूर्वक खूब पीटा उसके बाद मैं मर गया। उसके बाद प्रत्येक गृह में घूमने वाला मैं कुत्ता हो गया ।।१६-२०।। जूठे अन्न को तथा मार्ग में फेंके गये अन्न से पेट भरने वाला मैं एक बार अपने घर में स्थाली (बटुली) में रखे हुए अन्न को खाने के लिए घुसा क्योंकि मैं भूखा था। पृथिवी को सूंघते हुए भय से चारो ओर देखते हुए घुसा था ।।२१-२२।। लोगों के शोर गुल से भयभीत मैं भाग गया। एक बार मेरे पुत्रों ने मुझे देखा।।२३।। फिर मेरी बूढ़ी पत्नी ने आकर डण्डों आदि से मुझे खूब मारा और मेरी कमर टूट गयी। उससे बहुत खून निकला ।।२४।। किसी तरह मैं मूर्छित होकर अपने घर से निकला और समयानुसार मेरे अङ्गों में कीड़े पड़

कदाचिच्चत्वरे तेन समनीतो जनाकुले ।
विक्रयाय जरालीढपतयालुरदावलिः ॥२७॥
जायया द्वारकायात्रां कर्तुमुद्यतया सकृत् । मौल्येनाऽल्पीयसा क्रेतुं तुरङ्गं चेष्टमानया ॥२८॥
जगृहेऽयं तया दाम्ना ह्यल्पेन वसुना जरन् । गन्तुं चारभ्य तद्द्वित्रैः पुत्रैरारुह्य मां समम् ॥२९॥
शनैःशनैः सरस्तीरे मग्नोऽहं गाढकर्दमे । तत्राऽहं कुटिलग्रीवश्चापातं कर्दमान्तरे ॥३०॥
ताड्यमानो मुहुः पुत्रैर्लगुडौप्लपाणिभिः । उत्थाप्यमानोबहुधाप्राणान्मोचितवानहम् ॥३१॥
ततो निश्चित्य मां तत्र मृतं भग्नोद्यमाः सुताः ।
आक्रुश्य मातरं दीनां प्रावृत्य निर्ययुर्गृहम् ॥३२॥
ततः संप्रेत्य बहुना कालेन च्छागतां गतः । निस्तीर्णानिकहीनोच्चयोनिसन्तापयातनः ॥३३॥

द्विज उवाच

किमनेन महाछाग ! दुःखजातेन नित्यशः । यथावदञ्जसा मह्यं सुखमात्यन्तिकं भवेत् ॥३४॥

छाग उवाच

आश्चर्यं कथयिष्यामि पुनरन्यदपिद्विजः !। स्वस्थमापृच्छमानस्यतवाऽस्तियदिकौतुकम् ॥३५॥
अस्ति नाम्ना कुरुक्षेत्रं नगरं मोक्षदायकम्। सूर्यवंशोऽभवत्तत्र चन्द्रशर्मा महीपतिः ॥३६॥
सूर्योपरागसमये श्रद्धया परयाऽन्वितः । दानं सकालपुरुषं दातुं समुपचक्रमे ॥३७॥
समाहूय द्विजन्मानं वेदवेदाङ्गपारगम् । स्नातुं पुण्योदकैः पुण्यैर्ययौ सार्द्धं पुरोधसा ॥
अथोच्चैः कालपुरुषो वाचमूचे हसन्निव ॥३८॥

कालपुरुष उवाच

अन्येनैव प्रगृह्णन्ति क्षेत्रे चाऽण्वपि किञ्चन । सूर्योपरागसमये कुरुक्षेत्राभिधे स्थले ॥३९॥

गये ॥२५॥ उसके बाद मैं शौण्डिक के घर खच्चर हो गया । हे विद्वन् ! मैं मरकर घोड़ा हो गया ॥२६॥ इसके बाद वह शौण्डिक बेचने के लिए लोगों के लिए लाया । बुढ़ापे के कारण जिसे दाँत टूट गये॥२७॥ मेरी बुढ़ी पत्नी द्वारका जाने के लिए तैयार हुयी । वह थोड़े ही मूल्य में घोड़ा खरीदना चाहती थी ॥२८॥ उसने थोड़े ही दाम में मुझे खरीद लिया । वह दो तीन पुत्रों के साथ मुझपर चढ़कर यात्रा प्रारम्भ की॥२९॥ सरोवर के किनारे कीचड़ में फँसा हुआ मैं धीरे-धीरे कीचड़ में धँस गया और मेरी गर्दन टेढ़ी हो गयी और मैं गिर पड़ा वे सभी पुत्र दण्डा और पत्थर लाकर मुझे खूब मारे । अनेक प्रकार से उठाने का प्रयास करने पर भी मरा हुआ मैं उठ नहीं सका ॥३०-३१॥ सारे प्रयास के विफल होने पर मेरे पुत्रों ने जान लिया कि यह मर गया । वे अपनी माँ को उलाहना देकर घर लौट गये । उसके बाद मर कर बहुत समय के बाद मैं छाग (बकरा) हुआ । इस तरह मैं बहुत से अच्छी बुरी योनियों से निकलकर छाग हुआ हूँ ॥३२-३३॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे महाछाग ! दुख समूह से भरे इस छाग जीवन से क्या लाभ है ? इसे आप ठीक बतलायें ॥३४॥ **छाग ने कहा—** हे द्विज ! मैं दूसरा आश्चर्य बतलाता हूँ स्वस्थ होकर पूछने वाले आप उसे यदि उत्कण्ठा हो तो सुनें ॥३५॥ कुरुक्षेत्र नामक मोक्ष देने वाला नगर है । वहाँ पर सूर्य वंशीय चन्द्रशर्मा नामक राजा हुए ॥३६॥ सूर्य ग्रहण के समय वे अत्यन्त श्रद्धा से युक्त होकर समयानुसार दान देना प्रारम्भ किए ॥३७॥ राजा अपने पुरोहित ब्राह्मण को बुलाकर पवित्र जल में स्नान करने के लिए गये।

दानं च कालपुरुषं जिघृक्षसि कथं द्विज ! ।
ज्ञात्वाऽपिनिश्चितं सर्वमेतत्पातककारकम् ॥४०॥
प्रवर्तसे कथं कर्तुं धनलोभान्धया धिया ॥४१॥

छाग उवाच

इत्थमाकर्ण्य तद्वाक्यं जगद्विस्मयकारकम् । किमनेन महादानभयेनेत्यवदद्द्विजः ॥४२॥
एवंविधमहादानपातकागाधवारिधिम् । जानामि तरितुं सम्यगुपायमहमेव हि ॥४३॥
ततः स्नात्वा महीपालः परिधाय च वाससी ।
शुचिः प्रसन्नहृदयः सितमाल्यानुलेपनः ॥४४॥
अवलम्ब्य कराम्भोजं पार्श्ववर्तिपुरोधसः। समाययौ सेव्यमानः स तत्कालोचितैर्जनैः ॥४५॥
समागत्य च भूपालः स प्रादात्कालपूरुषम्। यथोचितेनविधिना तस्मैभक्तयाद्विजन्मने ॥४६॥
निर्भिद्य कालपुरुषहृदयं निर्दयोदयः । पापात्मा निर्ययौ कश्चिच्चाण्डालो रक्तलोचनः॥४७॥
किञ्च प्रापितकालस्य परनिन्दारसोत्सवे ।
निन्दा चाण्डालिका देहपार्श्वमागाद्द्विजन्मनः ॥४८॥
एतच्चाण्डालयुगलं निर्गत्यारुणलोचनम्। ततः सञ्चरितं चक्रे प्रसाह्याऽङ्गे द्विजन्मनः ॥४९॥
गीतानां नवमाध्यायं जपन्नेव हृदि स्थितः । कम्पमानं द्विजं किञ्चित्तूष्णींपश्यतिभूपतौ ॥५०॥
अन्तर्निद्राणगोविन्दं कम्पमानमिवाऽम्बुधिम् । मरुदान्दोलनैर्विद्वान्द्विजन्मा पापसंश्रयम् ॥५१॥
ततो गीताक्षारोद्भूतैर्वैष्णवैःपरिपीडिताम् । पलायमानंचाण्डालयुगलं निष्फलोद्यमम् ॥५२॥

उसके पश्चात् काल पुरुष ने उनसे जोर से कहा ॥३८॥ **काल पुरुष ने कहा—** इस सूर्योपराग के समय कुरुक्षेत्र में दूसरे लोग अणु मात्र भी किसी से नहीं लते हैं हे द्विज ! तुम काल पुरुष को क्यों लेना चाहते हो ? तुम इस बात को जानकर भी कि यह पापकारी है ॥३९-४०॥ धन के लोभ से तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है ॥४१॥ **छाग ने कहा—** उसके इस संसार को आश्चर्यित करने वाले वाक्य को सुनकर ब्राह्मण ने कहा इस महादान से क्या डरना है ?॥४२॥ इस प्रकार के महादान जन्य पातक समूह को मैं जानता हूँ। किन्तु उसको पार करने का उपाय भी मैं अच्छी तरह से जानता हूँ ॥४३॥ उसके पश्चात् स्नान करके राजा ने दो वस्त्रों को धारण किया । पवित्र हृदय और प्रसन्न मन से उसने श्वेतमाला एवं चन्दन आदि का लेपन अपने शरीर में लगाया ॥४४॥ वह अपने सन्निकट में विद्यमान पुरोहित के हाथ को पकड़कर और तत्कालोचित लोगों से सेव्यमान वह आया ॥४५॥ आकर राजा ने उस कालपुरुष का दान यथोचित विधि तथा ब्राह्मण के प्रति श्रद्धा पूर्वक दिया ॥४६॥ काल पुरुष के हृदय को छेदकर निर्दय तथा पापी कोई लाल नेत्रों वाला चाण्डाल चला गया ॥४७॥ और दूसरे की निन्दा करने वाली चाण्डाली उस ब्राह्मण के शरीर के पास आयी ॥४८॥ ये दोनों चाण्डाल जिनके नेत्र लाल थे उस ब्राह्मण के देह में विचरण करने लगे ॥४९॥ ब्राह्मण अपने हृदय में गीता के नवें अध्याय का निरन्तर पाठ कर रहे थे । राजा ने कुछ काँपते हुए ब्राह्मण को देखा । उसी समय जिनके हृदय में सोते हुए भगवान् को देखा जो भगवान् मानो समुद्र को मथ रहे हों और वायु के झोंको से युक्त पाप के आश्रय भूत उस ब्राह्मण को देखा ॥५०-५१॥ उसके पश्चात् गीता के अक्षरों को जिसका श्रीवैष्णव पाठ कर रहे थे । विफल उद्योग वाले दो चाण्डालों को भी राजा ने देखा।

तं निश्चक्राम वेगेन द्विजातेः पार्श्ववर्ति यत्। शरीरे वर्त्तमानं च परनिन्दारसोत्सवे ।।५३।।
इत्थं कलितवृत्तान्तः प्रत्यक्षं क्षितिवल्लभः। पर्यपृच्छद्द्विजन्मानं विस्मयस्मेरलोचनः ।।५४।।

राजोवाच

कथमापदियं घोरा निस्तीर्णा महतीत्वया। कं मंत्रं जपताविप्र कम्बा संस्मरतासुरम् ।।५५।।
कः पुमान्का च सा योषित्कयमेतावुपस्थितौ ।
कथंचशान्तिमापन्नावित्युदीरयमेद्विज ।।५६।।

द्विज उवाच

चाण्डालमूर्तिमासाद्य मूर्तकिल्बिषमुल्बणम्। योषिन्मूर्त्तिमयीनिन्दाद्वयमेतदवैम्यहम् ।।५७।।
गीताया नवमाध्यायमन्त्रमाला मया स्मृता। तन्माहात्म्यमिदंसर्वं त्वमेवहि महीपते ! ।।५८।।

छाग उवाच

गीताया नवमाध्यायं जपामि प्रत्यहं नृप !। निस्तीर्णाश्चापदस्तेन कुप्रतिग्रहसम्भवाः ।।५९।।
अभ्यस्य नवमाध्यायं राजा तस्माद्द्विजन्मनः ।
तावुभावपिलेभातेपरांनिर्वृतिमुत्तमाम् ।।६०।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
गीतानवमाध्यायमाहात्म्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१८३।।

जो ब्राह्मण के शरीर से वेग से निकले अब दूसरों की निन्दा को ही उत्सव मानने वाले जो ब्राह्मण के शरीर में थे ।।५२-५३।। राजा ने इस वृत्तान्त को प्रत्यक्ष देखा । राजा ने आश्चर्यचकित होकर ब्राह्मण से पूछा । **राजा ने कहा**— आप इस महती विपत्ति को कैसे पार किए ? आप किस मन्त्र का जप कर रहे थे ? अथवा किस देवता का स्मरण कर रहे थे ।।५४-५५।। ये स्त्री और पुरुष कौन थे ? वे कैसे शान्त हुए ? हे द्विज ! आप मुझे बतलाएँ **ब्राह्मण ने कहा**— साक्षात् भयङ्कर पाप स्वरूप चाण्डाल मूर्ति को प्राप्त करके तथा मूर्तिमयी उसकी स्त्री को ये दोनों निन्दामय है इस बात को मैं जानता हूँ ।।५६-५७।। गीता के नवें अध्याय का मन्त्र माला का स्मरण किया । राजा ने उसकी यह सारी महिमा समझी ।।५८।। **छाग ने कहा**— राजन् ! मैं गीता के नवें अध्याय का प्रतिदिन जप करता हूँ । उसी कारण मैं दुषित दान से उत्पन्न पाप को पार कर पाया ।।५९।। उस ब्राह्मण से नवें अध्याय का अभ्यास करके राजा तथा वे दोनों भी मुक्ति प्राप्त कर लिए ।।६०।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत नवमाध्याय माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ तिरासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८३।।

एक सौ चौरासीवाँ अध्याय

देव्युवाच

सर्वज्ञ ! सर्वचैतन्य सर्वेश्वर गिरां गुरो !। धन्याऽस्मि शिवमान्येनदृश्यमानेन यत्त्वया ॥१॥
निरूपितमिदं पुण्यं नवमाध्यायवैभवम्। अनेकविस्मयस्वादुकथानकमयं मधु॥२॥
शृण्वन्त्या मम देवेश न तृप्तिर्जातु जायते। अकुण्ठाश्रवणोत्कण्ठा वर्द्धते वृषभध्वज !॥३॥
असीमामहिमाम्भोधेर्गीतानां श्रुतिजीवितम् ।
तत्राऽपि दशमाध्यायं प्रधानं मुनयो जगुः ।
तमुद्दिश्य महाध्यामभिधेहि कथानकम् ॥४॥

शिव उवाच

शृणु सुश्रोणि निश्रेणीस्वर्गदुर्गस्यदुर्ल्लभाम्। सीमामिवप्रभावाणांपावनींपरमांकथाम् ॥५॥
आसीत्काशीपुरे विप्रः पुण्यंकीर्त्तिपरायणः ॥६॥
प्रशान्तचेती निर्मुक्तहिंसाकार्कश्यसाहसः। निवृत्तिरितो नित्यं जितेन्द्रियतया तथा ॥७॥
धीरधीरितिविख्यातो नन्दीव मयि भक्तिमान् ।
निस्तीर्णनिगमाम्भोधिः सर्वशास्त्रार्थकोविदः ॥८॥
तस्य ध्यानपराधीनचेतसः प्रतिगच्छतः। अन्तरात्मनि निर्मग्नमनसस्तत्त्वचक्षुषः॥९॥
करावलम्बनं तस्य धावन्प्रीत्या ददाम्यहम्। कदाचन चमत्कारकारकं विमना मुनिः॥१०॥
आचान्तःकिञ्चिन्नासाग्रेपरमानन्दमेदुराम् । दृशमासाद्यनिद्राणकरणोऽयमिवाऽऽस्थितः ॥११॥

गीता के दशवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन

देवी ने कहा— हे सर्वज्ञ ! सर्व चैतन्य, हे सर्वेश्वर ! हे वाणी के स्वामी ! मैं इसलिए धन्य हूँ कि आप मुझे अनन्य भाव से देखते हैं ॥१॥ आपने नवें अध्याय के पवित्र भाव का निरूपण किया, वह अनेक विस्मयकारक और् स्वादिष्ट कथानकों से युक्त है ॥२॥ हे देवेश ! उसके सुनने से मुझको तृप्ति नहीं होती है । हे वृषभध्वज ! मेरी पूर्णरूप से उत्कण्ठा बढ़ती ही रहती है ॥३॥ वेदों के जीवन स्वरूप गीता की महिमा निः:सीम है । उसमें भी मुनियों ने दशवें अध्याय को प्रधान बतलाया है । अतएव आप इस महाध्याय की महिमा बतलायें ॥४॥ **शिवजी ने कहा—** हे सुन्दरि ! तुम सुनो स्वर्ग की सीढ़ी दुर्लभ है। प्रभावों की सीमा के समान इस पवित्र कथा को तुम सुनो ॥५॥ काशी नगरी में पुण्य और कीर्ति परायण॥६॥ शान्त चित्त वाले, हिंसा, कार्कश्य तथा साहस से रहित, जितेन्द्रिय होने के कारण निवृत्ति मार्ग को अपनाने वाला ब्राह्मण था । उसका नाम धीरधी था । उसकी मुझमें नन्दी के ही समान भक्ति थी ॥७॥ वेद सागर को पार करके सभी शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले वे थे ॥८॥ उसके ध्यान के अधीन होकर उसके अन्त:करण में जानने वाला मैं, वह अन्तरात्मा में मग्न रहता था तथा तत्त्वज्ञ था । कभी प्रेमपूर्वक दौड़ता हुआ में उसका हाथ पकड़ लेता था । एक बार चमत्कार करने वाले वे मुनि उदास होकर आचमन पर्यन्त कुछ अपनी आँखों को लगाकर लगता था कि वह सो गया ॥९-११॥ वह विशाल देहली को तकिया बना

उपधाय विशालाक्षि विशालां द्वारदेहलीम्। अशेतनिशिनिःशङ्कं तावल्लम्बेक्षणः क्षणम् ॥१२॥
मामपृच्छद्भृङ्गिरिटिः प्रणम्य पादपङ्कजम्। अनेन विधिना केन विहितं तव दर्शनम् ॥१३॥
तपस्तप्तं हुतं जप्तं किमनेन महात्मना। दत्ते प्रतिपदं देवो यस्य हस्तावलम्बनम् ॥१४॥
अयं न लभते गन्तुं कस्मादस्मात्पुराद्बहिः ।
यदृच्छया यदा काशीसीमामुल्लङ्घ्य गच्छति ॥१५॥
न पश्यति तदा सर्वान्पार्श्वस्थानपि देहिनः । अत्र हेतुमहं ज्ञातुमिच्छामि स्वामिभाषितम् ॥१६॥
अनुग्राह्योऽस्मि चेद्वक्तुं युक्तं चेत्तदुदीरय। इमं भृङ्गिरिटेः प्रश्नं समाकर्ण्याहमूचिवान् ॥१७॥
कदाचिदासं कैलासे पार्श्वे पुन्नागकानने। रणत्खेचरसुश्रोणिपूर्णस्तबककानने ॥१८॥
कलकण्ठकुलालापकल्लोलितदिगन्तरे । गरुत्मदादिदात्यूहसमूहस्वरसङ्कुले ॥१९॥
भ्रमद्दारुघटीयन्त्रप्रोल्लसद्बिदुदन्तुरे । प्रबुद्धसारणिप्रान्तकदलीकन्दलालये ॥२०॥
कस्तूरीहरिणोपेतकिन्नरस्वमोहिते । रोमन्थमन्थरापाङ्गैर्मृगैः क्वऽपि निषेविते ॥२१॥
हंसैः कीरेषु पाण्डित्यकुर्वाणैः सङ्कुले शुकैः ।
निर्ह्रादिक्वणिनीरन्ध्रसमीरणविलोडिते ॥२२॥
माधवीपुष्पनिर्यासशीधुक्षीबमधुव्रते । उन्मीलत्त्रिवलीपुष्पगुच्छसौरभनिर्भरे ॥२३॥
प्रोत्फुल्लबकुलामोदमदमन्थरषट्पदे । सोमादुद्भूतपीयूषक्षालितक्षितिमण्डले ॥२४॥
अध्यास्य वेदिकामेकामहं क्षणमवस्थितः। उद्दण्डशाखिसङ्घट्टस्फुटन्मन्थामुखोत्करैः ॥२५॥

लिया था निःशङ्क रात्रि में मैं सो गया। उसी समय लम्बे नेत्र वाले क्षणभर में उसके चरणों में नमस्कार करके भृङ्गिरिटि ने मुझसे पूछा और कहा कि आपके दर्शन इस तरह से किसने किया है इस महामना ने तपस्या किया है हवन और जप किया है। आप इसको पग-पग पर अपने हाथों का सहारा देते हैं ॥१२-१४॥ यह इस नगर से बाहर क्यों नहीं जा पाता है ? अचानक भी काशी की सीमा को पार करके जाने पर वह कभी भी अपनी पास में रहने वाले जीवों को नहीं देखता है। मैं आपसे इस कथन का हेतु जानना चाहती हूँ ॥१५-१६॥ यदि मैं आपका कृपापात्र हूँ और यह जानने योग्य हूँ तो आप मुझे बतलायें। इस तरह के भृङ्गी ऋषि के वचन को सुनकर कहा ॥१७॥ एक बार मैं कैलास पर पुन्नागवन के सन्निकट था। बोलने वाले आकाशचारी सुन्दर के स्तवक के समान वन में ॥१८॥ जिसकी दिशाएँ कोयलों के मधुर कण्ठ से गूंजित थीं। गरुत्मान तथा कौओं के समूह से जो व्याप्त था ॥१९॥ जहाँ पर दारु निर्मित घटी यन्त्र घूम रहा था तथा जहाँ पर सुन्दर पुष्प सुशोभित हो रहे थे। जिसके तट में केले के समूह भरे थे ॥२०॥ कस्तूरी मृग से युक्त किन्नरों के स्वर से मोहित होकर पागुर करने के कारण मन्दाक्षों वाले मृग कहीं पर बैठे हुए थे ॥२१॥ हंसों के साथ शुक पक्षियों के अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करने रहने वाले शुकों से भरे ध्वनि करने वाली घुंघरु समूह से छिद्र वाली तथा वायु से आन्दोलित॥२२॥ तथा माधवी पुष्प से निःसृत पराग से मदमत्त भौरे वाले विकसित त्रिवली पुष्प के गुच्छ की सुगन्धि से परिपूर्ण ॥२३॥ विकसित बकुल की सुगन्धि के मद से भ्रमरो के मत्त हो जाने पर तथा चन्द्रमा से निस्मृत अमृत से पृथिवी मण्डल के प्रक्षलित हो जाने पर ॥२४॥ मैं एक वेदी के ऊपर क्षणभर बैठा रहा उन्नत

प्रकम्पिताचलच्छायो ववौ चण्डसमीरणः । पश्चादभून्महाघोषो निर्घोषितदरीतटः ॥२६॥
अवातरत्ततः कश्चित्पक्षी गगनागह्वरात् । शारदानीरदच्छायः कज्जलानामिवोच्चयः ॥२७॥
तमसामिव सङ्घातः पक्षच्छेदीव पर्वतः । अवष्टभ्य क्षितिं पद्भ्यां पक्षी मां प्रणनाम सः॥२८॥
आनीय पद्ममम्लानमसौ मत्पादयोर्व्यधात् । अथाऽसौ स्पष्टया वाचा पक्षी स्तोत्रमुदीरयत्॥२९॥

पक्ष्युवाच

जय देव चिदानन्द सुधासिन्धो जगत्पते !। सदा सद्भावनासङ्गकल्लोलानन्तविग्रह ! ॥३०॥
अद्वैतवासनामत्या मलत्रयविवर्जित। जितेन्द्रियपराधीनसमाधिप्राप्यविग्रह ॥३१॥
निरुपाधेर्विनिर्मुक्तनिराकारनिरामय ! । निःसीम निरहंकार निरावरणनिर्गुण ! ॥३२॥
शरणागतसन्त्राणप्रवीणचराणाम्बुज ! । भीममालमहाव्यालज्वालादग्धमनोभव ! ॥३३॥
कुठारभिन्नदैत्येन्द्रगण्डूषितमहाविभो ! । त्रिपुरप्रमदाभालसिन्दूरोद्धूलिमार्जन ॥३४॥
कात्यायनीकुचाम्भोजवरकुङ्कुमचर्चित ! । नमः प्रमाणदूराय नमः प्रमतिरूपिणे॥३५॥
नमश्चैतन्यनाथाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे। वन्दे तव पदाम्भोजं योगिप्रवरचुम्बितम्॥३६॥
अपारभवापाथोधिपारावतरणाद्भुतम् । वाचस्पतिरपि स्तोत्रे भवतो न प्रगल्भते॥३७॥
सहस्रवदनस्याऽपि फणीन्द्रस्य न चातुरी। त्वद्वर्णने महादेव कोऽहमल्पमतिः खगः ॥३८॥

श्रीशिव उवाच

स्तोत्रमेतत्समाकर्ण्य कृतं तेन पतत्रिणा। तमवोचमहं कोऽसि कुतस्त्योऽसि विहङ्गम ॥३९॥

वृक्षों के टकराने से जहाँ मन्था समूह दिखायी पड़ता था । जिससे पर्वती की छाया काँप रही थी जोर से हवा बहने लगी । उसके बाद वहाँ पर कन्दराओं को ध्वनित करने वाली महान् ध्वनि हुयी ॥२५-२६॥ वहाँ पर आकाश से कोई कज्जल समूह के समान पक्षी उतरा उसकी कान्ति शरत् कालीन मेध के समान थी ॥२७॥ अन्धकार समूह के समान तथा कटे पङ्ख वाले पर्वत के समान वह पक्षी अपने पैरों को पृथिवी पर टिका कर मुझको प्रणाम किया ॥२८॥ वह ताजे कमल को लाकर मेरे चरणों में रख दिया । उसके पश्चात् वह पक्षी स्पष्ट वाणी से मेरी स्तुति करने लगा ॥२९॥ **पक्षी ने कहा—** हे चिदानन्द, सुधासिन्धो भगवन् हे जगत् के स्वामिन् ! आपको नमस्कार है । सदा भावना के कारण अनन्त शरीर को धारण करने वाले ॥३०॥ हे अद्वैतमय बुद्धि के कारण त्रिदोषों से रहित जितेन्द्रिय के पराधीन रहने वाले समाधिस्थ शरीर वाले !॥३१॥ उपाधि रहित होने के कारण आप निराकार और निरामय हैं । हे निस्सीम अहङ्कार रहित आवरण और गुण रहित !॥३२॥ शरणागत जीवों की रक्षा करने में आपके चरण प्रवीण हैं । महासर्पों की भयङ्कर माला धारण करने वाले तथा अपनी नेत्र ज्वाला से कामदेव को जला देने वाले ॥३३॥ कुठार से काटकर दैत्येन्द्र को अपना गण्डूष (कुल्ला) बनाने वाले महाविभो ! तथा त्रिपुरासुर की प्रमदाओं के सिन्दूर से अपने शरीर को मार्जित करने वाले, हे पार्वतीजी के स्तन कमल के श्रेष्ठ सिन्दूर से पूजित ! प्रमाणों के अविपय भूत तथा ज्ञान स्वरूप आपको नमस्कार है ॥३४-३५॥ हे ज्ञान के स्वामिन् ! आपको नमस्कार है, हे त्रैलोकय स्वरूप आपको नमस्कार है श्रेष्ठ योगियों द्वारा पूजित आपके चरण कमलों की मैं वन्दना करता हूँ ॥३६॥ अपार भाव सागर से पार करने वाले आप अद्भुत है । बृहस्पति भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं है ॥३७॥ उसमें हजारों मुख वाले शेषनाग भी चतुर नहीं हैं । हे महादेव ! अल्प बुद्धि वाला

हंसेन सदृशः कायो वर्णः काकेन सन्निभः ।
प्रयोजनं कमुद्दिश्य प्राप्तोऽसीह तदुच्यताम् ॥४०॥
इति पक्षी मया पृष्टः प्रश्रयानतकन्धरः । जगाद श्लक्ष्णया वाचा पक्षी वाक्यविदाम्बरः॥४१॥
देवेश धूर्जटे विद्धि मां मरालं स्वयम्भुवः । कर्मणा येन मे कार्ष्ण्यं जातमाधुनिकं विभो!॥४२॥
तदाकर्णय सर्वज्ञ पृष्टं यदि तदुच्यते । मानसात्सरसः पृथ्वीं यातः प्राप्तोऽस्मिसङ्कटम्॥४३॥
सौराष्ट्रनगरादारात्सरसिस्फुटदम्बुजे । बालेन्दुःखण्डधवलान्मृणालकवलानहम् ॥४४॥
आदाय बलमाश्रित्य निरगां गगनं द्रुतम् । विहायसस्ततस्तस्मादकस्मादपतम्भुवि ॥४५॥
अथ मोहपरीतात्मा सर्वथा विकलेन्द्रियः । वेपमानवपुर्मोहात्स्पृष्टः शीतैःसमीरणैः ॥४६॥
प्रबुद्धः पतने हेतुमपश्यन्नात्मनस्तदा । अहो किमेतदापन्नमद्य पातः कथं मम ॥४७॥
कालिमा येन कायेऽस्मिन्पक्वकर्पूरपाण्डुरे ।
इत्यहं विस्मयाविष्टो यावत्कुर्वे विचारणम् ॥४८॥
तावदम्बुरुहाद्वाणीमश्रोषमहमीदृशीम् । उत्तिष्ठ हंस वक्ष्यामि कारणं पातकार्ष्ण्ययोः ॥४९॥
अथोत्थाय समागत्य मया मध्ये सरोवरे । दृष्टा राजीविनी रम्या राजीवैः पञ्चभिर्युता॥५०॥
कारणं प्रष्टुमारेभे कार्ष्ण्यस्य पतनस्य च । अथ तत्र धनश्यामास्वर्णवर्णाम्बरावृतान् ॥५१॥
चतुर्भुजान्गदाशङ्खचक्रपङ्केरुहायुधान् । किरीट्हारकेयूरकुण्डलद्युतिचित्रितान् ॥५२॥
अद्राक्षमन्तरिक्षस्थान्पुरुषानयुतानि षट् । नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य पञ्चपद्मां सरोजिनीम् ॥५३॥

पक्षी मैं कैसे समर्थ हो सकता हूँ ॥३८॥ **श्रीशिवजी ने कहा**— उस पक्षी के द्वारा किए गये इस स्तोत्र को सुनकर मैंने कहा हे पक्षी ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ?॥३९॥ तुम्हारा शरीर हंस के समान है और तुम्हारा रूप कौए के समान है ? तुम किस प्रयोजन से यहाँ आये हो ?॥४०॥ इस तरह से मेरे द्वारा पूछे जाने पर नम्रता पूर्वक अपनी गर्दन झुककर बोलने वालों में श्रेष्ठ वह पक्षी मधुर वाणी में कहा॥४१॥ हे देवेश ! हे धूर्जटे ! मैं ब्रह्माजी का हंस हूँ । हे विभो ! जिस कर्म के कारण मैं काला हो गया हूँ ॥४२॥ हे सर्वज्ञ ! उसे आप सुनें । आपने जो पूछा है उसे मैं बतलाता हूँ । मानसरोवर से पृथिवी पर जाकर मैंने यह सङ्कट प्राप्त किया है ॥४३॥ सौराष्ट्र देश के सन्निकट जहाँ के सरोवर में कमल विकसित थे । बाल चन्द्रमा के समान श्वेत मृणाल का कवल लेकर मै। ॥४४॥ बल पूर्वक मैं शीघ्रता से आकाश में उड़ गया । उसके पश्चात् उस आकाश से मैं अचानक पृथिवी पर गिर पड़ा । मैं मूर्छित हो गया और मेरी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं । मूर्छा से मेरा शरीर काँप रहा था । ठंढ़ी वायु का संस्पर्श पाकर मैं होश में आया किन्तु मेरे गिरने का कारण क्या है इसे मैं नहीं जानता था । मैं सोच रहा था कि अरे! मुझको क्या हो गया ? मैं कैसे गिरा ? ॥४५-४७॥ पके हुए कर्पूर के समान श्वेत मेरे शरीर में कालिमा किस कारण से हुयी । इस तरह से आश्चर्यित होकर मैं सोच ही रहा था कि ॥४८॥ उस समय कमल से निकली हुयी वाणी को सुना हंस उठो मैं तुम्हारी कालिमा तथा पतन का कारण बतलाती हूँ ॥४९॥ उसके बाद उठकर जब मैं सरोवर के बीच में आया तो देखा कि पाञ्च कमलों के साथ एक सुन्दर कमलिनी विद्यमान है ॥५०॥ जब मैंने गिरने तथा कालिमा का कारण पूछा तो वहाँ मेघ क समान श्याम वर्ण के

आत्मीयं पातमारभ्यं पृष्टं तदखिलं मया ।

पद्मिन्युवाच

कलहंस ! गतोऽसि त्वं मां विलङ्घ्य विहायसा ॥५४॥

तेन पातकयोगेन पतितोऽसि महीतले। तेनैव कालिमा काये पक्षिसत्तम ! लक्ष्यते ॥५५॥
भवन्तं पतितं वीक्ष्य कृपापूर्णेन चेतसा। मध्यमेनाऽमुनाऽब्जेन वदता जातसौरभम् ॥५६॥

आघ्राय षट्पदाः षष्टिसहस्राणि दिवं ययुः ।
एते ये भवता दृष्टा नीलोत्पलसमत्त्विषः ॥५७॥

सर्वे ते सप्तमेऽतीते जन्मन्यासन्मुनेः सुताः। अस्यैवसरसस्तीरे तेपुस्ते परमं तपः ॥५८॥
कदाचित्कामिनी काचिच्चम्पकस्तबकस्तनी। चलापाङ्गकलाकान्ततरङ्गितरसालिनी ॥५९॥
नासामुक्ताफलज्योत्स्नाचुम्बितस्मितदीधितिः। वीणां विन्यस्य कुवयोर्वनेऽस्मिन्धुरं जगौ ॥६०॥

गायन्त्याःस्वरमाकर्ण्य ब्राह्मणा हरिणा इव ।
तां समागत्य ते सर्वे सममेव व्यलोकयन् ॥६१॥

मया दृष्टा ममैवेयमित्यूचुस्ते परस्परम्। मुष्टामुष्टि ततस्तेषां भ्रातृणामभवद्रणः ॥६२॥
अन्योन्यमुष्टिनिष्पिष्टवक्षसस्त्यक्तजीविताः । ते भुत्तवा निरयान्घोरान्बभूवुः सारसा भुवि ॥६३॥
तदा ते श्वापदाञ्जघ्नुर्दग्धा वन्येन वह्निना। ततो मातङ्गतामेत्यपथिपान्थानघातयन् ॥६४॥
वने विषोदक पीत्वा ते ययुर्यममन्दिरम्। खरोष्ट्रकपिमार्जारजन्मान्यासाद्य च क्रमात् ॥६५॥

तथा सुवर्ण के समान वस्त्र धारण किए हुए, चार भुजाओं वाले, शङ्ख, चक्र, तथा पद्म नामक आयुधों को धारण किए हुए किरीट, हार, केयूर, कुण्डल धारण किए हुए सुन्दर ॥५१-५२॥ अन्तरिक्ष में स्थित साठ हजार पुरुषों को देखा फिर उन सबों को नमस्कार करके तथा पाञ्च कमलों से युक्त कमलों से युक्त कमलिनी की प्रदक्षिणा करके उसके बाद मेंने अपने गिरने से लेकर सारी बातों को पूछा ॥५३॥ **पद्मिनी बोली—** हे हंस ! तुम मुझको लाँघकर आकाश मार्ग से गये हो ॥५४॥ उसी पाप के कारण तुम पृथिवी पर गिर पड़े हो । हे पक्षिश्रेष्ठ ! उसी पाप के कारण तुम्हारे शरीर में कालिमा दिखायी पड़ती है ॥५५॥ तुमको गिरे हुए देखकर इस मध्या कमल के द्वारा बोले जाने पर उससे सुगन्धि निकली ॥५६॥ उसको सूंघकर साठ हजार भौंरे स्वर्ग में चले गये । जिन सबों को तुमने नील कमल की कान्ति से सम्पन्न देखा है ॥५७॥ वे सब पहले के सातवें जन्म में मुनि के पुत्र थे । वे सब इसी सरोवर के तट पर अत्यधिक तपस्या किए ॥५८॥ एक बार चम्पा की कली के समान कोई सुन्दरी जिसके चञ्चल नेत्र थे तथा वह प्रेम भरी थी ॥५९॥ उसकी नाकों की मोती की कान्ति उसकी मुस्कान को जैसे चूम रही थी । वह इस वन में अपने स्तनों के ऊपर वीणा रखकर मधुर गायन करने लगी ॥६०॥ उस गाती हुयी के स्वर को सुनकर वे तपस्वी उसके सन्निकट आकर एक ही समय में उसको देखे ॥६१॥ मैंने ही इसे पहले देखा है इस प्रकार से एक दूसरे से कहने लगे । उसके पश्चात् उन सभी भाइयों में मुष्टा मुष्टी का युद्ध होने लगा॥६२॥ परस्पर में एक दूसरे के मुक्के के प्रहार से उनकी छाती टूट गयी और वे मर गये । वे घोर नरकों को भोगकर पृथिवी पर सारस हो गये ॥६३॥ उस समय वन की अग्नि से जले हुए वे जानवरों को मार देते उसके बाद हाथी होकर रास्ते में पथिकों को मार देते थे ॥६४॥ वन में विषैला पानी पीकर वे यमलोक

ततो मधुव्रता जाता वर्तन्तेऽत्र सरोवरे। अद्य मे गन्धमाघ्राय प्रापुस्ते वैष्णवं पदम् ॥६६॥

श्रृणु पक्षीन्द्र वक्ष्यामि येनमय्यस्ति वैभवम् ।
एतस्माज्जन्मनः पूर्वेतृतीयेजन्मनिक्षितौ ॥६७॥

सरोजवदना नाम द्विजातेः कन्यकाऽभवम्। पातिव्रत्यैकनिरता गुरुशुश्रूषणे रता॥६८॥

कदाचित्सारिकामेकां पाठयन्त्यविलम्बितम् ।
सारिका भव पापे त्वं पत्या शप्ताऽस्मि कुप्यता ॥६९॥

प्रेत्य सारित्वमासाद्य पातिव्रत्यप्रसादतः। मुनीनामेव सदने कन्या काचित्पुपोषमाम्॥७०॥

गीतानां दशमाध्यायं विभूतिरितिविश्रुतम् । प्रातः पठति विप्रोऽसावश्रौषं तमघापहम् ॥७१॥

कालेन सारिकादेहमदं हित्वा विहङ्गम !। दशमाध्यायमाहात्म्यादप्सराश्चाभवन्दिवि ॥७२॥

पद्मावतीति विख्याता पद्माया दयिता सखी ।
कदाचनमया यान्त्याविमानेन विहायसा ॥७३॥

एतत्सरोवरं रम्यं विलोक्य विमलाम्बुजम् । अवतीर्य जलक्रीडा यावदारभ्यते मया ॥७४॥

दुर्वासास्तावदायातो विवस्त्रा तेन वीक्षिता। तद्भयात्पद्मिनीरूपं धृतमेतन्मया स्वयम्॥७५॥

पद्भयां पद्मद्वयं चैव द्वयं हस्तद्वयेन च । मुखेन पञ्चमाम्भोजमिति पञ्चाम्बुजाऽस्म्यहम्॥७६॥

दृष्टा तेन मुनीन्द्रेण कोपज्वलितचक्षुषा। अनेनैव स्वरूपेण तिष्ठ पाप शतं समाः ॥७७॥

इतिशापं समुत्सृज्य सचैवाऽन्तर्दधेक्षणात्। विभूत्यध्यायमाहात्म्याद्वाणीमेनविलीयते ॥७८॥

मद्विलङ्घनमात्रेण पतितोऽसि महीतले। अद्य शापनिवृत्तिर्मे तिष्ठतस्ते खगोत्तम !॥७९॥

चले गये । क्रमशः गधा, ऊँट वानर तथा मार्जार योनि को प्राप्त करके वे ॥६५॥ इस सरोवर में भौंरे हो गये । अज मेरे गन्ध को सूंघकर वे भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥६६॥ हे पक्षी श्रेष्ठ ! जिसके कारण मुझे यह ऐश्वर्य प्राप्त हुआ उसे बतला रही हूँ । इस जन्म से पहले के तीसरे जन्म में मैं पृथ्वी पर ब्राह्मण की कमलमुखी कन्या हुयी । मैं सदा पातिव्रत्य धर्म का पालन करती थी और गुरुजनों की सेवा करती थी ॥६७-६८॥ एक बार मैं सारिका को पढ़ा रही थी तो पति रुष्ट होकर मुझे शाप दिए कि पापिनी तुम सारिका हो जाओ ॥६९॥ पातिव्रत्य के प्रभाव से मैं मरकर सारिका हो गयी किन्तु किसी मुनि की पुत्री ने मुझे पोष लिया ॥७०॥ गीता के दशवें अध्याय को विभूति अध्याय कहा जाता है । जब ब्राह्मण उसका प्रातःकाल पाठ करते थे मैं उसको सुनती थी ॥७१॥ हे विहङ्गम ! समयानुसार सारिका शरीर का त्याग करके दशवें अध्याय की महिमा के कारण स्वर्ग में अप्सरा हो गयी । मैं पद्मा की प्रिय सखी थी और मैं पद्मावती के नाम से विख्यात हुयी । एक बार मेरे साथ विमान से आकाश मार्ग से जाती हुयी मैं इस मनोहर सरोवर तथा स्वच्छ कमलों को देखकर विमान से उतरकर जलक्रीडा कर रही थी ॥७२-७३॥ महर्षि दुर्वासा वहाँ आये और मुझको नङ्गी देखे । उनके भय से मैं स्वयं कमलिनी का रूप धारण कर ली ॥७४॥ मैंने दोनों पैरों से दो कमलों को तथा दोनों हाँथों से दो कमल धारण करके तथा मुख में पाँचवें कमल को धारण करके मैं पञ्चामुखी हो गयी ॥७५-७६॥ मुनि ने क्रोध से जलते हुए नेत्रों से मुझे देखा और कहा पापिनी तुम सौ वर्षो तक इसी रूप में बनी रहो ॥७७॥ इस तरह से शाप देकर मुनि क्षणभर में अन्तर्धान हो गये।

निशामय मया गीयमानमध्यायमुत्तमम्। यस्याऽऽकर्णनमात्रेण त्वमद्यैव विमोक्ष्यसे ॥८०॥

पक्ष्युवाच

इत्यसौ दशमाध्यायं पपाठ श्लक्ष्णया गिरा ।
तमाकर्ण्य तया दत्तमादाय च सरोरुहम् ॥८१॥

मया समर्पितं तुभ्यं पद्मिन्या पद्ममुत्तमम्। इत्युक्त्वा स जहौ देहं तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥८२॥

भृङ्गिरिटिरुवाच

पुरातने भवे कोऽयं ब्रह्महंसोऽभवत्कथम्। तवाऽग्रतः कुतो हेतोरुत्ससर्ज कलेवरम् ॥८३॥

श्रीशिव उवाच

इतिभृङ्गिरिटेर्वाक्यमाकर्ण्याऽहं तदाऽब्रवम्। द्विजवेश्मनि पूर्वस्मिञ्जन्मन्ययमजायत ॥८४॥

सुतपाइतिविख्यातो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः। वसन्गुरुकुले कुर्वन्वेदाध्ययनमन्वहम् ॥८५॥

गुरुशुश्रूषणं सम्यग्विदधाति च भक्तितः। शयानस्यगुरोःशय्यांनिद्रितःसपदाऽस्पृशत् ॥८६॥

तेन पापेन तिर्यक्त्वमयं स्वर्गेऽपि लब्धवान् ।
पद्मयोनिमरालानां मध्ये जातस्ततो द्विजः ॥८७॥

अस्मिञ्जन्मन्यमुष्येह पुराऽस्मल्लोकनावधि। गीतानांदशमाध्यायं नलिन्याकथितन्ततः ॥८८॥

आकर्ण्य विहगो लेभे ब्रह्मज्ञानमनुत्तमम्। सोऽयं विप्रकुले जातो दशमाध्यायवैभवात् ॥८९॥

जन्माभ्यासवशादस्य शिरोरपि मुखाम्बुजात् ।
गीतानांदशमाध्यायः समुल्लसतिसर्वदा ॥९०॥

तदर्थपरिणामेन सर्वभूतेष्ववस्थितम्। शङ्खचक्रधरं देवमयं पश्यति सर्वदा ॥९१॥

विभूति अध्याय की महिमा से मेरी वाणी विलीन नहीं होती है ॥७८॥ मुझको लाँघने मात्र के कारण तुम गिर पड़े हो । हे खगोत्तम ! तुम्हारे सामने ही मेरा शाप समाप्त हो रहा है ॥७९॥ मेरे द्वारा पढ़े जाते हुए दशवें अध्याय को तुम सुनों । उसके सुनने मात्र से तुम आज ही मुक्त हो जाओगे ॥८०॥ **पक्षी ने कहा—** इस तरह से उसने मृदुवाणी से दशवें अध्याय को पढ़ा । उसको सुनकर उसके द्वारा प्रदत्त कमल को लेकर ॥८१॥ मैंने आपको पद्मिनी के उत्तम पद्म को आपको समर्पित किया है । यह कहकर उसने अपना शरीर त्याग दिया ॥८२॥ **भृंगिरिटि ने कहा—** यह हंस पूर्वजन्म में कौन था ? और कैसे ब्रह्माजी का हंस बन गया । आपके सामने ही इसने क्यों शरीर का त्याग किया है ? **श्रीशिवजी ने कहा—** भृङ्गिरिटि के इस वाक्य को सुनकर मैंने कहा पूर्वजन्म में यह ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुआ था ॥८३-८४॥ इसका नाम सुतपा था और यह ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय था । यह गुरुकुल में रहकर वेदाध्ययन करता था॥८५॥ यह भक्तिपूर्वक अपने गुरु की अच्छी तरह से सेवा करता था । वह सोते हुए एक बार अपने गुरु की शय्या को अपने पैरों से स्पर्श कर लिया ॥८६॥ उसी पाप के कारण इसने स्वर्ग में रहकर भी पक्षी की योनि प्राप्त कर लिया । यह ब्रह्माजी के हंसों में एक हंस हो गया ॥८७॥ इस जन्म में भी यह मेरे देखने से पहले गीता शास्त्र के दशवें अध्याय को कमलिनी ने सुनाया ॥८८॥ उसको सुनकर इस पक्षी ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया । वह दशवें अध्याय की महिमा से ब्राह्मण के वंश में, उत्पन्न हुआ ॥८९॥ जन्म से अभ्यास होने के कारण इसके पुत्र के मुख में सर्वदा दशवाँ अध्याय रहता है ॥९०॥ उसके

यस्मिन्यस्मिन्यदैवाऽस्य दृष्टिः स्निग्धा शरीरिणी ।
स स मुक्तो भवेत्सर्वः सुरापो ब्रह्महाऽपि वा ॥९२॥
तद्विलाय मया विप्रः परमात्मस्वरूपिणा । इदं नगरमानीतो मुक्तिक्षेत्रं स्वभावतः ॥९३॥
अत्रत्यानां मनष्याणां मुक्तिः करतले स्थिता ।
तेनाऽस्य दृष्टिपातेन विशेषोऽन्यो न जायते ॥९४॥
न ददामि बहिर्गन्तुमहमस्य पुरा कृतम् । दशमाध्यायमाहात्म्यात्तत्वज्ञानं सुदुर्लभम् ॥९५॥
लब्धमेतेन मुनिना जीवन्मुक्तिरियन्तथा । तेनाऽस्य चलतो हस्तं ददामि पथि गच्छतः ॥९६॥
दशमाध्यायमहिमा भृङ्गिरिटे महानयम् । इति भृङ्गिरिटेरग्रे कथितं यत्कथानकम् ॥९७॥
तवेदमत्र कथितं सर्वपापप्रणाशनम् ।
नरो वाऽप्यथवा नारी योऽपि कोऽपि च वा पुनः ॥९८॥
अस्य श्रवणमात्रेण सर्वाश्रमफलं लभेत् ॥९९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणेपञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे गीतादशमाध्यायमाहात्म्ये चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८४॥

अर्थ के परिणाम स्वरूप यह अपने हृदय में सदा शङ्ख, चक्रधारी श्रीभगवान् का दर्शन करता है ॥९१॥ इसकी स्निग्ध दृष्टि जिस-जिस पर पड़ती है वह मुक्त हो जाता है, चाहे वह मदिरापायी हो अथवा ब्रह्मघाती हो ॥९२॥ इस बात को जानकर परमात्म स्वरूप मैंने इसको स्वभावतः मुक्ति के क्षेत्र में लाया ॥९३॥ यहाँ पर रहने वाले मनुष्यों की मुक्ति स्वभावतः हो जाती है अतएव उसके देखने मात्र से कोई विशेषता नहीं आयी ॥९४॥ इसके पहले जन्म से प्राप्त ब्रह्मज्ञान की महिमा से मैं इसको बाहर नहीं जाने देता हूँ ॥९५॥ इस मुनि ने चूकि जीवन्मुक्ति प्राप्त कर ली है तो इसके रास्ते में चलते समय अपने हाथ का सहारा देता हूँ ॥९६॥ हे भृङ्गिरिटे ! दशवें अध्याय की महिमा महान् है । इस तरह से भृङ्गिरिटि के समक्ष जो मैंने कथानक कहा था ॥९७॥ उसी पाप विनाशक को आज मैंने तुमको सुनाया है ॥९८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत गीता के दशवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ चौरासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८४।।

एक सौ पचासीवाँ अध्याय

देव्युवाच

इतिहासोऽयमीशाने श्रेयसां साधनं परम्। आकर्ण्य करुणापूर्णं ममकाङ्क्षा प्रवर्त्तते ॥१॥
एकादशस्य माहात्म्यमध्यायस्य कथाश्रयम्। व्यावर्णय विरूपाक्ष वक्तॄणां प्रथमं प्रभो ॥२॥

ईश्वर उवाच

आकर्णय कथां कान्ते ! गीतावर्णनसंश्रयाम् ।
विश्वरूपाभिधानस्य माहात्म्यमपि पावनम् ॥३॥
अध्यायस्य विशालाक्षि ! वक्तुं तावन्न शक्यते ।
सहस्राणि कथाः सन्ति तत्रैका कथ्यते मया ॥४॥

प्रणीतायास्तटे नद्या मेघङ्करमिति श्रुतम्। नगरं गरिमाधारं तुङ्गप्राकारगोपुरम् ॥५॥
विशालाश्रमशालासु स्वर्णस्तम्भविभूषितम्। श्रीमद्भिः सुखिभिः शान्तैः सदाचारोर्जितेन्द्रियैः ॥६॥
अधिष्ठितं जवैश्चारुशृङ्गाटकमनोहरम्। मणिस्तम्भस्फुरत्स्वर्णापर्णचत्वरशोभितम् ॥७॥
पताकाकिङ्किणीक्वाणकदम्बककलस्वरम् । वेदाध्ययननिर्घोषवाचालितदिगन्तरम् ॥८॥
तूर्यसङ्घोषणाकीर्णं विशालव्योममण्डलम्। पताकापल्लवोद्धूतवातनिर्जितविग्रहम् ॥९॥
राजमार्गवरद्वारनारीमञ्जीरशिञ्जितैः । वल्लकीवेणुकैर्गीतैर्भाति वाजीन्द्रहेषितैः ॥१०॥

प्रेक्षमाणमिवाभीक्ष्णं दिक्पालानां पुरैः समम् ।
आस्ते जगत्पतिर्यत्र शार्ङ्गपाणिर्विराजितः ॥११॥

मूर्तिमत्परमं ब्रह्म जगल्लोचनजीवितम्। लक्ष्मीनयनराजीव पूजिताकारगौरवः ॥१२॥

गीता के विश्वरूप नामक एकादशवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन

देवी ने कहा— हे महादेव ! यह इतिहास कल्याण का श्रेष्ठ साधन है । उस करुणा पूर्ण इतिहास को सुनकर मेरी आकांक्षा बढ़ती है ॥१॥ ग्यारहवें अध्याय का माहात्म्य कथाश्रित है । हे वक्ताओं में श्रेष्ठ प्रभो ! उसका आप वर्णन करें ॥२॥ **ईश्वर ने कहा—** हे कान्ते ! गीता के वर्णन के अन्तर्गत विश्वरूप नामक अध्याय के पवित्र माहात्म्य को तुम सुनो ॥३॥ हे बड़े-बड़े नेत्रों वाली ! इस अध्याय की हजारों कथाओं का वर्णन नहीं किया जा सकता है । उसमें से एक कथा को मैं कहता हूँ ॥४॥ प्रणीता नदी के तट पर मेघङ्कर नाम से प्रख्या गौरव सम्पन्न एक नगर था । उसके प्राकार और गोपुर बड़े-बड़े थे ॥५॥ विशाल आश्रम शालाओं में सुवर्ण के स्तम्भ से वह युक्त था । श्रीमान्, सुखी, शान्त, सदाचार सम्पन्न जितेन्द्रियों से ॥६॥ वह सुन्दर जवों तथा शिखरों से मनोहर जिसके मणियों के चमकते हुए सुवर्ण पत्र से वहाँ के चबुत्तरे सुशोभित थे । पताकाओं में लगी क्षुद्र घंटियों के मनोहर ध्वनि समूह से जिसका स्वर मनोहर था । वेदाध्ययन की ध्वनियों से वहाँ की दिशाएँ गुञ्जित थीं । विशाल आकाश मण्डलतूर्य की ध्वनि से भरा रहता था । पताका रूपी पल्लवों से उद्धूत वायु से जिसका विग्रह दब जाता था ॥७-९॥ राजमार्ग का श्रेष्ठ द्वार नारियों के नूपुर की ध्वनि से वीणा, वेणु तथा गीतों से अश्वराजों की हिनहिनाहट से सुशोभीत था ॥१०॥ वह देखने में दिक्पालों की नगरियों के समान सुशोभित होता था । वह वहाँ के

त्रिविक्रमवपुर्मेघश्यामलः कोमलद्युतिः। श्रीवत्सवक्षाराजीववनमालाविभूषितः ॥१३॥
अनेकभूषणोपेतः सरत्नइव वारिधिः। चलत्सौदामिनीदामसान्द्रमेघसमद्युतिः ॥१४॥
तस्याऽऽस्ते मुकुटे साक्षाच्छार्ङ्गपाणिः परः पुमान्।
तं दृष्ट्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥१५॥
यस्मिन्पुरे महातीर्थं विद्यते मेखलाभिधम्। यत्र स्नात्वा नरैर्नित्यं प्राप्यते वैष्णवम्पदम् ॥१६॥
तत्र वीक्ष्य जगन्नाथं नरसिंहं कृपावम्। सप्तजन्मार्जिताद्धोरान्मुच्यते दुष्कृतान्नरः ॥१७॥
मेखलायां गणांधीशं विलोकयति यो नरः।
स निस्तरति विघ्नानि दुस्तराण्यपि सर्वदा ॥
ब्रह्मचर्यपरो दान्तो निर्ममो निरहङ्कृतिः ॥१८॥
तस्मिन्मेघङ्करे कश्चिदभूद्ब्राह्मणसत्तमः। सुनन्दइतिविख्यातो वेदशास्त्रविशारदः ॥१९॥
वशीकृतेन्द्रियग्रामो वासुदेवपरायणः। देवस्य शार्ङ्गिणः पार्श्वे गीताध्यायमिमं प्रिये !॥२०॥
एकादशं पठत्येष विश्वरूपप्रदर्शनम्। अध्यायस्य प्रभावेण ब्रह्मज्ञानमवाप सः ॥२१॥
परमानन्दसन्दोहश्लाघ्यसम्वित्समाधिना। प्रत्यङ्मुखेन्द्रियतया निश्चलांस्थितिमीयुषा ॥२२॥
सततं स्थीयते तेन जीवन्मुक्तेन योगिना। एकदा स महायोगी सिंहाराशिस्थिते गुरौ ॥२३॥
गोदावरीतीर्थयात्रां विधातुमुपचक्रमे। प्रथमेऽह्नि समागत्य विरजं तीर्थमुत्तमम् ॥२४॥

अधिष्ठाता भगवान् शार्ङ्गपाणि से सुशोभित थी वह नगरी ॥११॥ वे भगवान् मूर्तिमान परंब्रह्म के समान हैं वे संसार के नेत्रों का जीवित सर्वस्व थे। लक्ष्मीजी के नेत्र कमल से उसका आकार और गौरव पूजित था॥१२॥ उस भगवान् का शरीर त्रिविक्रम भगवान् के समान श्याम वर्ण का तथा कोमल था। उनके वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न था। तथा कमल की वनमाला से वह सुशोभित था ॥१३॥ अनेक भूषणों से भूषित वे सुन्दर रत्नों का मानो समुद्र था। चञ्चल विद्युल्लता से युक्त जल भरे मेघ के समान उसकी कान्ति थी ॥१४॥ उनके मुकुट में साक्षात् परंपुरुष श्रीभगवान् का निवास था। उसका दर्शन करके मनुष्य जन्म तथा संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं ॥१५॥ उस नगरी में मेखला नामक महातीर्थ था। उसमें स्नान करने वाले मनुष्य श्रीवैष्णव पद को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ पर जगत् के स्वामी कृपासागर श्रीनृसिंह भगवान् का दर्शन करके मनुष्य सात जन्मों के भयङ्कर पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥१६-१७॥ मेखला तीर्थ में गणाधीश का जो मनुष्य दर्शन करता है वह दुस्तर भी विघ्नों को पार कर जाता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला, दान्त और अहङ्कार रहित तथा निर्मम मनुष्य दुस्तर विघ्नों को पार कर जाता है ॥१८॥ उस मेघङ्कर नगर में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था वह वेदों तथा शास्त्रों में निपुण था और उसका नाम सुनन्द था॥१९॥ वह अपनी इन्द्रियों को वश में रखता था और भगवान् वासुदेव की सेवा करता था। हे प्रिये! भगवान् शार्ङ्गपाणि के सन्निकट गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ करता था ॥२०॥ भगवान् के विश्वरूप का ज्ञान कराने वाले इस अध्याय के प्रभाव से उसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया था ॥२१॥ परम आनन्द समूह के कारण श्लाघ्य संवित् तथा समाधि के द्वारा इन्द्रियों के आत्माभिमुख होने के कारण निश्चल स्थिति को प्राप्त करने वाला वह जीवन्मुक्त योगी निरन्तर समाधिस्थ रहता था। एक बार वह महायोगी जब वृहस्पति सिंह राशि के हुए ॥२२-२३॥ गोदावरी तीर्थ की यात्रा प्रारम्भ किया। पहले दिन वे उत्तम विरज

नाभिमारभ्य तीर्थेषु स समभ्यर्च्य देवताम्। मज्जन्मज्जज्जगद्धात्रीं कमलां स व्यलोकयत् ॥२५॥
तां सम्पूज्य महामायां सर्वकामफलप्रदाम्। तारातीर्थं ततःस्नात्वा कपिलासङ्गमेततः॥२६॥
अष्टतीर्थमसौ चक्रे विधाय पितृतर्पणम्। कुमारीशं शिवं नत्वा कपिलाद्वारमाययौ॥२७॥
तत्र निर्मज्ज्य निर्धूतप्राग्जन्मान्तरदुष्कृतः। सम्पूज्य नत्वा श्रुत्वा च देवं वै मधुसूदनम्॥२८॥
उषित्वा तत्र तां रात्रिं प्रागात्प्रातः सह द्विजैः ।
नरसिंहवने तत्र तीर्थेरामस्य दीर्घिका ॥
प्रह्लादपूजितः साक्षादास्ते यत्र नृकेसरी ॥२९॥
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं पूजयित्वा तु भक्तितः। तत्र तं दिवसं नीत्वा स ययावम्बिकापुरम्॥३०॥
अनुग्रहेण भक्तानामम्बिका तत्र तिष्ठति। पूरयन्ती मनुष्याणां वाञ्छितान्यखिलान्यपि॥३१॥
पूजयित्वाऽम्बिकां भक्तया पुष्पगन्धानुलेपनैः। उपहारैश्च विविधैः स्तौत्रैः प्रणमनैरपि॥३२॥
विप्रस्तस्मात्पुरा प्राप्तः कण्ठस्थानाभिधं पुरम् ।
यत्राऽऽस्ते परमाशक्तिर्महालक्ष्मीर्महाद्युतिः ॥३३॥
तामवेक्ष्य सुधाभानुभास्करद्युतिमण्डलाम्। संसारतापविच्छेदपद्मपीयूषवाहिनीम् ॥३४॥
योगिराजहृदम्भोजराजहंसनिषेविताम् । अनाहतमहानादमयीमद्वयरूपिणीम् ॥३५॥
महालक्ष्मीं भगवतीं वाञ्छितार्थप्रदायिनीम्। आराध्य भक्तिभावेनचेतसास मुनीश्वरः॥३६॥
विवाहमण्डपं प्राप पुरं विप्रैः समन्वितः। पुरे तत्र प्रतिगृहं वासस्थानमयाचत॥३७॥

तीर्थ में आकर ॥२४॥ नाभिमात्र जल में देवता की पूजा करके जगन्माता लक्ष्मीजी को स्नान करते हुए देखा ॥२५॥ उन सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली, महामाया की अच्छी तरह से पूजा करके उसके बाद वह तारा तीर्थ में स्नान किया उसके बाद वह कपिला सङ्गम में स्नान किया ॥२६॥ वह पितृतर्पण करके अष्टतीर्थ की यात्रा किया। कुमारीश शिवजी को नमस्कार करके वह कपिलाद्वार तीर्थ में आया॥२७॥ वहाँ पर स्नान करके वह पूर्वजन्मों के पापों से रहित हो गया। वहाँ पर श्रीभगवान् मधुसूदन का पूजन करके और उनकी कथा सुनकर वह वहाँ रात्रि में निवास करके प्रातः काल वे ब्राह्मणों के साथ नरसिंह वन में गये वहाँ पर राम दीर्घिका है। वहाँ पर प्रह्लाद के द्वारा पूजित भगवान् नृसिंह साक्षात् हैं ॥२८-२९॥ उन देवाराध्य श्रीभगवान् का दर्शन करके और उनकी पूजा भक्ति पूर्वक करके वहाँ पर दिन बिता करके अम्बिकापुर में गया ॥३०॥ वहाँ पर भक्तों पर कृपा करने के लिए अम्बिका देवी निवास करती हैं। वे मनुष्यों की सारी कामनाओं को पूर्ण करती हैं ॥३१॥ अम्बिका देवी की भक्ति पूर्वक पुष्प चन्दन तथा अनुलेपन (अङ्गराग) से पूजा करके वह अनेक उपहारों तथा स्तोत्रों, नमस्कारों से भी उनकी पूजा किया॥३२॥ वह ब्राह्मण उससे पहले आने वाले कण्ठस्थान पुर में गया। वहाँ पर महाशक्ति तथा महाकान्ति सम्पन्न महालक्ष्मी का निवास है ॥३३॥ अमृत रूपी सूर्य मण्डल की कान्ति से सम्पन्न महालक्ष्मीजी का दर्शन करके जो संसार के संताप को दूर करने वाले पद्म पराग की धारा बहती थीं ॥३४॥ जिनकी सेवा योगिराज का हृदय रूप राजहंस करता था। वे अनाहत महानदमयी तथा अद्वय स्वरूपिणी थीं ॥३५॥ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली महालक्ष्मी की अच्छी तरह से भक्तिभाव पूर्वक पूजा करके वे मुनीश्वर ब्राह्मणों के साथ विवाह मण्डप पुरम् में आये। वहाँ पर वे प्रत्येक गृहों में रहने की याचना किए ॥३६-३७॥ उनको किसी

न लेभे वसतिं स्थातुं गेहे कस्मिन्नपि द्विजः ।
दर्शितं ग्रामपालेनविशालंवासमन्दिरम् ॥३८॥
प्रविश्य वसतिं चक्रे ब्राह्मणः सङ्गिभिःसह ।
ततः प्रभाते विमले सुनन्दोऽसौद्विजोत्तमः ॥३९॥
बहिरालोयाञ्चक्रे वासगेहान्निजंवपुः । अध्वन्यानखिलान्यत्र जातान्क्वाऽपि यदृच्छया॥४०॥
गम्यमानः समायान्तं ग्रामपालो ददर्श सः । तं बभाषे ग्रामपाल आयुष्मानसिसर्वशः ॥४१॥
भागधेयवतां पुंसां पुण्यः पुण्यवतामसि । प्रभावो विद्यते वत्य कोऽपि लोकोत्तरस्त्वयि॥४२॥
क्व प्रयाताः सहायास्ते कथं तत्सदनाद्बहिः ।
तत्पश्य मुनिशार्दूल कथयामितवाऽग्रतः ॥४३॥
किन्तु नाऽन्यं त्वया तुल्यं पश्यामीह तपस्विनम् ।
किं जानासि महामन्त्रं कां विद्यामवलम्बसे ॥४४॥
कस्य देवस्य कारुण्याच्छक्तिर्लोकोत्तरा त्वयि ।
तत्कारुण्यवशात्तिष्ठ ग्रामेऽस्मिन्ब्राह्मणोत्तम ! ॥४५॥
शुश्रूषामखिलामेव भगवंस्ते करोम्यहम् । इति सम्वासयामास तस्मिन्ग्रामे मुनीश्वरम्॥४६॥
परिचर्यां च तस्याऽसौ भत्तयाचक्रे दिवानिशम् ।
दिवसेषुप्रयातेषु सप्ताष्टसु समेयिवान् ॥४७॥
प्रातरागत्य तस्याग्रे रुरोद भृशदुःखितः । अद्य ते भाग्यहीनस्य गुणवान्भक्तिमान्सुतः ॥४८॥
जाज्वल्यमानदंष्ट्रेण भक्षितो निशि रक्षसा। इत्येवं रक्षकेणोक्तं तं पप्रच्छ स संयमी ॥
क्वाऽऽस्ते स राक्षसः पुत्रो भक्षितस्ते कथं वद ॥४९॥

भी गृह में रहने का स्थान नहीं मिला उनको ग्राम पाल ने विशाल भवन को दिखााया । उसमें प्रवेश करके ब्राह्मणों के साथ वे निवास किए । उसके पश्चात् प्रातःकाल होने पर वे सुनन्द नामक ब्राह्मण ॥३८-३९॥ वे वास स्थान से बाहर अपना शरीर देखे । वहाँ पर सभी पथिक अपनी इच्छानुसार कहीं चले गये थे॥४०॥ उनको जाते समय ग्रामपाल ने देखा । ग्रामपाल ने कहा आप निश्चित रूप से दीर्घायु हैं ॥४१॥ भाग्यवान् पुरुषों तथा पुण्यवानों में आप सर्वश्रेष्ठ हैं । हे वत्स ! आपमें कोई लोकोत्तर प्रभाव है ॥४२॥ आपके सहायक कहाँ चले गये । वे गृह से बाहर कैसे गये आप अमित वाणी सम्पन्न है आप इन सब वातों को बतलाइये ॥४३॥ आपके समान मैंने किसी भी तपस्वी को नहीं देखा है । आप कौन सा महामन्त्र अथवा किस महाविद्या को जानते हैं ?॥४४॥ किसी देवता की कृपा से आप में लोकोत्तर शक्ति है ? हे ब्राह्मण ! आप कृपा करके इस ग्राम में निवास करें ॥४५॥ हे भगवन् ! मैं आपकी सारी सेवा करूँगा इस तरह से उसने कहकर उन मुनि को उस ग्राम में बसा दिया ॥४६॥ वह उनकी भक्ति पूर्वक सेवा करता था । सात-आठ दिनों के बीत जाने पर वह आया ॥४७॥ प्रातःकाल आकर वह अत्यन्त दुःखी होकर उनके सामने रोने लगा । मैं भाग्यहीन हूँ, मेरे गुणी पुत्र को राक्षस ने अपने चमकते हुए दाँतों से खा लिया। उस रक्षक के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वे संयमी उससे पूछे । हे वत्स ! वह राक्षस कहाँ

ग्रामपाल उवाच

वर्तते नगरे घोरः पुरुषादो निशाचरः ॥५०॥
स खादति नरानेत्य नित्यं नगरगोचरान् । स सर्वैर्नागरैरत्र प्रार्थितः पुरुषैः पुरा ॥
रक्ष राक्षसं नः सर्वान्ग्रासं ते कल्पयामहे ॥५१॥
पथिका निशि निद्रन्ति ये च तान्भुङ्क्ष्व राक्षस ! ।
एतस्मिन्सदने पान्थान्ग्रामपालप्रवेशितान् ॥५२॥
आहारं कल्पयाञ्चक्रुरात्मीयप्राणगुप्तये । भवान्सुप्तो गृहेऽमुष्मिन्न धन्यैःसंयुतः परैः ॥५३॥
ते ग्रस्ताः किल चानेन त्वं मुक्तोऽसिद्धिजोत्तम ! ।
प्रभावंभवतोवेत्तिभवानेवद्विजोत्तम ॥५४॥
मदीयतनयस्याऽद्य मित्रमेकमुपागतम् । अजानता मया सोऽपि तनयस्य प्रियः सखा ॥५५॥
अन्यैः पान्थजनैः सार्द्धं तस्मिन्गेहे प्रवेशितः ।
श्रुत्वा तत्र प्रविष्टं तं निशीथे तनयो मम ॥५६॥
तमानेतुं गतः सोऽपि भक्षितस्तेन रक्षसा। दुःखितेन मया प्रोक्तःसपिशिताशनः ॥५७॥
ममाऽपि पुत्रो दुष्टात्मन्भवता निशि भक्षितः ।
भवज्जठरनिर्मग्नः सुतोऽसौ येन जीवति ॥५८॥
अस्ति चैवमुपायस्ते ब्रूहि मे त्वं निशाचर ! ॥५९॥

राक्षस उवाच

अन्तःप्रविष्टं त्वत्पुत्रमज्ञात्वाऽहमभक्षयम् । अजानन्भक्षितःपान्थैः सहितोऽसौसुतस्तव॥६०॥
यथाजीवति मे कुक्षौ यथा भवति रक्षितः। तथा विहितमप्यस्ति दैवेन परमेष्ठिना ॥६१॥

रहता है ? और तुम्हारे पुत्र को उसने क्यों खाया ? ॥४८-४९॥ **ग्रामपाल ने कहा—** इस नगर में पुरुषों को खाने वाला निशाचर है ॥५०॥ वह प्रतिदिन नगर में रहने वाले लोगों को खा जाता है । पहले यहाँ के लोगों ने उससे प्रार्थना की हे राक्षस ! तुम हमलोगों की रक्षा करो । तुम्हारे भोजन की हमलोग व्यवस्था करते हैं ॥५१॥ रात्रि में जो यात्री सो जायँ उन सबों को तुम खा लिया करो । ग्रामपाल इस घर में उन सबों को टिका दिया करेगा ॥५२॥ वे सब अपने प्राण की रक्षा के लिए उसके भोजन की व्यवस्था कर दिए । आप इस गृह में दूसरे धन्य पुरुषों के साथ सोये ॥५३॥ उन सबों को इसने खा लिया है और केवल आप ही बचे हैं । हे द्विजोत्तम ! आप ही अपने प्रभाव को जानते हैं ॥५४॥ आज मेरे पुत्र का एक मित्र आया । वह मेरे पुत्र का प्रिय मित्र था ॥५५॥ बिना जाने ही मैंने दूसरे यात्रियों के साथ उसको भी इस गृह में टिका दिया । उसको उस गृह प्रविष्ट सुनकर रात्रि में मेरा पुत्र उसको लेने के लिए गया । उसको भी उस राक्षस ने खा लिया । दुःखी होकर मैंने प्रातःकाल उस राक्षस से कहा ॥५६-५७॥ हे दुष्ट! तुमने मेरे पुत्र को भी रात्रि में खा लिया । तुम्हारे पेट में मेरा पुत्र जीवित है ॥५८॥ हे राक्षस ! यदि कोई उपाय हो तो तुम मुझे बतलाओ ॥५९॥ **राक्षस ने कहा—** इस गृह में आये हुए तुम्हारे पुत्र को बिना जाने ही मैंने खा लिया है । बिना जाने ही पथिकों के साथ तुम्हारे पुत्र को मैंने खाया है ॥६०॥ वह जिस

गीतैकादशमाध्यायं यः पठत्यनिशं द्विजः । तत्प्रभावेण मे मुक्तिर्मृतानां पुनरुद्भवः ॥६२॥

ग्रामपाल उवाच

कथमेकादशाध्यायसामर्थ्यमिदमद्भुतम् । इति पृष्ठो मया विप्र स बभाषे निशाचरः ॥६३॥

राक्षस उवाच

पुरागृध्रेणकेनाऽपिनभोमार्गेणगच्छता ।
अस्थिखण्डंस्वतुण्डाग्रात्पातितंक्वाऽपिवारिणि ॥६४॥

तं जलाशयमागत्य कोऽपि ज्ञानीश्वरस्तदा । महातीर्थमिति ज्ञात्वा विदधे पितृतर्पणम्॥६५॥
तमूचिरे जनाः सर्वे तीर्थमेतत्कथं वद ॥६६॥

मुनिरुवाच

जपत्येकादशाध्यायंत्रिसन्ध्यंनियतेन्द्रियः । कृतमौनस्तुविप्रोऽसौचौरैर्व्यापादितःपर्थिव ॥
तस्याऽस्थिशकलं गृध्रवदनात्पतित जले ॥६७॥
तेन तीर्थमिदं दिव्यं जातं पातकनाशनम् ॥६८॥

राक्षस उवाच

ततस्ते मानवाः सर्वे सस्नुस्तत्र जलाशये । निष्कलषतया चैवं प्रापुस्ते परमं पदम् ॥६९॥
एकादशस्य सामर्थ्यादध्यायस्य भविष्यति । ममाऽपि मुक्तिःपान्थानांपुनरुत्थानमेव च ॥७०॥
यो मया कश्चिदुद्गीर्णो ब्राह्मणोऽत्रैवतिष्ठति। स च एकादशाध्यायंजपतिस्मनिरन्तरम् ॥७१॥
स तेनाध्यायमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम्। विधाय वारि विप्रेन्द्रः क्षिपेद्यदिममोपरि॥७२॥
ततो मे शापनिर्मुक्तिर्भविष्यति न संशयः ॥७३॥

ग्रामपाल उवाच

इति तेनाऽस्मि सन्दिष्टः समयायातस्त्वदन्तिकम् ॥७४॥

कारण से मेरे पेट में जीवित है और जिस कारण से वह सुरक्षित है वैसा ब्रह्माजी ने उपाय किया है॥६१॥ वह गीता के दशवें अध्याय का सदा पाठ करता है । उसी के प्रभाव से मुक्ति होगी और मरे हुए फिर जी जायेंगे ॥६२॥ **ग्रामपाल ने कहा—** एकादश अध्याय का यह अद्भुत प्रभाव कैसे है ? हे विप्र ! इस तरह से पूछने पर उस राक्षस ने कहा ॥६३॥ प्राचीन काल में एक गृध्र आकाश मार्ग से जा रहा था । उसने अपनी चोंच से हड्डी का टुकड़ा पानी में गिरा दिया ॥६४॥ उस जलाशय में आकर कोई ज्ञानी पुरुष उसको महातीर्थ जानकर वहाँ पर पितृतर्पण किया ॥६५॥ उससे सभी लोगों ने पूछा कि यह तीर्थ कैसे हो गया ?॥६६॥ **मुनि ने कहा—** यह जितेन्द्रिय ब्राह्मण तीनों सन्ध्याओं में गीता के एकादश अध्याय का पाठ करता था । रास्ते में चोरों ने उसको मार दिया ॥६७॥ उस ब्राह्मण की अस्थि का टुकड़ा गृध के चोंच से इस जल में गिर पड़ा उसी के कारण यह पाप विनाशक दिव्य तीर्थ हो गया ॥६८॥ उसके पश्चात् वे सभी मनुष्य उस सरोवर में स्नान किए । निष्पाप होने के कारण वे सब परमपद को प्राप्त कर लिए एकादश अध्याय के प्रभाव से यह सब होगा और मेरी मुक्ति हो जायेगी ये सभी जीवित हो जायेंगे ॥६९-७०॥ वह इस अध्याय के मन्त्र को सात बार पढ़कर मुझ पर छिड़क दे ॥७१॥ उसी समय मेरी शाप से मुक्ति हो जायेगी ॥७२॥ **ग्रामपाल ने कहा—** इस तरह से उसने मुझसे कहा है और मैं आपके सन्निकट आया

विप्र उवाच

राक्षसः केन पापेन जातोऽसौ वद रक्षक ! ।
यत्क्षपायां गृहेतस्मिन्नरान्खादतिनिद्रितान् ॥७५॥

ग्रामपाल उवाच

अस्मिन्ग्रामे पुरा कश्चिदासीद्विप्रः कृषीबलः ।
एकदा शालिकेदाररक्षणे व्याकुलोद्विजः ॥७६॥

नातिदूरे महागृध्रः पान्थमेकमभक्षयत् । तं विमोचयितुं दूराद्दयाञ्चक्रेऽपि तापसः ॥७७॥
भुत्तवा पान्थं खगस्तावन्निरगादम्बराध्वना। ततः स तापसःकोपात्तम्बभाषेकृषीबलम् ॥७८॥

तापस उवाच

धिक्त्वां हालिकदुर्बुद्धे कठोरमतिनिर्घृण !। कुक्षिम्भरं परत्राणविमुखं हतजीवितम्॥७९॥
चोरैश्चदंष्ट्रिवभिः सर्प्यैरिवह्निविषाम्बुभिः। गृध्रराक्षसभूतैश्च बेतालदिभिराहनात् ॥८०॥
जनानुपेक्षते शक्तः स तद्वधफलं लभेत्। न मोवयति यो विप्रं प्रभुश्चोरादिभिर्धृतम्॥८१॥
स याति नरकं घोरं स पुनर्जायते वृकः। निहन्यमानं विपिने गृध्रव्याघ्रेणपीडितम् ॥८२॥
मुञ्चमुञ्चेति यो वक्ति स यातिपरमांगतिम् । गवामर्थेहताव्याघ्रैर्व्याधैर्दुष्टैश्चराजभिः ॥८३॥

तेऽपि यान्ति पदं विष्णोर्दुष्प्राप्यं योगिनामपि ।
अश्वमेधसहस्त्राणि वाजपेयशतानि च ॥८४॥

शरणागतसन्त्राणकलां नार्हन्ति षोडशीम् । दीनस्योपेक्षणंकृत्वा भीतस्यचशरीरिणः ॥८५॥
पुण्यवानपि कालेन कुम्भीपाके स पच्यते। पश्यन्नपि भवान्पान्थं दुष्टगृध्रेण भक्षितम्॥८६॥

हूँ ॥७३-७४॥ **ब्राह्मण ने कहा**— रक्षक बतलाओं कि किस पाप के कारण वह राक्षस हुआ है । जिसके कारण वह रात्रि में लोगों के घर में आकर सोये लोगों को खा लेता है ॥७५॥ **ग्रामपाल ने कहा**— पहले इस ग्राम में एक किसान ब्राह्मण रहता था । एक बार वह धान के खेत में रक्षा करते हुए जगा हुआ था॥७६॥ उसके सन्निकट ही एक गृध्र एक पथिक को खा लिया । वह तपस्वी भी उसको बचाने के लिए उस पर दया किया ॥७७॥ पथिक को खाकर वह पक्षी आकाश में उड़ गया । उसके पश्चात् उस तपस्वी ने उस कृषक से कहा ॥७८॥ **तापस ने कहा**— हे किसान ! तुमको धिक्कार है, तुम निष्ठुर और निर्घृण हो । तुम अपना पेट भरने में लगे रहते हो दूसरों की रक्षा नहीं करते हो तुम दुर्भाग्य पूर्ण हो ॥७९॥ चोरों, दाँत वाले जीवों, शत्रुओं, अग्नि, विषैले जल, राक्षस गृध्रों तथा बेताल आदि के द्वारा मारे जाने से॥८०॥ समर्थ होकर भी लोगों की उपेक्षा कर देते हो तो उसके वध का पाप उसको भी लगता है । जो स्वामी चोरों से ब्राह्मण की रक्षा नहीं करता है ॥८१॥ वह घोर नरकों में जाता है । उसके बाद वह वृक होता है । वन में गृध्र वाघ से मारा जाकर पीड़ित होता है ॥८२॥ जो यह कहता है कि छोड़ दो, छोड़ दो, वह परम गति को प्राप्त कर लेता है । गौओं को बचाने के लिए जो व्याघ्र, व्याध तथा दुष्ट राजाओं से मारा जाता है, वह भी भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । जो योगियों के भी लिए दुषप्राप्य है । हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों वाजपेय का भी फल शरणागत रक्षा के फल के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं होता है । दीन तथा भयभीत शरीर धारी की उपेक्षा करके पुण्यवान् व्यक्ति भी कुम्भीपाक नरक में

निवारणसमर्थोऽपिनचक्रे यन्निवारणम् । निष्कृपोऽसियतस्तस्माद्भविष्यसिनिशाचरः ॥८७॥

ग्रामपाल उवाच

इमं शापं मुनेः श्रुत्वा कम्पमानकलेवरः । प्रणम्य हालिकोविप्रं बभाषे करुणम्वचः ॥८८॥

हालिक उवाच

अत्राऽहं क्षेत्ररक्षायां चिरं क्षिप्तेन चक्षुषा । न वेद्मि निकटं गृध्रहन्यमानमिमं नरम्॥८९॥
तेन मेऽनुग्रहं कतु कृपणस्य त्वमर्हसि ॥९०॥

विप्र उवाच

यो वेत्त्येकादशाध्यायं जपत्यनुदिनं च यः । तेनाभिमन्त्रितं वारि यदाशिरसि तावके ॥९१॥
पतिष्यति तदा शापात्तव मुक्तिर्भविष्यति ॥९२॥

ग्रामपाल उवाच

इत्युत्तवा तापसो यातो हालिको राक्षसोऽभवत् ।
इति तद्राक्षसवचो निशम्याऽऽशु प्रधावतः ॥९३॥

उभयं कार्यमेवाऽद्य संसिद्धं कुरु तापस !। तदागच्छ द्विजश्रेष्ठ तेनाध्यायेन मन्त्रय ॥
तीर्थोदकं स्वहस्तेन तस्य मूर्द्धनि निक्षिप ॥९४॥

महादेव उवाच

इतितत्प्रार्थितं तस्य श्रुत्वा च करुणाप्लुतः। तथेति सह पालेन मुनीरक्षोन्तिकं ययौ ॥९५॥
एकादशेन तेनाम्बु विश्वरूपेणमन्त्रितम् । निक्षिप्तं तस्य शिरसि तेन विप्रेण योगिना ॥९६॥
गीताध्यायप्रभावेण शापमोक्षमवाप सः । विहाय राक्षसं देहं चतुर्बाहुस्ततोभवत्॥९७॥
निगीर्णा ये जनास्तेन पान्थाआसन्सहस्रशः। चतुर्भुजा बभूवुस्ते शङ्खचक्रगदाधराः ॥९८॥

जाता है । तुमने पथिक को गृध्र से खिलवाकर ॥८३-८६॥ उसको बचाने में समर्थ होकर भी उसको नहीं बचाया । चूकि तुमने उसे नहीं बचाया अतएव तुम राक्षस हो जाओगे ॥८७॥ **ग्रामपाल ने कहा—** मुनि के इस शाप को सुनकर उसका शरीर काँपने लगा । उस हलवाहे ने मुनि को प्रणाम करके उनसे करूणा भरे स्वर में कहा ॥८८॥ **हालिक ने कहा—** यहाँ पर खेत की रक्षा में देर तक जगता रहा सन्निकट में गृध्र के द्वारा खाये जाते हुए उस मनुष्य को नहीं देखा ॥८९॥ अतएव मुझ दीन पर आप कृपा करें।॥९०॥ **विप्र ने कहा—** जो एकादश अध्याय को जानता है और उसका प्रतिदिन पाठ करता है । उसके द्वारा अभिमन्त्रित जल जब तुम्हारे शिर पर गिरेगा उसी समय तुम्हारी शाप से मुक्ति होगी ॥९१-९२॥ **ग्रामपाल ने कहा—** यह कहकर वह तपस्वी चला गया और हलवाहा राक्षस हो गया । उस राक्षस की वाणी को सुनकर तथा शीघ्रता से दौड़ते हुए ॥९३॥ हे तापस ! आज ही इन दोनों कार्यो को आप पूरा करें । अतएव हे द्विजश्रेष्ठ ! मुझको उस मन्त्र से अभिमन्त्रित करें और अपने हाथ से तीर्थोदक को राक्षस के शिर पर डाल दें ॥९४॥ इस तरह से उसकी प्रार्थना सुनकर करुणा से भरे हुए मुनि ने कहा ठीक है और उस राक्षक के साथ उस राक्षस के सन्निकट वे गये ॥९५॥ उन्होंने विश्वरूप नामक ग्यारहवें अध्याय के मन्त्रों से जल को अभिमन्त्रित किया और उन योगी ने उस जल को उस राक्षस शिर पर डाल दिया ॥९६॥ गीता के उस अध्याय के प्रभाव से वह राक्षस मुक्त हो गया । वह राक्षस शरीर को त्यागकर चतुर्भुज रूप

ते विमानान्यारुरुहुस्तावदूचे स राक्षसम्।

ग्रामपाल उवाच

मदीयस्तनयः कस्तं दर्शयस्व निशाचर ! ॥९९॥

महादेव उवाच

इत्युक्ते ग्रामपालेन दिव्यधीराह राक्षसः ॥१००॥

राक्षस उवाच

एनं चतुर्भुजं विद्धि तमालश्यामलद्युतिम् ॥१०१॥
माणिक्यमुकुटं दिव्यमणिकुण्डलमण्डितम्। हारहारिमहास्कन्धं स्वर्णकेयूरभूषितम् ॥१०२॥
राजीवलोचनं स्निग्धं हस्तेकृतसरोरुहम्। दिव्यं विमानमारूढं देवत्वंप्राप्तमात्मजम् ॥१०३॥

महादेव उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुतं दृष्ट्वा च तादृशम्।
स्वगेहं नेतुमारेभे तं जहास सुतस्ततः ॥१०४॥

सुत उवाच

कति वाराणि जातोऽसि त्वं पुत्रो मम रक्षक !।
पूर्वं पुत्रस्त्वदीयोऽस्मि ह्यधुना विबुधोऽस्म्यहम् ॥१०५॥
यास्यामि वैष्णवं धाम ब्राह्मणस्यप्रसादतः। निशाचरोऽपि प्राप्तोऽयंपश्यदेहचतुर्भुजम्॥१०६॥
एकादशस्य माहात्म्याद्यातिस्वर्गसमंजनैः। विप्रादस्मात्तमध्यायमधीष्वत्वंजपानिशम् ॥१०७॥
भविष्यति न सन्देहस्तवाऽपि गतिरीदृशी। तात ! तस्मात्सतां सङ्गोदुर्लभःसर्वथाजनैः ॥१०८॥

को प्राप्त कर लिया ॥९७॥ जिन हजारों पथिकों को वह निगल गया था वे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले चतुर्भुज हो गये ॥९८॥ वे सब विमान पर चढ़ गये तब उसके बाद राक्षस से ग्राम पाल ने कहा। ग्रामपाल बोला हे निशाचर ! बतलाओं मेरा पुत्र कौन है ?॥९९॥ ग्रामपाल के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर दिव्य ज्ञान सम्पन्न राक्षस ने कहा ॥१००॥ तमाल के समान श्याम वर्ण की कान्ति वाले, मणिक्य के मुकुट से सुशोभित दिव्य मणियों के कुण्डल से मण्डित, सुन्दर हार को धारण किए हुए विस्तृत कन्धे वाले, स्वर्ण के केयूर से भूषित, कमल के समान नेत्रों वाले, अपने हाथ में सुन्दर कमल को धारण किए हुए इसको ही तुम अपना पुत्र समझो, यह विमान पर बैठा हुआ देवत्व को प्राप्त कर लिया है ॥१०१-१०३॥ **महादेवजी ने कहा—** इस तरह से उसकी वाणी को सुनकर तथा उस प्रकार के अपने पुत्रों को देखकर ग्रामपाल उसको अपने घर लाने लगा तो उसके पुत्र ने जोर से हँसकर कहा॥१०४॥ **पुत्र ने कहा—** हे रक्षक ! तुम अनेक बार मेरे पुत्र हो चुके हो पूर्वकाल में मैं तुम्हारा पुत्र था अब तो मैं देवता हो गया हूँ ॥१०५॥ मैं ब्राह्मण की कृपा से भगवान् विष्णु के लोक में जाऊँगा। देखों यह राक्षस भी चतुर्भुज रूप प्राप्त कर लिया है ॥१०६॥ एकादश अध्याय की महिमा से मनुष्य अपने लोगों के साथ स्वर्ग में चला जाता है। इस ब्राह्मण के द्वारा तुम भी एकादश अध्याय का अभ्यास करो ॥१०७॥ निश्चित रूप से तुम्हारी भी इसी तरह सद्गति हो जायेगी। अतएव हे देवि ! मनुष्यों के लिए सज्जन पुरुषों की सङ्गति दुर्लभ होती है ॥१०८॥ वह भी आपको आज प्राप्त है, अतएव अपना आत्म कल्याण करें। धन,

सोऽप्यद्य ते समुत्पन्नो ह्यात्मनः साधयेप्सितम् ।
किं धनैर्भोगदानैर्वा किं यज्ञैस्तपसा नु किम् ॥१०९॥
किं पूर्तैर्वापरंश्रेयो विश्वरूपस्य पाठतः। तद्विष्णोः परमं रूपं तत्त्वंध्यास्व विश्रुतम् ॥११०॥
यत्पूर्णानन्दसन्दोहकृष्णब्रह्मास्यनिर्गतम् । कुरुक्षेत्रेऽर्जुने मित्रे तत्कैवल्यरसायनम् ॥१११॥
नृणां च भवभीतानामाधिव्याधिभयापहम्। अनेकजन्मदुःखध्नंनान्यत्पश्यामितत्स्मर ॥११२।

शिव उवाच

इत्युत्तवा सह तैःसर्वैर्ययौ विष्णोः परम्पदम् ।
तमध्यायंततो विप्राद्ग्रामपालःपपाठसः ॥११३॥
तावुभौ तस्यमाहात्म्याज्ज्मतुर्वैष्णवंपदम्। इत्येकादशमाहात्म्यकथातुभ्यंनिरूपिता ॥११४॥
यस्याः श्रवणमात्रेण महापातकसंक्षयः ॥११५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां उत्तरे खण्डे गीतैकादशाध्यायमाहात्म्ये सतीश्वरसम्वादे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५॥

भोग तथा दोनों एवं यज्ञों के करने से कोई भी लाभ नहीं है ॥१०९॥ इसी तरह पूर्त कर्मों को करने से भी कोई लाभ नहीं है । मोक्ष की प्राप्ति विश्वरूप अध्याय के पाठ से ही होती है । तुम भगवान् विष्णु के प्रख्यात रूप का ध्यान करे ॥११०॥ जो पूर्णनन्द सन्दोह स्वरूप हैं वह परंब्रह्म भगवान् कृष्ण के मुख से निस्सृत है, कुरुक्षेत्र में अपने मित्र अर्जुन के लिए भगवान् ने कैवल्य के रसायन को प्रदान किया है॥१११॥ संसार के भय से भयभीत लोगों की आधिव्याधि को वह विनष्ट करने वाला है मेरी समझ में अनेक जन्मों के दुःख को विनष्ट करने वाला दूसरा कुछ नहीं हैं ॥११२॥ **शिवजी ने कहा—** यह कहकर वह उन सबों के साथ परमपद में चला गया । उसके पश्चात् वह ग्रामपालक उस अध्याय को उस ब्राह्मण से पढ़ा॥११३॥ उस अध्याय की महिमा से वे दोनों भगवान् विष्णु के लोक में चले गये । इस तरह एकादश अध्याय की महिमा और कथा को मैंने तुम्हें सुनाया ॥११४॥ उस कथा को सुनने मात्र से महापातक का नाश हो जाता है ॥११५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत गीता के एकादश अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ पचासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८५॥

एक सौ छीयासिवाँ अध्याय

महादेव उवाच

अस्ति कोल्हापुरं नाम नगरं दक्षिणापथे। सुखानांसदनंसाध्विसाधूनांसिद्धिसम्भवम् ॥१॥
परशक्तेः परं पीठं सर्वदेवनिषेवितम्। पुराणेषु प्रसिद्धं यद्धुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥२॥
कोटिशस्तत्र तीर्थानि शिवलिङ्गानि कोटिशः ।
आस्तेरुद्रगयायत्रविशालंलोकविश्रुतम् ॥३॥
तुङ्गाचलमहावप्रगोपुरोल्लासितोरणम् । प्रासादशिखरे यत्र तुङ्गं च कनकध्वजम् ॥४॥
सोमकान्तिमहासौधवलभीपङ्क्तिशोभितम् । जालरन्ध्रोद्गिरद्धूपधूमाऽऽमोदितदिक्तटम् ॥५॥
चलत्पताकविस्तीर्णच्छायं देवालयान्वितम्। चतुरैः सुन्दरैः स्निग्धैः श्रीमद्भिः शुचिमानसैः ॥६॥
अधिष्ठितं सदाचारैः पुरुषैर्भूरिभूषणैः। कुरङ्गनयनाश्चन्द्रवदनाः कुटिलाल्काः ॥७॥
उत्फुल्लचम्पकच्छायाः पीनतुङ्गपयोधराः । कृशमध्यानिम्ननाभिवलित्रयविराजिताः ॥८॥
विशालजघनाश्चारुजङ्घायु मा वराङ्गयः । वाचालमेखलादामनिक्वणन्मणिनू पुराः ॥९॥
रणत्कङ्कणहस्ताब्जस्फुरत्करजरश्मयः । वसन्ति प्रमदा यत्र मादयन्त्यो मुनीनपि ॥१०॥
समस्तवस्तुसंयुक्तं सर्वभोगसमन्वितम् । मङ्गलैः सकलैर्युक्तं महालक्ष्मीसमन्वितम् ॥११॥
तत्राऽगच्छत्पुमान्कश्चिद्युवा गौरः सुलोचनः। कम्बुकण्ठः पृथुस्कन्धो महावक्षा महाभुजः ॥१२॥

राजकुमार के कथानक पूर्वक गीता के बारहवें अध्याय का माहात्म्य

महादेवजी ने कहा— दक्षिणापथ में कोल्हापुर नामक नगर है हे सध्वि वह सुखों का आश्रय तथा साधु पुरुषों को सिद्धि प्रदान करने वाला है ॥१॥ वह पराशक्ति का श्रेष्ठ पीठ है, वहाँ पर सभी देवताओं का निवास है । पुराणों में वह भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला बतलाया गया है ॥२॥ वहाँ पर करोड़ों तीर्थ तथा करोड़ों शिवलिङ्ग हैं । वहाँ पर लोक विख्यात रुद्र गया तीर्थ है । तुङ्गाचल नामक महा चाहार दिवारी है । वहाँ के तोरण गोपुर से सुशोभित है । वहाँ के महलों के ऊपर सुवर्ण ध्वज है ॥३-४॥ वहाँ के बड़े-वड़े भवन चन्द्रमा की कान्ति से सुशोभित है । खिड़कियों के छिद्र से निकलते हुए धूप की धूम से वहाँ की सभी दिशाएँ सुगन्धित रहती हैं ॥५॥ चञ्चल पताकाओं की जहाँ पर विस्तृत छाया पड़ती रहती हैं ऐसे मन्दिरों से वह सुशोभित है । चतुर, सुन्दर तथा कोमल ऐश्वर्य सम्पन्न पवित्र मन वाले लोग वहाँ सदाचार परायण आभूषणों से अलंकृत लोग रहते हैं । मृगनयनी तथा चन्द्रमा के समान आह्लादक मुखवाली, घुंघराले केशों वाली ॥६-७॥ विकसित चम्पा के समान सुन्दर, पृथु एवं उन्नत स्तनों वाली, पतली कमर वाली, गहरी नाभि एवं त्रिबली से सुशोभित ॥८॥ विशाल तथा मनोहर जङ्घाओं वाली जिनकी करधनी बजती रहती हैं, तथा जिनके मणि नूपुर बजते रहते हैं ॥९॥ जिनके कङ्गनों की ध्वनि होती रहती है तथा जिनकी अङ्गुलियाँ चमकती हैं ऐसी रमणियाँ वहाँ निवास करती हैं । उनको देखकर मुनिजन भी आकृष्ट हो जाते हैं ॥१०॥ सभी वस्तुओं से युक्त सभी प्रकार के भोगों से समन्वित सभी मङ्गलों तथा महालक्ष्मी से युक्त है वह नगर । वहाँ पर कोई गोरे बदन वाला युवा व्यक्ति आया । उसके सुन्दर नेत्र थे । उसका कण्ठ शङ्ख के समान तथा कन्धे पुष्ट थे । छाती चौड़ी थी और भुजाएँ लम्बी थीं ॥११-१२॥

समस्तलक्षणोपेतो गोचरासक्तमानसः। प्रविश्य नगरं पश्य शोभां सौधेषु सर्वतः ॥१३॥
उत्कण्ठितमना द्रष्टुं महालक्ष्मीं सुरेश्वरीम्। मणिकुण्डे कृतस्नानः सम्पन्नपितृतर्पणः ॥
महालक्ष्मीं महामायां नत्वा तुष्टावा भक्तितः ॥१४॥

राजपुत्र उवाच

जयत्यपारकरुणा शरण्या जगदम्बिका। कुर्वाणा जगतो जनम पालनं क्षपणं दृशा॥१५॥
यया शत्तया कृतादिष्टः परमेष्ठीसृजत्यसौ। अवष्टभ्य च तांशक्तिं पालयत्यच्युतोजगत् ॥१६॥
यया शत्तया कृतावेशः संहरत्यखिलं हरः। तां भजे परमांशक्तिं सर्गस्थितिलयोर्जिताम्॥१७॥
योगिध्येयाङ्घ्रिकमलेकमलेकमलालये ! । स्वभावानखिलान्नस्त्वं गृह्णासीन्द्रियगोचरान्॥१८॥
त्वमेव कल्पनाजालं तत्कल्पं कुरुषे मनः। इच्छाज्ञानक्रियारूपा परसंवित्स्वरूपिणी॥१९॥
निष्फला निर्मला नित्या निराकारानिरञ्जना। निरन्तरा निरातमङ्कानिरालम्बानिरालया ॥२०॥
तवैवं महिमानं हि के वर्णयितुमीशते। वन्दे निर्भिन्नषट्चक्रद्वादशान्तर्विहारिणीम् ॥२१॥
अनाहतध्वनिमयीं बिन्दुनादकलात्मिकाम्। मातस्त्वं पूर्णशीतांशुगलत्पीयूषवाहिनी ॥२२॥
पुष्याणि वत्सले बालान्सनकादीन्दिगम्बरान् ।
अनुस्यूता शिवा सम्बिज्जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥२३॥
तुरीयायां वर्त्तमाना दयासूनृतसन्धिषु। ददासि प्राणिनां सर्वाः सततं ब्रह्मसम्पदः॥२४॥
संहृत्य तत्त्वसंघातं तुरीयातीतया त्वया। योगिनां बिम्बतादात्म्यंदीयते निर्विकल्पया॥२५॥

उसका मन विषयासक्त था और उसमें पुरुषों के सभी लक्षण विद्यमान थे। सुरेश्वरी उसे महालक्ष्मी का दर्शन करने की उत्कण्ठा थी उसने मणिकुण्ड में स्नान करके पितरों का तर्पण किया। उसने महामाया महालक्ष्मी को देखकर उनकी स्तुति की ॥१३-१४॥ **राजपुत्र ने कहा—** अपार करुणा सम्पन्न सबों की रक्षिका जगदम्बा की जय हो। आप ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार करती हैं ॥१५॥ जिस शक्ति के द्वारा ब्रह्माजी जगत् की सृष्टि करते हैं और उसी शक्ति को प्राप्त करके भगवान् अच्युत जगत् का पालन करते हैं ॥१६॥ जिस शक्ति से अविष्ट होकर शङ्करजी सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं। सृष्टि, स्थिति तथा लय से उर्जित उन परमेश्वरी की मैं वन्दना करता हूँ। हे कमले ! कमलालये आपके चरण कमलों का ध्यान योगिजन करते हैं। स्वभावतः इन सभी भाव पदार्थों इन्द्रियों के पदार्थों को आप ग्रहण करती हैं। आप ही अपने कल्पना समूह से उसके सदृश मन बना लेती हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया स्वरूप आप परं ज्ञान स्वरूपिणी हैं ।१७-१९॥ आप निष्फल, निर्मल, नित्य, निराकार, निर्दोष, निरन्तर, निर्भय, निराधार और आश्रय रहित हैं ॥२०॥ आपकी इस तरह की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है षटचक्र का भेदन करके दश चक्रों के भीतर निवास करने वाली आपकी मैं वन्दना करता हूँ। आप अनाहतनाद स्वरूपा हैं। आप विन्दू नाद की कला स्वरूपिणि हैं। हे माँ ! आप पूर्ण चन्द्रमा से निकलने वाले अमृत को प्रवाहित करने वाली हैं। हे वत्सले ! आप अपने पुत्रों दिगम्बर सनकादिकों का पालन करती हैं। आप जग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन सभी अवस्थाओं में बनी रहने वाली कल्याण करने वाली संवित् स्वरूपा हैं। तुरीयावस्था में बनी रहने वाली आप दया, मधुर तथा सत्य की सन्धियों में वर्तमान आप निरन्तर सभी प्राणियों को ब्रह्म सम्पत्ति प्रदान करती हैं ॥२१-२४॥ सम्पूर्ण तत्त्व को समूह उपसंहृत करके आप तुरीया

परां नमानि पश्यन्ती मध्यमां वैखरीमपि। रूपाणि देवि ! गृह्णासि जगत्सन्त्राणहेतवे ॥२६॥

त्वं ब्राह्मी वैष्णवी च त्वं माहेशी च त्वमम्बिके ! ।
वाराहि ! त्वं महालक्ष्मीर्नारसिंही त्वमैन्द्रिका ॥२७॥
त्वं कौमारी चण्डिका त्वं लक्ष्मीस्त्वं विश्वपावनी ।
सावित्री त्वं जगन्माता शशिनी त्वं च रोहिणी ॥२८॥

त्वं स्वाहात्वंस्वधात्वंहित्वंसुधापरमेश्वरी। चण्डमुण्डभुजादण्डखण्डदोर्दण्डमण्डिते ॥२९॥
रक्तबीजगलद्रक्तपानघूर्णितलोचने ! । उन्मत्तमहिषग्रीवोन्मूलनप्रौढदोर्युगे ! ॥३०॥
शुम्भासुरमहादैत्यदारणायात्तविक्रमे ! । अनन्तचरिते तुभ्यं नमस्त्रैलोक्यमातृके ! ॥३१॥
भक्तकल्पलते मह्यं प्रसीद परमेश्वरि ! ॥३२॥

शिव उवाच

इति तेन स्तुतादेवी महालक्ष्मीस्ततःस्वयम्। निजरूपं समास्थाय पुरुषं प्रत्युवाच तम् ॥३३॥

श्रीलक्ष्मीरुवाच

राजपुत्र ! प्रसन्नाऽहं वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥३४॥

राजपुत्र उवाच

पिता मे धरणीपालो वाजिमेधं महाक्रतुम्। कुर्वाणो दैवयोगेन रोगाक्रान्तोदिवंययौ ॥
तद्वपुस्तप्ततैलेन शोधयित्वा मया ततः ॥३५॥
स्थापितस्तत्र यागेऽसौ यथापूर्वमवर्तत ॥३६॥
अथ क्रान्तमहीचक्रो यूपे यागतुरङ्गमः। निशीथे बन्धनंछित्त्वा नीतःकेनऽपिकुत्रचित्॥३७॥

अवस्था से उत्कृट हैं । निर्विकल्प स्वरूपा आप योगियों को बिम्ब प्रदान करती है ॥२५॥ आप जगत् की रक्षा करने के लिए परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी वाणी का रूप धारण करती हैं । आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२६॥ आप ही ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेशी तथा अम्बिका हैं । आप वाराही महालक्ष्मी, नारसिंही तथा ऐंद्री स्वरूपिणी हैं ॥२७॥ संसार को पवित्र बनाने वाली आप कौमारी, चण्डिका तथा लक्ष्मी हैं । आप जगन्माता, सावित्री, शशिनी तथा रोहिणी हैं ॥२८॥ आप ही स्वाहा, स्वधा, सुधा, परमेश्वरी हैं। आप चण्ड-मुण्ड की भुजाओं को काटने वाली भुजाओं से मण्डित हैं ॥२९॥ हे रक्तबीज के शरीर से निकलने वाले रुधिर का पान करने के कारण मद से धूर्णित नेत्रों वाली हैं, उन्मत्त महिषासुर की ग्रीवा को काटने वाली आप दो भुजाओं वाली हैं ॥३०॥ शुम्भासुर नाम वाले महादैत्य को मारने के पराक्रम से आप युक्त हैं । हे त्रैलोक्यमात: हे अनन्त चरितों वाली आपको नमस्कार हैं ॥३१॥ हे भक्तों के लिए कल्पना स्वरूपिणी परमेश्वरी आप मुझ पर प्रसन्न होइए ॥३२॥ **शिवजी ने कहा—** इस प्रकार से उसके द्वारा स्तुति किए जाने पर महालक्ष्मीजी स्वयं अपना रूप धारण करके उस पुरुष से कहीं ॥३३॥ **श्रीलक्ष्मीजी ने कहा—** राजपुत्र ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम उत्तम वरदान माँगो । **राजकुमार ने कहा—** पृथिवी का पालन करने वाले मेरे पिता अश्वमेध याग करते समय रोग ग्रस्त हो गये और उनकी मृत्यु हो गयी ॥३४-३५॥ उसके बाद उनके शरीर को मैंने तप्त तेल से शोधित किया उस याग में स्थापित कर और वह वैसे ही

अदृष्ट्वा तन्नतं क्वापि निवृत्तेषु जनेष्वहम् । आमन्त्र्य ऋत्विजः सर्वाञ्छरणंत्वामुपागतः ॥३८॥
प्रसन्ना यदि देवि ! त्वं तन्मे यागतुरंगमः । दृष्टो भवतु यागोऽसौ सम्पूर्णोजायते यथा ॥३९॥
आनृण्यं मम तातस्य तेन राज्ञी भविष्यति । तथा कुरु जगद्धात्रि शरणागतवत्सले ॥४०॥

देव्युवाच

मम द्वारे द्विजः सिद्धसमाधिरिरिति विश्रुतः । ममाऽऽज्ञयासतेसर्वंकार्यंनिष्रूपादयिष्यति ॥४१॥

शिव उवाच

इत्युक्तः श्रीमहालक्ष्म्या ततो राजकुमारकः ।
आजगाम मुनिः सिद्धसमाधिर्यत्रतिष्ठति ॥४२॥

प्रणम्य तस्य पादाब्जं कृताञ्जलिरवस्थितः । तमुवाच ततोविप्रः प्रहितोऽसित्वमम्बया ॥
त्वदीप्सितमिदं सर्वं साधयामि विलोकय ॥४३॥

शिव उवाच

इत्युक्तवात्रिदशान्सर्वानाचकर्षसमान्त्रिकः । ऐक्षतक्षितिपालस्यतनयोऽसौतदासुरान् ॥४४॥
कृताञ्जलिपुटान्देवान्वेपमानकलेवरान् । अथ तानमरान्सर्वान्सम्बभाषे द्विजोत्तमः ॥४५॥

सिद्धसमाधिरुवाच

अमुष्य राजपुत्रस्य वाजीयज्ञाय कल्पितः । नीतोऽस्ति देवराजेन क्षपायामपहृत्य सः ॥४६॥
गीर्वाणा अश्वमेवाऽस्य समानयतमाचिरम् । अथ तस्य मुनेर्वाक्याद्देवैर्यज्ञतुरङ्गमः ॥४७॥
समर्पितस्ततस्तेन तेऽनुज्ञाता दिवौकसः । आकृष्टानमरान्दृष्ट्वा गतं लब्ध्वा तुरङ्गमम् ॥४८॥
महीपतिसुतो नत्वा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥४९॥

बना रहा ॥३६॥ उसके पश्चात् पृथिवी पर भ्रमण करके आये हुए याग के अश्व के बन्धन को आधी रात को काटकर कोई उस घोड़े को कहीं ले गया ॥३७॥ उसका पता कहीं न पाकर जब मेरे अनुचर लौट आये तब सभी ऋषित्वजों से आज्ञा लेकर आपकी शरण में मैं आया हूँ ॥३८॥ आप यदि प्रसन्न हैं तो फिर वह मेरे याग का अश्व मिल जाय जिससे कि याग पूरा हो जाय ॥३९॥ उससे मेरे राजा पिता ऋणमुक्त हो जायँ । हे जगत् का पालन करने वाली ! हे शरणागत वत्सल माँ !॥४०॥ **देवी ने कहा—** मेरे द्वार पर सिद्ध समाधि नामक ब्राह्मण मेरी आज्ञा से वे तुम्हारे सभी कार्य को पूरा करेंगे ॥४१॥ **शिवजी ने कहा—** महालक्ष्मीजी के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वह राजकुमार वहाँ आया जहाँ पर सिद्ध समाधि नामक ब्राह्मण विद्यमान थे ॥४२॥ उस ब्राह्मण के चरणों में प्रणाम करके राजकुमार हाथ जोड़कर खड़े रहे। उसके पश्चात् सिद्ध समाधि ब्राह्मण ने कहा तुमको अम्बा ने भेजा है । तुम्हारा अभिप्रेत कार्य मैं करता हूँ देख लो ॥४३॥ **शिवजी ने कहा—** यह कहकर उस मान्त्रिक ने सभी देवताओं को आकर्षित किया । उस समय राजकुमार ने देवताओं को देखा ॥४४॥ कि सभी देवता हाथ जोड़े थे । उनका शरीर काँप रहा था। उसके पश्चात् सभी देवताओं से वे ब्राह्मण श्रेष्ठ बोले । **सिद्ध समाधि ने कहा—** इस राजकुमार के पिता के यज्ञ का जो घोड़ा था उसको रात्रि में इन्द्र ने चुरा लिया है ॥४५-४६॥ देवताओं उस अश्व को आप लोग शीघ्र लाइये । उस मुनि के वाक्य को सुनकर देवता यज्ञ के घोड़े को लाकर समर्पित कर दिए । उसके बाद मुनि ने देवताओं को जाने की आज्ञा प्रदान कर दी । आकर्षित किए गये देवताओं को लौट

राजपुत्र उवाच

आश्चर्यमिदमेतत्ते सामर्थ्यमृषिसत्तम !। कृतमेतत्त्वया विप्र ! त्रिदशाकर्षणं क्षणात्॥५०॥
हस्तादाकृष्य दत्तो मे यज्ञीयोऽयं तुरङ्गमः । न किञ्चिदपरं यावद्दुष्करं यत्सुरैरपि ॥
प्रभविष्यति तत्कर्तुं भवानेव न चाऽपरः ॥५१॥

शृणु विप्र ! महीपालः पितासीन्मे बृहद्रथः ।
प्रारब्धहयमेधोऽसौ दैवेन निधनं गतः ॥५२॥
अद्याऽपि तस्य देहोऽस्ति तप्ततैलेन शोषितः ।
तस्य सञ्जीवनं भूयः कर्त्तुमर्हसि सत्तम ॥५३॥

श्रीशिव उवाच

इत्याकर्ण्य स्मितं कृत्वा स जगादमहामुनिः ।
यामस्तत्रपितायत्र तावकोयागमण्डपः ॥५४॥
अथाऽऽगत्य समं तेन तत्र सिद्ध समाधिना ।
पयोऽभिमन्त्र्य विदधे तस्यप्रेतस्य मूर्द्धनि ॥५५॥

ततः प्राप नृपः संज्ञामुत्तस्ये वै ददर्श च। स तं पप्रच्छ विप्रेन्द्रं कोऽसिधर्मेतिभूपतिः ॥५६॥
ततो राजसुतः सर्वं भूपालाय न्यवेदयत् । स नत्वा ब्राह्मणं राजा तं पुनर्दत्तजीवितम् ॥५७॥

वभावे केन पुण्येन त्वयि शक्तिरलौकिकी ।
यथा मे जीवितं दत्तमाकृष्टश्च दिवौकसः ॥
यागश्चोद्धरितो विप्र येन मे तन्निरूपय ॥५८॥

श्रीशिव उवाच

इत्युक्तस्तेन विप्रोऽसौ जगाद श्लक्ष्णया गिरा ॥५९॥

गये हुए देखकर तथा घोड़े को प्राप्त करके राजकुमार उन मुनि को नमस्कार करके कहे ॥४७-४८॥ **राजपुत्र ने कहा—** आपका इस प्रकार का सामर्थ्य है हे ऋषिश्रेष्ठ ! हे विप्र ! आप ने क्षणभर में देवताओं का आकर्षण किया है आपका यह आश्चर्मय सामर्थ्य है ॥४९-५०॥ आपने मेरे यज्ञीय अश्व को अपने हाथ से आकर्षित किया है । इस तरह कार्य करने का सामर्थ्य देवताओं में भी नहीं है । दूसरा कोई इस तरह का कार्य नहीं कर सकता है ॥५१॥ हे विप्र ! पृथिवी पालक राजा बृहद्रथ मेरे पिता थे । उन्होंने अश्वमेध याग प्रारम्भ किया और दैववशात् उनकी मृत्यु हो गयी ॥५२॥ उनका तप्त तेल से शोधित शरीर आज भी पड़ा है । हे ऋषिश्रेष्ठ ! आप ही उनको पुनर्जीवित कर सकते हैं । **श्रीशिवजी ने कहा—** इस बात को सुनकर महामुनि मुस्कुराये और कहे हमलोग वहाँ चलें जहाँ पर याग मण्डप में तुम्हारे पिता हैं ॥५३-५४॥ उसके बाद राजकुमार के साथ वहाँ आकर सिद्ध समाधि मुनि दूध को अभिमन्त्रित करके उस मरे हुए राजा के शिर पर रख दिए ॥५५॥ उसके बाद राजा होश में आ गये और उठकर देखे । उसके बाद उन्होंने उन ब्राह्मण श्रेष्ठ से पूछा कि आप कौन हैं ?॥५६॥ उसके पश्चात् राजकुमार ने राजा को सारी बात बतलायी । राजा ने अपने पुनः जीवन को प्रदान करने वाले विप्रश्रेष्ठ को प्रणाम किया और कहा किस पुण्य के कारण आप में यह अलौकिक शक्ति आयी हैं जिसके द्वारा आपने मेरे याग का उद्धार किया है।

सिद्धसमाधिरुवाच

गीतानां द्वादशाध्यायं जपाम्यहमतन्द्रितः। तेन शक्तिरियंराजन्यया प्राप्तोऽसिजीवितम्॥६०॥

श्रीशिव उवाच

एतदाकर्ण्य राजाऽसौ द्वादशाध्यायमुत्तमम्। पपाठ तस्माद्विप्रर्षेः सकाशाद्‌ब्राह्मणान्वितः॥६१॥

तस्याऽध्यायस्यमाहात्म्यात्तेसर्वेसद्गतिंययुः। अन्येपाठित्वाजीवाश्चमुक्तिमापुरहोपराम्॥६२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
गीताद्वादशाध्यायमाहात्म्ये षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८६॥

एक सौ सतासीवाँ अध्याय

देव्युवाच

द्वादशाध्यायमाहात्म्यं भवता कथितं मम। ब्रूहि त्रयोदशाध्यायमाहात्म्यमतिसुन्दरम्॥१॥

ईश्वर उवाच

शृणु त्रयोदशाध्यायमहिमाम्भोनिधिं शिवे। यदाकर्णनमात्रेण परां मुदमवाप्स्यसि॥२॥

अस्ति दक्षिणदिग्भागे तुङ्गभद्रा महानदी। तत्तटे नगरंरम्यं नाम्ना हरिहरम्पुरम्॥३॥

यत्राऽऽस्ते भगवान्देवि देवो हरिहरःस्वयम्।
यस्य दर्शनमात्रेण परं कल्याणमाप्यते ॥४॥

आप मुझे उस पुण्य को बतलायें ॥५७-५८॥ **श्रीशिवजी ने कहा—** राजा के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वे ब्राह्मण मधुर वाणी से कहे ॥५९॥ **सिद्ध समाधि ने कहा—** मैं गीता के बारहवें अध्याय का सावधानी पूर्वक पाठ करता हूँ। राजन्! उसी के द्वारा यह शक्ति मिली है जिससे आपने पुनर्जीवन प्राप्त किया है ॥६०॥ **श्रीशिवजी ने कहा—** इस बात को सुनकर राजा गीता के उत्तम बारहवें अध्याय को ब्राह्मणों के साथ उन विप्रर्षि से पढ़े ॥६१॥ उस अध्याय की महिमा से वे सबके सब सद्गति को प्राप्त किए दूसरे जीव भी उसको पढ़कर परमा मुक्ति को प्राप्त किए ॥६२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के श्रीमद्भगवद् गीता के बारहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ छियासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८६॥

हरि दीक्षित की पत्नी का वृत्तान्त वर्णन पूर्वक गीता के तेरहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन

देवी ने कहा— आपने मुझे बारहवें अध्याय का माहात्म्य बतलाया अब आप तेरहवें अध्याय का अत्यन्त सुन्दर माहात्म्य बतलायें ॥१॥ **ईश्वर ने कहा—** हे पार्वति! तुम तेरहवें अध्याय की महिमा सागर को सुनो। उसके सुनने मात्र से अत्यधिक आनन्द की तुम्हें प्राप्ति होगी ॥२॥ दक्षिण दिशा में तुङ्ग भद्रा

तस्मिन्पुरेऽद्विजन्माऽऽसीद्धरिदीक्षितसञ्ज्ञकः । तपःस्वाध्यायनिरतःश्रोत्रियोवेदपारगः ॥५॥
दुराचारेति तस्यासीद्भार्या नाम्ना च कर्मणा ।
न सुष्वाप समं पत्या दुरालापा कदाचन ॥६॥
क्षणमप्यात्मसदने नचाऽऽस्तेस्वैरचारिणी । कण्ठदघ्नंद्विजद्वारेधयन्ती वारुणीरसम् ॥७॥
पतिसम्बन्धिनः सर्वांस्तर्जयन्ती पुनःपुनः । विटैः सह सदोन्मत्ता रममाणा निरन्तरम् ॥८॥
कदाचिद्व्याकुलं दृष्ट्वा पुरं पौरैरितस्ततः । सङ्केतगेहमकरोत्कान्तारे निर्जने स्वयम् ॥९॥
अथ तत्रैव सा धूर्ता रममाणा विटैः सह । निनाय सा बहून्कालान्निजयौवनगर्विता ॥१०॥
अथ तस्मिन्पुरे रम्ये निवसन्त्या निरङ्कुशम् । वसन्तकालः समभूत्परश्चित्तभुवः सखा ॥११॥
आमूलपल्लवाकीर्णः सहकारविकारिणा । पिकानां पञ्चमालापैः पुनः सञ्जीवितः स्मरः ॥१२॥
स्फुरच्चम्पकसौरभ्यहारकैर्मलयानिलैः । मन्दं मन्दं प्रसर्पद्भिरान्दोलितवनद्रुमः ॥१३॥
उत्फुल्लमल्लिकामोदमदिरापारणावताम् । अलीनां कलटङ्कारैः समन्ताद्रावशोभितः ॥१४॥
प्रसन्नचारुभिः स्मेरः सरोवरसुगन्धिभिः । मीलन्मरालनिवहैः सरोभिः प्रकटीकृतः ॥१५॥
घनच्छायासुखासीनहरिणार्भकधारिभिः । नीरन्ध्रपल्लवैर्नानाशाखिभिः शोभितावनिः ॥१६॥
तस्मिन्वसन्तसमये मुदितासाभिसारिका । अपश्यज्जगदानन्ददायिनीं चन्द्रिकां निशि ॥१७॥
चञ्चच्चकोरचञ्चवग्रगलत्पीयूषसीकराम् । द्रवदिन्दुशिलानिर्यत्सुधानिर्झरनिर्भराम् ॥१८॥

नामक महानदी है । उसके तट पर अत्यन्त मनोहर हरिहरपुर नामक नगर है ॥३॥ हे देवि ! वहाँ पर स्वयं भगवान् हरिहर रूप से विराजमान हैं । उनका दर्शन करने मात्र से परम कल्याण की प्राप्ति होती है ॥४॥ उस नगर में हरिदीक्षित नामक ब्राह्मण रहते थे । वे वेद पराङ्गत श्रोत्रिय थे तथा सदैव वे तपस्या एवं स्वाध्याय में लगे रहते थे ॥५॥ उनकी पत्नी दूराचारिणी थी और सदा दुराचार में लगी भी रहती थी । बुरी बातें करने वाली वह कभी भी अपने पति के साथ नहीं सोती थीं ॥६॥ वह दुराचार करने वाली एकक्षण भी अपने घर में नहीं रहती थीं । उस ब्राह्मण के द्वार पर गला पर्यन्त मदिरा पीती थी ॥७॥ अपने पति के संवन्धियों को बार-बार डाँटती रहती थी । उन्मत्त बनी हुयी वह अपने प्रेमियों के ही साथ सदा रमण करती थी ॥८॥ एक बार उसने नगर को व्याकुल देखकर अपने सङ्केत स्थान वन को बना लिया॥९॥ अपने यौवन के मद से गर्वित वह बहुत सा समय बिटों के साथ रमण करने में बिता दी ॥१०॥ उसके बाद उसी नगर में निरङ्कुश होकर निवास करती थी । उसी समय कामदेव के कुमित्र वसन्त का समय आ गया । आम्र जड़ से शिखर तक पल्लवों से भर गया कोयलों के पञ्चमालाप से कामदेव पुनः जीवित हो गया ॥११-१२॥ विकसित चम्पा की सुगन्धि से परिपूर्ण मलयानिल धीरे-धीरे वनवृक्षों को हिलाने लगा । विकसित मालती का पराग पान करने वाले भ्रमरों के मनोहर गुञ्जार चारो ओर सुनायी पड़ने लगा ॥१३-१४॥ स्वच्छ, मनोहर मुस्कान युक्त सरोवरों की सुगन्धियों से मिश्रित हंस समूह सरोवरों में दिखायी देने लगे॥१५॥ सघन छाया में सुख पूर्वक बैठे हुए हिरण के बच्चों से सघन पल्लवों से युक्त अनेक वृक्षों से पृथिवी सुशोभित हो गयी ॥१६॥ उसी वसन्त के समय उस अभिसारिका ने जगत् को आनन्द देने वाली चाँदनी को देखा ॥१७॥ सुन्दर चकोर पक्षी की चोंच के अग्रभाग अमृत की बून्दें चन्द्रकान्तमणि से अमृत को

विकासीकुसुमक्रोडसान्द्रीभूतकरोत्कराम् । उल्लासितपयोराशिकल्लोलालिङ्गिताम्बराम् ॥१९॥
मनोभवमहासिंहकुलटाकण्ठकर्तरीम् । घनान्धकारसंदोहविदारणपटीयसीम् ॥२०॥
श्वेतीकृतसतीकारपरार्थहिमगर्भिणीम् । म्लानपङ्कजसङ्कोचाद्यूनामानन्ददायिनीम् ॥२१॥
चक्रवाकवधूवक्त्रकरुणाक्रोशसाक्षिणीम् । मुक्ताश्रेणीविशुद्धांशुप्रभासितदिगन्तराम् ॥२२॥
अथ तस्यां प्रभूतायां पूरयन्त्यां दिशो दश ।
कामान्धाः कामिनो जाताः पथि सौधविहारिणीः ॥२३॥
अपश्यन्ती विटान्रात्रौ निर्भिद्य भवनार्गलम्। ययौ सङ्केतभवनं निर्गत्य नगराद्बहिः ॥२४॥
तत्र प्रियतमं कञ्चित्काममोहितमानसाः। अन्वेषयन्ती नाऽद्राक्षीत्कुञ्जे कुञ्जे तरौतरौ ॥२५॥
आकर्णयन्ती कान्तस्य मन्दालापान्पदेपदे । अभियाति ततःक्रीडन्यत्रसम्हारिनिस्वनः ॥२६॥
चक्रवाकरवाञ्छ्रु त्वा कन्तालापभ्रमादसौ । सरोवराणिसर्वाणि पर्यटन्ती मुहुर्मुहुः ॥२७॥
कान्तभ्रान्त्या तरुतले प्रसुप्तान्हरिणोत्करान्। प्रबोधयन्ती सोच्छ्वासमागताऽस्मीति भाषिणी॥२८॥
आलिङ्गन्ती वनस्थाणुं जीवनेश्वरशङ्कया । तदाननभ्रमाद्भूयश्चुम्बन्तीविकचाम्बुजम् ॥२९॥
तत्रतत्र कृतव्यर्थश्रमाऽदृष्टप्रिया स्वयम्। विललापवनेतस्मिन्मूर्च्छन्ती विविधोक्तिभिः ॥
हा कान्त हा गुणाक्रांत मच्चैतन्यनायक ॥३०॥
हेमनोहरसौभाग्यभाग्यलावण्यशेवधे ! । हा पूर्णचन्द्रवदन हा सरोजायतेक्षण ॥३१॥
हाकान्त ! तत्त्वसाहित्यविश्रामार्यसुरद्रुम । अहो कान्त नवाकीर्णकर्णकुण्डलदीधितिः ॥३२॥

प्रवाहित करती थी वह चाँदनी ॥१८॥ विकसित पुष्पों के मध्य से उस चाँदनी की किरणें से युक्त थी । उस चाँदनी में तरङ्गायित होने वाली समुद्र की लहरें मानो आकाश को छू रही थीं ॥१९॥ कामदेव रूपी महासिंह कुलटाओं के कण्ठ को काटने वाला घोर अन्धकार समूह को वह विदीर्ण करने में समर्थ थी चादनी ॥२०॥ दूसरों के लिए हिम के धारण करने वाली वह सतियों को मानो उदास कर रही थी । मुद्रित कमल के सङ्कोच के द्वारा युवकों को वह आनन्द दे रही थी ॥२१॥ चकई के करुण क्रन्दन की साक्षिणी मुक्ता समूह के समान स्वच्छ चन्द्रमा की किरणों से सारी दिशाएँ प्रकाशित हो गयी थी ॥२२॥ दशो दिशाएँ जब चाँदनी से भर गयीं कामी पुरुष कामान्ध हो गये । चाँदनी महलों के ऊपर फैल गयी थी॥२३॥ विटों को वह न देखकर भवन की अर्गला को तोड़कर नगर के बाहर निकल कर अपने सङ्केत भवन में चली गयी ॥२४॥ काम से मोहित मन वाली वह प्रत्येक कुञ्जों तथा वृक्षों के नीचे किसी प्रियतम का अन्वेषण करके भी नहीं देखी ॥२५॥ पद-पद पर वह कामी पुरुष की आवाज सुन रही थी । वह क्रीडा करती हुयी जाती थी वहाँ पर ध्वनि समाप्त हो जाती थी चक्रवाक पक्षी की ध्वनि को सुनकर वह प्रियतम की ध्वनि के भ्रम से बार-बार सरोवरों पर जाती थी ॥२६-२७॥ प्रियतम के भ्रम से पेड़ों के नीचे सोए हुए हरिण समूह को जगा रही थी । वह लम्बी श्वास लेकर कह रही थी मैं व्यर्थ ही यहाँ आयी ॥२८॥ अपने प्रियतम की शङ्का से ठूँठे वृक्षों का वह आलिङ्गन करती थी । अपने प्रियतम के भ्रम से वह कमलों के मुख को चूम ले रही थी ॥२९-३०॥ विभिन्न स्थान पर व्यर्थ के परिश्रम करके तथा अपने प्रिय पुरुष को नहीं देखकर उस वन में अनेक प्रकार की बातें कहकर वह विलाप करने लगी । हाय कान्त ! हाय अपने गुणों से मेरे हृदय को आकृष्ट करनें वाले नायक ॥३१॥ हे मनोहर सौभाग्य से युक्त सौन्दर्य की

नयनानन्दनिष्यन्दी कुत्र ते मुखचन्द्रमा। यदि कोपेन कुत्राऽपि गुह्यवेषोऽत्रतिष्ठसि ॥३३॥

प्रसादयामि त्वां कान्त ! दत्त्वा प्राणान्प्रियानपि ।
इत्युच्चैः सर्वतो दिक्षु विलपन्त्या वियोगतः ॥३४॥
तस्याः श्रुत्वा वचः कोऽपि सुप्तो व्याघ्रः प्रबुद्धवान् ।
कुर्वन्घुरघुरंध्वानं पश्यन्प्रतिदिशं रुषा ॥३५॥

आस्फालयन्नखैर्भूमिंगर्जन्नाकाशगह्वरम् । पृष्ठनिर्भग्नलाङ्गूलं द्रुतमुत्थाय चाकरोत् ॥३६॥

गतो व्याघ्रः समुत्पत्य यत्राऽऽस्ते साऽभिसारिका ।
अथ साऽपि तमायान्तमालोक्य पतिशङ्कया ॥३७॥

निर्जगाम पुरः स्थातं प्रेमनिर्भरमानसा। ततस्तस्य नखक्रीडाक्रूरतान्धीकृता सती॥३८॥
जहौ प्रियवपुःशङ्कां श्रुत्वा गर्जितमुर्ज्जितम्। व्याघ्रेऽपि पातयामास ततो नखशिलीमुखैः ॥३९॥
तमुवाचाऽथ क्रोशन्ती वीतसौहृदया गिरा । तथाविधापि सा नारी भ्रान्तिमुत्सृज्य सत्वरम्॥४०॥
व्याघ्रत्वं तु कुतोहेतौर्मां निहन्तुमिहागतः। इदंसर्वं समाख्याहि यतस्त्वं हन्तुमिच्छसि॥४१॥
इतितस्या वचः श्रुत्वा शार्दूलश्चण्डविक्रमः। क्षणं विहाय तद्ग्रासमुवाच प्रहसन्निव॥४२॥
महापहा नदी नाम्ना देशे तिष्ठति दक्षिणे। नगरीमुनिपर्णेति तस्या रोधसि वर्तते॥४३॥

तत्राऽऽस्ते भगवान्साक्षात्पञ्चलिङ्गो महेश्वरः ।
तस्यां पुर्यामहं विप्रपुत्रो भूत्वा स्थितस्ततः ॥४४॥

सर्वोत्कृष्ट सीमा भूमि ! हे चन्द्रमा के समान मुख वाले ! हे कमल जैसे सुन्दर तथा विस्तृत नेत्रों वाले॥३२॥ हे प्रियतम ! हे तत्त्व साहित्य के विश्राम करने के लिए कल्पवृक्ष ! हे कान्त नवीन कर्णकुण्डल के प्रकाश स्वरूप ! हे नेत्रों के आनन्द को प्रवाहित करने वाले । आपका मुख चन्द्रमा कहाँ हैं ? यदि क्रोध के कारण आप यहीं कहीं छिप कर बैठे हों ॥३३॥ तो हे कान्त ! अपने प्रिय प्राणों को भी प्रदान करके मैं आपको प्रसन्न करना चाहती हूँ । इस तरह वियोग के कारण सभी दिशाओं में विलाप करने वाली ॥३४॥ उसकी वाणी को सुनकर कोई सोया हुआ व्याघ्र जग गया । वह घुर-घुर शब्द करता हुआ क्रोध से प्रत्येक दिशाओं में देख रहा था ॥३५॥ अपने नख की भूमि से पृथिवी को कुरेदता हुआ आकाश गुफा में गर्जना किया । वह जल्दी से उठकर अपनी पीठ पर पूंछ को पटका ॥३६॥ वह व्याघ्र उछल कर वहाँ पहुँचा जहाँ पर वह अभिसारिका थी । वह अपने आते हुए पति के भ्रम से उठकर ॥३७॥ प्रेम भरे मन से उसके समक्ष आने के उठकर उसके नख की क्रूरता से अन्धी बनी हुयी ॥३८॥ उसकी ओजस्वी गर्जना सुनकर अपने प्रिय प्राणों का परित्याग कर दी । व्याघ्र ने भी उसको अपने नख रूपी बाणों से गिरा दिया ॥३९॥ अपनी निष्ठुर वाणी से उसने व्याघ्र से चिल्लाकर कहने लगी । उस प्रकार से भी वह नारी अपने भ्रम को शीघ्र ही त्याग दी ॥४०॥ किस कारण से मुझे मारने के लिए तुमने व्याघ्रत्व धारण किया है । चूकि तुम मुझे मारना चाहते हो अतएव इन बातों को तुम बतलाओ ॥४१॥ भयङ्कर पराक्रम वाले व्याघ्र भी क्षण भर के लिए उस ग्रास को त्यागकर जोर से हँसते हुए के समान कहा ॥४२॥ दक्षिण देश में मलापहा नाम की नदी है । उसके तट पर मुनि पर्णा नाम की नगरी है ॥४३॥ वहाँ पर पाँच लिङ्गों वाले भगवान् शिव

अयाज्यान्याजयन्नश्नन्नेकोद्दिष्टे नदीतटे। वेदपाठफलं शश्वद्विक्रीणन्धनकाङ्क्षया ॥४५॥
भिक्षुकानपराँल्लोभात्तिरस्कुर्वन्दुरुक्तिभिः । अदेयद्रविणं गृह्णन्नदत्तमनिशं दिनम् ॥४६॥
छलयन्सकलाँल्लोकान्क्षणग्रहणकौतुकात् । ततः कतिपये काले जठरत्वमुपागतः ॥४७॥
वलीपलितवानन्धः प्रपतन्प्रस्खलद्गतिः । पतद्दन्तोऽभवं भूयः प्रतिग्रहपरायणः ॥४८॥
हस्ते गृहीतदर्भोऽहमगमं तीर्थसन्निधिम्। धनग्रहणलोभेन भ्रमन्पर्वसु पर्वसु ॥४९॥
ततोऽहं शिथिलाङ्गःसन्कञ्चिद्भूनिर्जरालयम्। गतवान्याचितुंभोक्तुं दष्टोमध्ये पदे शुना ॥५०॥
अपतम्मूर्च्छितोभूत्वा ततः क्षितितलेक्षणात्। ततोऽहं गलितप्राणो व्याघ्रयोनिमुपागतः ॥५१॥
अत्र तिष्ठामि कान्तारे पूर्वपापमनुस्मरन् । न भक्षयामि धर्मिष्ठान्मुनीन्साधुजनान्सतीः ॥५२॥
किंतु पापान्दुराचारानसतीर्भक्षयाम्यहम्। अतोऽसतित्वं तत्त्वेन ममैव कवलायसे ॥५३॥

इत्युक्त्वा स्वैर्नखैःक्रूरैस्तांविभज्याऽङ्गखण्डशः ।
अथतांभक्षितांतेन पापदेहमुपाश्रिताम् ॥५४॥
यमस्य किङ्करा निन्युःसद्यः संयमनीं पुरीम् ।
यमादेशेन तत्रापि पातयामासुराशुताम् ॥५५॥

विण्मूत्ररक्तपूर्णेषु घोरकुण्डेष्वनेकधा। कल्पकोटिषु जातासु तस्मादादाय तां मुहुः ॥५६॥
रौरवे स्थापयामासुर्मन्वन्तरशतावधि। ततोऽप्याकृष्य तां दीनांरुदतीं सर्वतोमुखीम् ॥५७॥
मुक्तकेशां भग्नगात्रां चिक्षिपुर्दहनानने। एवं पापपरा घोरा भुक्त्वा नरकयातनाम् ॥५८॥

साक्षात् निवास करते हैं । उस नगरी में मैं ब्राह्मण पुत्र रूप से रहता था ॥४४॥ नदी के तट पर अयाज्यों का यज्ञ करता था और एकोदिष्ट का अन्न खाता था । धन प्राप्त करने की इच्छा से मै वेदपाठ के शाश्वत फल के साथ खिलवाड़ करता था ॥४५॥ लोभ के कारण में दूसरे भिक्षुकों को गाली देकर भगा देता था रात-दिन मैं नहीं लेने योग्य दान लेता रहता था ॥४६॥ क्षणभर विताने के कुतूहल पूर्वक सभी लोगों को ठगता था । उसके कुछ समय बाद मैं बूढा हो गया ॥४७॥ मेरे बाल पक गये । मैं अन्धा हो गया । चलते समय मैं लड़खड़ा कर गिर जाता था । सदा दान लेने वाले मेरा अन्त होने वाला था ॥४८॥ हाथ में कुश लेकर मैं तीर्थ के सन्निकट गया । प्रत्येक पर्वों पर मैं धन प्राप्ति के लोभ के कारण घूमता रहा ॥४९॥ एक बार मेरे अङ्ग शिथिल हो गये तो किसी ब्राह्मण के धर में मैंने खाने के लिए अन्न मागा उसी समय मेरे पैर में सर्प ने काट लिया ॥५०॥ उसके बाद मैं क्षणभर में मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा । उसके पश्चात् मैंने व्याघ्र योनि को प्राप्त किया ॥५१॥ इस वन में मैं अपने पूर्व जन्म के पापों को याद करते हुए रहता हूँ । मैं धार्मिकों, मुनियों, सज्जनों और सतियों को नहीं खाता हूँ ॥५२॥ किन्तु पापियों, दुराचारियों को खाता हूँ । इसीलिए मैं तुमको मार रहा हूँ ॥५३॥ इस बात को कहकर अपने कठोर नखों से उसके अङ्गों को टुकड़े-टुकड़े करके खा गया । इसके बाद उस खायी हुयी का पाप उसके शरीर में प्रवेश कर गया ॥५४॥ यमदूत उसको यमपुरी में लाये यमराज के आदेश से उन सबों ने उसे शीघ्र मल, मूत्र तथा रक्त से भरे भयङ्कर अनेक कुण्ड़ों में फेंक दिये । इस तरह करोड़ों कल्पों के बीत जाने पर उसको रौरव नरकों में बार-बार डाला । वहाँ भी उसके सौ मन्वन्तर बीत गये । वहाँ दीन होकर रोने वाली उसको वहाँ से निकालकर ॥५५-५७॥ खुले केशों वाली और टुटे हुए अङ्गों वाली उसको अग्नि

इह जाता महापापात्पुनः श्वपचयोनिषु। ततः श्वपचगेहेऽपि वर्द्धमाना दिने दिने ॥५९॥
पूर्वजन्मवशेनैव तथैवाऽऽसीद्यथा पुरा। ततः कतिपये काले पुनः स्वं भवनं ययौ ॥६०॥
यत्राऽऽस्ते जृम्भकादेवी शिवस्याऽन्तःपुरेश्वरी ।
तत्राऽपश्यद्द्विजन्मानं वासुदेवाभिधं शुचिम् ॥६१॥
गीतात्रयोदशाध्यायमुद्गिरन्तमनारतम् । ततस्तच्छ्रवणादेव मुक्ता श्वपचविग्रहात् ॥६२॥
दिव्यं देहं समासाद्य जगाम त्रिदशालयम् ॥६३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां उत्तरे खण्डे गीतात्रयोदशाध्यायमाहात्म्ये सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७॥
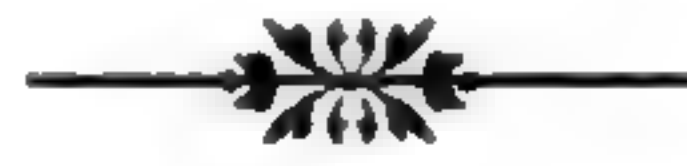
एक सौ अठासीवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

अतःपरं प्रवक्ष्यामि भवानि भवमुक्तये। गीताचतुर्दशाध्यायमवधारय सुस्मिते॥१॥
मेदिन्यां यत्किल स्थूलमस्ति काश्मीरमण्डलम् ।
राजधानी सरस्वत्या आस्ते चैव मनोहरा ॥२॥
यामधिष्ठाय वाग्देव ब्रह्मलोकं प्रयच्छति। हंसैस्समुह्यमानाऽपि सावित्रीप्रहतैरपि ॥३॥

में डाल दिया । इस तरह से पापमय घोर नरक यातना को भोग कर वह इस संसार में चाण्डाल योनि को प्राप्त किया । उसके बाद चाण्डाल के घर में बढ़ती हुयी वह पूर्व जन्म के कारण वह वैसी ही थी जैसी पहले वह थी । उसके बाद कुछ समय बाद वह अपने घर गयी ॥५८-६०॥ भगवान् शिव के अन्तःपुर की स्वामिनी जृम्भक देवी जहाँ पर विद्यमान हैं वहाँ उसने वासुदेव नामक पवित्र ब्राह्मण को देखा॥६१॥ वे गीता के तेरहवें अध्याय का निरन्तर पाठ कर रहे थे । उसके पश्चात् उसे सुनते ही उसका चाण्डाल शरीर छूट गयीं ॥६२॥ वह दिव्य शरीर धारण करके देवलोक में चली गयी ॥६३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के गीता के तेरहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ सत्तासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८७।।

शौर्यवर्मा तथा विभ्रमवेताल नामक दोनों राजाओं के वृत्तान्त वर्णन पूर्वक गीता के चौदहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन

ईश्वर ने कहा— हे भवानि ! इस संसार से मुक्ति के लिए अब मैं गीता के चौदहवें अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ उसे तुम सुनो ॥१॥ पृथिवी पर जो स्थूल है वह काश्मीर मण्डल है । वह सरस्वती की राजधानी है ॥२॥ वहाँ पर रहकर सरस्वती देवी ब्रह्मलोक प्रदान किया करती हैं । उनका वाहन हंस

सरस्वतीपदाम्भोजसेवामाश्रित्यकुङ्कुमैः । यत्र गौरवयन्त्याशा हंसाः पक्षतुटोद्भवैः ॥४॥
निरन्तरं तया चैव नृणां संस्कृतभाषिणाम् । सुपर्वाणमयीभाषा निमेषेणोपलभ्यते ॥५॥
प्रातर्गृहाङ्गणोद्भूतैर्यत्र कुङ्कुमपांसुलैः । सर्वतोऽरुणितच्छायं शशाङ्करविमण्डलम् ॥६॥
तत्राऽऽसीत्तेजसांराशिः शौर्यमर्वानिरेश्वरः । उद्यदुज्ज्वलबाणौघखण्डितारातिमण्डलः ॥७॥
अभूच्च सिंहलद्वीपे राजा सिंहपराक्रमः । नाम्ना विक्रमवेतालः कलानामपि शेवधिः ॥८॥
उभौपरस्परं मैत्रीं वर्द्धयाञ्चक्रतुः क्रमात् । तत्तद्देशसमुत्पन्नैरपूर्वैः प्रचुरोत्करैः ॥९॥
एकदा प्रहितं प्रेम्णा प्रभूतं शौर्यवर्मणा । राजा विक्रमवेतालो विलोक्य शुनकीद्वयम् ॥१०॥
मत्तमातङ्गतुरगमणिभूषणचामरम् । प्रेषयामास मित्राय प्रभूतं शौर्यवर्मणे ॥११॥
एकदा शिविकारूढश्चारुचामरवीजितः । सुवर्णशृङ्खलारूढं वाद्यडिण्डिमडम्बरम् ॥१२॥
शुनीयुगलमादाय मृगयाकौतुकोत्सुकः । राजा जगाम बाह्यालीं समं राजकुमारकैः ॥१३॥
पणबन्धविधानेन समुपेतं शशाभिषम् । तत्र राजकुमाराणां महान्कोलाहलोऽभवत् ॥१४॥
ततः समानवयसा केनचिद्राजसूनुना । बहुमूल्यं पणं कृत्वा राजा चिक्रीड कौतुकी ॥१५॥
ततोऽवतार्य दोलाया बिरुदावलिगर्विताम् । धावतः शशकस्योच्चैः पृष्ठे मुञ्चन्नृपःशुनीम् ॥१६॥
मुमोच राजपुत्रोऽपि प्रेमपात्रं महाभुजः । विरराम शुनीमुच्चैः सङ्कीर्त्य बिरुदावलीम् ॥१७॥
अलक्ष्यमाणवेगेऽस्मिञ्छुनीयुगलकेभृशम् । धावत्युत्थितमेवासीत्यश्यतांसर्वभूभृताम् ॥१८॥

है । वे सरस्वती देवी के द्वारा भेजे गये हंस सरस्वती देवी के चरण कमलों की सेवा प्राप्त कुङ्कुमों द्वारा हंसगण अपने पङ्खों से उत्पन्न वायु से दिशाओं को गौरवान्वित करते हैं । उसके द्वारा सदैव संस्कृत बोलने वाले मनुष्य को देववाणी की शीघ्र प्राप्ति हो जाती है । प्रातःकाल घर के आङ्गन में उद्भूत कुङ्कुम की धूलि से चन्द्रमा और सूर्य के मण्डल पूर्ण रूप से लाल हो जाते हैं ॥३-६॥ वहाँ के राजा महातेजस्वी शौर्य वर्मा थे । वे अपने चमकते हुए बाण समूह से शत्रुओं को विनष्ट कर दिए थे ॥७॥ उसी समा सिंहल देश के राजा विक्रम बोलते थे । वे कलाओं के सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता थे ॥८॥ उन दोनों ने परस्पर में मैत्री को खूब वढ़ाया । विभिन्न देशों में उत्पन्न अपूर्व वस्तु समूह के आदान प्रदान के द्वारा उन दोनों की मित्रता बढ़ी॥९॥ एक बार राजा शौर्यवर्मा ने प्रेम पूर्वक बहुत सी वस्तुओं को भेजा । राजा विक्रमबेताल दो कुतियों को देखकर ॥१०॥ अपने मित्र शौर्य वर्मा के लिए मदमत्त हाथी, श्रेष्ठ घोड़े तथा मणि निर्मित भूषणों तथा दो चामर भेजे ॥११॥ एक बार पालकी पर सवार होकर मनोहर चामरों से हवा जिनको की जा रही थी । सुवर्ण की शृङ्खला पर सवार तथा वाद्यों के डिण्डिम घोष पूर्वक ॥१२॥ दोनों कुतियों को लेकर मृगया के कुतूहल से युक्त होकर राजा राजकुमारों के साथ बाहर के वन में गये ॥१३॥ शर्त के विधान से युक्त होकर खरगोस के मांस के लिए गये । वहाँ पर राजकुमारों ने अत्यन्त शोरगुल माचाया ॥१४॥ उसके बाद समान उम्र वाले किसी राजकुमार के साथ अत्यन्त मूल्यवान् प्रतिज्ञा करके कौतुकी राजा खेलने लगे ॥१५॥ उसके बाद दोला से उतार कर विरुदावली से युक्त कुतियों को भागते हुए खरगोस के पीछे कुतिया को छोड़ दिए ॥१६॥ महाभुज राजकुमार ने अपने प्रेम पात्र को छोड़ा । वह कुतिया के विरुदावली को जोर से कहकर रुक गया ॥१७॥ दोनों कुतियों का वेग दिखायी नहीं पड़ता था । वह खरगोस उठकर दौड़ा

पपात गर्ते महति शशकोऽतिश्रमादसौ । पतितोऽपि शुनीवश्यो नाऽभवच्छशशावकः ॥१९॥
ततः शनैः समुत्थाय धावन्नाक्रम्य रोषतः । जगृहे राजशुन्याऽसौ शशकः फेनमुद्वमन् ॥२०॥
ततः कथिञ्चदुत्प्लुत्य गच्छन्विस्खलयञ्छशः ।
राजपुत्रशुनक्याऽसौ गृहीतः कन्धरातटे ॥२१॥
जितमस्माभिरत्यर्थमिति सञ्जल्पतां नृणाम्। कोलाहले शङ्कितायाः शुन्या निर्गतवान्मुखात् ॥२२॥
ततो दंष्ट्राव्रणश्रेणीक्षरद्रुधिरधारकः । क्वाऽपिमर्मरभूभागे निलीय स्थितवाञ्छशः ॥२३॥
जिघ्रन्त्याराजशुन्याऽसौ भूभागंघनरोषया। दृष्टमात्रः परित्रस्तो हस्तमात्रं ततोऽगमत् ॥२४॥
यत्र कर्पूरकदलीक्रोडव्याघ्रदरीतलः । चोलीकपोलफलकांश्चुम्बन्वाति समीरणः ॥२५॥
उद्भिन्नकेतकीकोशरजोमुकुलितेक्षणः । विस्रब्धाहरिणा यत्र च्छायां तां परितन्वतः॥२६॥
नारिकेलफलैर्यत्र स्वयं निपतितैरधः । अपिचूतफलैस्तृप्ताः पक्कैः शाखामृगाअपि॥२७॥
अपि केसरिणो यत्र खेलन्ति कलभैः समम् ।
फणिनः केकिबर्हेषु निर्विशङ्कंविशन्तिच ॥२८॥
यत्राश्रमान्तरे विप्रो वत्सनामाजितेन्द्रियः । शान्तश्चतुर्दशाध्यायं जपन्नास्तेनिरन्तरम्॥२९॥
तत्र तच्छिष्यपादाब्जप्रक्षालनजलैः कृते । कर्दमे न्यपतद्गत्वा जीवशेषो मुहुःश्वसन् ॥३०॥
ततः कर्दमसंस्पर्शमात्रनिस्तीर्णसंसृतिः । दिव्यं विमानमारुह्य निर्ययौ शशको दिवम् ॥३१॥
ततः शुन्यपि लिप्ताङ्गी स्तोकैःकर्दमबिन्दुभिः ।
क्षुत्पिपासार्तिरहिताशुनीरूपंविहायसा ॥३२॥

और सभी राजा उसे देख रहे थे ॥१८॥ अत्यन्त थक जाने के कारण खरगोश वहुत बड़े खंदक में गिर पड़ा । कुतिया भी खंदक में गिर पड़ी किन्तु खरगोस के बच्चे को वह पकड़ न सकी ॥१९॥ उसके पश्चात् धीरे से उठकर क्रोध पूर्वक दौड़ता हुआ उसने राजा की कुतिया ने फेन उगलते हुए खरगोस को पकड़ लिया ॥२०॥ उसके पश्चात् किसी तरह उछलकर लड़खड़ाते हुए खरगोस की गर्दन राजा की कुतिया ने पकड़ लिया ॥२१॥ हमलोग जीत गये इस तरह से जब सब लोग बार-बार कह रहे थे । कोलाहल के डर से डरी हुयी कुतिया के मुख से वह खरगोस निकल गया ॥२२॥ उसके पश्चात् दाँतों के धाव के कारण यह खरगोस किसी मर्मर भूमि भाग में छिप गया ॥२३॥ अत्यन्त क्रुद्ध वह राजा की कुतिया को उस पृथिवी को सूंघती हुयी देखकर डरा हुआ खरगोस एक हाथ चला ॥२४॥ वहाँ पर केले के भीतर कर्पूर था व्याघ्र की गुफा थी । चमेली के गाल को स्पर्श करके वायु वहती थी ॥२५॥ विकसित केवड़े के पराग से अपने नेत्रों को बन्द किए हुए विश्वस्त हरिण उसकी छाया का सेवन करते थे ॥२६॥ स्वयं गिरे हुए नारियल तथा पककर गिरे हुए आमों से वानर तृप्त थे ॥२७॥ सिंह भी हाथी के बच्चों के साथ खेलते थे । सर्प भी बिना किसी भय के मयूरों के पङ्ख के भीतर घूस जाते थे ॥२८॥ उस आश्रम में जितेन्द्रिय वत्स नामक ब्राह्मण सदा गीता के चौदहवें अध्याय का पाठ करते रहते थे । वहाँ पर उन ब्राह्मण के शिष्यों के पैर धोने से हुए कीचड़ में वह जाकर गिर गया । उस समय उसके शरीर में केवल प्राण बचे थे और वह बार-बार श्वास लेता था ॥२९-३०॥ उस कीचड़ के स्पर्श मात्र से उसका संसार छूट

ततो दिव्याङ्गना रम्यं गन्धर्वैरुपशोभितम्। दिव्यं विमानमारुह्य शुन्यपि त्रिदिवंययौ॥३३॥

ततो जहास मेधावी शिष्यो नाम्ना स्वकन्धरः।
विचार्य विस्मितः पूर्वजन्मवैरस्य कारणम् ॥३४॥

राजाऽपि पर्यपृच्छत्तं विस्मयस्मेरलोचनः। प्रणम्य परया भक्तया नियैकपयोनिधिः ॥३५॥

कथां कथय मे विप्र ! हीनयोनिनिषेवितौ। अज्ञौ यौ जग्मतुः स्वर्गे शुनीशशकशावकौ॥३६॥

शिष्य उवाच

वत्सनामाऽऽदिजन्माऽऽस्तेवनेमुष्मिञ्जितेन्द्रियः ।
चतुर्दशंतुह्यध्यायंगीतानांसर्वदाजपन् ॥३७॥
शिष्योऽहं तस्य भूपाल ! ब्रह्मविद्याविशारदः ।
गीताचमतुर्दशाध्यायं जपाति प्रत्यहं नृप ॥३८॥

मदीयचरणाम्भोजप्रक्षालनजले लुठन्। शशस्त्रिदिवमापन्नः शुनक्या सह भूपते ! ॥३९॥

राजोवाच

हेतुना केन कथय हसितं च द्विजोत्तम !। अतः किमपि साकूतं मन्यमानेन सादरम् ॥४०॥

शिष्य उवाच

महाराष्ट्रे तिनगरं नाम्ना प्रत्युदकं महत्। तत्रासीद्‌ब्राह्मणो नाम्ना केशवः कितवाग्रणीः ॥४१॥

विलोभना भवत्तस्य जाया स्वैरविहारिणी। तेन सा हन्यतेक्रोधाद्वैरंसञ्चिन्त्यजन्मनः॥४२॥

ततः स्त्रीवधपापेन शशको जायते द्विजः। किल्बिषाच्छुनकी साऽपि जाता वञ्चनजन्मनः॥४३॥

पूर्वेणजन्मनाऽऽभ्यस्तंवैरंविस्मरतो नहि। आसेदिवद्धयांबहुधा योन्यन्तरमपि क्वचित्॥४४॥

गया। वह खरगोस दिव्य विमान पर चढ़कर स्वर्ग चला गया ॥३१॥ उसके बाद वह कुतिया भी कीचड़ की थोड़े विन्दुओं के पड़ जाने से भूख और प्यास से रहित कुतिये के शरीर को त्यागकर आकाश से आये हुए दिव्याङ्गनाओं और गन्धर्वों से सुशोभित मनोहर विमान पर स्वर्ग चली गयी ॥३२-३३॥ उसके बाद मेधावी नामक शिष्य भी पूर्वजन्म के वैर के कारण का विचार करके जोर से हँसने लगा ॥३४॥ आश्चर्यचकित राजा ने अत्यन्त नम्रता पूर्वक प्रणाम करके भक्ति पूर्वक कहा हे विप्र ! नीच योनि में उत्पन्न अज्ञानी ये दोनों जीव कुतिया और खरगोस जो स्वर्ग में चले गये आप इन दोनों के वृत्तान्त को बतलायें ॥३५-३६॥ **शिष्य ने कहा—** इस वन में वत्स नामक जितेन्द्रिय ब्राह्मण रहते हैं। वे सदा गीता के चौदहवें अध्याय का पाठ करते रहते हैं। राजन् मैं ब्रह्मविद्या में निपुण उनका शिष्य हूँ। मैं गीता के चौदहवें अध्याय का प्रतिदिन जप करता हूँ ॥३७-३८॥ राजन् ! मेरे पैर के धोए हुए जल में लेट जाने के कारण ये खरगोस और कुतिया स्वर्ग चले गये ॥३९॥ **राजा ने कहा—** आप किस कारण से हँसे इसका कोई कारण होगा तब ही न ॥४०॥ **शिष्य ने कहा—** महाराष्ट्र प्रदेश में प्रत्युदक नामक महान् नगर है। वहाँ धूर्तों में अग्रगण्य केशव नामक ब्राह्मण थे। उनकी दुराचारिणी पत्नी का नाम विलोभना था। उसको पूर्वजन्म के वैर के कारण ब्राह्मण ने मार दिया ॥४१-४२॥ उसके पश्चात् स्त्री के वधजन्य पाप के कारण वह ब्राह्मण खरगोस हो गया। वह स्त्री भी जन्म से ही धोखा देने वाली कुतिया हो गयी ॥४३॥ पूर्व जन्म से ही

इत्याकलय्य सकलं भूपालः श्रद्धयाऽन्वितः ।
गीतामभ्यस्य सकलामवाप परमां गतिम् ॥४५॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे गीताचतुर्दशाध्यायमाहात्म्ये अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८॥

एक सौ नवासीवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

प्रवक्ष्यामि विशालाक्षि तुहिनाचलकन्यके ! ।
गीतापञ्चदशाध्यायमाहात्म्यमवधारय ॥१॥
कृपालुर्नरसिंहोऽभून्नाम्ना गौडेषु भूपतिः । यस्याऽसिधारया सङ्ख्ये देवसङ्घाश्च धिक्कृताः ॥२॥
यदीयमत्तमातङ्गदानधाराजलैरिला । निदाघेऽपि च सेहे तां रविसन्तापवेदनाम् ॥३॥
संक्रन्दनपरित्रस्तां यदीयशरणं गताः । रेजिरे करिणो मत्ताश्चलन्तः पर्वता इव ॥४॥
मत्तमातङ्गचीत्कारप्रतिस्वनमिवादरात् । यस्य गोपायतः शैला व्याहरन्ति कृपावतः ॥५॥
यदीय धावत्तुरगक्षुरसङ्घाततर्जरम् । नाभूच्चित्रं कथङ्कारं गतखण्डं धरातलम् ॥६॥
यस्मिन्वृत्रहणोमित्रे समुद्धरतिमेदिनीम् । पुनरुज्ज्वलयाञ्चक्रे महाभाष्यं फणीश्वरः ॥७॥
तस्याऽऽसीत्सैनिको धीमाञ्छस्त्रशास्त्रकलानिधिः ।
नाम्ना सरभभेरुण्डः प्रचण्डभुजमण्डलः ॥८॥

अभ्यस्त वैर को वह भूली नहीं थी । यद्यपि वे दूसरी योनि में जन्म ले चुके थे तो भी ॥४४॥ इन सारी बातों का विचार करके राजा ने सम्पूर्ण गीता का अभ्यास किया और उसने परम गति को प्राप्त किया ॥४५॥
इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के गीता के चौदहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ अठासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८८।।

गौड़ाधिपति नरसिंह का वृत्तान्त वर्णन पूर्वक गीता के पन्द्रहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन

ईश्वर ने कहा— हे पार्वति ! मैं अब गीता के पन्द्रहवें अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ सुनो ॥१॥ कृपाल नरसिंह गौड़ देश के राजा थे । युद्ध में जिनके तलवार की धार के समक्ष देवता भी तिरस्कृत थे॥२॥ उनके मदमत्त हाथियों की मदवारि से पृथिवी भींग जाती थी । राजा गर्मी के भी दिन में सूर्य के संताप को सह लेते थे ॥३॥ भयभीत होकर इन्द्र भी उनकी शरणागति किये थे । उनके चलते हुए हाथी पर्वत के समान प्रतीत होते थे । उनके द्वारा संरक्षित पर्वत उनकी कृपा का वर्णन करते थे ॥४-५॥ उनके दौड़ने वाले घोड़े के खुर समूह से जर्जर पृथिवी खण्डित क्यों नहीं हुयी ? ॥६॥ उन इन्द्र के मित्र के द्वारा उद्धरित पृथिवी का महाभार शेषनाग ने पुनः उज्ज्वल किया ॥७॥ उनके सैनिक शस्त्रकला और शास्त्र

भाण्डारेण तुरङ्गैश्च भटैर्वीररसोद्भवैः। समानएवभूपालदुर्गैरत्यन्तदुर्गमैः ॥९॥
स कदाचित्स्वयंराज्यं कर्तुं पापे दधे मनः। निहत्य वसुधापालं बलात्साकं कुमारकैः ॥१०॥

कर्तुं व्यवस्य दिवसैः स्वल्पैरित्थं चिकीर्षया ।
विषूचिकामयादाशु परासुः समजायत ॥११॥
कालेनाऽल्पीयसा प्रेत्य पापात्मा तेन कर्मणा ।
तेजस्वी तुरगो जातः सिन्धुदेशे कृशोदरि ! ॥१२॥

मूलेन बहुना क्रीत्वा हयतत्त्वविदा ततः। बहुयत्नवतानीतः केनचिद्वैश्यसूनुना ॥१३॥
राजापिपौत्रनप्त्राद्यैस्तस्यैव मरणात्पदम्। कालेन वृद्धतां प्राप्तःस्वराज्यंचापिपालयन् ॥१४॥
सवैश्यसूनुस्तं चारवंराज्ञेदातुंसमागतः। राज्ञो द्वारिस्थितस्तत्र प्रतीक्षंस्तत्समागमम् ॥१५॥

ज्ञातपूर्वोऽपि वैश्योऽसौ प्रतीहारेण दर्शितः ।
किमर्थं ब्रूहि राज्ञेति पृष्टः स्पष्टमभाषत ॥१६॥

देव त्रिजगतीरत्नमितिमत्वा तुरङ्गमाः। मायाऽनीयत मूल्येन क्रीतोऽसौ साधुलक्षणः ॥१७॥

ततोऽवलोक्य वक्त्राणि भूपालः पार्श्ववर्तिनाम् ।
समादिदेश वणिजमश्वोऽत्राऽऽनीयतामिति ॥१८॥

शिरांसि धूनयन्नृणामश्वलक्षणवेदिनाम् । शूराणामपि चेतांसि मुहुरुत्साहयन्महान् ॥१९॥
अखण्डमेदिनीवेगबहुसङ्क्रमणार्जितम् । लालफेनच्छलेनासौवमञ्छुभ्रतरं यशः ॥२०॥
उच्चैःश्रवस्तुलां भेजे गुणसाम्येन तत्त्वतः। विवृण्वन्नतितेजस्वी ह्रियेवनतकन्धरः ॥२१॥
चामरैरिन्दुधवलैर्वीज्यमानो निरन्तरम्। दुग्धाम्भोनिधिलोलैस्तैःश्वासैरुच्चैःश्रवा इव ॥२२॥

कला के पूर्ण ज्ञाता थे । उनके सैनिक का नाम सरभेरुण्ड था । भण्डार, घोड़े, वीररस से परिपूर्ण सैनिक तथा अत्यन्त दुर्ग किला उस राजा के एक समान थे ॥८-९॥ सरमरेण्डु ने एकबार स्वयं राज्य करने के लिए पाप करने का मन बनाया । कुमारों के साथ राजा को मार कर वह राजा हो गया । इस तरह से करके वह कुछ ही दिनों के बाद इस तरह का कार्य करना चाहा । किन्तु वह विषूचिका के कारण मर गया॥१०-११॥ उस कर्म के कारण वह कुछ ही समय में मर गया । हे कृशोदरि ! उसका तेजस्वी घोड़ा जो सिन्धु देश में उत्पन्न हुआ था, उसको अश्व तत्त्व जानने वाले दैत्य पुत्र ने खरिद लिया ॥१२-१३॥ राजा भी अपने पुत्र-पौत्र एवं नाती आदि के साथ उसके मरने के पश्चात् अपने राज्य का पालन करते हुए वृद्ध हो गये ॥१४॥ वैश्य पुत्र उस घोड़े को राजा को देने के लिए आया । राजा के द्वार पर वह रुककर उनके आने की प्रतिक्षा करने लगा ॥१५॥ यद्यपि वह पहले से ही ज्ञात था उसको द्वार पाल ने देखा और कहा क्यों आये हो उसने स्पष्ट रूप से कहा राजा से मिलने के लिए ॥१६॥ महाराज यह अश्व त्रैलोक्य रत्न हैं । इसको मैं मूल्य देकर लाया हूँ । यह सुन्दर लक्षणों से युक्त हैं ॥१७॥ उसके बाद राजा अपने सन्निकट रहने वालों के मुख को देखकर कहे अश्व को यहाँ लाओ ॥१८॥ सम्पूर्ण पृथिवी को अपने वेग से जीत लेने वाला यह अपने मुख के गाज से यह मेरे अत्यन्त शुभ्र यश को बतला रहा है ॥१९-२०॥ वस्तुतः यह उच्चैश्रवा के समान गुणों से सम्पन्न है । यह तेजस्वी अपने झुके कन्धे के द्वारा आनी तेजस्विता

नीलातपत्रयुगलं घनच्छायतुलश्रिया। बिभ्राणो वारिदालीढहिमाद्रिशिखरश्रियम् ॥२३॥
मेदिनीमण्डलस्पर्शसंक्रान्तमिव पावकम्। मुहुरुद्धारयन्युन्वन्बन्धुरं कन्यरातटम् ॥२४॥
दारयन्वैरिणः सर्वान्व्याहरंश्च जयश्रियम्। हेषारवेण गुरुणा दिक्षु प्रख्यापयन्यशः ॥२५॥
सत्त्वस्य राशिरत्युच्चैर्गतीनामिवशेवधिः। रूपस्यनिलयं साक्षाल्लक्षणानां पयोनिधिः ॥२६॥

आनीतो वाणिजा वाजी राज्ञा च समदृश्यत।
बहुधा वर्णितोऽमात्यैरश्वलक्षणवेदिभिः ॥२७॥
यथेच्छं वणिजोदीर्णं स्वर्णं दत्त्वा महीपतिः।
जग्राह तुरगं वेगादसीमानन्दनिर्भरः ॥२८॥

ततोऽश्वपालमाहूययत्नतस्तं निरूप्य च। विसर्जितसभालोको गृहान्तरमगान्नृपः ॥२९॥
अनेकधा समाकृष्टो महीपालं रणाङ्गणे। शस्त्रव्रणकिणश्रेणीभूषणं सत्त्वसन्निभम् ॥३०॥
एकदा मृगयां खेलन्कुतूहलरसात्मना। तमारुह्य महीपालो वनं प्रति विवेश ह ॥३१॥

विसृज्य सैनिकान्पृष्ठे धावतः परितोऽखिलान्।
आकृष्यमाणो हरिणैः पिपासाकुलितोऽभवत् ॥३२॥

ततउत्तीर्य तुरगाज्जलमन्वेषयन्नृपः। बद्ध्वाश्वं तरुशाखायामारुरोह शिलां नृपः ॥३३॥

गीतापञ्चदशाध्यायश्लोकार्द्धं लिखितं ततः।
पातितं मरुता तत्र यत्र खण्डे व्यलोकयत् ॥३४॥

पत्रं वाचयतो राज्ञः श्रुत्वा गीताक्षरावलीम्। ततो मुक्तिपदं लेभे तुरगस्त्वरयाऽपतत् ॥३५॥
ततो ग्रन्थिं समाच्छिद्य पल्याणमवतार्यच। उत्थाप्यमानस्तुरगो राज्ञा नोत्थितवान्मृतः ॥३६॥

को व्यक्त कर रहा है ॥२१॥ चन्द्रमा के समान धवल अपने चामरों के द्वारा जो क्षीर सागर के समान चञ्चल हैं तथा उसी के सदृश श्वास से उच्चैःश्रवा के समान है ॥२२॥ नीले दो छत्रों से यह घनी छाया से युक्त जिस पर मेघ छा गया हो ऐसे हिमालय के समान शोभित है ॥२३॥ पृथिवी के संस्पर्श से युक्त अग्नि के समान अपने कन्धे को कँपाने से मनोहर यह जैसे बार-बार उद्धार कर रहा हो ॥२४॥ सभी वैरियों के विनष्ट करने वाले तथा मेरे जय श्री को यह कह रहा है। अपने गम्भीर हिनहिनाहट की ध्वनि से मेरे यश को प्रख्यापित कर रहा है ॥२५॥ शक्ति के समूह तथा गति की सीमा, तथा रूप का आश्रय साक्षात् यह लक्षणों का सागर है ॥२६॥ व्यापारी के द्वारा लाये गये अश्व को राजा ने देखा। अश्व के लक्षण को जानने वाले मन्त्रियों ने उसका अनेक प्रकार से वर्णन किया ॥२७॥ राजा ने व्यापारी की इच्छा के अनुसार सुवर्ण देकर निःसीम आनन्द से युक्त होकर वेग पूर्वक घोड़े को पकड़ लिया ॥२८॥ उसके बाद अश्वपाल को बुलाकर तथा प्रयत्न पूर्वक देखकर सभा के लोगों को विदा करके राजा घर में चले गये॥२९॥ उसने राजा को रणाङ्गण में अनेक बार आकृष्ट किया था। शस्त्र जन्य व्रण को वह अपने सत्त्व के समान भूषण के रूप में धारण किया ॥३०॥ कुतूहल से परिपूर्ण राजा एक बार आखेट करते हुए अश्व पर सवार होकर वन में प्रवेश कर गये ॥३१॥ वे अपने सैनिकों को पीछे छोड़कर हरिणों से आकृष्ट होकर चारो ओर दौड़ते हुए प्यास से व्याकुल हो गये ॥३२॥ उसके बाद घोड़े से उतरकर जल खोजते हुए राजा घोड़े का पेड़ की शाखा में बाँधकर ऊपर शिला पर चढ़ गये ॥३३॥ गीता के पन्द्रहवें अध्याय के आधे श्लोक जिस पर लिखा था वायु के द्वारा वहाँ गिरा दिया गया राजा ने उसे देखा ॥३४॥ उस पत्र को बाँचने वाले राजा ने गीता के अक्षर समूह को देखकर घोड़ा गिर पड़ा और मुक्ति प्राप्त कर लिया। उसके बाद गाँठ को खोलकर उसके ऊपर से काठी को खोलकर राजा घोड़े को उठाना चाहे किन्तु वह उठा नहीं

ततः सरभभेरुण्डोनृपमाभाष्य सुस्वरम् । दिव्यं विमानमारुह्य जगाम त्रिदशालयम् ॥३७॥
ततो गिरिं समारुह्य ददर्शाश्रममुत्तमम् । पुन्नागकदलीचूतनालिकेरसमन्वितम् ॥३८॥
द्राक्षेक्षुवाटिकापूगनागकेसरचम्पकम् । खेलत्करभसारङ्गंनृत्यत्केकिकुलं नृपः ॥३९॥
प्रणिपत्य द्विजन्मानमुटजाभ्यन्तरस्थितम् । पप्रच्छ परया भक्तया मुक्तसंसारवासनात् ॥४०॥
तुरगोनिरगात्स्वर्गं हेतुना केन मे वद । इत्याकर्ण्य वचो राज्ञो द्विजन्मा वाचमूचिवान् ॥४१॥
त्रिकालदर्शी मन्त्रज्ञो विष्णुशर्मा महत्तरः ॥४२॥

द्विजन्मोवाच

आसीत्सेनापतिः पूर्वं भेरुण्डस्तवभूपते ! । त्वां निहत्य समं पुत्रैः कतु राज्यं समुद्यतः ॥४३॥
तावद्विषूचिकारोगात्कालधर्ममवाप्तवान् । कालेन बहुना प्रेत्य तत्वात्तु पारगोऽभवत् ॥४४॥
अथ पञ्चदशाध्यायश्लोकार्द्धं लिखितं क्वचित् ।
ततो वाचयतः श्रुत्वा निरगात्तुरगो दिवम् ॥४५॥
ततः समागतैस्तत्र परिवारजनैर्वृतः । प्रणिपत्य द्विजन्मानं हृष्टरोमा विनिर्गतः ॥४६॥
पत्रं तदेव लिखितं गीतापञ्चदशाक्षरम् । वाचयन्स महीपालो हर्षम्फुल्ललोचनः ॥४७॥
अभिषिच्य निजं पुत्रं मन्त्रविन्मन्त्रिभिः समम् ।
सिंहासने सिंहबलं मुक्तिमाप विशुद्धधीः ॥४८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे गीतापुरुषोत्तमयोगापरपञ्चदशाध्यायमाहात्म्ये एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८९॥

क्योंकि वह मर गया था ॥३५-३६॥ उसके बाद सरभ भेरुदण्ड ने राजा को सुन्दर स्वर में कहकर दिव्य विमान पर चढ़कर स्वर्ग चला गया ॥३७॥ उसके बाद पर्वत पर चढ़कर राजा एक उत्तम आश्रम को देखा। उसमें पुन्नाग, केला, आम और नारियल के वृक्ष लगे थे ॥३८॥ द्राक्षा ईख, सुपारी, केसर और चम्पा की वाटिका थी । उसमें हिरण खेल रहे थे । और नाचते हुए मयूर को राजा ने देखा ॥३९॥ उन्होंने झोपड़ी में बैठे हुए ब्राह्मण को अत्यन्त भक्ति पूर्वक प्रणाम किया और संसार की वासना से रहित मुनि से उन्होंने पूछा ॥४०॥ घोड़ा किस कारण से स्वर्ग में चला गया ? आप मुझे बतलाएँ । राजा की बात सुनकर ब्राह्मण ने कहा ॥४१॥ **ब्राह्मण ने कहा—** राजन् ! पहले आपका सेनापति भेरुदण्ड था । वह पुत्रों सहित आपको मारकर राज्य करना चाहा ॥४२-४३॥ उसी समय वह विषूचि रोग से मर गया । बहुत समय बाद वह मरकर तत्त्व से पार कर गया ॥४४॥ उसके बाद पन्द्रहवें अध्याय का आधे श्लोक को कहीं बाँचते हुए सुनकर घोड़ा का शरीर त्याग स्वर्ग चला गया ॥४५॥ उसके बाद आये हुए परिवार के लोगों से घिरा हुआ वह ब्राह्मण को प्रणाम करके वह मर गया ॥४६॥ उसी ने गीता के पन्द्रहवें अध्याय के श्लोक को लिखा । उससे प्रसन्न होकर बाँचते हुए राजा ॥४७॥ अपने पुत्र सिहबल अभिषिक्त करके उसको सिंहासन पर बैठाकर शुद्ध बुद्धि वाले वे मुक्ति प्राप्त कर लिए ॥४८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के गीता के पन्द्रहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन करने वाले एक सौ नवासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८९॥

एक सौ नबेवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि षोडशाध्यायगौरवम्। आकर्णयकुरङ्गाक्षि हर्षोत्कण्ठप्रवर्षिणि ! ॥१॥
अस्ति सौराष्ट्रिकं नाम्ना पुरं गुर्जरमण्डले। तत्रासीत्खङ्गबाहुश्च राजा चन्द्र इवाऽपरः ॥२॥
यदीयकुसुमामोदमालासुरभितोदरे । वारां निधौ हरिः स्वास्थ्यादशेत सह पद्मया॥३॥
यदीयकीर्त्तिकर्पूरकणा भान्ति नभोऽङ्गणे। कीर्णवैरिकृतश्वासमारुतैस्तारकाछलात् ॥४॥
यस्याऽसिधारा तीर्थेषु स्नाता वै रिपुभूभुजः ।
व्यावर्त्तन्ते दिवोऽद्यापि स्वर्गस्त्रीवाग्विमोहिताः ॥५॥
तस्याऽरिमर्दनो नाम मदहस्ती मदोद्धुरः। मदाम्बुधारासलिले गुञ्जद्भ्रमरमण्डलः ॥६॥
कपोलफलकोत्तीर्णमदधाराजलाविलः । बभौ यो निर्झरोद्गारैरञ्जनाद्रिरिवोच्चकैः ॥७॥
यस्याङ्गेषु व्यराजन्त चामराश्चन्द्रिकोज्ज्वलाः ।
किरणाइव शीतांशोः पतिताः काननोदरे ॥८॥
सिन्दूरपांसुपटलीराजत्कुम्भस्थलो बभौ । यः सन्ध्यावारिदव्याप्तं वियत्खण्डमिव स्थितम् ॥९॥
सकदाचिन्मोचयित्वाशृङ्खलान्निगडानपि । भङ्क्वालौहंदृढंस्तम्भंप्रह्यहसह्यनिशिनिर्गतः ॥१०॥
आधोरणगणान्सर्वान्पार्ष्णिविस्फूर्जदङ्कुशान् । क्रोधादवगणय्यैक निजशालां बभञ्जसः॥११॥
तीक्ष्णाङ्कुशमुखैर्विष्वग्घन्यमानोऽपि वैणवैः। दण्डैस्तु त्रासयामासुः सादिनो न मनागपि॥१२॥

सौराष्ट्र के राजा खड्ग बाहु के द्वारा ब्राह्मण के मुख से गीता के सोलहवें अध्याय के उपदेश से उद्धार वर्णन पूर्वक गीता के सोलहवें अध्याय का माहात्म्य

ईश्वर ने कहा— हे मृगनयनी ! अब मैं गीता के सोलहवें अध्याय का माहात्म्य बतला रहा हूँ। उसको तुम हर्षित होकर सुनो ॥१॥ गुजरात मण्डल में सौराष्ट्र नामक नगर है । वहाँ के राजा खड्गबाहु थे । वे दूसरे चन्द्रमा के समान थे ॥२॥ उस राजा की माला के पुष्पों की सुगन्धि से समुद्र के भीतर भगवान् स्वास्थ्य का अनुभव करके लक्ष्मीजी के साथ सो गये ॥३॥ उस राजा की कीर्ति रूपी कर्पूर से आकाश सुशोभित होता था । वे शत्रुओं के निःश्वास से विकीर्ण होकर मानो तारे बन गये ॥४॥ उस राजा की तलवार के धारा के जल से शत्रु राजाओं ने स्नान कर लिया वे स्वर्ग में अप्सराओं के गीत से मोहित होकर आज भी विद्यमान हैं ॥५॥ उस राजा का अरिमर्दन नामक हाथी आज भी मद को धारण करता है। उसके मदवारि जन्य जल में गुञ्जन करते हुए भ्रमर समूह उसके गालों की दानवारि से मत्त बने रहते हैं। उससे वह हाथी अञ्जनाद्रि के समान ऊँचा प्रतीत होता था । उस राजा के अङ्गों पर चमर चाँदनी के समान सुशोभित होता था । और वन में गिरे हुए चन्द्रमा की किरणों के समान सुशोभित होता था ॥६-८॥ उस हाथी का कुम्भस्थल सिन्दूर समूह से सुशोभित होता था । जो सायंकालीन मेघ से व्याप्त आकाश खण्ड के समान हाथी लगता था ॥९॥ वह एक बार जंजीर को छुड़ाकर तथा वेड़ी को तोड़कर लोहे के सुदृढ स्तम्भ को तोड़कर रात्रि में निकल पड़ा ॥१०॥ हस्तीपक समूह के अङ्कुश को क्रोध के मारे विना परवाह किए ही हाथी शाला को तोड़ दिया ॥११॥ तीक्ष्ण अङ्कुश तथा लाठी से मारे जाते हुए घुड़सवार उसको

ततो राजा समागत्य निशम्येदं कुतूहलम्। तत्र हस्तिकलाभिज्ञैः समं राजकुमारकैः ॥१३॥
अदृश्यत समागत्य राज्ञा दन्तावलो बली। मोहयन्नुद्भटाटोपो हताट्टालिकमालिकः ॥१४॥
ददृशुस्तं महाभीमं पौरा दूरतरं स्थिताः। गोपायन्तः शिशुन्भीत्या निवृत्तन्यकुतूहलाः ॥१५॥
रुद्धेषु तत्र मार्गेषु पलायनपरैर्जनैः । वासितेषु तदीयोग्रदानधाराम्बुसीकरैः ॥१६॥

स्नात्वा तेनाऽध्वना यातः सरसः कश्चन द्विजः ।
गीतानां षोडशाध्यायश्लोकान्कतिपयाञ्जपन् ॥१७॥

निषिद्ध्यमानो बहुधा पौरैराधोरणैरपि । अमन्यमानः करिणो भीतांश्चलितवांस्ततः ॥१८॥
फूत्कारेणसआवृष्वञ्जनान्विपरिमर्दयन् । स्पृशन्दानाम्बुजंतस्य स्वस्तिमान्निर्गतोद्विजः ॥१९॥
ततो महानभूत्तत्र विस्मयो वागगोचरः। मानसे भूमिपालस्य पौराणामपि पश्यताम् ॥२०॥
समाहूय ततो राजा फुल्लराजीवलोचनः । तमपृच्छद्द्विजं वाहादवतीर्य प्रणम्य च ॥२१॥

राजोवाच

अलौकिकमिदं विप्र ! त्वयाऽद्याऽचरितं महत् ।
कृतान्तकल्पादेतस्मात्कथं निर्यातवान्गजात् ॥२२॥
कमर्चयसि गीर्वाणं कं मन्त्रं जपसि प्रभो ! ।
का च सिद्धिस्तवाऽस्तीति द्विजन्मन्समुदीरय ॥२३॥

द्विज उवाच

गीतायाः षोडशाध्यायश्लोकान्कतिपयानहम् ।
जपामि प्रत्यहं भूप ! तेनैताः सर्वसिद्धयः ॥२४॥

ततो विहाय द्विरदं कौतूहलरसं नृपः । आजगाम द्विजन्मानमादाय निजमन्दिरम् ॥२५॥

बिल्कुल नहीं डरा सके ॥१२॥ उसके बाद राजा आकर और कुतूहल पूर्वक सुनकर हस्तिकला को जानने वाले राजकुमारों के साथ उस हाथी को देखे । उद्भट समूह को मोहित करते हुए अटारियों के ऊपर से नागरिक उसको दूर से ही देखे । भय के मारे बच्चों को छिपाते हुए उन सबों का कुतूहल समाप्त हो गया॥१३-१५॥ जब भागने वाले लोगों से रास्ता रुक गया, उसके दानवारि से वे सब सुगन्धित हो गये॥१६॥ उसी मार्ग से स्नान करके जाता हुआ कोई सरस ब्राह्मण गीता के सोलहवें अध्याय के कुछ मन्त्रों को जप रहा था ॥१७॥ हाथी से भयभीत नागरिक और हस्तीपक समूह उन्हें रोक रहे थे किन्तु उन सबों की परवाह किए बिना ही वे चल दिये ॥१८॥ अपने फूत्कार से आवृत करके लोगों को मसलने वाले हाथी के दानवारि का स्पर्श करते हुए वे कल्याण पूर्वक निकल गये ॥१९॥ उसके बाद अत्यन्त अद्भुत आकाशवाणी हुई । राजा के मन में तथा सभी नागरिकों के समक्ष वह आकाशवाणी हुयी ॥२०॥ उसके बाद विकसित कमल के समान नेत्रों वाले राजा ने दूत भेजकर उनको बुलवाया तथा कोठे से उतरकर उनको प्रणाम किया और पूछा ॥२१॥ **राजा ने कहा—** हे विप्र ! आज आपने अलौकिक कार्य किया है। यमराज के सदृश इस हाथी से आप कैसे बच गये ॥२२॥ हे प्रभो ! आप किस देवता की पूजा करते हैं और कौन सा मन्त्र जपते हैं । हे ब्रह्मन् ! आपकी कौन सी सिद्धि है आप मुझे बतलायें । **ब्राह्मण ने**

शुभं मुहूर्तमन्वीक्ष्य तोषयित्वा द्विजोत्तमम्। सुवर्णैर्लक्षसङ्ख्याकैर्गीतामन्त्रमुपाददे ॥२६॥
गीतायाः षोडशाध्यायश्लोकान्कतिपयानपि। समभ्यस्य ततोराजासत्कारेणसकौतुकः ॥२७॥
अथैकदा विनिर्गत्य बाह्यलीं सह सैनिकैः। तमेवामोचयद्राजा मत्तमाधोरणाद्गजम् ॥२८॥
विस्पष्टमितिवाक्यानि राज्यसौख्यममानयन्। तृणवज्जीवितं राजागजस्याग्रेऽविशत्ततः ॥२९॥
आदायगण्डफलकं मदपङ्क्तिनिरङ्कुशम्। आययौमन्त्रिविश्वासान्नृपः साहसिकाग्रणीः ॥३०॥

राहोरिवमुखादिन्दुः कालास्यादिव धार्मिकः।
साधुःखलस्य वदनान्नृपोनिरगमद्गजात् ॥३१॥
आगत्य नगरं राजा त्वभिषिच्य कुमारकम्।
गीतायाः षोडशाध्यायादवाप परमां गतिम् ॥३२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
गीताषोडशाध्यायमाहात्म्ये नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९०॥

कहा— राजन्! मैं गीता के सोलहवें अध्याय के कुछ मन्त्रों को जपता हूँ। उसीसे ये सारी सिद्धियाँ हैं॥२३-२४॥ उसके बाद हाथी को छोड़कर राजा उन ब्राह्मण को अपने घर लाये ॥२५॥ शुभ मुहूर्त को देखकर ब्राह्मण को एक लाख सुवर्ण प्रदान करके तथा ब्राह्मण को सन्तुष्ट करके उनसे गीता के मन्त्रों को प्राप्त किए ॥२६॥ गीता के सोलहवें अध्याय के कुछ मन्त्रों का अभ्यास करके सत्कार तथा कुतूहल पूर्वक॥२७॥ अपने सैनिकों के साथ राजा बाहर निकले राजा ने उस मदमत्त हाथी को हस्तीपक से खोल वाया ॥२८॥ स्पष्ट उन वाक्यों को पढ़ते हुए राज्य सुख की परवाह किए बिना राजा अपने जीवन को तृण के समान मानते हुए उस हाथी के समक्ष गये ॥२९॥ उसके गालों की मदवारि को लेकर मन्त्र में विश्वास करने वाले राजा आ गये ॥३०॥ राहु के मुख से निकले हुए चन्द्रमा के समान तथा काल के मुख से निकले हुए के समान दुष्ट के मुंह से निकले हुए के समान धार्मिक सज्जन पुरुष राजा हाथी से बचकर आ गये ॥३१॥ राजा नगर में आकर राजकुमार को अभिषिक्त करके गीता के सोलहवें अध्याय के अभ्यास द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लिए ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के गीता के सोलहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन करने वाले एक सौ नब्बेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९०॥

एक सौ एकयानबेवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

षोडशाध्यायसमार्थ्यं कथितं शृणु साम्प्रतम् ।
स्पष्टं सप्तदशाध्यायमहिमाम्भोनिधिं शिवे ! ॥१॥
खड्गबाहोः सुतस्यैवभृत्यो दुःशासनोऽभवत् ।
तंगजं धर्तुमागत्य गजात्प्राप्तो यमक्षयम् ॥२॥
तद्वासनानिबद्धात्मा गजयोनिमवाप्य च । गीतासप्तदशाध्यायं श्रुत्वा प्राप्तः परं पदम्॥३॥

देव्युवाच

दुःशासनो गजत्वं च प्राप्य मुक्तइति श्रुतम् ।
तद्देव वद कल्याण विस्तरेण मम प्रभो ! ॥४॥

ईश्वर उवाच

स्थितः कश्चन दुर्मेधा मण्डलीककुमारकैः । बहुमूल्यं पणं कृत्वा गजमारूढवांस्ततः ॥५॥
गत्वा कतिपयान्येव पदानि जनवारितः । नाम्ना दुःशासनो मूढः प्रौढवाक्यमुदीरयन्॥६॥
ततो निशम्य तद्वाक्यं क्रोधान्धः सिन्धुरोऽभवत् ।
न्यपतच्च स्खलत्पादः कम्पमानकुमारकैः ॥७॥
ततो निपतितं किञ्चिदुच्छ्वसन्तं गजोरुषा। ऊद्ध्र्वमुन्मूलयाञ्चक्रे कृतान्तकनिरङ्कुशः ॥८॥
गतासोरपि रोषेण तस्मास्थ्नां च गणं गजः ।
विकीर्णवान्पृथक्कृत्वा मत्तो दन्तावलस्ततः ॥९॥

मालव राजा के पुत्र के भृत्य के हाथी द्वारा मारे जाने के कारण गजत्व की प्राप्ति तथा गीता के सत्रहवें अध्याय के जप के प्रभाव से उनकी मुक्ति की प्राप्ति

ईश्वर ने कहा— मेरे द्वारा कहे गये सोलहवें अध्याय के माहात्म्य को तुमने सुना । हे शिवे ! अब तुम सत्रहवें अध्याय की महिमा को सुनो ॥१॥ राजा खड्गबाहु के पुत्र का भृत्य दुःशासन था । उस हाथी को पकड़ने के लिए आये हुए उसको हाथी ने मार दिया ॥२॥ उसकी वासना से युक्त होने के कारण वह गजयोनि को प्राप्त हुआ । गीता के सत्रहवें अध्याय को सुनकर उसने मुक्ति प्राप्त की ॥३॥ **देवी ने कहा—** मैंने यह सुना की दुःशासन गजत्व को प्राप्त करके मुक्त हो गया हे कल्याण करने वाले । प्रभो ! उसी को आप विस्तार से बतलायें ॥४॥ **ईश्वर ने कहा—** मण्डलीक कुमारों के एक दुष्ट बुद्धिवाला था । वह वहुमूल्य शर्त करके हाथी पर चढ़ गया ॥५॥ लोगों द्वारा रोके जाने पर भी कुछ ही डग चलकर दुःशासन नामक मूर्ख प्रौढ़ता पूर्वक कहने लगा ॥६॥ उसके उस वाक्य को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हाथी ने अत्यन्त क्रोध किया । कुमारों के द्वारा चलाये जाने पर भी पैर फिसल जाने के कारण गिर पड़ा ॥७॥ उसके पश्चात् गिरे हुए तथा कुछ श्वास लेते हुए उसको हाथी ने क्रोध के कारण निरङ्कुश यमराज के समान ऊपर उठाकर पटक दिया । मरे हुए भी उसकी हड्डियों को हाथी ने अलग-अलग करके छितरा दिया ॥८-९॥ उसके बाद

ततः कालेन सम्प्रेत्य गजयोनिमवाप सः। महान्तं कालमनयत्सिंहलद्वीपभूपतेः॥१०॥
मैत्री गरीयसी सार्द्धं खड्गबाहुमहीभुजा। ततोऽयं जलमार्गेण प्रापितो वारुणोमतः॥११॥
जयदेवेन खड्गबाहोः प्रीत्या नीतो महीभुजा।
जातिं स्मरन्स्वकीयां स पश्यन्बन्धून्सहोदरान्॥१२॥
दुःखेन महतास्तोकान्दिवसानत्यवाहयत्। उवास खड्गबाहोश्च गृहे तूष्णीमनिर्दिशन्॥१३॥
स कदाचित्तुसन्तुष्टः समस्याश्लोकपूरणे। कस्मैचित्कवये प्रादात्तमुपायनहस्तिनम्॥१४॥
तेन तेन कविना रोगोपद्रवभीरुणा। मालवक्षोणिपालस्य विक्रीतश्चैत्यकुञ्जरः॥१५॥
कियत्यपि गते काले पाल्यमानोऽपि यत्नतः।
मुमूर्षुरभवत्तत्र कुञ्जरो दुर्जरज्वरः॥१६॥
न जिघ्रति पयः शीतं नादत्ते कवलंगजः। स्वपित्यपि न सौख्येन मुञ्चत्यश्रूणिकेवलम्॥१७॥
ततो हस्तिपकाख्यातं वृत्तान्तमवनीपतिः। आकर्ण्य स समायातो यत्राऽऽस्ते ज्वरितो गजः॥१८॥
स चाऽवलोक्य भूपालं जगद्विस्मय कारिणीम्।
वाचमूचेगजः सम्यग्विसृष्टज्वरवेदनः॥१९॥
राजन्नशेषशास्त्रज्ञ! राजनीतिपयोनिधे!। निर्जितारातिसङ्घात मुरारिचरणप्रिय!॥२०॥
किमौषधैरलं वैद्यैः किं ध्यानैः किं नु जापकैः।
गीतासप्तदशाध्यायजापकं द्विजमानय॥२१॥
तेनाऽयंमामकोरोगः शाम्यत्यत्र न संशयः। यथादिष्टं गजेनाऽसौ तथाचक्रे नराधिपः॥२२॥
ततो गजत्वमुत्सृज्यमुक्तो दुःशासनोऽभवत्। तेन विप्रेणाऽभिमन्त्र्यजले क्षिप्ते तदुत्तमे॥२३॥

कालवशात् मरकर वह हाथी की योनि को प्राप्त किया। उसने सिंहलद्वीप के राजा के यहाँ बहुत समय बिताया॥१०॥ अत्यधिक मित्रता के कारण खड्ग बाहु राजा ने जलमार्ग से उसे प्राप्त किया॥११॥ जयदेव ने खड्गबाहु उसे को प्रदान किया। वह अपने जन्म का स्मरण करते हुए अपने सहोदर भाइयों को देखा॥१२॥ उसने अत्यन्त दुःख पूर्वक कुछ समय बिताया। वह मौन होकर खड्ग बाहु के घर में रहा॥१३॥ राजा श्लोक की समस्या पूर्ति से प्रसन्न होकर किसी कवि को उपहार रूप से उस हाथी को दे दिये॥१४॥ विभिन्न रोग तथा उपद्रव से भयभीत होकर कवि ने उसको मालव राज को बेंच दिया॥१५॥ कुछ समय तक प्रयत्न पूर्वक पाले जाते हुए भी वह हाथी ज्वर से ग्रस्त होने के कारण मरने सा हो गया॥१६॥ वह हाथी न तो ठंढ़ा पानी पीता था और न कुछ खाता था। केवल आँसू बहाते रहता था। वह सुख पूर्वक सोता भी नहीं था॥१७॥ उसके बाद हस्तीपक ने उसकी स्थिति को राजा को बतलाया। उसे सुनकर राजा हाथी के पास आये॥१८॥ उसने राजा को देखकर जगत् को आश्चर्यित करने वाली वाणी से कहा॥१९॥ हे सम्पूर्ण शास्त्रों को जानने वाले, राजनीति के सागर, हे सभी शत्रुओं को जीत लेने वाले तथा भगवान् मुरारि के चरणों में प्रेम रखने वाले॥२०॥ औषधि, वैद्य, ध्यान तथा जप से कोई भी लाभ नहीं होने वाला है। गीता के सत्रहवें अध्याय का जप करने वाले ब्राह्मण को लाइये॥२१॥ उसी से यह मेरा रोग निश्चित रूप से शान्त होगा। हाथी ने जैसा कहा राजा ने भी वैसा ही किया॥२२॥ जब उस ब्राह्मण ने जल को अभिमन्त्रित करके जल को हाथी के शिर पर डाला तो दुःशासन गजत्व को

अथ दिव्यं समारूढं विमानमवनीपतिः । तं दुःशासनमद्राक्षीत्पाकशासनतेजसम् ॥२४॥

राजोवाच

किञ्जातीयः किमात्मा त्वं किं वृत्तइति मे वद ।
केन वा कर्मणा जातो गजः कथमिहागतः ॥२५॥
पृष्टो राज्ञा विमुक्तोऽसौ विमानस्थः स्थिराक्षरम् ।
वृत्तं यथा यदाचख्यौ निजं दुःशासनः क्रमात् ॥२६॥

गीतासप्तदशाध्यायं जपन्मालवभूपतिः । नरवर्माऽभवन्मुक्तः कालेनाऽल्पीयसा ततः ॥२७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे गीतासप्तदशाध्यायमाहात्म्ये एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥

एक सौ बानबेवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

उक्तसप्तादशाध्यायगौरवं भवता शिव ! । स त्वमष्टादशाध्यायमहिमानमुदीरय ॥१॥

ईश्वर उवाच

आकर्णयचिदानन्दनिष्पादि निगमोत्तरम्। पुण्यमष्टादशाध्यायमाहात्म्यं गिरिनन्दिनि ॥२॥
समस्तशास्त्रसर्वस्वं श्रोत्रप्राप्तं रसायनम् । संसारयातनाजालविदारणपरायणम् ॥३॥

त्यागकर मुक्त हो गया ॥२३॥ राजा ने देखा कि वह दिव्य विमान पर बैठकर तथा इन्द्र के समान तेजःसम्पन्न हो गया ॥२४॥ **राजा ने कहा**— तुम मुझे बतलाओ कि तुम किस जाति के हो । किस कर्म के कारण हाथी होकर यहाँ आये हो ॥२५॥ राजा के द्वारा पूछे जाने पर विमान पर बैठा हुआ वह दुःशासन स्पष्ट शब्दों से अपना वृत्तान्त बतलाया ॥२६॥ गीता के सत्रहवें अध्याय को जपते हुए मालव राज नरवर्मा थोड़े ही समय में मुक्त हो गये ॥२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के अन्तर्गत गीता के सत्रहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ एक्यानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९१।।

गीता के अठारहवें अध्याय के पाँच श्लोकों का जप करने वाले को इन्द्रपद की प्राप्ति पूर्वक अठारहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— हे शिवजी ! आपने सत्रहवें अध्याय का माहात्म्य बतलाया अब आप अठारहवें अध्याय का माहात्म्य बतलाएँ ॥१॥ **ईश्वर ने कहा**— हे पार्वती ! अब तुम चिदानन्द को प्रदान करने वाले तथा वेदों के समान पवित्र उत्तर भाग अठारहवें अध्याय का माहात्म्य सुनो ॥२॥ यह सभी शास्त्रों का

परं रहस्यं सिद्धानामविद्योन्मूलनक्षमम् । चैतन्यं कैटभारातेरग्रगण्यं परं पदम् ॥४॥
विवेकवल्लरीमूलं कामक्रोधमलापहम् । पुरन्दरादिगीर्वाणचित्तविश्रामकारकम् ॥५॥
सनकादिमहायोगिमनोरञ्जनकारणम् । पाठमात्रपराभूतकालकिङ्करगर्जितम् ॥६॥
अष्टोत्तरशतव्याधिमूलोन्मूलनकारकम् । नातःपरतरं किञ्चिद्रहस्यं हसगामिनि !॥७॥
उपतापत्रयहरं महापातकनाशनम् । यथाकालेष्वहं नित्यो यथा पशुषु कामधुक् ॥८॥
यथा व्यासो मुनीन्द्रेषु व्यासेषु ब्रह्मवित्तमः । यथा दिवौकसां शक्रो गुरुः शक्राद्यथा वरः ॥९॥
यथारसानांपीयूषमुत्तमं विश्वविश्रुतम् । यथागिरीणांकैलासो यथाचेन्द्रोदिवौकसाम् ॥१०॥
तीर्थानां पुष्करं तीर्थं यथा पुष्पेषु पङ्कजम् । पतिव्रतासु नारीषु यथा लोकेष्वरुन्धती ॥११॥
यथा मखेष्वश्वमेधो यथोद्यानेषु नन्दनम् । यथा रुद्रेषु सर्वेषु वीरभद्रो ममाऽनुगः ॥१२॥
यथा दानेषु भूदानं यथासिन्धुषु गौतमी । यथा लोके हरिक्षेत्रं प्रशस्तं धर्मकर्मसु ॥१३॥
तथैवाष्टादशाध्यायमाहात्म्यं भुवनोत्तरम् । तत्राख्यानमिदं पुण्यं भक्तयाकर्णयपावति !॥१४॥
यदाकर्णनामात्रेण जन्तुः पापैः प्रमुच्यते । अस्ति मेरुगिरेः शृङ्गे पुरी रम्याऽमरावती ॥१५॥
पुरा मम विनोदाय निर्मिता विश्वकर्मणा । निरन्तरं गुणयुता कोटिगीर्वाणसेविता ॥१६॥
तेजःपुञ्जवती साक्षाद्ब्रह्मविद्येव विश्रुता । चिन्तामणिशिलाबद्धाः प्रासादायत्रकामदाः ॥१७॥

सर्वस्व रूप है । कानों को प्राप्त होने वाला रसायन है । यह सांसारिक यातना समूह को विदीर्ण करने वाला है । परम रहस्य स्वरूप तथा सिद्धों के अज्ञान को विनष्ट करने में समर्थ है । श्रीभगवान् विष्णु का सर्वोत्तम ज्ञान है तथा परम प्राप्य है ॥३-४॥ यह अध्याय विवेक लता का मूल है तथा काम, क्रोध आदि दोषों को दूर करने वाला है । इन्द्र आदि देवताओं को विश्राम प्रदान करने वाला है ॥५॥ सनकादिक महायोगियों का मनोरञ्जन करने वाला है । इसका पाठ करने मात्र से काल के दूतों की गर्जना को पराजित करने वाला यह ॥६॥ अष्टोत्तर शत व्याधियों को विनष्ट करने वाला है । हे हंस के समान चलने वाली! इससे श्रेष्ठ रहस्य कोई नहीं है ॥७॥ यह तीनों उपतापों को तथा महापातकों को विनष्ट करने वाला है । जिस तरह कालों में मैं नित्य हूँ, पशुओं में कामधेनु श्रेष्ठ है । जैसे मुनीन्द्रों में व्यास श्रेष्ठ हैं और व्यासों में ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ है, देवताओं में इन्द्र श्रेष्ठ हैं और इन्द्र से भी महान् बृहस्पति हैं ॥८-९॥ जैसे रसों में अमृत श्रेष्ठ विश्व विख्यात है, जैसे पर्वतों में कैलास श्रेष्ठ हैं और देवताओं में इन्द्र श्रेष्ठ हैं ॥१०॥ तीर्थों में जैसे पुष्कर श्रेष्ठ है पुष्पों में कमल श्रेष्ठ है । सभी लोकों की पतिव्रता नारियों में जैसे अरुन्धती श्रेष्ठ हैं ॥११॥ जैसे यागों में अश्वमेध याग श्रेष्ठ है, उद्यानों में नन्दन वन श्रेष्ठ है । रुद्रों में मेरे अनुचर वीरभद्र श्रेष्ठ है ॥१२॥ जैसे दानों में पृथिवी का दान श्रेष्ठ है नदियों में गोमती नदी श्रेष्ठ है, लोक संसार में जैसे श्रीहरि का क्षेत्र सभी धर्म कर्मों के लिए श्रेष्ठ है ॥१३॥ उसी तरह अठारहवाँ अध्याय का माहात्म्य श्रेष्ठ है । उसी के विषय में यह कथा भी श्रेष्ठ है, हे पार्वति ! उसको तुम भक्ति पूर्वक सुनो ॥१४॥ उसको सुनने मात्र से जीव पापों से रहित हो जाता है । मेरु पर्वत के शिखर पर अमरावती नाम की नगरी है॥१५॥ प्राचीन काल में मेरे विनोद के लिए विश्वकर्मा ने उसे बनाया था वह सभी गुणों से सम्पन्न तथा करोड़ों देवताओं द्वारा सेवित है ॥१६॥ वह साक्षात् तेजो राशि है तथा ब्रह्म विद्या के समान विख्यात है।

जयन्ति मेरुशिखरे चतुर्मुखपुरावधि । यत्र कल्पद्रुमच्छाया सुखासीनापुलोमजा ॥१८॥
शृणोति श्यामलागीर्भिर्गीतं गन्धर्वयोषिताम्। यत्राऽऽस्ते सबलारातिर्देवैश्च दलितायुषाम् ॥१९॥
दैत्यानां रक्तकल्लोलैः स्वर्धुनीशोणतां गता ।
पुरातनसुधास्वादु स्मारंस्मारंदिवौकसः ॥२०॥
धयन्ति यत्र क्षुत्क्षामाः कलांप्रत्यहमैन्दवीम्। तस्यांकैवल्यकल्पायामासीत्पूर्वंशतक्रतुः ॥२१॥
शचीसमन्वितःश्रीमान्सर्वगीर्वाणसेवितः । स कदाचित्सुखासीनोविष्णुदूतैरधिश्रितम् ॥२२॥
सहस्त्रनेत्रमायान्तमपश्यत्पुरुषं परम् । ततस्तदीयतेजोभिरभिभूतः पुरन्दरः ॥२३॥
मणिसिंहासनात्तूर्णं पतितः स्थानमण्डपे । सिंहासनात्प्रयातस्य ततस्तस्य हरेर्भटाः ॥२४॥
गीर्वाणगणसाम्राज्यपट्टबन्धं वितेनिरे । अथ तस्याऽभिषिक्तस्य महेन्द्रस्य पुलोमजा ॥२५॥
वामाङ्कमारुरोहाऽऽशु दिव्यदुन्दुभिनिःस्वनैः। अथ त्रिदिवसंगीतगीर्वाणाः प्रमदान्विताः ॥२६॥
सुरा नीराजयामासुर्दिव्यरत्नैः सुरस्त्रियः। ततो वै ऋषयो वेदैराशीर्वादांस्तदा ददुः ॥२७॥
रम्भाद्या ननृतुस्तस्य पुरस्तादप्सरोगणाः। गन्धर्वाललितालापाञ्जगुर्मङ्गलकौतुकम् ॥२८॥
एवं नूतनमिन्द्रं तु जुष्टं बहुभिरुत्सवैः। विना शतक्रतुं दृष्ट्वा शक्रो विस्मयमाययौ ॥२९॥
न मया विहितामार्गे तडागा न विनिर्मिताः। न रोपितामहावृक्षाःपान्थविश्रान्तिकारकाः॥३०॥
न कदाचिदहो दृष्टो देवस्त्रिपुरभैरवः। निधिवासे स्थिता देवी पूजिता न मदालसा॥३१॥
मेघङ्करस्थितः शार्ङ्गधरो नैव निरीक्षतः। न कृतं विरजे स्नानं नैव काशीं पुरीं गतः॥३२॥

चिन्तामणि की शिलाओं से निर्मित उसके महल सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥१७॥ सुमेरु के शिखर पर ब्रह्मपुरी तक वह विजयिनी है वहाँ कल्पवृक्ष की छाया में इन्द्राणी सुख पूर्वक बैठती हैं ॥१८॥ गन्धर्वों की युवती नारियों के मुख से गीत सुनती हैं । वहाँ पर इन्द्र नित्य देवताअें के साथ रहते हैं॥१९॥ दैत्यों के रक्त की लहरियों से गङ्गा वहाँ लाल बनी रहती हैं । प्राचीन अमृत का आस्वाद लेने वाले देवता उसको सदा याद करते रहते हैं ॥२०॥ वहाँ पर भूखे प्यासे देवता चन्द्रमा की कला का पान करते हैं । उस कैवल्य के समान नगरी में पहले वहाँ इन्द्र निवास करते थे शची के साथ इन्द्र की सभी देवता सेवा करते थे । इन्द्र ने एक बार भगवान् विष्णु के दूतों द्वारा सेवित आते हुए दूसरे इन्द्र को देखा । उसके बाद इन्द्र उसके तेज से अभिभूत हो गये ॥२१-२३॥ वे शीघ्र ही मणि सिंहासन से सभा मण्डप में गिर गये । सिंहासन पर गिरे हुए उसको श्रीहरि के दूतों ने उस देवगण के सम्राज्य का पट्टबन्ध प्रदान कर दिये। उसके पश्चात् महेन्द्र की पुलोमजा देवदुन्दुभि की धविन के साथ उनके बायें भाग में जाकर बैठ गयी । अपनी पत्नियों के साथ देवगण सङ्गीत करने लगे ॥२४-२६॥ देवताओं की स्त्रियों ने उसकी रत्नों से आरती की । उसके पश्चात् ऋषियों ने वैदिक मन्त्रों से उनको आशीर्वाद प्रदान किया ॥२७॥ रम्भा आदि अप्सराओं के समूह ने उसके समक्ष नृत्य किया । गन्धर्वों ने ललित स्वर में मङ्गल गीत गाया ॥२८॥ इस तरह नवीन इन्द्र अनेक उत्सव से प्रसन्न हुए । शतक्रतु के बिना उनको देखकर इन्द्र आश्चर्यित हो गये॥२९॥ मैंने गर्भ में कभी सरोवर नहीं बनाया । पथिकों को विश्राम प्रदान करने वाले महान् वृक्ष को भी मैंने नहीं रोपा ॥३०॥ मैंने कभी त्रिपुर भैरव का दर्शन नहीं किया । निधिवास में रहने वाली देवी मदालसा की कभी पूजा भी मैंने नहीं की ॥३१॥ मैने मेघों को रचने वाले भगवान् शाङ्गधर का कभी दर्शन नहीं किया । मैंन

न देववाटिकावासी दृष्टो नरहरिः स्वयम् । एरण्डविष्णुर्हेरम्बो न जातु परिशीलितः ॥३३॥
रेणुका नेक्षिता जातु मातापुरनिवासिनी । न भक्त्या पूजिता देवी दानापुरनिवासिनी ॥३४॥
न भक्त्या त्रिपुरे दृष्टस्त्रिलिङ्गस्त्र्यम्बकः स्वयम् ।
न शार्दूलतडागस्थो वीक्षितः सोमनाथकः ॥३५॥
रेवापुरस्थितो देवो घुसृणेशो न वीक्षितः । नागदन्तपुरे ख्यातो नागनाथो न वीक्षितः ॥३६॥
पर्णग्रामस्थितो दृष्टो न महानमृतेश्वरः । न तुङ्गभद्रतीरस्थो दृष्टो हरिहरः स्वयम् ॥३७॥
न वेङ्कटाद्रिनिलयः श्रीनिवासः सुलक्षितः । कावेरीकर्णिकातीरे श्रीरङ्गो नैव वीक्षितः॥३८॥
दीनास्त्वनाथाः क्रोशन्तः कारागारान्न मोचिताः ।
अन्नदानेन दौर्भिक्षे प्राणिनो नैव पूजिताः ॥३९॥
रात्रौ रात्रौ कृता क्वापि निर्जले नोदकप्रपा ।
न गौतम्यां कृतं स्नानं न दृष्टो हरिणेश्वरः ॥४०॥
कृष्णावेण्यां च न कृतं स्नानं कन्यागते गुरौ ।
दत्तं नो भूखण्डमण्पि कवयोनैव पूजिताः ॥४१॥
न तीर्थेषु कृतं सत्रं न ग्रामेषु कृता मखाः ॥४२॥
पुष्करिण्यो न विहिता मध्ये मार्गं बहूदकाः ।
न प्रासादाः कृताः क्वाऽपि ब्रह्मविष्णुपिनाकिनाम् ॥४३॥
न जातुचिद्भयाक्रान्ता रक्षिताः शरणागताः ।
कथमेकेन पुण्येन देवदत्तमिहार्जितम् ॥४४॥

कभी भी विरजा नदी में स्नान नहीं किया और न मैं काशीपुरी में गया ॥३२॥ देव वाटिका में निवास करने वाले भगवान् नृसिंह का भी मैंने दर्शन नहीं किया । मैंने एरण्ड विष्णु गणेश का भी कभी चिन्तन नहीं किया ॥३३॥ मातापुर में निवास करने वाली रेणुका का भी कभी दर्शन मैंने नहीं की । दानापुर में निवास करने वाली देवी की भी मैंने पूजा नहीं की ॥३४॥ मैंने त्रिपुर में त्रयम्बक के लिङ्ग का भी दर्शन नहीं किया । शार्दूल तड़ाग में रहने वाले सोमनाथ का भी मैंने दर्शन नहीं किया ॥३५॥ रेवापुर में स्थित घुसृणेशदेव का भी मैंने दर्शन नहीं किया । नागपुर में विख्यात नागनाथ का भी मैंने दर्शन नहीं किया॥३६॥ पर्णग्राम में स्थित महान् अमृतेश्वर को भी मैंने नहीं देखा । तुङ्गभद्रा नदी के तट पर स्थित हरिहर का भी मैंने दर्शन नहीं किया ॥३७॥ वेङ्कटाद्रि निवासी भगवान् श्रीनिवास का भी मैंने दर्शन नहीं किया । कावेरी की कर्णिका में स्थित श्रीरङ्गनाथ भगवान् का भी मैंने दर्शन नहीं किया ॥३८॥ रोते हुए दीनों तथा अनाथों को कभी मैंने कारागार से मुक्त नहीं किया । दुर्भिक्ष के समय मैंने कभी अन्नदान देकर जीवों की पूजा नहीं की ॥३९॥ प्रत्येक रात्रियों में मैंने निर्जल स्थानों पर प्रपा को स्थापित नहीं किया । न तो मैंने गौमती नदी में स्नान किया और न हरिणेश्वर का दर्शन ही किया ॥४०॥ कन्या राशि के गुरु के होने पर मैंने कृष्णावेणी में स्नान भी नहीं किया । न तो मैंने पृथिवी का दान दिया और न कवियों की पूजा की ॥४१॥ न तो मैंने तीर्थों में जाकर सत्र किया और न गावों में जाकर यज्ञ किया ॥४२॥ मैं मार्ग के वीच में बहूत जल वाली पुष्करिणियों का निर्माण भी नहीं किया । मैंने ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्करजी का कहीं मदिर भी नहीं

इति चिन्ताकुलो भूत्वा हरिं प्रष्टुं पुरन्दरः। ययौ सरभसं खिन्नः क्षीराकूपारगह्वरम्॥४५॥
तत्र प्रविश्य गोविन्दं कृतनिद्रं नवैः स्तवैः। अकस्मान्निजसाम्राज्यभ्रंशदुःखमुवाच ह॥४६॥

इन्द्र उवाच

रमाकान्त भवत्प्रीत्यै कृतं क्रतुशतं पुरा। तेन पुण्येन सम्प्राप्तं मया पौरन्दरं पदम्॥४७॥
इदानीं नूतनः कोऽपि जातो दिवि पुरन्दरः।
न तेन धर्मोविहितो न तेन क्रतवः कृताः॥४८॥
मम सिंहासनं दिव्यं कथमाक्रान्तमच्युत ! ॥४९॥

महादेव उवाच

इत्येवं वदतस्तस्य श्रुत्वा वाचं रमापतिः। उन्मीलितस्मिताक्षोऽसावुवाच मधुरम्वचः॥५०॥

श्रीभगवानुवाच

किं दानैरल्पफलदैः किं तपोभिः किमध्वरैः।
वर्त्तमानःक्षितितले स माम्प्रीणितवान्पुरा॥५१॥

इन्द्र उवाच

भगवन्कर्मणा केन स त्वां प्रीणितवान्द्विजः।
यत्प्रीत्याभगवान्प्रादात्तस्मैपौरन्दरंपदम्॥५२॥

श्रीभगवानुवाच

जपत्यष्टादशाध्याये गीतानांश्लोकपञ्चकम्। यत्पुण्येन च सम्प्राप्तं तवसाम्राज्यमुत्तमम्॥५३॥
सर्वपुण्यशिरोरत्नभूतेन त्वं स्थिरो भव। इतिविष्णोर्वचः श्रुत्वा ज्ञात्वोपायं पुरन्दरः॥५४॥
विप्रवेषधरो भूत्वा गतो गोदावरीतटम्। तत्राऽपश्यत्पुरं पुण्यं कालिकाग्राममुत्तमम्॥५५॥

बनवाया ॥४३॥ मैंने कभी भयभीत शरणागतों की रक्षा भी नहीं की। एक ही पुण्य से मैंने कैसे देवराज्य को प्राप्त किया ?॥४४॥ इस तरह की चिन्ता से व्याकुल होकर इन्द्र वेग पूर्वक खिन्न होकर क्षीर सागर के बीच में गये ॥४५॥ वहाँ पर सोये हुए भगवान् गोविन्द की नवीन स्तुवों से स्तुति की। अपने अकस्मात् राज्य भ्रंशजन्य दुःख को इन्द्र ने बतलाया ॥४६॥ **इन्द्र ने कहा—** हे रमाकान्त ! मैंने सौ क्रतुओं से आपकी पूजा की है। उसी पुण्य से मैंने इन्द्र का यह पद प्राप्त किया है ॥४७॥ इस समय स्वर्ग में कोई नवीन इन्द्र हो गये हैं। उसने न तो कोई धर्म किया है ओर न उसने यज्ञों को ही किया है ॥४८॥ हे अच्युत ! उसने मेरे दिव्य सिंहासन को कैसे आक्रान्त कर लिया ॥४९॥ **महादेवजी ने कहा—** इस तरह से कहने वाले इन्द्र की वाणी को सुनकर भगवान् लक्ष्मीपति ने अपनी आँखों को खोला और वे मधुर वाणी में कहें ॥५०॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** अल्प फल प्रदान करने वाले दान, तपस्या और यज्ञ से कोई लाभ नहीं है। वह पृथिवी पर रहकर मुझको प्रसन्न किया है ॥५१॥ **इन्द्र ने कहा—** हे भगवन् ! किस कर्म के द्वारा उस ब्राह्मण ने आपको प्रसन्न किया है ? जिससे प्रसन्न होकर आपने उसे इन्द्र का पद प्रदान किया है ?॥५२॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** वह गीता के अठारहवें अध्याय के पाँच श्लोकों का जप करता है। उसी के पुण्य से उसने तुम्हारे साम्राज्य को प्राप्त किया है ॥५३॥ वह सभी पुण्यों से उत्तम पुण्य है। तुम स्थिर रहो इस तरह से भगवान् विष्णु की वाणी को सुनकर तथा उपाय को

यत्रकालेश्वरो देवो वर्त्तते कालमर्दनः । तत्र गोदावरीतीरे स्थितं परमधार्मिकम् ।।५६।।
अपश्यत्करुणावन्तं ब्राह्मणं वेदपारगम् । नित्यमष्टादशाध्यायं जपन्तं दान्तचेतसम् ।।५७।।
ततस्तच्चरणद्वन्द्वे लुठित्वा परया मुदा। सत्वमष्टादशाध्यायमपठत्तेन शिक्षितम् ।।५८।।

अथ पुण्येन तेनाऽसौ विष्णोः सायुज्यमाययौ ।
हित्वा पुरन्दरादीनां देवानां परमल्पकम् ।।५९।।

ज्ञात्वाऽतीव मुदा युक्तो वैकुण्ठमगमत्पुरम्। अतएव परं तत्त्वं मुनीनामिदमुत्तमम् ।।६०।।
दिव्यमष्टादशाध्यायमाहात्म्यं कथितं मया। यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।६१।।
इत्येवं गीतामाहात्म्यं कथितंपापनाशनम्। पुण्यं पवित्रमायुष्यंस्वर्ग्यंस्वस्त्ययनंमहत् ।।६२।।

यः शृणोति महाभागे ! श्रद्धया संयुतः पुमान् ।
सर्वयज्ञफलं प्राप्य विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।।६३।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे सतीश्वरसम्वादे गीताष्टादशाध्यायमाहात्म्ये द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९२।।

जान कर इन्द्र ।।५४।। ब्राह्मण का वेष बनाकर गोदावरी के तट पर गये । वहाँ पर उन्होंने उत्तम कालिका ग्राम को देखे ।।५५।। वहाँ पर कालेश्वर देव जो काल का मर्दन करने वाले हैं, का दर्शन किया । गोदावरी के तट पर उन्होंने परग धार्मिक ब्राह्मण को देखा । वे ब्राह्मण वेद पारङ्गत तथा करुणा करने वाले थे । उनका चित्त वश में था वे प्रतिदिन अठारहवें अध्याय का जप करते थे ।।५६-५७।। इन्द्र उस ब्राह्मण के चरणों में लोटकर अत्यन्त आनन्द पूर्वक उनसे अठारहवें अध्याय का पढ़े और ब्राह्मण ने उनको उसकी शिक्षा दी ।।५८।। उसके बाद उसी पुण्य से उस इन्द्र ने भगवान् की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कर लिया। उन्होंने अल्पफल देने वाले इन्द्र आदि के पद को त्याग दिया । उसको जानकर वे प्रसन्नता पूर्वक वैकुण्ठ लोक में चले गये । इसीलिए यह अध्याय मुनियों के लिए परम तत्त्व है ।।५९-६०।। मैंने अठारहवें अध्याय का दिव्य माहात्म्य सुनाया । इसको सुनने मात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।।६१।। इस तरह से मैंने सम्पूर्ण गीता का माहात्म्य सुनाया । यह पापों का विनाश करने वाला है । यह अत्यन्त पुण्यमय, पवित्र, आयु प्रदान करने वाला स्वर्ग प्रदान करने वाला और कल्याणकारी है ।।६२।। जो श्रद्धा पूर्वक इसको सुनता है, वह सभी यज्ञों के फल को प्राप्त करके भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है ।।६३।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के उत्तर खण्डान्तर्गत व सती महेश्वर संवाद में गीता के अठारहवें अध्याय का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ बानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९२।।

एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

देवदेवमहादेव सर्वज्ञ सकलार्थद । कृपां मयि परां कृत्वा यत्पृच्छे तद्वदस्व मे ॥१॥
श्रुतं च गीतामाहात्म्यं बह्वाश्चर्यकथायुतम्। तेन मे भक्तिरुत्पन्नाश्रोतुंकृष्णकथांपराम् ॥२॥
पुराणेषु तु सर्वेषु श्रीमद्भागवतम्परम्। यत्र प्रतिपदं कृष्णो गीयते बहुधर्षिभिः ॥३॥
तन्माहात्म्यं यथा तत्त्वं सेतिहासं वदाऽधुना ॥४॥

ईश्वर उवाच

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् । कथामृतरसस्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥५॥

शौनक उवाच

अज्ञानध्वान्तविध्वंसि कोटिजन्माऽघनाशनम् ।
श्रीमद्भागवताख्यानं सूताऽऽख्याहि रसायनम् ॥६॥

भक्तिज्ञानविरागाढ्यो विवेको वर्द्धतेकथम् । मायामोहनिरासश्चवैष्णवैःक्रियतेकथम् ॥७॥
इहघोरेकलौप्रायो जीवश्चाऽसुरतांगतः । क्लेशाक्रान्तस्य तस्याऽथशोधनेकिंरसायनम् ॥८॥
श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् । कृष्णप्रीतिकरं यच्च साधनं तद्वदाऽधुना॥९॥
चिन्तामणिं लोकसुखं सुरेन्द्रास्पदसम्पदम्। प्रयच्छतिगुरुःप्रीतो वैकुण्ठंचातिदुर्लभम् ॥१०॥

सूत उवाच

प्रीतोऽहं ते द्विजश्रेष्ठ कथयिष्ये यथाश्रुतम् ।
सारात्सारतरं यच्च संसारभयनाशनम् ॥११॥

सूत शौनक संवाद के माध्यम से श्रीमद्भागवत महापुराण का माहात्म्य

पार्वतीजी ने कहा— हे देवाराध्य महादेव ! हे सर्वज्ञ ! हे सभी अर्थों को प्रदान करने वाले जो मैं पूछती हूँ उसे आप कृपा करके बतलाइये ॥१॥ बहुत आश्चर्य पूर्ण कथाओं से युक्त मैंने गीता के माहात्म्य को सुना । उससे भगवान् कृष्ण की कथा सुनने में मेरी भक्ति उत्पन्न हो गयी है ॥२॥ सभी पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण श्रेष्ठ है । उसमें अनेक ऋषियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की कथा कहा है ॥३॥ उसका आप तत्त्वानुकूल माहात्म्य आप बतलायें ॥४॥ **ईश्वर ने कहा—** नैमिषारण्य में बैठे हुए महाबुद्धिमान् सूतजी को प्रणाम करके कथा के रस का आस्वाद लेने में कुशल शौनकजी ने पूछा ॥५॥ **शौनक महर्षि ने कहा—** अज्ञानान्धकार को विनष्ट करने वाले तथा करोड़ों जन्मों के पाप को विनष्ट करने वाले हे सूतजी! आप श्रीमद्भागवत की कथा रूपी रसायन को कहें ॥६॥ भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से परिपूर्ण विवेक कैसे बढ़ता है । वैष्णवजन माया और मोह का निरास कैसे करते हैं ॥७॥ इस घोर कलिकाल में जीव आसुर प्रकृति के हो गये हैं । क्लेश से युक्त उनका शोधन करने वाला कौन सा रसायन है ॥८॥ जो सभी कल्याणों में तथा पवित्र करने में श्रेष्ठ तथा भगवान् कृष्ण में प्रेम को उत्पन्न करने वाला जो साधन है उसे आप बतलायें ॥९॥ चिन्तामणि सांसारिक सुख को प्रदान करता है तथा इन्द्र के समान सम्पत्ति प्रदान करता है, किन्तु गुरुजन तो प्रसन्न होकर दुर्लभ वैकुण्ठ को प्रदान कर देते हैं ॥१०॥ **सूतजी ने कहा—**

भक्तिप्रवर्द्धकं यच्च कृष्णसंतुष्टिहेतुकम्। तन्मे कथयतः साधो ! सावधानतया शृणु ॥१२॥
कालव्यालमुखालीढजगत्राणविधायकम् । श्रीमद्भागवतंशास्त्रं कलौकृष्णेनभाषितम्॥१३॥
एतस्मादपरं किंचिन्मनःशुद्धिकरं न हि। जन्मान्तरकृतैः पुण्यैर्लभ्यतेसाधुभिस्तुतत् ॥१४॥
राज्ञः परीक्षितो मोक्षं ज्ञात्वा कमलसम्भवः ।
तोलयामास शास्त्राणि पुराणानि महान्ति च ॥१५॥
श्रीमद्भागवतं तत्र गरीयो भुवि संगतम्। श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा॥१६॥
इति सञ्चिन्त्य बहुशो मुनयः साधवोऽमलाः ।
मेनिरे भगवद्रू श्रीमद्भागवतं क्षितौ ॥१७॥
पठनाच्छ्रवणाद्यस्य नरो याति हरेःपदम्। वर्षेण श्रवणं तस्य बहुसौख्यप्रदायकम् ॥१८॥
मासेन भक्तिराभास्यं लभते द्विजसत्तम !। सप्ताहेनश्रुतं च (चै) तत्सर्वथा मुक्तिदायकम्॥१९॥
किं बहूक्तेन वै साधो श्रीमद्भागवतामृतम् । नित्यंसद्भिःप्रपातव्यं कृष्णलीलाप्रकाशकम्॥२०॥
सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः। ब्रह्मणः श्रुतपूर्वाय सप्ताहश्रवणे विधिः॥२१॥

शौनक उवाच

पितुर्लब्ध्वा वरं ज्ञानं श्रीमद्भागवताभिधम्। नारदो लोकतत्त्वज्ञः सर्वदा ह्यटते महीम्॥२२॥
कुत्र तैः संगमोजातो नारदस्य महात्मभिः। श्रुतो देवर्षिणा यत्र सप्ताहश्रवणे विधिः॥२३॥

हे द्विजश्रेष्ठ मैं आपसे प्रसन्न हूँ जैसा मैंने सुना है वैसा मैं कह रहा हूँ । जो सर्वश्रेष्ठ सार है तथा संसार के भय को दूर करने वाला है ॥११॥ जो भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति को बढ़ाने वाला है तथा भगवान् श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट करने वाला है, हे साधो ! उसे मैं कह रहा हूँ आप सावधानी पूर्वक सुनें ॥१२॥ कालरूपी सर्प के मुख से संसार को बचाने वाला है उस श्रीमद्भागवत शास्त्र को व्यासजी ने कहा है॥१३॥ इससे भिन्न कोई साधन मन को शुद्ध करने वाला नहीं है । जन्मान्तरों में किए गये पुण्यों से ही साधुजन उसे प्राप्त करते हैं ॥१४॥ राजा परीक्षित के मोक्ष को जानकर ब्रह्माजी ने महान् शास्त्रों और पुराणों को तौला ॥१५॥ उन सबो में संसार में श्रीमद्भागवत जन्य पुण्य सबसे अधिक हुआ । श्रीमद्भागवत की कथा देवताओं को भी दुर्लभ है ॥१६॥ इस तरह से विचार करके अनेक निर्मल सज्जनों ने श्रीमद्भागावत को पृथिवी पर भगवत स्वरूप माना ॥१७॥ उसको पढ़ने और सुनने वाला मनुष्य श्रीहरि के लोक में चला जाता है । उसका वर्ष भर में श्रवण बहुत अधिक सुख प्रदान करने वाला है ॥१८॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! महीने भर में सुनने पर भक्ति का प्रकाश होता है । एक सप्ताह में सुनने पर वह मुक्ति प्रदान करता है ॥१९॥ हे साधो ! बहुत अधिक कहने से कोई लाभ नहीं है श्रीमद्भागवत रूपी अमृत का प्रतिदिन पान करना चाहिये । यह भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का प्रकाश करने वाला है ॥२०॥ सबसे पहले सनकादिकों ने इसको नारदजी को सुनाया था । वे लोग ब्रह्माजी से इसके सप्ताह भर में सुनने की विधि को सुना था॥२१॥ **शौनक महर्षि ने कहा—** नारदाजी अपने पिता से इसके ज्ञान को प्राप्त करके वे सदा पृथिवी पर घूमते रहते है ॥२२॥ नारदजी को उन महात्माओं से कहाँ पर भेंट हुयी । जहाँ पर देवर्षि ने सप्ताह श्रवण की विधि को सुना ॥२३॥ **सूतजी ने कहा—** इस विषय में मैं आपको भक्ति का कथानक सुनाता

सूत उवाच

अत्र ते वर्णयिष्यामि भक्तियुक्तं कथानकम् ।
यत्पुरा ब्रह्मरातेन मह्यं प्रोक्तं दयालुना ॥२४॥

एकदा तु विशालायामुपविष्टमधोमुखम् । नारदं सनकाद्यास्ते ददृशर्दीनमानसम् ॥२५॥
तं दृष्ट्वा चिन्तयानं तु देवर्षिर्भ्रातरंस्वकम् । पप्रच्छुर्विस्मयाविष्टा मुनयस्तत्त्वचिन्तकाः ॥२६॥

कुमाराऊचुः

किं त्वं चिन्तयसे ब्रह्मन्नतिदीनइवाऽऽतुरः । वेत्थं मुक्तसङ्गस्य नोचितं वद कारणम् ॥२७॥

नारद उवाच

अहं पृथ्व्यां समायातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमोत्तमाम् ।
तीर्थैर्नानाविधैर्युक्तां पुण्यदैः पुण्यरूपिणीम् ॥२८॥

पुष्करे च प्रयागे च काश्यां गोदावरीतटे । हरिक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे श्रीरङ्गे सेतुबन्धने ॥२९॥
एतेष्वन्येषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः । नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनःसन्तोषकारकम् ॥३०॥
कलिना धर्ममित्रेण धरेयं बाधिताऽधुना । सत्यं शौचं दया दानं नास्तिकुत्रापि भूतले ॥३१॥
उदरम्भरयो लोका वराकाः कूटसाक्षिणः । मन्दाः सुमन्दमतयो महापाखण्डसंश्रयाः ॥३२॥
स्त्रीप्रधाना गृहस्थाश्चवर्णिनोव्रतवर्जिताः । वानप्रस्थाःपुरावासान्यासिनोभोगतत्पराः ॥३३॥
कन्याविक्रयिणोलोभात्कृषिकर्मपरायणाः । भ्रष्टाचारादम्भिनश्चस्वेच्छाचारनिदर्शिनः ॥३४॥
आश्रमाय वनैरुद्धास्तीर्थानि सरितो ह्रदाः । देवतायतनान्यत्र दुष्टैरुच्छेदितानि च ॥३५॥

योगी सिद्धोऽथवा ज्ञानी सत्क्रियोऽत्र न दृश्यते ।
कलिदावानलेनाऽऽद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥३६॥

हूँ जिसको पहले ब्रह्मरात ने दया करके प्राचीन काल में मुझको सुनाया था ॥२४॥ एक बार विशाला नगरी में नीचे मुँह करके दीन मन वाले नारदजी को सनकादिक ऋषियों ने देखा ॥२५॥ अपने भाई देवर्षि नारद को देखकर आश्चर्य चकित तत्त्व का चिन्तन करने वाले वे ऋषि पूछे ॥२६॥ **कुमारों ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! अत्यन्त आतुर के समान क्या सोच रहे हैं । मुक्त संग पुरुष का ऐसा होना उचित नहीं है अतएव इसका कारण बतलाओ ॥२७॥ **नारदजी ने कहा—** मैं पृथिवी पर उसे सर्वोत्तम जानकर आया । यह पृथिवी अनेक तीर्थों से युक्त पुण्य स्वरूपा है ॥२८॥ पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी के तट पर हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्गम तथा सेतुबन्ध ॥२९॥ इन सभी तथा दूसरे भी तीर्थों में इधर-उधर घूमते हुए मैंने कहीं मन को सन्तुष्ट करने वाली शान्ति नहीं देखा ॥३०॥ इस समय अधर्म के मित्र कलि ने सम्पूर्ण पृथिवी को बाधित कर रखा है । पृथिवी पर कहीं भी दया, दान, शौच तथा सत्य भी नहीं है ॥३१॥ संसार के लोग अपना पेट भरने वाले, ओछी प्रवृत्ति के झूठी गवाही करने वाले हैं । उनकी बुद्धि अत्यन्त मन्द है तथा अत्यन्त पाखण्ड करने वाले हैं ॥३२॥ गृहस्थ स्त्री प्रधान हो गये हैं, ब्रह्मचारियों ने व्रत को त्याग दिया है । वानप्रस्थी नगर में रहने लगे हैं, और संन्यासी भोग परायण हो गये हैं ॥३३॥ लोग लोभ के कारण कन्या को बेंचने लगे हैं और कृषि कर्म में लगे रहते हैं वे भ्रष्टाचारी, दम्भी और स्वेच्छाचारी हो गये हैं । वनों में आश्रम नहीं हैं, दुष्टों ने तीर्थों, नदियों, कुण्डों और देव मन्दिरों को विनष्ट कर दिया है ॥३४-३५॥

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः । कामिन्यः केशशूलिन्यो दृश्यन्त भुवि सर्वतः॥३७॥
एकदाऽहमनुप्राप्तो यमुनायास्तटं शुभम् । दृष्टं वृन्दावनं तत्र यत्र लीला हरेरभूत् ॥३८॥
तत्र यच्चाद्भुतं दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ! । एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा॥३९॥
द्वौ वृद्धौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्तावचेतनौ । शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदती च तयोःपुरः॥४०॥
दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारमिवात्मनः । वीज्यमाना बहुस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः॥४१॥
दृष्ट्वा दूरागतश्चाऽहं कौतुकेन तदन्तिकम् । मां दृष्टोत्थाय सा बाला वचनंचेदमब्रवीत् ॥४२॥

बालोवाच

भोः साधोऽत्रक्षणंतिष्ठ मम चिन्तामपाकुरु ।
पुंसां च दर्शनं भद्र ! सर्वाघौघनिवारणम् ॥४३॥

पुण्येन प्राक्तनेनैव दर्शनं तव जायते । अतो मे मानसंदुःखं छेत्तुमर्हसि मानद ॥४४॥

नारद उवाच

एवमुक्तस्तया चाऽहं कृपया स्निग्धमानसः । अपृच्छं तां वरारोहां कौतुकेन समाकुलः ॥४५॥

का त्वमेतौ च कौ भद्रे काश्चेमाः पद्मलोचनाः ।
आख्याहि मत्पुरः सर्वं तव दुःखस्य कारणम् ॥४६॥

इतिपृष्टा मया सा तु बालादुःखितमानसा । प्रोवाचनिखिलंदुःखमात्मनोदुःखकारणम् ॥४७॥

बालोवाच

अहं भक्तिरितिख्याता एतौ मे तनयौ वरौ । ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥४८॥

यहाँ पर कोई भी योगी, सिद्ध, अथवा ज्ञानी तथा सदाचार परायण नहीं दिखता है । आज कलियुग रूपी दावाग्नि ने साधनों को भस्म कर दिया है ॥३६॥ नगर अट्टालिका प्रधान हो गये है, ब्राह्मण अन्न प्रधान हो गये हैं, नारियाँ केश प्रधान हो गयी हैं, इस तरह सर्वत्र दिखता है ॥३७॥ एक बार मैं यमुना के तट पर गया और जहाँ पर श्रीहरि ने लीला की थी उस वृन्दावन को देखा ॥३८॥ हे मुनीश्वरों ! वहाँ पर जो मैंने अद्भुत देखा उसे आपलोग सुनें । वहाँ पर एक युवती उदास बैठी थी ॥३९॥ उसके पास दो वृद्ध पड़े हुए थे । बेहोश वे लम्बी श्वास ले रहे थे । उन दोनों के सामने वह युवती रो-रोकर उन्हें जगा रही थी ॥४०॥ वह प्रत्येक दिशाओं में देखती हुयी अपनी रक्षा करने वाले को देख रही थी । बहुत सी स्त्रियाँ उसको हवा कर रही थीं और उसे बार-बार समझा रही थीं ॥४१॥ कौतुक वशात् दूर से ही मैंने उसे देखा और उसके सन्निकट गया । मुझको देखकर वह युवती खड़ी हो गयी और कही ॥४२॥ **युवती ने कहा**— हे साधो ! आप क्षण भर रुकिये और मेरी चिन्ता दूर कीजिये । महापुरुषों का दर्शन महान् पाप समूह को विनष्ट करने वाला होता है ॥४३॥ पूर्व पुण्य के कारण ही आपका दर्शन होता है । अतएव हे मानद ! आप मेरी चिन्ता को दूर करें ॥४४॥ **नारदजी ने कहा**— उसके द्वारा इस तरह कहे जाने पर मैं करुणा क्रान्त हो गया और कौतुक वशात् मैंने उससे पूछा ॥४५॥ हे भद्रे ! तुम कौन हो ? और ये दोनों कौन हैं ? और ये सुन्दरियाँ कौन हैं ? तुम अपने दुःख का कारण बतलाओ ॥४६॥ इस तरह से मेरे द्वारा पूछे जाने पर उस दुःखी मनवाली युवती ने अपने दुःख के सम्पूर्ण कारणों को बतलाया ॥४७॥ **युवती**

गङ्गाद्याः सरितश्चेमा मम सेवार्थमागताः । एताभिः सेवितानित्यं सत्कारेणापिनारद॥४९॥
न च श्रेयोलभेत्किञ्चित्क्षीणाहं सर्वतो मुने। मम पूर्वं तु वृत्तान्तं शृणु ब्राह्मणसत्तम ॥५०॥
येनाऽहं दुःखिताजाता न लभेशर्मकुत्रचित्। उत्पन्ना द्रविडे चाहं कर्णाटे वृद्धिमागता ॥५१॥
स्थिताकिञ्चिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतांगता । तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैःखण्डिताङ्गका॥५२॥
दुर्बलाऽहं चिरं जाता पुत्राभ्यां सह सङ्गता। वृन्दावनमिदं प्राप्ता दैवयोगेन नारद !॥५३॥
जाताऽहं तु पुनर्बाला नवीनेव सुरूपिणी। इमौ तु शायितावत्र सुतौ मे क्लिष्टमानसौ ॥५४॥

अतिवृद्धौ परित्यज्य गन्तुं नाऽहं क्षमाऽधुना ।
अहं बाला कथं जाता सुतौ मे जरठौ कुतः ॥५५॥

त्रयाणामेकभावानां वैपरीत्यं कुतोऽभवत्। घटते जरठा माता बालकौ तनयाविति ॥५६॥
अतःशोचामिचाऽऽत्मानंविस्मयाविष्टमानसा । यदित्वंवेत्सिधर्मज्ञ कृपालोदीनपालक॥५७॥
वद सर्वं यथातत्त्वं कारणं चाऽत्र यद्भवेत्। एवं पृष्टस्तया चाऽहं क्षणंचैव विमृश्यतु ॥५८॥

अवोचम्भक्तिमाभाष्य क्लिष्टं कालेन भूयसा ।
ज्ञानेनाऽहं प्रपश्यामि वृत्तं सर्वंतवाऽनघे ॥५९॥

माविषादं कुरुप्राज्ञे हरिःशन्ते करिष्यति। सर्वसत्त्वहरो बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ॥६०॥
लुप्तोऽनेनसदाचारो योगमार्गस्तपांसि च । जनाश्चाद्यासुरायन्ते शाठ्यदुष्कृतकारिणः ॥६१॥

सन्तो ह्यस्मिन्सुदुःखार्ता असन्तो हृष्टमानसाः ।
दृश्यते धीरचित्तस्तु पण्डितोऽपि न कोऽपि च ॥६२॥

ने कहा— मेरा नाम भक्ति है । ये दोनों मेरे श्रेष्ठ पुत्र है इनका नाम ज्ञान और वैराग्य है । काल के योग से ये जर्जर हो गये हैं ॥४८॥ ये सभी गङ्गा आदि नदियाँ हैं और मेरी सेवा के लिए आयी हैं । हे नारद! इन सबों के द्वारा सत्कार पूर्वक सेवित भी होकर मैं थोड़ी सी भी शन्ति नहीं मिलती हैं । हे मुने ! मैं पूर्णरूप से क्षीण हो गयी हूँ । हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पहले तुम मेरा वृत्तान्त सुनो जिसके कारण मैं दुःखी हूँ और कहीं भी शान्ति मुझे नहीं मिलती है । मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न हुयी और कर्णाटक में मैं बढ़ी । थोड़े समय मैं महाराष्ट्र में रहीं, गुजरात में मैं वृद्ध हो गयी । वहाँ पर भयङ्कर कलि के कारण पाखण्डियों ने मेरे अङ्ग को काट दिया ॥४९-५२॥ मैं अपने दोनों पुत्रों के साथ दीर्घकाल तक दुर्बल हो गयी । हे नारद! दैवयोग से मैं वृन्दावन आयी तो पुनः युवती हो गयी नवीन सुन्दर मेरा रूप हो गया किन्तु क्लेशित मन वाले ये मेरे दोनों पुत्र यहाँ पर सो गये ॥५३-५४॥ अत्यन्त वृद्ध इन दोनों को छोड़कर मैं कहीं जा भी नहीं सकती हूँ । मैं क्यों युवती हो गयी और ये मेरे पुत्र बूढ़े कैसे हो गये ॥५५॥ हम तीनों जो एक भाव वाले हैं विपरीतता कैसे आ गयी ? माता बूढ़ी होती है और पुत्र बालक होते हैं यही नियम हैं । अतएव आश्चर्य युक्त मन वाली मैं अपने विषय में सोचती हूँ । हे कृपालो ! हे दीन पालक ! हे धर्मज्ञ ! यदि आप जानते हैं तो इसका कारण बतलायें ॥५६-५७॥ इसका जो भी कारण हो उसे आप बतलाये । इस तरह पूछे जाने पर मैंने क्षण भर विचार किया ॥५८॥ कलिकाल से दुःखी भक्ति से मैंने कहा हे अनघे! मैं अपने ज्ञान से तुम्हारे सारे वृत्तान्त को देखता हूँ ॥५९॥ हे निष्पापे ! विषाद न करो श्रीहरि तुम्हारा कल्याण करेंगे । हे बाले ! सम्पूर्ण सत्वों को विनष्ट करने वाला यह भयङ्कर कलियुग है ॥६०॥ इसने

अस्पृश्यानवलोक्येयं दुष्टभाराकुला धरा। अन्वब्दं क्रमतो जातोमङ्गलं हीयतेऽन्वहम् ॥६३॥
न त्वां तव सुतौ चेमौ कोऽपि पश्यति भामिनि ! ।
यूयं तु रागबहुलैस्त्यक्ता जर्जरतां गताः ॥६४॥
वृन्दावनस्य संगोगाद्बालात्वमभवः पुनः। धन्यं वृन्दावनं चेदं भक्तिर्यत्राऽभवन्नवा॥६५॥
अत्रेमौ ग्राहकाभावान्नवीनत्वं नचाऽऽगतौ। किञ्चिदात्मसुखेनेह प्रसुप्ताविति लक्ष्यते॥६६॥

भक्तिरुवाच

कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितोऽद्यशुचिःकलिः ।
दयापरेणहरिणाह्यधर्मः किमुपेक्षिता ॥६७॥
एनं मे सशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखिताऽस्म्यहम् ।
तस्या वचः समाकर्ण्य भूयोऽहमवदं द्विजाः ! ॥६८॥
यदि पृष्टं त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु। यदा मुकुन्दो भगवान्क्ष्मां त्यक्त्वास्वपदंगतः॥६९॥
कलिस्तद्दिनमारभ्य प्रवृत्तः सत्यबाधकः। दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः॥७०॥
न हतोऽस्य गुणद्रष्टासर्वसाधारणं त्विदम्। यत्फलंतपसा नैति न योगेन समाधिना॥७१॥
तत्फलं लभते धीमान्कलौ केशवकीर्तनात्। एतादृशं कलिं दृष्ट्वा सारात्सारफलप्रदम् ॥७२॥
विष्णुरातः स्थापितवान्कालिजानां हिताय च ।
कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ॥७३॥
पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ।
विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ॥७४॥

सदाचार योग और तपों को विनष्ट कर दिया है। शाठ्यकर्म और पाप करने वाले लोग इस समय आसुर प्रवृत्ति वाले हो गये हैं ॥६१॥ इस समय सज्जन पुरुष अत्यन्त दुःखी हैं और दुष्ट लोग प्रसन्न हैं। कोई भी धीर चित्त वाला पण्डित नहीं है ॥६२॥ दुष्टों के भार से व्याकुल यह पृथिवी न तो स्पर्श करने योग्य है और न देखने योग्य है। प्रतिदिन तथा प्रतिवर्ष इसका मङ्गल घटता जा रहा है ॥६३॥ कोई भी तुमको और तुम्हारे पुत्रों को नहीं देखता है। राग बाहुला लोगों के द्वारा परित्यका होने के कारण आप सभी जर्जर हो गये हैं ॥६४॥ और तुम वृन्दावन के संयोग के कारण युवती हो गयी हो। यह वृन्दावन धन्य है जहाँ पर भक्ति नवीन हो गयी ॥६५॥ यहाँ पर इन दोनों को चाहने वाले के अभाव के कारण इन दोनों की नवीनता नहीं आयी। कुछ आत्म सुख के कारण ये दोनों सोये से प्रतीत होते हैं ॥६६॥ **भक्ति ने कहा—** राजा परीक्षित् ने इस अपवित्र कलि को कैसे स्थापित किया ? क्या दयालु श्रीहरि ने धर्म की उपेक्षा कर दी ? क्या आप मेरे इस संशय को दूर कर दें आपकी बातों से मुझे सुख मिला है ॥६७-६८॥ हे बाले ! यदि तुमने पूछा है तो मेरी बातों को प्रेम से सुनो। जब श्रीभगवान् पृथिवी को छोड़कर अपने धाम में चले गये ॥६९॥ उसी दिन सत्य के बाधक कलि का प्रारम्भ हो गया। राजा अपने दिग्विजय यात्रा में इसको देखे तो यह दीन होकर उनकी शरण में चला गया ॥७०॥ इसके गुणों को देखकर राजा परीक्षित् ने इसको नहीं मारा। जिस फल की प्राप्ति तपस्या, योग तथा समाधि के द्वारा नहीं होती है ॥७१॥ उस फल को बुद्धिमान पुरुष भगवान का कीर्तन करके प्राप्त कर लेता है। इस तरह अत्यन्त सार स्वरूप फल

कारिताथनलोभेन कथासारस्ततो गतः। अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिकादाम्भिकाजना ॥७५॥
तिष्ठन्ति सर्वतीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः। कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ॥७६॥
समारभन्ते कमाणि कर्मसारस्ततो गतः। मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात्याखण्डसंश्रयात् ॥७७॥
शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम्। पण्डितास्ते कलत्रेषु रमन्ते महिषाइव ॥७८॥
पुत्रोत्पादनदक्षाश्च न दक्षा मुक्तिसाधने। न हि वैष्णवता कुत्र संप्रदायपुरःसरा ॥७९॥
देवनिन्दापराः सर्वे साधुनिन्दापरायणाः। अयं तु युगधर्मोऽस्ति दीयते कस्य दूषणम् ॥८०॥

अतस्वं पुण्डरीकाक्षं स्मृत्वा सौख्यमवाप्स्यसि ।
एवं मयोक्तं वचनं श्रुत्वा सा विस्मयं गता ॥
उवाच वचनं भूयो मां प्रशस्य द्विजोत्तमाः ॥८१॥

भक्तिरुवाच

देवर्षे ! त्वं तु धन्योऽसि गद्भाग्येन समागतः ।
साधूना दर्शनं लोके सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥८२॥
सुखोपायो यथा मे स्यात्तथादिश मुनेऽधुना ।
सर्वज्ञस्य तव ब्रह्मन्नासाध्यंकिमपीह वै ॥८३॥

को प्रदान करने वाले कलि को देखकर ॥७२॥ कलि के लोगों का कल्याण के लिए विष्णुरात् (परीक्षित) ने कलि को स्थापित किया। कुकर्मों को करने के कारण सभी वस्तुओं का सार विनष्ट हो गया ॥७३॥ इस समय पृथिवी पर सभी पदार्थ बीज रहित भूसे के समान पड़े हैं, ब्राह्मणों द्वारा प्रत्येक घरों और लोगों को यहाँ ॥७४॥ धन के लोभ से कथा किए जाने के कारण कथा का सार समाप्त हो गया। लोग अत्यन्त उग्र कर्म करने वाले नास्तिक और घमण्डी हो गये हैं। वे सभी तीर्थो में निवास करते हैं अतएव तीर्थ का सार समाप्त हो गया। काम, क्रोध तथा महालोभ तथा लालच से पूर्ण लोग कर्मो को करते हैं इसीलिए कर्मों का सार भाग नष्ट हो गया। मन के वश में नहीं होने के कारण लोभ, मोह को अपनाने से ॥७५-७७॥ तथा शास्त्र का अभ्यास नहीं होने के कारण ध्यान योग का फल विनष्ट हो गया। जो पण्डित हैं वे पत्नी के साथ भैंसे के समान रमण करते हैं ॥७८॥ वे पुत्रों को उत्पन्न करने में दक्ष होते है और मुक्ति के साधन में दक्ष नहीं हैं कहीं भी वैष्णावता सम्प्रदाय पूर्वक नहीं है ॥७९॥ सब लोग देवताओं और सज्जनों की निन्दा करने में लगे रहते हैं। यही युग का धर्म है, किसको दोष दिया जाय॥८०॥ इसीलिए तुम भगवान् पुण्डरीकाक्ष का स्मरण करके सुख प्राप्त करोगी। इस प्रकार से मेरी वाणी सुनकर भक्ति आश्चर्यित हो गयी। हे द्विजोत्तमों ! वह मेरी प्रशंसा करके फिर कहने लगी ॥८१॥ **भक्ति ने कहा—** हे देवर्षे ! आप धन्य हैं, आप भाग्य से आये है सज्जनों का दर्शन लोक में सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला होता है ॥८२॥ हे मुने ! जो सरल साधन हो उसे आप बतलायें। हे साधो ! आप सर्वज्ञ हैं। आपके लिए कुछ भी असाध्य नहीं हैं ॥८३॥ जिस मायापति की माया को

अजयदजितमायां यस्य मायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाऽऽकलय्य ।
ध्रुवपदमुपयातो यत्कृपातो ध्रुवो वै तमहमरणभूतं ब्रह्मपुत्रं नताऽस्मि ॥८४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे भागवतमाहात्म्ये त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय

सूत उवाच

एवं संप्रार्थितो विप्रास्तया भक्त्याऽतिदीनया ।
पुनश्चाकथयद्यद्वै तच्छृणुध्वं दयालवः ॥१॥

नारद उवाच

मा खिदस्वं वृथा बाले ! समाधाय मनो हृदि ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर सौख्यं लभिष्यसे ॥२॥
द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ।
पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वाऽपि नो गतः ॥३॥
त्वंतुभक्तिः प्रियातस्यसततंप्राणतोऽधिका । त्वयाहूतस्तु भगवान्याति नीचगृहेष्वपि ॥४॥
सत्यादित्रियुगेबोधो विरागोमुक्तिसाधकौ । कलौतु केवलाभक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥५॥
इति निश्चित्यचिद्रपी स्वकाङ्गात्त्वां ससर्जह । परमानन्दचिन्मूर्तिः स्वप्रियां प्रीतमानसः ॥६॥

आपने जीत लिया है, ऐसे आपकी वाणी को मन में रखकर ध्रुव जिनकी कृपा से ध्रुवपद को प्राप्त किए उस ब्रह्माजी के पुत्र आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥८४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के भागवत माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ तिरानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९३।।

ज्ञात तथा वैराग्य सहित दुर्बल बनी हुयी भक्ति प्रबोधन वाक्य के द्वारा सनकादिकों द्वारा दिये गये वरदान के माध्यम से भक्ति की संस्थापना का वर्णन

सूतजी ने कहा— अत्यन्त दीन बनी भक्ति के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर मैंने जो कहा उसे आप लोग सुनें । **नारदजी ने कहा—** हे बाले ! तुम दुःखी मत होओ मन को समाहित करो । भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का स्मरण करो । तुम्हें सुख की प्राप्ति होगी ॥१-२॥ जिन्होंने पापी कौरवों से द्रौपदी की रक्षा की जिन्होंने गोपियों का पालन किया वे भगवान् कृष्ण कहीं नहीं गये हैं ॥३॥ भक्ति तुम तो भगवान् को सदा प्राण से भी अधिक प्रिय हो तुम्हारे द्वारा बुलाये जाने पर भगवान् नीच के भी घर में चले जाते हैं ॥४॥ सत्य आदि तीन युगों में ज्ञान और वैराग्य मुक्ति के साधन थे किन्तु कलियुग में केवल भक्ति ही

बध्वाऽञ्जलिं त्वया पृष्टः किंकरोमीति वै हरिः ।
त्वां तदाऽऽज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान्पोषयेति च ॥७॥
अङ्गीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा । मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकौसुतौ ॥८॥
भक्तानां पोषणं नित्यं वैकुण्ठस्था करोषि च ।
भूमौ च भक्तपोषायच्छायारूपं समाश्रिता ॥९॥
विमुक्तिज्ञानवैराग्यैः सहचैवाऽऽगताऽत्रहि। कृतादिद्वापरान्ते हि कालेमुक्तिर्मुदास्थिता ॥१०॥
कलौ तु संक्षयं प्राप्ता पाषण्डामयपीडिता । त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठे पुनरेव सा॥११॥
स्मृतमात्रा त्वयाऽद्यापि मुक्तिरायाति सत्वरम् ।
पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च स्वपार्श्वे परिरक्षितौ ॥१२॥
उपेक्षातः कलौमन्दवृद्धौजातौसुतौ तव। तथापि चिन्तांमुञ्च त्वमुपायं चिन्तयाम्यहम् ॥१३॥
कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ! ।
तस्मिंस्त्वां ख्यापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥१४॥
अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ।
यदि प्रवर्त्तये न त्वां तदादासो हरेर्नहि ॥१५॥
त्वदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ।
पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भया हरिमन्दिरम् ॥१६॥
येषां चित्ते भवेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी । न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्त्तयः ॥१७॥
नप्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वाऽसुरोऽपिच ।
भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने दर्शने प्रभुः ॥१८॥

ब्रह्म सायुज्य को प्रदान करने है ॥५॥ इसी बात का विचार करके परमानन्द ज्ञान स्वरूप भगवान् ने प्रसन्न होकर अपने अङ्ग से तुम्हारी सृष्टि की ॥६॥ तुमने हाथ जोड़कर जब भगवान् से पूछा कि मैं क्या करूँ तो भगवान् ने कहा कि तुम मेरे भक्तों का पोषण करो ॥७॥ तुमने उसे स्वीकार कर लिया और उन्होंने तुम्हें मुक्ति रूपी दासी तथा ज्ञान और वैराग्य इन दो पुत्रों को प्रदान किया ॥८॥ वैकुण्ठ में रहकर तुम भक्तों का पोषण करती हो और भूमि पर भक्तों का पोषण कर केवल छाया रूप को तुमने धारण किया॥९॥ विमुक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य के साथ ही तुम यहाँ आयी हो । तुम्हारी आज्ञा से मुक्ति पुनः वैकुण्ठ में चली गयी कृतयुग से द्वापर के अन्त तक मुक्ति आनन्द पूर्वक रही ॥१०॥ कलि के पाखण्ड रूपी रोग से पीड़ित वह तुम्हारी आज्ञा से फिर वैकुण्ठ में चली गयी ॥११॥ तुम्हारे द्वारा केवल स्मरण कर लिए जाने के कारण मुक्ति शीघ्र आ जाती है । तुम्हारे द्वारा पुत्र रूप से स्वीकार किए गये इनदोनों को तुम अपने पास रखती हो ॥१२॥ कलियुग में उपेक्षा किए जाने के कारण तुम्हारे दोनों पुत्र वृद्ध हो गये हैं । फिर भी तुम चिन्ता छोड़ दो मैं उपाय सोच रहा हूँ ॥१३॥ सुन्दरि ! कलि के सदृश कोई भी युग नहीं है । इसी युग में मैं तुमको प्रत्येक गृहों और लोग में स्थापित करूँगा ॥१४॥ दूसरे धर्मों को त्यागकर महोत्सव पूर्वक यदि मैं तुम्हारा प्रर्वतन नहीं किया तो मैं श्रीहरि का दास नहीं ॥१५॥ यदि कोई पापी जीव भी भक्ति सम्पन्न होगा तो वह पापी जीव भी निर्भय होकर श्रीहरि के लोक में जायेगा ॥१६॥ जिन लोगों के मन से सदा

न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनाऽपि कर्मणा। हरिर्हि साध्यते भक्तया प्रमाणंतत्र गोपिका ॥१९॥
नृणां जन्मसहस्रेण भक्तिः सुकृतिनां भवेत् ।
कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्तया कृष्णः पुरः स्थितः ॥२०॥
भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्रये। दुर्वासादुःखमापन्नः पुरा भक्तिविनिन्दकः ॥२१॥
अलं वृत्तैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः। अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥२२॥
एवमुक्तं मया सा तु स्वमाहात्म्यं निशम्य वै ।
सर्वाङ्गहर्षसंयुक्ता मां पुनर्वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥
अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्तेमयिनिश्चला। न कदाचिद्विमुञ्चामिचित्तंतेमयिसंगतम् ॥२४॥
कृपालुना त्वया साधो ! मद्‌बाधा ध्वंसिता क्षणात् ।
पुत्रयोश्चेतना नास्ति ममेमौ प्रतिबोधय ॥२५॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा कारुण्येनान्वितोह्यहम्। तयोःप्रबोधनंकर्तुं प्रवृत्तः पाणिनास्पृशन् ॥२६॥
मुखं संसृज्य कर्णान्ते शब्दमुच्चैःसमुच्चरन्। ज्ञान ! प्रबुध्यतां शीघ्रंवैराग्य ! प्रतिबुध्यताम् ॥२७॥
वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः। बोध्यमानौ तदा तेन कथं चिद्‌बोधमागतौ ॥२८॥
नेत्रैरनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसावुभौ। बकवत्पलितौ प्रायः शुष्ककाष्ठःसमाङ्गकौ॥२९॥
क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापमुपागतौ ।
तदा चिन्तापरोऽभूवंकिंविधेयंमयेतिच ॥३०॥

प्रेम रूपा भक्ति है वे निर्मल पुरुष कभी भी यम यमलोक में नहीं जायेंगे ॥१७॥ जिनके मन में भक्ति है उसको प्रेत, या पिशाच, या राक्षस या असुर स्पर्श करने में समर्थ नहीं हैं ॥१८॥ श्रीहरि की प्राप्ति तपस्या, वेद, ज्ञान या कर्म से नहीं होता है । श्रीहरि की प्राप्ति तो केवल भक्ति से ही होती हैं इसमें गोपिकाएँ ही प्रमाण हैं ॥१९॥ हजारों जन्मों तक पुण्य करने से भक्ति की प्राप्ति होती है कलियुग में भक्ति ही प्रधान है, भक्ति के कारण भगवान् सामने आ जाते हैं ॥२०॥ जो लोग भक्ति से द्रोह करते हैं वे त्रैलोक्य में कष्ट पाते हैं । भक्ति की निन्दा करने वाले दुर्वासा महर्षि को कष्ट भोगना पड़ा ॥२१॥ व्यवहार, तीर्थ, योग और यज्ञ तथा ज्ञानमयी कथाओं से कोई लाभ नहीं केवल भक्ति ही मुक्ति प्रदान करती है॥२२॥ इस तरह मेरे द्वारा कहे जाने पर अपना माहात्म्य सुनकर भक्ति पूर्ण रूप से हर्षित हो गयी और फिर कहने लगी ॥२३॥ नारदजी आप धन्य हैं आपका मुझमें निश्चल प्रेम है । मुझमें लगे हुए तुम्हारे चित्त को मैं कभी भी नहीं छोड़ती हूँ ॥२४॥ हे साधो ! आप कृपालु हैं मेरी बाधा को तुमने क्षणभर में नष्ट कर दिया । मेरे इन दोनों पुत्रों को चेतना नहीं है इन दोनों को जगाओ ॥२५॥ उसके उस वचन को सुनकर मैं करुणा युक्त हो गया उन दोनों को स्पर्श करके मैं जगाने लगा ॥२६॥ उनके कानों के सन्निकट मुख करके जोर से शब्दों का उच्चारण करते हुए मैंने कहा अरे ज्ञान जगो वैराग्य शीघ्र जगो ॥२७॥ बार-बार वेदों और वेदान्त के शब्दों से तथा गीता के पाठ से जगाये जाने पर उन सबों को कुछ चेतना आयी ॥२८॥ वे नेत्र से नहीं देखते थे आलस्य युक्त होने के कारण जम्भाई लेते थे । वे बगुले के समान देखते थे उनके अङ्ग सूखे काष्ठ के समान हो गये थे ॥२९॥ भूखे-प्यासे वे देखकर पुनः सो गये । तब मुझे यह चिन्ता हुयी

अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं चानयोः परम् ।
चिन्तयन्निति गोविन्दं स्मरन्नासं द्विजोत्तमाः ! ॥३१॥
व्योमवाणी तदैवाभून्मात्रऋषे खिद्यतामिति । उद्यमःसफलस्ते तु भविष्यति न संशयः ॥३२॥
एतदर्थं तु सत्कर्मसुरर्षे त्वं समाचर । तत्कर्म तेऽभिधास्यन्ति साधवः साधुभूषणाः ॥३३॥
सत्कर्मणि कृते तस्मिन्स्वपनं वृद्धताऽनयोः। गमिष्यति क्षणाद्भक्तिःसर्वतःप्रसरिष्यति ॥३४॥
इत्याकाशवचः स्पष्टं निशम्याऽपि मया द्विजाः ।
न ज्ञातं यन्नभोवाण्या गोप्यत्वेन निरूपितम् ॥३५॥
किं तत्कर्म च येनैतौ भवतोज्ञानसंयुतौ । क्व भविष्यन्ति ते सन्तः कथंवक्ष्यन्तिकर्मसत्॥३६॥
मयाऽत्र किं प्रकर्त्तव्यंयदुक्तंव्योमभाषया। अथ तौ तत्रसंस्थाप्यनिर्गतोऽहंबहिर्द्विजाः ॥३७॥
वृन्दारण्यादपृच्छं च यत्रतत्रद्विजोत्तमान्। वृत्तान्तंसर्वएवाऽथश्रुत्वाविस्मितमानसाः ॥३८॥
न वोत्तरं प्रयच्छन्ति ह्यनभिज्ञा नभोगिरः। असाध्यं केचनप्रोचुरविज्ञेयमथाऽपरे ॥३९॥
मूकीवभृवुरन्ये तु चिन्तमानाः पुनःपुनः। वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ॥४०॥
बोध्यमानं त्रिकं तत्तु नोदतिष्ठदहो विधिः। योगिना नारदेनाऽपि स्वयं न ज्ञायतेतुयत् ॥४१॥
तत्कथं शक्यते कर्तुमितरैरिह मानुषैः। ततश्चिन्तातुरश्चाऽहं बदरीवनमागतः ॥४२॥
तपश्चरामि चाऽत्रैव तदर्थं कृतनिश्चयः। तावद्ददर्श पुरतः सनकाद्यान्मुनीश्वरान् ॥४३॥
कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमान्। इदानीं भूरिभाग्येण भवतां दर्शनं ह्यभूत्॥४४॥
तदुपायं महाभागा वदन्तु प्रीतमानसाः। भवन्तो योगिनां श्रेष्ठा बुद्धिमन्तोबहुश्रुताः ॥४५॥

कि अब मुझे क्या करना चाहिए ॥३०॥ मैंने सोचा इन दोनों की बुढ़ापा और निद्रा कैसे समाप्त हो । और मैंने चिन्ता करते हुए भगवान् गोविन्द का स्मरण करने लगा ॥३१॥ उसी समय आकाशवाणी हुयी; ऋषे! दुःखी मत होइये तुम्हारा प्रयास निश्चित रूप से सफल होगा ॥३२॥ हे देवर्षे ! आप इसके लिए सत्कर्म करें साधुओं के भूषण स्वरूप साधुजन उस सत्कर्म को तुम्हें बतलायेंगे ॥३३॥ उस सत्कर्म के करने पर इन दोनों की निद्रा और वार्द्धक्य समाप्त हो जायेगा । और क्षणभर में भक्ति का प्रसार हो जायेगा ॥३४॥ हे द्विजों ! इस आकाशवाणी को स्पष्ट रूप से सुनकर भी जिसको आकाशवाणी ने कहा था उसे मैं नहीं जान सका ॥३५॥ वह कर्म क्या है ? जिसके द्वारा ये दोनों ज्ञानवान हो जायेंगे । वे सन्त कहाँ हैं ? जो उस कर्म को बतलायेंगे ?॥३६॥ आकाशवाणी ने जो कहा है उसके लिए मुझे क्या करना चाहिए ? हे ब्राह्मणों ! उन दोनों को वहीं छोड़कर मैं बाहर निकला ॥३७॥ वृन्दावन से निकल कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों से जहाँ-तहाँ पूछा आश्चर्यित मन वाले वे इस वृत्तान्त को सुनकर ॥३८॥ आकाशवाणी से अज्ञात वे लोग उत्तर नहीं देते थे । कुछ लोगों ने उसे असाध्य कहा तो कुछ लोगों ने उसे अज्ञेय कहा ॥३९॥ बार-बार चिन्ता करते हुए मौन हो गये । वेद, वेदान्त के घोष से तथा बार-बार गीता के पाठ से ॥४०॥ जगाये जाने पर जब तीनों नहीं जगे और स्वयं नारदजी भी जिसे नहीं जानते हैं ॥४१॥ तो उसके विषय में मनुष्य क्या कर सकते हैं ? उसके अत्यन्त चिन्तित होकर मैं बदरी वन में आया ॥४२॥ उसके लिए निश्चित करके मैं यहाँ तपस्या कर रहा हूँ । उसी समय मैंने आप सनकादिक मुनीश्वरों को देखा ॥४३॥ इस तरह करोड़ों सूर्य के समान प्रकाश वाले मुनिश्रेष्ठों से मैंने कहा । इस समय अत्यन्त भाग्यवान् मुझे आपलोगों

कुमारा एव पञ्चाब्दाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः । सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्त्तनतत्पराः ॥४६॥
लीलामृतकथोन्मत्ता हरिस्मरणतत्पराः । अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ॥४७॥
येषां भ्रमङ्गमात्रेणद्वारपालौ हरेःपुरा । दैत्यौभूत्वा त्रिजन्मानि पुनस्तत्स्थानमास्थितौ ॥४८॥
अशरीरगिरोक्तं यत्किं तत्साधनमुच्यताम् । अनुष्ठेयं यथा यत्र प्रबुवन्तु कृपालवः ॥४९॥
भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते यथा । ख्यातिर्वः सर्वलोकेषु तथा साधूच्यतांबुधाः ॥५०॥

कुमाराऊचुः

मा चिन्तां कुरु देवर्षे ! स्वचित्तेहर्षमावह । उपायः सुखसाध्योऽत्रविद्यतेविश्वसौख्यदः ॥५१॥
अहो नारद ! धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ।
श्रीकृष्णप्रेमपात्राणामग्रणीर्वदताम्वरः ॥५२॥
त्वयि चित्रं न देवर्षे भक्तिसाधनतत्परे। उचितं कृष्णदासानां भक्तेः संचारणंभुवि ॥५३॥
ऋषिभिर्बहुधा लोकउपायाः सिद्धये कृताः। श्रमसाध्याश्चतेसर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥५४॥
वैकुण्ठसाधकः पन्था गुप्तो लोकेषु वर्त्तते। तस्योपदेशकः साधुः प्रायोभाग्येन लभ्यते॥५५॥
यत्ते सत्कर्मनिर्दिष्टं व्योमवाचा मुनीश्वर !। तज्ज्ञेयमिह सर्वज्ञैर्ज्ञानयज्ञः पुरातनैः ॥५६॥
श्रीमद्भागवतालापो ज्ञानयज्ञः शुकोदितः । भक्तिज्ञानविरागाणां सुखदः प्रतिभाति नः ॥५७॥
कलिदोषा इमे सर्वे श्रीमद्भागवतध्वनेः । प्रभीताः प्रपलायन्ते सिंहशब्दाद्वृका इव॥५८॥

का दर्शन हो गया है ॥४४॥ हे महाभागों ! आपलोग उस उपाय को बतलायें आपलोग योगियों में श्रेष्ठ बुद्धिमान और बहुश्रुत हैं ॥४५॥ पूर्वजों के भी पूर्वज होकर सदा पाँच वर्षों के कुमार हैं सदा वैकुण्ठ में रहने वाले तथा श्रीहरि का कीर्तन में तत्पर रहने वाले हैं । लीला रूपी अमृत कथा का पान करके उन्मत्त आप लोग सदा श्रीहरि के कीर्तन में लगे रहते हैं । इसीलिए काल से निरूपित आपलोगों को वृद्धापा बाधित नहीं करती है ॥४६-४७॥ पूर्वकाल में आपलोगों के भौहे टेढी होने मात्र से श्रीहरि के दोनों द्वारपाल तीन जन्मों तक दैत्य होकर पुनः अपने स्थान को प्राप्त किए ॥४८॥ आकाशवाणी ने जिसे कहा है वह साधन क्या हैं ? उसका अनुष्ठान जहाँ पर जैसे करना चाहिये उसे आपलोग कृपा करके मुझे बतलायें ॥४९॥ जिससे भक्ति ज्ञान और वैराग्य को सुख मिले उसे बतलायें । इससे लोक में आप लोगों की ख्याति होगी । हे विद्वानों ! उसे आपलोग बतलायें ॥५०॥ **कुमारों ने कहा—** हे देवर्षे ! आप चिन्ता न करें प्रसन्न होइये । वह उपाय सुखसाध्य है । तथा संसार को सुख प्रदान करने वाला है । हे नारद ! आप धन्य हैं विरक्तों में अग्रगण्य हैं भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेमभावों में श्रेष्ठ तथा बोलने वालों में श्रेष्ठ हैं॥५१-५२॥ हे भक्ति ! के साधने में तत्पर रहने वाले देवर्षे ! आप में यह कोई अद्भुत बात नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण के दासों द्वारा लोक में भक्ति का संचारण करना उचित ही है ॥५३॥ ऋषियों ने मुक्ति के बहुत से उपाय बतलाया है वे सब श्रम साध्य हैं और तथा प्रायः स्वर्ग रूपी फल प्रदान करने वाले हैं ॥५४॥ वैकुण्ठ प्रदान करने वाला साधन लोक में गुप्त प्राय है उसका उपदेश करने वाला सौभाग्य के द्वारा मिलते हैं ॥५५॥ हे मुनिश्वरों ! आकाशवाणी ने सत्कर्म बतलाया है उसको पुरातन ज्ञान यज्ञ के ही द्वारा जानने योग्य है ॥५६॥ शुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत को ही ज्ञानयज्ञ कहा है वह हमलोगों को आसानी से भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य देने वाला प्रतीत होता है ॥५७॥ श्रीमद्भागवत की ध्वनि से सभी कलि के दोष

ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसापहा। प्रतिगेहं प्रतिजनं सुखक्रीडां करिष्यति॥५९॥

सूत उवाच

कुमारोक्तं समाकर्ण्य नारदः प्रीतमानसः। पुनः प्रोवाच भगवांस्तदुत्कर्षं विभावयन्॥६०॥

नारद उवाच

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम्। नोदतिष्ठत्रिकं तत्तु कलिदोषतिरस्कृतम्॥६१॥
कथं भागवतालापात्तद्विबोधमिहैष्यति। छिन्दन्तु संशयं ह्येनं भवन्तोऽमोघदर्शनाः॥६२॥

विलम्बो नाऽत्र कर्त्तव्यः शरणागतवत्सलाः।
ततस्तेसनकाद्यास्तुविरक्ताह्यूद्ध्वरेतसः॥
सिद्धाः सनातना विप्रा नारदं प्रोचुरादरात्॥६३॥

कुमाराऊचुः

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा। अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूताफलोन्नतिः॥६४॥

आमूलाग्रं रसोऽस्त्येव रसालस्य यथा फले।
पृथग्भूतस्तु पानेन यथा विश्वमनोहरः॥६५॥

यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्नच स्वादूपकल्प्यते। पृथग्भूतं तु तद्दिव्यं देवानांप्रीतिवर्द्धनम्॥६६॥
इक्षुष्विवादिमध्यान्तं शर्करा व्याप्यतिष्ठति। पृथग्भूता तु सा मिष्टा तथाभागवतीकथा॥६७॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं रसमेव हि। भक्तिज्ञानविरागाणां सौख्यायैव प्रकाशितम्॥६८॥
कृष्णेन ब्रह्मणे नाभिकञ्जस्थाय हृदैव हि। तच्चतुःश्लोकमखिलं ब्रह्मैव प्रतिभासते॥६९॥
तुभ्यं च ब्रह्मणा प्रोक्तं तच्चरित्रनिदर्शनम्। त्वयाऽपि व्यासदेवाय प्रोक्तं तत्तापहानये॥७०॥

भयभीत होकर उसी तरह भाग जाते हैं जिस तरह सिंह की गर्जना सुनकर भेड़ियें भाग जाते हैं॥५८॥ ज्ञान और वैराग्य के साथ भक्ति प्रेम रस को प्रवाहित करने वाली सुख पूर्वक क्रीडा करती है॥५९॥ **सूतजी ने कहा—** कुमारों के वचन सुनकर नारदजी प्रसन्न हो गये। वे भागवत के उत्कर्ष का विचार करके कहे॥६०॥ **नारदजी ने कहा—** वेद वेदान्त के घोषों से तथा गीता के पाठों से जगाये जाने पर वे तीनों नहीं जगे क्योंकि वे कलि के दोष से तिरस्कृत थे।॥६१॥ श्रीमद्भागवत के आलाप से उन सबों को कैसे वोध सम्भव हैं ? आपलोग अमोघ दर्शी हैं अतएव आप लोग मेरे इस संशय को दूर करें॥६२॥ हे शरणागत वत्सलों ! इसमें आप लोग विलम्ब न करें। उसके पश्चात् उर्ध्वरेता वे सनकादि जो सनातन सिद्ध हैं, वे आदर पूर्वक नारदजी से कहे॥६३॥ **कुमारों ने कहा—** भागवती कथा वेदों तथा उपनिषदों के सारभाग से निकली है। इसीलिए वह उत्तम हैं तथा उसका उन्नत फल सबों से अलग ही है। जिस तरह आम के फल में सर्वत्र रस ही रस है उससे अलग करके पीने से वह सभी लोगों को मनोहर लगता है॥६४-६५॥ जिस तरह दूध में घी वर्तमान रहने पर उसका अलग स्वाद नहीं मिलता है उसको अलग कर लेने पर वह देवताओं को प्रिय लगता है॥६६॥ जिस तरह ईख में सर्वत्र चीनी विद्यमान रहती है किन्तु ईख से अलग करने पर अधिक मिठी लगती है। उसी तरह से भागवत की कथा है॥६७॥ श्रीमद्भागवत यह नाम ही रस है इसका प्रकाशन भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य के सुख के लिए हुआ है॥६८॥ भगवान् विष्णु ने नाभिकमल में विद्यमान ब्रह्मगिरि को इसके चार श्लोकों ब्रह्म के ही समान प्रतीत होता

यदीयस्मरणात्सद्यो निर्विण्णो बादरायणः । चकार महदाख्यातुमात्माराममनोहरम् ॥७१॥
अत्र ते विस्मयः केन येन पृच्छेः पुनः पुनः ।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं क्षमं कृष्णानुकर्षणे ॥७२॥

सूत उवाच

एतन्निशम्य वचनं समुदाहृतं तु योगीश्वरैः सनकमुख्यतमैरभीष्टम् ।
भक्त्या विधृत्य चरणं च प्रणम्य मूर्ध्ना हृष्टोजगादजगदाधिनिवर्त्तकांस्तान् ॥७३॥

नारद उवाच

सन्दर्शनं च भवतां विनिहन्त्यघौघं श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ।
निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानात्प्रेमप्रकाशनकृते शरणं गतो वः ॥७४॥
पुण्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन सत्संगमो यदि भवेत्कृतिनो जनस्य ।
अज्ञानहेतुकृतमोहमहान्धकारो नश्येत्तदा ह्युदयमेति महान्विवेकः ॥७५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९४॥

है ॥६९॥ ब्रह्माजी ने उसके चरित्र को दृष्टान्त रूप से आपको प्रदान किया । आपने भी व्यासजी के उनके सन्ताप को दूर करने के लिए प्रदान किया ॥७०॥ उदास व्यास जी उसको स्मरण करके शीघ्र ही उसको महान् आख्यान के रूप में बनाये ॥७१॥ इस विषय में आपको क्यों आश्चर्य है ? कि आप बार-बार पूछते हैं श्रीमद्भागवत शास्त्र भगवान् को आकर्षित करने में समर्थ है ॥७२॥ **सूतजी ने कहा**— सनकादि योगीश्वरों द्वारा कहे गये इस अत्यन्त अभीष्ट वचन को सुनकर नारदजी ने उन लोगों के चरण को पकड़कर प्रणाम किया और प्रसन्न होकर जगत् के कष्टों को दूर करने वाले उन सबों से कहे ॥७३॥ **नारदजी ने कहा**— आपलोगों का दर्शन पाप समूह को विनष्ट करने वाला है और संसार के दुःख से दुःखी जीव के कष्ट को दूर करने वाला है । शेष के मुख से कही गयी सम्पूर्ण कथा का पान करने से प्रेम का प्रकाश करने के लिए मैं आप लोगों की शरणागति करता हूँ ॥७४॥ अनेक जन्मों में अर्जित पुण्य का उदय होने से कृत कृत्य जीव की सत्संग की प्राप्ति होती हैं । अज्ञान जन्य महान् अन्धकार उससे नष्ट होता है और महान् विवेक का उदय होता है ॥७५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के श्रीमद्भागवत माहात्म्यान्तर्गत एक सौ चौरानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९४॥

एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय

सूत उवाच

अथ देवऋषिस्तत्र कुमाराननुमान्य च। उवाच प्रणतो वाक्यं ज्ञानयज्ञकृतादरः ॥१॥

नारद उवाच

ज्ञानयज्ञंकरिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम्। भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थे प्रयत्नतः ॥२॥

यत्र कार्यो मया यज्ञः स्थानं तत्कथ्यतांद्विजाः।
चत्वारोयज्ञवाहाश्च यूयमेव वृता मया ॥३॥

कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवतीकथा। कोविधिस्तत्रकर्तव्यो ज्ञानयज्ञविशारदाः ॥४॥

कुमाराऊचुः

शृणु नारद वक्ष्यामस्तुभ्यंयत्रकथानृणाम्। शृण्वतांपापराशिघ्नी भवेत्पुण्यविवर्द्धिनी ॥५॥
गङ्गाद्वारसमीपे तु कामदाख्यं पुरं महत्। स्वर्णद्याश्चोत्तरे पुण्ये तटमानन्दनामकम् ॥६॥
नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम्। नानातरुलताकीर्णं स्वच्छकोमलवालुकम् ॥७॥
रम्यमेकान्तदेशस्थं स्वर्णपङ्कजशोभितम्। यत्समीपस्थजीवानां क्षेत्रस्यैव प्रभावतः ॥८॥

मिथः संस्निग्धचित्तानां वैरं चेतसि न स्थितम्।
ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो हि प्रयत्नतः ॥९॥

अपूर्वरसदात्री च कथा तत्र भविष्यति। वृन्दावनप्रतोलिस्थं जराजीर्णकलेवरम् ॥१०॥

कुमारों के उपदेश से नारद, भृगु आदि महर्षियों का दरापुरी में जाना भागवत सप्ताह का प्रारम्भ, कुमरों द्वारा भक्ति को स्थान प्रदान

सूतजी ने कहा— इसके पश्चात् देवर्षि ने कुमारों को प्रसन्न किया फिर वे प्रणत होकर ज्ञान यज्ञ का आदर करके कहे ॥१॥ **नारदजी ने कहा—** भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य के प्रयत्न पूर्वक स्थापना करने के लिए मैं शुकशास्त्र की कथा से देदीप्यमान ज्ञान यज्ञ को मैं करूँगा ॥२॥ हे द्विजों ! आप लोग बतलायें कि मैं किस स्थान पर वह करूँ आप चारों को मैं यज्ञ को संचारित करने वालों के रूप में वरण करता हूँ ॥३॥ हे ज्ञान यज्ञ में विशारदों ! श्रीमद्भागवत की कथा कितने दिनों में सुननी चाहिए और उसमें कौन सी विधि करनी होती है ?॥४॥ **कुमारों ने कहा—** हे नारद ! सुनो हमलोग बतलाते हैं कि कहाँ पर मनुष्यों को कथा करनी चाहिए। जिससे कि वह सुनने वाले के पाप राशि को विनष्ट करने वाली तथा पुण्यों को बढ़ाने वाली हो जाय ॥५॥ गङ्गाद्वार के समीप कामदा नामक महान नगरी हैं। वहाँ गङ्गा नदी के उत्तर तट पर आनन्द नामक पवित्र तट हैं ॥६॥ वह अनेक ऋषियों द्वारा सेवित देवों तथा सिद्धों द्वारा निसेवित है। अनेक वृक्षों तथा लताओं से पूर्ण स्वच्छ और कोमल बालू है ॥७॥ मनोहर एकान्त स्थान में वह विद्यमान स्वर्णिम कमलों से सुशोभित है। उसके समीपस्थ जीवों में परस्पर प्रेम होने के कारण उनके चित्त में क्षेत्र के ही प्रभाव से वैर नहीं रहता है। तुमको वहीं पर प्रयत्न पूर्वक ज्ञान यज्ञ करना चाहिए॥८-९॥ वहाँ पर अपूर्व रस (आनन्द) देने वाली कथा होगी। वृन्दावन की प्रतोली में विद्यमान, जिनका शरीर वार्द्धक्य से जीर्ण हो गया है ॥१०॥ उन अपने दोनों पुत्रों को आगे करके भक्ति आयेगी।

सुतद्वयं पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्राऽऽगमिष्यति। यत्र भागवतीवार्ता भक्तिस्तत्रसहात्मजा ॥११॥
कृष्णाकीर्तिसुधां पीत्वा तरुणीव भविष्यति ॥१२॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समन्ततः । गङ्गाद्वारे समाजग्मुर्ज्ञानयज्ञाय सत्वराः ॥१३॥
यदा प्राप्तास्तटं ते तु गङ्गाया भार्गवर्षभ ! ।
तदा कोलाहलश्चासीद्भूर्लोकादिकसप्तसु ॥१४॥
श्रीमद्भागवतास्वादलम्पटास्साप्तलौकिकाः । धावं धावं समाजग्मुः प्राचीना वैष्णवाश्च ये ॥१५॥
भृगुर्वसिष्ठः श्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ।
रामस्तथा गाधिजशाकलौ च मृकण्डपुत्रात्रिजपिपलादाः॥१६॥
योगेश्वरौ व्यासपराशरौ च शुकादयो भागवतप्रधानाः ।
शिष्यैरुपेता बहुशास्त्रविज्ञाः कृष्णामृतास्वादकृतैकतानाः ॥
सर्वेऽप्यमी मुनिगणास्सहपुत्रमित्रस्वस्त्रीभिरायययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥१७॥
वेदान्तानिच वेदाश्चमन्त्रास्तन्त्राणिसंहिताः। दशसप्तपुराणानिषट्छास्त्राणियथाययुः ॥१८॥
गङ्गाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च । क्षेत्राणि च दिशःसर्वादण्डकादिवनानिच ॥१९॥
हिमादयोनगास्तत्रदेवगन्धर्वकिन्नराः । द्वीपाः समुद्रा दिक्पालाः पातालस्थास्तथाययुः॥२०॥
दीक्षायां नारदेनाऽथ दत्तमासनमुत्तमम् । कुमारा वन्दिताःसर्वे निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥२१॥
वैष्णवाः सुविरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ।
मुख्या ह्यग्रे स्थितास्तेषां पुरतो नारदः स्थितः ॥२२॥
वामभागे मुनिगणा दक्षिणे च दिवौकसः । वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थानिच भृगुद्वह ! ॥२३॥

जहाँ पर भागवत की कथा होती है वहाँ पर भक्ति अपने पुत्रों के साथ रहती है ॥११॥ भगवान् कृष्ण की कीर्ति रूपी अमृत को पीकर वह युवती हो जाती है ॥१२॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह कहकर नारदजी के साथ शीघ्र ज्ञान यज्ञ करने के लिए वे गङ्गाद्वार में चले आये ॥१३॥ हे भागर्व श्रेष्ठ ! जब वे गङ्गातट पर आये उस समय भूलोक आदि सातो लोकों में कोलाहल हो गया ॥१४॥ श्रीमद्भागवत के आस्वाद के प्रेमी जो सातो लोकों में थे वे तथा जो प्राचीन वैष्णव थे वे सभी दौड़ते हुए देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, अत्रि और पिप्पलाद ॥१५-१६॥ योगेश्वर व्यासजी तथा पराशर महर्षि, भागवतों में प्रधान शुक आदि जो अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे अपने शिष्यों के साथ आये । जो कृष्ण रूपी अमृत के ही पीने वाले ये सभी मुनिगण प्रेम पूर्वक अपने शिष्यों, पुत्रों तथा स्त्रियों के साथ वहाँ आ गये ॥१७॥ वेदान्त, वेद, मन्त्र, तन्त्र, संहिताएँ, सत्रहपुराण तथा छहों शास्त्र भी वहाँ गये ॥१८॥ वहाँ पर गङ्गा आदि नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर, सभी क्षेत्र, सभी दिशाएँ तथा दण्डक आदि वन भी आये ॥१९॥ हिमालय आदि पर्वत, देवता, गन्धर्व और किन्नर, सभी द्वीप, समुद्र, दिक्पाल तथा पाताल में रहने वाले भी जीव वहाँ आ गये ॥२०॥ नारदजी ने दीक्षा के समय कुमारों को आसन प्रदान किया और वन्दना करने पर वे कृष्ण भक्त बैठ गये ॥२१॥ सबसे आगे नारदजी बैठे थे । उनके बाद वैष्णव, विरक्त, संन्यासी, ब्रह्मचारी

जयशब्दो नमःशब्द शङ्खशब्दस्तथैव च। बभूवाऽऽकाशसंस्पर्शी घोषयन्विदिशो दश ॥२४॥
विमानानि समारुह्य प्रहृष्टा नाकवासिनः। कल्पवृक्षप्रसूनैश्च तां सभां समवाकिरन्॥२५॥

सूत उवाच

एवं तेषु निविष्टेषु भृवादिषु यथार्हतः। श्रीभागवतमाहात्म्यमूचिरे नारदाय ते॥२६॥

कुमाराऊचुः

श्रुणु नारद ! वक्ष्यामि महिमानं महाद्भुतम् ।
श्रीमद्भागवताख्यस्य शास्त्रस्यविधिपूर्वकम् ॥२७॥
सदा नरैः सुकृतिभिः सेव्या भागवतीकथा ।
यस्याःश्रवणमात्रेण कृतार्थत्वंप्रयान्तिते ॥२८॥

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्त्रो द्वादशस्कन्धसंयुतः। परीक्षिच्छुकसम्वा... श्रीमद्भागवताभिधः ॥२९॥
तावत्संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमत्यज्ञानमोहितः। यावत्कर्णगतं नोस्याच्छुकशास्त्रंजनस्यच॥३०॥

किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैः संहितागमैः ।
यदि भागवतं पुम्भिर्नश्रुतं भक्तिभावनैः ॥३१॥

कथाभागवतस्याऽपि नित्यं भवति यद्गृहे। तद्गृहं तीर्थरूपं हि नृणां पापविनाशनम्॥३२॥
अश्वमेधसहस्त्राणि राजसूयशतानि च। भगवत्याः कथायाश्च कलांनार्हन्ति षोडशीम् ॥३३॥

तावत्पापानि तिष्ठन्ति देहेऽस्मिन्सु निपुङ्गव ! ।
यावन्न श्रूयते सम्यक्छ्रीमद्भागवतं नरैः ॥३४॥
न गङ्गा न गया काशी प्रतिष्ठानां न पुष्करः ।
कथाया भागवत्याश्च समापुण्यफलेन च ॥३५॥

बैठे थे ॥२२॥ बायीं ओर मुनिगण बैठे थे और दाहिनी ओर देवता बैठे । हे भृगुद्वह ! दूसरी जगह वेद, उपनिषद और सभी तीर्थ बैठे ॥२३॥ उस समय जय शब्द, नम शब्द तथा शङ्खों की आकाश स्पर्शी ध्वनि से दिशाएँ और विदिशायें ध्वनित हो गयीं ॥२४॥ विमान पर चढ़कर प्रसन्न हुए स्वर्ग निवासी गण कल्प वृक्ष के पुष्पों की उस सभा में वर्षा की ॥२५॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से उन भृगु आदि महर्षियों के बैठ जाने पर कुमारों ने नारदजी को भागवत का माहात्म्य सुनाया ॥२६॥ **कुमारों ने कहा—** हे नारद! सुनो श्रीमद्भागवत नामक शास्त्र की विधि पूर्वक अद्भुत महिमा को कहता हूँ ॥२७॥ पुण्यवान् पुरुषों को सदैव भागवत की कथा का सेवन करना चाहिए । उसके सुनने मात्र से वे कृतार्थ हो जाते हैं ॥२८॥ श्रीमद्भागवत नामक ग्रन्थ में अठारह हजार श्लोक तथा बारह स्कन्ध है । इसमें परीक्षित और शुकदेवजी का सम्वाद है ॥२९॥ मनुष्य तब तक ही इस संसार चक्र में मोहित होकर घूमता रहता है जब तक इस शुक शास्त्र जन्य शास्त्र वह नहीं सुन लेता है ॥३०॥ जब तक मनुष्य भक्ति पूर्वक भागवत की कथा नहीं सुन लेता है तब तक अनेक शास्त्रों, पुराणों, संहिताओं और आगमों के सुनने से कोई लाभ नहीं है॥३१॥ जिस घर में प्रतिदिन भागवत की कथा होती है वह घर तीर्थ रूप तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाला हो जाता है ॥३२॥ हजारों अश्वमेध याग तथा सैकड़ों राजसूय याग का फल भागवत की कथा के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं होते हैं ॥३३॥ हे मुनिपुङ्गव ! इस शरीर में तब तक ही पाप बने रहते हैं जब

श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ।
पठस्व स्वमुखेनाऽपि यदीच्छसि भवक्षयम् ॥३६॥

वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च । त्रयीभागवतं चैव द्वादशाष्टाक्षरौ मनू ॥३७॥
द्वादशात्मा प्रयागश्चकालःसम्वत्सरात्मकः । ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रंचसुरभिर्द्वादशीतिथिः ॥३८॥
तुलसी च वसन्तर्तुः पुरुषोत्तम एव च । एतेषां वस्तुता नास्ति पृथग्भावो मुनीश्वर ! ॥३९॥
यश्च भागवतं शास्त्रं व्याकुर्यादन्वहंद्विज ! । जनमकोटिकृतं पापं तस्य नश्यति नारद ॥४०॥
श्रुतं च पठितं ध्यातं श्रीमद्भागवतं नृभिः । ददातिमुक्तिं भक्तिंवातुलस्यग्न्योश्चसेवनम् ॥४१॥
अन्तकाले तु सम्प्राप्ते भयंत्यक्तवासुदूरतः । श्रीमद्भागवतंभक्तयाशृणुयाद्यः समुक्तिभाक् ॥४२॥
प्रौष्ठपद्यां च राकायां हेमसिंहसमन्वितम् । अलङ्कृत्य द्विजागयाय श्रीमद्भागवतं ददेत् ॥४३॥

भक्तियुक्तो विमानश्च मिताशी च जितेन्द्रियः ।
श्रुत्वाऽऽदितः स कृष्णस्य सायुज्यं लोकमाप्नुयात् ॥४४॥
आजन्ममात्रमपि येन शठेन चित्तं सम्यङ्नियम्य भुवि कृष्णकथा न पीता ।
चाण्डालवच्च पशुवद्बत ! तेन नीतं मिथ्या स्वजन्मजननीभृशमर्दिता च ॥४५॥
यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणमाराधितो नो पुरुषः पुराणः ।
मुखे हुतं नैव धरमराणां तेषां वृथा जन्मगतं नराणाम् ॥४६॥
चित्तं न यस्य तु नरस्य हरेः कथायां सम्प्रीतये दुरितदुष्टमसत्प्रसङ्गात् ।
धिक्तं नरं पशुसमं भुविभारभूतमेवं वदन्ति मुनयः किल पूर्वसिद्धाः ॥४७॥

तक अच्छी तरह से श्रीमद्भागवत को नहीं सुन लिया जाता है ॥३४॥ गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर, प्रतिष्ठान ये सभी मिलकर भागवत की कथा के समान पुण्य प्रदान करने वाले नहीं हैं ॥३५॥ यदि तुम संसार बन्धन का क्षय चाहते हो तो श्रीमद्भागवत के आधा श्लोक, अथवा श्लोक के एक ही चरण को अपने मुख से पढ़ो ॥३६॥ ओङ्कार, वेदमात्रीगायी, पुरुषसूक्त, त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) श्रीमद्भागवत द्वादशाक्षर (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) और अष्टाक्षर (ओम नमो नारायणाय) द्वादशात्मा प्रयाग, सम्बत्सरात्मक काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, कामधेनु, द्वादशी तिथि, तुलसी, वसन्त ऋतु तथा पुरुषोत्तम भगवान्, हे मुनीश्वर! इन सबों में वास्तविक कोई भी भेद नहीं हैं ॥३७-३९॥ हे द्विज ! भागवत शास्त्र की प्रतिदिन व्याख्या करनी चाहिए । हे नारद ! ऐसा करने वाले व्यक्ति के करोड़ों जन्म के पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥४०॥ मनुष्यों द्वारा श्रीमद्भागवत सुने और पढ़े जाने पर तथा तुलसी और अग्नि का सेवन मुक्ति तथा भक्ति को प्रदान करते हैं ॥४१॥ मृत्यु की बेला आ जाने पर भय को छोड़कर जो श्रीमद्भागवत को सुनता है उसकी मुक्ति हो जाती है । प्रौष्ठपदी अथवा राका सुवर्ण के सिंहासन के साथ श्रीमद्भागवत को अलंकृत करके उसे ब्राह्मण श्रेष्ठ को दान देना चाहिए ॥४२-४३॥ भक्ति से युक्त तथा अभिमान रहित, कम भोजन करने वाला तथा जितेन्द्रिय मनुष्य प्रारम्भ से जो भागवत सुनता है, वह भगवान् कृष्ण के सायुज्य लोक को प्राप्त करता है । जन्म से ही जिस शठ ने अपने मन को नियन्त्रित करके कृष्ण कथा का श्रवण नहीं किया है उसने चाण्डाल अथवा पशु के समान उसने व्यर्थ ही जन्म लिया है और अपनी माता को दुःख दिया है ॥४४-४५॥ जिन लोगों ने भागवत पुराण को नहीं सुना है और न पुराण पुरुष श्रीभगवान् की आराधना किया है, या

दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा। कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥४८॥
तेन योगनिधे साधो ! श्रोतव्या सात्त्वतीकथा ।
प्रत्यहं नियमो नास्ति दिनानां वस्तुतो द्विज ! ॥४९॥
सत्येन ब्रह्मचर्येण यतोऽस्य श्रवणं मतम्। ततः कलौ विशेषोहिविधिःसप्तदिनात्मकः॥५०॥
मनसश्चाजयाद्रोगात्पुंसां चैवाऽऽयुषः क्षयात् ।
कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥५१॥
मनसो निग्रहश्चैव नियमाचरणं तथा। कतु सप्तदिनं शक्यं ततो नियमकल्पना॥५२॥
श्रद्धया श्रवणे नित्यमाद्यन्तावधि यत्फलम्। तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥५३॥
यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना। अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणाल्लभेत्॥५४॥
यज्ञाद्व्रताच्च तपसो ध्यानाज्ज्ञानाचतीर्थतः ।
श्रीभागवतसप्ताहनियमो ह्युत्तमो मतः ॥५५॥
यदा कृष्णो भुवं त्यत्तवा स्वपदं गन्तुमुद्यतः ।
तदाऽज्ञायोद्धवो धीमान्गोविन्दं वाक्यमब्रवीत् ॥५६॥

उद्धव उवाच

भगवन्भवता सर्वं देवकार्यं प्रसाधितम्। अधुना गन्तमिच्छुस्त्वं स्वं पदं तमसःपरम्॥५७॥
अतश्चिन्ता ममोत्पन्नात्वद्वियोगभिया विभो। तामपाकुरु देवेश त्वामहं शरणं गतः ॥५८॥

तो ब्राह्मणों को भोजन कराया है उन मनुष्यों का जन्म व्यर्थ ही बीत गया है ॥४६॥ जिस मनुष्य का मन श्रीहरि की कथा में नहीं लगता है और दुष्ट पापियों को ही जो प्रसन्न करने का काम करता है उस पशु के समान मनुष्य को धिक्कार है। वह पृथिवी का भार है, इस तरह से पूर्व सिद्ध मुनिजन कहते हैं ॥४७॥ श्रीमद्भागवत की कथा संसार में दुर्लभ ही है। उसकी प्राप्ति करोड़ों जन्मों के पुण्य के उदित होने से होती है ॥४८॥ अतएव हे योगनिधे ! हे साधो भागवत की कथा को सुनना चाहिए। उसे प्रतिदिन सुना जा सकता है, उसके विषय में दिनों का कोई नियम नहीं है ॥४९॥ सत्य तथा ब्रह्मचर्य के द्वारा इसका श्रवण अभिमत है। इसीलिए कलियुग में सात दिन की अवधि की गयी है ॥५०॥ मन को अपने वश में नहीं करने से आयु क्षीण होती है। कलियुग के दोष बहुल होने के कारण सप्ताह भर में श्रवण बतलाया गया है ॥५१॥ मन का निग्रह करने तथा नियम का पालन करने के लिए ही सप्ताह भर में श्रवण का नियम बतलाया गया है ॥५२॥ प्रतिदिन श्रद्धा पूर्वक आदि से अन्त तक सुनने से जिस फल को कहा गया है उस फल को शुकदेवजी ने सप्ताहभर में सुनने पर कर दिया है ॥५३॥ तपस्या, योग तथा समाधि के द्वारा जिस फल की प्राप्ति नहीं होती है उन सम्पूर्ण फलों की प्राप्ति सप्ताह सुनने से हो जाती है ॥५४॥ यज्ञ, व्रत, तपस्या, ध्यान और ज्ञान एवं तीर्थ से श्रीमद्भागवत सप्ताह को उत्तम बतलाया गया है ॥५५॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण पृथिवी को छोड़कर जाने के लिए उद्यत हुए तो उसको जानकर उद्धवजी ने भगवान् गोविन्द से कहा ॥५६॥ **उद्धवजी ने कहा—** हे भगवन् ! आपने देवताओं का सारा कार्य कर दिया हैं, अब आप अपने वैकुण्ठ धाम में जाना चाहते हैं ॥५७॥ अतएव हे भगवन् ! मुझको आपके वियोग का भय उत्पन्न हो गया है। उसको आप दूर करें, मैं आपकी शरणागति करता हूँ ॥५८॥ भयङ्कर कलियुग

आगतोऽयं कालिर्घोरस्सर्वेऽप्यत्र जनाः खलाः ।
भविष्यन्ति ततो नाथ ! किं विधेयं तदाऽऽदिश ॥५९॥
इयं भारवती भूमिः शरणं कं प्रयास्यति । त्वदन्यो दृश्यते नाऽत्र त्रातास्यायदुनन्दन !॥६०॥
अतोऽस्मासु दयांकृत्वा तिष्ठात्रैवदयानिधे ! ।
साधूनां रक्षणायैव त्वमाविरभवः प्रभो ॥६१॥
निर्गुणोऽपि निराकारः सच्चिदानन्दविग्रहः । त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथंस्थास्यन्तिभूतले ॥
निर्गुणोपासने कष्टमतोऽस्मद्धितमाचर ॥६२॥

सूत उवाच

इत्युद्धववचः श्रुत्वा चिन्तयित्वा क्षणं हरिः ।
ददौ भागवतं तस्मै कृपया परया युतः ॥६३॥
निजं तेजः समाधाय श्रीमद्भागवते द्विज !। दत्त्वोद्धवाय भगवान्स्वकीयं पदमाविशत् ॥६४॥
तेनेयं वाङ्मयी मूर्त्तिर्वर्त्तते श्रीहरेरिह । सेवनात्सततंचास्याः पापं नश्येन्नृणां क्षणात् ॥६५॥
सप्ताहश्रवणं तेनकथितं सर्वतोऽधिकम् । श्रोतावक्ता प्रच्छकश्च यान्तिमन्मयतां द्विज !॥६६॥
दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षलनाय च । कामक्रोधजयार्थं च कलौ भागवतं क्षमम् ॥६७॥
अन्यथा वैष्णवी माया देवानामपि दुर्जया । कथं निवर्तते पुंसां श्रीमद्भागवतं विना ॥६८॥

सूत उवाच

इत्येवमुक्तवा माहात्म्यं श्रीमद्भागवतस्य ते। कथां भागवतीं दिव्यां प्रवक्तुमुपचक्रमुः॥६९॥
वेदोपनिषदांसारे श्रीमद्भागवते द्विजैः। आरभ्यमाणे तत्रैव भक्तिराविरभूत्क्षणात् ॥७०॥

आ गया है, यहाँ पर सव लोग दुष्ट प्रकृति के हो जायेंगे उस समय क्या करना चाहिए इस बात को बतलायें ॥५९॥ यह भार से भरी हुयी पृथिवी किसके शरण में जायेगी ? हे यदुनन्दन ! आप से भिन्न कोई इसका रक्षक नहीं दिखायी देता है ॥६०॥ हे दयानिधे ! आप हमलोगों पर दया करके यहीं रहें । हे प्रभो ! सज्जनों की रक्षा करने के लिए आप आविर्भूत हुए हैं ॥६१॥ आपका विग्रह यद्यपि निर्गुण और निराकार है । फिर भी आपके वियोग के कारण आपके भक्त पृथिवी पर कैसे रहेंगे ? निर्गुणोपासना में कष्ट है अतएव आप हमलोगों का कल्याण करें ॥६२॥ **सूतजी ने कहा—** इस प्रकार से उद्धवजी की वाणी सुनकर श्रीभगवान् क्षणभर चिन्तन करके परम कृपा से युक्त होकर उनको श्रीमद्भागवत प्रदान किए ॥६३॥ हे द्विज ! अपना तेज भागवत में स्थापित करके तथा उसे उद्धवजी को प्रदान करके श्रीभगवान् अपने धाम में चले गये ॥६४॥ इसीलिए यह (श्रीमद्भागवत) श्रीहरि की वाङ्मयी मूर्ति है । इसका निरन्तर सेवन करने से मनुष्यों के पाप क्षण भर में विनष्ट हो जाते हैं ॥६५॥ इसीलिए सप्ताह भर में इसके श्रवण को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है । हे द्विज ! इसके श्रोता, वक्ता और प्रष्टा भगवत स्वरूप हो जाते हैं॥६६॥ कलियुग में दुःख, द्रारिद्र्य, पाप समूह के प्रक्षालन करने में तथा काम एवं क्रोध को जीतने में भागवत समर्थ है ॥६७॥ अन्यथा भगवान् की माया देवताओं के भी लिए दुर्जय है । श्रीमद्भागवत के बिना इन सबों की निवृत्ति कैसे हो ?॥६८॥ इस तरह से श्रीमद्भागवत के माहात्म्य को कहकर वे सब भागवत

प्रेमान्विता चारुतनुर्मुदान्वितौ सुतौ गृहीत्वा तरुणौ स्वदोर्भ्याम् ।
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥७१॥
तामागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ।
व्यतर्कयंश्चापि कथं कुतोऽसौ कास्तीतिसर्वेऽपि सुविस्मिताक्षाः ॥७२॥
ततः कुमारा जगदुःकृतार्था कथार्थतो निष्पतिताऽधुनेयम् ।
एवं गिरः सा ससुता निशम्य जगाद नम्राब्जभुवः कुमारान् ॥७३॥

भक्तिरुवाच

भवद्भिरद्यैव कृताऽस्मि पुष्टा कलौ प्रनष्टापि कथारसेन ।
तिष्ठामि कुत्राऽहमभीष्टमाभ्यां सहास्पदं मह्यमुपादिशध्वम् ॥७४॥

सूत उवाच

तद्वाक्यमाकर्ण्य विधेः कुमारा विचार्य सम्यक्प्रणिधाय चित्ते ।
ऊचुश्च भक्तिं भवरोगहर्त्रीं प्रेमैकदात्रीं हरिभक्तिभाजाम् ॥७५॥

कुमाराऊचुः

भक्तेषु गोविन्दपरायणेषु साधुष्वथो दीनदयापरेषु ।
मनो नियम्योत्पथसम्प्रवृत्तं कृत्वैकतानं हरिपादपद्मे ॥७६॥
ततो हि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ।
कलौ त्वमेवैव जगद्धिताय भविष्यसे नारद ! संप्रणीता ॥७७॥

की दिव्य कथा को कहना प्रारम्भ किए ॥६९॥ वेदों तथा उपनिषदों के सार स्वरूप श्रीमद्भागवत के द्विजों द्वारा आरम्भ किए जाने पर क्षण भर में भक्ति आविर्भूत हो गयी ॥७०॥ प्रेम से युक्त सुन्दर शरीर वाली तथा आनन्द युक्त अपने तरुण पुत्रों को दोनों हाथों से पकड़कर बार-बार हे श्रीकृष्ण, हे गोविन्द, हे मुरारे, हे नाथ ! इस तरह से भगवान् नामों का उच्चारण कर रही थी ॥७१॥ उस सुन्दर नेत्र वाली तथा भागवत के अर्थ के भूषण स्वरूप आयी हुयी भक्ति को देखकर सदस्य सोच रहे थे कि यह यहाँ कहाँ से क्यों और कौन है ? सभी विस्मित थे ॥७२॥ उस समय कृतार्थ हुए कुमारों ने कहा इस समय यह कथा के अर्थ से निकली है । इस तरह वाणी अपने पुत्रों सहित सुनकर ब्रह्माजी के पुत्र को प्रणाम करके कही ॥७३॥ **भक्ति ने कहा**— कलियुग में विनष्ट हुयी मुझको आप लोगों ने कथा के रस से पुष्ट बना दिया है । इन दोनों के साथ मैं कहा ठहरूँ आपलोग मेरे स्थान का उपदेश करें ॥७४॥ **सूतजी ने कहा**— कुमारों ने भक्ति के वाक्यों को सुनकर अपने चित्त में अच्छी तरह से प्रणिधान करके संसार रूपी रोग को विनष्ट करने वाली तथा केवल प्रेम प्रदान करने वाली श्रीहरि की भक्ति के पात्र भूत भक्ति को कहा ॥७५॥ **कुमारों ने कहा**— भगवान् गोविन्द की भक्ति करने वाले भक्तों, साधुजनों तथा दीनों पर दया करने वालों तथा अपने मनों को वश में करके श्रीहरि के चरण कमलों में मन लगाने वालों में तुम निवास करो ॥७६॥ ऐसा करने से कलि के दोष लोक में देख भी नहीं पायेंगे । कलि में हे नारद से प्रसन्न केवल तुम ही जगत् का कल्याण करने वाली होयेगी ॥७७॥ जिनके हृदय में श्रीहरि की भक्ति का निवास है सम्पूर्ण लोकों में वे

सकलभुवनमध्ये निर्धनाश्चातिधन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ।
हरिहरि निजलोकं सत्वरं सम्विहाय प्रविशति हृदि येषां प्रेमसूत्रापिनद्धः ॥७८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां उत्तरे खण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये

पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

एक सौ छियानबेवाँ अध्याय

सूत उवाच

अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ।
निजलोकं परित्यज्य भुवमध्यगमद्धरिः ॥१॥
वनमाली घनश्यामः पीतवासाः किरीटधृत् ।
काञ्चीकलापपर्यस्तोलसन्मकरकुण्डलः ॥२॥
त्रिभङ्गललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः। कोटिमन्मथलावण्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥३॥
परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः । आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥४॥
वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवाः शान्तमानसाः ।
गूढरूपाः समायाताः श्रोतुकामा हरेः कथाः ॥५॥

निर्धन भी मनुष्य धन्य हैं । जिनके प्रेम सूत्र से बँधकर श्रीहरि भी अपने लोक को छोड़ कर उनके हृदय में प्रवेश कर जाते हैं ॥७८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड में श्रीमद्भागवत माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ पच्चानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९५।।

श्रीमद्भागवत माहात्म्य के अन्तर्गत गोकर्ण के वृत्तान्त पूर्वक आत्मदेव का धुन्धुकारी नामक पुत्र द्वारा पीड़ित होना तथा गोकर्ण की सान्त्वना से आत्मदेव का वन में जाना एवं उन्हें मुक्ति की प्राप्ति का वर्णन

सूतजी ने कहा— उसके बाद श्रीवैष्णवों के चित्त में अलौकिक भक्ति को देखकर श्रीहरि अपने लोक को त्यागकर पृथिवी पर आ गये ॥१॥ वनमाला धारण किए हुए नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण वाले पीताम्बर धारण किए हुए तथा किरीट धारण किए हुए काञ्ची कलाप से वेष्टित मकराकृति कुण्डल धारण किए हुए, त्रिभङ्गी से ललित बने हुए तथा कौस्तुभमणि से सुशोभित करोड़ों कामदेव से भी सुन्दर तथा हरिचन्दन से चर्चित ॥२-३॥ परमानन्द स्वरूप मधुर ज्ञान स्वरूप मुरली धारण किए हुए श्रीहरि अपने भक्तों के मन में प्रवेश कर गये ॥४॥ जो वैकुण्ठ में रहने वाले शान्त वैष्णव थे वे गूढरूप से श्रीहरि की

तदा जयजयेत्युच्चैः शब्दोऽभूत्कम्बुशब्दयुक् ।
येनाऽमङ्गलमत्युग्रं कलिजं प्रलयं गतम् ॥६॥
तत्रस्थानां जनानां च दृष्ट्वा गेहात्मविस्मृतिम् ।
नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कुमारान्प्रत्युवाच ह ॥७॥

नारद उवाच

अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ॥८॥
मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽपि तेऽतिप्रयान्त्येव गतिं पराख्याम् ।
अतो नृलोके न तु शास्त्रमन्यच्चित्तस्य शुद्ध्यै विहितं पवित्रम् ॥९॥
अघौघविध्वंसि कृतार्थतावहं कलौ युगे दोषनिधौ कुमाराः ।
के के न शुध्यन्ति वदन्तु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ॥१०॥
कृपालुभिर्लोकहितो भवद्भिः प्रकाशितः कोऽपि नवीनमार्गः ॥११॥

कुमाराऊचुः

ये मानवाः पापकृतः सुदुष्टाः सदा दुराचाररताः समत्सराः ।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन हरिं व्रजन्ति ते ॥१२॥
सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमवर्णबाह्याः ।
ये दाम्भिका जीवविहिंसकाश्च सप्ताहयज्ञेन हरिं व्रजन्ति ते ॥१३॥
पञ्चोग्रपापाश्छलकारिणश्च क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ।
ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारिणश्च सप्ताहयज्ञेन हरिं व्रजन्ति ते ॥१४॥
कायेन वाचा मनसाऽपि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये ।
नीचाः कृतघ्ना मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन हरिं व्रजन्ति ते ॥१५॥

कथा सुनने के लिए वहाँ आ गये ॥५॥ उस समय शङ्ख की ध्वनि के साथ जोर से जय-जयकार का शब्द हुआ। उसके द्वारा कलिजन्य उग्र अमङ्गल नष्ट हो गया ॥६॥ वहाँ पर विद्यमान लोगों के अपने घर और शरीर की विस्मृति को देखकर अध्यात्म तत्त्ववेत्ता नारदजी ने कुमारों से कहा ॥७॥ **नारदजी ने कहा—** हे मुनीश्वरों ! आज मैंने सप्ताह की अलौकिक महिमा को देखा ॥८॥ जो मूढ़ और शठ प्रकृति के पशु-पक्षी हैं लगता है वे भी परमागति को प्राप्त कर रहे हैं। हे कुमारों ! दोषाकर कलियुग में पाप समूह को विनष्ट करने वाला तथा कृतार्थता प्रदान करने वाला मनुष्य लोक में दूसरा कोई पवित्र शास्त्र नहीं है। अतएव आप मुझे बतलायें कि कथाओं से परिपूर्ण ज्ञान यज्ञ से कौन-कौन नहीं शुद्ध होते हैं ॥९-१०॥ आप कृपालु पुरुषों ने लोक का कल्याण करने के लिए इस अनिर्वचनीय नवीन मार्ग को प्राकाशित किया है ॥११॥ **कुमारों ने कहा—** जो मनुष्य पाप करने वाले, दुष्ट, दुराचार करने वाले तथा ईर्ष्यालु हैं। क्रोधाग्नि से जलते रहते हैं, कुटिल प्रकृति के तथा कामी हैं, वे भी सप्ताह यज्ञ के द्वारा श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥१२॥ जो सत्य नहीं बोलते हैं अपने माता-पिता की निन्दा करते हैं, लाालची तथा वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करते हैं दम्भ करने वाले तथा जीवों की हिंसा करने वाले हैं वे भी सप्ताह यज्ञ के द्वारा श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥१३॥ पाञ्चों प्रकार के उग्र पाप करने वाले छल करने वाले, क्रूर तथा

सूत उवाच

अथैवं तुष्टचित्तेऽथ नारदे देवपूजिते। प्रसन्नास्ते कुमाराश्च पुनरूचुश्च नारदम् ॥१६॥

कुमाराऊचुः

अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम्। यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते॥१७॥
तुङ्गभद्रातटे पूर्वं पत्तने कोहलाभिधे। वर्णाश्रमाचारयुते धनधान्यसमाकुले॥१८॥
आत्मदेवइतिख्यातस्तत्राऽऽसीद्द्विजसत्तमः। वेदविद्याविधिप्राज्ञो नित्यकर्मपरायणः ॥१९॥
तत्प्रिया धुन्धुली नाम नित्यं स्वीयहिते रता।
स्ववाक्यस्थापना चाऽपि सुन्दरी सुकुलोद्भवा ॥२०॥
पूर्वकर्मविपाकेन प्रायशो बहुजल्पिनी। शूरा च गृहकृत्येषु क्रूरा च कलहप्रिया ॥२१॥
एवं निवसतोस्तत्र दम्पत्योर्निरपत्ययोः। व्यतिक्रान्तं वयश्चापि पञ्चाशद्वर्षसम्मितम् ॥२२॥
अथ तौ दुःखितौ जातौ निरपत्यो गृहे स्थितौ।
सन्तानोत्पत्तये ताभ्यां दत्तं चाऽपि धनादिकम् ॥२३॥
गोभूहिरण्यवासांसि दत्तान्यपि बहूनि च। न पुत्रो नापि दुहिता जायते पूर्वकर्मणा॥२४॥
सचैकदा तु निर्विण्ण आत्मदेवो द्विजोत्तमः।
गृहंत्यक्त्वा गतोऽरण्यमानपत्येनदुःखितः ॥२५॥
यत्र तत्र भ्रमन्भ्रान्तोदुःखाकुलितमानसः। क्षुत्क्षामस्तृट्परीतश्च दैवात्प्राप्तोजलाशयम्॥२६॥

पिशाच के समान निर्दय हैं; ब्रह्मस्व से अपने शरीर का पोषण करने वाले तथा व्यभिचारी हैं वे भी सप्ताह यज्ञ के द्वारा श्रीहरि को प्राप्त करते हैं ॥१४॥ जो शरीर, वाणी तथा मन से भी पाप करने वाले शठ तथा हठी हैं, नीच, कृतघ्न मलिन तथा दुष्ट आशय वाले हैं वे भी सप्ताह यज्ञ के द्वारा श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥१५॥ **सूतजी ने कहा**— इसके पश्चात् सन्तुष्ट चित्त वाले देव पूजित नारदजी के हो जाने पर प्रसन्न हुए वे कुमार नारदजी से फिर कहे ॥१६॥ **कुमारों ने कहा**— अब मैं आप को प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ जिसके सुनने मात्र से पाप का नाश हो जाता है ॥१७॥ तुङ्गभद्रा नदी के तट पर पूर्व कालीन वर्णाश्रम का आचरण करने वाले धन-धान्य से परिपूर्ण लोगों वाला कोहल नामक ग्राम था। वहाँ आत्मदेव नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे वे वेद विद्या की विधि के ज्ञाता तथा नित्य कर्म में लगे रहते थे ॥१८-१९॥ उनकी पत्नी का नाम धुन्धुली था, वह अच्छे वंश में उत्पन्न तथा सुन्दरी थी। वह अपने ही हित में लगी रहती थी, अपनी ही बात को स्थापित करती थी ॥२०॥ पूर्व जन्म के परिणाम स्वरूप वह बहुत बोलती थी। घर के कार्यों को करने में वह चतुर थी। कलह करना उसको प्रिय था ॥२१॥ इस तरह रहते हुए वे निःसन्तान थे। पचास वर्ष की अवस्था बीत गयी ॥२२॥ अपने घर में रहते हुए निःसन्तान होने के कारण वे दुःखी हो गये। सन्तान की उत्पत्ति के लिए उन दोनों ने बहुत अधिक धन आदि का दान किया ॥२३॥ गौ, भूमि, सुवर्ण और वस्त्र आदि का भी बहुत दान दिया। किन्तु पूर्वजन्म के कर्म के कारण उन सबों को न तो कोई पुत्र हुआ और न पुत्री ॥२४॥ एक बार आत्मदेव उदास होकर अनपत्यता के कारण दुःखी होकर घर छोड़कर वन में चले गये ॥२५॥ वे इधर-उधर घूमते रहे। उनका मन दुःखी था। भूख-प्यास से व्याकुल वे भाग्यवशात् एक जलाशय पर आये ॥२६॥ वे द्विजोत्तम उस सरोवर में जल पीकर हे नारद!

जलं पीत्वा ततस्तस्मिंस्तडागे स द्विजोत्तमः ।
वृक्षच्छायां समाश्रित्य निषण्णस्तत्र नारद ! ॥२७॥
अथ तत्र तदैवागात्कश्चित्सिद्धो भ्रमन्महीम् । जलं पीत्वा तडागे तु सोऽपि तत्रैव चाऽऽगतः॥२८॥
तंदृष्ट्वा न्यासिनं शान्तमात्मदेव उदारधीः । सत्कृत्योत्थाय तत्पादौ जग्राहस्वगुरोरिव॥२९॥
उपविष्टौततस्तौ द्वौ कृतप्रश्नौपरस्परम् । सुस्निग्धमानसौ भूत्वा गुरुशिष्याविवाश्रमे ॥३०॥
अथ तं स यतिर्दृष्ट्वा श्वसन्तंदुःखितान्तरम्। पप्रच्छ करुणासिन्धुरात्मदेवं पुरःस्थितम् ॥३१॥

सिद्ध उवाच

का ते चिन्ता द्विजश्रेष्ठ ! दुःखाय हृदि वर्तते ।
तां समाचक्ष्य धर्मज्ञ ! परितापप्रदायिनीम् ॥३२॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सिद्धस्य सुमहात्मनः । आत्मदेव उवाचाऽथ स्वस्य दुःखस्य कारणम्॥३३॥

आत्मदेव उवाच

किं ब्रवीमि मुने दुःखं सञ्चितं पूर्वकर्मणाम् ।
मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुञ्जते ॥३४॥
मद्दत्तंनैव गृह्णन्ति पितरो देवताबलिम् । तेनदुःखेन निर्विण्णः प्राणांस्त्यक्तुमिहाऽऽगतः॥३५॥
धिग्जीवितं प्रजाहीनं गृहं चैव धनं कुलम्। पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्यात्वमेति ह ॥३६॥
यो मया रोपितो वृक्षःसोऽपि वन्ध्यत्वमागतः ।
निर्भाग्यस्याऽनपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ॥३७॥

कुमारा ऊचुः

इत्युत्तवा स रुरोदोच्चैस्तत्पुरो दुःखपीडितः ।
यदा तदा यतेश्चित्तेकरुणाऽभूद्गरीयसी ॥३८॥

वहीं वृक्ष की छाया में बैठ गये ॥२७॥ उसके बाद पृथिवी पर भ्रमण करते हुए कोई सिद्ध वहाँ आ गये। सरोवर में जल पीकर वे भी वहीं आ गये ॥२८॥ उस संन्यासी को देखकर उदार बुद्धि वाले आत्मदेव उनका सत्कार करके गुरु के समान उनके पैरों को पकड़ लिए ॥२९॥ उसके बाद बैठे हुए वे दोनों परस्पर में कुशल प्रश्न किए । आश्रम में रहने वाले गुरु तथा शिष्य के समान आपस में स्निग्ध मन वाले हो गये॥३०॥ उसके पश्चात् उस ब्राह्मण को दुःखी तथा निःश्वास लेते हुए देखकर वे करुणासागर यति सामने बैठे हुए आत्मदेव से पूछे ॥३१॥ **सिद्ध ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! आपके हृदय में दुःख देने वाली कौन सी चिन्ता हैं ? हे धर्मज्ञ ! दुःख देने वाली उस चिन्ता को आप मुझे बतलायें ॥३२॥ उस सिद्ध महात्मा के वचन को सुनकर आत्मदेव ने अपने दुःख का कारण बतलाया ॥३३॥ **आत्मदेव ने कहा—** हे मुने! पूर्वजन्म के कर्मों से उत्पन्न अपने दुःख को क्या बतलाऊँ ॥३४॥ मेरे द्वारा प्रदत्त बलि को पितृगण नहीं ग्रहण करते हैं । उसी दुःख से दुःखी होकर अपने प्राणों का परित्याग करने के लिए मैं वन में आया हूँ॥३५॥ सन्तान हीन जीवन के धन को, वंश तथा गृह को धिक्कार है । मैं जिस गौ को पालता हूँ वह गौ भी बन्ध्या हो जाती हैं ॥३६॥ मैंने जिस वृक्ष को लगाया वह वृक्ष भी बंध्या हो गया । अतएव

ललाटाक्षरमालां च दृष्ट्वा ज्ञात्वा स योगवान् ।
आत्मदेवं द्विजं प्राज्ञः पुनरूचे सविस्तरम् ॥३९॥

सिद्ध उवाच

शृणु विप्र ! मया तेऽद्य प्रारब्धमवलोकितम् ।
सप्तजन्मावधिप्राप्तिः पुत्रस्य न च दृश्यते ॥४०॥
मुञ्चाऽऽग्रहं प्रजाहेतोर्बलिष्ठा कर्मणो गतिः ।
विवेकं तु समासाद्य सुखीभव महामते ॥४१॥

एवमुक्तं समाकर्ण्य सिद्धस्य द्विजसत्तमः । प्रजाशाबद्धचित्तस्तु सिद्धंप्राहाऽतिदुःखितः॥४२॥

विप्र उवाच

विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रंदेहि बलादपि । नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्च्छितः ॥४३॥
इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः । सन्ततेः सगरोदुःखमवापाङ्गः प्रजापतिः ॥४४॥
चित्रकेतुर्गतः कष्टं विधिलेखविमार्जनात् । अतस्त्वमपि धर्मज्ञ ! यदि पुत्रं लभेरपि ॥४५॥
सुतेन न सुखीभूया दैवं हि बलवत्तरम्। इत्युत्तवा द्विजवर्याय स सिद्धः साधुसम्मतः ॥४६॥
ददावेकं फलं तस्मै प्राग्रहेण सुतार्थिने । इदं फलं मया तुभ्यं दत्तं पुत्राप्तये द्विज ! ॥४७॥
भार्यायै देहि पुत्रस्ते भविष्यति न संशयः । सत्यं शौचं दयादानमेकभक्तं तु भोजनम् ॥४८॥
वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेनशुद्धो भवेत्सुतः । एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्वगृहमागतः ॥४९॥

भाग्यहीन तथा नि:सन्तान को जीवन से क्या लाभ है ?॥३७॥ इस तरह से कहकर आत्मदेव उन यति के सामने दुःखी होकर जोर-जोर से रोने लगे । उस समय यति के चित्त में बहुत अधिक करुणा आ गयी॥३८॥ ललाट के अक्षर समूह को देखकर योगी ने उसे जान लिया और आत्मदेव से पुनः विस्तार पूर्वक कहा ॥३९॥ **सिद्ध ने कहा—** हे विप्र ! सुनो आज मैंने तुम्हारे प्रारब्ध को देख लिया है । आपको सात जन्मों तक पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी ॥४०॥ सन्तान की प्राप्ति का आग्रह आप त्याग दें कर्मों की गति बलवान् होती है । हे महामते ! विवेक को अपनाकर आप सुखी हो जायँ ॥४१॥ सिद्ध की इस तरह की वाणी को सुनकर प्रजा की आशा में बद्ध वे द्विजश्रेष्ठ अत्यन्त दुःखी होकर सिद्ध से कहे ॥४२॥ **ब्राह्मण ने कहा—** विवेक से मेरा क्या होगा ? आप बल पूर्वक मुझे सन्तान प्रदान करें अन्यथा मैं शोकाविष्ट होकर आपके सामने ही अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा ॥४३॥ इस तरह के विप्र के आग्रह को देखकर वे तपोधन कहे सन्तान के द्वारा अङ्ग प्रजापति दुःख प्राप्त किए ॥४४॥ विधि के लेख को मिटाने के कारण चित्रकेतु भी दुःख प्राप्त किए अतएव हे धर्मज्ञ यदि तुम पुत्र प्राप्त करते हो तो उससे तुम्हें कष्ट ही होगा ॥४५॥ तुम पुत्र से सुखी नहीं होओगे । सबसे बलवान् भाग्य ही होता है । इस तरह से साधु सम्मत बात कहकर वे सिद्ध उस ब्राह्मण के पुत्र के आग्रह वाले उनको एक फल प्रदान किए और कहे कि द्विज यह फल मैं आपको पुत्र की प्राप्ति के लिए दे रहा हूँ ॥४६-४७॥ इसे तुम अपनी पत्नी को दे देना तो उसको पुत्र की प्राप्ति अवश्य होगी । उसे सत्य शौच, दया तथा दान और एक शाम भोजन करना चाहिए । उससे शुद्ध पुत्र होगा । इस तरह से कहकर योगी चले गये और ब्राह्मण भी अपने घर आये ॥४८-४९॥ उन्होंने पत्नी को फल दिया और सिद्ध की बातों को बतलाया । उसके बाद क्रूर स्वभाव

दत्त्वा पत्न्यै फलं तत्तु सिद्धोक्तमवदच्च ह ।
अथ सा धुन्धुली क्रूरा स्ववाक्यस्थापनोत्सुका ॥५०॥
स्वसख्यै प्राह तत्सर्वं पत्योक्तं सिद्धभाषितम् ।
यद्यहं भक्षये चेदंफलं सिद्धेनचार्पितम् ॥५१॥
गर्भो मम भवेत्तर्हि कथं चाऽहं सहाम्यहम् ।
स्वल्पं भक्ष्यमशक्तिश्च गमने गृहकर्मणि ॥५२॥
तिर्यक्चेदागतो गर्भो तदा मे मरणं भवेत्। प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥५३॥
मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत्सदा। चिन्ता मे समनुप्राप्ता किं करोमि शुचिस्मिते !॥५४॥
सा तद्वचनमाकर्ण्य स्नेहभङ्गभयाद्द्विज !। एवमेवेति तां प्राह प्रीत्या प्रहसितानना ॥५५॥
एवं कुकर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम्। पत्या पृष्टे फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम्॥५६॥
एकदा भगिनी तस्याः स्वेच्छया तद्गृहं गता ।
तदग्रे कथितंसर्वं चिन्तेयं महती हि मे ॥५७॥
दुर्बला तेनदुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम्। साब्रवीन्ममगर्भोऽस्ति तुभ्यंदास्ये प्रसूतितः ॥५८॥
तावत्कालं सगर्भेव गुप्तातिष्ठ गृहेसुखम्। तं बालं पोषयिष्यामि त्वद्गृहे चैवनित्यशः॥५९॥
फलं धेनोः प्रयच्छाऽद्य परीक्षार्थं शुभानने ! ।
इत्युक्त्वा सा ययौ गेहमात्मनो हृष्टमानसा ॥६०॥
धुन्धुल्याऽपि यथोद्दिष्टं तद्भगिन्या तथा कृतम् ।
अथ प्रसूय सा बालं धुन्धुल्यै चार्पयद्द्रुतम् ॥६१॥

वाली तथा अपनी बात को स्थापित करने वाली धुन्धुली ॥५०॥ अपनी सखी से पति द्वारा कही गयी बात को तथा सिद्ध की बात को बतलायी। यदि मैं सिद्ध के द्वारा प्रदत्त फल को खा लेती हूँ ॥५१॥ तो मुझको गर्भ हो जायेगा ऐसी स्थिति में मैं उसे कैसे बर्दास्त करूँगी मेरा आहार घट जायेगा और चलने तथा घर के कार्यों को करने की शक्ति नहीं रहेगी ॥५२॥ यदि गर्भ टेढ़ा हो गया तब तो मैं मर ही जाऊँगी। प्रसव करने में भारी कष्ट होता है, उसको सुकुमारी मैं कैसे सहूँगी ॥५३॥ मेरे मन्द हो जाने पर मेरी ननद मेरा सब कुछ चुरा लेगी। शुचिस्मिते ! यह मुझको चिन्ता है वह बतलाओ मैं क्या करूँ ॥५४॥ इस बात को सुनकर प्रेमभङ्ग होने के भय से प्रेम पूर्वक हँसती हुयी उससे उसने कहा तुम ठीक कहती हो ॥५५॥ इस तरह से कुतर्क करने के कारण वह फल नहीं खायी, पति ने जब पूछा कि फल को खा ली न तो उसने कहा हाँ खा लिया ॥५६॥ एक दिन उसकी बहन अपनी इच्छा से उसके घर आयी। उसने उसके सामने सारी बातों को कहकर कहा यह मुझको बहुत बड़ी चिन्ता है ॥५७॥ हे अनुजे ! उसी दुःख से मैं दुर्बल हो गयी हूँ मैं क्या करूँ ? उसने कहा मुझे गर्भ है प्रसव के बाद उसको मैं तुम्हें दे दूँगी ॥५८॥ उतने समय तक तुम गर्भवती के समान घर में सुखपूर्वक रहो। तुम्हारे घर नित्य आकर मैं उस बालक को पोस दूँगी ॥५९॥ परीक्षा करने के लिए उस फल को गौ को खिला दो इस तरह से कहकर वह प्रसन्न होकर अपने घर चली गयी ॥६०॥ धुन्धुली ने भी वैसा ही किया जैसा कि उसकी बहन ने कहा था उसके वाद बालक को उत्पन्न करके शीघ्र ही धुन्धुली को प्रदान कर दी ॥६१॥ उसने अपने पति से कहा सुख

तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः। लोकस्यसुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ॥६२॥
दत्त्वा दानं द्विजाग्रेभ्यो जातकर्म चकारच। गीतवादित्रनिर्घोषो गृहे तस्याऽतिमङ्गलम् ॥६३॥
बभूवहर्षमापन्न आत्मदेवो महामतिः। अथ सा प्राह भर्त्तारं दुग्धं मे स्तनयोर्नहि ॥६४॥
पालयिष्ये कथं बालं सद्यः सूतं प्रभोऽधुना।
मत्स्वसुश्च प्रसूता या मृतो बालः पुराऽभवत् ॥६५॥
तामानीय गृहे रक्ष साऽर्भकं पोषयिष्यति। इतिश्रुत्वा वचस्तस्य धुन्धुल्या द्विजसत्तमः ॥६६॥
तथैव कृतवान्भ्रान्तस्त्वात्मदेवो मुदाऽन्वितः। धुन्धुकारीति नामाऽस्य कृतं मात्रा यथार्थतः ॥६७॥
स्तन्येन पोषमाप्नोति नित्यं मातृष्वसुः सुतः। त्रिमासे निर्गते चाऽथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम्॥६८॥
सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम्। दृष्ट्वा प्रसन्नस्तं विप्रः संस्कारान्स्वयमादधे॥६९॥
तं दिदृक्षवआयाता जनाः सर्वेऽतिविस्मिताः।
आत्मदेवस्यविप्रस्य महाभाग्योदयेनच ॥७०॥
धेन्वा बालः प्रसूतश्च देवरूपोऽतिकौतुकम्। न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ॥७१॥
गोकर्णं तं सुतं दृष्ट्वा गोकर्णेत्येव चाभ्यधात्।
कियत्कालेन सम्प्राप्तौ तारूण्यं तावुभावपि ॥७२॥
गोकर्णःपण्डितोज्ञानीधुन्धुकारीमहाखलः। स्नानशौचक्रियाहीनोऽक्ष्यभक्षीक्रुधाप्लुतः ॥७३॥
चौरःसर्वजनद्वेषी दुष्टचाण्डालसङ्गतः। क्रीडतो ह्यर्भकान्धृत्वा बलात्कूपे निपातयेत् ॥७४॥
एवं वेश्याप्रसङ्गेनाऽनयद्द्रव्यं क्षयं पितुः। पिताकृपणवत्तस्य शुचा निःस्वो रुरोद ह ॥७५॥

पूर्वक प्रसव हो गया। सन्तान के उत्पन्न हो जाने से आत्मदेव को संसार का सुख मिल गया ॥६२॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान देकर उन्होंने जातकर्म किया। उसके घर में गीत और वाद्य की अत्यन्त मङ्गलमय ध्वनि हुयी ॥६३॥ महामति आत्मदेव हर्षित हो गये। उसके बाद उसने पति से कहा मेरे स्तनों में दुग्ध नहीं हैं ॥६४॥ मैं बालक का पालन कैसे करूँगी। मेरी बहन को जो पुत्र हुआ वह बालक मर गया है ॥६५॥ उसको लाकर अपने घर में रखिए वह बालक को पोस देगी। इस तरह की धुन्धुली की वाणी को सुनकर द्विजश्रेष्ठ ॥६६॥ वैसा ही किए और आत्मदेव प्रसन्न हुए। उस बालक का नाम उसकी माँ ने धुन्धुकारी रखा ॥६७॥ नित्य ही अपनी माता की बहन के दुग्ध से बालक पोसने लगा। तीन महीने बीत जाने पर उस गौ ने भी पुत्र को उत्पन्न किया ॥६८॥ वह बालक सर्वाङ्ग सुन्दर तथा दिव्य सुवर्ण के समान कान्ति वाला था। उसको देखकर प्रसन्न वे ब्राह्मण उसके सभी संस्कारों को स्वयम् किए ॥६९॥ उसको देखने के लिए आये हुए सभी लोग ब्राह्मण आत्मदेव के भाग्योदय को देखकर आश्चर्यित थे। गौ ने भी देवता के समान बालक को जन्म दिया यह अत्यन्त कौतुक का विषय है। भाग्य के योग से किसी ने उसके रहस्य को नहीं जाना ॥७०-७१॥ उस पुत्र को गौ के कान वाला देखकर उसका नाम गोकर्ण हुआ। कुछ समय बाद वे दोनों युवक हो गये ॥७२॥ गोकर्ण पण्डित और ज्ञानी हुए और धुन्धुकारी महादुष्ट हुआ। स्नान शौच क्रिया से रहित वह अभक्ष्य भक्षी और क्रोधी हुआ ॥७३॥ वह चोर, सभी लोगों से द्वेष करने वाला, दुष्ट और चाण्डालों के साथ रहता था। वह खेलते हुए बालकों को बल पूर्वक कुएँ में डाल देता

अनपत्यसुखी नित्यं कुपुत्रो दुःखदायकः। सिद्धेनोक्तं वचः सत्यमनुभूतं मयाऽधुना ॥७६॥
क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि को मे दुःखं निवारयेत्।
प्राणांस्त्यक्ष्ये जले वह्नौ भृगोर्वापि पते ह्यहम् ॥७७॥
इत्येवं चिन्तयानं तमधोमुखमुपागतः। गोकर्णो जनकं ज्ञानी बोधयामास तत्त्वतः ॥७८॥

गोकर्ण उवाच

असारस्तात ! संसारो दुःखमोहप्रदो नृणाम्।
कः सुतः किंधनं कस्य का जाया कः पतिः पितः ! ॥७९॥
मोहेन बद्धो दीनात्मा लोकः क्लिश्यति नान्यथा।
नचेन्द्रस्य सुखं किञ्चिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ॥८०॥
विरक्तस्य सुखं तात ! मुनेरेकान्तशीलिनः। मुञ्चाऽज्ञानं प्रजारूपं मोहं नरककारणम् ॥८१॥
निर्द्वन्द्वो निरभीमानो व्रज त्यक्त्वाऽखिलं वनम्।
ततस्तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णं स द्विजोऽब्रवीत् ॥८२॥

द्विज उवाच

यत्कर्त्तव्यं वने साधोतन्ममाऽऽचक्ष्व विस्तरात्।
मोहपाशनिबद्धंहि शठंकृपणमानसम् ॥८३॥
संसारगर्ते पतितं मामुद्धर दयानिधे !। पितुरित्थं वचः श्रुत्वा गोकर्णो ज्ञानपण्डितः ॥८४॥
उवाच दीनं निर्विण्णं पितरं हृष्टमानसः।

गोकर्ण उवाच

मांसास्थिरक्तनिकरेस्वशरीरकेऽस्मिन्स्वत्वंत्यजाऽऽशुममतां वनितासुतादौ ॥८५॥

था ॥७४॥ वेश्या के साथ रहकर उसने पिता की सम्पत्ति को नष्ट कर दिया। उसके पिता कृपण के समान शोक करते हुए सिसक कर रोते थे ॥७५॥ वे कहते थे कि निःसन्तान सदा सुखी रहता है और कुपुत्र तो केवल दु;ख ही देता है। अब मैं अनुभव करता हूँ कि सिद्ध की वाणी सत्य थी ॥७६॥ मैं कहाँ जाऊँ? कहा रहूँ ? मेरे दुःख को कौन दूर करेगा ? मैं जल में या अग्नि में अथवा पर्वत शिखर से गिरकर अपनी जान दे दूँगा ॥७७॥ इस तरह नीचे मुख करते चिन्ता करते हुए उनके पास गोकर्ण आये और उन्होंने अपने पिता को समझाया ॥७८॥ **गोकर्ण ने कहा**— हे तात ! यह संसार निःसार है और लोगों को दुःख और मोह प्रदान करने वाला है। हे पितः ! पुत्र, धन, पत्नी तथा पति किसी के नहीं होते हैं ॥७९॥ मोह से बँधा हुआ दीन लोग केवल दुःखी ही होते हैं। सुख न तो इन्द्र को मिलता है और न चक्रवर्ती राजा को ॥८०॥ सुख तो हे पितः ! एकान्त में रहने वाले मनन शील विरक्त को ही मिलता है। नरक प्रदान करने वाले सन्तान के मोह को आप त्याग दें ॥८१॥ द्वन्द्व और अभिमान रहित होकर आप सब कुछ त्याग कर वन में चले जायँ। उसके पश्चात् गोकर्ण की बात सुनकर उन्होंने गोकर्ण से पूछा॥८२॥ **ब्राह्मण ने कहा**— हे साधो ! वन में मुझे जो करना चाहिए उसे तुम विस्तार से बतलाओ मैं तो मोह के बन्धन में बँधा हुआ शठ तथा कृपण मन वाला हूँ ॥८३॥ हे दयासागर ! संसार रूपी गढ़े में गिरे हुए मेरा तुम उद्धार करो। पिता की इस प्रकार की वाणी को सुनकर ज्ञानी तथा पण्डित गोकर्ण

पश्याऽनिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं ज्ञानी विरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ।
धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्संसेव्य साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम् ॥८६॥
अन्यस्यदोषगुणचिन्तन्माशुमुत्तवा विष्णोःकथारसमथोनितरांपिब त्वम् ।

कुमाराऊचुः

एवं सुतोक्तविदितानुभवो निरीहस्त्यत्तवा गृहं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ।
नित्यं हरिप्रियजनानुगतो महात्मा दुष्प्रापमाप च पदं स हरेर्वनस्थः ॥८७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९६॥

एक सौ सतानबेवाँ अध्याय

कुमाराऊचु

पितर्येवं वनं प्राप्तो पश्चादागत्य नारद ! । जननीं तर्जयामास धुन्धुकारी महाखलः ॥१॥
क्ववित्तं तिष्ठतिब्रूहि मातरं प्रति नारद ! । सर्वथा त्वां हनिष्यामि नचेद्ब्रूया निधानकम् ॥२॥

ने प्रसन्न मन से दीन तथा दुःखी पिता से कहा ॥८४॥ मांस, हड्डी, रक्त से बने अपने शरीर तथा पत्नी पुत्र की ममता को आप शीघ्र त्याग दें । सदा इस संसार को क्षणभङ्गुर मानें ज्ञानी आप भक्ति निष्ठ होकर वैराग्य सम्पन्न हो जायँ ॥८५॥ निरन्तर आप धर्म का पालन करें, लोक धर्म को त्याग दें, साधु पुरुषों की सेवा करके काम और लालच को त्याग दें । आप दूसरे के गुण का चिन्तन शीघ्र छोड़कर भगवान् विष्णु के कथा रूपी अमृत का निरन्तर पान करें ॥८६॥ **कुमारों ने कहा—** इस तरह से पुत्र के द्वारा कही गयी बात का प्रभाव जानकर, तृष्णा रहित साठ वर्ष के वे घर त्यागकर स्थिर बुद्धि वाला होकर नित्य ही भागवतों का अनुगमन करते हुए वन में रहकर दुष्प्राप्य गति को प्राप्त कर लिए ॥८७॥
इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के श्रीमद्भागवत माहात्म्य का वर्णन करने वाले एक सौ छियानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९६।।

वेश्याओं द्वारा धुन्धुकारी का वध, धुन्धुकारी को पिशाचत्व की प्राप्ति, धुन्धुकारी की दशा से दुःखी गोकर्ण का ब्राह्मणों को सारी बातें बतलाना, सूर्यनारायण की आज्ञा से धुन्धुकारी के निमित्त श्रीमद्भागवत सप्ताह को करना और धुन्धुकारी की मुक्ति

कुमारों ने कहा— हे नारद ! इस तरह पिता के वन में चले जाने के पश्चात् महान खल धुन्धुकारी अपनी माता को खूब डाँटा ॥१॥ उसने माता से कहा धन कहाँ पर है, यदि तुम धन नहीं बतलाती हो तो मैं तुम्हें मार डालूँगा ॥२॥ उसकी बातों से डरी हुयी उसकी माता दुःखी होकर रात्रि में कुएँ में कूद

सा तस्य वचनात्रस्ता रात्रौ दुःखितमानसा ।
निपत्य कूपे तु मृता लोकैर्ज्ञात्वा बहिष्कृता ॥३॥
गोकर्णस्तां तु निर्हत्यद्विजैस्तज्ज्ञातिबान्धवैः। तीर्थयात्रांययौप्राज्ञः समदुःखसुखोमुने॥४॥
धुन्धुकारी गृहे तिष्ठन्स्वके पण्यवधूवृतः। अत्युग्रकर्माचारेण तत्पोषणविमूढधीः ॥५॥
भूषणान्यभिलिप्सन्त्यस्तमूचुर्वारयोषितः । भोभोः प्रिय वयंसर्वास्त्वया नाथेनसङ्गताः ॥६॥
स्थिता नैवाऽत्र कोऽप्यन्यो धनदोऽभ्येति मानद ! ।
तस्मात्सूक्ष्माणि वस्त्राणि भूषणानि द्युमन्ति च ॥७॥
देहि नो चेद्व्रजिष्यामस्त्वत्सकाशान्नरान्तरम् ।
इति श्रुत्वा वचस्तासां चिन्तयित्वा क्षणं स च ॥८॥
निर्गतः स्वगृहाद्रात्रौ कामान्धो मृत्युमस्मरन् ।
मुषित्वा कस्यचिद्गेहाद्वस्त्रारण्याभरणानि च ॥९॥
ददौताभ्योमुदायुक्तः प्रीत्यैतासां स नारद !। तानिदृष्ट्वा ह्यमूल्यानि वस्त्राण्याभरणानि च॥१०॥
ताःस्त्रियश्चिन्तयामासुश्चौर्येणैतानि चामुना। आहृतानीति निश्चित्यपरस्परममन्त्रयन्॥११॥
चौर्यं करोत्यसौ नित्यमेनंराजा ग्रहीष्यति । वित्तंहृत्वा पुनश्चैवमारयिष्यतिनिश्चितम् ॥१२॥
अतो रहसि चास्माभिर्हत्वाऽमुंचौर्यकारिणम् ।
वित्तं च बहु संगृह्य किमन्यत्रनगम्यते ॥१३॥
इतिताः क्रूरहृदयाःसुप्तं कण्ठग्रहं तदा। पाशैः सुतीक्ष्णैर्बद्ध्वा च व्यापादयितुमुद्यताः ॥१४॥
यदा च न मृतश्चाऽसौ भृशं कण्ठग्रहेण वै ।
तदाङ्गाराणि बहुशोमुखे चास्यविचिक्षिपुः ॥१५॥

कर मर गयी, लोगों ने जब जाना तो उसको बाहर निकाला ॥३॥ हे मुने ! गोकर्ण ब्राह्मणों तथा बान्धवों के द्वारा और्ध्व दौहिक क्रिया करके सुख और दुःख को एक समान मानने वाले तीर्थ यात्रा में चले गये॥४॥ घर में रहने वाले धुन्धुकारी ने वेश्या को रख लिया और अत्यन्त उग्र कर्मों को करता हुआ उन सबों का पोषण करने लगा ॥५॥ आभूषण को चाहने वाली वे सब वेश्याएँ उससे कहीं । हे प्रियतम ! हम सभी आपके साथ रहती हैं और आप हमारे स्वामी हैं ॥६॥ यहाँ रहने वाली हम सबों को यहाँ कोई दूसरा धन देने वाला नहीं है अतएव सूक्ष्म वस्त्रों और चमकते आभूषणों को ॥७॥ आप हमलोगों को दें नहीं तो हमलोग किसी दूसरे पुरुष के यहाँ चली जायेंगी । उन सबों के इस वचन को सुनकर धुन्धुकारी ने क्षण भर विचार किया ॥८॥ कामान्ध बना हुआ और अपनी मृत्यु का स्मरण नहीं करने वाला वह रात्रि में घर से निकला किसी के घर से वस्त्रों और आभूषणों को चुराकर ॥९॥ प्रसन्नता पूर्वक उन सबों को दे दिया । जिससे कि वे प्रसन्न रहें । हे नारद ! उन बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणों को देखकर ॥१०॥ उन स्त्रियों ने सोचा इन सबों को इसने चोरी करके लाया है । इस तरह से उन सबों ने विचार किया ॥११॥ यह प्रतिदिन चोरी करता है अतएव राजा इसको पकड़ लेगा । सम्पत्ति छिनकर इसको मार डालेगा ॥१२॥ अतएव एकान्त में इसको मारकर बहुत अधिक मात्रा में धन इकट्ठा करके हमलोगा कहीं अन्यत्र क्यों न चले जायँ ॥१३॥ इस तरह से क्रूर हृदय वाली वे सब उसके सो जाने पर उसके गले में अत्यन्त तीक्ष्ण

अग्निज्वालातिदःखेन व्याकुलोनिधनं गतः । तद्देहंचिक्षिपुर्गर्ते प्रायः साहसिकाःस्त्रियः ॥१६॥
न ज्ञातं तच्चरित्रं तु केनापि मुनिसत्तम ! । लोकैः पृष्टा वदन्तिस्म दूरे यातः पतिर्हिनः ॥१७॥
आगमिष्यति दीर्घेणकालेन धनकर्षितः । अतःस्त्रीणांन विश्वासः कर्त्तव्यो विदुषांवरैः ॥१८॥
विश्वस्तं सर्वथा घ्नन्ति प्रार्थयन्त्यो नवं नवम् ।
सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्द्धनम् ॥१९॥
हृदयंक्षुरधाराभं प्रियःको नाम योषिताम् । अथ ता बहुलं वित्तं गृहीत्वा वारयोषितः ॥२०॥
ग्रामान्तरं ययुः शीघ्रं भयाद्राज्ञोऽतिविह्वलाः ।
धुन्धुकारी बभूवाऽथ महाप्रेतःकुकर्मकृत् ॥२१॥
वात्या रूपधरोनित्यं धानन्दुर्मृत्युतो दिशः। शीतातपपरिक्लष्टो निराहारःपिपासितः ॥२२॥
न च लेभे सुखं क्वाऽपिहा हेति प्रवदन्मुहुः ।
कियत्कालान्तरे त्वेनं मृत्तं चैवावबुध्यच ॥२३॥
गोकर्णस्तीर्थयात्रायां गयाश्राद्धमथाऽकरोत्। समाप्य तीर्थयात्रां तु स्वं पुरं समुपेयिवान्॥२४॥
सभाजितःसपौरैस्तुप्रीत्या स्वजनबान्धवैः। उवासस्वगृहे चैवदिनानि कतिचिद्दि्वजः॥२५॥
रात्रौप्रसुप्तं गोकर्णज्ञात्वा वेश्माङ्गणे स तु। धुन्धुकारी महादुष्टो रौद्रं रूपं व्यर्दयत् ॥२६॥
क्षणं नागःक्षणं चोष्ट्वःक्षणं स महिषोऽभवत् ।
क्षणमग्निः क्षणंसर्पः क्षणेन पुरुषोऽभवत् ॥२७॥

पाश बाँधकर उसको मारने के लिए उद्यत हो गयीं ॥१४॥ जोर से गला दबाने पर भी जब वह नहीं मरा तो उसके मुख में उन सबों ने बहुत अधिक अङ्गार डाल दिया ॥१५॥ अग्नि की ज्वाला से व्याकुल होकर बड़े कष्ट से वह मरा । उसके शरीर को उन सबों ने गढ़े में फेंक दिया, स्त्रियाँ तो बहुत अधिक साहसी होती ही हैं ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस चरित्र को कोई भी नहीं जान सका लोगों को पूछने पर उन सबों ने कहा कि हमलोगो के पति दूर चले गये हैं ॥१७॥ धन से आकर्षित होने के कारण वे बहुत समय बाद आयेंगे । अतएव स्त्रियों का विश्वास नहीं करना चाहिए ॥१८॥ नवीन-नवीन वस्तुओं को चाहने वाली वेश्याएँ विश्वस्त व्यक्ति को मार ही डालती हैं । उन सबों का अमृत के समान वचन कामी पुरुषों को आनन्द देने वाला होता है । उन सबों का हृदय छूरे के धार के समान होता है । वेश्याओं का कोई भी प्रिय नहीं होता है । उसके पश्चात् वे वेश्याएँ बहुत अधिक धन लेकर ॥१९-२०॥ राजा के डर से डरी हुयी दूसरे ग्राम में चली गयीं । कुकर्म करने वाला धुनधुकारी भी महाप्रेत हो गया ॥२१॥ दुर्मृत्यु के कारण वह वात्या का रूप धारण करके सभी दिशाओं में दौड़ता रहा । टण्ढी और गर्मी से सन्तप्त होकर भूखा प्यासा वह निराहार रहता था ॥२२॥ उसे कहीं भी सुख नहीं मिलता था । वह बार-बार हाय-हाय बोलता रहता था । कुछ समय बाद इसको मरा हुआ जानकर ॥२३॥ गोकर्ण तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में गया जाकर श्राद्ध किए । तीर्थ यात्रा समाप्त करके वे अपने नगर में आये ॥२४॥ उनके बान्धवों और उस नगर के लोगों ने उनका समादर किया । वे अपने घर में कुछ दिन निवास किये ॥२५॥ रात्रि में गोकर्ण को सोए हुए जानकर महादुष्ट धुन्धुकारी अपना रौद्र रूप दिखाने लगा ॥२६॥ वह क्षण भर में हाथी, तो क्षण में

वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वागोकर्णो धैर्यसंयुतः। चिन्तयामास मेधावी किमेतदिति विस्मितः ॥२८॥
अयं दुर्गतिमापन्नः कोऽप्यस्ति पुरुषाधमः। इतिनिश्चित्य मनसा तमुवाच दयान्वितः ॥२९॥

गोकर्ण उवाच

कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ भीषयन्मामुपागतः ।
प्रेतो वाऽथ पिशाचो वा कुतः प्राप्तो दशामिमाम् ॥३०॥
तद्ब्रूहि त्वं महाभाग ! किं कार्यन्तेमयाऽधुना ।
घोररूपो यतो रात्रौ मत्समीपमुपागतः ॥३१॥
इति श्रुत्वा वचो भ्रातुर्धुन्धुकारी महाखलः ।
प्रेतभावमनुप्राप्तो रुरोद भृशमातुरः ॥३२॥

वक्तुं नैव क्षमो वाचःप्रेतत्वेन विमोहितः। सञ्ज्ञया निर्दिदेशाऽथ जलं पातुं पिपासितः ॥३३॥

अथाऽसौ सुमहाभागो गोकर्णः साधुसम्मतः ।
स्वकाञ्जलौ जलं कृत्वा प्राक्षिपत्तमुदीरयन् ॥३४॥

तत्क्षिप्तं तज्जलं भ्रात्रा गोकर्णेन महात्मना। उपस्थितंच तृप्यर्थं प्रेतस्यधुन्धुकारिणः॥३५॥
अथोवाचागतज्ञानः प्रदत्तेनाम्बुनाऽमुना। पुण्यात्मनात्मनोभ्रात्रा गोकर्णेन च नारद ॥३६॥

प्रेत उवाच

अहंभ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीतिनामतः। आत्मनः कर्मदोषेण प्रेतत्वंसमुपागतः ॥३७॥
मम माता मृता दुःखाद्बहुशस्तर्जितामया। द्रव्यहेतोस्ततः पश्चाद्वारस्त्रीपोषणोत्सुकः ॥३८॥
निषिद्धं कृतवान्कर्म चौर्यादिधनलोभतः। एकदा प्रार्थितस्ताभिर्भूषणान्यम्बराण्यहम् ॥३९॥

ऊँट तथा क्षणभर में भैंसा हो जाता था। वह क्षण भर में सर्प, क्षण भर में अग्नि और क्षण भर में पुरुष हो जाता था ॥२७॥ इस तरह की विपरीतता को देखकर धैर्यवान् मेधावी गोकर्ण विस्मित होकर विचार किए यह क्या हैं ?॥२८॥ यह कोई दुर्गति प्राप्त अधम पुरुष है इस तरह से निश्चित करके दयालु वे उससे पूछे ॥२९॥ **गोकर्ण ने कहा—** तुम उग्र रूप धारण करके मुझको डराने के लिए यहाँ क्यों आये हो ? तुम प्रेत हो या पिशाच हो ? तुम्हारी यह दशा कैसे हुयी ?॥३०॥ हे महाभाग ! उसे बतलाओ, मुझसे तुमको क्या काम है ? जिसके कारण भयङ्कर रूप धारण करके रात्रि में मेरे पास आये हो ॥३१॥ अपने भाई के इस बात को सुनकर महाखल धुन्धुकारी प्रेत भाव को प्राप्त होकर अत्यन्त आतुर होकर बहुत रोया ॥३२॥ प्रेतत्व से मोहित होने के कारण बोलने में समर्थ नहीं था। साधु सम्मत प्यासा हुआ वह जल पीलाने का इशारा किया ॥३३॥ इसके पश्चात् महाभाग गोकर्ण अपनी अञ्जलि में जल रखकर मन्त्र पढ़कर उस पर उसको डाले ॥३४॥ महात्मा गोकर्ण के द्वारा डाले हुए उस जल से उसको तृप्त करने के लिए वह प्राप्त हो गया ॥३५॥ उसके पश्चात् पुण्यात्मा अपने भाई गोकर्ण के द्वारा दिए गये उस जल से उसको ज्ञान हो गया और उसने कहा ॥३६॥ **प्रेत ने कहा—** मैं आपका भाई धुन्धुकारी हूँ अपने किए हुए कर्मों के दोष के कारण मैंने प्रेतत्व को प्राप्त कर लिया है। मेरे द्वारा बहुत अधिक डरायी गयी मेरी माता दुःखी होकर मरी। वेश्याओं का पोषण करने वाला मैं द्रव्य प्राप्त करने के लिए ॥३७-३८॥ निषिद्ध

धनिकस्य गृहाद्रात्रौ मुषित्वा तान्युपानयम् । ततस्ताधनलोभेन पाशैर्बद्धा गलेबलात् ॥४०॥
मां तु व्यापादयामासुर्वह्निक्षेपेण मानद ! । गृहीत्वा मद्धनं भूरि ताःसर्वा भूपतेर्भयात् ॥४१॥
पलायिताःपुरादस्मात्स्वार्थोन्मूलितसौहृदाः । अतःप्रेतत्वमापन्नो भ्रातरद्यत्वयाऽम्बुना ॥४२॥

सिक्तः सञ्ज्ञामहंप्राप्तः पुण्येनाऽतिकृपालुना ।
वाताहारेण जीवामि दैवादिष्टफलोदयः ॥४३॥

अपश्यं त्वामहं सुप्तं भ्रातरं स्वगृहाङ्गणे । ततस्ते ह्यनभिज्ञस्य धर्षणाय कृतोद्यमः ॥४४॥

अभवं सहसा साधो ! ज्ञातश्चाऽहं त्वयाऽधुना ।
दीनबन्धो दयासिन्धो ! भ्रातर्मामाशु मोचय ॥४५॥

प्रेतभावादमुष्मात्त्वं कृतार्थोऽसिनसंशयः । इतिश्रुत्वावचो भ्रातुर्गोकर्णोज्ञानवान्सुधीः ॥४६॥
भ्रातरं प्राह खिन्नात्मा दुःखितं धुन्धुकारिणम् ॥४७॥

गोकर्ण उवाच

तुभ्यं दत्तो मया पिण्डो गयायां त्वामहं मृतम् ।
श्रुत्वा लोकमुखाद्भ्रातस्त्वं कथं प्रेततां गतः ॥४८॥

गयापिण्डप्रदानेन दुर्गतोऽपि शुभांगतिम्। प्राप्नोति नाऽत्रसंदेहस्त्वं कथं न दिवंगतः॥४९॥

भ्रातुरित्थं वचः श्रुत्वा गोकर्णस्य महात्मनः ।
धुन्धुकारी दुःखितात्मा प्रोवाच पुरतः स्थितः ॥५०॥

गयाश्राद्धशतेनापि न मे मुक्तिर्भविष्यति। उपायोऽन्यश्चिन्तनीयो ममोद्धारायवैत्वया॥५१॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयंगतः। प्राह श्राद्धैर्नमुक्तिश्चेत्तर्ह्यसाध्यागतिस्तव ॥५२॥

कर्मों को करने लगा, धन के लोभ से मैं चोरी आदि करता था । एक दिन उन सबों द्वारा भूषण तथा वस्त्र माँगे जाने पर ॥३९॥ रात्रि. में धनिक व्यक्ति के घर से चुराकर मैंने उन सबों को दिया । उसके पश्चात् धन के लोभ के कारण मेरे गले में पाश बाँधकर बलपूर्वक उन सबों ने मेरे मुख में अग्नि डालकर मुझे मार दिया । वे सब मेरे बहुत से धन को लेकर राजा के भय से ॥४०-४१॥ इस नगर से भाग गयीं । उन सबों ने स्वार्थ के कारण सौहार्द को त्याग दिया था । उसके बाद मैं प्रेत हो गया । हे भाई ! आपके जल से सिञ्चित होने पर मुझे ज्ञान हुआ । आप पवित्र और कृपालु हैं । भाग्यानुसार मैं वायु पीकर जी रहा हूँ ॥४२-४३॥ मैंने आप भाई को आङ्गन में सोते हुए देखा अतएव अनभिज्ञ आपको डराने का प्रयास किया ॥४४॥ हे साधो ! मैं वैसा बन गया । इस समय हे दीनबन्धो ! हे दयासागर ! आप मुझे शीघ्र मुक्त करें ॥४५॥ इस प्रेतभाव से मुझे छुड़ायें । आप तो निश्चित रूप से कृतार्थ हैं । इस तरह से भाई की वाणी सुनकर ज्ञानवान और बुद्धिमान गोकर्ण दुःखी धुन्धुकारी के दुःख से दुःखी होकर कहे ॥४६-४७॥ **गोकर्ण ने कहा**— लोगों के मुख से तुमको मरा हुआ सुनकर मैं तुम्हारे लिए गया में पिण्डदान किया॥४८॥ गया में पिण्डदान करने से दुर्गति भी शुभगति प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है तुम स्वर्ग क्यों नहीं गये ॥४९॥ अपने भाई माहात्मा गोकर्ण की बात सुनकर दुःखी धुन्धुकारी उनके सामने आकर कहा ॥५०॥ गया में सैकड़ों श्राद्ध करने से भी मेरी मुक्ति नहीं हो सकती है । अतएव मेरे उद्धार के लिए

इदानीं त्वं निजस्थानमातिष्ठ प्रेत ! निर्भयः ।
विचार्याऽहं करिष्यामिमुक्त्युपायं परन्तव ॥५३॥
इतिवाक्यं समाकर्ण्य धुन्धुकारी ततो गतः ।
निजंस्थानं श्मशानस्थंकलिद्रुममतः परम् ॥५४॥
शेषांरात्रिं स गोकर्णश्चिन्तयन्नेवनारद। तस्यमुक्तिस्थितस्तत्र तदुपायं न चाध्यगात् ॥५५॥
प्रातस्ततःसगोकर्णः स्वज्ञातिकुलबान्धवान् । धर्मशास्त्रविदो विप्रान्रात्रिवृत्तंन्यवेदयत्॥५६॥
ते विचार्य च तद्वृत्तं शासत्रेषु बहुशो द्विजाः ।
यदा न ज्ञातवन्तस्तदृत्तं सूर्यंतदाऽस्तुवन् ॥५७॥

द्विजाऊचुः

नमस्ते भास्करादित्य तमोहन्तर्गभस्तिमन् !। लोकसाक्षिञ्जगद्धाम सुरासुरनमस्कृत ! ॥५८॥
द्वादशात्मन्हरिहय ! भास्वँल्लोकप्रबोधक ! ।
त्वं गतिः सर्वलोकानांसततं धर्मशीलिनाम् ॥५९॥
त्वं ब्रह्मा त्वं हरिः शूली सृष्टिस्थितिविनाशकृत ! ।
त्वामृते नास्ति लोकेऽस्मिञ्छरणं प्राणिनां विभो ! ॥६०॥
शर्वस्त्वं क्षितिरूपोऽसिभवोऽसिजलरूपधत् ।
त्वमग्निरूपोरूद्रोऽसिवायुरस्युग्ररूपधृत् ॥६१॥
भीमोऽस्याकाशदेहस्त्वं यज्वा पशुपतिः स्वयम् ।
महादेवः सोममूर्तिरीशानःसूर्यएव हि ॥६२॥

आप कोई दूसरा उपाय सोचें ॥५१॥ इस तरह से उसकी बात सुनकर गोकर्ण आश्चर्यित हो गये । उन्होंने कहा कि यदि श्राद्ध से तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती है तो तुम्हारी मुक्ति का होना असाध्य है ॥५२॥ हे प्रेत ! तुम इस समय निर्भय होकर अपने स्थान पर बैठो । हे परन्तप मैं विचार करके तुम्हारी मुक्ति का उपाय करूँगा ॥५३॥ इस बात को सुनकर धुन्धुकारी वहाँ से श्मशान में विद्यमान कलि पेड़ के नीचे अपने स्थान पर चला गया ॥५४॥ हे नारद ! बची हुयी रात्रि में गोकर्ण उसकी मुक्ति का उपाय सोचते रहे किन्तु उनको कोई भी उपाय नहीं मिला ॥५५॥ प्रातःकाल होने पर गोकर्ण अपनी जाति के बान्धवों तथा धर्मशास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मणों के समक्ष सारी बात बतलायें ॥५६॥ वे सभी ब्राह्मणों उस उपाय को शास्त्र की दृष्टि से बहुत विचार किये जब कोई उपाय नहीं मिला तो उन लोगों ने सूर्य की स्तुति की ॥५७॥ हे भास्कर ! हे आदित्य ! आपको नमस्कार है । हे अन्धकार को विनष्ट करने वाले हे गभस्तिमान ! हे लोकसाक्षी !, हे हरिहय !, हे प्रकाश ! हे संसार को प्रबोधित करने वाले ! आप धार्मिक जीवों एवं सभी जीवों के लिए एक मात्र प्राप्य हैं ॥५८-५९॥ आप ही ब्रह्मा, श्रीहरि तथा शिवरूप से जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं । हे विभो ! आपसे भिन्न कोई दूसरा जगत् की रक्षा करने वाला नहीं है । आप ही शिव हैं और पृथिवी स्वरूप हैं आप जल रूप धारण करने वाले भव हैं । आप ही अग्नि रूप से रुद्र हैं और उग्ररूप धारण करने वाले आप वायु हैं ॥६०-६१॥ आकाश स्वरूप आप भीम हैं आप ही यजन करने वाले

तवाऽष्टौ मूर्त्तयो दिव्या इज्यन्तेवेदवादिभिः ।
सर्वकामसमृद्ध्यर्थव्याप्तलोकत्रयस्य च ॥६३॥
मत्स्यस्त्वं वेदधृक्त्वाऽसि कूर्मश्चाऽद्रिधरो वरः ।
धराधरो वराहोऽसि लोकधृत्त्वं त्रिविक्रमः ॥६४॥
ब्रह्मध्रुग्घ्नो भार्गवस्त्वं लोकध्रुग्घ्नोऽसि राघवः ।
भूमारहन्ता कृष्णोऽसि बुद्धोऽस्यसुरमोहकृत् ॥६५॥

कल्क्यसि म्लेच्छहन्तात्वंधर्मग्लानौयुगेयुगे। देवासुरमनुष्याणांपशुपक्ष्यम्बुचारिणाम् ॥६६॥
नानाविधानां जीवानांत्वंस्त्रष्टाब्रह्मरूपधृत् । इन्द्रोऽसि धर्मराजोऽसिवरुणस्त्वंधनेश्वरः ॥६७॥
लोकपालस्वरूपेण वर्त्तसे गोगणेश्वर !। त्रयीमूर्त्तिस्त्रिकालेज्यस्त्रिधामात्रिगुणात्मकः ॥६८॥

त्वमेव पूज्यसे लोकैस्त्रिधा भिन्नो दिवाकरः ।
पद्मप्रबोधनकरस्त्वमेवाऽसि जगत्पते ! ॥६९॥

इत्युदीर्य द्विजश्रेष्ठायावत्तस्थुर्मुनीश्वर !। तावदाकाशगः प्राह स्फुटं तेषां तुश्रृण्वताम्॥७०॥

श्रीसूर्य उवाच

श्रूयतां भो द्विजश्रेष्ठा यदर्थं वर्णितोऽस्म्यहम् ।
भवद्भिर्धुन्धुलीसूनोर्महापातकशान्तये ॥७१॥

आत्मदेवस्य पुण्येन गोकर्णो रौहिणोह्ययम्। श्रीभागवतसप्ताहंकृत्वोद्धर्ता भविष्यति॥७२॥
यद्भवद्भिः कृतं स्तोत्रं मम वैभववर्णनम्। तेन स्तुत्वा नरो विप्रा देवयानं लभिष्यते॥७३॥

पशुपति हैं । सोम शरीरक आप महादेव हैं और ईशान रूप से सूर्य हैं ॥६२॥ वैदिक पुरुष आपकी आठ रूपों से पूजा करते हैं । त्रैलोक्य के जीव अपनी कामनाओं की समृद्धि के लिए आपकी पूजा करते हैं । आप ही वेद का उद्धार करने वाले मत्स्य हैं, और पर्वत को धारण करने वाले आप श्रेष्ठ कूर्म हैं । पृथिवी का उद्धार करने वाले आप वराह हैं, संसार को धारण करने वाले आप त्रिविक्रम हैं ॥६३-६४॥ ब्राह्मणों से द्रोह करने वालों का विनाश करने वाले आप परशुराम हैं और संसार से द्रोह करने वालों का विनाश करने वाले आप शम हैं । पृथिवी के भार को विनष्ट करने वाले आप श्रीकृष्ण हैं असुरों को मोहित करने वाले आप बुद्ध हैं ॥६५॥ म्लेच्छों को मारने वाले आप कल्की हैं । प्रत्येक युग में धर्म की हानि होने पर देवता असुर, मनुष्यों तथा पशु-पक्षी तथा जलचरों आदि नाना प्रकार के जीवों की सृष्टि करने वाले आप ब्रह्मा हैं । आप ही इन्द्र, वरुण और कुबेर हैं ॥६६-६७॥ आप लोकपाल रूप से गौ समुदाय के स्वामी हैं । आप ही त्रयीमूति और तीनों कालों में पूजे जाने वाले, त्रिधामा हैं आप त्रिगुणात्मक हैं ॥६८॥ आप संसारी जीवों द्वारा तीन प्रकार से पूजे जाते हैं । हे जगत् पते ! कमलों को विकसित करने वाले आप दिवाकर हैं ॥६९॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार से कहकर श्रेष्ठ ब्राह्मण ठहर गये उसी समय आकाश में विद्यमान सूर्य ने उन सबों को सुनाते हुए स्पष्ट रूप से कहे ॥७०॥ **श्रीसूर्य ने कहा—** हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! आपलोगों ने धुन्धुली के पुत्र के पाप की शान्ति के लिए मेरा वर्णन किया है । आत्मदेव के पुण्य से ये गोकर्ण रौहिण्य हैं । श्रीमद्भागवत सप्ताह करके उसका उद्धार करेंगे ॥७१-७२॥ मेरे वैभव के वर्णन रूप आपलोगों ने जो स्तुति की है हे ब्राह्मणों ! उसके द्वारा मेरी स्तुति करके मनुष्य देवपान को प्राप्त करेगा॥७३॥

पुत्रार्थी च धनार्थी च धर्मार्थी मोक्षकामुकाः ।
वाञ्छाचिन्तामणिस्तोत्रंपठित्वात्यन्तमाप्नुयात् ॥७४॥

इत्युक्त्वाभास्करोदेवोविररामदिविस्थितः । तेद्विजाःसाध्वितिप्रोचुर्गोकर्णंहृष्टमानसाः ॥७५॥
ततः समाजे विप्राणां तुङ्गभद्रातटे शुभे। कौतुकं सुमहद्द्रष्टुं तत्राऽगान्नागरी प्रजा ॥७६॥
गोकर्णो ज्ञाततत्त्वार्थोवक्ताध्यासनमास्थितः । नारायणादिकान्नत्वासप्ताहंसमवर्त्तयत् ॥७७॥

श्रीहरेस्तु वचः शास्त्रं तीर्थं पादाब्जसम्भवम् ।
यदिसत्यंतदाप्नोतुधुन्धुलीतनयोगतिम् ॥७८॥

इतिसङ्कल्प्य मनसा श्रीमद्भागवताभिधम्। जन्माद्यस्ययतश्चेति धीमह्यन्तमुवावदत् ॥७९॥
तत्र प्रेतः समागत्य स्थानं पश्यन्नितस्ततः। सप्तगग्रन्थियुतं वंशं प्रविष्टो वातरूपधृत् ॥८०॥
शृण्वत्सु वैष्णवाग्र्येषु ब्राह्मणेष्वथ नारद !। शुश्राव धुन्धुलीपुत्रो ग्रन्थिच्छिद्रस्थितोऽन्वहम् ॥८१॥
यदा कथाविरामोऽभूत्प्रथमेऽहनि नारद ! । तदैका कीचकग्रन्थिःपुस्फोटात्यद्भुतं ह्यभूत् ॥८२॥
द्वितीयादिष्वहःस्वेवमेकैकग्रन्थिभेदनम् । बभूव सप्तमे भिन्ने स सद्यः प्रेततां जहौ ॥८३॥
दिव्यरूपधरोभूत्वा तुलसीदाममण्डितः। पीतवासा घनश्यामाः प्रबभौ भूषणान्वितः ॥८४॥

गोकर्णं भ्रातरं नत्वा प्रोवाचाऽखिलतत्त्वदृक् ।
त्वयाऽहं मोचितो बन्धो ! कृपया प्रेतकश्मलात् ॥८५॥

धन्या भागवतीवार्ता प्रेतत्वोन्मूलिनीश्रुता। सप्ताहोऽपितथाधन्योविष्णुलोकगतिप्रदः ॥८६॥
यत्प्रभावाद्विमुक्तोऽहं प्रेतभावाद्भृशातुरः। आर्द्रं शुष्कंलघुस्थूलंवाङ्मनःकर्मभिःकृतम् ॥८७॥

धन चाहने वाले, पुत्र चाहने वाले, धर्म चाहने वाले तथा मोक्ष चाहने वाले इस वाञ्छा चिन्तामणि स्तोत्र को पढ़कर अपनी अभिप्रेत वस्तु को प्राप्त कर लेंगे ॥७४॥ इस तरह से कहकर सूर्य देव आकाश में रहकर चुप हो गये । वे ब्राह्मण हर्षित होकर गोकर्ण को साधु-साधु कहे । उसके पश्चात् ब्राह्मणों के समाज में तुङ्गभद्रा नदी के तट पर बहुत महान् कौतुक देखने के लिए नगर की प्रजायें गयीं ॥७५-७६॥ तात्त्विक अर्थ को जानने वाले गोकर्ण वक्ता के आसन पर विराजमान हुए और नारायण आदि को नमस्कार करके सप्ताह प्रारम्भ किए ॥७७॥ शास्त्र श्रीहरि की वाणी है और उनके चरण कमल से तीर्थों की उत्पत्ति हुयी। यदि यह सत्य है तो धुन्धुली के पुत्र सद्गति को प्राप्त कर ले । इस तरह से मन में सङ्कल्प करके श्रीमद्भागवत के **जन्माद्यस्य यतः से धीमहि पर्यन्त** उन्होंने वर्णन किया । वहाँ पर प्रेत आकर अपना स्थान इधर-उधर देखते हुए वायु के रूप को धारण किए हुए वह सात गाँठ वाले बाँस में प्रवेश कर गया ॥७८-८०॥ सुनने वाले श्रेष्ठ वैष्णव ब्राह्मणों के बीच ग्रन्थी के छिद्र में रहकर वह धुन्धुली पुत्र प्रतिदिन कथा सुनता था ॥८१॥ हे नारद ! पहले दिन जब कथा का विराम हुआ उस समय बाँस की एक गाँठ फट गयी । दूसरे आदि दिनों में भी एक-एक गाँठ फट जाती थी । सातवीं गाँठ का भेदन हो जाने पर उसने प्रेतत्व को त्याग दिया ॥८२-८३॥ दिव्य रूप धारण किए हुए तुलसी की माला से सुशोभित पीताम्बर धारण किए हुए वह मेघ के समान वर्ण वाला तथा भूषणों से सुशोभित था ॥८४॥ उसने अपने भाई गोकर्ण को नमस्कार किया । सम्पूर्ण तत्त्वों को जानने वाले उसने कहा हे बन्धो ! आपने कृपा करके मुझे प्रेतत्व से मुक्त कर दिया है ॥८५॥ भागवत की कथा धन्य है, वह प्रेतत्व को नष्ट करने वाली है।

पातकं भस्मसात्कुर्यात्सप्ताहोऽग्निरिवेन्धनम्। अस्मिन्वैभारतेवर्षेदेवानामप्यभीप्सिते ॥८८॥
शृण्वतांभगवच्छास्त्रंगतिरत्युत्तमाभवेत् । स्नाय्वस्थिमज्जामांसासृक्सङ्घातंदेहमुच्यते ॥८९॥
शुचि भागवतास्वादादशुचि त्वन्यथा मतम्। कर्मकश्मलसंदुष्टो देहो नरकभाजनम्॥९०॥
अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम्। बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु॥९१॥
जायन्ते मरणायैव गवच्छास्त्रवर्जिताः। भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः॥९२॥
क्षीयन्ते चाऽस्य कर्माणि श्रुते भागवते द्विजाः ।
एवं ब्रुवति वै तस्मिन्विमानवरमागतम् ॥९३॥
वैकुण्ठात्तदधिष्ठायगतोऽसौविष्णुमन्दिरम् । विष्णुलोकंगतेतस्मिन्सर्वेविस्मितमानसाः ॥
बभूवुश्चाऽपि पप्रच्छुर्गोकर्णं ते द्विजोत्तमाः ॥९४॥

द्विज उवाच

श्रुतं भागवतं सर्वैरस्माभिरिह सङ्गतैः। किं कारणं महाभागत्वद्भ्रातैकोगतो हरिम्॥९५॥

गोकर्ण उवाच

श्रूयताममिधास्यामि कारणं भ्रातृसद्गतौ। यच्छ्रुत्वा यूयमेवाऽपि गोलोकंचगमिष्यथ॥९६॥
सप्ताहश्रावणं कार्यमुपवासपरायणैः। कृष्णैकतानमतिभिर्गोलोकगतिदायकम् ॥९७॥
पुनः शृणुध्वं सप्तांह श्रीमद्भागवतं द्विजाः। एकाग्रचित्ताः सततं कृष्णप्रेमामृतप्रदम्॥९८॥

भगवान् विष्णु के लोक में गति प्रदान करने वाला सप्ताह भी धन्य है ॥८६॥ उसी के प्रभाव से अत्यन्त दुःखी प्रेत के भाव से मुक्त हो गया हूँ। आर्द्र, शुष्क, बड़ा, छोटा वाणी, मन और शरीर से किये पापों को सप्ताह उसी तरह से भस्म कर देता है जिस तरह अग्नि इन्धन को जला देती है। देवताओं के लिए ईप्सित इस भारत वर्ष में जो लोग भागवत शास्त्र का श्रवण करते हैं उनको उत्तम गति की प्राप्ति होती है। शरीर तो स्नायु, मज्जा, मांस तथा खून के संघात स्वरूप है ॥८७-८९॥ पवित्र भागवत के आस्वाद से अपवित्र शरीर भिन्न है। कर्म जन्य पाप से दूषित देह नरक का पात्र हैं ॥९०॥ अतएव शरीर के दोषों की निवृत्ति के लिए भागवत ही साधन है। जल में उठने वाले बुलबुले के समान तथा जीवों में मच्छर के समान ॥९१॥ भगवच्छास्त्र से रहित लोग केवल मरने के लिए उत्पन्न होते हैं। हे ब्राह्मणों ! भागवत शास्त्र के सुन लेने पर हृदय की वासना रूपी ग्रंथियाँ विनष्ट हो जाती हैं और सभी सन्देहों का नाश हो जाता है। उसके सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। जब वह इस तरह से कह रहा था उसी समय वह श्रेष्ठ विमान आ गया ॥९२-९३॥ वैकुण्ठ से आये हुए उस विमान पर बैठकर वह भगवान् विष्णु के लोक में चला गया यह देखकर सभी लोग आश्चर्यित हो गये ॥९४॥ वे सभी गोकर्ण से पूछे भी ॥९५॥ **ब्राह्मणों ने कहा—** सबों ने यहाँ पर एक साथ भागवत को सुना है। हे महाभाग ! क्या कारण है कि केवल आपका भाई ही विष्णु लोक में गया ?॥९५॥ **गोकर्ण ने कहा—** आप लोग सुनें भाई के सद्गति को मैं बतलाता हूँ। उसको सुनकर आप लोग भी गोलोक में चले जायेंगे ॥९६॥ सप्ताह को उपवास करके ही सुनना चाहिए। श्रोताओं की बुद्धि सदा श्रीभगवान् में लगी होनी चाहिए। ऐसा करने से सप्ताह गोलोक प्रदान करता है ॥९७॥ हे ब्राह्मणों ! आपलोग फिर सप्ताह का श्रवण करें। आपलोगों के मन को सदा भगवान् श्रीकृष्ण में लगे रहना चाहिए। भगवान् में प्रेम अमृतत्व प्रदान करता है। इस तरह से गोकर्ण

इति श्रुत्वा वचस्तस्य गोकर्णस्य द्विजोत्तमाः ।
पुनः श्रोतुं भागवतं सप्ताहं समुपावसन् ॥९९॥
कृष्णैकतानमतयो नियमेन च नारद ! । पुनस्ते शुश्रुवुः सर्वे श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥१००॥
कथावसाने भगवान्कृष्णः कमललोचनः । आविरासीन्मुनिश्रेष्ठशङ्खचक्रगदाब्जधृत् ॥१०१॥
किरीटकुण्डलधरो वनमालाविभूषितः । पीतवासा घनश्यामः कटकाङ्गदभूषितः ॥१०२॥
तं दृष्ट्वा ते द्विजाः सर्वे विष्वक्सेनादिभिर्युतम् ।
पार्षदप्रवरैर्हृष्टाःप्रणेमुर्भुविसंगताः ॥१०३॥
जयशब्दो नमःशब्दस्तदासीत्सर्वतो मुने !। अथ शङ्खध्वनिं चक्रे हरिः संहर्षयन्द्विजान् ॥१०४॥
तदाऽनेके विमानास्तु वैकुण्ठात्समुपागताः । द्विजानां पश्यतां तत्र पार्षदप्रवरैर्युताः ॥१०५॥
गोकर्णंतु समालिङ्ग्यददौसारूप्यमात्मनः । श्रोतॄनन्यान्घनश्यामान्पीतकौशेयवाससः ॥१०६॥
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ।
चकार तत्क्षणात्तत्र महदाश्चर्यमप्यभूत् ॥१०७॥
तस्मिन्ग्रामे स्थिता ये तु आचाण्डालजना मुने ! ।
समारूह्य विमानांस्तान्ययुः कृष्णाज्ञया दिवम् ॥१०८॥
गोकर्णसहितः कृष्णो गोपगोपीजनप्रियः । गोलोकं समनुप्रातः सर्वलोकोपरिस्थितम् ॥१०९॥
यत्र वृन्दावनं रम्यं शतशृङ्गसमावृतम् ।
तद्बाह्येपरितोवृतंविजयया ह्यत्यद्भुतं राजतेऽ-
रण्यंयत्रतुमण्डपानिसुबहून्यच्छोदवाप्यो ह्रदाः ।
गावः कामदुघाः सुरद्रुमततिच्छायाश्रिता गोपकैः-
क्रीडातत्परमानसैः परिवृतो नन्दात्मजः क्रीडति ॥११०॥

की बात सुनकर वे लोग पुनः सप्ताह सुनने के लिए वहीं रहे ॥९८-९९॥ हे नारदजी ! नियम पूर्वक उनकी बुद्धि सदा श्रीभगवान् में ही लगी रहती थी । वे सभी ब्राह्मण श्रीमद्भागवत को पुनः सुने ॥१००॥ कथा के समाप्त होने पर भगवान् शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण किए हुए आविर्भूत हो गये ॥१०१॥ वे किरीट और कुण्डल धारण किए थे । वनमाला से अलंकृत थे पीताम्बर धारण किए हुए वे मेघ के समान श्याम वर्ण के थे और कटक एवं अङ्गद से अलंकृत थे ॥१०२॥ पार्षद प्रवर विष्वकसेन आदि के साथ श्रीभगवान् को देखकर वे ब्राह्मण प्रसन्न होकर श्रीभगवान को साष्टाङ्ग, प्रणाम किए ॥१०३॥ हे मुने! उस समय हर ओर जय शब्द और नमः शब्द हुआ । श्रीहरि ब्राह्मणों को प्रहर्षित करते हुए शङ्ख की ध्वनि किए ॥१०४॥ उस समय वैकुण्ठ से अनेक विमान आ गये । ब्राह्मणों के सामने ही वे विमान श्रेष्ठ पार्षदों से युक्त थे ॥१०५॥ भगवान् ने गोकर्ण को आलिङ्गित करके उनको सारूप्य प्रदान किया मेघ के समान श्याम वर्ण के पीताम्बरधारी किरीट, कुण्डल धारण किए हुए हार से भूषित और बनमाला धारण किए हुए वे दूसरे श्रेताओं को बना दिए जो महान् आश्चर्य था ॥१०६-१०७॥ उस ग्राम में रहने वाले चाण्डाल प्रभृति सभी जीव विमान पर बैठकर स्वर्ग लोक चले गये ॥१०८॥ गोपों तथा गोपियों के प्रिय श्रीभगवान् गोकर्ण के साथ सभी लोकों से ऊपर विद्यमान गोलोक में चले गये । वहाँ पर सैकड़ों शृङ्गों से युक्त

मध्ये त्वस्य सुकाननस्य रचितो वृन्दावनेशेच्छया-
रम्यं रत्नसमूहभर्मखचितं प्राकारमुद्भासयन् ।
न्यग्रोधः सुमहांस्ततः प्रतिदिशं गोपीजनाध्यासितं-
वत्सालङ्कृतमद्भुताकृतिमहच्छ्रीगोकुलं राजते ॥१११॥
तन्मध्ये भवनं हरेरधिकृतं प्रोद्भासते भास्वरं-
यस्मिन्नन्दगृहेश्वरीसमुदितास्ते राधया राधिताः ।
यद्भाग्यं महदप्युमापतिमुखैश्चिन्त्यं सदाभ्यन्तरै-
स्तत्सूनोर्मधुराकृतेरधिचकास्त्यण्डौघभास्यांशुभिः ॥११२॥
वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैर्जपयज्ञकर्मभिः ।
योगैश्च संयान्ति नरा न तां गतिं सप्ताहगाथाश्रवणेन यान्ति याम् ॥११३॥
इतिहासमिमं पुण्यं यः पठेच्छृणुयादपि। सोऽपि गोलोकमभ्येति किं श्रीभागवतम्पुनः॥११४॥
इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः ।
पठते चित्रकूटस्थोब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥११५॥
आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ।
श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवञ्च ॥११६॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये सप्तवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९७॥

वृन्दावन है ॥१०९॥ उसके बाहर चारो ओर विजया से व्याप्त वह अद्भुत रूप अरण्य सुशोभित होता है। उसमें मण्डप, स्वच्छ जल से परिपूर्ण वापियाँ और ह्रद हैं । कामधेनु गायें कल्प वृक्षों की छाया में रहती हैं, क्रीड़ा करने में लगे रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण गोपों से घिरे हुए क्रीड़ा करते हैं ॥११०॥ वृन्दावन के स्वामी की इच्छा से रत्न समूह की कान्ति से युक्त मनोहर प्राकार को प्रकाशित करते हुए बहुत बड़ा बट का वृक्ष है और उसके चारो ओर गोपियाँ विराजमान रहती हैं । वत्सो से अलंकृत अद्भुत आकार वाला गोकुल सुशोभित होता है ॥१११॥ उसके बीच में श्रीहरि का भवन चमकता रहता है उसमें नन्दजी की पत्नी राधाजी से सेवित रहती हैं । उनके भाग्य का चिन्तन श्रीशङ्करजी आदि के द्वारा मन में चिन्तनीय है। उनके पुत्र का मधुर आकार अण्ड समूह को प्रकाशित करने वाली किरणों से अधिक सुशोभित है ॥११२॥ सप्ताह की कथा सुनने से जिस गति की प्राप्ति होती है वह गति वायु पत्ते और जल पीकर रहने तथा उग्र तपस्या तथा यज्ञों से नहीं प्राप्त होती है ॥११३॥ इस इतिहास को पढ़ने और सुनने वालों को भी गोलोक की प्राप्ति होती है और भागवत को सुनने वालों के विषय में क्या कहना है ॥११४॥ इस इतिहास को मुनीश्वर शाण्डिल्य भी चित्रकूट में रहकर आनन्द से परिपूर्ण होकर पढ़ते हैं ॥११५॥ यह परम पवित्र इतिहास सुनने मात्र से पाप समूह को भस्म कर देता है । श्राद्ध में इसे पढ़ने पर पितरों को तृप्त कर देता है । और इसका पाठ करने वाले का पुनः जन्म नहीं होता है ॥११६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के श्रीमद्भागवत माहात्म्य के प्रसङ्ग में एक सौ सत्तानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९७।।

एक सौ अठानबेवाँ अध्याय

कुमाराऊचुः

अथतेसम्प्रवक्ष्यामःसप्ताहश्रवणेविधिम् । येनभागवतंसिद्धयेत्पुंसांकृष्णार्पितात्मनाम् ॥१॥
देवज्ञं शास्त्रकुशलं समाहूय धनांशुकैः । समभ्यर्च्य मुहूर्तं तु प्राक्पृच्छेद्भक्तिमान्नरः ॥२॥
स वदेद्यं तु तत्राऽऽरम्भः प्रशस्यते । नभो नभस्येषोर्जाश्चसहःशुचिसमन्विताः ॥३॥
मासाः श्रेष्ठाः कथारम्भे पूर्णा चापि तिथिः शुभा ।
भौमार्किवर्जिता वारा भानि ध्रुवमृदूनि च ॥४॥
शुभेयोगे शुभेलग्ने प्रारम्भः शस्यते सदा । नित्यायां च कथायांतु पुराणानांमुनीश्वर ॥५॥
द्वादशीं वजयेत्प्राज्ञः सूत सूतकसम्भवात् । श्रीमद्भागवतस्याऽपि सप्ताहेनैत्यकेऽपि च॥६॥
न निषेधोऽस्ति देवर्षे प्राहुरेवं पुराविरः । श्रीभागवतसप्ताहो महायज्ञः स्मृतमो बुधैः ॥७॥
अतो निमन्त्रणं कार्यं वैष्णवानां समन्ततः । सतांसमाजोभवितासप्ताहं वैष्णवोत्तमाः ॥८॥
आगन्तव्यमतश्चाऽत्र वैष्णवैः श्रवणार्थिभिः । समागतानां तेषांतुनिवासंपरिकल्पयेत् ॥९॥
तीर्थे वाऽपि वने वाऽपि ग्रामे वाऽपि प्रयत्नतः ।
संशोधितायां भूम्यां तु मण्डपं परिकल्पयेत् ॥१०॥
कदलीस्तम्भसंयुक्तं चतुर्दिक्षुध्वजान्वितम् । उच्चमासनमप्युक्तं वक्तुस्तस्याऽग्रतो मुने ! ॥११॥
आपार्श्वद्वयमुक्तानि श्रोतृणामासनानिच । उदङ्मुखो भवेद्वक्तासमाजेऽस्मिन्विदांवरः ॥१२॥

सनत् कुमार आदि के द्वारा उक्त श्रीमद्भागवत सप्ताह के श्रवण की विधि

कुमारों ने कहा— अब हमलोग आपको सप्ताह के श्रवण करने की विधि को बतलाते हैं । जिससे कि भगवान् श्रीकृष्ण में अपने मन को लगाने वालों को भागवत की सिद्धि हो जाय ॥१॥ शास्त्र में कुशल ज्योतिषी को बुलाकर उनकी धन तथा वस्त्र से पूजा करके मनुष्य पहले मुहूर्त पूछे ॥२॥ वे जो मुहूर्त बतलायें उसी में भागवत को प्रारम्भ करना प्रशस्त होता है, आषाढ, श्रावण कार्तिक ये महीने पवित्र हैं । इन महीनों में कथा का आरम्भ शुभ होता है । इसके लिए पूर्णातिथि भी शुभ है । भौम तथा शनि को छोड़कर शेष दिन शुभ हैं । नक्षत्रों को ध्रुव और मृदृ होना चाहिए ॥३-४॥ शुभ योग में तथा शुभ लग्न में श्रीमद्भागवत सप्ताह को प्रारम्भ करना श्रेष्ठ है । हे मुनीश्वर ! नित्य पुराणों की कथा में द्वादशी को क्या न करे ? क्योंकि उस दिन सूत का सूतक सम्भव है । श्रीमद्भागवत के तथा नित्य के सप्ताह में भी हे देवर्षे ! इतिहासों को जानने वालों का कहना है कि यह निषेध नहीं होता है । श्रीमद्भागवत के सप्ताह को विद्वानों ने महायज्ञ कहा है ॥५-७॥ अतएव इसमें सभी वैष्णवों को निमन्त्रित करना चाहिए । उसमें कहे कि हे वैष्णवोत्तमों ! यहाँ सप्ताह में सज्जनों का समाज होगा ॥८॥ अतएव सुनने के इच्छुकों को यहाँ आना चाहिए । आये हुए वैष्णवों के निवास की व्यवस्था करनी चाहिए ॥९॥ तीर्थ में या वन में, या ग्राम में प्रयत्न पूर्वक मण्डप बनाना चाहिए ॥१०॥ केले के स्तम्भ के साथ चारो दिशाओं में ध्वजा लगाये । हे मुने ! उसमें वक्ता का आसन ऊँचा होना चाहिये ॥११॥ उसके दोनों तरफ श्रोताओं का आसन होना चाहिए । इस समाज में ज्ञानियों में श्रेष्ठ वक्ता को उत्तराभिमुख बैठना चाहिए ॥१२॥ वक्ता को वेद तथा

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो वैष्णवो ब्राह्मणोत्तमः। दृष्टान्तकुशलोधीरोवक्ताकार्योऽतिनिःस्पृहः ॥१३॥
सर्वसन्देहहर्त्ताऽपिकार्योवक्तासदैवहि । वक्तुःपार्श्वेसहायार्थंस्थाप्योऽन्यःपण्डितःसुधीः ॥१४॥
श्रोतृणां संशयच्छेत्ता लोकबोधविधायकः। कथा विघ्नविघातार्थंगणेशंप्राक्प्रपूजयेत् ॥१५॥
ततो दुर्गां हरं विष्णुं ब्राह्मणां भास्करं द्विजान् ।
सम्पूज्य विधिवद्भक्तया तर्पयेद्देवताः पितृन् ॥१६॥
मुख्यः श्रोता ततः पश्चात्पूजयेत्पुस्तकेहरिम् ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य द्रव्यवस्त्रफलानि च ॥१७॥
धृत्वाऽञ्जलौ पुस्तकस्थं हरिं सम्प्रार्थयेन्मुने ! ।
त्वं भागवत ! लोकेऽस्मिन्स्वयं कृष्णो व्यवस्थितः ॥१८॥
समाश्रितो मया नाथ ! मुक्तयर्थं भवसागरे। मनोरथो मदीयोऽयं सर्वथा सफलस्त्वया॥१९॥
निर्विघ्नेन प्रकर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ! ।
इत्युच्चार्य मुने द्रव्यं पुस्तकाग्रे समर्प्यतु ॥२०॥
वक्तारं प्रार्थयेच्चाऽपि नमस्कुर्वन्कृताञ्जलिः ।
शुकरूप दिद्वश्रेष्ठ सर्वशास्त्रविशारद ! ॥२१॥
श्रीभागवतव्याख्यानादज्ञानं मे विनाशय। इति सम्प्रार्थ्य वक्तारं वरयेत्पञ्चवाडवान् ॥२२॥
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य जपार्थं मुनिसत्तम !। गीतवाद्यविधिज्ञांश्च सम्पूज्यार्थाशुकादिभिः ॥२३॥
स्थापयेत्कीर्तनार्थं तु कथान्ते विधिवन्मुने। यस्तु जायाधनागारपुत्रचिन्तांव्युदस्यच ॥२४॥

शास्त्रों के तत्त्व का ज्ञाता, वैष्णव तथा उत्तम ब्राह्मण होना चाहिए । उसे दृष्टान्त में कुशल धीर तथा निःस्पृह होना चाहिए । वक्ता को सभी सन्देहों को दूर करने वाला होना चाहिए । वक्ता के बगल में उनकी सहायता के लिए दूसरे विद्वान पण्डित को होना चाहिए ॥१३-१४॥ उसे श्रोताओं के सन्देह को दूर करने वाला और लोगों को समझने वाला होना चाहिए । कथा में होने वाले विघ्न को दूर करने के लिए पहले गणेशजी की पूजा करनी चाहिए ॥१५॥ उसके बाद दुर्गा, शिव, विष्णु, ब्रह्मा तथा सूर्य एवं ब्राह्मणों की पूजा करे । इन सबों की भक्ति पूर्वक अच्छी तरह से पूजा करके देवता तथा पितरों का तर्पण करना चाहिए॥१६॥ मुख्य श्रोता उसके बाद पुस्तक तथा श्रीहरि की पूजा करें । उसके पश्चात् प्रदक्षिणा करके अञ्जलि में द्रव्य, वस्त्र तथा फलों को लेकर हे मुने ! पुस्तक में विद्यमान श्रीहरि की प्रार्थना करे कि हे भागवत ! आप स्वयं इस लोक में श्रीहरि के रूप में व्यवस्थित हैं ॥१७-१८॥ हे नाथ ! इस संसार सागर में मुक्ति प्राप्त करने के लिए आपका मैं आश्रय ग्रहण किया हूँ अतएव आप मेरे इस मनोरथ को सफल करें ॥१९॥ हे केशव ! आप इसे निर्विघ्नता पूर्वक पूरा करें । हे मुने ! इस तरह से उच्चारण करके अञ्जलि की वस्तुओं को पुस्तक के सामने समर्पित कर दें ॥२०॥ फिर हाथ जोड़कर वक्ता की भी प्रार्थना करे । हे सभी शास्त्रों में विशारद शुकदेव स्वरूप द्विजश्रेष्ठ !॥२१॥ श्रीमद्भागवत की व्याख्या से आप मेरे अज्ञान को दूर करें इस तरह से प्रार्थना करके पाँच ब्राह्मणों का वरण द्वादशाक्षर का जप करने के लिए करे । गीता तथा वाद्य के ज्ञाताओं की पूजा करके शुक आदि की स्थापना विधि पूर्वक करनी चाहिए कथा के

श्रृणुयादेकचित्तस्तु स समग्रं फलं लभेत्। सूर्योदयं समारभ्य सार्द्धं त्रिप्रहरान्तकम्॥२५॥
पठित्वाऽर्थः प्रवर्त्तव्यो वाक्यमध्यायमेव वा ।
मध्याह्ने घटिकायुग्मं विरमेदपि नारद ! ॥२६॥
कथावसाने कर्त्तव्यं कीर्तनं केशवस्य च। उपवासः प्रकर्त्तव्यः श्रोतृभिस्तत्फलेप्सुभिः॥२७॥
तदशक्तो हविष्यान्नं सकृत्स्वल्पं समाहरेत् । जलेनाऽपि फलेनाऽपि दुग्धेनचघृतेन वा॥२८॥
केवलेनैव कर्त्तव्यं निर्विघ्नं धारणं तनोः। सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमाञ्छृणु नारद॥२९॥
विष्णुदीक्षाविहीनानां नाऽधिकारोऽत्र कीर्तितः ।
ब्रह्मचर्यमधः सुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ॥३०॥
समाचारेश्नित्यमेव सप्ताहे मुनिसत्तम ! ॥३१॥
द्विदलं मधुतैलं च परान्नं चेक्षुजं रसम्। भावदुष्टं क्रियादुष्टं जह्यात्पर्युषितं व्रती॥३२॥
पलाण्डुं लशुनं हिङ्गुं मूलकं गृञ्जनं तथा। नालिकांचैवकूष्माण्डं नरोनाद्यात्कथाव्रती ॥३३॥
कामं क्रोधं मदं लोभं दम्भं मात्सर्यमेव च ।
मोहं द्वेषं तथाहिंसां नैवकुर्यात्कथाव्रती ॥३४॥
वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा। स्त्रीराजमहतां चापि निन्दां जह्यात्कथाव्रती॥३५॥
सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा। मनःप्रसन्नतांचाऽपि बुधः कुर्यात्कथाव्रती॥३६॥
श्रीकामस्तनयार्थी च जयकामश्च मोक्षधीः। श्रृणुयद्वैभागवतंनिष्कामं श्रीहरिं लभेत् ॥३७॥

अन्त में कीर्तन करने के गीत तथा वाद्य आदि को जानने वालों की वस्त्र आदि से पूजा करनी चाहिए । पत्नी, धन, गृह और पुत्रों आदि की चिन्ता को त्याग कर जो कथा को एकाग्रचित्त से सुनता है वही कथा के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है । सूर्योदय से लेकर दिन के साढ़े तीन प्रहर तक ॥२२-२५॥ श्रीमद्भागवत का पाठ करके उसका अर्थ अथवा अध्याय का अर्थ करना चाहिए । हे नारद ! मध्याह्न में दो घड़ी तक विराम भी करे ॥२६॥ कथा के अन्त में भगवान् केशव का कीर्तन करे । कथा के फल को चाहने वाले श्रोताओं को उपवास करना चाहिए ॥२७॥ उपवास करने में असमर्थ लोगों के एक बार थोड़ा सा हविष्यान्न ग्रहण करना चाहिए । केवल जल से, फल से, दुग्ध से या घी से विघ्न रहित शरीर को धारण करना चाहिए । हे नारद ! सप्ताह व्रत करने वालों के नियमों को आप सुनें ॥२८-२९॥ जो भगवान् विष्णु की दीक्षा न लिया हो उसको कथा सुनने का अधिकार नहीं है । उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, पृथिवी पर सोना चाहिए और पत्तल में भोजन करना चाहिए । हे मुनि श्रेष्ठ ! सप्ताह में इस नियम का पालन अवश्य करें ॥३०-३१॥ उसे दाल, मधु, तेल, दूसरे का अन्न और ईख का रस, भाव से दूषित, कर्म से दूषित तथा बासी अन्न का परित्याग करना चाहिए ॥३२॥ उसे प्याज, लहशुन, हिंग, मूली, गाजर, नालिका, (कमल की जड़) कुम्हड़ा को व्रती को नहीं खाना चाहिए ॥३३॥ व्रती को काम, क्रोध, मद, लोभ, घमण्ड, ईर्ष्या, मोह, द्वेष तथा हिंसा कभी नहीं करना चाहिए ॥३४॥ वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु तथा व्रत करने वालों को स्त्रियों, राजा, महापुरुषों की निन्दा कथा व्रती को त्याग देना चाहिए ॥३५॥ विद्वान कथा व्रती को सत्य, पावित्र्य, मौन, दया, ऋजुता, नम्रता तथा मन की प्रसन्नता का पालन करना चाहिए ॥३६॥ लक्ष्मी चाहने वाले तथा पुत्र चाहने वाले विजय चाहने वाले तथा मोक्ष चाहने वाले को

सप्तमे दिवसे कुर्याल्लङ्घनं तत्समाप्तिके। वक्तुश्च पूजा कर्त्तव्या गोभूखर्णाम्बरादिभिः ॥३८॥
प्रसादतुलसीं मालां श्रोतृभ्यः प्रतिदापयेत्। उत्सवश्च तथा कार्यो गीतवाद्यविशारदैः ॥३९॥
गीतार्थं शृणुयाच्चाऽपि परेऽहनि विचक्षणः ।
प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्गायत्र्या वा यथाविधि ॥४०॥
पायसं मधुसर्पिश्च तिलांस्तण्डुलकान्यवान्। शर्करां च प्रियालञ्चद्राक्षांवातामखर्जुरो ॥४१॥
अम्भोजानि च कर्पूरं चन्दनागुरुणी पुरम्। लवङ्गं बिल्वपत्राणिसहस्रं च पृथक्पृथक् ॥४२॥
विघ्नस्य च विघातार्थं न्यूनाधिक्यनिवृत्तये। आत्मनः पूततार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ॥४३॥
द्वादशाष्टादशाथाऽपि श्रद्धयाह्यधिकांस्तथा। पायसेनाशयेद्विप्रान्स्वर्णं धेनुश्च दक्षिणा ॥४४॥
व्रतसिद्ध्यर्थमप्यत्र प्रौष्ठपद्यामथापि वा। स्वर्णसिंहं विनिर्माय तस्य पृष्ठे निधाय च ॥४५॥
श्रीमद्भागतवं वक्त्रे लेखयित्वा समर्पयेत्। एवं कृते विधाने तु सर्वपापनिवारणम् ॥४६॥
भवेच्छ्रोतुः सुफलदं श्रीमद्भागवतं श्रुतम्। धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं भक्तिदायकम् ॥४७॥
न कार्यं विद्यते लोके यदनेन न सिध्यति। ततो भागवतं लोकेपुराणेभ्योऽधिकंमतम्॥४८॥
दोषाष्टादशनिर्मुक्तो वाचकः परिकीर्तितः। द्वात्रिंशदपराधैर्हि मुक्तः श्रोता मतो बुधैः ॥४९॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं कामदं नृणाम्। तथापि श्रवणं चाऽस्य निष्कामस्यैव भक्तिदम्॥५०॥
श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्ताराङ्कुरः सज्जनिः-
स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालवालोदयः ।
द्वात्रिंशत्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः सहस्राण्यलं-
पर्णान्यपृष्टदशेष्टदोऽतिसुलभो वर्वर्ति सर्वोपरि ॥५१॥

निष्काम होकर श्रीमद्भागवत की कथा को सुनना। ऐसा करने वाले को श्रीहरि की प्राप्ति होती है ॥३७॥ सातवें समाप्ति के दिन उपवास करना चाहिए। वक्ता की पूजा गौ भूमि तथा वस्त्र आदि से करे ॥३८॥ सभी श्रोताओं को प्रसाद, तुलसी और माला देनी चाहिए। गीत तथा वाद्य में निपुण लोगों को उत्सव मनाना चाहिए ॥३९॥ दूसरे दिन बुद्धिमान व्यक्ति को गीता के अर्थ को सुनना चाहिए। गायत्री अथवा भागवत के प्रत्येक श्लोक से होम करना चाहिए ॥४०॥ खीर, मधु, घी, तिल, चावल, यव, चीनी, प्रियाल, दाख, बदाम, खजूर ॥४१॥ कमल, कर्पूर, चन्दन, अगरु, लवङ्ग तथा विल्वपत्र से अलग-अलग हजार आहुति दे ॥४२॥ विघ्न का नाश करने के लिए तथा न्यूनाधिक्य की पूर्ति के लिए एवं आत्मा की पवित्रता के लिए विष्णु सहस्र नाम का पाठ करे ॥४३॥ अठारह या दश या श्रद्धा के अनुसार अधिक भी ब्राह्मणों को खीर से भोजन कराये तथा उनको सुवर्ण तथा गौ की दक्षिणा दे। व्रत की सिद्धि के लिए प्रौष्ठपदी (भाद्र पद अमावस्या को स्वर्ण का सिंह बनाकर उसके पीठ पर भागवत को रखकर, उसके मुख पर भागवत लिखकर ब्राह्मण को समर्पित करे) इस तरह से विधि पूर्वक सप्ताह करने से सभी पापों का नाश हो जाता है ॥४४-४६॥ सुना हुआ भागवत श्रोता को सुन्दर फल प्रदान करने वाला हो जाता है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन और भक्ति प्रदान करने वाला होता है ॥४७॥ इस लोक में कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जो भागवत से सिद्ध न हो। इसीलिए भागवत अन्य पुराणों से श्रेष्ठ है॥४८॥ अठारह दोषों से रहित वाचक को कहा गया है और सुनने वाला द्वादश अपराधों से मुक्त होजाता है॥४९॥

इति ते कथितंसर्वं कृतंचाऽपि तवेप्सितम्। ज्ञानवैराग्यभक्तीनां तारुण्यंलोकमोक्षदम्॥५२॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ते कुमारास्तु कृष्णाङ्घ्रिसुधयाप्लुताः ।
विरेमुर्भगवद्भक्ता दीनोद्धरणतत्पराः ॥५३॥

तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः। प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः ॥५४॥

नारद उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ।
यद्भागवतसप्ताहान्निकटे दर्शितो हरिः ॥५५॥

श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः। वैकुण्ठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते॥५६॥

सूत उवाच

एवं ब्रुवति वै तस्मिन्नारदे वैष्णवोत्तमे। पर्यटंस्तं समायातस्तत्र योगेश्वरः शुकः ॥५७॥

द्विरष्टवर्षाकृतिरम्बुजाक्षो व्यासात्मजो ज्ञानपयोधिचन्द्रः ।
कथावसाने निजलाभतुष्टो हृदाऽनिशं भागवतं पठंश्च ॥५८॥
दृष्ट्वा सदस्यास्तमथोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय वरासनं ददुः ।
सचोपविष्टः सुखमासने यदा तदाविरासीद्धरिरब्जलोचनः ॥५९॥
भवो भवान्या कमलासनः सुतैस्तत्राऽऽगतः कीर्तनदर्शनाय च ।
सुरेशमुख्यास्त्रिदशा विमानकैः समागतास्तैरभवद्वृतं नभः ॥६०॥

श्रीमद्भागवत पुराण मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । फिर भी निष्काम होकर इसका श्रवण भक्ति प्रदान करने वाला होता है ॥५०॥ श्रीमद्भागवत नामक कल्प वृक्ष तारा के अङ्कुर समान है । इसका सत्य जन्म है । बारह स्कन्धों से यह सुशोभित है । भक्ति ही इसके आलबाल हैं तीन सौ बत्तीस इसकी शाखाएँ हैं और उसकी शाखाओं के अठारह हजार (श्लोक) ही पत्ते हैं । यह सर्वाधिक सुलभ है ॥५१॥ इस तरह से मैंने आपको सारी बातें बता दी और तुम्हारे अभिप्रेत कार्य को मैंने कर दिया । ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का तारुण्य लोगों को मोक्ष प्रदान करने वाला है ॥५२॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से कहकर वे कुमार भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों सुधा से सराबोर हो गये । सभी भगवद् भक्तों ने विराम किया। वे सदा दोनों का उद्धार करने में लगे रहते हैं ॥५३॥ उनके वाक्यों को सुनकर भगवत्प्रिय नारदजी हाथ जोड़कर प्रेम से परिपूर्ण वाणी से उन लोगों को कहे ॥५४॥ **नारदजी ने कहा—** मैं धन्य हो गया । करुणा करने वाले आपलोगों ने मुझे अनुगृहीत किया; क्योंकि सन्निकट में ही विद्यमान भगवत सप्ताह से मैंने सन्निकट से श्रीहरि का दर्शन किया ॥५५॥ हे तपोधनों ! मैं सभी धर्मों से श्रीमद्भागवत का श्रवण श्रेष्ठ मानता हूँ । उसके सुनने से वैकुण्ठ में भी रहने वाले भगवान् की प्राप्ति हो जाती है ॥५६॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह वैष्णवों में उत्तम नारदजी के कहने पर घूमते हुए योगेश्वर शुकदेवजी भी वहाँ आ गये। उनकी आकृति सोलह वर्ष की थी कमल के सदृश उनके नेत्र थे । वे व्यासजी के पुत्र ज्ञान के क्षीरार्णव हैं कथा के अन्त में हृदय से सन्तुष्ट वे सदा श्रीमद्भागवत का पाठ कर रहे थे ॥५७-५८॥ अत्यधिक तेजस्वी उनको देखकर सभी सदस्य उनको श्रेष्ठ आसन प्रदान किए । वे सुख पूर्वक आसन पर जब बैठ

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया ह्युद्धवः कांस्यधारी-
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्ताऽर्जुनोऽभूत् ।
इन्द्रो मार्दङ्गिकोऽभूज्जयजयसुवचः प्रावदंस्ते कुमाराः-
सद्भावस्य प्रवक्ता निरतिशयगुणो व्यासपुत्रो बभूव ॥६१॥
ननर्त्त मध्ये त्रिकमेव तत्र ज्ञानादिकानां नवरूपयुक्तम् ।
अलौकिकं कीर्त्तनकं समीक्ष्य प्रसन्नचेता हरिरित्युवाच ॥६२॥
मत्तो वरं भागवता वृणीध्वं प्रीतात्कथाकीर्तनतो भृशं वः ।
श्रुत्वाऽथ तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ॥६३॥

कुमाराऊचुः

सप्ताहयज्ञेन कृतेन भक्तया सद्यः प्रसन्नो भविता मुरारे ! ।
कलौ युगे घोरतरे नराणां स्वल्पायुषां विघ्नशताकुलानाम् ॥६४॥
एवं वरं विश्वविधानपालनप्रणाशहेतोर्भवतोऽखिलात्मनः ।
वृणीमहेऽन्यो न मनोरथो विभो ! भवत्पदाम्भोजनिषेविणां हिनः ॥६५॥

एवमस्त्वितिचैवोक्त्वा तत्रैवाऽन्तर्दधे हरिः । नारदः सुप्रसन्नात्मा कुमारानभ्यवादयत् ॥६६॥
ततस्ते सनकाद्याश्च भृग्वाद्याश्च शुकादयः । प्रययुःस्वाश्रमान्हृष्टाःपीत्वातच्चकथामृतम् ॥६७॥
भक्तिः सुताभ्यां सहिता नारदेन प्रवर्तिता । भूमण्डले समस्तेऽस्मिंस्तदाप्रभृति शौनक॥६८॥

शिव उवाच

आख्यानं महदाकर्ण्य प्रीतात्मा शौनकः प्रिये ।
पर्यपृच्छत्पुनः सूतं सर्वसन्देहभञ्जनम् ॥६९॥

गये उस समय कमल नयन श्रीहरि आविर्भूत हो गये । वहाँ पर कीर्तन देखने के लिए शङ्करजी, पार्वतीजी तथा अपने पुत्रों के साथ ब्रह्माजी भी आ गये । इन्द्र आदि देवता अपने विमान पर चढ़कर आये उससे आकाश भर गया ॥५९-६०॥ प्रह्लादजी ने ताल धारण किया उद्धवजी ने तेजी से कांस्य धारण किया था। देवर्षि ने वीणा धारण किया राग करने वाले अर्जुन थे । इन्द्र मृदङ्ग बजा रहे थे और सभी कुमार जय-जयकार कर रहे थे । सद्भाव का वर्णन करने वाले निःसीम गुण वाले शुकदेवजी हो गये ॥६१॥ बीच में ज्ञान आदि तीनों नृत्य करने लगे । वे नवीन रूप से युक्त थे । इस अलौकिक कीर्तन को देखकर प्रसन्न होकर श्रीहरि ने कहा ॥६२॥ हे भागवतों ! आपलोग मुझसे वरदान माँगें । आपलोगों के कीर्तन से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । उस वाक्य को सुनकर प्रसन्न तथा प्रेम से भरे चित्त वाले वे सब श्रीहरि से कहे ॥६३॥ **कुमारों ने कहा—** हे मुरारे ! घोर कलियुग में सैकड़ों विघ्नों से व्याकुल तथा अल्प आयु वाले मनुष्यों के भक्ति पूर्वक सप्ताह यज्ञ करने से आप शीघ्र प्रसन्न होएँ ॥६४॥ संसार की सृष्टि, पालन और संहार करने वाले सम्पूर्ण जगत् की आत्मा आपसे हम यही वरदान माँगते हैं कोई दूसरा नहीं । हमलोग आपके चरण कमलों की सेवा करने वाले हैं ॥६५॥ श्रीभगवान् भी ऐसा ही होगा यह कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये नारदजी भी प्रसन्न कुमारों को प्रणाम किए ॥६६॥ उसके पश्चात् वे सनकादिक तथा भृगु आदि महर्षि तथा शुकदेवजी प्रसन्न होकर अपने आश्रमों में उस कथामृत का पान करके चले गये ॥६७॥ दोनों पुत्रों

शौनक उवाच

शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः। सुरर्षये कदा ब्राह्मैरेतदाख्याहि मानद ! ॥७०॥

सूत उवाच

श्रीकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिगते कलौ। भाद्रशुक्लनवम्यां वै कथारम्भं शुकोऽकरोत्॥७१॥
परीक्षिच्छ्रवणान्ते तु गते वर्षशतद्वये। शुचिशुक्लनवम्यां तु गोकर्णोऽकथयत्कथाम्॥७२॥
तस्मादपि कलौ याते त्रिशते सषडब्दके। ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणस्सुताः॥७३॥
कलौ सहस्रमब्दानामधुना प्रगतं द्विज !। परीक्षितो जन्मकालात्समाप्तिं नीयतां मखः॥७४॥

७४ तमश्लोकादारभ्याध्यायसमाप्तिपर्यन्तं श्लोकाः पुण्यपत्तनपुस्तके न सन्ति। एतत्स्थाने अधोलिखिताः श्लोकास्सन्ति।

इत्येतत्ते समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघे। कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी॥१॥
कृष्णप्रियं सकलकल्मषनाशनं च मुक्त्येकहेतुमिह भक्तिविलासकारि।
सन्तः कथानकमिदंपिबतादरेण लोके हितार्थपरिशीलनसेवया किम्॥२॥
स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर भगवत्कथासुमत्तान्प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम्॥३॥
असारेसंसारेविषयविषसंगाकुलधियःक्षणार्थंमोक्षार्थंपिबतशुकगाथातुलसुधाम्।
किमर्थंव्यर्थंभोव्रजतकुपथेकुत्सितपथेपरीक्षितसाक्षीयच्छ्रवणगतमुत्तयुक्तिकथने॥४॥
रसप्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा। कण्ठे सम्बध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत्॥५॥
इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जंविलोड्य।
जगतिशुककथातोनिर्मलंनास्तिकिञ्चित्पिबपरसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम्॥
एनां चो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे।
तौ सम्यग्विधकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यान्नहि भुवने किमप्यसाध्यम्॥)

ईश्वर उवाच

इतिश्रुत्वा वचस्तस्य शौनको मुनिसत्तमः। पूर्णं चकार तं यज्ञं सहस्रपरिवत्सरम्॥७५॥

के साथ हे शौनक ! उसी समय सम्पूर्ण भूमण्डल में नारदजी ने भक्ति का प्रचार किया॥६८॥ **शिवजी ने कहा—** हे प्रिये ! इस कथा को सुनकर महान् आत्मा सभी सन्देहों को दूर करने वाले सूतजी से शौनक महर्षि ने पुनः प्रश्न किया॥६९॥ **शौनक महर्षि ने कहा—** हे मानद ! आप यह बतलायें कि राजा परीक्षित् को कब भागवत सुनाया। गोकर्ण ने कब भागवत किया। नारदजी को ब्रह्माजी के पुत्रों ने कब कथा सुनाया॥७०॥ **सूतजी ने कहा—** भगवान् श्री कृष्ण के अपने धाम में चले जाने पर कलियुग के तीस वर्ष बीत जाने पर भाद्र शुक्ल नवमी को शुकदेवजी ने कथा प्रारम्भ किया॥७१॥ परीक्षित् के सुनने के बाद दो सौ वर्ष बीत जाने पर आश्विन मास की नवमी तिथि को गोकर्ण ने भागवत की कथा की॥७२॥ उसके बाद तीन सौ छह वर्ष बाद कार्तिक मास के नवमी तिथि को ब्रह्माजी के पुत्रों ने कथा की॥७३॥ कलियुग के एक हजार वर्ष समय बीत गये हैं परीक्षित् के जन्म काल में यज्ञ की समाप्ति हुयी॥७४॥

ब्राह्मं पाद्मे वैष्णवं च कौर्म्मं मात्स्यं च वामनम् ।
वाराहं ब्रह्मवैवर्त्तं नारदीयं भविष्यकम् ॥७६॥
आग्नेयमर्द्धं वै सूताच्छुश्रुवुर्लोमहर्षणात् । एतानि तु पुराणानि द्वापरान्ते श्रुतानि हि ॥७७॥
शौनकाद्यैर्मुनिवरैर्यज्ञारम्भात्पुरैव हि । यदा तु तीर्थयात्रायां बलदेवः समागतः ॥७८॥
नैमिषं मिश्रिकं नाम समाहूतो मुनीश्वरैः । तत्र सूतं समासीनं दृष्ट्वा त्वध्यासनोपरि ॥७९॥
चुक्षुभे भगवान्नामः पर्वणीव महोदधिः । आषाढशुक्लद्वादश्यां पारणाहनि पार्वति ! ॥८०॥
पूर्वार्द्धयामवेलायां भावित्वात्कृष्णमायया । मुग्धोदर्भकरो रामः प्राहरल्लोमहर्षणम् ॥८१॥
ततो मुनिगणाः सर्वे हाहाकारपरायणाः । बभू वुर्नगजेऽत्यर्थं शोकदुःखाकुलान्तराः ॥
ऊचुश्च रामं लोकेशं विनयेन क्षमापराः ॥८२॥

ऋषयऊचुः

राम राम महाबाहो ! भवता लोककारिणा ।
अजानतेवाचरिताहिंसाब्रह्मवधाधिका ॥८३॥
व्यासशिष्यो ह्ययं साक्षात्पुराणर्षिर्महातपाः । अस्मै ह्यध्यासनंदत्तमस्माभिर्यज्ञकर्मणि ॥८४॥
अष्टादशपुराणानां वाचकाय कृतक्षणैः । कथायां जगदीशस्य दीर्घमायुश्च मानद !॥८५॥
तद्भवाँल्लोकरक्षार्थं धर्मसेतुप्रवर्तकः । आविर्भूतो जगन्नाथो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥८६॥
इत्युत्तवा मुनयस्ते तु बलदेवाग्रतः प्रिये ! । तूष्णींवभूवुःसहसा स्मरन्तो नियतेर्बलम् ॥८७॥
ततः प्रोवाच भगवान्नामः शत्रुनिषूदनः । विप्रान्सम्प्रीणयंस्तांस्तु लोकवेदपथानुगः ॥८८॥

ईश्वर ने कहा सूतजी की इस वाणी को सुनकर शौनक महर्षि ने उस यज्ञ को एक हजार परिवत्सर में पूरा किया ॥७५॥ ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, वामन पुराण, वाराह पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, नारद पुराण और भविष्य पुराण तथा आधा अग्नि पुराण लोम हर्षण सूत से वे लोग सुने । ये सभी पुराण द्वापर के अन्त में सुने गये हैं ॥७६-७७॥ शौनक आदि श्रेष्ठ मुनियों द्वारा यज्ञ के आरम्भ होने से पहले ही जब बलदेवजी तीर्थ यात्रा में आये थे । उसी समय सुना गया था ॥७८॥ नैमिष मिश्रिक को मुनीश्वरों ने बुलाया था । वहाँ पर सूतजी को ऊँचे आसन पर बैठे देखकर बलरामजी उसी तरह क्रुद्ध हो गये जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र में ऊँची लहरें उठती हैं । हे पार्वति ! आषाढ़ शुक्ल द्वादशी के पारण के दिन ॥७९-८०॥ पूर्वार्द्ध की बेला में भगवान् की माया से मोहित होकर हाथ में कुश को लिए हुए वे लोमहर्षण पर प्रहार किए ॥८१॥ उस समय सभी ऋषियों ने हाहाकार किया वे शोक और दुःख से व्याकुल थे । उन लोगों से बलरामजी से नम्रता पूर्वक क्षमा करते हुए कहा ॥८२॥ **ऋषियों ने कहा**— हे लोकों की रचना करने वाले महाबाहु बलरामजी बिना जाने हुए के समान आपने, ब्रह्महत्या से भी अधिक हिंसा की है ॥८३॥ ये महर्षि व्यासजी के शिष्य हैं महातपस्वी पुराण ऋषि हैं । इनको हमलोगों ने इस यज्ञ में उच्च आसन प्रदान किया है ॥८४॥ अठारह पुराणों के वाचक इनको देखकर श्रीभगवान् की कथा में हे मानद ! हमलोगों ने इनको दीर्घायु प्रदान किया है ॥८५॥ आप जगत् के स्वामी तथा संसार का निग्रह और अनुग्रह करने वाले हैं । आप संसार की रक्षा करने वाले तथा धर्मसेतु का प्रवर्तन करने वाले हैं ॥८६॥ हे प्रिये ! बलदेवजी के सामने इन बातों को कहकर नियति के बल को विचार कर वे

श्रीराम उवाच

विप्राः शृणुत भद्रं वः कोपं त्वत्तया सुदूरतः ।
यदहंवेद्मि भवतामभीष्टं कार्यसिद्धिदम् ॥८९॥

अस्य पुत्रो महाज्ञानी भविष्यतिवरान्मम। भवतामीप्सितं सर्वं शास्त्रम्वै कथयिष्यति ॥
यदर्थमहमाहूतस्तच्च कार्य्यं समुच्यताम् ॥९०॥

ईश्वर उवाच

इतिश्रुत्वा वचस्ते तु रामस्य सुमहात्मनः। बल्वकस्य वधार्थाय प्रेरयामासुरीश्वरम् ॥९१॥
ततः स बल्वलं हत्वा प्रसाद्य मुनिपुङ्गवान्। प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातस्तीर्थयात्रामुपागतः ॥९२॥
तीर्थयात्रां गते रामे शौनकाद्या मुनीश्वराः। लौमहर्षणिमाहूय सत्कृत्य नगनन्दिनि ॥९३॥
तत्पदे स्थापयामासुः शेषसंकीर्तनायवै। आग्नेयोत्तरमाहात्म्यं श्रीमद्भागवतान्तकम् ॥९४॥
पुराणं सप्तकं स र्द्धं शुश्रुवुर्हष्टमानसाः। दशसप्तपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ॥९५॥
नाप्तवन्मनसस्तोषंभारतेनाऽपि भामिनि !। ज्ञात्वाऽस्य हृदयं खिन्नं नारदो देवदर्शनः ॥९६॥
समाजगाम भगवान्व्यासस्याश्रममुत्तमम् । तं दृष्ट्वा वासवीसूनुः सत्कृत्यासनपूर्वकम् ॥९७॥
नारदं पूजयामास विधिदृष्टेन कर्मणा। अथ तं नारदः प्राह किंभवान्क्लिष्टमानसः ॥९८॥
ध्यायते तत्समाचक्ष्व सर्वं सन्देहकारणम्। इतिपृष्टः स मुनिना पराशरसुतोऽब्रवीत् ॥९९॥

ब्रह्मन्किकारणं चेतो मोहे जाने न तत्त्वहम् ।
भवान्विज्ञानकुशलो ज्ञात्वा तत्प्रब्रवीतुमे ॥१००॥

मुनिगण मौन हो गये ॥८७॥ उसके पश्चात् शत्रुओं को मारने वाले बलरामजी लोक एवं वेद के मार्ग का अनुसरण करने वाले थे मुनियों को प्रसन्न करते हुए कहे ॥८८॥ **श्रीबलरामजी ने कहा**— हे विप्रों ! आपलोगों का कल्याण हो, क्रोध को त्यागकर ने जो आपलोगों के अभीष्ट कार्य को सिद्ध करने वाला मैं कहता हूँ ॥८९॥ मेरे वरदान से इनके पुत्र महाज्ञानी हो गये वह आपके अभिप्रेत सभी शास्त्रों को जिसलिए आपलोगों ने बुलाया है उसे कहें ॥९०॥ **ईश्वर ने कहा**— इस तरह से बलरामजी की वाणी को सुनकर वल्वल को मारने के लिए बलरामजी को ऋषियों ने कहा ॥९१॥ उसके बाद वे बल्वल को मारकर तथा मुनियों को प्रसन्न करके उन लोगों को नमस्कार करके बलरामजी तीर्थ यात्रा में चले गये ॥९२॥ बलरामजी के तीर्थ यात्रा में चले जाने पर शौनक आदि मुनीश्वरों ने लोमहर्षण के पुत्र को बुलाकर हे पार्वति ! उनका सत्कार करके ॥९३॥ लोमहर्षण के पद पर स्थापित करके शेष भाग को वर्णित करने के लिए अग्नि पुराण के उत्तरार्द्ध से लेकर श्रीमद्भागवत पर्यन्त ॥९४॥ प्रसन्न मन से सात पुराणों को सुना । व्यासजी सत्रह पुराण की रचना करके ॥९५॥ महाभारत की रचना करके सन्तुष्ट नहीं थे । हे भामिनि ! व्यासजी के हृदय को जानकर देवदर्शन नारदजी ॥९६॥ व्यासजी के आश्रम में आये । उनको देखकर सत्यवतीजी के पुत्र व्यासजी ने उनको आसन प्रदान किया ॥९७॥ उन्होंने विधि पूर्वक नारदजी की पूजा की । उनको नारदजी ने कहा आप मन से खिन्न क्यों हैं ?॥९८॥ आप ध्यान पूर्वक सन्देह के सभी कारणों को कहें । मुनि के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर महर्षि पराशर के पुत्र व्यासजी ने कहा ॥९९॥ हे मुने ! न जाने किस

एवं विज्ञापितस्तेन नारदोऽध्यात्मकोविदः। उवाच परमं तत्त्वं यदुक्तं विधिनात्मने ॥१०१॥

नारद उवाच

शृणु पाराशरे मत्तः कारणं येन वै तव। असम्पन्नं मनो भाति शास्त्रयोनेरपि प्रभोः ॥१०२॥

त्वयाऽवतीर्य लोकेऽस्मिन्वेदा व्यस्ता विभागशः ।
कृतानि च पुराणानि सेतिहासानि चानघ ! ॥१०३॥

यत्रसर्वस्त्रयीधर्मो वर्णाश्रमनिवासिनाम्। निर्दिष्टो वीक्ष्यकालेन नृणामल्पायुषांकलौ ॥१०४॥

यत्राधिकारः सर्वेषां दृश्यते श्रवणादिषु। स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां साधुसङ्गमशालिना ॥१०५॥

धर्मादयो यथाशश्वद्वर्णितास्तेषु वै त्वया। प्राधान्येन तथा नैव वर्णितो महिमा हरेः ॥१०६॥

सर्वधर्मक्रियाशून्ये कलौ दोषनिधौ मुने। न गतिः पापकर्तृणां विनाकृष्णकथामृतम्॥१०७॥

एष एव गुणोह्यस्मिन्घोरे कलियुगे नराः। यत्कृष्णाकीर्तनेनैव मुच्यन्ते कर्मबन्धनात् ॥१०८॥

यज्ञो दानं तपः कर्म ज्ञानं ध्यानं कृतादिषु ।
सिद्धिं च तथा ब्रह्मन्नामकीर्त्तनकं कलौ ॥१०९॥
अतो वै कलिजातानामुद्धारार्थं नृणां भवान् ।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं वर्णयत्वलम् ॥११०॥

येन प्रवर्तितेनाङ्ग ! भवतो मानसंध्रुवम्। तोषमेष्यति लोकाश्च प्राप्स्यन्ति कृतकृत्यताम्॥१११॥

ईश्वर उवाच

एवमादिश्य स मुनिर्व्यासायामिततेजसे। ययौ यादृच्छिकः शश्वद्गायन्हरिगुणान्प्रिये ॥११२॥

कारण से मेरे चित्त में मोह है । मैं उसे नहीं जानता हूँ । आप तो विज्ञान कुशल हैं उसे जानकर आप मुझे बतलायें ॥१००॥ इस तरह से व्यासजी के कहने पर अध्यात्मवेत्ता नारदजी जिसे ब्रह्माजी उन्हें वतलाया था उसे कहे ॥१०१॥ **नारदजी ने कहा—** हे पराशरजी के पुत्र ! जिसके कारण आपका मन असम्पन्न सा प्रतीत होता है, यद्यपि आप शास्त्रों के कर्ता हैं, फिर भी मुझसे सुनें ॥१०२॥ आपने इस लोक में अवतार लेकर वेदों का अलग-अलग विभाग किया । हे अनघ ! आपने पुराणों और इतिहासों की रचना की ॥१०३॥ जिसमें कि वर्णों आश्रमों में निवास करने वाले त्रयी के धर्मों का वर्णन है । आपने लोगों को अल्प आयु वाला देखकर निर्देश किया ॥१०४॥ जिसके सुनने वाले स्त्री, शूद्र तथा ब्रह्मबन्धुओं को जो सज्जनों की संगति करने वालों का श्रवण आदि का अधिकार वर्णित है ॥१०५॥ उन सबों में आपने शाश्वत धर्मों का वर्णन किया है । किन्तु प्रधान रूप से आपने श्रीहरि की महिमा का वर्णन नहीं किया है॥१०६॥ हे मुने ! दोषाकर कलि तथा सभी धर्मों और क्रियाओं का वर्णन नहीं किया है हे मुने ! दोष कर तथा सभी धर्मों और क्रियाओं से रहित कलियुग में कृष्ण कथा रूपी अमृत के बिना पापियों की गति नहीं है । इस भयंकर कलियुग में एक यही गुण है कि लोग भगवान् कृष्ण का कीर्तन ही करके कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥१०७-१०८॥ सत्य युग आदि में ही यज्ञ, दान, तपस्या, कर्म, ज्ञान तथा ध्यान सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं । कलियुग में श्रीभगवान् के नामों का कीर्तन ही मुक्ति प्रदान करने वाला होता है ॥१०९॥ इसलिए कलि में उत्पन्न लोगों का उद्धार करने वाले श्रीमद् भागवत नामक पुराण की आप रचना करें ॥११०॥ हे अङ्ग ! उसको प्रणीत करके आपका मन निश्चित रूप से सन्तुष्ट होगा और

नारदे तु गते पश्चाद्व्यासः सर्वार्थदर्शनः। चकार संहितामेतांश्रीमद्भागवतीं पराम् ॥११३॥
पैलादींश्चतुरो वेदानध्याप्य विधिपूर्वकम्। पुराणसंहिताःसर्वाः सूताय प्रत्यपादयत्॥११४॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणंब्रह्मसम्मितम्। शुकमध्यापयामास विरतं लोकवेदतः॥११५॥
सा संहिता भागवती लोमहर्षणसूनुना। श्रुता कथयतो राज्ञे औत्तरेयाय वै शुकात् ॥११६॥
शौनकादिऋषिभ्यस्तु तेन प्रोक्ता यथार्थतः। वरीवर्त्ति पुराणानामुपरीयं नगात्मजे ॥११७॥
अस्यासंलग्नचित्तानां नृणामन्यत्र नो रतिः। जायते मानसे कृष्णोनन्दसूनुश्चकास्तिच॥११८॥
यत्त पृष्टं त्वया भद्रे लोकनिस्तारहेतवे। श्रीभागवतमाहात्म्यं मह्यं संकीर्त्तयेति ह॥११९॥

तत्सर्वंच मया तुभ्यं निर्दिष्टं गणपाम्बिके ! ।
नानेतिहाससहितं भक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१२०॥
यः श्रृणोति नरो भक्त्या माहात्म्यं पठतेऽपि च ।
अनुमोदनेन वासोऽपि लभते परमां गतिम् ॥१२१॥
द्विजोऽधीत्याऽऽप्नुयाद्वेदान्क्षत्रियस्तु लभेज्जयम् ।
धनं वैश्यस्तथा शूद्रः श्रुत्वैव लभते गतिम् ॥१२२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे-श्रीमद्भागवतमाहात्म्येऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९८॥

संसारी जीव भी कृतकृत्य हो जायेंगे ॥१११॥ **ईश्वर ने कहा—** अमित तेजस्वी व्यासजी को इस प्रकार से आदेश देकर निरन्तर श्रीहरि के गुणों का गायन करने वाले देवर्षि अपनी अभिप्रेत दिशा में चले गये॥११२॥ नारदजी के चले जाने पर सभी अर्थों को जानने वाले व्यासजी ने सर्वश्रेष्ठ इस भागवती संहिता का प्रणयन किया ॥११३॥ पैल आदि शिष्यों को चारो वेदों को विधि पूर्वक पढ़ाकर सम्पूर्ण पुराण संहिता को वे सूतजी को पढ़ाये ॥११४॥ श्रीमद्भागवत नामक पुराण वेद के समान है । लोक तथा वेद से विरत रहने वाले शुकदेवजी को पढ़ाये ॥११५॥ उस भागवती संहिता को शुकदेवजी द्वारा राजा परीक्षित् को सुनाते समय लोमहर्षण के पुत्र सूतजी ने सुना ॥११६॥ उन्होंने शौनक आदि ऋषियों को ठीक-ठीक सुनाया । हे पार्वति ! यह पुराण सभी पुराणों से ऊपर है ॥११७॥ इस संहिता में जिन लोगों का मन लग गया है उनका दूसरे ग्रन्थों में प्रेम नहीं होता है। उन लोगों के मन में भगवान् श्रीकृष्ण प्रकाशित होने लगते हैं ॥११८॥ हे भद्रे ! तुमने जो लोक का कल्याण करने के लिये पूछा था कि मुझको श्रीमद् भागवत का माहात्म्य बतलायें । हे गणपति की माँ ! उसको मैंने पूर्ण रूप से सुना दिया । अनेक इतिहासों से युक्त यह ग्रन्थ भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला है ॥११९-१२०॥ जो मनुष्य इसको भक्ति पूर्वक पढ़ता है और सुनता है और इसका अनुमोदन करता है वह परम गति को प्राप्त करता है ॥१२१॥ ब्राह्मण इसका अध्ययन करके वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है और क्षत्रिय विजय को प्राप्त करता है । वैश्य धन को प्राप्त करता है और शूद्र इसको सुनकर सद्गति को प्राप्त करता है ॥१२२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीमद्भागवत के माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में एक सौ अठानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९८॥

एक सौ निनाबेवाँ अध्याय

ऋषयऊचुः

कालिन्द्याश्चैव माहात्म्यं वद सूत ! सविस्तरम् ।
यस्मै प्रकाशितं येन तदाख्यानसमन्वितम् ॥१॥

सूत उवाच

एकदा पाण्डुतनयः शुश्रषुः सौभरेः शुभम् ।
ज्ञानं तत्स्थानमभ्येत्य नत्वा तमितिपृष्टवान् ॥२॥

युधिष्ठिर उवाच

ब्रह्मन्मार्तण्डतनयातीरतीर्थेषु यच्छुभम्। तीर्थं तद्वद वैकुण्ठजनमभूमि पुरात्परम् ॥३॥

सौभरिरुवाच

एकदा तु मुनिश्रेष्ठौ दिवि नारदपर्वतौ। गच्छन्तौ खाण्डववनं पश्यतः सुमनोहरम्॥४॥
तत्रावतीर्णौ नभस उपविष्टो तटे शुभे। कालिन्द्याः क्षणविश्रान्तौ स्नातुं विविशतुर्जले ॥५॥
शिबिरौशीनरोराजा मृगयां तौ चरन्वने। दृष्ट्वा तन्निर्गमापेक्षी निषसाद सरित्तटे॥६॥

तौ मुनी विधिवत्स्नात्वा परिधायाऽम्बराणि च ।
वन्दितौ शिरसा राज्ञा तेनोपविशतां तटे ॥७॥
तत्राऽऽलोक्य सुवर्णस्य शिबिर्यूपान्सहस्रशः ।
नारदं गर्वसहितः पर्वतं च जगाद सः ॥८॥

शिबिरुवाच

कथ्यतां मुनिशार्दूलौ कस्येमा यागयष्टयः। केनाऽत्र विहितो यज्ञः सुरेणाऽथ नरेणवा॥९॥
मुक्त्वा काश्यादितीर्थानि यज्ञैरीजेऽत्र कः पुमान् ।
को विशेषोऽत्र तीर्थेभ्यस्तेभ्यो विज्ञानसन्निधिः ॥१०॥

कालिन्दी माहात्म्य और इन्द्र याग का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे सूतजी ! आप यमुना का माहात्म्य विस्तार पूर्वक बतलायें उसको जिसने जिसको बतलाया उस आख्यान पूर्वक आप कहें ॥१॥ **सूतजी ने कहा—** एक वार पाण्डुपुत्र सौभरि ऋषि से शुभ ज्ञान सुनने की इच्छा से उनसे कहे सूर्य पुत्री यमुना के तट पर तीर्थों में जो शुभ हो उस शुभ तीर्थ को आप मुझे बतलायें भगवान् की जन्मभूमि सबसे श्रेष्ठ है ॥२-३॥ **सौभरि महर्षि ने कहा—** एक बार स्वर्ग में नारदजी और पर्वत नामक श्रेष्ठ मुनि खाण्डव वन में जाते हुए मनोहर वस्तुओं को देखे ॥४॥ वहाँ पर वे उतरे और शुभ यमुना के तट पर बैठ गये। क्षणभर विश्राम करके यमुना में स्नान करने के लिए जल में प्रवेश किए। उशीन राजा शिवि राजा वन में आखेट करते हुए उनको देखकर उनके निकलने की प्रतीक्षा करते हुए तट पर बैठ गये ॥५-७॥ वहाँ पर राजा शिवि सुवर्णमय हजारों स्तम्भों को देखकर राजा गर्व सहित नारदजी तथा पर्वत मुनि से कहे ॥८॥ **शिवि ने कहा—** हे मुने ! आप बतलाएँ कि ये स्तम्भ किसके हैं किसी देवता अथवा मनुष्य ने यहाँ यज्ञ किया था क्या ?॥९॥ काशी आदि तीर्थों को

नारद उवाच

पुरा हिरण्यकशिपुर्जित्वा शक्रादिदेवताः। त्रैलोक्यराज्यमासाद्य सोऽखर्वं गर्वमाददे ॥११॥
प्रह्लादस्तस्य तनयो नारायणपरायणः। तस्मै सोऽद्रुह्यताऽभीक्ष्णं पापात्मा नष्टमङ्गलः ॥१२॥
तद्द्रोहाद्विष्णुना सद्यो नृसिंहतनुधारिणा। हत्वा दैत्यपतिं स्वर्गराज्यं स्वःपतयेऽर्पितम् ॥१३॥
स्वपदंप्राप्यदेवेशो बृहस्पतिमथाऽवदत्। मूर्ध्नाऽभिवन्द्यतत्पादौनारायणगुणान्स्मरन् ॥१४॥

इन्द्र उवाच

गुरो नृसिंहरूपेण हरिणा लोकधारिणा। दत्तं मे देवताराज्यं यष्टुमिच्छामि तं मखैः ॥१५॥
स्थानंपवित्रंकथय ब्राह्मणांश्चैव मे गुरो !। नविधेये विलम्बोऽत्र त्वया नो हितकारिणा ॥१६॥

बृहस्पतिरुवाच

अस्ति ते खाण्डववनं रम्यं परमपावनम्। केतक्यशोकबकुलमधुमत्तमधुव्रतम् ॥१७॥
तत्राऽस्तियमुनापुण्याधन्या त्रैलोक्यपावनी। ददाति स्मरणे स्वर्गं मरणे ब्रह्मणःपदम् ॥१८॥
तत्तीरे यज देवेश ! केशवंबहुभिर्मखैः। यदीच्छसि स्वकीयानां कल्याणं त्वं निरन्तरम्॥१९॥

नारद उवाच

गुरोर्वचनमाकर्ण्य तूर्णमारुह्य वाहनम्। शिवप्रदमिमं शक्रः स्वकीयवनमागतम् ॥२०॥
गुरुणा सह देवैश्च यज्ञोपकरणैस्तथा। अत्राऽऽगत्य विलोक्यैतद्वनं लेभे मुदं पराम्॥२१॥
गुरुणा नोदितः शक्रःसप्तर्षीन्ब्रह्मणः सुतान्।
वसिष्ठादीन्द्विजान्वृत्या यजतिस्म जगत्पतिम् ॥२२॥

छोड़कर किस पुरुष ने यहाँ यज्ञ किया ? उन तीर्थों के सामने यहाँ पर कौन सी विशेषता है ॥१०॥ **नारदजी ने कहा—** प्राचीन काल में हिरण्यकशिपु इन्द्र आदि देवताओं को जीतकर त्रैलोक्य का राज्य प्राप्त करके वहुत अधिक गर्वीला हो गया ॥११॥ उसका पुत्र प्रह्लाद भगवान् नारायण का भक्त था हिरण्यकशिपु पापी तथा मङ्गल रहित था वह प्रह्लाद से सदा द्वेष करता था ॥१२॥ उसके द्रोह के कारण श्रीभगवान् नरसिंह का रूप धारण करके उसको मारकर स्वर्ग का राज्य इन्द्र को दे दिये ॥१३॥ अपने लोक में जाकर इन्द्र बृहस्पति से शिर से श्रीभगवान् के चरणों की वन्दना करके भगवान् नारायण के गुणों स्मरण करते हुए कहे ॥१४॥ **इन्द्र ने कहा—** हे गुरो ! लोक धारक श्रीहरि ने नृसिंह का रूप धारण करके मुझे देवताओं का राज्य प्रदान किया है । मैं यज्ञों द्वारा उनका यजन करना चाहता हूँ ॥१५॥ हे गुरो ! मुझको आप पवित्र स्थान तथा ब्राह्मणों को बतलायें । हमलोगों का कल्याण करने वाले आप इसमें विलम्ब न करें॥१६॥ **बृहस्पति ने कहा—** परम पावन खाण्डव वन है अत्यन्त पवित्र तथा मनोहर है । केतकी, अशोक, बकुल तथा मधुमत्त भ्रमरों से वह भरा है ॥१७॥ वहाँ पर पवित्र धन्य एवं त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली यमुना नदी है । स्मरण करने पर स्वर्ग तथा मृत्यु हो जाने पर वह ब्रह्म पद को प्रदान करती है ॥१८॥ हे देवेश ! आप उस यमुना नदी के ही तट पर बहत यज्ञों के द्वारा भगवान् केशव की आराधना करें । यदि आप अपने लोगों का कल्याण करना चाहते हैं तो ॥१९॥ **नारदजी ने कहा—** बृहस्पति के वचन को सुनकर इन्द्र अपने वाहन पर सवार होकर कल्याणकारी इस खाण्डव वन में आये ॥२०॥ बृहस्पति और देवताओं के साथ यज्ञ के साधनों को लेकर यहाँ पर आकर इन्द्र इस वन को देखकर

तस्य प्रसन्नो भगवान्ब्रह्म शाभ्यां सहागतः ।
क्रतौ शतक्रतोर्यत्र महानभवदुत्सवः ॥२३॥
देवत्रयीं सतां वीक्ष्य शक्रो वक्रमतिस्तदा। उत्थायासनतस्तूर्णम्ववन्दे मुनिभिः सह॥२४॥
वाहनेभ्योऽवरुह्याशुतदन्तेषूपविश्यते । आसनेषु सुहैमेषु बभुर्वेदीष्विवाग्नयः ॥२५॥
सितरक्ताङ्गयोः शम्भुब्रह्मणेर्हरिराबभौ । नीलच्छविः पीतवासास्ढित्वानिव शृङ्गयोः ॥२६॥
शक्रः प्रक्षाल्य तत्पादान्मूर्ध्ना तज्जलमादधे। अब्रवीच्च मुदा युक्तो वचनं मधुराऽक्षरम् ॥२७॥

इन्द्र उवाच

विहितोऽयं मया देव ! यज्ञोऽद्य सफलोऽभवत् ।
यदि मे दर्शनं प्राप्ता दुर्लक्ष्या अपि योगिभिः ॥२८॥
एकेनैव त्वयाविष्णो कृतामूर्तिस्त्रयीमयी। गुणैस्तथापिनानात्वं स्फटिकस्येव तेमृषा ॥२९॥
यथादारुषुगूढोऽग्निर्घर्षणेनविना विभो !। नाविर्भवति भूतानां हृत्सु भक्तया तथाभवान्॥३०॥
एकस्य त्वयि भक्तिःस्यात्सर्वभूतोपकारिणी ।
बभूवुः सुखिनो देवाः प्रह्लादकृतयातया ॥३१॥
वयं विषयिणो देव ! त्वन्मायावृतचेतसः। न जानीमः स्वरूपं ते यथावत्पादसेवकाः ॥३२॥
भोब्रह्मन्भो महादेव युवामपि जगद्गुरु। एतस्यैव गुरुत्वेन यतोनातः पृथग्युवाम् ॥३३॥

अत्यन्त आनन्दित हुए ॥२१॥ बृहस्पति के द्वारा प्रेरित होकर इन्द्र सप्तर्षियों, ब्रह्माजी के पुत्रों तथा वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों का वरण करके जगत् के स्वामी श्रीभगवान् का यजन किए ॥२२॥ उन पर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ब्रह्माजी तथा शङ्करजी के साथ जहाँ पर इन्द्र का यज्ञ हो रहा था वहाँ आये। उस समय वहाँ महान् उत्सव हुआ ॥२३॥ इन तीनों देवताओं को वहाँ पर विद्यमान देखकर कुटिल बुद्धि वाले इन्द्र शीघ्र अपने आसन से उठकर मुनियों के साथ उन लोगों की वन्दना किए ॥२४॥ अपने वाहनों से शीघ्र उतरकर उनके सन्निकट वे बैठ गये सुवर्ण के आसनों पर वे ऐसे सुशोभित हुए जैसे वेदियों पर तीनों अग्नियाँ बैठी हों ॥२५॥ श्वेत तथा रक्त अङ्गों वाले शिवजी तथा ब्रह्माजी नील छवि वाले तथा पीताम्वर धारण किए हुए श्रीहरि वैसे सुशोभित हुए जैसे पर्वत शिखरों के बीच में बिजली हो ॥२६॥ इन्द्र उन लोगों के पैरों को धोकर उस जल को अपने शिर पर चढ़ाये और मधुरवाणी में उन्होंने उन लोगों से कहा ॥२७॥ **इन्द्र ने कहा—** हे देव ! मेरे द्वारा किया जाने वाला यह यज्ञ सफल हो गया क्योंकि योगियों को भी दुर्लभ आपलोगों का दर्शन मुझे प्राप्त हुआ है ॥२८॥ हे भगवन् ! विष्णो ! आपने अकेले ही इन तीन शरीरों को धारण कर लिया है; किन्तु गुणों के कारण आपलोगों में स्फटिक के समान मिथ्या ही भिन्नता प्रतीत होती है ॥२९॥ जैसे काष्ठ के भीतर विद्यमान अग्नि घर्षण के बिना नहीं आविर्भूत होती है उसी तरह आप भी सभी जीवों के हृदय में विद्यमान होकर भी भक्ति के बिना प्रकट नहीं होते हैं ॥३०॥ केवल आप में ही होने वाली भक्ति सभी जीवों का उपकार करने वाली है प्रह्लाद के द्वारा की गयी भक्ति से सभी देवता सुखी हो गये ॥३१॥ हे देव ! हमलोग तो विषयी जीव हैं हमलोगों का अन्तःकरण आपकी माया से आवृत्त है आपके सेवक होकर भी हमलोग आपके स्वरूप को नहीं जानते हैं ॥३२॥ हे ब्रह्मन् ! हे

यत्किञ्चिदुच्यते वाचा मनसा च विचिन्त्यते ।
अस्यैवमाया तत्सर्वे तद्द्वयीदूरवर्त्तिनः ॥३४॥
प्रपञ्चजातं यदिदं विलोक्यते न सत्यमित्येव विचिन्त्यते नराः ।
भजन्ति विष्णोश्चरणं तरन्ति ते यदम्बुमूर्ध्ना हर ! धार्यते त्वया ॥३५॥
विधेऽस्य भूयादनुजन्मपादयो रतिर्मदीया कमलावयोर्भृशम् ।
यदीक्षणक्षोभितया तया जगत्समस्तमेतनमहदादि जायते ॥३६॥
भवादृशे नास्ति कृपापरोऽपरो विपक्षपक्षे वितनोषि यत्सुखम् ।
स्वलोकशोकापनये कृपालुता यदुच्यते ते नृहरे ! तदज्ञता ॥३७॥

नारद उवाच

इत्यभिष्टूय देवेशं केशवं प्रणतोऽग्रतः । तस्थौ तद्वाक्यशुश्रूषादत्तचित्तो महीपते ! ॥३८॥
एवमाकर्ण्य मुनयस्तुतिं तस्य रमापतेः। कृतामिन्द्रेण सदसि साधुसाध्विति चाब्रुवन्॥३९॥
शतमन्यो वर्षशतं ये कुर्वन्ति महत्तपः। न तेषामीदृशी भक्तिर्यादृशी तव माधवे ॥४०॥
न योगः सुलभोऽष्टाङ्गः ख्यातिर्येनाऽधिगम्यते ।
समत्वेन च तत्त्यागस्तद्भक्तिः शरणं नृणाम् ॥४१॥
स्वधर्मार्जितवित्तैर्यद्यथाविधि विधीयते । कर्म तस्याऽर्पणं विष्णौ भक्तिरेषाशिवप्रदा॥४२॥
न निन्देद्देवतामन्यां विष्णुबुद्ध्या च यो नमेत् ।
न त्यजेद्वेदवाक्यानि स भक्तोऽस्य हरेः प्रियः ॥४३॥

महादेव! आप दोनों भी जगद्गुरु हैं, इसीलिए आप दोनों भी इनसे भिन्न नहीं हैं ॥३३॥ वाणी और मन से जो कुछ भी कहा और सोचा जाता है, इनकी ही माया से वह सब कुछ होता है, और आप दोनों से वह माया दूर रहती है ॥३४॥ इस सम्पूर्ण प्रपञ्च में जो कुछ भी दिखायी पड़ता है, उसको लोग सत्य रूप से चिन्तन नहीं करते हैं । जो लोग भगवान् के चरणों का भजन करते हैं वे तर जाते हैं । हे शङ्करजी! उन भगवान् के चरणों का जल आप अपने शिर पर धारण करते हैं ॥३५॥ हे ब्रह्माजी, प्रत्येक जन्म में मेरी भक्ति इनके चरणों में लक्ष्मीजी के समान मेरा अत्यन्त प्रेम होए । इनकी रक्षा मात्र से यह सम्पूर्ण महदादि जगत् सृष्ट हो जाता है ॥३६॥ आपके समान कृपा करने वाला कोई दूसरा नहीं है आप तो विपक्षियों के पक्ष में सुख का प्रसार करते हैं । हे नृसिंह भगवन् ! अपने लोक के शोक को दूर करने के लिए आपकी कृपालुता बतलायी जाती है, वह अज्ञान मात्र है ॥३७॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से श्रीभगवान् की स्तुति करके इन्द्र उनके समक्ष नम्र होकर श्रीभगवान् के वाक्य को सुनने की इच्छा से खड़े रहे ॥३८॥ इस तरह से श्रीभगवान् की इन्द्र द्वारा की गयी स्तुति को सुनकर मुनियों ने साधु-साधु कहा॥३९॥ हे इन्द्र ! सौ वर्षों तक महान् तप करने वालों की भी ऐसी भक्ति नहीं होती है, जैसी भक्ति आपकी श्रीभगवान् में है ॥४०॥ अष्टाङ्ग योग जिसके द्वारा ख्याति की प्राप्ति होती है वह सुलभ नहीं है। समदर्शी होने के कारण उसका त्याग करने वाली भक्ति ही मनुष्यों का रक्षक है ॥४१॥ अपने धर्म से अर्जित धन के द्वारा जो विधि की जाती है और अपने कर्म को भगवान् को अर्पित करने वाली बुद्धि ही कल्याणकारिणी होती है ॥४२॥ जो किसी दूसरे देवता की निन्दा नहीं करता है और जो विष्णु भगवान्

ये शृण्वन्ति हरेर्गुणानहरहः कुर्वन्ति ये कीर्तनं ।
ये चाऽस्य स्मरणं पदोश्च भजनं येऽमुं यजन्तस्तथा ।
यद्दास्येन नमन्ति चैनममुना कुर्वनित ये मित्रतां-
ये च स्वं च निवेदयन्ति न हि ते वाञ्छन्ति मुक्तयादिकम् ।।४४।।
इन्द्र! भक्तया त्वमप्येनमाराधय जगद्गुरुम् ।
न कामय किमप्यस्मत्कृतकृत्यो भविष्यसि ।।४५।।

नारद उवाच

इति मुनिभिरुदीरितां तु वाचं त्रिभुवनपारपदप्रदां निशम्य ।
हरिरखिलगुरुः कृतस्वभक्तिं मधुरमुवाच वचो हरिं समाजे ।।४६।।

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्यइन्द्रयागविधिर्नामैकोनद्विशततमोऽध्यायः ।।१९९।।

दो सौवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

न तच्चित्रं सुराधीश ! मनुयो ज्ञानवत्तराः । मदीयां यदि वै भक्तिं गुर्वीं कुर्वन्तिसत्कृताम् ।।१।।

की बुद्धि से जो नमस्कार करता है । जो वेद वाक्यों का परित्याग न करे वह भक्त ही हरि का प्रिय होता है ।।४३।। जो श्रीहरि के गुणों को सुनता है और जो प्रतिदिन श्रीहरि का कीर्तन करता है, जो लोग श्रीहरि का स्मरण और उनके चरणों की सेवा करते हैं तथा उनका यजन करते हैं जो उनको दास्य भाव से नमन करते हैं और उनके भक्तों से जो मित्रता करते हैं और जो लोग अपनी को स्वयं निवेदित कर देते हैं वे मुक्ति इत्यादि को नहीं चाहते हैं ।।४४।। हे इन्द्र ! तुम भी भक्ति पूर्वक जगद्गुरु की आराधना करो । तुम किसी चीज की कामना न करो ऐसा करके तुम कृत-कृत्य हो जाओगे ।।४५।। **नारदजी ने कहा—** इस तरह से मुनियों के द्वारा त्रिभुवन से पार करने वाली वाणी को सुनकर सम्पूर्ण जगत् के गुरु श्रीहरि उस समाज में मधुर वाणी में कहे ।।४६।।

इस तरह श्रीपद्मपुराण के छठे उत्तर खण्ड के अन्तर्गत कालिन्दी माहात्म्य तथा इन्द्र याग का वर्णन करने वाले एक सौ निन्यानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९९।।

श्रीभगवान् की प्रेरणा से इन्द्रप्रस्थ में अनेक तीर्थों की स्थापना, शिवशर्मा के पुत्र विष्णु शर्मा की कथा, विष्णु शर्मा द्वारा अपने पिता को पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाना, कालिन्दी तट पर विद्यमान तीर्थ में सिंह तथा भिल्ल दोनों की वैकुण्ठ की प्राप्ति का वर्णन

श्रीभगवान् ने कहा— हे इन्द्र ! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं कि अधिक ज्ञानवान मुनिजन

एते ज्ञानोपदेष्टारस्त्रिलोकतलवासिनाम् । प्रवर्तयन्त्यमी नष्टं वेदमार्गं यतः सदा ॥२॥
भक्त्याभवानपि स्वर्गभोगासक्तोऽपिमां यतः ।
प्रपन्नोऽसि किमाश्चर्यं यतस्तवगुरुर्गुरुः ॥३॥
यजस्व सुरशार्दूल ! मखैर्मा (र्मा) बहुदक्षिणः ।
निष्कामस्त्वं समीपस्थं तूर्णं प्राप्स्यसि मत्पदम् ॥४॥
प्रतियागं प्रयच्छ त्वं रत्नप्रस्थान्यनेकशः । आख्यया स्थानमेतत्ते इन्द्रप्रस्थं भविष्यति ॥५॥
विधे ! त्वमत्र रचय प्रयागं तीर्थपुङ्गवम् । सरस्वतीं समानीय गङ्गां च जनपाविनीम् ॥६॥
काशींच शिवकाञ्चींच त्वमत्र स्थापयेश्वर ! ।
गोकर्णंच समं गौर्या निवासं कुरुसर्वदा ॥७॥
भोभो ब्रह्मसुता यूयं ज्ञानविज्ञानकोविदाः । निजयोगबलेनाऽत्र कुरुध्वं तीर्थसप्तकम् ॥८॥
निगमोद्बोधकं तीर्थं त्वं गुरो ! प्रतिपादय ।
विनाऽध्यायनमप्यत्र स्नानाद्बोधोऽस्तु छन्दसाम् ॥९॥
स्मृतिश्च जायतां पूर्वजन्मनस्तु परात्मनः । अहमारोपयाम्यत्र द्वारकां सुमनोहराम् ॥१०॥
समुद्रेण समं यत्र गोमत्या सङ्गमोऽभवत् । कोशलं च करोम्यत्रमध्येऽरण्यं च वासव ! ॥११॥
ययोरवतरिष्यामि वपुर्भ्यां रामकृष्णयोः । बदर्याश्रममप्यत्र नरनारायणास्पदम् ॥१२॥
विदधामि सदा यत्र वसामि सुरनायक !। हरिद्वारंपुष्करं च तीर्थद्वयमनुत्तमम् ॥१३॥
तदपि स्थापयाम्यत्र तवैव हितकाम्यया । नैमिषे यानि तीर्थानि यानि कालञ्जरेगिरौ ॥१४॥
सरस्वतीतटे यानि स्थापयाम्यहमत्र वै ॥१५॥

यदि मेरे द्वारा समादृत मेरी भक्ति को गौरव युक्त बनाते हैं ॥१॥ ये ज्ञान का उपदेश करने वाले त्रैलोक्य में रहने वाले नष्ट वेद मार्ग को ये सदा प्रवर्तन करते रहते हैं ॥२॥ भक्ति के द्वारा आप भी भोग में आसक्त रहकर मेरे शरणागत हैं इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि मैं तुम्हारे गुरु का भी गुरु हूँ ॥३॥ हे देवश्रेष्ठ! बहुत दक्षिणा देकर आप भी मेरी आराधना करें । निष्काम होकर तुम शीघ्र मेरे लोक में आओगे ॥४॥ प्रत्येक यज्ञों में तुम अनेक प्रस्थ रत्नों का दान करो । मेरा यह स्थान इन्द्रप्रस्थ के नाम वाला हो जायेगा॥५॥ हे ब्रह्मन् ! आप यहाँ पर तीर्थ श्रेष्ठ प्रयाग की रचना कर दें । सरस्वती को लाकर गङ्गा को जनपावनी बना दें ॥६॥ हे शङ्करजी ! आप यहाँ काञ्ची और शिव काञ्ची की स्थापना करें । गोकर्ण तीर्थ की स्थापना करें और पार्वतीजी के साथ यहाँ सदा आप निवास करें ॥७॥ हे ब्रह्माजी के पुत्रों ! आपलोग ज्ञान विज्ञान के ज्ञाता हैं । अपने योग के बल से आपलोग सात तीर्थों की रचना करें ॥८॥ हे बृहस्पतिजी ! आप वेद के बोधक तीर्थ को बनायें यहाँ पर अध्ययन किए बिना ही स्नान करने मात्र से वेदों का ज्ञान हो जाय । पूर्व जन्म की स्मृति हो जाय मैं भी यहाँ सुन्दर द्वारका को बनाता हूँ । यहा पर समुद्र के साथ गोमती का सङ्गम हो । हे वासव वन के बीच में मैं कोशल प्रदेश को बनाता हूँ ॥९-११॥ इन दोनों में मैं राम और कृष्ण के शरीर को धारणकर के अवतार लूँगा । यहाँ नर-नारायण का स्थान बदरिकाश्रम होगा ॥१२॥ हे इन्द्र ! इसे जहाँ बनाता हूँ वहाँ पर मैं सदा निवास करता हूँ ॥१३॥ नैमिषारण्य और कालञ्जर गिरि पर

नारद उवाच

शिवं शिवतरं वाक्यं हरेः श्रुत्वा कृतं च तत् ।
दृष्ट्वा तदुक्तमपि ते चक्रुर्ब्रह्मशिवादयः ॥१६॥
सर्वतीर्थमयेऽमुष्मिस्थाने स त्रिदशाधिपः । स्वर्णयूपैर्बहुमखैरीजे भूयो रमापतिम् ॥१७॥
रत्नप्रस्थानिविप्रेभ्यः कृष्णस्य पुरतो ददौ। नारायणः समस्तात्मा ममायमितितुष्यतु ॥१८॥
इन्द्रप्रस्थमिदं तीर्थं ततः प्रभृति कथ्यते । सर्वतीर्थमये यत्र मृतो भूयो न जायते ॥१९॥
इन्द्रदत्तानि ते लब्ध्वा रत्नप्रस्थानि भूसुराः। तस्मैददुरवितथामाशिषं तत्र संसदि॥२०॥
इन्द्राय तव गोविन्दोदानेनाऽनेन तुष्यतु । तावकी भक्तिरप्यस्मिन्भूयादव्यभिचारिणी॥२१॥
कर्मभूमाविह विभो ! पुरा यज्ञशतं कृतम्। तेन पुण्येन लब्धं ते सकामेन सुरास्पदम् ॥२२॥
अधुना पूजितो विष्णुर्निष्कामेन त्वया मखैः ।
स्वपदाद्विच्युतो भूमौ भविष्यति द्विजाग्रणीः ॥२३॥
तत्राऽपिनिजधर्मेण विष्णुमाराधयन्भवान्। स्मरिष्यति निजंकर्म कृतमत्र मखादिकम्॥२४॥
तत्स्मृतेर्गृहमुत्सृज्य भवांस्तीर्थानि पर्यटन्। जनकेन समं शक्र ! तीर्थेऽस्मिन्संप्रपत्स्यते ॥२५॥
चतुर्थाश्रममादाय त्यक्ष्यत्यत्र कलेवरम्। ततो विमानमासरुह्य गणानीतं रविप्रभम् ॥
भवान्दिव्याङ्गवान्भूत्वा प्राप्स्यति श्रीहरेः पदम् ॥२६॥

नारद उवाच

एवमाकर्ण्य विप्राणामाशिषं त्रिदशाधिपः । भविष्यपिशुनां चोक्तिं शिबेमुदमगात्तराम् ॥२७॥

जो तीर्थ हैं उनकी भी तुम्हारे कल्याण के लिए मैं यहाँ स्थापना करता हूँ ॥१४॥ सरस्वती नदी के तट पर जो तीर्थ हैं उन सबों की भी मैं यहाँ स्थापना करता हूँ ॥१५॥ **नारदजी ने कहा—** श्रीहरि के अत्यन्त कल्याणकारी वाक्य को सुनकर तथा उसे देखकर ब्रह्माजी तथा शिवजी ने भी उनके कहने के अनुसार किया ॥१६॥ सभी तीर्थमय उस स्थान पर इन्द्र ने अनेक सुवर्णा के स्तम्भों तथा यज्ञों के द्वारा लक्ष्मीपति की पुनः पूजा की । श्रीभगवान् के समक्ष ही बहुत अधिक रत्नों को दक्षिणा में उन्होंने ब्राह्मणों को दिया। सर्वात्मा भगवान् नारायण मेरे इस कर्म से सन्तुष्ट हों ॥१७-१८॥ उसी समय से यह इन्द्रप्रस्थ कहलाता है । इस सभी तीर्थमय स्थान में मरने वालों का पुनः जन्म नहीं होता ॥१९॥ इन्द्र के द्वारा दिए गये रत्नों के प्रस्थों को प्राप्त करके वे ब्राह्मण इन्द्र को कभी व्यर्थ नहीं होने वाले आशीर्वादों को उस संसद में दिया॥२०॥ इस दान से भगवान् गोविन्द इन्द्र पर प्रसन्न हो तुम्हारी अव्यभिचारिणी भक्ति श्रीभगवान् में हो॥२१॥ हे विभो ! इस कर्म भूमि में पहले सौ यज्ञ किए गये । उस पुण्य से कामना युक्त तुमको देवताओं का राज्य मिला ॥२२॥ इस समय तुमने निष्काम होकर भगवान् की आराधना यज्ञों के द्वारा की है अपने पद से च्युत होकर आप पृथिवी पर द्विजश्रेष्ठ होंगे ॥२३॥ उस जन्म में भी अपने धर्म के द्वारा भगवान् विष्णु की आराधना करके आप अपने कर्म यज्ञ इत्यादि का स्मरण करेंगे ॥२४॥ उन सबों की यादगारी होने के कारण आप अपना गृह त्याग कर तीर्थों में घूमते हुए अपने पिता के साथ हे इन्द्र ! इस तीर्थ में आयेंगे ॥२५॥ संन्याश्रम को अपनाकर आप यहाँ शरीर का त्याग करेंगे उसके पश्चात् गणों के द्वारा लाये गये विमान पर चढ़कर आप दिव्य अङ्गों वाला होकर श्रीहरि के लोक में जायेंगे ॥२६॥ **नारदजी ने**

समाप्य विधिवद्यज्ञानत्र सौवर्णयष्टिकान्। माधवप्रमुखान्देवान्पूजितान्स व्यसर्जयत् ॥२८॥
ऋत्विजो ब्रह्मण:पुत्रानभ्यर्च्य च धनादिभिः ।
बृहस्पतिं पुरस्कृत्ययौशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥२९॥
तत्र राज्यं विधायेन्द्रो हरिभक्तियुतः शिवे ! ।
अवातरद्भुवि क्षीणे पुण्ये हास्तिनपत्तने ॥३०॥
शिवशर्मा द्विजः कश्चिद्वेदवेदाङ्गपारगः। तस्य भार्या गुणवतो नाम्नाऽन्वर्थवती भृशम्॥३१॥
तस्यां जातः सुवेलायामिन्द्रः श्रीपतिसेवकः ।
ज्योतिर्विदः समाहूतालग्नंदृष्ट्वाबभाषिरे ॥३२॥

ज्योतिर्विदऊचुः

शिवशर्मन्नयं बालस्तव भावी हरिप्रियः। उद्धरिनष्यति ते वंशं ब्रूमः सत्यं न वै मृषा॥३३॥
त्रयोदशाब्ददेहो यः साङ्गं वेदचतुष्टयम्। अधीत्य ज्ञानसम्पन्नो विवाहं तु करिष्यति ॥३४॥
पुनरुत्पाद्य सत्पुत्रं वानप्रस्थो भविष्यति। तीर्थेषु पर्यटन्धीरः संन्यासं धारविष्यति॥३५॥
इन्द्रस्य खाण्डववने यमुनाऽस्ति सरिद्वरा। तत्तीरेऽस्ति हरिप्रस्थं मरणं तत्र यास्यति॥३६॥

नारद उवाच

गणकोदितमाकर्ण्य शिवशर्मा शिवं वचः। चकार विष्णुशर्माणं नाम्ना निजसुतं तदा॥३७॥
तान्विसृज्य च वित्तेन चिन्तयामास बुद्धिमान् ।
धन्योऽहं यस्य मे पुत्रो विष्णुभक्तो भविष्यति ॥३८॥
साधयिष्यति पुत्रोऽयमाश्रमांश्चतुरो मम ।
मरिष्यति च सत्तीर्थे मदन्यः कोऽस्ति भाग्यवान् ॥३९॥

कहा— ब्राह्मणों द्वारा दिए गये आशीष को सुनकर इन्द्र होने वाले चाटुकारोक्ति की उक्ति को सुनकर अत्यधिक आनन्दित हुए ॥२७॥ सुवर्णों के स्तम्भों वाले यज्ञों को विधि पूर्वक समाप्त करके पूजित माधव आदि देवताओं को विदा किए ॥२८॥ यज्ञ के ऋत्विज ब्रह्माजी के पुत्रों को धन आदि से पूजा करके बृहस्पति को आगे करके इन्द्र स्वर्ग लोक में चले गये ॥२९॥ हे शिवे ! हरि की भक्ति से युक्त इन्द्र स्वर्ग का राज्य करके पुण्य के क्षीण हो जाने पर हस्तिनापुर में अवतीर्ण हुए ॥३०॥ वहाँ पर वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत शिवशर्मा नामक ब्राह्मण थे, उनकी गुणवती नामक अन्वर्थ नाम वाली पत्नी के गर्भ से वे सुन्दर समय में श्रीहरि के पाद सेवक के रूप में इन्द्र ने जन्म लिया। बुलाये गये ज्योतिषियों ने लग्न को देखकर कहा ॥३१-३२॥ **ज्योतिषियों ने कहा—** हे शिव शर्मन् ! आपका यह बालक श्रीहरि को प्रिय होगा और आपके वंश का उद्धार करेगा यह हम सत्य कह रहे हैं यह मिथ्या नहीं है ॥३३॥ तेरह वर्ष की अवस्था में यह चारो वेदों का अध्ययन करके ज्ञानवान् होकर विवाह करेगा ॥३४॥ और अपने सत्पुत्र को उत्पन्न करके यह वानप्रस्थी हो जायेगा। तीर्थों में पर्यटन करता हुआ यह धैर्य सम्पन्न होकर संन्यास ग्रहण कर लेगा ॥३५॥ इन्द्र के खाण्डव वन में श्रेष्ठ नदी यमुना है उसी के तट पर इन्द्रप्रस्थ है वहीं इसकी मृत्यु होगी ॥३६॥ ज्योतिषी के कल्याणकारी वचन को सुनकर शिवशर्मा ने अपने पुत्र का नाम विष्णु शर्मा रखा॥३७॥ उन्होंने धन देकर ज्योतिषियों को विदा किया और वे सोचने लगे कि मैं धन्य हूँ कि मेरा पुत्र

एवं विचिन्त्य मनसा जातकर्माद्यकारयत्। शिशोर्द्विजातिप्रवरैः शिवशर्मा शुभेऽहनि॥४०॥
अथ सप्तस्वतीतेषु वर्षेषु द्विजसत्तमः। सुतोपनयनं चक्रे चैत्रमास्यष्टमेऽब्दके॥४१॥
आद्वादशाब्दादध्याप्यवेदीनन्वगतःसुतम् । शिवशर्मा शिबे ! राजन्युयोज सह भार्यया॥४२॥
विष्णुशर्मास्वभार्यायांपुत्रमुत्पाद्यबुद्धिमान् । चकार तीर्थयात्रायांमनोनिर्विषयंस्वकम्॥४३॥
अभ्येत्य पितरं प्राह नात्वा तच्चरणद्वयम्। विष्णुशर्मा महाप्राज्ञो मुनिवाक्यमनुस्मरन्॥४४॥

विष्णुशर्मोवाच

अनुजानीहि मां तात विष्णुमाराधयाम्यहम्। तृतीयाश्रममासाद्यसत्संगतिविधायकम् ॥४५॥
द्वारागारधनापत्यसुहृदः क्षणभङ्गुराः। बुद्‌बुदा इव तोयेषु सुधीस्तेषु न सज्जते॥४६॥
स्वाध्यायेन च सन्तत्या मया तीर्णमृणद्वयम् ।
तीर्थेषु कामरहितो यष्टुमिच्छामि केशवम् ॥४७॥
संन्यस्तगुणरागोऽहंपश्चात्तीर्थोत्तमेक्वचित् । स्थातुमिच्छाम्यहंतावद्यावत्प्रारब्धमस्तिमे ॥४८॥
इत्युक्तस्तेन पुत्रेण स पिता बुद्धिमत्तरः। स्मृत्वा ज्योतिर्विदांवाक्यमहासंसारनिस्पृहः॥४९॥

शिवशर्मोवाच

चतुर्थाश्रमकालोऽयं ममाऽपिनिरहङ्कृतेः। विषयान्विषवत्त्यत्तवासेविष्ये केशवामृतम्॥५०॥
गृहे मम मनः पुत्र ! रमते नाऽद्य वार्द्धके ।
आनीतस्य वनाद्बद्धवा गजस्येव नृपालये ॥५१॥

भगवान् विष्णु का भक्त होगा ॥३८॥ यह मेरा पुत्र चारो आश्रमों को धारण करेगा । और सत्तीर्थ में जाकर मरेगा । मुझसे भिन्न कौन भाग्यवान् है ?॥३९॥ इस तरह से मन में सोचकर शिवशर्मा ने बच्चे का श्रेष्ठ ब्राह्मणों से शुभ लग्न में जातकर्म आदि कराया । इसके पश्चात् सात वर्ष के बीत जाने पर वे आठवें वर्ष के चैत्रमास में अपने पुत्र का उपनयन किए ॥४०-४१॥ बारह वर्षो तक वेदों को पढ़ाकर उसका अनुसरण करने वाले पुत्र को हे शिवि ! राजन् शिवशर्मा ने अपने पुत्र का विवाह कर दिया ॥४२॥ बुद्धिमान विष्णु शर्मा ने अपनी पत्नी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न किया और वे अपने निर्विषय मन को तीर्थ यात्रा में लगाये ॥४३॥ महाज्ञानी विष्णु शर्मा मुनि के वाक्य का स्मरण करते हुए अपने पिता के पास आकर उनके चरणों में प्रणाम किए ॥४४॥ **विष्णुशर्मा ने कहा—** हे तात ! मैं तृतीय आश्रम को अपनाकर जो सत्संगति को कराने वाले हैं उन भगवान् विष्णु की आराधना करूँगा, इसके लिए आप मुझे आज्ञा दें॥४५॥ पत्नी, गृह, धर्म और पुत्र ये सभी जल में उठने वाले बुलबुले के समान क्षणभङ्गुर हैं बुद्धिमान पुरुष उनमें नहीं आसक्त होते हैं ॥४६॥ वेदाध्ययन और सन्तान के द्वारा मैंने दो ऋणों को उतार दिया है । कामना रहित मैं तीर्थों में जाकर भगवान् केशव की आराधना करना चाहता हूँ । गुण और राग से रहित मैं बाद में कहीं तीर्थ में तब तक रहना चाहता हूँ जब तक कि मेरा प्रारब्ध रहता है ॥४७-४८॥ पुत्र के इस तरह से कहे जाने पर अत्यन्त बुद्धिमान् पिता ज्योतिषियों के वाक्य का स्मरण करते हुए संसार से निस्पृह होकर कहे ॥४९॥ अहङ्कार रहित मेरा भी समय चतुर्थ आश्रम का आ गया है । विष के समान विषयों का परित्याग करके मैं भी केशव रूपी अमृत का सेवन करूँगा ॥५०॥ हे पुत्र ! इस वृद्धावस्था में मेरा भी मन गृह में नहीं लगता है उसी तरह जिस तरह बन से लाकर राजा के घर में बँधें हुए हाथी का मन नहीं

तवाऽनुजः सुशर्माऽऽयं कुटुम्बं धारयिष्यति ।
आवाभ्यामुज्झितं विद्याश्रीकुलाभ्यां यथा नरम् ॥५२॥
प्रव्रजन्तं तु मामेव तव माता पतिव्रता। अनुयास्यति मार्तण्डं यथा कान्तिर्दिनात्यये ॥५३॥
तस्मादावामविज्ञातौ तया तात तवाऽम्बया । गच्छावश्चिन्तयन्तौ श्रीहरेःपादसरोरुहम्॥५४॥

नारद उवाच

इत्यालोच्य मुमुक्षू तौ निशीथे तमसावृते। सुप्तं कुटुम्बमुत्सृज्य गृहान्निर्याय जग्मतुः ॥५५॥
सहैव पर्यटन्तौ तौ सुतीर्थे निरहङ्कृती। शिबेऽत्र शिवदे तीर्थे शक्रप्रस्थे समीयतुः ॥५६॥
अत्राऽऽगतः स्वविहितान्पूर्वजन्मनि यूपकान् ।
विष्णुशर्मा समालोक्य सस्मार हरिसङ्गमम् ॥५७॥
ऊचे च पितरं धीमाञ्छक्रआसमहं पुरा। मयाऽत्र विहिता यज्ञा माधवप्रीणनेच्छया ॥५८॥
अत्रैव मे प्रसन्नोऽभूत्केशवो भक्तवत्सलः। सन्तोषिता मणिप्रस्थैर्द्विजाः सप्तर्षयश्च मे ॥५९॥
तेरैव वैष्णवी भक्तिर्दत्ता मोक्षो भवेऽत्र च ।
विष्ण्वादिभिः समस्तैस्तु तीर्थान्यत्र कृतानि वै ॥६०॥
सर्वतीर्थमयं तीर्थमिन्द्रप्रस्थमिदं कृतम्। अत्रैव मे मृतिश्चोक्ता तेरैव मुनिपुङ्गवैः॥६१॥
ततो हरिपदप्राप्तिरेतत्सर्वं स्मराम्यहम्। इमे गङ्गासरस्वत्यौ निजलोकाद्विरिञ्चिना॥६२॥
समानीते तयोर्योगे प्रयागोऽयं निगद्यते। एषा काशी शिवपुरी प्रयागात्पूर्वदेशके ॥६३॥
द्विपञ्चाशद्धनुर्मात्रे मृतो यस्यां न जायते। काश्याः पश्चिमके भागे धनुषामेकविंशतिः ॥६४॥

लगता है ॥५१॥ तुम्हारा छोटा भाई ये सुशर्मा ही कुटुम्ब को धारण करेंगे । हमदोनों के द्वारा परित्यक्त विद्या और कुल वाला मनुष्य के समान ॥५२॥ मेरे संन्यास लेते ही तुम्हारी पतिव्रता मां मेरे पीछे वैसे ही जायेगी जिस तरह दिन के बीत जाने पर कान्ति सूर्य का अनुगमन करती है ॥५३॥ हे तात ! तुम्हारी माँ ने हम दोनों को जान लिया है हम दोनों श्रीहरि के चरण कमलों का स्मरण करते हुए यहाँ से चल रहे हैं ॥५४॥ **नारदजी ने कहा—** पुत्र तथा परिवार को छोड़कर घर से निकलकर वे दोनों चल पड़े ॥५५॥ वे दोनों अहङ्कार रहित हो साथ-ही-साथ सुन्दर तीर्थ में घूमते हुए हे शिवि ! इस पवित्र तीर्थ इन्द्रप्रस्थ में आये ॥५६॥ यहाँ पर आकर अपने पूर्वजन्म में बनाये हुए यूपों को देखर विष्णुशर्मा श्रीहरि के सङ्गम को याद किए ॥५७॥ वे बुद्धिमान अपने पिता से कहे कि पूर्व जन्म में मैं इन्द्र था । यहाँ पर मैंने श्रीभगवान् को प्रसन्न करने की इच्छा से यज्ञों को किया ॥५८॥ यहीं पर मेरे ऊपर भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हुए थे। मैंने मणिप्रस्थों से ब्राह्मणों तथा सप्तर्षियों को सन्तुष्ट किया था ॥५९॥ उन लोगों ने मुझे भक्ति प्रदान की और इस जन्म में मोक्ष प्रदान किया । विष्णु आदि सभी देवों ने यहाँ पर सभी तीर्थों को स्थापित किया॥६०॥ इस इन्द्रप्रस्थ को उन लोगों ने सभी तीर्थों से सम्पन्न किया । उन मुनियों ने मेरी यहीं पर मृत्यु निश्चित की॥६१॥ इसीलिए श्रीहरि के पदों की प्राप्ति का स्मरण मैं कर रहा हूँ । ब्रह्माजी ने अपने लोक से इन गङ्गा और सरस्वती को बनाया ॥६२॥ उन दोनों का संयोग होने से यह प्रयाग कहा जाता है । यह शिवपुरी प्रयाग से पूर्व दिशा में है ॥६३॥ इसके दो सौ पचास धनुष मात्र में मरने वाले का पुनः जन्म

शिवकाञ्ची शिवेनैषा स्थापिता मृतमुक्तिदा। गोकर्णाख्यमिदं क्षेत्रं शम्भोःपरमवल्लभम्॥६५॥
धनुर्द्वयप्रमाणे तू भूमिभागे व्यवस्थितम् । इयं द्वारवती पुण्या तीर्थराजस्य पश्चिमे ॥६६॥
धनुषां सप्ततिर्यत्र मृतो भावी चतुर्भुजः। अतोऽसौ पूर्वदिग्भागे कोशला जनवत्सला ॥६७॥
अष्टादशधनुर्मात्रे दृश्यते पुण्यदर्शना। एतन्मधुवनं तात स्थापितं विष्णुना स्वयम्॥६८॥
कोशला पश्चिमे भागे दशचापप्रमाणतः । अत उत्तरतस्तात ! नरनारायणास्पदम्॥६९॥
एतदेकादशधनुर्भूमिदेशे च तिष्ठति। एतत्तीर्थं हरिद्वारमतो दक्षिणतः स्थितम् ॥७०॥
त्रिंशद्धनुर्महीदेशे दृश्यते देवदुर्लभम् । एतत्तु पुष्करं नाम तीर्थं तीर्थशिरोमणिः ॥७१॥

द्वादशेष्वासमात्रे भूभागे भोस्तात ! तिष्ठति ।
प्रयागादिकगव्यूतिः सप्तर्षीणांमहात्मनाम् ॥७२॥

पूर्वस्यां दिशितीर्थानिसप्ततत्तीर्थसप्तकम्। तीर्थसप्तककाश्योऽस्तुसन्तीर्थान्यनेकशः ॥७३॥
पदे पदे येषु मृतो जायते स चतुर्भुजः। प्रयागादेकमव्यूतिमात्रे पश्चिमभूतले ॥७४॥
निगमोद्बोधकं नाम तीर्थं गुरुकृतं पुरा । तीर्थसप्तकनिगमोद्बोधयोरन्तरं महत् ॥७५॥
इन्द्रप्रस्थमिदं क्षेत्रं स्थापितं दैवतैः पुरा। पूर्वपश्चिमयोस्तात ! एकयोजनविस्तृतम्॥७६॥
कालिन्द्या दक्षिणे यावद्योजनानांचतुष्टयम्। इन्द्रप्रस्थस्यमर्यादा कथितैषा महर्षिभिः ॥७७॥
देवत्रय्यां च यो ह्यत्र त्यजत्यङ्गं भवत्यजः ॥७८॥

नारद उवाच

पुत्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा शिवशर्मा शिबे ! द्विजः ।
प्रत्याह संदिहानस्तंस्वपुत्रंसत्यवादिनम् ॥७९॥

नहीं होता है । काशी के पश्चिम भाग में इक्कीस धनुष की दायरा में शिवजी ने इस शिव काञ्ची की स्थापना की है यह मरने वालों को मुक्ति प्रदान करती है । यह गोकर्ण नामक शिवजी को अत्यन्त प्रिय क्षेत्र है ॥६४॥ यह दो धनुष के स्थान में व्यवस्थित है । तीर्थराज के पश्चिम भाग में मनोहर यह द्वारकापुरी है ॥६५-६६॥ जिसके सत्तर धनुष में मरने वाले चतुर्भुज हो जाते हैं । इसके पूर्व दिशा में जन वत्सल कोशल प्रदेश है । यह अठारह धनुष में पवित्र तीर्थ दिखायी पड़ता है । हे तात ! यह मधुवन है इसको स्वयम भगवान् विष्णु ने यहाँ स्थापित किया था ॥६७-६८॥ कोशल के पश्चिम भाग में दश धनुष की भूमि में हे तात ! इसके उत्तर भाग में नर-नारायण से युक्त बदरिकाश्रम बारह धनुष में स्थित है । इसके दक्षिण भाग में हरिद्वार तीर्थ यह देवताओं को दुर्लभ तीर्थ ग्यारह धनुष भूभाग में स्थित है । यह तीर्थ शिरोमणि पुष्कर है ॥६९-७१॥ हे तात ! यह ग्यारह धनुष के भूमिभाग में स्थित है । प्रयाग से दो कोश की दूरी पर सप्तर्षि महात्माओं का पूर्व दिशा में तीर्थ सप्तक है । तीर्थ सप्तक में अनेक तीर्थ विद्यमान हैं ॥७२-७३॥ इसमें डग-डग भर में जो मर जाता है वह चतुर्भुज हो जाता है । प्रयाग से पश्चिम दिशा में दो कोश में पृथिवी पर बृहस्पति के द्वारा निर्मित निगमोद्बोधक तीर्थ है । निगमोद बोधक और तीर्थ सप्तक के बीच में महान् इन्द्रप्रस्थ क्षेत्र को देवताओं ने स्थापित किया है । हे तात ! यह पूर्व तथा पश्चिम में एक योजन में फैला है ॥७४-७६॥ यमुना नदी के दक्षिण भाग में चार योजन में इन्द्रप्रस्थ की सीमा महर्षियों ने बतलाया है ॥७७॥ देवत्रयी में जो अपने शरीर का त्याग करता है वह ब्रह्मा होता है ॥७८॥ **नारदजी ने**

शिवशर्मोवाच

कथमेतद्विजानीयांत्वंपुराऽऽसीः सुरेश्वरः। त्वमत्रकृतवान्यज्ञान्मणिभिस्तोषिताद्विजाः ॥८०॥
त्वदुक्तज्ञानवान्पुत्र यथाऽहं स्यां तथा कुरु। इन्द्रप्रस्थस्य मर्यादा कुतएषा त्वयाश्रुता ॥८१॥
यतः प्रभृति ते जाता मतिस्त्वं नाऽत्यजोगृहम् ।
मत्तएव त्वयाधीतंसाङ्गंवेदचतुष्टयम् ।
पूर्वजन्मकृते कृत्ये ज्ञानमासीत्कुतस्तव ॥८२॥

विष्णुशर्मोवाच

ऋषिभिर्मे वरो दत्तः पूर्वजन्मस्मृतिप्रदः। तेभ्यएवाऽस्य तीर्थस्य श्रुताह्येषास्मृतिर्मया॥८३॥
निगमोद्बोधके तीर्थे स्नानमत्र पितः ! कुरु ।
दुर्लभं प्राप्स्यसे ज्ञानं पूर्वजन्मस्मृतिप्रदम् ॥८४॥
ममाऽपि पूर्वजनुषः प्रवृत्तिं त्वं स्मरिष्यसि। एतत्तीर्थजलस्पर्शात्तात ! सत्यं वदामिते॥८५॥

नारद उवाच

शिवशर्मणि विप्रेन्द्रे श्रुत्वैतत्स्नातुमुद्यते। निगमोद्बोधके तीर्थे स्मृतये पूर्वजन्मनः॥८६॥
सिंहेनानुगतः कश्चिद्भिल्लो धावन्समागतः। अतित्रासपरीताङ्गो निःश्वसञ्छ्रमविह्वलः॥८७॥
हिंसात्मको वर्त्मघाती वणिजां लुण्ठतः (कः?) सदा ।
कृष्णाङ्गः पिङ्गकेशश्च खर्वो मार्जारलोचनः ॥८८॥
कुन्तहस्तो भीममूर्तिर्देही पाप्मेव भूपते !। ततः पश्चात्कियद्दूरे सिंहमालोक्यतावुभौ ॥८९॥

कहा— हे शिवि ! अपने पुत्र की इस वाणी को सुनकर शिवशर्मा अपने सत्यवादी पुत्र से सन्देह करते हुए पूछे ॥७९॥ **शिवशर्मा ने कहा—** मैं कैसे जानूं कि तुम पूर्वजन्म में इन्द्र थे ? तुमने यहाँ पर यज्ञ किया और मणियों से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया ॥८०॥ हे ज्ञानी पुत्र ! तुम्हारे द्वारा उक्त जैसे मैं रहूँ वैसा ही करो । इन्द्र प्रस्थ की मार्यादा को तुमने कहाँ सुना ॥८१॥ जबसे तुम्हें ज्ञान हुआ तब से तुमने घर को नहीं छोड़ा तुमने मुझसे साङ्ग चारो वेदों का अध्ययन किया । पूर्वजन्म में किए गये कर्म का तुम्हें कैसा ज्ञान हुआ ॥८२॥ ऋषियों ने मुझे पूर्वजन्म की स्मृति का वरदान दिया था । उन लोगों से सुने गये तीर्थ की मुझे स्मृति है ॥८३॥ हे पितः ! आप इस निगमबोधक तीर्थ में स्नान करें आप पूर्व जन्म की याद दिलाने वाला दुर्लभ ज्ञान आपको प्राप्त हो जायेगा ॥८४॥ मेरे भी पूर्व जन्म के कार्यो को आप स्मरण करेंगे । इस तीर्थ के जल का स्पर्श होने के कारण हे तात ! मैं सत्य कह रहा हूँ ॥८५॥ **नारदजी ने कहा—** श्रेष्ठ ब्राह्मण शिवशर्मा के इस बात को सुनकर निगमोद्बोधक तीर्थ में पूर्व जन्म की स्मृति के लिए उद्यत होने पर ॥८६॥ सिंह के द्वारा पीछा किये जाने वाला कोई भिल्ल वहाँ आ गया । अत्यन्त भय के कारण उसके सारे अङ्ग व्याप्त थे । थकान के कारण वह लम्बी श्वास ले रहा था ॥८७॥ रास्ते में घात लगाकर हिंसा करने वाला वह सदा व्यापारियों को लूट लेता था । उसका शरीर काला था, केश पीले थे, छोटा शरीर वाले उसके नेत्र बिल्ली के समान थे ॥८८॥ हे राजन् ! वह हाथ में भाला लिए रहता था देखने में भयङ्कर वह पाप की मूर्ति के समान था । उसके पश्चात् कुछ दूरी पर सिंह को देखकर वे दोनों पिता-पुत्र वृक्ष पर चढ़कर उस पर बैठे रहे । वे कह रहे थे कि हे कृष्ण ! इस अप मृत्यु से हमें

पितापुत्रौ समीपस्थंद्रुममारुह्यतस्थतुः । वदन्ताविति हाकृष्ण ! मोचयाऽतोग्पमृत्युतः ॥९०॥
स किरातस्तु राजेन्द्र ! ग्रहीतुं वेगवत्तरम् । वीक्ष्य सिंहं द्रुमं भीतः समारोढुं प्रचक्रमे ॥९१॥
आरोहणं प्रकुर्वन्तं सिंहो जग्राह वेगवान् । पादयोरथ भूपृष्ठे पातयित्वा रुरोह तम् ॥९२॥
अधःस्थितकिरातोऽपि कुन्तनोदरमस्य वै । ददार रुधिरौघाक्तनिसृतान्त्रकदम्बकम् ॥९३॥
जातव्यथो विधायाऽथ नादं परमदारुणम् । सिंहः पिपेष भिल्लस्य शिरःसद्यो ममार च ॥९४॥
तयोःपञ्चत्वमापन्ने भृतसङ्घेऽत्र भूपते ! । विमानद्वयमुत्तीर्णं गणाभ्यां सह सत्पदात् ॥९५॥
नवीनघनवर्णाभ्यां स्फटिकोपलनिर्मितम् । चारुकुण्डलकर्णाभ्यां मणिप्रकरमण्डितम् ॥९६॥
शङ्खचक्रगदापद्म हस्ताभ्यां चारुचित्रभृत् । दधद्भ्या पीतवस्त्राणि हेमभित्तिविभूषितम् ॥९७॥
प्रफुल्लाम्बुजनेत्राभ्यां पद्मरागगवाक्षभृत् । धीरनिर्ह्लादमञ्जीरपद्भ्यां रणितकिङ्किणि ॥९८॥

प्रकोष्ठे वलयश्रेणीं बिभ्रद्भ्यां चारुवेदिकम् ।
मुक्ताहारैर्मनोहारिवक्षोभ्यांसवितानवत् ॥९९॥

कुटिलालकवक्त्राभ्यामुन्नतध्वजराजितम् । भ्रूयुगाक्षिप्तपञ्चेषु धनुर्भ्यामुच्चतोरणम् ॥१००॥
नासालज्जितकीराभ्यां निर्व्यूहशतशोभितम् । नवविद्रुमसच्छायतलाभ्यां दर्पणामलम् ॥१०१॥

दिव्याङ्गौ भिल्लपञ्चास्यौ त्यक्तवाऽङ्गं प्राकृतं स्थितौ ।
पुरैव प्राणनिर्याणे तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ॥१०२॥

तयोः समीपमानीय विमाने तौ हरेर्गणौ । ऊचतुस्तौ वयोरूपमेषाकृतिधरौ ततः ॥१०३॥

भोः किरात ! नरश्रेष्ठ भोःपञ्चास्यमृगाधिप ! ।
आवांजानीतमायातौवैकुण्ठाच्छ्रीहरेर्गणौ ॥१०४॥

बचायें ॥८९-९०॥ हे राजेन्द्र ! उस किरात को वेग पूर्वक पकड़ने के लिए सिंह को आते देखकर भयभीत होकर वह वृक्ष पर चढ़ने लगा ॥९१॥ चढ़ने वाले उसको सिंह ने वेग से पकड़ लिया । उसके पैर को पकड़ कर पृथिवी पर गिरा दिया और उस पर चढ़ गया । नीचे विद्यमान वह किरात भी भाले से उसके पेट को फाड़ दिया । खून से लथपथ उसकी आँत निकल गयी ॥९२-९३॥ व्यथित होने के कारण सिंह ने घोर गर्जना की और उस भिल्ल के शिर को पीस दिया और शीघ्र ही मर गया ॥९४॥ हे राजन् ! उन दोनों के मर जाने पर गणों के साथ परमपद से दो विमान आये ॥९५॥ नवीन मेघ के समान रङ्ग वाले स्फटिक मणि से निर्मित कुण्डलों से सुशोभित तथा मणि समूह से अलंकृत ॥९६-९७॥ शङ्ख, चक्र, गदा एवं कमल से अद्भुत सौन्दर्य को धारण करने वाले, पीताम्बर धारण किए हुए सुवर्ण के दिवारों से अलंकृत विकसित कमल के समान नेत्र वाले तथा पद्मराग के खिड़कियों वाले गम्भीर ध्वनि से युक्त नूपुर से युक्त पैरों वाले तथा जिसकी घुंघरू बज रहे थे भुजाओं में कङ्कण धारण किए हुए मनोहर वेदी वाले मनोहर मोती की माला विक्षुब्ध चन्दोवा के समान ॥९८-९९॥ धुंधराले मुख के द्वारा सुशोभित दोनों भौंहों से पञ्च बाण के धनुष के समान तोरण वाले ॥१००॥ नासिका के जो शुक के समान नवीन विद्रुम की शोभा से जिनके फर्श बने थे स्वचछ दर्पण के समान था ॥१०१॥ भिल्ल तथा सिंह अपने प्राकृत शरीर को प्राण के निकलने से पहले ही इस तीर्थ के प्रभाव से त्याग चुके थे ॥१०२॥ उन दोनों के समीपविमान को लेकर वे दोनों श्रीहरि के गण अवस्था और इस आकृति को धारण करने वालों से कहे॥१०३॥ हे नरश्रेष्ठ ! किरात और हे मृगाधिप सिंह हम दोनों वैकुण्ठ से आये हुए श्रीहरि के गण हैं ॥१०४॥

नेष्यामस्तत्पदं सत्यं युवां तत्र नचोर्मयः। स्वं स्वविमानमारुह्यगम्यतामाशमाचिरम् ॥१०५।

स्वं स्वं विमानामारूढौ तौ किरातमृगाधिपौ ।

ऊचतुर्विस्मयाविष्टौ लक्ष्मीपतिगणौ प्रति ॥१०६॥

भोभोस्त्रिदशशार्दूलौ श्रूयतां वाक्यमावयोः। युवयोर्दर्शनाज्जातं ज्ञानं नौ पारमार्थिकम् ॥१०७॥

अत्र जन्मनि नावाभ्यां कृतं सुकृतमल्पकम् ।

स्मृतिर्नो जायते पूर्वकर्मणाम्वांप्रसादतः ॥१०८॥

मांसाहारौ प्राणिहिंसारतौ क्रूरान्तरेन्द्रियौ। पापाचारकुलेजातौ दर्शनेन भयप्रदौ ॥१०९॥

आवामेतादृशे लोके ह्यभूतामिति पापिनौ। केन पुण्येन युवयोर्जातं दर्शनमावयोः ॥

सारूप्यं च कुतः पुण्याद्यायावः श्रीहरेःपदम् ॥११०॥

गणावूचतुः

तीर्थेऽत्र मरणान्नूनं सुराचार्यकृते पुरा। युवयोर्दर्शनं जातं नौ च सारूप्यमद्भुतम् ॥१११॥

लक्ष्मीपतिपदप्राप्तिर्भविष्यति च वां चिरम्। तावत्पापानि गर्जन्ति ब्रह्महत्यादिकानिवै ॥११२॥

जातं न दर्शनं यावत्तीर्थस्याऽस्य बृहस्पतेः। यथा तमांसि नश्यन्ति भास्करस्योदयादिह ॥११३॥

तथा पापानि निगमोद्बोधकस्यविलोकनात्। इन्द्रप्रस्थाख्यमेतद्वैक्षेत्रमिन्द्रस्यपावनम् ॥११४॥

तेनाऽत्र पूजितो विष्णुःक्रतुभिर्बहुदक्षिणैः। तुष्टेन विष्णुनातस्मै वरोदत्तोनिशम्यताम् ॥११५॥

भोः शक्र ! तावके क्षेत्रे सर्वतीर्थमये जनाः ।

तनुं त्यक्षन्ति ये ते वै मत्तल्या हिंसकाअपि ॥११६॥

हमलोग आप दोनों को वैकुण्ठ ले जायेंगे । अपने-अपने विमान पर चढ़कर शीघ्र ही चलिये ॥१०५॥ अपने-अपने विमान पर चढ़कर किरात और सिंह दोनों आश्चर्यचकित होकर उन श्रीहरि के गणों से कहे॥१०६॥ हे देवश्रेष्ठ ! आपलोग हमदोनों की बातों को सुनें । आपलोगों का दर्शन हो जाने से हमलोगों को पारमार्थिक ज्ञान हो गया है ॥१०७॥ इस जन्म में हमदोनों ने छोटा भी पुण्य नहीं किया है । आप दोनों की कृपा से हम दोनों को पूर्व जन्म की याद आ गयी है ॥१०८॥ हमदोनों मांस खाने वाले हिंसा करने में लगे रहने वाले तथा अत्यन्त क्रूर इन्द्रियों वाले थे हमलोग पापियों के वंश में उत्पन्न तथा देखने मात्र से भयभीत करने वाले हैं ॥१०९॥ हमदोनों इस प्रकार के संसार में पापी हो गये थे । किस पुण्य के कारण हमदोनों को आपलोगों का दर्शन हुआ । किस पुण्य के कारण हमदोनों का सारूप्य को प्राप्त करके श्रीहरि के लोक में जा रहे हैं ?॥११०॥ **दोनों गणों ने कहा—** पूर्वकाल में बृहस्पति के द्वारा निर्मित इस तीर्थ में मरने के कारण आप दोनों को हमदोनों का दर्शन हुआ है ॥१११॥ आपलोगों को दीर्घ काल तक लक्ष्मीपति का धाम मिलेगा । ब्रह्महत्या आदि पाप तब तक गर्जते हैं ॥११२॥ जब तक कि इस बृहस्पति तीर्थ का दर्शन नहीं हुआ रहता है । जिस तरह लोक में सूर्योदय के होते ही अन्धकार विनष्ट हो जाता है । उसी तरह इस निगमोद्बोधक तीर्थ का दर्शन करने से पाप नष्ट हो जाते हैं । यह इन्द्रप्रस्थ नामक इन्द्र का अत्यन्त पवित्र क्षेत्र है ॥११३-११४॥ इन्द्र ने यहाँ पर बहुत अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों से भगवान् विष्णु की आराधना की थी । उससे सन्तुष्ट होकर भगवान् विष्णु ने जो वरदान दिया उसे आप लोग सुने॥११५॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे इस तीर्थमय क्षेत्र में जो मनुष्य अपने शरीर का त्याग करेंगे वे यदि हिंसक

नारद उवाच

इत्युक्त्वा तो गणश्रेष्ठौ नीत्वा तो जग्मतुःपदम् ।
हरेर्यत्रगतोभूयोविश्वाब्धौ ननिमज्जति ॥११७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये भिल्लसिंहवैकुण्ठारोहणं नाम द्विशततमोऽध्यायः ॥२००॥

दो सौ एकवाँ अध्याय

नारद उवाच

अथाऽवरुह्य तौ वृक्षात्पितापुत्रौ सुविस्मितौ। दृष्ट्वा हरिपदप्राप्तिमभूतां पापिनोरपि॥१॥
शिवशर्माऽथ विप्रेन्द्रः श्रुत्वातीर्थस्तुतिं तदा ।
गणोक्तांविष्णुशर्माणमुवाचसुतमात्मनः ॥२॥

शिवशर्मोवाच

यत्पदं न सुलभं द्विजन्मनां साधितेन तपसाऽपि लीलया ।
प्रापतुः शबरदंष्ट्रिणौ च तत्तीर्थराजमहिमा विलोक्यताम् ॥३॥
जन्मनः प्रभृति तावदामृतेः पापिनावपि च यत्प्रभावतः ।
जग्मतुः सुत ! हरेः सरूपतामस्य तीर्थवृषभस्य का स्तुतिः ॥४॥
शुद्धसत्त्वमपि रूपमैश्वरं क्वाऽम्बुजन्मजानिदेवदुर्लभम् ।
तामसौ क्व मृगनाथभिल्लकौ किंतु तीर्थमिदमद्भुतक्रियम् ॥५॥

भी हों तो मेरे सदृश हा जायेंगे ॥११६॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहकर वे दोनों गण उन दोनों को लेकर श्रीहरि के उस लोक में चले गये जहाँ जाने वालों का संसार में जन्म नहीं होता है ॥११७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में भिल्ल तथा सिंह के वैकुण्ठ प्राप्ति का वर्णन करने वाले दो सौवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२००।।

इन्द्रप्रस्थ के माहात्म्य वर्णन पूर्वक शिवशर्मा के पूर्वजन्म में वैश्यकुल के वृत्तान्त का वर्णन

नारदजी ने कहा— अत्यन्त विस्मित वे दोनों पिता पुत्र वृक्ष से उतरकर तथा पापियों को भी श्रीहरि की प्राप्ति देखकर ॥१॥ विप्र श्रेष्ठ शिवशर्मा ने गणों द्वारा कही गयी तीर्थ की प्रशंसा सुनकर अपने पुत्र विष्णुशर्मा से कहे ॥२॥ **शिवशर्मा ने कहा—** ब्राह्मण के द्वारा तपस्या के द्वारा भी जिस पद की प्राप्ति सुलभ नहीं है उसको शबर और सिंह ने बड़ी आसानी से प्राप्त कर लिया । यह इस तीर्थ को महिमा को देखो ॥३॥ जन्म से लेकर मरण पर्यन्त पाप करने वाले जिसके प्रभाव से हे पुत्र ! श्रीहरि की सरूपता

तात भोः ! पतति वेधसः पदाज्जन्तुरन्तमधिगम्य कर्मणाम् ।
अत्र देवगुरुनिर्मिते मृतिं प्राप्य माधवपदान्न विच्युतिः ॥६॥

नारद उवाच

एवं प्रत्यक्षमालोक्य माहात्म्यं च द्विजोत्तमः ।
तीर्थस्याऽस्यगुरोराजन्स्नातंतत्रप्रचक्रमे ॥७॥

मुखदन्तपदानां स कृत्वा शुद्धिं च चेतसः । पञ्चकच्छः शिखाबन्धोपग्रहीमाधवंस्मरन् ॥८॥
अश्वक्रान्तेतिश्लोकस्य पाठने तटमृत्तिकाम् । स्पृशंस्तयैव विदधत्तिलकंजलमाविशत् ॥९॥
तत्र प्रवाहाभिमुखो निमज्जन्पुनरुत्थितः । पुनर्मग्नो हरिं स्मृत्वा गङ्गां च जनपावनीम् ॥१०॥

अयोध्याद्याः पुरीः सप्त पुनरुत्थाय संस्मरन् ।
पुनर्ममज्ज सलिले गोविन्दार्पितमानसः ॥११॥
कृत्वा यथाविधिस्नानं धौतवस्त्रे च पर्यधात् ।
बहिरागत्य तिलकं चक्रे च द्विजसत्तमः ॥१२॥

करपादशिखासूत्रैर्दर्भाश्च विदधद्वशी। सन्ध्यां चकार विधिवत्तर्पणं त्रिविधं तथा ॥१३॥
सूर्याय कुसुमैर्दत्त्वा सजलैरर्घमादृतः । शिरोबद्धाञ्जलिपुटो नमश्चक्रे द्विजोत्तमाः ॥१४॥
आवाहनादिनैवद्यपर्यन्तमथ विप्रराट् । जगत्पूज्यपदाब्जस्य विष्णोः पूजामचीकरत् ॥१५॥
कृतक्रियः सूपविष्टस्तादृशं सुतमात्मनः । जगाद संस्मरन्पूर्वजन्मकर्माणि कृत्स्नशः ॥१६॥

को प्राप्त कर लिए ऐसे इस श्रेष्ठ तीर्थ की क्या प्रशंसा की जाय ॥४॥ कहाँ तो जलजन्य देवताओं भी दुर्लभ शुद्ध सत्त्वमय ऐश्वर्य से सम्पन्न रूप और कहाँ तामस सिंह और भिल्ल किन्तु यह तीर्थ की अद्भुत क्रिया है ॥५॥ हे तात ! कर्मों का अन्त हो जाने पर जीव ब्रह्माजी के पद से भी भ्रष्ट हो जाता है और यहाँ पर देवताओं के गुरु बृहस्पति निर्मित तीर्थ में मृत्यु प्राप्त करके भगवान् माधव के लोक के कभी विच्युति नहीं होती है ॥६॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से माहात्म्य को प्रत्यक्ष देखकर हे राजन् ! इस तीर्थ में स्नान करना उन्होंने प्रारम्भ किया । वे दाँत, नख और चरणों की ठीक से शुद्धि करके पञ्च कच्छ धोती पहने हुए शिखा को बाँधकर श्रीभगवान् का स्मरण करते हुए ॥७-८॥ **अश्वक्रान्ते०** इत्यादि मन्त्र से तट की मिट्टी का स्पर्श करके उसी से तिलक किए और उसके बाद वे जल में प्रवेश किए ॥९॥ वहाँ जल प्रवाह के सम्मुख डुबकी लगाकर उठे । फिर मग्न होकर श्रीहरि का स्मरण करके फिर लोगों को पवित्र करने वाली गङ्गा का स्मरण किए ॥१०॥ फिर उठकर अयोध्या आदि सात पुरियों का स्मरण करते हुए भगवान् गोविन्द का स्मरण करके फिर डुबकी लगाये ॥११॥ विधि पूर्वक स्नान करके वे धौत वस्त्र पहने इसके बाद बाहर आकर वे द्विजश्रेष्ठ तिलक लगाये । जितेन्द्रिय होकर हाथ पैर शिखा, सूत्र तथा कुशों से सन्ध्या किए फिर विधि पूर्वक तीनों प्रकार के तर्पण किए ॥१२-१३॥ उन्होंने आदर पूर्वक जल एवं पुष्प से सूर्यार्घ्य दिया । फिर वे हाथ जोड़कर उसे शिर से लगाकर सूर्य को नमस्कार किए ॥१४॥ उसके पश्चात् हे विप्रराज ! आवाहन से लेकर नैवेद्य पर्यन्त जगत् पूज्य चरण कमल वाले भगवान् विष्णु की पूजा किए॥१५॥ नित्य कर्म करके अच्छी तरह बैठे हुए वे अपने पुत्र को अपने पूर्वजन्म के कृत्यों को स्मरण करते

शिवशर्मोवाच

विष्णुशर्मन्नतेमिथ्यावाक्यं तात यतः स्मृतिः ।
अत्र स्नानेन मे जातापूर्वेषांजन्मकर्मणाम् ॥१७॥
आकर्ण्य महाभाग ! कथयामि तवाऽग्रतः ।
पुराहमन्वयेजातो विशां धनिकधर्मिणाम् ॥१८॥
पिता मे शरभो नाम्ना कान्यकुब्जेपुरेऽवसन् ।
वाणिज्येनार्जयन्वित्तं भूरिधर्मधनाश्रितः ॥१९॥
व्यतीतस्तु महान्कालस्तस्य नाऽभवदात्मजः ।
जरागृहीतदेहस्य तच्चिन्तातुरचेतसः ॥२०॥
अचिन्तयदहोरात्रमिति वैश्यवरस्तदा। विना सुतेन मे व्यर्थं धनं भूर्यपि संचितम् ॥२१॥
ऋते सुतमृणी लोके पितृणां धनवानपि। सजलोऽपि विनावर्षं चातकानां यथाघनः ॥२२॥
पुमाञ्जयतिसन्तत्या विश्वं धर्मधुरीणया । शक्तयात्रिविधया राजा विपक्षमिव दुर्जयम् ॥२३॥
प्रीणाति सन्ततिः शुद्धा सुमनः पितृमानवान् ।
मित्रप्रत्यर्थ्युदासीनान्सूनृता वाग्यथेरिता ॥२४॥
उदयस्थेन पुत्रेण वर्द्धते स्वयशः पितुः । निर्मले द्विजराजेन नीरंनीरनिधेरिव ॥२५॥
तस्माद्यतेत्सुतोत्पत्त्यै शरीरेण धनेन वा। तमृते हि द्वयं व्यर्थं जनानां तडिदायुषाम् ॥२६॥
एवंचिन्तयतस्तस्य गृहे मुनिवरस्तदा । देवलोऽतिन्द्रियज्ञानो वरन्दातुं समाययौ ॥२७॥

बतलाये॥१६॥ **शिवशर्मा ने कहा—** हे तात ! तुम्हारी बात मिथ्या नहीं है क्योंकि यहाँ स्नान करने से मुझे भी पूर्व जन्मों के कर्मों की याद आ गयी है ॥१७॥ हे महाभाग ! आप सुनें उसे मैं तुम्हारे समक्ष कह रहा हूँ । पूर्व जन्म में मैने धनिक और धार्मिक वैश्यों के वंश में जन्म लिया ॥१८॥ मेरे पिता का नाम शरभ था वे कान्यकुब्ज में रहते थे । व्यापार से धन अर्जित करके उन्होंने धन के द्वारा बहुत धर्म किया ॥१९॥ उनके जीवन का बहुत बड़ा समय बीत गया उनको कोई पुत्र नहीं हुआ । शरीर के वृद्ध हो जाने पर उनको पुत्र की चिन्ता हुयी ॥२०॥ वे वैश्य श्रेष्ठ दिन-रात सोचते थे कि पुत्र के बिना बहुत अधिक संचित धन व्यर्थ है ॥२१॥ पुत्र के वही पर धनवान् भी पितृऋण से युक्त होता है । जिस तरह नहीं बरसने वाला जल भरा मेघ भी जैसे चकोर के लिए व्यर्थ होता है, उसी तरह ॥२२॥ मनुष्य विश्व धुरीण सन्तान के द्वारा विश्व को जीत लेता है । उसी तरह जिस तरह राजा तीनों प्रकार की शक्ति के द्वारा दुर्जय विपक्ष को जीत लेता है ॥२३॥ शुद्ध सन्तान, पिता वाला होकर पिता को प्रसन्न करता है । जिस तरह कही गयी सुन्दर वाणी मित्र, शत्रु तथा उदासीनों को भी प्रसन्न करती है ॥२४॥ पुत्र से पिता का यश उसी तरह बढ़ता है जिस तरह उदयस्थ निर्मल चन्द्रमा के द्वारा समुद्र का जल वढ़ता है ॥२५॥ अतएव पुत्र की प्राप्ति के लिए शरीर तथा धन से प्रयास करना चाहिए । पुत्र के विना लोगों की विजली के समान क्षण भङ्गुर आयु वाले मनुष्यों का धन और शरीर व्यर्थ है ॥२६॥ इस तरह से चिन्ता करने वाले उनके घर पर अतीन्द्रिय वस्तुओं को जानने वाले मुनिश्वर देवल उनको वरदान देने के लिए आये ॥२७॥ इस

आगतं तं समालोक्य प्रत्युत्थायाऽऽसनात्पिता ।
दत्त्वाऽर्घमथ पाद्यं च ववन्दे शिरसा मुनिम् ॥२८॥
उपवेश्याऽऽसने दत्ते स्वहस्तेन पिता मम। पप्रच्छ च मुनिश्रेष्ठं देवलं देवदर्शनम्॥२९॥
स्वागतंतु मुनिश्रेष्ठ ! शमस्ति भवतांकुले । तपःस्वाध्यायनियमा निष्प्रत्यूहा भवन्तिच॥३०॥
कालेचाऽतिथयः कच्चिदायान्ति भवदाश्रमे ।
कच्चिदाश्रमवृक्षावःफलन्ति मनसेप्सितम् ॥३१॥
व्याघ्रादयोन नकुर्वन्ति कच्चिद्वैरं मृगादिभिः ।
त्वदीयाश्रममभ्येत्य भ्रातरो भ्रातृभिर्यथा ॥३२॥
तवाऽटनं भुवि मुदे गृहिणामन्यथा कथम्। तेषां गृहाधिमग्नानां दर्शनं क्व भवादृशः॥३३॥
हरिपादरजोबुद्धेः कामं कामो न कुत्रचित्। मुने ! तव तथाप्याशु हेतुमागमने वद॥३४॥

शिवशर्मोवाच

इत्युक्तस्तेन स मुनिर्देवलो देवपूजितः। अब्रवीत्तन्मनोभावं ज्ञातुकामो विशामतिम् ॥३५॥

देवल उवाच

वैश्यवर्य ! त्वया भूरि धनं धर्मेण सञ्चितम् ।
करोषि येन धर्मज्ञ ! नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥३६॥
आदरं राजसदसि धनेन लभते नरः। सुभटः शत्रुसङ्ग्रामे विक्रमेण यथा जयम्॥३७॥
गृहस्थस्तु धनं प्राप्य पराम्पुष्टिं व्रजत्यलम्। शरत्परिणतं सस्यमनड्वानिव विट्पते !॥३८॥
धनिनं न विमुञ्चन्ति बन्धवोऽन्ये च ये जनाः ।
मधुमत्सुमनोयुक्तं पादपं मधुपाइव ॥३९॥

तरह से आये हुए उनको देखकर अपने आसन से उठकर मेरे पिता मुनिश्रेष्ठ देवदर्शन देवल से पूछे ॥२८-२९॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है आपके कुल में शान्ति तो है । तपस्या, स्वाध्याय आदि के नियम बिना विघ्न के होते हैं न ॥३०॥ क्या आपके आश्रम में समय-समय से अतिथि आते हैं ? क्या आपके आश्रम के वृक्ष आपके मनोनुकूल फलते हैं ?॥३१॥ वहाँ मृगों आदि से व्याघ्र आदि वैर तो नहीं करते हैं ? आपके आश्रम में आकर जिस तरह एक भाई से प्रेम करता उसी तरह वे रहते हैं न ॥३२॥ आपका पृथिवी पर भ्रमण आनन्दकारी होता है । अन्यथा गृहस्थों के घर आप कैसे आते ? गृहरूपी व्याधि में मग्न गृहस्थों को आप जैसे लोगों का दर्शन कैसे होता ?॥३३॥ हे श्रीहरि के चरणों की धूलि में अपनी वुद्धि को लगाये रखने वाले ! आपकी काम्य वस्तुओं की कामना होती ही नहीं है । तथापि हे मुने ! आप अपने आगमन का प्रयोजन बतलायें ॥३४॥ **शिवशर्मा ने कहा—** इस तरह मेरे पिता के कहने पर देवताओं से पूजित देवल महर्षि उस वैश्य वर्य के मनोभावों को जानने की इच्छा से बोले ॥३५॥ **देवल महर्षि ने कहा—** हे वैश्य वर्य ! आपने धर्म पूर्वक बहुत अधिक धन सञ्चित किया है । उसीसे आप नित्य तथा नैमित्तिक क्रियाओं को करते हैं ॥३६॥ मनुष्य धन से राजा की सभा में समादर प्राप्त करता है । अच्छे वीर शत्रु के साथ संग्राम करने में पराक्रम के द्वारा विजय प्राप्त करते हैं ॥३७॥ गृहस्थ भी धन प्राप्त करके अत्यन्त पुष्टि को प्राप्त करता है । हे वैश्यवर्य ! यह सब उसी तरह होता है जैसे शरत्काल में बढ़े

धनाभावेन गृहिणां कृशत्वमुपजायते। सर्वतो ग्रीष्मसमये त्वम्भसां सरसामिव ॥४०॥
तद्धनं वर्तते भूरि गृहे तव विशांपते !। कुतः कृशत्वमङ्गानां गोप्यं चेन्न वदाऽद्य मे॥४१॥

वैश्य उवाच

हितोपदेशा निरता भवन्तः पितरो यथा । गोपनीयं भवद्भ्यः किं मादृशैः पुत्रतां गतैः ॥४२॥
त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ ! सर्वतोऽस्ति शिवं मम ।
वार्द्धकेऽपि सुताभावो दुःखमेकमिदं मम ॥४३॥
तस्मात्कृशत्वमङ्गानां विद्धि मे मुनिपुङ्गव !। बिभेम्यहं पितृऋणाद्यतोऽधः पतनं नृणाम्॥४४॥
तमुपायं कुरु मुने ! येन स्यां सुतवानहम्। किञ्चित्कर्तुमशक्यं न भूतलेऽत्र भावदृशैः ॥४५॥

शिवशर्मो उवाच

इत्याकर्ण्यवचस्तस्य वैश्यवर्यस्य देवलः । मनःक्षणं स्थिरं कृत्वा दध्यौ मीलितलोचनः ॥४६॥
सन्ततेर्मत्पितुर्दृष्ट्वा प्रतिबन्धस्य कारणम् । देवलोऽतीन्द्रियज्ञानीबभाषेकारयन्स्मृतिम् ॥४७॥

देवल उवाच

एकदा तु पुरा वैश्य तवेयं धर्मचारिणी । यं चकार स्वचित्ते तं कथयामि मनोरथम्॥४८॥
गुर्विणी यद्यहं गौरि भवेयं शम्भुवल्लभे ! ।
तदा त्वां तोषयिष्यामि षड्रसान्वितभोजनैः ॥४९॥
धूपदीपकमालाभिस्ताम्बूलैर्नृत्यवाद्यकैः । तन्त्रीमुखोद्गतैर्गीतैर्नानाविधविलेपनैः ॥५०॥
एवं प्रतिश्रुत्य पुरः सखीनां दयिता तव । प्रतीक्षमाणा तं कालं तस्थौ तद्भक्तिसंयुता॥५१॥

हुए घास से सांड पुष्ट होता है ॥३८॥ दूसरे बान्धव भी धनिक को उसी तरह नहीं त्यागते हैं जिस तरह पराग से पूर्ण पुष्प वाले वृक्ष को भौंरे नहीं त्यागते हैं ॥३९॥ धन का अभाव होने पर गृहस्थ दुबले हो जाते हैं जिस तरह ग्रीष्म काल में सरोवर सुख जाते हैं ॥४०॥ हे वैश्यवर्य ! आपके घर में धन तो बहुत है । आपके अङ्ग क्यों दुबले हैं यह यदि गोप्य न हो तो मुझे बतलायें ॥४१॥ **वैश्य ने कहा—** आप तो पिता के समान सदा हितोपदेश करते रहते हैं । हम जैसे लोग तो आपके पुत्र हैं आपके लिए गोप्य क्या होगा ?॥४२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से मेरा सब तरह से कल्याण है । मुझे एक ही कष्ट है कि बृद्धता आ जाने पर भी मेरा पुत्र नहीं है ॥४३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसी के कारण मेरे अङ्ग दुर्बल हैं । मैं पितृऋण से डरता हूँ क्योंकि उससे मनुष्यों का पतन हो जाता है ॥४४॥ हे मुने ! आप उसी उपाय को करें जिससे कि मुझे पुत्र हो । आप जैसे लोगों के लिए पृथिवी पर कुछ भी अशक्य नहीं है ॥४५॥ **शिवशर्मा ने कहा—** इस तरह से उस वैश्यवर्य की बातों को सुनकर क्षण भर अपने मन को स्थिर करके आँखे मूँदकर ध्यान करके देवल महर्षि ॥४६॥ मेरे पिता की सन्तान के प्रतिबन्धक का साक्षात्कार करके अतीन्द्रिय द्रष्टा महर्षि देवल बोले ॥४७॥ **देवल महर्षि ने कहा—** हे वैश्य ! पहले एक बार आपकी यह पत्नी ने जो अपने मन में मनोरथ किया उसे मैं बतलाता हूँ ॥४८॥ हे शाम्भुबल्लभे गौरी देवि ! यदि मैं गर्भवती हो जाती हूँ तो उस समय मैं छह रसों वाले भोजन से तृप्त करूँगी ॥४९॥ धूप, दीप, माला, ताम्बूल तथा वीणा प्रधान नृत्य, वाद्य तथा गीतों से तथा अनेक प्रकार के विलेपनों से आपको प्रसन्न करूँगी ॥५०॥ इस तरह से सखियों के समक्ष प्रतिज्ञा करके आपकी पत्नी गौरीजी की भक्ति से युक्त होकर

तस्मिन्नेवाऽभवद्गर्भो मासेऽस्या योषितस्तव। ऊचुरेनां ततः सख्यः सर्वाः सस्नेहचेतसः ॥५२॥
यस्त्वया वाञ्छितो गर्भो गौर्या सम्प्रतिपादितः ।
अतः प्रतिश्रुतं देव्याः पूजनं सुभगे ! कुरु ॥५३॥
नो चेद्विकाराद्भवति विघ्नतु तदनुष्ठितात् । तोषितारोषिताश्चाऽत्रदेव्यो हि वरशापदाः ॥५४॥
सखीभिरिति ते भार्या कथितेयं मुदान्विता ।
त्वामुवाच महाभागा विनयेन पतिव्रता ॥५५॥
नाथ ! पूजयितुं गौरीं वाञ्छाम्यखिलकामदाम् ।
यत्प्रसादादहं जाता वाञ्छितार्थवती प्रभो ! ॥५६॥
वैश्यवर्य ! त्वमेवैतच्छ्रुत्वाऽस्या वचनं शुभम् ।
अमन्यत गर्भवतीमेनां निजगृहेश्वरीम् ॥५७॥
मोदमानश्च नितरां तेन सद्यो भवानपि। भृत्यानाज्ञापयामास पूजावस्तूपपादने ॥५८॥
तैरानाय्यसमस्तानि वस्तूनि भवता ततः। अस्यैदत्तानि मध्यन्नद्राक्षागन्धादिकान्यपि॥५९॥
ततो निजसखीः सर्वा आहूयेयमिदं जगौ। सख्यः समस्तासामग्री समानीताऽम्बिकार्चने॥६०॥
नीत्वा पूजोपकरणं यूयं याताऽम्बिकालयम् ।
सन्तोषयत तां देवीं पूजया विधिदृष्ट्या ॥६१॥
गुर्विणीतिकुलेऽस्माकं न निर्याति गृहाद्बहिः ।
अतोऽहं नाऽऽगमिष्यामि यूयं यात तदर्चने ॥६२॥
इत्याज्ञप्तास्तु ताः सख्यो नीत्वोपकरणं ययुः ।
अम्बिकालयमुन्मत्तभ्रमद्भ्रमरकेतनम् ॥६३॥

गर्भकाल की प्रतीक्षा करने लगी ॥५१॥ उसी मास में तुम्हारी पत्नी को गर्भ हो गया । उसकी सखियों ने स्नेह पूर्ण मन से उससे कहा ॥५२॥ तुमने जिस गर्भ की इच्छा की गौरी देवी ने उसको पूरा कर दिया। अतएव हे सुभगे ! तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो ॥५३॥ अन्यथा उनके मन में विकार आ जाने पर उसको विघ्न युक्त बना देंगी देवता सन्तुष्ट होकर वरदान देते हैं और रुष्ट होकर शाप दे देते हैं ॥५४॥ सखियों के द्वारा इस तरह कहे जाने पर उस पतिव्रता ने उस बात को आपसे कहा ॥५५॥ हे नाथ ! सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली गौरी की मैं पूजा करना चाहती हूँ । उनकी कृपा से जो मैंने चाहा हे प्रभो! वह मुझे मिल गया ॥५६॥ हे वैश्यवर्य ! तुम पत्नी के इस शुभवचन को सुनकर उसे गर्भवती मान लिए॥५७॥ अत्यन्त प्रसन्न होकर आपने शीघ्र ही नौकरों को पूजा की वस्तु को लाने के लिए कहा ॥५८॥ वे सब भी सभी वस्तुओं को लाकर आपके द्वारा आपकी पत्नी को दिलवाया मधु, अन्न, द्राक्षा तथा चन्दन आदि को भी दिलवाया ॥५९॥ उस समय उसने अपनी सखियों को बुलाकर कहा । हे सखियों ! अम्बिका की पूजा की सारी सामग्री आ गयी है । तुमलोग विधान पूर्वक पूजा करके गौरी देवी को सन्तुष्ट करो ॥६०-६१॥ हमारे वंश में गर्भवती घर से बाहर नहीं निकलती है । इसीलिए मैं तो नहीं जाऊँगी तुमलोग पूजा करने के लिए चली जाओ ॥६२॥ इस तरह से आज्ञा प्राप्त करके वे सभी सखियाँ सारे

कोकिलाकुलसंकेलिसहकारकुलाकुलम् । हंससारसचक्राह्वमण्डितं स्वच्छसारसम्॥६४॥
महादेवगुणालापिशुकसारिसमावृतम् । हारयोग्यलतासेके तत्परोमासखीधरम् ॥६५॥
उमापतेरुमापादन्यसपूतमहीतलम् । स्फटिकोपलसंबद्धजलाधारसुरद्रुमम् ॥६६॥
पार्वतीपतिसंनाट्यगायद्गन्धर्वनादितम् । मन्दानिलमनाग्धूतचूतचम्पककोरकम् ॥६७॥
नृत्यन्मयूरनिर्ह्लादप्रतिनादिलतागृहम् । तल्लीलाचलविद्योतमानं रत्नलसत्प्रभम् ॥६८॥

तत्र गत्वा गिरिसुतां प्रणेमुस्ताः सभर्तृकाम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य ततो भत्तया तां च बभाषिरे ॥६९॥
जगदम्ब ! नमस्तुभ्यं शन्नो देहि शिवप्रिये ! ।
त्वत्पूजार्थे समानीतो बलिरेष प्रगृह्यताम् ॥७०॥

वैश्यस्तुशरभो नाम्ना तस्यास्तिललिताङ्गना । तयाऽभिलषितोगर्भस्तत्प्राप्तौतवपूजनम् ॥७१॥

त्वत्प्रसादादभूत्तस्याः सगर्भः शम्भुवल्ल्भे ! ।
त्वत्पूजनाय प्रहितो बलिरस्माभिरेषकः ॥७२॥

तस्याकुले गर्भवती न निरेतिबहिर्गृहात् । अतः सा नाऽऽगता देवि ! प्रसीदैनं गृहाण वै॥७३॥

इत्युक्त्वा तां तदा वैश्य ! त्वस्त्रीसख्यस्तु तं बलिम् ।
समर्पयित्वा विधिवदानर्चुश्चन्दनादिभिः ॥७४॥
प्रतिवाक्यमलब्ध्वा ता गौर्याः प्रत्याययुर्गृहम् ।
निजसख्यै समाचख्युर्विषण्णां तां शिवप्रियाम् ॥७५॥

उपकरणों को लेकर जहाँ पर उन्मत भौंरे मँड़रा रहे थे उस अम्बिका के मन्दिर में गयीं । वहाँ पर कोयलें सहकार वृक्षों पर क्रीड़ा कर रही थीं स्वच्छ सरोवर हंस, सारस और चकवा से अलंकृत था । वहाँ पर शुक पक्षी तथा मैनाएँ भगवान् शिव के गुणों को गा रहे थे । हार के योग्य लता से सींचने में उमा की सखियाँ लगी थीं ॥६३-६५॥ वहाँ की भूमि शिवजी तथा पार्वतीजी के चरण रखने से पवित्र हो गयी थी । देव वृक्षों का जलाधार स्फटिक मणि से बना था ॥६६॥ पार्वती पति के सुन्दर नाट्य को गन्धर्व गा रहे थे। धीरे-धीरे चलने वाली वायु आम तथा चम्पा की कलियों को थोड़ा-थोड़ा हिला रही थी ॥६७॥ नाचते हुए मयूर की ध्वनि से लता गृह प्रतिध्वनित हो रहा था । उसकी लीला से रत्नों की कान्ति चमक उठती थी॥६८॥ वहाँ पर जाकर उन सबों ने शिवजी तथा पार्वतीजी को प्रणाम किया । उनकी दक्षिणा करके भक्ति पूर्वक उन सबों ने कहा ॥६९॥ हे जगदम्ब ! हे शिवजी की प्रियतमें ! आप हमलोगों का कल्याण करें । आपकी पूजा करने के लिए इन सामग्रियों को हम लायीं हैं । आप इस पूजा को स्वीकार करें॥७०॥ शरभ नाम के वैश्य की सुन्दर पत्नी ने जो गर्भ चाहा था वह आपकी पूजा से प्राप्त है ॥७१॥ हे शम्भु बल्लभे ! आपकी कृपा से वह गर्भवती हो गयी है । उसने आपकी पूजा के लिए इस बालि को हमलोगों द्वारा भेजा है ॥७२॥ उसके वंश में गर्भिणी घर से बाहर नहीं निकलती है । हे देवि ! इसी लिए वह नहीं आयी है आप प्रसन्न होकर इसे स्वीकार करें ॥७३॥ इस तरह से गौरी देवी को कहकर तुम्हारी पत्नी की सखियाँ उस बलि को उन्हें समर्पित किया और विधि पूर्वक उनकी चन्दन आदि से पूजा कीं ॥७४॥ गौरी

तासामाकर्ण्य वचनमिति वैश्य ! तवऽबला ।
उन्मनाश्चिन्तयामास कुतो गौरीनपिप्रिये ॥७६॥
साजानातियथाभक्तिस्ततपूजा याकृतामया । तादृशीनांकिमज्ञातंबाह्यं चाभ्यन्तरंनृणाम् ॥७७॥
न गताऽहं ततस्तत्र तज्जनात्यपि कारणम् । मया दत्तेन बलिना कुतः सा न तुतोष वै ॥७८॥
नाऽहमन्यत्प्रजानामि तदतोषे हि कारणम् । ऋतेमह्नतेस्तत्र नूनं रम्ये तदालये ॥७९॥
यदतीतं नतच्छक्यमन्यथाकर्तुमद्य वै । गर्भान्मुक्तागमिष्यामि तत्पूजायै तदालये ॥८०॥
नमस्तस्यै महादेवभार्यायै सा करोतुशम् । इत्युक्त्वा दधतीगर्भं तस्थौ वैश्य ! तवाऽङ्गना ॥८१॥

शिवशर्मोवाच

विष्णुशर्मन्निदं पूर्ववृत्तमाज्ञाय मत्पिता । पप्रच्छ मुनिशार्दूलं देवलं ज्ञानवत्तरम् ॥८२॥

वैश्य उवाच

मुने ! यथा प्रतिश्रुता पूजा ते स्नुषया तया ।
तथैवाऽकारि पार्वत्या विषादेकारणं वद ॥८३॥
यतोऽसौ न गता तत्र तज्जानाति शिवा स्वतः ।
सखीभ्यश्चोक्तमस्यास्तद्विषण्णा सा कुतोऽभवत् ॥८४॥

देवल उवाच

वैश्यवर्य ! श्रृणुष्वेदं कारणं कथयामि ते । यतस्तस्या विषादोऽभूत्पार्वत्या गर्भनाशकः ॥८५॥
निवृत्तासु सखीष्वस्याः सम्पूज्य स्कन्दमातरम् ।
विजया पार्वतीम्प्राह कौतूहलसमन्विता ॥८६॥

देवी के प्रत्युत्तर को प्राप्त किए बिना ही वे अपने घर आ गयीं । और उन सबों ने उदास हुयी गौरी की आपकी पत्नी को बतलाया ॥७५॥ उन सबों की इस वचन को सुनकर तुम्हारी पत्नी उदास होकर वह सोचने लगी किस कारण से गौरी देवी प्रसन्न नहीं हुयीं ॥७६॥ वह नहीं जानती थीं कि किस तरह से मैंने पूजा की है । उनको क्या अज्ञात था । वे तो मनुष्यों के भीतर और बाहर की बातों को जानती हैं ॥७७॥ मैं वहाँ नहीं गयी उसका कारण भी वे जानती हैं । मेरे द्वारा दी गयी पूजा से वे क्यों प्रसन्न नहीं हुयीं॥७८॥ उनके असन्तोष का मैं दूसरा कोई कारण नहीं जानती हूँ केवल मैं उनके सुन्दर गृह में नहीं गयी॥७९॥ जो बीत गया उसकी पूर्ति आज तो नहीं की जा सकती है । जब मैं गर्भ से मुक्त होऊँगी तो उनके पूजन के लिए उनके मन्दिर में जाऊँगी ॥८०॥ उस महादेव की पत्नी को नमस्कार है वे मेरा कल्याण करें । इस तरह से कहकर उसने गर्भ धारण किया ॥८१॥ **शिवशर्मा ने कहा**— हे विष्णुशर्मन् ! इस वृतान्त को जानकर मेरे पिता ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ देवल ऋषि से पूछे ॥८२॥ **वैश्य ने कहा**— हे मुने ! आपकी पुत्र वधू ने जैसी प्रतिज्ञा की थी उसने वैसा ही किया, फिर भी पार्वती के विषाद का कारण क्या था ? उसे आप बतलाएँ ॥८३॥ चूकि वह वहाँ नहीं गयी और उसको पार्वतीजी जानती थी । उसने सखियों से पूछा कि पार्वती के विषाद का कारण है ॥८४॥ **देवल महर्षि ने कहा**— हे वैश्यवर्य ! आप सुनें, उनके विषाद का कारण मैं बतलाता हूँ । जिसके कारण पार्वतीजी का गर्भ नाशक विषाद हुआ॥८५॥

विजयोवाच

गिरिजे ! श्रद्धयातुभ्यं दत्तोऽमूभिरयं बलिः ।
मानुषीभिः कुतःप्रीतानाऽभवस्त्वंवरानने ! ॥८७॥

धूपदीपकनैवेद्यैः पूजिता तोषहेतवे । प्रत्युताकारणं देवि त्वं विषादं कुतो गता ॥८८॥

देवल उवाच

इत्याकर्ण्य वचःसख्या देवी देववरार्चिता । अब्रवीद्विजयां वैश्य विषादे कारणंसखीम् ॥८९॥

राजोवाच

विजये ! सखि ! जानामि वैश्यभार्यांगृहाद्बहिः ।
निर्गन्तुमक्षमां गर्भधारणं स्वविवेकतः ॥९०॥

समागतास्तु तत्सख्यो मत्पूजायैतदीरिताः । मादृशो न च गृह्णन्ति परहस्तकृतंबलिम् ॥९१॥
तत्पतिश्चेत्समायास्यदभविष्यत्तदा शिवम् । तस्यास्तु मदवज्ञातो गर्भपातो भविष्यति॥९२॥
यद्व्रतं पूजनं यच्च कर्तुं न क्षमतेऽङ्गना । तत्कारयति नाथेन न भङ्गःस्यात्तयोःसखि !॥९३॥
अथवा विप्रमुख्येन पृष्ट्वा पतिमनन्यधीः । यतः स्वयमनागत्य तत्कृतं मे तयाऽर्चनम् ॥९४॥
न कारितं च भर्त्राऽतोभवितादोहदोऽफलः । यद्युभौ तो समागत्य दम्पतीश्रद्धयापुनः ॥
मां पूजयिष्यतः पुत्रो भविष्यति तदा तयोः ॥९५॥

देवल उवाच

स शापो नत्वया वैश्य नचैव तव भार्यया। श्रुतः सखीभिरस्या नो प्रसादश्च तयाऽर्पितः ॥९६॥
तयोरज्ञानतो वैश्य ! युवयोर्नाऽभवत्सुतः । अजानतोः प्रतिविधिं परत्राऽत्रसुखप्रदम् ॥९७॥

सखियों के चली जाने पर स्कन्द की माता की पूजा करके विजया ने कौतूहल से युक्त पार्वतीजी से कहा॥८६॥ **विजया ने कहा—** हे गिरिजे ! इन सबों ने श्रद्धा पूर्वक इस बलि को प्रदान किया है । सुन्दरि उन मानुषियों से तुम प्रसन्न क्यों नहीं हुयी ॥८७॥ तुम्हारे सन्तोष के लिए उन सबों ने धूप, दीप तथा नैवेद्य से तुम्हारे सन्तोष के लिए पूजा की फिर भी बिना कारण के तुम क्यों विषण्ण हो गयी ॥८८॥ **देवल महर्षि ने कहा—** अपनी सखी के इस वचन को सुनकर श्रेष्ठ देवता पार्वतीजी ने विजया से वैश्य के प्रतिविषाद का कारण बतलाया ॥८९॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे विजये ! मैं जानती हूँ कि वैश्य की पत्नी गर्भ धारण के बाद घर से बाहर निकलने में आसमर्थ है ॥९०॥ उसके द्वारा प्रेरित होकर उसकी सखियाँ आयीं । किन्तु मैं दूसरे के द्वारा प्रदत्त बलि को नहीं ग्रहण करती हूँ ॥९१॥ यदि उसके पति ही आते तो उसका कल्याण होता किन्तु मेरी अवहेलना करने के कारण उसका गर्भपात हो जायेगा ॥९२॥ जो स्त्री व्रत अथवा पूजा करने में समर्थ नहीं होती है । वह अपने पति से उसे करवाये तो उन दोनों का भङ्ग नहीं होता है ॥९३॥ अथवा ब्राह्मण के द्वारा अनन्य बुद्धि से अपने पति से पूछकर करे चूकि स्वयम् न आकर उसने उस पूजा को नहीं कराया ॥९४॥ उसने अपने से भी नहीं कराया अतएव उसका गर्भ विफल हो जायेगा । यदि वे दोनों पति-पत्नी आकर श्रद्धा पूर्वक मेरी पूजा करेंगे उसके बाद उन दोनों को पुत्र होगा ॥९५॥ **देवल महर्षि ने कहा—** हे वैश्य ! न तो तुम और न तुम्हारी पत्नी इस शाप को सुनकर उसको प्रसन्न नहीं किए ॥९६॥ आप दोनों के अज्ञान से हे वैश्य ! तुम दोनों को पुत्र

एतत्ते कथितं वैश्य ! सन्तानाभावकारणम् ।
वसिष्ठेन यथापूर्वं दिलीपस्य महीपतेः ॥९८॥
तच्छ्रुत्वा स यथा राजा नन्दिनीं समतोषयत् ।
सस्त्रीकस्त्वं तथा वैश्य ! गौरीं तोषय कामदाम ॥९९॥
सा यथाऽऽराधिता राज्ञे दिलीपाय ददौ सुतम् ।
आराधय तथा गौरीं त्वं सा तुभ्यं च दास्यति ॥१००॥

वैश्य उवाच

दिलीप इति भूपः कः का चसानन्दिनी मुने ! ।
यामाराध्य सुतं लेभे स भूयोभूपसत्तमः ॥१०१॥
महेशादिसुरान्मुक्त्वा त्रिवर्गफलदायिनः । आराधिता कुतः सैव सुतार्थं तेन भूभुजा ॥१०२॥
एतत्सर्वं समाख्याहि मुने ! यत्पृष्टवानहम् । श्रुत्वा ततो गिरिसुतां सेविष्ये सहभार्यया ॥१०३॥

शिवशर्मो उवाच

गदितमिति निशम्य विष्णुशर्मन्विनययुतेन विशा मदीयपित्रा ।
मुनिरित गदितं दिलीपवृत्तं जगति पवित्रतरं विचक्रमे सः ॥१०४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
कालिन्दी माहात्म्य एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०१॥

नहीं हुआ । अज्ञातों के द्वारा उसका प्रायश्चित लोक और परलोक में सुखप्रद होता है ॥९७॥ तुम्हारे सन्तान के अभाव का कारण मैंने बतला दिया जिस तरह वसिष्ठ महर्षि ने दिलीप के पुत्र के अभाव का कारण बतलाया था ॥९८॥ उसको सुनकर जिस तरह दिलीप ने नन्दिनी को सन्तुष्ट किया था उसी तरह हे वैश्य! तुम अपनी पत्नी के साथ जाकर पार्वतीजी को प्रसन्न करो ॥९९॥ जिस तरह राजा के द्वारा आराधित होकर नन्दिनी ने राजा को पुत्र प्रदान किया, उसी तरह गौरी की आराधना करके उनको प्रसन्न करो वे तुम्हें पुत्र देंगी ॥१००॥ **वैश्य ने कहा—** हे मुने ! राजा दिलीप कौन थे और नन्दिनी कौन थी ? जिसकी आराधना करके राजा ने कैसे पुत्र प्राप्त किया ॥१०१॥ महेश्वर आदि देवताओं जो त्रिवर्ग रूप फल को प्रदान करने वाले है, उनको छोड़कर राजा ने नन्दिनी की आराधना क्यों की ॥१०२॥ हे मुने ! मैंने जो पूछा उन सभी बातों को आप बतलायें । इस बात को सुनकर मैं पार्वतीजी की आराधना करूँगाा ॥१०३॥ **शिवशर्मा ने कहा—** नम्र होकर मेरे पिता वैश्य के द्वारा कही गयी बातों को सुनकर हे विष्णु ! शर्मन मुनि ने राजा के अत्यन्त पवित्र चरित्र को कहा ॥१०४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के यमुना माहात्म्य के अन्तर्गत दो सौ एकवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०१।।

दो सौ दोवाँ अध्याय

देवल उवाच

श्रृणुष्वभोमहाप्राज्ञ ! दिलीपस्यमहीपतेः। कथां दिव्यांविचित्रांचश्रृण्वतांपापनाशिनीम् ॥१॥
वैवस्वतमनोर्वंशे दिलीपो भूभुजांवरः। आसीत्प्राचीनबर्हिस्तु स्वायम्भुवमनोरिव॥२॥
स तु धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मेण प्रतिपालयन्। महीं महीपतिर्लोकान्गुणैराह्लैररञ्जयत् ॥३॥
मगधाधिपतेः पुत्रीमहिषी तस्यभूपतेः। सुदक्षिणाख्ययाख्याता शचीवाऽऽसीद्दिवस्पतेः ॥४॥
गते महति काले तु महिष्यां नऽभवत्सुतः ।
दध्याविितिनिजस्वान्ते स सम्राट्कोशलाधिपः ॥५॥
रत्नाकरसुमेर्वादिनगरत्नैर्विराजितम् । धृतं भूवलयं दोषोर्भूषायै नाऽप्रजस्य मे॥६॥
वर्गत्रयी यथाकालंसेविता न विरोधिता। तथापि मेऽनपत्यस्य न सौख्यं विद्यतेहृदि ॥७॥
यज्ञैराराधितो विष्णुरिन्द्राद्याश्चसुरोत्तमाः। दीर्घिकारामकूपाश्च कारिताःसर्वतोभुवि ॥८॥
गोभूहिरण्यवासोभिः षड्गसान्वितभोजनैः। विप्राअतिथयश्चैव भक्तयासन्तमोषितामया॥९॥
वृत्त्यर्थं पृथिवीपालानुद्धृत्य युधि धर्मतः। धनेन महता कोशो मयां हि बहुलीकृतः ॥१०॥
उन्मार्गगामिनो मत्तानिजधर्मविलङ्घिनः। विमुखाः पितृदेवेभ्योदण्ड्यास्तेदण्डितामया॥११॥
पञ्चपर्वसु वैष्णव्यां रवौपिञ्ये च कर्मणि। दशम्येकादशीतिथ्योर्न स्त्रीसेवा कृतामया॥१२॥
ऋतुकालावधौ स्नातां स्वस्त्रियं नाऽहमत्यजम् ।
अनृतावपि तद्योग्ये काले चेत्प्रार्थितस्तया ॥१३॥

राजा दिलीप के वृत्तान्त का वर्णन

देवल महर्षि ने कहा— हे महाप्राज्ञ ! राजा दिलीप की विचित्र और दिव्य कथा को आप सुनें। यह कथा सुनने वालों के पाप को विनष्ट करने वाली है ॥१॥ वैवस्वत मनु के वंश में राजा दिलीप हुए। वे स्वायम्भुव मनु के प्राचीन बर्हि के समान थे। वे राजा धर्म के द्वारा पृथिवी का पालन करते थे। और लोगों को अपने गुणों के द्वारा प्रसन्न करते थे ॥२-३॥ उन राजा की पत्नी मगधाधिपति की पुत्री प्रख्यात सुदक्षिणा थी। वह इन्द्र की पत्नी शची के समान थी ॥४॥ बहुत दिन बीत जाने पर राजा को कोई पुत्र नहीं हुआ। इस बात को अपने मन में सोचकर राजा कोशलाधिपति ॥५॥ ने सोचा की सुमेरु तथा पर्वत पर्यन्त पृथिवी का मेरा राज्य निष्पुत्र मेरे लिए व्यर्थ ही है ॥६॥ मैंने समयानुसार त्रिवर्ग का सेवन किया, उसके विपरीत मैंने कभी नहीं किया। फिर निःसन्तान मुझको सुख नहीं मिलता है ॥७॥ यज्ञों के द्वारा मैंने भगवान् विष्णु और इन्द्र आदि देवताओं की आराधना भी की। मैंने वावली, कूप और उद्यान आदि को सर्वत्र बनवाया ॥८॥ गो, भूमि, वस्त्र तथा षड्रस भोजन के द्वारा मैंने भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों तथा अतिथियों को सन्तुष्ट किया ॥९॥ अपनी वृत्ति के लिए राजाओं को युद्ध में धर्म पूर्वक जीत कर मैंने धन तथा राज्य को बढ़ाया ॥१०॥ कुमार्ग गामी तथा मदमत्त जो अपने धर्म का उल्लंघन करने वाले हैं। एवं देवता, पितरों से विमुख दण्डनीय व्यक्तियों को दण्डित भी किया ॥११॥ वैष्णवों के पाञ्च पर्व में रविवार के दिन तथा श्राद्ध के दिन, दशमी तथा एकादशी को स्त्री का सेवन नहीं किया ॥१२॥ ऋतुकाल में स्नान की

तदातस्यां सकामिन्यां सकामं रमितंमया । एवं धर्मार्थकमामे यथाकालंनिषेविता:।।१४।।

महिष्यां केन दोषेण जायते मे न सन्ततिः ।
अतीतानागतज्ञानो वसिष्ठो गुरुरेव नः ।।
कथयिष्यति तं दोषं यन्मे पुत्रो न जायते ।।१५।।

देवल उवाच

इत्यालोच्य स भूपालो गमिष्यन्नाश्रमं गुरोः ।
मन्त्रिष्वारोपयामास कोशलामृद्धिकोशलाम् ।।१६।।

अथप्रजासृतं देवं पूजयित्वाऽऽश्रमं गुरोः। प्रतस्थाते पुत्रकामौ दम्पती तौ शुभेऽहनि।।१७।।
कतिचिद्वासरैर्मार्गमुल्लङ्घ्यैकरथे स्थितौ । तौदम्पती गुरोः सायमाश्रमं प्रापतुःशुभम्।।१८।।
वैश्वदेवान्तसम्प्राप्तामतिथिसत्कारकृन्मुनिम् । हुताशनहुतद्रव्यप्रसरद्धूममालया ।।१९।।
पवित्रयन्तमात्मस्थान्मुनीनागन्तुकानपि । मृगैर्दूर्वाप्रतानौघप्रदपूर्णोरमन्थरम् ।।२०।।
अभ्यागच्छद्भिरभितो मण्डपं स मृगीगणैः। वासवृक्षमिलत्पक्षिकुलकोलाहलाकुलम् ।।२१।।
परस्परविनिर्मुक्तवैरव्याघ्रमृगादिकम् । जपध्यानपरर्षीणां क्षणश्रान्तश्रुतिध्वनिम् ।।२२।।
अनध्ययनकालोत्थक्रीडासक्तकुमारकम् । तस्मिन्वसिष्ठमद्राष्टां दम्पती तौ कृतक्रियम् ।।२३।।
वृस्यां निसण्णमव्यग्रमरुन्धत्योपसेवितम्। स ववन्दे गुरोः पादौमहिषी सा च तत्स्त्रियः।।२४।।
आशिषागुरुरप्येनं युयोजाऽरुन्धतीचताम्। अतिथिंतमथाऽभ्यर्च्य मधुपर्कादिभिर्गुरुः ।।
अर्हणैरर्हतां श्रेष्ठो वसिष्ठइति पृष्टवान् ।।२५।।

हुयी पत्नी का मैंने भी परित्याग नहीं किया । ऋतुकाल से भिन्न काल में यदि उसने प्रार्थना की ।।१३।। उस समय भी उसके कामुकी होने पर मैंने उसके साथ रमण किया । इस तरह से मैंने धर्म, अर्थ और काम का मैंने समयानुसार सेवन किया ।।१४।। किस दोष के कारण रानी के गर्भ से मेरी सन्तान नहीं हुयी। हमारे गुरु वसिष्ठ अतीतकाल एवं अनागत काल के ज्ञाता हैं । जिसके कारण मेरा पुत्र नहीं होता है उस दोष को बतलायेंगे ।।१५।। **देवल महर्षि ने कहा—** इस तरह से विचार करके गुरु के आश्रम में जाने की इच्छा से कोशल के समृद्ध कोश का भार मन्त्रियों पर उन्होंने छोड़ दिया ।।१६।। उसके पश्चात् प्रजाओं की सृष्टि करने वाले देवता की पूजा करके पुत्र प्राप्ति की कामना से गुरु के आश्रम में जाने के लिए शुभ लग्न में पति-पत्नी दोनों प्रस्थान किये ।।१७।। एक ही रथ पर बैठे हुए वे कुछ दिनों में मार्ग को तय करके दोनो दम्पती सायंकाल शुभ आश्रम में आये ।।१८।। वैश्वदेव के अन्त में आये हुए अतिथि का मुनि ने सत्कार किया । उस समय अग्नि में होम करने से धूआँ फैल गया था ।।१९।। आत्मस्थों तथा आगन्तुकों को पवित्र बनाते हुए मुनि दूर्वा समूह पर मृग रोमन्थ करते हुए मन्थर हो गये थे ।।२०।। चारो ओर से मण्डप में आने वाले मृग भी अपने निवास वृक्ष पर आये हुए पक्षियों के कोलाहल से ध्वनित, व्याघ्र तथा मृगों के परस्पर में वैर को त्याग देने से जप और ध्यान करने वाले ऋषियों की ध्वनि शान्त हो जाने पर।।२१-२२।। अध्ययन काल न होने से उठकर बालक जब क्रीडा कर रहे थे उसी समय अपने कृत्य को समाप्त किए उन पति-पत्नी को महर्षि वसिष्ठ ने देखा ।।२३।। मृगचर्म पर शान्त बैठे हुए अरुन्धती के द्वारा सेवित राजा ने अपने गुरु के चरणों की वन्दना की और रानी ने उनकी पत्नी के चरणों की वन्दना

वसिष्ठ उवाच

भोभो ! भूमिभृतां श्रेष्ठ राज्ये कुशलमस्तिते ।
कुले च कच्चिल्लोके च निजधर्मानुवर्त्तिनि ॥२६॥
धर्मेण पालिता कच्चित्त्वया वीर ! वसुन्धरा ।
सम्वर्द्धयतिते कोशं धर्मधीरिवसात्त्विकी ॥२७॥

तव जानपदा राजन्पौराश्च स्थितिमात्मनः। सारवन्तो विमुञ्चन्ति कच्चिन्नाम्बुधयो यथा॥२८॥
स्नेहेन साहचर्येण सहवासतया प्रभो !। लक्ष्मीनारायणायेते कच्चिते पुरदम्पती॥२९॥
काम्यव्रतानि राजेन्द्र ! प्रजानां नगरे तव। फलन्ति वाञ्छितं कच्चिद्धरिचन्दनवद्दिवि॥३०॥

देवल उवाच

पृष्ट्वैवं स मुनिश्रेष्ठो वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः। योगप्रभावोपनतैर्नृपं भौज्यैरभोजयत् ॥३१॥
अरुन्धती च तां राज्ञीं बह्वादरसमन्विता। नानाव्यञ्जनपक्वान्नैरभोजयदुदारधीः ॥३२॥
कृतभोजनमासीनंस्वस्थः स्वस्थंमुनिर्नृपम्। पुनःपप्रच्छ संगृह्य पाणिनापाणिमानतम् ॥३३॥

वसिष्ठ उवाच

सप्ताङ्गसंयुतं राज्यं निजधर्मरतप्रजम्। प्रीतबन्धुजनामात्यं शस्त्रास्त्रविधिवद्भटम् ॥३४॥
वश्यमित्रं हतामित्रं कृष्णार्चापरमानसम् ।
यस्याऽस्ति नृपते राज्यं स्वर्गराज्येन तस्य किम् ॥३५॥
इक्ष्वाकुवंशराजानः पुत्रानुत्पाद्यधार्मिकाः। राज्यंच तेषु विन्यस्यप्रपन्नास्तपसिप्रभो ! ॥३६॥

की ॥२४॥ गुरु ने राजा को आशीर्वाद दिया और उनकी पत्नी ने रानी को आशीर्वाद दिया। उसके बाद मधुपर्क आदि से गुरु ने राजा की पूजा की। योग्यों में श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि ने उनसे पूछा ॥२५॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** हे राजाओं में श्रेष्ठ आपके राज्य में कुशल तो है ? अपने वंश के अनुसार आपने धर्म का अनुसरण करने वालों का हे वीर ! आप धर्म पूर्वक पालन किए हैं न। सात्त्विक धार्मिक बुद्धि के समान आपका कोश बढ़ रहा है न ॥२६-२७॥ हे राजन् ! आपके राज्य में रहने वाले नागरिक अपनी स्थिति को सार से युक्त होने के कारण समुद्र के समान त्यागते तो नहीं है ॥२८॥ हे राजन् ! आपके नगर के दम्पती स्नेह, साहचर्य तथा सहवास के द्वारा लक्ष्मीनारायण के समान रहते हैं न ॥२९॥ राजन् आपके नगर में प्रजाओं को काम्यव्रत स्वर्ग में विद्यमान कल्पवृक्ष के समान अभिप्रेत फल को प्रदान करते हैं न॥३०॥ **देवल महर्षि ने कहा—** इस तरह पुछकर मुनियों में श्रेष्ठ मुनि पुंगव वसिष्ठ महर्षि योग के प्रभाव से प्राप्त राजाओं के भोज्य पदार्थों से राजा को भोजन कराये ॥३१॥ अरुन्धती ने रानी को अत्यन्त आदर पूर्वक अनेक प्रकार के व्यञ्जन और प्रक्वानों से उदारता पूर्वक भोजन कराया ॥३२॥ भोजन करके स्वस्थ हुए राजा से अपने हाथ से राजा का हाथ पकड़ कर पूछा ॥३३॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** सात अङ्गों से युक्त धार्मिक प्रजाओं वाले, प्रसन्न बान्धवों तथा मन्त्रियों से युक्त शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता वीरों वाले राज्य में वश्य मित्रों तथा विनष्ट हुए शत्रुओं एवं भगवान् की अर्चा में ही जिनका मन लगा रहता हैं ऐसे राज्य के राजाओ को स्वर्ग के राज्य से कोई प्रयोजन होता है ॥३४-३५॥ हे प्रभो ! ईक्ष्वाकु के वंश के राजा

त्वं युवाऽदृष्टपुत्रास्यो नाऽधिकारी तपोविधौ ।
किमर्थमागतो ह्यत्र राज्यं त्यक्त्वा तथाविधम् ॥३७॥

राजोवाच

ब्रह्मन्नाऽहं तपः कर्तुमागतस्तावकाश्रमे। स्वर्गकामनया त्यत्तवाराज्यमत्र तथाविधम् ॥३८॥
ब्रह्मन्सत्यमिदं चोक्तं भवता यत्तपोवनम्। राज्यमारोप्य पुत्रेषु प्राप्त इक्ष्वाकुवंशजाः॥३९॥
न तैस्त्यक्तं महीराज्यमिदं स्वर्गगतैरपि। तन्मूर्तिरस्यां विमनास्तिष्ठति ह्येव सन्ततिः ॥४०॥

यथाबाल्यं गतं तात ! यौवनं च समागतम् ।
यास्यत्यदोऽपि च तथा जराऽप्येष्यति निश्चितम् ॥४१॥

जरसोऽनन्तरं मृत्युः पुरुषस्य न संशयः । मृत्युं गते मयि ब्रह्मन्विना तनयसम्भवम् ॥४२॥
कस्येदं जगतीराज्यं भविष्यति गुरो वद । तस्मादपत्यहीनस्य राज्येऽति मम तिष्ठतिः ॥४३॥
ममत्वं विद्यते नाऽत्र पुरस्तात्तदभावतः । वर्गत्रयस्य वै सम्यक्संवेत्ता त्वं गुरो ! मम ॥४४॥
केन दोषेण मे पुत्रोजायते न तपोनिधे !। ध्यानेन दोषमालोक्य तं गुरोकथयाऽऽशु मे ॥
तस्य प्रतिक्रियां कुर्यां श्रुत्वा सन्तानलब्धये ॥४५॥

देवल उवाच

इत्याकर्ण्य वसिष्ठस्तु वचस्तस्य महीपतेः । उवाचसन्ततिस्तम्भहेतुं वीक्ष्य समाधिना ॥४६॥

वसिष्ठ उवाच

त्वंपुरा राजशार्दूल ! संसेव्यसुरनायकम् । स्नातमिमांवधूं स्मृत्वा चलितोनिजमन्दिरम् ॥४७॥
गच्छतस्त्वरयातात सन्तानोत्कण्ठितस्यते। आसीत्सुरतरोर्मूले कामधेनुःस्थितापथि॥४८॥

धार्मिक पुत्र को उत्पन्न करके, और राज्य का भार उन पर सौंपकर तपस्या में लग जाते हैं ॥३६॥ तुम युवा पुत्र के मुख को देखकर तपस्या के अधिकारी नहीं हो । उस प्रकार के राज्य को छोड़कर तुम किसलिए यहाँ आये हो ॥३७॥ **राजा ने कहा—** हे महर्षे ! मैं आपके आश्रम में स्वर्ग प्राप्ति की कामना से उस प्रकार के राज्य को त्यागकर तपस्या करने आया हूँ ॥३८॥ हे ब्रह्मन् ! आपने सत्य कहा है कि इक्ष्वाकु वंश के राजा पुत्रों को राज्य सौंपकर तपोवन में चले जाते हैं ॥३९॥ वे स्वर्ग में भी जाकर पृथिवी के राज्य नहीं त्यागते उस राजा की मूर्ति सन्तान उदास होकर इस राज्य में रहती है ॥४०॥ हे तात ! जैसे बाल्यावस्था बितती हैं तो युवावस्था आती है । उसी तरह युवावस्था के बीत जाने पर वृद्धावस्था आ जाती है ॥४१॥ बुढ़ापे के बाद निश्चित रूप से मृत्यु होती है । हे ब्रह्मन् ! बिना पुत्र के मेरे मर जाने पर॥४२॥ पृथिवी का यह राज्य हे गुरो ! बतलायें कि किसका होगा । इसीलिए निस्सन्तान मैं राज्य में अभी भी रह रहा हूँ ॥४३॥ आपके समक्ष मेरा राज्य में ममत्व नही है । मेरे त्रिवर्ग को आप अच्छी तरह से जानते हैं ॥४४॥ हे तपोनिधे ! किस दोष के कारण मेरा पुत्र उत्पन्न नहीं होता है ध्यान के द्वारा उसको देखकर हे गुरो ! आप मुझे बतलायें । सन्तान की प्राप्ति के लिए मैं उसका प्रायश्चित करूँ ॥४५॥ **देवल महर्षि ने कहा—** उस राजा की इस तरह की वाणी सुनकर महर्षि वसिष्ठ समाधि के द्वारा पुत्र को न होने के कारण को देखकर । राजा से बोले ॥४६॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** हे राजेन्द्र ! तुम पूर्वकाल में इन्द्र से मिलकर इस स्नान की हुयी अपनी पत्नी वधू का स्मरण करके अपने घर के लिए चल दिए॥४७॥

उत्पादितात्वयातस्याः पूज्याङ्घ्रिरजसोऽतिरुट् ।
प्रदक्षिणनमस्कारसदाचारमकुर्वता ॥४९॥
साऽशपत्त्वामतिक्रोधात्पुत्रो नोत्पत्स्यते नव । ममसन्तानशुश्रूषां यावत्त्वंनरकरिष्यसि ॥५०॥
गच्छंस्त्वमृतुदानाय त्वरयासुतकामुकः । उन्मनानाऽश्रृणोः शापं न यन्ताक्षनिनादतः ॥५१॥
तस्याः सुतासुतां धेनुं नन्दिनीं ससुतां मम । आराधयाऽनया वध्वा सार्द्धं सा दास्यते सुतम्॥५२॥

देवल ऊचुः

इत्युक्तवति तत्रर्षौ वसिष्ठे सा तु नन्दिनी। तपोवनात्समायाता वत्सस्नेहस्नुतस्तनी ॥५३॥
तां दृष्ट्वा हृष्टहृदयो वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः । उवाच भूपतिं भूयो दर्शयित्वा च नन्दिनीम् ॥५४॥

वसिष्ठ उवाच

राजन्समागताह्येषा स्मृतमात्रशुभाह्वया। अतोविद्धिसमीपस्थां कार्यसिद्धिमिहात्मनः ॥५५॥
आराधितानुगत्वेयं त्वयाऽरण्ये तथाऽऽश्रमे। बध्वाप्रसादात्तेपुत्रंदास्यतेनाऽऽत्रसंशयः ॥५६॥
यथा नाभिभवेदेनां जन्तुः कश्चिद्वनोद्भवः। तथा चारय राजेन्द्र ! वने हिंस्रो धनुर्द्धरः॥५७॥

देवल उवाच

तथेति लघुवादिने नृपतये स्नुषायै च स क्षपाशयनहेतवेसदुटजं ददौ तापसः ।
सतत्र सहभार्ययासमधिशय्य दर्भास्तृतां महीमगमयन्निशां नियतमानसो विट्पते ॥५८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०२॥

सन्तान के लिए उत्कण्ठित तेजी से जब तुम जा रहे थे उस समय रास्ते में देव वृक्ष के मूल में कामधेनु वैठी थीं ॥४८॥ हे तात ! उसके चरणों को धूल से तुमने उसकी प्रदक्षिणा नमस्कार न करके उसको अत्यन्त क्रुद्ध कर दिया ॥४९॥ उसने अत्यन्त क्रोध से तुमको शाप दे दिया कि तुमको पुत्र तब तक नहीं होगा जब तक कि तुम मेरे सन्तान की सेवा नहीं करोगे ॥५०॥ पुत्र के इच्छुक तेजी से ऋतुदान के लिए जाते हुए उन्मत तुमने उस शाप को नहीं सुना । क्योंकि रथ का धुरा ध्वनि कर रहा था ॥५१॥ उस कामधेनु की पुत्री की पुत्री नन्दिनी मेरे आश्रम में है । अपनी पत्नी के साथ तुम उसकी आराधना करो वही तुमको पुत्र देगी ॥५२॥ **देवल महर्षि ने कहा—** महर्षि वसिष्ठ के इस तरह कहने पर वह नन्दिनी अपने बछड़े के स्नेह के कारण स्तन से दुग्ध क्षरण करती हुयी तपोवन से आ गयी ॥५३॥ उसको देखकर प्रसन्न हृदय वाले मुनि श्रेष्ठ वसिष्ठ नन्दिनी को दिखाकर राजा से कहे ॥५४॥ **महर्षि वसिष्ठ बोले—** हे राजन्! स्मरण करने मात्र से यह शुभनाम वाली आ गयी । अतएव तुम समझो कि तुम्हारा कार्य शीघ्र ही सिद्ध होयेगा ॥५५॥ आश्रम तथा वन में आराधित इसके अनुगमन करने से तुम्हारी पत्नी पर कृपा करके तुमको यह पुत्र प्रदान करेगी इसमें कोई संशय नहीं है ॥५६॥ इसको कोई बनैला जीव अभिभूत न कर सके उसी प्रकार से तुम हिस्र जीवों के लिए धनुष धारण किए हुए इसको वन में चराओ ॥५७॥ **देवल महर्षि ने कहा—** ठीक है इस तरह से थोड़ा बोलने वाले राजा तथा उनकी पत्नी को कहकर रात्रि में सोने के लिए महर्षि ने अच्छी झोंपड़ी प्रदान की । राजा उसमें अपनी पत्नी के साथ शयन करके जिसमें कुश दिछा था उसके ऊपर पृथिवी पर रात्रि बिताये ॥५८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड में यमुना के माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में दो सौ दोवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०२॥

दो सौ तीसरा अध्याय

देवल उवाच

अथोषसि नराधीषः पूजितां कुसुमादिभिः ।
महिष्या नन्दिनीं धेनुं नीत्वाऽरण्यं जगाम सः ॥१॥
गछन्तीमनु तां देवी छायेव नृपतिर्ययौ । खादन्तीमनुशष्पादि सोऽपिमूलाद्यभक्षयत् ॥२॥
तरुच्छायामुपासीनामनु सोऽप्युपविष्टवान्। पिबन्तीमनुपानीयं राजाऽपिसलिलंपपौ ॥३॥
स च राजा मृदुग्रासैर्दंशा पनयनेन च। कण्डूयनैः कामधेनुं गुरोरेवमसेवत ॥४॥
अथ प्रत्याश्रमं सायं न्यवर्त्तत महीपतेः । अङ्गं पवित्रयन्ती सा खुरोद्धूतै रजः कणैः ॥५॥
ऊधोभारेण गुरुणा गच्छन्तीं मन्थरं बभौ । महीपालमहाकार्यभाराक्रान्तेव नन्दिनी ॥६॥
तां मुनेराश्रमाभ्याशे राज्ञी प्रत्युज्जगाम ह । चन्दनाक्षतनैवेद्यधूपादीनुपनीय च ॥७॥
तां पूजयित्वा विधिवत्प्रणम्य च पुनःपुनः । कृत्वा प्रदक्षिणं राज्ञी तस्थौप्राञ्जलिरग्रतः ॥८॥
सा गृहीत्वा च तां पूजां विहितां श्रद्धया तया ।
राज्ञा निश्चलमास्थाय ययौ ताभ्यां सहाश्रमम् ॥९॥
आराधयति तामेवं दिलीपे तु दृढव्रते । एकाधिकाव्यतीयाद्यदिनानां वैश्य विंशतिः ॥१०॥
अथभूमिपतेस्तस्य भावजिज्ञासयातुसा । विवेशनिर्भययस्वान्ता सशष्पांहिमवद्गुहाम् ॥११॥

देवल वैश्य सम्वाद के अन्तर्गत राजा दिलीप के द्वारा अपनी रानी के साथ महर्षि वसिष्ठ की धेनु नन्दिनी को चराना आदि सेवा कर्म का वर्णन तथा नन्दिनी द्वारा परीक्षा किया जाना माया सिंह के साथ दिलीप का सम्वाद तथा नन्दिनी द्वारा वरदान प्रदान

देवल महर्षि ने कहा— उसके पश्चात् प्रातःकाल रानी के द्वारा पुष्प आदि से पूजित नन्दिनी को राजा दिलीप लेकर वन में चले गये ॥१॥ चलती हुयी नन्दिनी के पीछे राजा उसकी छाया के समान चल रहे थे जब वह घास इत्यादि खाती थी जो राजा भी मूल आदि खा लेते थे ॥२॥ पेड़ की छाया में जब वह बैठती थी तो राजा भी बैठ जाते थे । जब वह जल पीती थी राजा भी जल पीते थे ॥३॥ राजा कोमल घासों के कवल के द्वारा तथा दंशों को उससे दूर करके तथा उसके शरीर को खुजलाकर गुरु के कामधेनु की सेवा करते थे ॥४॥ उसके पश्चात् सायंकाल आश्रम की ओर राजा उसे लौटा लाते थे वह अपने खुरों से उठी हुयी धूलि के कणों से राजा के अङ्गों को पवित्र करती थी ॥५॥ अपने भारी थनों के भार से धीरे-धीरे चलती हुयी नन्दिनी राजा के महान कार्य के भार से अक्रान्त के समान सुशोभित होती थी ॥६॥ मुनि के आश्रम के सन्निकट आ जाने पर रानी धूप, चन्दन, अक्षत और नैवेद्य लेकर उसके सामने आ गयीं।॥७॥ उसकी विधि पूर्वक पूजा करके और बार-बार प्रणाम करके रानी ने उसकी प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर नन्दिनी के सामने खड़ी हो गयी ॥८॥ राजा के द्वारा श्रद्धा पूर्वक की गयी उस पूजा को निश्चल होकर स्वीकार करके वह उन दोनों के साथ आश्रम में चली गयी ॥९॥ हे वैश्य ! दृढव्रत दिलीप के इस तरह से उसकी आराधना करते हुए इक्कीस दिन बीत गये ॥१०॥ उसके बाद राजा के हृदय के भाव को जानने की इच्छा से निर्भय अन्तःकरण वाली वह घासों वाली हिमालय की गुफा में प्रवेश कर गयी ॥११॥ जब

पश्यता हिमवत्सानु शोभामथ महीभृता। अलक्षितागमः सिंहो बलाज्जग्राह नन्दिनीम् ॥१२॥
सा चक्रन्द भृशंधेनुर्दुःखितेव दयास्वना। चित्तेधनुर्भृतस्तस्य जनयन्ती दयोदयम् ॥१३॥
तदाक्रन्दितमाकर्ण्य तस्याः स जगतीपतिः ।
हिमवत्सानुसंलग्नां निजदृष्टिं न्यवर्त्तयत् ॥१४॥
उपर्युपरि तां धेनुं स्रवदश्रुमुखीं नृपः। तीक्ष्णदंष्ट्रनखं सिंहं दृष्ट्वा स व्यथितोऽभवत्॥१५॥
गृहातां तेन सिंहेन तामालक्ष्य धनुर्द्धरः। निषङ्गाद्बाणमुद्धर्तुं प्राहिणोद्दक्षिणं भुजम् ॥१६॥
बाणमुद्धृत्य तूणीरान्निहन्तुं तं मृगाधिपम्। गुणेनापूर्णमायोज्य चकर्ष वसुधाधिपः॥१७॥
जडीभूतसमस्ताङ्गस्तत्सिंहालोकनेन सः। नाऽशकद्बाणमुत्स्रष्टुं राजाऽसीद्विस्मितस्ततः ॥१८॥
तादृशं नृपमालक्ष्य जगाद स मृगाधिपः। नरवाचा भृशं भूयो विस्मयं प्रापयन्निदम्॥१९॥

सिंह उवाच

दिलीपं त्वामहं राजञ्ज्ञानामिरविवंशजम्। त्वंचजानीहिमांशम्भोर्गणंकुम्भोदराभिधम् ॥२०॥
देवदारुरयं यस्ते वर्त्तते दृष्टिगोचरे। पार्वत्या पुत्रवद्वीर ! पालितः स्निग्धचित्तया॥२१॥
एकदाऽमुष्यवन्येन गजेनाघर्षता कटम्। उदपाटि महाराज ! वल्कलं मृदुलं भृशम् ॥२२॥
एनं तादृशमालक्ष्य मृडानीकरुणान्विता। मामत्र स्थापयामास सिंहंकृत्वाऽस्य रक्षणे॥२३॥
मामाह चेतिसा देवी कुम्भोदर ! निशम्यताम् ।
योऽत्र जन्तुः समागच्छेतं खादेस्त्वं वसन्निह ॥२४॥
ततः प्रभृति राजेन्द्र ! तदाज्ञां पालयन्नहम्। पालितां त्रिदशैः सर्वैः कन्दरेऽत्र वसाम्यहम् ॥२५॥

राजा हिमालय के शिखर की शोभा को देख रहे थे, जिसके आने को कोई देख न सका ऐसा सिंह बलपूर्वक नन्दिनी को पकड़ लिया ॥१२॥ वह धेनु करुणा भरे स्वर में जोर से रोने लगी। वह धनुर्धारी राजा के चित्त में दया को उत्पन्न कर रही थी ॥१३॥ उसके उस रुदन को सुनकर पृथिवी पति राजा हिमालय के शिखर में लगी हुयी अपनी दृष्टि को लौटाये ॥१४॥ बहुत अधिक आंसू बहाती हुयी उस धेनु को तथा तीक्ष्ण नख और दाँत वाले सिंह को देखकर दुःखी हो गये॥१५॥ उस सिंह के द्वारा पकड़ी गयी धेनु को देखकर धनुर्धारी राजा तरकस से बाण निकलने के लिए दाहिनी भुजा को उठाये ॥१६॥ बाण को तुणीर से निकाल कर धनुष पर डोरी को चढ़ाकर राजा ने उसे खींचा ॥१७॥ उस सिंह के द्वारा देखे जाने से जिनके सारे अङ्ग स्तम्भित हो गये थे राजा बाण को छोड़ न सकने के कारण विस्मित हो गये ॥१८॥ उस तरह के राजा को देखकर सिंह ने मनुष्य की वाणी में राजा से कहने लगा उससे राजा अत्यन्त विस्मित थे ॥१९॥ **सिह ने कहा—** हे राजन् ! मैं जानता हूँ कि तुम सूर्यवंश में उत्पन्न दिलीप हो। तुम भी मुझे शङ्करजी का गण महोदर जानो ॥२०॥ यह देवदारु का वृक्ष जो तुम्हारी आँखों के सामने है उसको हे वीर ! पार्वतीजी ने अपने पुत्र के समान प्रेम पूर्वक पाला है ॥२१॥ एक बार बनैले हाथी ने इससे अपनी गाल को रगड़ कर उसके कोमल छाल को बहुत अधिक उधेड़ दिया ॥२२॥ इसको वैसा देखकर क्रोध से युक्त पार्वतीजी मुझको सिंह बनाकर इसकी रक्षा में लगा दिया ॥२३॥ उन देवी ने मुझसे कहा कुम्भोदर तुम सुनो। तुम यहीं रहकर इसके यहाँ जो जीव आये उसे खा लेना ॥२४॥ हे राजेन्द्र ! उसी समय से

जडीभावे स्वदेहस्य त्वया कार्योन विस्मयः ।
महती शाम्भवी मायावर्त्ततेऽत्रहिमाचले ॥२६॥
अन्यस्मिन्निव सिंहे त्वं प्रहर्तुं न मयि क्षमः ।
यतो मत्पृष्ठमारुह्य वृषमारोहति प्रभुः ॥२७॥
निवर्त्तस्व निजं देहं रक्ष सर्वार्थसाधनम्। दैवेनासादिता वीर ! गौरियं भक्षणाय मे ॥२८॥

देवल उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य वीरसम्बोधनान्वितम्। प्रत्युवाचदिलीपस्तं स जडीभूतविग्रहः ॥२९॥

राजोवाच

सर्गस्थितिविसर्गाणां कारणं जगतः शिवम् ।
अम्बिकांजगदम्बांचनमामिमृगराज तौ ॥३०॥
त्वं च तत्सेवकत्वेन मान्योममृगाधिप !। ब्रवीमियदहंवाक्यंश्रुत्वाशाधिकरोमिकिम् ॥३१॥
वसिष्ठो ब्रह्मणःपुत्रो गुरुर्नो विदितस्तव। तस्येयं नन्दिनीनाम धेनुः सर्वार्थसाधिका ॥३२॥
सन्तानोत्पत्तये तेन दत्ताऽऽराधयितुं मम। येयमाराधितासम्यग्दिनानि कतिचिन्मया ॥३३॥
लघुतर्णकमातेयं धृता ते गिरिकन्दरे। शम्भुभृत्याद्बलात्त्वत्तोऽशक्ता मोचयितुं मया॥३४॥
अहं तस्य मुनेरग्रे गच्छाम्येनामृते कथम्। कामधेनोस्तु दौहित्रीजगत्सेव्या यशस्विनी॥३५॥
अनया सदृशी नाऽन्या गौर्यया तोषयामि तम् ।
तस्माद्विमुच्य गामेनाम्मया कुरु निजाशनम् ॥३६॥

उनकी आज्ञा का पालन करते हुए मैं सभी देवों से पालित इस कन्दरा में रहता हूँ ॥२५॥ अपने को जड़ होने पर तुमको आश्चर्यित नहीं होना चाहिए। यहाँ हिमालय पर शिवजी की महान् माया रहती है ॥२६॥ दूसरे सिंह के समान तुम हम पर प्रहार करने में समर्थ नहीं हो, क्योंकि मेरे पीठ पर ही चढ़कर शिवजी बैल पर सवार होते हैं ॥२७॥ तुम लौट जाओ और अपने शरीर की रक्षा करो क्योंकि यह सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला है। हे वीर ! भाग्य ने इस गौ को मुझे खाने के लिए यहाँ भेजा है ॥२८॥ **देवल महर्षि ने कहा—** वीर शब्द से संबोधित किये गये राजा दिलीप जिनका शरीर जड़ हो गया था वे सिंह से कहे। **राजा ने कहा—** संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण भूत शिवजी को तथा जगदम्बा पार्वतीजी को हे मृगराज ! मैं नमस्कार करता हूँ ॥२९-३०॥ हे मृगाधिप ! उनका सेवक होने के कारण आप भी मेरे सम्मानीय है। मैं जो कह रहा हूँ उस वचन को सुनकर आप मुझे आज्ञा दें कि मैं क्या करूँ॥३१॥ आपको मालुम है कि ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि वसिष्ठ मेरे गुरु हैं। उनके सभी कार्यों को सिद्ध करने वाली यह नन्दिनी नाम की गौ है ॥३२॥ सन्तान को उत्पन्न करने के लिए उन्होंने इस गौ की सेवा करने के लिए मुझे दिया है। इसकी मैंने कुछ दिनों तक अच्छी तरह सेवा की है ॥३३॥ छोटे से बछड़े की यह माँ है जिसको तुमने पर्वत की कन्दरा में पकड़ लिए हो। शिवजी का अनुचर होने के कारण मैं तुमसे इसको बचा नहीं सकता हूँ ॥३४॥ मैं इसके बिना मुनि के समक्ष कैसे जा सकता हूँ ? यह कामधेनु की दौहित्री (नातिन) है। यह यशस्विनी जगत् सेव्य है ॥३५॥ इसके समान दूसरी कोई गौ नहीं है जिससे

ददामि देहमात्मीयमपकीर्तिमलीमसम्। एवं न धर्महानिः स्यादृषेस्त्व तु भोजनम् ॥
गवार्थे त्यजतः प्राणान्ममाऽपि गतिरुत्तमा ॥३७॥

देवल उवाच

एवमाकर्ण्य सिंहेन कृते मौने विशांपते ! । तदग्रेऽवाङ्मुखे राजा न्यपतद्धर्मकोविदः ॥३८॥
तस्य प्रतीक्षमाणस्य सिंहपातं सुदुःसहम् । पपातोपरि पुष्पाणां वृष्टिर्मुक्ता सुरेश्वरैः ॥३९॥

पुत्रोत्तिष्ठेति वचनं श्रुत्वा राजा स उत्थितः ।
जननीमिवतांधेनुं ददर्श न मृगाधिपम् ॥४०॥
तं विस्मितमुवाचेदं नन्दिनी नृपसत्तमम् ॥४१॥

नन्दिन्युवाच

मायया सिंहरूपिण्या त्वं मयाऽसि परीक्षितः ।
मुनिप्रभावान्मां राजन्ग्रहीतुं न क्षमोऽन्तकः ॥४२॥
मनसाऽपि कुतोऽन्येषां मद्ग्रहेशक्तिरङ्गिनाम् ।
स्वशरीरस्य दानेन त्वं मां रक्षितुमुद्यतः ॥
अतस्तेऽहं प्रसन्नाऽस्मि वृणीष्व वरमीप्सितम् ॥४३॥

राजोवाच

न गुप्तं देहिनामन्तर्वर्तिवृत्तं भवादृशाम्। अतो जननि ! जानासि वाञ्छितं ममदेहितम् ॥४४॥
मगधेश सुतायांमेवंशकर्तारमात्मजम् । प्रयच्छकिञ्चित्स्वच्छानांनासाध्यंहिभावादृशाम् ॥४५॥
इत्युत्तवाऽञ्जलिमाधाय तत्पुरस्तस्थिवान्नृपः । तूष्णीं तदुत्तरापेक्षी तत्पुरो बद्धलोचनः॥४६॥

कि मैं उनको सन्तुष्ट कर सकूँ । अतएव आप इसको छोड़कर मुझे ही अपना भोजन बना लें ॥३६॥ मैं अपकीर्ति से मलीन अपने शरीर को आपको दे रहा हूँ । इससे ऋषि के धर्म की कोई हानि नहीं होगी और आपका भोजन भी हो जायेगा । गौ के लिए प्राण त्याग करने वाले मेरी भी उत्तम गति होगी ॥३७॥ हे वैश्य वर्य ! इस तरह की बात सुनकर सिंह के द्वारा मौन हो जाने पर धर्म के ज्ञाता राजा उसके सामने नीचे मुँह करके गिर पड़े ॥३८॥ राजा जब सिंह के भयङ्कर आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे थे उस समय श्रेष्ठ देवताओं द्वारा राजा के ऊपर पुष्पों की वृष्टि की गयी ॥३९॥ हे पुत्र ! उठो इस वचन को सुनकर राजा जब उठे तो उन्होंने माता के समान गौ को देखा और सिंह को नहीं देखा ॥४०॥ उस आश्चर्यित राजा को नन्दिनी ने कहा ॥४१॥ **नंदिनी ने कहा—** सिंह रूप धारण करने वाली माया के द्वारा मैंने तुम्हारी परीक्षा की है । मुनि के प्रभाव से हे राजन् ! यमराज भी मुझे पकड़ने में समर्थ नहीं हैं ॥४२॥ तो फिर मुझको पकड़ने की शक्ति दूसरे शरीरधारी में कैसे हो सकती है ? तुम अपने शरीर को देकर मेरी रक्षा करने के लिए उद्यत हो गये ॥४३॥ अतएव मैं तुमसे प्रसन्न हूँ तुम अपना अभिप्रेत वरदान माँगो । **राजा ने कहा—** शरीर धारियों के अन्तःकरण की वृत्ति आप से छिपी नहीं है । अतएव हे माँ तुम उसे जानती हो और उसे मुझे दो ॥४४॥ मगधेश की पुत्री से मेरा वंश बढ़ाने वाला पुत्र आप प्रदान करें । आपके समान समर्थों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है ॥४५॥ इस तरह कहकर तथा हाथ जोड़कर राजा

देवल उवाच

निशम्येति वचस्तस्य भूपतेरिदमब्रवीत्। नन्दिनीपितृदेवर्षिनरभूतार्थसाधिका ॥४७॥

नन्दियुवाच

पुत्र ! पत्रपुटे दुग्ध्वा पयो ममपिबेप्सितम् ।
आश्रमे गुरुणाज्ञप्तः पुनःपास्यसि शेषितम् ॥
भविता वंशकर्ता ते सुतः शस्त्रास्त्रतत्त्ववित् ॥४८॥

देवल उवाच

इत्युक्तःसौरभेय्या तामुवाच विनयेन सः ॥४९॥

दिलीप उवाच

मातस्तवैव पास्यामि शेषं सर्वक्रियाविधेः। तृप्तोऽहं मातरासाद्य मिष्टंतेवचनामृतम्॥५०॥
नान्यदिच्छामि सारङ्गः कादम्बिन्या यथा जलम् ।
तवशुश्रूषणान्मातरभवंसकलोद्धवः ॥५१॥
समस्तजनपूज्याया विद्याया इव मूढधीः ।
तव मातामहीदत्तः शापोऽप्यासीद्वरो मम ॥५२॥
तमृते पुत्रलाभो मे कुतस्तव च दर्शनम्। वरायैव तथाप्यम्ब ! समाराध्याभवादृशः ॥
नहि कश्चिद्विषाकाङ्क्षी महादेवात्त्रिवर्गदात् ॥५३॥

देवल उवाच

श्रुत्वेतितद्वचः सा गौः प्रसन्नासाधुसाध्विति। आभाष्यहिमवद्गर्भाद्ययौतेनसहाश्रमम् ॥५४॥
पूर्वेद्युरिव तत्राऽपि पूजिता राजभार्यया। प्रसन्नासाबभौधेनुःकार्यसिद्धिरिवाऽङ्गभाक् ॥५५॥

दिलीप चुपचाप उसके द्वारा उत्तर चाहने के लिए उसके सामने देखते हुए खड़े हो गये ॥४६॥ **देवल महर्षि ने कहा**— राजा की उस वाक्य को सुनकर पित्तर, देवता ऋषि तथा मनुष्यों के प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली नन्दिनी ने कहा ॥४७॥ **नन्दिनी ने कहा**— हे पुत्र ! पत्ते के दोने में दूह कर मेरा दूध अपनी इच्छा भर पीओ और आश्रम में गुरु की आज्ञा प्राप्त करके बचे हुए दुध को तुम पीना तुम्हारे वंश को बढ़ाने वाला तथा शास्त्रों का ज्ञाता तुम्हारा पुत्र होगा ॥४८॥ **देवल महर्षि ने कहा**— इस तरह उस नन्दिनी के द्वारा कहे जाने पर राजा विनय पूर्वक कहे ॥४९॥ **दिलीप ने कहा**— हे मातः तुम्हारे मीठे वचन से मैं तृप्त हो गया हूँ । हे मातः ! सभी क्रियाओं और विधियों से बचे हुए तुम्हारे दुग्ध को मैं पीऊँगा ॥५०॥ जिस तरह सारङ्ग मेघ माला के जल से भिन्न कोई दूसरी वस्तु नहि चाहता है उसी तरह मैं किसी दूसरी वस्तु को नहीं चाहता हूँ । हे मातः ! तुम्हारी सेवा करने से मेरा हर तरह से कल्याण हो गया ॥५१॥ हे मातः ! सभी लोगों से पूजनीय विद्या के समान मूर्ख मैं, तुम्हारी मतामही का शाप मेरे लिए वरदान बन गया ॥५२॥ उसके बिना मुझको पुत्र लाभ और आपका दर्शन कैसे होता ? । हे मातः! वरदान के लिए ही आप जैसी की समाराधना होती है । शिवजी को छोड़कर दूसरा कोई विष नहीं चाहता है ॥५३॥ **देवल महर्षि ने कहा**— राजा की इस बात को सुनकर प्रसन्न हुयी गौ ने साधु-साधु कहकर हिमालय की गुफा से निकलकर राजा के साथ आश्रम में चली गयी ॥५४॥ पहले के दिनों के समान उस

मुखं प्रसन्नमालक्ष्य मृगाक्षी सा क्षितीशितुः ।
अज्ञासीत्तंनिजंकार्यंसिद्धंयत्नस्तुयत्कृते ॥५६॥

अथ तौ दम्पती धेन्वा विधिवाद्विहितार्चया। तया सह गुरोरग्रे कृतकृत्यस्य जग्मतुः ॥५७॥
निरीक्ष्य तौ मुनिवरः प्रसन्नमुखपङ्कजौ। अतीन्द्रियज्ञाननिधिः प्रोवाचेदं प्रहर्षयन्॥५८॥

वसिष्ठ उवाच

राजञ्जानामि गौरेषा प्रसन्ना वामभूत्किल। अपूर्वा युवरोरद्य मुखकान्तिर्हि लक्ष्यते ॥५९॥
सुरभिः सुरशाखीचविश्रुतौकामपूरिणौ। तदपत्यंसमाराध्यसिद्धोऽर्थःस्यात्किमद्भुतम् ॥६०॥

यो ददाति निखिलं मनोरथं कीर्तितेयमनघाऽपि दूरतः ।
श्रद्धया निकटएव सेविता किं पुनःसुरतरङ्गिणीव सा ॥६१॥
ज्ञानतो विदितमद्भुतं मया त्वत्कृतं यदनया परीक्षणम् ।
भूपते ! त्वमपि धर्ममात्मनो रक्षसिस्म च यथा तथा च तत् ॥६२॥
त्वय्यसौ मम मनोऽनुकूलता भावमात्मनि विबुध्यते तथा ।
तुष्यतिस्म कमला यथा हरेः पार्वतीव गिरिशस्य सज्जने ॥६३॥
रात्रिरत्र सह भार्ययाऽनया धेनुपूजनपरेण नीयताम् ।
भूप ! भव्य भवता गमिष्यते श्वः समाप्तविधिना निजां पुरीम् ॥६४॥

देवल उवाच

वैश्यैवं धेनुमाराध्य सभार्यः प्राप्तवाञ्छितः। प्रातर्युक्तरथःप्राप्य गुरोराज्ञामगाद्गृहम्॥६५॥

दिन राजा की पत्नी ने उसकी पूजा की । वह गौ प्रसन्न होकर कार्य सिद्धि के समान अङ्गो वाली सुशोभित हुयी । राजा के मुख को प्रसन्न देखकर राजा की पत्नी ने जान लिया कि जिसके लिए प्रयास किया जा रहा है, वह कार्य सिद्ध हो गया ॥५५-५६॥ उसके बाद वे दोनो दम्पती गौ की विधि पूर्वक अर्चा से उसके साथ गुरु के समक्ष कृत-कृत्य होकर खड़े हो गये ॥५७॥ प्रसन्न मुख कमल वाले उन दोनों को देखकर अतीन्द्रिय ज्ञान के सागर मुनि श्रेष्ठ राजा को प्रसन्न करते हुए कहे ॥५८॥ **वसिष्ठ महर्षि बोले—** राजन् ! मैं जानता हूँ कि यह गौ तुमदोनों पर प्रसन्न है आज आपलोगों की मुख कान्ति अपूर्व सी लगती है ॥५९॥ सुरभि गौ और देववृक्ष कामना की पूर्ति करने के लिए प्रख्यात हैं । उसकी सन्तान की आराधना करके तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध हो गया तो इसमें कौन सा आश्चर्य हैं ?॥६०॥ जो दूर से भी कीर्तन करने से मनोरथ पूर्ण करती है, उसके निकट से ही सेवा करने से गङ्गा के समान उसके विषय में क्या कहना है ?॥६१॥ मैंने अपने ज्ञान से ही इसने जो तुम्हारी परीक्षा की है, उसको जानता हूँ । राजन् ! तुमने भी अपने धर्म की जैसे रक्षा की है, वह वैसा ही है ॥६२॥ राजन् ! तुममें मेरे मन के अनुकूल ही मन से भाव उदित होता है । यह जिस तरह लक्ष्मीजी श्रीहरि से सन्तुष्ट रहती हैं तथा पार्वतीजी शङ्कर से सन्तुष्ट रहती हैं उसी तरह से यह तुम सज्जन से सन्तुष्ट है ॥६३॥ आज तुम अपनी पत्नी के साथ इसकी पूजा करके रात्रि बिताओ । हे राजन् ! आप विधि को समाप्त करके कल अपनी नगरी में जायँ ॥६४॥ **देवल महर्षि ने कहा—** हे वैश्य ! इस तरह से गौ की आराधना करके अपने वाञ्छित अर्थ को प्राप्त किए हुए राजा प्रातःकाल जोते गये रथ को प्राप्त करके गुरु की आज्ञा से अपने घर आये ॥६५॥ कुछ दिनों के बाद राजा

कतिचिद्वासरैस्तस्य दिलीपस्याऽभवद्रघुः । यस्य नाम्नारवेर्वंशःपृथिव्यांविश्रुतोऽभवत् ॥६६॥
यः पठिष्यति भूपस्य दिलीपस्य कथामिमाम् ।
धनंधान्यंसुतंवैश्य ! लप्स्यतेसपुमानिह ॥६७॥
शरभवरसुताप्तये स्वबुद्ध्या सममनया परितोषयाऽऽशु गौरीम् ।
त्वमपि कुलधरं गुणान्वितं सा सुतमनघं खलु दास्यते च तुभ्यम् ॥६८॥

शिवशर्मोवाच

मुनिरितिचरितं दिलीपराज्ञो ललिततरं शरभाय पुण्यमुक्त्वा ।
अभिमतगतिमात्मनः प्रपेदे विधिमुपदिश्य च पूजनेऽम्बिकायाः ॥६९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दलीमाहात्म्ये दिलीपपुत्रप्राप्तिर्नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०३॥

दो सौ चारवाँ अध्याय

शिवशर्मोवाच

विष्णुशर्मस्ततोवैश्यः शरभःसहभार्यया । नीत्वा पूजोपकरणंययौ श्रीचण्डिकालयम् ॥१॥
तत्रतौ विधिवत्स्नात्वा सुमनोधूपदीपकैः । आनर्चतुर्भक्तियुक्तौ चण्डिकां पुत्रकाम्यया ॥२॥

दिलीप के पुत्र रघु उत्पन्न हुए । उन्हीं के नाम पर पृथिवी पर सूर्यवंश प्रख्यात हुआ ॥६६॥ जो मनुष्य राजा दिलीप की इस कथा को पढ़ेगा हे वैश्य ! वह मनुष्य धन-धान्य, पुत्र को इस लोक में प्राप्त करेगा ॥६७॥ हे शरभ ! श्रेष्ठ पुत्र को प्राप्त करने के लिए तुम इसके साथ गौरी देवी की आराधना करो वे तुम्हें अभिप्रेत पुत्र को देंगी ॥६८॥ **शिवशर्मा ने कहा—** मुनि राजा दिलीप के पवित्र चरित्र को शरभ को बतलाकर अपने अभिप्रेत दिशा में अम्बिका की पूजा की पूर्ण विधि का उपदेश करके चले गये ॥६९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत दिलीप को पुत्र प्राप्ति का वर्णन करने वाले दो सौ तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०३।।

देवल महर्षि के कहने से शरभ वैश्य का पुनः भगवती की पूजा करना, प्रसन्न पार्वतीजी के द्वारा सपत्नीक वैश्य को इन्द्रस्थ तीर्थ में स्नान करने को कहना, उससे शरभ को पुत्र की प्राप्ति, शरभ द्वारा गृह का त्याग और राक्षस शरभ संवाद

शिवशर्मा ने कहा— हे विष्णु शर्मन् ! उसके बाद वे वैश्य अपनी पत्नी के साथ पूजा की सामग्री लेकर श्रीचण्डिका देवी के मन्दिर में गये ॥१॥ वहाँ पर वे दोनों विधि पूर्वक स्नान करके पुष्प, धूप तथा दीप से पुत्र प्राप्ति की कामना से भक्ति पूर्वक चण्डिका देवी की पूजा किए ॥२॥ उन दोनों के द्वारा श्रद्धा

श्रद्धयापूजिता ताभ्यां दिनैःसप्तभिरम्बिका । उवाचवाचा प्रत्यक्षं भूत्वाविशदमानसा ॥३॥

पार्वत्युवाच

भोभोवैश्य ! प्रसन्नाऽस्मि भक्तया सुदृढया तव ।
ददामि पुत्रंते साधेयदर्थे यत्नवानसि ॥४॥
गच्छ त्वं मा विलम्बस्व वनमैन्द्रं च खाण्डवम् ।
तत्र तीर्थं महापुण्यमिन्द्रप्रस्थाख्यमुत्तमम् ॥५॥

निगमोद्बोधकं तत्र तीर्थं निखिलकामदम् । बृहस्पतिकृतं तत्र स्नाहित्वं सुतवाञ्छया ॥६॥
भविष्यतिसुतस्तात तवस्नानेन तत्रहि । तत्रस्नात्वामयाऽप्यङ्ग ! लब्धःस्कन्दः सुरारिहा ॥७॥

शिवशर्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः पिता मम सह स्त्रिया ।
अत्राऽऽजगाम सत्तीर्थे सस्नौ च सुतवाच्छया ॥८॥

उपस्करवतीर्धेनूर्द्विजेभ्यः प्रददौ शतम् । देवान्पितृंश्च सन्तर्प्य यथाविध्यत्र बुद्धिमान्॥९॥
सप्तरात्रमुषित्वा तु दम्पती यतमानसौ । जग्मतुः स्वगृहानिष्टलाभोत्फुल्लमुखाम्बुजौ॥१०॥
तस्मिन्नेवाऽभवद्गर्भो मासि मातुर्ममाऽन्वहम्। व्यतीने नवमेमासि जातोऽहं दशमेशुभे ॥११॥
विष्णुशर्मन्यदुक्तं ते पुरावृत्तमिदं मया । दशाब्दद्वयमेवैतच्छ्रुतं सर्वं पितुर्मुखात्॥१२॥
एकदा क्षममालोक्य गृहकर्मणि माम्पिता । गृहंसमर्पयामास सविश्वाद्वैराग्यमाप्नुवन्॥१३॥

मां चोवाच स धर्मात्मा गोविन्दासक्तमानसः ।
विनिन्दन्विषयासक्तिं विष्णुभक्तिं स्तुवन्मुहुः ॥१४॥

पूर्वक सात दिनों तक पूजी गयी अम्बिका देवी ने प्रसन्न मन से प्रत्यक्ष होकर कहा ॥३॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे वैश्य ! तुम्हारी सुदृढ़ भक्ति के द्वारा जिसके लिए तुम प्रयत्न शील हो उस पुत्र को मैं तुम्हें प्रदान करती हूँ ॥४॥ तुम शीघ्र ही खाण्डव वन में जाओ विलम्ब न करो । वहाँ पर इन्द्रप्रस्थ नामक उत्तम तीर्थ है । वह महापवित्र है । वहाँ पर सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला निगमोद्बोधक नामक तीर्थ है । वह बृहस्पति के द्वारा निर्मित है । वहाँ पर तुम पुत्र प्राप्ति की इच्छा से स्नान करो ॥५-६॥ हे तात! स्नान करने से तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी । हे अङ्ग ! मैंने भी वहाँ स्नान कर स्कन्द नामक दैत्यों को मारने वाले पुत्र को प्राप्त किया था ॥७॥ **शिवशर्मा ने कहा—** इस तरह से देवी की वाणी सुनकर मेरे पिता पत्नी के साथ उस उत्तम तीर्थ में पुत्र प्राप्ति की इच्छा से स्नान किए ॥८॥ उपस्कार से युक्त सौ गायों को उन्होंने ब्राह्मणों को दान दिया । वहाँ पर बुद्धिमान् वे विधि पूर्वक देवताओं और पितरों का तर्पण करके॥९॥ अपने मन को वश में करके सात रात्रियों तक निवास किए । अभिप्रेत लाभ हो जाने के कारण वे प्रसन्न मन से अपने घर आये ॥१०॥ उसी महीने में मेरी माता को गर्भ हो गया । प्रत्येक दिन बीत जाने पर नौवें महीने में मेरा जन्म हुआ ॥११॥ हे विष्णुशर्मन् ! मैंने अपना पुरा वृत्त बतलाया बीस वर्ष के होने पर मैंने अपने पिता के मुख से सुना था ॥१२॥ एक दिन मुझे गृह कर्म में समर्थ देखकर मेरे पिता मुझे गृह समर्पित करके संसार से वैराग्य ले लिए ॥१३॥ गोविन्द में जिनका मन लगा था वे धर्मात्मा पिता मुझसे कहे । उन्होंने विषयों की आसक्ति की निन्दा की और वार-बार भगवान् विष्णु की भक्ति की

पितोवाच

सुमते ! वार्द्धकं प्राप्तंपलिताश्चिकुरा मम। गोविन्दचरणाम्भोजं सेविष्ये साधुसेवितम्॥१५॥

तत्सेवया भवेत्स्वच्छं मनो यस्य च सुस्थिरम् ।
सपुमानात्मसन्तुष्टो न किञ्चिदभिवाञ्छति ॥१६॥
निष्कामः सुखदुःखाभ्यां भुञ्जन्सुकृतदुष्कृते ।
प्राकृते तत्समाप्तौ च त्यजन्देहंभवत्यजः ॥१७॥
तावद्द्रव्यगुणसुखं यावत्प्राप्तं न चित्सुखम् ।
तत्प्राप्तौ तद्भवेत्तुच्छंसुधायाइवतक्रकम् ॥१८॥

हरेर्मायाबलवती या मोहयति देहिनम्। हिताहितं न जानाति सयथा मदिरामदः॥१९॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च विद्ययाऽविद्यया च सः ।
करोति स्वेच्छया काले बाललीयो हि स प्रभुः ॥२०॥

वेदोदितं यदा कर्म क्रियते फलमिच्छता। प्रवृत्तिः सा परा तात तेषामर्पणमीश्वरे॥२१॥

यथानिर्दग्धबीजानि न प्ररोहन्ति यत्नतः। तथाकर्माणि विश्वेशेनिष्कामेनार्पितानि तु ॥२२॥

कर्मणां च लयो मोक्षः सुखदुःखप्रदायिनाम् ।
तदुत्पत्तिस्तु बन्धः स्यादित्यसौ शास्त्रनिर्णयः ॥२३॥

अतोऽहं कर्म वेदोक्तं कुर्वन्नाभिलषन्फलम्। पर्यटिष्यामि तीर्थेषु हृदि भक्तिं दधद्धरेः ॥२४॥

एवम्प्रारब्धकर्माणि भुञ्जन्नन्यान्यनजयन्। हनिष्यामि जगद्रोगं पीत्वासत्सङ्गमौषधम् ॥२५॥

प्रशंसा की ॥१४॥ **पिता ने कहा**— हे सुन्दर बुद्धि वाले ! मैं वृद्ध हो गया हूँ मेरे केश पक गये हैं मैं सज्जनों द्वारा सेवित भगवान् गोविन्द के चरणों की सेवा करूँगा ॥१५॥ उनकी सेवा करने से जिसका मन स्वच्छ और सुस्थिर हो जाता है । वह पुरुष अपने आप में सन्तुष्ट होकर कुछ भी नहीं चाहता है ॥१६॥ सुख और दुःख दोनों से निष्काम होकर पुण्य और पाप को भोगते हुए प्राकृत के समाप्त हो जाने पर वह शरीर को त्याग कर ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेता है ॥१७॥ द्रव्य और गुण का सुख तब तक ही होता जब तक ज्ञान का सुख नहीं प्राप्त होता है । उसके प्राप्त हो जाने पर वह उसी तरह तुच्छ हो जाता है जैसे अमृत के प्राप्त हो जाने पर तक्र तुच्छ हो जाता है ॥१८॥ श्रीहरि की माया बलवान् है जो शरीरधारियों को मोहित किए रहती है, उसके कारण वह अपने कल्याण और अकल्याण को उसी तरह नहीं जानता है जिस तरह से मदिरा के मद से मदमत्त उसे नहीं जानता है ॥१९॥ समयानुसार अपनी इच्छा से विद्या तथा अविद्या के द्वारा निवृत्ति और प्रवृत्ति को करके वे प्रभु बाल लीला करते हैं ॥२०॥ हे तात ! वह फल की प्राप्ति की इच्छा से वैदिक धर्मो को करता है वही प्रवृति है । और जब वह मनुष्य अपने कर्मो को ईश्वर को समर्पित कर देता है तो वही निवृत्ति है ॥२१॥ जिस तरह भुने हुए बीज प्रयत्न करके पर भी अङ्कुरित नही होते हैं, उसी तरह संसार के स्वामी को निष्काम होकर समर्पित कर्म अपना फल नहीं देते हैं ॥२२॥ सुख और दुःख देने वाले कर्मो का नाश ही मोक्ष है । और कर्मो की उत्पत्ति ही संसार का बन्धन है, यही शास्त्र का निर्णय है ॥२३॥ अतएव मैं फल की कामना से रहित होकर वेदोक्त कर्मों को करते हुए पृथिवी पर श्रीहरि की भक्ति को हृदय में धारण करके तीर्थों में भ्रमण करूँगा ॥२४॥ इस

शिवशर्मोवाच

एवमाकर्ण्य वचनं तस्याऽहं पितुरात्मनः । अवदं विष्णुशर्मंस्त्वं तन्निशामय तत्त्वतः ॥२६॥
अयं जनो दुराराध्यः कथयिष्यति नौयशः । दुष्टः कुटुम्बादुद्विज्य निःसृत्यगतइत्यम् ॥२७॥
इयं विष्णुपदी तात भुवनत्रयपावनी । स्मृता हरत्यघंदूरात्कस्मादेनांविमुञ्चसि ॥२८॥
पापकारी जनस्तात ! म्रियतेमगधेतुयः । सोऽप्यस्थिपाताद्गङ्गाया स्वर्यातित्यजमाशुभम् ॥२९॥
पुत्राःषष्टिसहस्राणि सगरस्यमाहात्मनः । कपिलक्रोधनिर्दग्ध गता यत्स्पर्शनाद्दिवम् ॥३०॥
तामिमां त्रिदिवश्रेणीं मुक्तेरपि विधायिनीम् । मुमुक्षुसेवितां तात ! मुक्त्वा माऽन्यत्र गम्यताम् ॥३१॥
मावजानीहि सामीप्ये गङ्गांत्रिदशमानिताम् । यदिच्छसि महाभाग ! सेवितैषाप्रदास्यति ॥३२॥
तिर्यञ्चोऽपिविना ज्ञानाज्जलेचेत्स्युर्गतासवः । भवेयुस्तर्हिते ब्रह्मसा कथं त्यज्यतेत्वया ॥३३॥

शिवशर्मोवाच

निशम्यैतद्वचस्तातस्ततो मम ऋतप्रियः । उवास सदने सर्वविषयेभ्यः पराङ्मुखः ॥३४॥
त्रिषु कालेषुगङ्गायांप्रत्यहं स्नानमाचरन् । पुराणं स्याद्गृहे यत्रतत्र याति स नित्यशः ॥३५॥
एकदाकर्णयन्धीरो यमुनातीर्थगौरवम् । तत्र शुश्राव माहात्म्यमस्य तीर्थस्य पुत्र सः ॥३६॥
अविमुक्तहरिद्वारप्रयागेभ्यश्चपुष्करात् । अयोध्याद्वारिकाकाञ्चीमथुराभ्यस्तथाऽन्यतः ॥३७॥
सर्वतीर्थमयस्याऽसय पुण्यं शतगुणाधिकम् । कथितंतेनविदुषासुतेनाऽऽकर्ण्यमत्पिता ॥३८॥

तरह प्रारब्ध कर्मों को भोगते हुए और अन्य कर्मों को उत्पन्न नहीं करते हुए सत्सङ्ग रूपी औषधि का पान करके संसार रूपी रोग को विनष्ट करूँगा ॥२५॥ **शिवशर्मा ने कहा—** इस तरह की अपने पिता की बातों को सुनकर हे विष्णुशर्मन् ! मैंने जो कहा उसे सुनो ॥२६॥ यह मनुष्य दुराराध्य है और हम दोनों के यश को कहेगा । दुष्ट यह परिवार से ऊबकर निकलकर चला गया ॥२७॥ हे तात ! यह विष्णुपदी तीनों लोकों को पवित्र करने वाली है । स्मरण करने मात्र से पापों को विनष्ट कर देती है, इसको आप क्यों छोड़ रहे हैं ?॥२८॥ हे तात ! जो पापी मनुष्य मगध में मरता है । अस्थि को गङ्गा में डाल देने से वह भी स्वर्ग में चला जाता है अतएव इस शुभ को न त्यागें ॥२९॥ सगर के साठ हजार पुत्र जो महर्षि कपिल के क्रोध से दग्ध हो गये थे भी गङ्गा के जल के स्पर्श से स्वर्ग चले गये ॥३०॥ उसी गङ्गा को जो स्वर्ग की सीढ़ी है और मुक्ति को भी देने वाली है । हे तात ! मुमुक्षु पुरुष इसका सेवन करते हैं, उसको छोड़कर आप अन्यत्र नहीं जाइये ॥३१॥ देवताओं के द्वारा सम्मानित गङ्गा जो सन्निकट में विद्यमान हैं उनकी अवहेलना न करें । महाभाग यदि आप चाहते हैं कि सेवा करने से यह प्रदान करेगी ॥३२॥ पशु, पक्षी भी ज्ञान के बिना ही इसके जल में अपने प्राण का त्याग करते हैं तो वे भी ब्रह्म हो जाते हैं उस गङ्गा को आप क्यों त्यागते हैं ?॥३३॥ **शिवशर्मा ने कहा—** सत्य को प्रिय जानने वाले मेरे इस वचन को सुनकर पिता सभी विषयों से विमुख हो अपने घर में ही रहने लगे ॥३४॥ वे प्रतिदिन तीनों कालों में गङ्गाजल में स्नान करते थे । घर पर ही जहाँ पुराणों की कथा होती थी वहाँ नित्य जाते थे ॥३५॥ एक बार वे यमुना तीर्थ की महिमा को सुनकर हे पुत्र ! वे इस तीर्थ का माहात्म्य सुने ॥३६॥ अविमुक्त क्षेत्र, हरिद्वार, प्रयाग तथा पुष्कर से तथा अयोध्या द्वारका तथा मथुरा एवं अन्य तीर्थों के भी सर्वतीर्थमय इस तीर्थ को सौ गुना अधिक माहात्म्य कथा वाचक ने बतलाया । उसको सुनकर मेरे पिता किसी को देखे बिना अपने

त्यक्त्वा गृहमगादत्रतीर्थे सर्वैरलक्षितः । आवामिव महाभागो गोविन्दपदसेवकः ॥३९॥
अत्राऽऽगत्य महाभागो मत्पिता मोक्षवाञ्छया ।
तनगमोद्बोधके तीर्थे त्रिकालं स्नानमाचरन् ॥४०॥
उवासकतिचिन्मासानत्र तीर्थोत्तमेहिसः । कुर्वन्निजक्रियांधीमान्निःस्पृहोऽप्यजवेश्मनि ॥४१॥
एकदा सहसा तस्य ज्वरोऽभूदतिदारुणः । महत्या पीडया तस्य मुमोह गतचेतनः ॥४२॥
मुहूर्तं स पितामुह्यस्तदवस्थो व्यतिष्ठत। पश्चात्समागतप्राणो व्यचिन्तयदिदं तदा॥४३॥
अहो मे कष्टमापन्नं दूरेपुत्रः स धार्मिकः । यो मां ज्वरवितप्ताङ्गमाश्वासयति बुद्धिमान् ॥४४॥
अगम्यागमनं पापं कृतं यन्मे सुदारुणम् । प्रायश्चित्तं न तस्याऽपि कृतंकामेगतिर्भवेत् ॥४५॥
आगमिष्यति पुत्रो मे तस्मै दास्यामि वस्विति ।
यन्मया गोपितं गेहे न दृष्टं च मयाऽपि तत् ॥४६॥

शिवशर्मोवाच

इतिचिन्तयतस्तस्य पान्थो वर्षेण पीडितः । शीतार्तः कम्पितवपुरुटजं प्राविशत्तदा ॥४७॥
सतं सम्विष्टमालोक्य भूयो गत्वातदन्तिके । मुनिरेष इतिज्ञात्वा ववन्दे शिरसाध्वगः ॥४८॥
ऊचे च कस्मात्सुप्तोऽसि मुने ! सन्ध्या समागता ।
रविरस्तं प्रयात्येष न सुप्तेः काल एष ते ॥४९॥
इत्युक्तमात्र वचसि पथिकेन पिता मम । शरभोज्वरतप्ताङ्गस्तमाह कथमप्यहो ॥५०॥

शरभ उवाच

श्रूयतां वचनं पान्थयद्वदामि पुरस्तव । श्रुत्वा मद्भाग्ययातेन त्वया साधो ! विधीयताम्॥५१॥

घर को त्यागकर इस तीर्थ में आ गये । हम दोनों के ही समान भगवान् गोविन्द के चरणों के सेवक वे॥३७-३९॥ वे महाभाग मोक्ष प्राप्ति की इच्छ से मेरे पिता निगमोद्बोधक तीर्थ में तीनों कालों में स्नान करते हुए ॥४०॥ वे इस उत्तम तीर्थ में कुछ महीने निवास किए । वे बुद्धिमान अपनी क्रिया को निःस्पृह होकर करते रहे ॥४१॥ एक दिन उनको एकाएक अत्यन्त भयङ्कर ज्वर हुआ । अत्यधिक पीड़ा के कारण वे मूर्छित हो गये ॥४२॥ मेरे पिता उसी तरह मूर्छित रहकर पड़े रहे । जब उनको होश हुआ तो वे यह सोचने लगे ॥४३॥ अरे मेरा धार्मिक पुत्र मुझसे दूर है जो बुद्धिमान ज्वर संतप्त अङ्ग वाले मुझको आश्वस्त करता था ॥४४॥ आते हए मैंने जो भयङ्कर पाप किया उसका मैंने प्रायश्चित नहीं किया । न जाने मेरी कौन सी गति होगी ॥४५॥ मेरा पुत्र आयेगा तो उसको मैं अपनी वस्तुओं को दे दूँगा । जिसको मैंने अपने घर में छिपाकर रख दिया उसे मैंने देखा भी नहीं ॥४६॥ **शिवशर्मा ने कहा—** इस तरह सोचते हुए उनकी झोपड़ी में वर्षा से पीड़ित पथिक प्रवेश किया । ठण्ठी से उसका शरीर काँप रहा था ॥४७॥ वे उसको प्रवेश किए देखकर उसके सन्निकट जाकर उसको कोई मुनि समझकर शिर झुकाकर वन्दना किए । उस पथिक ने कहा तुम क्यों सोऐ हो सायंकाल की बेला आ गयी है । सूर्यास्त हो रहा है यह सोने की बेला नहीं है पथिक के द्वारा इस तरह कहने पर मेरे पिता जिनका शरीर ज्वर से संतप्त था कहे यह कैसे हो गया ॥४८-५०॥ **शरभ ने कहा—** हे पथिक ! जो मैं कहता हँ उसे तुम सुनो । हे साधो ! मेरे भाग्य से आये हुए आप उसे करो ॥५१॥ मैं शरभ नामक वैश्य हूँ । मेरा घर कान्यकुब्ज में है । मैं अपनी पत्नी

वैश्योऽहंशरभोनाम्ना कान्यकुब्जेगृहंमम । अत्राऽऽगतोनिषिद्धोऽपिजायामित्रसुतैरहम् ॥५२॥

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं श्रुत्वा सूनुमुखेरितम् ।

मासास्तुकतिचित्साधो ! व्यतीता मयि चाऽऽगते ॥५३॥

दिनत्रयमतिक्रान्तं ज्वरितस्य ममाऽधुना । प्राणामे विगता आसन्नद्य भूयः समागताः ॥५४॥

कियानप्यायुषः शेषः साधो ! मे खलु तिष्ठति ।

शमनस्य गृहां दृष्ट्वा यदहं पुनरागतः ॥५५॥

भाग्योदयेन केनापि ममाऽत्रत्वं समागतः । नय मां मद्गृहं मित्र द्रव्यं बहु ददामि ते ॥५६॥

दास्याम्यपि गृहं गत्वा कृपां कुरु कृपानिधे ! ।

इह भूभागउत्खायगृह्यतांमामकं धनम् ॥५७॥

शिवशर्मोवाच

इत्याकर्ण्य स दुर्बुद्धिर्ग्राम्यो विषयलम्पटः । उवाच धनलुब्धस्तं त्वदुक्तंसाधयाम्यहम् ॥५८॥

इत्युक्त्वाधनमुत्खायतस्माद्भूभागतस्तदा । अग्रतःस्थापयामास शरभस्याऽऽहचाध्वगः ॥५९॥

अध्वग उवाच

धनमेतदिशां नाथ ! तत्र भूभागतोमया । निष्कासितं प्रयच्छाऽऽशु शिबिकानयनायमे ॥६०॥

यामारोप्य ज्वरार्तं त्वां नयामि तव केतनम् ॥६१॥

शिवशर्मोवाच

इत्युक्तस्तेन स तदा ददौ स्वर्णपलत्रयम् । सोऽपि नीत्वा पितुर्द्रव्यं ययौलवणपत्तनम् ॥६२॥

उषित्वा रात्रिमेकां तु शिबिकां सपरिच्छदाम् ।

सवाहामानयत्पुत्र ! दत्त्वा स्वर्णपलद्वयम् ॥६३॥

पुत्र तथा मित्रों के बरजने पर भी यहाँ आ गया हूँ ॥५२॥ अपने पुत्र के मुख से कहे गये इस तीर्थ के माहात्म्य को सुनकर हे साधो ! मेरे यहाँ आये कुछ महीने बीत गये हैं ॥५३॥ ज्वर से ग्रस्त हुए मेरे तीन दिन बीत गये हैं । मेरे तो प्राण ही निकल गये थे किन्तु आज वे पुनः आ गये हैं ॥५४॥ हे साधो ! मेरी आयु के कुछ ही भाग अवशिष्ट हैं क्योंकि यमराज के गृह को देखकर मैं पुनः आ गया हूँ । मेरे भाग्योदय के कारण तुम यहाँ आये हो अतएव मित्र तुम मुझे मेरे घर ले चलो मैं तुम्हें बहुत धन दूँगा ॥५५-५६॥ मैं घर ही जाकर उसे दे पाऊँगा हे कृपानिधि ! तुम मेरे ऊपर कृपा करो । यहाँ पर तुम पृथिवी को खोदकर मेरे धन को ले लो ॥५७॥ **शिवशर्मा ने कहा—** इस बात को सुनकर वह दुर्बुद्धि तथा विषय लम्पट धन के लोभ से उनको कहा कि तुम्हारे द्वारा कहे कार्य को मैं करता हूँ ॥५८॥ इस तरह से कहकर वह उस भूषण को खनकर शरभ के सामने रख दिया और उस पथिक ने कहा ॥५९॥ हे वैश्यपते ! तुम्हारे भूभाग से मैंने धन निकाल लिया है तुम मुझे शीघ्र ही शिविका लाने के लिए धन दो ॥६०॥ उसी पर बैठाकर ज्वर से आर्त बने हुए तुम्हारे घर ले चलता हूँ ॥६१॥ **शिवशर्मा ने कहा—** उसके द्वारा इस तरह से कहने पर उन्होंने उसे तीन पल सुवर्ण दिया । मेरे पिता के द्रव्य को लेकर लवण नामक ग्राम में चला गया ॥६२॥ एक रात रहकर परिच्छद से युक्त शिविका को वाहकों के साथ दो पल

पलद्वयं गृहीतं तत्तेनैवाऽधर्मबुद्धिना। आरोप्य शिबिकां तं तु शरभं वैश्यसत्तमम्॥६४॥
पान्थः स चलितो वाहांस्त्वरयन्कान्यकुब्जकम् ।
अस्य तीर्थवरस्याऽथ कमण्डलुजलं धृतम् ॥६५॥
पाययन्नल्पमल्पं तं तृषार्तं सोऽध्वगो ययौ। अथ ते सरसस्तीरउत्तीर्णाभोक्तुमध्वनि॥६६॥
स्नात्वा भुक्त्वा पुनस्तस्मात्थानाच्चेलुस्त्वरान्विताः ।
कियन्तीं भूमिमुल्लङ्घ्य तृषार्तास्ते कमण्डलोः ॥६७॥
जलं पीत्वातृषार्ततं शरभं चाप्यपाययत्। अथ कश्चिन्महाभीमो विकटोनामराक्षसः॥६८॥
विचरन्निर्जनेऽरण्ये गच्छतस्तानवैक्षत। तान्दृष्ट्वा स क्षुधाक्रान्तो वेगवान्विवृताननः॥६९॥
अभिदुद्राव चरणाघातेनाकम्पयन्महीम्। आगत्य तरसा पार्श्वे तान्वाहान्पथिकंचतम्॥७०॥
स केशषु समादाय भ्रामयामास खेचरः। गतासून्भ्रामणेनैव भूतले तानपोथयत्॥७१॥
चखाद पिशितं तेषा पपौ कोशाच्चशोणितम् ।
कुत्रयास्यतिरोगार्तोनरोऽयंपुरतो मम ॥७२॥
एनं तु भक्षयिष्यामिपश्चादम्बुपिबाम्यहम्। इतिकृत्वामतिंवारितीर्थस्यास्यकमण्डलोः ॥७३॥
मुखे चिक्षेप स तदा रजनीचरपुङ्गवः। क्षिप्तामात्रे जले तस्य पूर्वजन्मभवा स्मृतिः ॥७४॥
जाता स तु वधात्तस्य शरभस्य न्यवर्तत। पूर्वजन्मकृतं पापं तदपिस्मृतिमागमत्॥७५॥
येन राक्षसभावस्तु भूतोविप्रोद्भवादपि। स्मृत्वा पादमुपेत्याऽऽशुसमीपेशरभस्य तु ॥
उवाच ज्ञानमापन्नो राक्षसः पितरं मम ॥७६॥

सुवर्ण देकर लाया ॥६३॥ उस अधर्म बुद्धि वाले ने दो पल स्वयं रख लिया। उस शरभ नामक उत्तम वैश्य को उस शिविका पर बैठाकर ॥६४॥ पथिक वाहकों को कान्यकुब्ज के लिए शीघ्रता करते हुए चल दिया। इस श्रेष्ठ तीर्थ के जल को कमण्डलु में रखकर ॥६५॥ उनको थोड़ा-थोड़ा पिलाते हुए वह पथिक गया। उसके बाद वे सरोवर के तट पर खाने के लिए मार्ग में उतरे ॥६६॥ स्नान करके तथा खाकर वे शीघ्रता से वहाँ से चल पड़े। रास्ते में कुछ दूर जाकर वे प्यास से व्याकुल होकर कमण्डलु के जल को पीकर प्यासे हुए शरभ को भी उसे पिलाये। उसके बाद कोई अत्यन्त भयङ्कर विकट नामक राक्षस ॥६७-६८॥ निर्जन वन में विचरण करते हुए उन सबों को देखा। उन सबों को देखकर भूखा हुआ वह अपना मुख खोलकर वेग पूर्वक ॥६९॥ अपने चरणों के प्रहार से पृथिवी को कँपाते हुए दौड़ा। वेग से पास में आकर उन बाहकों तथा पथिक को ॥७०॥ केश को पकड़कर आकाश में चलने वाला वह घुमाया। घुमाने से ही मरे हुए उनको उसने पृथिवी पर पटक दिया ॥७१॥ उनके मांस को उसने खा लिया और उनके रक्त को उसने पी लिया। रोग से आर्त बना हुआ यह मनुष्य मेरे सामने से कहाँ जायेगा॥७२॥ इसको मैं बाद में खाऊँगा। अभी मैं खून नहीं पी रहा हूँ। इस तरह से सोचकर उसने कमण्डलु के जल को अपने मुख में डाला। उस समय वह श्रेष्ठ राक्षस को मुख में जल को डालने मात्र से पूर्व जन्म की स्मृति हो गयी। उसके कारण वह उस शरभ को नहीं मारना चाहा। उसने पूर्व जन्म गें जो पाप किया था उसकी भी उसे याद आ गयी ॥७३-७५॥ जिसके कारण वह विप्र राक्षस योनि में चला गया था।

राक्षस उवाच

भोभोमनुष्यशार्दूल ! कस्त्वं के च जनाअमी ।
भक्षिता ये मया घोररूपेणाऽधमरक्षसा ॥७७॥
कस्य तीर्थवरस्येदं जलं यस्य प्रभावतः। पापिनोऽपि स्मृतिर्जाता पूर्वजन्मभवा मम॥७८॥

वैश्य उवाच

वैश्योऽहं राक्षसश्रेष्ठ ! कान्यकुब्जे गृहं मम ।
तीर्थानि पर्यटन्निन्द्रप्रस्थेऽहं समुपागतः ॥७९॥
तत्राहमभवं दुःखी ज्वरेण विधियोगतः। ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना गन्तुं गृहमसत्पथ !॥८०॥
तत्र कश्चित्समायातः पान्थोवर्षेणपीडितः । प्रार्थितः स मयाऽऽनीयशिबिकांमांग गृहंनय ॥८१॥
स चाऽयं शिबिकां पान्थः समुपानीय सत्वरः ।
मामारोप्य च तां धीरश्चलितो मद्गृहं प्रति ॥८२॥
स पान्थस्तेचशिबिकावाहाःसम्प्रतिभक्षिताः । त्वयाजलमिदंयस्यतीर्थस्याऽपिचतच्छृणु ॥८३॥
इन्द्रस्य खाण्डववने यमुनाऽस्ति सरिद्वरा। तत्तीरेऽस्तिरिप्रस्थं तीर्थंतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥८४॥
सुराचार्यस्य तत्राऽस्ति तीर्थं सर्वार्थसाधकम् ।
निगमोद्बोधकं जाता स्मृतिस्ते यज्जलाशनात् ॥८५॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । पृच्छामित्वामहंकिंचित्तद्वदाऽऽशुनिशाचर ! ॥८६॥
पूर्वजन्मकृतं कर्म स्मरसि त्वमिहाऽधुना । वद किं ते कृतं पापं येनजातोऽसिराक्षसः ॥८७॥

राक्षस उवाच

पुराहमभवं विप्रः पुण्ये वेदविदां कुले। दुराचारो ह्यधर्मात्मा श्रृणु सर्वं वदामि ते ॥८८॥

उसको याद करके वह शरभ के समीप उनके चरण पर गिर पड़ा । वह राक्षस ज्ञान प्राप्त करके शरभ से कहा ॥७६॥ **राक्षस ने कहा—** हे मनुष्य श्रेष्ठ ! आप कौन है ? तथा ये लोग कौन थे ? जिनलोगों को घोर रूप वाले मैं अधम राक्षस ने खा लिया ॥७७॥ किस श्रेष्ठ तीर्थ का यह जल है जिसके प्रभाव से मुझ पापी को भी पूर्वजन्म की यादगारी हो गयी है ॥७८॥ **वैश्य ने कहा—** हे राक्षस श्रेष्ठ ! मैं वैश्य हूँ मेरा घर कान्यकुब्ज में है । तीर्थों में घूमता हुआ मैं इन्द्रप्रस्थ आया ।७९॥ वहाँ पर भाग्यवशात् मैं ज्वर से दुःखी हो गया । उसके कारण मेरी बुद्धि घर जाने की हो गयी ॥८०॥ वहाँ कोई वर्षा से पीड़ित पथिक आया मैंने उससे प्रार्थना की तुम शिविका लाकर मुझे घर पहुँचा दो ॥८१॥ वह पथिक शीघ्र ही शिविका लाकर उस पर मुझको चढ़ाकर धैर्य सम्पन्न मेरे घर की ओर चल दिया ॥८२॥ उस पथिक और शिविका को वहन करने वालों को तुम खा लिए । जिस तीर्थ का जल तुम पीये हो उसे सुनो ॥८३॥ इन्द्र के खाण्डव वन में नदी श्रेष्ठ यमुना है उसी के तट पर इन्द्रप्रस्थ नामक उत्तम तीर्थ हैं ॥८४॥ वहाँ पर देवताओं के गुरु का तीर्थ है जो सभी प्रयोजनों का साधक है । उसका नाम निगमोद्बोधक है जिसका जल पीने से तुमको पूर्व जन्म की स्मृति हो गयी है ॥८५॥ तुमने जो पूछा था उन सारी बातों को मैंने बतला दिया मैं तुमसे कुछ पूछ रहा हूँ । हे निशाचर ! उसे तुम बतलाओ ॥८६॥ इस समय तुम पूर्वजन्म के किए हुए कर्मों को स्मरण करते हो । बतलाओं तुमने कौन सा कर्म किया है जिससे कि तुम राक्षस हुए

क्रीडता हि मया नित्यं द्यतेन सह तद्विदैः । हारितं द्रविणं भूरि स्वकीयं पितुरेव च ॥८९॥
पित्रा निवेद्य भूपाय मामकं कर्म तज्जनैः । पुरान्निःसारितोनिःस्वोगतोऽहं ग्राममन्तिके ॥९०॥
तत्रासीन्मे सखानाम देवको ब्राह्मणोत्तमः । तेनाहं रक्षितो गेहे कुर्वता चिरमादरम् ॥९१॥

वस्तुं तत्र सुखेनाऽत्रहं तद्भार्यां रूपशालिनीम् ।
कामातुरोऽहमभजंबलान्मित्रेगतेक्वचित् ॥९२॥
सा मृता तत्क्षणात्साध्वी भक्षयित्वा महाविषम् ।
तां दृष्ट्वा तमसायुक्ते निशीथेऽहं पलायितः ॥९३॥

पलायमानस्तरसा धृतोऽहं राजकिङ्करैः । चौरोऽयमिति खड्गेन चिच्छिदुस्तेशिरो मम॥९४॥
मृतं मां यातनादेहमावेश्य यमकिङ्कराः । रौरवे निरये घोरे चिक्षिपुर्यमशासनात्॥९५॥
पष्टिवर्षसहस्राणि तत्राऽहं तीव्रयातनाम् । भुत्तवा तेनैव पापेन राक्षसत्वमुपागतः ॥९६॥
शतवर्षाण्यतीतानि राक्षसत्वे विशाम्पते !। वदामितमुपायमे येनास्मान्मुक्तिमाप्नुयाम् ॥९७॥
पुण्यं तदार्पिते साधो वदामिश्रृणुसादरम् । येन तीर्थवरस्येदं जलं मम मुखे गतम्॥९८॥
तत्रैव जन्मनि मया कृत्वा हरिदिने व्रतम्। संसर्गान्नेच्छया वैश्य ! रात्रौ जागरणंकृतम् ॥९९॥
द्वादश्यामथ संस्नात्वा भोक्तुंमयिसमुद्यते। मद्गृहे कश्चिदायातोवैष्णवोविष्णुरूपधृत्॥१००॥
कुपितोऽहं तमालोक्य दुर्वचोऽवदमग्रतः । क्व गच्छसि दुराचार दाम्भिकस्त्रीजनान्तरे ॥१०१॥

हो ॥८७॥ **राक्षस ने कहा**— पूर्वजन्म में मैं पवित्र कुल में उत्पन्न ब्राह्मण था । मैं दुराचारी और अधार्मिक था । मैं सब कुछ बतला रहा हूँ उसे तुम सुनो ॥८८॥ जूए के जानकारों के साथ मैं सदा जूआ खेलता था और मैंने अपने पिता के बहुत अधिक धन को हार गया ॥८९॥ उन लोगों ने मेरे पिता को बतलाकर राजा के द्वारा बिना किसी धन के मुझे नगर से निकलवा दिया । मैं सन्निकट के ग्राम में चला गया ॥९०॥ वहाँ पर मेरे देवक नामक मित्र थे । वे उत्तम ब्राह्मण थे, उन्होंने मुझे अपने घर में आदर पूर्वक दीर्घकाल तक रखा ॥९१॥ वहाँ पर सुखपूर्वक रहने के लिए मैं जब मेरे मित्र कहीं गये थे तो उनकी रूपवती पत्नी के साथ कामातुर मैं बलपूर्वक रमण किया ॥९२॥ वह साध्वी उसी समय महाविष खाकर मर गयी । उसको देखकर मैं अन्धकार पूर्ण आधी रात को वहाँ से भाग गया ॥९३॥ जब मैं वेग से भाग रहा था तो राजा के भृत्यों ने मुझे पकड़ लिया । यह चोर है यह जानकर उन सबों ने खड्ग से मेरे शिर को काट दिया ॥९४॥ मेरे मर जाने पर मेरे यातना शरीर को यमदूतों ने यम की आज्ञा से रौरव नरक में डाल दिया॥९५॥ वहाँ पर साठ हजार वर्षों तक अतीव यातना को भोगकर उसी पाप से मैं राक्षस हो गया॥९६॥ हे वैश्य ! श्रेष्ठ मुझे रासक्ष हुए सौ वर्ष बीत गये । आप मुझे उस उपाय को बतलायें जिससे मेरी मुक्ति हो जाय ॥९७॥ हे साधो ! उस पुण्य को प्रदान करने पर उसे आप आदर पूर्वक सुनें । जिसके कारण उस श्रेष्ठ तीर्थ का जल मेरे मुख में गया है उसी जन्म में मैं एकादशी के दिन व्रत किया । इच्छा से नहीं अपितु संसर्ग के कारण मैंने रात्रि में जागरण किया ॥९८-९९॥ द्वादशी के दिन स्नान करके जब मैं भोजन करने के लिए तैयार होने पर मेरे घर को विष्णुरूपधारी वैष्णव आये ॥१००॥ क्रुद्ध होकर मैं उनके सामने ही गाली दिया । ऐ दुराचारी ! दाम्भिक स्त्रियों के बीच कहाँ जा रहे हो ॥१०१॥ इस तरह से मेरे द्वारा कहे

इत्युक्तः स मया धीरस्तुल्यो मानापमानयोः ।
तूष्णीमेव निकेतान्मे निर्गत्य चलितो यदा ॥१०२॥
तदाभिमुखमायान्ती पत्नी मम पतिव्रता । पतित्वा पादयोस्तस्य तं साधुं गृहमानयत् ॥१०३॥
मयाऽपमानितस्याऽपि न क्रोधोऽभून्महात्मनः ।
तयाऽऽदृतस्याप्यानन्दो यतः सोऽरिसुहृत्समः ॥१०४॥
तमर्चयित्वा विधिवद्विष्टरे चोपवेश्य सा । भोज्यं भोजया जीवेश जयताद्भुवनत्रयम् ॥१०५॥
इत्युक्तोऽहं तयासाध्व्यान्यगदंतंमहाशयम् । म्लानवक्त्रःप्रसन्नास्यमुत्तिष्ठशमयक्षुधाम् ॥१०६॥
इत्युक्त्वा तस्य चरणौ नोदितस्तनुमध्यया । प्रक्षालयं पुनस्तं तु निवेश्यासन उत्तमे ॥१०७॥
अददां पात्रमन्नेन पूर्णं तस्मै विवेकिने । जलं च तत्करे साध्व्याप्रेरितोऽहं तया मुहुः ॥१०८॥
उपभुज्य स धर्मात्मा स्वैरं विगतविक्रियः । हरेरामहरेकृष्णजपन्निति जगाम ह ॥१०९॥
कृतं पुण्यमिदं वैश्य ! नोदितेन मया स्त्रिया ।
पूर्वजन्मनि येनेदं प्रापितं तीर्थवारि मे ॥११०॥

शिवशर्मोवाच

विष्णुशर्मन्निदं वाक्यमुक्त्वा तिष्ठति राक्षसे। पथिकःसचतेवाहाःप्राहुःखे दिव्यदेहिनः॥१११॥

पथिकावाहाऊचुः

भोभोविशांपते साधोप्राप्ताअप्यपमृत्युताम् । त्वत्प्रसादादिदंवारिपीत्वादेवत्वमागताः ॥११२॥
त्वत्सङ्गे धनलोभेन विट्पते चलिता यतः । विगता न धनाकाङ्क्षा मरणावसरेऽप्यतः॥११३॥
तीर्थराजजलस्याऽस्य तिष्ठतो जठरे हिनः । मरणे ह्यनुभावात्तु मैत्री प्राप्ता धनेशितुः ॥११४॥

जाने पर मान तथा अपमान को एक समान मानने वाले वे जब चुपचाप मेरे घर से निकलकर चल दिये॥१०२॥ उसी समय सामने से आती हुयी मेरी पतिव्रता पत्नी ने उन साधु के चरणों पर गिरकर उनको मेरे घर लायी ॥१०३॥ मेरे द्वारा अपमानित होने पर भी उनको क्रोध नहीं हुआ । उसके द्वारा समादृत होने के कारण उनको आनन्द हुआ क्योंकि वे मित्र तथा शत्रु को एक समान मानते थे ॥१०४॥ उनकी विधि पूर्वक पूजा करके उसने आसन पर बैठाकर हे प्राणेश ! इनको आप भोजन करायें, ऐसा करके आप तीनों लोकों को जीत लेंगे ॥१०५॥ इस तरह से उस साध्वी के कहने पर मैं उन महाशय को कहा हे मलिन! मुख वाले प्रसन्न मन से उठ कर आप भोजन करें ॥१०६॥ इस तरह कहकर उस सुन्दरी के द्वारा प्रेरित होकर मैंने उनके चरणों को धोया और उनको उत्तम आसन पर बैठाया ॥१०७॥ मैंने उन विवेकी पुरुष को अन्न से पूर्ण पात्र प्रदान किया । उस साध्वी के द्वारा प्रेरित होकर मैंने उनके हाथ पर जल दिया॥१०८॥ भोजन करके वे धर्मात्मा विकार रहित होकर अपनी इच्छानुसार हरे राम ! हरे कृष्ण ! जपते हुए चले गये॥१०९॥ हे वैश्य ! पत्नी के द्वारा प्रेरित होकर मैंने इस पुण्य को पूर्व जन्म में किया उसी के कारण मुझे तीर्थ का जल प्राप्त हुआ है ॥११०॥ **शिवशर्मा ने कहा—** हे विष्णु शर्मन् ! जब राक्षस इस वाक्यों कहकर चुप हुआ वह पथिक और वे बाहक दिव्य शरीर धारण करके आकाश में बोले ॥१११॥ **पथिक और वाहकों ने कहा—** हे वैश्यवर्य ! मृत्यु को भी प्राप्त करके तुम्हारी कृपा से जल पीकर हमलोग स्वर्ग में देवता हो गये हैं ॥११२॥ हे वैश्यपते ! धन के लोभ से जो हमलोग चले वह धन की आकांक्षा चूकि

नमामस्त्वां वयं यामो धनेशनगरीं प्रभो ! । विमानैस्तद्गणानीतैर्नानामणिविभूषितैः ॥११५॥
प्रयाहि माविलम्बस्य तीर्थे निगमबोधके। त्वमनेन समं साधो तारयैनमपि द्रुतम् ॥११६॥

शिवशर्मोवाच

इत्युक्त्वाते गतास्तात दिश्युदीच्यांसमन्ततः । विमानकिङ्कणीनादैर्नादयन्तोऽथरोदसी ॥११७॥
अथ वैश्यो मम पिता तमाह रजनीचरम् ॥११८॥

शरभ उवाच

उत्तिष्ठ नयमामाशु तीर्थे निगमबोधके। ज्वरार्त्तेन मया पद्भ्यां तत्र गन्तुं न शक्यते॥
यो मां नयति तत्तीर्थे त्वदन्यो नास्ति कश्चन ॥११९॥

शिवशर्मोवाच

तथेति तमथाऽऽश्वास्य वैश्यं स रजनीचरः ।
स्कन्धमारोप्य वेगेन तत्तीर्थपावनंययौ ॥१२०॥
ऊषतुस्तावुभौ तत्र विट्पतिः स च राक्षसः ।
कुर्वन्तौ स्नानमात्र तु सर्वतीर्थोत्तमोत्तमे ॥१२१॥
अथाऽहं पितुराकर्ण्य महतीं गुरुवेदनाम् । तं प्रतिप्रेरितो मात्रा चलितो निजसद्मतः ॥१२२॥
अत्राऽऽगत्य मया दृष्टः स महाज्वरपीडितः ।
मूर्ध्ना च वन्दितस्तेन दत्ताशीरभ्यभाषिच ॥१२३॥

शरभ उवाच

किमर्थमिहभोस्तात ! दूरमार्गे समागतः। दिनानि कतिचित्तिष्ठनकुर्वन्नत्र निजक्रियाम् ॥१२४॥

नहीं है । मृत्यु के समय भी समाप्त नहीं हुयी थी ॥११३॥ फिर भी तीर्थ राज का जल हमलोगों के पेट में था मरने पर भी उसके प्रभाव से हमलोग धनी के मित्र हो गये हैं ॥११४॥ हमलोग आपको नमस्कार करते हैं और कुबेर की नगरी में जा रहे हैं । हमलोग गणों द्वारा अनेक मणियों से अलंकृत विमान से लाये गये हैं ॥११५॥ आप विलम्ब न करें आप निगमोद् बोधक तीर्थ में चले जायँ । हे साधो ! आप इसी के साथ जायँ और इसको भी तार दें ॥११६॥ **शिवशर्मा ने कहा—** हे तात ! यह कहकर वे विमान के धुंघुरू से आकाश और पृथिवी को निनादित करते हुए उत्तर दिशा में चले गये ॥११७॥ उसके बाद मेरे पिता ने उस राक्षस से कहा ॥११८॥ **शरभ बोले—** तुम उठो और शीघ्र मुझको निगमोद् बोधक तीर्थ में पहुँचाओ । मैं ज्वर से आर्त हूँ अतएव मैं पैदल नहीं जा सकता अब तुमसे भिन्न कोई मुझे उस तीर्थ में पहुँचाने वाला नहीं है ॥११९॥ **शिवशर्मा ने कहा—** उस राक्षस ने कहा ठीक है इस तरह से कहकर उस वैश्य को उसने आश्वस्त किया और उनको अपने कन्धे पर चढ़ाकर उस पवित्र तीर्थ में चला गया॥१२०॥ वहाँ पर वे दोनों वैश्य और राक्षस निवास किए । वे दोनों सभी तीर्थों से उत्तम तीर्थ में स्नान करते थे॥१२१॥ उसके बाद में पिता की भयङ्कर वेदना को सुनकर अपनी माता के द्वारा प्रेरित होकर उनके पास घर से मैं चल दिया ॥१२२॥ यहाँ आकर मैंने उनको महाज्वर से पीड़ित देखा । मैंने उनको शिर से प्रणाम किया तथा उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया और कहा ॥१२३॥ **शरभ ने कहा—** हे तात ! तुम इस

विकटो नाम मे मित्रं राक्षसः सुमपैति वै। उत्तिष्ठ वपुषाऽमुष्य दण्डवत्पत पादयोः ॥१२५॥
न भेतव्यं त्वयाऽमुष्मात्त्यक्तहिंसादिकर्मणः। अधुना तीर्थमासाद्य सन्निधौममतिष्ठति ॥१२६॥

शिवशर्मोवाच

इत्युक्तोऽहं तदा पित्रा शरभेण महात्मना। उत्थाय पतितस्तस्य पादयोर्दण्डवद्भुवि ॥१२७॥
दोर्भ्यामुत्थाप्य मां सोऽथ गाढमालिङ्ग्य राक्षसः।
स्वागतं मित्रपुत्रेति जगादाऽऽशिषमीरयन् ॥१२८॥

राक्षस उवाच

भाग्यवानसि भोस्तात! यत्त्वमत्रसमागतः। पितुर्धर्मात्मनः श्रुत्वाज्वरपीडांसुदारुणाम् ॥१२९॥
पितुरानृण्यमाप्नोषि तीर्थे कृत्वा तिलौदकम्।
स्नात्वा कुरु क्रियाः स्वीयाः पूर्वजन्म स्मरिष्यसि ॥१३०॥

शिवशर्मोवाच

एवमुक्तस्तदा तेन स्नातुं तीर्थे वराम्भसि। प्रविष्टोऽहं स्मरंस्तात! पूर्वजन्मशुभाशुभम् ॥१३१॥
स्नात्वा विधिवदत्रैव पितुरन्तिकमागतः। अपृच्छं रक्षसोवृत्तं कुतोऽयं धर्मधीरिति ॥१३२॥
पित्रोक्तं रक्षसोवृत्तं वाहानां पथिकस्य च। श्रुत्वाऽहं तीर्थराजस्यस्तुतिमस्यचकारवै ॥१३३॥
पिता मे रोगनिर्मुक्तो भविष्यति यदा तदा। यास्यामि गृहमित्यत्र दशोषितमहानि मे ॥१३४॥
दशाहाभ्यन्तरे तात तातस्य मरणं मम। अभूदर्धजले ह्यस्य तीर्थराजस्य पश्यतः ॥१३५॥
अथो गरुडमारुह्य वक्षसा धारयञ्छ्रियम्। आजगाम स्वयं विष्णुर्नवीनघनविग्रहः ॥१३६॥

दूर के मार्ग में किए लिए आये हो ? यहाँ पर अपनी क्रिया को करते हुए तुम कुछ दिन ठहरो ॥१२४॥ मेरा मित्र विकट नामक राक्षस आता है। उठो उसको तुम उसके चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम करो ॥१२५॥ तुमको उससे डरना नहीं चाहिये उसने हिंसा आदि कर्मों को त्याग दिया है। अब इस तीर्थ में आकर वह मेरे पास ही रहता है ॥१२६॥ **शिवशर्मा ने कहा—** इस तरह अपने पिता शरभ के द्वारा कहे जाने पर मैंने उठकर दण्डे के समान पृथिवी पर गिरकर उसको प्रणाम किया ॥१२७॥ उसके बाद अपनी दोनों भुजाओं से उठाकर वह मेरा आलिङ्गन किया। और हे मित्र के पुत्र आपका स्वागत है यह कहकर आशीर्वाद दिया ॥१२८॥ **राक्षस ने कहा—** तुम भाग्यवान् हो कि यहाँ अपने धर्मात्मा पिता के भयङ्कर ज्वर की पीड़ा को सुनकर आ गये ॥१२९॥ अपने पिता को तिलोदक देकर अपने पिता के ऋण से रहित हो गये। तुम यहाँ स्नान करके अपने पूर्वजन्म का स्मरण करोगे ॥१३०॥ **शिवशर्मा ने कहा—** इस तरह से उसके द्वारा कहे जाने पर मैंने हे तात अपने पूर्व जन्म के पाप-पुण्य का स्मरण करते हुए उस श्रेष्ठ तीर्थ के जल में स्नान करने के लिए प्रवेश किया ॥१३१॥ विधि पूर्वक स्नान करके मैं अपने पिता के पास आया। मैंने राक्षस के वृत्तान्त को पूछा कि यह कैसे धार्मिक बुद्धि वाला हो गया ?॥१३२॥ पिता ने राक्षस के वृत्तान्त को बतलाया और पथिक और राक्षस के वृत्त को सुनकर मैंने इस तीर्थ राज की स्तुति की ॥१३३॥ जब मेरे पिता रोग से मुक्त हो जायेंगे तब मैं दश दिन यहाँ रहकर घर जाऊँगा॥१३४॥ दश दिन के भीतर ही मेरे पिता की आधे जल में इस तीर्थ को देखते हुए मृत्यु हो गयी ॥१३५॥ उसके

पीतवासाश्चतुर्बाहुः पङ्कजारुणलोचनः। ब्रह्मेन्द्रादिभिरादित्यैः सनाथैरन्धकारिणा ॥१३७॥
सेव्यमानो गुणग्रामान्गायद्भिः किन्नरैः सह। हाहाहूहूप्रभृतिभिः स्तूयमानश्च सर्वतः ॥१३८॥
दत्त्वा स्वकीयसारूप्यमारोप्य गरुडं तदा। पितरं मम ब्रह्माद्यैर्वृतो वैकुण्ठमारुहत् ॥१३९॥

पितुः सारूप्यमालोक्य विष्णोरहमचिन्तयम् ।
इतिचित्ते तदालोक्य जाततत्त्वोदये तदा ॥१४०॥
न हि वर्णयितुं शक्यो ह्यस्यतीर्थशिरोमणेः ।
महिमा यज्जलार्द्धेस्यान्मृतोजन्तुश्चतुर्भुजः ॥१४१॥

न मया सर्वथा त्याज्यं तीर्थराजमिदं ननुः। अञ्जसा दृढमाहात्म्यं धनरोगादितृष्णया ॥१४२॥
पितुरात्रोटजे तावत्स्थातव्यं हि मया मम। यावत्तु कर्मणां भुक्तिःप्रारब्धानां महीतले॥१४३॥

एवं तु चिन्तयित्वा च पितुः कृत्वा तु सत्क्रियाम् ।
रक्षसा तेन सहितः स्थितोऽहं मोक्षवाञ्छया ॥१४४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये शरभवैश्यस्येन्द्रप्रस्थमाहात्म्येन विष्णुसारूप्यवर्णनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४॥

पश्चात गरुड पर सवार होकर तथा वक्षःस्थल में लक्ष्मी को धारण किए हुए नवीन मेघ के समान शरीर वाले भगवान् विष्णु स्वयम् आये । वे पीताम्बर धारण किए हुए लाल कमल के समान नेत्र वाले थे । ब्रह्मा, इन्द्र आदित्य और अन्धकासुर के शत्रु शिवजी से सेवित थे । उनके गुण समूह को किन्नर गण गा रहे थे । हाहा, हूहू इत्यादि श्रीभगवान् की स्तुति कर रहे थे ॥१३६-१३८॥ भगवान् उनको अपना सारूप्य देकर और गरुड़ पर मेरे पिता को बैठाकर ब्रह्माजी आदि के साथ वैकुण्ठ में चले गये ॥१३९॥ पिता के भगवान् विष्णु के सारूप्य को देखकर मैंने उनका चिन्तन किया । उनको देखकर मेरे चित्त में तत्त्व का ज्ञान हो गया ॥१४०॥ इस तीर्थ श्रेष्ठ की महिमा का कोई वर्णन नहीं कर सकता है । इसके आधे जल में मरा हुआ जीव चतुर्भुज हो जाता है ॥१४१॥ अतएव निश्चित रूप से मुझको इस तीर्थ को इसके दृढ माहात्म्य तथा धन रोगादि के लालच से कभी छोड़ना नहीं चाहिए ॥१४२॥ पिता की झोपड़ी में मुझे जब तक प्रारब्ध कर्म का फल भोग न हो जाय तब तक रहना चाहिए ॥१४३॥ इस तरह से सोचकर पिता के और्ध्व दैहिक क्रिया को करके मैं मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से उस राक्षस के ही साथ रह गया ॥१४४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत शरभ वैश्य के इन्द्रप्रस्थ के माहात्म्य से भगवान् विष्णु के सारूप्य वर्णन नामक दो सौ चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०४।।

दो सौ पाचवाँ अध्याय

शिवशर्मोवाच

एकदाऽत्र महातीर्थे पङ्के मग्नां पयस्विनीम्। दृष्ट्वा स राक्षसश्रेष्ठस्तामुद्धर्तुं विवेश ह ॥१॥
गोरक्षणे महान्धर्मो रक्षितुः स्वर्गतिर्भवेत्। चिन्तयन्नितिमध्येतु सगृहीतोऽम्बुहस्तिना ॥२॥
नीतस्तु वारिणोऽधस्ताज्जलपूर्णोदरस्तदा। तत्याज जीवितं सद्यस्तेन पीडितविग्रहः ॥३॥
दिव्यरूपं समास्थाय विमानमपि ढौकितम्। गणेन प्रहितेनाऽथ देवैरिन्द्रपुरोगमैः ॥४॥
गच्छन्निति मयापृष्टः स निशाचरपुङ्गवः। मुक्तिदेऽत्र महातीर्थे मृत्युं प्राप्य सुदुर्लभे ॥५॥
कथं देवपदप्राप्तिर्जाता तव महामते !। इत्युक्तो मामुवाचेदं वाञ्छाऽऽसीदत्र मेऽनघ !॥६॥
तस्मिन्गते पुण्यजने स्वर्गं पुण्यवतां पदम्। एकाकिनामयाविष्णुःसद्गतिःप्रार्थितस्तदा ॥७॥

गच्छंस्तिष्ठन्स्वपञ्जाग्रत्स्नानं कुर्वश्च नित्यशः।
तमेव पुण्डरीकाक्षमहं दध्यावनन्यधीः ॥८॥

हरे ! तव पदाम्भोजमहं शरणमागतः। ब्रह्मत्वे च महेशत्वे नेन्द्रत्वे मम मानसम् ॥९॥
प्रार्थयन्नित्यहं तात ! तमेव पुरुषोत्तमम्। उषितोऽत्र महातीर्थे कृत्वा निर्विषयं मनः ॥१०॥

विष्णुशर्मोवाच

वसतोऽत्र महातीर्थे मरणं चेत्तवाऽभवत्। कथं जन्म पुनः प्राप्तं त्वयेति मम संशयः ॥११॥
मर्यादां यस्य तीर्थस्यत्यक्तवाऽपिधनलोभतः। राक्षसान्मरणंप्राप्ताःपथिकस्तेचवाहकाः ॥१२॥

शरभ के मित्र राक्षस का इन्द्रप्रस्थ तीर्थ का वर्णन

शिवशर्मा ने कहा— एक बार पंक में फँसी हुयी गौ को देखकर वह राक्षस श्रेष्ठ उसको निकालने के लिए उसमें प्रवेश किया ॥१॥ गौ की रक्षा करने से महान् धर्म होता है इस तरह से सोचते हुए उसको बीच में ही जल के हाथी ने पकड़ लिया ॥२॥ जल के भीतर ले जाने पर जल से पेट भर जाने के कारण उसके प्राण निकल गये क्योंकि वह उससे बहुत पीड़ित हो गया था ॥३॥ दिव्य रूप धारण करके गणों के द्वारा लाये गये तथा इन्द्र आदि देवताओं से भेजे गये विमान से जाते हुए उससे मेरे पूछने पर वह राक्षस श्रेष्ठ मुक्ति प्रद इस श्रेष्ठ तीर्थ में अत्यन्त दुर्लभ मृत्यु प्राप्त करके हे महामते ! कैसे वह देवलोक में तुम जा रहे हो। इस तरह से पूछने पर उसने मुझसे कहा कि हे अनघ ! मुझे स्वर्ग जाने की अभिलाषा थी ॥४-६॥ उस राक्षस के स्वर्ग जाने पर अकेले रहने वाले मैंने भगवान् विष्णु से सद्गति की प्राप्ति की प्रार्थना की ॥७॥ चलते, ठहरते सोते जागते तथा स्नान करते समय सदैव मैं भगवान् पुण्डरीकाक्ष का सदा ध्यान करता था। मेरा मन, ब्रह्मत्व, इन्द्रत्व तथा महेरत्व की प्राप्ति में नहीं होता था। हे हरे ! मैं आपके चरण कमलों के शरण में आया हूँ। इस तरह से मैं प्रार्थना हे तात ! उन्ही पुरुषोत्तम भगवान् से करते हुए इस महा तीर्थ में अपना मन निर्विषय बनाकर रहता था ॥८-१०॥ **विष्णु शर्मा ने कहा—** यदि इस महान तीर्थ में निवास करते हुए आपकी मृत्यु हुई तो फिर आपने जन्म कैसे लिया। यह मुझको महान् संशय है ॥११॥ जिस तीर्थ की यह मर्यादा है कि धन के लोभ से रक्षक के द्वारा मृत्यु को पाकर वह पथिक और शिविका वाहक भी उस तीर्थ के जल को पीकर स्वर्ग में चले गये। उसी तरह यह राक्षस

यस्य तीर्थवरस्याऽस्य जलपानाद्दिवंगताः । तथैव राक्षसोऽप्यस्मिन्नपमृत्युमवाप्यसः ॥१३॥
नक्रतः स्वेच्छया स्वर्गं जगाम तव पश्यतः ।
न नूनं तत्र मरणं जातं यज्जन्म दृश्यते ॥१४॥

नारद उवाच

शिवे ! निशम्य पुत्रस्य शिवशर्मा शुभं वचः ।
उवाच पूर्ववृत्तान्तं कारणं निजजन्मनः ॥१५॥

शिवशर्मोवाच

विष्णुशर्मञ्छृणुष्वेदं कारणं मम जन्मनः । कथयामि तवाग्रेऽहं श्रुत्वा निःसंसयो भव॥१६॥
एकदा विष्णुपूजायां मयि ध्यानं समास्थिते ।
दुर्वासाः प्रकृतिक्रोधी ममाऽऽश्रममुपागतः ॥१७॥
तमागतमविज्ञाय विष्णुध्यानपरायणः । तस्थिवांस्तदवस्थोऽहं चिरं तन्नाम संस्मरन्॥१८॥
स मुहूर्तं मुनिः स्थित्वा ममाग्रे क्रोधमूर्च्छितः ।
आत्मनात्मानमाहेदमुच्चैरारक्तलोचनः ॥१९॥

दुर्वासा उवाच

अहो ! अत्रेरहं पुत्रोऽनसूयागर्भसम्भवः । शिवांशो मानुषेणाऽलमवज्ञातोऽमुनाऽभवम् ॥२०॥
त्रिलोकी राज्यतः शक्रोमयायेन प्रपातितः । तं ममापि मनुष्योऽयमवजानाति दुर्मतिः॥२१॥
योबिभेतिन कःसोऽस्ति मत्तःकालानलादिव ।
मुत्तवादेवत्रयीं लोकेयतःसाऽर्हत्तमामम ॥२२॥
यामसौ ध्यायते मूढो देवतां ध्यानमास्थितः ।
न कथं बोधयत्येनं सेति मूर्ध्नि स्थितो मम ॥२३॥
नूनं नारायणं देवं ध्यायत्येष जगद्गुरुम् । यद्ध्यानामृतमृतो हि न बाह्यज्ञानवानयम्॥२४॥

भी जल के भीतर अपमृत्यु को घड़ियाल के द्वारा प्राप्त करके अपनी इच्छानुसार आपके सामने स्वर्ग में चला गया । निश्चित रूप से आपकी मृत्यु यहाँ नहीं हुयी क्योंकि आपका जन्म हुआ है ॥१२-१४॥ **नारदजी ने कहा—** हे शिवि ! अपने पुत्र की इस शुभ वाणी को सुनकर वे अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त को कहते हुए अपने जन्म के कारण को बतलाये ॥१५॥ **शिवशर्मा ने कहा—** हे विष्णुशर्मन् ! तुम मेरे जन्म का कारण सुनो । मैं तुम्हें बतलाता हूँ, उसको सुनकर तुम संशय रहित हो जाओगे ॥१६॥ एक बार भगवान् विष्णु की पूजा करते हुए मैं ध्यान में बैठा था । स्वभाव से क्रोधी दुर्वासा मुनि मेरे आश्रम में आये॥१७॥ उनके आगमन को नहीं जानकर भगवान् विष्णु के ध्यान में लगे हुए मैं उनके नामों का स्मरण करते हुए उसी प्रकार बैठा रहा ॥१८॥ वे मुनि मुहूर्त भर मेरे सामने खड़े रहे और क्रोध से व्याकुल होकर अपने मन में जोर से कहे मैं तो इसके द्वारा अपमानित हो गया ॥१९-२०॥ जिस मैंने इन्द्र को त्रिलोकी के राज्य से गिरा दिया उसको यह दुष्ट मति वाला मनुष्य मेरी अवहेलना करता है ॥२१॥ कालानल के समान मुझसे नहीं डरने वाला यह तीनों देवताओं को छोड़कर मेरी अवहेलना करता है ॥२२॥ यह मूर्ख

हरिं वा ब्रह्म वा शम्भुमन्यं वा ध्यायतामयम् ।
मयाऽयं सर्वथा दण्ड्यो मदवज्ञाकरो ह्ययम् ॥२५॥

शिवशर्मोवाच

एवंविचिन्त्यं स मुनिःसुमतिं मामबोधयत्। शशाप च बिबुद्धमामिति क्रोधारूपेक्षणः॥२६॥
मामवज्ञाय यश्चित्ते ध्यानकाले मनोरथः। कुतस्तेन भवे ह्यस्मिन्भविष्यति हि सर्वथा॥२७॥

इत्युत्तवा स यदा तात ! चलितो मुनिरत्रिजः ।
तदा मया चरणयोर्गृहीतो भयभीरुणा ॥२८॥
इत्युक्तश्च मुनिश्रेष्ठ ! क्षम्यतां रुड्विमुच्यताम् ।
मादृशा न विजानन्ति सम्यक्कर्म भवादृशाम् ॥२९॥

शापं त्वं दत्तवान्घोरं साम्प्रतं मे निरेनसः। प्रसीद मम नम्रस्य शापान्ते कुर्वनुग्रहम्॥३०॥

इत्युक्तःकोपमुत्सृज्यदुर्वासाः शीतलोऽभवत् ।
किमेतन्नोचितं तात ! स यतश्चन्द्रशेखरः ॥३१॥

उवाचेतिसमांधीमांस्तं भूत्वाब्राह्मणोत्तमः । अत्रैवमरणं प्राप्य न भूयोजन्म लप्स्यसे॥३२॥
इति मामनुगृह्याऽथ स जगाम दिगम्बरः । उषित्वा तद्दिनं तात ! मया सत्कारपूजितः॥३३॥
नमुनेर्भाषितं मिथ्या चिन्तयित्वाऽहमित्यपि । जगामस्वगृहं चित्तेपश्चात्तापं वहन्निति॥३४॥

अहो मे ध्यायतो नित्यं सतीर्थाश्रमिणस्तथा ।
दर्शनं दुर्लभं जातं श्रीपतेरिह जन्मनि ॥३५॥

जिस देवता का ध्यान करता है, वह मेरी मूधा में रहकर इसको क्यों नहीं बोधित करता है ॥२३॥ निश्चित रूप से यह जगद्गुरु भगवान् विष्णु का ध्यान करता है । जिनके ध्यान रूपी अमृत से तृप्त होकर इसको बाहर का ज्ञान नहीं है ॥२४॥ श्रीहरि या ब्रह्मा या शम्भु या अन्य किसी देवता का ध्यान करने वाला यह मेरे द्वारा निश्चित रूप से दण्डनीय है । क्योंकि इसने मेरी अवज्ञा की है ॥२५॥ **शिवशर्मा ने कहा—** इस तरह से चिन्तन करके वे मुनि सुन्दर बुद्धि वाले मुझको जगाये और जगे हुए मुझको क्रोध से आँखे लाल करके मुझे शाप दिए ॥२६॥ मेरी अवहेलना करके तुम्हारे मन में जो मनोरथ है वह इस जन्म में कैसे पूर्ण होगा ॥२७॥ इस तरह से कहकर वे अत्रि मुनि के पुत्र चल दिए उस समय डरा हुआ मैंने उनके चरण को पकड़ लिया ॥२८॥ मैंने कहा हे मुने ! क्षमा करें और क्रोध को त्याग दें । मुझ जैसे लोग आप जैसे लोगों के कर्म को अच्छी तरह से नहीं जानते हैं ॥२९॥ मैं निरपराध हूँ फिर भी अपने मुझे भयङ्कर शाप दे दिया । आप प्रसन्न होइये शाप के अन्त के विषय में आप अनुग्रह करें ॥३०॥ इस तरह से कहने पर दुर्वासा महर्षि ठण्ढे हो गये हे तात ! आपने क्या किया ? आप तो चन्द्रशेखर हैं ॥३१॥ उन्होंने समाधिस्थ होकर कहा यहाँ पर ही रहकर तुम पुनः जन्म नहीं प्राप्त करोगे ॥३२॥ इस तरह मुझे अनृगृहीत करके दिगम्बर रहने वाले उस दिन वहाँ पर निवास करके मेरे द्वारा सत्कार किए गये वे चले गये ॥३३॥ मुनि का कहा हुआ मिथ्या नहीं हो सकता है, इस तरह से विचार करके मैं भी चित्त में पश्चात्ताप करते हुए अपने घर चला गया ॥३४॥ मैं नित्य ही तीर्थश्रमी श्रीपति का ध्यान करता था किन्तु उनका दर्शन

चातकस्येव मेघस्य शुचौ सन्तापकारिणि। कुतोऽयमागतो मह्यं वैकुण्ठगतिरोधकः ॥३६॥
जनस्यप्रस्थितस्येव जलदोऽकालवारिमुक्। नदोषोऽस्ति मुनेर्नूनं तस्यैवेच्छाहरेःखलु ॥३७॥
सुदर्शनं हि दत्त्वाऽपि मम जन्मान्तरं कृतम् ।
मया संसारभीतेन ग्राह्यं पादाम्बुजं हरेः ॥३८॥
निदाघातपतप्तेन पथिकेनैव पादपः। किं धनापत्ययोषिद्भिरनित्यैश्चाऽन्यबन्धुभिः ॥३९॥
गोविन्दपरमानन्दरामेति मम जल्पतः। उदासीनवदासीनः कुटुम्बेषु हरिं भजन् ॥४०॥
प्रारब्धमेव भोक्ष्यामि कर्माण्यन्यान्यतर्जयन्। चिन्तयन्नित्यहं तात ! कियद्भिर्वासरैरहम् ॥४१॥
प्राप्तवान्स्वगृहं स्नात्वा हरिपादोदकान्तरे। पितुर्मरणमाख्यातं मात्रेबन्धुभ्य एव च॥४२॥
श्रुत्वा तेऽपि शुचं चक्रुर्नाविन्दन्निममस्थिरम् ।
सत्यलोकादिलोकेषु निःस्पृहोऽहं गृहे वसन् ॥४३॥
मरणं प्राप्तवान्कूले गङ्गाया मुनिसेविते। मुनेर्दुर्वाससः शापाज्जातोऽह वैष्णवे कुले॥४४॥
मरणं चाऽत्र सत्तीर्थे लब्ध्वा प्राप्यसे हरेः पदम् ॥४५॥

नारद उवाच

एवं सुराचार्यविनिर्मिते तदा तीर्थेमहाभागपुराकृतानि तौ ।
द्विजोत्तमौ प्रोच्यमिथः सुतस्थतुर्विचिन्तयन्तौ हरिपादपल्लवम् ॥४६॥
विचिन्तयन्तौ हरिमब्जलोचनं चतुर्भुजं नीरदनीलविग्रहम् ।
निजायुधालङ्करणावभासितं स्मृत्वाऽत्र सारूप्यमवापतुर्हरेः ॥४७॥

इस जन्म में दुर्लभ हो गया। जिस तरह ग्रीष्म काल में चातक मेघ के विषय में सन्ताप करता है, उसी तरह मैं सोचता था कि न जाने कहाँ से मेरे वैकुण्ठ के रोधक आ गये ॥३५-३६॥ जब कोई चला जाता है तब अकाल में जल बरसाने वाले मेघ आता है। निश्चित रूप से उन मुनि का कोई दोष नहीं था। श्रीहरि की ही ऐसी इच्छा थी ॥३७॥ उन्होंने मुझे यद्यपि सुन्दर दर्शन देकर भी मेरा दूसरा जन्म दिए। संसार से भयभीत मुझे श्रीहरि के चरण कमलों को पकड़ना चाहिए ॥३८॥ उसी तरह जिस तरह गर्मी से संतप्त पथिक वृक्ष की छाया को अपनाता है। अनित्य, धन, सन्तान और पत्नी तथा दूसरे बान्धवों से कौन सा लाभ है ॥३९॥ हे गोविन्द ! हे परमानन्द ! हे राम ! इस तरह से कहने वाले मैं कुटुम्ब के बीच उदासीन के समान स्थिर रहकर श्रीहरि का भजन करता था ॥४०॥ मैं दूसरे प्रारब्ध कर्मो को नहीं भोगूँगा। हे तात ! मैं कई दिनों तक इस तरह से सोचता रहा ॥४१॥ मैं स्नान करके अपने घर आया और हरि के चरणोदक में अपनी माता को तथा बान्धवों को पिता की मृत्यु के बारे में बतलाया ॥४२॥ वे सब भी सुनकर शोक किये और मुझको अस्थिर नहीं पाये। मैं घर में रहता हुआ भी सत्यलोक आदि को प्राप्त नहीं करना चाहता था ॥४३॥ मुनियों के द्वारा सेवित गङ्गा के तट पर मेरी मृत्यु हो गयी। दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण मैं वैष्णवों के वंश में उत्पन्न हुआ ॥४४॥ इस सत् तीर्थ में मृत्यु को प्राप्त करके मैं श्रीहरि के लोक में जाऊँगा ॥४५॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से प्राचीन काल में बृहस्पति के द्वारा निर्मित तीर्थ में वे दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मण परस्पर में बातें करके श्रीहरि के पादपल्लव का चिन्तन करते हुए निवास करने लगे ॥४६॥

यस्य क्षेत्रमिदं पुण्यमिन्द्रप्रस्थाख्यमुत्तमम् । तस्योपाख्यानमाख्यातं फलमस्य शिबे ! श्रुणृ॥४८॥
गङ्गास्नानेन यत्पुण्यं कन्यादानोद्भवं च यत्। श्रवणादस्य तत्पुण्यं श्रद्धया लभते नरः ॥४९॥
पुत्रे जाते तु गोदानात्सिंहगे च बृहस्पतौ । गोदावरीजले स्नानाद्यत्फलं भुवि जायते॥५०॥
तत्फलं श्रवणादस्य जायतेनाऽत्रसंशयः । अतस्तीर्थोत्तमादन्यत्तीर्थंनास्त्यखिलार्थदम् ॥
यस्मिन्मरणतो नूनं तिर्यञ्चोऽपि चतुर्भुजाः ॥५१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये निगमबोधोपाख्यानं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०५॥

दो सौ छठा अध्याय

सौभरिरुवाच

धर्मराज ! शिबिः श्रीमानाकर्ण्य तद्वचो मुनेः ।
नारदस्याऽब्रवीत्प्रीतमनाइति तमुत्तमम् ॥१॥

शिबिरुवाच

मुनेतीर्थवरस्याऽस्य निगमोद्बोधकस्यते। माहात्म्यं वर्णितं सम्यक्छ्रुं तं पापहरंमया॥२॥

कमल नयन चतुर्भुज तथा मेघ के समान शरीर वाले श्रीहरि का चिन्तन करते हुए तथा अपने आयुधों से अलंकृत श्रीहरि का स्मरण करके वे दोनों श्रीहरि के सारूप्य को प्राप्त कर लिए ॥४७॥ यह इन्द्रप्रस्थ नामक पवित्र तीर्थ जिस श्रीहरि का उत्तम क्षेत्र है हे शिवि ! मैंने उसके उपाख्यान का वर्णन किया अब इसका फल सुनो ॥४८॥ गङ्गा में स्नान करने का जो फल होता है तथा कन्यादान करने का जो फल होता है इसको श्रद्धा पूर्वक सुनने से उसी फल की प्राप्ति होती है ॥४९॥ पुत्र के उत्पन्न होने पर गोदान करने से तथा सिंह राशि के बृहस्पति के होने पर गोदावरी में स्नान करने का जो फल होता है । इसके सुनने से उसी फल की प्राप्ति होती हैं । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । अतएव इस उत्तम तीर्थ से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है । यह तीर्थ सभी प्रकार के पुरुषार्थों को देने वाला है ॥५०॥ इस तीर्थ में मरने वाले पशु-पक्षी भी चतुर्भुज हो जाते हैं ॥५१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत निगमोद्बोधक तीर्थ के उपाख्यान वर्णन नामक दो सौ पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०५॥

काम्पिल्य नगर में रहने वाले ब्राह्मण के द्वारा बधुओं का उद्धार

सौभरि महर्षि ने कहा— हे धर्मराज ! नारदजी के इस वचन को सुनकर महाराज शिवि उनसे उत्तम वचन को कहे ॥१॥ **शिवि ने कहा—** हे मुने ! इस तीर्थ श्रेष्ठ निगमोद्बोधक तीर्थ के पाप

इन्द्रप्रस्थेऽत्र शतशः सन्ति तीर्थानि वै मुने ! ।
अन्यस्याऽपि समाचक्ष्व माहात्म्यं यदि विद्यते ॥३॥

नारद उवाच

इन्द्रप्रस्थान्तरावर्तिन्येषा या द्वारकानृप ! । अस्यां पुरा हि यद्वृत्तं तत्ते वच्मिशृणुष्वमे॥४॥
काम्पिल्येऽथ द्विजः कश्चित्पुष्पेषुर्मूर्तिमानिव ।
सर्वासां योषितां चित्तहारी हास्यादिविभ्रमैः ॥५॥
सङ्गीतविद्याकुशलः कोकिलामधुरध्वनिः । एकदा स करे वीणां धारयन्वादयन्मुहुः ॥६॥
कण्ठेन कोकिलालापमधुरेण नराधिप ! । गायन्बभ्राम नगरे प्रतिरथ्यं महामतिः ॥७॥
तस्यगीतध्वनिंश्रुत्वा मूर्छनातानसंयुतम् । त्यक्त्वास्वगृहकार्याणि तमीयुःपौरयोषितः ॥८॥
मोहितास्तस्य रूपेण कामवेगंनसेहिरे। जातास्खलितवीर्यास्ता गीतं श्रुत्वा समक्षतः ॥९॥
ब्रह्मणो मानसं येन लोभितंभारतीम्प्रति । शिवस्यार्द्धशरीरं च पार्वत्यै येन दापितम् ॥१०॥
ताभ्यामन्यो जनो लोके वशी वा ज्ञानवानपि ।
यः स्मरन्तं क्षमो जेतुं स्त्रियः प्रकृतिचञ्चलः ॥११॥
ताः स्मरावेशमासोढुंनसाध्व्योऽपिविषेहिरे । वक्तव्यमिति किंराजँल्लोकेकामोहिदुर्जयः ॥१२॥
अथ तास्तत्र तत्रेयुर्यत्र यत्र व्रजत्यसौ। प्रगायन्कण्ठवीणाभ्यां प्रगायन्स्वरमोहितः ॥१३॥
तासां पतिसुतभ्रातृपितरोऽथ नराधिप ! ।
आगत्य भर्त्सयित्वा ता निन्युः स्वान्स्वान्गृहान्प्रति ॥१४॥

विनाशक माहात्म्य को मैंने अच्छी तरह से सुना ॥२॥ हे मुने ! इस इन्द्रप्रस्थ में सैकड़ों तीर्थ हैं । यहाँ यदि कोई दूसरा भी तीर्थ हो तो उसका भी माहात्म्य बतलायें ॥३॥ **नारदजी ने कहा—** इन्द्रप्रस्थ के ही अन्तर्गत यह जो द्वारकापुरी है । इसमें प्राचीन काल में जो हुआ उसे मैं बतलाता हूँ उसे तुम सुनो॥४॥ काम्पिल्य में कोई मूर्तिमान कामदेव के समान ब्राह्मण थे । वे हास्य आदि के द्वारा सभी स्त्रियों के चित्त को आकृष्ट कर लेते थे ॥५॥ वे सङ्गीत विद्या में निपुण थे तथा कोयल के समान उनकी ध्वनि थी । एक वार वे हाथ में बीणा धारण करके उससे बारम्बार बजाते हुए हे राजन् ! कोकिल कण्ठ के समान आलाप के द्वारा गाते हुए नगर के प्रत्येक गलियों में घूम रहे थे ॥६-७॥ मूछना तथा तान के साथ उनके गीत की ध्वनि को सुनकर अपने घर के कार्य को त्यागकर नगर की नारियाँ आ गयीं ॥८॥ उनके रूप से मोहित होकर वे काम के वेग को नहीं बर्दास्त कर पा रही थीं । अपने सामने ही उनके गीत को सुनकर उन सबों का वीर्य स्खलित हो गया ॥९॥ जिसने ब्रह्माजी के मन को सरस्वती के प्रति मोहित कर दिया। तथा शिवजी के आधे शरीर को पार्वतीजी को प्रदान कर दिया ॥१०॥ उन दोनों से संसार में कोई भी ज्ञानवान् जितेन्द्रिय नहीं है । जो स्मरण करने मात्र से स्वभाव से ही चञ्चल स्त्रियों को जीतने में समर्थ है॥११॥ वे साध्वी स्त्रियाँ काम के वेग को वर्दास्त करने में समर्थ नहीं हुयीं । हे राजन् ! इसमें कहना ही क्या है ? लोक में काम दुर्जय है ॥१२॥ उसके बाद वे सब वहाँ आयी जहाँ वह गाता था । वह कण्ठ तथा वीणा से गाता हुआ तथा स्वर से मोहित था ॥१३॥ उन स्त्रियों के पति, पुत्र तथा पिता वहाँ आकर उन सबों को डाँटकर अपने घर लाये ॥१४॥ किन्तु वे सब उसको खोजकर उसके सन्निकट गयीं।

तमन्विष्य पुनस्तास्तु जग्मुः सर्वास्तदन्तिके। यदा तदा पौरजना वृत्तं तत्प्राहुरीश्वरे॥१५॥
राजाऽपि तं समाहूयपप्रच्छ रहसिद्विजम् । केन मन्त्रेण भो विप्र मोहितास्ताःपुरस्त्रियः ॥१६॥
तन्ममाऽऽचक्ष्व विप्रेन्द्र ! दास्यामि बहु ते धनम् ।
नो चन्निष्कासयामि त्वां निजराज्यान्न संशयः ॥१७॥

नारद उवाच

श्रुत्वेति नृपतेर्वाक्यं नृपतिं स द्विजोत्तमः। उवाच सत्यं तस्याऽग्रे वचोरूपगुणार्णवः॥१८॥

द्विज उवाच

न मन्त्रो नौषधं राजन्विद्यते मयि भिक्षुके। किन्तुते नगरे सर्वा योषितोह्यजितेन्द्रियः ॥१९॥
रूपं मम समालोक्य श्रुत्वा गीतध्वनिं तथा ।
स्मरवेगं सहन्ते न राजंस्तव पुरे स्त्रियः ॥२०॥
किं करोमि महाराज ! कोऽपराधोऽस्तिमे विभो ! ।
पुराकृतमिवोल्लङ्घ्यशासनंनमहीपते ॥२१॥

नारद उवाच

उशीनरशिबे ! राजन्नेवं कथयति द्विजे। सर्वे पौराः समेत्याऽथ प्रावदन्निति भूपतिम्॥२२॥

पौराऊचुः

राजन्ननेन विप्रेण मोहिताः पौरयोषितः। गृहेषु नहि तिष्ठन्ति ह्यस्माभिरपवारिताः॥२३॥
यद्ययं मोहनः स्त्रीणां नगरे वत्स्यति प्रभो ! ।
तदा देशान्तराण्येव यास्यामोवयमद्य वै ॥
गतोऽस्माकं वृषो देवो हव्यकव्यक्रियात्मकः ॥२४॥
तमनुप्रस्थितात्क्षेत्राद्यौरियं पापिनामिव। विना तं शरणं यातं त्यक्तश्रीभिर्नरेश्वर !॥२५॥

जब उसके क्रिया कलाप को लोगों ने राजा से कहा ॥१५॥ राजा भी उस ब्राह्मण को बुलाकर एकान्त में उससे पूछा हे विप्र ! आपने किस मन्त्र से नगर की स्त्रियों को मोह लिया ॥१६॥ हे विप्रेन्द्र ! उस मन्त्र को आप मुझे बतलायें मैं आपको बहुत धन दूँगा । अन्यथा मैं आपको अपने राज्य से निकाल दूँगा ॥१७॥ **नारदजी ने कहा**— राजा के इस वचन को सुनकर ब्राह्मण ने राजा से कहा । वह राजा के समक्ष वाणी तथा गुण के सागर उसने राजा से सत्य कहा ॥१८॥ **ब्राह्मण ने कहा**— राजन् ! मैं न तो भिक्षुक हूँ। मैं न तो मन्त्र जानता हूँ और न कोई औषधि जानता हूँ । किन्तु आपके नगर में कोई भी जितेन्द्रिय नहीं है ॥१९॥ वे सब मेरे रूप को देखकर तथा गीत की ध्वनि को सुनकर हे राजन् ! आपके नगर में कोई भी स्त्री अपने काम के वेग को वर्दास्त नहीं कर पाती हैं ॥२०॥ हे महाराज ! मैं क्या करूँ ? इसमें मेरा कौन सा अपराध है ? पूर्वजन्म में किए गये कर्मों का उल्लंघन करके कोई शासन नहीं किया जा सकता॥२१॥ **नारदजी ने कहा**— हे उशीनर ! शिवि राजन् ! ब्राह्मण के इस तरह कहने पर सभी नागरिक आकर राजा से कहे ॥२२॥ **नागरिकों ने कहा**— हे राजन् ! इस ब्राह्मण ने नगर की नारियों को मोहित कर दिया है । वे सब हमलोगों को रोकने पर भी घर में नहीं रहती हैं ॥२३॥ हे राजन् ! यदि यह मोहित

अथैनमनुयास्यन्ति वासिताभिर्वृषं यथा। शून्यालये कथं लक्ष्मीर्यत्नतोऽप्यवतिष्ठति ॥२६॥
धर्मोऽर्थश्च गृहं चैतत्त्रयं स्त्रीवशगं यतः । कान्ताधर्मधनाधीना तयोर्नाशेन तिष्ठति ॥२७॥

नारद उवाच

एवं वदत्सु पौरेषु स्त्रियस्तेषां समागताः । राजान्तिक उपाविष्टाइत्यूचुस्ताःपरस्परम्॥२८॥

पौरस्त्रियऊचुः

कामं वामाकृतिं विप्रमेनं प्राप्य मनांसि नः ।
उल्लसन्ति दिवाधीशंकमलानीव वारिणि ॥२९॥
सकुचन्ति विना तेन कुमुदानि यथेन्दुना। आगच्छन्त मिलित्वैनंधारयामो नृपाग्रतः ॥
अवध्योऽयं वयं चाऽस्य किं करिष्यति भूपतिः ॥३०॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वातास्त्वरावत्यो जगृहुस्तं द्विजोत्तमम् ।
पश्यतांनिजभर्तॄणांराज्ञश्चैवपुरस्तदा ॥३१॥
ऊचुश्चैनं मनोनाथ ! गृहानागच्छ हृच्छयम् ।
शमयाऽऽशु विनाऽद्य त्वां स्थातुं नैव च शक्नुमः ॥३२॥
इत्याकर्ण्य वचस्तासां स विप्रः प्रत्युवाच ह ॥३३॥

विप्र उवाच

भवतीनामहं पुत्रो भवत्यो मातरो मम। गृहान्किमर्थमुत्सृज्य भवत्यः पर्यटन्ति हि॥३४॥

करने वाला नगर में रहता है तो फिर हमलोग किसी दूसरे देश में आज ही चले जायेंगे । हव्य, कव्य की क्रिया स्वरूप हमलोगों का धर्म चला जायेगा ॥२४॥ उसके इस क्षेत्र से चले जाने पर पापियों की पृथिवी के समान उसके शरण में गये बिना हे राजन् ! श्री भी इसके पीछे उसी तरह से चली जायेंगी जैसे वासिताओं के पीछे वृष चला जाता है । शून्य गृह में प्रयास करने पर भी वह कैसे रहेगी ?॥२५-२६॥ धर्म, अर्थ और गृह ये तीनों चूकि स्त्रियों के ही वश में रहते है और स्त्री धर्म के अधीन होती है उन दोनों के नष्ट हो जाने पर वह भी नहीं रहेगी ॥२७॥ **नारदजी ने कहा—** जब नागरिक इस प्रकार से कह रहे थे उस समय उनकी स्त्रियाँ आकर राजा के नजदीक बैठकर वे अपने में यह कहने लगीं ॥२८॥ **नगर की स्त्रियों ने कहा—** सुन्दर आकार वाले इस ब्राह्मण को प्राप्त करके हमलोगों का मन उसी तरह उल्लसित हो जाता है जिस तरह सूर्य को देखकर पानी में विद्यमान कमल विकसित हो जाते हैं ॥२९॥ उसके बिना हमलोग उसी तरह सङ्कुचित हो जाती हैं जिस तरह चन्द्रमा के बिना कुमुद सङ्कुचित हो जाते हैं आते हुए उसको हमसब लोग मिलकर राजा के आगे ही पकड़ लेंगी । यह और हमलोग वध्य नहीं हैं राजा क्या करेंगे ?॥३०॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह कहकर शीघ्रता पूर्वक वे सब उस ब्राह्मण श्रेष्ठ को अपने पतियों तथा राजा के सामने ही पकड़ लीं ॥३१॥ उन सबों ने कहा हे हमारे मन के स्वामी हमारे घर आप आइये और हमलोगों की हृदय की वासना को शान्त कीजिये । आज आपके बिना हमलोग नहीं रहेंगी॥३२॥ उन सबों के इस वाणी को सुनकर उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया ॥३३॥ **ब्राह्मण ने कहा—** मैं आपलोगों का पुत्र हूँ और आप लोग हमारी माताएँ हैं । आपलोग घर को छोड़कर किसलिए घूम रही

आराधयत नाथान्स्वान्यतो लोकद्वयं ध्रुवम्। आराधितेषु पतिषुविष्णुः सर्वसुरेश्वरः ॥३५॥
प्रसन्नो भवति त्वत्र प्रसन्ने किमुदुर्लभम्। यास्त्रीस्वपतिमुत्सृज्य सेवतेऽन्यंसुखेच्छया ॥३६॥
सापवादमवाप्नोति याति घोरां च दुर्गतिम् । उषित्वा तत्रकल्पान्तेयावत्सापतिवञ्चना ॥३७॥
पुनस्तस्माद्विनिर्गत्य स्थावरत्वं प्रपद्यते । तस्मादपि पशुत्वं सा लभते बहुजन्मसु ॥३८॥
ततो मुक्ता मनुष्यत्वे व्यङ्गा भवति तत्र सा ।
एवं पापगतिं ज्ञात्वा निवर्तध्वमतो जनात् ॥३९॥
नो वा यास्यथ देहान्ते नरकं भृशदारुणम्। यदिच्छन्ति भवन्त्योमेसुखंतन्नेह लप्स्यथ ॥
पापमेव हि युष्माकं यतोऽधःपतनं नृणाम् ॥४०॥

नारद उवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्य दृष्ट्वा भर्तृसुखानि च । लज्जया नम्रमुख्यस्ता लता वातहता इव ॥४१॥
तासां तु पुरनारीणां स्मराग्निर्भृशदरुणः । शशाम तस्य शीतेन वटोवचनवारिणा ॥४२॥
उत्थाय चेलुः सर्वास्ता विनिन्दन्त्य इतिस्मरम् ।
ब्रह्मशकादिदेवानामपिमोहकरं नृप ! ॥४३॥

स्त्रियऊचुः

धिगिमं पापकर्माणं शीलदारुकुठारकम्। कामं वामदृशां प्रीत्यै धन्योयेन हतः स्मरः ॥४४॥
किं वदेम जगत्पूज्यां रुक्मिणीं जठरे यया ।
धृतः प्रद्युम्ननाम्नाऽसौ राहुः स्त्रीशीलचन्द्रभुक् ॥४५॥

हैं ॥३४॥ आपलोग अपने पतियों की आराधना करें उसके द्वारा लोक और परलोक बन जाता है । पतियों की आराधना करने से सभी देवताओं के स्वामी भगवान् विष्णु ॥३५॥ प्रसन्न होते हैं उनके प्रसन्न होने से कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है । जो स्त्री अपने पति को त्याग कर सुख प्राप्ति की इच्छा से दूसरे को अपना लेती है ॥३६॥ उसकी निन्दा होती है और वह भयङ्कर दुर्गति को प्राप्त करती है । पति को ठगने वाली स्त्री कल्प पर्यन्त नरक में रहकर ॥३७॥ फिर उससे निकलकर स्थावर हो जाती हैं । उसके बाद भी वह अनेक जन्मों में पशु होती हैं ॥३८॥ उससे मुक्त होकर वह टेढ़ा मनुष्य होती हैं । इस तरह से पाप की गति को जानकर तुम लोग मुझसे विरक्त हो जाओ ॥३९॥ अन्यथा आपलोग भयङ्कर नरकों में जायेंगी । यदि आपलोग मुझ से सुख चाहती हैं तो वह आपलोग नहीं प्राप्त कर पायेंगी । उससे आप लोगों को पाप ही लगेगा जिससे मनुष्यों का अधःपतन हो जाता है ॥४०॥ **नारदजी ने कहा—** उसकी उस तरह की वाणी सुनकर और भार्तृसुख को जानकर वे सब लज्जा से अपने मुख को उसी तरह से नीचे कर लीं जिस तरह से वायु से प्रताड़ित लताएँ झुक जाती हैं ॥४१॥ उन सभी स्त्रियों का भयङ्कर कामवेग उसी तरह शान्त हो गया जिस तरह ठंढे जल से बटु का वचन शान्त हो जाता है ॥४२॥ वे सब उठकर काम की निन्दा करती हुयी वहाँ से चल पड़ीं । हे राजन् ! जो काम ब्रह्म और इन्द्र आदि देवताओं को भी मोहित कर देता है ॥४३॥ **स्त्रियों ने कहा—** इस पाप कर्म को धिक्कार है जो शील रूपी काष्ठ को कुठार के समान विनष्ट करने वाला है । वे लोग धन्य है जो लोग नारियों की प्रसन्नता के लिए काम को विनष्ट कर देते हैं ॥४४॥ हम क्या कहें जिस तरह जगत् पूज्य रुक्मिणीजी के गर्भ से प्रद्युम्न उत्पन्न हुए तथा स्त्रियों

स देवाधम आयाति यदि नो दृष्टिगोचरम्। भूयो ध्यानकृतेशानदृगग्नौ तं क्षिपामहे ॥४६॥
येनाऽयंजनितःपापो ह्यात्मारामेण विष्णुना । कृतःषोडशसाहस्त्रस्त्रीप्रियःका हि नःकथा ॥४७॥
एवं विनिन्द्य तं कामं तुष्टुवुस्तं द्विजोत्तमम्। शीलंस्वस्यचतासांच रक्षितंयेन भूपते ! ॥४८॥

धन्या साऽमुष्य जननी ययाऽयं ब्राह्मणोत्तमः ।
स्मरजिन्निर्मितोलोकेपरधर्मस्यरक्षकः ॥४९॥
धिगस्तु नो राजलोकैर्हसिताः स्मरनिर्जिताः ।
याभिर्वाक्यमनोभ्यां च जनितं पापमुल्बणम् ॥५०॥

नारद उवाच

एवंविचिन्तयन्त्यस्ताऐकमत्ययुताःस्त्रियः । जग्मुः स्वंस्वंगृहंसर्वाद्विजवाक्येनबोधिताः ॥५१॥

अथ राजाऽपि काम्पिल्यस्तं द्विजंवस्त्रभूषणैः ।
सम्पूज्यप्रेषयामाससदृगृहेसंयतेन्द्रियम् ॥५२॥

अथागच्छति काले तु कारूषाधिपतिर्बली । काम्पिल्याधिपतिं सैन्यैर्नगरं रुरुधे तदा ॥५३॥
तयोर्युद्धमभूद्धोरं तेन युद्धे स घातितः। नगरं लुठितं सर्वं हताः शूराश्च सर्वशः ॥५४॥

ताःस्त्रियः कालकूटं तु खादित्वा मरणंगताः ।
प्रायश्चित्तंतु न कृतं ताभिःपापस्यतस्यतु ॥५५॥

येनपापेन ताः सर्वा भीषणाख्यस्यरक्षसः। राक्षस्यो नगरे जाता महाकाया भयानकाः ॥५६॥
तत्र ता निहिताः सर्वाः पुरनार्यो हनूमता। यज्ञांश्चरिष्यतो जिष्णोस्तिष्ठता रथकेतने ॥५७॥

के शीला का भक्षक चन्द्रमा को खाने वाले राहु के समान ॥४५॥ वह अधम देवता काम आदि हमलोगों को दिखायी पड़ जाता तो ध्यान करके शिवजी के नेत्रों से उत्पन्न अग्नि में हमलोग उसे डाल देतीं ॥४६॥ जिस आत्माराम भगवान् विष्णु से यह पापी उत्पन्न हुआ वह अपनी सोलह हजार स्त्रियों को जब प्रिय हो गया तो फिर हमलोगों के विषय में क्या कहना है ॥४७॥ इस तरह से काम की निन्दा करके उस ब्राह्मण श्रेष्ठ की उन सबों ने स्तुति की जिसने अपने तथा उन सबों के शील की रक्षा की ॥४८॥ उसकी माता धन्य है जिससे यह कामदेव को भी जीतने वाले को लोक में उत्पन्न किया जो दूसरों के धर्म की रक्षा करने वाला है ॥४९॥ हमलोगों को धिक्कार है जो काम से जीती गयीं हमलोग राजा तथा लोगों के परिहास का पात्र बन गयीं । जिन हम सबों के वाक्य तथा मन से भयङ्कर पाप उत्पन्न हुआ ॥५०॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से सोचती हुयी वे सब एकमत होकर उस ब्राह्मण के वाक्य से ज्ञान प्राप्त करके अपने-अपने घर चली गयीं ॥५१॥ उसके बाद काम्पिल्य के राजा ने भी उस जितेन्द्रिय ब्राह्मण की वस्त्र तथा भूषण से पूजा करके उसको उसके घर भेज दिया ॥५२॥ उसके बाद कुछ समय बीत जाने पर कारुष देश के बलवान स्वामी अपनी सेना के द्वारा कम्पिल्य देश के राजा के नगर को घेर लिया ॥५३॥ उन दोनों में भयङ्कर युद्ध हुआ और उस युद्ध में कम्पिल्य के राजा मारे गये । सारा नगर लूट लिया गया और सारे वीर मारे गये ॥५४॥ वे स्त्रियाँ कालकूट विष को खाकर मर गयीं । उन सबों ने उस पाप का प्रायश्चित नहीं किया था ॥५५॥ उस पाप के कारण वे सब भीषण नामक राक्षस के नगर में राक्षसियाँ हो गयीं । उनका शरीर विशाल और भयानक था । वहाँ पर उस नगर की नारियों को हनुमानजी ने मारा जब ज्येच्छु

पुनस्ता एव राक्षस्यो बभूबुर्मारवेऽध्वनि। क्षुधार्ताश्च तृषार्ताश्च दर्शनेन भयप्रदाः ॥५८॥
एवं तेन तु पापेन वाङ्मनोविहितेन तु । ताभिर्जन्मद्वयं प्राप्तं राक्षसीयोनिमिश्रितम् ॥५९॥
पापेन नाशितं तासां सनृपं नगरद्वयम्। अतएव न कर्त्तव्यं परकान्तनिषेवणम् ॥६०॥

नारीभिः पापभीताभिर्वाङ्मनोभ्यामपि प्रभो ! ।
रोगी जडो दरिद्रो वा मित्राभ्यां वर्जितोऽपि वा ॥
न त्याज्यः स्वपतिः स्त्रीभिरिच्छन्तीभिस्तु सद्गतिम् ॥६१॥
कथितमिदं मया मनोवचोभ्यां जनितमघं च यदन्यकान्तभक्तया ।
फलमपि च यदेव लब्ध्यमाभिस्तदपि शिबे ! बहुविस्तरेण तुभ्यम् ॥६२॥
इन्द्रप्रस्थगता हि चेयमनघा या द्वारका दृश्यते-
तास्तस्या जलबिन्दुदेहपतनात्पौरस्त्रियो रेमिरे ॥
स्वर्गे चित्तवचोऽन्यकान्तभजनाज्जातं विमुच्योल्बणं-
क्रव्यादत्वमवाप्य देववनिताभावं सुराह्लाददम् ॥६३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डेकालिन्दीमाहात्म्ये द्वारकावर्णनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०६॥

वे रथ के गृह में यज्ञ कर रहे थे ॥५६-५७॥ उसके बाद वे मरुस्थल में राक्षसियाँ हुयी । वे भूखी हुयी मन तथा वाणी से किए गये पाप के कारण दो जन्मों में वे सब राक्षसी के योनि में चली गयीं ॥५८-५९॥ उन सबों के कारण वह राजा तथा वह दोनों नगर नष्ट हो गये । इसीलिए दूसरे पति की सेवा नहीं करनी चाहिए ॥६०॥ पाप से डरने वाली नारियों को वाणी तथा मन से भी रोगी, जड़ तथा दरिद्र एवं मित्रों से परित्यक्त अपने पति का परित्याग नहीं करना चाहिए । यदि वे सद्गति चाहती हों तो ॥६१॥ मैंने इससे यह कहा कि दूसरे पति के प्रति प्रेम होने के कारण मन और वाणी से भी उत्पन्न पाप के कारण इन सबों ने जो फल प्राप्त किया हे शिबि ! उसको मैंने तुम्हें विस्तार के साथ बतलाया ॥६२॥ इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान जो निष्पाप यह जो द्वारका है उस नगर की नारियाँ उसके जल विन्दु के गिरने मात्र से आनन्द का अनुभव स्वर्ग में की । अन्य पति के प्रति प्रेम होने के कारण उग्र पाप को त्यागकर राक्षसित्व को प्राप्त करके देवताओं की पत्नियों के भाव को प्राप्त कीं ॥६३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य वर्णन के अन्तर्गत द्वारका वर्णन नामक दो सौ छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०६॥

दो सौ सातवाँ अध्याय

सौभरिरुवाच

धर्मात्मजनिशम्यैतद्वचस्तस्यमहात्मनः । नारदस्यशिबीराजाप्रोवाचेदं विनीतवत् ॥१॥

शिबिरुवाच

तिष्ठन्त्योमरुमार्गे ता राक्षस्यो मुनिपुङ्गव !। एतस्याद्वारिकायास्तु लेभिरे सलिलंकुतः ॥२॥

नारद उवाच

शृणु राजन्कथं दिव्यां पूतां पापप्रणाशिनीम् ।
विमलाख्यस्य विप्रस्य हिमवद्द्रोणिवासिनः ॥३॥
एकस्तु हिमवद्द्रोण्यां विमलो नाम भूसुरः ।
देवर्षिपितृवह्नीनां पूजकोऽतिथिपूजकः ॥४॥

हरिपादार्चनरतो वेदवेदाङ्गधर्मवित्। वासुदेवगुणग्रामपुराणश्रुतिमानसः ॥५॥
वार्द्धके तस्य पुत्रोऽभूत्प्रसादाच्चक्रपाणिनः। चकार हरिदत्तेति नाम्ना तं जनकस्तदा॥६॥
विधिवद्विदधेचाऽस्य क्षौरकर्मादिकंचतत्। गुरोः सकाशाज्जग्राह च्छन्दांसिहरिदत्तकः ॥७॥
अधीत्य विधिवद्वेदान्दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम्। प्रवव्राज विरक्तः सन्समूलं चाश्रमद्वयम् ॥८॥
ज्ञात्वा तत्कर्म तन्माता व्यलपत्पुत्रवत्सला। स्नापयन्ती कुचद्वन्द्वं पुत्रविश्लेषजाश्रुभिः॥९॥

मातोवाच

मामनाथां परित्यज्य तात ! यातोऽसि कुत्र वै ।
पितरं च जराग्रस्तं षट्पदोबल्वजाविव ॥१०॥

सौभरि युधिष्ठिर संवाद के अन्तर्गत नारद और शिवि की वार्ता के प्रसङ्ग में विमल ब्राह्मण के कथानक का वर्णन

सौभरि महर्षि ने कहा— हे धर्मराज पुत्र ! उस माहात्म्य तथा नारदजी की इस तरह की वाणी को सुनकर राजा शिवि नम्र के समान कहे ॥१॥ **शिवि ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! मरुस्थल में रहने वाली वे राक्षसियाँ इस द्वारिका के जल को कैसे प्राप्त कीं ?॥२॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! दिव्य तथा पापों का विनाश करने वाली कथा को आप सुनें जो हिमालय की द्रोणी में रहने वाले विमल नामक ब्राह्मण की है ॥३॥ हिमालय की तराई में एक विमल नामक ब्राह्मण थे । वे देवता, ऋषि और अग्नि की तथा अतिथि की पूजा करते थे ॥४॥ वे श्रीहरि के पूजा में सदा रहने वाले तथा वेदों एवं वेदाङ्गों के धर्म के ज्ञाता थे । उनका मन भगवान् वासुदेव के गुण समूह तथा पुराणों एवं श्रुतियों में लगा रहता था ॥५॥ चक्रपाणि भगवान् की कृपा से वृद्धावस्था में उनको पुत्र हुआ । उसका नाम उन्होंने हरिदत्त रखा ॥६॥ उन्होंने विधि पूर्वक उसे क्षौर कर्म इत्यादि को किया । हरिदत्त ने अपने गुरु की सन्निधि में वेदों को पढ़ा॥७॥ सविधि वेदों का अध्ययन करके तथा गुरु को दक्षिणा देकर वे संन्यासी होकर मूलतः दोनों आश्रमों से विरक्त हो गये ॥८॥ पुत्र वत्सला उनकी माता यह जानकर विलाप करने लगी । पुत्र के विश्लेष जन्य आँसुओं से अपने दोनों स्तनों को भिंगो दी ॥९॥ **माता ने कहा—** हे तात ! अनाथ मुझको त्यागकर

वार्द्धके त्वं मया प्राप्तः श्रीपतेः पादसेवया ।
मां विहायाऽभजस्त्वंवै चरणंतस्य मुक्तये ॥११॥
अहं मूढा ध्रुवं तात ! ध्रुवमाराध्य यद्धरिम् ।
अध्रुवं वाञ्छितवती भवन्तं सुखलब्धये ॥१२॥
त्वंसुधीर्वत्स ! सर्वार्थं यद्विष्णुंभजसेस्वयम्। अध्रुवंजगदेतद्वैमत्वाऽऽसीस्त्वमपिध्रुवम् ॥१३॥
किंकरोमिक्वगच्छामि मायाज्ञानंछिनत्तिमे। सुफलोत्पादकं शस्त्रीरम्भामूलमिवोल्बणा ॥१४॥
धन्यो दशरथो राजा यो मृतो रामशोकतः ।
धिङ्मां पुत्रस्य विश्लेषाद्धारयन्तीं स्वजीवितम् ॥१५॥
आगच्छ दर्शनं देहि तात ! मां परितारय। वद वेदमयीं वाणीं पितुरग्रे गुणार्चव !॥१६॥

नारद उवाच

एवं विलप्य तन्माता राजन्सा पतिता भुवि ।
दलनाद्राहुदन्तानां लेखा चान्द्रमसी यथा ॥१७॥
अथाऽऽजगाम विप्रर्षिर्विमलो नृपसत्तमः। दृष्ट्वा तां पतितां भूमौ किं किमित्यभ्यभाषत॥१८॥
कस्मादियं कीर्णकेशा व्यस्तवस्त्रविभूषणा। पतिता भुवि कल्याणं हरिदत्तस्य विद्यते ॥
तस्या वयस्यास्ताः सर्वाः प्रोचुस्तं विमलं नृप ! ॥१९॥

वयस्याऊचुः

अधीत्य वेदांस्ते पुत्रो दत्वा च गुरुदक्षिणाम् ।
नारायणपरो भूत्वा प्राव्रजद्धरिदत्तकः ॥२०॥

तुम कहाँ जा रहे हो ? तुम्हारे पिता वृद्ध हैं विल्वज भ्रमर के समान हो गये हैं ॥१०॥ श्रीभगवान् की सेवा करने से तुम वृद्धावस्था में मुझे प्राप्त हुए हो। मुझको छोड़कर मुक्ति प्राप्त करने के लिए तुम उनके चरणों की सेवा करने लगे ॥११॥ हे तात ! मैं निश्चित रूप से मूढ हूँ। ध्रुव श्रीहरि की आराधना करके मैं सुख प्राप्त करने के लिए अध्रुव तुम्हारी कामना की थी ॥१२॥ हे वत्स ! तुम सुन्दर बुद्धि वाले हो क्योंकि तुम श्रीविष्णु की सेवा करते हो। इस जगत् को क्षणभङ्गुर मानकर तुम भी ध्रुव थे ॥१३॥ मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? माया मेरे ज्ञान को विनष्ट कर रही है। उसी तरह जिस तरह शस्त्र धारण करने वाला सुन्दर फल को उत्पन्न करने के बाद केले को काट देता है ॥१४॥ राजा दशरथ धन्य हैं क्योंकि वे श्रीराम के शोक में मर गये। मुझको धिक्कार है कि पुत्र के विश्लेषण को धारण करके जी रही हूँ॥१५॥ हे तात ! आओ मुझे दर्शन दो मेरा उद्धार करो तुम अपने पिता के सामने वेदवाणी को कहो॥१६॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से विलाप करके उसकी माता पृथिवी पर उसी तरह गिर पड़ी जिस तरह राहु के दाँतों से दलित होकर चन्द्रमा की कला विनष्ट हो जाती है ॥१७॥ उसके बाद विपर्षि विमल आये। हे राजश्रेष्ठ ! उसको पृथिवी पर गिरी हुयी देखकर क्या हुआ यह पूछे ॥१८॥ किस कारण से बिखरे हुए केशों वाली तथा व्यस्त वस्त्राभूषणों वाली पृथिवी पर गिरी हैं ? हरिदत्त का कल्याण है न॥१९॥ उसकी सखी स्त्रियों ने विमल से कहा **सखियाँ बोली—** आपके पुत्र वेदों का अध्ययन करके

तस्यविश्लेषशोकेन पतितेयं धरातले ॥२१॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तासां विमलो बुद्धिमत्तरः । प्राबोधयन्निजं भार्यामिति वागमृतेन सः ॥२२॥

विमल उवाच

उत्तिष्ठ जाये ! श्रृणु वाक्यमीरितं मया किमर्थं पतिता विषीदसि ।
धन्यः सुतस्ते य इमं विनश्वरं विज्ञाय भेजे हरिपादपल्लवम् ॥२३॥
धन्या त्वमप्यस्य जनिप्रदायिनी यस्याः सुतस्ते हरिपादभागभूत् ।
संतारयिष्यत्यपि मामसंशयं कुलं कुलोत्थानपि पूरुषाञ्छुभे ! ॥२४॥
क्व विश्वमेतच्च पतच्च चञ्चलं क्व सेवनं शाश्वतलोकदं हरेः ।
मत्वेति भेजुर्भरतादयो नृपा यथा हरिं साध्वि ! तथैव ते सुतः ॥२५॥
दाराधनागारशरीरबान्धवा एते भवन्ति प्रतिजन्मदुःखदाः ।
तावन्न यावद्धरिपादपल्लवं भजेत धीरोऽखिलकामवर्जितः ॥२६॥

नारद उवाच

एवं प्रबोधिता तेन धीरेण धरणीतलात् । उत्थाय निजभर्तारमब्रवीद्दीनया गिरा ॥२७॥

भार्योवाच

सर्वं जानाम्यहं कान्त ! यत्त्वया साधुभाषितम् ।
कुलधुर्यंनपश्यामियतस्तप्यामिवैभृशम् ॥२८॥

पुत्रे सति महत्तीर्थे किं वा केशवसेवया । गृहएवाऽऽवयोर्मृत्युश्चेत्स्याल्लोकद्वयं तदा ॥२९॥

तथा गुरुदक्षिणा देकर, नारायण परायण हरिदत्त संन्यासी हो गये ॥२०॥ उसी के विश्लेष जन्य शोक से यह पृथिवी पर गिरी हुयी है ॥२१॥ **नारदजी ने कहा**— इस तरह से उन सबों की वाणी सुनकर अत्यन्त वुद्धिमान विमल अपनी पत्नी को इस तरह की वाणी से समझाए ॥२२॥ **विमल ने कहा**— हे जाये ! उठो मेरी वाणी को सुनो तुम गिरकर क्यों विषाद कर रही हो ? तुम्हारा पुत्र धन्य है जो इस संसार को विनश्वर समझकर श्रीहरि के चरण कमल की सेवा करने लगा ॥२३॥ इसको जन्म देने वाली तुम भी धन्य हो क्योंकि तुम्हारा पुत्र श्रीहरि के चरणों का भागी हो गया । वह निश्चित रूप से मेरे वंश के पुरुषों को तार देगा ॥२४॥ कहाँ तो विनष्ट होने वाला और चञ्चल विषय का सेवन और कहाँ शाश्वत लोक प्रदान करने वाले श्रीहरि की सेवा । इसी तरह से मानकर भरत आदि राजागण श्रीहरि की सेवा करने लगे । हे साध्वि ! उसी तरह तुम्हारा पुत्र भी ॥२५॥ पत्नी, धन, गृह और शरीर तथा बान्धव ये सभी प्रत्येक जन्म में दुःख देने वाले तब तक होते हैं जब तक कि कोई, धीर पुरुष सारी कामनाओं को त्यागकर श्रीहरि के चरण कमलों की सेवा नहीं करता है ॥२६॥ इस तरह से उनके द्वारा समझाये जाने पर वह पृथिवी पर से उठकर दीन वाणी से अपने पति को कही ॥२७॥ **पत्नी ने कहा**— हे कान्त ! जो आपने अच्छी तरह से कहा है उन सारी बातों को मैं जानती हूँ किन्तु मैं इस वंश को धारण करने वाले को नहीं देखती हूँ इसीलिए मैं अत्यन्त दुःखी हूँ ॥२८॥ पुत्र के रहने पर महान तीर्थ में श्रीकेशव की सेवा करने से क्या गृह में ही यदि हमदोनों की मृत्यु हो जाय तो हमदोनों का दोनों लोक बन जाय ॥२९॥ मनुष्यों को सत्पुत्र

सत्पुत्रोत्पादने यत्नः कर्त्तव्यः खलुः मानवैः ।
तारयन्ति पितॄन्पुत्रा यतः संसारवारिधेः ॥३०॥
स्रष्टारं सर्वजन्तूनां धातारं पुत्रकाम्यया। भज वाञ्छति चेत्पुत्रं कुलधुर्यं महामते ! ॥३१॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः प्रत्याह विमलो द्विजः ।
ब्रह्मक्षेत्रं प्रयागं हि याम्यहं पुत्रकाम्यया ॥३२॥
इत्युक्त्वा चलितः सोऽथ हरिद्वारमगाद्विजः ।
स्नात्वा तत्राऽपि विधिवदिन्द्रप्रस्थमथाऽगमत् ॥३३॥
कतिभिर्वासरैर्वीर सायंकालेऽखिलार्थदे। स्नात्वाभुक्त्वा निशायां स सुष्वापयमुनातटे ॥३४॥
निशीथे स्वपतस्तस्य विमलस्याऽन्तिके विधिः ।
हंसमारुह्य देवेशस्तीर्थैः सर्वैरनुद्रुतः ॥३५॥
आगत्योत्थापयामास विमलं पुत्रवाञ्छकम् । उवाच स सुरश्रेष्ठो वचनं मधुराक्षरम्॥३६॥

ब्रह्मोवाच

जाने समीहितं विप्र ! त्वदीये मनसि स्थितम् ।
न तत्पूरयितुं कल्पो यतस्तत्कारणं शृणु ॥३७॥
एकदा मेरुशिखरे मिलिताः सर्वदेवताः। तुष्टुवुर्मद्भवमुखा माधवं कार्यसिद्धये ॥३८॥
स्तुतोऽस्मदादिविबुधैः कृपया भगवान्हरिः। प्रसन्नोऽभूत्तदा विष्णुर्वृणुध्वमिति चाऽब्रवीत् ॥३९॥
इत्युक्तास्तेन ते देवा यथाभिलषितं वरम्। श्रीपतेः प्राप्य ते जग्मुः सर्वे स्वं स्वं निकेतनम्॥४०॥
मयोक्तमिति देवेश ! देहि मे वरमुत्तमम्। प्रयागं नाम मे क्षेत्रं भवत्वखिलकामदम् ॥४१॥

को उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि पुत्र ही संसार सागर से पितरों को तारते हैं ॥३०॥ सभी जीवों की सृष्टि करने वाले तथा धारण करने वाले श्रीहरि की सेवा करो यदि तुम कुल को धारण करने वाले पुत्र को चाहते हो तो ॥३१॥ **नारदजी ने कहा**— इस तरह की वाणी सुनकर विमल नामक ब्राह्मण ने कहा मैं पुत्र प्राप्ति की कामना से ब्रह्मक्षेत्र प्रयाग जा रहा हूँ ॥३२॥ यह कहकर वे ब्राह्मण वहाँ से चल दिये और हरिद्वार आये। वहाँ सविधि स्नान करके वे इन्द्रप्रस्थ गये ॥३३॥ कुछ दिनों में हे वीर! सम्पूर्ण पुरुषार्थों को देने वाले स्नान तथा भोजन करके यमुना तट में सोये ॥३४॥ आधी रात को सोते हुए विमल के सन्निकट देवेश ब्रह्माजी सभी तीर्थों से आये हुए हंस पर चढ़कर आये ॥३५॥ आकर उन्होंने पुत्र चाहने वाले विमल को जगाया और वे सुरश्रेष्ठ मधुर शब्दों में कहे ॥३६॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— हे विप्र! तुम्हारे मन में जो प्राप्त करने की इच्छा है उसे मैं जानता हूँ। उसको पूरा करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। उसका कारण तुम सुनो ॥३७॥ एक बार सुमेरु पर्वत के शिखर पर सभी देवता एकत्रित हुए मैं तथा शिवजी आदि ने कार्य की सिद्धि के लिए भगवान् माधव से प्रार्थना किया ॥३८॥ हम सभी देवताओं से स्तुति किए जाने पर भगवान् श्रीहरि कृपा करके प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा आपलोग वरदान माँगें ॥३९॥ श्रीभगवान् के इस तरह से कहने पर श्रीभगवान् से अपने मनोनुकूल वरदान पाकर अपने-अपने घर चले

ततः शतगुणं भूयाद्द्वितीयं क्षेत्रकं मम। इन्द्रप्रस्थगतं सम्यग्वृत्तं त्वत्तो मयाऽनघ ! ॥४२॥
इत्याकर्ण्य वचो मह्यं भगवानाह मां तदा। तथाऽस्त्विति पुनर्वाचमुवाच श्रूयतां वचः॥४३॥

भगवानुवाच

इन्द्रस्य खाण्डवारण्य इन्द्रप्रस्थाभिधं शुभम् ।
क्षेत्रंकलिन्दजातीरे मत्तुल्यास्तत्र येमृताः ॥४४॥

विरिञ्चे ! रचितातत्र स्वकीयाद्वारकापुरी। मया शतगुणाम्भोधिनीरस्थायाः पुरागुणैः ॥४५॥
तामुल्लङ्घ्य नरो यस्तु तीर्थमन्यन्निषेवते। न तीर्थफलमाप्नोति स पुमान्न मृषोदितम् ॥४६॥
सर्वतीर्थोदितं पुण्यं शक्रतीर्थे लभेन्नरः। द्वारका च पुरी माया तीर्थमन्यच्च रक्षति ॥४७॥

यो निमज्ज्याऽन्यतीर्थेषु कृत्वा च विविधां क्रियाम् ।
अत्रैष्यति फलं तेभ्यः फलं प्राप्स्यति स ध्रुवम् ॥४८॥

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुरहमप्यगमंस्वकम्। लोकंद्विजेन्द्रवैकुण्ठादधो भागेव्यवस्थितम्॥४९॥

प्रयागान्मामकात्क्षेत्रात्काशी शतगुणा स्मृता ।
काश्याः शतगुणे ? (णं) तीर्थं निगमोद्बोधकं तथा ॥५०॥

तीर्थसप्तकमेतत्तु त्रयं तुल्यफलं स्मृतम्। एतत्त्रयमनुल्लङ्घ्य यो गच्छति सितासितम् ॥५१॥

तस्याऽहं वाञ्छितं विप्र ! ददामि खलुनान्यथा ।
केचिदाहुः सप्तपुरी समपुण्या महर्षयः ॥५२॥

अयोध्याद्याः शतं ताभ्य इन्द्रप्रस्थं प्रचक्षते। त्वमत्राऽऽगत्यविप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदे ॥५३॥

तीर्थे श्रीद्वारकाख्ये हि कुरु स्नानं सुतेच्छया ।
यावन्ति सर्वतीर्थानि ब्रह्माण्डकलशोदरे ॥५४॥

गये ॥४०॥ मैंने कहा हे देवेश ! आप मुझे उत्तम वरदान दें। प्रयाग नामक मेरा क्षेत्र सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला हो जाय ॥४१॥ उससे मेरा दूसरा क्षेत्र सौ गुना अधिक हो जाय। हे अनघ ! आपने मेरे इन्द्रप्रस्थ को अच्छी तरह से चुना ॥४२॥ इस तरह से मेरी वाणी सुनकर श्रीभगवान् मुझसे सुनाकर कहे ऐसा ही होगा ॥४३॥ **भगवान् ने कहा—** इन्द्र के खाण्डव वन जो इन्द्रप्रस्थ नाम वाला शुभ क्षेत्र है। उसके तट पर जो मरते हैं वे मेरे ही समान होगें ॥४४॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने यहाँ पर अपनी द्वारकापुरी बनायी है। वह समुद्र में विद्यमान द्वारका पुरी से सौ गुना अधिक गुणों वाली है ॥४५॥ उसको छोड़कर जो मनुष्य दूसरे तीर्थ का सेवन करता है मैं सत्य कहता हूँ कि वह तीर्थ के फल को नहीं प्राप्त करता है ॥४६॥ तीर्थों के बतलाये सभी पुण्य को मनुष्य इन्द्र तीर्थ में प्राप्त कर लेता है। वह द्वारकापुरी तथा मायापुरी तथा अन्यतीर्थों को रखता है ॥४७॥ जो अन्य तीर्थों में स्नान करके अनेक क्रियाओं को करता है। वह वहाँ पर आकर उन सबों के फल को प्राप्त कर लेगा ॥४८-५०॥ यह तीर्थ सप्तक भी इसके सदृश फल वाला है। इन तीनों तीर्थों को पारकर गङ्गा, यमुना सङ्गम में जो जाते हैं ॥५१॥ हे विप्र ! उन सबों के वाञ्छित फल को मैं देता हूँ नहीं तो नहीं। अयोध्या आदि से इन्द्रप्रस्थ सौ गुना पुण्यवान् है। हे सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले इस तीर्थ में आकर पुत्र प्राप्ति की इच्छा से स्नान को करो।

तेभ्योऽपरिमितं पुण्यं शतनामनि कीर्तिते। सुतं ते कुलधौरेयं तीर्थमेतत्प्रदास्यति ॥
स्नानाच्च तव गोविन्दः प्रसन्नात्मा भविष्यति ॥५५॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशो ब्रह्मा तत्र तिरोदधे। विमलोऽपि तदा स्नात्वा देवादीनप्यतर्पयत्॥५६॥
इत्युवाच स धर्मात्मा द्वारके कृष्णवल्लभे ! ।
सुतं वंशकरं देहि मह्यं भक्ताय ते नमः ॥५७॥
इत्युक्ते तेन विप्रेण देववागभवत्तदा ॥५८॥

देववागुवाच

पुत्रस्ते धर्मतत्त्वज्ञो वंशकर्त्ता भविष्यति। प्रसादादस्य तीर्थस्य सर्वतीर्थशिरोमणेः ॥
याहि गेहं विलम्बो मा सुकृतं तेन मज्जनम् ॥५९॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य स तांवाणीं विश्वस्तःपुत्रजन्मनि। चचाल जलमादाय द्वारकायाःकमण्डलौ ॥६०॥
मार्गे तस्य सखा विप्रो मलयाचलकेतनः। मिलितश्चलितो गेहं कृत्वा तीर्थानि सर्वतः॥६१॥
तस्मै स्ववृत्तमाख्यातं ब्रह्मसम्वादकात्मकम्। यद्भूतं द्वारकातीर्थे श्रुत्वा सोऽपि विसिष्मये॥६२॥
उवाच सच धर्मात्मा सखे ! मम वचः शृणु ।
यावन्ति भारतेक्षेत्रे तीर्थानि विहितानिमे ॥६३॥
तावन्ति कर्तुमिच्छामित्वदुक्तं तीर्थमुत्तमम्। नीत्वामांदर्शयसखे ! तत्तीर्थं सर्वकामदम्॥६४॥
सखायस्ते वरा भूमावुपकुर्वन्ति ये सखीन्। न तैर्नसुसमो लोके पिता माताऽथवासुतः ॥६५॥

ब्रह्माण्ड के भीतर जितने भी तीर्थ हैं ॥५२-५४॥ उन सबों से अपरिभित पुण्य सौ नामों का कीर्तन से होता है। तुमको यह तीर्थ वंश को बढ़ाने वाला देगा। तुम्हारे स्नान करने से भगवान् गोविन्द तुम पर प्रसन्न होयेंगे ॥५५॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहकर देव देवेश ब्रह्माजी वहीं अन्र्धान हो गये। विमल भी उसके पश्चात् स्नान करके देवताओं आदि का तर्पण किए ॥५६॥ वे धर्मात्मा कहे हे भगवन्! कृष्ण के प्रिय द्वारके मुझ भक्त को वंश बढ़ाने वाला पुत्र आप प्रदान करें मैं आपको नमस्कार करता हूँ। उस विप्र के इस तरह से कहने पर आकाशवाणी हुयी ॥५७-५८॥ **आकाशवाणी ने कहा—** सभी तीर्थों के शिरोमणि इस तीर्थ की कृपा से तुमको वंश बढ़ाने वाला पुत्र होगा। अब विलम्ब न करो घर जाओ उस स्नान करने से पुण्य हो गया है ॥५९॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह की उस वाणी को सुनकर पुत्र की उत्पत्ति के विषय में विश्वस्त होकर वे कमण्डलु में द्वारका का जल लेकर चल पड़े। मार्ग में उनके मित्र जो मलयाचल पर रहते थे उससे भिले सभी तीर्थों को करके वे घर के लिए चल पड़े ॥६०-६१॥ जो द्वारका तीर्थ में जो ब्रह्मा सम्वादात्मक वृतान्त हुआ उस वृत्तान्त को उन्होंने उसे बतलारया और उसको सुनकर वह भी आश्चर्यित हो गया ॥६२॥ वे धर्मात्मा कहे हे सखे ! तुम मेरी बात सुनो भारत वर्ष में जितने भी तीर्थ हैं उन सबों को मैंने कर लिया है ॥६३॥ उन सबों को मैं भी करना चाहता हूँ। जिन सबों को तुमने कहा है हे सखे ! मुझको ले जाकर तुम मुझे सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले तीर्थ को दिखाओ ॥६४॥ वे मित्र उत्तम हैं जो अपने मित्रों को भूलोक में उपकार करते हैं। उनके समान कोई

निर्द्धनंपुरुषं लोके सर्वेमुञ्चन्ति बान्धवाः। नमुञ्चन्ति सखायस्तु तस्य दुःखेन दुःखिताः ॥६६॥
संसारार्णवनिर्मग्नान्सखीनुद्धरते सखा। उपदिश्य हरेर्भक्तिमार्गं जन्मेन्धनानलम् ॥६७॥
अतस्त्वं मे सखाश्रेष्ठ ! उपकारं विधेहि मे ।
दर्शयैतद्वरश्रेष्ठं तीर्थाख्यं द्वारकां द्विजः ॥६८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये द्वारकावर्णनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०७॥

दो सौ आठवाँ अध्याय

नारद उवाच

विमलस्तंद्विजंनीत्वा द्वारकायामिहाऽऽगतः। पुनस्तौसस्नतुधीरौ श्रीपतेर्भक्तिकाम्यया ॥
भूयः खे मेघगम्भीरा वागासीदिति भूपते ! ॥१॥

आकाशवागुवाच

शृणुतं द्विजशार्दूलौ ! हरेस्तीर्थमिदं शुभम्। एतत्तीर्थप्रसादाद्वां विष्णुभक्तिर्भविष्यति ॥
यया जहाति लोकोऽयमविद्यामोहमुल्बणम् ॥२॥

नारद उवाच

निशम्येति द्विजश्रेष्ठौ तां वाचमशरीरिणीम्। प्रसादोऽयं हरेरासीदित्यूचाते परस्परम् ॥३॥

माता-पिता अथवा पुत्र नहीं होता है ॥६५॥ संसार में निर्धन पुरुष को सबलोग त्याग देते हैं। किन्तु उसके दुःख से दुःखी हुए मित्रगण उसको नहीं त्यागते हैं ॥६६॥ संसार रूपी सागर में डुबे हुए मित्रों का मित्र जन्म रूप इन्धन को जला देने वाली अग्नि के समान उपदेश देकर उद्धार करते हैं ॥६७॥ अतएव तुम मेरे श्रेष्ठ मित्र हो मेरा उपकार करो हे द्विज ! द्वारका नामक श्रेष्ठ तीर्थ को तुम मुझे दिखाओ ॥६८॥
इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत द्वारका वर्णन नामक दो सौ सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०७।।

विमल ब्राह्मण का अपने मित्र ब्राह्मण के साथ इन्द्रप्रस्थ की द्वारका की यात्रा करना, विमल ब्राह्मण के द्वारा लौटकर राक्षस योनि प्राप्त की हुयी नगर की नारियों को द्वारका के जल से जिसको उन्होंने अपने कमण्डलु में रखा था उससे उद्धार करना

नारदजी ने कहा— विमल उस द्विज को लेकर यहाँ से द्वारका में आये। उन दोनों धैर्य सम्पन्नों ने वहाँ पुनः श्रीभगवान् की भक्ति की कामना से स्नान किया। हे राजन् ! पुन मेघ के समान आकाशवाणी हुयी ॥१॥ **आकाशवाणी ने कहा—** हे द्विज श्रेष्ठों ! आप दोनों सुनें। श्रीहरि का यह श्रेष्ठ तीर्थ है। इस तीर्थ की कृपा से तुम दोनों को भगवान् विष्णु की भक्ति होयेगी। उसी के द्वारा यह संसार आविद्यिक

स्नात्वा तौ विधिवत्तत्र लब्ध्वा भक्तिं हरेः पराम् ।
चेलतुः प्रणिपत्येदं भाषमाणौ मिथस्तदा ॥४॥

द्विजाबूचतुः

यथावयोर्हि संयोगः पथि जातोऽविचारितः ।
यथा गृहकलत्रादिसंयोगो भुवि जायते ॥५॥
साम्प्रतं विरहोभावीयथानौ मार्गवर्तिनोः । तथादारसुतादीनां कालव्यालास्यवर्तिनाम् ॥६॥
धन्यःस पुरुषोलोके यो दारसुतसङ्गमम् । विज्ञाय क्षणिकं नित्यं संश्रयेच्छ्रीपतिंभजेत् ॥७॥

नारद उवाच

स्मरणं करणीयम्मेदासोऽहंत्वत्पदाश्रयः । सन्देशःप्रेषणीयो मामित्युत्तवा स्वगृहंगतौ ॥८॥
शृणुराजन्यथा तेन मित्रेण विमलस्य तु । मोक्षणं राक्षसीनां तु विहितं पथिगच्छता ॥९॥
व्रजन्स ब्राह्मणःप्राप्तस्तं देशं जलवर्जितम् । यत्र ताःपापविप्लुष्टा राक्षस्यःक्षुत्तृषाकुलाः ॥१०॥
अथ ताःपथिगच्छन्तं दूराद्दृष्ट्वाद्विजोत्तमम् । सुजलामत्रहस्तं तंमिथस्त्विति बभाषिरे ॥११॥

राक्षस्यऊचुः

आयातिपथिकः कश्चिज्जलपात्रं करेदधत् । अस्माकंक्षुत्तषोः शान्तिर्मनागपिभविष्यति ॥१२॥
एनं सम्भक्षयिष्यामः पास्यामोऽस्य करे स्थितम् ।
पात्रं जलं वयं तृष्णाक्षुधार्ताः शतवर्षतः ॥१३॥

नारद उवाच

काचिदाहेत्यहं पूर्वमस्योष्णं कालखण्डकम् ।
भक्षयित्वा ततो रक्तं पीत्वा यास्यामि जीवितम् ॥१४॥

भयङ्कर अज्ञानान्धकार को त्याग देता है ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** उस आकाशवाणी को सुनकर वे दोनों द्विजश्रेष्ठ परस्पर में कहें कि यह श्रीहरि की कृपा थी । वहाँ वे दोनों सविधि स्नान करके तथा श्रीहरि की पराभक्ति को प्राप्त करके उस तीर्थ को प्रणाम करके परस्पर में बाते करते हुए वहाँ से चल दिए । **दोनों ब्राह्मणों ने कहा—** जिस तरह से रास्तें में बिना सोचे ही सङ्गति हुयी । जिस तरह से संयोग वशात् संसार में गृह और पत्नी आदि की प्राप्ति होती है ॥३-५॥ रास्ते में विद्यमान हमदोनों का अब विश्लेष होने वाला है । उसी तरह काल रूपी सर्प के गाल में रहने वाले पत्नी तथा पुत्र आदि का वियोग होता है ॥६॥ वह पुरुष धन्य है जो पत्नी तथा पुत्र आदि के सङ्गम को क्षणिक जानकर नित्य प्राप्त श्रीहरि का भजन करता है ॥७॥ **नारदजी ने कहा—** आप हमको याद रखियेगा, मैं आपके चरणों का दास हूँ आप मुझे संदेश भेजते रहेंगे यह कहकर वे अपने घर चले गये । हे राजन् ! विमल के मित्र ने रास्ते में जाते हुए राक्षसियों को मोक्ष जैसे प्रदान किया उसे आप सुनें ॥८-९॥ वह जाते हुए ब्राह्मण जल रहित देश में आया । जहाँ पर पाप से दग्ध वे राक्षसियाँ प्यास से व्याकुल थीं ॥१०॥ उसके बाद रास्ते में जाते हुए उन राक्षसियों ने दूर से ही उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को देखा । इसके हाथ में सुन्दर जल है वे परस्पर में कहने लगीं ॥११॥ **राक्षसियों ने कहा—** कोई पथिक अपने हाथ में जल का पात्र लेकर आ रहा है । उससे हमलोगों की थोड़ी सी भी भूख और प्यास की शान्ति होगी ॥१२॥ हमलोग इसको खा जायेंगी और इसके हाथ में

अन्याप्राह कियद्द्रव्यं विद्यतेऽस्यगजानने। मम व्याघ्राननायास्तु पानयाऽपिनदृश्यते ॥१५॥
अन्या वै रथचक्राख्या श्रूयतां वचनं मम। करिष्येकुण्डलमहं केनाऽन्त्रैरस्य मेखलाम् ॥१६॥
अन्याऽवददहं दन्तैरेकतः श्यामलीकृतैः। रमे षोडशभिर्द्यूतशालायां तद्विशारद ! ॥१७॥
इत्युक्त्वा ता मिथः सर्वास्तंद्विजंप्रतिदुद्रुवुः। विवृतास्या ललज्जिह्वाःप्रद्योतैकमहाभुजाः ॥१८॥

आयान्तीस्ताः समालोक्य ब्राह्मणो भयविह्वलः।
आत्मानमभितश्चक्रे रक्षां वेदोदितां नृप ! ॥१९॥
ता आगत्य स्थितादूरं राक्षस्यो भीमविक्रमाः।
तेजसातस्यमन्त्रैश्च प्रत्यादिष्टानराधिप ! ॥२०॥

ऊचुश्च को भवानत्र कुतःप्राप्तोऽसितद्व्रद। त्वद्दर्शनान्मनोऽस्माकं प्रसादमधिगच्छति ॥२१॥

त्वत्पादस्पर्शनात्किं नो न विप्र ! भविताफलम्।
अतोमूर्द्धसुनोदेहिस्वकीयं पादपङ्कजम् ॥२२॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तासां जगाद हरिदत्तजः ॥२३॥

द्विज उवाच

कृत्वा पवित्रतीर्थानि ब्राह्मणोऽहं समागतः। साम्प्रतं पुष्करंयामिभवतीभिःकिमिष्यते ॥
यतस्तत्प्राऽर्थ्यतां दातुं शक्तो दास्यामि चेत्तदा ॥२४॥

राक्षस्यऊचुः

येषु तीर्थेषु विप्रेन्द्र ! त्वया स्नातंवदस्व नः।
तानिसर्वाणिपुण्यानिमोचयाऽतःकुजन्मनः ॥
अस्मानतितरां तृष्णाक्षुद्भयां दारुणदुःखितान् (:?) ॥२५॥

विद्यमान जल को पी जायेंगी। हम सब सौ वर्षों से भूख और प्यास से आर्त बनी हैं ॥१३॥ **नारदजी ने कहा—** किसी ने कहा कि मैं इस काल के खण्ड को गर्म रक्त को पीऊँगी उससे उसको खाकर रक्त पीकर जीवित रहूँगी ॥१४॥ दूसरी ने कहा उसमें कितना रक्त है मुझ व्याघ्रमुखी को पीने भर भी नहीं दिखता है ॥१५॥ दूसरी जिसका नाम रथचक्रा था उसने कहा तुम मेरी बात सुनो। उसकी आँतों से मैं अपना कुण्डल और करधनी बनाऊँगी ॥१६॥ दूसरी ने कहा एक ओर जो काले दाँत है उनसे सोलहों से जुआ खेलूंगी। इस तरह से कहकर वे सभी एक साथ उस ब्राह्मण की ओर मुख खोले हुए तथा जीभ लपलपाती हुयी तथा अपनी एक भुजा उठाकर दौड़ीं। उन सबों को आते हुए देखकर भयभीत वह ब्राह्मण अपनी रक्षा वेद वाक्यों से की ॥१७-१९॥ वे भयङ्कर पराक्रम वाली राक्षसियाँ आकर दूर ही खड़ी हो गयीं। मन्त्रों के तेज से हे राजन्! बाहर ही रुककर गयीं ॥२०॥ उन सबों ने कहा आप कौन है ? और कहाँ से आये हैं ? आपके दर्शन से हमलोगों का मन प्रसन्न हो गया है ॥२१॥ हे विप्र ! आपके चरण का स्पर्श करने से हमलोगों को किस फल की प्राप्ति नहीं होगी अतएव आप हमलोगों के शिर पर अपना चरण रख दें ॥२२॥ **नारदजी ने कहा—** इस बात को सुनकर हरिदत्त के पुत्र ने कहा ॥२३॥ **द्विज ने कहा—** मैं ब्राह्मण हूँ पवित्र तीर्थों को करके आया हूँ। इस समय मैं पुष्कर जा रहा हूँ। आपलोग क्या

ब्राह्मण उवाच

अवन्तीमाश्रमात्पूर्वमहं हरिपुरीमितः। गतोऽहं द्वारकां तस्मात्स्नात्वा सोमोद्भवाजले॥२६॥
ततः प्राप्तः प्रभासाख्यं तीर्थं नीरधितीरगम् ।
तस्मात्सेतुनिबन्धेऽहं स्नातः परमपावने ॥२७॥
तस्मादहं महापुण्यां किष्किन्धां समुपागतः। हतो यत्र तु रामेण वालीकपिगणेश्वरः ॥२८॥
तस्मान्मठं सरस्वत्या नर्मदातीरसंस्थितम्। समागतोऽहं यत्राऽस्तिभारतीसर्वसेविता ॥२९॥
ततोऽहमविशंवेणीं तांनत्वादक्षिणापथे। शिवकाञ्चीविष्णुकाञ्च्यौ दृष्टे तत्रमयापुरौ ॥३०॥
ययोर्मरणतो जन्तुःशिवो विष्णुश्चजायते। ततोऽहमुत्कलं प्राप्तो यत्राऽस्तिहरिरीश्वरः ॥३१॥
चतुर्वर्गप्रदः साक्षाद्भक्तानामपि काङ्क्षितम्। तमर्चयित्वा विधिवद्भक्षयित्वा निवेदितम् ॥३२॥
प्रसादभूतं तस्यैव गङ्गासागरसङ्गमम्। तत्र देवानृषीन्पितॄं स्तर्पयित्वा यथाविधि॥३३॥
यत्रगङ्गाशतमुखी जाता तत्राऽहमागमम्। ततोगयामुपागत्य पिण्डान्दत्त्वायथाविधि॥३४॥
पितृभ्यस्तुलसीपुष्पचन्दनोदकपूजिताम् । कोशलां शरयूवारिकर्णधारनभस्वता॥३५॥
पवित्रिताखिलजानां स्पर्शनेनाऽहमागमम्। तत्राऽस्तिगोप्रताराख्यं तीर्थं त्रिदशदुर्लभम् ॥३६॥
तत्र स्नानादिकं कर्म निशाचर्यः ! कृतं मया ।
ततः काशीमहं प्राप्तो राजधानीमुमापतेः ॥३७॥
नत्वा विश्वेश्वरंदेवं बिन्दुमाधवमेव च। स्नातं मणिकर्णिकायां ज्ञानवाप्यां चभक्तितः ॥३८॥

चाहती हैं ? उसकी प्रार्थना करो यदि शक्य होगा तो मैं दूँगा ॥२४॥ **राक्षसियों ने कहा—** हे विप्रेन्द्र! आपने जिन तीर्थों में स्नान किया है उसे बतलायें। उन सभी पुण्यों को हम निन्दित जन्म वालों को प्रदान करें। हमलोगों को भूख तथा प्यास से बहुत अधिक कष्ट है ॥२५॥ **ब्राह्मण ने कहा—** अवन्ती आश्रम से पहले मैं श्रीहरि की नगरी द्वारका गया था वहाँ के चन्द्रमा से उत्पन्न जल में स्नान करके ॥२६॥ उसके पश्चात् समुद्र के तट पर विद्यमान प्रभास क्षेत्र में गया। वहाँ से मैं परम पवित्र सेतु बन्ध में स्नान किया॥२७॥ वहाँ से मैं अत्यन्त पवित्र किष्किन्धा आया जहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी ने वानरों के स्वामी बाली का वध किया था ॥२८॥ उसके बाद मैं नर्मदा नदी के तीर में विद्यमान सरस्वती मठ में आया। वहाँ पर सबों से सेवित सरस्वतीजी हैं ॥२९॥ उसके बाद में दक्षिणा पथ में वेणी में गया और उसको नमस्कार करके मैंने शिवकाञ्ची तथा विष्णुकाञ्ची का दर्शन किया उन नगरियों में मरने वाले शिव और विष्णु हो जाते हैं। वहाँ से मैं उत्कल प्रदेश में गया जहाँ पर शिवहरि शङ्करजी विद्यमान हैं ॥३०-३१॥ भक्तों के द्वारा अभिप्रेत चारो पुरुषार्थों को वे प्रदान करते हैं उनकी विधि पूर्वक पूजा करके तथा उनके नैवेद्य को खाकर॥३२॥ उनके ही प्रसाद स्वरूप मैं गङ्गा सागर सङ्गम में आया। वहाँ पर विधिपूर्वक देवताओं, ऋषियों का तर्पण करके ॥३३॥ जहाँ पर गङ्गा सौ घरों वाली हैं वहाँ गया। उसके बाद गया आकर सविधि पितरों को पिण्डदान करके तुलसी, चन्दन तथा जल से पूजित मैं कोशल में गया वहाँ सरयू के जल का कर्णधार वायु से ॥३४-३५॥ पवित्र किए गये सभी जनों को स्पर्श करके मैं आया। वहाँ पर देव दुर्लभ गोप्रतार नामक तीर्थ है ॥३६॥ हे निशाचरियों वहाँ पर मैंने स्नान आदि कर्मों को किया वहाँ से मैं शङ्करजी की राजधानी काशी गया ॥३७॥ वहाँ पर विश्वेश्वर तथा विन्दु माधव को नमस्कार करके मैं भक्ति पूर्वक मणि

त्रिरात्रमुषितस्तत्र प्रयागं पुनरागमम्। पौषशुक्लचतुर्दश्यां साक्षाद्यत्र प्रजापतिः ॥३९॥
एकस्मिन्माघमासे तु स्नानं कृत्वाऽरुणोदये। पुनस्तस्मात्समायातेनैमिषं गोमतीतटे ॥४०॥
यत्र तीर्थानि सर्वाणि वसन्ति च स्वमायया ।
ततोऽहं मथुरां प्राप्तो यत्र विश्रान्तिसंज्ञकम् ॥४१॥
तीर्थं तत्सन्निधौ पुण्यमसिकुण्डाख्यमुत्तमम्। कृष्णमङ्गाध्रुवाक्रूरकेशिकालीयतीर्थभृत् ॥४२॥
यमुनाऽस्ति महापुण्यायत्र सर्वार्थदायिनी। उभयोःकूलयोस्तस्या वनानिद्वादशश्रिया ॥४३॥
राजमानानि खेचर्यः समस्तार्थकराणि च। सन्ति तेषु नरः स्नात्वा पीत्वा भूयो न जायते॥४४॥
ततोऽहमागमं पुण्यं हस्तिनापुरमुत्तमम्। यत्र श्रीपतिपादाब्जजाता गङ्गा सरिद्वरा ॥४५॥
ततो नारायणस्थानं हिमवद्भूमिसंस्थितम्। आगत्य माधवं दृष्ट्वा केदारमहमागमम् ॥४६॥
तत्र सम्पूज्य विश्वेशं पीत्वाऽहं सोदकं पुनः ।
हरिद्वारं महापुण्यमागमं जाह्नवीतटे ॥४७॥
तत्र स्नात्वा पितृन्देवानृषीन्सन्तर्प्य चाऽप्यहम् ।
समागतः कुरुक्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥४८॥
तत्राऽप्यहं क्रियाः सर्वाः कृतवान्नियतेन्द्रियः ।
अर्चयित्वाचपादाब्जंश्रीपतेःपुष्करम्प्रति ॥४९॥
चलितो मार्गमध्येतु विमलोनाममेसखा। मिलितो मां व्रजन्गेहमिन्द्रप्रस्थात्तु तीर्थतः॥५०॥
नीतोऽहं तेन राक्षस्यः ! पुनस्तत्र द्विजन्मना ।
तीर्थोत्तमे परावृत्त्य शक्रप्रस्थेऽखिलार्थदे ॥५१॥

कर्णिका तथा ज्ञान वापी में स्नान किया ॥३८॥ वहाँ पर मैं तीन रात्रियों तक रहा और उसके बाद मैं प्रयाग आया। जहाँ पर पौष शुक्ल चतुर्दशी को साक्षात् ब्रह्माजी आते हैं ॥३९॥ वहाँ माघ मास में एक महीने अरुणोदय के समय स्नान करके। वहाँ गोमती नदी के तट पर विद्यमान नैमिष क्षेत्र में मैं आया॥४०॥ वहाँ पर अपनी माया से सभी तीर्थ निवास करते हैं। उसके बाद मैं मथुरा आया वहाँ विश्रान्ति नामक तीर्थ के सन्निकट असिकुण्ड नामक उत्तम तीर्थ है। जिसमें कृष्ण गङ्गा ध्रुवा तथा क्रूर केशी एवं कालीय तीर्थ हैं ॥४१-४२॥ वहाँ सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली अत्यन्त पुण्यमयी यमुनाजी हैं। उनके दोनों तटों पर बारह वन अपनी शोभा से विराजमान हैं। सभी तीर्थों को करने वाली खेचरिया हैं। उनमें स्नान करके तथा वहाँ का जल पीकर जीव पुनः संसार में नहीं आता है ॥४३-४४॥ उसके पश्चात् मैं पवित्र हस्तिनापुर आया वहाँ पर श्रीहरि के चरण कमलों से नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा निकली हैं ॥४५॥ उसके बाद हिमालय की भूमि में विद्यमान भगवान् नारायण के स्थान में आकर भगवान् माधव का दर्शन करके केदार तीर्थ में गया ॥४६॥ वहाँ पर भगवान् विश्वेश्वर की पूजा करके और वहाँ का जल पीकर अत्यन्त पवित्र गङ्गा के तट पर हरिद्वार आया ॥४७॥ वहाँ पर स्नान करके तथा देवता, ऋषि एवं पितरों का तर्पण करके मैं जहाँ पर प्राची सरस्वती हैं उस कुरुक्षेत्र में आया ॥४८॥ वहाँ भी जितेन्द्रिय मैंने सभी क्रियाओं को किया। वहाँ पर श्रीपति के चरणों की पूजा करके मैं पुष्कर के लिए ॥४९॥ चल दिया बीच में मेरे मित्र विमल मिले हे राक्षसियों ! वे इन्द्रप्रस्थ तीर्थ से घर जाते हुए वे मुझको यहाँ इस उत्तम तीर्थ में पुनः लाये। यह तीर्थ

तत्राऽस्ति द्वारका पुण्या निर्मिता विष्णुना स्वयम् ।
तत्राऽवलोकितः साक्षाद्विष्णुर्वाक्यान्न रूपतः ॥५२॥

तत्राऽहं सचसंस्नातौविष्णुभक्तिप्रलब्धये । दत्ता सा विष्णुना मह्यंतस्मैचकृष्णमूर्तिना ॥५३॥

श्रुत्वा (ता) तत्र हरेर्वाणीन रूपंवै विलोकितम् ।
भक्तिर्लब्धाततः स्थानाद्यमहं पुष्करम्प्रति ॥५४॥

तस्य तीर्थाधिपस्येदं द्वारकाख्यस्यवैजलम् । कमण्डलुगतं पुण्यं निशाचर्यो वदाम्यहम्॥५५॥

भवतीभिरहं पृष्टो यत्तदाख्यातमेव मे। दृष्ट्वा वो दुर्दशामेतां कृपा मे जायते हृदि ॥५६॥

उच्यतां किं करोम्यद्यभवतीनांवशोह्यहम् । ज्ञानं भवतुयुष्माकमितिताःसिषिचेऽम्भसा ॥५७॥

तास्तज्जलाभिमर्शात्तु सर्वेषांजन्मकर्मणाम्। संस्मृत्यतत्यजुश्चैव राक्षसं देहमुल्बणम्॥५८॥

आसाद्य देवतादेहं विमानशतमागतम्। आरुह्याऽप्सरसो भूत्वा ताः प्रणेमुर्द्विजन्मने॥५९॥

ऊचुश्च भो द्विजश्रेष्ठ ! द्वारकाजलसंगमात् ।
राक्षसत्वाद्वयं मुक्ता गच्छामस्त्रिदशालयम् ॥६०॥

इन्द्रप्रस्थान्तरावर्तिन्येषा या द्वारका द्विज !। नातः परतरं लोकेऽन्यत्तीर्थमखिलार्थदम् ॥६१॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा ताः समारुढा विमानेषु महीपते ! ।
जग्मुः प्राचीं दिशंतेनदत्ताज्ञावैद्विजन्मना ॥६२॥

यमुनातीरवर्तिन्या द्वारकाया महीपते !। श्रृण्वन्माहात्म्यमेतस्या नरः पापैः प्रमुच्यते ॥६३॥

समस्त पुरुषार्थों को देने वाला है ॥५०-५१॥ वहाँ पर स्वयं भगवान् विष्णु के द्वारा निर्मित पवित्र द्वारका है । वहाँ पर मैंने साक्षात् भगवान् विष्णु का दर्शन वाक्य से किया रूप से नहीं ॥५२॥ वहाँ पर मैं और वे दोनों भगवान् विष्णु की भक्ति प्राप्त करने के लिए स्नान किए । और कृष्णमूर्ति भगवान् मुझको और उनको भक्ति प्रदान भी किए ॥५३॥ वहाँ श्रीहरि की वाणी को सुनकर उनके रूप को नहीं देखकर मैंने पुष्कर के प्रति भक्ति प्राप्त की ॥५४॥ उस तीर्थ राज द्वारका का यह जल है । हे निशाचरियों ! जो मेरे कमण्डलु में विद्यमान है ॥५५॥ तुम लोगों ने जो पूछा उसे मैंने बतला दिया । तुमलोगों की यह दुर्दशा देखकर मेरे मन में दया आती है ॥५६॥ मैं तुमलोगों के वश में हूँ बतलाओ मैं क्या करूँ । तुम लोगों को ज्ञान हो जाय इसलिए उन्होंने उस जल से उन सबों को सींचा ॥५७॥ उस जल का स्पर्श होने से उन सबों सभी पूर्व जन्मों के कर्मों की याद आ गयी और उन सबों ने राक्षस शरीर को त्याग दिया ॥५८॥ देवता का शरीर पाकर आये हुए सैकड़ों विमानों पर चढ़कर तथा अप्सरा होकर उन सबों ने ब्राह्मण को नमस्कार किया ॥५९॥ उन सबों ने कहा कि द्वारका के जल का स्पर्श होने के कारण हमलोग राक्षसत्व से मुक्त होकर स्वर्ग जा रही हैं ॥६०॥ हे द्विज ! इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान जो यह द्वारका है संसार में इससे बढ़कर सभी प्रयोजनों को पूर्ण करने वाला कोई दूसरा तीर्थ नहीं है ॥६१॥ हे राजन् ! इस तरह से कहकर वे सब विमान में बैठी हुयी उस ब्राह्मण के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके पूर्व दिशा में चली गयीं ॥६२॥ हे राजन् ! यमुना के तट पर विद्यमान द्वारका के माहात्म्य को सुनकर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है।॥६३॥

वेदज्ञानां ब्राह्मणानां शतस्येच्छासुभोजनात् । यत्फलं श्रवणादेतन्महिम्नस्तत्प्रजायते ॥६४॥
गोविन्दाराधने सम्यग्यथा वै सौख्यमिन्द्रिये ।
माहात्म्यश्रवणादस्या द्वारकायास्तथा नृप ! ॥६५॥
सूर्येन्दुग्रहणे दानात्सुवर्णपलविंशतेः । यत्फलं शृण्वतैतस्य माहात्म्यं तदवाप्यते ॥६६॥
विमलस्य सुतप्राप्तिं श्रुत्वा सुत ! इहाऽऽप्यते ।
तत्सख्युर्भक्तिलाभंच लभ्यतेभक्तिरुत्तमा ॥६७॥
राक्षसीनां विमोक्षं यः शृणोति श्रद्धयान्वितः ।
स यातिताइवश्रेष्ठंविमानेन सुरालयम् ॥६८॥
नृपवर ! महिमा ते वर्णितो द्वारकायास्त्रिभुवनजनसेव्येशक्रतीर्थे स्थितायाः ।
किमपरमतिपुण्यं वर्णयामि त्वदग्रे कथय नहि विधेयः श्रेयसि स्वे विलम्बः ॥६९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये द्वारकाख्यानं नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०८॥

सौ वेदज्ञ ब्राह्मणों को सुन्दर भोजन कराने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसकी प्राप्ति इस द्वारका के माहात्म्य को सुनने से होता है ॥६४॥ भगवान् गोविन्द की अच्छी तरह से आराधना करने से जिस तरह इन्द्रियों को सुख प्राप्त होता है उसी तरह सुख हे राजन् द्वारका के माहात्म्य सुनने से होता है । **नारदजी ने कहा—** सूर्य ग्रहण तथा चन्द्रग्रहण के समय बीस पल सुवर्ण दान करने से जो फल होता है उस फल को इसके माहात्म्य को सुनने वाला प्राप्त कर लेता है ॥६५-६६॥ विमल ब्राह्मण के पुत्र प्राप्ति का वृत्तान्त सुनने से इस लोक में पुत्र की प्राप्ति होती है । इसके मित्र को भक्ति प्राप्ति की कथा सुनकर भक्ति की प्राप्ति होती है ॥६७॥ जो श्रद्धा पूर्वक राक्षसियों के मोक्ष का वर्णन सुनता है वह उन सबों के ही समान श्रेष्ठ विमान से देवलोक में जाता है ॥६८॥ हे राजश्रेष्ठ ! त्रैलोक्य के जीवों द्वारा सेवनीय शक्रतीर्थवर्ती द्वारका की महिमा को मैंने आपको सुनाया । बतलाओ मैं तुम्हें कौन सी दूसरी बात बतलाऊँ अपने कल्याण के विषय में विलम्ब नहीं करना चाहिए ॥६९-७०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में द्वारका का वृत्तान्त वर्णन नामक दो सौ आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०८॥

दो सौ नवाँ अध्याय

युधिष्ठिर उवाच

सौभरे ! कस्य तीर्थस्य माहात्म्यं नारदोमुनिः ।
वर्णयामासशिबये शक्रतीर्थगतस्य च ॥१॥
अतस्तु मम शुश्रूषा जायते मुनिपुङ्गव ! । शिबिनारदसम्वादं ब्रूहि पुण्यं नताय मे ॥२॥

सौभरिरुवाच

धर्मराज ! शिबी राजा श्रुत्वा नारदवर्णितम् ।
द्वारकायास्तुमाहात्यंतमेवाऽपृच्छदादरात् ॥३॥

शिबिरुवाच

ब्रह्माङ्गज सुरश्रेष्ठ ! श्रुतं माहात्म्यमुत्तमम् । इन्द्रप्रस्थतटस्थाया द्वारकाया मयाऽद्भुतम् ॥४॥
अयोध्यायां यदि मुने ! किञ्चिदस्ति पवित्रकम् ।
चरितं मम तद्ब्रूहि पिपासोस्त्वद्वचोऽमृतम् ॥५॥

नारद उवाच

अस्त्यत्र चरितं पुण्यं महापातकनाशनम्। नापितस्याऽघयुक्तस्यमुकुन्दस्यद्विजस्यच ॥६॥
ब्रह्महा नापितोराजन्नपमृत्युं गतो द्विजः । प्रसादात्कोशलायास्तु द्वावपि स्वर्गति गतौ ॥७॥
चन्द्रभागानदीतीरे पुरी सा च निवेशिता । तत्राऽस्तिनापितः पापश्चण्डकोनाम गर्हितः ॥८॥
चौर्येण परवित्तानामपहर्ता स पापकृत्। घातकः शस्त्रपाशाद्यैः पान्थानामवलुण्ठकः ॥९॥

अयोध्या माहात्म्य के प्रसङ्ग में राजा के चोर नाई के द्वारा मुकुन्द नामक ब्राह्मण के घर में चोरी करना और उसको मारना, उनकी माता, पत्नी तथा बान्धवों का विलाप करना, वेदायन महर्षि के द्वारा उन सबों को दृश्य जगत् के मिथ्यात्व का प्रति पादन करके उन सबों को तत्त्व ज्ञान प्रदान करना

युधिष्ठिर ने कहा— हे सौभरि महर्षे ! नारद मुनि ने राजा शिवि को जो इन्द्रतीर्थ में गये थे उनको किस तीर्थ का माहात्म्य सुनाया ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे मन में सुनने की इच्छा होती है आप शिवि नारद के पवित्र संवाद को नम्र बने हुए मुझको सुनायें ॥२॥ **सौभरि महर्षि ने कहा—** हे धर्मराज ! नारदजी के द्वारा वर्णित द्वारका के माहात्म्य को सुनकर राजा शिवि उनसे आदर पूर्वक पूछे ॥३॥ **शिवि ने कहा—** हे ब्रह्माजी के पुत्र तथा देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्रप्रस्थ के तट पर विद्यमान द्वारका का अद्भुत माहात्म्य मैंने सुना । हे मुने ! अयोध्या में कोई पवित्र वस्तु हो तो उसके चरित को मुझे बतलायें । मैं आपके वचन रूपी अमृत का पिपासु हूँ ॥४-५॥ **नारदजी ने कहा—** यहाँ पर पापी नाई तथा मुकुन्द नामक ब्राह्मण का चरित महापाप का विनाश करने वाला है ॥६॥ हे राजन् ! नाई ब्रह्मघाती से ब्राह्मण की अपमृत्यु प्राप्ति हुयी । वे दोनों कोशल की कृपा से स्वर्ग चले गये ॥७॥ वह नगरी चन्द्रभागा नदी के तट पर विद्यमान थी । वहाँ पर चण्डक नामक निन्दित नाई था ॥८॥ वह पापी चोरी करके दूसरे की सम्पत्ति को चुराता था वह शस्त्र तथा पाश आदि के द्वारा मारने का काम करता था और पथिकों को लूट लेता था ॥९॥ वह

द्यूतमद्यरतो नित्यं परस्त्रीलम्पटेन्द्रियः। भित्त्वा देवलाये भित्तिमिष्टिकाग्रावविक्रयी ॥१०॥
स तस्योद्वसिताभ्यासे ब्राह्मणोवसतिश्रिया। संयुक्तो ब्रह्मकर्मज्ञो मुकुन्दो नामतोनृप ! ॥११॥
स एकदा समालिङ्गय तरुणीमात्मयोषितम्। सुष्वाप सुरतायासशलथाङ्गो निशि निर्भयम् ॥१२॥
स चण्डको निशीथेऽथ प्रविवेशतदालयम्। मुकुन्दस्य समाहर्तुंहर्म्ये भूषादिवस्तु यत्॥१३॥
उपकार्या वहिःस्थं यत्तद्गृहीत्वाऽगमद्गृहम् ।
स्वकीयं च पुनस्तस्य ब्राह्मणस्याऽविशद्गृहम् ॥१४॥
कपाटोत्पाटनार्थी तु रत्नेनमहताऽभवत्। लोहयन्त्रावरुद्धश्च स नोद्धाटयितुं क्षमः ॥१५॥
आरुरोह तदा तस्य ब्राह्मणस्याऽविशद्गृहम् ।
प्रविश्यतद्गृहंक्रूरःकृपाणंपाणिनादधत् ॥१६॥
अट्टालिकां स पापिष्ठो नापितस्तस्करक्रियः ।
तत्राऽपश्यत्प्रसुप्तौतौदम्पतीरतिविह्वलौ ॥१७॥
जगाम च तयोः पार्श्वे हेमभूषाजिघृक्षया। शय्याया एकदेशस्थं गृहीत्वा भूषणं बहु ॥१८॥
हतु तदङ्गतो हस्तं प्रससार स नापितः। तस्करस्पर्शतो विप्रो जजागार भयातुरः ॥१९॥
न किञ्चिदूचे संमील्य नेत्रे तत्रैव संस्थितः। यदा स तस्करःपापो गृहीत्वादेहभूषणम् ॥२०॥
चलितः स तदा तेन दोर्भ्यामात्ते द्विजेन हि ।
पश्चादागत्यवित्तस्यसहमानेन संक्षयम् ॥२१॥

सदा जूआ खेलता था और मदिरा पीता था। वह परस्त्री का लम्पट था। वह मन्दिर को गिराकर उसके ईंट पत्थर को बेंच लेता था ॥१०॥ उसके निवास के सन्निकट एक धनवान ब्राह्मण रहते थे। हे राजन्! उनका नाम मुकुन्द था और वे ब्रह्मकर्म के ज्ञाता थे ॥११॥ एक बार वह अपनी युवती स्त्री का आलिङ्गन करके सुरत कर्म से थककर रात में निर्भय होकर सो गया ॥१२॥ आधी रात को वह चण्डक उस ब्राह्मण मुकुन्द के घर से आभूषण आदि चुराने के लिए घुसा ॥१३॥ दरवाजे के बाहर विद्यमान जो कुछ उसको लेकर अपने घर आया वह उस ब्राह्मण के घर में पुनः प्रवेश किया ॥१४॥ वह किवाड़ खोलने के लिए बहुत प्रयत्न किया किन्तु लोहे के यन्त्र से अवरुद्ध होने के कारण वह उसे खोल नहीं सका ॥१५॥ उसके बाद वह चढ़कर ब्राह्मण के घर में प्रवेश किया। प्रवेश करके अपने हाथ में तलवार लिए हुए ॥१६॥ उस पापी चोरी करने वाले नाई ने अट्टालिका में सोए हुए ब्राह्मण दम्पती को निश्चिन्त सोए हुए देखा॥१७॥ वहाँ दोनों के समीप सुवर्ण के आभूषण को ले लेने की इच्छा से गया। उस समय शय्या के एक किनारे विद्यमान बहुत से आभूषणों को लेकर ॥१८॥ उनके शरीर से आभूषणों को लेने के लिए अपना हाथ फैलाया। उस चोर के स्पर्श से भयभीत ब्राह्मण जग गये ॥१९॥ किन्तु भयभीत वे वहीं स्थित रहकर कुछ भी नहीं बोले। जब वह पापी चोर शरीर के आभूषणों को लेकर चला ॥२०॥ उस समय उस ब्राह्मण ने उसको दोनों हाथों से पकड़ लिया। पीछे से आकर संपत्ति के क्षय को नहीं सहने वाले उनको उस राजा के चोर नाई ने तलवार से मार दिया। पेट के फट जाने के कारण हे हाय पिता, हाय माँ कह रहे थे। उनको क्या हुआ यह कहते हुए लोग आये और देखे कि खून से लथपथ उनकी आंत निकल गयी

तेनाऽपि नृपचौरेण कृपाणेन हतो द्विजः। विदीर्णोदरमध्यस्तु तातमातरितीरयन् ॥२२॥
वदन्तः किंकिमित्येतत्पार्श्वं तस्याऽऽययुर्जनाः ।
ददृशुस्तं निःसृतान्त्रं रुधिरालिप्तविग्रहम् ॥२३॥
पप्रच्छुश्च मुकुन्देदं कर्म केनेदृशं कृतम्। सोऽपि कृच्छ्रेणमहता प्रोवाचेदंस्वबान्धवान्॥२४॥

मुकुन्द उवाच

ममैव परिपाकोऽयं पूर्वोपार्जितकर्मणाम्। न कश्चित्सुखदुःखस्यदाताकस्याऽपिदेहिनः ॥
धर्मोऽधर्मश्च तावेव तेषां मूलं पुरा कृतौ ॥२५॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा स तु भूयस्या पीडयागाढपीडितः ।
तत्याज भूपते ! प्राणान्पश्यतां सुहृदां तदा ॥२६॥
विललाप तदा तस्य माताद्विजसतीनृप !। निधायतच्छिरःस्वाङ्केकुण्डलाभ्यामलङ्कृतम् ॥२७॥

मातोवाच

हा हताऽस्मित्वया वत्स ! दशामन्त्यांचगच्छता ।
दिनश्रीरिवसूर्येणपश्चिमाचललम्बिना ॥२८॥
यदङ्गं चन्दनालेपयोग्यं तव महामते !। मां मज्जयार्तिशोकाब्धौ तदिदं धूलिधूसरम् ॥२९॥
ताम्बूलचर्वणेऽभ्यासो यस्त्वया विहितस्त्वसौ ।
स एवरुधिरोद्गारमिश्रेणक्रियतेध्रुवम् ॥३०॥
तव ये लोचने पूर्वं जिग्यतुः कमलश्रियम्। ते एव साम्प्रतं जाते तिमिरौघावृते इव॥३१॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स ! त्वं शिष्यानध्यापयात्मनः ।
यथावदैश्वदेवान्ते पूजयाऽतिथिमागतम् ॥३२॥

है ॥२१-२३॥ वे सब मुकुन्द से पूछे किसने इस कर्म को किया है ? वे ब्राह्मण भी बहुत कष्ट से अपने बान्धवों से कहे ॥२४॥ **मुकुन्द बोले—** मेरे ही पूर्व जन्मों के कृत्य के कारण ऐसा हुआ । कोई भी किसी भी शरीरधारी सुख और दुःख को नहीं देता है । पूर्वजन्म के किए पाप और पुण्य ही सुखों तथा दुःखों के कारण हैं ॥२५॥ यह कहकर वे बहुत अधिक पीड़ा के कारण पीड़ित होकर हे राजन् ! वे अपने सुहृदों के सामने प्राणों को त्याग दिए ॥२६॥ उस समय उस ब्राह्मण की माता और सती पत्नी विलाप करने लगे। उनके कुण्डलों से अलंकृत शिर को अपनी गोद में रखकर वे विलाप कर रही थीं ॥२७॥ **माता ने कहा—** हे तात ! तुम्हारे मर जाने से तो मैं मर गयी जिस तरह अस्ताचल गये सूर्य के द्वारा दिन की शोभा विनष्ट हो जाती है, उसी तरह ॥२८॥ हे महामते ! तुम्हारे जो अङ्ग चन्दन के लेप योग्य थे वह मुझको शोक तथा कष्ट के सागर में डुबाकर धूलि-धूसरित हो गये हैं ॥२९॥ पान चबाने के अभ्यास वाला जो तुम्हारा मुख था वही खून उगलने के कारण उससे मिश्रित हो गया है ॥३०॥ तुम्हारे नेत्र जो कमल की शोभा को जीतने वाले थे वे इस समय घोर अन्धकार से घिरे हुए के समान लगते हैं ॥३१॥ हे वत्स! उठो, अपने शिष्यों को पढ़ाओ । वलि वैश्वदेव के पश्चात् तुम अतिथियों की पूजा करो । दरवाजे पर खड़े

द्वारि स्थिता वयस्यास्ते त्वाह्वयन्ति प्रयाहि तान् ।
दातव्यं यद्ददस्वैभ्यो ग्रहीतव्यं गृहाण तत् ॥३३॥
हाहा देहि प्रतिवचः पतामि तव पादयोः। नोचेदहं विमोक्ष्यामि प्राणांस्तव समीपतः॥३४॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा मुर्च्छितातस्य मुकुन्दस्यप्रसूस्तदा। भार्यातस्यशिरःस्वाङ्केविधायव्यलपच्चसा ॥३५॥

भार्योवाच

नाथ ! भो गुणपाथोधे मदीयं वचनं शृणु। रुष्टोऽसि चेत्समं मात्राकुतोवद ममाऽग्रतः ॥३६॥
न कदाचित्त्वया साधो मौनमीदृक्कृतंपुरा। केनाऽपि लघुनाभ्रात्रा ह्यपमानः कृतस्तव॥३७॥
शुकोऽयं पञ्जरस्थस्ते नान्नमत्ति त्वया बिना ।
भोजयैनंसुसिद्धान्नंकलवाचंचसारिकाम् ॥३८॥
रामरामहरेकृष्णविष्णोनामावलीमिति । पाठयोत्तिष्ठ निपुणौ द्वावेतौ सारिकाशुकौ॥३९॥
अपराद्धं मया किं ते यत्त्वं मांनाभिभाषसे ।
यत्त्वया मे धनं दत्तं तन्मया साधुरक्षितम् ॥४०॥
अर्पितं यत्त्वया नाथ निजतेजो ममोदरे। सूतिकालमहं तस्य नाऽपेक्षे त्वामनुव्रजे॥४१॥

नारद उवाच

एवं विलप्य सा तस्य मुकुन्दस्य प्रिया तदा ।
न रुरोद स्वभर्तारमनुगन्तुमनाः सती ॥४२॥
अथ तस्य मुकुन्दस्य गुरुर्वेदायनाभिधः। संन्यासी पर्यटन्पृथ्वीं तस्य वेश्म ययौ नृप॥४३॥

तुम्हारे मित्र तुमको बुला रहे हैं उन सबों के पास जाओ । देने योग्य वस्तुओं को उन्हें दो और लेने योग्य वस्तुओं को उनसे लो ॥३२-३३॥ हाय ! हाय !! तुम मेरी बातों का उत्तर दो मैं तुम्हारे चरणों पर गिर रही हूँ । अन्यथा मैं तुम्हारे समीप ही अपने प्राणों को त्याग दूँगी ॥३४॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहकर मुकुन्द की माँ मूर्छित हो गयी किन्तु उनकी पत्नी उनके शिर को अपनी गोद में लेकर विलाप कर रही थी ॥३५॥ **पत्नी ने कहा—** हे गुणों के सागर नाथ ! आप मेरी बात सुनें आप माँ से क्यों रुष्ट हैं ? मुझे बतलाइये ॥३६॥ हे साधो ! आज तक इस प्रकार का मौन धारण आपने कभी नहीं किया क्या आप के किसी छोटे भाई ने आपका अपमान किया है ?॥३७॥ तुम्हारा यह शुक पिञ्जड़े में विद्यमान है किन्तु अन्न नहीं खा रहा है । आप इसको अच्छी तरह से पकाये हुए अन्न को खिलायें और मधुर वाणी बोलने वाली सारिका को भी ॥३८॥ राम ! राम ! हरे कृष्ण ! इस तरह से भगवान् विष्णु के नामों को उठकर पढ़ाइये ये दोनों शुक और सारिका अत्यत निपुण हैं ॥३९॥ मैंने आपका कौन सा अपराध किया है कि आप मुझसे नहीं बोल रहे हैं । आपने जो धन मुझे दिया था उसको मैंने अच्छी तरह से रख दिया है ॥४०॥ हे नाथ ! आपने जो मेरे उदर में तेज का आधान किया है मैं उसके प्रसूति के काल की प्रतीक्षा नहीं करूँगी मैं आपका अनुगमन करूँगी ॥४१॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से विलाप करके मुकुन्द की पत्नी उनका अनुगमन करने की इच्छा से नहीं रोयी ॥४२॥ उसके पश्चात् मुकुन्द के वेदायन नामक

मुकुन्दः क्व गतो माता भार्यातस्य च धीमतः ।
न दृश्यते तदा तेन पृष्टेत्याचष्टचेटिका ॥४४॥

चेटिकोवाच

स्वामिन्केनाऽपिचौरेण मम स्वामी हतो निशि ।
स्नुषायाभूषणंनीतंदुकूलानिच सर्वशः ॥४५॥

स मृतः पतितो हर्म्यस्योपरितिष्ठति । तस्य माता वधूश्चैव भ्रातरश्च तदन्तिके ॥
विलपन्ति महाशोकसागरे पतिता गुरो ! ॥४६॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य परिव्राट् स वचनं चेटिकोदितम् ।
आरुह्य हर्म्यमद्राक्षीदात्मान्तेवासिनंमृतम् ॥४७॥
तदन्तिके समालोक्य बन्धूनाक्रान्दतो भृशम् ।
उद्धरिष्यन्निदंधीरःशोकब्धेस्तानुवाचह ॥४८॥

वेदायन उवाच

देहमुद्दिश्य वाऽऽत्मानं शोकोऽयंक्रियतेत्वया ।
मातः कथयसत्यंमेनोभयोर्युज्यतेहिसः ॥४९॥

देहोऽयं भूतसंघातः प्रारब्धैः समुपार्जितः। तेषु क्षीणेषु भूतानां पृथक्त्वमुपजायते॥५०॥
यदेकीभवनं तेषां कर्मभिर्जन्म तन्नृणाम्। तन्नाशे तत्पृथक्त्वं च तदेव मरणं स्मृतम् ॥५१॥

ऐक्यं पृथक्त्वं भूतानां कर्माधीने यतो बुधैः ।
अतो देहेन कर्तव्यः शोकः परवशे जडे ॥५२॥

अनाद्यविद्यया जीवे दृष्टे मरणजन्मनी । देहस्याऽऽत्मन्यहंबुद्ध्या मन्यते नहि तत्र ते॥५३॥

गुरु जो संन्यासी थे वे पृथिवी पर पर्यटन करते हुए उसके घर गये ॥४३॥ मुकुन्द के यहाँ गये, उनकी माता तथा पत्नी भी नहीं दिखायी पड़ी तो इस तरह से पूछने पर दासी ने कहा ॥४४॥ **चेटी ने कहा—** हे स्वामिन् ! किसी चोर ने रात में मेरे स्वामी को मार दिया है । वह आपकी पुत्र वधू के भूषण तथा सारे वस्त्रों को भी ले गया ॥४५॥ वे मरे हुए महल के ऊपर गिरे पड़े हैं । उनकी माता पत्नी और भाई उनके समीप विलाप कर रहे हैं, वे महान् शोक के सागर में पड़े हैं ॥४६॥ **नारदजी ने कहा—** चेटी के द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर वे संन्यासी भवन के छत पर जाकर अपने मरे हुए छात्र को देखे ॥४७॥ उन्होंने उनके सन्निकट रोते हुए बान्धवों को देखा । वे शोक को दूर करने की इच्छा से शोक सागर में पड़े हुए उन सबों से कहा ॥४८॥ **वेदायन ने कहा—** तुमलोग इस शरीर के विषय में शोक करते हो अथवा आत्मा के विषय में शोक करते हो । हे माँ आप सत्य बोलिये । इन दोनों के विषय में शोक करना उचित नहीं है । प्रारब्ध के अनुसार यह भूतों के समूह स्वरूप शरीर मिला है । प्रारब्ध कर्मों के समाप्त होने पर सभी भूत उससे अलग हो जाते हैं ॥४९-५१॥ कर्मो के कारण वे जव एक हो जाते हैं तो उसी से मनुष्यों का जन्म होता है । भूतों के एकीकरण का नाश हो जाने पर उनका अलग-अलग हो जाना ही मरण कहलाता है भूतों का एकत्व तथा पृथक्त्व ये दोनों कर्म के अधीन होते हैं । अतएव परवश तथा

तन्निवृत्तौ सतद्ब्रह्म यच्छुद्धं रूपवर्जितम्। स्वप्रकाशं जगद्धेतु हेत्वतीतं गुणोर्जितम् ॥५४॥
नित्यं विज्ञानमानन्दस्वभासाभासयज्जगत् । न जिह्वालेढितच्चक्षुर्नपश्यति शृणोति न ॥५५॥
श्रुतिर्जिघ्रति न घ्राणं नत्वक्स्पृशति कर्हिचित् ।
अतीतमिन्द्रियेभ्यस्तत्स्वप्रकाशकमात्मदृक् ॥५६॥
अविषयं मनो दूरं बुद्धेरपि न गोचरम् । तस्याऽवताररूपाणि शुद्धसत्त्वानि देवता: ॥५७॥
सेवन्ते तत्र जानन्ति रूपं यत्सदसत्परम्। एवं स्वरूपमात्मायस्तं समुद्दिश्यक:कुधी: ॥५८॥
क्रोधं कुर्याद्यतस्तस्य नोत्पत्तिर्नैव संक्षय: ॥५९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये नवाधिकद्विशततमोऽध्याय: ॥२०९॥

दो सौ दशवाँ अध्याय

नारद उवाच

एवं प्रबोध्य तान्सर्वान्वचोभि: पारमार्थिकै: ।
स हंस: कारयामास क्रियास्तस्याऽऽत्मसंभवा: ॥१॥

जड शरीर के विषय में शोक नहीं करना चाहिए ।।५२।। अनादि काल से प्रवृत्त अविद्या (अज्ञान) के कारण ही जीवों के जन्म और मरण होते हैं । देह और आत्मा में अहंत्व की बुद्धि होने के कारण उसमें आत्मत्व नहीं माना जाता है ।।५३।। अविद्या की जब निवृत्ति हो जाती है तो वही शुद्ध और रूप रहित ब्रह्म हो जाता है । वहीं स्वयंप्रकाश जगत् का कारण, हेतु से रहित और अपने प्रकाश से जगत् को प्रकाशित करने वाला है । उसको जीभ से चाटा नहीं जा सकता है, और न उसको आँखों से देखा जा सकता है, और कान उसको सुन नहीं सकते हैं । नाक उसको सूंघ नहीं सकती और न त्वगिन्द्रिय से उसका स्पर्श हो सकता है । वह इन्द्रियों का कभी विषय नहीं बनता है, वह स्वप्रकाश तथा आत्मदृक् है ।।५४-५६।। वह मन का विषय नहीं होता है, उसे बुद्धि से कभी नहीं जाना जा सकता है । अवतार स्वरूप को शुद्ध सत्त्व सम्पन्न देवता सेवन करते हैं किन्तु वे उसको नहीं जानते हैं । वे सत् तथा असत् दोनों से ही परे हैं । इस तरह के स्वरूप वाला जो आत्मा है उसके लिए कौन मूर्ख क्रोध करेगा, क्योंकि आत्मा का न तो जन्म होता है, और न उसकी मृत्यु होती है ।।५७-५९।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य वर्णन के अन्तर्गत दो सौ नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०९।।

कपड़े में बँधे हुए मुकुन्द की हड्डियों को कुत्ते के द्वारा इन्द्रप्रस्थ के कोशलपुरी में गिराया जाना, उसके बाद देवलोक जाने के लिए तैयार मुकुन्द की मृत्यु के पश्चात् अपने गुरु वेदायन को अपनी गति बतलाना और उसको स्वर्ग की प्राप्ति

नारदजी ने कहा— इस तरह से सबों को पारमार्थिक वचन के द्वारा ज्ञान कराकर वे हंस उसकी

अन्तर्वत्नी मुकुन्दस्य निर्बन्धं कुर्वती वधूः । अनुगन्तुं स्वभर्तारं विदुषा तेन वारिता॥२॥
तस्याऽस्थीनि समादाय तेन संन्यासनिासमम् ।
तद्भ्राताप्रययौगङ्गाजलेपातायितुंनृप ॥३॥
विप्रसंन्यासिनौ तौ हि कतिभिर्वासरैनृप ! । सार्थलोकवशात्प्राप्ताविन्द्रप्रस्थेऽत्रसत्पदे ॥४॥
इन्द्रप्रस्थान्तरावर्तिन्येषा या कोशलानृपः । अत्र सुप्तौ निशायां यमुनातीरभूतले ॥५॥
आत्मनोरुभयोर्मध्येन्यस्याऽस्थिपटसम्पुटम् । मार्गखेदपरिक्रान्तौदशांसौषुप्तिकींगतौ ॥६॥
निशीथेऽथ प्रसुप्तेषु सार्थलोकेषु कश्चन । एकः श्वा तत्र सम्प्राप्तः पक्वान्नादिजिहीर्षया॥७॥
बभ्राम सर्वशिबिरे जिघ्रन्पाकस्थलीं मुहुः। भाजनानि लिहन्मूर्ध्निक्वचदण्डाहतिसहन् ॥८॥
केनचित्ताडितो मूर्ध्नि निःशब्दंविद्रुतस्ततः । प्रतिकर्तुमशक्तस्तुस्त्रीजितःस्वस्त्रियायथा ॥९॥
यत्रावकण्डितः स श्वादण्डग्रावेष्टकादिभिः । पुनर्विवेश तत्रैव सोऽन्नपात्रलिलिप्सया॥१०॥
भोगेच्छया यथा वेश्याः स्नेहवान्निर्द्धनो जनः ।
भ्रमन्नेवंसचाऽत्रापियत्रसुप्तौहितावुभौ ॥११॥
सारमेयस्तयोर्मध्याज्जह्रे स पटसम्पुटम् । नीत्वा स कियतीं भूमिं दन्तैस्तत्पटसम्पुटम् ॥१२॥
विदार्याऽस्थीनि तत्स्थानि निर्मांसान्यवलोक्य सः ।
एतस्याः कोशलायास्तु जलमध्ये समाक्षिपत् ॥१३॥
क्षिप्तमात्रेषु तेनाऽस्थिष्वेतदम्बुनि भूपते !। दिव्यं विमानमास्थाय मुकुन्दोऽत्रसमागतः॥१४॥

और्ध्व दैहिक क्रियाओं को करवायें । जो क्रियाएँ उसकी आत्मा से सम्बद्ध थीं ॥१॥ मुकुन्द की गर्भवती पत्नी जो अपने पति का अनुगमन करने से लिए सुदृढ रूप से तैयार थी उसको उन विद्वान् ने रोक दिया॥२॥ उसकी हड्डियों को लेकर उस संन्यासी के साथ मुकुन्द का भाई गङ्गा में जा रहा था ॥३॥ वे ब्राह्मण और संन्यासी दोनों कुछ दिनों में लोगों के साथ इन्द्रप्रस्थ के इस सन्मार्ग में विद्यमान मार्ग में ॥४॥ हे राजन् ! इन्द्रप्रस्थ में ही विद्यमान कोशल में वे दोनों रात्रि में यमुना के तट पर सोये थे ॥५॥ वे दोनों के बीच में कपड़े में बंधे हुए हड्डी को रख कर मार्ग में थक जाने के कारण सुषुप्तावस्था में चले गये । आधी रात को साथ को लोगों में कोई एक कुत्ता आया वह पक्वान आदि ले लेने की इच्छा से आया ॥६-७॥ वह सबों के भोजन स्थान में बार-बार सूंघते हुए पात्रों को चाटते हुए कहीं दण्डे की मार बर्दास्त करते हुए किसी के द्वारा शिर पर मारने के कारण बिना शब्द किए वहाँ से भाग चला । अपनी स्त्री से जिते हुए के समान उसका प्रतिकार करने में वह असमर्थ था ॥८-९॥ जहाँ वह कुत्ता दण्ड के अग्रभाग अथवा इंट आदि से मारा गया था । वहीं वह अन्न के पात्रों को प्राप्त करने की इच्छा से प्रवेश किया था ॥१०॥ जैसे भोग करने की इच्छा से कोई निर्धन वेश्या के यहाँ जाता है उसी तरह घूमता हुआ वह वहाँ आया जहाँ से सोए थे ॥११॥ कुत्ते ने उन दोनों के बीच से हड्डी की पोटली को ले लिया । कुछ दूर दाँत से पकड़कर भागता हुआ वह अपने दाँतों से उस वस्त्र के सम्पुट को और उसमें विद्यमान मांस रहित हड्डियों को देखकर इस कोशला के जल में डाल दिया ॥१२-१३॥ हे राजन् ! उन अस्थियों को इस जल में डाल देने मात्र से दिव्य विमान पर चढ़कर मुकुन्द वहाँ आये ॥१४॥ अपने गुरु तथा अनुज को सोये हुए

दृष्ट्वा गुर्वनुजौ सुप्तौ शनैः प्राबोधयत्तदा। उवाच च नमस्कृत्य गुरुं दिव्याकृतिर्नृप !॥१५॥

मुकुन्द उवाच

वेदायन गुरो तुभ्यंनम आशीस्तवाऽनुज !। प्रसादाद्वां ममाऽस्थीनितीर्थेऽत्रपातितानिवै ॥१६॥
अपमृत्युमहं गत्वा निरयं प्राप्य तत्फलम्। एतत्तीर्थप्रसादेन दैवी लब्धा मया गतिः॥१७॥
त्वां गुरुं तीर्थभूतं तु नमस्कर्तुमिहाऽऽगतः। अहं गच्छन्विमानेनदिव्येनत्रिदशालयम् ॥१८॥
नमस्कृतो भवानेतत्तीर्थं चाऽयं सहोदरः। दृष्टो ममानुजानीहि यामि स्वर्गं सुखोदयम्॥१९॥

नारद उवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्य मुकुन्दस्य गुरुस्तदा। वेदायनो विमानस्थं तमूचे गतविस्मयः ॥२०॥

वेदायन उवाच

मुकुन्दाऽऽख्याहि मे सत्यं लब्ध्वा यन्मरणं भवान् ।
कस्मिँल्लोके गतस्तात ! यतो यात्यधुना दिवम् ॥२१॥
किं वृत्तं तत्र ते तात तस्य लोकस्यकोऽधिपः ।
कीदृशीचप्रजाकीदृग्धर्मस्तत्राऽखिलंवद ॥२२॥

मुकुन्द उवाच

कथयामि गुरो तुभ्यं यद्वृत्तं मरणादनु। तीर्थस्याऽस्य प्रसादेन स्मृतिर्मे जायतेऽधुना॥२३॥
यदाऽऽहं तेन निहतश्चण्डकेन दुरात्मना। नापितेन तदाऽऽजग्मुर्यमभृत्याः सुदारुणाः ॥२४॥
पिङ्गाक्षा रक्तकेशाश्च श्यामदेहनखाधराः। वामनादीर्घचरणा ह्रस्वनासाश्च दन्तुराः॥२५॥
नीयतां नीयतामेष धर्मराजस्य शासनात्। पुरीं संयमनीमेवमूचिरे ते परस्परम्॥२६॥

देखकर उन दोनों को धीरे से जगाये । हे राजन् ! दिव्य आकार वाले वे गुरु को नमस्कार करके कहे ॥१५॥ **मुकुन्द बोले—** हे वेदायन गुरो ! आपको नमस्कार है और हे अनुज ! तुमको आशीर्वाद है । आपलोगों की कृपा से मेरी अस्थियाँ यहाँ तीर्थ में गिरीं ॥१६॥ मैं अप मृत्यु के कारण नरक में चला गया था किन्तु इस तीर्थ की कृपा से मैंने देवता की गति को प्राप्त कर लिया है ॥१७॥ हे गुरो ! तीर्थ स्वरूप आपको नमस्कार करने के लिए यहाँ आया हूँ । मैं विमान से देवलोक जा रहा था ॥१८॥ आपको, इस तीर्थ को तथा इस छोटे भाई को मैंने यहाँ देखा । सुख प्राप्त मैं स्वर्ग जा रहा हूँ ॥१९॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह की उसकी बात को सुनकर मुकुन्द के गुरु वेदायन विमान पर बैठे हुए उसको विस्मित होकर कहे॥२०॥ **वेदायन बोले—** हे मुकुन्द ! सत्य बतलाओ तुम्हारी जो मृत्यु हुयी उसके बाद तुम किस लोक में गये । जहाँ से इस समय तुम स्वर्ग में जा रहे हो ॥२१॥ हे तात ! वहाँ तुम्हारे साथ क्या हुआ ? उस लोक के स्वामी कौन हैं ? वहाँ की प्रजा कैसी है, वहाँ का धर्म कैसा इन सारी बातों को तुम बतलाओ ॥२२॥ **मुकुन्द ने कहा—** हे गुरो ! मरने के बाद जो घटना हुयी उसे मैं बतला रहा हूँ । इस तीर्थ की कृपा से मुझे सभी बातों की स्मृति हो गयी है ॥२३॥ जब दुष्ट नापित चण्ड ने मुझे मार दिया उस समय यम के भयङ्कर दूत आये ॥२४॥ उनकी आँखें पीली थीं, केश लाल थे, उनके देह, नख तथा ओठ काले थे । वे वामन के आकार के थे और उनके पैर बड़े-बड़े थे उनकी नाक छोटी थी और दाँत निकले हुए थे ॥२५॥ इसके यमराज के आज्ञा से ले चलो, ले चलो संयमनी पुरी में ले चलो इस तरह

इत्युक्त्वा यातनादेहे मां निवेश्य महारुषा। निबध्यदारुणैः पाशैर्जघ्नुर्लोहस्य मुद्गरैः ॥२७॥
तैरहं नीयमानस्तु मार्गेह्युत्तप्तवालुके। अरुदं भृशदुःखार्तस्ताडितोऽहं पुनश्च तैः ॥
प्रोचुश्च ते ध्रुवं कृत्वा निर्भर्त्स्येति च मां बहु ॥२८॥

यमदूताऊचुः

त्वया लुप्तो गुरुर्यस्माद्वदता ब्रह्म निश्चलम्। किं करोमि यमस्याऽग्रेद्रष्टव्यंदारुणंमुखम्॥२९॥
तस्य पापस्य भोक्तव्यं दारुणस्यफलं त्वया ।
तेनैव पाप्मनापापिन्नपमृत्युं गतोभवान् ॥३०॥
इत्युक्त्वा मां मुहूर्तेन बहुयोजनसंस्थिताम्। पुरीं संयमनी निन्युर्यत्र राजा स्वयंयमः ॥३१॥
प्रणम्य धर्मराजं ते स्थापयित्वा तु मां पुरः ।
आनीतोऽयं द्विजः पाप इति मां ते न्यवेदयन् ॥३२॥
दृष्ट्वा मां धर्मराजोऽथ प्रोवाच स्वसभासदः ॥३३॥

यम उवाच

भोःसभ्यामामकींवाचंशृण्वन्तुसुसमाहिताः । यदाऽहंब्रह्मणाह्यस्मिन्नधिकारेनिवेशितः ॥
तदा मामित्युवाचाऽसौ ब्रह्मा लोकपितामहः ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

अधर्मिणां नराणां त्वं शास्ता संयमनीपतिः ।
यथापराधमाधत्स्व दण्डंचण्डकरात्मज ॥३५॥
पित्रोरपोषको यस्तु समर्थो गुरुध्रुक्तु यः। एतौ महापातकिनौ निपात्यौनिरयेषु ते॥३६॥
सर्वेषु यावद्वर्षाणां प्रत्येकमयुतं भवेत्। एतयोर्न त्वया कार्या दया जातु ककुप्पते ! ॥३७॥

से कह रहे थे ॥२६॥ इस तरह उन सबों ने मुझे यातना देकर हमें क्रोध पूर्वक नरक में प्रवेश करा दिया। भयङ्कर पाश में बाँधकर वे मुझे लोहे के मुद्गर से मारे ॥२७॥ संतप्त बालू वाले मार्ग से उनसे ले जाया जाता हुआ मैं अत्यन्त दुःख से रोया और वे मुझे फिर मारे उन सबों ने मुझको बहुत अधिक डाँट कर कहा ॥२८-२९॥ **यमदूतों ने कहा—** त्वचा रहित तथा ब्रह्म को बोलते हुए तुम यम के समक्ष क्या करोगे उनका तुमको भयङ्कर मुख देखना चाहिए उस भयङ्कर पाप का फल तुम्हें भोगना पड़ेगा । हे पापी ! उसी पाप के कारण तुम अपमृत्यु को प्राप्त किए ॥३०॥ इस तरह से कहकर वे एक मुहूर्त में बहुत योजन दूर विद्यमान संयमनी पुरी में लाये जहाँ के राजा स्वयं यम हैं ॥३१॥ वे धर्म राज को प्रणाम करके उनके सामने मुझे स्थापित किए । और उन सबों ने कहा इस पापी द्विज को हमलोग लाये हैं ॥३२॥ मुझको देखकर यमराज अपने सदस्यों से कहे ॥३३॥ **यमराज बोले—** हे सभ्यों ! आपलोग मेरी वाणी को सावधानी से सुनें । क्योंकि ब्रह्माजी ने मुझे यहाँ का अधिकार प्रदान किया है उस समय ब्रह्माजी ने मुझसे कहा॥३४॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** अधार्मिक मनुष्यों का शासन करने वाले तुम संयमनी पुरी के स्वामी हो । हे सूर्यपुत्र! उन सबों को अपराध के अनुसार दण्ड दो ॥३५॥ जो समर्थ होकर भी पिता का पोषण न करे और गुरु से द्रोह करने वाले जो हों वे दोनों महापापी हैं उन सबों को तुम दश-दश हजार वर्ष तक सभी नरकों में

यम उवाच

इत्यहं ब्रह्मणोवाक्यात्स्वगुरुद्रुहिमानवे । न करोमि क्रियां सभ्यास्तथा पित्रोरपोषके ॥३८॥
ब्राह्मणोऽयं गुरुद्रोहीतद्द्रोहादपमृत्युताम् । प्राप्तो मच्छासनाद्भृत्यैरानीतोदर्शनाक्षमः ॥३९॥
भो भृत्याःप्रथमंघोरेरौरवेवत्सरायुते । पात्यतां च पुनस्तस्मान्निःसार्यान्यत्रपात्यताम् ॥४०॥
तावन्तमेव कालं वै पापोऽयं गुरुलोपकः । नरकेष्विति सर्वेष यथाकालं स्थितं द्रुतम् ॥४१॥

मुकुन्द उवाच

वेदायनगुरोस्वामिन्भृत्यास्तेयमशासनात् । नीत्वामांरौरवेघोरेपाशैर्बद्ध्वान्यपातयन् ॥४२॥

तत्राऽहं तां व्यथां गुर्वी लब्धवानतिदारुणाम् ।
यथैकोऽपि क्षणस्तात नीतो मे युगवत्तदा ॥४३॥

त्रिंशद्दिनानि तन्नीतं दुःखं मे तत्र तिष्ठता। एकत्रिंशत्तमे ह्यस्मिन्दिनेऽहं निर्गतस्तदा ॥४४॥
पतितेष्वस्थिखण्डेषु तीर्थेऽस्मिन्नुत्तमोत्तमे। गुरुलोपोद्भवं पापं सद्यो नष्टं ममाऽभवत्॥४५॥
तीर्थस्याऽस्य प्रसादेनलब्धाचस्वर्गतिर्मया। सुखं स्वर्गेनिवत्स्यामि यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥४६॥
यमस्य नगरे तस्मिन्याः प्रजा निवसन्तिवै। पापिनां भयदायिन्योधर्मिणांतामनोहराः॥४७॥
सिंहास्या गजकोलस्या महादंष्ट्रोन्नतोदरीः। विडालास्याः पिङ्गकेश्यो भामिन्यो दीर्घपत्कराः॥४८॥

तीर्थस्याऽस्य प्रसादेन निष्पापोऽहंयदाऽभवम् ।
तदामयाप्रजादृष्टादिव्यरूपा यमालये ॥४९॥
सर्वास्ताः सत्यवादिन्यो विनयाचारसञ्चिताः ।
दिव्याभरणधारिण्यो दिव्याम्बरविभूषिताः ॥५०॥

डालो । इन सबों पर तुम्हें दया नहीं करनी चाहिए ॥३६-३७॥ **यमराज ने कहा—** इस तरह से ब्रह्माजी के कहने से मैं अपने गुरु से द्रोह करने वाले मनुष्य पर जो पिता को उनसे द्वेष करने के कारण आप मृत्यु को प्राप्त मेरे दूतों द्वारा लाये गये को मैं नहीं देखता हूँ ॥३८-३९॥ ऐ दूतों सर्वप्रथम इसको भयङ्कर रौरव नरक में दश हजार वर्ष के लिए डाल दो । फिर उससे निकालकर अन्य नरकों में उतने समय तक इस गुरुलोपक को डालो । समयानुसार सभी नरकों में उसको शीघ्र डालो ॥४०-४१॥ **मुकुन्द ने कहा—** हे वेदायन गुरो ! हे स्वामिन् ! यम की आज्ञा से मुझको ले जाकर वे सब भयङ्कर नरक में डाल दिए॥४२॥ वहाँ पर मैं अत्यन्त भयङ्कर कष्ट को प्राप्त किया । हे तात ! वहाँ मेरे एक-एक क्षण युग के समान बितते थे ॥४३॥ वहाँ पर तीस दिन बड़े कष्ट से बीते । इकतीसवें दिन आज उससे निकला हूँ॥४४॥ इस उत्तमोत्तम तीर्थ खाण्डव में तो अस्थियों के पड़ने पर मेरा गुरु लोपक जन्य पाप शीघ्र ही नष्ट हो गया ॥४५॥ इस तीर्थ की कृपा से मैंने स्वर्ग गति को प्राप्त किया । अब में स्वर्ग में चौदह हजार इन्द्रों के काल तक सुख पूर्वक रहूँगा ॥४६॥ यम के उस नगर में जो प्रजायें रहती हैं वे सब पापियों को भय देने वाली तथा धार्मिकों के लिए मनोहर होती हैं ॥४७॥ उन सबों के मुख सिंह के समान हाथी के समान तथा शूकर के समान हैं उनके दाँत बड़े-बड़े और निकले हुए पेट वाले हैं । किसी के मुख बिल्ली जैसे हैं केश पीले हैं स्त्रियों के भी पैर और हाथ बड़े-बड़े हैं ॥४८॥ इस तीर्थ की कृपा से जब मैं निष्पाप हो गया तब मैंने उन प्रजाओं को यमलोक में दिव्य रूप वाली देखा ॥४९॥ उन सबों को मैंने सत्य बोलने

इत्येतत्कथितं तात यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ! ।
अनुजानीहि मां गन्तुममरेशपुरीं प्रति ॥५१॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य स संन्यासी स्वशिष्योक्तंवचस्तदा ।
भूयः पप्रच्छधर्मात्मामुकुदंतंद्विजंनृप ॥५२॥

वेदायन उवाच

बाल्यावधि गुरुस्नेहं मत्तोऽधीतं त्वयाऽखिलम् ।
शब्दशास्त्रसमेतश्चवेदस्तु सपदक्रमः ॥५३॥

विहिता मम शुश्रूषा भावेन भवतोत्तमा। त्वयि सन्ति सतांसाधोगुणाः शमदमादयः ॥५४॥
गुरुलोपकृतं पापं कथं ते समजायत। एतदाख्याहि मे तात यथा जानामि तत्त्वतः ॥५५॥

मुकुन्द उवाच

जन्मोपवीतकन्यानां दातारो निगमस्य च। यज्ञोपवीतदातुश्च नाज्ञाभङ्गः कृतो मया ॥५६॥
श्वश्रूश्वशुरयोः सेवा भृत्येनेव कृता मया। तवाऽपि शास्त्रदातुश्च नाज्ञाभङ्गः कृतो मया ॥५७॥
पुरोधा यः कुलाचार्यो वेदवेदाङ्गपारगः। तस्याऽपराद्धं किञ्चिन्मे तत्र त्वं श्रोतुमर्हसि॥५८॥
यद्यस्माकं कुले पुत्रो जायते धर्मकोविदः। तदा पुरोधसे धेनुमेकांवातस्यदक्षिणाम् ॥५९॥
दत्त्वा संछिद्यतेनालमितिवंशस्यनःस्थितिः। पुरा ममैवपुत्रे तु जातमात्रे शुभेऽहनि ॥६०॥

कुलक्रिया मया तात ! न कृता मूढबुद्धिना ।
तस्याश्चाकरणेनैव गुरुलोपकरोऽभवम् ॥६१॥

निवेदितमिदं सर्वं गुरुलोपाद्यथा मम। पापमासीदनुज्ञां मे देहि यामि सुरालयम् ॥६२॥

वाली और नम्र आचार से युक्त दिव्य आभरण को धारण की हुई तथा दिव्य वस्त्रों से अलंकृत देखा॥५०॥ हे तात ! हे अनघ ! आपने जो पूछा था उसको मैंने कह दिया। अब आप मुझे इन्द्र की नगरी में जाने का आदेश दें ॥५१॥ **नारदजी ने कहा—** अपने शिष्य द्वारा कहे गये इस वचन को सुनकर वे संन्यासी मुकुन्द से पुनः पूछे ॥५२॥ **वेदायन ने कहा—** बचपन से लेकर तुमने गुरु के प्रति सबकुछ पढ़ा शब्द शास्त्र के साथ-साथ वेदों के पदक्रम को पढ़ा ॥५३॥ तुमने मेरी उत्तम सेवा की हे साधो ! तुममें सज्जनों के शम-दम गुण विद्यमान हैं ॥५४॥ गुरु लोप जन्य पाप तुमसे कैस हुआ ? हे तात ! इस पाप को तुम मुझे बतलाओ जिससे मैं उसे जान सकूँ ॥५५॥ **मुकुन्द ने कहा—** मैंने कभी जन्म देने वाले तथा यज्ञोपवीत करने वाले का मैंने कभी भी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया ॥५६॥ श्वशुर की सेवा मैंने भृत्य के समान सेवा की और शास्त्र प्रदान करने वाले आपकी भी आज्ञा का मैंने कभी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया ॥५७॥ वेद तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत जो मेरे कुलगुरु पुरोहित थे उनका मैंने थोड़ा सा अपराधन किया उसे आप सुनें ॥५८॥ हमारे वंश में यदि कोई पुत्र धर्मज्ञ होता है तो पुरोहित को एक गौ अथवा उसकी दक्षिणा को देकर ही उसके नाल को काटा जाता है यही स्थिति है। पहले मेरा पुत्र शुभ दिन को उत्पन्न हुआ, तो मूर्ख मैंने वंश की क्रिया को नहीं किया। उसको नहीं करने के कारण मैं गुरुलोप करने वाला

वेदायन उवाच

इन्द्रप्रस्थान्तरावर्तिन्येषा या कोशला शुभा। स्मृतिरस्याः प्रसादेन दृश्यते पूर्वजन्मनः ।।६३।।
केनपुण्येनतीर्थेऽस्मिन्नस्थीनिपतितानिते । मुकुन्दाऽऽख्याहिचैतस्यस्मृतिरस्तितवाऽनघ ।।६४।।

मुकुन्द उवाच

एकस्तु ब्राह्मणःकश्चित्सायं मद्गृहमागतः। तस्मैस्थानं मयादत्तं भोजनंचयथाविधि।।६५।।
सोऽपिभुक्त्वा यथा कामं सुष्वापाशयने शुभे ।
निशीथेतस्यसर्वाङ्गेज्वरोऽभूदतिदारुणः ।।६६।।
तेन पीडितसर्वाङ्गो निद्रांलेभे न स द्विजः । प्रभात एव तत्याज प्राणान्मृत्यावुपस्थिते ।।६७।।
तस्य दाहादिकर्माणि विहितानि मया गुरो ! ।
तदस्थीनि च गङ्गायां पातितानि विधानतः ।।६८।।
तेनपुण्येन मेऽस्थीनि पतितानि शिवप्रदे। तीर्थेऽस्मिन्कोशलेनाम्नि ब्रह्मदेवविनिर्मिते।।६९।।

नारद उवाच

स्वचरितमितिराजन्स द्विजः प्रोच्य सद्यः सुरसुभगशरीरोद्यां ययौयानगत्या ।
इदमकथि मया ते तस्करात्प्राप्यमृत्युं व्यलभत दिवमेतत्तीर्थराजप्रसादात् ।।७०।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये मुकुन्दोपाख्यानं नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२१०।।

हो गया ।।५९-६१।। मैंने इसी तरह गुरुलोपक हुआ अब आप मुझे आज्ञा दें मैं देवलोक में जा रहा हूँ।।६२।। **वेदायन ने कहा—** इन्द्रप्रस्थ के अन्दर रहने वाली यह जो कोशल है इसी की कृपा से पूर्वजन्म की यादगारी हो जाती है ।।६३।। किस पुण्य के कारण तुम्हारी अस्थियाँ यहाँ पर गिरीं । हे अनघ मुकुन्द! तुम बतलाओ क्योंकि तुम्हें पूर्वजन्म की स्मृति है ।।६४।। **मुकुन्द ने कहा—** कोई एक ब्राह्मण मेरे घर सायंकाल आया उसको मैंने विधि पूर्वक स्थान तथा भोजन प्रदान किया ।।६५।। उसने भी अपनी इच्छा के अनुसार अच्छे आसन पर सोया । आधी रात को उसके सम्पूर्ण अङ्गों में भयङ्कर ज्वर हो गया । उससे सभी अङ्गों के पीड़ित होने के कारण उसे नींद नहीं आयी । प्रात:काल वह मृत्यु की बेला आ जाने से अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ।।६६-६७।। हे गुरो ! उसके दाह आदि क्रियाओं को मैंने किया और उसकी अस्थियों को विधि पूर्वक मैंने गङ्गा में डाल दिया ।।६८।। उसी पुण्य के कारण मेरी अस्थियाँ इस कल्याणकारी तीर्थ में गिरीं । यह ब्रह्माजी के द्वारा निर्मित कोशल नामक तीर्थ है ।।६९।। हे राजन् ! इस प्रकार से अपने चरित को कहकर वह शीघ्र ही देव शरीर से देवलोक में चला गया । इस तरह मैंने बतलाया कि चोर से अप मृत्यु को प्राप्त करके वह इस तीर्थ की कृपा से स्वर्ग को प्राप्त किया ।।७०।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के अन्तर्गत कालिन्दी माहात्म्य के प्रसङ्ग में मुकुन्द के आख्यान वर्णन करने वाले दो सौ दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१०।।

दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय

नारद उवाच

शिबे ! तव पुरः सर्वं मुकुन्दाख्यानमुत्तमम् ।
कथितं चण्डकस्यापि नापितस्य शृणुष्वमे ॥१॥

यस्मिन्दिने मुकुन्दस्तु ब्राह्मणस्तेनघातितः । चण्डकेन तदा राजंस्तंद्वत्तंनागरैः श्रुतम् ॥२॥
श्रुत्वा तैस्तन्नृपस्याऽग्रे निवेदितमितिस्फुटम् ॥३॥

नागराऊचुः

चण्डकेन हतो राजन्मुकुन्दो ब्राह्मणोत्तमः । नीतं च तद्धनंभूरि यद्युक्तं तद्विधीयताम् ॥
त्वमस्माकं प्रजानां हि रक्षकः शासकोऽसताम् ॥४॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य स भूपालो मन्त्रिणंपार्श्ववर्तिनम् । उवाच कोपरक्ताक्षः किमेभिःकथ्यतेशृणु ॥५॥
शीघ्रमानय तं पापं नोचेत्त्वांघातयाम्यहम् । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ पापिष्ठ साधूनांशंविधीयताम् ॥६॥
पीड्यन्ते विषये यस्य प्रजादस्युभिरुल्बणैः । न नृपो नरकं याति तेभ्यस्ताश्चेन्नरक्षति ॥७॥

नारद उवाच

निशम्येति वचो राज्ञः सचिवः स शिबे नृप ! ।
वेगेन हयमारुह्य पदातिशतसंयुतः ॥८॥

नागरिकों के अनुरोध से मुकुन्द की हत्या के अपराध के कारण राज द्वारा चण्डक नामक नाई के शिर को काटने का चन्द्रभागा नदी की मर्यादा के बाहर अपने मन्त्री को आज्ञा देना, इस पापी के सर्प गति का वर्णन, किसी ब्रह्मण के अस्थियों की मञ्जूषा में सर्प का प्रवेश, सर्प के प्रवेश के बाद अयोध्या में तीर्थ यात्रियों द्वारा अपनी लाठी के प्रहार द्वारा साँप को मारना, तीर्थ में मृत्यु होने के कारण उस पापी की स्वर्ग प्राप्ति की वर्णन

नारदजी ने कहा— हे शिवे ! मैंने आपको मुकुन्द का उत्तम आख्यान सुनाया । अब चण्डक नामक नाई का भी वृत्तान्त सुनो ॥१॥ जिस दिन उसने मुकुन्द नामक ब्राह्मण को मारा हे राजन् ! नागरिकों ने उस वृत्त को सुना ॥२॥ सुनकर उन लोगों ने राजा के समक्ष उस बात को कहा ॥३॥ **नागरिकों ने कहा—** राजन् ! चण्डक ने उत्तम ब्राह्मण मुकुन्द को मार दिया है, और उसने उनके बहुत अधिक धन को चुरा लिया है । जो उचित हो वह आप करें । आप हम प्रजाओं के रक्षक और दुष्टों का प्रशासन करने वाले हैं ॥४॥ **नारदजी ने कहा—** इस बात को सुनकर राजा ने अपने पास विद्यमान मन्त्री से क्रोध से आखें लाल करके कहा ये लोग क्या कह रहे हैं ? सुनो ॥५॥ उस पापी को तुम शीघ्र लाओ नहीं तो मैं तुमको मार दूँगा । ऐ पापी ! शीघ्र उठो सज्जनों का कल्याण करो ॥६॥ जिस राजा के राज्य में उग्र चोरों के द्वारा प्रजा पीड़ित होती है, वह राजा यदि उन सबों की रक्षा नहीं करता है तो वह नरक में जाता है॥७॥ **नारदजी ने कहा—** हे शिवे ! राजा के उस बात को सुनकर वह मंत्री घोड़े पर चढ़कर सौ पैदल

ययौ गृहे मुकुन्दस्य तस्य बन्धूनपृच्छत। मुकुन्दः केन निहितः सत्यं ब्रूत ममाऽग्रतः ॥
तं पापं निहनिष्यामि शासनाद्भूपतेरहम् ॥९॥

नारद उवाच

श्रुत्वेति मन्त्रिणो वाक्यं प्रत्यूचुर्विप्रबान्धवाः ॥१०॥

विप्रबान्धवाऊचुः

चण्डकेन हतो मन्त्रिन्मुकुन्दो नापितेन हि। इदंपलायमानस्य तस्योष्णीषं पपात वै॥११॥
दृष्टः स्वचक्षुषा बध्वा मुकुन्दस्यैव सोऽघकृत् ।
किं कुर्मस्तेनपापेनमज्जिताःशोकसागरे ॥१२॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां बन्धूनां ब्राह्मणस्य हि ।
समन्त्री तस्य पापस्यनापितस्यगृहंययौ ॥१३॥
अश्वादुत्तीर्य तरसा तद्गृहं स्वयमाविशत् । कतिभिः पत्तिभिः सार्द्धशयानंच ददर्श ह ॥१४॥
पत्तयस्तु तदाज्ञप्ताःकेशेष्वाकृष्यतत्क्षणात् । तल्पादुत्थापयामासुस्तंपापंनापिताधमम् ॥१५॥
किंकिमित्येव संजल्पन्नेत्रे उन्मीलयत्यसौ। यावत्स नापितः पापस्तावत्तं ददृशे पुरः ॥१६।
संस्मरंन्तं निजं कर्म रात्रौ यत्कृतवानघम्। अधोमुखः क्षणं तस्थौ पश्यन्मूर्ध्नि स्थितं यमम्॥१७॥
ग्राहयित्वा च सचिवस्तं पापं चस्वपत्तिभिः ।
निनायनृपतेःपार्श्वमितिचोवाचभूपतिम् ॥१८॥
अनीतो ब्रह्महा राजन्नयं चण्डकनापितः। यदाज्ञापयसि स्वामिंस्तरसा तत्करोम्यहम्॥१९॥

राजोवाच

धर्मज्ञ सचिवश्रेष्ठ ! शृणु त्वं वचनं मम। इयं सरिद्वराऽऽयुष्मंश्चन्द्रभागाऽत्रनिर्मला ॥२०॥

सैनिकों के साथ ॥८॥ मुकुन्द के घर गया तथा उसके बान्धवों से पूछा आपलोग सत्य बतलायें कि मुकुन्द को किसने मारा, उस पापी को मैं राजा की आज्ञा से मार दूँगा ॥९॥ **नारदजी ने कहा—** मन्त्री की बात को सुनकर उस ब्राह्मण के बन्धुओं ने कहा ॥१०॥ **ब्राह्मण बन्धुओं ने कहा—** हे मन्त्रिन् ! चण्डक नामक नाई ने मुकुन्द को मारा है । भागते हुए उसकी यह पगड़ी गिर पड़ी थी ॥११॥ उस पापी को मुकुन्द की पत्नी ने अपनी आँखों से देखा था । हमलोग क्या करें ? उस पापी ने हमलोगों को शोक सागर में डाल दिया है ॥१२॥ **नारदजी ने कहा—** उस ब्राह्मण के बन्धुओं के इस बात को सुनकर मन्त्री उस पापी नाई के घर गया ॥१३॥ घोड़े से उतरकर वेगपूर्वक कुछ पैदल सिपाहियों के साथ उसके घर में गया और उसको सोए हुए देखा ॥१४॥ उसकी आज्ञा से सिपाहियों ने उसके केश को पकड़कर उसी क्षण पापी नाई को खाट से नीचे गिरा दिया ॥१५॥ क्या है ? क्या है ? यह बोलते हुए अपनी आँखे ज्यों ही उसने खोला तो अपने सामने उसने मन्त्री को देखा । अपने पाप का स्मरण करते हुए जिसको उसने रात्रि में किया था, अपने शिर पर यम को देखकर क्षणभर नीचे मुँह करके बैठा रहा ॥१६-१७॥ मन्त्री उसको पकड़कर अपने सिपाहियों के साथ राजा के निकट लाया और राजा से कहा ॥१८॥ हे स्वामिन् ! ब्रह्मघाती

त्यजन्ति येऽत्र वै प्राणाँल्लभन्ते ते सुरास्पदम् ।
अतएषहन्तव्यःपापात्माह्यत्र नापितः ॥२१॥

पञ्चकोशान्तरे ह्यस्या मर्यादा या बहिर्जहि। नरकान्दारुणान्ह्येष ब्रह्महा यातु मचिरम् ॥२२॥

नारद उवाच

इत्युक्तस्तेन वै राज्ञा स राजन्मन्त्रिसत्तमः। श्वपचान्प्रेरयामास हन्तुं तं भूपशासनात् ॥२३॥
श्वपचास्ते तमुन्नीय चन्द्रभागापरे तटे। योजनद्वयभूभागं चिच्छिदुस्तस्य मस्तकम् ॥२४॥
स पापो मारवेदेशे सर्पोऽभूत्कालविग्रहः। धवकोटरमध्यस्थो विषज्वालाकराननः ॥२५॥
स शुष्को धववृक्षस्तु तस्य फूत्कारवह्निना। तथा तपनतापेन सरसोऽपि यथा ह्रदः ॥२६॥
गमनात्तस्य पापस्य सर्वतो वृक्षमूषरम्। उच्छिद्य तृणजातादिजातं पश्वहितं तदा ॥२७॥
तत्र जातु समायातः सार्थो दक्षिणदेशतः। नारायणाश्रमं गच्छन्बदर्याख्यं शिबे नृप ॥२८॥

तत्रैको ब्राह्मणः कश्चित्सार्थे संमीलितः पथि ।
निश्छिद्रां काष्ठमञ्जूषां पितृमात्रस्थिसंयुताम् ॥२९॥

स्कन्धेन धारयन्याति तानि पातयितुं नृप !। गङ्गाम्भसि महाभाग ! पापिनामपि कामदे ॥३०॥

सोऽप्यागतस्तत्र वने यत्राऽस्ति स भुजङ्गमः ।
विविक्ते क्षिप्य मञ्जूषां शलाकालोहनिर्मिताम् ॥३१॥
अथाऽऽगत्य भुजङ्गोऽसौ शलाकां फणयाऽघटत् ।
किञ्चिदुद्घाटितायां स मञ्जूषायां समाविशत् ॥३२॥

नाई को हम लाये हैं, आपकी जो आज्ञा हो उसे मैं शीघ्र करूँ ॥१९॥ **राजा ने कहा**— ऐ धर्मज्ञ सचिव श्रेष्ठ ! तुम मेरी बात सुनो । ऐ आयुष्मन् ! यह चन्द्रभागा नदी अत्यन्त निर्मल है ॥२०॥ यहाँ पर जो अपना प्राण त्याग करते हैं वे देवलोक में जाते हैं । अतएव इस पापी नाई को यहाँ नहीं मारना चाहिए।२१॥ इसकी जो पाँच कोश की मर्यादा है उसके बाहर इसको मारो । जिससे कि यह शीघ्र ही भयङ्कर नरक में चला जाय ॥२२॥ **नारदजी ने कहा**— हे राजश्रेष्ठ ! उस राजा के इस तरह से कहने पर राजा की आज्ञा से उसको मारने के लिए चाण्डालों को कहा ॥२३॥ चाण्डाल उसको चन्द्रभागा नदी के दूसरे तट पर से दो योजन दूर ले जाकर उसके शिर को काट दिए ॥२४॥ वह पापी मरुस्थल में काला सर्प हो गया । वह धव के खोंडरे में रहता था उसके मुख से विष की ज्वाला निकलती थी ॥२५॥ वह हरा भरा भी धव का वृक्ष उसके मुख की अग्नि से तथा सूर्य के ताप से सूख गया ॥२६॥ उस पापी के चलने से उषर के सारे वृक्ष नष्ट होकर तृण आदि के समान हो गये । वह पशुओं के लिए अहित हो गया ॥२७॥ हे शिवि राजन् ! वहाँ पर एक बार दक्षिण देश से तीर्थ यात्रियों का बदरी आश्रम में नारायणाश्रम जाने वाला समूह आया ॥२८॥ वहाँ पर कोई एक ब्राह्मण रास्ते में समूह में मिल गया । वह छिद्र रहित मञ्जूषा में अपने माता-पिता की अस्थियों को लिए था ॥२९॥ उसे अपने कन्धे पर रखकर पापियों की भी कामनाओं को पूर्ण करने वाले गङ्गा के जल में डालने के लिए जा रहा था ॥३०॥ वह भी वहाँ आया जहाँ वन में वह सर्प रहता था । लोहे की शलकाओं से निर्मित मञ्जूषा को एकान्त में रखकर वह सो गया ॥३१॥

पुनःशलाकास्वंस्थानमागताऽथसकुण्डली । तत्रैवतस्थौनिश्चेष्टोमञ्जूषायांविषोल्बणः ॥३३॥
अथ प्रभाते सर्वेतेचेलुःस्थानात्ततो नृप ! । ब्राह्मणःसोऽपिमञ्जूषांकम्बलेन समावृताम् ॥३४॥
कृत्वाशिरसिराजेन्द्रचचालप्रतिजाह्नवीम् । कतिभिर्वासरैःसार्थःसम्प्राप्तस्तीर्थगामिनाम् ॥३५॥
इहैव कोशलायां वै पुनीतायां महीपते ! । अथ शीतापुरो विप्रः कम्बलं चोदघाटयत् ॥३६॥
मञ्जूषावरणं राजंस्तत्राऽयोध्यातटेशुभे । सोऽपिसर्पो निराहारोलब्ध्वामारुतभोजनम् ॥३७॥
निश्चक्रामबहिस्तस्मादुत्क्षेप्यसुशलाकिकाम् । तं निःसृतं समालोक्यसर्पःसर्पइतिक्रुधा ॥३८॥

व्याहरन्तो जनाः सर्वे लोष्टहस्ताः समभ्ययुः ।
यावत्पलायते सर्पस्तावदेकेन घातितः ॥३९॥
तत्याज स तदा प्राणान्पश्यतांतीर्थगामिनाम् ।
त्यक्त्वाभुजगदेहंसदेवत्वंप्राप दुर्लभम् ॥
दिव्यं विमानमारुह्य प्रोवाचेदं जनानिह ॥४०॥

सर्प उवाच

भो दाक्षिणात्याःशृणुत ब्राह्मणा वचनं मम ।
पुरा चण्डकनामाऽहंनापितोब्रह्महाऽधमः ॥४१॥
ब्रह्महत्याप्रदोषेण सर्प आसं मरुस्थले । भुक्त्वा नरकदुःखानि वर्षाणां लक्षपञ्चकम् ॥४२॥
अतीतं सर्पयोनौ मे वर्षाणामयुतद्वयम् । तीर्थस्याऽस्य प्रसादेन प्राप्तं देवत्वमुत्तमम् ॥४३॥

तस्मादिदं न वै त्याज्यं तीर्थवैकोशलाभिधम् ।
सर्वार्थदंयतोनाकःप्राप्तःपापीयसामया ॥४४॥

उसके बाद वह सर्प आकर शलाका को अपनी फण से उघार दिया । उसके थोड़ा सा खुल जाने पर वह मञ्जूषा में बैठ गया ॥३२॥ फिर शलाका अपने स्थान पर आ गया और वह भयङ्कर विष वाला सर्प निश्चल होकर उस मञ्जूषा में बैठ गया ॥३३॥ हे राजन् ! प्रात:काल वे सब उस स्थान से चल पड़े । वह ब्राह्मण भी कम्बल से ढंकी हुयी मञ्जूषा को अपने शिर पर रखकर गङ्गाजी की ओर चल दिया । कुछ दिनों में तीर्थ में जाने वालों का समूह हे राजन् ! इस पवित्र कोशला में आया । उसके बाद ठंढ से घबराये हुए ब्राह्मण ने कम्बल को खोला ॥३४-३६॥ हे राजन् ! वहाँ अयोध्या के शुभ तट पर निराहार सर्प भी वायु का भोजन प्राप्त करके उस शलाका को उठाकर बाहर निकला । उस निकले हुए सर्प को देखकर साँप-साँप क्रोध पूर्वक ॥३७-३८॥ कहकर हाथ में ढेला लिए हुए लोग आये और उस सर्प को भगाने से पहले ही एक ने उसे मार दिया ॥३९॥ तीर्थ यात्रियों के सामने ही उसने प्राण त्याग दिया । वह सर्प के शरीर को त्यागकर दुर्लभ देवत्व को प्राप्त कर लिया । वह दिव्य विमान पर बैठकर लोगों से कहा॥४०॥ **सर्प ने कहा—** ऐ दाक्षिणात्य ब्राह्मणों ! आप लोग मेरी बात को सुनें । पूर्वजन्म मे मैं चण्डक नामक ब्रह्मघाती अधम नाई था ॥४१॥ ब्रह्महत्या के पाप के कारण मैं पाञ्च लाख वर्षों तक नरक की यातना भोगकर मरुस्थल में सर्प हो गया ॥४२॥ बीस हजार वर्षों तक सर्पयोनि में बीताकर इस तीर्थ की महिमा से मैं देवता हो गया ॥४३॥ अतएव इस कोशल नामक तीर्थ को नहीं त्यागना चाहिए; क्योंकि सभी पुरुषार्थों को देने वाले इसके द्वारा पापी मैंने स्वर्ग प्राप्त कर लिया ॥४४॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह

नारद उवाच

एवं स नापितः पापो योनिं प्राप्य विनिन्दिताम् ।
जगाम द्यां विमानस्थस्तीर्थस्याऽस्य प्रसादतः ॥४५॥

ते दाक्षिणात्या यतयो भूत्वा तत्रैवतीर्थके। ऊषुर्गोविन्दपादाब्जमानसा दृष्टवैभवे॥४६॥
माहात्म्यस्यतीर्थस्यदृष्ट्वासत्राह्मणोत्तमः । तीर्थेऽत्रजातविश्रब्धःपित्रोरस्थीनिसोऽक्षिपत् ॥४७॥
पतितेष्वस्थिखण्डेषु पितरौ तस्यतत्क्षणात्। विमानवरमारूढौ दिव्यौ तत्र समागतौ॥४८॥
ऊचतुश्च स्वतनयं शृण्वानेषु जनेषु वै । वत्स जीव चिरं लोके धनधान्यसुखी भव ॥४९॥
आवयोर्मुक्तिदानाच्च मुक्तियास्यसिनोमृषा । गङ्गायांपिण्डदानेनयत्फलंस्यात्सुतस्यवै ॥
पितॄणां या गतिश्चाऽत्र द्वयं स्यादस्थिपाततः ॥५०॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये चण्डकोपाख्यानं नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२११॥

वह पापी नाई अत्यन्त निन्दित योनि को प्राप्त करके इस तीर्थ की कृपा से विमान पर चढ़कर स्वर्ग चला गया ॥४५॥ वे दक्षिणात्य संन्यासी होकर भगवान् गोविन्द में जिनका मन लगा रहता था उस तीर्थ के ऐश्वर्य को देखकर वहीं रहने लगा ॥४६॥ इस तीर्थ के माहात्म्य को देखकर वह ब्राह्मण श्रेष्ठ भी इस तीर्थ में ही विशेष श्रद्धा होने के कारण अपने माता-पिता की अस्थियों को वहीं डाल दिया ॥४७॥ अस्थि के टुकड़ों के डाल दिए जाने पर उस के माता-पिता उसी क्षण श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर वहाँ आये ॥४८॥ उन दोनों ने सबों के सामने ही अपने पुत्र को कहा— हे वत्स ! लोक में धन-धान्य से सम्पन्न होकर सुखी होकर जीओ ॥४९॥ हम दोनों को मुक्ति प्रदान करने के कारण तुम भी मुक्ति को प्राप्त करोगे यह मिथ्या नहीं है । हे पुत्र ! गङ्गा में पिण्डदान करने से जिस फल की प्राप्ति होगी वह फल तथा मुक्ति दोनों यहाँ पर माता-पिता की अस्थियों को डालने मात्र से होती है ॥५०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत चण्डकोपाख्यान नामक दो सौ ग्याहरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२११।।

दो सौ बारहवाँ अध्याय

नारद उवाच

इत्युक्त्वा तस्य विप्रस्य पितरौ दिव्यरूपिणौ ।
विमानवरमारुह्य गतौ हरिपुरं प्रति ॥१॥
तयाः पुत्रस्तु तत्रैव कोशलायां दिनत्रयम्। उषित्वा स्वगृहंप्रायाच्चिन्तयंस्तीर्थवैभवम् ॥२॥
बिबुधैः कोशला राजन्नियमेव तु कथ्यते। कथयिष्यामि तत्तेऽहं श्रवणोत्सुकचेतसे ॥३॥
ते दाक्षिणात्या बटवस्तस्यामूषुर्मुर्मूर्षवः। समर्थाप्रदायिन्यां कोशलायां विपद्यताम् ॥४॥
कश्चिदेकस्तदा तेषु तामनादृत्यकोशलाम् । गच्छन्नारायणस्थानंविष्णुनावारितःपथि ॥
बृद्धब्राह्मणरूपेण प्रोक्तं चेति द्विजं प्रति ॥५॥

वृद्धब्राह्मण उवाच

क्व यासि ब्राह्मश्रेष्ठ ! त्यक्त्वेमां कोशलांशुभाम् ।
इन्द्रप्रस्थामिदंतीर्थसर्वतीर्थोत्तमं द्विज ! ॥६॥
कोशलाह्यत्र पुत्रेयं मुक्तिदा विष्णुवल्लभा । यत्र यासि विहानैनांनिष्कामपददायिनीम् ॥७॥
न सिद्धिर्भविता तत्र विष्णुस्ते च पराङ्मुखः ।
मुक्तिं चेदिच्छसे विप्र ! तीर्थे न्यासं प्रगृह्य च ॥८॥
यस्ययस्येच्छया स्नासि तं तं वर्गं प्रदास्यति ।
तव दृष्टिपथे विप्र सर्पोऽपि सुरतामगात् ॥९॥
अस्याःप्रसादतोमुक्तौस्वर्गस्थौविप्रदम्पती । संजातप्रत्ययोऽपित्वमेतन्माहात्म्यदर्शनात् ॥१०॥

इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान कोशल के माहात्म्य का वर्णन

नारदजी ने कहा— दिव्य रूप वाले उस ब्राह्मण के माता-पिता इस तरह कहकर श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर श्रीहरि के लोक में चले गये ॥१॥ उन दोनों के पुत्र उस कोशल में ही तीन दिन रहकर उस तीर्थ के माहात्म्य का चिन्तन करते हुए अपने घर चले गये ॥२॥ हे राजन् ! विद्वान् लोग इसी को कोशल कहते हैं । सुनने के लिए उत्सुक तुमको उसे मैं बतलाऊँगा ॥३॥ वे दाक्षिणात्य मुमुर्षु ब्राह्मण अभिप्रेत पुरुषार्थ प्रदान करने वाली कोशला मैं निवास करने लगे ॥४॥ उनमें से एक कोई उस कोशल का अनादर करके जब नारायणाश्रम में जा रहा था तो रास्तें में भगवान् विष्णु ने उसको रोक दिया । वे वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके उस ब्राहण से कहे ॥५॥ **वृद्ध ब्राह्मण बोले—** हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम इस शुभ कोशल को छोड़कर कहाँ जा रहे हो । हे द्विज ! यह इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान कोशल सभी तीर्थों से उत्तम है ॥६॥ हे पुत्र ! यहाँ पर विद्यमान यह कोशल मुक्ति देने वाली तथा भगवान् विष्णु को प्रिय है । इसको छोड़कर तुम जहाँ जा रहे हो वह निष्काम पद को देने वाली है ॥७॥ तुमको सिद्धि नहीं मिलेगी क्योंकि तुम विष्णु पराङ्मुख हो । ब्राह्मण यदि तुम मुक्ति चाहते हो तो जिस-जिस इच्छा से संन्यास धारण करके स्नान करते हो उन सभी वर्गों को यह प्रदान करेगी । हे विप्र ! तुम्हारे सामने ही सर्प भी देवत्व को प्राप्त कर लिया ॥८-९॥ इसकी कृपा से स्वर्ग में रहने वाले विप्र दम्पती मुक्त हो गये । इसके माहात्म्य को

लब्ध्वाभाग्योदयेनापिकथमेनांविमुञ्चसि । यथाकश्चित्तषार्तोऽपिलब्ध्वाप्यमृतवारिधिम् ॥११॥

तं त्यत्तवा याति पङ्काम्भरतद्वत्त्वं मूढ ! दृश्यसे ।
यथा चिन्तामणिं कश्चित्कूपे क्षिपति मोहितः ॥१२॥
हस्तस्थं या गतिस्तस्य दृश्यते सा गतिस्तव ।
आराध्य विष्णुं विश्वेशं यथा कश्चित्पुमान्कुधीः ॥१३॥

सुखमैन्द्रियकंतुच्छंयाचते सागतिस्तव। नयाहि कोशलामेनां त्यत्तवासर्वार्थदायिनीम् ॥१४॥

स्नातस्याऽत्र दिवः प्राप्तिर्मृतस्याऽमृतसंस्थितिः ॥१५॥

नारद उवाच

राजन्नाकर्ण्य विप्रोऽसौ द्विजरूपभृतो हरेः। वाक्यं प्रोवाचविप्राय श्रेष्ठं बदरिकाश्रमम् ॥१६॥

विप्र उवाच

भोभो विप्रवर ! श्रद्धा तव वाक्येन जायते ।
मम श्रुतवतः पूर्वमल्पग्रामस्य वैभवम् ॥१७॥

इन्द्रप्रस्थमिदं तीर्थं न कदाचिन्मया श्रुतम्। कुतस्तु कोशला वृद्ध ! एतदन्तरवर्तिनी ॥१८॥
यत्रनारायणःसाक्षान्मुक्ता यत्रचयोगिनः। मुत्तवा तमाश्रमंपुण्यं तिष्ठाम्यऽत्र कथंद्विज॥१९॥
यथागत्यस्वयं विष्णुरित्युत्तवामां निवारयेत्। बदर्याश्चाधिकं क्षेत्रमिन्द्रप्रस्थमिदंद्विज॥२०॥
तदाहं न प्रतिष्ठामि चालितोऽपितमाश्रमम्। मुक्तिकामः स्वसदनान्नान्यथा स्थितिरत्रमे॥२१॥

नारद उवाच

इत्युक्ते तेन विप्रेण प्रादुरासीच्चतुर्भुजः। विहाय प्राकृतं रूपं दिव्यरूपधरो हरिः ॥
उवाच च महाभागं तं द्विजं मोक्षकामुकम् ॥२२॥

देखने से तुमको विश्वास हो गया था फिर भी ॥१०॥ भाग्योदय को प्राप्त करके भी इसको क्यों त्यागते हो ? जैसे कोई प्यासा हुआ अमृत के सागर को प्राप्त करके ॥११॥ उसको छोड़कर कीचड़ भरे जल में जाय उसी तरह से तुम मूढ दिखायी पड़ते हो । जैसे कोई अज्ञानी चिन्तामणि हाथ में आयी को कुएँ में डाल देता है ॥१२॥ उसी तरह से तुम्हारी भी गति है । जैसे कोई मूर्ख पुरुष विश्व के स्वामी भगवान् विष्णु की आराधना करके ॥१३। उनसे ऐन्द्रियिक सुखी की याचना करे तुम्हारी भी गति उसी तरह की है । इन सभी पुरुषार्थों को देने वाली कोशला को छोड़कर मत जाओ ॥१४॥ यहाँ जो स्नान करता है वह स्वर्ग जाता है और यदि कोई यहीं मर जाता है तो उसकी मुक्ति हो जाती है ॥१५॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! ब्राह्मण रूपधारी श्रीहरि की बातों को सुनकर विप्र ने कहा कि वदरिकाश्रम श्रेष्ठ है॥१६॥ **विप्र ने कहा—** हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आपके वाक्य से श्रद्धा उत्पन्न होती है । मैंने उस अल्पतम का वैभव सुना था ॥१७॥ मैंने कभी भी इन्द्रप्रस्थ तीर्थ को नहीं सुना था । हे वृद्ध ! इसके भीतर कोशला कैसे हो सकती है ?॥१८॥ जहाँ पर भगवान् नारायण साक्षात् हैं और जहाँ पर मुक्तों का निवास है । उस पवित्र आश्रम को छोड़कर यहाँ कैसे रहूँ ॥१९॥ जैसे भगवान् विष्णु इस तरह से मुझको रोक दें और इस इन्द्रप्रस्थ को हे द्विज ! बदर्याश्रम से अधिक बतलायें ॥२०॥ तो भी मैं यहाँ नहीं रुक सकता हूँ क्योंकि मैं

विष्णुरुवाच

इन्द्रप्रस्थमिदं विप्र ! सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्। ब्रह्मज्ञेष्विव सर्वेषु शम्भुर्गङ्गा नदीष्विव ॥२३॥
हिमवानिव शैलेषु पक्षिराडिव पक्षिषु। त्रिदशेषु यथाशक्रो वैष्णवेष्विव नारदः ॥२४॥
तेजस्विषु यथा सूर्यःक्षीराब्धिरिवचाऽब्धिषु। यथा वर्णेषु भूदेवः सृष्टिष्विवपितामहः ॥२५॥
विष्णोर्यथावतारेषु कौशल्याजनितो वरः। तथा समस्ततीर्थेषु शक्रप्रस्थमिदं वरम् ॥२६॥

निष्कामो वा सकामो वा यातितीर्थे क्वचिन्नरः ।
तत्र तत्र समस्तात्मा फलदाताहतेववै ॥२७॥
इन्द्रप्रस्थान्तरगतां त्यत्तवा यो याति कोशलाम् ।
स नो फलमवाप्नोति भक्तो वरववृन्दपात् ॥२८॥

नारद उवाच

एवं निशम्य तद्वाक्यं दृष्ट्वा तद्रूपमुत्तमम्। प्रणिपत्य रमाकान्तं तस्यामेवागमद्द्विजः ॥२९॥
भगवानपि विश्वात्मा सपद्यर्न्दधे विभुः। तत्त्वमुद्दिश्य तं विप्रं तेन भावेन पूजितः ॥३०॥

तत्राऽऽगत्य स विप्रोऽसौ कोशलायां नराधिप ! ।
कथयामास तद्वृत्तं सर्वं सर्वान्स्वसङ्गिनः ॥३१॥
तेऽपिश्रुत्वामहाभागा दाक्षिणात्या द्विजातयः ।
तस्यामनशनं कृत्वा तत्यजुःप्राकृतंवपुः ॥३२॥

तदैव गरुडारूढः श्रीविष्णुः समुपागतः। विमानैःस्वगणैः सार्द्धं तावद्भिर्दीप्तिभास्वरैः ॥३३॥

वदरिकाश्रम के लिए चला हूँ। मैं मुक्ति को प्राप्त करने के लिए अपने घर से चला हूँ अतएव मैं यहाँ कैसे रह सकता हूँ ॥२१॥ **नारदजी ने कहा**— उस ब्राह्मण के इस तरह के वचन को सुनकर भगवान् विष्णु चतुर्भुज रूप में प्रकट हो गये। श्रीहरि ने बृद्ध ब्राह्मण का प्राकृत रूप त्याग दिया उन्होंने मोक्षेच्छु महाभाग को कहा ॥२२॥ **भगवान् विष्णु ने कहा**— हे विप्र ! यह इन्द्रपस्थ सभी तीर्थों से उत्तमोत्तम है। उसी तरह जिस तरह ब्रह्म ज्ञानियों में शङ्करजी तथा नदियों में गङ्गा श्रेष्ठ है ॥२३॥ जिस तरह पर्वतों में हिमालय और पक्षियों में गरुड़, देवताओं में इन्द्र और वैष्णवों में नारद श्रेष्ठ है ॥२४॥ जिस तरह तेजस्वियों में सूर्य, समुद्रों में क्षीरसागर, वर्णो में ब्राह्मण और सृष्टि में ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं ॥२५॥ जिस तरह विष्णु के अवतारों में कौशल्यानन्दन श्रीराम श्रेष्ठ हैं, उसी तरह सभी तीर्थो में इन्द्रप्रस्थ श्रेष्ठ है ॥२६॥ कोई निष्काम अथवा सकाम इस तीर्थ में जाता है वहाँ पर सबो की आत्मा मैं ही फल प्रदान करता हूँ॥२७॥ इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान कोशला को छोड़कर जो जाता है वह भक्त वरदवृन्द से पतित अपने अभिप्रेत फल को नहीं प्राप्त करता है ॥२८॥ **नारदजी ने कहा**— इस तरह की उनकी बातों को सुनकर तथा श्रीभगवान् के उत्तम रूप को देखकर भगवान् रमाकान्त को प्रणाम करके वे ब्राह्मण कोशल में ही आ गये ॥२९॥ विश्वात्मा श्रीभगवान् भी शीघ्र ही उस ब्राह्मण को तत्त्व का उपदेश देकर तथा उस ब्राह्मण के द्वारा पूजित होकर अन्तर्धान हो गये ॥३०॥ हे राजन् ! वे कोशला में वहाँ आकर उस वृत्तान्त को अपने सभी सङ्गियों को सुनाये ॥३१॥ वे महाभाग दाक्षिणात्य ब्राह्मण भी कोशला में अनशन (उपवास) करके अपने प्राणों का परित्याग कर दिए ॥३२॥ उसी समय भगवान् विष्णु गरुड़ पर चढ़कर अपने गणों के

ते तं दृष्ट्वा समायान्तं विमानगणसंयुतम्। वपुषा दिव्यरूपेण दण्डवत्पतिता भुवि ॥३४॥
तुष्टुवुश्च द्विजाः सर्वे दिव्यज्ञानवपुर्द्धराः । तं दिव्यरूपिणं देवं देववन्द्यपदाम्बुजम् ॥३५॥

ब्राह्मणाऊचुः

नमस्तेऽतसीपुष्पसङ्काशभासं तनुं बिभ्रत्पीतवासो वृताय ।
लसत्कुण्डलप्रोतनानोपलाय श्रुतौ चञ्चलाव्यापिनीलाम्बुदाय ॥३६॥
भक्तिस्त्वदीया किल कल्पवल्ली समाश्रिता यच्छति चित्तवाञ्छितम् ।
यथा तथैवा तव कोशला विभो ! जनैरुभे ते कृपया तवाऽऽप्यते ॥३७॥
वन्दामहे ते चरणारविन्दं वृन्दारकैर्वन्दितमीश्वराद्यैः ।
विचिन्त्यमानं हृदि योगिवृन्दैः कन्दं परानन्दभुवो विमुक्तेः ॥३८॥
प्राप्ताः कामं श्रीपते ! त्वत्स्वरूपं श्रीवत्साद्यैर्लक्षितं चारुचिह्नैः ।
वाञ्छामस्ते दासभावं तथापि प्राप्तं सर्वैरादृतं नारदाद्यैः ॥३९॥
यत्सौख्यं ते दासभावं गतानां तन्नो लक्ष्म्यावक्षसोऽन्तर्वसन्त्याः ।
तज्जानाति श्रीपते ! श्रीमेशो नान्यो लोके येन तच्चानुभूतम् ॥४०॥
मध्येऽस्माकं श्रीपते ! सेवकानां नीरागणामप्यसौ माननीयः ।
अस्मात्तं ते नारदाद्या मुनीशास्त्वद्भक्तप्तैर्लोकनाथं भजन्तो ॥४१॥
कामं ब्रह्मानन्दमाप्तोऽन्तरात्मा त्वद्दास्ये नो तृप्तिमायाति शम्भुः ।
वारम्बार त्वद्गुणानाग्रहीतुं नृत्यत्युच्चैस्त्वत्परो भावयुक्तः ॥४२॥

साथ उतने ही चमकते हुए देदीप्यमान विमानों के साथ आये ॥३३॥ भगवान् विष्णु को विमान के साथ आते हुए देखकर अपने दिव्य रूप वाले शरीर से भगवान् विष्णु को वे साष्टाङ्ग प्रणाम किए ॥३४॥ दिव्य ज्ञान और शरीर से युक्त उन लोगों ने दिव्य रूप वाले देववन्द्य भगवान् विष्णु के चरण कमलों की स्तुति की ॥३५॥ **ब्राह्मणों ने कहा—** अतसी पुष्प के समान जिनके शरीर की कान्ति है तथा जो पीत वस्त्र को धारण किए हैं, अनेक मणियाँ जिनमें जड़ी हुयी हैं ऐसे कानों के सुन्दर कुण्डल से जिनका मुख मण्डल सुशोभित है ऐसे विद्युत से व्याप्त नील मेघ के समान श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥३६॥ आपकी कल्पलता के समान जो भक्ति है उसको अपनाने वह मनोवाञ्छित फल को प्रदान करती है । उसी के समान आपकी कोशला हे भगवन् ! आपकी कृपा से भक्ति तथा मुक्ति को प्रदान करती है ॥३७॥ देव वृन्द से वन्दित तथा जिसकी शङ्करजी इत्यादि भी वन्दना करते हैं इस प्रकार के आपके चरण कमलों की हम वन्दना करते हैं। योगिवृन्द जिसका हृदय में ध्यान करते हैं वह परमानन्द और मुक्ति का मूल है ॥३८॥ हे श्रीपते ! हमलोगों ने अपनी काम्य मुक्ति को प्राप्त कर लिया अब हम श्रीवत्स आदि सुन्दर लक्षणों से युक्त आपके स्वरूप को प्राप्तकर आपके दास भाव को प्राप्त कर लिए हैं जिसका नारदजी आदि सभी आदर करते हैं ॥३९॥ आपके दासभाव को प्राप्त किए हुए जीवों को जिस सुख की प्राप्ति होती है वह सुख आपके वक्षःस्थल में निवास करने वाली लक्ष्मीजी को भी नहीं मिलता है । हे श्रीपते ! उस सुख को श्रीशङ्करजी ही जानते हैं, लोक में दूसरा कोई भी उसका अनुभव नहीं किया है ॥४०॥ हे श्रीपते ! बीच में हमलोग राग रहित सेवकों को भी वह सुख मानने योग्य है । इसी कारण से नारदजी आदि जो मुनीश्वर आदि आपके आप्त

हेतोरस्माद्देहिनः स्वस्य दास्यं यत्प्राप्तानां नोर्मयः सम्भवन्ति ।
त्वच्चिह्नाङ्गौ द्वारपालौ तदीयौ मोहाद्धाम प्राप्य तो तत्स्वकीयम् ॥४३॥
लोकादस्भादन्तरेण त्वदिच्छां त्वल्लोकानां नोद्यत चाऽऽशुपातः ।
को जानीयात्तावकीमत्र मायां दुर्विज्ञेयां ब्रह्मशर्वादिदेवैः ॥४४॥

नारद उवाच

एवन्तैःस्तूयमानः स प्रभुर्निजपदोन्मुखः । उवाच तान्दाक्षिणात्यान्मेघगम्भीरयागिरा॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

भोभो द्विजा!भवन्तोऽस्याः कोशलायाः प्रसादतः ।
सारूप्यमपि मे प्राप्ता दासभावं च यास्यथ ॥४६॥

अद्यप्रभृति मे विप्रास्तीर्थमेतदनुत्तमम् । दक्षिणाकोशलेत्युच्चैर्नाम्ना ख्यातं भविष्यति ॥४७॥
यत्र दाशरथी भूत्वा निहनिष्यामि रावणम् । सा कथ्यते मुनिवरैः सर्वैरुत्तरकोशला ॥४८॥
विपन्नो ज्ञानवान्यस्यां वैकुण्ठमधिरोहति । विनाऽपितद्वसेद्योऽस्यां सोऽपि स्वर्गं च गच्छति॥४९॥
इमां ततो दशगुणानाहुर्दक्षिणकोशलाम् । एकादशगुणामेके सम्यगाहुर्मुनीश्वराः॥५०॥
इयानेव विशेषोऽस्ति तस्या अस्यामतिर्मम । तस्यां मृतं नयन्त्येतेवैकुण्ठंमामकागणाः॥५१॥
अस्यां मृतं स्वयमहमनन्यपदमानसम् । आरोप्य गरुडं दत्त्वा सारूप्यं प्रापयामि तत्॥५२॥

नारद उवाच

इत्युत्तवा तान्द्विजान्विष्णुर्नीत्वा वैकुण्ठमभ्यगात् ।
महिमानं स्तुवन्नस्य स्वयं तीर्थस्य भूपते ! ॥५३॥

भक्त हैं वे आपका भजन करते हैं ॥४१॥ निश्चित रूप से जिनकी अन्तरात्मा ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लिया है फिर भी शङ्करजी आपकी दासता से तृप्त नहीं होते हैं । वे बार-बार आपके गुणों को प्राप्त करने के लिए आपकी दास्य भावना से युक्त होकर अत्यधिक नृत्य करते हैं ॥४२॥ इसी कारण से अपनी दासता प्राप्त शरीरधारी जीव उर्मियों को नहीं प्राप्त करते हैं आपके शरीर के चिह्न से युक्त दोनों द्वारपाल अज्ञान के कारण अपने धाम को प्राप्त करके ॥४३॥ उस लोक से आपकी इच्छा के बिना आपके लोक से शीघ्र पतन नहीं चाहे । आपकी दुर्विज्ञेय माया को ब्रह्मा तथा शिव आदि देवताओं से भिन्न इस लोक में कौन जानता है ?॥४४॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से उन सबों के द्वारा स्तुति किए जाने वाले श्रीभगवान् अपने लोक जाने के लिए तैयार रहकर उन दाक्षिणात्यों से मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहे ॥४५॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** ऐ ब्राह्मणों ! आपलोग इस कोशला की कृपा से मेरे सारूप्य को प्राप्त कर लिए। अब आपलोग दास भाव को भी प्राप्त कर लेंगे ॥४६॥ हे ब्राह्मणों ! आज से यह मेरा सर्वश्रेष्ठ तीर्थ दक्षिण कोशला के नाम से अत्यन्त प्रसिद्ध होगा ॥४७॥ यहीं पर मैं दशरथ नन्दन राम होकर रावण का वध करूँगा । उसको सभी मुनिश्रेष्ठ उत्तर कोशल कहते हैं ॥४८॥ यहाँ पर दरिद्र भी ज्ञानवान होकर वैकुण्ठ चले जाते हैं । ज्ञान के बिना भी यहाँ जो निवास करेगा वह स्वर्ग जायेगा ॥४९॥ इसीलिए इस दक्षिण कोशला को लोग उत्तर कोशला से दश गुना कहते है । कुछ लोगों ने इसको ग्यारह गुना कुछ मुनीश्वरों इसको ठीक ही कहा है ॥५०॥ मेरे विचारानुसार इसकी यही विशेषता है । उत्तर कोशला में मरे

एतत्ते सर्वमाख्यातं कारणं जगतीपते !। येनेयं कथ्यते विज्ञैरिह दक्षिणकोशला ॥५४॥
कलिमलकुलहन्ता शृण्वतां मानवानां कमलनयनपादप्राप्तये वाञ्छितश्च ।
नृपवर ! महिमा ते वर्णितः कोशलाया मधुवनभववृत्तं शृण्वतस्ते वदामि ॥५५॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये
कोशलमहिमवर्णनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥२१२॥

दो सौ तेरहवाँ अध्याय

नारद उवाच

एतन्मधुवनं तात शिबे ! परमपावनम्। देवराजाय तुष्टेन स्थापिता विष्णुना पुरी ॥१॥
यत्र विश्रान्तिनामेदं तीर्थं त्रिभुवनोत्तमम्। विविदां मुक्तिदं पुंसांपावनंसाधुसेवितम्॥२॥
नित्यं वसति विश्वात्मा विष्णुः श्रीकोलरूपधृक् ।
अत्र तीर्थोत्तमे पुण्ये नृप ! विश्रान्तिसञ्ज्ञके ॥३॥
बहुभिर्जन्मभिर्येन विष्णुराराधितः सदा। मरणं तस्य तीर्थेऽस्मिञ्जायते किल भूपते ! ॥४॥

मनुष्यों को मेरे गण वैकुण्ठ ले जाते हैं ॥५१॥ इस कोशल में मरे हुए जो अनन्य मना जीव हैं, उनको स्वयम् मैं अपने सारुप्य को प्रदान कर तथा गरुड़ पर चढ़ाकर वैकुण्ठ में ले जाता हूँ ॥५२॥ **नारदजी ने कहा—** उन ब्राह्मणों को इस तरह कहकर भगवान् विष्णु उन्हें लेकर वैकुण्ठ आये। हे राजन् ! इस तीर्थ की महिमा का स्वयं भगवान् गान कर रहे थे ॥५३॥ हे राजन् ! इस प्रकार से मैंने इन सारी बातों को आपको बतला दिया। इसीलिए विज्ञ पुरुष इसको दक्षिण कोशल कहते हैं ॥५४॥ इस आख्यान को सुनने वाले के कलिजन्य सभी दोष विनष्ट हो जाते हैं। श्रीहरि के लोक को प्राप्त करने के लिए लोग इसको चाहते हैं। हे राजश्रेष्ठ ! मैंने आपको कोशल के महत्त्व को बतलाया अब सुनने वाले तुमको मधुवन में हुए वृत्तान्त को सुनाता हूँ ॥५५॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत कोशला की महिमा का वर्णन नामक दो सौ बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१२॥

कुशल ब्राह्मण की पत्नी के दुराचारमय वृत्तान्त के वर्णन पूर्वक मधुवन तीर्थ का माहात्म्य वर्णन और गोधा (गोह) की योनि में गयी हुयी उसका अपने पुत्र के द्वारा उद्धार

नारदजी ने कहा— हे शिवि ! हे तात ! यह मधुवन अत्यन्त पवित्र है। प्रसन्न हुए इन्द्र ने इसको विष्णु पुरी के रूप में स्थापित किया था ॥१॥ यहाँ पर विश्रान्ति नामक तीर्थ त्रैलोक्य में उत्तम हैं। यह विशेषज्ञ पुरुषों को मुक्ति प्रदान करने वाला तथा अत्यन्त पवित्र कारक है ॥२॥ यहाँ पर वाराह रूप धारी

कालिन्द्या एव कूलेतु द्वितीयंहरिणाकृतम् । तीर्थं विश्रान्तिसञ्ज्ञन्तुयत्रकंसोनिपातितः ॥५॥
एतद्द्वयं समं राजन्गुणैर्वैकुण्ठदातृभिः । भाग्योदयेन केनाऽपि लभ्यते सकलार्थदम् ॥६॥
अथ तीर्थस्य माहात्म्यं कथयामि तवाऽग्रतः ।
यच्छ्रुत्वा सर्वतीर्थेषु मज्जनाल्लप्स्यसे फलम् ॥७॥
हिमाचलोपत्यकायां किरातनगरे शुभे । ब्राह्मणो नाम कुशलो राजन्नासीद्दरिद्रकः ॥८॥
तस्य पत्नी दुराचारा दुरावारनरे रता । कर्मणा मोहयामास पतिं सा बन्धकी वरा ॥९॥
पतिस्तया मोहितस्तु न निवारयितुं क्षमः । तदाज्ञातत्पदो दीनःक्रयक्रीतइवाऽभवत् ॥१०॥
लोकाउपहसन्तिस्म तं द्विजंकुलटापतिम् । उपहासभयात्सोऽपिनिर्ययौ न गृहात्कुधीः ॥११॥
महार्हाणि दुकूलानिभूषणानि च सा दधौ । जारैर्दत्तानिदुष्टात्माहसिताऽपि न लज्जते ॥१२॥
वस्त्रं पुरातनं जीर्णमुत्तीर्णं यच्छरीरतः । अवज्ञापूर्वकं दुष्टा स्वभर्त्रे सम्प्रयच्छति ॥१३॥
एवं तया कुलटया सोऽवज्ञातः स्वकः पतिः ।
नितान्तं दुःखमापन्नो विषं जग्ध्वा मृतो निशि ॥१४॥
स भीता राजतः पापा ह्यनयात्स्वैरिणी तदा ।
अनुयास्यामि भर्त्तारमित्युवाच मृषा वचः ॥१५॥
तवैवशिक्षिताःसख्यः स्वकीयास्तांसमीपगाः ।
निवारयामासुरिति कथयित्वामहीपतेः ॥१६॥

भगवान् विष्णु सदैव निवास करते हैं । इस विश्रान्ति नामक पवित्र तीर्थ में हे राजन् !॥३॥ जो अनेक जन्मों में सदा भगवान् विष्णु की आराधना करते हैं उसी व्यक्ति की यहाँ पर मृत्यु होती है ॥४॥ कालिन्दी के ही तट पर भगवान् विष्णु ने इस दूसरे तीर्थ को बनाया । इस विश्रान्ति नामक तीर्थ में ही भगवान ने कंस को मारा ॥५॥ हे राजन् ! ये दोनों मधुवन और विश्रान्ति तीर्थ समान रूप से वैकुण्ठ प्रदान करते हैं । सभी पुरुषार्थ देने वाले इसको कोई भाग्यवान ही प्राप्त करता है ॥६॥ अब मैं इस तीर्थ की महिमा को मैं तुम्हें बतलाता हूँ इसके माहात्म्य को सुनकर तुम सभी तीर्थो में स्नान करने का फल प्राप्त कर लोगे॥७॥ हिमाचल की उपत्यका में किरात नामक शुभ नगर है । हे राजन् ! वहाँ पर कुशल नामक दरिद्र ब्राह्मण रहते थे ॥८॥ उनकी पत्नी दुराचारिणी और दुराचारी मनुष्य से प्रेम करती थी । उसने अपने कर्मों से अपने पति को मोहित कर लिया ॥९॥ उसके द्वारा मोहित होने के कारण उसके पति उसको रोकने में समर्थ नहीं थे । उसकी आज्ञा में तत्पर दीन होकर वे उसके खरीदे हुए दास के समान बन गये थे ॥१०॥ लोग उस कुलटा के पति का उपहास करते थे । उपहास के भय से वह कुखी भी अपने घर से नहीं निकलता था ॥११॥ वह स्त्री अत्यन्त मूल्यवान् वस्त्रों तथा भूषणों को धारण करती थी । वह दुष्टा जारों के द्वारा दिये गये उन सबों को धारण करती थी और उपहास करने पर भी लज्जित नहीं होती थी ॥१२॥ अपने शरीर से उतारे गये पुराने और जीर्ण वस्त्र को वह दुष्टा अवहेलना पूर्वक अपने पति को देती थी॥१३॥ इस तरह उस व्यभिचारिणी ने अपने पति की अवहेलना की । अत्यन्त दुःखी वह ब्राह्मण विष खाकर रात्रि में मर गया ॥१४॥ राजा के भय से पापिनी वह स्वैरिणी उस समय मैं अपने पति का अनुगमन करूँगी इस तरह से झूठी वाणी बोली ॥१५॥ हे सखियों ! तुमलोगों ने ही जो उसके समीप

सख्यऊचुः

भो मृगाक्षि ! किमर्थं ते क्रियतऽनर्थ ईदृशः ।
यत्सुवर्णनिभं कायं त्वं नाशयितुमुद्यता ॥१७॥
भवत्या किंसुखं दृष्टममुष्याऽव्यवसायिनः। दरिद्रस्याऽसमर्थस्य सखि ! स्वोदरपूरिणः ॥१८॥
पालयैनंसुतंबालं त्वदृतेकोऽस्य पालकः। मरिष्यामो वयं सर्वा मृतायां त्वयिसुन्दरि ! ॥१९॥
गृहमेतदवेक्षस्व समुत्तिष्ठ वरानने !। जीयादयं तव सुतो यस्ते भाविसुखप्रदः ॥२०॥
वाञ्छन्ति बान्धवाः सर्वे त्वदीयास्तव जीवितिम् ।
उत्तिष्ठ निजबन्धूनां कुरु चित्तसमीहितम् ॥२१॥
रुदन्ति तव रागेण वयस्याः सकलाः सति ! ।
निजवाक्यप्रदानेन वारयैताःसुदुःखिताः ॥२२॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्यवचस्तासांदुष्टा साधर्मविश्रुतम्। उन्नमय्य मुखं प्राहश्रावयन्तीस्वबान्धवान्॥२३॥

सख्युवाच

युष्माभिर्यद्वचो धर्म्यंप्रोक्तं जानेऋतंननु। तथाऽपिस्वपतिः स्त्रीभिर्मान्योलोकद्वयप्रदः ॥२४॥
यदुच्यते मया वाक्यं धर्मशास्त्रसमन्वितम्। तद्वचः श्रूयतां सख्यो युक्तं चेदनुमोदत ॥२५॥
या स्त्री निधनमापन्नं पतिमन्वेति तत्परा। पापाऽपि सहतेनैव स्वर्गे वसति सा चिरम् ॥२६॥
स्त्रीभिः पतिर्न हातव्यो निर्धनो रोगवानपि। जीवन्मृतोऽनुगन्तव्यःश्रुतिरेषा सनातनी ॥२७॥

रहती थी इस बात की शिक्षा दी है । उन सबों ने उसको राजा से कहकर ऐसा करने से रोका ॥१६॥ **सखियों ने कहा—** हे मृगनयनि ! तुम इस तरह का अनर्थ क्यों करती हो कि सुवर्ण के समान अपने शरीर को नष्ट कर देना चाहती हो ॥१७॥ इस व्यावसायी से तुमने कौन सा सुख पाया ? हे सखि ! वह तो दरिद्र, असमर्थ और अपना पेट भरने वाला था ॥१८॥ तुम इस अपने पुत्र का पालन करो । तुम्हारे मर जाने पर इसका पालन कौन करेगा ? तुम्हारे मर जाने पर तो हम सभी भी मर जायेंगी ॥१९॥ हे वरानने ! उठो और इस घर को देखो यह तुम्हारा पुत्र जीवित रहे जो तुम्हें भविष्य में सुख देगा ॥२०॥ तुम्हारे सभी बान्धव तुम्हारा जीवन चाहते हैं । तुम उठो अपने बन्धुओं के मनोनुकूल कार्य करो ॥२१॥ हे सति ! तुम्हारा पति प्रेम के कारण तुम्हारी सखियाँ रो रही हैं । इन सबों से वातें करके तुम इन दुखिताओं को रोको ॥२२॥ **नारदजी ने कहा—** उन सबों की इस तरह की बातें सुनकर वह प्रख्यात अधर्मी ने अपना मुख उठाकर अपने बान्धवो को सुनाकर कहा ॥२३॥ **सखी ने कहा—** आप लोगों ने जो धार्मिक बातें की उसको मैं सत्य मानती हूँ । फिर भी दोनों लोकों का निर्वाह करने वाले अपने पति को स्त्रियों को भी मानना चाहिये ॥२४॥ मैं धर्मशास्त्रानुकूल जो कह रही हूँ हे सखियों मेरी उस बात को तुम लोग सुनो और यदि वह उचित हो तो आपलोग उसका अनुमोदन करें ॥२५॥ जो स्त्री अपने मरे हुए पति का अनुगमन करती है वह यदि पापिनी भी हो तो अपने पति के साथ स्वर्ग में दीर्घकाल तक निवास करती है ॥२६॥ स्त्रियों को चाहिये कि उनका पति यदि रोगी अथवा निर्धन भी हो तो उसका त्याग न

विचिन्त्येति स्वमनसि सख्योऽन्वेमि स्वकं पतिम् ।
वर्तिष्यते स्वभाग्येन करिष्येऽहं किमस्य वै ॥२८॥

नारद उवाच

इत्युक्तास्तास्तयासख्योदुष्टादुष्टमतिप्रदाः । ऊचुस्तां धर्मवाक्येन समस्तजनमोहिनीम् ॥२९॥

सख्यऊचुः

जहि पूर्वं हिनः सुभ्रूः पश्चादन्वेहि वल्लभे ! ।
समस्तास्त्वद्वियोगं न वयं सोढुं क्षमामहे ॥३०॥
अस्मांस्तव विनिघ्नन्त्या अनुयान्त्याः स्वकं पतिम् ।
धर्मोऽल्पः पापबाहुल्यं स्वर्गप्राप्तिस्तु कीदृशी ॥३१॥
जीवन्नयं पतिः स्वीयःसाध्वयं प्रतिपालितः। यदुक्तंपतिपत्नीभ्यां तत्त्वया विहितंसखि ॥३२॥
यावत्स्वजीवनोपायं विधातुमयमक्षमः। तावत्त्वदीयभाग्येन जीविष्यति सुतस्तव ॥३३॥

नारद उवाच

इत्युक्ता सा निववृते स्वभर्त्तुरनुयानतः। सुतेन कारयामास तदा तद्विरतिक्रियाम् ॥३४॥
अथ कालेन कियता सुतोपनयने मतिम् । कारयामास सा विप्रैर्दत्त्वा जारार्पितंधनम् ॥३५॥
कृतोपनयनः कुण्डः स तत्त्वज्ञानवाञ्छिशुः। गृहान्निर्गम्य सर्पादे नारायणपरोऽभवत् ॥३६॥
सतां सङ्गतिमासाद्य त्यत्तवा स्वं प्राकृतं वपुः ।
आरुरोह निजं लोकमप्राप्यं योगिभिश्च तत् ॥३७॥

करे । स्त्री के जीवन में ही यदि पति की मृत्यु हो जाय तो वह अपने पति का अनुगमन करे यह सनातन श्रुति है ॥२७॥ हे सखियों ! इस तरह से अपने मन में विचार करके मैं अपने पति का अनुगमन कर रही हूँ । यह पुत्र अपने भाग्य से रहेगा इसके विषय में क्या करूँ ॥२८॥ **नारदजी ने कहा**— उसके द्वारा इस तरह से कहे जाने पर दुष्ट तथा अदुष्ट मति प्रदान करने वाली उसकी सखियों ने उन सभी लोगों को मोहित करने वाली को कहा ॥२९॥ **सखियों ने कहा**— हे सुन्दर भौंहें वाली ! पहले हमलोगों को मार दो उसके पश्चात् अपने पति का अनुगमन करो । हम सभी तुम्हारे वियोग को नहीं वर्दास्त कर सकती हैं॥३०॥ हमलोगों को मारने वाली तथा अपने पति का अनुगमन करने वाली तुमको धर्म तो बहुत कम होगा और पाप अधिक होगा अतएव तुमको स्वर्ग की प्राप्ति कैसे होगी ॥३१॥ जीते जी तुमने अपने इस अपने पति का अच्छी तरह से पालन किया । हे सखि ! तुम पति और पत्नी के द्वारा जो करने को कहा गया है उसका तुमने अच्छी तरह से पालन किया ॥३२॥ यह अपने जीवन का उपाय भी करने में अक्षम है तुम्हारा पुत्र उतने समय तक यह तुम्हारा पुत्र जीवित रहेगा ॥३३॥ **नारदजी ने कहा**— इस तरह से कहने पर वह अपने पति का अनुगमन करने से रुक गयी । उसने अपने पुत्र से पति की और्ध्वदैहिक क्रिया करवाया ॥३४॥ उसके बाद उसने जारों (चारों) के द्वारा दिए गये धन से ब्राह्मणों द्वारा अपने पुत्र का उपनयन कराने का मन बनाया ॥३५॥ यज्ञोपवीत हो जाने के बाद वह कुण्ड पुत्र ज्ञानवान् होने के कारण घर से निकलकर भगवान् नारायण का भक्त हो गया ॥३६॥ सज्ञनों की सङ्गति प्राप्त करके वह इस प्राकृत शरीर को त्यागकर, योगियों को भी नहीं प्राप्त होने वाले अपने लोक में चला गया ॥३७॥ उसके पश्चात्

अथ सा निर्गते पुत्रे मनोदुःखंचकार वै । तस्मिन्नेव दिने राजन्भूयो जारैः सहाऽरमत् ॥३८॥

इति तै रममाणायां तस्यां जारैःसमं नृप ! ।
समागता जरा काले लावण्यमदनाशिनी ॥३९॥

त्यक्तोपपतिभिर्दृष्टा सा जराग्रस्तविग्रहा। बभूव दूतिकाऽन्यासां कुलशीलविनाशिनी ॥४०॥

तदा ह्येकस्य विप्रस्य सवत्सां गामपाहरत् । विक्रीता कियताराजन्द्रव्येण ननु सा तया ॥४१॥

तयेति गमितःकालो दूतित्वेनकियान्नृप ! । पश्चाच्छुष्कशरीरोऽस्याविगुणः समाजायत ॥४२॥

तस्याः कुष्ठे समुत्पन्ने गलितंह्यङ्गपञ्चकम् । हस्तौ पादौ न नृपते ! पञ्चमी नासिकातदा ॥४३॥

एवंभूतायदाऽऽहारं न लभतेकुतश्चन । तदा तु तत्रोदितया दास्यासाऽनीयताऽऽपणम् ॥४४॥

तत्र सा पतिता पापा लोकान्सम्प्राथ्य दीनया ।
गिरा धिगिति कुर्वाणा चक्रे स्वोदरपूरणम् ॥४५॥

तदिहाभ्यासवर्त्येको द्विजः सर्वागमार्थवित् । तां विलोक्य महावाग्मी प्रोवाचेदं वचो नृप !॥४६॥

जनानां दुःखदं पापमिह लोके परत्र च । तस्मात्पापं न कर्त्तव्यं मानवैर्दुःखभीरुभिः ॥४७॥

पापं कृत्वा जनं यस्तु प्रायश्चित्तं करोति वै ।
नतदाचरितेभूयो न तत्फलमवाप्नुयात् ॥४८॥

यः कृत्वा मुहुरेनांसि प्रायश्चित्तं करोति न। तस्याऽस्या इव पापायागतिरत्र परत्र च ॥४९॥

अनया पापसङ्घातोलोकेऽत्र समुपार्जितः। इहैव तत्फलं भुङ्क्ते भोक्ष्यते नरकेऽप्यसौ ॥५०॥

सर्वशास्त्रेषु दृष्टंवैसर्वेषां पापकर्मणाम्। प्रायश्चित्तं न च स्त्रीणां विमुखानांस्वकर्मणः ॥५१॥

वह पुत्र के घर से चले जाने के कारण मन से दुःखी हो गयी । हे राजन् ! उसी दिन उसने अनेक जारों के साथ रमण किया ॥३८॥ तदनन्तर उन जारों के साथ रमण करने वाली उसकी समयानुसार सौन्दर्य मद को विनष्ट करने वाली बुढ़ापा आ गयी । उसको जराग्रस्त शरीर वाली देखकर जारों ने उसको त्याग दिया तो वह दूसरी स्त्रियों की दूती बन गयी ॥३९-४०॥ उस समय उसने एक ब्राह्मण की बछड़े वाली गौ को चुरा लिया । हे राजन् ! उसने कुछ द्रव्य लेकर किसी दूसरे को बेंच दिया ॥४१॥ उसने दूती रूप से समय बिताया । उसके पश्चात् उसका सूखा हुआ शरीर गुणहीन हो गया ॥४२॥ उसके बाद उसको कुष्ठ रोग हो गया और उसके दोनों हाथ, दोनों पैर और नाक ये पाँच अङ्ग गल गये ॥४३॥ इस तरह की वह जब कहीं से भी भोजन नहीं प्राप्त की तब उसके द्वारा आदिष्ट दासी उसको दुकान पर लायी ॥४४॥ वहाँ पर पापिनी लोगों से प्रार्थना करके गिर पड़ी । वह अपने को धिक्कार करके अपना पेट भर लिया ॥४५॥ उसके सन्निकट में रहने वाले तथा सभी आगमों के अर्थ को जानने वाले एक ब्राह्मण उसको देखकर वे महावाग्मी यह कहे ॥४६॥ लोगों को दुःख देने वाला पाप इस लोक और परलोक में दुःख देता है । अतएव दुःख से डरे हुए मनुष्यों के पाप नहीं करना चाहिए ॥४७॥ जो मनुष्य पाप करके उसका प्रायश्चित कर लेता है और पुनः वह पाप नहीं करता है तो उसको उस पाप का फल नहीं मिलता है ॥४८॥ जो बार-बार पापों को करके उसका प्रायश्चित्त नहीं करता है उसकी इस पापिनी के समान हीं इस लोक में और परलोक में गति होती है ॥४९॥ इसने इस लोक में बहुत अधिक पापों को किया है । अतएव यह इस लोक में

नारद उवाच

इत्युक्त्वा स द्विजश्रेष्ठो नमस्कृत्य रविं यया ।
विष्णुं संस्मृत्य संस्मृत्य भीतस्तदवलोकनात् ॥५२॥
एवंसादुःखमापन्ना भुञ्जानां कर्मणः फलम्। अर्जितस्य स्वयं राजन्मृता कतिपयैर्दिनैः ॥५३॥
न तस्या अग्निसंस्कारः संजातःपापकर्मणः ।
आकृष्यकेशे सानीता श्वपचैर्नगराद्बहिः ॥५४॥
मरणावसरे तस्या यमभृत्याःसमागताः । प्रापय्य यातनादेहंतां निन्युर्भास्करेःपुरीम् ॥५५॥
सौम्यः स धर्मिणां देवः साक्षाद्गुह्यस्तु पापिनाम् ।
तस्या विलोकनाद्भूयः सोऽप्यभूद्वै पराङ्मुखः ॥५६॥
भृत्यानाज्ञापयामास यम एव पराङ्मुखः । रौरवे नरके घोरे पात्यतां सा मयेरिता ॥५७॥
इत्युक्तास्ते तदा भृत्या नीत्वा तां घोररौरवे ।
न्यपातयन्नधो वक्त्रां स्मरन्तीं कर्म यत्कृतम् ॥५८॥
एकमन्वन्तरं यावत्सा स्थित्वा तत्र रौरवे। पश्चाद्गोधासमुत्पन्ना श्मशाने मृतमांसभुक् ॥५९॥
तत्राऽपि सा वर्षशतं लेभे दुःखं स्वकर्मणः ।
फलं मृतकमांसेन कुर्वत्याहारमुत्कटम् ॥६०॥
एकदा स मुनेः पुत्रो योऽस्याः कुक्षौ व्यजायत् ।
विप्रयोनौ समायातः श्मशाने तत्र पर्यटन् ॥६१॥
मुनिपुत्रस्तु तां वीक्ष्यमृतानांक्रव्यमश्नतीम्। ध्यात्वाक्षणंस्वमनसिबुबुधेतांस्वमातरम् ॥६२॥

उसका फल भोगती है और परलोक में भी यह नरक भोगेगी ॥५०॥ सभी शास्त्रों में पाप कर्मों का प्रायश्चित देखा गया है किन्तु अपने पति से विमुख रहने वाली स्त्रियों का कोई भी प्रायश्चित नहीं देखा गया है॥५१॥ **नारदजी ने कहा—** यह कहकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण सूर्य को नमस्कार करके चले गये और उसको देखकर भयभीत वे भगवान् विष्णु का बारम्बार स्मरण किए ॥५२॥ इस तरह दुःखी तथा अपने कर्मों का फल भोगने वाली वह हे राजन् ! कुछ दिनों में मर गयी ॥५३॥ उस पापिनी का अग्नि संस्कार भी नहीं हुआ। चाण्डालों ने उसके केशों को पकड़कर खींचते हुए उसको नगर से बाहर कर दिया ॥५४॥ उसके मरने के समय में यमदूत आये और उसको यातना शरीर में प्रवेश कराकर यमलोक में लाये ॥५५॥ धार्मिकों के लिए सौम्य तथा पापियों को साक्षात् गुह्य यमराज भी उसको नहीं देखे ॥५६॥ उसको देखे बिना ही यम अपने दूतों को कहे कि इसको रौरव नरक में डाल दो ॥५७॥ इस तरह से कहे गये वे दूत उसको ले जाकर भयङ्कर रौरव नरक में नीचे मुख करके डाल दिए । उस समय उसको अपने कर्म की याद आ रही थी ॥५८॥ एक मन्वन्तर तक उस रौरव नरक में रहने के बाद वह श्मशान में मूर्दों का माँस खाने वाली गोधा (गोह) हुयी ॥५९॥ वहाँ भी वह सौ वर्षों तक अपने कर्म जन्य दुःख को भोगी ॥६०॥ एक बार वे मुनि पुत्र जो इसके गर्भ से उत्पन्न हुए थे, ब्राह्मण की योनि प्राप्त करके उस शमशान में घूम रहे थे ॥६१॥ मुनि पुत्र ने मरे हुए के मांस खाने वाली उसको देखकर क्षणभर अपने मन में ध्यान करके जान

स उवाचाऽऽत्मनाऽऽत्मानं बुद्ध्वा तां निजमातरम् ॥६३॥

मुनिपुत्र उवाच

एतां तु तारयाम्यद्य दुस्तराद्दुःखवारिधेः। अहो न मुच्यते जन्तुर्जातपापेन कर्मणा ॥६४॥
आत्मनोपार्जितेनैव भोगकालावधिं विना। अस्याः कालोव्यतीयायनिरयेमानवाभिधः ॥६५॥
साम्प्रतं च जनैस्त्वत्र वत्सराणां शतं गतम् ।
कियदग्रेच भोक्तव्यमेतया पापमुल्बणम् ॥६६॥

नारद उवाच

इत्यालोच्यपुनर्दध्यौज्ञानेनाऽऽमील्यचक्षुषी । दृष्ट्वा तस्यागतिंघोरांपापायादिव्यचक्षुषा ॥
पुनरात्मानमाहेदं स द्विजप्रवरो नृप ! ॥६७॥

मुनिपुत्र उवाच

अहो कल्पशतेनाऽपि निस्तारोऽस्या न दृश्यते ।
विना सत्तीर्थमरणं शरणं वा रमापतेः ॥६८॥
अथवा पिण्डदानेन गयायां मत्कृतेन च। विनाऽस्याःसद्गतिंनैव कल्पकोटिशतैरपि ॥६९॥
न घटेत द्वयं चास्या अस्यां योनौ कदाचन ।
सत्तीर्थविषये मृत्युःसेवायांश्रीपतेरतिः ॥७०॥
अस्या उद्धारहेतुर्वै मग्नायाः पापसागरे। भविता मत्कृतं श्राद्धं गयायां च बहित्रकम् ॥७१॥

नारद उवाच

इत्यालोच्य स धर्मात्मा ययौ स्वपितुराश्रमम् ।
आचख्यौ पितरं सर्वं स्वमातुर्दुःखकारणम् ॥७२॥
निशम्य पुत्रवचनं मातृदुःखनिवेदकम् । उवाच स मुनिश्रेष्ठः पुत्रं प्रणतकन्धरम् ॥७३॥

लिए कि यह मेरी माँ है ॥६२॥ उन्होंने उसको अपनी माता जानकर अपने मन में कहा ॥६३॥ **मुनिपुत्र ने कहा—** आज मैं इसको दुस्तर दुःख सागर से तार दे रहा हूँ । जो कर्म हो जाता है वह मनुष्यों को कभी छोड़ता नहीं हैं ॥६४॥ अपने से किए गये उसके फल प्राप्ति काल आये बिना । इसका समय मन्वन्तर पर्यन्त का काल नरक में बीता ॥६५॥ इस समय भी इसके सौ वर्ष बीत गये हैं । अब यह आगे अपने उग्र कर्म का फल कितने समय तक भोगेगी ॥६६॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह विचार करके वे अपने नेत्रों को मूँदकर फिर ध्यान किये अपने दिव्य नेत्रों से उस पापिनी के घोर गति को देखकर हे राजन् ! वे ब्राह्मण श्रेष्ठ फिर अपने मन में कहे ॥६७॥ **मुनिपुत्र ने कहा—** इसका सैकड़ों कल्प में भी सत्तीर्थ में मृत्यु अथवा श्रीभगवान् की शरणागति के बिना उद्धार नहीं दिखता है ॥६८॥ अथवा मेरे द्वारा गया में पिण्डदान किए बिना इसकी सैकड़ों कल्पों में सद्गति नहीं होगी ॥६९॥ इस योनि में इसका कभी भी सत् तीर्थ में मृत्यु तथा रमापति की शरणागति नहीं हो सकती है ॥७०॥ पाप सागर में डुबी हुयी इसका उद्धार करने के लिए मैं बाहर तथा गया में श्राद्ध करूँगा ॥७१॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से विचार करके वे धर्मात्मा अपने पिता के आश्रम में गये । उन्होंने अपनी माता के दुःख के समस्त कारणों को बतलाये ॥७२॥ अपनी माता के दुःख का निवेदन करने वाले पुत्र के वचन को सुनकर उन्होंने

मुनिरुवाच

हे तात मातरं स्वीयां शीघ्रमुद्धर दुर्गतेः । नयविद्भूपतिः शत्रोर्जयलक्ष्मीमिवाहवे ।।७४।।
न तारयति यः पुत्रो मातरं पितरंस्वकम् । दुःखात्स याति नरकं यदि तारयितुं क्षमः ।।७५।।
स्वपुत्रात्प्राप्य पानीयं पिण्डांश्चवरतीर्थके। पितरोनरकात्स्वर्गंस्वर्गाद्यान्तिहरेः पदम् ।।७६।।
तस्मादाशु समुत्तिष्ठ गच्छ खाण्डवकानने । तत्राऽस्तियमुना पुण्या मुनिवर्यनिषेविता ।।७७।।
तत्तीरेऽस्ति हरिप्रस्थं सर्वतीर्थमयं ततः । पुण्यं मधुवनं तत्र विष्णुनास्थापितं स्वयम् ।।७८।।
तत्र स्नात्वा तु विधिवत्कृत्वा नित्यक्रियां निजाम् ।
तामुद्दिश्य कुरु श्राद्धं स्वप्रसोश्च कुरु क्रियाम् ।।७९।।
त्वयातत्रकृतेश्राद्धेतस्याःसद्गतिमिच्छता । सा प्राप्स्यतिहरेर्लोकंहित्वागोधाङ्गमुल्बणम् ।।८०।।
गयायां पिण्डदानेन यत्फलंतात ! जायते। ततः शतगुणं पुण्यं सद्भिर्मधुवने स्मृतम् ।।८१।।
इदानीं वर्तते तात कन्याराशिगतो रविः । पुत्र ! गत्वा कुरु श्राद्धंपूर्वानुद्दिश्यबान्धवान् ।।८२।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये मधुवनमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२१३।।

अपने नम्र बने पुत्र से कहा ।।७३।। **मुनि ने कहा**— हे पुत्र ! अपनी माता का दुःख से शीघ्र उद्धार करो। नीति को जानने वाले राजा जैसे युद्ध में शत्रु से विजय श्री को प्राप्त करता है, उसी तरह ।।७४।। यदि समर्थ पुत्र अपने माता-पिता का उद्धार नहीं करता है तो वह दुःख पूर्वक नरक में जाता है ।।७५।। श्रेष्ठ तीर्थ में अपने पुत्र से जल पाकर पितृगण नरक से स्वर्ग में जाते हैं और स्वर्ग से परमपद को प्राप्त करते हैं ।।७६।। अतएव तुम उठो और खाण्डव वन में जाओ वहाँ पर मुनिवर्यों से सेवित पवित्र यमुना नदी है ।।७७।। उसी के तट पर सभी तीर्थमय इन्द्रप्रस्थ है वहीं पर स्वयं भगवान् विष्णु के द्वारा स्थापित मधुवन है ।।७८।। वहाँ पर विधिवत् स्नान करके और अपनी क्रिया करके अपनी माता को उद्दिष्ट करके श्राद्ध क्रिया को करो ।।७९।। उसकी सद्गति चाहने वाले तुम्हारे द्वारा वहाँ श्राद्ध करने पर वह श्रीहरि के लोक में अपने गोधा शरीर को त्याग कर चली जायेगी ।।८०।। हे तात ! गया में पिण्डदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है । सज्जनों से उससे सौ गुना पुण्य मधुवन में बतलाया है ।।८१।। इस समय सूर्य कन्या राशि में हैं । हे पुत्र ! वहाँ जाकर अपने पूर्वजों के उद्देश्य से श्राद्ध करो ।।८२।।

इस तरह श्रीपद्मपुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत मधुवन माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१३।।

दो सौ चौदहवाँ अध्याय

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य पितुर्वाक्यं स जगाम त्वरान्वितः ।
पुण्यं मधुवनंराजन्गयाशतगुणाधिकम् ॥१॥

तत्तीर्थवासिनो विप्रान्सायमामन्त्र्य मन्त्रवित् । कालेपुनःसमाहूयबभाषेस्वागतं वचः ॥२॥
ततः प्रक्षाल्य तत्पादौ गन्धाद्यैरभिपूज्य च । पादार्घ्यमददात्प्रीत्याशेषेणस्वयमाचमत् ॥३॥
ततस्तानब्राह्मणान्नीत्वा श्राद्धदेशे न्यवेशयत् । कुशाम्बुतुलसीपुष्पगन्धाक्षततिलैः सह ॥४॥
पूरयित्वा कर्मपात्रं पुण्डरीकाक्षमस्मरत् । देवताभ्यइतिश्लोकंत्रिःकृत्वासोऽपठद्द्विजः ॥५॥
सतिलं शोधितकुशैर्विदधे बन्धनं ततः । अग्निष्वात्तेति मन्त्रेण पूर्वादीनांदिशांक्रमात् ॥६॥
रक्षोभूतेति मन्त्रेण नीवीबन्धं व्यधाच्च सः । ततः प्रतिज्ञामाधाय ददौ द्विजकुशासनम् ॥७॥
पितॄन्समाह्वयामास स तदा ब्राह्मणोत्तमः । दत्त्वाततस्तुहस्तार्घ्यं पात्रंन्युब्जीचकारवै ॥८॥

कृत्वा गन्धादिदानं च पुनः सव्येन चाऽऽचमत् ।
सव्याऽपसव्येन तदा दत्त्वा पात्राणि स द्विजः ॥९॥

तैर्ब्राह्मणैरनुज्ञातश्चक्रेऽग्नौऽकरणं ततः । आज्यादिहविषा राजंस्तान्यमत्राण्यपूरयत् ॥१०॥
अनुत्तानोत्तानपाणिःकुर्वन्पात्रावलम्बनम् । पपाठपाठितोविप्रैः पृथ्वीत्वेतिद्विजन्मनाम् ॥११॥
असंस्कृतप्रणीतानामितिमन्त्रेण स द्विजः । दर्भेषु दक्षिणाग्रेषु ददौ च विकिरासनम् ॥१२॥

मुनि पुत्र का अपने पिता की आज्ञा से माता के उद्धार के लिए मधुवन में श्राद्ध करना

नारदजी ने कहा— अपने पिता के इस वाक्य को सुनकर वह मुनि पुत्र शीघ्र ही गया से सौ गुना अधिक मधुवन में आया ॥१॥ उस तीर्थ में रहने वाले ब्राह्मणों को सायंकाल आमन्त्रित करके फिर समय पर उनको बुलाकर उन लोगों का स्वागत किये ॥२॥ उसके पश्चात् उन लोगों के चरणों को धोकर तथा चन्दन आदि से पूजा करके फिर उन्होंने पादार्घ्य दिया और फिर उन्होंने आचमन किया ॥३॥ उसके बाद उन ब्राह्मण को श्राद्ध स्थल पर लाकर बैठाये कुश, जल, तुलसी, पुष्प, अक्षत, तिल से कर्म पात्र को भरकर भगवान् पुण्डरीकाक्ष का उन्होंने स्मरण किया । फिर वे **देवताभ्यः** इत्यादि श्लोक को तीन बार पढ़े॥४-५॥ उसके पश्चात् उन्होंने तिल सहित शोधित कुश का बन्धन किया । **अग्निष्वाता इत्यादि** मन्त्र से पूर्व आदि दिशाओं का बन्धन **रक्षोभूत** इस मन्त्र से उन्होंने नीवी बन्धन किया । उसके पश्चात् प्रतिज्ञा करके उन्होंने ब्राह्मणों को कुशासन प्रदान किया ॥६-७॥ उसके बाद वे उत्तम ब्राह्मण पितरों का आवाहन किए । उसके पश्चात् हस्तार्घ्य देकर वे पात्र को न्युब्ज (उलटा) कर दिये । चन्दन आदि प्रदान करके वे पुनः सव्य होकर आचमन किया । तदनन्तर वे सव्य तथा अपसव्य हो करके ब्राह्मण पात्र प्रदान किए ॥८-९॥ उन ब्राह्मणों से आज्ञा प्राप्त करके उन्होंने अग्नौकरण किया । घी आदि हविष्यों वे उन अमत्रों को भर दिया । उत्तान पाणि हुए बिना वे पात्रों का स्पर्श किए । ब्राह्मणों से पढ़ाये जाकर उन्होंने पृथित्वा इत्यादि मन्त्रों को वे पढ़े ॥१०-११॥ फिर **असंस्कृत प्रमीतानां** इत्यादि मन्त्र से वे ब्राह्मण दक्षिणाग्र कुशों पर विकिरासन प्रदान किये ॥१२॥ **अग्नि दग्धा** इत्यादि मन्त्र से उन्होंने घृतमिश्रित अन्न को हे

अग्निदग्धेतिमन्त्रेण घृतमिश्रान्नमक्षिपत् । जलेन सह राजेन्द्र ! विष्टरे कुशकल्पिते ॥१३॥
सव्येन पुनराचम्य ददौ चुलकजीवनम्। तृप्ताः स्थेति च संपृच्छ्यतृप्ताःस्मइतिभाषितः॥१४॥
शेषान्नभोजने तेषां जग्राहाज्ञांद्विजन्मनाम् । पिण्डार्थवेदिकांकृत्वावितस्तिप्रमितांद्विजः ॥१५॥
रेखां चकार दर्भेण दक्षिणाभिमुखीं नृप ! ।
ये रूपाणीति मन्त्रेण दधेऽग्निदिशि चोल्मुकम् ॥१६॥
पूर्वजन्मनि या माता पिता यश्च महीपते !। तयोश्च पितरौ यौहियौच राजन्पितामहौ ॥१७॥
यः प्रमातामहश्चापि पितरौ राजसत्तम !। पित्रादीन्षट्सपत्नीकांस्तानुद्दिश्ययथाविधि ॥१८॥
कुशासनानि दत्त्वावैददौपिण्डान्षडेवहि । गन्धादिभिश्चसम्पूज्यमध्यपिण्डविसर्जनम् ॥१९॥
कृत्वाऽऽघ्रायच वामांसे पिण्डपात्रं न्यवेशयत् ।
जलपात्रंतदाऽऽदायवाजेवाजेपठन्निति ॥२०॥
पाद्यार्घं च पुनर्दत्त्वा दक्षिणाद्यैरतूतुषत्। आद्वारंताननुव्रजयतेभ्योलब्ध्वाऽनुशासनम् ॥२१॥
बुभुजे च स्वयं राजन्बान्धवैः सह स द्विजः ।
एवं समाप्यराजेन्द्र ! श्राद्धं स द्विजसत्तमः ॥२२॥
पूर्वसम्बन्धिनां तत्र तीर्थे मधुवने शुभे। यदा चचाल शान्तात्मा पितुराश्रमकंप्रति ॥२३॥
तदा सम्मिलितामार्गे सर्वे ते श्राद्धभोजिनः। विमानषट्कमारूढा दिव्याभरणभूषिताः ॥
दिव्याम्बरधरा राजन्नित्यूचुस्तद्द्विजोत्तमम् ॥२४॥

पितरऊचुः

भो वत्स ! विप्रशार्दूल ! वृणीष्व वरमुत्तमम् ।
तीर्थेऽत्र कुर्वताश्राद्धंभवतातारिता वयम् ॥२५॥

राजन्! जल के साथ कुश के द्वारा निर्मित विष्टर पर डाला ॥१३॥ सव्य होकर आचमन करके वे चुलु भर जल प्रदान किए । तृप्तस्थ (क्या आपलोग तृप्त हैं) इस तरह पूछकर ब्राह्मणों द्वारा हमलोग तृप्त हैं इस तरह से कहे जाने पर ॥१४॥ उन ब्राह्मणों से बचे हुए अन्न का भोजन करने के लिए आज्ञा लिए। पिण्ड के लिए एक विते की वेदी बनाकर वे ब्राह्मण ॥१५॥ हे राजन् ! उन्होंने दक्षिणाभिमुखी रेखा कुश से बनाया । **ये रूपिणा इत्यादि** मन्त्र से उन्होंने अग्नि कोण में उल्मुक को रख दिया ॥१६॥ हे राजन्! पूर्व जन्म में जो माता-पिता थे तथा जो पितामह थे ॥१७॥ और जो प्रमातामह इत्यादि पितर थे उन सपत्नीक छह पिता आदि छहों के उद्देश्य से विधि पूर्वक कुशासन देकर उन्होंने छह पिण्ड वेदी पर प्रदान किया । फिर उन सबों की गन्ध आदि से पूजा करके मध्यम पिण्ड का विसर्जन ॥१८-१९॥ करके उसको सूंघे फिर बायें कन्धे पर पिण्ड पात्र को रखे । फिर जल पात्र लेकर **वाजेवाजे** इस मन्त्र को पढ़ते हुए॥२०॥ फिर पाद्य तथा अर्घ्य आदि देकर ब्राह्मणों को वे सन्तुष्ट किए । द्वार पर्यन्त उनके पीछे जाकर उनसे आज्ञा प्राप्त करके वे ॥२१॥ हे राजन् ! अपने बान्धवों के साथ स्वयं भोजन किए । हे राजन् ! इस प्रकार से वे द्विजश्रेष्ठ ! पूर्वजन्म के संबन्धियों का श्राद्ध पवित्र मधुवन में समाप्त करके शान्त मना वे अपने पिता के आश्रम की ओर जब चले उसी समय वे सभी श्राद्धभोजी उनसे मिले । वे लोग छह

वयं गणत्वमापन्नाः श्रीपतेस्त्वत्प्रसादतः। प्रार्थयस्व महाबुद्धे ! यदिष्टं तव चेतसि ॥२६॥

मुनिपुत्र उवाच

के यूयं कुत आयाता गणत्वं हि कुतोगताः ।
उपकारं विनाऽकस्माद्वरंयन्मे प्रयच्छथ ॥२७॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य पूर्वजन्मसुतस्य वै। पिता प्रोवाचयोदुःखाद्भक्षयित्वा विषं मृतः ॥२८॥

पितोवाच

अहं तव पिता विप्र ! पूर्वजन्मनि भूसुरः। भार्यया व्यभिचारिण्यामात्रातेपीडितोभृशम् ॥२९॥
अतीवदुःखमापन्नो भक्षयित्वा विषं निशि। अपमृत्युं गतस्तस्मादभवं रजनीचरः ॥३०॥
एवं मन्वन्तरं तात ! शतं पञ्चदशाधिकम्। वर्षाणा च व्यतीतं तद्राक्षसत्वं गते मयि ॥३१॥

इदानीं षोडशब्दे तु त्वया श्राद्धे कृतेऽत्र वै ।
पुण्ये मधुवने तीर्थे दैवत्वं प्राप्तवानहम् ॥३२॥

एतद्विमानमायातं स्वर्गादिन्द्रप्रणोदितम्। सगणं साप्सरोवृन्दं ममारोहणहेतवे ॥३३॥
अत्र तुभ्यं वरं दातुं सगणः साप्सरोगणः। विमानवरमारुह्य गच्छन्स्वर्गेऽहमागमम् ॥३४॥
वरं वरय भद्रं ते न विलम्बसहा वयम्। ऐरावतगजारूढः सुरेशो मामवेक्षते॥३५॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा निजवृत्तान्तं दत्त्वा च निजसूनवे। तत्प्रार्थितां हरेर्भक्तिं जगाम स दिवं नृप ! ॥३६॥
अथ प्रोवाच तन्माता पूर्वजन्मसुतं च तम् ॥३७॥

विमानों पर बैठे थे तथा दिव्य आभूषणों से अलंकृत थे। वे सभी दिव्य वस्त्र धारण किए बैठे थे तथा उस ब्राह्मण श्रेष्ठ से कहे ॥२२-२४॥ **पितरों ने कहा—** हे ब्राह्मण श्रेष्ठ वत्स ! तुम उत्तम वरदान माँगो। इस तीर्थ में श्राद्ध करके आपने हमलोगों को तार दिया ॥२५॥ तुम्हारी कृपा से हमलोग भगवान् लक्ष्मीपति के गण हो गये हैं। हे महाबुद्धे ! तुम्हारे मन में जो हो उसे तुम माँगो ॥२६॥ **मुनि पुत्र ने कहा—** आपलोग कौन हैं ? कहाँ से आयें हैं ? और कैसे गणत्व को प्राप्त किए कि बिना उपकार किए ही अकस्मात् मुझको वर प्रदान कर रहे हैं ॥२७॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से अपने पूर्व जन्म के पुत्र की वाणी सुनकर पिता ने कहा कि दुःख के कारण विष खाकर मरा हुआ मैं तुम्हारा पिता हूँ ॥२८॥ **पिता ने कहा—** हे विप्र ! पूर्व जन्म में मैं ब्राह्मण तुम्हारा पिता था। तुम्हारी व्यभिचारिणी माता ने मुझको वहुत दुःख दिया था ॥२९॥ अत्यन्त दुःख से युक्त मैं रात्रि में विष खाकर मर गया। अपमृत्यु होने के कारण मैं राक्षस हो गया ॥३०॥ हे तात ! एक मन्वन्तर तथा पाँच सौ दश वर्षों तक मैं राक्षस ही रहा ॥३१॥ इस समय तुम्हारे द्वारा पवित्र मधुवन में तीर्थ श्राद्ध किए जाने के कारण मैं देवता हो गया ॥३२॥ यह स्वर्ग से इन्द्र द्वारा भेजा गया गणों तथा अप्सराओं के साथ यह विमान मेरे चढ़ने के लिए आया है ॥३३॥ यहाँ पर तुमको वरदान देने के लिए गणों तथा अप्सराओं के साथ इस श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर मैं स्वर्ग जाते हुए आया हूँ ॥३४॥ तुम वरदान माँगो तुम्हारा कल्याण हो हमलोग विलम्ब नहीं वर्दास्त कर सकते हैं। ऐरावत हाथी पर चढ़कर इन्द्र मुझको देख रहे हैं ॥३५॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से अपना

मातोवाच

त्वत्प्रसादादहं जातादेवीमुक्ताच पापतः। प्राप्तंशच्याःसखीत्वंमे पापयाऽपिद्विजोत्तम ! ॥३८॥
त्वयाऽत्रविहितेश्राद्धेतीर्थेविश्रान्तिसञ्ज्ञके । प्रार्थयस्व महाभाग ! निजचित्तसमीहितम्॥३९॥

ददामि ते यतोऽस्माकं देवीनां न वचो मृषा ।
येनपापेनजाताऽहंगोधा च पितृकानने ॥४०॥
नरके चिरमास्थाय तत्त्वं वेत्सि द्विजोत्तम ! ।
अनुजानीहि मां पुत्र पुलोमतनया दिवि ॥
मामपेक्षत आकाशे वृता देवाङ्गना गणैः ॥४१॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वासाऽपितन्माता निष्कामायस्वसूनवे । ययौ त्रिविष्टपंराजञ्छिरसा तेनवन्दिता ॥४२॥
ततः पितामहस्तस्य स्वपौत्रं तं द्विजोत्तमम् । उवाच वचनं भूप ! हरेर्बिभ्रत्सरूपताम् ॥४३॥

पितामह उवाच

वत्सवत्सचिरं जीवलभवस्वनिजवाञ्छितम्। त्वत्प्रसादाद्वयंतीर्णादुस्तराद्भवसागरात् ॥४४॥
पितामहोऽहन्ते वत्स तवेयंच पितामही। मृतं माऽनुगतासाध्वी सालोक्यमचिरंगता ॥४५॥
अद्य त्वयाऽत्रविश्रान्तोविहिते श्राद्धकर्मणि । आवयोस्तु हरेर्लोकेलब्धा तस्य सरूपता ॥४६॥

नारद उवाच

एवमुक्त्वा तया सार्द्धं स्वस्त्रिया भूपसत्तम ! ।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य वैकुण्ठं स ययौद्विजः ॥४७॥

वृत्तान्त कहकर तथा पुत्र के द्वारा प्रार्थित श्रीहरि की भक्ति का वरदान देकर वे स्वर्ग चले गये ॥३६॥ उसके बाद उसकी पूर्व जन्म की माता ने उस पुत्र से कहा ॥३७॥ **माता बोली**— तुम्हारी कृपा से मैं मुक्त होकर देवी हो गयी हूँ । हे द्विजोत्तम ! मैं इन्द्राणी की सखी हो गयी हूँ ॥३८॥ तुम्हारे द्वारा यहाँ तथा विश्रान्ति संज्ञक तीर्थ में श्राद्ध करने से मैं देवी हुयी । तुम्हारे मन में जो इच्छा हो वह वरदान माँगो ॥३९॥ उसे मैं दे रही हूँ क्योंकि हम देवियों का वचन मिथ्या नहीं होता है । जिस पाप के कारण मैं पितृवन में गोधा हुयी ॥४०॥ दीर्घ काल तक नरक में रही । उसे तो तुम जानते ही हो । हे पुत्र ! मुझे आज्ञा दो स्वर्ग में इन्द्राणी आकाश में देवाङ्गनाओं से घिरी हुयी मेरी अपेक्षा कर रही हैं ॥४१॥ **नारदजी ने कहा**— इस तरह से उसकी माता अपने कामना रहित पुत्र को कहकर हे राजन् ! उसके द्वारा प्रणाम किए जाने तथा वन्दना किए जाने पर स्वर्ग लोक चली गयी ॥४२॥ उसके बाद उसके पितामह अपने द्विजोत्तम ! पौत्र को श्रीहरि की सरूपता धारण किए रहे ॥४३॥ **पितामह बोले**— हे वत्स ! तुम दीर्घ काल तक जीवित रहो अपने मनोरथ को तुम प्राप्त करो । तुम्हारी कृपा से हमलोग भव सागर से पार हो गये । हे वत्स ! मैं तुम्हारा पितामह हूँ और यह तुम्हारी पितामही है । मेरे मर जाने पर यह साध्वी मेरा अनुगमन करती हुआ मेरी सलोकता को प्राप्त की । तुम्हारे द्वारा यहाँ पर श्राद्ध करने से आज तुम्हारे द्वारा मैं विश्राम प्राप्त कर रहा हूँ । हमदोनों श्रीहरि के लोक में सरूपता को प्राप्त कर लिए हैं ॥४४-४६॥ **नारदजी ने कहा**— हे

अथ प्रोवाच राजेन्द्र ! वचस्तत्प्रपितामहः । यत्ते तत्कथयाम्यद्य शृणुष्वैकमना द्विजः ॥४८॥

प्रपितामह उवाच

भोभो वत्स महाभाग तवाऽहंप्रपितामहः । भ्रूणहत्याफलेनाहं शौकरीं योनिमाप्तवान् ॥४९॥
ततो विनिर्गतस्तात श्वाऽभवं पापपीडितः । ततः स्थावरतां प्राप्तो विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ॥५०॥
तत्राऽपिचिरकालेनस्थितःस्थावरतांदधत् । हस्तिनाकेनचित्तातमूलादुत्पाटितोबलात् ॥५१॥
तस्मिन्नेवततः कालेत्वया श्राद्धमकारिवै । अस्मिंस्तीर्थोत्तमेतातमुक्तोऽहंस्थापरात्ततः ॥५२॥
प्राप्तोऽयं यक्षराजस्य नगर्यां वासउत्तमः । देह्यनुज्ञां द्विजश्रेष्ठ ! यामि तां त्वत्प्रसादतः ॥५३॥

त्वां दिदृक्षुरिहाऽऽयातो दृष्टस्त्वं पुण्यदर्शनः ।
तीर्थं च सर्वतीर्थेषु श्रेष्ठं मधुवनं मया ॥५४॥

नारद उवाच

इत्युक्तस्तेन राजेन्द्र ! मुनिपुत्रः स धर्मवित् ।
पप्रच्छ शिरसाऽऽनम्य निजं प्रपितामहम् ॥५५॥

ऋषिरुवाच

ब्राह्मणानां कुलेतातजातोऽसि त्वंगरीयसि। कथं विहितवान्पापं भ्रूणहत्याभिधंगुरो ! ॥५६॥
येन निन्द्यांसमापन्नो भवान्योनिपरम्पराम्। समाचक्ष्वमहाभाग यदितत्स्मृतिरस्तिते ॥५७॥

प्रपितामह उवाच

पुराऽहं द्विजशार्दूल ! ब्राह्मणस्यैव जन्मनि। मन्त्रयन्त्रविधानेन कृतवान्वृत्तिमात्मनः ॥५८॥
धनलोभेन नारीणां गर्भार्थमहमौषधम् । दत्तवांश्चैव नाशाय दैवोपहतचेतनः ॥५९॥

राजश्रेष्ठ ! इस तरह से कहकर वे अपनी पत्नी के साथ ब्रह्मलोक को पार करके वैकुण्ठ चले गये ॥४७॥ हे राजेन्द्र ! उसके पितामह ने जो कहा उसे तुम सावधानी पूर्वक सुनो मैं कह रहा हूँ ॥४८॥ **प्रपितामह बोले—** हे महाभागवत वत्स ! मैं तुम्हारा प्रपितामह हूँ गर्भ हत्या करने के कारण मैं शूकर हो गया॥४९॥ उससे निकल कर पाप से पीड़ित मैं कुत्ता हुआ । उसके पश्चात् मैं विन्ध्य पर्वत पर वृक्ष हो गया ॥५०॥ वहाँ पर स्थावर बना हुआ मैं दीर्घकाल तक रहा । हे तात ! किसी बलवान् हाथी ने मुझको मूल से ही उखाड़ दिया ॥५१॥ उसी समय मेरा तुमने श्राद्ध इस तीर्थ में किया उससे मैं स्थवरत्व से मुक्त हो गया॥५२॥ मैंने यक्षराज के उत्तम नगरी में निवास प्राप्त किया है । हे द्विजश्रेष्ठ ! आप अनुज्ञा दें मैं उस नगरी में जा रहा हूँ ॥५३॥ तुमको देखने की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ तुमको तथा इसे सर्वोत्तम तीर्थ को मैंने देख लिया ॥५४॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! इस तरह से कहे गये धर्मवेत्ता मुनिपुत्र ने अपने प्रपितामह को शिर से प्रणाम करके पूछा ॥५५॥ **ऋषि ने कहा—** हे तात ! आप महान् ब्राह्मणों के वंश में उत्पन्न हुए आपने भ्रूण हत्या जैसा पाप क्यों किया ?॥५६॥ जिसके कारण आप निन्दित योनियों में जाते रहे । यदि आपको याद हो तो उसे आप बतलाएँ ॥५७॥ **प्रपितामह ने कहा—** पूर्वजन्म में हे तात ! ब्राह्मण मैं मन्त्रों तथा तन्त्रों के विधान से अपनी जीविका चलाता था ॥५८॥ धन के लोभ से मैं स्त्रियों के गर्भ के नाश के लिए औषधि दी उस समय मेरा ज्ञान नष्ट हो गया था ॥५९॥ लोभ निर्धन

लोभोहि धनहीनानांजनानांज्ञानमाहरेत्। शुचिकाले दिनाधीशः कुल्यानामिवजीवनम् ॥६०॥
ज्ञानेनष्टे जनस्तात पापमाचरते ध्रुवम्। पापान्नरकमाप्नोति ततो याति कुयोनिताम् ॥६१॥
काचिदेका तदा नारी गुर्विणी मामपृच्छत । किं जनिष्याम्यहं विप्र ! पुत्रं वेत्यथवा स्त्रियम्॥६२॥
तदाऽहमुक्तवांस्तां वै तव कन्या भविष्यति। पुत्रोत्पत्तिकृते तुभ्यं प्रदास्यामि महौषधम् ॥६३॥
इत्युक्ता च मया नारी दुर्बुद्धिस्त्रीशिरोमणिः ।
जग्राह ममपादौ तु दत्तं हेमपलं च मे ॥६४॥
इत्युवाच च सामह्यंषट्कन्याजनितामया। सप्तमीयंत्वया चोक्ताजीविष्येऽस्यानजन्मनि ॥६५॥
तथाकुरुमहाबुद्धेयथाऽहंवैनकन्यकाम् । जनयिष्यामिविप्राऽन्यांनिजप्राणविनाशिनीम् ॥६६॥
इत्याकर्ण्यवचस्तस्यास्तामहं पुनरुक्तवान्। प्रसूतिकालेदास्यामि पुत्रोत्पाद्यहमौषधम् ॥६७॥
तथेसिता वचोमह्यं प्रतिश्रुत्य गतागृहम्। अपेक्षमाणा त कालंतस्थौ वाक्यप्रतीतिकृत् ॥६८॥
तस्यां गतायां भो तात चिन्तयाऽभवमातुरः ।
इत्यहं द्विजशार्दूल तच्छृणुष्व वदामिते ॥६९॥
पुत्रोत्पत्तिप्रतीत्येयं मह्यं दत्तवती पलम्। सुवर्णस्यन जानामि किमस्याःसंभविष्यति ॥७०॥
किमत्रकरणीयं मे कथमेतत्सुवर्णकम्। पलप्रमाणं तिष्ठेद्वै दरिद्रस्य गृहे मम ॥७१॥
एवं विमृश्य तद्दास्यास्तस्यै हस्तुनदापितम्। गर्भपातकरं तात ! मया दारुणमौषधम् ॥७२॥
तेनौषधेन तस्यास्तु गर्भस्त्रावोऽभवत्तदा। मासे तृतीये न ज्ञातं चिह्नं पुरुषकन्ययोः ॥७३॥

मनुष्य के ज्ञान को हर लेने के काम उसी तरह करता है जैसे ग्रीष्म सूर्य छोटी-छोटी बावलियों के जल को सोख लेता है ॥६०॥ हे तात ! ज्ञान के नष्ट हो जाने पर मनुष्य निश्चित रूप से पाप करता है । पाप के कारण वह नरक में जाता है और वहाँ से वह निन्दित योनि को प्राप्त करता है ॥६१॥ उस समय मुझसे एक गर्भिणी नारी मुझसे पूछी हे विप्र ! मुझको पुत्र होगा की पुत्री ?॥६२॥ उस समय मैंने उससे कहा कि तुम्हें कन्या होगी । पुत्र की उत्पत्ति के लिए मैं महौषधि दूँगा ॥६३॥ इस तरह से कहने पर दुर्बुद्धि शिरोमणि उस नारी ने मेरे पैर को पकड़ लिया और मुझको एक पल सुवर्ण दिया ॥६४॥ उसने मुझसे कहा कि मेरी छह पुत्रियाँ हैं । इसको आपने सातवीं बतलाया इसका जन्म होने पर मैं नहीं जीऊँगी ॥६५॥ हे महाराज ! आप ऐसा करें कि मैं कन्या को जन्म न दूँ । हे विप्र ! क्योंकि यह मेरे प्राण का विनाश करने वाली होगी ॥६६॥ उसकी इस वाणी को सुनकर मैंने उससे फिर कहा प्रसव के समय मैं तुमको पुत्र उत्पन्न करने वाली महौषधि दूँगा ॥६७॥ मेरी बात को सुनकर उसने कहा ठीक है और वह अपने घर चली गयी । वह उस समय की प्रतीक्षा करने वाली क्योंकि उसको मेरी बातों पर विश्वास हो गया ॥६८॥ हे तात ! उसके चले जाने पर मैं निश्चिन्त हो गया । हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं बतलाता हूँ आप सुनें ॥६९॥ पुत्रोत्पत्ति के लिए विश्वास करके इसने मुझको एक पल सुवर्ण दिया है । न जाने इसको क्या होगा ?॥७०॥ इसके विषय में मुझे क्या करना चाहिए ? यह सुवर्ण किस तरह मेरे घर में रहेगा ?॥७१॥ इस तरह से विचार करके उसकी दासी के हाथ में उसको गर्भपात करा देने वाली भयङ्कर औषधि मैंने दी ॥७२॥ उस औषधि से उसका तीसरे महीने में गर्भपात हो गया । और वह कन्या अथवा पुरुष के चिह्न को नहीं जान

तदा सा मद्गृहं प्राप्ता विषण्णागर्भस्रावतः ।
अथाऽर्थयत्सुवर्णं तन्निराशा पुत्रजन्मनि ॥७४॥
तदाहमिष्टकाचूर्णं भस्मना च समन्वितम्। हरिद्राचूर्णसंयुक्तं साम्बु तस्यै अदर्शयम्॥७५॥
एतच्चूर्णं कृतं मातस्त्वत्पुत्रोत्पत्तये मया। त्वद्दानाद्द्विगुणं द्रव्यं लग्नमेतस्य साधने॥७६॥
इत्युक्त्वा सा मया तात ! त्यक्त्वा चूर्णं गृहं ययौ ।
मामुक्त्वेति ग्रहीष्यामि काले त्वत्तो द्विजोत्तम ! ॥७७॥
एवं मया कृता तात भ्रूणहत्याऽतिदारुणा। ययाऽतिकुत्सिते योनित्रितये भ्रमितंमया॥७८॥
त्वत्प्रसादादहं मुक्तःसाम्प्रतं स्थावरत्वतः। देह्यनुज्ञां मुनिश्रेष्ठ ! याम्यहं ह्यलकां शुभाम्॥७९॥

नारद उवाच

एवमुक्त्वातु राजेन्द्र तस्यतु प्रपितामहः। तेनाभिवन्दितो मूर्ध्ना प्रययौ दिशमुत्तराम्॥८०॥
विमानेन विचित्रेण किङ्किणीजालमालिना। नृत्यद्गन्धर्वजुष्टेन मणिप्राकारशोभिना ॥८१॥
अथ तस्य महाराज विप्रस्य प्रपितामही। उवाच स्वप्रपौत्रं तं विमानवरमास्थिता॥८२॥

प्रपितामह्युवाच

नान्यत्र कुत्र गन्ताऽसि पुण्येनाऽनेन सुव्रत ! ।
विनापद्मापतेः पादपद्मचिह्नितमन्दिरम् ॥८३॥
अयं मम पतिः पापो मुने ! त्वत्प्रपितामहः ।
वारितोऽपि मया पापमाचचार सुदुष्टधीः ॥८४॥
सोऽपि त्वयाऽतिपापात्मा तारितो दुःखसागरात् ।
शक्यते केन वै कर्तुं तावकं गुणवर्णनम् ॥८५॥

सकी॥७३॥ उस समय गर्भपात हो जाने के कारण वह उदास होकर मेरे घर आयी । पुत्र जन्म के विषय में निराश उसने उस सुवर्ण को माँगा ॥७४॥ उस समय भस्म से युक्त इष्टिका के चूर्ण को हल्दी के चूर्ण से तथा पानी से युक्त उसको मैंने दिखाया ॥७५॥ मैंने कहा हे मातः तुम्हारे पुत्र की उत्पत्ति के लिए इस चूर्ण को तैयार किया है । तुमने जो दिया है उसके दो गुना द्रव्य इसके शोधने में लगा है ॥७६॥ हे तात! मेरे द्वारा इस तरह से कहने पर वह उस चूर्ण को छोड़कर अपने घर मुझको यह कहकर चली गयी कि समय आने पर मैं इसे लूँगी ॥७७॥ हे तात ! इस तरह से मैंने भ्रूण हत्या की । उसके कारण मैं अत्यन्त निन्दित तीन योनियों में जाता रहा ॥७८॥ तुम्हारी कृपा से मैं इस समय स्थावरत्व से मुक्त हुआ हूँ । हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मुझे जाने की अनुमति दें मैं अलकापुरी में जा रहा हूँ ॥७९॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजेन्द्र! इस तरह से कहकर उसके प्रपितामह उसके द्वारा शिर झुकाकर प्रणाम करने पर उत्तर दिशा में विचित्र विमान जिसमें घुंघुरु लगे थे नृत्य करते हुए गन्धर्वों से सुशोभित तथा श्रेष्ठ मणियों से सुशोभित था उस विमान से चले गये ॥८०-८१॥ हे महाराज ! उसके बाद उस ब्राह्मण की प्रपितामही जो श्रेष्ठ विमान पर बैठी थी अपने प्रपौत्र से कही ॥८२॥ **प्रपितामही ने कहा—** हे सुव्रत ! इस पुण्य के द्वारा श्रीहरि के चरणों से चिह्नित धाम से अन्यत्र तुम नहीं जाओगे ॥८३॥ ये मेरे पापी पति तो तुम्हारे प्रपितामह हैं, मेरे द्वारा रोके जाने पर भी पाप किए थे ॥८४॥ उस अत्यन्त पापी को भी तुमने दुःख सागर से तार

नारद उवाच

इत्युक्त्वा साऽपि राजेन्द्र पतिलोकं जगाम ह ।
अलकायां चिरंपत्या तेनैव मुमुदे सह ॥८६॥

अथ ते मुनिपुत्रस्य सर्वे मातामहादयः। सपत्नीकाः समारुह्य विमानेषु ययुर्दिवम् ॥८७॥

सोऽपि द्विजवरस्तस्मात्तीर्थात्स्वपितुराश्रमम् । गत्वा तं सर्ववृत्तान्तं स्वपित्रेसमवर्णयत् ॥८८॥

सोऽपि तत्र गतः सार्द्धं कुटुम्बेन वने मधोः ।
चकार पर्णशालांवैविश्रान्तेस्तुसमीपतः ॥८९॥

तत्र विश्रान्तितीर्थेतुत्रिकालंस्नानमाचरन्। नाऽकरोद्विष्णुलोकेऽपिस्पृहांसमुनिसत्तमः ॥९०॥

एकदा जलमध्ये स स्नानं कुर्वन्मुनिर्नृप ! । आचकाङ्क्षे च भविताकदा मे हरिदर्शनम् ॥९१॥

एवं कामयमानस्य मुनिवर्यस्य भूपते ! । आजगाम त्वरायुक्तः पक्षिराजासनो हरिः ॥९२॥

लक्ष्म्यावक्षःस्थया सार्द्धं चतुर्बाहुधरो हरिः। नवीनघनवर्णाङ्गो विद्युद्वर्णाम्बरावृतः ॥९३॥

कौस्तुभोद्भासिसद्वक्षाः शङ्खचक्रगदाब्जभृत् । वनमालालसत्कण्ठो मकराकृतिकुण्डलः ॥९४॥

फुल्लाम्बुजपलाशाक्षः स्वलकालङ्कृताननः ।
विद्रुमाकारकरजोऽरुणहस्तोऽङ्घ्रिसत्तलः ॥९५॥

उवाच तं द्विजश्रेष्ठन्दन्तभासा विभासयन्। शरन्निशापतिस्तोमतिरस्कारकृता दिशः ॥९६॥

श्रीभगवानुवाच

भो भो द्विजवरैतन्मे तीर्थं मधुवनं शुभम्। विश्रान्तिसञ्ज्ञकं स्नानसर्वकामोपपादकम् ॥९७॥

दिया । तुम्हारे गुणों का वर्णन कौन कर सकता है ?॥८५॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से वह भी अपने पति के लोक में चली गयी । और दीर्घ काल तक अपने पति के साथ अलकापुरी में निवास की॥८६॥ उसके बाद उसके मातामह इत्यादि सभी अपनी पत्नी के साथ विमान पर चढ़कर स्वर्ग लोक में चले गये ॥८७॥ वे ब्राह्मण श्रेष्ठ भी उस तीर्थ से अपने पिता के आश्रम में जाकर अपने पिता को सम्पूर्ण वृत्तान्त को बतलाये ॥८८॥ वे भी अपने कुटुम्ब के साथ मधुवन में चले गये । उन्होंने विश्रान्ति तीर्थ के सन्निकट पर्णशाला को बनाया ॥८९॥ उस विश्रान्ति तीर्थ में वे त्रिकाल स्नान करते थे । वे मुनिश्रेष्ठ विष्णुलोक की भी स्पृहा नहीं किए ॥९०॥ हे राजन् ! वे मुनिवर्य जब जल में स्नान कर रहे थे इस बात की आकांक्षा किए कि मुझको कब श्रीहरि का दर्शन होगा ?॥९१॥ हे राजन् ! इस तरह से कामना करने वाले मुनिराज के समीप गरुड़ पर चढ़कर श्रीहरि आये ॥९२॥ वक्षःस्थल में लक्ष्मीजी को धारण किए हुए श्रीहरि चतुभुज थे । उनका शरीर नवीन मेघ के समान था और वे विद्युत् के समान चमकते हुए वस्त्र को धारण किए थे ॥९३॥ उनका वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि से सुशोभित था वे शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किए हुए थे । वनमाला से उनका कण्ठ सुशोभित था और वे मकराकृति कुण्डल धारण किए हुए थे ॥९४॥ विकसित कमलदल के समान उनके नेत्र थे । उनका मुख सुशोभित हो रहा था, मूँगे के समान उनकी ऊँगलिया थीं उनकी हथेली और पैर के तलवे लाल-लाल थे ॥९५॥ उन्होंने उन द्विजश्रेष्ठ को अपने दाँतों की कान्ति से प्रकाशित करते हुए शरत् कालीन चन्द्र समूह के समान दिशाओं को प्रकाशित करते हुए कहे ॥९६॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! यह मेरा शुभ तीर्थ

अत्र त्वया स्नानकाले वाञ्छितं मम दर्शनम् ।
तुभ्यंहितन्मया दत्तं ब्रह्मादिसुरदुर्लभम् ॥९८॥

त्यज देहमिमं विप्र ! मानुषं दिव्यमाप्नुहि । आयाहिमद्गृहंसार्द्धंमयाऽऽरुह्य खगेश्वरम् ॥९९॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य श्रीपतेः स मुनीश्वरः ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा जलएव विशाम्पते ! ॥१००॥

मुनिरुवाच

श्रीपते श्रीमदम्भोजसंमर्दितपदाम्बुजम् । भवतो भवतापघ्नं वन्दे त्रिदशवन्दितम् ॥१०१॥
त्वदीयमायया नाथ मोहिता येऽत्र जन्तवः । तेषां कदाचिन्निस्तारो न कृपामन्तरेणते ॥१०२॥
सत्तीर्थसेवनादीश तथा सज्जनसंगमात् । पुंसां भक्तिस्तु येषां वै जायते कृपया तव ॥१०३॥

साधुभिर्बहुभिरीरितं हरे ! यो निशम्यगुणकीर्त्तनं तव ।
कीर्तयत्यखिलपापनाशनं मातृगर्भकुहरे स नो पतेत् ॥१०४॥
श्रीपते ! तव जनस्य मानसं दैवतस्तु पतितं महारणे ।
गुण्ठितं च रजसा जहाति नो निर्मलत्वमिव रत्नमुत्तमम् ॥१०५॥
यः पुमान्पतति ते पदाम्बुजे दण्डवत्पुलकमङ्गके दधत् ।
सोऽन्वयं नयति तावकं पदं स्वं च वाञ्छितमशेषयोगिभिः ॥१०६॥
जीवएव तव मायया विभो ! मोहितो भ्रमति विश्ववर्त्मसु ।
त्वत्कृपाललितलोचनाचलैस्तत्क्षणं तरति विश्ववारिधिम् ॥१०७॥

मधुवन है। विश्रान्ति संज्ञक तीर्थ में स्नान करना सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥९७॥ यहाँ पर स्नान के समय आपने मेरा दर्शन चाहा इसीलिए मैंने ब्रह्मा आदि के लिए भी दुर्लभ दर्शन आपको दिया॥९८॥ हे द्विज ! आप मनुष्य का शरीर त्यागकर दिव्य शरीर प्राप्त करें और मेरे साथ आप गरुड़ पर चढ़कर आप मेरे लोक मे चलें ॥९९॥ **नारदजी ने कहा**— वे मुनीश्वर इस प्रकार के लक्ष्मीपति के वचन को सुनकर जल में ही झुककर श्रीभगवान् की स्तुति किए ॥१००॥ **मुनि ने कहा**— अपने चरण कमलों से कमल को भी तिरस्कृत करने वाले भगवान् संसार के सन्ताप को विनष्ट करने वाले हैं आपके देवताओं से वन्दित चरण कमलों की मैं वन्दना करता हूँ ॥१०१॥ इस संसार में आप की माया से मोहित जो जीव हैं उन सबों का निस्तार आपकी कृपा के बिना नहीं हो सकता है ॥१०२॥ हे भगवन् ! सत् तीर्थ का सेवन करने से तथा सज्जनों की सङ्गति से जिन मनुष्यों की आपकी कृपा से भक्ति उत्पन्न हो जाती है ॥१०३॥ हे हरे ! अनेक साधु पुरुषों के द्वारा वर्णित आपके गुण और कीर्ति को सुनकर समस्त पाप विनाशक उसका कीर्तन करने वाले लोग माता के गर्भ में नहीं आते हैं ॥१०४॥ हे श्रीपते ! आपके भक्तों का देवताओं से महारण में गिरे हुए तथा धूलि से धूसरित मन उत्तम रत्न के समान अपनी निर्मलता को नहीं त्यागता है ॥१०५॥ जो मनुष्य रोमाञ्चित अङ्गों से पृथिवी पर दण्ड के समान आपके चरणों में गिरते हैं वह अपने वंश तथा अपने को भी योगियों के द्वारा वाञ्छित आपके लोक में चले जाते हैं ॥१०६॥

नारद उवाच

इति संस्तुत्य गोविन्दं दण्डवत्तस्यपादयोः। पपात स मुनिश्रेष्ठो जयेति मुहुरीरयन्॥१०८॥
श्रीपतिस्तं मुनिश्रेष्ठं दण्डवत्पतितं भुवि। उत्थाप्य बाहुभिस्तूर्णं सुवर्णेसमरोपयत्॥१०९॥
तत्कुटुम्बं च विश्वात्मा वैकुण्ठं च जगाम ह ।
इत्येतत्कथितं राजञ्छिवे ! मधुवनस्यवै ॥११०॥
माहात्म्यं सर्वपापघ्नं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि। यइदं शृणुयान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१११॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये मधुवनमाहात्म्यं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१४॥

दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय

सौभरिरुवाच

युधिष्ठिरेदमाकर्ण्य नारदस्य वचः शुभम्। शिबिरौशीनरो राजा विनीतस्तमुवाच ह॥१॥

शिबिरुवाच

मुने ! मया तु माहात्म्यं श्रुतं मधुवनस्यवै। त्वन्मुखात्किंतुसन्देहोह्येकोऽस्तिमममानसे ॥२॥

हे विभो ! आपकी माया से मोहित होकर जीव संसार मार्ग में घूमता रहता है। कृपा से मनोहर आपके नेत्रों के कटाक्षपात से वह क्षण भर में संसार सागर को पार कर जाता है ॥१०७॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से भगवान् गोविन्द की स्तुति करके वे मुनिश्रेष्ठ श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किए वे बार-बार आपकी जय हो कह रहे थे ॥१०८॥ श्रीभगवान् पृथिवी पर दण्ड के समान गिरे हुए मुनि को अपनी भुजाओं से उठाकर शीघ्र ही गरुड़ पर बैठा दिए ॥१०९॥ हे शिवि राजन् ! उन मुनि के परिवार को भी लेकर वैकुण्ठ चले गये। इस तरह से मैंने तुमको मधुवन का माहात्म्य जो सभी पापों को विनष्ट करने वाला है उसे सुनाया। अब दूसरी कौन सी बात सुनना चाहते हो ? जो मनुष्य इस माहात्म्य को सुनता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥११०-१११॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत मधुवन माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१४॥

मनु के पुत्र के पूर्वजन्म में कुण्ड के रूप में उत्पन्न होने के कारण का वर्णन उसी के प्रसङ्ग में बुध द्वारा दिये गये शाप और उसके अनुग्रह का वर्णन

सौभरि महर्षि ने कहा— हे युधिष्ठिर ! नारदजी के इस वचन को सुनकर औशीनर राजा शिवि विनीत होकर नारदजी से कहे ॥१॥ **शिवि ने कहा—** हे मुने ! मैंने आपके मुख से मधुवन का माहात्म्य

येन धर्मात्मना सर्वे तारिता निजबन्धवा: । जन्मद्वयकृताह्यासीत्सकथं स्वैरिणीसुत: ।।३।।
एतदाचक्ष्व भगवन्सर्वस्वं वेत्सि तत्त्वत: । अतीतं वर्त्तमानं च भविष्यमपि नारद !।।४।।

नारद उवाच

एकदा मुनय: सर्वे हरिद्वारे समागता: । दशम्यां ज्येष्ठशुक्लस्य युक्तायां सर्वपर्वभि: ।।५।।
तत्र ते विधिवत्स्नात्वा कृतवा च स्वक्रियां शुभाम् ।
हिमाचलस्य पृष्ठे तु स्वस्थचित्ता उपाविशन् ।।६।।
तारात्मजो बुधस्तत्र मुनिसङ्घे समागत: । सौन्दर्यभरसंयुक्त: स्मर्रा मूर्त्त इवाऽपर: ।।७।।
तं समागतमालोक्य समुत्तस्थुर्मुनीश्वरा: । तेनाऽभिवन्दितामूर्ध्नापुनस्ते समुपाविशन् ।।८।।
बुधस्याऽऽदरमालोक्य विहितं मुनिपुङ्गवै: । मुनिपुत्र: स पप्रच्छ पितरंस्वमिति प्रभो !।।९।।

मुनिपुत्र उवाच

कोऽयं तात ! समायात: सौन्दर्येणाऽपर:स्मर: ।
व्यासादिभिर्मुनिवरैर्भृशंतस्याऽऽदर:कृत: ।।१०।।

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य स धर्मात्मा स्वस्यपुत्रस्यभाषितम् ।
बभाषे मुनिशार्दूल:पुत्रनिर्बन्थसंयुतम् ।।११।।

पितोवाच

बृहस्पते: सुरगुरो: सुतस्तारोदरोद्भव: । बुद्धिमान्बुधनामाऽयं शशिवंशकर: पर: ।।१२।।

पुत्र उवाच

किं त्वया कथितं तात नि:सम्बन्धपरं वच: ।
बृहस्पते:सुतोयस्तुस कथं शशिवंशकृत् ।।१३।।

सुना । किन्तु मेरे मन में एक संदेह है ।।२।। जिस धर्मात्मा ने अपने सभी बान्धवों को तार दिया वे दो जन्मों में स्वैरिणी के पुत्र कैसे हुए ?।।३।। हे भगवन् ! आप सब कुछ जानते हैं अतएव मुझे यह बतलाइये । आप भूत, भविष्य और वर्तमान सबकुछ जानते हैं ।।४।। **नारदजी ने कहा**— एक बार सभी मुनिगण हरिद्वार आये । उस दिन सभी पर्वों से युक्त ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि थी ।।५।। वहाँ पर वे सविधि स्नान करके और अपने नित्य कृत्य को करके स्वस्थ चित्त से हिमालय के ऊपर बैठे।।६।। वहाँ पर तारा के पुत्र बुध भी मुनि समुदाय में आये । अत्यधिक सौन्दर्य से सम्पन्न वे मूर्तिमान कामदेव के समान सुशोभित हो रहे थे ।।७।। उनको आये हुए देखकर सभी मुनीश्वर उठकर खड़े हो गये। बुध के द्वारा बन्दित वे सभी पुन: बैठ गये ।।८।। हे राजन् ! मुनियों के द्वारा किए गये आदर को देखकर उस मुनि पुत्र ने कहा **मुनिपुत्र बोले**— हे तात ! कामदेव के समान सुन्दर ये कौन हैं ? व्यासजी आदि मुनिवरों ने उनका बहुत अधिक समादर किया ।।९-१०।। **नारदजी ने कहा**— इस तरह से अपने पुत्र की वाणी सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा अपने पुत्र से कहे ।।११।। **पिता ने कहा**— ये बुध नामक बुद्धिमान देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा के गर्भ से उत्पन्न और चन्द्रमा के वंश को बहुत बढ़ाने वाले हैं ।।१२।।

जज्ञेऽनसूयया तात ! विधुरत्रेर्मुनीश्वरात्। तस्य वंशस्य कर्त्ताऽयं कथं सुरगुरोः सुतः ॥१४॥
एष मे मानसे तात संशयो वर्तते महान्। तमपाकुरु विप्रेन्द्र ! सन्दिहानस्य मे शिशोः ॥१५॥

पितोवाच

पुरा बृहस्पतेर्भार्या तारा नाम यशस्विनी। चन्द्रेणाऽपहृता तात बलाद्बलवता तदा ॥१६॥
अपहृत्य तदानीं तां स्वगृहं विधिना गुरोः। भार्या सातुतयासार्द्धं रमितंतेन वै चिरम् ॥१७॥
तस्या गर्भोऽभवत्तात कालेन कियता तदा। ततो बृहस्पतिर्भार्यां निजां तां समयाचत ॥१८॥
चन्द्रमाश्च मदाविष्टो न ददौ बलदर्पितः। ततो बृहस्पतिस्तात देवैः शक्रादिभिः सह ॥१९॥
सन्नद्धो योद्‌धुमारेभे समं बलवदिन्दुना। सहायार्थं विधोः शुक्रः समं दितिजदानवैः ॥२०॥
समागतस्तदा तात तस्मिन्रणसमुद्यमे। ततस्तारानिमित्तं वै युद्धं प्रावर्त्ततोल्बणम् ॥२१॥
करिष्यते सर्वजनैः प्रधानं तारकामयम्। तस्मिन्युद्धे महाभीमे हता देवाश्च दानवाः ॥२२॥
न कस्यचिज्ज्यस्तात ! बभूव न पराजयः। ततः समागतो ब्रह्मा सन्निवार्योल्बणं रणम् ॥२३॥
ददौ बृहस्पतेस्तारां बोधयित्वा निशापतिम्। बृहस्पतिस्तुतांवीक्ष्यतारां गर्भवतीं तदा ॥
क्रुद्धो विरिञ्चेः प्रत्यक्षं समाजे देवदैत्ययोः ॥२४॥

बृहस्पतिरुवाच

शृणुष्व मामकं वाक्यं तारे तरललोचने !। कस्याऽयं ध्रियते गर्भो भवत्येन्दोर्ममाऽथवा ॥२५॥

पितोवाच

एवं मुहुर्मुहुः पृष्टा सा च लज्जावती शुभा ।
यदा न कथयामास किञ्चित्तात ! तदग्रतः ॥२६॥

पुत्र ने कहा— हे तात ! आप की यह अबद्ध बात कैसे हो सकती है ?॥१३॥ हे तात ! चन्द्रमा अनसूया के गर्भ से उत्पन्न हैं, बृहस्पति का पुत्र उनके वंश को बढ़ाने वाला कैसे हो सकता है ?॥१४॥ हे तात ! मेरे मन में बहुत बड़ा संशय है । मैं आपका पुत्र हूँ आप मेरे इस सन्देह को दूर करें ॥१५॥ **पिता ने कहा—** प्राचीन काल में चन्द्रमा ने बृहस्पति की यशस्विनी पत्नी तारा का बल पूर्वक अपहरण कर लिया और बृहस्पति की पत्नी चन्द्रमा के साथ दीर्घकाल तक रमण की ॥१६-१७॥ हे तात ! कुछ समय में वह गर्भवती हो गयी । उसके बाद बृहस्पति ने अपनी पत्नी को चन्द्रमा से माँगा ॥१८॥ मदमत्त तथा बलवान् चन्द्रमा ने उसे नहीं दिया । हे तात ! उसके बाद इन्द्र आदि देवताओं के साथ तैयार होकर बलवान् चन्द्रमा से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिए । और चन्द्रमा की सहायता करने के लिए शुक्राचार्य दैत्यों के साथ ॥१९-२०॥ उस युद्ध में आ गये । उस समय तारा के लिए भयङ्कर युद्ध हुआ ॥२१॥ हे तात! उसमें सभी लोगों के साथ उस भयङ्कर युद्ध में देवता और दानव मारे गये ॥२२॥ हे तात ! उसमें किसी का भी न तो विजय हुआ और न तो पराजय हुआ । उसके बाद ब्रह्मा जी उस युद्ध को रोक दिए ॥२३॥ उन्होंने चन्द्रमा को समझाकर तारा को बृहस्पति को दे दिया । बृहस्पति तारा को गर्भवती देखकर क्रुद्ध होकर ब्रह्माजी के सामने तथा देवों और दैत्यों के सामने ही कहे । तुम यह किसका गर्भ धारण की हो मेरा अथवा चन्द्रमा का ॥२४-२५॥ **पिता ने कहा—** इस तरह से बार-बार पूछे जाने पर लज्जित वह

तदाऽयं पश्यतां तेषां देवानां च सुरद्विषाम् ।
उत्पन्नस्तामुवाचेदं जननीं च रुषान्वितः ॥२७॥

बुध उवाच

कस्मन्न कथ्यते दुष्टे ! मदीयोजनकस्त्वया। लज्जांविहाय सम्पश्य शापस्य ममवैभवम् ॥२८॥

पितोवाच

इत्युक्त्वा जलमादाय यदा शप्तुं समुद्यतः । तदा सा मन्दमाहेदं पिता तव सुधाकरः ॥२९॥
इत्युक्तेच तयासाध्व्या चन्द्रःस्वतनयंबुधम्। अमुंगृहीत्वा सानन्दं जगामनिजमन्दिरम् ॥३०॥
बृहस्पतिस्तुतांतारांगृहीत्वास्वगृहं ययौ। ब्रह्मा देवाश्चदैत्याश्चतेऽपि स्वं स्वंगृहं ययुः॥३१॥
एतत्ते सर्वमाख्यातंयस्त्वं माम्परिपृष्टवान्। बृहस्पतिस्त्रियां जातोयथाऽयं चन्द्रवंशकृत् ॥३२॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य पितुर्वाक्यं जहासोच्चैमुनेःसुतः । उवाचचस्वपितरं कुण्डोऽयंस्वैरिणीसुतः ॥३३॥
उवाचचपिता पुत्रं हापुत्रेदंन भण्यताम्। सर्वसत्त्वान्तरज्ञोऽयं शप्स्यतित्वांत्वदुक्तवित् ॥३४॥

नारद उवाच

इत्युक्ते तेन मुनिना चान्द्रिर्ज्ञात्वातदीरितम्। सर्वेषां श्रृण्वतांप्राह मुनीनामिति भूपते ! ॥३५॥

बुध उवाच

श्रृण्वन्तुमुनिशार्दूला भवन्तोममभाषिताम्। यदिसाध्वथ वाऽसाधु विचारयतमाचिरम् ॥३६॥
भवतां तत्त्वबुद्धीनां दशनार्थमिहाऽगतः । कृतवान्कस्यचिन्नाऽहमपराधं मनागपि ॥३७॥
असूयया किमर्थं मामवजानन्ति दुर्मदाः। स्वजन्मसफलत्वाय भवद्दर्शनलालसः ॥३८॥

उनके सामने जब कुछ नहीं बोली तो ॥२६॥ उस समय यह उत्पन्न हुआ पुत्र देवताओं और दानवों के समक्ष क्रुद्ध होकर अपनी माता से कहा ॥२७॥ **बुध ने कहा—** हे दुष्टे ! तुम मेरे पिता को क्यों नहीं बतलाती हो ? लज्जा छोड़कर तुम मेरे शाप के ऐश्वर्य को देखो । **पिता ने कहा—** इस तरह से कहकर वह जल लेकर शाप देने के लिए तैयार हो गया उस समय उसने धीरे से कहा कि तुम्हारे पिता चन्द्रमा हैं ॥२८-२९॥ इस तरह से कहने पर चन्द्रमा अपने पुत्र इस बुध को लेकर आनन्द पूर्वक अपने घर चले गये ॥३०॥ बृहस्पति तारा को लेकर अपने घर गये, ब्रह्माजी, देवगण और दैत्य अपने-अपने घर चले गये॥३१॥ तुमने जो पूछा था किस तरह बृहस्पति की पत्नी के गर्भ से ये बुध जैसे उत्पन्न हुए उन सारी बातों को मैंने बतला दिया ॥३२॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से अपने पिता की बातों को सुनकर मुनि पुत्र ने जोर से हँसा और अपने पिता से कहा यह कुण्ड है और स्वेच्छाचारिणी का पुत्र है ॥३३॥ पिता ने पुत्र से कहा तुम इस बात को न कहो यह सभी जीवों के अन्त:करण को जानने वाले हैं, तुम्हारी बात को जानकर ये तुम्हे शाप दे देंगे ॥३४॥ **नारदजी ने कहा—** उस मुनि के इस तरह कहने पर चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उसकी वाणी को सुनकर सभी मुनियों को सुनकर कहा ॥३५॥ **बुध ने कहा—** हे श्रेष्ठ मुनियों ! आप लोग मेरी वाणी को सुनें आप लोग शीघ्र यह विचार करें कि मेरी वाणी यह उचित है अथवा अनुचित ॥३६॥ तत्त्वज्ञ आपलोगों का दर्शन करने के लिए आये हुए हम किसी का भी थोड़ा सा

स्वभाव एव दुष्टानां साधूनपि निरेनसः। उद्वेजयन्ति यत्क्वाऽपि मिष्टवाचः पिकाइव ॥३९॥
दुःस्वभावंन मुञ्चन्ति दुष्टाः सत्सङ्गमादपि। गङ्गाम्बुसङ्गमेनाऽपि क्षारतामिव नीरधिः ॥४०॥
अहोव्याधस्यदुष्टत्वं मुनिवृत्तीन्यतो मृगान् । वने मृगचरान्हन्ति निजगानविदोऽपिसः ॥४१॥
मत्स्यैः किमपराद्धंहि धीवराणांदुरात्मनाम् । यज्जले धरतस्तीर्थे घ्नन्ति तत्प्रकृतिर्हिंसा ॥४२॥
साधवोऽपिन मुञ्चन्ति स्वभावंदुष्टसङ्गताः । वृताविषाग्नियुक्सर्पैःश्रीखण्डाइवशीतताम् ॥४३॥
परोदयेऽपि नृत्यन्तिकिंस्वपक्षस्य साधवः। यथोन्मना मुनिवरा करिवाहस्य बर्हिणः ॥४४॥
धारयन्ति परार्थे हि निजान्तमपि साधवः। पितृदेवमनुष्याणामर्थे मत्पितृवत्कलाः ॥४५॥
निजोदयस्तुसाधूनां स्वच्छस्याऽऽनन्दहेतवः । यथाकुमुदपुष्पाणांमत्पितुःशीतलत्विषः ॥४६॥

नारद उवाच

इत्युदीर्य वचः क्रोधाद्बुधस्तं मुनिबालकम् ।
शशापेति त्वमप्याशु कुण्डोभवमहीतले ॥४७॥

एवमाकर्ण्यतं शापं पिता बुधविसर्जितम् । स्वपुत्रं पातयामास तदङ्घ्र्योःक्षम्यतामिति ॥४८॥

उवाच च न जानाति बालोऽयं तव वैभवम् ।
नोचितं क्रोधकरणमस्मिन्बाले भवादृशैः ॥४९॥
कुतश्चित्कारणात्साधोः क्रुद्धस्य प्रकृतिः क्षमा ।
हुताशनप्रतप्तस्य शीतत्वमिव चाम्बुनः ॥५०॥

अतःक्षमां विधायाऽऽशुविधेह्यस्मिन्ननुग्रहम् । बाले विवेकरहिते क्षमासाराहि साधवः ॥५१॥

भी अपराध नहीं किये ॥३७॥ अपना जन्म सफल करने के लिए तथा आपलोगों का दर्शन करने की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ । फिर भी असूया के कारण ये मदमत्त मेरा अपमान करते हैं ॥३८॥ दुष्टों का यह स्वभाव ही होता है कि वे निरपराध सज्जनों को भी उसी तरह उद्विग्न करते हैं जैसे मिठा बोलने वाली कोयल ॥३९॥ दुष्ट लोग सत्सङ्ग भी पाकर अपने दुःस्वभाव को उसी तरह नहीं त्यागते हैं जिस तरह गङ्गा जल की सङ्गति पाकर भी समुद्र अपने क्षारत्व को नहीं त्यागता है ॥४०॥ बहेलियों के दुष्ट स्वभाव को क्या कहा जाय ? मुनि के समान वन में रहने वाले मृगों को भी अपने गति को जानकर भी मारते हैं॥४१॥ मछलियों ने दुष्ट मल्लाहों का क्या बिगाड़ा हैं, तीर्थ के जल में जीने वाले उन सबों को वे सब अपनी प्रकृति के कारण मारते हैं ॥४२॥ दुष्टों के सङ्गति में पड़कर सज्जन भी उसी तरह से अपने स्वभाव को नहीं त्यागते हैं जिस तरह विष रूपी अग्नि के साथ रहकर भी चन्दन अपनी शीतलता को नहीं त्यागता है ॥४३॥ सज्जन पुरुष दूसरे पक्ष वाले की उन्नति होने पर उसी तरह से प्रसन्न होते हैं जिस तरह मेघ के उदय होने पर मयूर नाचने लगते है ॥४४॥ सज्जन पुरुष दूसरों के ही लिए सबकुछ उसी तरह धारण करते हैं जिस तरह मेरे पिता चन्द्रमा पितरों, मनुष्यों तथा देवताओं के लिए अपनी कलाओं को धारण करते हैं ॥४५॥ आनन्द देने के लिए वह कला होती है, जैसे मेरे पिता चन्द्रमा की शीतल किरणें कुमुद पुष्पों के विकसित करने के लिए ही होती हैं ॥४६॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहकर बुध ने क्रोध करके उस मुनि पुत्र को शीघ्र ही शाप दे दिया कि तुम पृथिवी पर कुण्ड होओ ॥४७॥ बुध के द्वारा दिये गये शाप को सुनकर पिता ने अपने पुत्र को उनके चरणों पर गिराया और कहा कि क्षमा करें ॥४८॥

नारद उवाच

इत्युक्तस्तेन मुनिना शीतांशुतनयस्तदा । क्रोधंतत्याज शान्तात्मा चक्रे तस्मिन्ननुग्रहम् ।।५२।।

बुध उवाच

अयं तव मुने ! बालः कुण्डत्वं प्राप्य भूतले ।
दत्तयज्ञोपवीतःसल्लँप्स्यते हि निजास्पदम् ।।५३।।

एवं स मुनिपुत्रो वै बुधशापान्नृपोत्तम !। कुण्डत्वमाप्तवान्भूमौ पितरो येन तारिताः ।।५४।।
इदं पवित्रं माहात्म्यं श्रुत्वा मधुवनस्य वै। समस्तमश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।५५।।

ये नरा धारयन्त्यस्य माहात्म्यस्याऽर्थमुत्तमम् ।
हृदये यत्र तत्तेषां विषयैर्नाऽभिभूयते ।।५६।।

येपठिष्यन्तिमाहात्म्यंश्रोष्यन्तिचमहाधियः । देहान्तेविष्णुसालोक्यंगमिष्यन्तिनसंशयः ।।५७।।

इदमनिशपवित्रं तुभ्यमावर्णितं मे मधुवनसुचरित्रं श्रीपतेः प्रीतिकारि ।
कलिकलुषकलापच्छेदने दक्षमक्षोत्पथगमननिरासे कारणं पुण्यमतौ ।।५८।।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये मधुवनवर्णनं नाम पञ्चादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२१५।।
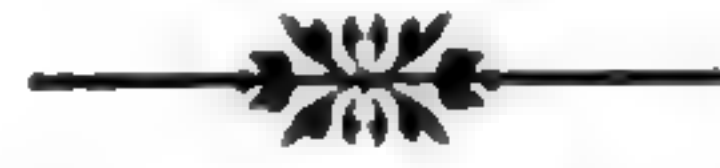
उन्होंने कहा यह बालक आपके ऐश्वर्य को नहीं जानता है आप जैसे लोगों को बालक पर क्रोध नहीं करना चाहिए ।।४९।। किसी कारणवश क्रुद्ध हुए पुरुषों की प्रकृति क्षमाशील उसी तरह से होती हैं जिस तरह अग्नि से तप्त हुए जल की प्रकृति ठंढी ही होती है ।।५०।। अतएव शीघ्र क्षमा करके आप इस पर अनुग्रह करें । विवेक रहित बालक पर सज्जन पुरुष क्षमा ही करते हैं ।।५१।। **नारदजी ने कहा—** मुनि के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर चन्द्रमा के पुत्र बुध शान्त होकर क्रोध को छोड़ दिए और उस पर अनुग्रह किए।।५२।। **बुध ने कहा—** हे मुने ! आपका यह पुत्र पृथिवी पर कुण्डत्व को प्राप्त करके यज्ञोपवीत हो जाने पर अपने आस्पद को प्राप्त कर लेगा ।।५३।। हे राजवर्य ! इसतरह से मुनि का पुत्र पृथिवी पर कुण्डत्व को प्राप्त कर लिया, उसीने अपने पितरों का उद्धार किया ।।५४।। मधुवन के इस पवित्र माहात्म्य को जो सुनता है वह मनुष्य अश्वमेध के समस्त फल को प्राप्त कर लेता है ।।५५।। जो मनुष्य इस माहात्म्य के उत्तम अर्थ को अपने हृदय में धारण करते हैं उसका हृदय कभी विषयों से अभिभूत नहीं होता है।।५६।। जो मनुष्य इस माहात्म्य को पढ़ेंगे और सुनेंगे वे मृत्यु के बाद भगवान् विष्णु के सालोक्य को निश्चित रूप से धारण करेंगे ।।५७।। इस तरह से सदा पवित्र रहने वाले तथा भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाले मधुवन के सुन्दर माहात्म्य को मैंने तुमको सुनाया । यह कलि के पापों को विनष्ट करने में निपुण और पुण्य शरीर में उनमार्गगामित्व को दूर करने वाला है ।।५८।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत मधुवन माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१५।।

दो सौ सोलहवाँ अध्याय

नारद उवाच

अतो मधुवनाद्राजन्नयं बदरिकाश्रमः। एकादशधनुर्मात्रे भूभागे व्यवतिष्ठति॥१॥
अस्य तीर्थवरस्याऽहंमहिमानंमहाद्भुतम्। वर्णयामि पुरस्तात्ते यं श्रुत्वा मुच्यतेभयात्॥२॥
एकस्तु मगधे राजन्देवदासो हि नामतः। ब्राह्मणः सत्यवादान्तः साक्षाद्धर्मइवाऽपरः॥३॥
निष्णातः सर्वविद्यासु बृहस्पतिरिवाऽपरः। हरिसन्तोषको भक्तया प्रह्लाद इव दैत्यराट्॥४॥
सस्त्रीकोऽपि स्मरं जेता पार्वत्याइववल्लभः।
सदाचारपरोनित्यं विश्वामित्रोमुनिर्यथा॥५॥
मगधेशगृहे मान्यो द्रोणवत्कुरुवेश्मनि। दानशीलः सुपात्रेषु बलिर्दैत्याधिपो यथा॥६॥
तस्य भार्योत्तमा नाम लक्ष्मीरिव गुणोत्तमा। पतिशूश्रूषणपरा यथा जनकनन्दिनी॥७॥
तस्यैकश्च सुतो राजन्नङ्गदो नाम बुद्धिमान्। एकापुत्री तु वलया नाम सल्लक्षणान्विता॥८॥
तयोर्ज्यायान्सुतः कन्या तस्माद्भूप! कनीयसी।
तयोर्यथाक्रमं चक्रेविवाहं स द्विजोत्तमः॥९॥
विवाहिता तु सा कन्या ययौ श्वशुरवेश्मनि।
शुभलक्षणसम्पन्ना कालेन कियता नृप!॥१०॥
अङ्गदस्तु महाबुद्धिर्गृहभारं बभार ह। पितृवत्सर्वशास्त्रज्ञो यौवनश्रीविभूषितः॥११॥

बदरिकाश्रम माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में देवदास नामक ब्राह्मण का अपने पुत्र के साथ संवाद, उसको राज्य का भार सौंपकर अपनी रानी के साथ मुनि वृत्ति का आचरण करने के लिए जाना, मार्ग के बीच में सिद्ध पुरुष द्वारा वैशिष्ट्य का प्रतिपादन

नारदजी ने कहा— हे राजन्! इस मधुवन से ग्यारह धनुष भू भाग में बदरिकाश्रम है॥१॥ इस श्रेष्ठ तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन मैं करता हूँ उसको सुनकर मनुष्य मुक्त हो जाता है॥२॥ मगध प्रदेश में एक देवदास नामक ब्राह्मण थे। वे सत्य बोलते थे, और धर्म के साक्षात् मूर्ति थे॥३॥ वे दूसरे बृहस्पति के समान सभी विद्याओं में निष्णात थे। वे श्रीहरि को सन्तुष्ट करने वाले साक्षात् दैत्यराज प्रह्लाद के समान थे॥४॥ पत्नी के रहने पर भी भगवान् शिवजी के समान काम पर विजय प्राप्त किये थे। वे सदा मुनि विश्वामित्र के समान सदा सदाचार का पालन करते थे॥५॥ वे कौरवों के गृह में द्रोणाचार्य के समान मगधराज के यहाँ सम्मानित थे। वे सुपात्रों को राजा बलि के समान दान देते रहते थे॥६॥ उनकी पत्नी का नाम उत्तमा था और वह लक्ष्मीजी के समान उत्तम गुणों से सम्पन्न थी। वह जनकनन्दिनी के समान अपने पति की सेवा में लगी रहती थी॥७॥ हे राजन्! उस ब्राह्मण का एक बुद्धिमान पुत्र था और उसका नाम अङ्गद था। उनकी बलया नाम की पुत्री थी और वह अच्छे लक्षणों से युक्त थी॥८॥ हे राजन्! उन दोनों में पुत्र बड़ा था और कन्या छोटी थी। राजन्! उन्होंने उन दोनों का क्रमशः विवाह कर दिया॥९॥ विवाहित होकर वह कन्या अपने श्वशुर के घर में चली गयी। वह कुछ समय में शुभ लक्षणों से सम्पन्न हो गयी॥१०॥ महाबुद्धिमान अङ्गद ने घर के भार को सम्भाल लिया वह अपने पिता के ही

एकदा स तु विप्रेन्द्रः पुत्रं तं गृहकर्मणि। क्षमं विज्ञाय राजेन्द्र ! निजभार्यामुवाच ह ॥१२॥

देवदास उवाच

समाकर्णय मे साध्वि ! कालेऽस्मिन्नुचितं वचः ।
ततो यदुचितं भद्रे ! तदह्नायविधीयताम् ॥१३॥

एषा जरा समायाता शरीरं पातयिष्यति। अङ्गान्याकम्पयन्तीव वात्या पक्वफलं यथा ॥१४॥
अक्ष्णामपि द्युतिं मन्दां नूनमेषा करिष्यति । नक्षत्राणां सचन्द्राणां प्रातर्वेलेव सुव्रते ! ॥१५॥
स्खलतोः पादयोर्मन्दां गतिं प्रतिपदक्रमम्। करिष्यति जरा ह्येषा यथा निगडशृङ्खला ॥१६॥

तस्मादेषा जरा यावन्न प्रौढा जायते शुभे ! ।
आत्मनस्तावदावाभ्यां करणीयं हि तं द्रुतम् ॥१७॥

गृहपुत्रसुहृद्भ्रातृपितरो हि विनश्वराः। द्रव्यादिकं च सुभगे ! तेषु सज्जेत नो बुधः ॥१८॥
अतोऽहं सर्वतीर्थेषु पर्यटन्विजितेन्द्रियः। वानप्रस्थेन विधिना वीक्षिष्ये हरिमीश्वरम् ॥१९॥
ततः संन्यासमादाय क्वचित्तीर्थोत्तमे शुभे। प्रारब्धकर्मणामन्ते त्यक्ष्यामि स्वं कलेवरम् ॥२०॥

एवं चेत्प्राणमुक्तः स्यान्मुक्तिः स्यान्नऽत्र संशयः ।
मम श्रीपतिपादाब्जसम्यक्स्थापितचेतसः ॥२१॥

उत्तमोवाच

पुमान्वा स्त्रीजनो वाऽपि को रमेत विनश्वरे ।
संसारेमाधवंमुत्तवानित्याश्रममचेतनः ॥२२॥
तस्मान्मामपि जीवेश ! त्वत्पादाम्बुजसेविनीम् ।
नीत्वा स्वसङ्गमे तावद्विश्वाब्धेराशु तारय ॥२३॥

समान सभी शास्त्रों का ज्ञाता और जवानी की शोभा से अलंकृत हो गया ॥११॥ एक बार वे विप्र श्रेष्ठ अपने पुत्र को गृह कार्यों में समर्थ जानकर अपनी पत्नी से कहे ॥१२॥ **देवदास ने कहा—** हे साध्वि ! इस समय के लिए उचित मेरी बातों को सुनो । उसके बाद जो उचित हो उसको शीघ्र करो ॥१३॥ यह बुढ़ापा आ गयी है यह शरीर को विनष्ट कर देगी । जिस तरह वायु पके हुए फल को कँपाती है उसी तरह से यह शरीर को कँपा रही है ॥१४॥ यह निश्चित रूप से आँखों की ज्योति को उसी तरह कम कर देगी जिस तरह प्रात:काल में तारों की चमक कम हो जाती है ॥१५॥ प्रत्येक पग में लड़खाड़ाते हुए पैरों की गति को भी यह उसी तरह मन्द कर देगी जिस तरह बेड़ी का बन्धन पैरों की गति का कम कर देता है ॥१६॥ अतएव हे शुभे ! जब तक यह बुढ़ापा बहुत अधिक नहीं बढ़ जाती है उससे पहले हमलोगों को शीघ्रता से आत्मकल्याण कर लेना चाहिए ॥१७॥ गृह, पुत्र, मित्र, भाई तथा पिता ये सब विनश्वर हैं। हे शुभे ! द्रव्य आदि भी उसी तरह के हैं अतएव विद्वान् को उसमें आसक्त नहीं होना चाहिए ॥१८॥ अतएव मैं जितेन्द्रिय होकर सभी तीर्थों में घूमते हुए वानप्रस्थ विधि से श्रीहरि का दर्शन करूँगा ॥१९॥ हे शुभे ! उसके पश्चात् किसी उत्तम तीर्थ में संन्यास ग्रहण करके प्रारब्ध, कर्मों के समाप्त हो जाने पर अपने शरीर का त्याग करूँगा ॥२०॥ यदि इस तरह से प्राणों का परित्याग किया जाय तो निश्चित रूप से श्रीपति के चरण कमलों में मन लगये हुए मेरी मुक्ति होगी ॥२१॥ **उत्तमा ने कहा—** चाहे कोई स्त्री

पुत्रोऽयमङ्गदः श्रीमान्गृहभारस्य धारणे। समर्थोऽभूत्स्नुषा चेयं कल्याणी तत्सहायिनी॥२४॥
पुत्रे समर्थे यो मूढः पुरुषःस्त्रीजनोऽथवा। नविरज्येतयो मूढो वञ्चितः श्रेयसा हि सः ॥२५॥

नारद उवाच

एवमन्योन्यमामन्त्र्य दम्पती तौ रहस्तदा। पुत्रमाहूय कथयाञ्चक्रतुस्त्विदमङ्गदम् ॥२६॥

दम्पतीऊचतुः

जरागमश्लथद्गात्रावावां विद्धि त्वमङ्गद !। स्वश्रेयसे यतिष्यावः कुत्रचित्पुण्यभूतले॥२७॥
हरेराराधनं भक्त्या श्रेयः परममुच्यते। तदर्थमेव निष्कामा यतन्ते साधवो भुवि ॥२८॥
विषयेषु न संसक्तिः समत्वं सर्वजन्तुषु। येषां हर्षविषादौ च न जातु सुखदुःखयोः॥२९॥
त एव साधवो लोके गोविन्दपदसेविनः। तेषां दर्शनमात्रेण कृतार्थो जायते नरः ॥३०॥
तीर्थानि पर्यटन्धीरस्तद्दर्शनसमुत्सुकः। भाग्योदयेन केनाऽपि तद्दर्शनमवाप्नुयात्॥३१॥
तस्माद्भारं कुटुम्बस्य भुजयोर्युगदीर्घयोः। आरोप्य नौ विसर्जस्व तीर्थयात्रार्थमङ्गद !॥३२॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कदाचित्साधुदर्शनम्। भवेद्यदि तदा पुत्र ! द्वयोर्नौस्यात्कृतार्थता॥३३॥

नारद उवाच

इत्युक्तः पितृभ्यां पुत्रः साधुवादमवादयत् ॥३४॥

अङ्गद उवाच

समस्तकुलनिस्तारो भवद्भ्यामयमीरितः। आशु मामवजानीतं किंकरोमि भवद्धितम् ॥३५॥

हो अथवा पुरुष श्रहरि को त्यागकर अनित्य संसार में कौन अपने मन को लगाये ॥२२॥ अतएव हे नाथ! आपके चरणों की सेवा करने वाली मुझको भी अपने सङ्ग ले जाकर आप शीघ्र ही मुझे ही इस संसार सागर से पार करें ॥२३॥ यह अङ्गद नामक पुत्र घर के भार को धारण करने में समर्थ हो गया है और यह कल्याणी पुत्र वधू भी उसकी सहायिका है ॥२४॥ पुत्र के समर्थ हो जाने पर जो मूर्ख पुरुष अथवा स्त्री संसार से विरक्त नहीं होता है वह कल्याण से वञ्चित रह जाता है ॥२५॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से परस्पर में विचार करके पति-पत्नी एकान्त में पुत्र को बुलाकर अङ्गद से यह कहने लगे ॥२६॥ **पति-पत्नी ने कहा—** हे अङ्गद यह जानो कि बुढ़ापे के आने से हम दोनों शिथिल शरीर वाले हो गये हैं। अतएव हमलोग आत्म कल्याण के लिए किसी पवित्र भूमि पर प्रयास करेंगे ॥२७॥ श्रीहरि की भक्ति पूर्वक आराधना करने से परम कल्याण कहा गया है। उसी के लिए पृथिवी पर साधुजन प्रयास करते हैं॥२८॥ विषयों में आसक्ति से रहित होकर तथा सभी जीवों में समत्व की बुद्धि करके जिन लोगों को सुख तथा दुःख में न तो हर्ष होता है और न विषाद ॥२९॥ वे ही लोक में साधु पुरुष हैं और भगवान् गोविन्द के चरणों की सेवा करने वाले हैं। ऐसे लोगों का दर्शन कर लेने मात्र से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ॥३०॥ धीर पुरुष तीर्थों में भ्रमण करते हुए ऐसे लोगों के दर्शन के लिए उत्सुक रहते हैं। जिससे कि भाग्योदय के कारण ऐसे महापुरुष का दर्शन हो जाय ॥३१॥ अतएव हे अङ्गद अपनी दोनों दीर्घ भुजाओं पर कुटुम्ब का भार धारण करके हम दोनों को तीर्थ यात्रा करने के लिए छोड़ दो ॥३२॥ हे पुत्र ! तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में यदि हम दोनों को कदाचित् साधु पुरुष का दर्शन हो जाय तो हम दोनों का जीवन कृतार्थ हो जाय ॥३३॥ **नारदजी ने कहा—** अपने माता-पिता के इस तरह कहने पर पुत्र ने उनका

अहमाज्ञाकरो नित्यं युवयोः पूज्यपादयोः। पुण्यतीर्थेषु दानार्थं गृहीतं धनमुत्तमम् ॥
नयतं मामपि प्रेष्यं सेवायै निजसङ्गमम् ॥३६॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा धनमादाय गत्वा क्रोशद्वयं तयोः। सङ्गे गृहमगात्ताभ्यां कथञ्चित्संनिवर्तितः ॥३७॥
तौ गृहीत्वा धनं किञ्चिद्विष्णुर्नौप्रीयतामिति। कन्दमूलफलाहारौतत्रोषित्वादिनत्रयम् ॥३८॥
यदा तस्मात्प्रचलितौ दम्पती जगतीपते !। तदामार्गे महान्कश्चित्सिद्धःसम्मिलितस्तयो ॥३९॥
ताभ्यामुभाभ्यां शिरसा वन्दितः स उपाविशत् ।
उवविष्टस्तदा ताभ्यामिति पृष्टः स सिद्धराट् ॥
को भवान्कुत आयातो किञ्चिकीर्षति तद्वद ॥४०॥

सिद्ध उवाच

सिद्धोऽहं तापसश्रेष्ठ ! कल्पग्रामे गृहं मम ।
इन्द्रप्रस्थात्समायातो दृष्टं तत्र महाद्भुतम् ॥४१॥
तत्राऽस्ति कपिलः सिद्धो नारायणसमो गुणैः ।
तस्मादहं पठन्साङ्ख्यं निवसामि तदाश्रमे ॥४२॥
एकदा मद्‌गुरुः श्रीमान्स्वाश्रमत्कपिलो ययौ ।
बदर्याख्यंमहापुण्यं स्नातुं सयमुनाजले ॥४३॥
तत्रैकोऽरण्यमहिषस्तृषार्तो यमुनाजले। प्रविष्टो ज्जलमापीय पूर्वजन्मस्वमस्मरत् ॥४४॥

साधुवाद किया ॥३४॥ **अङ्गद ने कहा—** आप दोनों के द्वारा यह समस्त वंश का उद्धार बतलाया गया है । आप दोनों शीघ्र हमको छोड़ दें आपलोगों का मैं कौन सा कल्याण कर सकता हूँ ?॥३५॥ आप दोनों पूज्यपादों की आज्ञा का पालन करने वाला हूँ । पवित्र तीर्थों में दान करने के लिए आप दोनों अच्छी तरह से धन ले लें । मैं आपलोगों का भृत्य हूँ अपनी सेवा के लिए मुझे भी साथ ले लें ॥३६॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से धन लेकर उन दोनों के साथ दो कोश तक गया उन दोनों के द्वारा किसी प्रकार से लौटाये जाने पर वह घर आया ॥३७॥ वे दोनों कुछ धन लेकर कहे कि भगवान् विष्णु प्रसन्न हों । कन्द मूल का फलाहार करके वहाँ पर तीन दिन रहकर ॥३८॥ हे जगतीपते राजन् ! जब वहाँ से पति-पत्नी चले तो रास्ते में उन दोनों को कोई महान् सिद्ध मिला ॥३९॥ उन दोनों के द्वारा शिर झुकाकर प्रार्थना करने पर वे सिद्ध बैठ गये । उनके बैठ जाने पर वे दोनों उन सिद्धराज से पूछे । आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं और क्या करना चाहते हैं ?॥४०॥ **सिद्ध ने कहा—** हे श्रेष्ठ तपस्वी ! मैं सिद्ध हूँ कल्याण ग्राम में घर है मैं इन्द्रप्रस्थ से आया हूँ वहाँ पर मैंने अद्भुत वस्तु को देखा ॥४१॥ वहाँ पर भगवान् नारायण के समान गुण वाले कपिल नामक सिद्ध हैं उनसे सांख्य शास्त्र पढ़ते हुए उनके आश्रम में रहता हूँ ॥४२॥ एक बार मेरे गुरु श्रीमान् कपिल बदरी नामक महान् पवित्र तीर्थ में यमुना में स्नान करने के लिए गये ॥४३॥ वहाँ पर एक बनैला भैंसा प्यास से व्याकुल होकर यमुनाजी के जल में प्रवेश किया । वह जल पीकर अपने पूर्व जन्म को याद किया ॥४४॥ वह वन में उत्पन्न भैंसा अपने पूर्व जन्म

स्मृत्वा स पूर्वकर्माणि महिषोऽरण्यसम्भवः ।
जलान्निःसृत्य तरसाववन्दे कपिलंगुरुम् ॥४५॥
उवाच नरवाचा च मयि शृण्वति तापस ! ।
यत्तते कथयाम्यद्य शृणु त्वं परमाद्भुतम् ॥४६॥

महिष उवाच

भोभो विष्णुकलाभूत ! सिद्धानां कपिलेश्वर ! ।
किंनामेदं महातीर्थं नताय कथयस्व मे ॥४७॥
अस्य तीर्थवरस्याऽम्बुस्पर्शाद्वैपूर्वजन्मनि । जातास्मृतिर्महाभाग ! पापस्याऽपिचकर्मणः ॥४८॥

सिद्ध उवाच

एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं महिषस्य महामुनिः । जानन्नपि च तद्वृत्तं विहस्येदमुवाच ह ॥४९॥

कपिल उवाच

भवान्महिषशार्दूल ! क आसीत्पूर्वजन्मनि । तत्रकिंकृतवान्कर्म योनिंयेनाऽऽपमाहिषीम्॥५०॥

महिष उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल ! वृत्तं वै पूर्वजन्मनः। अहमासं पुरा राजा कलिङ्गाधिपतिर्बली॥५१॥
स्वांपरांनैव जानामि योषितं काममोहितः। वणिजांसाधुवृत्तीनां धनहर्ता निरेनसाम्॥५२॥
निशीथे नगरे राजन्गतभीः पर्यटाम्यहम्। सुन्दरीभिः परस्त्रीभिः क्रीडितुं रतिलीलया॥५३॥
यद्गृहे सुन्दरींनारीं पश्यामि स्मरमोहितः। वसामिनिशि तत्राऽहंक्षेत्रेमध्ये गजोयथा ॥५४॥
क्रीडित्वातत्र निशङ्कं धनंहत्वा च तद्गृहात् ।
स्वगृहं पुनरायामि कियद्भिर्वासरैरहम् ॥५५॥

के कर्मों को याद करके शीघ्रता से जल से निकलकर कपिल गुरु की वन्दना किया ॥४५॥ हे तापस ! मुझे सुनते हुए वह मनुष्य की वाणी में बोला । उसने जोर कहा उस अद्भुत बात को मैं कह रहा हूँ उसे तुम सुनो ॥४६॥ **महर्षि ने कहा—** हे भगवन् ! विष्णु की कला स्वरूप सिद्धों में श्रेष्ठ कपिलेश्वर आप मुझे नम्र को बतलायें कि इस महान् तीर्थ का नाम क्या है ?॥४७॥ हे महाभाग ! इस श्रेष्ठ तीर्थ के जल का स्पर्श हो जाने मात्र से मुझे पूर्वजन्म के पुण्य तथा पाप कर्मों की स्मृति हो गयी है ॥४८॥ **सिद्ध ने कहा—** उस भैंसे के इस तरह के वाक्य को सुनकर वे महामुनि उसके वृत्तान्त को जानते हुए भी हँसकर कहे ॥४९॥ **कपिल महर्षि ने कहा—** हे महिष श्रेष्ठ ! आप पूर्व जन्म में कौन थे ? उस जन्म में आपने कौन सा कर्म किया जिसके कारण आप महिष की योनि प्राप्त किए ॥५०॥ **महिष ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ! आप मेरे पूर्व जन्म के वृत्तान्त को सुनें । पूर्वजन्म में मैं बलवान कलिङ्ग देश का राजा था ॥५१॥ काम से मोहित मैं अपनी अथवा परायी स्त्री को नहीं समझता था । सज्जन वृत्ति वाले तथा निरापराध बनियों का मैं धन छिन लेता था ॥५२॥ हे राजन् ! आधी रात को मैं निर्भय होकर नगर में सुन्दरी दुसरों की स्त्री के साथ रतिकर्म करने के लिए घूमता था ॥५३॥ काम से मोहित मैं जिस घर में सुन्दरी स्त्री को देखता था वहाँ पर मैं रात्रि में उसी तरह रहता था जैसे कोई हाथी किसी क्षेत्र में रहता है ॥५४॥ वहाँ

उपविष्टः सभामध्ये दिवा द्वौ पुरबालकौ। अनार्यबाहुयुद्धेन योधयामि निजाग्रतः ॥५६॥

नियोजायति यो बालस्तं मत्वा धनिनं बलात् ।
गृह्णामि तत्पितुर्वित्तं स्वल्पं वा भूरि वा मुने ! ॥५७॥

यः पराजयते तत्र कातरत्वान्महामुने ! । नाऽयमर्हः पुरे स्थातुं ममेति विनिहन्मि तम्॥५८॥
एवम्मय्यधमाचारे वर्त्तमान महीपतौ। पौरा नगरमुत्सृज्य प्रययुर्विषयान्तरम्॥५९॥
एकदा मुनिशार्दूलो दुर्वासाः पर्यटन्महीम्। पुरे मम समायातो दुर्वासा रुद्रसम्भवः ॥६०॥

मिलित्वा नागराः सर्वे तदा जग्मुस्तदन्तिके ।
प्रणिपत्येदमाहुस्तं स्वदुःखज्ञापकं वचः ॥६१॥

पौराऊचुः

आत्रेय मुनिशार्दूलं कृपां कुरु कृपानिधे !। अधर्मनिरतं भूपमेनं धर्मेण योजय ॥६२॥
भाग्योदयेन केनाऽपि भवानस्माकमागतः। उद्वेलाद्भूपदुःखाब्धेरस्मांस्तारय पोतवत्॥६३॥
धनं लोभयता तेन हृतं नो मुनिपुङ्गव ! । दूषिताश्चस्त्रियः साध्व्यः सकामेन निरेनसाम्॥६४॥
दशवत्सरदेशीया बहवः शिशवो हताः। अगण्यवैगुण्यनिधिरेष भूपो महामुने ! ॥६५॥

महिष उवाच

एवमाकर्ण्य पौराणां वचः स मुनिरत्रिजः ।
दण्ड्योऽयमिति सञ्चिन्त्य सभास्थं मामथाऽऽययौ ॥६६॥

दृष्ट्वा हि तं समायान्तमवधूतं दिगम्बरम्। आवारयमहं भृत्यैर्नेत्ययं दर्शनोचितः॥६७॥

पर निःशङ्क होकर रमण करके उस घर से धन लेकर कुछ दिनों में मैं अपने घर आता था ॥५५॥ सभा में बैठकर मैं दो अनार्य बालकों से अपने सामने बाहु युद्ध करवाता था ॥५६॥ जो बालक दूसरे को हरा देता था उसको बलवान मानकर उसके पिता का धन मैं ले लेता था चाहे वह कम हो या अधिक ॥५७॥ जो पराजित हो जाता था उसको कातर मानकर मैं यहाँ मेरे नगर में रहने योग्य नहीं यह समझकर मार देता था ॥५८॥ इस तरह के अधम आचरण करने वाले मेरे राज्य काल में नागरिक मेरे नगर को छोड़कर दूसरे देश में चले गये ॥५९॥ एक बार मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासा मुनि पृथिवी पर घूमते हुए रुद्र के अंश से उत्पन्न वे मेरे नगर में आये ॥६०॥ सभी नागरिक मिलकर उनके पास गये उनको प्रणाम करके वे अपने दुःख के कारण को बतलाये ॥६१॥ **नागरिकों ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ आत्रेय ! हे कृपासागर ! आप कृपा करें । सदा अधर्म करने वाले इस राजा को आप धार्मिक बना दें ॥६२॥ हमलोगों के किस भाग्योदय के कारण आप आयें हैं । अत्यधिक दुख देने वाले इस दुःख सागर राजा से आप नौका के समान हमें तार दें ॥६३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! धन के लोभी इस राजा ने हम लोगों के धन को ले लिया है । इसने निरपराध साध्वी स्त्रियों को कामी होने के कारण दूषित कर दिया है ॥६४॥ इसने दश वर्ष के बहुत से बच्चों को मार दिया है । हे मुने ! यह असंख्य दोषों का खजाना है ॥६५॥ **महिष ने कहा—** इस तरह से नागरिकों के वचन को सुनकर वे अत्रि पुत्र मुनि यह दण्ड देने के योग्य है इस तरह से विचार करके मेरी सभा में आये ॥६६॥ उन अवधूत तथा दिगम्बर को देखकर मैंने उनको नौकरों से यह कहकर रोकवा दिया कि

रेणुना सर्वलिप्ताङ्गो महिषाकृतिरेव वै। वार्यतामितिपार्श्वस्थान्बहुशोऽहं समादिशम्॥६८॥
ततस्ते तरसा भृत्यास्तं वारयितुमभ्यगुः। हुङ्कारेणैव तान्सर्वान्स चक्रेभस्मसान्मुनिः ॥६९॥
यज्ञाश्वंरक्षतःस्वस्य पितुस्त्वमिवसागरान्। सर्वशस्तानहंभृत्यान्भस्मीभूतांस्तुतेजसा ॥७०॥
आलक्ष्य सहसोत्थाय गृहमावेष्टमुद्यतः। रेरेपापेति सम्बोध्य ततो मां मुनिसत्तमः॥७१॥
शशापेति महारण्ये महिषो भव साम्प्रतम्। तेनाऽहमिति शप्तो वै मुत्तवा राजतनुं तदा ॥७२॥
मरुदेशे महारण्ये जातोऽहं महिषो मुने !। चिरकालमहं तत्र न्वयसं मुनिपुङ्गव !॥७३॥
अत्राऽऽगतस्तु केनाऽहं पुण्येन श्रूयतां मुने !।
वापीकूपसरस्यस्तु बहवः कारिता मया ॥७४॥
सहकारादिवृक्षाणामारोपो विहितः पथि। पुण्येनाऽनेन मे देव ! पातो न नरकेऽभवत् ॥७५॥
तीर्थस्य च मया प्राप्तो ह्यमुष्यजलसङ्गमः। एतत्ते कथितं सर्वं पूर्वजन्मशुभाशुभम्॥७६॥
येन तीर्थमया प्राप्तमेतद्योनिश्चामहिषी। अस्य तीर्थवरस्याऽम्बुस्पर्शाज्जातिस्मरोऽभवम् ॥
कथमस्या असद्योनेर्मुक्तिः स्यात्तन्मुने ! वद ॥७७॥

कपिल उवाच

एतत्तीर्थं महापुण्यं बदर्याख्यं रमापतेः। अत्र स्नाहि द्रुतं कामं स्वचित्तस्थं हि लप्स्यसे॥७८॥

सिद्ध उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महिषस्य महामुने !। तत्र तीर्थे वरे स्नातुं प्राविशत्स्वर्गवाञ्छया ॥७९॥
स्नात्वा स्वर्गेच्छया तस्मिञ्जलात्तटमुपागते। तत्क्षणं गजमारुह्यशक्रःस्वर्गात्समाययौ ॥८०॥

ये देखने योग्य नहीं हैं ॥६७॥ इनके सम्पूर्ण अङ्ग में धूल लगी है ये भैंसे के आकार के हैं। इनको रोको यह कहकर अपने लोगों से उनको रोका ॥६८॥ उसके बाद वे भृत्य वेग पूर्वक उनके पास गये। वे मुनि अपने हुङ्कार से ही उन सबों को भस्म कर दिए ॥६९॥ पिता के समान यज्ञ के घोड़े की रक्षा करने वाले उन सभी प्रशस्त भृत्यों को उनके तेज से भस्म हुए ॥७०॥ देखकर जल्दी से उठकर घर में जाने के लिए तैयार मुझको अरे पापी ! इस तरह से मुझको सम्बोधित करके वे मुनिश्रेष्ठ ॥७१॥ शाप दे दिए कि तुम महान वन में महिष हो जाओ। उनके द्वारा अभिशप्त मैं मनुष्य शरीर त्याग कर महिष हो गया। हे मुने! मैं वहा दीर्घ काल तक निवास किया ॥७२-७३॥ हे मुने ! यहाँ पर आकर मैं किसी पुण्य के कारण बहुत सी बावली, कूप और सरोवरों को बनवाया। रास्ते में मैं आम आदि के वृक्षों को लगवाया। हे देव ! इसी पुण्य के कारण मैं नरक में नहीं गया ॥७४-७५॥ मैं इस तीर्थ के सङ्गम को प्राप्त किया। इस तरह से मैंने पूर्व जन्म के पुण्यों तथा पापों को आपको सुनाया ॥७६॥ जिसके कारण मैं इस महिष की योनि में चला गया। इस श्रेष्ठ तीर्थ के जल का स्पर्श हो जाने से मैं जातिस्मर हो गया हूँ। हे मुने ! आप मुझे बतलायें कि मेरी इस असद्योनि से कैसे मुक्ति होगी ॥७७॥ **कपिल महर्षि ने कहा—** यह भगवान् लक्ष्मी पति का अत्यन्त पवित्र बदरी नामक तीर्थ है। यहाँ पर तुम स्नान करो शीघ्र ही अपने मनो वांछित फल को तुम प्राप्त करोगे ॥७८॥ **सिद्ध ने कहा—** यह सुनकर उस महामुनि की वाणी सुनकर वह महिष उस तीर्थ में स्नान करने के लिए स्वर्ग प्राप्ति की कामना से प्रवेश किया ॥७९॥ स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से स्नान करके वह तट पर आया। उसी क्षण इन्द्र हाथी पर चढ़कर स्वर्ग से आये ॥८०॥ **इन्द्र ने**

इन्द्र उवाच

हे कलिङ्गपते नैजं देहं जहि हि माहिषम् । प्रतिलभ्य वपुर्दिव्यं सममायाहि मे दिवम् ॥
त्वया स्वर्गेच्छया स्नातं प्राप्तं तत्ते सुरास्पदम् ॥८१॥

सिद्ध उवाच

इत्युक्तःस तदा तेन त्यत्वा देहं तु माहिषम् ।
दिव्यं वपुःसमासाद्यगजराजं समारुहत् ॥८२॥
गजराजं समारुह्य स्थित्वा च गगनेक्षणम् । प्रणम्य शिरसादेवं तुष्टाव कपिलं मुनिम् ॥८३॥

कलिङ्ग उवाच

नमस्ते परमेशान ! केवलज्ञानहेतवे । सेतवे वेदविद्यानां रिपवे तद्विरोधिनाम् ॥८४॥
त्वत्तः प्रवृत्तिः साङ्ख्यस्य जाता तत्त्वावबोधिनी ।
देहिनां मायया ग्रस्तचेतसामपि ते विभो ! ॥८५॥
येवेदविहितंत्यक्त्वावर्तन्तेस्वेच्छयामुने ! । तान्दण्डसिदण्ड्यांस्त्वंमज्जयंस्तिर्यगादिषु ॥८६॥
इन्द्रादयो लोकपालाः सर्वे त्वदधिकारिणः ।
त्वदिच्छामनुवर्तन्ते भीता दण्डकृतोहिते ॥८७॥
त्रयीधर्मविरोद्धारः पूर्वदेवा युगे युगे। अवतीर्य विनाशाय कृताःसर्वातमना त्वया ॥८८॥
ये ये त्वया हता नाथ ! चक्रिणा त्रिदशारयः ।
ते ते तमोमयीं हित्वा तनुंवैकुण्ठमभ्यगुः ॥८९॥
आज्ञापया जगन्नाथ गन्तुं मां त्रिदशालयम्। अनुगृह्णीष्व शक्रं च नमन्तं वीक्षणामृतैः ॥९०॥
प्रसादात्तवदेवेश ! बदर्याख्यस्यच प्रभो ! । तीर्थस्य स्वतनुं हित्वा तामसी सात्त्विकींगतः ॥९१॥
इन्द्रेणसह नागेन्द्रमारुह्य त्रिदशालयम् । गच्छामि स्वेच्छया नाथ ! कृपातस्ते कृपानिधे॥९२॥

कहा— हे कलिङ्गपते ! तुम अपने भैंसे के शरीर को त्याग दो और दिव्य शरीर प्राप्त करके मेरे स्वर्ग में आओ तुमने स्वर्ग की इच्छा से स्नान किया है अतएव तुमने देवता का स्थान प्राप्त किया है ॥८१॥ **सिद्ध ने कहा—** इन्द्र के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर अपने भैंसे के शरीर को त्यागकर दिव्य शरीर प्राप्त करके गजराज पर चढ़ा ॥८२॥ गजराज पर चढ़कर क्षणभर आकाश में रुककर शिर झुकाकार उसने कपिल मुनि का प्रणाम करके उनकी स्तुति की ॥८३॥ हे परमेश ! मैं आपको मैं नमस्कार करता हूँ केवल ज्ञान के कारण स्वरूप तथा वेद विद्या के सेतु रूप तथा वेद विरोधियों के शत्रु आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे विभोमाया ! से जिनका चित्त ग्रस्त है ऐसे शरीर धारियों को तत्त्वों का ज्ञान करने वाली सांख्य शास्त्र की प्रवृत्ति आप से हुयी हैं ॥८४-८५॥ हे मुने ! जो लोग वेद विहित का परित्याग करके अपनी इच्छानुसार रहते हैं उन दण्ड्यों को आप दण्डित करते हैं और उन सबों को आप तिर्यक् आदि योनियों में डाल देते हैं ॥८६॥ इन्द्र इत्यादि सभी लोकपाल आपके अधिकारी हैं । वे सव दण्डित करने वाले आपसे भयभीत होकर आपकी इच्छा का अनुवर्तन करते हैं ॥८७॥ त्रयी धर्म का विरोध करने वाले पूर्वदेव प्रत्येक युग में अवतार लेकर आपने उन सबों का आपने विनाश किया है ॥८८॥ हे चक्रधारी भगवन् ! आपने जिन देवताओं के शत्रुओं को मार दिया वे सभी अपने तमोगुणी शरीर को त्याग कर वैकुण्ठ चले गये ॥८९॥ हे जगन्नाथ आप मुझे स्वर्ग जाने की आज्ञा दें । आप नमस्कार करने वाले इन्द्र को भी अपने अमृतमय नेत्रों से देखकर अनुगृहीत करें ॥९०॥ हे देवेश ! हे प्रभो ! आपकी तथा इस बदरी नामक तीर्थ की कृपा से आपने तामसी शरीर को त्यागकर मैंने सात्विक शरीर को प्राप्त कर लिया है ॥९१॥ हे नाथ ! अपनी

सिद्ध उवाच

इत्यभिष्टूय देवेशं कपिलं स कलिङ्गपः । नमस्कृत्य च तत्पादौ जगाम त्रिदशालयम् ॥९३॥
एतन्मयाऽद्भुतं विप्र दृष्टं बदरिकाश्रमे । गुरुंशुश्रूषमाणेन पापस्याऽपि विमोक्षणम् ॥९४॥
नाऽतःपरं त्रिलोक्यान्तु तीर्थं सर्वार्थदायकम् ।
याहितत्रैव सस्त्रीकः परंश्रेयोयदिच्छसि ॥९५॥
अहंयामि समानेतुं बदर्याख्यं गृहान्द्विज ! । बृद्धं स्वकीयपितरं निःस्पृहं मोक्षकामुकम् ॥९६॥

नारद उवाच

इतितीर्थवरस्याऽस्य बदर्याख्यस्य भूपते ! । महिमानं समुत्कीर्त्यस सिद्धः स्वगृहंययौ ॥९७॥
अथ कालेन कियता सद्विजःसह भार्यया । तीर्थानि पर्यटन्धीर इन्द्रप्रस्थेऽभ्यगादिह ॥९८॥
तेनैव वपुषा राजन्नीतवांस्तौ निजालयम् । ससिद्धोऽपि स्वपितरं गृहादानीय सत्वरः ॥९९॥
तत्रैव स्नापयामास तत्तीर्थे मोक्षकामुकम् । सोऽपि श्रीवासुदेवेन वृद्धः सिद्धपिता तदा ॥
ततो नीतो निजगृहं वृन्दारकविवन्दितः ॥१००॥

इन्द्रप्रस्थान्तरगतमिदं सद्बदर्याख्यमीशः
स्नानाद्द्यादखिलजनितामानसेष्टं पदार्थम् ।
माहात्म्यं ते नृप ! नतिमते ! वर्णितं तस्य पूतं
यच्छ्रुत्वा वै पतति न जनो मातृगर्भे कदाचित् ॥१०१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये
बदरिकाश्रमवर्णनं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१६॥
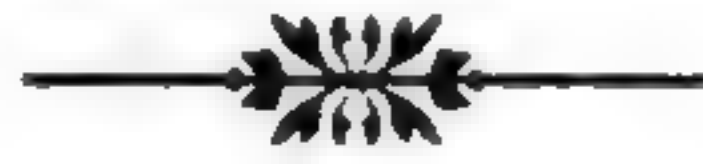
इच्छा तथा आपकी कृपा से मैं गजेन्द्र पर चढ़कर इन्द्र के साथ स्वर्ग जा रहा हूँ ॥९२॥ **सिद्ध ने कहा**— वह कलिङ्ग का राजा इस प्रकार कपिल मुनि की स्तुति करके और उनके चरणों में नमस्कार करके स्वर्ग चला गया ॥९३॥ हे विप्र ! मैंने यह अद्भुत उस बदरिकाश्रम में देखा और गुरु की सेवा करने से मैं पाप से भी मुक्त हो गया ॥९४॥ इससे बढ़कर त्रिलोकी में कोई भी तीर्थ नहीं है जो सबकुछ प्रदान करें । यदि तुम परम कल्याण चाहते हो तो अपनी पत्नी के साथ वहीं चले जाओ ॥९५॥ हे द्विज ! मैं अपने घर अपने वृद्ध निस्पृह तथा मोक्ष चाहने वाले पिता को बदरिका नामक तीर्थ में लाने जा रहा हूँ ॥९६॥ **नारदजी ने कहा**— हे राजन्! इस तरह बदरी नामक तीर्थ की महिमा को बतलाकर वह सिद्ध अपने घर चला गया ॥९७॥ इसके बाद वे ब्राह्मण अपनी पत्नी के साथ तीर्थों में पर्यटन करते हुए इन्द्रप्रस्थ में आये ॥९८॥ हे राजन् ! उसी शरीर से वे सिद्ध भी उन दोनों को अपने घर लाये और शीघ्र ही अपने पिता को घर से लेकर ॥९९॥ मोक्ष चाहने वाले अपने पिता को उस तीर्थ में स्नान कराये वह सिद्ध भी वासुदेव के साथ वृद्ध पिता को उस समय देवताओं से बन्दित पिता को वहाँ से अपने घर लाये ॥१००॥ इन्द्रप्रस्थ के अन्दर विद्यमान बदरी नामक ईश स्नान करने से सभी लोगों का मनोवाँछित पदार्थ को प्रदान करता है । हे नम्र बुद्धि वाले राजन् ! उसका पवित्र माहात्म्य मैंने बतलाया इसको सुनकर मनुष्य माता के गर्भ में पुनः नहीं आता है ॥१०१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत बदरिकाश्रम वर्णन नामक दो सौ सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१६॥

दो सौ सत्रहवाँ अध्याय

राजोवाच

वर्णितंमे त्वयासाधो ! माहात्म्यं बदरीभवम् ।
यन्निशम्य मनोयाति मम निर्मलतांमुने ! ॥१॥
एतदद्भुतमाहात्म्यं शक्रप्रस्थाख्यमुत्तमम्। सकलं मुनिशार्दूल ! चतुर्वर्गप्रदायकम् ॥२॥
भुवि नाऽतः परं तीर्थं तिरश्चामपि मुक्तिदम् ।
श्रेष्ठं सकलपापघ्नं दर्शनादेव नारद ! ॥३॥
एतदन्तर्गतस्याऽस्य हरिद्वारस्य नारद ! ।
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तः सन्तोषकारकात् ॥४॥
मामुद्धर मुने ! दीनमविद्याकामकर्मभिः। वर्णनेनाऽस्य तीर्थस्य शक्रप्रस्थगतस्य वै ॥५॥

नारद उवाच

आकर्ण्य महाभाग वर्णयामि तवाऽग्रतः । हरिद्वारस्य माहात्म्यमश्वमेधफलप्रदम् ॥६॥
अत्रैकःश्वपचःपापो यथा स्वर्गतिमाप्तवान् । तत्तेऽहं कथयाम्यद्य शृणुष्वैकमनाःप्रभो !॥७॥
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे कालिङ्गइति विश्रुतः। श्वपचः पापकर्मा वै वसतिस्म पुराद्बहिः॥८॥
पञ्चषड्वर्षदेशीयान्बालान्नगरवासिनाम् । प्रसह्य वञ्चयित्वा च वने नीत्वा जघान सः ॥९॥
तेषामलङ्कारमयं रजतं हेमवन्नृप !। रत्नादिकं च कायस्थं हत्वा ताञ्जगृहेऽधमः ॥१०॥
विवेश साधुनिलये रात्रौ धनजिहीर्षया। पथिकान्यनमालक्ष्य स जघ्नेनिर्जने वने ॥११॥

हरिद्वार माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में कलिङ्ग चाण्डाल के वृत्तान्त वर्णन के माध्यम से वैश्य का वृत्तान्त वर्णन

राजा ने कहा— हे साधो ! आपने बदरिकाश्रम के माहात्म्य को मुझे सुनाया । हे मुने ! उसको सुनकर मेरा मन निर्मल हो गया है ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इन्द्रप्रस्थ का यह अद्भुत उत्तम माहात्म्य सम्पूर्ण चारो पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है ॥२॥ तिर्यक् योनि के जीवों को भी मुक्ति प्रदान करने वाला तथा दर्शन करने मात्र से ही सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करने वाला हैं इससे बढ़कर कोई भी श्रेष्ठ तीर्थ नहीं है॥३॥ हे नारदजी ! इसके अन्तर्गत ही विद्यमान हरिद्वार का सन्तोष उत्पन्न करने वाला माहात्म्य मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥४॥ हे मुने ! अविद्या तथा काम्य कर्मों को करने वाले शक्रप्रस्थ में विद्यमान इस तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन करके आप मेरा उद्धार करें ॥५॥ **नारदजी ने कहा—** हे महाभाग ! अश्वमेध का फल प्रदान करने वाले हरिद्वार के माहात्म्य का मैं वर्णन करता हूँ उसे आप सुनें ॥६॥ यहाँ पर एक पापी चाण्डाल जिस तरह स्वर्ग को प्राप्त किया उसको मैं आपको सुनाता हूँ । एकमना होकर आप सुनें ॥७॥ धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में कलिङ्ग के नाम से विख्यात एक पापी चाण्डाल नगर से बाहर रहता था ॥८॥ वह पाँच छह वर्ष के नगर वासियों के बालकों को जबरदस्ती ठगकर वन में लाकर मार देता था ॥९॥ यह उन सबों के शरीर पर विद्यमान सुवर्ण, चाँदी तथा रत्नों के अलंकार को उन सबों को मारकर ले लेता था ॥१०॥

कुरुक्षेत्रे समायाता एकदा रविपर्वणि। नानादिग्भ्यो जना राजन्नानादानचिकीर्षया॥१२॥

तस्मिन्यथाविधि स्नात्वा रविपर्वणि भूपते ! ।
दानं दत्त्वा यथावच्च लोकाः स्वान्स्वान्गृहान्ययुः ॥१३॥
एकः कश्चिद्विशां श्रेष्ठो धनेन महता युतः ।
पश्चात्सर्वजनेभ्यस्तु चचाल स्वगृहं प्रति ॥१४॥

अस्यचारः पदातीनां विंशतिं पुरतो दधत्। कालिङ्गः स महापापस्तमनु प्रस्थितस्तदा॥१५॥
कतिचिद्वसतीर्गत्वा सह तेन विशाऽधमः। सोऽन्त्यजस्तद्धनं हतु न लेभे समयं नृप ! ॥१६॥

बलेनाऽपिग्रहीतुं न क्षमोऽभूत्तस्य स श्रियम् ।
वैश्यस्तुजनविंशत्या संयुक्तस्तुसएकक: ॥१७॥
अत्राऽऽगतः स पापात्मा वैश्यस्याऽर्थेन पार्थिव ! ।
निशिथे शिबिरं तस्य धनं हर्तुं समाविशत् ॥१८॥

एकेन तस्य वैश्यस्य जनेन स तुलक्षितः। प्रविशन्नेव पापात्मा ददता प्रहरं स्वकम् ॥१९॥
तमालक्ष्य समीपस्थं स जनः प्रहरप्रदः। उभयोः पादयोराजन्स्वपन्नेव गृहीतवान् ॥२०॥
तौ गृहीत्व जनानन्यान्बोधयन्प्रहरप्रदः। हस्तेनैव तु पापेन चोरेणाऽऽघातितो हि सः ॥२१॥
श्रुत्वा पलायमानस्तु गृहीतोऽन्यैर्जनैस्तदा। ग्रहीतारं पुनर्हत्वा सहसा स पलायितः ॥२२॥
एकेन केनचिद्राजन्सेवकेन धनुर्भृता। दूरादेव शरेणाऽऽशु धावन्स निहतोऽधमः॥२३॥

हतमात्रः शरेणाऽऽशुतत्याज सचजीवितम् ।
चौरेण निहतौ राजन्वैश्यस्याऽनुचरावुभौ ॥२४॥

वह रात्रि में सज्जन पुरुष के घर में धन चुराने की इच्छा से प्रवेश कर जाता था तथा निर्जन वन में यात्रियों को देखकर मार देता था ॥११॥ हे राजन् ! एक बार सूर्यग्रहण के समय अनेक दिशाओं से लोग अनेक प्रकार का दान करने की इच्छा से आये ॥१२॥ हे राजन् ! उस सूर्यग्रहण के पर्व पर स्नान करके विधिवत् दान करके लोग अपने-अपने घर चले गये ॥१३॥ कोई श्रेष्ठ वैश्य बहुत अधिक धन के साथ सभी लोगों के पश्चात् अपने घर के लिए चला ॥१४॥ इसके बीस पैदल नौकरों को आगे करके वह महापापी कालिङ्ग उसके पीछे चला ॥१५॥ कुछ बस्तियों में जाकर वह अधम उस वैश्य के साथ उनके धन को छिनने का अवसर प्राप्त किया ॥१६॥ वह बल पूर्वक उस वैश्य को धन को छिनने में समर्थ नहीं हुआ; क्योंकि वैश्य के साथ बीस लोग थे और वह अकेला था ॥१७॥ यहाँ आकर हे राजन् ! वैश्य के धन के लिए आधी रात को वैश्य के धन को चुराने के लिए उसके शिविर में प्रवेश किया ॥१८॥ उस वैश्य के एक आदमी ने उस पापी को प्रवेश करते समय देख लिया वह वहाँ पर पहरा दे रहा था ॥१९॥ उसको समीप में देखकर पहरा देने वाला वह सोते हुए ही उसके दोनों पैरों को पकड़ लिया ॥२०॥ उसको पकड़कर उसने दूसरे लोगों को जगाया लेकिन उस पापी चोर ने उसको हाथ से ही मार दिया ॥२१॥ उसको भागते हुए उसको लोगो ने पकड़ लिया वह पकड़ने वाले को फिर मारकर सहसा वहाँ से भाग चला ॥२२॥ हे राजन्! एक धनुर्धारी सेवक उसको दूर से ही बाण से मार दिया ॥२३॥ बाण से मारे जाने के कारण उसने शीघ्र

ते त्रयो वरयानानि गणानीतानि भूपते !। समारुह्य दिवि स्थित्वा वैश्यमेतद्बभाषिरे ॥२५॥

कालिङ्गवैश्यानुचराऊचुः

भोभो वैश्यपते ! साधो तीर्थमेतदनुत्तमम् । इन्द्रप्रस्थे हरिद्वारं शिवकृत्पापिनामपि ॥२६॥
वयं त्रयः सुतीर्थेऽस्मिन्नपमृत्युगता अपि । गच्छामस्त्रिदिवं वैश्य साम्प्रतं शिवमस्तुते ॥२७॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा ते ययुः स्वर्गं शिबेशिवकृतांपदम् ।
यत्रेच्छयाहिलभ्यन्तेभोग्यवस्तून्यनेकशः ॥२८॥
अथ रात्रौ व्यतीतायां प्रातरत्रविशाम्वरः। स्वभृत्यदेहयोः कृत्वा दाहमस्थीन्यपातयत् ॥२९॥
तीर्थेऽत्र पात्यमानेषु भृत्यौतावस्थिषु प्रभो ! ।
स्वर्गात्पुनरिहाऽऽयातौतंवैश्यमिदमूचतुः ॥३०॥

भृत्यावूचतुः

भोभो वैश्यपते ! साधो तीर्थेऽत्रमरणाद्भुवि ।
पापानामपि जन्तूनां स्वर्गप्राप्तिर्न संशयः ॥३१॥
स्थले मृतस्यजन्तोश्चेत्पतन्त्यस्थीनि वारिणि ।
तीर्थस्याऽस्य तदा वैश्य ! सत्यलोके स्थितिर्भवेत् ॥३२॥
स्थले मृताभ्यामावाभ्यामस्थिपातेन वारिणि। सम्प्राप्ता ब्रह्मणो लोके स्थितिराब्रह्मसंस्थितेः ॥३३॥
स्थलेमृतस्यचौरस्य पेतुरस्थीनिनाऽम्बुनि । यतोऽतःसविशांनाथतस्यौ वृन्दारकालये॥३४॥
तस्याऽपिदेहमन्विष्यतीर्थेऽस्मिन्नाशुपातय । यथा सोऽपिसुरश्रेष्ठःप्राप्नुयान्नौगतिंपराम् ॥३५॥

अपने प्राणों को त्याग दिया । हे राजन् ! उस चोर ने वैश्य के दो अनुचरों को मार दिया था ॥२४॥ वे तीनों गणों के द्वारा लाये गये श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर स्वर्ग में स्थित होकर वैश्य से कहे ॥२५॥ **कलिङ्ग वैश्य के अनुचरों ने कहा—** हे साधो ! वैश्यपते ! इन्द्रप्रस्थ में शिवजी के द्वारा हरिद्वार नामक तीर्थ सर्वोत्तम है जो पापियों को भी तार देता है ।२६॥ हम तीनों इस सुन्दर तीर्थ में अपमृत्यु को प्राप्त किए थे, किन्तु हे वैश्य ! हमलोग स्वर्गलोक में जा रहे हैं, आपका कल्याण हो ॥२७॥ **नारदजी ने कहा—** हे शिवि ! शिवजी के द्वारा निर्मित पद में तीनों स्वर्ग में चले गये । जहाँ पर अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकार की वस्तुओं को प्राप्त करते हैं ॥२८॥ इसके बाद रात्रि के बीत जाने पर उस श्रेष्ठ वैश्य ने अपने भृत्यों के देह को दग्ध करके उन दोनों की अस्थियों को उस तीर्थ में डाल दिया ॥२९॥ हे प्रभो ! तीर्थों में अस्थियों को डालने पर वे दोनों भृत्य स्वर्ग से इस लोक में आये और वैश्य से कहे ॥३०॥ **दोनो भृत्यों ने कहा—** हे साधो वैश्यपते ! पृथिवी पर इस तीर्थ में मरने पर पापी जीवों को भी निश्चित रूप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥३१॥ पृथिवी पर मरे हुए जीव की यदि अस्थियाँ इस तीर्थ के जल में डाल दी जाती हैं तो हे वैश्य ! उस जीव को सत्य लोक की प्राप्ति होती है ॥३२॥ पृथिवी पर मरे हुए हम दोनों की अस्थियों के जल में डाल देने से हमदोनों ने ब्रह्माजी के काल पर्यन्त ब्रह्मलोक में स्थिति प्राप्त कर ली है ॥३३॥ पृथिवी पर मरे हुए चोर की अस्थियाँ चूकि तीर्थ में नहीं डाली गयी हैं, अतएव हे वैश्यपते! वह स्वर्ग लोक में रह गया है ॥३४॥ उसके भी शरीर को खोजकर आप शीघ्र इस तीर्थ में उसकी

उपकारः सदा कार्यः परेषामपि साधुभिः। अपकारो न मन्तव्यः कृतो भृशमसज्जनैः ॥३६॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वातौ महाभागौ गतौहरिपुम्प्रति। हरिद्वारस्यतीर्थस्यसलिलेचाऽस्थिपातनात् ॥३७॥
स वैश्यस्तु महाभागस्तस्य चौरस्यविग्रहम्। दग्धुमन्वेषयामास न लब्धं तत्तु भूपते! ॥३८॥
पुनरावृत्य तत्रैव सर्वतीर्थशिरोमणौ। हरिद्वारे महाराज! स सस्नाविति वाञ्छया ॥३९॥
अहमुत्पाद्य सत्पुत्रान्धर्मार्जितधनेन च। सन्तोष्य विप्रान्बन्धूंश्च विष्णुमाराध्यसेवया ॥४०॥
त्वय्येव मरणं प्राप्य गच्छामि हरिमन्दिरम्। तीर्थराज! नमस्तुभ्यमेतत्कर्तव्यमस्ति ते ॥४१॥
इतिकामनया राजन्सवैश्यस्तत्रकामदे। तीर्थेस्नात्वा गतः सर्वैर्भृत्यैःस्वं समगाद्गृहम् ॥४२॥
तत्र गत्वा सपत्न्यांतु पुत्रानुत्पाद्यबुद्धिमान्। धर्मोपार्जितवित्तेनतोषयामासबान्धवान् ॥४३॥
भक्त्या परमया राजन्नाराध्य कमलापतिम्। तीर्थेऽस्मिन्मरणं प्राप्तो यतो वैकुण्ठमाप्नुयात् ॥४४॥
इति वै वर्णितोराजंस्तीर्थस्य महिमा तव। हरिद्वारस्य पुण्यस्य श्रवणेऽस्य फलं शृणु ॥४५॥
तिलद्रोणस्यदानेन माघेयत्फलमाप्नुयात्। जनस्तत्फलमाप्नोतिशृण्वन्माहात्म्यमस्यतु ॥४६॥
गोपीचन्दनदानेन ब्रह्मपत्रेषु भोजनात्। यत्फलं तन्महिम्नोऽस्य श्रवणादेव कार्त्तिके ॥४७॥

अस्थियों को इस तीर्थ के जल में डाल दें जिससे कि वह भी श्रेष्ठ देवता होकर हमलोगों के ही समान श्रेष्ठ गति को प्राप्त कर ले ॥३५॥ सज्जनों को चाहिए कि वे सदा दूसरों का भी उपकार करें। दुष्टों द्वारा किए गये बहुत अधिक अपकार को नहीं मानना चाहिए ॥३६॥ **नारदजी ने कहा**— इस तरह से कहकर वे दोनों श्रीहरि के लोक में हरिद्वार तीर्थ के जल में अस्थियों को डालने के कारण चले गये ॥३७॥ हे राजन्! वे वैश्य महाभाग चोर के शरीर को जलाने के लिए खोजे किन्तु वे उसे पाये नहीं ॥३८॥ फिर लौटकर उस तीर्थ शिरोमणि हरिद्वार में हे महाराज! वे इस इच्छा से स्नान किए ॥३९॥ मैं सत्पुत्रों को उत्पन्न करके धर्माजित धन से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके तथा सेवा पूर्वक भगवान् विष्णु की आराधना करके॥४०॥ आप ही में मृत्यु को प्राप्त करके श्रीहरि के लोक में जाऊँ। हे तीर्थराज! आपको नमस्कार है, आप इसी कार्य को करेंगे ॥४१॥ हे राजन्! इस प्रकार की कामना से वे वैश्य कामनाओं को पूर्ण करने वाले उस तीर्थ में स्नान करके अपने भृत्यों के साथ अपने घर चले गये ॥४२॥ वहाँ जाकर वे बुद्धिमान् अपनी पत्नी के गर्भ से पुत्रों को उत्पन्न करके धर्म पूर्वक उपार्जित धन से अपने बान्धवों को सन्तुष्ट किये ॥४३॥ हे राजन्! वे परमाभक्ति पूर्वक श्रीहरि की आराधना करके इसी तीर्थ में मृत्यु प्राप्त किए जिससे कि मनुष्य वैकुण्ठ प्राप्त करता है ॥४४॥ हे राजन्! इस तरह से मैंने आपको हरिद्वार तीर्थ की महिमा को सुनाया। इसके सुनने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे आप सुनें ॥४५॥ माघ के महीने में एक द्रोण तिल दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है। इसका माहात्म्य सुनने वाला भी मनुष्य उसी फल को प्रापत करता है ॥४६॥ गोपी चन्दन का दान करने से तथा ब्रह्मपत्र में भोजन करने से जिस कार्तिक मास के फल की प्राप्ति होती है उसी फल को इसके माहात्म्य को सुनने से होती है॥४७॥ प्रबोधिनी एकादशी को अन्तिम प्रहर में जागरण करने से जिस फल की प्राप्ति होती है इस तीर्थ

जागरे च प्रबोधिन्यांप्रहरे पश्चिमे नृप !। यत्फलं तन्महिम्नोऽस्यतीर्थस्याऽऽकर्णनाद्वेत् ॥४८॥
हरिद्वारस्य सदृशं शक्रप्रस्थगतस्य वै। न तीर्थं पृथिवीलोके चतुर्वर्गफलप्रदम्॥४९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये हरिद्वारमहिमावर्णनं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१७॥

दो सौ अठारहवाँ अध्याय

नारद उवाच

भूयः शृणु महाभाग ! माहात्म्यं परमाद्भुतम् ।
अत्रस्थितस्यतीर्थस्यपुष्करस्य शिवप्रदम् ॥१॥
प्रसादात्तस्य तीर्थस्य विष्णुः सर्वसुरेश्वरः। प्रसन्नः पुण्डरीकस्य मासमेकंगृहेऽवसत् ॥
अत्र मुक्तिं तदनुजो लोभे पापरतोऽपि हि ॥२॥

शिबिरुवाच

कः पुण्डरीको धर्मात्मा कृतंतेनच कर्मकिम् ।
येन प्रसन्नोभगवांस्तद्गृहेमासमावसत् ॥३॥
कथं तदनुजः प्राप पापात्माश्रीहरेः पदम्। तीर्थस्याऽस्यप्रसादेन सर्वमाख्याहि मे मुने॥४॥

के माहात्म्य को सुनने से उसी फल की प्राप्ति होती है ॥४८॥ इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान हरिद्वार तीर्थ के समान भूलोक में चतुर्विध पुरुषार्थ को देने वाला कोई भी तीर्थ नहीं है ॥४९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में हरिद्वार की महिमा वर्णन नामक दो सौ सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१७।।

विदर्भ नगर में रहने वाले मालव ब्राह्मण के कथा के माध्यम से उसके द्वारा अपनी पुत्री के पुत्र को गोदावरी के तट पर सुवर्ण दान देना तथा घर जाते हुए अपने भाई भरत के कटे शरीर के कारण का ज्ञान

नारदजी ने कहा— हे महाभाग ! आप अत्यन्त अद्भुत इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान पुष्कर तीर्थ के कल्याणप्रद माहात्म्य को सुनें ॥१॥ इस तीर्थ की कृपा से सभी देवताओं के स्वामी भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर पुण्डरीक के गृह में एक मास तक रहे । यहाँपर उसका पापी भी छोटा भाई मुक्ति को प्राप्त कर लिया ॥२॥ **राजा शिवि ने कहा—** धर्मात्मा पुण्डरीक कौन थे ? उन्होंने कौन सा कर्म किया ? जिसके कारण प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उनके घर में एक मास रहे ॥३॥ उनका पापी भाई भी किस तरह से इस तीर्थ की कृपा से श्रीहरि के लोक को प्राप्त किया ? इन सारी बातों को पूर्ण रूप से बतलाएँ । इसके

श्रृण्वतोऽस्य न सन्तोषो माहात्म्यं मम जायते ॥५॥

नारद उवाच

विदर्भनगरे राजन्मालवाख्यो महायशाः। ब्राह्मणो ब्रह्मविच्छान्तोविद्वान्विष्णुपरायणः॥६॥
देवर्षिपितृभूतानां मानुषाणां च पोषकः। विषयेषु न संसक्तो लोभमोहादिवर्जितः॥७॥
स एकदा महाभाग ! सिंहं प्राप्ते बृहस्पतौ ।
गोदावरीं महापुण्यां स्नातुं प्रतिजगाम ह ॥८॥
दातुं तत्र सुवर्णस्य गृहान्निन्ये पलायुतम्। गच्छन्पथि स धर्मात्मामनसैतदचिन्तयत्॥९॥

मालव उवाच

गृहाद्दानार्थमानीतं मया हेमपलायुतम्। यस्मै कस्मै न दातव्यं दातव्यं पूज्यसाधवे॥१०॥
निष्किञ्चनाय विप्राय पात्रायाऽनुपकारिणे। पूज्याय देशे कालेच दत्तमक्षयताम्व्रजेत्॥११॥
उञ्छवृत्त्या समानीतं दत्त्वा दुर्वाससे मुनिः ।
शिलोञ्छवृत्तिर्धर्मात्मा स्वं त्यक्त्वात्गात्परं पदम् ॥१२॥
दानवेन्द्रोबलीराजापात्रंविज्ञायवामनम् । विपक्षायाऽप्यदात्तस्मैत्रिलोकींस्वभुजार्जिताम् ॥१३॥
तस्मात्पात्राय दातव्यं धनं धर्माजितं मया। गोविन्दतुष्टयेसम्यग्वाञ्छनीयंनतत्फलम् ॥१४॥
पुण्डरीकस्तुधर्मात्माभागिनेयोगजाह्वयात् । आयास्यतिमयाऽऽहूतःसर्वपात्रशिरोमणिः ॥१५॥
आनीतस्य धनस्याऽर्द्धं तस्मैपात्रायसूनवे। स्वसुर्दास्यामिशेषंतुश्रोत्रियेभ्योयथाविधि ॥१६॥

नारद उवाच

एवं विचिन्त्यधर्मात्मा मालवः स द्विजोत्तमः ।
कतिचिद्वासरैःप्राप्तःपुण्यांगोदावरींनृप ॥१७॥

माहात्म्य को सुनने से मुझे सन्तोष नहीं होता है ॥४-५॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! विदर्भ नगर में मालव नामक महायशस्वी ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण रहते थे, वे विद्वान् तथा भगवान् विष्णु के भक्त थे ॥६॥ देवता, ऋषि, जीव तथा मनुष्य के पोषक थे । वे लोभ, मोह से रहित तथा विषयों की आसक्ति से रहित थे ॥७॥ वे महाभाग एक बार सिंह राशि के बृहस्पति के होने पर अत्यन्त पुण्यमयी गोदावरी नदी में स्नान करने के लिए गये ॥८॥ वे दान करने के लिए घर से दश हजार पल सुवर्ण ले गये । रास्ते में जाते हुए वे धर्मात्मा सोचे ॥९॥ **मालव ने कहा—** मैं घर से दान देने के लिए दश हजार पल सुवर्ण लाया हूँ । इसे जिस किसी को न देकर किसी पूज्य साधु पुरुष को देना चाहिए ॥१०॥ अकिञ्चन, अनुपकारी, दान के पात्र तथा पूज्य ब्राह्मण को इसे देना चाहिए क्योंकि उचित देश तथा काल में दिया गया दान अक्षय होता है ॥११॥ उञ्छवृत्ति से लाये गये अन्न को दुर्वासा ऋषि को देकर शिलोञ्छ वृत्ति वाला धर्मात्मा अपने शरीर को त्यागकर परम पद को प्राप्त किया ॥१२॥ राजाबलि ने वामन को पात्र जानकर अपनी भुजा के बल से अर्जित त्रैलोक्य का दान अपने विपक्षी उनको दे दिया ॥१३॥ अतएव धर्म पूर्वक अर्जित धन को मुझे योग्य पात्र को भगवान् गोविन्द की तुष्टि के लिए देना चाहिए और उसके फल की कामना नहीं करना चाहिए ॥१४॥ मेरा पुण्डरीक नामक धार्मिक भाँजा हस्तिनापुर से आयेगा उसको मैंने बुलाया है वह सभी पात्रों से श्रेष्ठ है ॥१५॥ लाये गये धन का दान उसी बहन के पुत्र को दूँगा और बचे हुए शेष धन को

मिलितस्तस्यधर्मात्मा पुण्डरीकःस्वसुःसुतः । तस्य वै पूर्वमायातो मालवस्यमहीपते !॥१८॥
स तत्र विधिनास्नात्वा सिंहसंक्रमवासरे। पुण्डरीकाय वित्तार्धं ददौमे प्रीयतां हरिः ॥१९॥
पुण्डरीकोऽपिधर्मात्मास्नात्वागोदावरीजले । स्ववित्तस्यचतुर्थांशंश्रोत्रियेभ्योददौमुदा ॥२०॥
स तत्र विधिवत्स्नात्त्वा दत्त्वा दानं च शक्तितः ।
गच्छन्तं स्वगृहाद्राजन्नित्युवाच स्वसुः सुतम् ॥२१॥

मालव उवाच

गुरून्प्रति नमस्कारो वाच्य आशीर्लघून्प्रति। यथावयोर्हि संयोगः क्षणिकोऽयंबभूवह॥२२॥
एवं हि सर्वजन्तूनां पुत्रदारादिभिः सह। तस्मात्क्षणिकसंयोगात्संसाराद्यः सुधीर्नरः ॥२३॥
विरज्येत कृपापात्रं स हरेः स्याद्विनिश्चितम् ।
कृपातःश्रीहरेःप्राणीसत्संगमरतो भवेत् ॥२४॥
ततस्तस्य हरेर्लीलाश्रवणेच्छा हि जायते। श्रुत्वाचकीर्तितास्सद्भिर्हरिलीलाअपिस्वयम् ॥२५॥
सस्पृहं कीर्तयत्येव ततः स्मरति केवलम्। ततस्तस्य भवेत्प्रेम गोविन्दपदसेवने॥२६॥
नरस्ततस्तरत्याशु पोतेनेव महार्णवम्। एतदर्थं हि साधूनां ज्ञानिनां कर्मिणां तथा ॥
यत्नो भवति धर्मात्मन्नपि त्वं यत्नवान्भव ॥२७॥

नारद उवाच

एवमुक्त्वा स वैदर्भः सुतं कथमपि स्वसुः ।
विसृज्याऽश्रुमुखोबाष्पपर्याकुलदृशंययौ ॥२८॥

श्रोत्रिय ब्राह्मणों को विधि पूर्वक दूँगा ॥१६॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से विचार करके वे धर्मात्मा ब्राह्मण मालव कुछ दिनों में पवित्र गोदावरी नदी पर आये ॥१७॥ वहाँ उनका धर्मात्मा बहन का पुत्र मिला। हे राजन् ! उससे पहले ही धर्मात्मा मालव आ गये थे ॥१८॥ वहाँ पर स्नान करके सिंह की संक्रान्ति के दिन धन का आधा भाग श्रीहरि प्रसन्न हों यह कहकर पुण्डरीक को दे दिए ॥१९॥ धर्मात्मा पुण्डरीक भी गोदावरी में स्नान करके अपने धन के चतुर्थांश को श्रोत्रिय ब्राह्मण को प्रसन्नता पूर्वक दे दिये ॥२०॥ वे वहाँ पर सविधि स्नान करके तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर अपने घर जाते हुए अपनी बहन के पुत्र को कहे ॥२१॥ **मालव ने कहा—**- तुम मेरे गुरुजनों को मेरा प्रणाम तथा छोटे लोगों को मेरा आशीर्वाद कहना । जिस तरह हमदोनों का क्षणभर के लिए मिलन हुआ ॥२२॥ उसी तरह से सभी जीवों का पुत्रों तथा पत्नी आदि का मिलन क्षणिक होता है । अतएव क्षणिक संयोग के कारण जो बुद्धिमान मनुष्य ॥२३॥ विरक्त हो जाता है वह श्रीहरि की कृपा का पात्र होता है । यह निश्चित है । श्रीहरि की कृपा से प्राणी सत्सङ्ग में जाता है ॥२४॥ उससे उसकी श्रीहरि की लीला सुनने में प्रेम होता है । स्वयम् भी सज्जनों के द्वारा वर्णित श्रीहरि की लीला को सुनकर ॥२५॥ वह वड़े चाव से उसका वर्णन करता है और सदा उसी का स्मरण करता है । उसके पश्चात् उसका प्रेम श्रीहरि के चरणों की सेवा करने में हो जाता है ॥२६॥ उसके द्वारा मनुष्य उसी तरह संसार सागर को पार जाता है जैसे कोई नौका के द्वारा महार्णव को पार कर जाता है । इसीलिए सज्जनों, ज्ञानियों तथा कर्म करने वालों का प्रयास होता है तुम भी यत्नवान् हो जाओ ॥२७॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहकर विदर्भ निवासी मालव किसी तरह से

पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा चचालस्वगृहम्प्रति । कतिभिर्वासरै राजन्नागतोऽत्रशुभास्तदे ॥२९॥
भरताख्यं कनीयांसंभ्रातरं पतितं भुवि। श्वसन्तं क्षतनिर्गच्छद्रुधिराक्तमवैक्षत ॥३०॥
पप्रच्छ च रुदन्नुच्चैर्भ्रातःकेनेदृशीं दशाम् । गमितोऽसि किमर्थं वा गृहादिह समागतः ॥३१॥
इति पृच्छति राजेन्द्र ! पुण्डरीके सपीडया ।
महत्या भरतः सद्यः पीडितोऽसूनमुञ्चत ॥३२॥
अवातरत्तदा यानमेकं सगणमद्भुतम् । आकाशात्पश्यतां भूप ! जनानां तद्गुरोरपि॥३३॥
तदारुह्य स दिव्याङ्गे भरतः पापकार्यपि । उवाच वचनं ज्येष्ठं भ्रातरं विनमन्निदम्॥३४॥

भरत उवाच

पुण्डरीकमहाबुद्धेतीर्थस्याऽस्यप्रसादतः । पुष्करस्य मयाप्राप्तापापिनाऽपिदिविस्थितिः ॥३५॥
मदीयं दारुणं कर्म भ्रातर्जानासि यद्यपि । तथाऽपि कथयाम्यद्य किञ्चिदज्ञातमस्ति ते ॥३६॥
यथा मया प्रभावत्या वेश्यमा रमितं सह। तद्गृहव्ययितं भूरि धनं च मदिराकृते ॥३७॥
द्यूतेन हारितं यच्च चौरकर्मसमार्जितम् । शिवरात्र्यां मया शम्भुनिर्माल्यं यच्च भक्षितम्॥३८॥
यत्कृते भवता विप्रो जम्बुकोनाम दूषितः। एतन्मया कृतं कर्म विदितं पुण्डरीक ! ते ॥३९॥
गोदावरीं गते भ्रातस्त्वयि यत्कृतवानहम् । न तत्ते विदितं कर्म कथयामि तदप्यहो ॥४०॥
चलिते त्वय्यतिक्रान्तो यदा पक्षस्तदाह्यहम्। श्रुतवानितिलोकेभ्यो वचनंहरिदुःसहम् ॥४१॥
पुण्डरीको धनं दातुमाहूतो मातुलेन हि। निजसोदरमाहत्य पुण्डरीकं तदाहृतम् ॥४२॥
ग्रहीष्यामि धनं भूरि मालवेन समर्पितम् । महता वसुना तेन तोषयामि प्रभावतीम्॥४३॥

अपनी बहन के पुत्र को छोड़कर आँसू भरे तथा वाष्प से भरी आँखों से चले गये ॥२८॥ धर्मात्मा पुण्डरीक भी अपने घर के लिए चल दिए । कुछ दिनों में हे राजन् ! अपने छोटे भाई भरत के यहाँ आये जो पृथिवी पर गिरे हुए थे । उनको उन्होंने क्षत से निर्गत खून से लथपथ तथा श्वास लेते हुए देखे ॥२९-३०॥ वे जोर से रोते हुए भाई से पूछे कि किस कारण तुम्हारी यह दशा हुयी घर से तुम यहाँ किस लिए आये थे ?॥३१॥ हे राजेन्द्र ! इस तरह से पुण्डरीक के पूछने पर अत्यन्त कष्ट से पीड़ित भरत अपने प्राणों का परित्याग कर दिए ॥३२॥ उसी समय वहाँ आकाश से एक विमान गणों के साथ पुण्डरीक के सामने ही उतरा ॥३३॥ वह पापी भरत भी दिव्य शरीर वाला होकर उस पर चढ़कर अपने ज्येष्ठ भाई को प्रणाम करके कहा **भरत ने कहा—** हे महाबुद्धिमान् ! पुण्डरीक इस पुष्कर तीर्थ की कृपा से पापी भी मैंने स्वर्ग में स्थिति प्राप्त की है ॥३४॥ हे भाई ! यद्यपि तुम मेरे पाप कर्म को जानते हो फिर भी मैं कह रहा हूँ क्योंकि तुमको मेरे कर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं है ॥३५-३६॥ जिस तरह से मैंने प्रभावती नामक वेश्या के साथ रमण किया और घर के प्रभूत धन को मदिरा में व्यय कर दिया ॥३७॥ चोरी के द्वारा मैंने जो धन कामया था उसको जूए में हार गया । मैंने शिवरात्रि को शिव निर्माल्य को खा लिया ॥३८॥ हे विप्र! जिसके कारण मुझको जम्बुक के नाम से दूषित किया गया मैंने हे पुण्डरीक ! इस कर्म को किया वह आपको ज्ञात ही है ॥३९॥ हे भ्रातः ! आपके गोदावरी चले जाने पर जो मैंने कर्म किया उसको आप नहीं जानते हैं उसे मैं बतला रहा हूँ ॥४०॥ आपके चले हुए जब एक पक्ष वीत गया तब मैंने लोगों से श्रीहरि के लिए दुःसह यह बात सुना कि ॥४१॥ मामा ने पुण्डरीक को धन देने के लिए बुलाया है तो अपने सहोदर भाई पुण्डरीक को मारकर मैं लाये हुए मालव के द्वारा प्रदत्त बहुत अधिक धन को ले लूँगा । उस बहुत अधिक धन से मैं प्रभावती को सन्तुष्ट करूँगा ॥४२-४३॥ और जूए के जानकर लोगों के साथ मैं

दुरोदरेण क्रीडामि स्वेच्छया तद्विदैः सह। इत्यालोच्यत्वदध्वानंनिरुध्याऽहमिहस्थितः ॥४४॥
हत्वा त्वां च धनं भूरि ग्रहीतुं च महामते ! ।
अतिक्रान्तेजने भ्रातः कुतश्चित्सार्थआगतः ॥४५॥
वणिजामत्र सुप्तोऽहं रात्रौ तत्र महामते ! । अथ कश्चिन्निशीथेतु तस्करो वणिजांधनम् ॥४६॥
हतु तत्र समाविष्टः सार्थे जनसमाकुले । नीत्वा यदा धनं किञ्चित्सचौरस्तुपलायितः ॥
तमन्वधावन्सहसा क्रोशन्तइव सेवकाः ॥४७॥

सेवकाऊचुः

गृह्यतां गृह्यतामेष चौरोऽयं याति सत्वरम् । मध्याद्बहूनामस्माकमपहत्य धनं बहु ॥४८॥

भरत उवाच

इत्याकण्य वचस्तेषां पुरतस्तु तमन्वहम् । अधावं सहसा भ्रातस्तद्ग्रहीतुं जिहीर्षया ॥४९॥
ततस्ते वणिजां भृत्या ज्ञात्वा मां तस्य रक्षकम् ।
प्रजहुस्तरसासर्वेसखड्गं खड्गपाणयः ॥५०॥
तेषु कश्चिद्द्विजश्रेष्ठो ब्राह्मणोऽहमितिब्रुवन् । खड्गेन शितधारेण मया पापीयसा हतः ॥५१॥
वणिजां सेवकैस्तैस्तु खड्गधारैरहं हतः । गतास्ते वणिजः प्रातर्निजगन्तव्यनीवृतम् ॥५२॥
ततो भवानिह प्राप्तः श्वसन्तं मां ददर्श ह । चलद्रुधिरलिप्ताङ्गं पीडामोहविचेतनम् ॥५३॥
इत्येत्कथितं भ्रातर्यदर्थमहमागतः । अपमृत्युं यथा प्राप्तस्तच्चाऽपि कथितं मया ॥५४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
कालिन्दीमाहात्म्ये अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१८॥

इच्छा भर जूआ खेलूँगा । इस तरह से विचार करके मैं तुम्हारे मार्ग को रोक कर यहाँ ठहर गया ॥४४॥ हे महामते ! हे भाई ! तुमको मारकर मैं बहुत अधिक धन लेने के लिए लोगों के चले जाने पर यहाँ पर व्यापारियों का समूह आया ॥४५॥ यहाँ पर व्यापारियों के समूह के रात्रि में सो जाने पर आधी रात को एक चोर व्यापारियों के धन को चुराने के लिए उस समूह में प्रवेश किया जब कुछ धन लेकर वह चोर भागा ॥४६-४७॥ वे चिल्लाते हुए उसके पीछे सेवक दौड़ पड़े **सेवकों ने कहा**— पकड़ो-पकड़ो यह चोर तेजी से जा रहा है हम बहुत से लोगों के बीच से बहुत धन चुरा लिया है ॥४८॥ इस तरह से उन सबों की वाणी को सुनकर हे भाई ! उसके पीछे उसे छीनने के लिए दौड़ पड़ा ॥४९॥ उसके बाद व्यापरियों के भृत्यों ने मुझको उसका रक्षक समझकर अपने हाथ में खड्ग लिए हुए मुझको खड्ग से वेग पूर्वक मार दिए ॥५०॥ उन सबों में कोई कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ मैंने इस को तीक्ष्ण धार वाले खड्ग से मारा है॥५१॥ व्यापारियों के उन सेवकों द्वारा तीक्ष्णधार वाले खड्ग से मैं मारा गया । वे व्यापारी प्रातःकाल अपने गन्तव्य स्थल को चले गये ॥५२॥ उसके बाद आप आये और श्वास लेते हुए निकलते हुए खून से लिप्त अङ्ग वाले तथा पीड़ा से बेहोश मुझको देखे ॥५३॥ हे भ्रातः ! जिसके लिए मैं आया था उसे बतला दिया । जिस तरह मेरी अपमृत्यु हुयी उसे भी मैंने बतला दिया ॥५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में दो सौ अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१८।।

दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य पुण्डरीको महामनाः। उवाच निजबन्धुंतंश्रृण्वतांनिजसङ्गिनाम् ॥१॥

पुण्डरीक उवाच

केन पुण्येन तीर्थेऽस्मिन्मृत्युर्भरत ! तेऽभवत् ।
यदि जानासि तद्ब्रूहिपापंविख्यातमेवते ॥२॥

भरत उवाच

पुण्डरीक ! श्रृणुष्वेदं कथयामि तवाऽग्रतः ।
एतत्तीर्थप्रदं पुण्यं कृतं यदिह जन्मनि ॥३॥
एकदा तु धनं जित्वा समागच्छन्निजं गृहम् ।
अपश्यं मृतकं बालंमृतस्याऽनाथमापणे ॥४॥

निधाय तमहं मूर्ध्नि नीत्वा गङ्गातटे शुभे। वस्त्रादिभिरलङ्कृत्यचक्रेदाहादिसत्क्रियाम् ॥५॥
द्यूतेनोपार्ज्जितं द्रव्यं तत्सर्वं व्ययितं मया। तेन पुण्येन प्राप्तं मे तीर्थमेतच्छुभावहम् ॥
कुरु त्वं मम देहस्य संस्कारं दाहपूर्वकम् ॥६॥

श्रीनारद उवाच

संस्कारे विहिते राजन्भरतः पापवानपि। तीर्थस्याऽस्य प्रसादेन पुष्करस्यगतो दिवि॥७॥
मासमेकं यथा विष्णुः पुण्डरीकगृहे हरिः। उवासाऽस्यप्रसादेनतीर्थस्यश्रृणुसाम्प्रतम् ॥८॥

अत्र तीर्थे स धर्मात्मा भरतस्याऽपि सद्गतिम् ।
दृष्ट्वेति हृदये मेने तीर्थमेतत्तु- कामदम् ॥९॥

पुण्डरीक भरत संवाद के अन्तर्गत पुष्कर तीर्थ की महिमा के साथ प्रयाग के माहात्म्य का वर्णन

नारदजी ने कहा— इस तरह की उसकी वाणी को सुनकर महामना पुण्डरीक अपने बन्धु से अपने साथियों के समक्ष ही कहे ॥१॥ **पुण्डरीक ने कहा—** हे भरत ! किस पुण्य के कारण तुम्हारी मृत्यु इस तीर्थ में हुयी ? यदि जानते हो तो उसको बतलाओ तुम्हारे पाप तो विख्यात ही हैं ॥२॥ **भरत ने कहा—** हे पुण्डरीक ! तुम सुनो, इसको मैं तुम्हारे समक्ष बतला रहा हूँ । इस तीर्थ को प्रदान करने वाले जिस पुण्य को मैंने इस जन्म में किया है उसे बतलाता हूँ ॥३॥ एक बार धन जीतकर मैं घर आया । मैं एक मरे हुए बालक को देखा जो अनाथ बजार में मरा था ॥४॥ उसको अपने शिर पर रखकर मैं गङ्गा तट पर लाया और उसको वस्त्र आदि से अलंकृत करके उसकी दाह क्रिया को मैंने किया ॥५॥ जुए में उपर्जित सम्पूर्ण धन को मैंने उसी में व्यय कर दिया । उसी पुण्य के कारण मैंने इस तीर्थ को प्राप्त किया है । तुम मेरे शरीर का दाह आदि कर्म करो ॥६॥ **श्रीनारदजी ने कहा—** संस्कार कर देने पर हे राजन् पापी भी भरत इस पुष्कर नामक तीर्थ की कृपा से स्वर्ग चला गया ॥७॥ इस तीर्थ की कृपा से भगवान् विष्णु जिस तरह से पुण्डरीक के घर में निवास किए उसे तुम इस समय सुनो ॥८॥ इस तीर्थ में वे धर्मात्मा

अत्रेतिवाञ्छया सस्नौ पुण्डरीकः स पण्डितः ।
माघमासं स्वरूपेण हरिर्वसतु मे गृहे ॥१०॥

एवं स्नात्वा सकामेन ययौ निजगृहं प्रति। तीर्थेऽत्र नृपतिश्रेष्ठ ! पुण्डरीकोऽखिलार्थदे ॥११॥
बन्धुभ्यो मरणं भ्रातुर्भरतस्य जगाद ह। तेऽपि श्रुत्वा शुचं चक्रुर्मायया ऽऽवृतबुद्धयः ॥१२॥
पुण्डरीकस्तदाकुर्वनगृहे स्वस्मिन्निजक्रियाः। उवासेति महानन्दस्तपस्यायास्ते हरिः॥१३॥
पूर्णिमायामथो पौष्यां चक्रे स परमोत्सवम्। मत्वेति श्वोगृहेमह्यं हरिरायास्यतिध्रुवम्॥१४॥
श्रीखण्डजलसेकेन गोमयालेपनेन च। मुक्ताचूर्णतुष्केण समस्कुरुत केतनम्॥१५॥
शतद्वयं ब्राह्मणानां नानाभोज्यैरभोजयत्। बह्वीभिर्दक्षिणाभिश्च तानेव समतोषयत् ॥१६॥
नानावादित्रकुशलैः कलकण्ठैश्च गायनैः। रजन्यां स्वजनैर्गायंश्चक्रे जागरणं तथा ॥१७॥
अथ प्रभाते तान्सर्वान्गायनादीन्विसृज्यसः। गोविन्दागमनाकाङ्क्षी गृहमध्यउपाविशत्॥१८॥
अथ तस्य गृहाभ्यासे निवर्त्य निजवाहनम्। प्राविशद्गृहमध्येतुकर्तुस्वजनवाञ्छितम् ॥१९॥
स पुण्डरीकस्तं दृष्ट्वा माधवं समुपागतम्। उत्थायाऽऽसनतस्तूर्णं ववन्दे शिरसानृप ! ॥२०॥

उवाच च स धर्मात्मा गोविन्दालोकनिर्वृतः ।
सम्पूज्याऽर्घादिदानेनविष्टरेतंनिवेशितम् ॥२१॥

पुण्डरीक उवाच

भवता भवतापघ्नं सुस्पटं तदनुष्ठितम्। तावदत्र त्वयाविष्णोस्थीयतां स्थितिकारिणा ॥२२॥

भरत की भी सद्गति को देखकर उन्होंने अपने हृदय में इस तीर्थ को सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले माने ॥९॥ यहाँ पर पण्डित पुण्डरीक इस कामना से स्नान किए कि माघ मास में श्रीहरि मेरे गृह में स्वरूपतः निवास करें ॥१०॥ इस तरह की कामना से सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले इस तीर्थ में स्नान करके अपने घर चले गये ॥११॥ उन्होंने अपने बन्धुओं को भरत की मृत्यु को बतलाये । वे भी इसको सुनकर माया से मोहित होने के कारण शोक किए ॥१२॥ पुण्डरीक अपने घर में अपनी क्रियाओं को करते हुए आनन्द पूर्वक यह सोचकर कहे कि माघ मास में श्रीहरि आयेंगे ॥१३॥ उसके पश्चात् उन्होंने पौष मास की पूर्णिमा को महान् उत्सव अपने घर में यह सोचकर किए कि कल श्रीहरि निश्चित रूप से आयेंगे ॥१४॥ वे चन्दन के जल से सींचकर तथा गोबर से लिपकर तथा मोती के चूर्ण से चतुष्कोण बनाकर अपने घर का संस्कार किए ॥१५॥ उन्होंने दो सौ ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों से भोजन तथा बहुत अधिक दक्षिणा से उन सबों को सन्तुष्ट किया ॥१६॥ अनेक वाद्यों को बजाने में कुशल तथा मनोहर कण्ठ से गीतों के द्वारा रात्रि में अपने बान्धवों के साथ गीत गाते हुए जागरण किये ॥१७॥ उसके पश्चात् प्रातःकाल गीत गाने वालों को विदा करके भगवान् गोविन्द के आगमन की आकांक्षा से अपने घर में बैठे रहे ॥१८॥ उसके पश्चात् उनके घर के समीप अपने वाहन को लौटाकर अपने भक्त के अभिप्रेत कार्य को करने के लिए श्रीहरि उनके घर में प्रवेश किए ॥१९॥ वे पुण्डरीक श्रीभगवान् को आये हुए देखकर हे राजन् ! अपने आसन से शीघ्रता पूर्वक उठकर शिर झुकाकर उनकी वन्दना किए ॥२०॥ श्रीभगवान के दर्शन से निर्वृत्त वे धर्मात्मा अर्घ्य आदि के दान पुरःस्सर उन की पूजा करके उनको आसन पर बैठाये ॥२१॥ **पुण्डरीक ने कहा—** आपने संसार के सन्ताप को विनष्ट करने वाले कार्य को स्पष्ट

यावदस्य पुनीतस्य समाप्तिस्तपसो भवेत्। यत्र त्वं सेवकास्ते च वसन्ति परिचर्यया॥२३॥
तत्रैव खलु वैकुण्ठः सर्वदोषविवर्जितः। यद्गृहे तव कर्माणि वर्ण्यन्ते साधुभिर्विभो !॥२४॥
हरिर्निवसते तत्र सन्मुखादिति नः श्रुतम्। येषां वचसि ते नाम हृदि रूप च सुन्दरम्॥२५॥
कर्णयोश्च गुणारोपस्तएव खलु साधवः। भवतो भवति स्वान्तं येषां शुश्रूषणे विभा !॥२६॥
उत्तमाङ्गे च निर्माल्यं त एव खलु साधवः।
येषां तु बुद्धिः शत्रौ च मित्रे च कमलापते !॥२७॥
चयापचयशोश्चैव त एव खलु साधवः। येषां विकुरुते चेतो न विकारस्य कारणे॥२८॥
सति लक्ष्मीपते ! नूनं त एव खलु साधवः।
यत्र त्वं माधवस्तत्र सन्तोयत्र ततो भवान्॥
अतो विज्ञापयामि त्वां माघे मम गृहे वस॥२९॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य पुण्डरीकस्यमाधवः। उवाच वचनं भासादन्तानां भासयन्दिशः॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

साधूनामुत्तमः साधुस्त्वंपृथिव्यांमहामते !। यत्त्वया पुण्यतीर्थेतु स्नातंमत्सङ्गवाञ्छया॥३१॥
उत्तिष्ठ जाह्नवीतोये माघेस्नानं कुरुद्विज !। माघान्ते स्नापयामित्वां पूर्णिमायां तुपुष्करे॥३२॥
प्रयागे माघमासे तु पूर्णं यत्स्नानजं फलम्। तत्सर्वं पुष्करे तीर्थे दिनैकस्नानतो भवेत्॥३३॥

नारद उवाच

एवमुक्तः स विप्रेन्द्रः पुण्डरीकोमुरारिणा। किञ्चिदभ्युदिते सूर्येस्नानं गङ्गाजलेऽकरोत्॥३४॥

रूप से कर दिया। हे भगवन् विष्णो ! आप तब तक यहाँ निवास करें॥२२॥ जब तक इस पवित्र माघ मास की समाप्ति नहीं हो जाती हैं। जहाँ पर आपके सेवक आप की सेवा करते हुए रहते हैं॥२३॥ वहीं पर सभी दोषों से रहित वैकुण्ठ रहता है। हे विभो ! जिस गृह में साधु पुरुष आपके कर्मो का वर्णन करते हैं॥२४॥ मैंने सज्जनों के मुख से सुना है कि वहीं पर श्रीहरि निवास करते हैं। जिनकी वाणी में आपके नाम और हृदय में सुन्दर रूप रहता है॥२५॥ तथा जिनके कानों में आपके गुण पड़ते रहते है जिनका अन्त:करण हे विभो ! आपकी सेवा में लगा रहता है वे ही साधु जन हैं॥२६॥ जिनके घर पर आपका निर्माल्य रहता है वे ही साधु जन हैं। हे कमलापते ! जिन लोगों की बुद्धि शत्रु तथा मित्रों की उन्नति और अवनति में एक समान बनी रहती उनका अन्त:करण कभी विकृत नहीं होता है। हे लक्ष्मीपते ! वे ही साधुजन हैं हे भगवन् ! जहाँ पर सन्तजन रहते हैं वहीं पर आप रहते हैं॥२७-२८॥ अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि माघ के महीने भर आप मेरे घर में निवास करें॥२९॥ **नारदजी ने कहा—** पुण्डरीक के इस तरह के वचन को सुनकर श्रीभगवान् अपने दाँतों की चमक से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए कहे॥३०॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे महामते ! आप सभी साधुओं में उत्तम साधु हैं क्योंकि तुमने मेरे सङ्गम की कामना से तीर्थों में स्नान किया है॥३१॥ हे द्विज ! उठो तुम गङ्गा जल में स्नान करो। माघ के अन्त में मैं तुमको पूर्णिमा के दिन पुष्कर में स्नान कराऊँगा॥३२॥ पूरे माघ मास में प्रयाग में स्नान

प्रत्यक्षं पुण्डरीकाक्षं पुण्डरीकः समार्चयत्। तुलसीविकसत्पुष्पयवकुङ्कुमचन्दनैः ॥३५॥
धूपैरगरुजैरङ्गवासिताङ्गं रमापतिम्। नीराजयति कर्पूरदीपकैः पञ्चभिः स्म सः॥३६॥
चतुर्विधमयैर्भोज्यैर्भोजयित्वा जगद्गुरुम्। सुप्तं स मणिपर्यङ्के चामरैस्तमबीजयत् ॥३७॥
पादसम्वाहनं जातु चक्रे तस्य रमापतेः। जातिकर्पूरसंयुक्तं ददौ ताम्बूलवीटकम्॥३८॥
उष्णीषंबध्नतस्यस्य श्रीपतेः पुरस्तदा। तस्थौ जातु स विप्रेन्द्रः करेणानीय दर्पणम्॥३९॥
एवं निजगृहे तस्य वसतः सभवच्छिदः। सपर्यां विदधद्विप्रो माघं निन्ये समस्तकम् ॥४०॥
अथ माघावसाने तु पूर्णिमायां रमापतेः। स्मृतिमात्रागतं तार्क्ष्यमपश्यत्पुरतः स्थितम् ॥
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकमुवाच ह ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

श्रूयतां भो द्विजश्रेष्ठ ! यद्वचोऽहं वदामि ते ।
इन्द्रप्रस्थगते तीर्थे पुष्करे ते यदृच्छया ॥४२॥

स्नानाय ते मया दत्तं यन्मासमुषितं मया। अद्य पक्षीन्द्रमारुह्य मया सह महामते ! ॥४३॥
व्रज तीर्थशिरोरत्नं तदेव प्रतिपुष्करे। चतुर्वर्गप्रदे तस्मिन्स्नानं कुर्वन्यदीच्छसि ॥४४॥
तदहं ते प्रदास्यामि यदहं त्वद्वशे द्विज ! । पापोऽपि भरतस्ते वै भ्राता यत्र मृतो गतः ॥४५॥
स्वर्गं स्वर्गसुखाकाङ्क्षी किमन्यत्तस्य वर्ण्यते ॥४६॥

करने से जिस फल की प्राप्ति होती है । वही सम्पूर्ण फल पुष्कर में एक दिन स्नान करने से प्राप्त होता है ॥३३॥ **नारदजी ने कहा—** भगवान मुरारि के द्वारा इस तरह से कहने पर विप्रों में श्रेष्ठ पुण्डरीक सूर्य के कुछ उदित हो जाने पर गङ्गा जल में स्नान किए ॥३४॥ पुण्डरीक ने प्रत्यक्ष भगवान् पुण्डरीकाक्ष की पूजा तुलसी तथा विकसित पुष्प तथा यव एवं चन्दन से की ॥३५॥ धूप तथा अगरु के रङ्ग से सुगन्धित अङ्ग वाले लक्ष्मीपति की पाँच कर्पूर के दीपकों से आरती किए ॥३६॥ चार प्रकार के भोज्य पदार्थों से श्रीभगवान् को भोजन कराकर मणिमय शय्या पर सोए हुए जगद्गुरु को उन्होंने चामरों से हवा किया ॥३७॥ उन्होंने श्रीभगवान् के पैरों को दबाया और जाति तथा कर्पूर युक्त ताम्बूल उन्होंने श्रीभगवान् को समर्पित किया ॥३८॥ जब श्रीभगवान् पगडी बाँध रहे थे तो वे विप्रेन्द्र उनके सामने हाथ से दर्पण लेकर उनके सामने खड़े रहे ॥३९॥ संसार बन्धन को काटने वाले तथा अपने घर में निवास करने वाले श्रीभगवान् की पूजा करते हुए सारा माघ का महिना बीत गया ॥४०॥ इस तरह माघ के अन्त में पूर्णिमा के दिन श्रीभगवान् के स्मरण करते ही गरुड़ उनके सामने आकर उपस्थित हो गये । गरुड़ को देखकर भगवान् पुण्डरीकाक्ष पुण्डरीक से कहे ॥४१॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे द्विज श्रेष्ठ जो कह रहा हूँ उसे आप सुनें। इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान पुष्कर तीर्थ भाग्यवशात् तुम्हारे स्नान के लिए मैं दे रहा हूँ क्योंकि मैं यहाँ एक महीना रहा हूँ हे महामते ! आज गरुड़ पर चढ़कर मेरे साथ उस तीर्थ श्रेष्ठ पुष्कर चलो यदि तुम चाहो तो चतुर्विध पुरुषार्थ देने वाले उस पुष्कर में चलो ॥४२-४४॥ हे द्विज ! मैं जो मेरे वश में हैं वह तुमको प्रदान करूँगा पापी भी तुम्हारा भाई जहाँ पर मरकर ॥४५॥ स्वर्ग के सुख को चाहने वाला वह स्वर्ग चला गया । उस तीर्थ की दूसरी महिमा का क्या वर्णन किया जाय ॥४६॥ **नारदजी ने कहा—**

नारद उवाच

एवमुक्त्वा स देवेन्द्रो ब्राह्मणेन्द्रं नरेन्द्र ! तम् ।
पतगेन्द्रे समारोप्य सर्वतीर्थेन्द्रमागमत् ॥४७॥
पुण्डरीकस्यदेहात्तु तेन तत्प्राणवायुना। समं ज्योतिः स निर्गत्य गोविन्दपदमाविशत्॥४८॥
एवं पुष्करतीर्थेऽस्मिन्निन्द्रप्रस्थगते नृप ! । स्नानेन पुण्डरीकस्तु लेभे सायुज्यमीश्वरे ॥४९॥
एवं तीर्थानुरोधेन गोविन्दोऽपि च तद्गृहे । मासमेकं सुखं राजन्नुवास निजबन्धुवत्॥५०॥
केन वर्णयितुं शक्यो महिमा पुष्करस्य वै ।
शक्रप्रस्थगतस्याऽस्य कोट्यंशो वर्णितो मया ॥५१॥
माहात्म्यश्रवणादस्य श्रद्धया लभते नरः। अश्वमेधक्रतुफलं पठनादपि भूपते ! ॥५२॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये पुष्करमहिमवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१९॥

हे राजन् ! इस तरह से उस ब्राह्मण श्रेष्ठ को कहकर गरुड़ पर बैठाकर श्रीभगवान् सभी तीर्थों में श्रेष्ठ पुष्कर आये ॥४७॥ पुण्डरीक के शरीर से उस प्राण वायु के समान ज्योति निकलकर भगवान् गोविन्द के चरणों में प्रवेश कर गयी ॥४८॥ हे राजन् ! इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान पुष्कर तीर्थ में स्नान करने से पुण्डरीक श्रीभगवान् में सायुज्य को प्राप्त कर लिए ॥४९॥ इसी तरह तीर्थ के अनुरोध से भगवान् गोविन्द भी उनके घर में एक मास तक सुख पूर्वक बन्धु के समान रहे ॥५०॥ पुष्कर की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान इस तीर्थ की महिमा के करोड़वें अंश का मैंने वर्णन किया ॥५१॥ इसके माहात्म्य को सुनकर मनुष्य श्रद्धा को प्राप्त करता है और इसके पढ़ने से वह अश्वमेध याग के फल को प्राप्त करता है ॥५२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत पुष्कर की महिमा का वर्णन करने वाले दो सौ उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१९।।

दो सौ बीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

शिवस्य तीर्थराजस्य प्रयागस्य तवाऽग्रतः। महिमानं महापुण्यं श्रद्धया वर्णयामि ते ॥१॥
विश्वावसुर्महीपाल ! गन्धर्वो लोकविश्रुतः। एकदा स गतो गातुं सुमेरौ ब्रह्मणः सभाम् ॥२॥
तत्र सर्वैः सुरश्रेष्ठमुपविष्टं सुविष्टरे। जुष्टं सुरगणैर्भूप ! विश्वावसुरवैक्षत ॥३॥
ब्रह्मासनसमीपे तु वरासनगतं नृप !। द्वितीयमिव लोकेशमिन्द्रप्रस्थं ए ऐक्षत ॥४॥
सुरराजतीर्थराजौ ब्रह्मेन्द्रप्रस्थयोर्नृप !। चामरोद्धूननं मूर्ध्नि कुर्वन्तौ स ददर्श ह ॥५॥
अन्यानि देवतीर्थानि तयोर्दूरे महीपते !। स्थितानि तेन दृष्टानि बद्धाञ्जलिपुटानि तु ॥६॥
तयोरग्रे जगौ राजन्गान्धर्वं रागमुत्तमम्। तीर्थैः सममगात्सत्यलोकं देवान्विसृज्य हि ॥७॥
अथ विश्वावसुर्द्धीमान्दृष्ट्वा तीर्थस्य वैभवम् ।
इन्द्रप्रस्थस्य राजेन्द्र ! हाहातेतदुवाच ह ॥८॥

विश्वावसुरुवाच

भोभो गन्धर्वशार्दूल ! तीर्थमेतन्महाद्भुतम्। इन्द्रप्रस्थाख्यमेतस्मिन्संसारे तीर्थराशिषु ॥९॥
चराचरगुरुर्ब्रह्मा सुरवन्द्यपदाम्बुजः। तस्यासनसमीपस्थं यदतिष्ठत्समासनम् ॥१०॥
तीर्थराजोऽपि पृष्ठथश्चामरं यस्यमस्तके। अधुना भृत्यवज्जातस्तीर्थेष्वन्येषु का कथा ॥११॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि त्रिवर्गफलदानि तु। इन्द्रप्रस्थमिदं तीर्थं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥१२॥

इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान प्रयाग तीर्थ के माहात्म्य के प्रसङ्ग में विश्वावसु नामक गन्धर्व के कथानक का वर्णन, माहिष्मती नामक नगर में रहने वाली मोहिनी के वृत्तान्त का वर्णन

नारदजी ने कहा— कल्याणकारी तीर्थराज प्रयाग की अत्यन्त पवित्र महिमा को मैं श्रद्धा पूर्वक तुम्हें सुनाता हूँ ॥१॥ हे राजन् ! वश्वावसु नामक गन्धर्व लोक विख्यात है । एक बार वह ब्रह्माजी की सभा में गाने के लिए सुमेरु पर्वत पर गया ॥२॥ वहाँ पर विश्वावसु ने सभी देवताओं से सेवित देव श्रेष्ठ ब्रह्माजी को आसन पर बैठे हुए देखा ॥३॥ ब्रह्माजी के आसन के समीप दूसरे लोकेश के समान श्रेष्ठ आसन पर बैठे हुए इन्द्रप्रस्थ नामक तीर्थ को उसने देखा ॥४॥ उसने देखा कि इन्द्र और तीर्थ राज दोनों ब्रह्माजी तथा इन्द्रप्रस्थ के शिर पर चामर झल रहे है ॥५॥ हे राजन् दूसरे देवता और तीर्थों को उन दोनों से दूर बैठे हुए उसने देखा और वे सब ब्रह्माजी तथा इन्द्रप्रस्थ को हाथ जोड़े हुए थे ॥६॥ हे राजन् ! उस गन्धर्व ने उन दोनों के सामने उत्तम राग में गाया । वह देवताओं को छोड़कर उन दोनों के साथ सत्यलोक में आया ॥७॥ विश्वावसु ने उस इन्द्रप्रस्थ तीर्थ के ऐश्वर्य को देखकर हाहा नामक गन्धर्व से कहा ॥८॥ विश्वावसु ने उससे कहा हे गन्धर्व श्रेष्ठ ! इन्द्रप्रस्थ नामक संसार में सभी तीर्थों में अत्यन्त अद्भुत तीर्थ है॥९॥ जिनके चरण कमलों की वन्दना देवता करते हैं ऐसे चराचर के स्वामी ब्रह्माजी के समीप उनके समान आसन पर वह बैठा था ॥१०॥ उसके पीछे रहकर तीर्थराज भी उसके मस्तक पर चमर झलते थे। वे उनके भृत्य के समान लगते थे दूसरे तीर्थों की कौन सी बात है ?॥११॥ पृथिवी पर जितने भी तीर्थ

अत्र स्थितानि तीर्थानि तादृशानि गुणैर्ध्रुवैः ।
शेषेनाऽपि न शक्यन्ते स्तोतुं तेषां महागुणाः ॥१३॥

शरभ उवाच

एवं विश्वावसुर्धीमान्दृष्ट्वेन्द्रप्रस्थवैभवम्। गत्वा तस्य गृहंराजन्पावनं सर्वकामदम् ॥१४॥
यथा देवेषु सर्वेषु शक्रःश्रेष्ठः शचीपतिः । तस्माद्ब्रह्मा च तीर्थेषु प्रयागोऽयं तथा वरः ॥१५॥
तस्मादपि महाराज ! शक्रप्रस्थमिदं वरम् । अस्यान्तरगतो योऽयं प्रयागो नृप ! दृश्यते ॥१६॥

कथयाम्यत्र यद्वृत्तं मोहिन्याः पण्ययोषितः ।
नर्मदासरितस्तीरे पुरी माहिष्मती नृप ! ॥१७॥

मोहिनीनामतत्राऽऽसीद्वेश्या बहुधनान्विता । रूपयौवनसम्पन्नानिष्णातानृत्यगीतयोः ॥१८॥
तया बहूनि पापानि कृतानि धनलुब्धया। ब्रह्महत्याः कृताः सप्त दास्याश्च बहवो हताः॥१९॥

तासां च पातिता गर्भा बहुशः पापया तया ।
एवं तया सुतारुण्यं गमितं पापकर्मभिः ॥२०॥

ततो जरा कियत्काले तद्देहे समपद्यत। जराग्रस्तशरीरा सा निवृत्तविषयस्पृहा॥२१॥

न चक्रे मानसं यूनां ते च तां प्रति भूपते ! ।
पापार्जितं धनं स्वीयं न विश्वसिति कस्यचित् ॥२२॥
न दत्ते न स्वयं भुङ्क्ते न निक्षिपति वै क्वचित् ।
एकदा सा निशीथे तु बिबुध्येति व्यचिन्तयत् ॥२३॥

मृतायां मयि कस्येदं धनं पापैरुपार्जितम् । तं नयिष्यति मां घोरं नरकं भृशदारुणम् ॥२४॥

हैं वे त्रिवर्ग रूपी फल को देने वाले हैं और इन्द्रप्रस्थ नामक यह तीर्थ चतुर्विध पुरुषार्थ को देने वाला है॥१२॥ पृथिवी के सारे तीर्थ इसके समान गुणों वाले नहीं हैं । शेषनाग भी उसके महान् गुणों का वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं ॥१३॥ **शरभ ने कहा**— बुद्धिमान् विश्वावसु उसके इस तरह के महान वैभव को देखकर हे राजन् ! उसके पवित्र तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले गृह में जाकर जैसे सभी देवताओं में शचीपति इन्द्र श्रेष्ठ हैं और उनसे ब्रह्माजी श्रेष्ठ है उसी तहर सभी तीर्थों में प्रयाग श्रेष्ठ है ॥१४-१५॥ हे महाराज ! उससे भी श्रेष्ठ इन्द्रप्रस्थ है । हे राजन् ! इन्द्रप्रस्थ में जो प्रयाग है ॥१६॥ मैं इसमें रहने वाली मोहिनी नाम की वेश्या का वृत्तान्त कह रहा हूँ । हे राजन् ! नर्मदा नदी के तट पर माहिष्मती नाम की नगरी है ॥१७॥ वहाँ पर मोहिनी नाम की बहुत धनी वेश्या थी । रूप तथा यौवन से सम्पन्न वह नृत्य तथा गीत में निष्णात थी ॥१८॥ धन के लोभ से उसने बहुत से पापों को किया । उसने सात ब्राह्मणों की हत्या की और बहुत से दासियों को उसने मार दिया ॥१९॥ उस पापिनी ने उन सबों के बहुत से गर्भों को गिरा दिया । इस तरह उसने अपनी सुन्दर जवानी को पाप कर्म में ही बिताया ॥२०॥ उसके बाद उसके शरीर में वृद्धापा आ गयी । जरा से ग्रस्त शरीर वाली वह विषय की स्पृहा से रहित हो गयी ॥२१॥ हे राजन् ! उसने न तो युवकों में अपना मन लगाया और न युवकों ने उसमें मन लगाया । पाप से कमाये हुए धन के विषय में वह किसी पर विश्वास नहीं करती थी ॥२२॥ वह उसको किसी को न तो देती थी

दास्यस्तासांच भर्त्तारस्तद्भोक्ष्यन्ति धनं मम। मयैव सद्गतिस्तस्य कथं न क्रियतेऽधुना ॥२५॥
एवंविचिन्त्य साधर्मे विधाय मतिमुत्तमाम्। चकाराऽऽरामसरसीवापीकूपसुरालयान् ॥२६॥
अभितः पुरमाधत्ते प्रपाः पथिकहेतवे। निदाघे च महाराज ! तेभ्योऽन्नं प्रददौ च सा॥२७॥
धर्मशालां गृहाभ्याशेनिवासाय विदेशिनाम्। विदधेसा पुनस्तेभ्यो ददावाहारमुत्तमम् ॥२८॥
एवं प्रवर्त्तमाना हि धर्मेसा भूप ! मोहिनी। ज्वरातुरा भवत्काले क्वचिच्चेति व्यचिन्तयत्॥२९॥
धर्मार्थे हि मया वित्तं व्ययितं भूरि यद्यपि। तथापि स्वर्णरूप्यादि प्रचुरं वर्त्तते परम् ॥३०॥
श्रोत्रियेभ्योददाम्येतज्ज्ञानेनेति व्यचिन्तयत् । विचिन्त्येतिसमाहूतामोहिन्यानगरद्विजाः ॥३१॥

नागतास्ते महीपाल ! ज्ञात्वा घोरं प्रतिग्रहम् ।
यदा तदा विभागं च चक्रे तत्तु धनंस्वकम् ॥३२॥
एको भागस्तु दासीनां दत्तोऽन्यश्च विदेशिनाम् ।
स्वयं तु निर्द्धना राजन्नभवत्सा तु मोहिनी ॥३३॥

तथासमागतंमृत्युं विज्ञायान्तकमन्तिके । मुक्त्वा दास्यो धनंनीत्वायथेष्टगतयोऽभवन्॥३४॥

इति मत्वा यदा ह्येषा ज्वरमुक्ता भविष्यति ।
तदानीं यद्धनं दत्तं नूनमादास्यते हि तत् ॥३५॥

अथ सा लङ्घनान्यष्टादश कृत्वा महीपते !। निजायुषस्तु शेषेण ज्वरमुक्ता तदाऽभवत् ॥३६॥

और न स्वयं उसका उपभोग करती थी और न कहीं पर उसे रखती थी एक बार वह आधी रात को जगकर सोची ॥२३॥ कि मेरे मर जाने पर पाप से अर्जित यह धन किसका होगा यह उसको तथा मुझको भयङ्कर नरक में ले जायेगा ॥२४॥ दासियाँ और उसके पति मेरे धन का उपभोग करेंगे । अतएव मैं ही उसके द्वारा अपनी सद्गति बनाती हूँ ॥२५॥ इस तरह से सोचकर उसने अपनी बुद्धि को उत्तम धर्म में लगाया और उससे उद्यान, सरोवर, बावली, कुआँ तथा मन्दिरों को बनवाया ॥२६॥ उसने नगर के चारो ओर पथिकों के लिए प्याऊ स्थापित किया । हे महाराज ! वह गर्मी के दिनों में उन सबों को बहुत अधिक अन्न प्रदान किया ॥२७॥ अपने घर के सन्निकट विदेशियों के रहने के लिए धर्मशाला बनवाया और उन सबों को वह उत्तम सहारा देती थी ॥२८॥ हे राजन् ! इस तरह से धर्म को करती हुयी वह मोहिनी किसी समय ज्वर से ग्रस्त होकर सोची ॥२९॥ मैंने यद्यपि धर्म के लिए बहुत अधिक व्यय किया फिर भी मेरे पास बहुत अधिक सुवर्ण और चाँदी इत्यादि हैं ॥३०॥ उसने ज्ञान पूर्वक यह सोचा कि इसे मैं श्रोत्रिय ब्राह्मणों को दे दूँ । इस तरह से विचार करके मोहिनी ने नगर के ब्राह्मणों को बुलाया ॥३१॥ हे राजन्! वे ब्राह्मण यह जानकर नहीं गये कि यह भयङ्कर दान है । उसके बाद उसने अपने धन का विभाग किया॥३२॥ उसके एक भाग को उसने दासियों को दे दिया और दूसरे भागों का उसने विदेशियों को दे दिया । हे राजन् ! मोहिनी स्वयं निर्धन हो गयी ॥३३॥ उसके बाद अपनी मृत्यु को जानकर तथा अपने सन्निकट यम को आये जानकर दासियों को उसने मुक्त कर दिया और वे सब धन लेकर अपने अभिप्रेत स्थान पर चली गयीं ॥३४॥ जब वह ज्वर से मुक्त हो गयी उस समय उसने जो धन दिया था वह निश्चित रूप से आयेगा इस तरह से उसने सोचा ॥३५॥ हे राजन् ! वह अठारह दिन का उपवास की अपनी शेष

एकाजरद्गवानामसखी तस्य महीपते !। सा तामुपचचाराऽऽशु पथ्यादिभिरतन्द्रिता ॥३७॥
कियद्भिर्वासरैः सा तु पूर्णाहारा व्यजायत। तस्या जरद्गवायास्तु गृहेभुक्तं स्म लज्जया ॥३८॥

मया स्थितं सुखेनाऽत्र दुःखमद्य समागतम् ।
दारिद्र्यान्न मया स्थेयं सा चिन्त्येति गताऽन्यतः ॥३९॥

गच्छन्ती सावनेराजन्मोहिनी पुरतस्करैः। इतिमत्वा विनिहता गृहीत्वायात्यसौधनम् ॥४०॥
धनमप्राप्य तैस्तस्याः सकाशात्पुरतस्करैः। श्वसन्ती सा परित्यक्तातस्मिन्नेव वनेनृप !॥४१॥

अथ वैखानसः कश्चित्प्रयागस्याऽस्य वै जलम् ।
बिभ्रत्कमण्डलौ राजन्नत्राऽरण्ये समाययौ ॥४२॥

अथ तां पतितां वीक्ष्य शस्त्रविक्षतविग्रहाम्। याचमानामिदं राजञ्जीवनं हस्तसञ्ज्ञया ॥४३॥

वैखानस उवाच

का त्वं केन शितैः शस्त्रैः सक्षतीकृतविग्रहा ।
एकाकिनी किमर्थंवा निर्जनारण्यमागता ॥४४॥

इन्द्रप्रस्थगतस्येदं प्रयागस्य जले शुभे। भाग्योदयेन केनाऽपि प्रापितं प्रियकाम्यया ॥४५॥

इत्युक्ता तेन सा वक्तुमक्षमा व्याददे मुखम् ।
पातुं तद्वारि महिषी भवेयमिति वाञ्छया ॥४६॥

अथैतस्यप्रयागस्य पातितेऽम्बुनि तन्मुखे। तत्याज जीवितं सातु मोहिनीगणिकानृप !॥४७॥
प्राणप्रयाणकाले तु महिषीत्वमवाञ्छत। अतः सा महिषी जाता द्राविडे वीरवर्मणः ॥४८॥
सम्भूय केरलाधीशगृहे तीर्थाम्बुपानतः। कुलशीलधनैश्वर्यसयुक्तस्य महीपतेः॥४९॥

आयु में वह ज्वर से मुक्त हो गयी ॥३६॥ उसकी एक जरद्गवा नाम की दासी ने निरालस होकर उसका पथ्य आदि से शीघ्र ही उपचार किया ॥३७॥ कुछ ही दिनों में वह पूर्ण आहार वाली हो गयी । वह उस जरद्गवा के घर पर लज्जा पूर्वक भोजन करती थी ॥३८॥ मैं यहाँ पर सुखपूर्वक रही आज मुझ पर दुःख आ गया हैं । दारिद्र्य के साथ मुझे यहाँ नहीं रहना चाहिए इस तरह से सोचकर वह अन्यत्र चली गयी॥३९॥ हे राजन् ! वन में जाती हुयी उसके विषय में नगर के चोरों ने यह धन लेकर जा रही है यह सोचकर उसे मार दिया ॥४०॥ हे राजन् ! उससे धन न पाकर नगर के चोर श्वास लेती हुयी उसको वन में ही छोड़ दिये ॥४१॥ उसके पश्चात् कोई वैखानस इस प्रयाग के जल को अपने कमण्डलु में लेकर उस वन में आये ॥४२॥ उसके पश्चात् शस्त्रों से कटे हुए शरीर वाली उसको देखकर तथा हाथों के इशारे से जल माँगती हुयी देखकर ॥४३॥ **वैखानस ने कहा—** तुम कौन हो ? किसने तीक्ष्ण शस्त्र से तुम्हारे शरीर को क्षत विक्षत किया है ? तुम अकेली इस निर्जन वन में क्यों आयी हो ?॥४४॥ हे शुभे ! इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान प्रयाग का जल है, अपने किसी भाग्योदय के द्वारा अपने कल्याण की इच्छा से इसे प्राप्त किया है ॥४५॥ उनके द्वारा इस तरह से कहने में असमर्थ उसने अपना मुख खोल दिया । मैं रानी होऊँ इस कामना से उस जल को पीने के लिए मुख खोला ॥४६॥ उसके बाद इस प्रयाग के जल को उसके मुख में गिराते ही हे राजन् ! मोहिनी ने अपने प्राणों का त्याग कर दिया ॥४७॥ चूकि वह मरने

हेमगौरं ततः साङ्गं बभार कमलेक्षणा। अतस्तस्य पिता नाम हेमाङ्गीति चकार ह ॥५०॥
एकदा सा तु हेमाङ्गी हेमाभरणभूषिता। कलायाः स्ववयस्याया मन्त्रिपुत्र्यागृहं ययौ ॥५१॥
तत्र यावकतैलेन स्नापिता भोजिता च सा। विविधान्नैस्तदा राजन्निविष्टा वरविष्टरे ॥५२॥
पुष्पोद्ग्रथितधमिल्लाक्षामक्षौमविभूषिता । कलां प्रोवाचदधती मुखे ताम्बूलवीटिकाम्॥५३॥

हेमाङ्ग्युवाच

कले ! कलय मे वाक्यं कोकिलाकलभाषिणि ! ।
गृहेयदद्भुतं वस्तु मामभिदर्शय ॥५४॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्ये इन्द्रप्रस्थस्थप्रयागमहत्त्वर्णनं नाम विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२०॥

दो सौ एक्यीसवाँ अध्याय

नारद उवाच

इत्युक्तासा कला राजंस्तयानृपतिभार्यया। स्वकोशात्स्वर्णमञ्जूषामानाय्य विदधेपुरः ॥१॥
उवाच च महाराजभार्येऽस्यां महदद्भुतम् । पुस्तकं वर्तते देवि ! तत्र चित्राणि सन्ति वै॥२॥

के समय रानी होने की कामना की अतएव द्राविड़ राजा वीर कर्म की रानी हुयी ॥४८॥ कुल, शील और धनैश्वर्य से युक्त राजा के घर में उत्पन्न होकर ॥४९॥ उसने सुवर्ण के समान गौरवर्ण के अङ्गों को धारण किया । उसके नेत्र कमल के समान सुन्दर थे । अतएव उसके पिता ने उसका नाम हेमाङ्गी रखा ॥५०॥ एक बार वह हेमाङ्गी सुवर्ण के आभूषणों को धारण करके अपनी सखी तथा मन्त्री की पुत्री कला के घर गयी ॥५१॥ वहाँ पर यावक के तेल से स्नान तथा अनेक प्रकार के अन्नों से भोजन कराकर जब वह श्रेष्ठ शय्या पर बैठी ॥५२॥ उसकी चोटी पुष्पों से गूंथी गयी थी तथा वह महीन रेशमी वस्त्र धारण की थी अपने मुख में ताम्बूल के बीड़ा को धारण करके कला से कहा ॥५३॥ **हेमाङ्गी ने कहा—** हे कोयल के समान मधुर बोलने वाली कले ! मेरी बात सुनो । तम्हारे घर में जो अद्भुत वस्तु हो उसे तुम मुझे दिखाओ ॥५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य वर्णन के अन्तर्गत प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२०।।

द्रविड़ देश के राजा वीरवर्मा की रानी हेमाङ्गी के द्वारा इन्द्रप्रस्थ तीर्थ करने के लिए अपने पति से प्रतिज्ञा का वर्णन करना और उन दोनों का तीर्थ यात्रा करने के लिए प्रस्थान करना

नारदजी ने कहा— इस तरह से राजा की पत्नी के द्वारा कहे जाने पर कला ने अपने केश से सुवर्ण की मञ्जूषा लाकर उसके सामने रखा ॥१॥ और कहा हे महाराज की पत्नी इसमें अत्यन्त अद्भुत

उद्घाटय दृश्यतां किञ्चित्किंकिमस्त्यत्रपुस्तके ।
रंस्यते ते मनो नूनं तत्रस्थालेख्यदर्शने ॥३॥
इत्युक्ता भूपपत्नी सा दास्या तामुदघाटयत् ।
मञ्जूषां तत्र संस्थं च पुस्तकं पाणिनाऽग्रहीत् ॥४॥
तत्राऽवलोकयामास साऽवतारान्समासतः । पूर्वं ततस्तु भूगोलं पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥५॥
तत्रान्धकारसंयुक्ताभूमिर्दृष्टाऽथ काञ्चनी । एतयोरन्तरेराजँल्लोकालोकश्च पर्वतः ॥६॥
सप्तद्वीपास्ततो दृष्टाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः । एतेषु नद्यः शैलाश्च खण्डानि तु महामते ॥७॥
एतद्भारतखण्डं सा पश्यन्ती भूपतिप्रिया । यमुनाजाह्नवीमुख्याः सरितः समवैक्षत ॥८॥
यमुनातीरगं राजन्निद्रप्रस्थमिदं शुभम्। ददर्श सा महाभागा तीर्थं व्रजयुतं नृप ! ॥९॥
अत्र तीर्थमिदं दृष्ट्वा प्रयागं ब्रह्मनिर्मितम्। पूर्वजन्मकृतं कर्म सा सस्मार मनस्विनी ॥१०॥
ततस्तूष्णीं समुत्थाय तूर्णं सा स्वगृहं ययौ ।
निश्चित्येति न भोक्ष्यामि ततः प्रस्थाय तीर्थकम् ॥११॥
तदैव सा तु हेमाङ्गी सह गन्तुमसुप्रियम् । वीरवर्माणमाहेदं तीर्थराजं प्रिया सती ॥१२॥

हेमाङ्ग्युवाच

भोभोः प्राणपते ! वाक्यं मदीयंश्रृणु धर्मदम् ।
विधेहिच महाभाग तूर्णं पूर्णोभविष्यति ॥१३॥
पुराऽहं मोहिनी नाम वेश्या च बहुपापकृत् ।
यौवने वार्द्धके किञ्चिद्धर्मे जाता मतिर्मम ॥१४॥
पापेनोपार्जितं वित्तं धर्मेण व्ययितं मया। निर्द्धनाऽहं यदा राजन्निर्गता निजपत्तनात् ॥१५॥

पुस्तक है, और इसमें तुम्हारे चित्र भी हैं ॥२॥ निकालो और देखों इसको देखने में तुम्हारा मन अवश्य लगेगा ॥३॥ इस तरह से कहने पर राजा की पत्नी ने उसको दासी से मञ्जूषा को खुलवाया और उसमें विद्यमान पुस्तक को अपने हाथ में ले लिया ॥४॥ उसमें उसने थोड़े से अवतारों को देखा । उसके पहले उसने पचास करोड़ योजन वाले भूगोल को देखा ॥५॥ उसमें अन्धकार युक्त सुवर्ण भूमि को उसने देखा। इन दोनों के बीच में हे राजन् ! उसने लोकालोक पर्वत को देखा ॥६॥ उसके बाद सात समुद्रों से घिरे हुए सात द्वीपों को उसने देखा । हे महामते ! उनमें विद्यमान नदियों, पर्वतों और खण्डों को उसने देखा॥७॥ इस भरत खण्ड को देखती हुयी वह राजा की पत्नी यमुना तथा गङ्गा आदि मुख्य नदियों को देखा ॥८॥ हे राजन् ! उसने यमुना के तीर पर विद्यमान् तीर्थसमूह से युक्त इन्द्रप्रस्थ को देखा ॥९॥ उसमें ब्रह्माजी द्वारा निर्मित प्रयाग तीर्थ को देखकर उस मनस्विनी ने अपने पूर्व जन्म के कर्मों का स्मरण किया ॥१०॥ उसके पश्चात् चुपचाप वह उठकर अपने घर चली गयी । उसने निश्चित किया कि उस तीर्थ के लिए प्रस्थान किए बिना मैं भोजन नहीं करूँगी ॥११॥ उसी समय हेमाङ्गी ने अपने प्राण प्रिय वीरवर्मा के साथ जाने के लिए उस तीर्थराज को बतलाया ॥१२॥ **हेमङ्गी ने कहा**— हे प्राणपते ! मेरे धर्ममय बातों को आप सुनें । आप उसे शीघ्र पूरा करने की प्रतिज्ञा करें ॥१३॥ पूर्वजन्म में जवानी में बहुत पाप करने वाली मैं

तदामां निर्जनेऽरण्ये यान्तींजघ्नुस्तुतस्कराः। वृथादारिद्र्यसन्तप्तां पापाधनजिघृक्षया ॥१६॥
शितशस्त्रक्षताङ्गीं मां श्वसन्तीं गतचेतनाम्। विसृज्य तस्करास्तत्र गताहतमनोरथाः ॥१७॥
ततो वैखानसो ह्येकः प्रयागस्य जलं वहन्।
इन्द्रप्रस्थगतस्यैव वने तत्र समागतः ॥१८॥
तत्रमां पतितांदृष्ट्वा तदवस्थां स तापसः। का त्वं कुतःकिमर्थं वा हता केनेति पृष्टवान्॥१९॥
तदा किमपिनोक्तं मे प्रार्थितं पुण्यममबु तत्।
तेन तन्मे मुखे क्षिप्तं ततोऽहं देहमत्यजम् ॥२०॥
प्राणप्रयाणकालेतु वारितत्सर्वकामदम्। श्रुत्वेति वाञ्छितवती महिषीस्यामितिप्रभो ! ॥२१॥
तस्यतीर्थाम्भिसो राजन्प्रसादात्ते गृहेश्वरी। जाताऽहंसत्कुलाचारशीलाशीलपयोनिधेः ॥२२॥
साम्प्रतं द्रष्टुमिच्छामि शक्रप्रस्थगतं नृप !। प्रयागं तीर्थराजं तं भवता सह कामदम् ॥२३॥
प्रस्थास्येऽहं यदा राजन्तीर्थराजं प्रति प्रभो !।
तदाऽहमन्नं भोक्ष्यामि मयेति विहितः पणः ॥२४॥

राजोवाच

कथमेतद्विजानीयां त्वदुक्तं चललोचने !। प्रतीतं कुरु मे भद्रे ! त्वदुक्तं करवाण्यहम् ॥२५॥

नारद उवाच

इत्युक्ते तेन भूपेन खे वागित्यभवत्तदा ॥२६॥

आकाशवागुवाच

सत्यमुक्तं वचो राजन्ननया तव भार्यया। इन्द्रप्रस्थे गते पुण्ये प्रयागे तीर्थपुङ्गवे ॥

वेश्या थी। वृद्धावस्था में मेरी बुद्धि धर्म में लग गयी ॥१४॥ पाप से कमाये हुए धन को मैंने धर्म में खर्च कर दिया। हे राजन् ! निर्धन होकर जब मैं अपने नगर से निकल गयी ॥१५॥ उस समय निर्जन वन में जाती हुयी मुझको चोरों ने धन प्राप्त करने की इच्छा से द्रारिद्र्य से सन्तप्त मुझको मार दिया॥१६॥ तीक्ष्ण शस्त्र से क्षत अङ्गों वाली बेहोश मुझको छोड़कर विफल मनोरथ वाले वे चले गये ॥१७॥ उसके पश्चात् एक वैखानस इन्द्रप्रस्थ के ही प्रयाग के जल को लेकर उस वन में आये ॥१८॥ वहाँ पर मुझको उस अवस्था में गिरी हुयी मुझसे उस तपस्वी ने पूछा तुम कौन हो ? कहाँ से किसलिए आयी हो और किसने तुम्हे मारा है ॥१९॥ उस समय मैं कुछ बोल न सकी उनसे पवित्र जल माँगी। उन्होंने मेरे मुँह में जल डाल दिया उसके बाद मैंने प्राणत्याग कर दिया ॥२०॥ उस जल को सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला सुनकर मैंने प्राण त्याग के समय मैंने चाहा कि हे प्रभो ! मैं रानी होऊँ ॥२१॥ हे राजन् ! उस तीर्थ की कृपा से मैं सद्वंश और सदाचार तथा शील के सागर आपकी पत्नी हुयी ॥२२॥ हे राजन्! इस समय इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले उस तीर्थ राज प्रयाग को मैं देखना चाहती हूँ ॥२३॥ हे प्रभो ! जब मैं तीर्थराज के लिए प्रस्थान करूँगी तब ही अन्न खाऊँगी यह मैंने प्रतीज्ञा की है ॥२४॥ **राजा ने कहा—** हे चञ्चल नेत्रों वाली ! तुम्हारी कही बात को मैं कैसे जानूं। हे भद्रे ! तुम विश्वास करो तुम्हारी कही हुयी बात को मैं करूँगा ॥२५॥ **नारदजी ने कहा—** उस राजा के इस तरह

तत्र गत्वा कुरु स्नानं लप्स्यसे यद्यदिच्छसि ॥२७॥

नारद उवाच

निशम्येतिततो वाणींनृपो गगनसम्भवाम्। दण्डवत्पतितो भूमौ तद्वक्तारं नमाम्यहम्॥२८॥
अथ मन्त्रिणमाहूय राज्यमारोप्य तत्र वै। तया सह समारुह्य रथं तीर्थवरं ययौ॥२९॥
कतिभिर्वासरैरत्र हेमाङ्ग्या सह चाऽऽययौ। उपजह्ने तीर्थराजे क्षीरं भार्यायुतो नृपः॥३०॥
सस्नतुस्तौशिवे तीर्थे दम्पती तत्र कामदे । प्रयागस्नानपुण्येन वैकुण्ठप्राप्तिरस्त्विति॥३१॥
प्रतीच्छया स्नातमात्रे मिथुने तत्र भूपते !। आगतौ सुरशार्दूलौ हंसपक्षीन्द्रवाहनौ ॥३२॥
आगतौतौ समालोक्य वीरवर्मा स भूपतिः। प्रणम्य शिरसा देवौ तुष्टावैकाग्रमानसः॥३३॥

राजोवाच

नमो वां सुरशार्दूलौ बिभ्रद्भ्यामसितारुणे। वपुषी क्षौमवासांसि हेमसिन्दूरभानि च ॥३४॥
वन्दे युवां सत्त्वरजःप्रधानौ चराचरस्य स्थितिसर्गहेतू ।
वैकुण्ठसत्याद्भुतलोकनाथौ चतर्द्विबाहू खगराजवाहौ ॥३५॥
वैराग्यसंरागवतां जनानां सन्मुक्तिभुक्तिप्रतिपादकौ च ।
वृन्दारकैर्वन्दितपादपद्मौ सद्भावनम्रेण नमामि मूर्ध्ना ॥३६॥
गोविन्दवृन्दारकवन्द्यपाद ! न कोऽपि जानाति तव स्वरूपम् ।
यतः परस्त्वं प्रकृतेश्च पुंसो मनोवचोभ्यामपि दूरवर्ती ॥३७॥

से कहने पर उस समय आकाशवाणी हुयी ॥२६॥ **आकाशवाणी ने कहा**— आपकी इस पत्नी ने सत्य कहा है, इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान तीर्थ श्रेष्ठ प्रयाग में जाकर तुम स्नान करो, तुम जो चाहोगे वह प्राप्त करोगे॥२७॥ **नारदजी ने कहा**— उसके बाद इस आकाशवाणी को सुनकर उसके सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करके राजा ने कहा कि इस कहने वाले को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२८॥ इसके बाद मन्त्री को बुलाकर उसको राज्य का भार देकर राजा रथ पर रानी के साथ चढ़कर उस तीर्थ श्रेष्ठ में गये ॥२९॥ कई दिनों के बाद राजा हेमाङ्गी के साथ यहाँ आये । राजा इस श्रेष्ठ तीर्थ में राजा रानी के साथ दुग्ध लाये ॥३०॥ वे दम्पती उस सर्वकाम प्रद तीर्थ में स्नान किए और उन्होंने सोचा कि प्रयाग स्नान जन्य पुण्य से हमें वैकुण्ठ की प्राप्ति हो ॥३१॥ उन दोनों के स्नान करके प्रतीक्षा करने पर हे राजन् ! वहाँ हँस बाहन ब्रह्माजी तथा गरुड़ वाहन श्रीभगवान् आये ॥३२॥ उन दोनों को आये हुए देखकर राजा वीरवाहन ने उन दोनों को प्रणाम करके एकाग्रमन से स्तुति की ॥३३॥ **राजा ने कहा**— श्याम तथा अरुण वर्ण के शरीर को धारण करने वाले तथा सुवर्ण तथा सिन्दूर वर्ण के वस्त्र धारण करने वाले आप दोनों को नमस्कार है॥३४॥ सत्त्वगुण तथा रजोगुण प्रधान तथा चराचर की सृष्टि तथा पालन करने वाले आप दोनों की मैं वन्दना करता हूँ । आप दोनों वैकुण्ठ तथा सत्यलोक के स्वामी तथा चार एवं दो भुजाओं को धारण करने वाले आप दोनों के वाहन पक्षिराज हैं ॥३५॥ वैराग्य तथा राग युक्त मनुष्यों को आप दोनों मुक्ति तथा भोग प्रदान करने वाले हैं । आप दोनों के चरण कमल देवताओं से वन्दित हैं, मैं आपलोगों को सद्भाव पूर्वक झुके हुए शिर से नमस्कार करता हूँ ॥३६॥ हे देवताओं के द्वारा वन्दनीय चरणों वाले भगवन् गोविन्द

धन्यः स लोके पुरुषः परात्मन्यो विश्वमेतत्क्षणिकं विचिन्त्य ।
अनन्यचेता भजति त्वदीयपादारविन्दं मुनिवृन्दवन्द्यम् ॥३८॥
त्वत्पादसेवनं नाम तीर्थमेतच्च दुर्लभम् । जनानां भजमानानां वाञ्छितार्थफलप्रदम् ॥३९॥
तथाऽप्येतद्द्वयं सेव्यं मुक्त्यै नान्यलब्धये। अन्यकामनया यस्तु सेवते स तु वञ्चितः ॥४०॥
सन्तो भवन्तमासेव्य तीर्थमेतञ्चमुक्तिदम् । नान्यमिच्छन्त्यतिक्रम्यसर्वलोकाञ्जिगीषवः ॥४१॥

नारद उवाच

इत्यभिष्टूय देवेशं लोकेशं स च भूपतिः । तस्थौ यदा तदा राजन्हेमाङ्गीसा जगाद ह ॥४२॥

हेमाङ्ग्युवाच

पद्मापते पद्मपलाशलोचन ! ब्रह्मन्मरालासन ! भारतीगुरो ! ।
नमो युवाभ्यां यदि दीनचेतसे प्रसीद तं तारयतं भवाबधेः ॥४३॥
तीर्थस्याऽस्य प्रसादेन जाताऽहं महिषी प्रभो ! ।
युवयोर्दर्शनं जातं देवानामपिदुर्लभम् ॥४४॥
युवामखिलचित्तज्ञौ दत्तं नौ मानसेप्सितम् । स्नानकालेयदावाभ्यांविहितंपारमार्थिकम् ॥४५॥
एवं ताभ्यामुभाभ्यां तौ संस्तुतौ देवपुङ्गवौ। प्रसन्नवदनौ भूत्वा प्रोचतुर्दम्पती प्रति॥४६॥

हरिब्रह्माणाबूचतुः

धन्या त्वमसि हेमाङ्गि ! यतोऽयं तारितः पतिः ।
त्वया राज्यसुखासक्तचितोऽप्येतत्सगागमात् ॥४७॥

आपके स्वरूप को कोई भी नहीं जानता है, क्योंकि आप मन और वाणी के अविषय भूत पुरुष हैं तथा प्रकृति से परे हैं ॥३७॥ संसार में वह पुरुष धन्य है जो संसार को क्षणिक जानकर अनन्य मन से मुनि वृन्द से वन्दित आप परमात्मा के चरणारविन्दों का भजन करता है ॥३८॥ यह दुर्लभ तीर्थ है । आपके चरण कमलों का भजन करने वाले लोगों को अभिप्रेत अर्थ रूपी फल प्रदन करता है ॥३९॥ फिर भी आपके दोनों चरणों की सेवा मुक्ति की प्राप्ति के लिए करना चाहिए अन्य वस्तु की प्राप्ति के लिए नहीं । अन्य वस्तु की कामना से जो आपकी सेवा करता है वह ठगा गया है ॥४०॥ सन्तजन आपकी तथा मुक्ति प्रदान करने वाले इस तीर्थ की सेवा करके सभी लोकों को जीतने की इच्छा को छोड़कर दूसरी किसी भी वस्तु को नहीं प्राप्त करना चाहते हैं ॥४१॥ **नारदजी ने कहा—** देवेश ब्रह्माजी तथा लोकेश श्रीभगवान् की इस प्रकार से प्रार्थना करके राजा जब चूप हो गये तो हेमाङ्गी ने कहा ॥४२॥ **हेमाङ्गी बोली—** हे कमल दल के समान नेत्रों वाली लक्ष्मीपते तथा सरस्वतीजी के पति हंस पर बैठने वाले ब्रह्माजी आप दोनों को नमस्कार है । आप प्रसन्न होएँ और दीन अन्तःकरण वाले राजा का उद्धार करें ॥४३॥ हे प्रभो ! इस तीर्थ की कृपा से मैं रानी हुयी और देवताओं के लिए दुर्लभ आप दोनों का दर्शन मुझे मिला ॥४४॥ आप दोनों सबों के अन्तःकरण को जानते हैं स्नान के समय हमदोनों ने जो पारमार्थिक कामना की उसको आपने प्रदान कर दिया है ॥४५॥ इस तरह से उन दोनों के द्वारा स्तुति किए गये वे देव श्रेष्ठ प्रसन्न मुख वाले होकर उन पति पत्नी के प्रति कहे ॥४६॥ **श्रीहरि और ब्रह्माजी ने कहा—** हे हेमाङ्गी तुम धन्य हो कि तुमने अपने पति को तार दिया । राज्य सुख में आसक्त चित्त वाले तुम्हारे द्वारा ये राजा यहाँ लाये

इत्युक्त्वा तौ समारुह्य गरुडं हंसमेव च। जग्मतुस्तौ सुरश्रेष्ठौ सत्यलोकं नरेश्वर !॥४८॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा तौ समारुह्य गरुडं हंसमेव च। जग्मतुस्तौ सुरश्रेष्ठौ सत्यलोकं नरेश्वर !॥४९॥

तत्र ते ब्रह्मणा सर्वे पूजिता विधिवन्नृप !। तस्य चित्तानुरोधेन तस्थुरेकं मुहूर्तकम् ॥५०॥

अथ ताभ्यामुभाभ्यां स दम्पतिभ्यां समं हरिः ।
आरुह्यगरुडं श्रीमद्वैकुण्ठमगमन्नृप ! ॥५१॥

इत्येतत्कथितं तुभ्यं तीर्थराजस्य वैभवम्। पुण्यं समस्तपापघ्नं यशस्यं सुतदं नृप !॥५२॥

यएतच्छृणुयान्नित्यं पठेदपि च मानवः। य गच्छेद्वाञ्छितं स्थानंसत्यमतन्मयोदितम् ॥५३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे इन्द्रप्रस्थमाहात्म्ये तत्रस्थप्रयागवर्णनं नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२१॥

दो सौ बाइसवाँ अध्याय

नारद उवाच

आकर्णय शिबे ! राजन्वर्णयामितवाऽग्रतः। पुण्यंयशस्यमायुष्यंकाश्यामाहात्म्यमुत्तमम् ॥१॥

गये॥४७॥ विषयों में आसक्त रहने वाले राजाओं को ऐसी मुक्ति दुर्लभ है जैसी की तुम्हारे पति को इस तीर्थ की कृपा से प्राप्त हुयी है ॥४८॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से कहकर हंस और गरुड़ पर चढ़कर वे देववर्य सत्यलोक में गये । हे राजन् ! वे वहाँ पर ब्रह्माजी के द्वारा पूजित होकर उनके मन के अनुसार वहाँ एक मुहूर्त ठहरे । उसके पश्चात् वे दोनों पति-पत्नी श्रीहरि के साथ गरुड़ पर चढ़कर हे राजन्! श्रीमद्वैकुण्ठ लोक में चले गये ॥४९-५१॥ इस तरह से मैंने तुमको तीर्थराज के पवित्र वैभव को सुनाया । हे राजन् ! यह सभी पापों को विनष्ट करने वाला तथा यश एवं पुत्र प्रदान करने वाला है ॥५२॥ हे राजन् ! जो इसको प्रतिदिन सुनता है अथवा पढ़ता है वह अपने अभिप्रेत लोक को प्राप्त करता है यह मैं तुमको सत्य कहता हूँ ॥५३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के इन्द्रप्रस्थ माहात्म्य के अन्तर्गत वहाँ पर विद्यमान प्रयाग के माहात्म्य का वर्णन करने वाला दो सौ इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२१।।

नारद शिवि संवाद के अन्तर्गत इन्द्रप्रस्थ स्थित काशी शिव काञ्ची इत्यादि तीर्थ सप्तक तथा भीमकुण्ड के माहात्म्य का वर्णन तथा उन तीर्थों से सम्बद्ध अनेक आख्यानों के वृत्तान्तों का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे राजन् ! शिवि तुम्हारे समक्ष मैं पवित्र, यश तथा आयु देने वाली इन्द्रप्रस्थ

इन्द्रप्रस्थतटस्थायां काश्यामेकस्तु पादपः। शिंशपाख्यो भवेद्राजन्पुरा पुण्ययुगे कृते ॥२॥
तत्रैको वायसो ह्यासीत्कृतनीडोवनस्पतौ। तस्याधस्तान्महासर्पः कोटरे वसति स्म ह ॥३॥
एकदा तस्य काकस्य भार्याण्डद्वयमालये। प्रतिमुच्य गता क्वाऽपि न नीडेस्वेसमागता॥४॥
स्वयमेव स काकस्तु पालयन्नण्डकद्वयम्। तामेव शिंशपामुच्चैरध्यतिष्ठन्महीपते !॥५॥
अथैकदा निशीथे तु महावात्या समागता। अभनक्छिंशपां राजन्मूलादपि दृढामपि॥६॥
वात्यया पात्यमानाया शिंशपायास्तदा तले। चूर्णितौ काकसर्पौ तौ गतप्राणौ बभूवतुः॥७॥

दिव्याङ्गास्ते त्रयो भूत्वा शिंशपावायसादयः ।
विमानत्रयमारूढाजग्मुःश्रीपतिकेतनम् ॥८॥

शिबिरुवाच

देवर्षे ! केन पुण्येन प्राप्ता तैर्मुक्तिदा पुरी। आसंस्ते के त्रयः सर्वं कथय नारद ! ॥९॥

नारद उवाच

कुरुजाङ्गलदेशीयो ब्राह्मणः श्रवणाभिधः। तस्यभार्या कुण्डानाम भ्राताऽभूच्चकुरण्टकः ॥१०॥

अस्नातभोक्ता नित्यं स केवलो मिष्टभुग्रहः ।
श्रवणस्तेन दोषेण बभूव ग्रामवायसः ॥११॥

कुरण्टकस्तुतद्भ्रातानास्तिकोऽभवदुल्बणः। श्रुतिस्मृतिपथोच्छेत्तादेवतानांचनिन्दकः ॥१२॥
तेन दोषेण स मृतो ह्यभवत्कालकुण्डली। सा कुण्डाश्रवणस्यस्त्रीबभूवोभयदोषभाक्॥१३॥

अतः सा स्थावरत्वं हि लब्ध्वाऽऽसीदुभयाश्रया ।
एतत्ते कथितं भूप ! तद्वृत्तं पूर्वजन्मनि ॥१४॥

के अन्तर्गत विद्यमान काशी का उत्तम माहात्म्य तुमको सुनाता हूँ सुनो ॥१॥ इन्द्रप्रस्थ के तट पर विद्यमान काशी में शिंशपा नामक एक वृक्ष सत्ययुग में था ॥२॥ वहाँ पर एक कौआ अपना घोंसला बनाकर रहता था उसकी नीचे खोंडरे में एक महान् सर्प रहता था ॥३॥ एक बार कौए की पत्नी अपने घोसलें में दो अण्डों को छोड़कर कहीं गयी वह अपने घोंसले में नहीं आयी ॥४॥ वह कौआ घोंसले में दोनों अण्डों को स्वयं पालते हुए हे राजन् उसी शिंशपा के ऊपर रहता था ॥५॥ एक दिन आधी रात को महावात्या (आँधी) आयी उसने शिंशपा को जड़ से उखाड़ दिया ॥६॥ उस आँधी से गिरते हुए शिंशपा के नीचे कौए और सर्प दोनों चूर-चूर हो गये ॥७॥ वे शिंशपा तथा कौए आदि दिव्य शरीर वाले होकर तीन विमानों पर चढ़कर श्रीभगवान् के लोक में चले गये ॥८॥ **शिबि ने कहा**— हे देवर्षे वे किस पुण्य के कारण मोक्ष देने वाली श्रीपति की नगरी में गये वे कौन थे ?॥९॥ **नारदजी ने कहा**— कुरुजाङ्गल देश के श्रवण नामक ब्राह्मण थे । उनकी पत्नी का नाम कुण्डा था और उसके भाई का नाम कुरण्टक था॥१०॥ वह बिना स्नान किए ही खता था और सदा मिठा खाता था । उसी दोष के कारण वह श्रवण ग्राम में रहने वाला कौआ हुआ ॥११॥ उसका भाई कुरण्टक घोर नास्तिक था । वह श्रुतियों और स्मृतियों का उल्लंघन करने वाला तथा देवताओं की निन्दा करने वाला हुआ । उसी दोष के कारण वह काल सर्प हुआ उसकी पत्नी कुण्डा दोनों के दोष का पात्र थी ॥१२-१३॥ अतएव वह स्थावरत्व को प्राप्त करके दोनों

अतः परं प्रवक्ष्यामि तेषां पुण्यं यतस्त्रयः । प्रापुस्तेन पुरीं रम्यां काशीं वैश्वेश्वरींनृप ! ॥१५॥
ग्रामान्तरादेकदा तौ प्रत्यायातौ निजालयम् । कस्यचित्पथिकस्याऽथ कूपमग्नां पयस्विनीम् ॥१६॥
अवलोक्य तदुद्धारं चक्रतुस्तेन नोदितौ। ताभ्यां गदितमाकर्ण्यकुण्डासाध्वित्यभाषत ॥१७॥
ते त्रयस्तेन पुण्येन मरणं प्राप्य दुर्लभम् । इन्द्रप्रस्थतटस्थायां काश्यां वैकुण्ठमारुहन् ॥१८॥
इयं काशी महेशस्य पुरी यद्यपि भूपते !। तथाप्यस्यां मृतो जन्तुर्वैकुण्ठेस्यात्सुखीहरेः ॥१९॥
एतत्ते कथितं राजन्काश्यामाहात्म्यमुत्तमम्। किमन्यच्छ्रोतुमिच्छातेविद्यतेतद्वदस्व मे ॥२०॥

शिबिरुवाच

मुने ! त्वया महेशस्य क्षेत्रत्रयमुदीरितम्। काशी च शिवकाञ्ची च गोकर्णंचतथाऽपरम्॥२१॥
एकस्या महिमा प्रोक्तस्त्वया काश्या महामुने ! ।
गोकर्णशिवकाञ्च्योश्च कथ्यतां यदि विद्यते ॥२२॥

नारद उवाच

गोकर्ण केवलं शैवं क्षेत्रं परमपावनम् । तस्मिन्मृतो नरो राजञ्छिवःस्यान्नाऽत्रसंशयः ॥२३॥
स्थले जलेऽन्तरिक्षे च जन्तुस्तत्र म्रियते चेत् ।
तदा कैलासशिखरेशिवः सम्भूयदीव्यति ॥२४॥
अत्र गोकर्णतीर्थेसान्मृतस्य न पुनर्भवः । शिवेन स समं राजन्मुक्तिंयास्यतिकर्हिचित्॥२५॥
अस्याऽऽपि तव माहात्म्यं गोकर्णस्य महामते ! ।
वर्णयामि यदाऽऽकर्णि मया ब्रह्ममुखात्प्रभो ! ॥२६॥
प्रयागादेकगव्यूतौ गुरुतीर्थसमीपगः। मर्यादापर्वतो योऽयं दृश्यते पुण्यदर्शनः॥२७॥

के आश्रय भूत शिंशपा हुयी । राजन् यह मैंने उन सबों के पूर्वजन्म के वृत्तान्त का वर्णन किया ॥१४॥ अब उन तीनों के पुण्य को बतलाता हूँ । हे राजन् ! उसी पुण्य के कारण वे विश्वेश्वर की नगरी को प्राप्त किए ॥१५॥ एक बार वे दोनों दूसरे ग्राम से अपने घर आये । किसी पथिक की कूएँ में गिरी हुयी गौ को ॥१६॥ उसके द्वारा प्रेरित होकर उन दोनों उसको निकाला । उन दोनों के द्वारा कहे गये को सुनकर साध्वी कुण्डा ने कहा ॥१७॥ उसी के कारण वे तीनों मरकर इन्द्रप्रस्थ के तट पर विद्यमान काशी में दुर्लभ वैकुण्ठ को प्राप्त किया ॥१८॥ हे राजन् ! यद्यपि यह काशी महेश की पुरी है फिर भी इसमें मरने वाला जीव सुखी होकर वैकुण्ठ में जाता है ॥१९॥ हे राजन् ! मैंने आपको यह काशी का माहात्म्य बतलाया। तुम्हारी किस दूसरी वस्तु को सुनने की इच्छा है मुझे बतलाओ ॥२०॥ **शिवि ने कहा—** हे मुने ! आपने महेश के तीन क्षेत्रों को कहा था, काशी, शिवकाञ्ची और गोकर्ण तीर्थ ॥२१॥ हे महामुने ! आपने केवल काशी का माहात्म्य बतलाया है । आप गोकर्ण तथा शिवकाञ्ची का यदि कोई माहात्म्य हो तो उसे बतलाएँ॥२२॥ **नारदजी ने कहा—** केवल गोकर्ण शिवजी का अत्यनत पवित्र तीर्थ है । हे राजन् ! इसमें मरने वाला मनुष्य साक्षात् शिव हो जाता है ॥२३॥ पृथिवी पर जल में अथवा अन्तरिक्ष में यदि कोई मरता है तो वह कैलास पर्वत के शिखर पर शिव होकर क्रीड़ा करता है ॥२४॥ इस गोकर्ण तीर्थ में मरने वाले का पुनः संसार नहीं होता है । वह शिवजी के साथ हे राजन् ! मुक्ति को भी प्राप्त करता है ॥२५॥ हे

तत्रैकः कर्कटो नाम भिल्ल आसीत्सुदारुणः ।
तस्य भार्याजरानामसाजघ्नेपतिपञ्चकम् ॥२८॥
सा जराविषसंयुक्तं षष्ठं कर्कटकं तदा। अकरान्मोदकं हन्तुं तदा तेन स्वसुः श्रुतम् ॥२९॥
निजाया मुखतो राजन्भिल्लेन च महात्मना ।
बालांतांहन्तुमारेभे कर्कटो भृशदारुणः ॥३०॥
खड्गपाणिर्यदा याति तद्वधाय स भिल्लपः ।
यावत्तावत्तुसापापा ज्ञात्वा निजवधोद्यमम् ॥३१॥
वनमभ्यद्रवद्भीता निजप्राणपरीप्सया। तामनुद्रवता तेन कर्कटेन महीपते ! ॥३२॥
अत्र गोकर्णतीर्थे तु गृहीता खड्गपाणिना। शिरश्छित्त्वा तु खड्गेन पातयित्वाजले वपुः ॥३३॥
तस्य गोकर्णतीर्थस्य निजस्थानमगाच्च सः ।
सा जरातत्र गोकर्णेपापाऽपिनिधनंगता ॥३४॥
कैलासशिखरे राजन्पार्वत्या अभवत्सखी। अहं कथितवानेतत्तव गोकर्णवैभवम् ॥३५॥
शिवकाञ्च्याश्च माहात्म्यं पवित्रं वर्णयामि ते ।
इन्द्रप्रस्थतटस्थायां शिवकाञ्च्यामपि प्रभो ! ॥३६॥
गतिः सा परमा पुंसां गोकर्णे या मयोदिता ।
अत्र श्रीमन्महादेवोविष्णुंसर्वसुरेश्वरम् ॥३७॥
आराध्य भक्तराजत्वं लेभे ज्ञानं च तात्त्विकम् ।
अतः सर्वेवयंपुत्रा ब्रह्मणस्तंमहेश्वरम् ॥३८॥

महामते! इस गोकर्ण तीर्थ का माहात्म्य तुमको बतलाता हूँ जिसको मैंने ब्रह्माजी के मुख से सुना था॥२६॥ प्रयाग से दो कोश की दूरी पर गुरुतीर्थ के समीप जो यह पवित्र मर्यादा पर्वत दिखता है ॥२७॥ वहाँ पर एक कर्कट नामक भयङ्कर भिल्ल था । उसकी पत्नी का नाम जरा था उसने अपने पाँच पतियों को मार दिया था ॥२८॥ उस जरा ने अपने पति कर्कट को मारने के लिए विष युक्त मिठाई बनाया । उसी समय हे राजन् ! उसने अपनी बहन के मुख से उस बात को सुनकर उस बाला को भयङ्कर कर्कट ने मारना शुरु किया ॥२९-३०॥ हाथ में खड्ग लेकर वह भिल्ल उसको मारने के लिए गया तो वह पापिनी अपने को मारने के प्रयास को जानकर ॥३१॥ डरकर अपने प्राणों को बचाने के लिए वन में भागी । हे राजन्! वह कर्कट उसके पीछे दौड़ा ॥३२॥ इस गोकर्ण तीर्थ में खड्ग लिए हुए उसने उसको पकड़ लिया । खड्ग से उसके शिर को काटकर उसके शरीर को उसने जल में फेंक दिया ॥३३॥ उस गोकर्ण तीर्थ से वह अपने घर चला आया वह पापिनी जरा गोकर्ण तीर्थ में मरी ॥३४॥ हे राजन् ! वह कैलास पर्वत पर पार्वतीजी की सखी हो गयी । मैंने यह तुमको गोकर्ण तीर्थ के माहात्म्य को सुनाया ॥३५॥ मैं तुमको शिव काञ्ची का भी पवित्र माहात्म्य सुनाता हूँ । इन्द्र प्रस्थ के तट पर विद्यमान शिव काञ्ची में भी ॥३६॥ वही सर्वोत्तम गति होती है जो गति गोकर्ण तीर्थ में होती है । यहाँ पर श्रीमहादेव और सभी देवताओं के स्वामी भी भगवान् विष्णु की आराधना करके मनुष्य भक्त राजत्व और तात्त्विक ज्ञान को प्राप्त कर लेता है ॥३७॥

आराधयामः सततं सद्भक्तिज्ञानलिप्सया। अत्र बाणासुरो राजन्नारराध महेश्वरम् ॥३९॥
निराहारो वर्षशतं तद्गुणत्वबुभूषया। तस्मै प्रसन्नो भगवान्गणत्वं दत्तवान्निजम् ॥४०॥
स्वयं च सर्वदा तस्य पुरपालो बभूव ह। इयं पुरी पुरा राजन्नासीद्विष्णोर्महात्मनः ॥४१॥
दत्ता शिवाय तुष्टेन तपसा तस्य विष्णुना। अस्यामेकं पुरावृत्तं महदाश्चर्यकारकम् ॥४२॥
विप्रस्य शिवभक्तस्य वैकुण्ठाप्तिर्यथाऽभवम् ।
एकस्तु ब्राह्मणो राजन्हेरम्बो नाम धार्मिकः ॥४३॥
कायेन मनसा वाचा शिवपूजारतः सदा। एकदा स महाभागः शिवतीर्थानि पर्यटन् ॥४४॥
शिवभक्तिशिवे राजञ्छिवकाञ्च्यामिहाऽऽगतः ।
एनांमनोहरांचैवनतत्याजसबुद्धिमान् ॥४५॥
पश्चात्तत्रैव तत्याज प्राणानस्याजलान्तरे। तत्रैव श्रीमहादेवगणास्तं ब्राह्मणोत्तमम् ॥४६॥
नीत्वा कैलासमचलं चेलुस्तदनुशासनात् । अथ मध्ये समायाता गणावैकुण्ठतो हरेः ॥४७॥
तेभ्यो बलात्समादातुं तं द्विजश्रेष्ठमुद्यताः। आसीत्तेषां महयुद्धं गणानां हरिशर्वयोः ॥४८॥
तत्र युद्धे नवै केषां विजयो न पराजयः। तत्र वैकुण्ठतो विष्णुरागतो गरुडासनः ॥४९॥
कैलासाद्वृषभारूढो महेशश्च त्रिलोकधृत्। तावन्योन्यं मुखं दृष्ट्वा विहस्य जगदीश्वरो॥५०॥
पश्यतः स्म महद्युद्धं नभस्येवं गणैः कृतम् ।
अथ स्वीयान्गणान्विष्णुः शैवांश्च दिवि युद्धतः ॥५१॥

अतएव हम सभी ब्रह्माजी के पुत्र उस महेश्वर की आराधना ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से करते हैं । हे राजन्! यहाँ पर बाणासुर महेश्वर की आराधना करके ॥३८-३९॥ उस गुण से युक्त होने की इच्छा से सौ वर्षों तक निराहार रहा । उससे प्रसन्न होकर शङ्करजी ने उसको अपना गणत्व प्रदान कर दिया ॥४०॥ और स्वयं वे उसकी नगरी की रक्षा करने वाले हो गये । हे राजन् ! पहले यह नगरी भगवान् विष्णु की थी ॥४१॥ शिवजी की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्होंने इसे शिवजी को प्रदान कर दिया । इसमें एक अत्यन्त आश्चर्यकारी वृतान्त हुआ ॥४२॥ जब भगवान् शिव के भक्त को वैकुण्ठ की प्राप्ति जैसे हुयी उसे मैं बतलाता हूँ । हे राजन् ! एक हेरम्ब नामक धार्मिक ब्राह्मण ॥४३॥ मन, शरीर तथा वाणी से शिवजी की पूजा में लगा रहता था । एक बार वे महाभाग शिवजी के तीर्थों में भ्रमण करते हुए ॥४४॥ हे राजन् ! शिवजी का वह भक्त ब्राह्मण शिव काञ्ची में आया वह बुद्धिमान इस मनोहर वाणी को वन में कहा ॥४५॥ उसके पश्चात् वह जल के भीतर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया । वहाँ पर महादेवजी के गण उस उत्तम ब्राह्मण को॥४६॥ लेकर कैलास पर्वत पर उनकी आज्ञा से चल पड़े । बीच में वैकुण्ठ से श्रीहरि के गण आये॥४७॥ उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को उनसे बलपूर्वक लेने के लिए तैयार हो गये । वहाँ पर श्रीहरि और शङ्करजी के गणों में महायुद्ध हुआ ॥४८॥ उस युद्ध में किसी का न तो विजय हुआ और न पराजय ही हुआ । वहाँ पर वैकुण्ठ से गरुड़ पर चढ़कर भगवान् विष्णु आये ॥४९॥ और कैलास से बैल पर चढ़कर त्रैलोक्य को धारण करने वाले शङ्करजी भी आये । वे दोनों जगत् के स्वामी एक दूसरे के मुख को देखकर हँसकर॥५०॥ आकाश में उन सबों के युद्ध को देखकर भगवान् विष्णु अपने गणों को तथा युद्ध करने वाले ॥५१॥ गणों

निवार्य तंद्विजंतार्क्ष्यमारोप्यागाच्छिवालयम्। शिवेनाद्गणैश्चाऽपिस्वकीयैरपिमाधवः ॥५२॥
वृतो गच्छन्पथि श्रीमान्स्तुतस्त्रिदशवन्दितः। गत्वा विवेशतं चाऽऽगंमहादेवपुरःसरः ॥५३॥
तस्मै द्विजाय वै तस्य दर्शयन्रमणीयताम्। अथ तस्मात्तु कैलासान्महादेवेन वन्दितः ॥५४॥
माधवः परयाभक्तया वैकुण्ठमगमत्तदा। द्विजःसोऽपिमहाभागस्तीर्थस्याऽस्यप्रसादतः ॥५५॥
गोविन्दर्शनं प्राप्य मुमुदे हरसिन्नधौ। एतत्ते कथितंराजञ्छिवकाञ्च्यास्तु वैभवम् ॥५६॥
तीर्थसप्तकनाम्नस्तु शृणुष्व सुसमाहितः। तीर्थमेतन्महाराज ! चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥५७॥
दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्स्मरणादपि भूपते !। वसिष्ठादिभिरेतस्मिन्महर्षिभिरनुष्ठितम् ॥५८॥
महत्तपस्तु सृष्ट्यर्थं तत्रासंस्तुक्षमा नृप !। मरीचिरपि धर्मात्मा पुत्रार्थं स्नानमाचरन् ॥५९॥
अत्र लेभे महाभागः कश्यपं सुतमुत्तमम्। अत्रिरत्राऽपितपसा तोषयेद्देवपुङ्गवान् ॥६०॥
सोमं दुर्वाससं दत्तं तेभ्यो लेभे सुतत्रयम्। अङ्गिरा अपि धर्मात्मा तीर्थस्याऽस्य प्रसादतः॥६१॥

लेभे सुतांस्तु तद्वंश्या जाता आङ्गिरसाद्विजाः।
पुलहोऽपिसुतंलेभेदम्भोलिंगुणवत्तरम् ॥६२॥
योऽगस्त्योऽभूत्पुरा राजंस्तीर्थेऽत्रैव निमज्जनात्।
पुलस्त्यस्याऽत्र तीर्थे वै पुत्रो लब्धस्तपस्यतः ॥६३॥
कुबेरोऽभून्महाभागो यः सखाऽऽसीदुमापतेः।
क्रतोरपिसुताजातावालखिल्याःसहस्त्रशः ॥६४॥

तीर्थस्याऽस्य प्रसादेन ते सर्वे ह्यूर्ध्वरेतसः। रजआदीसुताँल्लेभे वसिष्ठोऽपिमहातपाः ॥६५॥

को रोककर उस ब्राह्मण को गरुड़ पर बैठकर शिवलोक में आये। शिवजी उनके गणों तथा अपने गणों से भी घिरे हुए श्रीभगवान् ॥५२॥ रास्तें में देवताओं से वन्दित होकर शिवजी के भवन में शङ्करजी के साथ प्रवेश किए ॥५३॥ उस ब्राह्मण को वहाँ की रमणीयता को दिखाते हुए कैलास से महादेवजी से वन्दित होकर ॥५४॥ श्रीभगवान् परमा भक्ति पूर्वक वैकुण्ठ में आये। वे महाभाग ब्राह्मण भी इस तीर्थ की कृपा से ॥५५॥ शङ्करजी के सन्निकट भगवान् का दर्शन प्राप्त करके प्रसन्नता का अनुभव किए। हे राजन्! इस तरह से मैंने आपको शिव काञ्ची के वैभव को बतलाया ॥५६॥ अब तीर्थ सप्तक के नामों को सावधानी पूर्वक सुनो। हे राजन् यह तीर्थ चारो प्रकार के पुरुषार्थों को दर्शन करने से, स्पर्श करने से, ध्यान करने से तथा स्मरण करने से भी देने वाला है। इस तीर्थ में वसिष्ठ आदि मुनियों ने अनुष्ठान किया है ॥५७-५८॥ हे राजन् ! सृष्टि करने के लिए धर्मात्मा महर्षि मरीचि भी यहाँ पर पुत्र के लिए स्नान किए॥५९॥ वे महाभाग ! कश्यप नाम के पुत्र को प्राप्त किए। महर्षि अत्रि भी यहाँ तपस्या से श्रेष्ठ देवों को प्रसन्न किए ॥६०॥ उन लोगों से वे सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय नामक पुत्रों को प्राप्त किए। धर्मात्मा महर्षि अङ्गिरा भी इस तीर्थ की कृपा से अपने पुत्रों को प्राप्त किए और उनके वंश वाले आङ्गिरस ब्राह्मण हुए। महर्षि पुलह भी गुण सम्पन्न दम्भोलि नामक पुत्र को प्राप्त किए ॥६१-६२॥ हे राजन् ! पूर्वकाल में जो अगस्त्य ऋषि हुए वे इसी तीर्थ में स्नान करके पुलस्त्य महर्षि के तीर्थ में तपस्या करके पुत्र प्राप्त किए ॥६३॥ वे महाभाग कुबेर हुए जो शिवजी के मित्र थे। क्रतु महर्षि के भी हजारों बालखिल्य नामक

सप्तैव राजशार्दूल ! महिमा तस्य वर्णितः ।
अन्यान्यपि च तीर्थानि सन्त्यनेकानिभूपते ! ॥६६॥
कपिलाश्रमकेदारप्रभासादीनि वै प्रभो ! । नियुतेरपि वर्षाणां तेषां च महिमा नृप ! ॥
अनन्तेनाऽपि नो वक्तुं शक्यते किमु मादृशैः ॥६७॥

सौभरिरुवाच

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठो नारदो मुनिपुङ्गवः । शिंबिं जगाम नभसो नारायणगुणान्गृणन् ॥६८॥
शिबिरौशीनरो राजा शक्रप्रस्थस्य वैभवम् । श्रुत्वा मुनिमुखाद्राजन्कृतार्थं स्वममन्यत ॥६९॥
तत्र स्नात्वा हि विधिवदिन्द्रप्रस्थे स भूपतिः ।
विधायसत्क्रियाःसर्वाजगामनिजपत्तनम् ॥७०॥
इन्द्रप्रस्थस्य माहात्म्येतत्त्व मया विभो ! । यमुनातीरतीर्थस्य वर्णितं जनपावनम् ॥७१॥
नाऽस्याऽऽदरं करिष्यन्ति कलौ श्रद्धाविवर्जिताः ।
इन्द्रप्रस्थस्य राजेन्द्र ! सर्वतीर्थशिरोमणेः ॥७२॥
अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्भारतस्य च । यत्फलं तन्महिम्नोऽस्य शक्रप्रस्थस्य जायते॥७३॥
अरुणोदयवेलायां माघलक्षैकमज्जनात् । यत्फलं तन्महिम्नोऽस्य श्रवणाच्छद्धयाभवेत् ॥७४॥
श्रद्धयाऽस्य तु माहात्म्यं यः शृणोतिमहीपते ! ।
तर्पितास्तेनपितरोदेवाश्च मुनयस्तथा ॥७५॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रपाराकचान्द्रायणव्रतादिभिः । यत्फलंतन्महिम्नोऽस्यश्रद्धयाश्रवणाद्भवेत् ॥७६॥

पुत्र हुए ॥६४॥ इस तीर्थ की कृपा से वे ऊर्ध्वरितस हो गये । महातपस्वी वसिष्ठ भी रज आदि पुत्रों को प्राप्त किए ॥६५॥ हे राजन् ! इस तरह से तीर्थ सप्तक की महिमा को मैंने आपको बतलाया । हे राजन्! यहाँ दूसरे भी बहुत से तीर्थ हैं ॥६६॥ वे सब कपिलाश्रम के द्वारा प्रभास क्षेत्र आदि हैं । हे राजन् ! उन सबों की महिमा का वर्णन सौ हजार वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है । उन सबों महिमा का वर्णन शेषनाग भी नहीं कर सकते हैं । मेरे जैसे लोगों की क्या बात हैं ?॥६७॥ **सौभरि महर्षि ने कहा—** मुनिश्रेष्ठ नारदजी इस तरह से राजा शिवि को कहकर भगवान् नारायण के गुणों का स्मरण करते हुए स्वर्गलोक में चले गये ॥६८॥ औशीनर राजा शिवि इन्द्रप्रस्थ के माहात्म्य को मुनि के मुख से सुनकर हे राजन् अपने को कृतार्थ माने ॥६९॥ राजा शिवि विधि पूर्वक इन्द्रप्रस्थ में स्नान करके सभी सत्कर्मों को करके अपने नगर में चले गये ॥७०॥ हे राजन् ! मैंने आपको यमुना के तट पर स्थित इन्द्रप्रस्थ का जन पावन माहात्म्य आपको सुनाया ॥७१॥ कलियुग में श्रद्धा से रहित लोग इसका आदर नहीं करेंगे । हे राजेन्द्र ! सर्वतीर्थशिरोमणि इन्द्रप्रस्थ का ॥७२॥ माहात्म्य सुनने से उस फल की प्राप्ति होती है जो फल अठारहों पुराणों तथा महाभारत के सुनने से प्राप्त होता है ॥७३॥ अरुणोदय की बेला में माघ से एक लाख बार स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसी फल की प्राप्ति श्रद्धा पूर्वक इसके माहात्म्य को सुनने से होती है ॥७४॥ हे राजन् ! जो मनुष्य इसके माहात्म्य को श्रद्धा पूर्वक सुनता है, उसको पितरों देवता और मुनियों के तर्पण का फल प्रापत होता है ॥७५॥ कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र तथा पारक चान्द्रायण आदि व्रतों के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति इसके माहात्म्य को श्रद्धा पूर्वक

अश्वमेधादियज्ञज्ञनां समस्तानां महीपते !। यत्फलं तन्महिम्नोऽस्यश्रद्धया श्रवणाद्भवेत् ॥७७॥

सूत उवाच

एवं युधिष्ठिरो राजा श्रुत्वाशौनकसौभरेः । इन्द्रप्रस्थस्यमाहात्म्यं स ययौहस्तिनम्पुरम् ॥७८॥
ततो विनीय सद्भ्रातृन्दुर्योधनपुरःसरान् । इन्द्रप्रस्थमगात्पुण्यं राजसूयचिकीर्षया ॥७९॥
द्वारकायाः समायातां गोविन्दं कुलदैवतम् । राजसूयेन यज्ञेन स इयाज महीपतिः ॥८०॥
मुक्तिदं तीर्थमेतत्तु शपतोऽस्याऽप्यजायत । इति मत्वा हरिस्तत्र शिशुपालं जघान ह॥८१॥
शिशुपालोऽपि तस्यैव तीर्थस्य मरणाद्भुवि। सायुज्यमगमत्कृष्णे निखिलर्थिप्रदायके॥८२॥

शिशुपालो हतो यत्र विहितो यत्र च क्रतुः ।
गदया तत्र भीमेन कृतं कुण्डं सुविस्तरम् ॥८३॥
भीमकुण्डं तु विज्ञातं जातं तद्भुवि पावनम् ।
कालिन्द्या दक्षिणेभागेगव्यूत्यर्धे महीतले ॥८४॥
इन्द्रप्रस्थगताया यत्कालिन्द्याः स्नानतःफलम् ।
तत्फलंतत्रकुण्डेतु जायते नाऽसंशयः ॥८५॥

सूत उवाच

यस्मिन्क्षेत्रे स्थितो जन्तुस्तं क्षेत्रमनुवत्सरम् । प्रदक्षिणादिभिर्धर्मैः स्वापराधान्क्षमापयेत् ॥८६॥
प्रतिसम्वत्सरं चैव परिक्रामति यो नरः । क्षेत्रापराधदोषैश्च न स लिप्येत्तु पातकैः॥८७॥
प्रदक्षिणमकुर्वाणः क्षेत्रसिद्धिं न विन्दति । तस्मात्प्रदक्षिणातीर्थे दातव्याचफलार्थिभिः॥८८॥

सुनने से होती है ॥७६॥ हे राजन् ! अश्वमेध आदि समस्त यज्ञों को करने से जिसके फल की प्राप्ति होती है उसी फल की प्रापित इसके माहात्म्य को श्रद्धा पूर्वक सुनने से होती है ॥७७॥ **सूतजी ने कहा—** हे शौनक महर्षे ! राजा युधिष्ठिर इस प्रकार से सौभरि महर्षि से इन्द्रप्रस्थ के माहात्म्य को सुनकर हस्तिनापुर चले गये । उसके पश्चात् दुर्योधन आदि अपने भाइयों को लेकर वे राजसूय यज्ञ करने के लिए इन्द्रप्रस्थ आये ॥७८-७९॥ द्वारका से आये हुए अपने कुल दैवत गोविन्द की राजसूय यज्ञ के द्वारा आराधना किए॥८०॥ यह तीर्थ निन्दा करने वालों को भी मुक्ति देने वाला है । इस बात का विचार करके वे वहाँ पर शिशुपाल को मारे ॥८१॥ शिशुपाल भी सम्पूर्ण पुरुषार्थों को देने वाले उस तीर्थ में ही मरने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण के सायुज्य को प्राप्त किया । जहाँ पर शिशुपाल मरा था और जहाँ पर यज्ञ हुआ था वहाँ पर भीम ने अपनी गदा से विस्तृत कुण्ड बना दिया ॥८२-८३॥ भूलोक में वह भीम कुण्ड के नाम से जाना जाता है । वह यमुनाजी से दो कोश की दूरी पर पृथिवी पर है । इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान यमुना में स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसी फल की प्राप्ति भीमकुण्ड में स्नान करने से होती है ॥८४-८५॥ **सूतजी ने कहा—** जीव जिस क्षेत्र में रहता है, उस क्षेत्र की प्रतिवर्ष प्रदक्षिणा तथा नमस्कार आदि के द्वारा अपने अपराधों को क्षमा कराये ॥८६॥ जो मनुष्य प्रत्येक वर्ष परिक्रमा करता है वह क्षेत्र के अपराध जन्य दोषों से लिप्त नहीं होता है ॥८७॥ प्रदिक्षणा नहीं करने वाला क्षेत्र की सिद्धि को नहीं प्राप्त करता है । अतएव फल चाहने वालों को प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥८८॥ जो श्रीहरि का नामोच्चारण करते हुए

हरेर्नामानि सञ्जल्पन्प्रकरोति प्रदक्षिणाम्। पदे पदे स लभते कपिलादानजं फलम्॥८९॥
चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां शक्रप्रस्थप्रदक्षिणाम्। यः करोति नरो धन्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥९०॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे कालिन्दीमाहात्म्यइन्द्रपस्थगतकाशीगोकर्णीशिव-काञ्चीतीर्थसप्तकभीमकुण्डवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याः ॥२२२॥

दो सौ तेइसवाँ अध्याय

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग ! धन्योऽसि त्वं भवाम्बुधौ ।
यन्नोऽत्यर्थं निमग्नानां पाययस्यमृतोत्करम् ॥१॥
साधोऽत्र भवनिस्तारं वाञ्छतां नः समादिश ।
मन्त्ररत्नं भावशुद्धं यन्मयं सचराचरम् ॥२॥

सूत उवाच

श्रृणु शौनक ! वक्ष्यामि मन्त्ररत्नं महाद्भुतम् ।
यद्दिलीपाय गदितं वसिश्ठेन महात्मना ॥३॥
एकदा तु दिलीपेन पृष्टमेतद्गुरुं प्रति। वसिष्ठं द्विजशार्दूलं प्रणिपत्य यथा त्वया॥४॥

दिलीप उवाच

भगवन्भवता प्रोक्तास्सर्वे धर्मा विशेषतः। वर्णाश्रमयुता धर्मा नित्यमैमित्तिकाश्चये॥५॥
राजधर्माश्च यज्ञाश्च तीर्थदानव्रतादिकम्। श्रुता मया मुनिश्रेष्ठ ! अक्षय्यस्वर्गभोगदाः॥६॥

प्रदक्षिणाा करता है वह पग-पग पर कपिला गौ के दान का फल प्राप्त करता है ॥८९॥ चैत्र कृष्ण चतुर्दशी के दिन इन्द्रप्रस्थ की प्रदक्षिणा जो करता है वह धन्य मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥९०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कालिन्दी माहात्म्य के अन्तर्गत इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान काशी, गोकर्ण, शिवकाञ्ची तीर्थ सप्तक तथा भीमकुण्ड वे माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२२।।

वसिष्ठ दिलीप सम्वाद के अन्तर्गत श्रीभगवान् के मन्त्र दीक्षा के प्रसङ्ग में विद्योपदेश का वर्णन

शौनक महर्षि ने कहा— हे महाभाग ! सूतजी आप धन्य है कि भवसागर में डूबे हुए लोगों को अत्यधिक अमृत पान करा रहे हैं ॥१॥ हे साधो ! संसार से पार उतराना चाहने वालो को आप भाव शुद्ध मन्त्र रत्न का उपदेश दें सम्पूर्ण जगत् यन्मय है ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** हे शौनक ! मैं उस मन्त्र रत्न को बतलता हूँ जिसका महर्षि वसिष्ठ ने दिलीप को उपदेश दिया ॥३॥ **राजा दिलीप ने कहा—** हे भगवन् ! आपसे मैंने विशेष रूप से सभी धर्मों को सुना । वर्णाश्रम धर्म, नित्य, नैमित्तक कर्म, राजधर्म,

अधुनाश्रोतुमिच्छामिमोक्षमार्गंसनातनम् । दिष्ट्याऽहंयेन गच्छामितद्ब्रह्मन्वक्तुमर्हसि ॥७॥
को मन्त्रः सर्वमन्त्राणां भवरोगैकभेषजम्। सर्वेषामेव देवानां कोहि मोक्षप्रदः परः ॥८॥
तत्समाख्याहि तत्त्वेन मयि वात्सल्यगौरवात् ॥९॥

वसिष्ठ उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजन्सर्वलोकहितैषिणा । वक्ष्यामि परमं गुह्यमेकं संसारतारकम् ॥१०॥
पुरा महर्षयः सर्वे यज्ञदानपराः शुभाः । पप्रच्छुर्ब्रह्मणः पुत्रं नारदं मुमिसत्तमम् ॥११॥

महर्षयऊचुः

भगवन्केन मन्त्रेण गच्छामः परमं पदम् । तन्नो ब्रूहि महाभाग ! प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१२॥

नारद उवाच

पितामहं पुरा सर्वे योगिनःसनकादयः। पप्रच्छुरेकमेकान्ते मोक्षमार्गं सुदुर्लभम्॥१३॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं योगिनः सर्वे रहस्यमिदमद्भुतम्। न जानन्ति सुराः सर्वऋषयश्च तपोधनाः ॥१४॥
सर्गादौ प्रोक्तवान्देवोमह्यं नारायणोऽव्ययः । ईश्वर्यासहदेव्याच सम्यक्सम्पूजितोमया ॥१५॥
ततः प्रसन्नो भगवान्मम नारायणोऽव्ययः। प्राजापत्यं ददौ मह्यं श्रुतिजं सर्ववाङ्मयम् ॥१६॥
स्वप्रकाशिानि मन्त्राणि व्यापकाव्यापकानि च ।
ततस्तमब्रवंदेवं पुराणपुरुषोत्तमम् ॥१७॥
भगवन्केन मन्त्रेण संसारोत्तारणं नृणाम्। तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन सर्वलोकहितायवै ॥१८॥

यज्ञ, दान, तीर्थ व्रत आदि को भी सुना । हे मुनिश्रेष्ठ ! अक्षय स्वर्ग भोग को देने वाले हैं ॥४-६॥ अब मैं सनातन मोक्ष मार्ग को सुनना चाहता हूँ । हे ब्राह्मण भाग्यवशात् जिसे मैं जाना चाहता हूँ उसे आप मुझे बतलायें ॥७॥ संसाररूपी रोग के भेषज स्वरूप सभी मन्त्रों में से कौन मन्त्र हैं । सभी देवताओं में कौन देवता मोक्ष प्रदान करने वाले हैं ॥८॥ मुझ पर वात्सल्य गौरव होने से आप मुझे उसे ही बतलाएँ ॥९॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! सम्पूर्ण लोगों का कल्याण चाहने वाले आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं इस अत्यन्त रहस्यमय तथा संसार से तारने वाले मन्त्र को तुम्हें सुनाता हूँ ॥१०॥ प्राचीन काल में सभी महर्षि यज्ञ तथा दान परायण होते थे । उन लोगों ने ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी से पूछा ॥११॥ **महर्षि ने कहा—** हे भगवन ! किस मन्त्र के द्वारा हमलोग परम पद को प्राप्त कर सकते हैं ? हे महाभाग आप उसे हमलोगों को कृपा करके बतलाइये ॥१२॥ **नारदजी ने कहा—** पहले सनकादि योगियों ने ब्रह्माजी से एकान्त में अत्यन्त दुर्लभ मोक्ष मार्ग को पूछा ॥१३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे सभी योगियों आपलोग इस अद्भुत रहस्य को सुनें । उसे सभी देवता और तपस्वी ऋषिगण भी नहीं जानते हैं ॥१४॥ सृष्टि के प्रारम्भ में निर्विकार रहने वाले भगवान् नारायण ने लक्ष्मीजी के साथ मेरे द्वारा पूजित होकर मुझे वतलाया । उससे प्रसन्न होकर भगवान् नारायण मुझको प्रजाओं के स्वामित्व को प्रदान किया वह सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय स्वरूप है ॥१५-१६॥ श्रीभगवान् को प्रकाशित करने वाले व्यापक तथा अव्यापक मन्त्रों को बतलाये । मैंने पुराण पुरुषोत्तम भगवान् से कहा ॥१७॥ हे भगवन् ! किस मन्त्र से मनुष्य संसार से

को मन्त्रः सर्वमन्त्राणां पुरश्चरणवर्जितः। सकृदुच्चारणान्नृणां ददाति परमं पदम् ॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

साधुपृष्टं महाभाग सर्वलोकहितैषिणा। तस्माद्वक्ष्यामि ते गुह्यं येन मामाप्नुयुर्नराः ॥२०॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां मन्त्ररत्नं शुभावहम्। सकृत्स्मरणमात्रेण ददाति परमं पदम् ॥२१॥
मन्त्ररत्नं द्वयं न्यासः प्रपत्तिः शरणागतिः। लक्ष्मीनारायणमिति मन्त्रः सर्वफलप्रदः ॥२२॥
नामानि मन्त्ररत्नस्य पर्यायेण निबोध मे। तस्योच्चारणमात्रेण परितुष्टोऽस्मिनित्यशः ॥२३॥
कुलजो वा तपस्वी वा वेदवेदाङ्गपारगः। यज्ञदानपरो वाऽपि सर्वतीर्थोपसेवकः ॥२४॥
व्रती वा सत्यवादी वा यतिर्वा ज्ञानवानपि। मन्त्राधिकारी न भवेतं प्रयत्नेनवर्जयेत् ॥२५॥

ब्राह्मणाःक्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतरे।
तस्याऽधिकारिणः सर्वे मम भक्तास्तु ते यदि ॥२६॥

अनन्यशरणानां च तथैवाऽनन्यसेविनाम्। अनन्यसाधकानां च वक्तव्यो मन्त्रउत्तमः ॥२७॥
आर्त्तानामाशु फलदस्सकृदेव कृतो ह्यसौ। दृप्तानामपि जन्तूनां देहान्तरनिवारणः ॥२८॥
आर्त्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानी बाऽपिप्रजापते !। सकृन्मांशरणं यातिततःकामानवाप्नुयात् ॥२९॥

नाऽदीक्षिताय वक्तव्यं नाऽभक्ताय च मानिने।
नास्तिकाय न लुब्धाय न श्रद्धाविमुखाय च ॥३०॥

न चाऽशुश्रूषवेवाच्यं नाऽसम्वत्सरवासिने। कामक्रोधविमुक्तस्तु दम्भलोविवर्जितः ॥३१॥

पार हो सकते हैं ? उसको आप मुझे सम्पूर्ण जगत् के कल्याण के लिए बतलायें ॥१८॥ सभी मन्त्रों में कौन सा मन्त्र पुरश्चरण से रहित है ? जिसके एक बार उच्चारण करने से वह मनुष्यों को परम पद प्रदान करता है ॥१९॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे सम्पूर्ण लोकों ! का कल्याण चाहने वाले आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है ? मैं उस रहस्य मय मन्त्र को बतलाता हूँ जिससे मनुष्य मुझे प्राप्त कर ले ॥२०॥ सभी मन्त्रों में मन्त्ररत्न **श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते नारायणाय नमः** है। कल्याण करने वाला है। उसका एक बार ही स्मरण करने से वह परम पद प्रदान करता है ॥२१॥ मन्त्ररत्न, द्वयमन्त्र, न्यासप्रपत्ति मन्त्र और शरणागति मन्त्र उसके ही नाम हैं। वह लक्ष्मीनारायण मन्त्र है तथा सभी फलों को प्रदान करने वाला है ॥२२॥ आप मुझसे मन्त्र रत्न के नामों को क्रमशः सुनें, उसका उच्चारण करने से मैं सदैव सन्तुष्ट रहता हूँ ॥२३॥ चाहे सद्वंश में उत्पन्न हो, तपस्वी हो या वेदों या वेदाङ्गों में पारङ्गत हो, या यज्ञ दान परायण हो, अथवा सभी तीर्थों की सेवा करने वाला हो ॥२४॥ या व्रती हो या सत्यवादी हो या ज्ञानी संन्यासी हो, ये सभी उस मन्त्र के अधिकारी नहीं है अतएव प्रयत्न पूर्वक उन सबों से इसे छिपाये ॥२५॥ यदि मेरी भक्ति उनमें हों तो चाहे ब्राह्मण हो या क्षत्रिय हो या वैश्य हो या शूद्र हो या इन सबों से भिन्न हो ये सब उस मन्त्र के अधिकारी हैं ॥२६॥ जो अनन्यशरण तथा केवल मेरी ही सेवा करने वाले, या जो अनन्य साधक हों उन्हीं को यह उत्तम मन्त्र देना चाहिए ॥२७॥ यह आर्त जीवों को शीघ्र फल देने वाला है। इसका एक बार भी उच्चारण कर लेने से यह दृप्तों को भी मुक्त करने वाला मन्त्र है ॥२८॥ हे ब्रह्माजी आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी या ज्ञानी भी जो एक बार भी मेरी शरणागति कर लेता है तो उसी से वह अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ॥२९॥ उसको अदीक्षित को, या अभक्त को या

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सवेते। वक्तव्यं तस्य विधिवन्मन्त्ररत्नमनुत्तमम् ॥३२॥
देशकालादिनियमानारीमित्रादिशोधनम् । न्यासमुद्रादिकं तस्य पुरश्चरणसंयुतम्॥३३॥
मच्चक्राङ्कितदेहत्यं मदीयाराधनं तथा। मयि संन्यस्तकर्मत्वं मदनन्यशरण्यता ॥३४॥
मयिसर्वफलन्यासोमहाविश्वासपूर्वकम् । अनन्यसाधनत्वं चाप्याकिञ्चन्यंतथाऽऽत्मनः ॥३५॥
अवैष्णवानां सम्भाषावन्दनादिविवर्जनम् । अनन्यदेवातानां च वन्दनं पूजनं तथा ॥३६॥
एवमाद्याश्च नियमाः प्रपन्नस्य प्रकीर्तिताः। इत्यादिगुणयुक्ताय वक्तव्यं मन्त्रमुत्तमम् ॥३७॥
तस्य नारायणश्चाऽहमृषिर्विष्णुःसनातनः। देवताच श्रियासार्द्धमहं वात्सल्यसागरः ॥३८॥
सर्वलोकेश्वरः श्रीमान्सुशीलः सुलभस्तथा। सर्वज्ञ सर्वशक्तिश्च सदापूर्णमनोरथः ॥३९॥
सर्वगः सर्वबन्धुश्च कृपापीयूषसागरः। श्रीमान्नारायणश्चाऽहं देवतासमुदाहृतः ॥४०॥
छन्दस्तु देवी गायत्री पञ्चविंशाक्षारात्मिका। द्विसप्तत्रित्रिपञ्चद्विषडङ्गानि योजयेत्॥४१॥
छन्दस्तु देवी गायत्री पञ्चविंशाक्षरात्मिका। द्विसप्तत्रित्रिपञ्चद्विषडङ्गानि योजयेत् ॥४२॥
लक्ष्म्या मदनपायिन्या मांध्यायेद्विश्वरूपिणम्। शङ्खचक्रगदापद्मपाणिकं दिव्यभूषणम् ॥४३॥
वामाङ्कस्थश्रिया सार्द्धं पूजयेत्प्रयतः शुचिः। अनेन मन्त्ररत्नेन गन्धपुष्पनिवेदनैः ॥
सकृत्सम्पूज्यमानोऽपि सन्तुष्टोऽस्मि प्रजापते ! ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

सम्यगुक्तं त्वया नाथ ! रहस्यमिदमुत्तमम्। मन्त्ररत्नप्रभावश्च सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम्॥४५॥

घमण्डी को या नास्तिक को या लोभी को, तथा श्रद्धा रहित को नहीं बतलाना चाहिए ॥३०॥ उसको नहीं सुनना चाहने वाले, या एक वर्ष तक गुरु की सेवा नहीं करने वाले को भी नहीं बतलाना चाहिए। जो काम तथा क्रोध से रहित तथा दम्भ एवं लोभ से रहित को ही बतलाना चाहिए ॥३१॥ जो निरन्तर एकाग्रमन से मेरी सेवा करता हो, उसको ही इस मन्त्र को बतलाना चाहिए ॥३२॥ देश काल आदि के नियमों तथा शत्रु मित्र आदि के शोधन उसको इसका न्यास तथा मुद्रा आदि तथा पुरश्चरण के साथ बतलायें॥३३॥ मेरे चक्र के अङ्कित देह वाला होना, मेरी पूजा, मुझको अपने समस्त कर्मों का समर्पण, केवल मेरा ही शरणागत होना ॥३४॥ सभी फलों को मुझको ही समर्पित करना, शरणागति में महाविश्वास को रखना, केवल मुझको ही सभी कार्यो का एक मात्र उपाय मानना, अकिञ्चनता, अवैषणवों से बातचित वन्दन आदि का त्याग तथा अनन्य देवताओं की वन्दना तथा पूजन करना ये सभी प्रपन्नों के नियम हैं। इन गुणों से युक्त को ही मन्त्ररत्न का बतलाना चाहिए ॥३५-३७॥ नारायण मन्त्र का मैं विष्णु ही सनातन ऋषि हूँ तथा लक्ष्मीजी के साथ मैं ही इसका देवता हूँ ॥३८॥ मैं सर्वत्र व्यापक सर्वबन्धु, सुशील, सुलभ, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान तथा समस्त पूर्ण, मनोरथ वाले ॥३९॥ सर्वत्रव्यापक सबों के बन्धु, तथा कृपारूपी अमृत के सागर; मैं श्रीमन्नारायण ही इसके देवता हूँ ॥४०॥ इसका पच्चीस अक्षरों वाला दैवी गायत्री छन्द है। दो, सात, तीन, पाँच तथा बारह इसके अङ्गों को जोड़ना चाहिये, अनपायिनी लक्ष्मी के साथ विश्वरूप रूप से मेरा ध्यान करना चाहिए ॥४१-४२॥ वाम भाग में विद्यमान लक्ष्मीजी के साथ मेरी पूजा पवित्र होकर करना चाहिए। इस मन्त्ररत्न से चन्दन तथा पुष्प चढाये ॥४३॥ हे प्रजापते ! एक बार भी पूजित

पिता त्वं सर्वलोकानां माता त्वं गुरुरेव च ।
त्वं च स्वामी सखा भ्राता गतिस्त्वं शरणं सुहृत् ॥४६॥
अहंतु तवदेवेश दासश्शिष्यस्तथा सुतः। तस्मान्ममदयासिन्धो ! प्रोक्तवानिदमुत्तमम्॥४७॥
अधुना मन्त्ररत्नस्यदीक्षां सम्यग्विधानतः। ब्रूहि सर्वत्र तत्त्वेन लोकानां हितकाम्यया॥४८॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि मन्त्रदीक्षाविधिं परम् ।
आचार्यं संश्रयेत्पूर्वं मदाश्रयणसिद्धये ॥४९॥
आचार्योवेदसम्पन्नो विष्णुभक्तोविमत्सरः। मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्चसदा मन्त्राशयःशुचिः ॥५०॥
सत्सम्प्रदायसंयुक्तो ब्रह्मविद्याविशारदः। अनन्यसाधनश्चैव तथानन्यप्रयोजनः ॥५१॥
ब्राह्मणो वीतरागश्च क्रोधलोभविवर्जितः। सद्वृत्तौ शासिता चैव मुमुक्षुः परमार्थवित् ॥५२॥
एवमादिगुणोपेत आचार्यःसर्वदा सुहृत्। आचाराच्छासयेद्यस्तु स आचार्य इतीरितः ॥५३॥
यस्त्वाचार्यपराधीनस्सद्वृतौ शास्तेयदि। शासनेस्थिरवृत्तिश्च शिष्यः सद्भिरुदाहृतः ॥५४॥
एवं लक्षणसंयुक्तं शिष्यं सर्वगुणान्वितम्। अध्यापयेद्विधानेन मन्त्ररत्नमनुत्तमम् ॥५५॥
द्वादश्यां श्रवणे वाऽपि कर्हिचिद्वैष्णवे दिने ।
सदाचार्योपसम्प्रीते तत्रदीक्षां समाचरेत् ॥५६॥
सुदर्शनं पाञ्चजन्यंसुवर्णेन प्रकारयेत्। रौप्येण वाऽपिताम्रेण कांस्येनाऽपि प्रकारयेत्॥५७॥
स्नाप्यपञ्चामृतैः शुद्धैरर्चयेत्पुरतो मम। तुलसीगन्धपुष्पाद्यैस्तन्मन्त्रेण विधानतः ॥५८॥

होकर मैं सन्तुष्ट हो जाता हूँ ॥४४॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे नाथ ! आपने अच्छी तरह से इस रहस्य को बतलाया । इस मन्त्ररत्न का प्रभाव सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला है ॥४५॥ हे भगवन्! आप ही सम्पूर्ण लोकों के पिता-माता, गुरु, स्वामी, सखा, भ्राता गति (प्राप्य) रक्षक और मित्र हैं ॥४६॥ मैं तो हे देवेश ! आपका दास, शिष्य तथा पुत्र हूँ । हे दयासिन्धो इसीलिए आपने मुझे इस उत्तम मन्त्र को बतलाया है ॥४७॥ अब आप इस मन्त्ररत्न की दीक्षा को विधिपूर्वक सर्वत्र जीवों का कल्याण करने के लिए बतलायें ॥४८॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे वत्स ! मैं मन्त्र की दीक्षा विधि को बतलाता हूँ उसे तुम सुनो । मेरे आश्रय की सिद्धि के लिए सर्वप्रथम आचार्य के शरण में जाय ॥४९॥ आचार्य को वेदज्ञ, भगवान् विष्णु का भक्त, मात्सर्य रहित, मन्त्र का ज्ञाता, मन्त्र में ही मन को लगाये हुए, पवित्र ॥५०॥ सत्सम्प्रदायानुयायी, ब्रह्म विद्या में निपुण, एक मात्र मुझको ही उपाय मानने वाला, अनन्य प्रयोजन ॥५१॥ ब्राह्मण, राग से रहित, क्रोध तथा लोभ से रहित, सद्वृत्त पर चलाने वाला, मुमुक्षु तथा परमार्थवेत्ता॥५२॥ इत्यादि गुणों से सम्पन्न तथा सुहृत् तथा सदाचारोपदेष्टा आचार्य को होना चाहिए ॥५३॥ जो आचार्य के परतन्त्र सद्वृत्त पर सदाशासित होने वाला, तथा आचार्य के प्रशासन में सद्वृत्ति वाला होता है वही शिष्य कहलाता है ॥५४॥ इस तरह के लक्षण से सम्पन्न तथा सभी गुणों से युक्त शिष्य को उत्तम मन्त्ररत्न को सविधि उपदेश करना चाहिए ॥५५॥ द्वादशी तिथि या श्रवण नक्षत्र में अथवा किसी वैष्णव दिन को आचार्य के प्रसन्न होने पर दीक्षा विधि को करना चाहिए ॥५६॥ सुवर्ण का सुदर्शन चक्र बनवाये या चाँदी

तत्र संस्थापयेदग्निं स्वगृह्योक्तविधानतः। आचार्योजुहुयादाज्यंमन्त्रेणाऽथद्विजोत्तमः ॥५९॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा। जुहुयान्मन्त्ररत्नेन तथाऽन्यैर्वैष्णवैः शुभैः ॥६०॥
मन्त्रैः पुरुषसूक्ताद्यैर्जुहुयाद्घृतपायसम्। तस्मिन्नग्नौ क्षिपेच्चक्रं शङ्खं च द्विजसत्तमः ॥६१॥
षडक्षरेण जुहुयादाज्यं विंशतिसङ्ख्यया। प्रतप्तं चक्रमादाय मन्त्रेणैवाङ्कयेद्गुरुः ॥६२॥
शङ्खेनचाऽङ्कनं कुर्याद्बाह्वोर्दक्षिणसव्ययोः। होमशेषं समाप्याऽथपुनःपूजांयसमाचरेत् ॥६३॥
ततःकलशमादाय पवित्रोदकपूरितम्। मन्त्रेणैवाऽभिमन्त्र्याऽथ तस्यमूर्ध्न्यभिषेचयेत् ॥६४॥
सितवस्त्रधरंसम्यगाचान्तं विनयान्वितम्। ऊद्र्ध्वपुण्ड्रधरं शिष्यंमन्त्रमध्यापयेद्गुरुः ॥६५॥
मन्त्रार्थश्च प्रवक्तव्यो वृत्तिश्चैव विशेषतः। लब्धमन्त्रस्तदाचार्यं पूजयेद्भूषणादिभिः ॥६६॥

अनेन विधिना मन्त्रं योऽधीते वैष्णवाद्गुरो ।
ततः स वैष्णवं याति नान्यथा सुरसत्तम ! ॥६७॥

नारद उवाच

एवमुक्त्वा विधातारं देवदेवो हरिः पिता ।
स्वचक्रेणाऽङ्कयित्वा तु तस्मै मन्त्रं ददौ स्वयम् ॥६८॥

सर्वलोकेश्वरोदेवो ब्रह्मा मम पिताप्रभुः। ममाऽपि विधिवन्मन्त्रं स ददौमुनिसत्तमाः ॥६९॥
तस्माद्यूयं मुनिश्रेष्ठा धारयित्वा सुदर्शनम्। नारायणपदद्वन्द्वं गच्छध्वं शरणं द्विजाः ॥७०॥

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्ता मुनयः सर्वे नारदेन सुरर्षिणा। द्वयाधिकारिणः सर्वे याता विष्णोःपरंपदम् ॥७१॥

का या ताम्बे का या काँसे का सुदर्शन चक्र बनवाये ॥५७॥ फिर उसको पञ्चामृत से स्नान कराकर मेरे सामने उसकी पूजा करे और सुदर्शन मन्त्र से ही तुलसी चन्दन तथा पुष्प आदि से उसकी पूजा विधि पूर्वक करे ॥५८॥ अपने गृहयोक्त विधि से अग्नि की स्थापना करे । उसके पश्चात् वे द्विजश्रेष्ठ अग्नि में मन्त्र से होम करें ॥५९॥ मन्त्र रत्न से तथा दूसरे वैष्णव मन्त्रों से अष्टोत्तर सहस्र अथवा अष्टोत्तर शत होम करें॥६०॥ पुरुषसूक्त इत्यादि के मन्त्रों से घी और पायस से होम करे । उस अग्नि में शङ्ख और चक्र को डाले ॥६१॥ फिर षडक्षर (विष्णवे नमः) मन्त्र से बीस आहूति दे उसके बाद गुरु प्राप्त चक्र को लेकर मन्त्र से अङ्कित करे ॥६२॥ फिर शङ्ख से दाहिनी और चक्र से बायी भुजा को अङ्कित करे । फिर होम शेष को समाप्त करके पूजा करे ॥६३॥ पवित्र जल से पूर्ण कलश को लेकर उसको मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित करके शिष्य के शिर पर अभिषेक करे ॥६४॥ श्वेत वस्त्र धारण किए हुए अच्छी तरह से आचमन करके तथा विनय से युक्त तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किए हुए शिष्य को गुरु मन्त्रोपदेश करें ॥६५॥ विशेष रूप से वृत्ति तथा मन्त्र के अर्थ को बतलायें । उसके बाद मन्त्र प्राप्त करके शिष्य आचार्य की भूषण आदि से पूजा करे ॥६६॥ इस विधि से जो वैष्णव गुरु से मन्त्र प्राप्त करता है वह भगवान् विष्णु के ही लोक में जाता है । हे सुरश्रेष्ठ ! वह अन्यत्र नहीं जाता है ॥६७॥ **नारदजी ने कहा—** देवाराध्य जगत् के पिता श्रीहरि ब्रह्माजी को इस प्रकार से कहकर उनको अपने चक्र से अङ्कित करके उनको मन्त्रोपदेश किए ॥६८॥ सम्पूर्ण लोकों के स्वामी तथा मेरे पिता ब्रह्माजी हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझको भी विधि पूर्वक मन्त्रोपदेश किए ॥६९॥ हे मुनिश्रेष्ठों ! इसीलिए आपलोग सुदर्शन चक्र को धारण करके भगवान् नारायण

तस्मात्त्वमपि चेद्राजन्विष्णुसायुज्यमिच्छसि। दीक्षामार्गविधानेन धारयित्वासुदर्शनम् ॥७२॥
नारायणपदद्वन्द्वं तदेकं शरणं व्रजः । सर्वलोकेश्वरः साक्षाद्‌ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः॥७३॥
ममाऽपि नारदस्याऽपि प्रोक्तवान्मन्त्रमुत्तमम्। शौनकादिमहर्षीणां नैमिषारण्यवासिनाम्॥७४॥
नारदः प्रददौ मन्त्रं प्रपत्तिं शरणागतिम्। एतद्‌गुह्यतमं राजन्न जानन्ति महर्षयः ॥७५॥
देवताश्चनजानन्तिसिद्धाः साध्याश्चदानवाः । मयाऽपिप्रापितो मन्त्रंशक्तिपुत्रःपराशरः ॥७६॥
इदं रहस्यं परमं लक्ष्मीनारायणं द्वयम् । राजंस्तवाऽपि वक्ष्यामि प्रपत्तिं शरणागतिम् ॥७७॥
द्वयात्परतरं मन्त्रं नास्ति सत्यं ब्रवीमिते । अस्मात्परतरं धर्म्यं नास्ति लोकेषु किञ्चन ॥७८॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं ब्रह्मणा कथितं पुरा ।
नारायणात्परो देवो नास्ति मुक्तिप्रदो नृणाम् ॥७९॥
तत्सेवया भवेन्मोक्षः सर्वकर्मनिकृन्तनः ॥८०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे वसिष्ठदिलीपसम्वादेविद्योपदेशो नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२३॥

के दोनों चरणों की शरण में जायँ ॥७०॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** इस प्रकार से देवर्षि नारदजी के द्वारा कहे जाने पर द्वयमन्त्र के अधिकारी होकर सभी लोग भगवान् विष्णु के परम पद में चले गये ॥७१॥ अतएव हे राजन् ! यदि तुम भी मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो तो दीक्षा की विधि से सुदर्शन चक्र को धारण करके केवल भगवान् नारायण के दोनों चरण कमलों के शरण में जाओ । सभी लोकों के स्वामी त्रिभुवनेश्वर साक्षात् ब्रह्माजी ॥७२-७३॥ ने मुझको इस उत्तम मन्त्र का उपदेश दिया । शौनक आदि महर्षि जो नैमिषारण्य में रहने वाले थे उनको नारदजी ने प्रपत्ति मन्त्र का उपदेश दिया । हे राजन् ! यह अत्यन्त गोपनीय है इसको महर्षि गण भी नहीं जानते हैं ॥७४-७५॥ इसको देवता, सिद्ध, साध्य और दानव भी नहीं जानते हैं । मुझसे भी महर्षि शक्ति के पुत्र महर्षि पराशर ने इस मन्त्र को प्राप्त किया ॥७६॥ यह लक्ष्मी नारायण स्वरूप द्वयमन्त्र भी अत्यन्त गोपनीय है । हे राजन् ! मैं तुमको भी प्रपत्ति शरणागति मन्त्र का उपदेश दूँगा॥७७॥ मैं सत्य कहता हूँ कि द्वयमन्त्र से बढ़कर कोई भी मन्त्र नहीं है, यह मैं सत्य कहता हूँ । इससे श्रेष्ठ कोई धर्म्य वस्तु भी नहीं है ॥७८॥ पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने परम सत्य कहा है कि भगवान् नारायण से बढ़कर कोई भी देवता मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करने वाला नहीं है ॥७९॥ सभी कर्मों को विनष्ट करने वाले श्रीभगवान् की सेवा से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥८०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के वसिष्ठ दिलीप संवाद के अन्तर्गत विद्योपदेश नामक दो सौ तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२३।।

दो सौ चौबीसवाँ अध्याय

दिलीप उवाच

भगवन्सर्वमाचक्ष्व हरिभक्तिसुधामयम् । शृण्वतो नैव तृप्तिर्मे विष्णुभक्तिं सुखावहाम्॥१॥
तापत्रयमहाज्वालावह्निभिः सततंनृणाम्। सन्तप्तानां मुनिश्रेष्ठ ! विष्णुभक्तिसुधार्णवम्॥२॥
बिना किमन्यच्छरणं भवारण्येभयानके । आचक्ष्य विस्तरेणाऽथ भक्तिभेदान्महामुने ! ॥
उपास्यमानान्सततं मुनिभिः परमात्मनः ॥३॥

वसिष्ठ उवाच

साधुपृच्छसिराजेन्द्र ! संसारोत्तारणंनृणाम्। वैकुण्ठस्यपरेशस्यभक्तिंनित्यसुखावहाम् ॥४॥
इममेव महाप्रश्नं कैलासशिखरे पुरा । पप्रच्छ गिरिजा देवी शङ्करं लोकपूजितम्॥५॥

पार्वत्युवाच

देवदेव महादेव त्रिपुरघ्न सुरेश्वर !। विष्णुभक्तिं ममाऽऽचक्ष्व मुक्तिदां सर्वदेहिनाम्॥६॥
उपास्यभेदान्मन्त्रांश्च तत्तत्पूजाविधींस्तथा । तस्य विष्णोः स्वरूपं च तद्विभूतिगुणादिकम् ॥७॥
तस्य लोकस्वरूपंच यं प्राप्य न निवर्तते । सर्गस्थितिलयं येन करोति भगवान्हरिः ॥८॥
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं हरेः । येन केन च कृत्येन साधनेन परं पदम्॥९॥
प्राप्नुवन्ति नराः पापा विषयासक्तचेतसः । विस्तरेण मयि प्रीत्या ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

इति पृष्ठो महादेव्या हरस्त्रिपुरहा तदा। उवाच परमप्रीत्या नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥११॥

वसिष्ठ दिलीप संवाद के अन्तर्गत प्रसङ्गतः पार्वतीजी के पूछने पर शिवजी द्वारा भक्ति की विध का प्रकाशन

राजा दिलीप ने कहा— हे भगवन् ! आप मुझको श्रीहरि की अमृतमयी भक्ति का उपदेश दें । सुखप्रद भक्ति को सुनने वाले मुझको तृप्ति नहीं होती है ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तापत्रय रूपी अग्नि की ज्वाला से संतप्त मनुष्यों के लिए श्रीहरि की भक्ति अमृत सागर के समान है ॥२॥ हे महामुने ! इस भयानक भवाटवी में इसके बिना कुछ भी रक्षक नहीं है । आप भक्ति के भेदों को विस्तार पूर्वक बतलायें। निरनतर उपासना करने वाले मुनियों के द्वारा श्रीहरि की भक्ति से भिन्न क्या रक्षक हैं ?॥३॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** हे राजेन्द्र ! संसार के मनुष्य के उद्धार करने वाले के विषय में आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है ॥४॥ इसी महाप्रश्न को पार्वतीजी ने पूर्वकाल में कैलास पर्वत पर लोक पूजित शङ्करजी से किया था॥५॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे देवाराध्य ! त्रिपुर को विनष्ट करने वाले सुरेश्वर महादेवजी ! मुझको सभी शरीर धारियों को मुक्ति प्रदान करने वाली भगवान् विष्णु की भक्ति को सुनायें ॥६॥ उपास्यों के भेदों, मन्त्रों तथा विभिन्न पूजा विधि को भगवान् विष्णु के स्वरूप को तथा उनकी विभूति तथा गुणों को आप मुझे बतलायें ॥७॥ उनके लोक के स्वरूप को जिसको प्राप्त करके मनुष्य संसार में नहीं आता है तथा जिसके द्वारा श्रीहरि सृष्टि स्थिति एवं लोप को करते हैं; उसके बतलायें ॥८॥ जिस किसी कर्म तथा साधन से परंपद को प्राप्त करके जीव पुनः इस संसार में नहीं आता है उस परम्पद को विषयासक्त चित्त वाले पापी

रुद्र उवाच

साधु साधु महादेवि ! सर्वलोकहितैषिणि ! ।
साधु पृच्छसि मां देवि ! श्रीशमाहात्म्यमुत्तमम् ॥१२॥
धन्याऽसि कृत्यपुण्याऽसि विष्णुभक्ताऽसि पार्वति ! ।
परितुष्टोऽस्मि ते भद्रे ! शीलरूपगुणैः सदा ॥१३॥
अथ वक्ष्यामि गिरिजे ! भगवद्भक्तिमुत्तमाम् ।
तन्मन्त्राणां विधानं च स्वरूपं तस्य शार्ङ्गिणः ॥१४॥

तत्त्वं नारायणो विष्णुर्वासुदेवस्सनातनः । परमात्मा परं ब्रह्म परं ज्योतिः परात्परः॥१५॥
अच्युतः पुरुषःकृष्णः शाश्वतःशिवईश्वरः। नित्यः सर्वगतः स्थाणूरुद्रस्साक्षी प्रजापतिः ॥१६॥
यज्ञो यज्ञपतिः साक्षाद्ब्रह्मणः पतिरेव च । हिरण्यगर्भः सविता लोककृल्लोकभृद्विभुः ॥१७॥
अकारवाच्यो भगवाञ्छ्रीभूनीलापतिः प्रभुः। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाऽतिरोहितः ॥१८॥
सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा सहस्राक्षःसहस्रपात् । सभूमिंसर्वतः स्पृत्वाह्यत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१९॥
अनन्तःश्रीपतीरामो गुणभृन्निर्गुणो महान् । सर्वलोकेश्वरः श्रीमान्सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥२०॥
तस्यलोकप्रधानस्य जगन्नाथस्यपार्वति !। माहात्म्यं वासुदेवस्य यच्छक्यंतद्ब्रवीमिते॥२१॥
अशक्यं तन्मया वक्तुं ब्रह्मणा सह दैवतैः । सर्वोपनिषदामर्थे वेदानते परिनिश्चितम् ॥२२॥

मनुष्य प्राप्त करते हैं उसको प्रेम पूर्वक आप मुझे विस्तार पूर्वक बतलायें ॥९-१०॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** इस तरह से महादेवी के द्वारा पूछे जाने पर त्रिपुर को विनष्ट करने वाले शङ्करजी परम प्रेम पूर्वक श्रीभगवान् को नमस्कार करके बोले ॥११॥ **रुद्र ने कहा—** हे सम्पूर्ण लोकों का कल्याण चाहने वाली महादेवी बहुत अच्छा है । हे देवि ! तुम मुझसे श्रीपति के उत्तम माहात्म्य को पूछ रही हो ॥१२॥ हे पार्वति ! तुम धन्य, पुण्यकार्य करने वाली तथा भगवान् विष्णु की भक्ता हो । हे भद्रे ! मैं तुम्हारे शील, रूप तथा गुणों से सन्तुष्ट हूँ ॥१३॥ हे गिरिजे ! अब मैं भगवान् की उत्तम भक्ति को उनके मन्त्रों की विधि को तथा श्रीभगवान् के स्वरूप को बतला रहा हूँ ॥१४॥ नारायण ही भगवान् विष्णु, वासुदेव, सनातन, परमात्मा, परंब्रह्म, परं ज्योति तथा परात्पर तत्त्व हैं ॥१५॥ वे ही अच्युत, कृष्ण, शाश्वत पुरुष, शिव, ईश्वर, नित्य, सर्वव्याप्त, स्थाणु, रुद्र, साक्षी और प्रजापति हैं ॥१६॥ वे ही यज्ञ, यज्ञपति, साक्षातब्रह्मपति, हिरण्यगर्भ, सविता, लोक की रचना करने वाले तथा लोक को धारण करने वाले एवं व्यापक हैं ॥१७॥ वे अकार वाच्य, भगवान् श्रीदेवी, भूदेवी और नीला देवी के स्वामी हैं । निश्चित रूप से वैकुण्ठ के स्वामी तथा अन्न से बढ़ते हैं ॥१८॥ वे सहस्रों शिर वाले, सम्पूर्ण जगत् की आत्मा, हजारों नेत्र वाले एवं हजारों चरण वाले हैं । वे सम्पूर्ण भूमि में व्यापक रहकर उसके बाहर अनन्त प्रदेश तक व्यापक हैं ॥१९॥ वे ही अनन्त, लक्ष्मीजी के पति, श्रीराम, समस्त सद्गुणों से परिपूर्ण प्राकृतिक गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण, महान् सम्पूर्ण लोकों के स्वामी, श्रीमान्, सर्वज्ञ, तथा हर ओर व्यापक हैं ॥२०॥ हे पार्वति सम्पूर्ण लोकों में प्रधान, जगत् के नाथ और जगत् के स्वामी भगवान् वासुदेव के माहात्म्य को मुझसे जितना हो सकेगा उतना मैं तुमको सुनाता हूँ ॥२१॥ उसका पूर्ण रूप से वर्णन न तो मैं कर सकता हूँ और न ब्रह्माजी और सभी देवता भी मिलकर उसका पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकते हैं उन सबों का निश्चय

तस्योपासनभेदांश्च शृणु वच्मि पुनः पृथक् ।
आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शङ्खचक्राङ्कनंहरेः ॥२३॥
धारणं चोर्द्ध्वपुण्ड्राणां तन्मन्त्राणांपरिग्रहः । अर्चनं च जपोध्यानं तन्नामस्मरणंतथा ॥२४॥
कीर्तनं श्रवणं चैव वन्दनं पादसेवनम् । तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदितभोजनम् ॥२५॥
तदीयानां च सेवा च द्वादशीव्रतनिष्ठता । तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥२६॥
भक्तिः षोडशधा प्रोक्ता भवबन्धविमुक्तये । सर्वेषामेवदेवानां ममाऽपि पुरुषोत्तमः ॥२७॥
पूजनीयो हरिर्नित्यंब्राह्मणानां विशेषतः । तस्मात्तु ब्राह्मणो नित्यं विधिवत्पूजयेद्धरिम् ॥२८॥
तच्चिह्नैरङ्कितः श्रीशपदं प्राप्नोत्यसंशयम् । शङ्खचक्राङ्कनं कुर्याद्ब्राह्मणो बाहुमूलयोः ॥२९॥
हुताग्निनैव सन्तप्य सर्वपापापनुत्तये । चक्रं वा शङ्खचक्रे वा तथा पञ्चायुधानि वा ॥३०॥
धारयित्वैव विधिवद्ब्रह्मकर्म समारभेत् । अग्नितप्तं पवित्रंच धृत्वा वै भुजमूलयोः ॥३१॥
त्यक्त्वा यमपुरं घोरं याति विष्णोः परं पदम् ।
चक्रचिह्नविहीनस्तु यःपूजयतिकेशवम् ॥३२॥
तत्सर्वं विफलं याति पूजामन्त्रजपादिकम् । अग्नितप्तेन चक्रेण ब्राह्मणोबाहुमूलयोः ॥३३॥
अङ्कयित्वाजपन्मन्त्रं संसारान्मोक्षमाप्नुयात् । सुदर्शनं धारयित्वावह्नितप्तं द्विजोत्तमः ॥३४॥
तपनीयविधानेन पश्चात्कर्मसु योजयेत् । विष्णुचक्रविहीनंतु यः श्राद्धे भोजयिष्यति ॥३५॥

सभी उपनिषदों के अर्थ में और वेदान्त में किया गया ॥२२॥ उनकी उपासना और उनके भेदों को अलग से मैं बतलाता हूँ ॥२३॥ सर्वप्रथम उपासना के लिए वैष्णव होना श्रीहरि के शङ्ख, चक्र से अङ्कित होना, ऊर्ध्व पुण्ड्रों को धारण करना, उनके मन्त्रों की दीक्षा लेना, पूजन करना, ध्यान करना, उनके मन्त्रों का जप करना, श्रीभगवान् के नामों का स्मरण करना, उनका कीर्तन करना, उनकी कथाओं का श्रवण करना, उनकी स्तुति करना, श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करना, उनके चरणामृत का सेवन करना, श्रीभगवान् को भोग लगाकर भोजन करना ॥२४-२५॥ भगवद् भक्तों की सेवा करना, द्वादशी व्रत में निष्ठा रखना और तुलसी रोपना इस तरह से देवाराध्य शार्ङ्ग धनुषधारी की सेवा संसार से मुक्ति पाने के लिए भक्ति सोलह प्रकार की बतलायी गयी हैं । सभी देवताओं तथा मेरे लिए भी भगवान् पुरुषोत्तम पूजनीय हैं ॥२६-२७॥ विशेष रूप से ब्राह्मणों के लिए नित्य पूजनीय हैं । इसीलिए ब्राह्मणों को चाहिए कि वे विधि पूर्वक नित्य श्रीहरि की पूजा करें ॥२८॥ श्रीभगवान् के चिह्नों से अङ्कित श्रीभगवान् के लोक को निश्चित रूप से प्राप्त करता है । ब्राह्मणों को अपने भुजमूल में शङ्ख और चक्र को अङ्कित करना चाहिए।॥२९॥ सभी पापों को दूर करने के लिए होम की गयी अग्नि से तप्त करके केवल चक्र को अथवा शङ्ख, चक्र दोनों को अथवा पञ्चायुधों को ॥३०॥ धारण करके विधि पूर्वक ब्रह्मकर्म को आरम्भ करना चाहिए । अग्नि से तप्त तथा पवित्र शङ्ख, चक्र को अपने भुज मूल में धारण करके ॥३१॥ मनुष्य भयङ्कर यमलोक को त्यागकर भगवान् के लोक में जाते हैं । शङ्ख और चक्र से रहित जो व्यक्ति भगवान् केशव की पूजा करता है ॥३२॥ वह पूजा तथा मन्त्र जप आदि सब कुछ व्यर्थ हो जाता है । ब्राह्मण, अग्नि तप्त चक्र से अपने भुजमूल को अङ्कित करके ॥३३॥ मन्त्र को जपते हुए संसार से मोक्ष प्राप्त कर लेता है । अग्नि से तप्त सुदर्शन चक्र को धारण करके ब्राह्मण श्रेष्ठ ॥३४॥ तपनीय विधि से उसके पश्चात् अपने को कर्मों में

व्यर्थं भवति तत्सर्वं निराशाः पितरो गताः ।
विष्णुचक्राङ्कितं विप्रं पूजयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥३६॥
विष्णुचक्रविहीनंतु प्रयत्नेन विवर्जयेत् । दद्याद्गोभूहिरण्यादिचक्राङ्कितभुजाय वै ॥३७॥
यद्दत्तं चक्रहीनाय तत्सर्वमसुराय वै। अग्नितप्तेन चक्रेण बाहुमूलेतु लाञ्छिताः ॥३८॥
सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
हुताग्नितप्तचक्रेण शरीरं यस्य चिह्नितम् ॥३९॥
तस्य तीर्थानि यज्ञाश्च सम्प्राप्ता नाऽत्रसंशयः ।
अधृत्वा विधिना चक्रं ब्राह्मणः प्राकृतो भवेत् ॥४०॥
न तस्य किञ्चिदश्नीयादपिक्रतुसहस्रिणः । अधृत्वा विधिना चक्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्लभः ॥४१॥
गर्हितस्सर्वलोकेषु ब्राह्मण्यात्प्रच्युतोभवेत्। शङ्खचक्रधरोदेवो हरिः पूज्योयथाऽऽत्मभिः ॥४२॥
तथैव सर्वैस्सम्पूज्यो विप्रश्चक्रादिचिह्नितः । सर्ववेदविदो वाऽपि सर्वशास्त्रविशारदः ॥४३॥
अधृत्वाविधिना चक्रं ब्राह्मणः पतितोभवेत्। उद्ध्र्वपुण्ड्रविहीनस्तु शङ्खचक्रविवर्जितः ॥४४॥
तं गर्दभे समारोप्य बहिः कुर्यात्स्वपत्तनात्। प्रकृतिस्पर्शरहितो वासुदेवो जनार्दनः॥४५॥
तथैव ब्राह्मणो देवि ! विष्णुचक्रेण चिह्नितः ।
तस्मात्प्रकृतिसंसर्गपापौघदहनं हरेः ॥४६॥
प्रतप्तं बिभृयाच्चक्रं शङ्खंच भुजभूलयोः । स्त्रीशूद्राणां सदा धार्यं चन्दनेन सुगन्धिना ॥४७॥
बाहुमले लिखेच्चक्रं तप्तं तु ब्राह्मणस्य वै। तप्तेनैवाऽङ्कनं कुर्याद्ब्राह्मणस्य विधानतः॥४८॥

लगाये । जो शङ्ख, चक्र विहीन को श्राद्ध में भोजन कराता है उसका किया हुआ सब कुछ व्यर्थ हो जाता है तथा उसके पितृगण निराश होकर लौट जाते हैं । श्राद्ध में विष्णु चक्र से चिह्नित ही ब्राह्मण की ही पूजा करनी चाहिए ॥३५-३६॥ विष्णु चक्र से विहीन को प्रयत्न पूर्वक त्याग देना चाहिए । चंक्राकित भुजभूल वाले को ही गौ, पृथिवी तथा सुवर्ण आदि दान देना चाहिए ॥३७॥ चक्रहीन को जो दान दिया जाता है वह असुरों को प्राप्त होता है । अग्नितप्त चक्र से अङ्कित भूजमूल वाले ॥३८॥ सभी पापों से रहित होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं । हवन की गयी अग्नि में तप्त चक्र से जिसका शरीर चिह्नित है॥३९॥ उसको तीर्थों तथा यज्ञों के फल प्राप्त हो जाते हैं । विधि पूर्वक चक्र धारण नहीं करने वाला ब्राह्मण प्राकृत हो जाता है ॥४०॥ यदि वह हजारों यज्ञों को करने वाला हो तो भी उसका कुछ भी नहीं खाना चाहिए। विधि पूर्वक चक्र धारण नहीं करने वाले ब्राह्मण को ज्ञान होना दुर्लभ है ॥४१॥ वह सभी कर्मो में निन्दित तथा ब्राह्मणत्व से पतित हो जाता है । जिस तरह शङ्ख, चक्र धारण करने वाले देवता सभी जीवों के लिए पूज्य होते हैं । सभी शास्त्रों को जानने वाला तथा सभी शास्त्रो में निपुण ॥४२-४३॥ ब्राह्मण शंख चक्र को धारण किए बिना पतित हो जाता है । ऊर्ध्व पुण्ड्र से रहित तथा शङ्ख, चक्र से रहित ॥४४॥ जो हो उसको गधे पर बैठा कर अपने नगर से बाहर निकाल देना चाहिए । भगवान् वासुदेव जनार्दन प्रकृति के स्पर्श से रहित हैं ॥४५॥ हे देवि ! विष्णु भगवान् के चक्र से चिह्नित ब्राह्मण प्रकृति के संसर्ग तथा पाप समूह को नष्ट करने वाला ॥४६॥ श्रीहरि के चक्र को तथा शङ्ख को भूजमूल में धारण करना चाहिए ।

श्रौतस्मार्त्तादिसिद्ध्यर्थं मन्त्रसिद्ध्यैतथैवच। हरेः पूजाधिकारार्थं चक्रंधार्यंविधानतः ॥४९॥
वैष्णवत्वस्य सिद्ध्यर्थं ज्ञानसिद्ध्यर्थमेव च। प्रतपेच्चक्रशङ्खाभ्यां हुत्वा होमं विधानतः ॥५०॥
अन्यैर्न दाहयेद्गात्रं ब्राह्मणो हरिलाञ्छनात्। शङ्खचक्रगदाखड्गशार्ङ्गादन्यैर्हरेरपि ॥५१॥
लक्षणैर्न दहेद्देहं नान्यदग्धोऽर्हति क्रियाम्। अचक्रधारिणं विप्रं दूरतः परिवर्जयेत्॥५२॥
श्वपाकमिव नेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम्। वैष्णवो वर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम्॥५३॥

तस्मात्तु विधिना चक्रं धार्यं विप्रैः शुभानने ! ।
ब्राह्मणा मन्त्रसिद्ध्यै च ज्ञानसिद्ध्यै च मुक्तये ॥५४॥
अप्राकृता महात्मानो विष्णुचक्रेण लाञ्छिताः ।
विष्णुचक्रविहीनास्तु ब्राह्मणाः प्राकृताः स्मृताः ॥५५॥

सर्वाश्रमेषु वसतां ब्राह्मणानां विशेषतः। विधना वैष्णवं चक्रं धार्यंहि श्रुतिनोदनात् ॥५६॥
दक्षिणेतु भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम्। सव्येतु शङ्खं विभृयादिति ब्रह्मविदोविदुः ॥५७॥
एवं महोपनिषदि प्रोक्तंचक्रादिधारणम्। तथैव साम्नि यजुषि ऋचि प्रोक्तं शुभानने !॥५८॥

अतप्ततनूर्नतदामो अश्नुते श्रृता स इद्वहन्तस्तत्समाशत ।
इत्यापस्तम्बशाखायाम्प्रोक्तं चक्रस्य धारणम् ॥५९॥
प्रते विष्णो अब्जचक्रे पवित्रे जन्मम्भोधिं तर्तवे चर्षणीन्द्राः ।
मूलेबाह्वोर्दधतेऽन्ये पुराणालिङ्गान्यङ्ग तावकान्यर्पयन्ति ॥६०॥

स्त्रियों तथा शूद्रों को सदा सुगन्धित चन्दन से शंङ्ख चक्र धारण करना चाहिए। और ब्राह्मण को प्रतप्त शङ्ख चक्र धारण करना चाहिए। ब्राह्मण को तप्त ही शङ्ख चक्र से अङ्कित करे ॥४७-४८॥ श्रौत स्मार्त कर्मों की सिद्धि तथा ज्ञान की प्राप्ति के लिए एवं भगवान् विष्णु की पूजा के अधिकार की प्राप्ति के लिए तप्त चक्र को धारण करना चाहिए ॥४९॥ वैष्णवत्व की सिद्धि तथा ज्ञान की सिद्धि के लिए विधि पूर्वक होम करके शङ्ख, चक्र को करना चाहिए ॥५०॥ शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग तथा शार्ङ्ग से भिन्न श्रीहरि के आयुधों से ब्राह्मण के शरीर को अङ्कित नहीं करना चाहिए ॥५१॥ अन्य आयुधों से दग्ध ब्राह्मण कार्य के योग्य नहीं होता है। चक्र नहीं धारण करने वाले ब्राह्मण का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए ॥५२॥ लोक में अवैष्णव विप्र को चाण्डाल के समान हीं देखना चाहिए। वर्ण वाह्य भी वैष्णव त्रैलोक्य को पवित्र कर देता है ॥५३॥ हे शुभानने ! इसीलिए ब्राह्मणों को विधि पूर्वक चक्र धारण करना चाहिए। ब्राह्मणों को मन्त्र की सिद्धि और ज्ञान की सिद्धि एवं मुक्ति के लिए चक्र धारण करना चाहिए ॥५४॥ भगवान् विष्णु के चक्र से अङ्कित ब्राह्मण अप्राकृत एवं महात्मा हैं। भगवान् विष्णु के चक्र से रहित ब्राह्मण प्राकृत कहे गये हैं ॥५५॥ विशेष रूप से सभी आश्रमों में रहने वाले ब्राह्मणों को श्रुति के अनुसार विधि पूर्वक भगवान् विष्णु के आयुध चक्र को धारण करना चाहिए ॥५६॥ ब्राह्मण दाहिनी भुजा में चक्र धारण करे और बायीं भुजा में शङ्ख धारण करे यह ब्रह्म ज्ञानियों ने कहा है ॥५७॥ हे शुभानने ! महोपनिषत् में तथा सामयजुष् में चक्र धारण की यही विधि बतलायी गयी हैं। वे मन्त्र हैं— **अतप्ततनुर्न तदामो अश्नुते श्रृता स इदवहन्तस्तत्समाशत**। इस तरह से आपस्तम्वशाखा में चक्र धारण का विधान किया गया है ॥५८-५९॥

चरणं पवित्रं विततं पुराणं वाङ्मयंशुभम्। तेन चक्रेण सन्तप्तास्तरेयुः पातकाम्बुधिम् ॥६१॥
पवित्रं ब्राह्मणस्पत्यं जगद्व्याप्तं हरेस्सदा। तेनातप्ता तनूर्येषां न ते यान्ति परं पदम्॥६२॥
तेन तप्ता तनूर्येषां ते प्रयान्ति परं पदम् । पवित्रं चरणं नेमिः पविश्चक्रंसुदर्शनम्॥६३॥
सहस्रारं प्राकृतघ्नं लोकद्वारं महौजसम्। नामानि विष्णुचक्रस्य पर्यायेण निबोध मे ॥६४॥
शूद्धेन वह्नितप्तेन ब्रह्म तेन पुनीहि नः । यत्ते पवित्रमर्चिष्मदग्ने तेन पुनीहि नः ॥६५॥
येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम् ॥६६॥
प्राजापत्यं पवित्रन्तु शतोद्यामं हिरण्मयम् । वयं ब्रह्मविदस्तेन पूतं ब्रह्म पुनीमहे ॥६७॥
सनेमिचक्रमजरं चक्षुरस्य महात्मनः । अस्मिन्ति विधृते देहे महोन्नतपदं ययौ ॥६८॥
तस्माद्वै विधिवद्धार्याः शङ्खचक्रादिहेतयः। ब्राह्मणानां विशेषेण वैष्णवानां विशेषतः ॥६९॥

धृतोद्‌र्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारी विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा ।
स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदिस्थं परात्परं याति विशुद्धचेताः ॥७०॥
ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला ये बाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचक्राः ।
ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥७१॥

दिवस्पतेः सुविततं पवित्रं ये तु दक्षिणे । न वहन्ति भुजे सम्यङ्नहि शोचन्ति जन्तवः ॥७२॥
येवहन्ति भुजेचक्रं शङ्खञ्च विधिना द्विजाः। परंव्योम्नितु ते स्थानमधितिष्ठन्ति तेजसा ॥७३॥

सामयजुष की श्रुति है— **प्रते विष्णो अब्ज चक्रे पवित्रे जन्माम्भोधि तं तर्तवे चर्षणीन्द्राः । मूले बाह्वोर्दधतेन्येपुराणालिङ्गान्यङ्ग तावकान्यर्पयन्ति** ॥६०॥ अर्थात् पवित्र चरण विख्यात तथा प्राचीन वाङ्मय और शुभ है । उस चक्र से जिनका शरीर संतप्त है वे पाप सागर को पार कर जाते हैं ॥६१॥ पवित्र ब्राह्मणस्पत्य तथा जगद् व्याप्त श्रीहरि के चक्र को कहा गया है । उससे जिनका शरीर तप्त नहीं है वे परंपद को नहीं प्राप्त करते हैं ॥६२॥ उससे जिनका शरीर तप्त है वे परंपद को प्राप्त करते है, पवित्र, चरण, नेमि और पवि ये सुदर्शन चक्र के वाचक हैं ॥६३॥ सहस्रार, प्राकृतघ्न, लोकद्वार तथा महौजस ये सभी भगवान् विष्णु के चक्र के नाम हैं यह तुम जानो ॥६४॥ हे ब्रह्मन् ! उस अग्नि से संतप्त शुद्ध चक्र से हमलोगों को पवित्र करो । हे प्रकाश युक्त अग्ने ! आपका जो चक्र है उससे हमें आप पवित्र करें॥६५॥ जिस चक्र से देवगण अपने को पवित्र करते हैं उस चक्र से मुझको पावमानी ऋचाएँ पवित्र करें॥६६॥ प्राजापत्य चक्र जो सैकड़ों प्रकाश से युक्त और सुवर्णमय है, उससे हम ब्रह्मवेत्ता गण अपवित्र शरीर को पवित्र करते हैं ॥६७॥ वह नेमिचक्र इस माहात्मा के अजर नेत्र हैं । इसको शरीर पर धारण करने से जीव महान् उन्नत पद को प्राप्त करता है ॥६८॥ अतएव ब्राह्मणों को विशेषकर वैष्णवों को शङ्ख, चक्र आदि आयुधों को विधि पूर्वक धारण करना चाहिए ॥६९॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करके चक्र धारण करने वाला जो माहात्मा स्वर तथा मन्त्र से हृदय में विद्यमान भगवान् विष्णु का ध्यान करता है वह विशुद्ध अन्तःकरण वाला परात्पर पद को प्राप्त करता है ॥७०॥ वे वैष्णव संसार को शीघ्र पवित्र कर देते हैं जो गले में तुलसी और कमल की माला को धारण करते हैं । अपने भुजमूल में शङ्ख चक्र से अङ्कित होते हैं तथा जिनके ललाट पर ऊर्ध्व पुण्ड्र सुशोभित होता है ॥७१॥ वैकुण्ठ के स्वामी के विस्तृत चक्र को जो नहीं धारण करते हैं वे जीव अच्छी तरह से नहीं सोचते हैं ॥७२॥ जो ब्राह्मण अपनी भुजाओं पर

होमाग्निसंतप्तपवित्रलाञ्छितो मूले तु बाह्वोः परमात्मनो हरेः ।
स तारयित्वा भवसागरं महच्छुद्धं परं याति परेशलोकम् ॥७४॥
अङ्कयेत्तप्तचक्राद्यैरात्मनो बाहुमूलयोः। कलपात्रत्यभृत्येषु पश्वादिषु समङ्कयेत् ॥७५॥
इत्येवं श्रुतयः सर्वाः कथयन्ति वरानने ! । तथैव सेतिहासेषु पुराणेष्वपि कथ्यते ॥७६॥
द्विविधं वैष्णवं प्रोक्तं ब्राह्ममाभ्यन्तरं तथा । शङ्खचक्रादिभिर्बाह्यमन्तरं वीतरागता ॥७७॥
बाह्याभ्यन्तरसाम्यं यत्तद्वैष्णवमुदाहृतम् । तस्माच्चक्रादिचिह्नतु प्रथमं वैष्णवं स्मृतम् ॥७८॥
आन्तरं स्मरदोषादि विमुक्तं स्वात्मदर्शनम् । सर्वभूतदयाशान्तिरिन्द्रियार्थेष्वलोलता ॥७९॥
पुत्रदाराद्यसङ्गत्वं योगाभ्यासरतिस्तथा । अनन्यभक्तियोगेन परेशस्याऽभिषेवणम् ॥८०॥
तस्माच्चक्रादिहेतीनामङ्कनं वैष्णवं स्मृतम् । चक्रादिचिह्नहीनत्वाद्वैष्णवत्वं न लभ्यते ॥८१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादेसुदर्शनादिमाहात्म्यं नाम चतुर्विंशत्यधिकद्विशततततमोऽध्यायः ॥२२४॥

शङ्ख, और चक्र को धारण करते हैं वे अपने तेज से वे परम व्योम में स्थान प्राप्त करते हैं ॥७३॥ होम की अग्नि से संतप्त श्रीभगवान् के चक्र से जिनका भुजमूल लांछित होता है वे भव सागर को पार करके अत्यन्त शुद्ध श्रीभगवान् के परं पद में जाते हैं ॥७४॥ अतएव शङ्ख, चक्र आदि से अपने भुजमूल को अङ्कित करना चाहिए और पत्नी, पुत्रों भृत्यों और पशु आदि को भी अङ्कित करना चाहिए ॥७५॥ हे श्रेष्ठ मुख वाली पार्वति ! इसी तरह से सभी श्रुतियाँ कहती हैं और पुराणों एवं इतिहासों में भी ऐसा ही कहा गया है ॥७६॥ दो प्रकार के वैष्णव कहे गये है बाह्य और आभ्यान्तर शङ्ख, चक्र आदि वाह्य वैष्णवता का चिह्न है और आभ्यान्तर वैष्णवता का चिह्न वीतराग होना है ॥७७॥ जिसका बाह्य और अभ्यान्तर वैष्णवत्व एक समान होता है वही वैष्णव कहा गया है । इसीलिए शङ्ख, चक्र आदि चिह्न बाह्य वैष्णवता है आभ्यान्तर वैष्णवत्व कामादि दोष से रहित होना और आत्म दर्शन है । सभी जीवों पर दया, शान्ति तथा ऐन्द्रियिक विषयों से लोलुपत्व राहित्य ॥७८॥ पुत्र तथा पत्नी आदि में आसक्ति राहित्य, योगाभ्यास में प्रेम, अनन्य भक्ति के द्वारा श्रीभगवान् की सेवा ॥७९-८०॥ और चक्र आदि आयुधों से अङ्कित होना ही वैष्णवत्व है । चक्र आदि चिह्नों से रहित व्यक्ति वैष्णवता को नहीं प्राप्त करता है ॥८१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमा महेश्वर संवाद के अन्तर्गत सुदर्शन आदि के धारण का माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ चौबीसवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२४।।

दो सौ पच्चीसवाँ अध्याय

शङ्कर उवाच

ऊद्ध्र्वपुण्ड्रस्यमाहात्म्यं वक्ष्यामिशुभदर्शने ! ।
धारणादेवमुच्येत भवबन्धाद्द्विजोत्तमः ॥१॥
उद्ध्र्वपुण्ड्रस्य मध्येतु विशाले सुमनोहरे । लक्ष्म्यासार्द्धं समासीनो देवदेवोजनार्दनः ॥२॥
तस्माद्यस्य शरीरेतु ऊद्ध्र्वपुण्ड्रं धृतं भवेत् ।
तस्य देहं भगवतो विमलं मन्दिरंशुभम् ॥३॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रं यो मृदा शुभ्रेण वैष्णवः ॥४॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रः सर्वलोकेषु पूजितः । विमानवरमारुह्य याति विष्णोः परं पदम् ॥५॥
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रं तु त्रिसन्ध्यं तु द्विजोत्तमः। सर्वपापविशुद्ध्यर्थमिष्टापूर्तफलाप्तये ॥६॥
ऊद्ध्र्वपुण्ड्रधरं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। नमस्कृत्वाऽथवा भक्तया सर्वदानफलंलभेत् ॥७॥
ऊद्ध्र्वपुण्ड्रधरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति ।
आकल्पकोटिपितरस्तस्य तृप्तान संशयः ॥८॥
ऊद्ध्र्वपुण्ड्रधरोयस्तु कुर्याच्छ्राद्धंशुभानने !। कल्पकोटिसहस्राणि गयाश्राद्धफलंलभेत् ॥९॥
यज्ञदानतपश्चर्याजपहोमादिकं च यत् । ऊद्ध्र्वपुण्ड्रधरः कुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥१०॥
ऊद्ध्र्वपुण्ड्रविहीनस्तु किञ्चित्कर्म करोतियः ।
इष्टापूर्तादिकंसर्वं निष्फलं स्यान्नसंशयः ॥११॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण विधि पूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण का माहात्म्य

शङ्करजी ने कहा— हे सुन्दर नेत्रों वाली ! मैं ऊर्ध्व पुण्ड्र के धारण का माहात्म्य बतलाता हूँ । उसके धारण मात्र से श्रेष्ठ ब्राह्मण मुक्त हो जाता है ॥१॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र के विशाल तथा अत्यन्त मनोहर मध्य भाग मे लक्ष्मीजी के साथ देवाराध्य भगवान् जनार्दन बैठे रहते हैं ॥२॥ अतएव जिसके शरीर पर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किया गया रहता है उसका पवित्र शरीर श्रीभगवान् का मंदिर होता है ॥३॥ जो वैष्णव श्वेत मिट्टी से ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करता है उसको सभी तीर्थों में स्नान करने और सभी यज्ञों में दीक्षित होने का फल प्राप्त होता है ॥४॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाला ब्राह्मण सभी लोकों में पूजित होकर श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर भगवान् विष्णु के परं पद में जाता है । द्विजोत्तम को चाहिए कि वह सभी पापों से विशोधित तथा इष्टापूर्त के फल को पाने के लिए तीनों सन्ध्याओं में ऊर्ध्व पुण्ड्र को धारण करे ॥५-६॥ ऊर्ध्व पुण्ड्रधारी को देखकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । अथवा उसको भक्ति पूर्वक नमस्कार करके सभी दानों का फल प्राप्त कर लेता है ॥७॥ जो ऊर्ध्वपुण्ड्राधारी ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन कराता है उसके पितृगण कल्प पर्यन्त तृप्त रहते हैं इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं हैं ॥८॥ हे शुभानने जो ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करके श्राद्ध करता है वह करोड़ हजार कल्पों तक गया में श्राद्ध करने का फल प्राप्त करता है ॥९॥ यज्ञ, दान, तपस्या तथा जप होम आदि को जो ऊर्ध्व पुण्डधारी करता है, उसको अनन्त पुण्य होता है ॥१०॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र विहीन जो कुछ भी कार्य करता है । उसके द्वारा किए गये इष्टापूर्त आदि

यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रविवर्जितम् । द्रष्टव्यं नैव तत्किञ्चिच्छ्मशानसदृशंभवेत् ॥१२॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्मादिकंचरेत् । तत्सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकंचाऽधिगच्छति॥१३॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रो मृदा शुभ्रेण वैदिकः । न तिर्यग्धारयेद्विद्वानापद्यपि कदाचन ॥१४॥
विप्राणामूर्ध्वपुण्ड्रं स्यात्तिलकन्तु महीभृतः। पट्टाकारंतु वैश्यानां शूद्राणां वै त्रिपुण्ड्रकम्॥१५॥
उर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कार्यं कस्तूर्यातिलकन्तथा। पट्टाकारंतु गन्धेन भस्मनैव त्रिपुण्ड्रकम्॥१६॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु सर्वेषां न निषिद्धं कदाचन। धारयेत्क्षत्रियाद्योऽपि विष्णुभक्तो भवेद्यदि ॥१७॥
विप्राणां नैव कार्यंस्यातिर्यक्पट्टादिधारणम् । नारायणात्परेशानादन्येषामर्चनं न तु ॥१८॥
ब्राह्मणः कुलजो विद्वान्भस्मधारी भवेद्यदि। वर्जयेत्तादृशं देवि ! मद्योच्छिष्टं घटं यथा ॥१९॥
त्रिपुण्ड्रशूद्रकल्यानां शूद्राणाञ्च विधीयते । त्रिपुण्ड्रधारणाद्विप्रः पतितः स्यान्न संशयः ॥२०॥
एकान्तिनो महाभागाः सर्वभूतहिते रताः । सान्तरालं प्रकुर्वीरन्पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम् ॥२१॥
हरेः पादाकृतिं कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं विधानतः । मध्यच्छिद्रेण संयुक्तं तद्धि वै मन्दिरं हरेः ॥२२॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यं सुपार्श्वं सुमनोहरम्। दण्डाकारं सुशोभाढयं मध्ये च्छिद्रं प्रकल्पयेत्॥२३॥
तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं दण्डाकारं सुशोभनम् ।
विप्राणांसततं कार्यस्त्रीणांचशुभदर्शने ! ॥२४॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्येतु विशाले सुमनोहरे। सान्तराले समासीनो हरिरस्तिश्रियासह ॥२५॥

सब कुछ निष्फल होते हैं इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥११॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र विहीन मनुष्य जो सन्ध्या आदि कर्मों को करता है, उन सबों को राक्षस लेते हैं और वह नरक में जाता है ॥१२-१३॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी वैदिक ब्राह्मण श्वेत मृत्तिका से तिरछा पुण्ड्र आपत्ति में भी कभी धारण न करे ॥१४॥ विप्रों का तिलक ऊर्ध्वपुण्ड्र होता है, क्षत्रियों का पट्टाकार होता है, वैश्यों तथा शूद्रों का तिलक त्रिपुण्ड्र होता है ॥१५॥ ऊर्ध्व पुण्ड तिलक मिट्टी तथा कस्तूरी से करना चाहिए । पट्टाकार तिलक चन्दन से तथा त्रिपुण्ड्र भस्म से धारण करना चाहिए ॥१६॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र किसी के लिए निषिद्ध नहीं है क्षत्रिय आदि भी यदि भगवान् विष्णु के भक्त है तो वे भी ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें ॥१७॥ ब्राह्मणों को पट्टाकार अथवा तिरछा तिलक नहीं करना चाहिए । सबों के स्वामी नारायण से भिन्न किसी की पूजा भी ब्राह्मण को नहीं करना चाहिए ॥१८॥ यदि सद्वंश में उत्पन्न ब्राह्मण भस्मधारी होता है तो हे देवि ! उसको उसी तरह से त्याग देना चाहिए जिस तरह मद्य रहित घड़े को त्याग दिया जाता है ॥१९॥ त्रिपुण्ड्र शूद्र के जैसे लोगों के लिए तथा शूद्रों के लिए होता है, त्रिपुण्ड्रधारी ब्राह्मण पतित हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥२०॥ सभी जीवों का कल्याण करने वाले एकान्ती महाभागों को अन्तराल युक्त श्रीहरि के चरणों की आकृति वाला पुण्ड्र धारण करना चाहिए ॥२१॥ विधि पूर्वक अन्तराल युक्त श्रीहरि के चरणों की आकृति वाला ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिए । जो बीच के छिद्र वाला होता है वही ऊर्ध्वपुण्ड्र श्रीहरि का मन्दिर होता है ॥२२॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र को ऋजु, सुन्दर, सुन्दर पार्श्वों वाला तथा मनोहर एवं दण्डाकार एवं बीच में छिद्र से युक्त बनाना चाहिए॥२३॥ हे शुभदर्शने । इसीलिए ब्राह्मणों तथा स्त्रियों को ऊर्ध्वपुण्ड्र छिद्र से युक्त सुन्दर करना चाहिए ॥२४॥ अतएव विशाल, अत्यन्त मनोहर तथा अन्तराल युक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र के बीच में श्रीहरि लक्ष्मीजी के साथ बैठे

निरन्तरालंयः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः। सहि तत्र स्थितंविष्णुं श्रियं चैव व्यपोहति॥२६॥
अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रन्तु येकुर्वन्ति द्विजाधमाः। तेषां ललाटे सततं शुनः पादो न संशयः॥२७॥

तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं सहरिद्रं शुभान्वितम् ।
धारयेद्ब्राह्मणो नित्यं हरिसालोक्यसिद्धये ॥२८॥
आदाय परया भक्तया वेङ्कटाद्रौ ह्रदे मृदम् ।
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि हरिसायुज्यसिद्धये ॥२९॥

श्रीकृष्णतुलसीमूले मृदमादाय भक्तिमान् । धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि हरिस्तत्र प्रसीदति॥३०॥
द्वारवत्यां शुभे रम्ये वासुदेवह्रदे तथा। तत्रोद्भवां मृदं रम्यामादाय द्विजसत्तमः॥३१॥
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि सर्वकामफलाप्तये। आदाय परया भक्तया गङ्गातीरोद्भवां मृदम्॥३२॥
तयाधृत्वोर्द्धपुण्ड्राणि सर्वयज्ञफलं लभेत्। चन्दनं च हरिद्राच तथा भस्माग्निहोत्रजम्॥३३॥
सर्वं वश्यकरं प्रोक्तमूर्ध्वपुण्ड्रस्य धारणात्। यत्र पुण्यं हरिक्षेत्रं तत्रवै मृदमाहरेत्॥३४॥

सैव श्रेयोऽर्थिमिर्ग्राह्या चोर्ध्वपुण्ड्रस्य धारणे ।
पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले जलाशे ॥३५॥

सिन्धुतीरेच वल्मीके हरिक्षेत्रे विशेषतः। विष्णोः स्नानोदकं यत्र प्रवाहयति नित्यशः॥३६॥

पुण्ड्राणां धारणार्थाय गृह्णीयात्तत्र मृत्तिकाम् ।
श्रीरङ्गे वेङ्कटाद्रौच श्रीकूर्मे द्वारकेशुभे ॥३७॥

प्रयागे नारसिंहाद्रौ वाराहे तुलसीवने। गृहीत्वा मृत्तिकां भक्तया विष्णुपादजलैःसह ॥३८॥

रहते हैं ॥२५॥ जो द्विजाधम अन्तराल रहित ऊर्ध्वपुण्ड्र को करते हैं वे ऊर्ध्वपुण्ड्र में विद्यमान विष्णु तथा लक्ष्मीजी को वहाँ से हटाते हैं ॥२६॥ जो द्विजाधम छिद्र रहित ऊर्ध्वपुण्ड्र को लगाते हैं उन सबों के ललाट पर सदा कुत्ते का पैर रहता है ॥२७॥ अतएव छिद्र तथा शुभ हरिद्रा से युक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र ब्राह्मण को धारण करना चाहिए जिससे श्रीहरि के नित्य सालोक्य की प्राप्ति हो ॥२८॥ वेङ्कटाद्रि के ह्रद की मृत्तिका को अत्यन्त भक्ति पूर्वक लेकर श्रीहरि के सायुज्य की प्राप्ति के लिए ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करना चाहिए ॥२९॥ भगवान् श्रीकृष्ण की प्रियतमा तुलसी के मूल की मिट्टी को भक्ति पूर्वक लेकर जो ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करता है उससे श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ॥३०॥ द्वारका के भगवान् वासुदेव के शुभ ह्रद की मिट्टी को लेकर ब्राह्मण श्रेष्ठ सभी कामनाओं की पूर्ति के लिए ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करे । परमा भक्ति पूर्वक गङ्गाजी के तीर की मिट्टी को ॥३१-३२॥ यदि उससे ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है तो उसको सभी यज्ञों का फल प्रापत होता है । चन्दन, हल्दी तथा अग्नि होत्र का भस्म ये सभी ॥३३॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र के धारण में वश्यकर बतलाये गये । जहाँ श्रीहरि का पवित्र क्षेत्र हो वहाँ की मिट्टी को लाना चाहिए ॥३४॥ वही कल्याण चाहने वालों के लिए ऊर्ध्वपुण्ड्र के धारण के लिए बतलायी गयी है । पर्वत पर नदी के तट में, विल्ववृक्ष के नीचे, जलाशय में तथा समुद्र के किनारे, वल्मीक पर तथा विशेष रूप से श्रीहरि के क्षेत्र में, जहाँ पर श्रीभगवान् के स्नान का जल नित्य गिराया जाता है ॥३५-३६॥ वहाँ से ऊर्ध्वपुण्डों को धारण करने के लिए मिट्टी लेनी चाहिए । श्रीरङ्गम, वेङ्कटाद्रि, कूर्म क्षेत्र, द्वारका, प्रयाग, नृसिंहाचल, वाराह क्षेत्र

धृत्वा पुण्ड्राणि चाङ्गेषु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
यस्मिन्कस्मिन्महाभागा वैष्णवा धारयन्ति वै ॥३९॥
तस्मिन्वैमृत्तिकाग्राह्या ऊर्ध्वपुण्ड्रस्यधारणे । श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तंरक्तंवश्यकरं तथा॥४०॥
श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षकरं शुभम्। वर्तुलं तिर्यगच्छिद्रं ह्रस्वंदीर्घं ततं तनुम् ॥४१॥
वक्रं विरूपं बद्धाग्रछिन्नमूलं पदच्युतम्। अशुभंरूक्षमासक्तं तथाऽनङ्गुलिकल्पितम् ॥४२॥
विगन्धमपसव्यंच पुण्ड्रमाहुरनर्थकम् । आरभ्य नासिकामूलं ललाटान्तं लिखेन्मृदा ॥४३॥
समारभ्य भ्रुवोर्मध्यमन्तरालंप्रकल्पयेत् । अन्तरालंद्व्यङ्गुलं स्यात्पार्श्वविङ्गुलिमात्रकौ॥४४॥
मृदाशुभ्रेण विलिखेत्पुण्ड्रं त्वृजुतरं शुभम् । ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे॥४५॥
वक्षःस्थले माधवंच गोविन्दं कण्ठकूबरे । विष्णुंच दक्षिणे कुक्षौ बाहौच मधुसूदनम् ॥४६॥
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके । श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशन्तु कन्धरे॥४७॥
पृष्टे वै पद्मनाभन्तु त्रिके दामोदरं न्यसेत्। तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं तु मूर्द्धनि ॥४८॥
ललाटे भुजयुग्मे तु पृष्ठयोः कण्ठकूबरे। धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रं तु चतुरङ्गुलमात्रतः ॥४९॥
कुक्षौ तत्पार्श्वयोः प्रोक्तमायतं तु दशाङ्गुलम् ।
बाह्वोर्वक्षः स्थलेपुण्ड्रमष्टाङ्गुलमुदाहृतम् ॥५०॥

तथा तुलसी वन की मिट्टी लेकर यदि भक्ति पूर्वक भगवान् विष्णु के चरणोदक मिलाकर जो ऊर्ध्वपुण्ड्रों को धारण करता है वह भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है । जहाँ कहीं से महाभाग वैष्णव मिट्टी ग्रहण करते हैं ॥३७-३८॥ वहीं से ऊर्ध्व पुण्ड्र को धारण करने के लिए मिट्टी लेनी चाहिए । श्याम तिलक शान्ति देने वाला, रक्त तिलक वश्य करने वाला, पीला लक्ष्मी बढाने वाला और श्वेत मोक्ष प्रदान करने वाला होता है । गोल, तिरछा, छिद्र रहित छोटा, बड़ा, विशाल शरीर वाला ॥३९-४१॥ चक्राकृति, विरूप, जिसके आगे का आकार सटा हो । जिसका सिंहासन न हो, पदच्युत अशुभ, रुक्ष, आपस में सटा हुआ तथा जो अङ्गुलि से नहीं बनाया गया हो ॥४२॥ दुर्गन्धि युक्त, अपसव्य, ये सभी पुण्ड्र अनर्थक है। नासिका के अग्र भाग से प्रारम्भ करके लाल के अन्तिम भाग तक ऊर्ध्वपुण्ड्र मिट्टी से बनाये ॥४३॥ भौहों से प्रारम्भ करके अन्तराल बनाना चाहिए । अन्तराल दो अङ्गुल का होना चाहिए उसके पार्श्वभागों को एक-एक अङ्गुलि का होना चाहिए ॥४४॥ श्वेत मिट्टी से अत्यन्त सीधा श्वेत ऊर्ध्व बनाये । ललाट के तिलक में भगवान् केशव का ध्यान करे, उदर के तिलक में भगवान नारायण का ध्यान करे ॥४५॥ वक्षःस्थल के तिलक में माधव का, कण्ठ कूबर के तिलक में गोविन्द भगवान् का, दाहिनी कुक्षि में भगवान् विष्णु का, बाहु के तिलक में भगवान् मधुसूदन का ॥४६॥ कन्धे के तिलक में भगवान् श्रीधर का कन्धे के तिलक में भगवान् हृषीकेश का ॥४७॥ पीठ के तिलक में भगवान् पद्मनाभ का और त्रिक में भगवान् दामोदर का ध्यान करे । उसको जल से धोने के समय भगवान् वासुदेव का शिर से ध्यान करे ॥४८॥ ललाट में दोनों भुजाओं में पीठ पर और कण्ठकूबर पर चार अङ्गुल का तिलक लगाना चाहिए ॥४९॥ दोनों कुक्षियों में दश अङ्गुल लम्बा तिलक लगाये दोनों भुजाओं और तथा वक्षःस्थल में आठ आङ्गुल का तिलक लगाये ॥५०॥ इस तरह ब्राह्मण को सदा बारह ऊर्ध्वपुण्ड्रों को धारण करना चाहिए । विभिन्न पुण्डों

एवं द्वादशपुण्ड्राणि ब्राह्मणः सततं धरेत्। तत्तत्पुण्ड्रे तु तन्मूर्तीर्ध्यात्वा मन्त्रेण धारयेत्॥५१॥
अन्तरालेषु सर्वेषु हरिद्रांधारयेच्छ्रियम्। चत्वारि भूभृतामाहुःपुण्ड्राणि द्वे विशांस्मृते ॥५२॥
एकपुण्ड्रन्तु नारीणां शूद्राणांचविधीयते। ललाटे हृदि बाह्वोश्चचतुष्पुण्ड्राणिधारयेत् ॥५३॥
ललाटे हृदये द्वे तु फालेत्वेकं विधीयते। ऊर्ध्वपुण्ड्रं ललाटेतु सर्वेषां प्रथमं स्मृतम्॥५४॥
ललाटादिक्रमेणैव धारणं तु विधीयते। मूर्तीस्तु वासुदेवाद्याश्चतुष्पुण्ड्रेषु धारयेत् ॥५५॥
द्वयोर्गोविन्दकृष्णौतु एकं नारायणंधरेत्। एवंपुण्ड्रविधिः प्रोक्तःसर्वेषां गिरिजे ! मया॥५६॥
अश्वस्थपत्रसङ्काशो वेणुपत्राकृतिस्तथा। पद्मकुड्मलसङ्काशो मोहनं त्रितयं स्मृतम्॥५७॥
महाभागवतः शुद्धः पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम्। दण्डकारं तु वा देवि ! धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम्॥५८॥

सदुर्शनेनाऽङ्कितबाहुमूलास्तथोर्ध्वपुण्ड्राङ्कितसर्वगात्राः ।
मालारविन्दाक्षधरा विशुद्धा रक्षन्ति लोकान्दुरितौघसङ्गात् ॥५९॥

इति श्रीपद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादेऊर्ध्वपुण्ड्रमाहात्म्यं नाम पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२५॥
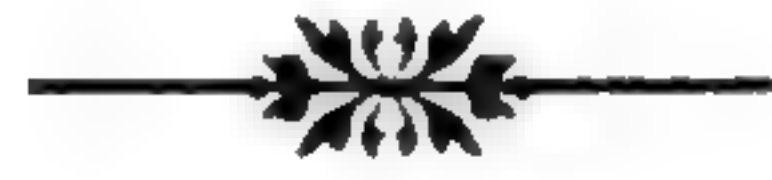
को भगवान् की उनकी मूर्तियों का ध्यान करके लगाना चाहिए ॥५१॥ सभी अन्तरालों में हल्दी से श्रीदेवी को धारण करना चाहिए। क्षत्रियों को चार तिलक तथा वैश्यों को दो तिलक लगाना चाहिए ॥५२॥ स्त्रियों और शूद्रों को एक तिलक का विधान है। ललाट, हृदय तथा दोनों भुजाओं में मिलाकर चार पुण्ड्रों को धारण करना चाहिए ॥५३॥ ललाट में तथा हृदय में इस तरह से दो तिलक लगाये। ललाट पर एक तिलक धारण करे। सबों से पहले ललाट पर तिलक लगाना चाहिए ॥५४॥ ललाट आदि के क्रम से ही तिलक धारण का क्रम है। चार पुण्ड्रों में वासुदेव आदि मूर्तियों का ध्यान करें ॥५५॥ दो तिलक में भगवान् गोविन्द तथा भगवान् कृष्ण का ध्यान करे। एक तिलक में भगवान् नारायण का ध्यान करे। हे गिरिजे ! सबों के तिलक का विधान मैंने तुमको बतलाया ॥५६॥ पिप्पल के पत्ते के आकार का तथा बांस के पत्ते के समान, कमल की कलि के समान ये तीनों प्रकार के तिलक मोहक होते हैं ॥५७॥ महाभागवत को श्रीहरि के चरणों के आकार का शुद्ध पुण्ड्र धारण करना चाहिए। अथवा हे देवि ! दण्ड के आकार का पुण्ड्र धारण करे ॥५८॥ जिनका बाहुमूल सुदर्शन चक्र से अङ्कित है, जो अपने सम्पूर्ण शरीर में ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करते हैं तथा गले में कमलाक्ष की माला धारण करते हैं। वे विशुद्ध पुरुष पाप समूह से संसारी जीवों की रक्षा करते हैं ॥५९॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत ऊर्ध्व पुण्ड्र के माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ पचीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२२५॥

दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय

शङ्कर उवाच

न्यासे वाऽप्यर्चने वाऽपि मन्त्रमेकान्तिनः श्रयेत् ।
अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण न परा गतिः ॥१॥

अवैष्णवोपदिष्टं चेत्पूर्वं मन्त्रवरं द्वयम् । पुनश्च विधिना सम्यग्वैष्णवाद्ग्राहयेद्गुरोः ॥२॥
सहस्रशाखाध्यायी वा सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । कुले महति जातोऽपि न गुरुः स्यादवैष्णवः ॥३॥
यस्तु मन्त्रद्वयं सम्यगध्यापयति वैष्णवः । स आचार्यस्तु विज्ञेयो भवबन्धविदारकः ॥४॥

आचार्यं संश्रयित्वाऽथ वत्सरं सेवयेद्द्विजः ।
तस्य वृत्तिं परिज्ञात्वा मन्त्रमध्यापयेद्गुरुः ॥५॥

कृत्वातापादिसंस्कारान्पश्चान्मन्त्रमुदीरयेत् । तापंपुण्ड्रं तथानामकृत्वावैविधिनागुरुः ॥६॥
पश्चादध्यापयेन्मन्त्रं शिष्यं निर्मलचेतसम् । चक्रेण विधिना तप्तं तापइत्यभिधीयते॥७॥
पुण्ड्रमूर्ध्वं तथा प्रोक्तं नाम वैष्णवमुच्यते । ततो मन्त्रविधानेन शिष्यमध्यापयेद्गुरुः॥८॥
न्यासमष्टाक्षरं मन्त्रमन्त्रं वा वैष्णवं मनुम् । न्यासमेवाऽत्र परमं वैष्णवानां शुभानने ॥९॥
तस्मात्तु न्यासमेवैषामतिरिक्तमिहोच्यते । न्यासविद्यापरो यस्तु ब्राह्मणः श्रेष्ठउच्यते॥१०॥
न्यासात्परतरं नास्ति मन्त्रं सत्यं ब्रवीमिते । न्यासंद्वयं प्रपत्तिःस्यात्पर्यायेणनिबोधमे ॥११॥
द्वयोपदेशपूर्वं तु सर्वकर्म समाचरेत् । द्वयाधिकारी न भवेत्सर्वकर्मसु नाऽर्हति॥१२॥

उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत ओं नमो नारायण इस मन्त्र के अर्थ का उपदेश

शङ्करजी ने कहा— न्यास करने में अथवा पूजन करने में एकान्ती पुरुष को मन्त्र अपनाना चाहिए। अवैष्णवों के द्वारा उपदिष्ट मन्त्र से परम पद की प्राप्ति नहीं होती है ॥१॥ यदि पहले किसी अवैष्णव ने द्वय मन्त्र का उपदेश कर दिया हो तो उसको फिर से वैष्णव गुरु से ग्रहण करना चाहिए ॥२॥ वेदों की हजार शाखाओं का अध्ययन करने वाला, अथवा सभी यज्ञों में दीक्षित भी अवैष्णव गुरु नहीं हो सकता है ॥३॥ जो वैष्णव द्वयमन्त्र का अच्छी तरह से उपदेश करता है, उसको संसार बन्ध को विनष्ट करने वाला आचार्य समझना चाहिए ॥४॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह आचार्य को अपनाकर उसकी वर्ष पर्यन्त सेवा करें । फिर उसकी वृत्ति को जानकर गुरु उसको मन्त्र पढ़ायें ॥५॥ पहले ताप आदि संस्कारों को करके बाद में मन्त्र का उपदेश करना चाहिए । गुरु को पहले ताप, पुण्ड्र तथा नाम संस्कार करके ॥६॥ उसके पश्चात् निर्मल अन्तःकरण वाले शिष्य को मन्त्रोपदेश करे । विधि पूर्वक चक्र से संतप्त करना ताप संस्कार कहलाता है ॥७॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र को तो मैं पहले बतला ही चुका हूँ, शिष्य का वैष्णव नाम रखे । उसके पश्चात् गुरु उसको विधि पूर्वक मन्त्रोपदेश करे ॥८॥ न्यास (द्वय) मन्त्र या अष्टाक्षर मन्त्र या कोई दूसरे वैष्णव मन्त्र का उपदेश करे । न्यास मन्त्र ही वैष्णवों का सर्वाधिक शुभ करने वाला बतलाया गया है ॥९॥ इसीलिए वैष्णवों के लिए यह अतिरिक्त मन्त्र कहा गया है । जो श्रेष्ठ ब्राह्मण न्यास विद्या का उच्चारण करता है ॥१०॥ मैं तुमको यह सत्य बतलाता हूँ कि न्यास विधि से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं है । न्यास मन्त्र, द्वय मन्त्र, प्रपत्ति मन्त्र से सभी पर्यायवाची शब्द हैं ॥११॥ द्वय मन्त्र के उपदेश करने से पहले सभी कर्मों

तस्माद्द्वयमधीत्यैव पश्चान्मन्त्रमनुत्तमम् । श्रीमदष्टाक्षरं सम्यगभ्यसेद्द्विजसत्तमः ॥१३॥
मन्त्रमष्टाक्षरं प्रोक्तं प्रणवस्यैव संग्रहात् । नैसर्गप्रणवाद्यं तु मन्त्रमित्युच्यते बुधैः ॥१४॥
नाऽन्यत्र सर्वमन्त्रेषु प्रणवः स्वस्वभावतः। पूर्वं तु सर्वमन्त्राणां योजयेत्प्रणवं शुभम्॥१५॥
ॐकारः प्रणवं ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकः । आदौ सर्वत्र युञ्जीत मन्त्राणां तु शुभानने !॥१६॥
स्वभावात्प्रणवस्तस्मिन्मूलमन्त्रो प्रतिष्ठितः। ओमित्येकाक्षरं पूर्वं द्व्यक्षरं नमइत्यथ॥१७॥
ततो नारायणायेति पञ्चार्णानि यथाक्रमम्। एवमष्टाक्षरो मन्त्रो ज्ञेयः सर्वार्थसाधकः॥१८॥
सर्वदुःखहरः श्रीमान्सर्वमन्त्रात्मकः शुभः। ऋषिर्नारायणस्तस्य देवता श्रीशएव च ॥१९॥
छन्दस्तु देवी गायत्री प्रणवो बीजमुच्यते । नित्यानपायिनीदेवी शक्तिःश्रीरुच्यतेमनोः ॥२०॥
प्रथमं पदमोङ्कारो द्वितीयं नमउच्यते। तृतीयं नारायणायेति पदत्रयमुदाहृतम्॥२१॥
अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्च ततःपरम् । वेदत्रयात्मकं प्रोक्तं प्रणवं ब्रह्मणः पदम् ॥२२॥

अकारेणोच्यते विष्णुः श्रीरुकारेण चोच्यते ।
मकारस्त्वनयोर्दासःपञ्चविंशःप्रकीर्तितः ॥२३॥

वासुदेवस्वरूपं तदकारेणोच्यते बुधैः। उकारेण श्रियो देव्या रूपं मुनिभिरुच्यते॥२४॥

मकारेणोच्यते जीवः पञ्चविंशोदितः पुमान् ।
भूतानि कवर्गेण चवर्गेणेन्द्रियाणि च ॥२५॥

टवर्गेण तवर्गेण ज्ञानगन्धादयस्तथा। मनःपकारेणैवोक्तं फकारेण त्वहंकृतिः ॥२६॥

को करना चाहिए । जो द्वयमन्त्र का अधिकारी नहीं होता है वह किसी कर्म के योग्य नहीं होता है ॥१२॥ अतएव द्वयमन्त्र का अध्ययन करने के पश्चात् ही अच्छी तरह से अष्टाक्षर मन्त्र का ब्राह्मण श्रेष्ठ अभ्यास करे ॥१३॥ अष्टाक्षर मन्त्र को प्रणव का संग्रह कहा गया है । अतएव विद्वानों ने सभी मन्त्रों के आदि में प्रणव को ही मन्त्र बतलाया है दूसरे सभी मन्त्रों में स्वाभाविक रूप से प्रणाव नहीं लगता है । सभी मन्त्रों के आदि में प्रणव लगाने से शुभ होता है ॥१४-१५॥ ओङ्कार ही प्रणव वेद है सभी मन्त्रों का नायक है। अतएव हे पार्वति ! सभी मन्त्रों के आदि में प्रणव को लगाना चाहिए ॥१६॥ किन्तु मूल मन्त्र में प्रणव स्वाभाविक रूप से विद्यमान है पहले **ओम्** यह एक अक्षर है **नमः** दो अक्षर हैं और ॥१७॥ उसके बाद **नारायणाय** में क्रशमः पाँच अक्षर हैं । इस तरह से सभी पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाले अष्टाक्षर मन्त्र को जानना चाहिए ॥१८॥ यह सभी दुःखों को दूर करने वाला तथा सर्वमन्त्रात्मक है । इस मन्त्र के ऋषि नारायण हैं और उसके देवता श्रीपति हैं ॥१९॥ इसका छन्द दैवी गायत्री है, इसका बीज प्रणव है, इसकी शक्ति श्रीभगवान् से कभी भी अलग नहीं होने वाली श्रीदेवी हैं ॥२०॥ इसका प्रथम पद **ओंकार** है **नमः** दूसरा पद है । इसका तीसरा पद **नारायणाय** है इस तरह इस मन्त्र में तीन पद हैं ॥२१॥ अकार, उकार, मकार यह वेदत्रयात्मक प्रणव परमात्मा का वाचक है । अकार से श्रीदेवी कही जाती है और मकार से उन दोनों का दास पचीसवाँ तत्त्व जीव कहा गया है ॥२२-२३॥ अकार से वासुदेव स्वरूपतः कहे गये हैं । मुनिजन उकार से श्रीदेवी के स्वरूप को बतलाते हैं । मकार से पचीसवाँ तत्त्व जीव कहा गया है कवर्ग से पाँचो महाभूत, चवर्ग से पाञ्चों इन्द्रियाँ कही गयी हैं ॥२४-२५॥ ट वर्ग तथा त वर्ग से ज्ञान तथा गन्ध

बकारेण भकारेण महान्प्रकृतिरुच्यते। आत्मा तु समकारेण पञ्चविंशः प्रकीर्तितः ॥२७॥
देहेन्द्रियमनःप्राणधीभ्योऽन्योऽनन्यसाधनः । भगवच्छेषभूतोऽसौ मकाराख्यः सचेतनः॥२८॥
अवधारणवाच्येवमुकारः कैश्चिदुच्यते । श्रीतत्त्वमपि तत्पक्षे वकारेणैव चोच्यते ॥२९॥
भास्करस्य प्रभायद्वत्तस्यनित्याऽनपायिनी। अकारेणोच्यतेविष्णुःकल्याणगुणसागरः ॥३०॥

श्रीशः सर्वात्मनां शेषी जगद्बीजं परःपुमान् ।
जगत्कर्त्ताजगद्धर्त्ताईश्वरोलोकबान्धवः ॥३१॥

जगतामीश्वरी नित्या विष्णोरनपगामिनी । माता सर्वस्य जगतः पत्नीविष्णोर्मनोरमा ॥३२॥
जगदाधारभूता श्रीरुकारेणात्र चोच्यते। मकारेण तयोर्दासः क्षेत्रज्ञः प्रोच्यते बुधैः ॥३३॥
ज्ञानाश्रयो ज्ञानगुणश्चेतनः प्रकृतेः परः । न जडो निर्विकाराश्च एकरूपस्वरूपभाक् ॥३४॥

अणुर्नित्यो व्याप्तिशीलश्चिदानन्दात्मकस्तथा ।
अहमर्थोऽव्ययः क्षेत्री भिन्नरूपः सनातनः ॥३५॥
अदाह्योऽच्छेद्यो ह्यक्लेद्यस्त्वशोष्योऽक्षरएव च ।
एवमादिगुणोपेतश्शेषभूतः परस्य वै ॥३६॥

मकारेणोच्यते जीवः क्षेत्रज्ञः परवान्सदा । दासभूतो हरेरेव नान्यस्यतु कदाचन ॥३७॥
एवं दासत्वमेवाऽस्य मध्यमेनाऽवधार्यते। इत्येवं प्रणवस्यार्थो ज्ञातव्योक्तोमयाऽनघे ॥३८॥
विवृत्तिः प्रणवस्यार्थमन्त्रशेषेण वै शुभे। परस्य दासभूतस्य स्वातन्त्र्यं नेह विद्यते ॥३९॥

इत्यादि कहे गये हैं । पकार से मन कहा गया है और फकार से अहङ्कार को कहा गया है ॥२६॥ बकार तथा भकार से महान् एवं प्रकृति कहे गये हैं मकार से पचीसवाँ तत्त्व आत्मा कहा गया है ॥२७॥ देह, इन्द्रिय, मन, प्राण तथा ज्ञान से भिन्न स्वयं प्रकाश तथा भगवान् का शेषभूत मकार वाच्य जीव है॥२८॥ कुछ लोग उकार को निश्चायक वाचक बतलाते हैं उस पक्ष में नकार के द्वारा श्रौतत्व बतलाया गया है॥२९॥ सूर्य की कान्ति के समान लक्ष्मीजी श्रीभगवान् से कभी अलग नहीं होती हैं । अकार के द्वारा कल्याण गुणों के सागर भगवान् विष्णु कहे जाते हैं ॥३०॥ लक्ष्मीपति सभी जीवों के शेषी (स्वामी) जगत् के कारण तथा परं पुरुष हैं । वे जगत् की सृष्टि करने वाले, जगत् का भरण पोषण करने वाले, ईश्वर और लोक बन्धु हैं ॥३१॥ भगवान् की अनपगामिनी लक्ष्मीजी नित्य तथा जगत् की स्वामिनी हैं । वे सम्पूर्ण जगत् की माता तथा भगवान् विष्णु की मनोहर पत्नी हैं ॥३२॥ जगत् के आधार स्वरूप लक्ष्मीजी उकार के द्वारा कही गयी हैं । तथा विद्वज्जन मकार के द्वारा उन दोनों के दास जीव को बतलाते हैं ॥३३॥ वह जीव ज्ञानाश्रय, ज्ञान गुणवान् चेतन, प्रकृति से परे, अजड़, निर्विकार, एक समान स्वरूप वाला, अणु प्रमाणक नित्य सम्पूर्ण शरीर में व्यापक तथा ज्ञान स्वरूप एवं आनन्द स्वरूप है । वही अहमर्थ, निर्विकार, शरीरधारी, परस्पर में भिन्न रूप वाला तथा सनातन है ॥३४-३५॥ वह अदाह्य, अच्छेद्य, अक्लेद्य जिसको भिंगाया न जा सके अशोष्य, अक्षर (निर्विकार) आदि गुणों से युक्त तथा परमात्मा का शेष (दास) है॥३६॥ मकार से जीव को कहा गया, वह क्षेत्रज्ञ, परमात्मा के परतन्त्र श्रीहरि का ही दास भूत है किसी दूसरे का कभी नहीं है ॥३७॥ इस तरह का जीव मध्यम वर्ण उकार के द्वारा कहा गया है । इसी प्रकार का प्रणव का अर्थ जानना चाहिए जो मैंनें कहा ॥३८॥ हे शुभे ! मन्त्र के शेष भाग के

तस्मान्ममत्वाहङ्कारौ नमसा विनिवर्त्तयेत्। स्वोपायबुद्ध्यायत्कृत्यंतदपिप्रतिषिध्यते ॥४०॥
अहङ्कृतिर्मकारः स्यान्नकारस्तन्निषेधकः। तस्मात्तु नमसैवाऽस्य अहङ्कारविमोचनम्॥४१॥
नमसा सर्वसिद्धिः स्यादन्यथा नाशमाप्नुयात् ।
नमसा रहितं किञ्चित्तदहङ्कारउच्यते ॥४२॥
अहङ्कारेण युक्तस्य सुखं किञ्चिन्न विद्यते। अहङ्कारविमूढात्मा अन्धे तमसि मज्जति ॥४३॥
तस्मात्तु नमसा चाऽत्र स्वातन्त्र्यं प्रतिषिध्यते ।
भवत्परतन्त्रोऽसौतदायत्तश्चजीवति ॥४४॥
तस्मात्साधनकर्तृत्वं चेतनस्य न विद्यते। ईश्वरस्यैव संकल्पाद्वर्त्तते सचराचरम् ॥४५॥
तस्मात्स्वसामर्थ्यविधिं त्यजेत्सर्वमशेषतः। ईश्वरस्यतु समार्थ्यान्नाऽलभ्यंतस्यविद्यते ॥४६॥
तस्मिन्न्यस्तभरः श्रीशेतत्कर्मैव समाचरेत् । परमात्माहरिस्स्वामीस्वमहं तस्य सर्वदा ॥४७॥
इच्छयाविनियोक्तव्यस्तस्यैवात्मेश्वरस्यहि । इत्येवं नमसाप्रोक्तश्चार्थस्तुममोर्जितः ॥४८॥
देहेष्वहंमतिर्मूलं संसृतो कर्मबन्धने । तस्मान्ममत्वाहङ्कारौ नमसा वर्जयेद्बुधः ॥४९॥
अथ नारायणपदं वक्ष्यामि गिरिजेशुभे !। नाराइत्यात्मनां सङ्घास्तेषां गतिरसौपुमान् ॥५०॥
त एव चायनं तस्य तस्मान्नारायणःस्मृतः । सर्वं हि चिदचिद्वस्तुश्रूयते दृश्यते जगत्॥५१॥
योऽसौ व्याप्य स्थितो नित्यं स वै नारायणः स्मृतः ।
नाराश्चेति सर्वपुंसां समूहाः परिकीर्तिताः ॥५२॥

द्वारा प्रणव की व्याख्या बतलायी गयी है। परमात्मा के शेष भूत जीव का लोक में स्वातन्त्र्य नहीं है॥३९॥ इसीलिए नमः पद के द्वारा जीव के ममत्व और अहङ्कार का निषेध किया गया है। अपने उपाय की बुद्धि से किये जाने वाले कर्म का भी इससे निषेध किया जाता है। नमः पद के नकार के द्वारा अहङ्कार को बतलाया है और मकार उसका निषेध करता है। इसलिए नमः पद के द्वारा अहङ्कार का विमोचन बतलाया गया है ॥४०-४१॥ नमस्कार से ही सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसके बिना जीव का नाश बतलाया गया है। नमस्कार से रहित जो भी है वही अहङ्कार कहा जाता है ॥४२॥ अहङ्कार से युक्त जीव को कोई भी सुख नहीं प्राप्त होता है। अहङ्कार से अत्यन्त मूढ बनी आत्मा घोर अन्धकार में डूब जाता है ॥४३॥ इसीलिए यहाँ पर जीव के स्वातन्त्र्य का निषेध किया गया है। यह जीव परमात्मा के परतन्त्र है और उसी के अधीन होकर जीता है ॥४४॥ उसी के द्वारा जीव के उपाय कर्तृत्व का निषेध किया गया है। श्रीभगवान् के सङ्कल्पनानुसार ही चराचरात्मक संसार रहता है ॥४५॥ कर्मों का अतएव अपने सामर्थ्य का पूर्ण रूप से त्याग कर देना चाहिए। परमात्मा के सामर्थ्य से उसको कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता है॥४६॥ उन श्रीपति पर ही अपने समस्त भार को छोड़कर श्रीभगवान् के ही कर्मों को करना चाहिए परमात्मा ही हरि तथा स्वामी हैं और मैं उनका स्व हूँ ॥४७॥ उन आत्मा के स्वामी की इच्छा में विनियोज्य हूँ इस तरह से नमः पद के द्वारा कहा गया है और नमः शब्द के द्वारा कहा गया है और उसका अर्थ ममता से उर्जित है ॥४८॥ देह में अहंत्व बुद्धि ही संसार बन्ध का कारण है। इसीलिए बुद्धिमान व्यक्ति नमस्कार द्वारा अहङ्कार और ममकार का त्याग कर दे ॥४९॥ हे पार्वति ! अब मैं नारायण पद का अर्थ बतलाता हूँ। नारा पद आत्म समूह को बतलाता है। उस जीव समूह के आश्रय श्रीभगवान् ही हैं ॥५०॥

गतिरालम्बनं तेषां तस्मान्नारायस्मः स्मृतः । नराज्जातानितत्त्वानिनाराणीतिविदुर्बुधाः ॥५३॥
तान्येव चायनं तस्यतेननारायणः स्स्मृतः । कल्पान्तेऽपिजगत्कृत्स्नंग्रसित्वायेनधार्यते ॥५४॥
पुनः संसृज्यते येन स चै नारायण स्मृतः । चराचरं जगत्कृत्स्नं नारइत्यभिधीयते ॥५५॥
तस्य वा सन्नतिर्येन तेन नारायणः स्मृतः । नारो नराणां सङ्घातस्तस्यासावयनं गतिः ॥५६॥
तेनाऽसौ मुनिभिर्नित्यं नारायणइतीरितः । प्रभवन्ति यतो लोका महाब्धौपृथुफेनवत् ॥५७॥
पुनर्यस्मिन्प्रलीयन्तेतस्मान्नारायणःस्मृतः । यो वै नित्यपदेनित्योनित्यमुक्तैकभोगवान् ॥५८॥

ईशः सर्वस्य जगतः स वै नारायणः स्मृतः ।
नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परम् ॥५९॥
यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्वहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥६०॥

अपहतपाप्मा पुरुषः सर्वभूतान्तरस्थितः । दिव्यएकस्सदानित्यो हरिर्नारायणोऽच्युतः ॥६१॥
यस्तु द्रष्टा च द्रष्टव्यं श्रोताश्रोतव्यमेव च । स्प्रष्टा चस्पर्शितव्यंचध्याताध्यातव्यमेव च ॥६२॥

वक्ता च वाच्यं ज्ञाता च ज्ञातव्यं चिदचिज्जगत् ।
तच्चसर्वंहरिःश्रीशोनारायणउदाहृतः ॥६३॥

सहस्त्रशीर्षापुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् । स लोकान्सर्वतो व्याप्य अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥६४॥

वे जीव समूह ही उनके आश्रय हैं अतएव श्रीभगवान् को नारायण कहा गया है । जगत् में जितने भी चेतन तथा अचेतन वस्तु देखे अथवा सुने जाते हैं ॥५१॥ उन सभी वस्तुओं में जो सदा व्याप्त रहे, उसी को नारायण कहा जाता है । नारा शब्द से सभी जीवों के समूह को कहा गया है ॥५२॥ उन सबों के गति और आधार होने के कारण श्रीभगवान् को नारायण कहा गया है । नारा शब्द वाच्य जीव समूह से उत्पन्न तत्त्वों के विद्वानों ने नाराणि पद से कहा है ॥५३॥ वे ही सब इसके आश्रय हैं इसी से भगवान् को नारायण कहा गया है । कल्प के अन्त में भी सम्पूर्ण जगत् को ग्रस्त करके वे धारण करते हैं ॥५४॥ पुनः सृष्टि काल के आने पर जो उन सबों की सृष्टि करता है वही नारायण कहा गया है । सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् नार कहलाता है ॥५५॥ अथवा चराचर जगत् की जिसके द्वारा सद्गति होती है उसी के कारण वे नारायण कहे गये है । नार नरों के समूह को कहते हैं उसका श्रीभगवान् आश्रय अर्थात् गति हैं॥५६॥ इसी कारण मुनिजन श्रीभगवान् को सदा नारायण कहते हैं । जिससे सभी लोक महासागर के फेन के समान उत्पन्न होते हैं ॥५७॥ फिर जिनमें वे सब प्रलीन हो जाते इसी कारण श्रीभगवान् को नारायण कहा गया है । जो श्रीभगवान् नित्य विभूति में नित्य मुक्त जीवों के भोग्य हैं ॥५८॥ वे सम्पूर्ण जगत् के स्वामी ही नारायण कहे जाते हैं । नारायण ही परब्रह्म है, वे ही परं तत्त्व हैं ॥५९। इस संसार में जो कुछ भी देखा और सुना जाता है, उन सबों में व्याप्त होकर भगवान् नारायण स्थित हैं ॥६०॥ सभी कर्मों के बन्धन से रहित तथा सभी जीवों में आत्मा रूप से स्थित पुरुष श्रीभगवान् दिव्य एक सर्वदा नित्य श्रीहरि ही अच्युत और नारायण शब्द कहे जाते हैं ॥६१॥ जो द्रष्टा और द्रष्टव्य हैं श्रोता और श्रोतव्य हैं, स्पर्श करने वाले तथा स्पर्शितव्य हैं और ध्याता एवं ध्यातव्य हैं ॥६२॥ जो वक्ता और वक्तव्य हैं ज्ञाता और ज्ञातव्य हैं, चेतन और अचेतन जगत् स्वरूप हैं, वह सब कुछ श्रीहरि लक्ष्मीपति नारायण कहे जाते

यद्भूतं यच्च भव्यं तत्सर्वं नारायणो हरिः। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाऽतिरोहति ॥६५॥
स एव पुरुषो विष्णुर्वासुदेवोऽच्युतोहरिः। हिरण्मयोऽथभगवानमृतः शाश्वतः शिवः॥६६॥
पतिर्विश्वस्य जगतः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः। हिरण्यगर्भः सविता अनन्तोऽसौ महेश्वरः ॥६७॥
भगवानितिशब्दोऽयं तथापुरुषाइत्यपि। वर्त्तन्ते निरुपाधी च वासुदेवेऽखिलात्मनि॥६८॥
ईश्वरो भगवान्विष्णुः परमात्मा जगत्सुहृत्। शास्ता चराचरस्यैकोयतीनांपरमागतिः॥६९॥

यो वेदादौ स्वरःप्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः।
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥७०॥
योऽसावकारो वै विष्णुर्योऽसौ नारायणो हरिः।
स एष पुरुषा नित्यः परमात्मा महेश्वरः ॥७१॥

तस्यांशभूतमैश्वर्यं यस्मिन्कस्मिंश्चवर्तते। तस्मिन्नीश्वरशब्दोऽपि प्रोच्यतेमुनिभिस्तथा॥७२॥
निरुपाधीश्वरत्वं हि वासुदेवे प्रतिष्ठितम्। आत्मेश्वरइति प्रोक्तो वेदवादैः सनातनैः॥७३॥
तस्मान्महेश्वरत्वं तु वासुदेवे प्रतिष्ठितम्। असौ त्रिपाद्विभूतेस्तु लीलायाअपिचेश्वरः ॥७४॥
विभूतिद्वयमैश्वर्यं तस्यैव सकलात्मनः। श्रीभूनीलापतिर्योऽसावीश्वरस्य उदाहृतः ॥७५॥
तस्मात्सर्वेश्वरत्वं तु वासुदेवे प्रतिष्ठितम्। असौ यज्ञेश्वरो यज्ञो यज्ञभुग्यज्ञकृद्विभुः ॥
यज्ञभृद्यज्ञपुरुषः स एव परमेश्वरः ॥७६॥

यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्यभोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र।
तत्संनिधानादपयान्ति सद्यो रक्षांस्यशेषण्यसुराश्च सर्वे ॥७७॥

हैं॥६३॥ जो पुरुष अनन्त शिरों वाले, अनन्त नेत्रों वाले तथा अनन्त चरणों वालें हैं वे ही सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर उसके बाहर अनन्त प्रदेश तक स्थित हैं ॥६४॥ जो कुछ भी भूत कालिक और भविष्य कालिक है वह सब कुछ भगवान् नारायण श्रीहरि ही हैं। अमृत त्रियाद् विभूति के स्वामी जो अन्न से अत्यधिक बढ़ते हैं ॥६५॥ वे ही पुरुष विष्णु, वासुदेव अच्युत श्रीहरि हैं। वे हिरण्यमय भगवान् शाश्वत कल्याणकारी अमृत स्वरूप हैं ॥६६॥ वे सम्पूर्ण जगत् के स्वामी सभी लोकों के नियामक और प्रभु हैं। वे ही हिरण्यगर्भ, सूर्य अनन्त और महेश्वर हैं ॥६७॥ भगवान् शब्द और पुरुष शब्द दोनों स्वभाविक रूप से सम्पूर्ण जगत् की आत्मा वासुदेव के वाचक हैं ॥६८॥ भगवान् विष्णु ही ईश्वर, परमात्मा और जगत् सुहृद हैं वे चराचर के एकमात्र प्रशासक और यतियों के परम प्राप्य हैं ॥६९॥ वे वेद की आदि में स्वर कहे गये हैं और वेदान्तों में प्रतिष्ठित हैं उन प्रकृति में लीन से जो परे हैं वे ही महेश्वर हैं ॥७०॥ जो आकार हैं वे ही विष्णु हैं जिनको नारायण और हरि कहा जाता है वे ही नित्य पुरुष, परमात्मा और महेश्वर हैं ॥७१॥ उन परमात्मा का अंश भूत ऐश्वर्य जिस किसी में है मुनिजन उसके लिए भी ईश्वर शब्द का प्रयोग करते हैं ॥७२॥ स्वाभाविक रूप से ईश्वर तत्त्व को भगवान् वासुदेव में ही विद्यमान हैं। सनातन वेदों ने उनको ही आत्मेश्वर कहा है ॥७३॥ अतएव महेश्वरत्व तो भगवान् वासुदेव में ही है। ये ही त्रिपाद् विभूति तथा लीला विभूति के स्वामी हैं ॥७४॥ उन्हीं सम्पूर्ण जगत् की आत्मा की ये दोनों विभूतियाँ हैं जो श्रीदेवी, भूदेवी और नीला देवी के पति हैं उनको ही ईश्वर कहा गया है ॥७५॥ अतएव सर्वेश्वरत्व को

याऽसौ विराट्त्वमापन्नो हरिर्भूत्याजनार्दनः। सन्तर्पयति लोकांस्त्रीन्स एव परमेश्वरः॥७८॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। तस्माद्यज्ञात्समुत्पन्ना ये के चोभयादतः॥७९॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानि जज्ञिरे। तस्मादश्वा अजायन्त गावश्च पुरुषादयः॥८०॥
पुरुषस्य तनोरस्य सर्वयज्ञमयस्य वै। हरेः सर्वं समुद्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥८१॥
मुखबाहूरुपादाः स्युस्तस्य वर्णा यथाक्रमम्।
पद्भ्यांतुपृथिवीतस्याशिरसो द्यौरजायत॥८२॥
मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षुषश्च प्रभाकरः। मुखादग्निःसहस्राक्षो वायुः प्राणात्सदागतिः॥८३॥
नाभेर्विरिञ्चिर्गगनं जगत्सर्वं चराचरम्। यस्मात्सर्वं समुद्भूतं जगद्विष्णोःसनातनात्॥८४॥
तस्मात्सर्वमयो विष्णुर्नारायण इतीरितः। एवं सृष्ट्वा जगत्सर्वं पुनः संग्रसते हरिः॥८५॥
निजलोलासमुद्भूतं तान्तवंचोर्णनाभिवत्। ब्रह्माणमिन्द्रं रुद्रं च यमं वरुणमेव च॥८६॥
निगृह्य हरते यस्मात्तस्माद्धरिरिहोच्यते। असावेकार्णवीभूते मायावटतले पुमान्॥८७॥
जगत्स्वजठरे कृत्वा शेते तस्मिन्सनातनः। आसीदेको हि वै चाऽत्र विष्णुर्नारायणोऽच्युतः॥८८॥
न ब्रह्मा न च रुद्रश्च न देवा न महर्षयः। नेमे द्यावापृथिव्यौ च न सोमोनचभास्करः॥८९॥
न नक्षत्राणि लोकाश्च न चाण्डंमहदावृतम्। यस्माज्जगद्वृतं तेन सकलं हरिणा शुभे!॥९०॥

भगवान् वासुदेव में ही हैं। ये ही यज्ञेश्वर, यज्ञस्वरूप, यज्ञ भोक्ता और यज्ञ कर्ता और याजक हैं। वे ही यज्ञभृत, यज्ञपुरुष और परमेश्वर हैं॥७६॥ यज्ञेश्वर समस्त हव्य एवं कव्य के भोक्ता, अव्ययात्मा तथा ईश्वर श्रीहरि ही हैं। उनके सन्निकट से शीघ्र ही सम्पूर्ण राक्षस और असुर दूर भग जाते हैं॥७७॥ श्रीभगवान् ही विराटत्व प्राप्त ही हरि हैं और अपनी विभूति के कारण वे जनार्दन हैं। वे ही परमेश्वर त्रैलोक्य को संतृप्त करते हैं॥७८॥ जिस पुरुष रूपी हविष्य के द्वारा देवताओं ने यज्ञ का विस्तार किया उन्हीं यज्ञ स्वरूप परमात्मा से स्थावर जंगमात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है॥७९॥ उन यज्ञ स्वरूप परमात्मा से सर्वहुत ऋचाएँ तथा साम उत्पन्न हुए उनसे ही अश्व उत्पन्न हुए गौ और पुरुष आदि उत्पन्न हुए॥८०॥ सर्व यज्ञमय उस पुरुष श्रीहरि के शरीर से ही स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ॥८१॥ उनके मुख बाहु, ऊरु और चरण से क्रमशः चारो वर्ण उत्पन्न हुए। उन परमात्मा के दोनों चरणों से पृथिवी ओर शिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ॥८२॥ श्रीभगवान् के मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुयी और नेत्रों से सूर्य उत्पन्न हुए। उनके मुख से अग्नि और सहस्राक्ष उत्पन्न हुए और उनके प्राण से सदा चलते रहने वाली वायु की उत्पत्ति हुयी॥८३॥ भगवान् की नाभि से ब्रह्माजी, आकाश तथा सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् उत्पन्न हुआ सनातन विष्णु श्री भगवान् से सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ॥८४॥ इसीलिए सर्वमय भगवान् विष्णु नारायण कहे जाते हैं। इस तरह से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करके श्रीहरि प्रलय काल आने पर उसको ग्रस्त कर लेते हैं॥८५॥ यह सब उसी तरह से होता है जिस तरह मकड़ा अपनी लार से उद्भूत तन्तुओं को अन्त में निगल जाता है। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, यम तथा वरुण आदि को निगृहीत करके श्रीभगवान् ग्रस्त कर लेते हैं। इसीलिए वे हरि कहे जाते हैं। ये भगवान् एकार्ण व होने पर माया जन्य वटवृक्ष के नीचे॥८६-८७॥ सम्पूर्ण जगत् को अपने उदरस्थ करके सनातन भगवान् शयन करते हैं। सृष्टि से पूर्व अच्युत श्रीहरि नारायण केवल ही थे॥८८॥ उस समय ब्रह्मा, रुद्र, देवगण, महर्षिगण, द्युलोक तथा भूलोक, सूर्य, चन्द्रमा में सब

सृष्टं पुनस्तथा सर्गेतस्मान्नारायणःस्मृतः । तस्य दास्यंचतुर्थ्यातुमन्त्रेप्रोक्तंतुपार्वति ! ॥९१॥
दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलंजगत् । एवमर्थं विदित्वा वै पश्चान्मन्त्रं प्रयोजयेत्॥९२॥
अविदित्वा तु मन्त्रार्थं सिद्धिं नैवाऽधिगच्छति ।
न तु भुक्तिं च भक्तिं च न च मुक्तिं वरानने ! ॥९३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे मन्त्रार्थपदेशो नाम षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२६॥

दो सौ सत्ताइसवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

विस्तरेण ममाऽऽचक्ष्व मन्त्रार्थपदगौरवम्। ईश्वरस्यस्वरूपं च तद्विभूतिगुणांस्तथा ॥१॥
तद्विष्णोः परमं धाम व्यूहभेदांस्तथा हरेः । सर्वमाख्याहि तत्त्वेन मम सर्वसुरेश्वर !॥२॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि स्वरूपं परमात्मनः ।
विभूतिगुणसङ्घातं तदवस्थात्मकं हरेः ॥३॥
यः परः पुरुषो विष्णुर्नारायण उदाहृतः । स ईश्वरश्च जगतां परमात्मा सनातनः ॥४॥
विश्वतः पाणिपादश्च चक्षुष्मान्विश्वतः प्रभुः। विश्वानि भुवनान्यस्मिन्धामानि परमाणि वै ॥५॥

कोई नहीं था ॥८९॥ नक्षत्रगण, लोक, महत् तत्त्व से आवृत ब्रह्माण्ड, इत्यादि उन श्रीहरि के द्वारा ग्रस्त था और सृष्टि के प्रारम्भ में उनके द्वारा निर्मित हुए अतएव वे नारायण कहे जाते हैं । हे पार्वति ! उन्हीं भगवान् की दासता **नारायण** पद की चतुर्थी विभक्ति बतलाती हैं ॥९०-९१॥ ब्रह्माजी से लेकर सम्पूर्ण जगत् भगवान् नारायण का दास है । इस तरह से इस मन्त्र के अर्थ को जानकर मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए ॥९२॥ मन्त्र के अर्थ को जाने बिना उसकी सिद्धि भोग, भक्ति तथा मुक्ति भी नहीं होती है ॥९३॥
इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत मन्त्रार्थोपदेश नामक दो सौ छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२६।।

भगवान् नारायण की त्रिपाद् विभूति का वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— आप विस्तार के साथ मन्त्रार्थ पद के गौरव, ईश्वर का स्वरूप उनकी विभूति और गुणों को बतलाएँ ॥१॥ श्रीविष्णु के परंधाम, व्यूहो के भेद हे सुरेश्वर इन सारी बातों को आप मुझे बतलाएँ ॥२॥ जिन को परम पुरुष विष्णु तथा नारायण कहा गया है वे ही जगत् के स्वामी और नियामक तथा सनातन परमात्मा हैं ॥३-४॥ उन श्रीभगवान् के हर ओर हाथ और पैर तथा नेत्र हैं । इस परम धाम में सम्पूर्ण भुवन हैं ॥५॥ वे श्रीभगवान् भी इस जगत् को तथा मनीषियों को धारण करके उसके बाहर भी

धारयन्सोऽप्यत्यतिष्ठन्मनांसि च मनीषिणाम् ।
एवं बृहत्स्वरूपोऽयंश्रीपतिः पुरुषोत्तमः ॥
ईश्वर्या सह भोगार्थं दिव्यमङ्गलरूपवान् ॥६॥
बृहच्छरीरोऽग्निसमानरूपो युवा कुमारत्वमुपेयिवान्हरिः ।
रेमे श्रियाऽसौ जगतां जनन्या स्वज्योत्स्नया चन्द्रइवाऽमृतांशुः ॥७॥

अयं च जगदीश्वर्या कुमारो नित्ययौवनः । कन्दर्पकोटिलावण्यः सन्तस्थे परमे पदे ॥८॥
भोगार्थं परमं व्योमलीलार्थमखिलं जगत् । भोगेनक्रीडयाविष्णोर्विभूतिद्वयसंस्थितिः ॥९॥

भोगे नित्यस्थितिस्तस्य लीलां संहरते कदा ।
भोभो लीलाह्युभौतस्यधार्येशक्तिमत्तया ॥१०॥
त्रिपाद्व्याप्तिः परे धाम्नि पादोऽस्येहाऽभवत्पुनः ।
त्रिपाद्विभूर्तिर्नित्या स्यादनित्यं पादमैश्वरम् ॥११॥

नित्यं तद्रूपमीशस्य परे धाम्निस्थितं शुभम् । अच्युतं शाश्वतं दिव्यंसदायौवनमाश्रितम् ॥१२॥

नित्यं सम्भोगमीश्वर्या श्रिया भूम्या च सम्वृतम् ।
नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी ॥१३॥

यथासर्वगतो विष्णुस्तथालक्ष्मीश्शुभानने ! । ईशाना सर्वजगतो विष्णुपत्नी सदाशिवा ॥१४॥
सर्वतः पाणिपादान्ता सर्वतोऽक्षिशिरोमुखी । नारायणी जगन्माता समस्तजगदाश्रया ॥१५॥
यदपाङ्गाश्रितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । जगत्स्थितिलयौ यस्याउन्मीलननिमीलनात् ॥१६॥

अनन्त प्रदेश तक व्याप्त हैं । लक्ष्मीपति भगवान् पुरुषोत्तम का इस तरह का बृहत् स्वरूप है । लक्ष्मी जी के साथ भोग करने के लिए दिव्य मङ्गलमय रूप वाले ॥६॥ उनका शरीर बृहत् है, रूप अग्नि के समान है श्रीहरि युवत्व और कुमारत्व को प्राप्त करते हैं । वे चन्द्रमा की किरणों के समान अपनी कान्ति के द्वारा जगन्माता लक्ष्मीजी के साथ रमण किए ॥७॥ ये भगवान् अपने परम पद में जगत् की स्वामिनी श्रीलक्ष्मीजी के साथ, कुमार नित्य यौवन वाले तथा करोड़ों कामदेव के समान सौन्दर्य सम्पन्न रूप से रहते हैं ॥८॥ श्रीभगवान् के भोग लिए परम व्योम है और लीला के लिये सम्पूर्ण जगत् है । भोग तथा क्रीडा के द्वारा भगवान् की दोनों विभूतियों में स्थिति होती है ॥९॥ जग कभी भगवान् अपनी लीला को समाप्त करते हैं तो उनकी भोग विभूति में नित्य ही स्थिति होती है । उनके शक्तिमान होने के कारण भोग विभूति तथा लीला विभूति दोनों धर्म हैं ॥१०॥ श्रीभगवान् की त्रिपाद् विभूति नित्य है और लीला विभूति अनित्य हैं। परं धाम में उनके ऐश्वर्य त्रिपाद् की व्याप्ति है और उनके ऐश्वर्य का एक भाग है ॥११॥ परं धाम उनका शुभ रूप नित्य है । वह कभी विकृत नहीं होने वाला, शाश्वत, दिव्य तथा सदा यौवन पूर्ण रहता है॥१२॥ वे श्रीदेवी और भूदेवी के साथ सदा भोग करते हैं । जगन्माता श्रीदेवी नित्य तथा उनकी अन पायिनी हैं॥१३॥ हे शुभानने ! जिस तरह श्रीभगवान् सर्व व्याप्त हैं उसी तरह लक्ष्मीजी भी सर्व व्याप्त हैं । वे सम्पूर्ण जगत् की नियामिका तथा सदा कल्याण करने वाली भगवान् विष्णु की पत्नी हैं ॥१४॥ उनके पणि, पाद, नेत्र और शिर तथा मुख हैं । वे ही नारायणी, जगत् की माता और जगत् का आश्रय हैं॥१५॥

सर्वस्याऽऽद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी ।
लक्ष्या लक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥१७॥

शून्यं तदखिलं विश्वं विलोक्य परमेश्वरी। शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा॥१८॥
सा लक्ष्मीर्धरणी चैव नीलादेवीति विश्रुता। आधारभूता जगतः पृथिवीरूपमाश्रिता ॥१९॥
तोयादिरसरूपेण सैव नीलापवुर्भवेत्। लक्ष्मीरूपत्वमापन्ना धनवाग्रूपिणी हि सा॥२०॥
एवंदेवीस्वरूपासा जगतः श्रीःश्रिता हरिम्। समस्तविद्याभेदाः स्युर्लक्ष्मीरूपा वरानने !॥२१॥
श्रीरूपमखिलं सर्वंतस्या हि वपुरुच्यते। सौन्दर्यशीलवृत्तंच सौभाग्यं स्त्रीषु संस्थितम् ॥
तस्या रूपं च गिरिजे ! सर्वासां मूर्ध्नि योषिताम् ॥२२॥
यस्याः कटाक्षायुतभागदृष्ट्या ब्रह्मा शिवस्स्वर्गपतिर्महेन्द्रः ।
चन्द्रश्चसूर्यो धनदो यमोऽग्निः प्रभूतमैश्वर्यमवाप्नुवन्ति ॥२३॥
लक्ष्मीःश्रीःकमला विद्यामाताविष्णुप्रियासती ।
पद्मालयापद्महस्ता पद्माक्षीलोकसुन्दरी ॥२४॥

भूतानामीश्वरी नित्या सत्या सर्वगता शुभा। विष्णुपत्नी महादेवी क्षीरोदतनयारमा॥२५॥
अनन्ता लोकमता भूर्नीला सर्वसुखप्रदा। रुक्मिणीच तथा सीता सर्वावेदवती शुभा॥२६॥
सती सरस्वती गौरी शान्तिः स्वाहा स्वधा रतिः ।
नारायणी वरारोहा विष्णोर्नित्यानपायिनी ॥२७॥

एतानि पुण्यनामानि प्रातरुत्थाय यःपठेत्। स महाश्रियमाप्नोति धनधान्यमकल्मषम्॥२८॥

सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् जिनके कटाक्षपात् के अधीन है । उनके नेत्रों के खोलने से जगत् की स्थिति होती है और नेत्रों के मूँद लेने से जगत् का लय हो जाता है ॥१६॥ महालक्ष्मी भी सम्पूर्ण जगत् के कारण, तीनों गुणों से सम्पन्न और परमेश्वर हैं सम्पूर्ण जगत् में लक्ष्य और अलक्ष्य स्वरूप व्यापक हैं॥१७॥ सम्पूर्ण जगत् को शून्य देखकर वे परमेश्वरी अपने तेज से शून्य जगत् को परिपूर्ण वना दीं॥१८॥ वे ही लक्ष्मी, भूदेवी तथा नीला देवी के नाम से विख्यात हैं । पृथिवी रूप को अपनाकर सम्पूर्ण जगत् के आधार हैं ॥१९॥ वे ही जल आदि रस के रूप में नीला देवी होती हैं ॥२०॥ इसी तरह से देवी रूप से श्रीदेवी श्रीहरि को अपनायी हुयी हैं । हे वरानने पार्वति ! लक्ष्मीजी ही विभिन्न रूप वाली हैं ॥२१॥ श्रीरूप से यह सम्पूर्ण जगत् उनका शरीर है वे ही स्त्रियों में सौन्दर्य, शील, व्यवहार और सौभागय रूप से विद्यमान हैं ॥२२॥ हे पार्वति ! उनका ही रूप सम्पूर्ण स्त्रियों में विद्यमान है । उनके कटाक्ष के दश हजारवें भाग से ब्रह्मा, शिव, और स्वर्ग के स्वामी इन्द्र चन्द्रमा, सूर्य, कुवेर, यम, अग्नि आदि का प्रभूत ऐश्वर्य इत्यादि है ॥२३॥ लक्ष्मीजी की लक्ष्मी भी, श्री, कमला, विद्या, माता, विष्णु प्रिया, सती, पद्मालया, पद्महस्ता, पद्माक्षी, लोक सुन्दरी, भूतानामीश्वरी, नित्या, सत्या, सर्वगता, शुभा, विष्णुपत्नी, महादेवी क्षीरोदतनया॥२४-२५॥ अनन्ता, लोकमाता, भू, नीला, सुर्वसुखप्रदा, रुक्मिणी, सीता, सर्वा, वेदवती, सती, सरस्वती, गौरी, शान्ति, स्वाहा, स्वधा, रति, नारायणी, वरारोहा विष्णोर्नित्यानपायिनी ॥२६-२७॥ इन पवित्र नामों को प्रात:काल जगकर जो पढ़ता है वह महालक्ष्मी तथा निष्पाप धन-धान्य को प्राप्त करता

हिरण्यवर्णांहरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम् । चन्द्रांहिरणमयीं लक्ष्मीं विष्णोरनपगामिनीम्॥२९॥
गन्धद्वारां दुराधार्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥३०॥
एवमृक्संहितायांतु स्तूयमानामहेश्वरी । सर्वैश्वर्यसुखं प्रादाच्छिवादीनां दिवौकसाम् ॥३१॥
अस्येशाना हि जगतो विष्णुपत्नी सनातनी। यदपाङ्गाश्रितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥३२॥

यस्य वक्षसि सा देवी प्रभाग्नाविव तिष्ठति ।
स वै सर्वेश्वरः साक्षादक्षरःपुरुषोऽव्ययः ॥३३॥
स वै नारायणः श्रीमान्वात्सल्यगुणसागरः ।
स्वामी सुशीलः सुभगःसर्वज्ञः सर्वशक्तिमान् ॥३४॥

नित्यं सम्पूर्णकामश्च नैसर्गिकसुहृत्सखा । कृपापीयूषजलधिः शरणं सर्वदेहिनाम् ॥३५॥
स्वर्गापवर्गसुखदो भक्तानां करुणाकरः । श्रीमतेविष्णवे तस्मै दास्यां सर्व करोम्यहम् ॥३६॥
देशकालाद्यवस्थासु सर्वासु कमलापतेः । इतिस्वरूपसंसिद्धः सुखं दास्यमवाप्नुयात्॥३७॥
एवं विदित्वा मन्त्रार्थं तद्भक्तिं सम्यगाचरेत्। दासभूतमिदं तस्य जगत्स्थावरजङ्गमम्॥३८॥
श्रीमन्नारायणः स्वामी जगतां प्रभुरीश्वरः । मातापिता सुतो बन्धुर्निवासःशरणंगतिः ॥३९॥
कल्याणगुणवाञ्छ्रीशः सर्वकामफलप्रदः । योऽसौ निर्गुणइत्युक्तः शास्त्रेषुजगदीश्वरः ॥४०॥
प्राकृतैर्हेयसंयुक्तैर्गुणैर्हीनत्वमुच्यते । यत्र मिथ्याप्रपञ्चत्वं वाक्यैर्वेदान्तगोचरैः ॥४१॥

है ॥२८॥ सुवर्ण के समान गौर वर्ण वाली, सबों के मन को आकर्षित करने वाली, सोने तथा चाँदी की माला को धारण करने वाली, चन्द्रमा के समान आह्लादिका, सुवर्ण स्वरूपा भगवान् विष्णु से कभी भी दूर नहीं होने वाली लक्ष्मी, गन्ध के माध्यम से आने वाली, जिनको कोई भी अभिभूत नहीं कर सकता है, सदैव पुष्ट रहने वाली, करीष में निवास करने वाली, सभी जीवों की स्वामिनी श्रीदेवी का मैं यहाँ आवाहन करता हूँ ॥२९-३०॥ इस तरह ऋग्वेद संहिता के मन्त्रों से स्तुति की जाने वाली लक्ष्मीजी शिव इत्यादि देवताओं को सम्पूर्ण ऐश्वर्यों तथा सुखों को प्रदान कीं ॥३१॥ इस सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी सनातनी भगवान् विष्णु की पत्नी हैं । उन्हीं के कटाक्षपात के अधीन यह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् है॥३२॥ जिनके वक्षःस्थल में लक्ष्मीजी अग्नि में उनकी कान्ति के समान रहती हैं वे ही सम्पूर्ण जगत् के स्वामी साक्षात् अक्षर तथा निर्विकार पुरुषोत्तम हैं ॥३३॥ वे ही लक्ष्मी सम्पन्न भगवान् नारायण वात्सल्य गुण के सागर हैं । वे स्वामी, सुन्दरशील गुण वाले, सुभग, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान हैं ॥३४॥ वे नित्य अवाप्त समस्त काम, सबों के स्वाभाविक सुहृत् और मित्र हैं । कृपा रूपी अमृत के सागर तथा सम्पूर्ण शरीर धारियों के रक्षक हैं ॥३५॥ भक्तों को स्वर्ग एवं मुक्ति का सुख देने वाले, करुणा के आकर हैं उन्हीं ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् की मैं ॥३६॥ सभी देशों, कालों तथा अवस्थाओं में दासता करता हूँ । इस तरह से स्वाभाविक दासता जन्य सुख को जीव प्राप्त करता है ॥३७॥ इस तरह से उसके अर्थ को जानकर मनुष्य श्रीभगवान् की अच्छी तरह से भक्ति करे । यह चराचरात्मक जगत् उन्हीं का दास है ॥३८॥ श्रीमान् नारायण ही सम्पूर्ण जगत् के स्वामी, प्रभु और ईश्वर हैं । वे ही सबों के माता, पिता, पुत्र, बन्धु, आश्रय और गति (प्राप्य) हैं ॥३९॥ लक्ष्मीपति कल्याणगुण सम्पन्न तथा सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। शास्त्रों में जो जगदीश्वरः निर्गुण कहे गये हैं ॥४०॥ उससे उनको प्राकृत गुणों से रहित बतलाया गया है।

दृश्यमानमिदं सर्वमनित्यमिति चोच्यते। अत्राऽतिप्राकृतं रूपमण्डस्यैव विनाशनम् ॥४२॥
प्राकृतानांहि रूपाणामनित्यत्वं तथोच्यते। इदमण्डं महादेवि ! प्रकृतेरुद्भवं हरेः ॥४३॥
क्रीडार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लीलाधिकारिणः। लोकैश्चतुर्भिर्दशभिः सागरैर्द्वीपसंयुतैः ॥४४॥
भूतैश्चतुर्विधैश्चाऽपि भूधरैश्च महोच्छ्रयैः। परिपूर्णमिदं रम्यमण्डं प्रकृतिसम्भवम् ॥४५॥
दशोत्तरगुणोपेतंसप्तावरणसम्वृतम् । कलाकाष्ठादिरूपेण यः कालः परिवर्त्तते ॥४६॥
कालेनैव जगत्सर्गस्थितिसंहरणं भवेत् । चतुर्युगसहस्रं वै ब्राह्मणो दिवसो भवेत् ॥४७॥
तावन्ति रात्रिवर्षाणि ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। क्षये तु ब्रह्मणः प्राप्ते सर्वसंहरणं भवेत् ॥४८॥
अण्डमण्डगता लोका दह्यन्ते कालवह्निना ।
सर्वात्मानस्तथा विष्णोः प्रकृतौ विनिवेशिताः ॥४९॥
अण्डावरणभूतानि प्रकृतौ लयमाप्नुयुः। सा सर्वजगदाधारा प्रकृतिर्हरिसंश्रिता ॥५०॥
तया जगत्सर्गलयौ करोति भगवान्सदा। क्रीडार्थं देवदेवेन सृष्टा माया जगन्मयी ॥५१॥
अविद्याप्रकृतिर्माया गुणत्रयमयी सदा। सर्गस्थितिलयानां सा हेतुभूता सनातनी ॥५२॥
योगनिद्रामहामायाप्रकृतिस्त्रिगुणान्विता । अव्यक्तं च प्रधानं च विष्णोर्लीलाविकारिणः ॥५३॥
जगत्सर्गलयौस्यातां प्रकृतेरेवसर्वदा। असङ्ख्यं प्रकृतेःस्थानं निबिडध्वान्तमव्ययम् ॥५४॥
ऊर्ध्वं तु सीम्नि विरजा निस्सीमाऽधस्सनातनी ।
तयाऽऽवृतं जगत्सर्वं स्थूलसूक्ष्माद्यवस्थया ॥५५॥

जहाँ पर वेदान्त वाक्यों के द्वारा प्रपञ्च को मिथ्या कहा गया है ॥४१॥ सम्पूर्ण दिखायी देने वाला जगत् अनित्य कहलाता है । इस लोक में ब्रह्माण्ड का अति प्राकृत रूप विनाशशील है ॥४२॥ हे देवि ! इस लोक में प्राकृत ही रूपों को विनाशशील कहा गया है । यह ब्रह्माण्ड श्रीहरि की प्रकृति से ही उत्पन्न है। देवाराध्य लीलाधिकारी भगवान् विष्णु की क्रीडा के ही लिए सागरों एवं द्वीपों से युक्त चौदह लोकों तथा चार प्रकार के महाभूतों एवं अत्यन्त ऊँचे पर्वतों से परिपूर्ण अत्यन्त मनोहर ब्रह्माण्ड प्रकृति से उत्पन्न है॥४३-४५॥ यह ब्रह्माण्ड उत्तरोत्तर दश गुने विस्तृत सात आवरणों से घिरा है । कला तथा काष्ठा आदि रूप से काल चलता रहता है ॥४६॥ काल के ही द्वारा जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार होते हैं । हजार चतुर्युगों का ब्रह्माजी का दिन होता है । उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि भी होती है, उसी तरह अव्यक्त जन्म ब्रह्माजी के वर्ष होते हैं । ब्रह्माजी की मृत्यु हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् का संहार हो जाता है ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड के लोक कालाग्नि से भस्म हो जाते हैं । सभी आत्माओं का भगवान् विष्णु की प्रकृति में लय हो जाता है ॥४७-४९॥ ब्रह्माण्ड उसके आवरणों तथा पञ्च महाभूतों का प्रकृति में ही लय होता है । श्रीहरि की प्रकृति सम्पूर्ण जगत् का आधार है ॥५०॥ उस प्रकृति से ही भगवान् सदा जगत् की सृष्टि और संहार किया करते हैं । श्रीभगवान् की क्रीडा के लिए ही जगन्मयी माया की सृष्टि हुयी हैं ॥५१॥ गुणत्रयी स्वरूपिणी अविद्या प्रकृति और माया ही सृष्टि, स्थिति और लय का सनातन हेतु है ॥५२॥ योगनिद्रा, महामाया और प्रकृति त्रैगुण्य स्वरूप हैं । अव्यक्त और प्रधान भगवान् विष्णु की लीला के अधिकारी हैं॥५३॥ सदा प्रकृति से ही जगत् की सृष्टि और लय होते हैं । घोर अन्धकार से युक्त प्रकृति का स्थान

विकाससङ्कोचावस्थे तस्यां सर्गलयो स्मृता। एवंसर्वाणि भूतानि प्रकृत्यन्तर्गतानिवै ॥५६॥
ततः शून्यमिदं सर्वं प्रकृत्यन्तर्गतं महत्। एवं प्रकृतिरूपाया विभूते रूपमुत्तमम् ॥५७॥
त्रिपाद्विभूतिरूपंतु श्रृणु भूधरनन्दिनि !। प्रधानपरमव्योम्नोरन्तरा विरजा नदी॥५८॥
देवाङ्गस्वेदजनिततोयैः प्रस्नाविताशुभा। तस्याः पारेपरे व्योम्नि त्रिपाद्‌भूतिस्सनातनी॥५९॥
अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम्। शुद्धसत्त्वमयं दिव्यमक्षरं ब्रह्मणः पदम् ॥६०॥
अनेककोटिसूर्याग्नितुल्यवर्चसमव्ययम्। सर्ववेदमयं शुद्धं सर्गप्रलयवर्जितम् ॥६१॥
क्षुत्पिपासादिरहितं नित्यतृप्तं निरञ्जनम्। असङ्ख्यमजरं नित्यं जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितम्॥६२॥
हिरण्मयं मोक्षपदं ब्रह्मानन्दसुखावहम्। समानाधिक्यरहितमाद्यन्तरहितं शुभम् ॥६३॥
अमत्सरमनालस्यमक्रोधं भयवर्जितम्। तेजसाऽत्यद्भुतं रम्यं नित्यमानन्दसागरम्॥६४॥
एवमादिगुणोपेतं तद्विष्णोः परमं पदम्। न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ॥६५॥
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं हरेः। तद्विष्णोः परमं धाम शाश्वतं नित्यमच्युतम् ॥
न हि वर्णयितुं शक्यं कल्पकोटिशतैरपि ॥६६॥

हरेः पदं वर्णयितुं न शक्यं मया च धात्रा च मुनीन्द्रसङ्घैः ।
यस्मिन्पदे ह्यच्युतईश्वरो यः सत्वङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥६७॥

असंख्य है ।।५४।। प्रकृति की सीमा के ऊपर विरजा नदी है, उसके नीचे सीमा रहित तथा सदा रहने वाली प्रकृति है । स्थूल तथा सूक्ष्मावस्था वाली उस प्रकृति से यह सम्पूर्ण जगत् आवृत है ।।५५।। उसकी दो अवस्थाएँ होती हैं विकासावस्था तथा संकोचावस्था । विकासावस्था में सृष्टि होती है और संकोचावस्था में लय होता है । इस तरह सभी जीव प्रकृति के अन्तर्गत है ।।५६।। उसके पश्चात् प्रकृति के अन्तर्गत विद्यमान यह महत् तत्त्व शून्य है । इस तरह प्रकृति रूपा भगवान् की विभूति का उत्तम रूप है ।।५७।। हे पार्वति ! तुम त्रिपाद विभूति के रूप को सुनो । प्रकृति तथा परम व्योम के बीच में विरजा नदी है।।५८।। वह श्रीभगवान् के शरीर के पसीने से उत्पन्न है । उसके दूसरे तट पर आकाश में सनातनी त्रिपाद विभूति है ।।५९।। वही परम पद अमृत शाश्वत और नित्य हैं यह शुद्ध सत्त्व गुण सम्पन्न है, दिव्य तथा कभी भी विनष्ट होन वाली नहीं है । यही परमात्मा का धाम है ।।६०।। इसका तेज अनेक करोड़ सूर्य के समान है । यह अव्यय है । यह सर्ववेदमय शुद्ध है इसकी न तो सृष्टि होती है और न लय ।।६१।। यह भूख प्यास से रहित सदैव तृप्त रहने वाले निर्दोष, असंख्य, जरावस्था से रहित, नित्य जाग्रत् तथा स्वापादि अवस्थाओं से रहित, सुवर्ण स्वरूप, मोक्ष स्थान है । यह ब्रह्मानन्द का सुख प्रदान करने वाला है इसके न तो कोई सदृश है और न इससे अधिक है आदि तथा अन्त से रहित तथा शुभ है ।।६२-६३।। यह मत्सर, आलस्य, क्रोध से एवं भय से रहित तेज के कारण अत्यन्त अद्भुत, मनोहर, नित्य तथा आनन्द सागर स्वरूप है ।।६४।। भगवान् विष्णु का वह प्रख्यात धाम इसी तरह के गुण से सम्पन्न है । सूर्य चन्द्रमा अथवा अग्नि उसको नहीं प्रकाशित करते हैं ।।६५।। जहाँ पर गये हुए जीव पुनः इस संसार में नहीं आते हैं, इस प्रकार का भगवान् विष्णु का परम पद है । वह भगवान् विष्णु का परम पद शाश्वत, नित्य तथा अविकृत रहता है । उसका वर्णन सैकड़ों करोड़ कल्पों में नहीं किया जा सकता है ।।६६।। श्रीभगवान् के

यदक्षरं वेदगुह्यं यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति ये तद्विदुस्त इमे समासते ॥६८॥
तद्विष्णोःपरमं धामसदा पश्यन्ति सूरयः । अक्षरंशाश्वतं दिव्यं दिविचक्षुरिवाऽऽततम् ॥६९॥
तत्प्रवेष्टुमशक्यं च ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः । ज्ञानेन शास्त्रमार्गेण वीक्ष्यते योगिपुङ्गवैः ॥७०॥
अहं ब्रह्मा च देवाश्च न जानन्ति महर्षयः । सर्वोपनिषदामर्थं दृष्ट्वा वक्ष्यामि सुव्रते !॥७१॥
विष्णोः पदेहि परमे मध्वउत्सःशुभाश्रयः। यत्रगावो भूरिशृङ्गा आसतेसुसुखाःप्रजाः ॥७२॥
अत्राऽऽह तत्परंधाम गायमानस्य शार्ङ्गिणः ।
तद्भाति परमंधाम गोभिर्गोपैस्सुखाह्वयैः ॥७३॥
आदित्यवर्णं तमसः परस्ताज्ज्योतिरच्युतम् । अथाऽतो ब्रह्मणो लोकश्शुद्धसत्त्वस्सनातनः ॥७४॥
सामान्याविद्यितेभूमिरतेऽस्मिञ्छाश्वतेपदे । तस्थतुर्जागरूकेऽस्मिन्युवानौश्रीसनातनौ ॥७५॥
उतस्वसारौ युवती भूनीले विष्णुवल्लभे । यत्र पूर्वे ये च साध्या विश्वेदेवास्सनातनाः ॥७६॥
ते हनाकं महिमानस्सचन्ते शुभदर्शनाः । तत्र विज्ञानिनो विप्रा जागृवांसस्समिन्धते ॥७७॥
तत्पदं ज्ञानिनो विप्रा यान्ति संवासमिच्छवः ।
तद्विष्णोः परमंधाममोक्षइत्यभिधीयते ॥७८॥
तस्मिन्बन्धविनिर्मुक्ताः प्राप्नुवन्ति सुखं पदम् ।
तत्प्राप्य न निवर्तन्ते तस्मान्मोक्ष उदाहृतः ॥७९॥

परम पद का वर्णन न तो मैं कर सकता हूँ, न ब्रह्माजी और न मुनि समूह ही कर सकते हैं । जिस धाम में निर्विकार श्रीभगवान् रहते हैं उसको श्रीभगवान् ही जानते हैं कि नहीं यह मैं नहीं जानता ॥६७॥ जो अक्षर तथा वेद गोप्य हैं जिसमें सिद्धसाध्य देवताओं का निवास है, वे ही यदि उसको नहीं जानते हैं तो फिर ऋचा क्या करेगी, जो लोग उसको जानते हैं वे उसी लोक में रहते हैं ॥६८॥ अक्षर शाश्वत तथा दिव्य वह नेत्र के समान विस्तृत है । भगवान् विष्णु के उस दिव्य धाम का सूरिजन (ज्ञानी पुरुष) सदा उसका साक्षात्कार करते हैं ॥६९॥ उसमें ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता भी नहीं प्रवेश कर सकते हैं । योगिश्रेष्ठ उसको शास्त्र तथा ज्ञान के द्वारा जानते हैं ॥७०॥ हे सुव्रते ! मैं ब्रह्मा देवगण तथा महर्षिगण भी उसे नहीं जानते हैं । मैं तो उपनिषदों को देखकर उसका वर्णन करता हूँ ॥७१॥ भगवान् विष्णु के परम पद में कल्याणमय मधु के स्रोत हैं । वहाँ पर बहुत अधिक शृङ्गों वाली गौएँ तथा प्रजाएँ अत्यन्त सुख पूर्वक रहती हैं ॥७२॥ यहाँ पर भगवान् विष्णु के परंधाम को जिसका मैं वर्णन कर रहा हूँ वह सुख सम्पन्न गौओं तथा गोपों से प्राकशित होता है ॥७३॥ सूर्य के समान देदीप्यमान प्रकृति मण्डल के ऊपर प्रकाश स्वरूप श्रीभगवान् विद्यमान हैं । उसके पश्चात् श्रीभगवान् का शुद्ध सत्त्व स्वरूप सनातन लोक है ॥७४॥ इस शाश्वत धाम में सामान्या भूमि है । इसमें सदा युवक रहने वाले श्रीदेवी और सनातन भगवान् रहते हैं॥७५॥ निश्चित रूप से भगवान् के प्रिया सदा युवती रहने वाली श्रीदेवी की बहनें भूदेवी और नीला देवी रहती हैं । उसी लोक में प्राचीन कालिक सनातन साध्य देव रहते हैं ॥७६॥ निश्चित रूप से देखने में कल्याणमय उस परमव्योम की महिमा को गाते रहते हैं । वहाँ पर विज्ञान सम्पन्न सदा सावधान रहने वाले नित्य मुक्त जीवों का निवास है ॥७७॥ मुक्ति को प्राप्त करने की इच्छा वाले ज्ञानी जीव उस लोक में जाते

मोक्षं परम्पदं दिव्यममृतं विष्णुमन्दिरम् । अक्षरं परमं धाम वैकुण्ठं शाश्वतं पदम् ॥८०॥
नित्यं च परमं व्योम सर्वोत्कृष्टंसनातनम् । पर्यायवाचकान्यस्यपरधाम्नोऽच्युतस्य च ॥
तस्य त्रिपाद्विभूतेस्तु रूपं वक्ष्यामि विस्तरात् ॥८१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहिताया उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसंवादे त्रिपाद्विभूतिकथनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय: ॥२२७॥

दो सौ अठाइसवाँ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

त्रिपाद्विभूतेर्लोकास्तु असङ्ख्याता:प्रकीर्तिता: ।
शुद्धसत्त्वमया: सर्वेब्रह्मानन्दसुखाह्वया: ॥१॥
सर्वे नित्या निर्विकारा हेयरागादिवर्जिता: । सर्वे हिरण्मयाश्शुद्धा:कोटिसूर्यसमप्रभा: ॥२॥
सर्वे वेदमया दिव्या: कामक्रोधविवर्जिता: । नारायणपदाम्भोजभक्त्येकरसेविता: ॥३॥
निरन्तरं सामगानपरिपूर्णसुखाश्रिता: । सर्वे पञ्चोपनिषदस्वरूपा वेदवर्चस: ॥४॥
सर्वेवेदमयैर्दिव्यै: पुरुषै: स्त्रीभिरावृता: । वेदैकरसतोयाढ्यैस्सरोभिरुपशोभिता: ॥५॥

हैं । भगवान् विष्णु का वही परम धाम है उसी को मोक्ष कहा जाता है ॥७८॥ उस लोक को कर्म के बन्धन से रहित मुक्त नित्य जीव सुखमय उस धाम को प्राप्त करते हैं । उस लोक में जाकर वे पुन: इस संसार में नहीं आते हैं, इसीलिए वह मोक्ष कहलाता है ॥७९॥ मोक्ष, परम्पद, दिव्य, अमृत, विष्णु मन्दिर, अक्षर, परम धाम, वैकुण्ठ, शाश्वत पद, नित्य, परमव्योम, सर्वोत्कृष्ट और सनातन ये सभी परम धाम और श्रीभगवान् के पर्यायवाची नाम हैं । उस त्रिपाद् विभूति के रूप को मैं विस्तार पूर्वक बतलाता हूँ ॥८०-८१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत त्रिपाद् विभूति का वर्णन नामक दो सौ सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२७।।

त्रिपाद् विभूति में विद्यमान लोकों का वर्णन

श्रीमहादेवजी ने कहा— त्रिपाद् विभूति में असंख्य लोक बतलाये गये हैं । वे सभी शुद्ध सत्त्वमय हैं तथा सबके सब ब्रह्मानन्द से युक्त हैं ॥१॥ वे सब नित्य निर्विकार तथा हेय राजा आदि से रहित हैं। वे सब सुवर्णमय शुद्ध तथा करोड़ों सूर्य के समान कान्ति के सम्पन्न हैं ॥२॥ वे सब वेदमय, दिव्य तथा काम क्रोध आदि से रहित हैं । भगवान् नारायण के चरण कमलों की भक्ति रूपी रस से सिक्त हैं ॥३॥ निरन्तर सामगान से परिपूर्ण और सुखमय हैं । वे सब पञ्चोपनिषन्मय और वेद के तेज से सम्पन्न हैं ॥४॥

श्रुतिस्मृतिपुराणादिरूपस्थावरसंयुताः । सर्वं वर्णयितुं शक्यं न मया लोकविस्तृतम् ॥६॥
विरजापरमव्योम्नोरन्तरा केवलं स्मृतम् । तत्स्थानमुपभोक्तव्यमव्यक्तब्रह्मसेविनाम् ॥७॥
स्वात्मानुभवजानन्दसुखदं केवलम्पदम् । निःश्रेयसं च निर्वाणं कैवल्यं मोक्षउच्यते ॥८॥
श्रीशाङ्घ्रिभक्तिसेवैकरसभोगविवर्जिताः । तदिच्छन्त्यल्पमतयो मोक्षं सुखविवर्जितम् ॥९॥
महात्मानो महाभागा भगवत्पादसेवकाः । तद्विष्णोः परमं धाम यान्ति ब्रह्मसुखप्रदम् ॥१०॥
नानाजनपदाकीर्णं वैकुण्ठं तद्धरेः पदम् । प्राकारैश्च विमानैश्च सौधैरत्नमयैर्वृतम् ॥११॥
तन्मध्येनगरीदिव्यासाऽयोध्येतिप्रकीर्तिता । मणिकाञ्चनचित्राढ्यप्रकारैस्तोरणैर्वृताः ॥१२॥
चतुर्द्वारसमायुक्ता रत्नगोपुरसम्वृता । चण्डाद्विदारपालैश्च कुमुदाद्यैश्च रक्षिता ॥१३॥
चण्डप्रचण्डौ प्राग्द्वारे याम्ये भद्रसुभद्रकौ । वारुण्यां जयविजयौसौम्येधातृविधातरौ ॥१४॥
कुमुदः कुमदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथवामनः । शङ्कुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ॥१५॥

एते दिक्पतयः प्रोक्ताः पुर्यामत्र शुभानने ! ।
कोटिवैश्वानरप्रख्यगृहपङ्क्तिभिरावृता ॥१६॥

आरूढयौवनैर्नित्यैर्दिव्यनारीनरैर्युता । अन्तःपुरं तु देवस्य मध्ये पुर्या मनोहरम् ॥१७॥
मणिप्राकारसंयुक्तं रत्नतोरणशोभितम् । विमानैर्गृहमुख्यैश्च प्रासादैर्बहुभिर्युतम् ॥१८॥

दिव्याप्सरोगणैः स्त्रीभिस्सर्वतस्समलङ्कृतम् ।
मध्ये तु मण्डपं दिव्यं राजस्थानं महोच्छ्रयम् ॥१९॥

सबके सब वेदमय स्त्री पुरुषों से आवृत हैं। वे सब केवल वेद के रस से परिपूर्ण जल से परिपूर्ण सरोवरों से सुशोभित हैं ॥५॥ श्रुति, स्मृति, पुराण आदि रूप स्थावरों से वे युक्त हैं। उन सभी लोकों का मैं विस्तार से वर्णन नहीं कर सकता हूँ ॥६॥ केवल विरजा नदी और परमव्योम के बीच में वर्णित लोकों का तथा अव्यक्त ब्रह्म का सेवन करने वाले हैं ॥७॥ आत्मानुभव जन्य आनन्द सुख को देने वाला केवल धाम है। वह कल्याणमय मुक्ति ही मुक्ति, कैवल्य तथा मोक्ष कहलाती हैं ॥८॥ श्रीपति के चरणों की भक्ति रूपी रस के भोग से रहित, अल्पमति वाले जीव सुख से रहित उस मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं ॥९॥ श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करने वाले महाभाग महात्मागण ब्रह्मसुख को देने वाले भगवान् विष्णु के उस धाम में जाते हैं ॥१०॥ अनेक जनपदों से परिपूर्ण वह श्रीहरि का वैकुण्ठ नामक धाम हैं। वह प्राकारों विमानों तथा रत्नमय महलों से घिरा है ॥११॥ उसके बीच में दिव्य नगरी जो हैं वह अयोध्या कही जाती हैं। मणिकाञ्चन से चित्रित प्रकारों तथा तोरणों से वह घिरी हुयी है ॥१२॥ उसके चार द्वार हैं तथा रत्नमय गोपुरों से घिरी है। वह चण्ड आदि द्वारपालों तथा कुमुद आदि से रक्षित है ॥१३॥ उसके पूर्वद्वार पाल चण्ड एवं प्रचण्ड हैं दक्षिण द्वार पर भद्र और सुभद्र नामक द्वारपाल हैं। पश्चिम द्वार पर जय विजय नामक द्वारपाल हैं और उत्तर द्वारपर धाता तथा विघाता नामक द्वारपाल हैं ॥१४॥ कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक वामन, शङ्कुकर्ण, सर्पनेत्र, सुमुख, सुप्रतिष्ठित ॥१५॥ हे सुन्दर मुख वाली इन नगरी में ये सभी दिक्पाल बतलाये गये हैं। वह करोड़ों अग्नि के समान गृहों की पंक्ति से घिरी है ॥१६॥ वह नगरी पूर्ण यौवन से युक्त दिव्यनर नारियों से युक्त है। नगरी के बीच में श्रीभगवान् का मनोहर अन्तःपुर है ॥१७॥ वह मणियों के प्राकार से युक्त हैं तथा रत्नमय तोरण से सुशोभित है। वह विमानों मुख्य गृहों तथा अनेक

माणिक्यस्तम्भसाहस्रजुष्टं रत्नमयं शुभम्। दिव्यैर्मुक्तैः समाकीर्णसमागानोपशोभितम् ॥२०॥
मध्ये सिंहासनं रम्यं सर्ववेदमयं शुभम्। धर्मादिदैवतैर्नित्यैर्वृतं पादमयात्मकैः ॥२१॥
धर्मज्ञानमहैश्वर्यवैराग्यैः पादविग्रहैः। ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यरूपैर्नित्यवृतं क्रमात् ॥२२॥
शक्तिराधारशक्तिश्च चिच्छक्तिश्च सदाशिवा। धर्मादिदेवतानां च शक्तयः परिकीर्तिताः ॥२३॥
वसन्ति मध्यमे तत्र वह्निसूर्यसुधांशवः। कूर्मश्च नागराजश्च वैनतेयस्त्रयीश्वरः ॥२४॥
छन्दांसि सर्वमन्त्राश्च पीठरूपत्वमास्थिताः। सर्वाक्षरमयं दिव्यं योगपीठमितिस्मृतम् ॥२५॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्ममुदयाऽर्कसमप्रभम्। तन्मध्ये कर्णिकायां तु सावित्र्यां शुभदर्शने ! ॥२६॥
ईश्वर्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान्। इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्यप्रकाशवान् ॥२७॥
युवा कुमारः स्निग्धश्च कोमलावयवैर्वृतः। फुल्लरक्ताम्बुजनिभः कोमलाङ्घ्रिसरोजवान् ॥२८॥
प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षः सुभ्रूलतायुगाङ्कितः। सुनासस्सुकपोलाढ्यस्सुश्रोमुखपङ्कजः ॥२९॥
मुक्ताफलाभदन्ताढ्यः समिस्ताधरविद्रुमः। परिपूर्णेन्दुसङ्काशसुस्मिताननपङ्कजः ॥३०॥
तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विराजितः।
सुस्निग्धनीलकुटिलकुन्तलैरुपशोभितः ॥३१॥
मन्दारपारिजाताढ्य कबरीकृतकेशवान्। प्रातरुद्यत्सहस्रांशुनिभकौस्तुभशोभितः ॥३२॥
हारस्वर्णस्त्रगासक्तकम्बुग्रीवाविराजितः। सिंहस्कन्धनिभैः प्रोच्चैः पीनैरंसैर्विराजितः ॥३३॥

महलों से युक्त है ॥१८॥ वह हर ओर से दिव्य अप्सराओं तथा स्त्रियों से अलंकृत है। उसके बीच में अत्यन्त ऊँचा राजस्थान है ॥१९॥ वह शुभ स्थान माणिक्य निर्मित हजारों स्तम्भों से सेवित तथा रत्नमय है। दिव्य मुक्तों से भरा हुआ वह सामगान से सुशोभित है ॥२०॥ उसके बीच में शुभ सर्ववेदमय मनोहर सिंहासन है उसके पादमय धर्मादि देव समूह से सदा आवृत रहता है ॥२१॥ वह धर्म, ज्ञान, महा ऐश्वर्य तथा वैराग्य रूपी शरीर वाले चरणों वाला है। वहाँ सदा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद अपना रूप धारण करके सदा उसे घेरे रहते हैं ॥२२॥ शक्ति, आधार शक्ति, चिच्छक्ति तथा सदाशिव नामक धर्मादि देवताओं की शक्तियाँ कही गयी हैं ॥२३॥ उसके बीच में अग्नि सूर्य तथा चन्द्रमा का निवास है। कूर्म, नागराज, गरुड ये सभी त्रयी के स्वामी हैं ॥२४॥ सभी छन्द और सभी मन्त्र इस सिंहासन के पीठ रूप से स्थित हैं। उसका योगपीठ दिव्य तथा सभी अक्षय स्वरूप है ॥२५॥ उसके बीच में उदित सूर्य के समान कान्ति वाला अष्टदल कमल है। हे पार्वति ! उसके बीच की सावित्र्य कणिका में लक्ष्मीजी के साथ देवताओं के स्वामी परम पुरुष श्रीभगवान् विराजमान हैं। वे नील कमल दल के समान श्याम वर्ण के हैं उनका प्रकाश करोड़ों सूर्य के समान है ॥२६-२७॥ वे युवा, कुमार हैं स्निग्ध तथा कोमल अङ्गों वाले हैं। उनके कोमल चरण कमल विकसित कमल के समान हैं ॥२८॥ सुन्दर भूलताओं से युक्त उनके दोनों नेत्र विकसित कमल के समान सुन्दर हैं। सुन्दर नासिका, कपोल से युक्त वे सुन्दर कान तथा मुख कमल से युक्त हैं ॥२९॥ उनकी दन्त पंक्ति मोती के मसान चमकती हैं। सुन्दर मुस्कार से युक्त उनका मुख कमल पूर्ण चन्द्रमा के समान है ॥३०॥ वे प्रौढ सूर्य के समान चमकते दो कुण्डलों से सुशोभित हैं। सुन्दर स्निग्ध काले घुंघराले केशों से वे सुशोभित हैं ॥३१॥ उनके ग्रथित केशों में मन्दार तथा पारिजात

पीनवृत्तायतभुजैश्चतुर्भिरूपशोभितः । अङ्गुलीयैश्च कटकैः केयूरैः परिमण्डितः॥३४॥
बालार्ककोटिसङ्काशैः कौस्तुमाद्यैः सुभूषणैः ।
विराजितमहावक्षोवनमालाविभूषितः ॥३५॥
विधातृजननस्थाननाभिपङ्कजशोभितः । बालातपनिभश्लक्ष्णपीतवस्त्रसमन्वितः ॥३६॥
नानारत्नविचित्राङ्घ्रिः कटकाभ्यां विराजितः ।
सज्योत्स्नचन्द्रपतिमनखपङ्क्तिसमन्वितः ॥३७॥
कोटिकन्दर्पलावण्यसौन्दर्यनिधिरच्युतः । दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गो दिव्यमालाविभूषितः ॥३८॥
गृहीतशङ्खचक्राभ्यामुद्बाहुभ्यां विराजितः। वरदाभयहस्ताभ्यामितराभ्यां तथैव च ॥३९॥
वामाङ्के संस्थिता देवी महालक्ष्मीर्महेश्वरी । हिरण्यवर्णा हरिणी सुवर्णरजतस्त्रजा ॥४०॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना यौवनारम्भविग्रहा । रत्नकुण्डलसंयुक्ता नीलकुञ्चितशीर्षजा॥४१॥
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी दिव्यपुष्पोपशोभिता। मन्दारकेतकीजातीपुष्पाञ्चितसुकुन्तला ॥४२॥
सुभ्रूस्सुनासासुश्रोणि पीनोन्नतपयोधरा । परिपूर्णेन्दुसङ्काशसुस्मिताननपङ्कजा ॥४३॥
तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विराजिता ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा ॥४४॥

के पुष्प लगे हैं । वे प्रातःकाल में उदित होने वाले सूर्य की कान्ति वाली कौस्तुभ मणि से सुशोभित हैं॥३२॥ शङ्ख के समान सुन्दर उनकी ग्रीवा हारों तथा सुवर्ण मालाओं से सुशोभित हैं । उनके सिंह के कन्धे के समान उन्नत तथा मांसल कन्धों से सुशोभित हैं ॥३३॥ मोटी तथा लम्बी चार भुजाओं से वे सुशोभित हैं । श्रीभगवान् अङ्गूठियों, कङ्गनों तथा केयूरों से अलंकृत हैं ॥३४॥ उनका विस्तृत वक्षःस्थल करोड़ों बाल सूर्य के समान कान्ति वाले कौस्तुभ आदि आभूषणों तथा वनमाला से विभूषित है ॥३५॥ ब्रह्माजी की उत्पत्ति का स्थान नाभि कमल से सुशोभित है । वे बाल सूर्य के सदृश कोमल पीताम्बर को धारण किए हुए हैं ॥३६॥ उनके पैर अनेक रत्नों से अद्भुत लगने वाले कटकों से सुशोभित हैं । वे चन्द्रिका से युक्त चन्द्रमा के सदृश सुन्दर नख पंक्ति से युक्त हैं ॥३७॥ भगवान् अच्युत करोड़ों कामदेव के लवण्यमय सौन्दर्य के आकर हैं । उनके अङ्गों में दिव्य चन्दन लगा हुआ हैं तथा वे दिव्य मालाओं से विभूषित हैं ॥३८॥ शङ्ख, चक्र धारण किए हुए ऊपर के कोमल दोनों भुजाओं से सुशोभित हैं । उसी तरह नीचे के वरद मुद्रा तथा अभय मुद्रा से युक्त दोनों भुजाओं से भी वे सुशोभित हैं ॥३९॥ उनके वामभाग में माहेश्वरी महालक्ष्मी जी विराजमान हैं । उनका सुवर्ण के समान वर्ण हैं, वे सबों के मन को आकृष्ट करने वाली, चाँदी और सुवर्ण की मालाओं को धारण किए हुयी हैं ॥४०॥ सभी लक्षणों से युक्त तथा जिसमें जवानी का आरम्भ हो रहा है ऐसे शरीर वाली हैं । रत्न निर्मित कुण्डलों से युक्त उनके काले घुंघराले केश हैं ॥४१॥ वे अपने अङ्गों में दिव्य चन्दन को लगायी हैं तथा दिव्य पुष्पों से सुशोभित हैं। उनके सुन्दर केशों में मन्दार, केतकी, जाति आदि के सुन्दर पुष्प लगे हैं ॥४२॥ उनके भौंहे, नाक, तथा श्रोणी प्रदेश मनोहर हैं । उनके स्तन मोटे तथा उठे हुए हैं । पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर तथा मुस्कान से युक्त उनका मुख कमल है ॥४३॥ वे दोपहर के सूर्य के सदृश चमकने वाले दोनों कुण्डलों से सुशोभित हैं । वे तप्त सुर्वण के समान गौराङ्गी हैं तथा तप्त सुवर्ण निर्मित भूषणों को धारण की हैं ॥४४॥ उनकी

हस्तैश्चतुर्भिः संयुक्ता कनकाम्बुजभूषिता। नानाविचित्ररत्नाढ्या कनकाम्बुजमालया ॥४५॥
हारकेयूरकटकैरङ्गुलीयैश्च शोभिता। भुजद्वयधृतोदग्रपद्मयुग्मोपशोभिता ॥४६॥
गृहीतमातुलुङ्गाख्यजाम्बूनदकराञ्चिता । एवं नित्यानपायिन्या महालक्ष्म्या महेश्वरः॥४७॥
मोदते परमे व्योम्नि शाश्वते सर्वदा प्रभुः। पार्श्वयोर्धरणीनीले समासीने शुभासने ॥४८॥
अष्टदिक्षु दलाग्रेषु विमलाद्याश्च शक्तयः। विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रियायोगा तथैव च ॥४९॥
प्रह्वा सत्या तथेशाना शक्तयःपरमात्मनः। गृहीत्वाचामरान्दिव्यान्सुधाकरसमप्रभान् ॥५०॥
सर्वलक्षणसम्पन्नाः सेवन्ते पतिमच्युतम्। दिव्याप्सरोगणाःपञ्चशतसङ्ख्याश्चयोषितः ॥५१॥
अन्तःपुरनिवासिन्यः सर्वाभरणभूषिताः। पद्महस्ताश्च ताः सर्वाः कोटिवैश्वानरप्रभाः ॥५२॥
सर्वलक्षणसम्पन्नाःशीतांशुसदृशाननाः । ताभिः परिवृतो राजा शुशुभे परमःपुमान्॥५३॥
अनन्तविहगाधीशसेनान्याद्यैस्सुरेश्वरैः । अन्यैः परिजनैर्नित्यैर्मुक्तैश्च परिसम्वृतः॥५४॥
मोदते रमया सार्द्धं भोगैश्वर्यरतः पुमान्। एवं वैकुण्ठनाथोऽसौ राजते परमे पदे॥५५॥

तद्व्यूहभेदाँल्लोकांश्च वक्ष्यामि गिरिजे शुभे ! ।
प्राच्यांवैकुण्ठलोकस्य वासुदेवस्यमन्दिरम् ॥५६॥
आग्नेय्यांलक्ष्म्यालोकस्तुयाम्यांसंकर्षणालयः ।
सारस्वतस्तुनेर्ऋत्यांप्राद्युम्नः पश्चिमे तथा ॥५७॥
रतिलोकस्तुवायव्यामुदीच्यामनिरुद्धभूः ।
ऐशान्यांशान्तिमलोकःस्यात्प्रथमावरणंस्मृतम् ॥५८॥

चार भुजाएँ हैं तथा सुवर्ण कमल से अलंकृत हैं। अनेक अद्भुत रत्नों से परिपूर्ण सुवर्ण कमल की माला धारण की हैं ॥४५॥ हार, केयूर, कङ्गन तथा अङ्गुलियों से वे सुशोभित हैं। ऊपर की दो भुजाओं में दो कमलों को वे धारण की हैं ॥४६॥ वे अपने दो हस्त कमलों में मातुलुङ्ग और कमल की धारण की हुयी हैं। इस तरह सदैव साथ रहने वाली श्रीदेवी से श्रीभगवान् ॥४७॥ शाश्वत परम व्योम में सर्वदा आनन्दानुभव करते हैं। उनके दोनों बगल में भूदेवी और नीला देवी शुभ आसन पर विराजमान हैं ॥४८॥ उस कमल दल के आठो दिशाओं में विमला आदि शक्तियाँ है। विमला उत्कर्षिणी ज्ञाना क्रियायोगा प्रह्वा सत्या तथा ईशान ये भगवान् की शक्तियाँ हैं। ये अपने हाथ में चन्द्रमा के समान श्वेत दिव्य चमर लेकर ॥४९-५०॥ सभी लक्षणों से सम्पन्न अपने स्वामी भगवान् अच्युत की सेवा करती हैं। दिव्य अप्सराओं का गण जिनकी संख्या पाँच सौ है। ऐसी स्त्रियाँ भी सेवा रत हैं ॥५१॥ अन्तःपुर में रहने वाली वे सभी अलङ्कारों से अलंकृत हैं। वे अपने हाथ में कमल लिए रहती हैं तथा उनकी कान्ति करोड़ों अग्नि के समान हैं ॥५२॥ वे सभी लक्षणों से सम्पन्न तथा चन्द्रमा के समान मुखवाली हैं। उन सबों से घिरे हुए परमपुरुष श्रीभगवान् सुशोभित होते हैं ॥५३॥ वे अनन्त, गरुड़, सेनापति, विष्वक्सेन आदि सुरेश्वरों तथा नित्य मुक्त आदि परिजनों से घिरे हुए हैं ॥५४॥ भोगों तथा ऐश्वर्यो में रत रहने वाले श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के साथ आनन्दानुभव करते हैं। इस तरह वैकुण्ठ नाथ परम पद में सुशोभित होते हैं ॥५५॥ हे शुभे पार्वति ! मैं उनके व्यूहों के भेदों को तथा उनके लोकों का वर्णन करता हूँ। वैकुण्ठ लोक के पूर्व दिशा में भगवान् वासुदेव का

केशवादिचतुर्विंशत्यमी लोकास्ततः क्रमात्। द्वितीयावरणंप्रोक्तं वैकुण्ठस्य शुभाह्वयम् ॥५९॥
मत्स्यकूर्मादिलोकास्तुतृतीयावरणं शुभम् । सत्याच्युतानन्तदुर्गाविष्वक्सेनगजाननाः ॥६०॥
शङ्खपद्मनिधीलोकाश्चतुर्थावरणं शुभम्। ऋग्यजुःसामाथर्वाणो लोका दिक्षुमहत्सु च ॥६१॥
सावित्र्या विहगेशस्य धर्मस्य च मखस्य च ।
पञ्चमावरणंप्रोक्तमक्षयंसर्ववाङ्मयम् ॥६२॥
शङ्खचक्रगदापद्मखड्गशार्ङ्गहलं तथा। मौशलं च तथा लोकाः सर्वशस्त्रास्त्रसंयुताः॥६३॥
षष्ठमावरणं प्रोक्तं मन्त्रास्त्रमयमक्षरम्। ऐन्द्रपावकयाम्यानि नैर्ऋतं वारुणं तथा ॥६४॥
वायव्यं सौम्यमैशानं सप्तमं मुनिभिःस्मृतम्। साध्यामरुद्गणाश्चेवविश्वेदेवास्तथैव च ॥६५॥
नित्याः सर्वेपरेधाम्नियेचान्येचदिवौकसः । ते वै प्राकृतलोकेऽस्मिन्ननित्यास्त्रिदशेश्वराः ॥६६॥
तेहनाकं महिमानः सचन्तइति वै श्रुतिः। एवं परं पदं नित्यैर्मुक्तैर्भोगपरायणैः ॥६७॥
दिव्याभिर्महिषीभिश्च राजते विभुरीश्वरः। न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ॥६८॥
यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते योगिनः संशितव्रताः। द्वयैकमन्त्रनिष्ठा ये ते वै यान्तितदव्ययम्॥६९॥
न वेदयज्ञाध्ययनैर्नदानैर्न व्रतैः शुभैः। न तपोभिर्निराहारैर्न च साधनकर्मभिः॥७०॥
एकेन द्वयमन्त्रेण तथा भक्तया त्वनन्यया। तल्लभ्यं शाश्वतंस्थानंप्रपत्त्या वै सनातनम्॥७१॥

पार्वत्युवाच

साधूक्तं परमं स्वर्गस्वरूपं भवता प्रभो ! । परव्योम्निस्थितो नित्यं कथं प्रकृतिमण्डले ॥७२॥

मन्दिर है । अग्नि कोण में लक्ष्मीजी का लोक है । दक्षिण दिशा में सङ्कर्षण भगवान् का निवास है । नैऋत्य कोण में शान्ति लोक है यही आवरण कहा गया है ॥५६-५८॥ उसके बाद केशव आदि के चौबीस लोक हैं । इसी को वैकुण्ठ का द्वितीय आवरण कहते हैं ॥५९॥ मत्स्य तथा कूर्म आदि के लोकों को वैकुण्ठ का तृतीय आवरण कहा गया है । सत्य, अच्युत, अनन्त, दुर्गा, विष्वक्सेन, गजानन, शङ्ख तथा पद्म आदि निधियों का लोक चतुर्थ आवरण में हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के लोक महान् हैं और दिशाओं में हैं ॥६०-६१॥ सावित्री, गरुड़, धर्म तथा मख का लोक पञ्चम आवरण में हैं और वे अक्षय तथा सर्व वाङ्मय स्वरूप हैं ॥६२॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, हल, खड्ग, शार्ङ्ग, मूसल इन सबों के लोक सभी शस्त्रास्त्रों से युक्त हैं ॥६३॥ इसको षष्ठ आवरण कहा गया है । यह मन्त्र शास्त्रमय तथा अक्षर है इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, सोम तथा ईशान के लोकों को मुनियों ने सातवाँ आवरण कहा है । साध्यगण, मरुद्गण, तथा वेश्वेदेवों तथा नित्यों का तथा इनसे भिन्न देवताओं का लोक परमधाम में तथा इस लोक में जो अनित्य देवेश्वर हैं उन सबों को श्रुति कहती हैं कि वे स्वर्गलोक में निवास करते हैं । इस तरह से परमपद भोग परायण नित्यों तथा मुक्तों से ॥६४-६७॥ तथा महीषियों से श्रीभगवान् सुशोभित होते हैं । उस परम व्योम को सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि नहीं प्रकाशित करते हैं ॥६८॥ प्रशंसित व्रत वाले योगिजन वहाँ जाकर वहाँ से फिर संसार में नहीं आते हैं । जो लोग केवल द्वयमन्त्र निष्ठ हैं वे भी परम व्योम में जाते हैं ॥६९॥ वेदाध्ययन, यज्ञ, अध्ययन, दान, शुभव्रत, तपस्या, उपवास तथा साधनभूत कर्मों से कोई परम व्योम में नहीं जा पाता है ॥७०॥ केवल द्वयमन्त्र के द्वारा तथा अनन्या भक्ति के द्वारा तथा शरणागति के द्वारा उस शाश्वत स्थान की प्राप्ति होती है ॥७१॥ **पार्वतीजी ने कहा—**

स्थितवान्किन्निमित्तेन लीलया किं प्रयोजनम् ।
शुद्धसत्त्वमये लोके संस्थितः परमेश्वरः ॥
कथं रजस्तमोमिश्रविभूत्यां स्थितवान्प्रभुः ॥७३॥

रुद्र उवाच

त्रिपाद्विभूतौ भगवानीश्वर्या परमेश्वरः । नित्यमुक्त्यैकभोग्योऽसौ मोदते सततंविभुः ॥७४॥
तमीश्वरं महामायाप्रकृतिर्जगदाश्रया । कृताञ्जलिपुटा भूत्वा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥७५॥

महामायोवाच

नमस्ते त्रिजगद्धाम्ने नमस्ते विश्वरूपिणे । पुराणाय नमस्तुभ्यं जगदुत्पत्तिहेतवे॥७६॥
श्रीभूलीलाधिपतये नमो नारायणाय च । नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ॥७७॥
सर्वदेवस्य रूपाय विष्णवे जिष्णवे नमः । सहस्रमूर्तयेतुभ्य मनन्ताय नमोऽस्तुते ॥७८॥
अच्युतायाऽविकाराय शुद्धसत्त्वस्वरूपिणे । आदिमध्यान्तरहितस्वरूपाय नमोनमः ॥७९॥
नमो हिरण्यगर्भाय ज्ञानाय परमात्मने । सर्वभूतात्मने तुभ्यं सर्वभूताश्रयाय च ॥८०॥
ब्रह्मणे ज्योतिषे तुभ्यं नमस्ते विश्वरूपिणे। नमः शुचिषदे तुभ्यं हंसाय परमाय च ॥८१॥
संकर्षणाय रुद्राय सर्वभूतधराय च । हयग्रीवाय दीप्ताय कालाय हरये नमः ॥८२॥
नमस्ते यज्ञपुरुषहव्यकव्यस्वरूपिणे । नमः प्रजापते तुभ्यं सूर्याय शुभवर्चसे ॥८३॥
अग्नये हव्यभोक्त्रे च तस्मै यज्ञात्मने नमः । सवित्रे प्रसवित्रे च सर्गस्थित्यन्तहेतवे ॥८४॥

हे प्रभो ! आपने परम पद का वर्णन वहुत अच्छी तरह से किया नित्य विभूति में रहने वाले श्रीभगवान् प्रकृति मण्डल में किस प्रयोजन लीला करते हैं, उसका क्या कारण है ? शुद्ध सत्त्वमय लोक में रहने वाले श्रीभगवान् रजोगुण, तमोगुण मिश्रित इस लीला विभूति में क्यों रहें ॥७२-७३॥ **रुद्र ने कहा—** परमेश्वर श्री भगवान् लक्ष्मीजी के साथ नित्य विभूति में नित्यमुक्त जीवों के साथ सदा आनन्दित रहते हैं ॥७४॥ उन परमेश्वर की जगत् के आश्रय भूत महामाया प्रकृति ने हाथ जोड़कर स्तुति की ॥७५॥ **महामाया ने कहा—** त्रिपाद् विभूति धाम स्वरूप भगवान् को नमस्कार, विश्वरूप भगवान् को नमस्कार है । हे पुराण पुरुष भगवन् आपको नमस्कार है । जगत् की उत्पत्ति के कारण भूत आपको नमस्कार है ॥७६॥ श्रीदेवी, भूदेवी तथा नीलादेवी के स्वामी को नमस्कार है । भगवान् नारायण को नमस्कार है । वासुदेव, शार्ङ्ग धनुषधारी श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥७७॥ सर्वदेव शरीरक विष्णु भगवान् को नमस्कार है । सहस्र भूति तथा अनन्त भगवान् आपको नमस्कार है ॥७८॥ अच्युत, विकार रहित, शुद्ध सत्त्व स्वरूप, आदि मध्य तथा अन्त रहित स्वरूप वाले श्रीभगवान् को वार-बार नमस्कार है ॥७९॥ हिरण्यगर्भ, ज्ञान स्वरूप, परमात्मा, सर्वभूतात्मा तथा सभी भूतों के आश्रय आपको नमस्कार है ॥८०॥ ज्योति स्वरूप परं ब्रह्म तथा विश्व रूप आपको नमस्कार है । पवित्र चरणों वाले तथा परम हंस आपको नमस्कार है ॥८१॥ संकर्षण स्वरूप, रुद्रस्वरूप तथा सभी भूतों को धारण करने वाले आपको नमस्कार है । हयग्रीव स्वरूप, दीप्त तथा काल स्वरूप आपको नमस्कार हैं ॥८२॥ हव्य-कव्य स्वरूप यज्ञ पुरुष को नमस्कार है । हे प्रजापते ! तथा सूर्य स्वरूप आपको नमस्कार है ॥८३॥ उस हव्य का भोग करने वाले अग्नि स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है । सविता, प्रसविता एवं सृष्टि स्थिति एवं प्रलय के कारण भूत आपको नमस्कार है ॥८४॥

नमो वेदान्तवेद्याय चतुरात्मस्वरूपिणे। ब्रह्मणे विष्णवे तुभ्यं नमस्ते शङ्कराय च ॥८५॥
त्रिगुणाय नमस्तुभ्यं सर्गस्थित्यन्तहेतवे। निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सर्वात्मान्तरवर्तिने ॥८६॥
अव्यक्ताय नमस्तस्मै विष्णवे लोकसाक्षिणे ।
नारायणाय श्रीशाय पूर्णषाड्गुण्यमूर्त्तये ॥८७॥
अनन्तगुणपूर्णाय नमः सर्वार्थदायिने। नमस्ते वासुदेवाय पञ्चावस्थस्वरूपिणे॥८८॥
नमः पञ्चनवव्यूहभेदरूपाय ते नमः। नमो यज्ञवराहाय गोविन्दाय नमोनमः ॥८९॥
अविकाराय शुद्धाय हेयप्रतिभटाय च। नमो रामाय कृष्णाय नरसिंहाय ते नमः॥९०॥
केशवाय नमस्तुभ्यं जगतां क्लेशहारिणे। त्वमेव सर्वलोकानामाश्रयः पुरुषोत्तमः ॥९१॥
प्रसीद देवदेवेश सर्वलोकहिताय वै। मत्संस्थाश्चेतनास्सर्वे निराधारानिराश्रयाः॥९२॥
हीनदेहा निराकाराः सर्वेन्द्रियविवर्जिताः। सर्वानुष्ठानरहिताः सततं दुःखभोगिनः ॥९३॥
तेषां लोकांश्च देहांश्च दातुमर्हसिकेशव !। लीलाविभूतिसर्वज्ञ ! यथापूर्वं प्रकल्पय॥९४॥
चेतनाचेतनं कृत्सनं जगत्स्थावरजङ्गमम्। मया संमोहितं पश्य लीलार्थं परमेश्वर !॥९५॥
प्राकृताण्डं मया सार्धंसृजस्व पुरुषोत्तम !। धर्माऽधर्मौसुखंदुःखंतस्मिन्निक्षिप्यसंसृतौ ॥
मामधिष्ठायलीलां वै कर्तुमर्हसि माचिरम् ॥९६॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्तस्तयादेव्या मायया परमेश्वरः। तस्यां निवेश्य मायायां जगत्स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥९७॥

वेदान्त वेद्य तथा चार प्रकार के शरीर को धारण करने वाले आपको नमस्कार है । ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्कर स्वरूप आपको नमस्कार है ॥८५॥ त्रिगुण तथा संसार की सृष्टि स्थिति एवं लय को करने वाले निर्गुण तथा सभी भूतों की अन्तरात्मा आपको नमस्कार है ॥८६॥ अव्यक्त तथा लोक साक्षी भगवान् विष्णु को नमस्कार है सम्पूर्ण षाड्गुण्य सम्पन्न लक्ष्मीपति भगवान् नारायण को नमस्कार है ॥८७॥ अनन्त गुणों से परिपूर्ण तथा सभी अर्थों को प्रदान करने वाले पञ्चावस्था स्वरूप भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥८८॥ पाँच तथा नव व्यूह जिनके भेद हैं ऐसे आपको नमस्कार है । यज्ञ वाराह गोविन्द भगवान् को नमस्कार है ॥८९॥ विकार रहित, शुद्ध तथा अखिल हेय प्रत्यनीक राम, कृष्ण तथा नृसिंह रूप धारण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥९०॥ संसारी जीवों के क्लेश को मिटाने वाले भगवान् केशव को नमस्कार है । आप ही सभी लोकों के आश्रय पुरुषोत्तम हैं ॥९१॥ हे देवदेवेश सभी लोकों का कल्याण करने के लिए आप प्रसन्न हो जाइये । मेरे भीतर रहने वाले सभी जीव निराधार है निराश्रय हैं ॥९२॥ शरीर से रहित निराकार तथा सभी इन्द्रियों से रहित हैं । सभी अनुष्ठानों से रहित वे सदा दुःख भोगा करते हैं॥९३॥ हे केशव ! आप उन सवों को लोकों और देहों को प्रदान करें हे सर्वज्ञ भगवन आप लीला विभूति को पहले के ही समान प्रकाशित करें ॥९४॥ स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत् के चेतनों तथा अचेतनों को मैं आपकी लीला के लिए मोहित कर रखी हूँ ॥९५॥ हे पुरुषोत्तम ! प्राकृतिक ब्रह्माण्ड की मेरे साथ आप सृष्टि करें । उस सृष्टि में धर्म, अधर्म, सुख तथा दुःख को डालकर सृष्टि करें । आप शीघ्र ही मुझको अधिष्ठित करके लीला करें ॥९६॥ **श्रीमहादेवजी ने कहा—** इस प्रकार से उस माया देवी के कहने पर

योऽसौ प्रकृतिपुरुषः प्रोच्यते स इहाऽच्युतः ।
स एव भगवान्विष्णुः प्रकृत्यांप्रतिववेशह ॥९८॥
असृजत्प्रकृतौ ब्रह्म भूतादिमहदाह्वयम् । महतः पुरुषादस्मादहङ्कारोऽभ्यजायत॥९९॥
अहङ्कारात्तु वै तस्माद्गुणत्रयमजायत। त्रिभ्यो गुणेभ्यस्तन्मात्रामसृजद्विश्वभावनः ॥१००॥
तन्मात्रेभ्योऽभ्यजायन्त महाभूतानि तत्क्षणात् ।
आकाशः प्रथमं जातो ब्रह्मणस्त्रिगुणात्मनः ॥१०१॥
आकाशादभवद्वायुर्वायोरग्निरजायत । अग्नेरापः समुद्भूता अद्भ्यश्च पृथिवी मता ॥१०२॥
आकाशादीनि भूतानि सृष्टान्येकोत्तराणिवै । शब्दःस्पर्शश्चरूपं च रसोगन्धश्चतद्गुणाः ॥१०३॥
एकोत्तरगुणान्सृष्ट्वा तानादाय महाप्रभुः। तेषां विमिश्रणं कृत्वा जगदण्डं महत्तरम् ॥१०४॥
असृजत्तत्र लोकान्वै सङ्ख्याया ये चतुर्दश । ब्रह्मादित्रिदशांस्तस्मिन्नसृजत्पुरुषोत्तमः ॥१०५॥
दैवं तिर्यक्तथा मर्त्यं स्थावरं च चतुर्विधम्। तथा सृष्टो महासर्गस्तेन वै जलजेक्षणे ! ॥१०६॥
तत्रकर्मानुरूपेण त्रिदशादिषु योनिषु। संस्थिताः प्रकृतौ पूर्वआत्मनः प्रभवन्ति हि॥१०७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
परमव्योमादिवर्णनं नामाऽष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२८॥

परमेश्वर उस माया में प्रवेश करके जगत् की सृष्टि करना प्रारम्भ किए ॥९७॥ यह जो प्रकृति तथा पुरुष कहे जाते हैं । इसमें भी प्रकृति में अच्युत भगवान् विष्णु प्रवेश कर गये ॥९८॥ उन्होंने प्रकृति में भूतों के कारण भूत महत् तत्त्व की सृष्टि किया । महत तत्त्व और इस पुरुष से अहङ्कार की उत्पत्ति हुयी ॥९९॥ उस अहङ्कार से तीनों गुण उत्पन्न हुए । जगत् का कल्याण करने वाले श्रीभगवान् तन्मात्राओं की सृष्टि किए।।१००।। तन्मात्राओं से उसी क्षण पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति हुयी । त्रिगुणात्मक परंब्रह्म से सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति हुयी ॥१०१॥ आकाश से वायु की उत्पत्ति हुयी और वायु से अग्नि की उत्पत्ति हुयी। अग्नि से जल की उत्पत्ति हुयी और जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुयी ॥१०२॥ आकाश आदि भूत एक के बाद उत्तरोत्तर क्रमशः उत्पन्न हुए । उन पञ्चमहाभूतों के क्रमशः उत्तरोत्तर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुण हुए ॥१०३॥ एकोत्तर गुणों की सृष्टि करके महाप्रभु उन पञ्चमहाभूतों को लेकर उन सबों को परस्पर में पञ्चीकरण प्रक्रिया से मिलाकर अत्यन्त महान् जगत् रूपी ब्रह्माण्ड ॥१०४॥ की सृष्टि किए । उसमें भी वे चौदह लोकों की सृष्टि किए । उसके भीतर भगवान् ने ब्रह्मा आदि देवताओं की सृष्टि की॥१०५॥ उन्होंने देवता, तिर्यक् (पशु-पक्षी) मनुष्य तथा स्थावर इस तरह से चार प्रकार की सृष्टि किए। हे कमल के समान नेत्रों वाली पार्वति ! उसके द्वारा उन्होंने महासर्ग की सृष्टि की ॥१०६॥ पहले प्रकृति में ही स्थित जीवों के पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार देवता आदि योनियों की सृष्टि किए ॥१०७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमा महेश्वर संवाद के अन्तर्गत परम व्योम आदि के वर्णन स्वरूप दो सौ अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२८।।

दो सौ उनतीसवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

विस्तरेण ममाऽऽख्याहिदेवसर्गमनुत्तमम्। ब्रह्मादित्रिदिवश्रेष्ठाः कथं जाताः सनातनाः ॥
ईश्वरस्यावतारांश्च विस्तरेण वदस्व मे ॥१॥

रुद्र उवाच

आकाशानितलेजोम्बुभुवः सृष्टायथाक्रमम्। तासांमध्येऽसृजद्ब्रह्मा अगाधजलमर्णवम् ॥२॥
अस्मिन्नेकार्णवीभूते जले मायावटच्छदे। आदाय सर्वभूतानि योगनिद्रां ययो हरिः ॥३॥
स जगत्स्रष्टुकामस्तु योगनिद्रामुपेयिवान्। तया रेमे चिरं कालं मायया मधुसूदनः ॥४॥
तस्यां तु जनयामास कालात्मानमनुत्तमम्। कलाकाष्ठादिभूता ये पक्षमासादिरूपिणः ॥५॥
तस्मिन्काले हरेर्न्नाभिपङ्कजं मुकुलाकृति। विकसत्सर्वजगतो बीजभूतां सुवर्चसम् ॥६॥
उदस्थादुदभूत्तत्र ब्रह्मा च सुमहामतिः। स जगत्स्रष्टुकामस्तु रजोगुणविचोदितः ॥
तुष्टाव योगनिद्रायां शयानं परमेश्वरम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यं सर्गस्थित्यन्तहेतवे। जगद्भूषणभूताय श्रीमते विष्वरूपिणे ॥८॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ॥९॥
प्रधानकालरूपाय पुरुषायेश्वराय च। नमः प्रपञ्चरूपाय निष्प्रपञ्चस्वरूपिणे ॥१०॥

उमा महेश्वर संवाद के अन्दर त्रिपाद् विभूति में भगवान् विष्णु के व्यूहों के भेदों का वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— आप मुझे विस्तार पूर्वक सर्वश्रेष्ठ सृष्टि को बतलायें सनातन देवताओं में श्रेष्ठ तथा सात ब्रह्मादि देवताओं की कैसे उत्पत्ति हुयी इसके अतिरिक्त श्रीभगवान् के अवतारों को आप विस्तार के साथ बतलायें ॥१॥ **रुद्र ने कहा—** आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथिवी की सृष्टि क्रमशः हुयी। उन सबों में ब्रह्माजी ने अगाध जल से भरे हुए समुद्र की सृष्टि किए ॥२॥ इसके एकार्णव हुए जल में मायावट के पत्ते पर सभी भूतों को लेकर श्रीभगवान् योगनिद्रा में चले गये ॥३॥ जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से उन्होंने योगनिद्रा का आश्रय लिया। उस माया के साथ भगवान् मधुसूदन चिरकाल तक रमण किए ॥४॥ उसके गर्भ से वे काल को उत्पन्न किए। उस काल के ही कला, काष्ठा आदि से लेकर मासा रूपी काल में ही श्रीहरि के नाभि में विद्यमान कमलकलि के आकार से विकसित हुआ सम्पूर्ण जगत् के बीज स्वरूप तथा सुन्दर तेजः सम्पन्न था ॥५-६॥ जल में ही स्थित उस पर महामति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। वे जगत् की सृष्टि करने की कामना वाले थे और रजोगुण से प्रेरित होकर योगनिद्रा में सोये हुए श्रीभगवान् की स्तुति किए ॥७॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** सृष्टि ! स्थिति और संहार के कारणभूत भगवान् विष्णु को नमस्कार है। वे जगत् के भूषण स्वरूप हैं तथा ऐश्वर्य सम्पन्न एवं विश्वशरीरक हैं ॥८॥ गौ तथा ब्राह्मणों का कल्याण करने वाले ब्रह्मण्यदेव श्रीभगवान् को नमस्कार है। जगत् का कल्याण करने वाले भगवान् गोविन्द भगवान् कृष्णा को बारम्बार नमस्कार है ॥९॥ प्रधान तथा काल स्वरूप, पुरुष ईश्वर को नमस्कार

नारायणाय विश्वाय विश्वेशाय नमोनमः। श्रीभूनीलाधिपतये ब्रह्मणे परमात्मने ॥११॥
नमोऽस्तु वासुदेवाय विश्वरूपाय शार्ङ्गिणे। त्रयीनाथाय हरये विश्वनाथस्वरूपिणे ॥१२॥
अनन्तकल्याणगुणपरिपूर्णाय ते नमः। जगच्च सर्वं स्वपिति त्वयि सुप्ते जगन्मये॥१३॥
वृत्तं सर्वं जगन्नाथ ! प्रपञ्चे सचराचरम्। त्वमेव कारणं कर्त्ता कार्यं च त्रिगुणोद्भवम्॥१४॥
स्रष्टा ध्याता विधाताच त्वमेव परमेश्वरः। जागर्षि शुद्धसत्त्वस्थस्तव निद्राकुतः प्रभो ।
देव ! त्वयि स्थिता लोकाः समाधिष्ठाः सनातनः ॥१५॥

शिव उवाच

एवमुक्तोहृषीकेशो ब्रह्मणा परमेश्वरः। उत्तस्थौ शयनात्तस्माद्विमुक्तो योगनिद्रया ॥१६॥
नियम्य योगिनद्रां तां जगत्स्रष्टुं प्रचक्रमे। अचिन्त्यस्तत्क्षणाद्देवो जगतां प्रभुरच्युतः ॥१७॥
चिन्तयित्वा जगत्सर्वमसृजत्स पुमांस्ततः। लोकान्सर्वांस्तदाह्यप्सु गतमण्डंहिरण्मयम् ॥१८॥
सप्तद्वीपान्समुद्रान्तान्मेदिनीभूधरैर्युतान् । सहैकाण्डकटाहेन नाभिपद्मेऽसृजत्प्रभुः ॥१९॥
तदण्डमध्ये चास्थानमीश्वरःकृतवान्हरिः। अथानारायणं कस्तु दध्यावथात्मचेतसा ॥२०॥
ध्यानान्तेतस्यभालात्तु स्वेदबिन्दुरजायत। सबिन्दुर्बुद्बुदाकारः पृथिव्यामतपत्क्षणात् ॥२१॥
तस्मात्तुबुद्बुदात्सोऽहमुत्पन्नोऽस्मिवरानने ! । त्र्यक्षस्त्रिशूलस्तोऽहंजटामुकुटमण्डितः ॥२२॥
किङ्करोमीति देवेशमवोचं विनयान्वितः। ततो नारायणो देवो मामित्याह मुदान्वितः ॥२३॥

है। प्रपञ्च शरीरक तथा प्रपञ्च से रहित श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥१०॥ विश्व स्वरूप तथा विश्व के स्वामी नारायण को बार-बार नमस्कार है। श्रीदेवी, भूदेवी और नीला देवी के पति परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है ॥११॥ विश्वरूप, शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले भगवान् वासुदेव को नमस्कार है। वेदत्रयी के स्वामी विश्वनाथ स्वरूप श्रीहरि को नमस्कार है ॥१२॥ अनन्त कल्याण गुणों से परिपूर्ण आपको नमस्कार है। जगत् स्वरूप आपके सो जाने पर सम्पूर्ण जगत् सो जाता है ॥१३॥ हे जगन्नाथ ! चराचरात्मक प्रपञ्च में रहने वाला सब कुछ विनष्ट हो गया है। आप ही, कारण, कर्त्ता तथा त्रिगुण से उत्पन्न कार्य हैं॥१४॥ सृष्टि करने वाले, ध्यान करने वाले तथा विधाता हे परमेश्वर आप ही हैं। शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न त्रिपाद् विभूति में आप सदा जागते रहते हैं। आपको निद्रा कैसे सम्भव हैं ? हे देव ! आप में ही सभी लोक विद्यमान हैं वे समाधिष्ठ तथा सनातन हैं ॥१५॥ **शिवजी ने कहा—** इस तरह से ब्रह्माजी द्वारा स्तुति किए जाने पर परमेश्वर योगनिद्रा से परित्यक्त होकर उस शय्या से जग गये ॥१६॥ वे योगनिद्रा को नियमित करके जगत् की सृष्टि करना प्रारम्भ किए। संसारियों के द्वारा अचिन्त्य भगवान् अच्युत उसी क्षण सृष्टि करना प्रारम्भ किए ॥१७॥ उसके पश्चात् अपने सत्य सङ्कल्प मात्र से सम्पूर्ण जगत् की वे सृष्टि किए। उस समय जल में डूबे हुए हिरण्मय ब्रह्मा तथा सभी लोकों की सृष्टि वे किये ॥१८॥ सातो द्वीपों समुद्र पर्यन्त पर्वतों से युक्त पृथिवी की अपने नाभिकमल पर एक कटाह से युक्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि किए ॥१९॥ उस ब्रह्माण्ड के भीतर श्री भगवान् ने अपना स्थान बनाया। उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् का आत्मा रूप से अन्तःकरण से ध्यान किया ॥२०॥ ध्यान के बीच में उनके ललाट से स्वेद का बून्द उत्पन्न हुआ। वह बुद्बुद के आकार वाला बून्द उसी समय पृथिवी पर उत्पन्न हुआ ॥२१॥ हे श्रेष्ठ मुख वाली उस बूंद से मैं तेन नेत्रों वाला त्रिशूल हाथ में लिए हुए एवं जटा रूपी मुकुट से अलंकृत उत्पन्न हुआ ॥२२॥ मैंने

कर्त्ताऽसि जगतो रुद्र ! संहारं भीमदर्शनम् ।
साक्षात्सङ्कर्षणांशेन संहारार्थे वरानने ! ॥२४॥
तस्मान्नारायणाद्देवि ह्युत्पन्नोऽस्मिभयङ्करः । नियोज्य मां तु संहारे पुनरेव जनार्दनः ॥२५॥
नेत्राभ्यामसृजच्चन्द्रसूर्यौ ध्यान्तापहारिणौ। वायुं दिशश्च श्रोत्राभ्यामिन्द्राग्नी मुखतोऽसृजत्॥२६॥
नासाभ्यांवरुणं मित्रमसृजत्पङ्कजेक्षणः । बाहुभ्यामखिलान्देवान्ससाध्यान्समरुद्गणान् ॥२७॥
समस्तरोमकूपेभ्यो रत्नान्योषधयस्तथा । त्वचि शैलान्समुद्रांश्च गवाद्याः पशवस्तथा ॥२८॥
मुखतोब्राह्मणः सृष्टोबाहुभ्यां क्षत्रियस्तथा। ऊर्वोर्वैश्यस्ततः पद्भ्यां शूद्रश्चैवमजायत ॥२९॥
एवं सृष्ट्वा जगत्सर्वमचेतनमवस्थितम्। विश्वरूपेणदेवेशो यस्यान्तरमधिष्ठितः ॥३०॥
शक्तया विनाहरेस्तस्य नोन्मेषोविद्यते यतः। तस्मात्सर्वजगत्प्राणो विष्णुरेवसनातनः ॥३१॥
स एवाऽव्यक्तरूपः सन्परमात्मा व्यवस्थितः ।
सर्गस्थितिलयं ब्रह्मा स्वयमेव प्रवर्त्तते ॥३२॥
षाड्गुण्यपरिपूर्णोऽसौ वासुदेवः सनातनः । त्रिगुणादात्मनो रूपं चतुर्द्धा कुरुते जगत् ॥३३॥
प्रद्युम्नमूर्तिर्भगवान्सर्वैश्वर्यसमन्वितः । विधेः प्रजापतीनां च कालस्य च जनस्य च ॥३४॥
अन्तर्यामित्वमापन्नः सर्गं सम्यक्करोति हि। सेतिहासांस्ततो वेदान्ददौ तस्मै महात्मने॥३५॥
प्रद्युम्नस्यांशभागोऽसौब्रह्मा लोकपितामहः । जगत्सर्गस्थितिं सर्वं प्रकरोत्यंशसम्भवः ॥३६॥

नम्र होकर श्रीभगवान् से पूछा कि मैं क्या करूँ ? उससे प्रसन्न होकर भगवान् नारायण ने मुझसे कहा॥२३॥ हे भीम दर्शन रुद्र तुम जगत् का संहार करने का काम करोगे हे सुन्दरि ! साक्षात् सङ्कर्षण का अंश होने के कारण भगवान् ने मुझे संहार करने के लिए कहा ॥२४॥ उन भगवान् नारायण से ही भयङ्कर मैं उत्पन्न हुआ । मुझे संहार कार्य में लगाकर भगवान् जनार्दन ॥२५॥ अपने दोनों नेत्रों से अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य चन्द्रमा की सृष्टि किए । उन्होंने अपने दोनों कानों से वायु तथा दिशाओं की सृष्टि की उसके पश्चात् उन्होंने मुख से इन्द्र तथा अग्नि की सृष्टि की ॥२६॥ कमलनयन श्रीभगवान् ने अपने नाकों से वरुण तथा मित्र देवता की सृष्टि की । उनहोंने अपनी दोनों भुजाओं से साध्य देवों तथा मरुद्गणों के साथ सभी देवताओं की सृष्टि की ॥२७॥ अपने सभी रोमकूपों से उन्होंने रत्नों तथा अन्नों की सृष्टि की । त्वचा से उन्होंने पर्वतों तथा समुद्रों को बनाया तथा गौ आदि पशुओं की सृष्टि की ॥२८॥ अपने मुख से ब्राह्मण की सृष्टि की दोनों भुजाओं से क्षत्रियों की ऊरू से वैश्य वर्णों की तथा चरणों से शूद्र वर्ण की सृष्टि की॥२९॥ इस तरह सम्पूर्ण अचेतन जगत् के भीतर श्रीभगवान् विश्वरूप से प्रवेश कर गये ॥३०॥ भगवान् की शक्ति के बिना चूकि कोई अपनी आँख भी नहीं खोल सकता है इसीलिए सम्पूर्ण जगत् के प्राण भगवान् विष्णु ही हैं ॥३१॥ वे ही परमात्मा अव्यक्त रूप से रहकर जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय ब्रह्म शरीरक होकर करते हैं ॥३२॥ भगवान् वासुदेव षाड्गुण्य से परिपूर्ण हैं । त्रिगुण के ही कारण वे अपने रूप को चार रूप में करते हैं ॥३३॥ प्रद्युम्न शरीरक भगवान् सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं । वे ब्रह्माजी, प्रजापतियों, काल तथा मनुष्यों के अन्तर्यामी बन कर अच्छी तरह से जगत् की सृष्टि करते हैं । उसके पश्चात् उन्होंने इतिहासों एवं वेदों का उपदेश ब्रह्माजी को किया ॥३४-३५॥ लोक पितामह ब्रह्माजी प्रद्युम्न

अनिरुद्धश्च भगवाञ्छक्तितेजःसमन्वितः । मनूनां पार्थिवानां च कालस्यच जनस्यच ॥३७॥
स्थितिं करोति भगवानन्तर्यामित्वमस्थितः । सङ्कर्षणो महाविष्णुर्विद्याबलसमन्वितः ॥३८॥
कालस्य सर्वभूतानां रुद्रस्य यमस्यच । अन्तर्यामित्वमास्थाय जगत्संहरते प्रभुः ॥३९॥
इत्यन्तर्याम्यवस्थायामन्तर्यामित्वमात्मनः । मत्स्यःकूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ॥४०॥
रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्की च ते दश ।
एते तु विभवावस्थाब्रह्मणः परमात्मनः ॥४१॥
नृसिंहरामकृष्णेषु षाड्गुण्यं परिकीर्तितम् । परावस्थातु देवस्य दीपादुत्पन्नदीपवत् ॥४२॥
व्यूहावस्थां हरेरस्य शृणुष्व गिरिजे शुभे ! ।
वैकुण्ठं परमं लोकं विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥४३॥
श्वेतद्वीपं स्वरूपं तु क्षीरसागरमुत्तमम्। एवं चतुर्द्धा व्यूहन्तु सम्यगुक्तं महर्षिभिः ॥४४॥
जलावरणमध्येतु वैकुण्ठं कारणं शुभम् । कोटिवैश्वानरप्रख्यं सर्वं धर्मवदव्ययम् ॥४५॥
आमोदसान्तानिकादिलोकैर्बहुभिरावृतम् । नानामणिमयं दिव्यं विमानकोटिभिर्युतम् ॥४६॥
यदुक्तं परमं धाम तादृग्लक्षणसंस्थितम् । नानामणिमयं दिव्यं विमानकोटिभिर्युतम् ॥४७॥
मध्ये वेदवतीनाम पुरं रम्यमनुत्तमम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्रकारतोरणम् ॥४८॥
चण्डादिद्विद्वारपालाद्यैः कुमुदाद्यैश्च रक्षितम् । नानामणिमयैर्दिव्यैर्गृहपङ्क्तिभिरावृतम् ॥४९॥
विततं पञ्चपञ्चाशद्योजनैश्च समन्ततः । सहस्रयोजनौत्तङ्गैः प्रासादैः कोटिभिर्वृतम् ॥५०॥

भगवान् के अंश है । उनके अंश से उत्पन्न वे जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार को करते हैं ॥३६॥ भगवान् अनिरुद्ध शक्ति एवं तेज इन दो गुणों से सम्पन्न हैं । वे मनुओं, राजाओं, काल तथा मनुष्यों की स्थिति (रक्षा) करने का काम अन्तर्यामी रूप से करते हैं । सङ्कर्षण नामक महाविष्णु विद्या (ज्ञान) और बल से युक्त हैं । वे काल रूप से सभी जीवों, रुद्र और यम के अन्तर्यामी रूप से जगत् का संहार करते हैं॥३७-३९॥ इस तरह से अन्तर्यामित्व को अपनाकर श्रीभगवान् मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, श्रीराम, परशुराम, बलराम कृष्ण और कल्की इन दश अवतारों को धारण करते हैं । यह श्रीभगवान् की विभवावस्था है ॥४०-४१॥ नृसिंह, श्रीराम और कृष्ण इन तीनों में षाड्गुण्य बतलाया गया है । श्रीभगवान् की परावस्था तो दीप से उत्पन्न दीप के समान है ॥४२॥ हे पार्वति ! श्रीभगवान् की व्यूहावस्था को तुम सुनो । वैकुण्ठ नामक सर्वश्रेष्ठ लोक में श्रीविष्णु लोक है । वह सर्वोत्तम है ॥४३॥ श्वेत द्वीप स्वरूप क्षीर सागर है इस तरह से महर्षियों ने चार प्रकार का श्रीभगवान् का व्यूह रूप बतलाया है ॥४४॥ जल रूपी आवरण के मध्य में सम्पूर्ण जगत् का कारण वैकुण्ठ है । वह करोड़ों अग्नि के समान देदीप्यमान और सम्पूर्ण धर्म के समान अव्यय है ॥४५॥ वह आमोद तथा सान्तानिक आदि बहुतसे लोकों से आवृत है। अनेक मणिमय वह दिव्य तथा करोड़ों विमानों से युक्त है । परंधाम का जो वर्णन कर चुका हूँ यह उसी के समान लक्षणों से सम्पन्न है । उस अनेक रत्नों से देदीप्यमान वैकुण्ठ नगर ॥४६-४७॥ के बीच में वेदवती नाम की मनोहर नगरी है उसके चार द्वार हैं और उसके प्रकार और तोरण सुवर्ण निर्मित हैं ॥४८॥ चण्ड आदि द्वारपाल तथा कुमुद आदि गण उसकी रक्षा करते हैं । अनेक मणि निर्मित दिव्य गृह पंक्तियों

आरूढयौवनैर्दिव्यैः पुम्भिः स्त्रीभिश्च शोभितम् ।
स्त्रियश्च पुरुषांश्चाऽस्मिन्सर्वलक्षणशोभिताः ॥५१॥
समरूपाश्च श्रीविष्णोः सर्वालङ्कारभूषिताः । दिव्यस्रग्वस्त्रसच्छन्ना दिव्यचन्दनभूषिताः ॥५२॥
मोदन्ते तत्र देवेशभक्तया त्वात्मामनोरमे । मन्त्राष्टाहरसंसिद्धा भक्तया षोडशरूपया ॥५३॥
वृतास्तत्पदमाविश्य मोदन्ते मनसीप्सितम् । गत्वाऽस्मिन्न निवर्तन्ते विष्णुना सह संस्थिताः॥५४॥
अविच्छिन्नात्मनातेवै विष्णुनासङ्गताःशुभाः । तत्समानसुखंनित्यंप्राप्नुवन्तिमनीषिणः ॥५५॥
यत्र तत्र हरेर्लोकानाविश्य शुभचेतसः। नाप्नुवन्ति पुनः स्वर्गं स्वर्गस्था इव जन्तवः ॥५६॥
यथा सौमित्रिभरतौ यथा संकर्षणादयः। तथातेऽपिचजायन्ते सत्यलोके यथेच्छया ॥५७॥
पुनस्तेनैव यास्यन्ति तत्पदं शाश्वतं परम्। न कर्मबन्धनं जन्म वैष्णवानां च विद्यते ॥५८॥
विष्णोरनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिणः। न दास्यमपरेशस्य बन्धनं परिकीर्तितम् ॥५९॥
सर्वबन्धननिर्मुक्ता हरिदासा निरामयाः। आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावृत्तिलक्षणाः ॥६०॥
कर्मबन्धमया दुःखमिश्रासंख्यभयप्रदाः। बह्वासासफला देवि ! जनिनाशकहेतवः ॥६१॥
स्वर्गेऽपि भोगस्तु नृणां विषमिश्राशनं यथा ।
स्वर्गसंस्थान्नरान्दृष्ट्वाक्षीणेकर्मणिदेवताः ॥६२॥
कुपिताः पातयन्त्येव संसृतो कर्मबन्धने। तस्मात्स्वर्गसुखं देवि ! बह्वायाससाधनम् ॥६३॥

से वह घिरा है ॥४९॥ वह सब ओर से पचपन योजनों में फैली है । वह हजार योजन ऊँचे करोड़ों भवनों से आवृत है ॥५०॥ वह नगरी पूर्ण जवान स्त्रियों तथा पुरुषों से सुशोभित है । इस नगर में सभी स्त्री पुरुष सभी लक्षणों से सम्पन्न हैं ॥५१॥ वे सबके सब भगवान् विष्णु के समान रूप वाले तथा सभी अलङ्कारों से भूषित हैं । वे सब दिव्य वस्त्र, माला को धारण किए हुए और दिव्य चन्दन से भूषित हैं ॥५२॥ वे सब अपने मनोहर श्रीभगवान् की भक्ति से आनन्दानुभव करते हैं । अष्टाक्षर मन्त्र उनको अच्छी तरह से सिद्ध है तथा सबके सब सोलह प्रकार की भक्ति से युक्त हैं ॥५३॥ वे सब अपने मन के लिए अभिप्रेत श्रीभगवान् के चरणों में मृत्यु के पश्चात् प्रवेश करके आनान्दित होते हैं । इस लोक में गये हुए जीव पुनः इस संसार में नहीं आते हैं । वे सब भगवान् विष्णु के साथ रहते हैं ॥५४॥ वे सब सदा अपने आत्मा स्वरूप भगवान् विष्णु के साथ रहते हैं । श्रीभगवान् के ही समान वे मनीषी सदैव सुख को प्राप्त करते हैं ॥५५॥ जिस किसी भी श्रीहरि के लोकों को प्राप्त करके वे जीव पुनः स्वर्ग के जीवों के समान स्वर्ग को नहीं प्राप्त करते हैं ॥५६॥ लक्ष्मीजी तथा भरतजी के समान तथा सङ्कर्षण आदि के समान ही वे भी अपनी इच्छा के अनुसार सत्यलोक में उत्पन्न होते हैं ॥५७॥ फिर वे उसी लोक से उस शाश्वत पद को प्राप्त करते हैं कर्मों के बन्धन जन्य जन्म वैष्णवों के नहीं होते हैं ॥५८॥ भगवान् विष्णु के अनुचर होने को ही मनीषियों ने मोक्ष कहा है । श्रीभगवान् से भिन्न की दासता को संसार का बन्धन कहा गया है॥५९॥ श्रीहरि के दास सभी बन्धनों से रहित और निरामय होते हैं । ब्रह्माजी के लोक से लेकर भूलोक पर्यन्त के जीव इस संसार में पुनः आते हैं । वे सभी लोक कर्म के बन्धनमय, दुःख मिश्रित तथा असंख्य भय को प्रदान करने वाले हैं । हे देवि वे बहुत अधिक आयास रूपी फल को देने वाले तथा जन्म तथा मृत्यु प्रदान करने वाले हैं । स्वर्ग में भी मनुष्यों को उसी तरह भोगों की प्राप्ति होती है जैसे विष मिला हुआ

अनित्यं कुटिलं दुःखमिश्रं योगी परित्यजेत् ।
यज्ञदानतपःकर्म बहुक्लेशमयं त्वजेत् ॥६४॥
सततं संस्मरेद्विष्णुं सर्वदुःखौघनाशनम्। नामोच्चारणमात्रेण प्राप्नुवन्ति परं पदम्॥६५॥
तस्मात्तु वैष्णवं लोकं गौरि ! सम्प्रार्थयेत्सुधीः ।
भक्त्या त्वनन्यया देवं भजेत करुणाम्बुधिम् ॥६६॥
ससर्वज्ञानगुणवान्रक्षत्येव न संशयः। तस्मादष्टाक्षरं मन्त्रं जप्त्वा सुखतरं शुभम् ॥६७॥
सम्प्राप्नोति परं लोकं वैष्णवं सर्बकामदम् । तस्मिन्मणिमये तल्पे सहस्त्रसूर्यरश्मिनि॥६८॥
विमाने शुशुभे दिव्ये संस्थितो भगवान्हरिः ।
तत्र चाधारशक्त्त्यादिधृते पीठे हिरण्यमये ॥६९॥
नानारत्नमये दिव्ये नानावर्णसमन्विते। तस्मिन्नष्टदले पद्मे मन्त्राक्षरयदे शुभे ॥७०॥
कर्णिकायां सुरम्यायांलक्ष्मीबीजशुभाक्षरे । तस्मिन्बालार्कसाहस्त्रकोटितुल्यप्रभान्वितः ॥७१॥
दिव्ये नारायणः श्रीमानासीनः पङ्कजासने। तस्य दक्षिणकेपार्श्वे जगन्माताहिरण्मयी ॥७२॥
गृहीत्वा चामरान्दिव्यान्दिव्यमाल्यविभूषणा ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना दिव्या कल्पविभूषिता ॥७३॥
वसुपात्रं मातुलुङ्गं स्वर्णपद्मं धृतं करैः। वामतः पृथिवी देवी नीलोत्पलदलद्युतिः ॥७४॥
नानाभरणसंयुक्ता विचित्राम्बरभूषिता। सा धृत्वा चोद्र्ध्वबाहुभ्यांरम्यंरक्तोत्पलद्वयम् ॥७५॥

भोजन होता है । स्वर्ग में स्थित मनुष्यों को देखकर देवता उनके कर्म के क्षीण हो जाने पर ॥६०-६२॥ क्रोध करके कर्म बन्धनमय उन्हें संसार में गिरा देते हैं अतएव हे देवि ! स्वर्ग में प्राप्त होने वाला सुख बहुत अधिक प्रयास का साधन है ॥६३॥ अतएव अनित्य, कुटिल तथा दुःख मिश्रित स्वर्ग सुख को योगिजन त्याग देते हैं । यज्ञ, दान, तपस्या आदि कर्मों को बहुत अधिक क्लेशमय होने के कारण त्याग देना चाहिए ॥६४॥ सम्पूर्ण दुःख समूह को विनष्ट करने वाले भगवान् विष्णु का सदा स्मरण करते रहना चाहिए । केवल भगवान् के नामों का स्मरण करने मात्र से मनुष्य परम्पद को प्राप्त करते हैं ॥६५॥ अतएव हे गौरि ! विद्वानों को चाहिए कि वे सदा भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करने की प्रार्थना करें। अनन्या भक्ति के द्वारा करुणा सागर श्रीभगवान् का भजन करना चाहिए ॥६६॥ सर्वज्ञ गुण के द्वारा भगवान् विष्णु निश्चित रूप से रक्षा करते हैं । अतएव शुभ तथा सुख स्वरूप अष्टाक्षर मन्त्र को जप कर ॥६७॥ मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले विष्णु लोक को प्राप्त करता है । उस मणिमय हजारों सूर्य की कान्ति के समान शय्या पर आधार शक्ति आदि के द्वारा धारण किए गये सिंहासन पर दिव्य विमान पर स्थित भगवान् श्रीहरि सुशोभित होते हैं ॥६८-६९॥ अनेक रत्नमय तथा अनेक वर्णों से युक्त उस अष्टदल वाले कमल पर मन्त्र के अक्षर रूपी दल पर ॥७०॥ मनोहर कर्णिका में शुभाक्षर लक्ष्मीजी के बीज मन्त्र हैं । उस पर हजारों बाल सूर्य के समान कान्ति से युक्त ॥७१॥ ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् नारायण कमल के आसन पर बैठे हैं । उनके दाहिने भाग में जगन्माता लक्ष्मीजी ॥७२॥ दिव्य चामरों को धारण करके दिव्य माला से विभूषित तथा सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न तथा दिव्य कल्प से समलंकृत ॥७३॥ वे अपने हाथ में वसुपात्रमातुलुङ्ग तथा स्वर्ण पात्र धारण करके स्थित हैं । भगवान् के वामभाग में नीलकमल के

इतराभ्यां धृतं देव्याधानपात्रंशुकन्तथा। गृहीत्वा चामरान्दिव्याञ्छक्तयोविमलादिका: ॥७६॥
दलाग्रेषु समासीना: सर्वलक्षणशोभिता: । तासां मध्ये समासीनो भगवानच्युतोहरि: ॥७७॥
शङ्खचक्रगदापद्मपाणिभिर्दिव्यभूषणै: । केयूराङ्गदहाराद्यैर्भूषणैरूपशोभित: ॥७८॥
प्रातरुद्यत्सहस्रांशुकुण्डलाभ्यां विराजित: । पूर्वोक्तैस्त्रिदशैर्नित्यै: सेवित: परमेश्वर: ॥७९॥

आस्ते वैकुण्ठनगरे नित्ये सत्ये च भोगवान् ।
श्रीमदष्टाक्षरं मन्त्रं सिद्धानां वै मनीषिणाम् ॥८०॥

गम्यं तद्वैष्णवं लोकं नेतरेषां कथञ्चन। इत्येवं प्रथमं व्यूहं कथितं ते वरानने ॥८१॥

द्वितीयं वैष्णवं लोकं शृणु वक्ष्यामि सुव्रते ! ।
योऽयं सत्यइतिख्यातो लोकाग्र्यो वैष्णव: स्मृत: ॥८२॥
तं लोकं विपुलं पुण्यं शुद्धं सत्त्वमयं शुभम् ।
मध्याह्नसूर्यसाहस्रयुगपद्भासितं तदा ॥८३॥
कल्पान्तेऽपिन न लीयेत तत्त्वलोकं महत्तरम् ।
मम ब्रह्मादिदेवानां न द्रष्टुमपि शक्यते ॥८४॥

स्वर्णकल्पद्रुमवनै: परिपूर्णं समन्तत: । सुधाम्बुपरिपूर्णाभिदीर्घिकाभि: समन्वितम् ॥८५॥
स्वर्णरत्नमयैर्दिव्यै: पङ्कजैरुपशोभितम् । ज्वलदग्निनिभैर्दिव्यैर्भूषणै: कोटिभिर्वृतम् ॥८६॥

निरन्तरं सामभिश्च कूजितै: कोकिलादिभि: ।
ऊह्यमानैर्गन्धवृक्षै: पुष्पकैरपिशोभितम् ॥८७॥

समान कान्ति वाली भू देवी ॥७४॥ अनेक आभरणों से युक्त विचित्र वस्त्रों से अलंकृत होकर स्थित हैं । वे अपने ऊपर की दोनों भुजाओं में लाल कमल धारण की हुयी हैं ॥७५॥ वे देवी अपने दोनों दूसरे हाथों में धान पात्र तथा शुक को धारण की हैं । दिव्य चामरों को धारण करके विमला आदि शक्तियाँ ॥७६॥ सभी लक्षणों से सम्पन्न वे कमल दल के अग्रभागों पर बैठी हैं । उन सबों के बीच अच्युत भगवान् श्रीहरि बैठे हैं ॥७७॥ वे अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए हैं । वे केयूर अङ्गद तथा हार आदि दिव्य भूषणों को धारण किए हुए हैं ॥७८॥ वे प्रात: काल में उदित सूर्य के समान चमकते हुए दिव्य कुण्डल से सुशोभित हैं । वे भी श्रीभगवान् पूर्वोक्त देवताओं से सदा सेवित हैं ॥७९॥ वे नित्य तथा सत्य वैकुण्ठ नगर में भोग सम्पन्न हैं । श्रीमदष्टाक्षर मन्त्र से ही सिद्ध मनीषियों के लिए भी वह वैष्णव लोक प्राप्य है अन्य मन्त्र से किसी भी हालत में नहीं । हे वरानने पार्वति इस तरह से मैंने तुमको प्रथम व्यूह को बतलाया ॥८०-८१॥ हे सुव्रते ! मैं अब दूसरे वैष्णव लोक को बतलाता हूँ सुनो । जो यह सत्य नाम से कहा गया है वह श्रेष्ठ वैष्णव लोक है ॥८२॥ वह लोक विस्तृत पवित्र और सत्त्वमय है । वह सदा मध्याह्न कालिक हजारों सूर्य के समान प्रकाशित होता रहता है ॥८३॥ वह तत्त्वलोक कल्प के अन्त में भी लीन नहीं होता है । ब्रह्मा आदि देवता भी ठसको नहीं देख सकते हैं ॥८४॥ वह चारो ओर से स्वर्णिम कमल के वन से परिपूर्ण है । वह अमृत जल से परिपूर्ण बावलियों से युक्त है ॥८५॥ वह सुवर्ण तथा रत्नमय कमलों से सुशोभित है । जलती हुयी अग्नि के सदृश करोड़ों आभूषणों से वह घिरा है॥८६॥

ऊनषोडशवर्षाब्दैर्दिव्यनारीनरैर्वृतम् । सर्वलक्षणशोभाढ्यैर्दिव्यकल्पविभूषणैः ॥८८॥
तत्र प्रदेशे रम्येषु देशेषु कमलापतिम् । मुदितैः पतिभिः सार्द्धमर्चयन्ति स्म योषितः ॥८९॥
तत्प्रसादोपलभ्यं वै सुखमश्नन्ति सर्वदा । गायन्ति परमानन्दं कृष्णस्य चरितं महत् ॥९०॥
पद्मेक्षणाः पद्महस्ताः पद्मया सदृशःशुभाः । दिव्यस्रग्वसनोपेताः क्रीडन्तिस्मसुयोषितः ॥९१॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरा भूषणभूषिताः । स्रग्विणः पीतवासनाः पुरुषास्तत्र संस्थिताः ॥९२॥
अन्योन्यस्पर्शनात्तत्र स्त्रीपुंसोः क्रीडमानयोः । भवत्यनुदिनं वृद्धं हरिभक्तिसुधारसम् ॥९३॥
तन्मध्येऽन्तःपुरं रम्यं वासुदेवस्य शोभितम् । चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमोदकसंयुतम् ॥९४॥
नानापुष्पविमानाद्यैः सर्वतः समलङ्कृतम् । तन्मध्ये कल्पवृक्षस्य च्छायायांकमलासने ॥९५॥
विचित्रश्लक्ष्णपर्यङ्के शुभास्तरणसम्वृते । दिव्यगन्धसुशोभाढ्यैर्नानापुष्पपरिच्छदैः ॥९६॥
तस्मिन्मनोरमे दिव्ये समासीनः श्रिया सह । ईश्वर्या सह देवेशो वासुदेवः सनातनः ॥९७॥
सुधांशुकोटिसङ्काशो दिव्याभारणभूषितः । सुवर्णशुभ्रयुगलश्लक्ष्णनासाञ्चिताननः ॥९८॥
स्निग्धायतसुलावण्यकपोलाभ्यां विराजितः । नीलकुञ्चितकेशाढ्यो रक्ताब्जदललोचनः ॥९९॥
मन्दारकेतकीजातीकबरीकृतशेखरः । स्निग्धबिम्बफलाभौष्ठः सुस्तिमाननपङ्कजः ॥१००॥
अनर्घ्यमौक्तिकाभासदन्तावलिविराजितः । हरिचन्दनलिप्ताङ्ग कस्तूरीतिलकाङ्कितः ॥१०१॥
उन्नतांसभुजैर्दीर्घैश्चतुर्भिरुपशोभितः । जपाकुसुमसङ्काशकरपल्लवशोभितः ॥१०२॥

वहाँ कोकिला आदि सदा साम मन्त्रों का उच्चारण करती रहती हैं । वह लाये गये सुगन्ध युक्त वृक्षों वाले पुष्पों से सुशोभित है ॥८७॥ वह सोलह वर्ष से कम उम्र वाले दिव्य नारियों और पुरुषों से घिरा है । दिव्य लक्षणों के शोभा से परिपूर्ण दिव्य कल्पालङ्कारों से ॥८८॥ विभिन्न मनोहर स्थानों में अपने पतियों के साथ वे नारियाँ श्रीभगवान् की पूजा करती हैं ॥८९॥ श्रीभगवान् की कृपा से प्राप्त होने वाले सुखों का वे उपभोग करती हैं । वे परमानन्द स्वरूप श्रीभगवान् के चरितों का गान करती हैं ॥९०॥ कमल के समान नेत्रों वाली, हाथ में कमल ली हुयी तथा देखने में लक्ष्मीजी के सदृश वे दिव्य माला तथा वस्त्रों को धारण की हुयी क्रीडा करती हैं ॥९१॥ वहाँ पर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए भूषणों से भूषित मालाधारी तथा पीताम्बरधारी पुरुष विद्यमान हैं ॥९२॥ क्रीडा करते हुए स्त्री तथा पुरुषों के परस्पर में एक दूसरे का स्पर्श करने से उन सबों की श्रीहरि की भक्ति प्रतिदिन बढ़ती रहती है ॥९३॥ उसके बीच में भगवान् वासुदेव का मनोहर अन्तःपुर है । वह चन्दन, अगरु, कर्पूर तथा कुङ्कुम के जल से संयुक्त है॥९४॥ अनेक पुष्पों तथा विमान आदि से सर्वत्र समलंकृत है । उसके बीच में कल्प वृक्ष की छाया में कमल के आसन पर विचित्र तथा मृदु पर्यङ्क जो सुन्दर चादर से ढँका हुआ है, उस पर दिव्य सुगन्धों एवं शोभा से समलंकृत, अनेक पुष्पों के परिच्छद से ॥९५-९६॥ युक्त आसन पर लक्ष्मीजी के साथ देवेश भगवान् वासुदेव बैठे हैं ॥९७॥ वे करोड़ों चन्द्रमा के समान दिव्य अलङ्कारों से भूषित हैं । सुवर्ण से धवल बने दोनो कोमल नासिका से उनका मुख सुशोभित है ॥९८॥ स्निग्ध विस्तृत लावण्य युक्त कपोलों से वे सुशोभित हैं । काले घुंघराले केशों से परिपूर्ण तथा लाल कमल के समान उनके नेत्र हैं ॥९९॥ मन्दार केतकी जाती आदि के पुष्प उनके केश में गूंथे हैं । स्निग्ध बिम्बफल की कान्ति के समान उनके ओष्ठ

श्रीवत्सकौस्तुभाभ्यां च शोभितः पृथुवक्षसा ।
मुक्तामयैः सुशोभाढ्यैर्दिव्यस्त्रग्भिरलङ्कृतः ॥१०३॥

स्फुरत्केयूरकटकैरङ्गुलीयैश्च शोभितः । बालार्कसदृशज्योत्स्नापीतवस्त्रेण वेष्टितः ॥१०४॥
माणिक्यनूपुरोपेतपद्मपत्रविराजितः । अकलङ्कितचन्द्राभनखपङ्क्तिविराजितः ॥१०५॥
रक्तोत्पलनिभश्लक्ष्णशुभाङ्घ्रिकरपङ्कजः । पाञ्चजन्यरथाङ्गाढ्यबाहुयुग्मविराजितः ॥१०६॥
इताराभ्यां श्रियो गात्रमाश्लिष्यन्निजवक्षसि । श्लिष्यद्विद्युल्लतोद्वीथशिताभ्र इव राजते ॥१०७॥
तप्तजाम्बूनदश्लक्ष्णशुभाङ्घ्रियुगपङ्कजः । अत्र क्रीडति देवेशो वासुदेवः सनातनः ॥१०८॥
तप्तकाञ्चनसङ्काशा सर्वाभरणभूषिता । पद्मेक्षणा पद्महस्ता पद्ममालाविभूषिता॥१०९॥
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी स्वर्णाभरणभूषिता । सुस्निग्धनीलकुटिलकचभारविराजिता ॥११०॥
मन्दारपारिजातादिदिव्यपुष्पविराजिता । मणिरत्नसुसीमन्तकस्तूरीतिलकाञ्चिता ॥१११॥
कर्णवतंसशोभाढ्या चिकुरान्तालिसन्निभा । पीनोन्नतस्तनाभ्यांच पीडन्ती हरिवक्षसि ॥११२॥
केयूराङ्गदहाराद्यैर्भूषणैरुपशोभिता । आरूढयौवना नित्यं सर्वलोकेशसुन्दरी ॥११३॥

तत्र क्रीडति लोकेशी पत्या सह निरन्तरम् ।
स एव वासुदेवोऽत्र सर्वभूतमनोहरः ॥११४॥

हैं सुन्दर मुस्कान से युक्त उनका मुख हैं ॥१००॥ अनघ्य मोती के समान दन्त पंक्ति से वे सुशोभित हैं। उनके शरीर में हरिचन्दन लगा हुआ है तथा वे कस्तूरी का तिलक लगाये हुए हैं ॥१०१॥ उठे हुए कन्धों से युक्त लम्बी चार भुजाओं से वे सुशोभित हैं । जपा पुष्प के समान लाल-लाल अङ्गुलियों से वे सुशोभित हैं ॥१०२॥ श्रीवत्स चिह्न तथा कौस्तुभ मणि से उनका मांसल वक्षःस्थल सुशोभित है । वे मोतियों से निर्मित सुन्दर दिव्य माला से अलंकृत हैं ॥१०३॥ वे चमकते हुए केयूर तथा कङ्कणों तथा अङ्गूठियों से सुशोभित हैं । सूर्य की कान्ति के समान वे पीताम्बर धारण किए हुए हैं ॥१०४॥ माणिक्य निर्मित नूपुरों से युक्त वे कमल दल से सुशोभित हैं । कलङ्क रहित चन्द्रमा के समान उनके नख हैं ॥१०५॥ लाल कमल के समान कोमल हाथों और चरणों से सुशोभित हैं । पाञ्चजन्य शङ्ख और चक्र से उनकी दो भुजायें सुशोभित हैं ॥१०६॥ दूसरे दोनों हाथों से लक्ष्मीजी के अङ्गों का आलिङ्गन करके विद्युत लता के समान उठे हुए काले मेघ के समान श्रीभगवान् सुशोभित होते हैं ॥१०७॥ तप्त सुवर्ण के समान चिकने उनके सुन्दर दोनों चरण कमल हैं । यहाँ पर देवेश भगवान् सनातन वासुदेव क्रीडा करते हैं ॥१०८॥ तप्त सुवर्ण के सदृश चमकते हुए सभी आभूषणों से अलंकृत कमल के समान नेत्रों वाली, हाथ में कमल ली हुयी तथा कमल की माला धारण की हुयी । लक्ष्मीजी अपने शरीर में दिव्य चन्दन लगायी हैं और सुवर्ण के अलङ्कारों से अलंकृत हैं वे चिकने काले घुंघराले केशों से सुशोभित हैं ॥१०९-११०॥ वे मन्दार तथा पारिजात पुष्पों से सुशोभित हैं । मणिरत्न निर्मित मँगटीका से उनकी मांग सुशोभित है और वे कस्तूरी का तिलक लगायी हैं ॥१११॥ कर्णाभूषण से सुशोभित उनके केशों के अन्तिम भाग भ्रमरों के समान काले-काले हैं । मोटे तथा उठे हुए स्तनों से श्रीहरि के वक्षःस्थल को दबा रही हैं ॥११२॥ वे केयूर, अङ्गद तथा हार आदि भूषणों से अलंकृत हैं । सभी लोकों के स्वामी की सुन्दरी वे सदा चढ़ती हुयी जवानी से युक्त रहती हैं ॥११३॥ वहाँ पर इस लोक की स्वामिनी अपने पति के साथ क्रीड़ा करती हैं।

क्रीडते सर्वलोकेऽस्मिन्सर्वकामप्रदो नृणाम् ।
अत्राऽष्टशक्तयो लक्ष्म्यास्तनवः स्थिताः ॥११५॥
रमा च रुक्मिणी सीता पद्मा पद्मालया शिवा ।
सुलक्षणासुशीलाचरतिकामप्रदाश्वताः ॥११६॥
शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गाद्यैर्हेतिभिस्तथा । परितः पुष्कराकारैस्तं लोकं परिरक्षते ॥११७॥
एवं द्वितीयोव्यूहश्च सम्यक्ते शुभदर्शने ! । संक्षेपतो मया प्रोक्तो न शक्यं विस्तरेण हि॥११८॥
द्वादशाक्षरमन्त्रम्वै ये जपन्ति सुखाह्वयम्। तेप्राप्नुवन्ति सततं शाश्वतंशुभमक्षयम् ॥११९॥
न वेदाध्ययनैर्यज्ञैर्न व्रतैर्नोपवासतः। न प्राप्यं वैष्णवं लोकं विना दास्येन कुत्रचित्॥१२०॥
तस्माद्दास्यं हरेर्भक्तिं भजेताऽनन्यमानसः । प्राप्नोति परमां सिद्धिं कर्मबन्धविमोचनीम् ॥१२१॥
एवं सम्प्रोच्यतेदेवि द्वितीयं व्यूहमव्ययम्। तृतीयन्तु परंव्यूहं शृणु वक्ष्यामि पार्वति !॥१२२॥
तोयाब्धेरुत्तरं कूलं श्वेतद्वीपमिहोच्यते। सन्दर्शनाय योगीन्द्रसनकादिमहात्मनाम् ॥१२३॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो जातश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥१२४॥
सप्तैते ब्रह्मणः पुत्रा योगिनः सुमहौजसः । विरक्ताः सर्वभोगेषु शुद्धास्सत्त्वगुणाःसदा ॥१२५॥
भगवद्दर्शनोद्भूतसुखैकरससेविनः । नरनारायणाद्याश्च श्वेतद्वीपे वसन्ति ये ॥१२६॥
तेषां सन्दर्शनार्थाय तत्र सन्निहितो हरिः। शुभ्रांशुकोटिसङ्काशे नानारत्नमयोज्ज्वले ॥१२७॥
श्वेतद्वीपे महायोगिसेविते हेयवर्जिते । तत्रोद्यानानि रम्याणि पारिजातमयानि वै ॥१२८॥

वे ही वासुदेव इस लोक में सभी जीवों से मनोहर हैं ॥११४॥ वे मनुष्यों की सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं, वे इस सम्पूर्ण लोक में क्रीडा करते हैं । यहाँ पर आठों शक्तियाँ लक्ष्मीजी के शरीर के चारो ओर स्थित हैं ॥११५॥ रमा, रुक्मिणी, सीता, पद्मा, पद्मालया, शिवा, सुलक्षणा, सुशीला तथा वे सब रतिकाम को प्रदान करने वाली हैं ॥११६॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा शार्ङ्ग आदि आयुधों से चारो ओर कमल के समान आकार वाले वे सब इस लोक की रक्षा करते हैं ॥११७॥ इस तरह से हे शुभदर्शने पार्वति ! तुमको मैंने द्वितीय व्यूह का संक्षेप में अच्छी तरह से वर्णन सुनाया । इसका विस्तार से वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥११८॥ जो लोग सुखप्रद द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करते हैं वे इस शाश्वत शुभ तथा अक्षय लोक को प्राप्त करते हैं ॥११९॥ वेदाध्ययन, यज्ञ, व्रत और उपवास के द्वारा वैष्णव लोक को दास्य भाव के बिना नहीं प्राप्त किया जा सकता है । अतएव अनन्यमना होकर श्रीहरि की भक्ति को करते रहना चाहिए । ऐसा करने वाला व्यक्ति संसार के बन्धन को छुड़ाने वाली परमा सिद्धि को प्राप्त करता है । हे देवि ! इस तरह की निर्विकार द्वितीय व्यूह वर्णित है । हे पार्वति ! इसके बाद मैं तुमको तृतीय व्यूह को सुनाता हूँ ॥१२०-१२३॥ जल सागर के उत्तर तट पर श्वेत द्वीप को बतलाया जाता है। योगीन्द्र सनकादि माहात्मा का उसमें दर्शन होता है ॥१२४॥ सनक, सनन्दन, सनातन सनत्कुमार बोढु तथा पञ्चशिस्वत ॥१२५॥ श्रीभगवान् के दर्शन से उत्पन्न सुख जन्य आनन्द का ही उपभोग करते हैं । नर-नारायण आदि जो श्वेत द्वीप में रहते हैं ॥१२६॥ उन सबों को दर्शन देने के लिए श्रीहरि वहाँ सदा विद्यमान रहते हैं । करोड़ों चन्द्रमाओं के समान तथा अनेक रत्नों से देदीप्यमान ॥१२७॥ महायोगियों से सेवित श्वेतद्वीप जो सभी दोषों से रहित हैं उस श्वेत द्वीप में पारिजात वृक्ष के अनेक उद्यान हैं ॥१२८॥

सन्तानकलताकीर्णं चन्दनद्रुममण्डितम् । फुल्लपद्मोत्पलोपेतं नानातोयालयैर्युतम् ॥१२९॥
तन्मध्ये नगरी रम्या नाम्ना श्वेतवती शुभा । नानारत्नमयाकीर्णा हेमप्राकारतोरणा ॥
नानारत्नमयैर्दिव्यैर्विमानैरुपशोभिता ॥१३०॥
दिव्यस्त्रीपुम्भिराक्रान्ता बहुप्रासादसङ्कुला । तन्मध्येऽन्तःपुरं रम्यं रत्नद्रुमसमाकुलम् ॥१३१॥
बालसूर्यनिर्भस्तुङ्गैः प्रासादैर्बहुभिर्वृतम् । तन्मध्ये मण्डपं दिव्यं मणिकाञ्चनशोभितम्॥१३२॥
चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमामोदवासितम् । नानाकुसुममालाढ्यैर्वितानैः समलङ्कृतम् ॥१३३॥
दिव्याप्सरःसमाकीर्णं समागानोपशोभितम् । मध्ये सिंहासनं तत्र सूर्यवैश्वानरप्रभम् ॥१३४॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं चन्द्रबिम्बमिवाऽपरम् । तन्मध्येकर्णिकायांतु समासीनो जनार्दनः ॥१३५॥
शुद्धजाम्बूनदप्रख्यो मुक्ताहारविभूषितः । शङ्खचक्रगदापद्मयुक्तहस्तचतुष्टयः ॥१३६॥
केयूरहारकटकैरङ्गुलीयैश्च शोभितः। सुवर्णपङ्कजप्रख्यपदयुग्मविराजितः ॥१३७॥
सुधाकरनिभश्लक्ष्णनखपङ्क्तिविराजितः । षोडशाव्दइवारुढयौवनेन विराजितः ॥१३८॥
विशालभालदेशे तु कुङ्कुमेन सुगन्धिना । रचितेनोर्ध्वपुण्ड्रेण सीमन्तेनोपशोभितः ॥१३९॥
मथितामृतफेनाभशुक्लवस्त्रसुवेष्टितः ।
मुक्तामयाभ्यां शुभ्राभ्यां कुण्डलाभ्यां विराजितः ॥१४०॥
मणिक्यमुकुटोपेतनीलकुन्तलशोभितः । दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गो दिव्यपुष्पविराजितः ॥१४१॥
श्लक्ष्णोन्नतसुनासाढ्यसुस्मिताधरविद्रुमः । पुण्डरीकदलप्रख्यसितरक्तान्तलोचनः ॥१४२॥

सन्तानक लता से परिपूर्ण तथा चन्दन के वृक्षों से अलंकृत विकसित कमल तथा नील कमलों से युक्त वहाँ पर अनेक सरोवर हैं ॥१२९॥ उसके बीच में श्वेतवती नाम की नगरी है । वह अनेक रत्नों से परिपूर्ण सुवर्ण के प्राकार और तोरण से युक्त है । वह अनेक रत्नमय विमानों से सुशोभित है ॥१३०॥ वहाँ पर स्त्री, पुरुष दिव्य हैं और उस नगरी में अनेक प्रासाद हैं । उसके बीच में रत्न वृक्षों से परिपूर्ण मनोहर अन्तःपुर है ॥१३१॥ वह वाल सूर्य के समान उन्नत अनेक प्रासादों से सुशोभित है । उसके बीच में मणि काञ्चन से सुशोभित दिव्य मण्डल है ॥१३२॥ वह चन्दन, अगरु, कर्पूर तथा कुङ्कुम की सुगन्धि से सुगन्धित है । अनेक प्रकार के पुष्पों की मालाओं से अलंकृत वितानों से वह सुशोभित है ॥१३३॥ दिव्य अप्सराओं से परिपूर्ण तथा सामगान से सुशोभित है । उसके बीच में सूर्य तथा अग्नि की कान्ति वाला सिंहासन है ॥१३४॥ दूसरे चन्द्र मण्डल के समान अष्टदल कमल है, उसके बीच की कर्णिका में भगवान् जनार्दन बैठे हैं ॥१३५॥ शुद्ध सुवर्ण के समान मोती के हार से वे सुशोभित हैं । उनके चारो हाथ शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म से सुशोभित हैं ॥१३६॥ वे केयूर, हार, कङ्गन और अङ्गूठियों से सुशोभित हैं । उनके दोनों चरण कमल सुवर्ण कमल के समान मनोहर हैं ॥१३७॥ चन्द्रमा के समान मृदुल नख पंक्ति से उनके चरण सुशोभित हैं । चढ़ती हुयी जवानी से वे सोलह वर्ष को प्रातीत होते हैं ॥१३८॥ विशाल ललाट प्रदेश में सुगन्धित कुङ्कुम से बनाये गये ऊर्ध्व पुण्ड्र से युक्त सीमान्त से वे सुशोभित है ॥१३९॥ वे मथे गये अमृत के फेन समान शुक्ल वस्त्र को धारण किए हैं । वे मोती के द्वारा निर्मित श्वेत दोनों कुण्डलों से सुशोभित हैं ॥१४०॥ माणिक्य रचित मुकुट से युक्त काले घुंघराले केशों से सुशोभित हैं । वे अपने

नीलशुक्लौघताम्राभ्यां लोचनाभ्याम्विराजितः ।
सुनीलघनवक्त्राढ्यः सुपक्षाभिविराजितः ॥१४३॥
पद्मासनसमासीनो जगन्मोहनविग्रहः । वामाङ्के संस्थिता देवी तस्य दिव्यस्वरूपिणी॥१४४॥
तस्यैव सदृशी लक्ष्मीः शीलरूपगुणान्विभिः ।
पद्मकिञ्जल्कसङ्काशा यौवनारम्भशोभिता ॥१४५॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना तप्तकाञ्चनभूषणा । दिव्यस्रग्वसनोपेता नीलकुञ्चितमूर्धजा ॥१४६॥
चतुर्भुजैर्विराजन्ती केयूराङ्गदभूषिता। मुक्ताहारैर्विराजन्ती मन्दाराञ्चितशीर्षजा ॥१४७॥
श्लक्ष्णनासापुटयुता लसद्दन्तविराजिता। कस्तूरीतिलकोपेता नासाग्राञ्चितमौक्तिका॥१४८॥
सुवर्णकलशप्रख्यपीनोन्नतपयोधरा । दिव्यकुङ्कुमलिप्ताङ्गी पद्ममालोपशोभिता॥१४९॥
वसुपात्रं मातुलिङ्गं दर्पणं हेमपङ्कजम्। करपद्मैर्धारयन्ती चेतनाऽभीष्टदायिनी ॥१५०॥
तस्यैताः सादृशास्तत्र शक्तयः परितो हरेः ।
इशावास्या महादेवी जाह्नवी कमलालया ॥१५१॥
सावित्री सर्वगा पद्मा शक्तयः परिकीर्तिताः ।
श्रद्धामेधाधृतिः प्रज्ञा धारणा शान्तिरेवच ॥१५२॥
श्रुतिः स्मृतिर्मतिर्वन्या वृद्धिर्बुद्धिर्मनीषिणी ।
दास्यस्त्वेताः श्रियः प्रोक्ताः सर्वकैङ्कर्यकारिकाः ॥१५३॥

अङ्गों में दिव्य चन्दन लगाये हैं और दिव्य पुष्पों से सुशोभित हैं ॥१४१॥ चिकनी तथा उन्नत सुन्दर नासिका से युक्त सुन्दर मुस्कान युक्त उनके ओष्ठ विद्रुम के समान लाल हैं कमल दल के समान वे श्वेत और रक्त नेत्रों वाले हैं ॥१४२॥ नील, श्वेत तथा लाल नेत्रों से वे सुशोभित हैं नील मेघ के समान मुख से युक्त वे सुन्दर पक्षों से सुशोभित हैं ॥१४३॥ वे पद्मासन से बैठे हैं और उनका शरीर जगत् को मोहित करने वाला है । उनके बायें भाग में दिव्य शरीर वाली लक्ष्मीजी विराजमान हैं ॥१४४॥ उन्हीं के समान शील, रूप तथा गुणों से लक्ष्मीजी युक्त हैं । कमल के पराग के समान गौर वर्ण की वे जवानी के आरम्भ से सुशोभित हैं ॥१४५॥ सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न वे तप्त सुवर्ण के भूषणों को धारण की हैं । दिव्य माला और वस्त्र को धारण की हुयी काले घुंघराले केशों वाली हैं ॥१४६॥ चार भुजाओं से सुशोभित वे केयूर तथा अङ्गद से अलंकृत हैं । मोती के हारों से सुशोभित उनके केशों में मन्दार पुष्प लगे हैं ॥१४७॥ चिकनी नाकों वाली वे मनोहर दाँतों से सुशोभित हैं । वे कस्तूरी का तिलक धारण की हैं और नाक के अग्रभाग में मोती को धारण की हैं ॥१४८॥ सुवर्ण कलश के समान उनके मोटे और उठे हुए स्तन हैं। वे अपने अङ्गों में दिव्य कुङ्कुम लगायीं हैं और कमल की माला से सुशोभित हैं ॥१४९॥ वे वसुपात्र मातुलुङ्ग, दर्पण और स्वर्णिम कमल को अपने कर कमलों में धारण की हुयी जीवों को अभीष्ट वस्तु प्रदान करती हैं ॥१५०॥ उनके सदृश ही ये शक्तियाँ श्रीहरि के चारो ओर विद्यमान हैं । ईशावास्या, महादेवी, जाह्नवी, कमलालया ॥१५१॥ सावित्री, सर्वगा, पद्मा ये उनकी शक्तियाँ कही गयी हैं । श्रद्धा, मेधा, धृति, प्रज्ञा, धारणा और शान्ति भी उनकी शक्तियाँ हैं ॥१५२॥ श्रीदेवी के सभी कैंकर्यों को करने वाली श्रुति, स्मृति, वन्या, वृद्धि, बुद्धि और मनीषिणी ये दासियाँ हैं ॥१५३॥ अनन्त, गरुड आदि देवता उनके नित्य

अनन्तवैनतेयादिदेवतानित्यकिङ्कराः । साध्या मरुद्गणाश्चैव सेवन्ते नित्यदेवताः ॥१५४॥
प्रासादेषु विमानेषु वनेषु नागरेषु च । तत्प्रसादोपलब्धेषु भोगेष्वत्राऽनुरञ्जिताः ॥१५५॥
क्रीडन्तिसततंनित्या हेयनिष्यन्दवर्जिताः । येविष्णुमन्त्रजप्तारः सततं श्रद्धयाऽन्विताः ॥१५६॥
येद्वादशीव्रते युक्तास्तत्पदं यान्ति तेऽव्ययम् । न वेदैर्न च दानैश्च न यज्ञैर्न व्रतैरपि ॥१५७॥

प्राप्तुं च शक्यो गिरिजे ! विष्णुलोकः सनातनः ।
भक्त्या चाऽनन्यया प्राप्तुं शक्यं विष्णुपदं नृणाम् ॥१५८॥

तस्मात्सम्पूजयेन्नित्यं भक्तया देवंजनार्दनम् । कीर्तयेन्नामसाहस्रं ध्यायन्मन्त्रं जपेत्सदा ॥१५९॥
जुहुयात्तर्पयेद्भक्तया सर्वगं सर्वकामदम् । एवमुक्तं तृतीयस्य व्यूहस्य परमात्मनः ॥१६०॥
स्वरूपं तव सुश्रोणि ! यथाप्रोक्तं पुरातनैः । अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थं व्यूहमुत्तमम् ॥१६१॥
दिवौकसां दर्शनार्थं दुग्धाब्धौ परमेश्वरः । सुधांशुकोटिसङ्काशे सहस्रफणशोभिते ॥१६२॥
फणारत्नमयूखैस्तु च्छादिते दुग्धवारिधौ । तस्मिन्ननन्तपर्यङ्के विमले विस्तृते शुभे ॥१६३॥

देव्या सह समासीनः पद्मनाभोऽच्युतो हरिः ।
नीलजीमूतसङ्काशः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥१६४॥

विवस्वत्कोटिसङ्काशकिरीटेन विराजितः । नानारत्नोज्ज्वलद्दिव्यकुण्डलाभ्यां विराजितः ॥१६५॥
बालार्कसदृशज्योत्स्नापीतवस्त्रेण वेष्टितः । स्फुरद्रक्तारविन्दाभहस्ताङ्घ्रितलशोभितः ॥१६६॥
हारकेयूरकटकैरङ्गुलीयैर्विराजितः । शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्तैर्विभूषितः ॥१६७॥

किङ्कर हैं । साध्य गण तथा मरुद्गण आदि नित्य देवता उनकी सेवा करते हैं ॥१५४॥ प्रासादों, विमानों, वनों तथा नगरों में उनकी कृपा से उपलब्ध भोगों से वे अनुरञ्जित होते हैं । त्याज्य निःस्यान्द से रहित नित्य जीव वहाँ पर क्रीडा करते हैं । जो लोग श्रद्धा पूर्वक सदा भगवान् विष्णु के मन्त्र को जपते रहते हैं ॥१५५-१५६॥ जो लोग द्वादशी व्रत को करते हैं वे उस अव्यय पद को प्राप्त करते हैं । वेद, दान, यज्ञ और व्रतों के द्वारा ॥१५७॥ हे गिरिजे ! वह विष्णु लोक प्राप्त नहीं किया जा सकता है ॥१५८॥ अतएव सदा भक्ति पूर्वक भगवान् जनार्दन की पूजा करनी चाहिए । उनके सहस्र नामों का कीर्तन करे और ध्यान करते हुए मन्त्र का जप करना चाहिए ॥१५९॥ भक्ति पूर्वक सर्व व्याप्त सर्वकाम देने वाले श्रीभगवान् का होम करना चाहिए और तर्पण करना चाहिए । इस तरह से मैंने श्रीभगवान् के तृतीय व्यूह का वर्णन कर दिया ॥१६०॥ हे सुन्दर श्रोणी वाली पार्वति ! प्राचीनों ने तृतीय व्यूह का स्वरूप यही कहा है वहीं मैने तुमको बतलाया है । अब मैं तुमको चर्तुथ व्यूह को बतलाऊँगा ॥१६१॥ देवताओं को दर्शन देने के लिए परमात्मा क्षीर सागर में करोड़ों चन्द्रमा के समान हजार फणाओं से सुशोभित ॥१६२॥ फण रत्नों की किरणों से अच्छादित दुग्ध सागर में विमल, विस्तृत, अनन्त पर्यङ्क पर ॥१६३॥ श्रीदेवी के साथ पद्मनाभ भगवान् अच्युत सोए हुए हैं । वे नील मेघ के समान वर्ण वाले हैं और कमल दल के समान उनके बड़े-बड़े नेत्र हैं ॥१६४॥ वे करोड़ों सूर्य के समान चमकने वाले किरीट से सुशोभित हैं । वे अनेक रत्नों से देदीप्यमान दोनों कुण्डलों से सुशोभित हैं ॥१६५॥ बाल सूर्य के समान कान्ति वाले पीताम्बर को वे धारण किए हैं । देदीप्यमान रक्त कमल के समान कान्ति वाले उनके हाथ और पैर हैं ॥१६६॥ वे हार, केयूर तथा कटक से सुशोभित हैं । वे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा खड्ग धारण किए हुए हाथों से

सुपुष्पफलशाखाढ्यकल्पशाखीवराजितः । श्रीवत्सकौस्तुभोपेतवनमालाविराजितः ॥१६८॥
बालार्कसदृशज्योत्स्नापीतवस्त्रेण वेष्टितः । विश्वसृड्जन्मशरणनाभीपङ्कजशोभितः ॥१६९॥
हरिचनन्दनलिप्ताङ्गः सर्वाभरणभूषितः । मन्दारपरिजातादिदिव्यपुष्पैर्मनोरमैः ॥१७०॥
सुस्निग्धनीलकुटिलकबरीकृतकेशवान् । श्लक्ष्णोन्नतसुनासांसजानुयुग्मविराजितः ॥१७१॥
मणिविद्रुमशाखाढ्यनूपुराङ्घ्रिविराजितः । अकलङ्कितचन्द्राभनखपङ्क्तिविराजितः ॥१७२॥
अशोकपुष्पसङ्काशरक्तोष्ठमुखपङ्कजः । अनर्घ्यमौक्तिकाभासदन्तपङ्क्तिविराजितः ॥१७३॥
सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमस्मितवक्त्रसुशोभितः । आरूढयौवनः श्रीमान्कोमलावयवोज्ज्वलः ॥१७४॥
शरण्यः सर्वलोकानां सर्वकामफलप्रदः । सदृशी तस्य देवी तु रूपशीलगुणादिभिः ॥१७५॥
तप्तकाञ्चनसङ्काशा तप्तकाञ्चनभूषणा । तरुणी रूपलावण्यकान्तिशीलगुणान्विता ॥१७६॥
दुग्धाब्धिफेनसङ्काशशुभवस्त्रेण वेष्टिता । मन्दारकेतकीजातीपुष्पाञ्चितशिरोरुहा ॥१७७॥
कस्तूरीतिलकोपेता रत्नसीमन्तशोभिता। नानावर्णसुशोभाढ्यकर्णीभूषणभूषिता ॥१७८॥
प्रवालसदृशज्योत्स्ना रक्ताधरशुचिस्मिता। मत्तभृङ्गोपमैः स्निग्धैरलकैः सुविराजिता ॥१७९॥
तनुमध्या विशालाक्षी पीनोन्नतपयोधरा। चतुर्हस्तैर्विराजन्ती सर्वाभरणभूषिता ॥१८०॥
उद्बाहुभ्यां धारयन्ती हेमपद्मयुगंशुभम् । इतराभ्यां समाश्लिष्य भर्तारं निबिडंस्थिता ॥१८१॥

विभूषित हैं ॥१६७॥ पुष्प, फल, तथा शाखाओं से सम्पन्न कल्पवृक्ष के समान वे सुशोभित हैं । श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभ मणि से युक्त वे वनमाला को धारण किए हुए हैं ॥१६८॥ बाल सूर्य के समान कान्ति वाले पीताम्बर को वे धारण किए हैं । ब्रह्माजी के जन्म गृह के समान नाभि कमल से वे विराजमान हैं॥१६९॥ अपने अङ्गों में हरिचन्दन लगाये हैं । मन्दार, पारिजात आदि दिव्य पुष्पों से वे देखने में मनोहर लगते हैं ॥१७०॥ अत्यन्त स्निग्ध काले घुंघराले केशों से वे अपने बालों की चोटी बनाये हैं । चिकनी उठी हुई नासिका, स्कन्ध, तथा दोनों घुटनों से वे विराजमान हैं ॥१७१॥ मणि तथा विद्रुम (मूँगा) की शाखाओं से परिपूर्ण उनके पैरों के नुपुर सुशोभित हैं । कलङ्क रहित चन्द्रमा के समान नख की पंङ्क्ति से वे सुशोभित हैं ॥१७२॥ अशोक पुष्प के समान वे लाल-लाल ओठों से सुशोभित हैं । अनर्घ्य मोती के समान चमकने वाली दाँतों की पंक्ति से वे सुशोभित हैं ॥१७३॥ सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान उनका सुन्दर मुख मन्द मुस्कान से सुशोभित है । चढ़ती हुयी जवानी की शोभा से सम्पन्न वे कोमल अङ्गों से सुशोभित हैं ॥१७४॥ वे सभी जीवों के रक्षक हैं तथा सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । उनकी देवी भी उन्हीं के समान रुप, गुण तथा शील आदि गुणों से सम्पन्न हैं ॥१७५॥ तप्त सुवर्ण के समान उनका रूप है तप्त सुवर्ण के आभूषणों को धारण की हुयी हैं । वे युवती हैं और रूप, लावण्य कान्ति तथा शील नामक गुण से सम्पन्न हैं ॥१७६॥ वे क्षीर सागर के फेन के समान श्वेत वस्त्र को धारण की हैं । उनके केशों में मन्दार केतकी तथा जाती के पुष्प लगे हैं ॥१७७॥ वे कस्तूरी का तिलक लगायी हैं और उनकी मँगटीका रत्नकी है । अनेक प्रकार के वर्णो की शोभा से सम्पन्न कर्णभूषण से वे सुशोभित हैं ॥१७८॥ मूँगे के समान कान्ति वाले उनके ओष्ठ मन्द मुस्कान से सुशोभित हैं । मदमत्त भौरों के समाने काले स्निग्ध तथा काले उनके केश हैं ॥१७९॥ उनकी कमर पतली है, बड़े-बड़े नेत्र हैं और स्तन मोटे तथा उठे हुए

आलोकयन्ती सततं त्रिदशांश्च कटाक्षकैः । निरीक्षितास्तयादेव्याधन्यास्ते सततंशिवे ॥१८२॥
तत्रदेवा विमानस्थाः सिद्धचारणकिन्नराः । गायन्तिसततंदेवीमानन्दाश्रुपरिप्लुताः ॥१८३॥
दैतेयैर्बाध्यमानैस्तु ब्रह्मरुद्रादिभिः सुरैः। संस्तूयमानस्तत्रेशो देवानामभयं ददौ॥१८४॥
देवानामभयं दत्त्वा सर्वदेवेश्वरो हरिः। राक्षसान्हन्तुमारेभे जगत्संरक्षणाय वै ॥१८५॥
एवं चतुर्थं व्यूहन्तुहरेःप्रोक्तं तवाऽनघे ! । किमन्यच्छ्रोतुकामाऽसि तद्ब्रवीमि वरानने !॥१८६॥

इति श्रीपद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
विष्णुव्यूहभेदवर्णनंनामैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२९॥
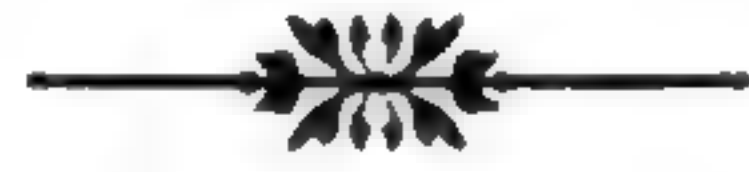
दो सौ तीसवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

भगवान्यत्रदेवेशो राक्षसान्मधुसूदनः। जघान केन रुपेण यथावद्वक्तुमर्हसि॥१॥
वैभवावस्थमीशस्य मत्स्यकूर्मादिरूपकम् । विस्तरेणसमाख्याहि ममप्रीत्यामहेश्वर !॥२॥

हैं । सभी आभरणों से सुशोभित वे चार हाथों से सुशोभित हैं ॥१८०॥ वे ऊपर के दोनों हाथों में दो स्वर्णिम कमल धारण की हैं और अन्य दोनों हाथों से श्रीभगवान् को कसकर पकड़े हुयी हैं ॥१८१॥ अपने कटाक्षों के द्वारा वे सदा देवताओं को देख रही हैं । हे पार्वति ! लक्ष्मीजी के द्वारा देखे गये देवता धन्य हो जाते हैं ॥१८२॥ वहाँ पर विमान पर बैठे हुए देवता, सिद्ध, चारण और किन्नरगण आनन्द से परिपूर्ण होकर लक्ष्मीजी के गुणों का गान करते हैं ॥१८३॥ असुरों के द्वारा पीड़ित ब्रह्मा आदि देवताओं से स्तुति किए जाने वाले श्रीभगवान् उनको अभय प्रदान करते हैं ॥१८४॥ देवताओं को अभय प्रदान करके सभी देवताओं के स्वामी श्रीहरि जगत् की रक्षा करने के लिए दैत्यों को मारना प्रारम्भ किए ॥१८५॥ हे पार्वति ! इस प्रकार से मैंने तुमको श्रीभगवान् के चतुर्थ व्यूह का वर्णन सुनाया । अब तुम्हारी किस बात को सुनने की इच्छा है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥१८६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत भगवान् विष्णु के व्यूहों का वर्णन नामक दो सौ उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२९।।

श्रीभगवान् की विभूति वर्णन पूर्वक उनके मत्स्यावतार का वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— हे भगवन् ! श्रीभगवान् मधुसूदन किस कारण से राक्षसों को मारे उसे आप मुझे ठीक-ठीक बतलायें ॥१॥ विभवावस्था में विद्यमान श्रीभगवान् के मत्स्य, कूर्म, आदि रूपों को आप मेरी प्रसन्नता के लिए विस्तार के साथ बतलायें ॥२॥ **महादेवजी ने कहा—** हे देवि ! तुम स्वस्थ मना

महादेव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि वैभवं स्वस्थमानसा ।
मत्स्यकूर्मादियद्रूपमवतारात्मकं हरेः ॥३॥
दीपादुत्पादितो दीपो यथा तद्वद्भविष्यति। परावस्था परेशस्य सव्यूहा विभवादयः ॥४॥
शक्त्यावेशावतारास्तु विष्णोस्तात्कालिकाः स्मृताः ।
अर्चावतारा देवस्य वैभवाः परमात्मनः ॥५॥
परवद्व्यूहसामर्थ्यगुणसम्भूतिदर्शनाः । वैभवानां तु सर्वेषाम्मत्स्यः पूर्वमुदाहृतः ॥६॥
प्रजापतिः पुरा ब्रह्मा ससर्ज सुमहात्मवान् । भृगुर्मरीचिरत्रिश्च दक्षः कर्दम एव च ॥७॥
पुलस्त्यः पुलहश्चैव अङ्गिराश्च तथाक्रतुः । नव प्रजानां पतय इमे प्रोक्ता यथाक्रमम् ॥८॥
मरीचिर्भगवांस्तत्रं जनयामास कश्यपम् । कश्यपस्याभवञ्जायाश्चतस्रः शुभदर्शने !॥९॥
अदितिश्च दितिश्चैव कद्रूश्च विनता तथा। अदितिर्जनयामास देवांस्तु शुभदर्शनान् ॥१०॥
दितीश्च राक्षसान्पुत्रांस्तामसान्सुमहासुरान्। शम्बूकस्तुहयग्रीवोहिरण्याक्षोमहाबलः ॥११॥
हिरण्यकशिपुर्जम्भो मयाद्याः सुमहातपाः। मकरस्तु महावीर्यो ब्रह्मलोकमुपागतः ॥१२॥
ब्रह्माणं मोहयित्वाऽसौ वेदाञ्जग्राह वीर्यवान् ।
ग्रसित्वा च श्रुतीः सोऽथ प्रविवेश महार्णवम् ॥१३॥
ततः सर्वं जगच्छून्यमभवद्धर्मसंकरः। नाऽधीतं न वषट्कारं वर्णाश्रमविवर्जितम् ॥१४॥
ततः प्रजापतिर्देवः सर्वदेवगणैर्वृतः। गत्वा दुग्धाम्बुधिं देवं तुष्टाव शरणं गतः ॥१५॥

होकर सुनो मैं श्रीहरि के मत्स्य कूर्म इत्यादि जो विभवावस्था के रूप हैं उन्हें बतलाता हूँ ॥३॥ जिस एकदीप से उत्पन्न दूसरा दीप उसी के समान होता है, उसी तरह परावस्थावस्थित श्रीभगवान् के व्यूह तथा विभवावस्था भी होते हैं ॥४॥ भगवान् विष्णु के शक्त्यवतार अथवा आवेशावतार जो होते हैं वे तात्कालिक होते हैं । श्रीभगवान् के अर्चावतार तथा विभवावतार भी होते हैं ॥५॥ पर तथा व्यूहावस्थावस्थित श्रीभगवान् के सामर्थ्य, गुण तथा दर्शन के ही समान वे होते हैं । श्रीभगवान् के विभवावतारों में मत्स्यावतार सर्वप्रथम है ॥६॥ प्रजापति ब्रह्माजी ने प्राचीन काल में अत्यन्त ऐश्वर्य सम्पन्न भृगु, मरीचि, अत्रि, दक्ष, कर्दम ॥७॥ पुलस्त्य, पुलह, अङ्गिरा तथा क्रतु इन नव प्रजापतियों की सृष्टि की ॥८॥ उनमें मरीचि महर्षि ने महर्षि कश्यप को उत्पन्न किया । महर्षि कश्यप की चार पत्नियाँ थीं ॥९॥ अदिति, दिति, कद्रू तथा विनता । अदिति ने देखने में सुन्दर लगने वाले देवताओं को उत्पन्न किया ॥१०॥ दिति ने असुरों को उत्पन्न किया। वे तामस प्रकृति के बड़े-बड़े असुर थे । वे शम्बूक, हयग्रीव, महाबली हिरण्याक्ष इत्यादि थे ॥११॥ हिरण्यकशिपु, जम्भ तथा मय आदि बहुत अधिक तप करने वाले थे । उनमें से मकर एक बार ब्रह्मलोक में गया ॥१२॥ वह ब्रह्माजी को मोहित करके वेदों को ले लिया । वही सम्पूर्ण श्रुतियों को खाकर महार्णव में प्रवेश कर गया ॥१३॥ उसके बाद सम्पूर्ण धर्म संकर से युक्त हो गया । न कोई वेदाध्ययन करता था न कहीं वषट्कार होता था । सब वर्णाश्रम धर्म से रहित हो गये ॥१४॥ उसके पश्चात् ब्रह्माजी सभी देवताओं के साथ क्षीरसागर में जाकर श्रीभगवान् की शरणागति किए और उन्होंने श्रीभगवान् की स्तुति

ब्रह्मोवाच

प्रसीद देव ! मे नाथ ! नागपर्यङ्कसंस्थित ! ।
सर्वेश सर्वदेवात्मन्सर्वदेवमयाऽच्युत ! ॥१६॥

आद्यं जगत्तरोर्बीजं मध्येत्वंसर्वतोऽधिकः । अन्तेचपशुनाथस्त्वंस्वेच्छाचारस्त्वमेवच ॥१७॥
त्वमेव चिदचिद्रूपं जगत्सर्वं सनातनम् । त्वमव्यक्तो हि भूतादिः प्रधानपुरुषोऽव्ययः ॥१८॥
त्वमादिमध्यान्तवपुर्जगतः परमेश्वरः । त्वमेव सर्वलोकानामाश्रयः पुरुषोत्तमः ॥१९॥
भूतादिस्त्वं महाद्भूतं भूतसङ्घस्य कारणम् । त्वमहङ्कारमाश्रित्य गुणत्रैविध्यमाप्तवान् ॥२०॥

त्वमादिभूतश्चाऽऽकाशं त्वं वायुः सर्वगो महान् ।
त्वमादिस्त्वमनादिश्च त्वमग्निस्तेजसां निधिः ॥२१॥

त्वमापः सर्वजगतां जीवनः परमेश्वरः । त्वं भूमिर्जगदाधारो भूधरस्त्वं महामते ! ॥२२॥

सरितः सागरस्त्वं वै सर्वस्याऽऽदिस्त्वमेव च ।
देवर्षिः सर्वभूतानि त्वमेवपुरुषोत्तम ! ॥२३॥

त्वयैव प्रेरिता लोकाश्चेष्टन्ते साध्वसाधुषु । दैतेयेनाऽऽहृता वेदाःप्रविष्टाश्चमहार्णवम् ॥२४॥
वेदाधारमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । वेदाश्चैव हि सर्वेषां धर्माणां परितः स्थितिः ॥२५॥
वेदैश्च सर्वदेवानां नित्यं तृप्तिर्भविष्यति । तस्माद्वेदान्समानेतुं त्वमेवाऽर्हसि केशव !॥२६॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो ब्रह्मणा परमेश्वरः । मात्स्यरूपं समास्थाय प्रविवेश महोदधिम् ॥२७॥

की ॥१५॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे शेष शय्या पर विद्यमान भगवन् ! आप मुझ पर कृपा करें हे सर्वेश! हे सभी देवताओं की आत्मा ! हे सर्वदेव मय ! हे अच्युत !॥१६॥ आप अपनी इच्छा से ही पहले जगत् के कारण हैं, बीच में आप सबों से श्रेष्ठ हो जाते हैं और अन्त में आप सभी जीवों के स्वामी होते हैं आप पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं ॥१७॥ आप ही चेतनाचेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् स्वरूप एवं सनातन हैं । आप ही अव्यक्त तथा जीवों के आदि कारण और प्रधान अव्यय पुरुष हैं ॥१८॥ हे परमेश्वर ! आप जगत् के आदि मध्य एवं अन्त शरीरक हैं । आप ही सभी लोकों के आश्रय और पुरुषोत्तम हैं ॥१९॥ आप ही भूतों के कारण हैं महत् स्वरूप तथा भूतसमूह के भी कारण हैं । आप ही अहङ्कार को अपनाकर त्रिगुणात्मक हो गये ॥२०॥ आप ही आदि भूत आकाश हैं सर्वत्र व्यापक महान् वायु हैं । आप ही आदि, अनादि तथा तेजों के आकार अग्नि हैं ॥२१। आप ही सम्पूर्ण जगत् के जीवन स्वरूप जल और परमेश्वर हैं । हे महामते ! आप ही जगत् की आधार भूमि हैं तथा पृथिवी को धारण करने वाले भी हैं ॥२२॥ आप ही सरिता और सागर भी हैं आप ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं । हे पुरुषोत्तम ! आप ही देवर्षि तथा सम्पूर्ण जीव स्वरूप हैं ॥२३॥ आपके ही द्वारा प्रेरित होकर सारे जीव अच्छे अथवा बुरे कामों में प्रवृत्त होते हैं। दैत्यों ने वेदों का अपहरण कर लिया है और वह महार्णव में प्रवेश कर गया है ॥२४॥ इस सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् के आधार वेद ही हैं वेद के ही के चारो ओर सभी धर्म स्थिति हैं ॥२५॥ सभी देवताओं की नित्य तृप्ति वेदों से ही सम्भव है । अतएव हे केशव ! आप ही वेदों को लाने में समर्थ हैं ॥२६॥

तं दैत्यं सुमहाघोरं माकरं रूपमास्थितम् । तुण्डाग्रेण विदार्याऽथ जघानामरपूजितः ॥२८॥
तं हत्वा सर्ववेदांश्च साङ्गोपाङ्गसमन्वितान् । गृहीत्वा प्रददौ तस्मै ब्रह्मणेसमहाद्युतिः ॥२९॥
अन्योन्यमिश्रिता वेदा ग्रसितास्तेनरक्षसा । व्यस्ता भगवात तेन व्यासरूपेणविष्णुना ॥३०॥
पृथक्कृतास्तथा वेदा व्यासेनैव महात्मना । एवं मत्स्यावतारेण रक्षिताः सर्वदेवताः ॥३१॥
श्रुतिप्रदानेनजगत्त्रयं तदा कृत्वा निरातङ्कमहोरमाधवः ।
संस्तूयमानः सुरसिद्धसङ्घैरन्तर्दधे योगिभिरर्चिताङ्घ्रिः ॥३२॥
वासुदेवोहि भगवान्सर्वदेवमयो हरिः ॥३३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे मत्स्यावतारवर्णनं नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३०॥

दो सौ एकतीसवाँ अध्याय

श्रीरुद्र उवाच

यत्कौर्मं वैभवंविष्णोःसर्वलोकनमस्कृतम् । तद्वक्ष्यामिप्रिये ! सम्यक्छृणुष्वैकाग्रचेतसा ॥१॥
अत्रिपुत्रो महातेजा दुर्वासा इति विश्रुतः । प्रचण्डःसर्वलोकानां क्षोभकारी महातपाः ॥२॥

श्रीमहादेवजी ने कहा— इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा कहे जाने पर परमेश्वर हृषीकेश मत्स्य का रूप धारण करके महार्णव में प्रवेश कर गये ॥२७॥ महान् घोर दैत्य को मकर का ही रूप धारण करके उस दैत्य को अपने मुख के अग्रभाग से फाड़कर मार दिये । उस समय देवताओं ने उनकी पूजा की ॥२८॥ उसको मारकर साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण वेदों को लेकर महाकान्ति सम्पन्न वे ब्रह्माजी को प्रदान किए ॥२९॥ उस राक्षस ने परस्पर में एक दूसरे से मिश्रित वेदों को ग्रस लिया था । व्यास रूपधारी भगवान् विष्णु ने उन वेदों को अलग-अलग किया ॥३०॥ वेदों को माहात्मा व्यास ने ही अलग-अलग किया । इस तरह से मत्स्यावतार के द्वारा भगवान् ने सभी देवताओं की रक्षा की ॥३१॥ रमापति भगवान् ने वेदों को प्रदान करके त्रैलोक्य को निर्भय बना दिया । देवता और सिद्ध समूह के द्वारा स्तुति किये जाने वाले तथा योगियों द्वारा पूजित चरण कमल वाले श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये ॥३२॥ श्रीहरि भगवान् वासुदेव सर्व देवमय हैं ॥३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत मत्स्यावतार वर्णन नामक दो सौ तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३०॥

श्रीभगवान् के कूर्मावतार का वर्णन के प्रसङ्ग में दुर्वासा महर्षि द्वारा शाप प्रदान का वर्णन

श्रीरुद्र ने कहा— भगवान् विष्णु का कूर्मावतार नामक जो वैभव है वह सर्वलोक नमस्कृत है ॥१॥ महर्षि अत्रि के महातेजस्वी पुत्र दुर्वासा प्रख्यात हैं । वे महातपा महर्षि सभी लोकों को क्षुब्ध बना देने वाले

य ययौ हिमवत्पृष्ठं ब्रह्मर्षिस्तपसोनिधिः । ममांशभूतो ब्रह्मर्षिः सर्वेषां भयदस्तदा ॥३॥
स कदाचिन्महामेरोः पार्श्वे किन्नरसेविते। सम्प्राप्य देवतास्तत्र पूजयामासनित्यशः ॥४॥
उषितस्तत्र वर्षं तु किन्नरीभिः स पूजितः । महेन्द्रं द्रष्टुकामोऽसौस्वर्लोकंप्रययौमुनिः ॥५॥
तस्मिन्काले महातेजा गजारूढं महेश्वरम् । ददर्श सर्वदेवैस्तं पूज्यमानं शचीपतिम् ॥६॥
तं च दृष्ट्वा स हृष्टात्मा दुर्वासाः सुमहातपाः ।
पारिजातस्रजं तस्मै प्रददौ विनयान्वितः ॥७॥
आदाय देवताधीशस्तां स्रजं गजमूर्द्धनि। विन्यस्य तत्र देवेशः प्रययौ नन्दनं प्रति ॥८॥
करेणाऽऽदाय तां मालांमदोद्रिक्तस्ततोगजः ।
पीडयित्वाऽथचिक्षेपसञ्छिन्नांधरणीतले ॥९॥
ततः क्रुद्धो महातेजा दुर्वासा रक्तलोचनः । प्रशप्तवान्महेन्द्रं तं संतप्तक्रोधवह्निना ॥१०॥

दुर्वासा उवाच

त्रैलोक्यैकश्रिया युक्तो यस्मान्मामवमन्यसे। तस्मात्त्रैलोक्यश्रीर्नष्टा भवत्वेवनसंशयः ॥११॥

रुद्र उवाच

इतिशप्तस्ततः शक्रो जगाम स्वपुरं पुनः। ततः श्रीर्जगतां धात्री क्षणादन्तर्दधे स्वयम् ॥१२॥
अन्तर्द्धानं गता लक्ष्मीस्तदा नष्टं जगत्त्रयम्। यदपाङ्गाश्रितंसर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥१३॥
तस्यामन्तर्द्धानवत्यां सर्वं नष्टतरं भवेत्। ब्रह्मादित्रिदशाः सर्वे गन्धर्वा यक्षकिन्नराः ॥१४॥
दैत्याश्च दानवा नागा मनुष्या राक्षसास्तथा। पशवःपक्षिणःकीटाःसर्वेस्थावरजङ्गमाः ॥१५॥

हैं ॥२॥ वे तपोनिधि ब्रह्मर्षि हिमालय पर गये । मेरे अंश स्वरूप वे ब्रह्मर्षि सबों को भय देने वाले हैं॥३॥ वे एक बार किन्नरों द्वारा सेवित महामेरु पर्वत के सन्निकट सभी देवताओं को प्राप्त करके उनकी प्रतिदिन पूजा करते थे ॥४॥ वे वहाँ पर किन्नरियों के द्वारा पूजित होकर एक वर्ष तक निवास किए । वे मुनि इन्द्र से मिलने के लिए स्वर्ग लोक गये । उस समय हाथी पर चढ़े हुए महातेजस्वी महेश्वर तथा सभी देवताओं से पूजित इन्द्र को वे देखे ॥५-६॥ इन्द्र को देखकर प्रसन्न महातपा दुर्वासा मुनि विनय पूर्वक उनको पारिजात की माला प्रदान किए ॥७॥ देवताओं के स्वामी इन्द्र उस माला को लेकर हाथी के शिर पर रखकर नन्दन वन में चले गये ॥८॥ उसके पश्चात् मदमत्त हाथी ने अपनी सूंड से उठाकर उसको मरोड़कर टूटी हुयी माला को पृथिवी पर फेंक दिया ॥९॥ उससे क्रुद्ध तथा आँखें लाल किए हुए क्रोधाग्नि से संतप्त होकर इन्द्र को शाप दिए ॥१०॥ **दुर्वासा महर्षि ने कहा**— सम्पूर्ण त्रैलोक्य के ऐश्वर्य से युक्त होकर तुम मेरा अपमान करते हो इसीलिए जगत् का पालन करने वाली लक्ष्मी क्षणभर में अन्तर्धान हो जायेगी । इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं हैं ॥११॥ **रुद्र ने कहा**— इस प्रकार से शप्त होकर इन्द्र अपनी नगरी अमरावती में चले गये । उसी समय जगन्माता लक्ष्मी क्षणभर में अन्तर्धान हो गयीं ॥१२॥ जब लक्ष्मीजी अन्तर्धान हो गयीं तो त्रैलोक्य नष्ट हो गया क्योंकि लक्ष्मीजी के कटाक्ष के अधीन ही लोकत्रय है ॥१३॥ लक्ष्मीजी के अन्तर्धान हो जाने पर सबकुछ नष्ट हो गया, ब्रह्मा आदि सभी देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर॥१४॥ दैत्य, दानव, नाग, मनुष्य, राक्षस, पशु-पक्षी, कीड़े सभी स्थावर जङ्गम ॥१५॥ इन सबों को जगन्माता

तया लक्ष्म्या जगन्मात्रा ते सर्वे नाऽवलाकिताः ।
दारिद्र्येणैव विहतास्ते सर्वे दुःखभागिनः ॥१६॥

क्षुत्पिपासार्दितास्सर्वे चुक्रुशुर्गतचेतसः । न ववृषुर्जलधराः सर्वे शुष्का जलाशयाः ॥१७॥
सर्वे ते पादपाःशुष्काःफलपुष्पविवर्जिताः । एतत्सर्वं जगच्छून्यं लक्ष्मीवीक्षणवर्जितम् ॥१८॥
निस्सत्त्वाश्चाभवन्देवा यज्ञभागविवर्जिताः । तदा देवाः सगन्धर्वा दैत्यदानवराक्षसाः ॥१९॥
क्षुत्पिपासार्दिता जग्मुर्ब्रह्माणममितौजसम् । ऊचुस्तं देवदेवेशमब्जयोनिं पितामहम् ॥२०॥

देवाऊचुः

भगवन्क्षुत्पिपासाभ्यां पीडितं हि जगत्त्रयम् । न हुतं न वषट्कारः सर्वधर्मविवर्जितम्॥२१॥
क्षुत्पिपासार्दिताः सर्वे देवदानवमानवाः । त्रातारं सर्वलोकेशं भवन्तं शरणं गताः ॥२२॥
त्रातुमर्हसि देवेश ! क्षुत्पिपासार्दिताञ्जनान् ॥२३॥

रुद्र उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः । उवाच परमप्रीतस्तान्सर्वान्प्रतिमानदः ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं देवताः सर्वे दैत्यगन्धर्वमानवाः । महेन्द्रस्याऽपचारेण सर्वमेतदुपस्थितम् ॥२५॥
सेमुद्भूतमिदं घोरं जगत्सम्वर्त्तकं महत् । दुर्वासाः सुमहात्मा तु यतःक्रोधमवाप्तवान्॥२६॥
तस्मात्क्रोधेन तेनेदं नष्टं लोकत्रयं सुराः । असौ रोषपरीतात्मा क्रोधेन कलुषीकृतः ॥२७॥
जगत्रयं च श्रीनष्टं भवत्वित्याहदुर्मतिः । तच्छापाज्जगतां धात्रीलक्ष्मीर्नारायणप्रिया ॥२८॥

लक्ष्मीजी ने देखा ही नहीं । द्रारिद्र्य के कारण विहत वे सब दुःखी हो गये ॥१६॥ सबके सब भूख तथा प्यास से घबराकर ज्ञानहीन होकर चिल्ला रहे थे । उस समय मेघ वर्षा नहीं करते थे । सभी जलाशय सूख गये ॥१७॥ फल तथा पुष्प से रहित होकर सभी वृक्ष सूख गये । लक्ष्मीजी के कटाक्षपात के अभाव में सम्पूर्ण जगत् शून्य हो गया ॥१८॥ यज्ञभाग से रहित सभी देवता निःसत्त्व हो गये । उसके पश्चात् सभी देवता, गन्धर्व, दैत्य, दानव और राक्षस ॥१९॥ भूख प्यास से पीड़ित होकर अमित तेजस्वी ब्रह्माजी के पास गये । उन लोगों ने देवेश ब्रह्माजी से कहा ॥२०॥ **देवताओं ने कहा**— हे भगवन् त्रैलोक्य भूख-प्यास से पीड़ित है । सारे संसार में कहीं न तो होम होता है औन न वषट्कार होता है । सम्पूर्ण त्रैलोक्य धन से रहित हो गया ॥२१॥ सभी देव, मानव तथा दानव भूख तथा प्यास से पीड़ित हैं । संसार की रक्षा करने वाले सभी आपके शरण में आये हैं ॥२२-२३॥ **रुद्र ने कहा**— इस प्रकार से उन सबों की वाणी सुनकर सम्पूर्ण लोकों के पितामह ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न होकर उन सबों को सम्मान देते हुए कहे॥२४॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— हे सभी देवता, दैत्य, दानव तथा मानवों आप सभी मेरी बात सुनें । महेन्द्र के आपराध के ही कारण यह सब कुछ हुआ है ॥२५॥ संसार को विनष्ट करने वाला भयङ्कर संवर्तक उपस्थित हो गया है । बहुत बड़े महात्मा दुर्वासा इन्द्र से क्रुद्ध हो गये ॥२६॥ हे देवताओं ! उनके क्रोध से ही यह त्रैलोक्य नष्ट हो गया है । वे महर्षि क्रोध से भरकर अत्यन्त दुःखी हो गये ॥२७॥ वे दुर्मति कहे कि यह त्रैलोक्य और त्रैलोक्य की लक्ष्मी नष्ट हो जाय । उनके शाप के कारण जगन्माता लक्ष्मीजी

अन्तर्द्धानं गता देवी जगन्माता महेश्वरी। यदपाङ्गेक्षितालोका भवन्ति सुखितास्सदा ॥२९॥
नाऽलोकिता जगन्मात्रा दुःखभागिन एव हि ।
तस्मात्सर्वे वयं गत्वा दुग्धाब्धौ स्थितमुत्तमम् ॥३०॥
तत्र नारायणं देवमर्चयामः सनातनम्। तस्मिन्प्रसन्ने देवेशे शिवमेतद्भवेज्जगत् ॥३१॥

महादेव उवाच

इतिनिश्चित्य मनसा ब्रह्मा देवगणैर्युतः। भृग्वादिमुनिभिः सार्द्धं प्रययौ क्षीरसागरम् ॥३२॥
क्षीराब्धेरुत्तरतटे ब्रह्मरुद्रादिदेवताः। विष्णुं समर्चयामासुः पौरुषेण विधानतः ॥३३॥
जपन्तोऽष्टाक्षरं मन्त्रं पौरुषं सूक्तमेव च । ध्यायन्तोऽनन्यमनसो जुहुवुः परमेश्वरम् ॥३४॥
तुष्टुवुः स्तवनैर्दिव्यैर्नमश्चक्रुर्विधानतः । ततः प्रसन्नो भगवान्सर्वेषां च दिवौकसाम् ॥३५॥
तेषां सन्दर्शने तस्थौ स्तूयमानो महर्षिभिः । वैनतेयं समारुह्य सर्वदेवमयं विभुम् ॥३६॥
तं दृष्ट्वा जगतामीशं शङ्खचक्रगदाधरम् । पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥३७॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वनमालाविभूषितम्। किरीटहारकेयूरनूपुरैरुपशोभितम् ॥३८॥
तं दृष्ट्वा जगतामीशमानन्दाश्रुपरिप्लुताः। तुष्टुवुर्जयशब्देन नमश्चक्रुर्निरन्तरम् ॥३९॥
ततः प्रोवाच भगवान्कृपया सर्वदेवताः। वरदोऽस्मि वरं देवा वृणीध्वमितिचाऽब्रवीत् ॥४०॥
इति श्रुत्वा तदा सर्वे देवा ब्रह्मपुरोगमाः। ऊचुः प्राञ्जलयो देवमिदं वचनमीश्वरम् ॥४१॥

देवाऊचुः

भगवन्मुनिशापेन संप्रतीदं जगत्त्रयम्। क्षुत्पिपासार्दितं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥४२॥

भगवान् नारायण की प्रियतमा हैं ॥२८॥ वे जगन्माता महेश्वरी अन्तर्धान हो गयीं । उनके ही कटाक्ष से देखा गया जगत् सुखी होता है ॥२९॥ दुःखी जगत् को जगन्माता ने नहीं देखा अतएव हम सभी क्षीरार्णव में जाकर वहाँ पर विद्यमान सनातन भगवान् नारायण की अर्चना करें । उन देवेश के प्रसन्न हो जाने पर यह जगत् कल्याणमय हो जायेगा ॥३०-३१॥ **महादेवजी ने कहा—** इस तरह से मन में निश्चित करके ब्रह्माजी देव समूहों के साथ तथा भृगु आदि मुनियों के साथ क्षीरसागर में चले गये ॥३२॥ क्षीर सागर के उत्तर तट पर ब्रह्मा आदि देवताओं ने भगवान् विष्णु की पुरुष सूक्त से विधि पूर्वक अर्चना की ॥३३॥ वे सभी अष्टाक्षर मन्त्र तथा पुरुष सुक्त का जप करते हुए, अनन्य मन से श्रीभगवान् का ध्यान करते हुए उनके लिए होम किए ॥३४॥ वे दिव्य स्तुतियों से उनकी स्तुति किए और विधि पूर्वक नमस्कार किए । उसके पश्चात् सभी देवताओं पर प्रसन्न होकर भगवान् ॥३५॥ उन सबों को समक्ष महर्षियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए प्रकट हो गये । वे गरुड़ पर चढ़े हुए सर्वदेव मय व्यापक हैं ॥३६॥ शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण किये हुए उन जगत् के स्वामी को श्रीभगवान् पीताम्बर धारण किए हुए, चार भुजाओं वाले, तथा कमल के समान नेत्र वाले ॥३७॥ श्रीवत्स चिह्न तथा कौस्तुभ मणि को वक्षःस्थल पर धारण करने वाले, वनमाला से विभूषित तथा किरीट, हार, केयूर तथा नूपुर से सुशोभित ॥३८॥ उन जगत् के स्वामी को देखकर आनन्द से भरे हुए आंसु बहाते हुए देवता उनकी स्तुति किए और उनका जय जयकार करके श्रीभगवान् को नमस्कार किए ॥३९॥ उसके बाद कृपा करके भगवान् सभी देवताओं से कहे । हे देवताओं मैं वर देने वाला हूँ आप लोग मुझसे वरदान माँगे ॥४०॥ इस बात को सुनकर ब्रह्मा आदि सभी देवता हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से बोले ॥४१॥ **देवताओं ने कहा—** हे भगवन् ! महर्षि दुर्वासा के शाप से इस समय यह त्रैलोक्य देवता, असुर, तथा मानव सबके सब भूख तथा प्यास से दुःखी हैं ॥४२॥ हे पुरुषोत्तम ! इसी

तस्माद्भवन्तं शरणं याता:स्मपुरुषोत्तम ! । त्राहि सर्वमिमंलोकं नान्यस्त्राताभवेत्क्वचित्॥४३॥

रुद्र उवाच

इत्युक्तो दैवतैः सर्वैरच्युतः परमेश्वरः । विचार्यैतदुवाचैतान्देवान्ब्रह्मपुरोगमान् ॥४४॥

श्रीभगवानुवाच

अत्रिसूनोर्मुनेः शापादन्तर्द्धानं गता रमा । कटाक्षदर्शनात्तस्या जगदैश्वर्यसंयुतम् ॥४५॥
तस्माद्यूयं सुराः सर्वे शिवब्रह्मपुरोगमाः । उत्पाट्य मन्दरं शैलं निधाय क्षीरसागरे॥४६॥
मन्दरं घर्घरं कृत्वा सर्पराजेन वेष्टितम्। कुरुध्वं मथनं देवा दैत्यगन्धर्वदानवैः ॥४७॥
उत्पद्यते च सा लक्ष्मीर्जगत्संरक्षणायवै । तया दृष्टा महाभागा भविष्यथ न संशयः ॥४८॥
धारयाम्यहमेवाद्रिं कूर्मरूपेण सम्वृतः । मम शक्त्या सुराःसर्वे भवन्ति च बलीयसः ॥४९॥

रुद्र उवाच

इत्युक्ता देवताःसर्वा हरिणा कमलेक्षणे ! ।
साधुसाध्वितिदेवेशमूचुर्ब्रह्मपुरोगमाः ॥५०॥

संस्तूयमानो भगवानच्युतः सुरसत्तमैः । अन्तर्दधे ततः श्रीमान्सर्वलोकनमस्कृतः ॥
सर्वाधारः सर्वदेवः सर्वत्र समदर्शनः ॥५१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे दुर्वासःशापकथनं नामैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३१॥
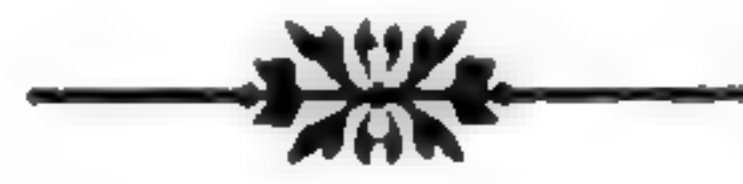
कारण से हमलोग आपके शरण में आये हुए हैं । आप इस सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करें आपको छोड़कर दूसरा कोई इसकी रक्षा करने वाला नहीं है ॥४३॥ **रुद्र ने कहा—** इसी तरह सभी ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा कहे जाने पर भगवान् परमेश्वर विचार करके यह कहे ॥४४॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** महर्षि अत्रि के पुत्र महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण लक्ष्मीजी अन्तर्धान हो गयी हैं । उनके द्वारा कटाक्ष पूर्वक देखे जाने पर यह जगत् ऐश्वर्य सम्पन्न हो जायेगा ॥४५॥ अतएव आप सभी शिवजी तथा ब्रह्माजी के साथ मन्दराचल को उखाड़कर उसे क्षीरसागर में रखकर ॥४६॥ मन्दराचल को सर्पराज वासुकि से वेष्टित करके देवता, दैत्य और गन्धर्व के साथ क्षीर सागर का मन्थन करें ॥४७॥ उससे जगत् की रक्षा करने के लिए लक्ष्मीजी भी उत्पन्न होंगी । उनके द्वारा देख लिए जाने पर आपलोग भाग्यवान् हो जायेंगे इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं हैं ॥४८॥ मैं कूर्म रूप धारण करके उस पर्वत को धारण करूँगा । मेरी शक्ति से सभी देवता बलवान् हो जायेंगे ॥४९॥ **रुद्र ने कहा—** कमलनयन श्रीहरि के इस प्रकार से कहने पर ब्रह्मा आदि सभी देवता श्रीभगवान् से बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहे ॥५०॥ श्रेष्ठ देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए सर्वलोक नमस्कृत श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये भगवान् सबों के आधार और सभी देवतामय, सर्वत्र समदर्शन हैं ॥५१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत दुर्वासा मुनि के शाप का वर्णन नामक दो सौ एकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३१।।

दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय

शङ्कर उवाच

ततः सुरगणाः सर्वे दानवाद्या महाबलाः। उत्पाट्य मन्दरंशैलं चिक्षिपुः पयसांनिधौ ॥१॥
ततो नारायणः श्रीमान्भगवान्भूतभावनः। कूर्मरूपेण तं शैलं दधाराऽमितविक्रमः ॥२॥
अनादिमध्यान्तवपुर्विश्वरूपः सनातनः। अधारयन्गिरिवरं स्वपृष्टे जगदीश्वरः ॥३॥
तथैकेन भुजेनैव शिखरं सर्वगोऽव्ययः। ततो देवासुराःसर्वे ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥४॥
सर्पराजेन सम्वेष्ट्य घर्घरं मन्दराचलम्। मथ्यमानेऽथ दुग्धाब्धौ दैवतैः सुमहाबलैः ॥५॥
उत्पादनार्थं लक्ष्म्याश्च सर्वएव महर्षयः। उपोष्य नियमं कृत्वा जेपुः श्रीसूक्तमेव च ॥६॥
सहस्रनामपठनं चक्रुर्दिव्या द्विजोत्तमाः। एकादश्यां तु शुद्धायां मथ्यमाने महाम्बुधौ ॥७॥
उपोष्यऋषयः सर्वेजेपुः श्रीमन्त्रमुत्तमम्। काङ्क्षमाणाःश्रियोजन्म लक्ष्मीनारायणंहरिम् ॥८॥
ध्यात्वासमर्चयामासुर्द्विजाव्या मुनिसत्तमाः। ततस्तस्मिन्मुहूर्ते तुमथ्यमानेमहाम्बुधौ ॥९॥
समभूत्तत्र प्रथमं कालकूटं महाविषम्। महापीडं महाघोरं सम्वर्ताग्निसमप्रभम् ॥१०॥
दृष्ट्वा प्रदुद्रुवुः सर्वे भयार्त्ता देवदानवाः। ततस्तान्विद्रुतान्दृष्ट्वा भयार्त्तान्सुरसत्तमान् ॥११॥
तान्निवार्याऽब्रवंवाक्यमहं तत्र शुभेक्षणे !। भोभोदेवगणाः सर्वे न भेतव्यं विषं प्रति ॥१२॥
अहमाहारयिष्यामि कालकूटं महाविषम्। इत्युक्तास्ते मयासर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥१३॥

कूर्मावतार वर्णन के प्रसङ्ग में लक्ष्मीजी की प्राप्ति के लिए देवताओं द्वारा क्षीरसागर के मन्थन का वर्णन

शङ्करजी ने कहा— उसके पश्चात् सभी देवता तथा महाबलवान् दानव आदि मन्दराचल को उखाड़कर क्षीरसागर में डाल दिए ॥१॥ उसके पश्चात् भूत भावन श्रीभगवान् कूर्म (कच्छप) का रूप धारण करके अमित पराक्रमी वे उस मन्दराचल पर्वत को धारण किए ॥२॥ आदि, अन्त तथा मध्य से रहित विश्वरूप तथा सनातन जगत् के स्वामी श्रीभगवान् अपने पीठ पर उस श्रेष्ठ पर्वत को धारण किए ॥३॥ तथा सर्वत्र व्याप्त वे भगवान् एक हाथ से पर्वत के शिखर को धारण किए। उसके पश्चात् सभी देवता और असुर मिलकर क्षीरसागर का मंथन किए ॥४॥ सर्पराज से वेष्टित करके उस घर्घर मन्दराचल के द्वारा महाबलवान् देवताओं द्वारा मथे जाते समय, लक्ष्मी को उत्पन्न करने के लिए सभी महर्षि उपवास करके नियम पूर्वक श्रीसूक्त का जप किए ॥५-६॥ वे दिव्य दिजोत्तम सहस्रनाम का पाठ किए। शुद्ध एकादशी के दिन क्षीरार्णव के मथे जाने पर ॥७॥ ऋषियों ने उपवास करके श्रीमन्त्र का जप किया। श्रीदेवी का जन्म होना वे चाहते थे। इसलिए उन लोगों श्रीहरि लक्ष्मी नारायण की श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा श्रेष्ठ मुनियों ने अच्छी तरह से पूजा की। उसके बाद उसी मुहूर्त में जबकि महासागर मथा जा रहा था ॥८-९॥ वहाँ पर सर्वप्रथम कालकूट महाविष उत्पन्न हुआ। वह अत्यधिक पीड़ा देने वाला अत्यन्त भयङ्कर संवर्ताग्नि के समान कान्ति वाला था ॥१०॥ उसको देखकर भयभीत होकर सभी देवता और दानव भाग चले। उसके बाद उन श्रेष्ठ देवताओं को भागे हुए देखकर ॥११॥ उन देवताओं को रोककर मैने कहा। हे सभी देवताओं ! आप लोग इस विष को देखकर डरें नहीं ॥१२॥ मैं इस विष को अपना आहार बना लूँगा। इस तरह से मेरे

साधुसाध्विति वाक्यैर्मां तुष्टुवुः प्रणता भृशम् ।
तद्दृष्ट्वा मेघसङ्काशं प्रादुर्भूतं महाविषम् ॥१४॥

ध्यात्वा नारायणं देवं हृदये गरुडध्वजम्। उदयादित्यसङ्काशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१५॥
श्रीभूमिसहितं देवं तप्तकाञ्चनकुण्डलम्। एकाग्रमनसा ध्यात्वा सर्वदुःखहरं प्रभुम् ॥१६॥
नामत्रयं महामन्त्रं जप्त्वा भक्त्या समन्वितः। तद्विषं पीतवान्घोरमाद्यं सर्वभयङ्करम् ॥१७॥
नामत्रयप्रभावाच्च विष्णोः सर्वगतस्य वै। विषं तदभवज्जीर्णं लोकसंहारकारकम् ॥१८॥
अच्युतानन्तगोविन्दइतिनामत्रयं हरेः। योजपेत्प्रयतो भक्त्या प्रणवाद्यं नमोऽन्तकम् ॥१९॥
तस्य मृत्युभयंनास्ति विषरोगाग्निजं महत्। नामत्रयं महामन्त्रं जपेद्यः प्रयतात्मवान् ॥२०॥

कालमृत्युभयं चाऽपि तस्य नास्ति किमन्यतः ।
इतिनामत्रयेणैव पीतं देवि ! मया विषम् ॥२१॥

ततः प्रहृष्टास्त्रिदशास्तुष्टुवुर्मां सुविस्मिताः। मां प्रणम्य पुनर्देवा ममन्थुःक्षीरसागरम् ॥२२॥
तस्मिन्प्रमथ्यमाने तु मयादेवैश्चभामिनि ! । ज्येष्ठादेवी समुत्पन्नारत्नस्रग्वाससाऽऽवृता॥२३॥
उत्पन्ना साऽब्रवीद्देवान्किं कर्त्तव्यं मयेति वै। तामब्रुवंस्तु ते देवीं सर्वदेवगणाभृशम् ॥२४॥

देवाऊचुः

येषां गृहान्तरे नित्यं कलहः सम्प्रवर्तते। तत्ते स्थानं प्रयच्छामो वस तत्राऽशुभान्विता ॥२५॥
परुषं भाषणं नित्यं वदन्त्यनृतवादिनः। सन्ध्याकाले तु येपापाःस्वपन्ति मलचेतसः॥२६॥

द्वारा कहे जाने पर इन्द्र आदि देवता ॥१३॥ बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कहकर अत्यन्त नम्र होकर मेरी स्तुति किए । उस मेघ के समान काले उत्पन्न हुए विष को देखकर ॥१४॥ मैंने हृदय में गरुडध्वज नारायण का ध्यान करके श्रीदेवी, भूदेवी के साथ तप्त सुवर्ण के समान चमकते हुए कुण्डल को घारण करने वाले सभी दुःखों का हरण करने वाले भगवान् नारायण का एकाग्रमन से ध्यान करके उनके नामत्रय रूप महामन्त्र का जप करके भक्ति पूर्वक मैं उस आद्य, सबों के लिए भयङ्कर विष को पी लिया ॥१५-१७॥ सर्वत्र व्यापक भगवान् विष्णु के तीन नामों के प्रभाव से लोक का संहार करने वाला वह विष पच गया॥१८॥ अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द इन तीन नामों के आदि में प्रणव लगाकर तथा अन्त में नमः लगाकर जो सावधानी तथा भक्ति पूर्वक जो जपता है उसको रोग तथा अग्नि जन्य मृत्यु का भय नहीं होता है । जो सावधान पुरुष इस तीन नाम रूप महामन्त्र को प्रतिदिन जपता है ॥१९-२०॥ उसको काल तथा मृत्यु जन्य भय नहीं होता है दूसरों की क्या बात है ? हे देवि ! इन तीन नामों से ही मैंने उस महाविष को पी लिया ॥२१॥ उसके पश्चात् प्रसन्न हुए देवता आश्चर्यिय होकर मेरी स्तुति किए । मुझको प्रणाम करके देवता पुनः क्षीर सागर का मंथन लगे ॥२२॥ हे भामिनि ! मेरे तथा देवताओं द्वारा समुद्र को मथते समय हजारों रत्नों एवं वस्त्रों को धारण की हुयी ज्येष्ठा देवी उत्पन्न हुयी ॥२३॥ उत्पन्न होते ही उन्होंने देवताओं से पूछा कि मैं क्या करूँ ? उन देवी को वे देवता गण बहुत कहे ॥२४॥ **देवताओं ने कहा**— जिन लोगों के घर में सदा कलह ही होता रहता है हमलोग तुमको उसी घर में स्थान को प्रदान करते हैं। वहाँ तुम अशुभ से युक्त रहो ॥२५॥ जो लोग सदा कठोर तथा झूठ बोलते हैं जो दूषित अन्तःकारण वाले

तेषां वेश्मनि सन्तिष्ठ दुःखदारिद्र्यदायिनी । कपालकेशभस्मास्थितुषाङ्गाराणि यत्र तु ॥२७॥
तत्र ते सततं स्थानंभविष्यति न संशयः । यस्य वेश्म कपालास्थिभस्मकेशादिचिह्नितम् ॥२८॥

तद्भजस्वाऽशुभे ! नित्यं कलिना सह नित्यशः ।
अकृत्वा पादयोः शौचं यस्त्वाचामति दुर्मतिः ॥२९॥
तं भजस्व महादेवि ! कलुषेण भृशं वृतम् ।
तुषाङ्गारकपालाश्मवालुकावस्त्रचर्मभिः ॥३०॥

दन्तधावनकर्तारो भविष्यन्ति नराधमाः। रमस्व कलिना देवि ! तेषां वेश्मसु नित्यशः॥३१॥
तिलपिष्टं कलञ्जञ्चकलिङ्गं शिग्रुगृञ्जनम् । छत्राकं विड्वराहंचबिल्वं कोशातकीफलम् ॥३२॥
अलाबुंच पलाण्डुंच ये खादन्ति नराधमाः । तेषां गेहे तव स्थानं देवि दारिद्र्यदे ! सदा ॥३३॥

रुद्र उवाच

इत्यादिश्य सुराःसर्वे ज्येष्ठांच कलिवल्लभाम् ।
पुनश्चमथनं चक्रुःक्षीराब्धेःसुसमाहिताः ॥३४॥

ततश्च वारुणीदेवी समुत्पन्ना शुभानने !। अनन्तो नागराजोऽथतां जग्राह सुलोचनाम्॥३५॥
ततस्तत्र समुत्पन्ना सर्वाभरणभूषिता । वैनतेयस्य भार्याऽभूत्सर्वलक्षणशोभिता ॥३६॥

ततोऽप्सरोगणा दिव्या गन्धर्वाश्च महौजसः ।
जज्ञिरे रूपसम्पन्ना मधुगायनतत्पराः ॥३७॥

ऐरावतस्ततोजज्ञे तथैवोच्चैःश्रवा हयः । धन्वतरिः पारिजातः सुरभिः सर्वकामधुक् ॥३८॥
एतान्सर्वान्सहस्राक्षो जग्राह प्रीतमानसः । ततः प्रभातसमये द्वादश्यामुदिते रवौ ॥३९॥

सायंकाल सोते हैं ॥२६॥ उन्हीं लोगों के घर में दुःख तथा दारिद्र्य प्रदान करने वाली तुम रहो । जहाँ पर खोंपड़ी, केश तथा भूस्सी गिरी रहे वहाँ तुम्हारा निरन्तर निवास होगा जिसके घर में खोपड़ी, केश, हड्डी, भस्म आदि पड़े रहें ॥२७-२८॥ वहाँ तुम कलि के साथ सदैव रहा करो । जो मूर्ख दोनों पैरों को धोए विना भोजन करता है ॥२९॥ हे देवि ! अत्यधिक पाप से युक्त उस मनुष्य के साथ ही तुम रहा करो । भूस्सी अङ्गार, कपाल, पत्थर, बालू, वस्त्र तथा चमड़े से जो अपने दाँतों को साफ करने वाले अधम बहुत से होंगे हे देवि ! उन सबों के घर में तुम कलि के साथ रहा करो ॥३०-३१॥ तिल की पिण्डी, कलंज, कलिङ्ग, शिग्रु तथा गाजर, छत्राक, ग्राम सूकर, विल्व तथा कोशातकी फल ॥३२॥ गोल लौकी, और प्याज जो नराधाम खाते हैं, हे दारिद्र्य प्रदान करने वाली देवि उन सबों के ही गृह में तुम्हारा स्थान होगा॥३३॥ **रुद्र ने कहा**— इस तरह से कलि बल्लभा ज्येष्ठा देवी को आदेश देकर फिर अच्छी तरह से समाहित वे क्षीरार्णव का मंथन करने लगे ॥३४॥ उसके बाद वारुणी देवी उत्पन्न हुयी । उसको नागराज अनन्त (शेष) ने ग्रहण किया ॥३५॥ उसके बाद सभी आभूषणों से भूषित तथा सभी लक्षणों से सुशोभित गरुड़ की पत्नी उत्पन्न हुयी ॥३६॥ उसके पश्चात् दिव्य अप्सराएँ तथा गन्धर्वों का समूह उत्पन्न हुआ । वे सब मधुर गीत गा रहे थे तथा रूप सम्पन्न थे ॥३७॥ उसके पश्चात् ऐरावत हाथी और महाओजस्वी उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा उत्पन्न हुआ । फिर धन्वन्तरि, पारिजात तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली

मथ्यमाने पुनस्तस्मिन्देवैरिन्द्रपुरोगमैः । ततः प्रहृष्टवदनैः स्तूयमाना महर्षिभिः ॥४०॥
उत्पन्ना श्रीमहालक्ष्मीः सर्वलोकेश्वरी शुभा । बालार्ककोटिसङ्काशा कनकाङ्गदभूषिता ॥४१॥
हेमाम्बुजसमासीना सर्वलक्षणशोभिता । पद्मपत्रविशालाक्षी नीलकुञ्चितमूर्द्धजा ॥४२॥
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी दिव्यपुष्पैरलङ्कृता । नानारत्नमयैर्दिव्यैः सर्वैराभरणैर्युता ॥४३॥
तनुमध्या जगद्धात्री पीनोन्नतपयोधरा । चतुर्हस्ता विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना ॥४४॥
वसुपात्रं मातुलुङ्गं स्वर्णपद्मयुगं शुभम् । बिभ्राणा हस्तकमलैः सर्वाभरणभूषितैः ॥४५॥
अम्लानपङ्कजां मालां धारयन्ती ह्युरःस्थले । ददृशुस्तां महादेवीं सर्वलोकहितैषिणीम् ॥४६॥
ईश्वरीं सर्वभूतानां मातरं पद्ममालिनीम् । नारायणीं जगद्धात्रीं नारायणहृदालयाम् ॥४७॥
तां विलोक्य महालक्ष्मीं प्रहृष्टाः सर्वदेवताः ।
अवादयन्त पटहान्दिवि देवगणा भृशम् ॥४८॥
ववृषुःपुष्पवर्षाणि वनदेव्यो निरन्तरम् । जगुर्गन्धर्वपतये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४९॥
ववुःपुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ।
जज्वलुश्चाऽग्नयः शान्ताः प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥५०॥
रजताद्रिनिभैर्दिव्यैश्चतुर्दन्तैर्महागजैः । सुधापूर्णैरत्नकुम्भैस्सिच्यमानां स्वमूर्धनि ॥५१॥
तां दृष्ट्वा मुनयस्सर्वे जयशब्दैर्निरन्तरम् । स्तुतिभिः पुष्कलाभिश्च नमश्चक्रुस्समन्ततः ॥५२॥

सुरभि गौ उत्पन्न हुयी ॥३८॥ इन सबों को प्रसन्न होकर इन्द्र ने ग्रहण कर लिया । उसके पश्चात् द्वादशी के दिन प्रातःकाल सूर्य के उदित होने पर ॥३९॥ इन्द्र आदि देवताओं द्वारा क्षीर सागर के मथे जाते समय जब कि प्रसन्नता पूर्वक महर्षि गण स्तुति कर रहे थे ॥४०॥ सम्पूर्ण लोकों की स्वामिनी श्रीमहालक्ष्मीजी उत्पन्न हुयीं । वे बाल सूर्य के समान तथा सुवर्ण के अङ्गद से भूषित थीं ॥४१॥ वे सुवर्ण कमल पर बैठी थीं तथा सभी लक्षणों से सुशोभित थीं । पद्मदल के समान उनके बड़े-बड़े नेत्र थे तथा उनके काले घुंघराले केश थे ॥४२॥ उनके अङ्गों में दिव्य चन्दन लगा था तथा वे दिव्य पुष्पों से अलंकृत थीं । अनेक रत्नों से निर्मित दिव्य अलंकारों से वे अलंकृत थीं ॥४३॥ जगन्माता लक्ष्मीजी की कमर पतली थी तथा उनके स्तन मोटे तथा उठे हुए थे । उनके चार हाथ थे, बड़े-बड़े नेत्र थे और उनका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान आह्लादक था ॥४४॥ सभी अलङ्कारों से अलंकृत वे अपने हस्त कमल में वसुपात्र, मतुलुङ्ग दो सुन्दर स्वर्णिम कमल धारण की थीं ॥४५॥ वे अपने वक्षःस्थल पर कभी भी नहीं कुम्हलाने वाले कमल की माला को धारण की थीं । देवताओं ने सर्वलोक हितैषिणी महादेवी को देखा ॥४६॥ सम्पूर्ण जगत् की तथा सम्पूर्ण लोकों की माता, कमल की माला को धारण की हुयी भगवान् नारायण के हृदय में निवास करने वाली जगन्माता नारायणी को सबों ने देखा ॥४७॥ उन महालक्ष्मीजी को देखकर सभी देवता प्रसन्न हो गये। स्वर्गलोक में देवताओं ने बहुत अधिक पटह बजाया ॥४८॥ वन देवियाँ उन पर निरन्तर पुष्पों की वर्षा कर रही थीं ॥४९॥ पवित्र हवायें चलने लगीं और सूर्य की कान्ति सुन्दर हो गयी । सभी अग्नियाँ जल उठीं और दशो दिशाएँ शान्त तथा प्रसन्न हो गयीं ॥५०॥ चाँदी के पर्वत के समान दिव्य तथा चार दाँतों वाले हाथियों द्वारा अमृत भरे रत्न के घड़ो से उनके शिर पर सिंचन करती हुयी ॥५१॥ उन लक्ष्मीजी

अनन्तरं शीतरश्मिरुदगात्क्षीरसागरे। सुधामयूखवान्सोमो मातुर्भ्राता सुखावहः ॥५३॥
नक्षत्राधिपतिश्चाभूच्चन्द्रो वै लोकमातुलः। ततः प्रिया हरेः पुण्या तुलसी लोकपावनी ॥५४॥
समुत्पन्ना जगद्धात्री पूजार्थं शार्ङ्गिणो हरेः। ततः प्रहृष्टमनसः सर्वे देवा दिवौकसः ॥५५॥
तं शैलं पूर्ववत्स्थाप्य परिपूर्णमनोरथाः। समेत्य मातरं सर्वे शिवब्रह्मपुरोगमाः ॥५६॥
स्तुत्वा नामसहस्रेण जेपुः श्रीसूक्तसंहिताम्। ततः प्रसन्ना सा देवी सर्वान्देवानुवाचह ॥५७॥

श्रीरुवाच

वंर वृणीध्वं भद्रं वो वरदाऽहं सुरोत्तमाः ॥५८॥

रुद्र उवाच

ततः प्रहृष्टवदनास्सर्वएव दिवौकसः। ऊचुः प्राञ्जलयो देवाः श्रियं नम्रात्ममूर्तयः ॥५९॥

देवाऊचुः

प्रसीद कमले ! देवि ! सर्वलोकेश्वरप्रिये ! ।
विष्णोर्वक्षःस्थले देवि ! भव नित्याऽनपायनी ॥६०॥
त्रैलोक्यं न त्वया देवि ! त्याज्यंहि परमो वरः ।
यदपाङ्गाश्रितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥६१॥
त्वया विलोकिताःसर्वे प्रभवन्ति दिवौकसः ।
माता रुद्रादिदेवानामैश्वर्यं त्वत्कटाक्षतः ॥
एतदिच्छामहे देवि ! जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥६२॥

रुद्र उवाच

इत्युक्ता दैवतैः सर्वैर्लोकमाता महेश्वरी। एवमस्त्विवति तान्देवान्प्राह नारायणप्रिया ॥६३॥

को देखकर सभी मुनिगण सदा उनका जय-जयकार करते हुए बहुत अधिक स्तुतियों को करके उनको नमस्कार किए ॥५२॥ उसके पश्चात् चन्द्रमा क्षीर सागर से उत्पन्न हुए। उनकी किरणें अमृत से परिपूर्ण थीं तथा अपनी माता तथा भाई को सुख देने वाली थी ॥५३॥ संसार के माता चन्द्रमा नक्षत्रों के स्वामी हो गये। उसके बाद श्रीहरि की प्रियतमा संसार को पवित्र करने वाली तथा जगन्माता तुलसी शार्ङ्गधारी श्रीहरि की पूजा के लिए उत्पन्न हुयीं। उससे स्वर्ग निवासी सभी देवता प्रसन्न हो गये ॥५४-५५॥ उस पर्वत को पहले के ही समान स्थापित करके परिपूर्ण मनोरथ वाले जगन्माता लक्ष्मी के पास आकर शिव, ब्रह्मा आदि सभी ॥५६॥ सहस्रनाम से उनकी स्तुति करके श्रीसूक्त संहिता का जप किए। उसके बाद प्रसन्न होकर लक्ष्मीजी सभी देवताओं से कहीं ॥५७॥ **लक्ष्मीजी ने कहा**— हे देवताओं आपलोग मुझसे वर माँगो मैं वर देने वाली हूँ ॥५८॥ **रुद्र ने कहा**— उसके बाद प्रसन्न मुख वले सभी देवता शिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर कहे ॥५९॥ **देवताओं ने कहा**— सभी लोकों की प्रियतमे हे लक्ष्मी देवि ! आप प्रसन्न होए और हे देवि ! भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में नित्य निवास करने वाली हो जायँ ॥६०॥ हे देवि ! आप कभी त्रैलोक्य को नहीं त्यागें यही हमलोगों के लिए सर्वश्रेष्ठ वरदान है। क्योंकि आपकी ही कृपा कटाक्ष के अधीन जंगम स्थावरात्मक सम्पूर्ण जगत् है ॥६१॥ आपके द्वारा ही देखे जाकर सभी देवता समर्थ होते हैं। आप ब्रह्मा तथा रुद्र आदि देवताओं की माता हैं। आपके ही कृपा कटाक्ष से उनको ऐश्वर्य प्राप्त है।

ततो नारायणः श्रीशः शङ्खचक्रगदाधरः । तथैवाऽऽविरभूद्ब्रह्मा पूर्ववत्क्षीरसागरे ॥६४॥
ततः प्रतुष्टुवुर्देवा नमस्कृत्य जनार्दनम् । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे प्रहृष्टवदनाः शुभाः ॥६५॥

देवाऊचुः

गृहाण देवीं सर्वेश ! महिषीं तव वल्लभाम् ।
जगत्संरक्षणार्थाय लक्ष्मीमनपगामिनीम् ॥६६॥

रुद्र उवाच

इत्युक्त्वा मनुयः सर्वे देवा ब्रह्मपुरोगमाः । नानारत्नमये दिव्ये पीठे बालार्कसन्निभे ॥६७॥
निवेश्य देवीं देवं च आनन्दाश्रुपरिप्लुताः । नानारत्नमयैः शुभ्रैः स्वर्णकुम्भैर्मनोरमैः ॥६८॥
सुधामृतजलैःपूर्णैः श्रीमन्मन्त्राभिमन्त्रितैः । अत्राभिषेचनं चक्रुस्तयोर्मूर्ध्नोःसुधाजलैः ॥६९॥
वैष्णवैश्चानुवाकैश्च श्रीसूक्तेन महर्षयः । दिव्याम्बरैर्दिव्यमाल्यैर्नानारत्नविभूषितैः ॥७०॥
लक्ष्म्या सह समासीनमर्चयामासुरच्युतम् । गन्धैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैश्च सुधामयैः ॥७१॥
अप्राकृतैः फलैर्दिव्यैरर्चयामासुरीश्वरम् । अमृतादुत्थिता देवी तुलसी कोमलाशुभा ॥७२॥
तया श्रीपादयुगलमर्चयामासुरञ्जसा । प्रदक्षिणमनुव्रज्य नमस्कृत्य मुहुर्मुहुः ॥७३॥
तुष्टुवुः स्तुतिभिर्देवा हर्षपूर्णाश्रुविक्लवाः । ततः प्रसन्नो भगवान्सर्वदेवेश्वरो हरिः ॥
अभीष्टान्प्रददौ तेभ्यो वरान्देव्या सह प्रभुः ॥७४॥

हे देवि ! हमलोग यही चाहते हैं । हे जगन्मातः ! आपको नमस्कार है ॥६२॥ **रुद्र ने कहा**— इस तरह से सभी देवताओं के कहने पर लोक माता महेश्वरी, तथा भगवान् नारायण की प्रिया ने देवताओं से कहा ऐसा ही होगा ॥६३॥ उसके पश्चात् शङ्ख, चक्र, गदा को धारण करने वाले लक्ष्मीपति भगवान् नारायण क्षीर सागर में प्रकट हो गये ॥६४॥ उसके बाद भगवान् नारायण को नमस्कार करके देवताओं ने जनार्दन भगवान् की स्तुति की । सभी प्रसन्न मुख होकर हाथ जोड़े हुए कहे ॥६५॥ **देवताओं ने कहा**— हे सर्वेश! आप अपनी प्रियतमा रानी को जगत् की रक्षा करने के लिए आपसे कभी भी अलग नहीं होने वाली लक्ष्मीजी को स्वीकार करें ॥६६॥ **रुद्र ने कहा**— इस तरह सभी महर्षि तथा देवगण अनेक रत्नमय तथा बाल सूर्य के समान कान्ति वाले दिव्य सिंहासन पर ॥६७॥ श्रीभगवान् और लक्ष्मजी को बैठाकर आनन्दाश्रु से परिप्लुत होकर अनेक रत्नमय चमकते हुए मनोहर सुवर्ण घटों से ॥६८॥ अमृतमय जल से परिपूर्ण करके मन्त्रों से अभिमन्त्रित घटों से उन दोनों का अमृत मय जल से अभिषेक किए ॥६९॥ विष्णु अनुवाक तथा श्रीसूक्त से महर्षियों ने दिव्य वस्त्रों तथा अनेक रत्नों से विभूषित दिव्य मालाओं, चन्दन, धूप, दीप तथा अमृतमय नैवेद्यों तथा अप्राकृत फलों से लक्ष्मीजी के साथ बैठे हुए भगवान् अच्युत की पूजा किए । अमृत से उत्पन्न कोमल तथा शुभ तुलसीदेवी से ॥७०-७२॥ बार-बार प्रदक्षिणा और नमस्कार करके उनके दोनों चरणों की पूजा किए ॥७३॥ हर्ष पूर्ण आँसू से परिपूर्ण नेत्रों वाले देवताओं ने स्तुति की उसके पश्चात् सभी देवताओं के स्वामी श्रीभगवान् लक्ष्मीदेवी के साथ देवताओं के अभीष्ट वरदान

ततः सुहृष्टाः सुरमानुषाद्या लक्ष्मीकटाक्षार्पितदृष्टिपूताः ।
प्रभूतधान्यार्थयुता निरन्तरं सुखं परं प्रापुरनामया भृशम् ॥७५॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चञ्चात्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे
लक्ष्म्युत्पत्तिर्नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३२॥

दो सो तैंतिसवाँ अध्याय

शङ्करउवाच

ततः प्रोवाच भगवान्सुरांश्चैव महामुनीम्। देव्या सह प्रहृष्टात्मा सर्वलोकहितायवै॥१॥

श्रीभगवानुवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वेदिवताश्च महाबलाः। एकादशी महापुण्या सर्वोपद्रवनाशिनी॥२॥
लक्ष्मीसन्दर्शनार्थाय भवद्भिःसमुपोषिता। अद्यप्रभृति लोकानामुपोष्यासा भविष्यति॥३॥
पूजितोऽस्मि श्रिया सार्धं भवद्भिर्मुनिसत्तमाः ।
द्वादश्यां तु विशेषेण तुलस्या च तथा श्रिया ॥४॥
यस्मात्तु पूजितोऽस्म्यत्र भवद्भिर्मुनिसत्तमाः। तस्मात्तु सर्वदा पुण्या द्वादशी ममवल्लभा॥५॥
अद्यप्रभृति ये लोका उषिताः पूर्ववासरे। द्वादश्यामुदिते भानौ श्रद्धया परया युताः॥६॥

दिए ॥७४॥ उसके पश्चात् श्रीलक्ष्मीजी के कटाक्ष से पवित्र हुए देवता तथा मनुष्य आदि प्रसन्न होकर प्रभूत धन-धान्य से सम्पन्न होकर बहुत अधिक सुखी होकर निरन्तर परम सुख को प्राप्त किए ॥७५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत लक्ष्मीजी की उत्पत्ति वर्णन नामक दो सौ बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३२।।

लक्ष्मीजी के प्रादुर्भाव के समय देवताओं द्वारा की गयी स्तुति, उसी के अन्तर्गत एकादशी के दिन उपवास करने का माहात्म्य वर्णन

शङ्करजी ने कहा— उसके पश्चात् श्रीभगवान् ने देवताओं और महामुनियों से प्रसन्न होकर लक्ष्मीजी के साथ सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिए कहा ॥१॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे सभी देवताओं और मुनियों आपलोग मेरी बात सुनें । सभी उपद्रवों का नाश करने वाली लक्ष्मीजी का दर्शन प्राप्त करने के लिए अत्यन्त पवित्र एकादशी को उपवास किया करें । आज से सभी लोगों के लिए वह उपवास करने योग्य होगा ॥२-३॥ हे मुनिश्रेष्ठों ! आपलोगों ने मेरी लक्ष्मीजी के साथ पूजा द्वादशी के दिन विशेष रूप से तुलसी तथा लक्ष्मीजी के साथ मेरी पूजा की ॥४॥ हे मुनि श्रेष्ठों ! चूकि आपलोगों ने मेरी पूजा की है अतएव तुलसी मेरी अत्यन्त पवित्र तथा मुझको सदैव प्रिय होगी ॥५॥ आज से मेरे जो भक्त पहले दिन

ये पूजयन्ति मां भक्तास्तुलस्याच श्रिया सह ।
सर्वे ते बन्धनिर्मुक्ताः प्राप्नुवन्तिपदंमम ॥७॥
नार्चयन्ति च ये वै मां द्वादश्यां पुरुषोत्तमम् ।
ते नराः पापकर्माणो मम मायाविमोहिताः ॥८॥

ये नार्चयन्ति पापिष्ठा नरा नरकगामिनः। तान्यापान्विषयैर्बद्धान्मम पूजापराङ्मुखान् ॥
क्षिपत्यजस्रं संसारे माया मम दुरत्यया ॥९॥

रुद्र उवाच

अद्यप्रभूति ये लोका एकादश्यां सुरोत्तमाः ! ।
भुञ्जतेऽपि निरयं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥१०॥

एवमुत्तवातु भगवान्परमात्मा सनातनः। संस्तूयमानो मुनिभिः प्रययौ स्वकमालयम्॥११॥
क्षीराब्धौशेषपर्यङ्के विमाने सूर्यसन्निभे। देव्या सह विशालाक्ष्या रमया परमेश्वरः॥१२॥
दर्शनार्थं सुराणां च तत्र सन्निहितोऽभवत्। ततः सुरगणः सर्वेकूर्मरूपं सनातनम्॥१३॥
भत्तया सम्पूजयित्वाऽथ तुष्टुबुर्हृष्टमानसाः। ततः प्रसन्नो भगवन्कूर्मरूपी जनार्दनः॥१४॥

भगवानुवाच

वरं वृणीध्वं देवेशा यद्वो मनसि वर्तते ॥१५॥

रुद्र उवाच

ततो देवगणाः सर्वे कूर्मरूपं जनार्दनम्। ऊचुःप्राञ्जलयः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः॥१६॥

देवाऊचुः

शेषस्य दिग्गजानां च सहायार्थं महाबल ! ।
धर्तुमर्हसि देवेश ! सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥१७॥

उपवास करके द्वादशी में सूर्य के उदय होने पर अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक तुलसी तथा लक्ष्मीजी के साथ मेरी पूजा करेंगे वे सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर मेरे धाम में जायेंगे ॥६-७॥ द्वादशी के दिन जो लोग मेरी पूजा नहीं करेंगे वे मेरी माया से मोहित मनुष्य पापी होंगे ॥८॥ जो पापी मनुष्य मेरी पूजा नहीं करेंगे उन नरक गामी पापी तथा विषयों में बद्ध हुए मेरी पूजा से पराङ्मुख मनुष्यों को मेरी दुरत्यया माया सदा संसार में डालती रहेगी ॥९॥ **रुद्र ने कहा—** हे उत्तम देवताओं आज से जो लोग एकादशी के दिन भोजन करेंगे वे भी निश्चित रूप से नरक में जायेंगे ॥१०॥ इस तरह से कहकर सनातन परमात्मा श्रीभगवान् मुनियों से स्तुति किए जाते हुए अपने गृह में क्षीर सागर में शेष शय्या के ऊपर सूर्य के समान देदीप्य विमान में विशालाक्षी रमादेवी के साथ देवताओं के दर्शन देने के लिए वहीं पर सन्निहित हो गये । उसके बाद सभी देवता सनातन कूर्म रूप धारण किए हुए श्रीभगवान् की भक्ति पूर्वक पूजन करके प्रसन्न मन से उनकी पूजा किए । उसके बाद कूर्म रूप वाले श्रीभगवान् ने कहा ॥११-१४॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे देवेशों आप लोगों के मन में जो हो वह वरदान हमसे माँगें ॥१५॥ **रुद्र ने कहा—** इसके पश्चात् सभी देवगण कूर्म रूप धारी भगवान् जनार्दन से हाथ जोड़कर प्रसन्नता भरे मन से कहे ॥१६॥ **देवताओं ने कहा—** शेष तथा दिग्गजों की सहायता के लिए हे महाबलवान् ! हे देवेश ! आप सप्तद्वीपा पृथिवी को

रुद्र उवाच

एवमस्त्विति हृष्टात्मा भगवाँल्लोकभावनः। धारयामास धरणीं सप्तद्वीपसमावृताम्॥१८॥
ततो देवाः सगन्धर्वा दैत्यदानवमानुषाः। महर्षिभिरनुज्ञाताः स्वलोकान्प्रतिपेदिरे ॥१९॥
तदाभृति ते सर्वे देवा ब्रह्मपुरोगमाः। सिद्धा ये मानुषाश्चैव यागिनो मुनिसत्तमाः ॥२०॥
विष्णोराज्ञां पुरस्कृत्य भक्तया परमया युताः ।
एकादश्यामुपोष्याऽथ भक्तया चैव जनार्दनम् ॥२१॥
द्वादश्यामर्चनं चक्रुर्विधिना वरवर्णिनि !। एतत्तु सर्वमाख्यातं देव्या जन्म वरानने ! ॥
कौर्मं च वैभवं विष्णोः क्रियन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे लक्ष्मीदर्शनादिमाहात्म्यं एकादश्युपवासकथनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३३॥

दो सौ चौंतिसवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिद्वादश्याश्चविधानक्रम् । विष्णोः पूजाविधानंचकर्त्तव्यंतत्रवैप्रभो !॥१॥
एकादश्याः प्रभावं च सर्वपापहरं नृणाम्। आचक्ष्व विस्तरेणैव मयि प्रीत्या महेश्वर !॥२॥

धारण करें॥१७॥ **रुद्र ने कहा—** लोक भावन श्रीभगवान् प्रसन्न होकर कहे ऐसा ही होगा। यह कहकर सप्त द्वीपा पृथिवी को वे धारण किए ॥१८॥ उसके बाद देवता, गन्धर्व, दैत्य, दानव और मनुष्य महर्षियों से आज्ञा लेकर अपने-अपने लोकों में चले गये ॥१९॥ उसी समय से ब्रह्मा आदि सभी देवता सिद्ध, मनुष्य, योगिगण, श्रेष्ठ मुनिगण ॥२०॥ भगवान् विष्णु की आज्ञा को अपनाकर अत्यन्त भक्ति से सम्पन्न होकर एकादशी को उपवास करके द्वादशी के दिन भगवान् जनार्दन की हे सुन्दरि पार्वति ! विधि पूर्वक पूजा किए। हे वरानने पार्वति ! यह मैंने श्रीलक्ष्मीजी के जन्म का वर्णन पूर्ण रूप से किया तथा कूर्म नारायण के वैभव का भी वर्णन किया अब दूसरी कौन सी बात तुम सुनना चाहती हो ॥२१-२२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमा महेश्वर संवाद के अन्तर्गत लक्ष्मीजी के दर्शन आदि के माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ तैंतिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३३।।

एकादशी व्रत निर्णय और द्वादशी का माहात्म्य वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— हे भगवन् ! मैं द्वादशी के विधान को सुनना चाहती हूँ। हे प्रभो ! भगवन् विष्णु की पूजा का विधान भी जो करना आवश्यक हो उसे सुनायें ॥१॥ एकादशी का यह प्रभाव है कि वह मनुष्य के सभी पापों को विनष्ट कर देती है। हे महेश्वर ! मुझ पर प्रसन्न होकर आप विस्तार पूर्वक

महादेव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि द्वादश्याश्च विधानकम् ।
तस्याः स्मरणमात्रेण सन्तुष्टः स्याज्जनार्दनः ॥३॥

एकादश्यान्तु प्राप्तयां समुपोष्येहमानवाः। सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्तिविष्णोःपरं पदम् ॥४॥
सप्तजनमार्जितं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतःकृतम् । क्षणादेव लयं याति द्वादश्यां हरिपूजनात्॥५॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥६॥
धर्मदा ह्यर्थदा चैव कामदा मोक्षदा किल। सर्वकामदुघा नृणां द्वादशी वरवर्णिनि ! ॥७॥
एकादशीसमं किञ्चित्पापत्राणं न विद्यते। एकादशीसमं किञ्चिद्व्रतं नास्ति शुभेक्षणे !॥८॥
एकादशीं परित्यज्य यो ह्यन्यद्व्रतमाचरेत् । स करस्थं महद्राज्यंत्यत्तवा भैक्ष्यंतुयाचते॥९॥

एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं भवति प्रिये ! ।
एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ॥१०॥

रटन्तीह पुराणानि भूयोभूयो वरानने !। न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥११॥

अभक्ष्यं सर्वदाप्रोक्तं किम्पुनः शुक्लकृष्णयोः ।
स ब्रह्महा सुरापीच स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥१२॥

मोहादश्नाति यो मर्त्यस्सम्प्राप्ते हरिवासरे। अतिक्रामति यो मोहाद्द्वादशींतु वरानने !॥१३॥
उपवासेन मूढात्मा विष्णुलोकं न पश्यति। भुङ्क्ष्वभुङ्क्ष्वेति यो ब्रूयात्सम्प्राप्ते हरिवासरे॥१४॥

बतलायें ॥२॥ **महादेवजी ने कहा—** हे देवि ! सुनो मैं द्वादशी के विधान को बतलाता हूँ । उसके स्मरण करने मात्र से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥३॥ एकादशी के आने पर मनुष्य उस दिन उपवास करके सभी पापों से छूटकर भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं ॥४॥ जानकर अथवा बिना जाने ही सात जन्मों में किये गया पाप द्वादशी के दिन श्रीहरि की पूजा करने से क्षण भर में विनष्ट हो जाते हैं ॥५॥ हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ का फल एकादशी के दिन उपवास करने के फल के सोहलवें भाग के भी समान नहीं होते हैं ॥६॥ हे सुन्दरि ! द्वादशी मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों को प्रदान करती है । वह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली तिथि है ॥७॥ हे सुन्दर नेत्रों वाली पार्वति! एकादशी के समान कोई भी दूसरा पाप से रक्षा करने वाला नहीं है एकादशी के समान कोई भी व्रत नहीं है ॥८॥ एकादशी को छोड़कर जो कोई दूसरा व्रत करता है वह अपने हाथ में आये हुए विशाल राज्य को त्यागकर भीख मागना चाहता है ॥९॥ हे प्रिये ! ग्यारह इन्द्रियों से जो पाप किए गये रहते हैं वे सब एकादशी के दिन उपवास करने से विनष्ट हो जाते हैं ॥१०॥ हे वरानने ! लोक में सभी पुराण बार-बार कहते हैं कि एकादशी के दिन आने पर भोजन नहीं करना चाहिए ॥११॥ उस दिन सब कुछ को अभक्ष्य बतलाया गया है चाहे वह शुक्ल पक्ष की एकादशी हो अथवा कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन अज्ञान के कारण जो भोजन करते हैं उनको ब्रह्महत्या करने, मदिरा पीने, चोरी करने तथा गुरु की शय्या पर सोने का पाप लगता है । हे वरानने ! जो अज्ञान के कारण द्वादशी का अतिक्रमण करते हैं । उनको भी ये ही पाप लगते हैं ॥१२-१३॥ जो मूर्ख उपवास न करके खाओ, खाओ यह एकादशी को कहता है वह

योे ब्राह्मणं स्त्रियं गांच जहीतिच वदेत्क्वचित् ।
मद्यं पिबेति यो ब्रूयात्तेषामपि तथागतिः ॥१५॥

पुरोडाशोऽपि वामोरु ! सम्प्रप्तिहरिवासरे । अभक्ष्यस्सर्वदाप्रोक्तः किं पुनश्चाऽन्नसंस्क्रिया ॥१६॥
वर्णानामाश्रमाणांच सर्वेषां वरवर्णिनि !। एकादश्युपवासस्तु कर्त्तव्यो नाऽत्रसंशयः ॥१७॥
एकादश्यांच प्राप्तायां मातापित्रोर्मृतेऽहनि। द्वादश्यान्तु प्रदातव्यंनोपवासदिनेक्वचित् ॥१८॥
गर्हितान्नं नवाऽश्नति पितरश्च दिवौकसः । एकादश्यां न भोक्तव्यं सुराम्वा न पिबेत्क्वचित्॥१९॥
ब्राह्मणं नैव हन्याश्च इत्येषा वैदिकीश्रुतिः । तस्मादेकादशीं शुद्धामुपवासं समाचरेत् ॥२०॥
दशमीमिश्रितां तान्तु प्रयत्नेन विवर्जयेत्। अरुणोदयवेलायां दशमीमिश्रिता भवेत् ॥२१॥
तां त्यक्त्वा द्वादशीं शुद्धामुपोषेदविचारयन्। कलायांविद्यमानायां सूर्यस्योदयनम्प्रति ॥२२॥
त्रयोदश्यां तथा देवि ! द्वादशी परिविद्यते। तथा च द्वादशी शुद्धा ह्युपवासे विधीयते ॥२३॥
अरुणोदयवेलायां कृत्यं सर्वं समाचरेत्। कलायामपि द्वादश्यां पारणं तत्र चोदितम् ॥२४॥
शुद्धमेकादशीं चापि त्यजेदत्र न संशयः । कलाऽप्येकादशी यत्र द्वादश्यामुदिते रवौ ॥२५॥
सर्वामेकादशीं त्यक्त्वा तत्रैवोपवसेद्द्विजः । एवं विधिं विनिश्चित्य समुपोष्य हरेर्दिनम् ॥२६॥
सायमाद्यन्तयोरह्नोः सायम्प्रातस्तुमध्यमे। तत्रोपवासं कुर्वीत त्यक्त्वा भुक्तिचतुष्टयम् ॥२७॥
दशम्यामेकभक्तस्तु नारीसंगमवर्जितः। अवनीतल्पशायी च परेऽहनि वसेच्छुचिः॥२८॥

विष्णु लोक में नहीं जाता है ॥१४॥ जो ब्राह्मण, स्त्री और गौ को मारो-मारो कहता है मदिरा पिओ कहता है ऐसे लोगों की भी वही गति होती हैं ॥१५॥ हे सुन्दरि ! एकादशी के दिन पुरोडाश को भी सर्वदा अभक्ष्य बतलाया गया है तो फिर पकाये हुए अन्न की क्या बात है ?॥१६॥ हे सुन्दरि ! सभी वर्णों एवं आश्रमों के लिए भी एकादशी को उपवास करना चाहिए, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१७॥ एकादशी के दिन और माता-पिता की मृत्यु तिथि पर द्वादशी के दिन ही उनका पिण्डदान करना चाहिए॥१८॥ देवता और पितृगण निन्दित अन्न को नहीं खाते हैं । कभी भी एकादशी के दिन न तो भोजन करना चाहिए और न मदिरा पीना चाहिए ॥१९॥ ब्राह्मण को भी नहीं मारना चाहिए ऐसा श्रुति कहती है । अतएव शुद्धा एकादशी को ही व्रत करना चाहिए ॥२०॥ दशमी मिश्रित एकादशी को प्रयत्न पूर्वक त्याग देना चाहिए। अरुणोदय की बेला में एकादशी दशमी मिश्रित हो जाती है ॥२१॥ अतएव उस एकादशी को त्यागकर शुद्ध द्वादशी के दिन व्रत करना चाहिए । यदि वह सूर्योदय के समय एक कला भी द्वादशी हो तो त्रयोदशी के ही दिन द्वादशी रहती है । इस तरह की शुद्धा द्वादशी को उपवास का विधान है ॥२२-२३॥ अरुणोदय की बेला में सारे कार्यों को कर ले एक कला भी यदि द्वादशी रहे तो उसी में पारण करना चाहिए ॥२४॥ उस शुद्धा एकादशी को भी निश्चित रूप से त्याग देना चाहिए यदि सूर्योदय की बेला में एक कला भी द्वादशी हो तो ॥२५॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह सभी एकादशियों को त्यागकर द्वादशी के ही दिन उपवास करे । इस तरह की विधि का निश्चय करके एकादशी के दिन उपवास करके ॥२६॥ सायंकाल अथवा दिन के आदि और मध्य में या सायंकाल और प्रात:काल के बीच में इन चारो प्रकार के भोजन को त्यागकर ही उपवास करना चाहिए ॥२७॥ दशमी के दिन एक वार ही भोजन करे, स्त्री का सङ्ग न

धात्रीफलानुलिप्ताङ्गः स्नानं नद्यां समाचरेत् ।
उपवासपरो भूत्वा रात्रौसम्पूजयेद्धरिम् ॥२९॥
पाषण्डिनं विकर्मस्थं पतितं श्वपचं तथा। नावलोकेन्न सम्भाषेन्न स्पृशेत्तत्र वैष्णवः ॥३०॥
अवैष्णवस्तु यो विप्रःसपाषण्डःप्रकीर्तितः । शिखोपवीतत्यागी च विकर्मस्थइतीरितः ॥३१॥
महापापोपपापाभ्यां युक्तः पतितउच्यते। अन्त्यजः श्वपचः प्रोक्तो वेदैस्तत्र सुनिर्णयः ॥३२॥
रात्रौ सम्पूज्य देवेशं जागरं च समाचरेत् । गन्धैः पुष्पैस्तथादीपैर्वस्त्रैराभरणैः शुभैः॥३३॥
जपैः स्तोत्रैर्नमस्कारैः पूजयेन्निशि भक्तितः। ततः प्रभातसमये तुलसीमिश्रितैर्जलैः ॥३४॥
स्नात्वा सम्यग्विधानेन सन्तर्प्य पितृदेवताः। पूजयेज्जगतामीशं लक्ष्म्या सह जनार्दनम्॥३५॥
कोमलैस्तुलसीपत्रैः पुष्पैश्चैव सुगन्धिभिः। दीपान्नीराजयेत्तत्र वारमष्टोत्तरं शतम् ॥३६॥
शतपत्रकृतां मालां ताभ्यां सम्यङ्निवेदयेत्। धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं च समर्पयेत्॥३७॥
शर्करासहितं दिव्यं पायसान्नं समर्पयेत् । कर्पूरेण च संयुक्तं ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥३८॥
प्रदक्षिणनमस्कारं कृत्वा भक्तया समन्वितः। आज्यं च जुहुयाद्वह्नौ शतमष्टोत्तरं तथा॥३९॥
प्रत्यृचं पुरुषसूक्तेन लक्ष्मीसूक्तेन पायसम्। ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्तयास्वयंभुञ्जीत वाग्यतः ॥४०॥
पुराणादिप्रपाठेन क्षपयेत्तद्दिनं महत्। क्षितिशायी ब्रह्मचारी तस्यामेव निशि स्वपेत् ॥४१॥

करे, पृथिवी पर सोये और दोपहर के बाद पावित्र्य का पालन करे ॥२८॥ शरीर में आँवला का फल लगाकर नदी में स्नान करे । फिर उपवास करके रात्रि में श्रीहरि की पूजा करे ॥२९॥ वैष्णव को चाहिए कि वह पाखण्डी, दुष्कर्म करने वाले, पतित और चाण्डाल को न तो देखे और न उनसे बातें करे ॥३०॥ जो ब्राह्मण वैष्णव नहीं है वह पाखण्डी कहा गया है । जो शिखा तथा यज्ञोपवीत का त्याग कर देता है वह विकर्म स्थित शूद्र को श्वपच (चाण्डाल) कहा गया है, यही वेदों का निर्णय है ॥३१॥ जो महापाप और उपपापों से युक्त होता है ब्राह्मण पतित कहा जाता है । वेदों ने यह निर्णय किया है कि वह अन्त्यज और चाण्डाल है ॥३२॥ रात्रि में श्रीभगवान् की पूजा करके जागरण करना चाहिए । चन्दन, पुष्प, दीप, वस्त्र तथा शुद्ध आभूषणों से जप, स्तोत्र तथा नमस्कार के द्वारा रात्रि में पूजन करना चाहिए । उसके पश्चात् प्रातःकाल तुलसी मिश्रित जल से ॥३३-३४॥ विधि पूर्वक स्नान करके पितरों और देवताओं का तर्पण करे । फिर जगत् के स्वामी श्रीभगवान् की लक्ष्मीजी के साथ पूजा करे ॥३५॥ कोमल तुलसी दल से, सुगन्धित पुष्पों से, दीप से एक सौ आठ बार आरती करे ॥३६॥ शतदल कमल की माला लक्ष्मी तथा नारायण भगवान् को समर्पित करे । उसके बाद धूप, दीप तथा नैवेद्य समर्पित करे ॥३७॥ चीनी के साथ दिव्य क्षीरान्न श्रीभगवान् को समर्पित करे । कर्पूर के साथ श्रीभगवान् को ताम्बूल समर्पित करे ॥३८॥ भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा और नमस्कार करके अग्नि में एक सौ आठ बार होम करें ॥३९॥ पुरुष सूक्त एवं श्रीसूक्त के प्रत्येक मन्त्र से पायस की आहुति दे । भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराये और मौन होकर स्वयं भोजन करे ॥४०॥ पुराण आदि को पढते हुए उस दिन को बिताये । उस रात्रि को भी ब्रह्मचारी होकर पृथिवी पर सोए ॥४१॥ इस तरह से द्वादशी के दिन श्रीभगवान् की पूजा करने वाले पर भगवान् क्षणभर

एवं सम्पूज्यमानः स द्वादश्यां कमलापतिः ।
क्षणात्प्रसन्नो भगवान्सर्वाभीष्टप्रदोध्रुवम् ॥४२॥
इत्येतत्कथितं देवि ! द्वादशीव्रतमुत्तमम् । किमन्यच्छ्रोतुकामाऽसि तद्वक्तव्यं ब्रवीम्यहम् ॥४३॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे द्वादशीमाहात्म्यं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३४॥

दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय

श्रीपार्वत्युवाच

पाषण्डानां च सम्वादं वर्जयेदिति यत्त्वया । उक्तं ममेह भगवञ्छ्वपचादपि गर्हितम्॥१॥
ते कीदृशाः समाख्याताः कैर्लिङ्गैश्चिह्निता भुवि ॥२॥

रुद्र उवाच

येऽन्यं देवं परत्वेन वदन्त्यज्ञानमोहिताः । नारायणाज्जगन्नाथात्ते वै पाषण्डिनः स्मृताः ॥३॥
द्वेष्टारो विष्णुभक्तानां ये चाऽवैष्णवसंश्रयाः ।
पाषण्डिभिश्च संयुक्तास्ते वै पाषण्डिनस्स्मृताः ॥४॥
कपालभस्मास्थिधरा ये ह्यवैदिकलिङ्गिनः । ऋते वनस्थाश्रमाच्च जटावल्कलधारिणः ॥५॥
अवैदिकक्रियोपेतास्ते वै पाषण्डिनस्तथा । शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरिः ॥६॥

में प्रसन्न हो जाते हैं और उसको समस्त अभीष्ट वस्तुओं को प्रदान कर देते हैं ॥४२॥ हे देवि ! मैंने इस तरह उत्तम द्वादशी व्रत का वर्णन किया । अब कौन सी तुम दूसरी बात सुनना चाहती हो उसे मैं बतलाता हूँ ॥४३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमा महेश्वर संवाद के अन्तर्गत द्वादशी माहात्म्य वर्णन नामक दो सौ चौंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३४।।

उमामहेश्वर सम्वाद के अन्तर्गत श्रीभगवान् द्वारा नमुचि आदि राक्षसों का मारा जाना और पाषण्ड की उत्पत्ति का वर्णन

श्रीपार्वतीजी ने कहा— आपने जो यह कहा है कि पाषण्डियों के साथ न बोले क्योंकि उन सबों को चाण्डाल से भी अधिक निन्दित कहा गया है ॥१॥ वे पाखण्डी किस तरह के होते हैं और उन सबों का चिह्न क्या हैं ॥२॥ **रुद्र ने कहा—** जो अज्ञान से मोहित भगवान् नारायण से भिन्न देवता को परा देवता बतलाते हैं वे पाखण्डी हैं ॥३॥ जो भगवान् विष्णु के भक्तों से द्वेष करते हैं तथा अवैष्णवों को अपना आचार्य बनाते हैं एवं पाखण्डियों के साथ रहते है उनको ही पाखण्डी कहा गया है ॥४॥ जो

रंहिता ये द्विजादेवि ! तेवै पाषण्डिनःस्मृताः ।
श्रतिस्मत्युदिताचारंयस्तुनाचरतिद्विजः ॥७॥
स पाषण्डीति विज्ञेयः सर्वलोकेषु गर्हितः । समस्तयज्ञभोक्तारमविदित्वाऽच्युतं हरिम् ॥८॥
उद्दिश्य देवता एव जुहोति च ददाति च। सपाषण्डीतिविज्ञेयः स्वतन्त्रः सर्वकर्मसु ॥९॥
स्वातन्त्र्यात्कुरुते यस्तु कर्म वेदोदितं महत्। विनावै भगवत्प्रीतिंसपाषाण्डीतिवैस्मृतः ॥१०॥
यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः। समत्वे नैव वीक्षेत स पाषण्डीभवेत्सदा॥११॥
अवस्थात्रितये यस्तु मनोवाक्कायकर्मभिः । वासुदेवं न जानाति स पाषण्डीभवेद्द्विजः ॥१२॥
किमत्र बहुनोक्तेन ब्राह्मणा येऽप्यवैष्णवाः । न स्प्रष्टव्यानवक्तव्या न द्रष्टव्याःकदाचन ॥१३॥

वसिष्ठ उवाच

एवं श्रुत्वाच सा देवी शङ्करेणाऽभिभाषितम् ।
विस्मयंपरमं गत्वा पुनःप्रोवाचभामिनी ॥१४॥

पार्वत्युवाच

भगवन्परमं गुह्यं पृच्छामि सुरसत्तम !। मयि प्रीत्या समाचक्ष्व संशयो वर्त्तते भृशम्॥१५॥
कपालभस्मचर्मास्थिधारणं श्रतिगर्हितम् । तत्त्वया धार्यते देव ! गर्हितं केन हेतुना ॥१६॥
स्त्रीचापल्येन देवेश ! पृच्छामि त्वां महामते ! ।
महानुभावकथितं न कर्त्तव्यं महेश्वर ! ॥१७॥

अवैदिक चिह्नों को धारण करते हैं तथा कपाल, अस्थि तथा भस्म धारण करते हैं, वानप्रस्थ आश्रम के बिना भी जटाधारण करते हैं ॥५॥ अवैदिक क्रिया करते हैं, वे ही पाषण्डि कहे गये हैं । श्रीहरि को अत्यन्त प्रिय शङ्ख, चक्र तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि चिह्नों से रहित जो ब्राह्मण हैं हे देवि ! वे ही पाषण्डि कहे गये । श्रुतियों तथा स्मृतियों में बतलाये गये आचरण को जो ब्राह्मण नहीं अपनाते हैं ॥६-७॥ उन सबों को पाषण्डि समझना चाहिए तथा वे सभी लोकों में निन्दित हैं । सभी यज्ञों का भोग करने वाले श्रीहरि ही हैं, इस बात को नहीं जानकर जो अन्य देवता का उद्देश्य करके होम करता है और दान करता है उसको पाषण्डी समझना चाहिए तथा जो सभी कर्मो में अपने को स्वतंत्र मानता है । जो अपने मन से स्वतंत्रता पूर्वक वैदिक कर्मों को करता है, भगवान् की प्रसन्नता के लिए नहीं करता है वह पाषण्डी है ॥८-१०॥ जो भगवान् नारायण को ब्रह्मा आदि देवताओं के समान ही मानता है वह सदा पाषण्डी ही होता है । जो तीनों अवस्थाओं मे मन, वाणी और शरीर से भगवान् वासुदेव को नहीं जानता है वह पाषण्डी है ॥११-१२॥ बहुत इस विषय में क्या कहना है जो भी ब्राह्मण वैष्णव नहीं हैं उन सबों को न तो छूना चाहिये, न उनसे बोलना चाहिए और न उन सबों को कभी देखना चाहिए ॥१३॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** इस तरह से शङ्करजी की बात को सुनकर पार्वती देवी अत्यन्त आश्चर्यित होकर पुनः पूछीं॥१४॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे देवश्रेष्ठ भगवन् ! अत्यन्त रहस्य की बात मैं आपसे पूछती हूँ । मुझे अत्यन्त संशय है मुझ पर कृपा करके आप उसे बतलायें ॥१५॥ कपाल, भस्म, अस्थि तथा चर्म धारण श्रुति निन्दित हैं । हे देव ! उस निन्दित वस्तु को आप क्यों धारण करते हैं ॥१६॥ हे महामते ! हे देवेश ! स्त्रियोचित चंचलता के कारण मैं आपसे यह पूछती हूँ हे महेश्वर ! आपने ही उसे अकर्तव्य रूप से

त्वयाचरितमित्येतद्वक्तव्यं न क्वचित्प्रभो ! । अकर्त्तव्यमपि प्रश्नं क्षन्तुमर्हसि मे प्रभो ! ॥१८॥

वसिष्ठ उवाच

इतिदेव्या हरः पृष्टो रहस्ये जनवर्जिते। उवाच परमं गुह्यं यद्यदाचरितं स्वकम् ॥१९॥

शिव उवाच

श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यद्गुह्यं परमाद्भुतम् ।
न वक्तव्यं त्वया देवि ! जनेषु कथितं मया ॥२०॥

अपृथक्त्वाच्छरीरस्यवक्ष्यामितव सुव्रते ! । नमुच्याद्या महादैत्याःपुरास्वायम्भुवेऽन्तरे॥२१॥
महाबला महावीर्या महावीरा महौजसः। सर्वे विष्णुरताः शुद्धाः सर्वपापविवर्जिताः ॥२२॥
त्रयीधर्मवृताः सर्वे भगवद्भक्तिसंयुताः । निर्जित्य सकलान्देवानव्याहतपराक्रमाः॥२३॥
पदानि तेषां जगृहुर्बलवीर्यसमन्विताः। ततो देवगणास्सर्वे भग्ना इन्द्रपुरोगमाः ॥
विष्णोः समीपमागम्य भयार्त्ताः शरणं गताः ॥२४॥

देवाऊचुः

देवदेव ! महादैत्यैर्जम्भासुरपुरोगमैः । स्वात्स्वात्स्थानाच्च्याविताास्तु भवन्तंशरणंगताः॥२५॥
अजेयान्सर्वदेवानां तपोनिर्द्धूतकल्मषान्। त्वमेवैतान्महादैत्याञ्जेतुमर्हसि केशव ! ॥२६॥

महादेव उवाच

इत्याकर्ण्य हरिर्वाक्यं देवानां च भयानकम् ।
तान्समाश्वास्य दिक्पालान्मामाह पुरुषोत्तमः ॥२७॥

बतलाया है ॥१७॥ हे प्रभो ! आपके द्वारा आचरण किया जाने वाला यह सबकुछ कहीं भी नहीं कहना चाहिए । हे प्रभो ! मुझे यह प्रश्न नहीं करना चाहिये फिर भी आप उसे क्षमा करेंगे ॥१८॥ **वसिष्ठजी ने कहा**— इस तरह से पार्वतीजी द्वारा निर्जन एकान्त में पूछे जाने पर शिवजी ने अपने सम्पूर्ण आचरणों को कहा ॥१९॥ **शिवजी ने कहा**— हे देवि ! जो अत्यन्त गोपनीय है, उसे मैं बतला रहा हूँ सुनो । हे देवि ! तुम मेरे द्वारा कही जाने वाली बातों को लोगों के बीच में न कहना ॥२०॥ हे सुव्रते ! तुम्हारा और हमारा शरीर अलग-अलग नही हैं इसीलिए मैं तुम्हें इस बात को बतलाता हूँ । पहले के स्वायम्भुव मन्वन्तर में नमुचि आदि महादैत्य ॥२१॥ महाबलवान् महापराक्रमी तथा महातेजस्वी और भगवान् विष्णु के भक्त एवं शुद्ध एवं पाप रहित थे ॥२२॥ भगवद्द् भक्ति से युक्त वे त्रयी धर्म का पालन करते थे । अव्याहत पराक्रम वाले वे सभी देवताओं को जीतकर ॥२३॥ उन देवताओं के पदों को ले लिए क्योंकि वे बल एवं पराक्रम से सम्पन्न थे । उसके पश्चात् इन्द्र आदि देवता भागकर भगवान् विष्णु के समीप आकर भयभीत होकर उनकी शरणागति कर लिए ॥२४॥ **देवताओं ने कहा**— देवाराध्य देव ! जम्भासुर इत्यादि महादैत्यों के द्वारा अपने-अपने पद से हटाये गये हमलोग आपके शरण में आये हैं ॥२५॥ वे सब सभी देवताओं के लिए अजेय हैं और तपस्या करके उन सबों ने अपने पापों को विनष्ट कर दिया है । हे केशव ! आप ही इन महादैत्यों को जीत सकते हैं ॥२६॥ **महादेवजी ने कहा**— श्रीहरि देवताओं के अत्यन्त भयानक वाक्यों को सुनकर उन दिक्पालों को सान्त्वना प्रदान करके भगवान् पुरुषोत्तम ने कहा ॥२७॥ हे महाबाहो

श्रीभगवानुवाच

त्वं हि रुद्र महाबाहो ! मोहनार्थे सुरद्विषाम् ।
पाषण्डाचरणं धर्मं कुरुष्व सुरसत्तम ! ॥२८॥
तामसानि पुराणानि कथयस्व च तान्प्रति। मोहनानिचशास्त्राणिकुरुष्व च महामते ! ॥२९॥
मय्यभक्ताश्चविप्राश्चभविष्यन्तिमहर्षयः । त्वच्छक्तयातान्समाविश्यकथयस्वचतामसान् ॥३०॥
काणादं गौतमं शक्तिमुपमन्युं च जैमिनिम्। कपिलं चैव दुर्वासोमृकण्डूचबृहस्पतिम्॥३१॥
भार्गवं जामदग्न्यंचदशैतांस्तामसानृषीन्। तवशक्त्यासमाविश्यकुरुष्वजगतोऽहितम् ॥३२॥
त्वच्छक्त्या च निविष्टास्ते तमसोद्रिक्तया भृशम् ।
तामसास्ते भविष्यन्ति क्षणादेव न संशयः ॥३३॥
कथयिष्यन्ति ते विप्रास्तामसानि जगत्रये। पुराणानिचशास्त्राणि त्वत्परत्वपराणिच॥३४॥
कपालचर्मभस्मास्थिचिह्नान्यमरसर्वशः । त्वमेव धृत्वा ताँल्लोकान्मोहयस्व जगत्रये ॥३५॥
तथा पाशुपतं शास्त्रं त्वमेव कुरु सत्कृतः। कङ्कालशैवपाषण्डमहाशैवादिभेदतः ॥३६॥
अलक्ष्यं च मतं सम्यग्वेदबाह्यं नराधमाः। भस्मास्थिधारिणः सर्वेभविष्यन्तिह्यचेतसः॥३७॥
त्वां परत्वेन वक्ष्यन्ति सर्वशास्त्रेषु तामसाः। तेषां मतमधिष्ठायसर्वेदैत्याः सदानवाः॥३८॥
भवेयुस्ते मद्विमुखाः क्षणादेव न संशयः। अहमप्यवतारेषु त्वां च रुद्र ! महाबल ! ॥३९॥
तामसानां मोहनार्थं पूजयामि युगेयुगे। मतमेतदवष्टभ्य पतन्त्येव न संशयः ॥४०॥

महादेव उवाच

तच्छ्रुत्वाऽहं यथोक्तं तु वासुदेवेन भामिनि ! ।
समुद्विग्नमना दीनो बभूवाऽत्र वरानने ! ॥४१॥

रुद्र ! आप असुरों को मोहित करने के लिए हे सुरश्रेष्ठ ! पाषण्डाचरण स्वरूप धर्म का प्रवर्तन करें॥२८॥ उन सबों को आप तामस पुराणों को सुनायें । हे महामते ! आप अज्ञान फैलाने वाले शास्त्रों की रचना करें ॥२९॥ महर्षि गण और ब्राह्मण मेरे भक्त नहीं होंगे । अपनी शक्ति के द्वारा उन सबों में प्रवेश करके तामस शास्त्रों को उनको आप सुनायें ॥३०॥ काणाद, गौतम, शक्ति, उपमन्यु, जैमिनि, कपिल, दुर्वासा, मृकण्डु तथा बृहस्पति ॥३१॥ भार्गव, जामदग्न्य (परशुरामजी) ये दश ऋषि तामस हैं । आप अपनी शक्ति के द्वारा प्रवेश करके संसार का अकल्याण करें ॥३२॥ आपकी शक्ति से वे उन्हीं धर्मों को अपना लेंगे और उनमें बहुत अधिक तमोगुण उद्रिक्त हो जायेगा । वे क्षणभर में तामस हो जायेंगे इसमें कोई संशय नहीं है ॥३३॥ वे ब्राह्मण त्रेलोक्य में तामस धर्म को कहेंगे । वे सभी पुराण और शास्त्र आपके परत्व का प्रतिपादन करेंगे ॥३४॥ हे देव सर्वस्व ! आप ही, कपाल, चर्म, भस्म तथा अस्थि आदि चिह्नों को धारण करें और त्रैलोक्य में उन सबों को मोहित करें ॥३५॥ आप ही पाशुपतशास्त्र का निर्माण करें, कङ्काल, शैव, पाषण्ड, महाशैव आदि के भेद से ॥३६॥ वे नराधम अलक्ष्यमत तथा वेदबाह्य होकर सभी भस्म तथा अस्थि को अज्ञान के कारण धारण करेंगे ॥३७॥ वे सभी तामसी प्रकृति वाले आपको परादेवता कहेंगे। उन सबों के मत को अपनाकर सभी दैत्य एवं दानव ॥३८॥ क्षणभर में ही मेरे विरोधी हो जायेंगे। हे महाबलवान् रुद्र ! मैं भी अपने अवतारों में आपकी पूजा उन सबों को मोहित करने के लिए प्रत्येक

नमस्कृत्याऽथ तन्देवमब्रवं परमेश्वरम्। त्वयोदितमिदं देव ! करोति यदि भूतले॥४२॥
तस्मान्नाशो हि मे नाथ ! भविष्यति स संशयः ।
तत्र शक्यं मया कुर्तुमेतत्कृत्यं हरेऽधुना ॥४३॥
त्वदाज्ञाऽपिच नोल्लङ्घ्या एतदुखतरं महत्। एवमुक्ते ततो देवि समाश्वास्यचमांपुनः ॥४४॥
आत्मनाशाय तेनाऽत्र भवत्वित्याह मां हरिः ।
देवतानां हितार्थाय कुरुष्व वचनं मम ॥४५॥
तवाऽपि जीवनोपायं कथयामि सुरोत्तम !। दत्तवान्कृपया मह्यमात्मनामसहस्रकम्॥४६॥
हृदये मां समाधाय जपमन्त्रं ममाऽव्ययम्। षडक्षरं महामन्त्रं तारकं ब्रह्मसञ्ज्ञितम्॥४७॥
ये भजन्ति हि मां भक्तया तेषां मुक्तिर्न संशयः ।
इन्दीवरदलश्यामं पद्मपत्रविलोचनम् ॥४८॥
शङ्खारशार्ङ्गेषुधरं सर्वाभरणभूषितम्। पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं जानकीप्रियवल्लभम् ॥४९॥
श्रीरामायनमइत्येवमुच्चार्यं मन्त्रमुत्तमम्। सर्वदुःखहरं चैतत्यापिनामपि मुक्तिदम्॥५०॥
इमंमन्त्रं जपन्नित्यममलस्त्वंभविष्यसि। भस्मास्थिधारणाद्यत्तु सम्भूतंकिल्बिषंत्वयि ॥५१॥
मङ्गलं तदभूत्सर्वं मन्मन्त्रोच्चारणाच्छुभात्। तर्षितो नाशयिष्यामि पापंसर्वं सुरोत्तम !॥५२॥
मदन्यदेवताभक्तिर्जायते न तु सुव्रत !। मनसैवार्चय हृदि मां नाथं पुरुषोत्तमम् ॥५३॥
मदाज्ञां कुरु मत्प्रीत्या सर्वमेतच्छुभं तव। इति सन्दिश्यमां देवि ! विससर्ज मरुद्गणान् ॥५४॥

युग में करूँगा । वे इस मत को अपनाकर निश्चित रूप से पतित हो जायेंगे ॥३९-४०॥ **महादेवजी ने कहा**— हे भामिनि ! भगवान् के द्वारा कहे गये सारी बातों को सुनकर मैं अत्यन्त उद्विग्न और इस लोक में दीन हो गया ॥४१॥ हे नाथ ! उससे तो मेरा निश्चित रूप से नाश हो जायेगा । हे हरे ! मुझे अपनी शक्ति के द्वारा इस कार्य को करना चाहिए ॥४२-४३॥ यह बड़े दुःख की बात है कि आपकी आज्ञा का मुझे उल्लंघन नहीं करना चाहिए । हे देव ! इस तरह से मेरे कहने पर श्रीहरि ने मुझको को आश्वस्त करके कहा कि यह आपका आत्मनाश करने वाला नहीं होगा । देवताओं का कल्याण करने के लिए आप मेरी बात मानें ॥४४-४५॥ हे सुरोत्तम ! मैं आपके भी उज्जीवन का उपाय बतलाता हूँ । मुझ पर कृपा करके अपने सहस्रनामों को उन्होंने प्रदान किया ॥४६॥ उन्होंने कहा अपने हृदय में ध्यान करके मेरे महामन्त्र षडक्षर (ओ विष्णवे नमः) का जप करें यह ब्रह्म संज्ञक तारक मन्त्र है जो लोग भक्ति पूर्वक मेरा भजन करते हैं वे निश्चित रूप से मुक्त हो जाते हैं । नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले, कमल दल के समान सुन्दर नेत्र वाले शङ्ख, चक्र, शार्ङ्ग, धनुष और बाण धारण किए हुए, पीताम्बर धारण किए हुए तथा चार भुजाधारी सभी अलङ्कारों से अलंकृत जानकीजी के प्रियतम ॥४७-४८॥ **श्रीरामाय नमः** इस उत्तम और सभी दुःखों को विनष्ट करने वाले मन्त्र का उच्चारण करके पापी जीव भी मुक्त हो जाता है ॥४९-५०॥ इस मन्त्र का नित्य ही उच्चारण करके आप भी निर्मल हो जायेंगे । भस्म तथा अस्थि को धारण करने से आपको जो पाप लगेगा । वह सब मेरे मन्त्र का उच्चारण करने से मङ्गलमय हो जायेगा । मैं हर्षित होकर सभी पापों को नष्ट कर दूँगा ॥५१-५२॥ हे सुव्रत ! ऐसा करने से आपमें मुझसे भिन्न की भक्ति भी नहीं होगी । आप अपने मन से हृदय में विद्यमान सबों के स्वामी मुझ पुरुषोत्तम की पूजा करें ॥५३॥ आप

विसृष्टास्ते ततो देवा निवृत्ताः स्वाश्रमं ययुः ।
ततो मां प्रार्थयामासुर्देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥५५॥

इन्द्रादयऊचुः

शीघ्रं कुरु हितं देव ! यथोक्तं हरिणाऽधुना ॥५६॥

महादेव उवाच

देवतानां हितार्थाय वृत्तिं पाखण्डिनां शुभे ! ।
कपालचर्मभस्मास्थिधारणं तत्कृतंमया ॥५७॥
तामसानि पुराणानि यथोक्तं विष्णुना शुभे ! ।
पाषण्डशैवशास्त्राणि यथोक्तंकृतवानहम् ॥५८॥

मच्छक्तयाऽपिसमाविश्यगौतमादिद्विजानपि । वेदबाह्यानिशास्त्राणिसम्यगुक्तंमयाऽनघे ॥५९॥
इमं मतमवष्टभ्य दुष्टाः सर्वे च राक्षसाः । भगवद्विमुखाः सर्वे बभूवुस्तमसावृताः ॥६०॥
भस्मादिधारणं कृत्वा महोग्रतमसावृताः । मामेव पूजयाञ्चकुर्मांसासृक्चन्दनादिभिः ॥६१॥
मत्तो वरप्रदानानि लब्ध्वा मदबलोद्धताः । अत्यन्तविषयासक्ताः कामक्रोधसमन्विताः ॥६२॥
सत्त्वहीनास्तु निर्वीर्या जिता देवगणैस्तदा । सर्वधर्मपरिभ्रष्टाः कालेयान्त्यधमांगतिम् ॥६३॥
ये मे मतमवष्टभ्य चरन्ति पृथिवीतले । सर्वधर्मैश्च रहिताः पश्यन्ति निरयं सदा ॥६४॥
एवं देवहितार्थाय वृत्तिर्मेदेवि ! गर्हिता । विष्णोराज्ञां पुरस्कृत्य कृतं भस्मास्थिधारणम् ॥६५॥
बाह्यचिह्नमिदं देवि मोहनार्थाय विद्विषाम् । अथान्तर्हृदये नित्यं ध्यात्वादेवंजनार्दनम् ॥६६॥

मेरी आज्ञा का पालन करें । आपके लिए यह सबकुछ शुभ होगा । हे देवि ! इस तरह से मुझको कहकर श्रीभगवान् देवताओं को विदा कर दिए ॥५४॥ भेज दिए जाने के बाद वे देवता अपने आश्रमों में चले गये । उसके पश्चात् इन्द्र आदि देवताओं ने मुझसे प्रार्थना किया ॥५५॥ **इन्द्र आदि ने कहा**— हे देव ! जैसा कि श्रीहरि ने इस समय कहा है वैसा आप शीघ्र करें । **महादेवजी ने कहा**— हे शुभे ! देवताओं का कल्याण करने के लिए पाखण्डियों की वृत्ति कपाल, भस्म, अस्थि तथा चर्म आदि को मैंने धारण किया ॥५६-५७॥ हे शुभे ! जैसा कि भगवान् विष्णु ने कहा था मैंने तामस पुराणों तथा पाखण्ड एवं शैवशास्त्रों की रचना की ॥५८॥ मेरी शक्ति ने प्रवेश करके गौतम आदि ब्राह्मणों को भी मैंने वेद बाह्य शास्त्रों को अच्छी तरह से सुनाया ॥५९॥ मेरे इस मत को अपनाकर सभी दुष्ट राक्षस तमोगुण से भारकर भगवद्विमुख हो गये ॥६०॥ भस्म आदि धारण करके अत्यन्त उग्र तमोगुण से भरकर मेरी ही पूजा मांस, रुधिर तथा चन्दन आदि से करने लगे ॥६१॥ मुझसे ही वरदान पाकर बल से उद्धत बने हुए विषयों में अत्यन्त आसक्त होकर काम तथा क्रोध से युक्त वे ॥६२॥ सत्त्व हीन और पराक्रम हीन वे देवताओं से जित लिए गये । सभी धर्मों से भ्रष्ट होकर वे काल आने पर अधम गति को प्राप्त करते हैं ॥६३॥ जो लोग मेरे मत को अपनाकर पृथिवी पर संचरण करते हैं सभी धर्मों से रहित वे नारकीय गति को सदा प्राप्त करते हैं ॥६४॥ हे देवि ! इस तरह से देवताओं का कल्याण करने के लिए इस निन्दित वृत्ति को अपनाया हूँ ॥६५॥ हे देवि ! मेरा यह बाह्य रूप है शत्रुओं को मोहित करने के लिए मैंने इसे धारण किया

जपन्नव च तन्मन्त्रं तारकं ब्रह्मवाचकम्। सहस्रनामसदृशं विष्णोर्नारायणस्य तु ॥६७॥
षडक्षरं महामन्त्रं रघूणां कुलवर्द्धनम्। जपन्वै सततं देवि सदानन्दसुधाप्लुतम् ॥
सुखमात्यन्तिकं ब्राह्ममश्नामि सततं शुभे ! ॥६८॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं त्वया पृष्टं शुभानने ! ।
किमन्यच्छ्रोतुकामाऽसि प्रीत्या तत्परिपृच्छ माम् ॥६९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डेपाषण्डोत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३५॥

दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

तामसानि च शास्त्राणि समाचक्ष्व ममाऽनघ ! ।
सम्प्रोक्तानिचयैर्विप्रैर्भगवद्भक्तिवर्जितैः ॥
तेषां नामानि क्रमशः समाचक्ष्व सुरेश्वर ! ॥१॥

रुद्र उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि तामसानियथाक्रमम् ।
येषां स्मरणमात्रेणमोहःस्याज्ज्ञानिनामपि ॥२॥

है। हृदय में मैं नित्य ही भगवान् जनार्दन का ध्यान करके ॥६६॥ श्रीभगवान् के ही ब्रह्म के वाचक उनके मन्त्र का जप करते हुए भगवान् विष्णु के सहस्रनाम के ही समान उनके षड्क्षर महामन्त्र रघुवंश के बढ़ाने वाले का जप करते हुए हे देवि ! निरन्तर मैं आनन्द से भरकर आत्यन्तिक ब्राह्म सुख का अनुभव करता हूँ ॥६७-६८॥ हे शुभे ! तुमने जे पूछा था उसे मैंने कह दिया तुम दूसरा क्या सुनना चाहती हो ? उसे तुम मुझसे प्रेम पूर्वक पूछो ॥६९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत पाषण्ड की उत्पत्ति वर्णन नामक दो सौ पैंतिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३५॥

उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत अठारह पुराण तथा अनेक दर्शनों के वर्णन के प्रसङ्ग में सात्त्विक आदि शास्त्रों का वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— हे अनघ ! आप मुझे तामस पुराणों को बतलायें जिन सबों को भगवद् भक्ति रहित ब्राह्मणों ने कहा है। हे सुरेश्वर ! उन सबों का नाम आप मुझे क्रमशः बतलायें ॥१॥ **रुद्र ने कहा**— हे देवि ! मैं तामसों के नाम को क्रमानुसार बतलाता हूँ सुनो। उन सबों का स्मरण करने से ज्ञानी पुरुषों

प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम् । मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः प्रोक्तानि चततःशृणु ॥३॥
कणादेन तु सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत् ।
गौतमेनतथान्यायंसाङ्ख्यंतुपिलेन वै ॥४॥
धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम् । दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुनाबुद्धरूपिणा ॥५॥
बौद्धशास्त्रं महत्प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम् । मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ॥६॥
मयैव कथ्यते देवि ! कलौ ब्राह्मणरूपिणा ।
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयँल्लोकगर्हितम् ॥७॥
कर्मस्वरूपं त्याज्यत्वं यत्र वै प्रतिपाद्यते । सर्वकर्मपरिभ्रष्टो विकर्मस्थः स उच्यते ॥८॥
परेशजीवयोरैक्यं मयाऽत्र प्रतिपाद्यते। ब्रह्मणोऽत्र परं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया ॥९॥
सर्वस्य जगतोऽप्यत्र मोहनार्थं कलौ युगे। वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् ॥१०॥
मयैव वक्ष्यते देवि ! जगतां नाशकारणात् ।
द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमपार्थकम् ॥११॥
निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम्। शास्त्राणि चैव गिरिजे तामसानि निबोधमे ॥१२॥
पुराणानि च वक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमात् ।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥१३॥
तथैव नादीयं तु मार्कण्डेयं तु सप्तमम्। आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा ॥१४॥
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् । द्वादशं च वराहं च वामनं च त्रयोदशम् ॥१५॥
कौर्मं चतुर्दशं प्रोक्तं मात्स्यं पञ्चदशं स्मृतम् ।
षोडशं गारुडम्प्रोक्तं स्कान्दं सप्तदशं स्मृतम् ॥१६॥

को भी मोह जो जाय ॥२॥ पहले तो मैंने ही शैव, पाशुपत मत आदि को कहा है । उसके पश्चात् मेरी शक्ति से आविष्ट ब्राह्मणों ने जिन सबों को कहा है उसे तुम सुनो ॥३॥ कणाद ने महान वैशेषिक शास्त्र का वर्णन किया । गौतम महर्षि ने न्यायशास्त्र का तथा कपिल ने सांख्य शास्त्र का प्रणयन किया ॥४॥ बृहस्पति ने अत्यन्त निन्दित चार्वाक दर्शन का प्रणयन किया । दैत्यों का नाश करने के लिए बुद्ध रूपधारी विष्णु ने ॥५॥ महान् बौद्ध शास्त्र का प्रणयन किया, नील पट आदि, मायावाद आदि असत् शास्त्र को प्रच्छन्न बौद्ध कहते हैं ॥६॥ हे देवि ! कलि में ब्राह्मण रूपधारी मैंने लोक निन्दित श्रुतियों का अपार्थ करने वाला दर्शन बनाया ॥७॥ उसमें कर्मों को परित्याज्य बतलाया गया है । सभी कर्मो से भ्रष्ट विकर्मस्थ वह कहलाता है ॥८॥ इसमें जीव और परमात्मा की एकता बतलायी गयी है । उसमें मैंने परब्रह्म का निर्गुण रूप प्रतिपादित किया है ॥९॥ कलियुग में सबों को मोहित करने के लिए वेदार्थ के ही समान अवैदिक मायावाद का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है ॥१०॥ हे देवि ! मैं ही जैमिनि ब्राह्मण के रूप में सम्पूर्ण वेद के अपार्थ स्वरूप संसारियों का नाश करने के लिए शास्त्र का निर्माण किया है ॥११॥ निरीश्वरवाद के द्वारा मैंने अत्यन्त महान शास्त्र बनाया है । हे पार्वति अब मैं तामस शास्त्रों को बतलाता हूँ ॥१२॥ अब मैं क्रमशः पुराणों को बतलाता हूँ । ब्रह्म पुराण, पद्मपुराण, विष्णु पुराण, शिवपुराणा, भागवत पुराण, नारदीय पुराण, सातवाँ मार्कण्डेय पुराण, आठवाँ अग्नि पुराण, नवाँ भविष्य पुराण ॥१३-१४॥ दशवाँ ब्रह्मवैवर्त पुराण, ग्यारहवाँ लिङ्ग पुराण, बारहवाँ वाराह पुराण, तेरहवाँ वामन पुराण, चौदहवाँ कूर्म पुराण,

अष्टादशं तु ब्रह्माण्डं पुराणानि यथाक्रमम्। मात्स्यं कौर्मं तथालैङ्गंशैवंस्कान्दंतथैवच॥१७॥
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे । वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ॥१८॥
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने। सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानिशुभानिवै ॥१९॥
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च। भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे॥२०॥

सात्त्विका मोक्षदाः प्रोक्ता राजसाः स्वर्गदाः शुभाः ।
तथैव तामसा देवि ! निरयप्राप्तिहेतवः ॥२१॥

तथैव स्मृतयःप्रोक्तात्रृषिभिस्त्रिगुणान्विताः। सात्त्विकाराजसाश्चैवतामसाःशुभदर्शने ॥२२॥
वासिष्ठं चैव हारीतं व्यासंपाराशरन्तथा। भारद्वाजंकाश्यपंचसात्विकामुक्तिदाःशुभाः ॥२३॥

मानवं याज्ञवल्क्यं चाऽप्यात्रेयं दाक्षमेव च ।
कात्यायनंवैष्णवंचराजसाः स्वर्गदाशुभाः ॥२४॥

गौतमं बार्हस्पत्यं च सांवर्तं च यमंस्मृतम् । शाङ्खं चौशनसं चेतिमामसानिरयप्रदाः ॥२५॥
किमत्र बहुनोक्तेन पुराणेषु स्मृतिष्वपि। तामसा नरकायैव वर्जयेत्तान्विचक्षणः ॥२६॥
एत्तते सर्वमाख्यातं प्रसङ्गाच्छुभदर्शने ! । शेषं च वैभवावस्थां हरेर्वक्ष्यामि ते श्रृणु ॥२७॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे
तामसशास्त्रकथनं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३६॥

पन्द्रहवाँ मत्स्य पुराण, सोलहवाँ गरुड़ पुराण, सत्रहवाँ स्कन्द पुराण और अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण ये क्रमशः पुराण कहे गये हैं । इनमें से मत्स्य कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द तथा अग्नि पुराण ये छह पुराण तामस पुराण हैं । विष्णु, नारदीय, और भागवत ॥१५-१८॥ गरुड, पद्म तथा वाराह पुराण हे शुभदर्शने पार्वति इन छह पुराणों को शुभ सात्विक पुराण जानना चाहिए ॥१९॥ ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन तथ ब्रह्म पुराण इनको तुम राजस पुराण जानो ॥२०॥ सात्विक पुराण मोक्ष प्रदान करने वाले, राजस पुराण स्वर्ग देने वाले तथा तामस पुराण नरक देने वाले बतलाये गये हैं ॥२१॥ उसी तरह ऋषियों ने त्रिगुणात्मक स्मृतियों को भी कहा है । सात्विक, राजस एवं तामस ॥२२॥ वसिष्ठ स्मृति, हारीत स्मृति, व्यास स्मृति, भारद्वाज स्मृति, कश्यप स्मृति ये सभी स्मृतियाँ सात्त्विक तथा मुक्ति प्रदान करने वाली हैं ॥२३॥ मनु स्मृति, याज्ञवलक्य स्मृति, अत्रि स्मृति, दक्ष स्मृति, कात्यायन स्मृति तथा विष्णु स्मृति ये राजस स्मृतियाँ हैं और स्वर्ग प्रदान करने वाली हैं ॥२४॥ गौतम स्मृति बृहस्पति स्मृति, सांवर्त स्मृति, यम स्मृति, शङ्ख स्मृति तथा शुक्र स्मृति ये तामस स्मृतियाँ हैं और नरक देने वाली हैं ॥२५॥ इस विषय में वहुत कहने से कौन सा लाभ है ? पुराणों तथा स्मृतियों में जो तामस हैं वे नरक प्रदान करते हैं । अतएव निपुण व्यक्ति को उन सबों को त्याग देना चाहिए ॥२६॥ हे शुभ दर्शने ! इन सारी बातों को मैंने प्रसङ्ग वशात् कहा है । अव मैं अवशिष्ट श्रीहरि की विभवावस्था का वर्णन करूँगा ॥२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत दो सौ छत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३६।।

दो सौ सैंतिसवाँ अध्याय

श्रीरुद्र उवाच

हिरण्यकहिरण्याक्षौ काश्यपेयौ महाबलौ। दितिपुत्रौ महावीर्यौ सर्वदैत्यपती उभौ ॥१॥
वैकुण्ठनगरस्याऽऽस्तां पश्चिमद्वारपालकौ। नाम्ना तौ जयविजयौ श्वेतद्वीपे हरिं गतौ॥२॥

तस्मिन्प्रविष्टान्योगीन्द्रान्सनकादीन्महाबलौ ।
वारयामासतुर्देवि ! हरिसन्दर्शनोत्सुकान् ॥
तैः प्रशप्तौ महावीर्यौ द्वारपालौ सुरोत्तमौ ॥३॥

सनकादयऊचुः

उत्पत्स्यतः पृथिव्यां तु द्वाःस्थौ देवरू किङ्करौ ॥४॥

रुद्र उवाच

इति शापं तयोर्दत्त्वा तत्र तस्थुर्मुनीश्वराः । देवस्तमर्थं ज्ञात्वा च तानाहूय च तावपि ॥
तौ द्वाःस्थावब्रवीत्तत्र भगवान्भूतभावनः ॥५॥

भगवानुवाच

कृतवन्तौ महावीर्यावपराधं महात्मनाम्। नातिक्रमणीयमिदं भवद्भ्यां द्वारपालकौ॥६॥
दासत्वं सप्तजन्मानियुवांभक्तौममाऽनघौ । अमित्रतांतथात्रीणिजन्मानिभजतोऽपिवा ॥७॥

रुद्र उवाच

इत्युक्तौ तौ महावीर्यावब्रूतां परमेश्वरम् ॥८॥

उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत भगवान् विष्णु के विभवावस्था के वर्णन के प्रसङ्ग में सनकादिकों द्वारा जय और विजय को शाप देना, शाप से अभिभूत उन दोनों का राक्षस योनि में जाना, तदर्थ वराहवतार का वर्णन तथा हिरण्याक्ष वध का वर्णन

श्रीरुद्र ने कहा— हिरण्यकशिपु तथा हिराण्याक्ष दोनों महाबलवान तथा महापराक्रमी दिति के गर्भ से कश्यप ऋषि के पुत्र हुए । ये दोनों सभी दैत्यों के स्वामी थे ॥१॥ वैकुण्ठ नगर के पश्चिम द्वारपाल ये दोनों थे । इन दोनों का नाम जय और विजय था । ये दोनों श्रीहरि के पास श्वेतद्वीप में गये ॥२॥ श्वेतद्वीप में प्रवेश किए हुए सनकादि योगीन्द्रों को उन दोनों ने रोक दिया जबकि वे श्रीहरि का दर्शन करने के लिए उत्सुक थे । उन लोगों ने महापराक्रमी तथा सुरोत्तम उन दोनों को शाप दे दिया ॥३॥ **सनकादिकों ने कहा—** तुम दोनों श्रीहरि के द्वारपाल पृथिवी पर उत्पन्न होओगे ॥४॥ **रुद्र ने कहा—** इस तरह से उन दोनों को शाप देकर वे मुनीश्वर वहीं रुक गये । इस बात को जानकर श्री हरि ने उन मुनीश्वरों और उन दोनों को भी बुला लिया । उन दोनों को भूतभावन भगवान् ने कहा ॥५॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** आप दोनों ने महात्माओं का अपराध किया है । द्वारपालों आप दोनों को इन लोगों का भी अतिक्रमण नहीं करना चाहिए ॥६॥ आप दोनों पृथिवी पर या तो सात जन्मों तक मेरे निष्पाप भक्त होंगे अथवा तीन जन्मों तक मेरे दुश्मन होंगे ॥७॥ **रुद्र ने कहा—** इस तरह से कहने पर दोनों ने श्रीभगवान् से कहा ॥८॥ **जय और**

जयविजयावूचतुः

चिरकालं मही गन्तुं न समर्थौस्वमानद ।। तस्मात्त्रीण्येवजनमानिविद्विद्त्वंचभजावहे ।।
देव ! त्वयैव निहतौ प्राप्स्यावो भवदन्तिकम् ॥९॥

रुद्र उवाच

इत्युक्त्वा द्वारपालौ तौ पूर्वं जातौ महाबलौ ।
कश्यपस्यमहावीर्यौ दितिगर्भे महासुरौ ॥१०॥
हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षः कनिष्ठकः ।
उभौतौलोकविख्यातौ महावीर्यबलोद्धतौ ॥११॥

अप्रमाणशरीरः स हिरण्याक्षो महोद्धतः । उतपाट्य बाहुसाहस्रैः पृथिवीं समहीधराम् ॥१२॥
ससागरां द्वीपयुतां सर्वप्राणिसमन्विताम् । उत्पाट्य शिरसा धृत्वा प्रविवेशरसातलम् ॥१३॥
ततो देवगणाः सर्वे चुकुशुर्भयपीडिताः । शरणं प्रययुर्देवं नारायणमनामयम् ॥१४॥
ततस्तदद्भुतं ज्ञात्वा शङ्खचक्रगदाधरः । वाराहं रूपमास्याथ विश्वरूपं जनार्दनः ॥१५॥
अनादिमध्यान्तवपुः सर्वदेवमयो विभुः । विश्वतः पाणिपच्चक्षुर्महादंष्ट्रो महाभुजः ॥१६॥
एकया दंष्ट्रया दैत्यं जघान परमेश्वरः । संचूर्णितमहागात्रो ममार दितिजाधमः ॥१७॥

पतितां धरणीं दृष्ट्वा दंष्ट्रयोद्धृत्य पूर्ववत् ।
संस्थाप्य धारयामास शेषे कूर्मवपुस्तदा ॥१८॥
तं दृष्ट्वा देवताः सर्वाः क्रोडरूपं महाहरिम् ।
तुष्टुवुर्मुनयश्चैव भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ॥१९॥

विजय ने कहा— हे मानद ! हम दोनों दीर्घकाल तक पृथिवी पर जाने में समर्थ नहीं हैं अतएव तीन जन्मों तक हम दोनों आपके शत्रुत्व को ही प्राप्त करें । हे देव ! आपके ही द्वारा मारे जाकर आपके सान्निध्य को हमदोनों प्राप्त करेंगे ॥९॥ **रुद्र ने कहा—** इस तरह से वे दोनों द्वारपाल पहले दिति के गर्भ से महर्षि कश्यप के महाबलवान् और महान् असुर पुत्र हुए ॥१०॥ हिरण्यकशिपु बड़ा हुआ और हिराण्याक्ष छोटा हुआ । वे दोनों लोक विख्यात महापराक्रमी और उद्धत हुए ॥११॥ मद से उद्धत बना हुआ हिरण्याक्ष बहुत बड़े शरीर वाला हुआ । वह अपनी हजार भुजाओं से पर्वत सहित पृथिवी को उखाड़कर, सागर तथा द्वीपों तथा सभी प्राणियों से युक्त पृथिवी को उखाड़कर वह उसे अपने शिर पर लेकर महासागर में प्रवेश कर गया उसके पश्चात् भयभीत सभी देवता चिल्लाने लगे । वे सब अनाम भगवान् नारायण के शरण में गये ॥१२-१४॥ उसके पश्चात् उस अद्भुत कार्य को जानकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले विश्वरूप भगवान् जनार्दन वाराह रूप धारण करके ॥१५॥ आदि मध्य एवं अन्त रहित शरीर वाले सर्वदेवमय, व्यापक हर ओर पाणि तथा पैर से युक्त श्रीभगवान् वाराह रूप धारण करके अपने एक दाँत से उस दैत्य को मार दिये । चूर्णित शरीर वाला दिति का अधम पुत्र मर गया ॥१६-१७॥ गिरी हुयी पृथिवी को देखकर अपने दाँत से उठाकर पहले के ही समान स्थापित करके शेष और कूर्म के ऊपर रख दिए ॥१८॥ वाराह रूप धारण किए हुए उन श्रीहरि को देखकर देवता तथा मुनिगण भक्तिपूर्वक झुककर उनकी स्तुति किए ॥१९॥ **देवताओं ने कहा—** यज्ञ, वाराह, कृष्ण तथा अनेक भुजाओं वाले श्रीभगवान् को नमस्कार

देवाऊचुः

नमोयज्ञवराहाय कृष्णाय शतबाहवे। नमस्ते वेदवेदाङ्गतनवे विश्वरूपिणे ॥२०॥

सर्गस्थितिस्वरूपाय सर्वयज्ञस्वरूपिणे । कलाकाष्ठानिमेषादिकालरूपाय ते नमः ॥२१॥
भूतात्मने नमस्तुभ्यमृग्वेदवपुषे तथा। सुरात्मने नमस्तुभ्यं सामवेदाय ते नमः ॥२२॥
ॐकाराय नमस्तुभ्यं यजुर्वेदस्वरूपिणे । आथर्वणस्वरूपाय चतुर्वेदमयाय च ॥२३॥
नमस्ते वेदवेदाङ्गसाङ्गोपाङ्गाय ते नमः । नमो भगवते तुभ्यं वराय वपुषे सदा ॥२४॥
नमो भूर्भुवस्स्वःपतेये महईशायते नमः। जनस्तपस्सत्यपतये सर्वलोकेश्वराय च ॥२५॥
वषट्कारात्मने तुभ्यं यज्ञरूपाय ते नमः । गोविन्दाय नमस्तुभ्यमनादिनिधनाय च ॥२६॥
नमस्ते चिदचिद्वस्तुविशिष्टैकस्वरूपिणे । श्रीभूनीलाधिपतये जगत्पित्रे नमोनमः ॥२७॥

रुद्र उवाच

इत्यादिस्तुतिभिः स्तुत्वा देवं वाराहरूपिणम् ।
अर्चयामासुरात्मेशं गन्धपुष्पादिभिर्हरिम् ॥२८॥

समर्च्यमानस्तैर्देवैस्तेषामिष्टं वरं ददौ । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च गीयमानो मुदा हरिः ॥२९॥
महर्षिभिःस्तूयमानस्तत्रैवाऽन्तरधीयत । एभिःस्तुत्वानरोभक्त्याप्रातरुत्थायभक्तिमान् ॥३०॥

है । वेद वेदाङ्ग शरीरक विश्व रूप धारण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२०॥ सृष्टि, स्थिति स्वरूप तथा सर्वयज्ञ स्वरूप, कला, काष्ठा तथा निमेषादि काल रूप वाले आपको प्रणाम हैं ॥२१॥ भूतों की आत्मा तथा वेद शरीरक, देवात्मक तथा सामवेद स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२२॥ ओङ्कार स्वरूप यजुर्वेद स्वरूप, अथर्ववेद स्वरूप, चतुर्वेदात्मक आपको नमस्कार है साङ्गोपाङ्ग वेद वेदाङ्ग स्वरूप आपको नमस्कार है । श्रेष्ठ शरीर वाले आप श्रीभगवान् को सर्वदा नमस्कार है ॥२३-२४॥ भूः भुवः, स्वः, शरीरक महर्लोक के स्वामी, जनलोक, तपोलोक और सत्य लोक के स्वामी तथा सम्पूर्ण लोकों के नियामक आपको नमस्कार है ॥२५॥ वषट्कारात्मक तथा यज्ञ वाराह रूप वाले आपको नमस्कार है । अनादि-निधन आप गोविन्द को नमस्कार है ॥२६॥ चेतनाचेतनों से विशिष्ट एक मात्र स्वरूप वाले आपको नमस्कार है । श्रीदेवी, भूदेवी एवं नीला देवी के पति तथा जगत् के पिता आपको नमस्कार है ॥२७॥ **रुद्र ने कहा—** इस तरह की स्तुतियों से वाराह रूपधारी की तथा सभी आत्माओं के स्वामी श्रीभगवान् की गन्ध तथा पुष्प आदि से वे लोग पूजा किए । उन देवताओं से पूजा किए जाते हुए श्रीभगवान् ने उन देवताओं को अभीष्ट वरदान दिया । गन्धर्वों एवं अप्सराओं से प्रसन्नता पूर्वक गाये जाते हुए श्रीहरि ॥२८-२९॥ तथा महर्षियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए वे वहीं पर अन्तर्धान हो गये प्रातःकाल उठकर भक्ति पूर्वक इन स्तुतियों से श्रीभगवान् की स्तुति करके मनुष्य सस्य एवं फलों से परिपूर्ण अभिप्रेत

ईप्सितॉंल्लभते भूमिं चिरं सस्यफलान्विताम् ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं वाराहं वैभवं हरेः ॥
नारसिंह तथा वक्ष्ये शृणु देवि ! वरानने ! ॥३१॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशतसाहस्त्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे वराहावतारकथनं नाम सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३७॥

दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय

रुद्र उवाच

भ्रातरं निहतं ज्ञात्वा हिरण्यकशिपुस्ततः । तपस्तेपे महादैत्यो मेरोः पार्श्वे च मां प्रति ॥१॥
दिव्यवर्षसहस्राणि वायुभक्षो महाबलः । जपन्पञ्चाक्षरं मन्त्रं पूजयामास मां शुभे !॥२॥
ततः प्रहृष्टमनसा तमवोचं महासुरम् । वरं वृणीष्व दैतेय ! यत्ते मनसि वर्त्तते ॥
ततः प्रोवाच दैतेयो मां प्रसन्नं शुभानने ! ॥३॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । पशुपक्षिमृगाणां च सिद्धानां वै महात्मनाम् ॥४॥
यक्षविद्याधराणां च किन्नराणान्तथैव च । सर्वेषामेव रोगाणामायुधानां तथैव च ॥
सर्वेषामृषिमुख्यानामवध्यत्वं प्रयच्छ मे ॥५॥

भूमि को चिरकाल तक प्राप्त करता है । हे देवि ! अब मैं नरसिंहावतार का वर्णन करता हूँ उसे तुम सुनो ॥३०-३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अनतर्गत वाराहावतार वर्णन नामक दो सौ सैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३७।।

हिरण्यकशिपु के पापाचरण से पीड़ित त्रिलोकी का उद्धार वर्णन के अन्तर्गत प्रह्लाद की कथा के वर्णन के प्रसङ्ग में नृसिंहावतार का वर्णन

रुद्र ने कहा— उसके पश्चात् अपने भाई को मारा हुआ जानकर महादैत्य हिरण्यकशिपु ने सुमेरु पर्वत के सन्निकट मेरे उद्देश्य से तपस्या किया ॥१॥ वह महाबलवान् देवताओं के एक हजार वर्ष तक वायु पीकर रहा । वह पञ्चाक्षर मन्त्र को जपते हुए तथा मेरी पूजा करते हुए हे पार्वति ! रहा ॥२॥ उसके बाद प्रसन्न मन से मैंने उससे कहा हे दैतेय ! तुम्हारे मन में जो हो वह वरदान माँगो । हे शुभानने ! उसके पश्चात् वह दैतेय प्रसन्न होकर मुझसे कहा ॥३॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, उरग, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग तथा सिद्ध महात्मागण ॥४॥ यक्ष, विद्याधर, किन्नर, सभी आयुध तथा रोग

रुद्र उवाच

एवमस्त्विति तद्रक्षस्त्वब्रवं प्रियदर्शने ! । मत्तो महद्वरं प्राप्य स दैतेयो महाबलः ॥६॥
जित्वामहेन्द्रंदेवांश्चसत्रैलोक्येश्वरोऽभवत् । सर्वांश्चयज्ञभागांश्चस्वयमेवाऽग्रहीद्बलात् ॥७॥
त्रातारं नाधिगच्छन्ति देवतास्तेन निर्जिताः। तस्यैव किङ्कराःसर्वे गन्धर्वादिवदानवाः ॥८॥
यक्षाश्च नागाः सिद्धाश्च साध्याश्च वशवर्तिनः ।
उत्तानपादस्य सुतां कल्याणीं नाम कन्यकाम् ॥९॥
उपयेमे विधानेन दैत्यराजो महाबलः। तस्यां जातो महातेजाः प्रह्लादो दैत्यराट्छुभे !॥१०॥
अनुरक्तोहृषीकेशे गर्भवासेऽपि यो हरौ। सर्वावस्थासु कृत्येषु मनोवाक्कायकर्मभिः ॥११॥
नान्यंजानाति देवेशात्प्रसन्नात्मासनातनात्। सकालेनोपनीतः सन्गुरुगेहेऽवसत्सुधीः ॥१२॥
अधीत्य सर्ववेदांश्च शास्त्राणि विविधानि च ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य गुरुणा सह दैत्यजः ॥१३॥
पितुः समीपमागत्य ववन्दे विनयान्वितः । तं परिष्वज्य बाहुभ्यां तनयं शुभलक्षणम् ॥
अङ्के निधाय दैत्येन्द्रः प्रोवाचेदं सुविस्मितम् ॥१४॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

प्रह्लाद ! चिरकालंत्वं गुरुगेहे निवेशितः। यदुक्ता गुरुणा विद्या तन्ममाऽऽचक्ष्वसुव्रत ! ॥१५॥

रुद्र उवाच

इतिपृष्टः स्वपित्रा वै प्रह्लादो जन्मवैष्णवः। प्राह दैत्येश्वरं प्रीत्या वचनं कलुषापहम्॥१६॥

तथा सभी मुख्य ऋषियों से मुझको अवध्य बना दें ॥५॥ **रुद्र ने कहा—** हे प्रियदर्शने ! उस राक्षस से मैंने कहा ठीक है, ऐसा ही होगा । मुझसे महान् वरदान पाकर वह महाबलवान् दैत्य ॥६॥ महेन्द्र तथा देवताओं को जीतकर त्रैलोक्य का स्वामी बन गया । वह बल पूर्वक सम्पूर्ण यज्ञ भागों का स्वयं ग्रहण कर लिया ॥७॥ उससे पराजित देवता अपने किसी भी रक्षक को नहीं पाये । सभी देवता, गन्धर्व और किन्नर उसी के किङ्कर हो गये ॥८॥ यक्ष, नाग, सिद्ध तथा गन्धर्व उसके वशवर्ती हो गये । उत्तानपाद की कल्याणी नामकी पुत्री से महाबलवान राक्षस ने ॥९॥ विधिपूर्वक विवाह किया । हे शुभे ! उसके गर्भ से महातेजस्वी दैत्यराज प्रह्लाद उत्पन्न हुए ॥१०॥ वे गर्भ में भी भगवान् श्रीहरि की भक्ति में अनुरक्त थे । सभी अवस्थाओं और सभी कार्यों में मन, वाणी और शरीर से ॥११॥ प्रसन्न होकर वे सनातन तथा देवताओं के स्वामी श्रीभगवान् से भिन्न किसी को नहीं मानते थे । समयानुसार उपनीत होकर वे गुरुकुल में निवास किए ॥१२॥ सभी वेदों तथा विविध शास्त्रों का अध्ययन करके एक समय अपने गुरु के साथ वे दैतेय पुत्र ॥१३॥ अपने पिता के समीप आए और उनको नम्रता पूर्वक वन्दना किए । उस शुभ लक्षण से युक्त अपने पुत्र का दोनों हाथों से आलिङ्गन करके दैत्यराज उनको अपनी गोद में बैठाए और आश्चर्य पूर्वक उनसे कहे ॥१४॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** हे प्रह्लाद ! तुम दीर्घकाल तक अपने गुरु के घर रहे गुरु ने तुमको जिस विद्या का उपदेश दिया है, उसे मुझे सुनाओ ॥१५॥ **रुद्र ने कहा—** अपने पिता के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर जन्म से ही वैष्णव प्रह्लाद ने दैत्येश्वर से प्रेम पूर्वक सभी पापों को दूर करने

प्रह्लाद उवाच

यो वै सर्वोपनिषदामर्थः पुरुषईश्वरः। तं वै सर्वगतं विष्णुं नमस्कृत्य ब्रवीमि ते ॥१७॥

रुद्र उवाच

इति विष्णुस्तुतिं श्रुत्वा दैत्यराड्विस्मयान्वितः ।
उवाच तं गुरुं रोषत्किं त्वयोक्तं ममात्मजे ॥१८॥

ममाऽऽत्मजस्यदुर्बुद्धे ! हरिसंस्तवमीदृशम् । किमर्थमुक्तवाञ्जाड्यमकार्यंब्राह्मणोचितम् ॥१९॥

अश्राव्यं मदमित्रस्यस्तवमेतं ममाऽग्रतः। बालेनाऽपि कृतं त्वेतत्त्वत्प्रसादाद्द्विजाधम ! ॥२०॥

इत्युक्त्वा परितोवीक्ष्यदैत्यराट्क्रोधमूर्च्छितः । उवाच दैत्यमेकं तु बन्धयैनंद्विजाधमम् ॥२१॥

इतिराजवचः श्रुत्वा स बबन्ध भृगोः सुतम् ।
बध्यमानं गुरुं दृष्ट्वा प्रह्लादो ब्राह्मणप्रियः ॥२२॥

उवाच पितरं तात ! इदं मे नोक्तवान्गुरुः । कृपया देवदेवस्य शिक्षितोऽस्मि हरेः प्रभो !॥२३॥

नान्यो गुरुर्मे भवति स एव प्रेरको हरिः । श्रोता मन्ता तथा वक्ता द्रष्टा सर्वग ईश्वरः ॥२४॥

हरिरेवाऽक्षयः कर्त्ता नियन्ता सर्वदेहिनाम् ।
तदनागा ह्यसौ विप्रो मोक्तव्योऽयं गुरुः प्रभो ! ॥२५॥

रुद्र उवाच

इति पुत्रवचःश्रुत्वा हिरण्यकशिपुस्ततः । तम्ब्राह्मणं मोचयित्वा स्वसुतंप्राहविस्मयात् ॥२६॥

किं वत्स ! त्वं भ्रमस्येवं मिथ्यावाक्यैर्द्विजन्मनः ।
को विष्णुः किं तु तद्रूपं कुत्राऽसौ संस्थितो हरिः ॥२७॥

वाली वाणी को कहे ॥१६॥ **प्रह्लाद ने कहा**— जो ईश्वर पुरुष सभी उपनिषदों के प्रतिपाद्य हैं उन सर्वव्यापक भगवान् विष्णु को नमस्कार करके मैं आपसे कहता हूँ ॥१७॥ **रुद्र ने कहा**— इस तरह से भगवान् विष्णु की स्तुति सुनकर आश्चर्य चकित होकर गुरु से हिरण्कशिपु ने क्रोध पूर्वक कहा । तुमने मेरे पुत्र को क्या पढ़ाया है ?॥१८॥ अरे दुबुद्धे ! मेरे पुत्र को इस तरह की श्रीहरि की स्तुति क्यों तुमने बतलाया जो जाड्य तथा ब्राह्मणोचित्त कार्य नहीं है ॥१९॥ मेरे शत्रु की इस तरह की मेरे सामने स्तुति सुनने योग्य नहीं है। किन्तु हे ब्राह्मणाधम ! तुम्हारी ही कृपा से इस बालक ने भी स्तुति की है यह कहकर क्रोध पूर्वक चारो ओर देखकर दैत्यराज ने एक दैत्य को कहा कि इस अधम द्विज को बाँध दो ॥२०-२१॥ राजा की इस वाणी को सुनकर उस दैत्य ने भृगु महर्षि के पुत्र को बाँध दिया । बाँधे जाते हुए गुरु को देखकर ब्राह्मणप्रिय प्रह्लाद ने ॥२२॥ अपने पिता से कहा कि गुरु ने मुझको यह नहीं पढ़ाया है । हे प्रभो ! मैं देवाराध्य श्रीहरि की कृपा से ही शिक्षित हूँ ॥२३॥ मेरा दूसरा कोई गुरु नहीं है, श्रीहरि ही मेरे प्रेरक हैं। ईश्वर ही, श्रवण करने वाले, मनन करने वाले, बोलने वाले और द्रष्टा तथा सर्वत्र व्यापक हैं ॥२४॥ श्रीहरि ही अक्षय, कर्ता, तथा समस्त शरीर धारियों के नियामक हैं । अतएव मेरे इस निर्दोष गुरु को छोड़ देना चाहिए ॥२५॥ **रुद्र ने कहा**— अपने पुत्र की इस तरह की वाणी सुनकर हिरण्यकशिपु ने उस ब्राह्मण को छोड़कर आश्चर्यचकित होकर अपने पुत्र से कहा ॥२६॥ हे पुत्र ! तुम ब्राह्मण के मिथ्या वाक्यों से इस

अहमेवेश्वरो लोके त्रैलोक्याधिपतिर्मतः । मामेवार्चय गोविन्दं त्यज शत्रुं दुरासदम् ॥२८॥
अथवा शङ्करं देवं रुद्रं लोकगुरुं प्रभुम् । अर्चयस्व सुराध्यक्षं सर्वैश्वर्यप्रदं शिवम् ॥२९॥
त्रिपुण्ड्रधारणं कृत्वा भस्मना दैत्यपूजितम् । पूजयस्व महादेवं पाशुपत्योक्तमार्गतः ॥३०॥

रुद्र उवाच

इति दैत्यपतमेर्वाक्यं श्रुत्वोचुस्तत्पुरोहिताः ॥३१॥

पुरोहिताऊचुः

एवमेव महाभाग ! कुरुष्व वचनं पितुः । त्यज शत्रुं कैटभारिं पूजयस्व त्रिलोचनम् ॥३२॥
रुद्रात्परतरो देवोनास्ति सर्वप्रदोनृणाम् । पितातवाऽपि तस्यैव प्रसादादीश्वरोऽभवत् ॥३३॥

रुद्र उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रह्लादः प्राह वैष्णवः ॥३४॥

प्रह्लाद उवाच

अहो भगवतः श्रैष्ठ्यंयन्मायामोहितं जगत् । अहो वेदान्तविद्वांसः सर्वलोकेषुपूजिताः ॥३५॥
ब्राह्मणाअपि चापल्याद्वदन्त्येवं मदान्विताः । नारायणः परं ब्रह्मतत्त्वं नारायणः परम् ॥३६॥
नारायणः परोध्याता ध्यानं नारायणःपरम् । गतिर्विश्वस्य जगतःशाश्वतं शिवमच्युतः ॥३७॥
धाता विधाता जगतो वासुदेवः सनातनः। विश्वमेवेदं पुरुषस्तद्विश्वमुपजीवति ॥३८॥
हिरण्मयवपुर्नित्यः पुण्डरीकनिभेक्षणः। श्रीभूनीलापतिः सौम्यो निर्मलः शुभविग्रहः ॥३९॥
तेनैव सृष्टौ ब्रह्मेशौ सर्गसंहारकारकौ । तस्यैवाऽऽज्ञां पुरस्कृत्य वर्त्तेते ब्रह्मशङ्करौ ॥४०॥

प्रकार से क्यों भ्रान्त हो गये हो ? विष्ण कौन हैं ? उनका रूप क्या हैं ? तथा वह हरि कहाँ पर रहते हैं ?॥२७॥ मैं संसार में ईश्वर हूँ, त्रैलोक्य का स्वामी हूँ तुम मेरी ही पूजा करो मेरे शत्रु तथा दूर रहने वाले गोविन्द को तुम छोड़ो ॥२८॥ अथवा शङ्कर देवता की ही पूजा करो वे रुद्र लोक गुरु और स्वामी हैं । तुम सभी ऐश्वर्य को प्रदान करने वाले देवताओं के स्वामी शिवजी की पूजा करो ॥२९॥ भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करके दैत्यों के द्वारा पूजित पाशुपातशास्त्र में वर्णित विधि से महादेव की पूजा करो ॥३०॥ **रुद्र ने कहा—** दैत्यपति की इस वाणी को सुनकर उसके पुरोहितों ने कहा ॥३१॥ **पुरोहितों ने कहा—** हे महाभाग ! इसी तरह से तुम अपने पिता की वाणी को मानो । तुम हमलोगों क़े शत्रु कैटभारि को छोड़ों और शङ्करजी की पूजा करो ॥३२॥ मनुष्यों को सबकुछ प्रदान करने वाले शिवजी से बड़ा देवता कोई नहीं है । उनकी ही कृपा से तुम्हारे पिता भी जगत् के स्वामी हुए हैं । **रुद्र ने कहा—** उन सवों की इस प्रकार की वाणी सुनकर वैष्णव प्रह्लाद ने कहा ॥३३-३४॥ **प्रह्लाद बाले—** श्रीभगवान् ही सबसे श्रेष्ठ हैं, उन्हीं की माया से मोहित संसार है । हे वेदान्त के विद्वानों ! आपलोग तो सम्पूर्ण लोकों में पूजित हैं ॥३५॥ चापल्य के कारण मदमत्त ब्राह्मण ही इस तरह की बातें कहते हैं । नारायण ही परब्रह्म तथा परंतत्त्व हैं ॥३६॥ नारायण ही सबसे बड़े धयाता तथा सर्वश्रेष्ठ ध्यान हैं । वे सम्पूर्ण जगत् के प्राप्य शाश्वत कल्याणकारी तथा अच्युत हैं ॥३७॥ संसार के धाता और विधाता सनातन वासुदेव ही हैं । वे सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं तथा वे सम्पूर्ण जगत् के उपजीव्य हैं ॥३८॥ वे हिरण्यमय शरीरक, नित्य कमल के समान नेत्र वाले, श्रीदेवी, भूदेवी और नीला देवी के पति हैं । वे सौम्य, निर्दोष और शुभ शरीरक हैं ॥३९॥ उन्होंने

भीषाऽस्माद्वाति पवनो भीषोदेति दिवाकरः ।
भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रोऽथ मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥४१॥
आसीदेको हरिर्दिव्यो देवो नारायणः परः। ब्रह्मा नेन्द्रो नचेशानो नच चन्द्रदिवाकरौ ॥४२॥
नवाद्यावापृथिव्यौच नक्षत्राणि दिवौकसः । तस्यविष्णोः परंधाम सदापश्यन्तिसूरयः ॥४३॥
एवं सर्वोपनिषदामर्थंहित्वा द्विजोत्तमाः । रागाल्लोभाद्भयाद्वापि किम्वा ब्रूथ ममाऽग्रतः ॥४४॥
तं सर्वरक्षकं देवं त्यक्त्वासर्वेश्वरं हरिम् । कथं पाषण्डमाश्रित्य पूजयामिच शङ्करम् ॥४५॥
लक्ष्मीपतिं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् । इन्दीवरदलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥४६॥
श्रीवत्सलक्षितोरस्कं सर्वाभरणभूषितम् । सदाकुमारं सर्वेशं नित्यानन्दसुखप्रदम् ॥४७॥
कृष्णं दध्युर्महात्मानो योगिनः सनकादयः । यमर्चयन्ति ब्रह्मेशशक्राद्या देवतागणाः॥४८॥
यस्य पत्न्याः कटाक्षार्द्धदृष्ट्या दृष्टा दिवौकसः ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवरुणयमसोमधनाधिपाः ॥४९॥
यन्नामस्मरणादेव पापिनामपि सत्वरम् । मुक्तिर्भवति जन्तूनां ब्रह्मादीनां सुदुर्लभा॥५०॥
स एव रक्षकः श्रीशो देवानामपि सर्वदा । तमेव पूजयिष्यामि लक्ष्म्या संयुतमच्युतम् ॥
प्राप्स्यामि सुसुखेनैव तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५१॥

रुद्र उवाच

इतितस्यवचःश्रुत्वा हिरण्यकशिपुस्ततः । क्रोधेनमहताऽऽविष्टो जज्वालाऽग्निरिवाऽपरः॥
परितो वीक्ष्य दैतेयानित्याह क्रोधमूर्च्छितः ॥५२॥

ही ब्रह्माजी तथा शङ्करजी की सृष्टि की है । जो जगत् की सृष्टि और संहार को करने वाले हैं । ब्रह्माजी और शङ्करजी उनकी ही आज्ञा का पालन करते हैं ॥४०॥ भगवान् नारायण के भय से ही वायु सदा चलती रहती हैं, उनके ही डर से सूर्य समय से उदित होते हैं उनके भय से ही अग्नि और इन्द्र तथा मृत्यु सदा दौड़ते रहते हैं ॥४१॥ सृष्टि से पूर्व दिव्य देवता केवल नारायण ही थे । ब्रह्माजी, शिवजी, इन्द्र, चन्द्रमा और सूर्य उस समय नहीं थे ॥४२॥ उस समय द्युलोक और भूलोक भी नहीं थे सभी नक्षत्र और देवता भी नहीं थे । उन भगवान् के परंधाम का सूरिजन सदा साक्षात्कार करते हैं ॥४३॥ हे द्विजोतम ! सभी उपनिषदों के प्रतिपाद्य श्रीभगवान् को छोड़कर राग, लोभ अथवा भय के कारण आपलोग मेरे समक्ष क्या कहते हैं ॥४४॥ सबों की रक्षा करने वाले सर्वेश्वर श्रीहरि को छोड़कर तथा पाषण्ड को अपनाकर मैं शङ्करजी की पूजा कैसे कर सकता हूँ ॥४५॥ लक्ष्मीजी के पति, देवाराध्य, अनन्त, पुरुषोत्तम नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले तथा कमलदल के समान विस्तृत नेत्र वाले ॥४६॥ जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न से सुशोभित है, सभी अलङ्कारों से अलंकृत, सदा कुमारावस्था में रहने वाले, सबों के स्वामी नित्यानन्दमय सुख प्रदान करने वाले ॥४७॥ भगवान् विष्णु का महात्माजन, योगिजन और सनकादिक ध्यान करते हैं । ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि देवता जिनकी पूजा करते हैं ॥४८॥ जिनकी पत्नी के आधे कटाक्ष पूर्वक देखने मात्र से ब्रह्माजी आदि देवताओं के लिए भी दुर्लभ पापी जीवों की मुक्ति हो जाती है ॥४९-५०॥ वे ही लक्ष्मीपति सभी देवताओं आदि के रक्षक हैं मैं उन्हीं श्रीभगवान् की पूजा लक्ष्मीजी के साथ करूँगा और बड़ी आसानी से भगवान् विष्णु के परमधाम को प्राप्त करुगा ॥५१॥ **रुद्र ने कहा—** प्रह्लाद की इस

हिरण्यकशिपुरुवाच

भीषणैः शस्त्रसङ्घातैः प्रह्लादं पापकारिणम्। ममाऽऽज्ञया घातयध्वं शत्रुपूजनतत्परम् ॥५३॥
रक्षिता हरिरेवेति प्रोच्यते तेन वाक्छलात्। अद्यैव सफलं तस्य पश्येयं हरिरक्षणम् ॥५४॥

रुद्र उवाच

तदोद्यतास्त्रा दैतेया हन्तुं दैत्येश्वरात्मजम्। परिवार्य महात्मानं तस्थुर्दैत्येश्वराज्ञया॥५५॥
प्रह्लादोऽपि तदा विष्णुं ध्यात्वा हृदयपङ्कजे। जपन्नष्टाक्षरंमन्त्रं तस्थौ गिरिरिवाऽपरः ॥५६॥
तं जघ्नुः परितो वीराः शूलतोमरशक्तिभिः ।
प्रह्लादय वपुस्तत्र हरिसंस्मरणाच्छुभे ! ॥५७॥
विष्णोः प्रभावाद्दुर्द्धर्षं वज्रभूतमभूद्दृशम्। ततः सम्प्राप्य तद्गात्रं महास्त्राणि सुरद्विषाम्॥५८॥
नीलोत्पलदलानीव पेतुश्छिन्नाःक्षितौ शुभे ! ।
अल्पमप्यस्य तद्गात्रं भेत्तुंदैत्या न च क्षमाः ॥५९॥
विस्मितावाङ्मुखास्तस्थुर्दैत्यराजान्तिकेभटाः ।
तादृग्विधंमहात्मानंदृष्ट्वापुत्रम्महाबलम् ॥६०॥
विस्मयंपरमंगत्वा दैत्यराट्क्रोधमूर्च्छितः। आदिदेश ततः सर्वान्दन्दशूकान्महाविषान्॥६१॥
वासुकिप्रभृतीन्यीमानखादयध्वमितिक्रुधा । आदिष्टास्तेनराज्ञाऽथ तेनागाःसुमहाबलाः ॥६२॥
ज्वलितास्या महाभीमास्तं चखादुर्महाबलम्। गरुडध्वजभक्तन्तं विदश्य गरलायुधाः॥६३॥
निर्विषाश्छिन्नदशना बभूवुरनिलाशनाः। वैनतेयसहस्रेण च्छिन्नगात्राः सुविह्वलाः ॥६४॥

तरह की वाणी को सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोध के कारण दूसरी अग्नि के समान जलने लगा । चारो तरफ दैत्यों को देखकर क्रोध से बेचैन ॥५२॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** तुमलोग मेरी आज्ञा से भीषण शस्त्रपात के द्वारा पापी प्रह्लाद जो मेरे शत्रु की पूजा करता है, उसको मार डालो ॥५३॥ वह कहता है कि श्रीहरि ही रक्षा करने वाले हैं तो आज ही उसकी हरि के द्वारा रक्षा को मैं देख लेता हूँ ॥५४॥ **रुद्र ने कहा—** दैत्येश्वर की आज्ञा से दैत्येश्वर के पुत्र को मारने के लिए शस्त्र उठाये हुए दैत्य उन महात्मा को चारो ओर से घेर कर खड़े हो गये ॥५५॥ उस समय प्रह्लाद भी अपने हृदय कमल में श्रीहरि विष्णु का ध्यान करके अष्टाक्षर मन्त्र को जपते हुए दूसरे पर्वत के समान खड़े रहे ॥५६॥ उनको चारो तरफ से वीर शूल, तोमर तथा परिघ से मारने लगे । हे शुभे ! श्रीहरि का स्मरण करने के कारण प्रह्लाद का शरीर ॥५७॥ भगवान् विष्णु के प्रभाव से वज्र के मसन दुर्धर्ष हो गया उसके कारण उनके शरीर को प्राप्त करके दैत्यों के महास्त्र॥५८॥ नील कमल के समान टूटकर पृथिवी पर गिर पड़े । वे दैत्य थोड़ा सा भी प्रह्लाद के शरीर को काटने में समर्थ नहीं हो सके ॥५९॥ वे आश्चर्यित होकर नीचे मुँह करके हिरण्यकशिपु के सामने खड़े हो गये । उस तरह के महाबलवान् अपने पुत्र महात्मा प्रह्लाद को देखकर ॥६०॥ अत्यन्त आश्चर्यित होकर दैत्यराज क्रुद्ध होकर दैत्यराज ने महाविषैले ॥६१॥ वासुकि इत्यादि को क्रोध पूर्व आदेश दिया कि तुमलोग इसको काट लो । उस राजा के द्वारा आदिष्ट होकर वे महा बलवान् नाग भी ॥६२॥ जिनके मुख से अग्नि निकल रही थी ऐसे अत्यन्त भयंङ्कर वे अपने अत्यन्त मोटे दाँतों से श्रीभगवान् के उस भक्त को विष ही जिनका आयुध है उससे काटकर ॥६३॥ वायु ही जनका आहार है ऐसे वे विषहीन तथा दाँतों से रहित

प्रदुद्रुवुर्दिशः सर्वा वमन्तो रुधिरंभृशम् । तादृग्विधान्महासर्पान्दृष्ट्वा दैत्यपतिस्तदा ॥६५॥
आदिदेश ततः क्रुद्धो दिग्गजान्सुमदान्वितान् ।
निर्दिष्टास्तेन राज्ञाऽथ दिग्गजाश्च मदोद्धताः ॥६६॥
परिवार्याऽथ तं जघ्नुर्दन्तैः पृथुतरैर्भृशम् । अथ दिग्गजदन्ताश्चच्छिन्नमूलास्ततोऽपतन् ॥६७॥
दन्तैर्विना कृतानागा भयार्त्ता वै प्रदुद्रुवुः । तान्दृष्ट्वाऽथ महानागान्दैत्येन्द्रःकुपितोबली ॥६८॥
प्रज्वाल्यचमहावह्निं चिक्षेप सुतमात्मनः । जलशायिप्रियं दृष्ट्वा प्रह्लादं हव्यवाहनः ॥६९॥
न ददाह च तं धीरं सुशीतः समभूच्छिखी ।
अदह्यमानं तं बालं दृष्ट्वा राजा सुविस्मितः ॥७०॥
प्रादात्तस्मै विषं घोरं सर्वभूताहितन्तदा । तस्य विष्णोःप्रभावाच्चविषमस्याऽमृतंभवेत् ॥७१॥
अर्पणात्तस्य देवस्य विषं चामृतमश्नुते । एवमाद्यैर्वधोपायैर्घोररूपैः सुदारुणैः ॥७२॥
बाधयित्वाऽऽत्मजं राजा तस्याऽवध्यत्वमीक्ष्य च ।
ततः साम्ना सुतं प्राह दैत्यराड्विस्मयाकुलः ॥७३॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

त्वयाविष्णोःपरत्वंचसम्यगुक्तंममाग्रतः । व्यापित्वात्सर्वभूतानांविष्णुरित्यभिधीयते ॥७४॥
योऽसौ सर्वगतोदेवः स एव परमेश्वरः । तस्य सर्वगतत्वं वै प्रत्यक्षं दर्शयस्व मे ॥७५॥
ऐश्वर्यशक्तितेजांसि ज्ञानवीर्यबलानि च । पश्येयं तस्य परमं रूपं गुणविभूतयः ॥७६॥

हो गये । वे हजारों गरुड़ों से काटे गये शरीर वाले वे अत्यन्त घबरा गये ॥६४॥ वे अत्यधिक खून उगलते हुए सभी दिशाओं में भाग गये । उन सर्पों को वैसा देखकर हिरण्यकशिपु ने ॥६५॥ अत्यन्त मदमत्त दिग्गजों को क्रोध करके आदेश दिया । हिरण्यकशिपु के द्वारा आदिष्ट मदोद्धत दिग्गज ॥६६॥ प्रह्लाद को चारो ओर से घेरकर अपने मोटे दाँतों से खूब मारे । किन्तु दिग्गजों के दाँत भी जड़ से उखाड़कर पृथिवी पर गिर पड़े ॥६७॥ दाँतों से हीन होकर वे दिग्गज भयभीत होकर भाग चले । उन महान दिग्गजों को देखकर बलवान दैत्येन्द्र क्रुद्ध होकर ॥६८॥ बहुत अधिक अग्नि को जलाकर उसमें अपने पुत्र को डाल दिए । जल में शयन करने वाले भगवान को प्रिय प्रह्ललाद को देखकर अग्नि ॥६९॥ उन धैर्यशील प्रह्लाद को न जलाकर अत्यन्त शीतल हो गये । उस बालक को नहीं जलते हुए देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हिरण्यकशिपु ॥७०॥ सभी जीवों का कल्याण करने वाले प्रह्लाद को अत्यन्त भयङ्कर विष प्रदान किये । भगवान् विष्णु की कृपा से वह विष उनके लिए अमृत हो गया ॥७१॥ श्रीभगवान् को समर्पित करने के कारण विष भी अमृत हो गया । इस प्रकार के बध के भयङ्कर उपायों से ॥७२॥ बाधित करके हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को अवध्य समझ लिया उसके बाद हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से प्रेम पूर्वक कहा ॥७३॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** तुमने मेरे सामने विष्णु के परत्व को अच्छी तरह से प्रतिपादित किया है । सभी भूतों में व्यापक होने के कारण वे विष्णु कहे जाते हैं ॥७४॥ यो सर्वव्यापक देवता हैं वही परमेश्वर हैं । उस विष्णु की सर्वव्यापकता को तुम मेरे सामने दिखाओ ॥७५॥ ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज, ज्ञान और बल और उनके गुण तथा विभूति को मैं देखना चाहता हूँ ॥७६॥ अच्छी तरह से प्रयत्न

सम्यग्दृष्ट्वा प्रयत्नेन विष्णुं मन्ये दिवौकसम् ।
मम प्रतिबलो लोके नास्तिदेवेषु कश्चन ॥७७॥
ईशानवरदानेन सर्वभूतेष्ववध्यताम् । प्राप्तवान्सर्वभूतानां दुर्जयत्वं च मानद ! ॥
ईश्वरत्वं लभेद्विष्णुर्मां जित्वा बलवीर्यतः ॥७८॥

रुद्र उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रह्लादः प्राह विस्मितः ।
हरेःप्रभावं दैत्यस्यकथयामास सुव्रतः ॥७९॥

प्रह्लाद उवाच

योऽसौ नारायणःश्रीमान्परमात्मा सनातनः । वसनात्सर्वभूतेषु वासुदेवः स उच्यते॥८०॥
सर्वव्यापी जगद्धाता विष्णुरित्यभिधीयते । न किञ्चिदस्मादन्यत्तु जगत्स्थावर जङ्गमम् ॥८१॥
सर्वत्र चिदचिद्वस्तुरूपं तस्यैव नान्यथा। त्रिपाद्व्याप्तिः परंव्योम्निपादव्याप्तिरिहाद्भुता ॥८२॥
योऽसौ चक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः ।
योगिभिर्दृश्यते भक्त्या नाऽभक्त्या दृश्यते क्वचित् ॥८३॥
द्रष्टुं न शक्यो रोषाच्च मत्सराद्वा जनार्दनः ।
देवतिर्यङ्मनुष्येषु स्थावरेष्वपि जन्तुषु ॥
व्याप्य तिष्ठति सर्वेषु क्षुद्रेष्वपि महत्सु च ॥८४॥

रुद्र उवाच

इतिप्रह्लादवचनं श्रुत्वा दैत्यवरस्तदा। उवाच रोषताम्राक्षो भर्त्सयंश्च सुतं मुहुः॥८५॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

असौ सर्वगतो विष्णुरपि चेत्परमःपुमान् । प्रत्यक्षं दर्शयस्वाऽद्य बहुभिः किं प्रलापितैः॥८६॥

पूर्वक देखकर मैं विष्णु को देवता मानता हूँ । मेरे सामने देवताओं में कोई भी बलवान् नहीं है ॥७७॥ हे मानद ! शङ्करजी के वरदान के कारण मैंने सभी भूतों से अबध्यता प्राप्त कर ली है और मैंने सभी भूतों से दुर्जयत्व को प्राप्त कर लिया है । मुझको अपने बल एवं पराक्रम से जीतकर विष्णु ईश्वरत्व को प्राप्त करें ॥७८॥ **रुद्र ने कहा—** हिरण्कशिपु की बातें सुनकर प्रह्लाद आश्चर्यित होकर हिरण्यकशिपु के सामने श्रीहरि के प्रभाव को कहे ॥७९॥ **प्रह्लाद ने कहा—** ये जो सनातन परमात्मा भगवान् श्रीमन्नारायण हैं सभी भूतों में निवास करने के कारण वासुदेव कहे जाते हैं ॥८०॥ सर्वव्यापक तथा जगत् का पालक होने के कारण वे विष्णु कहे जाते हैं । स्थावर जङ्गमात्मक जगत् में विष्णु से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥८१॥ सम्पूर्ण चेतन और अचेतन उनके ही रूप है । परम व्योम में उनकी त्रिपाद व्याप्ति है और इस जगत् में उनकी एकपाद व्याप्ति है ॥८२॥ वे हाथ में चक्र और गदा लिए रहते हैं तथा पीताम्बर धारण करते हैं । योगिजन उनका भक्ति के माध्यम से साक्षात्ककार करते, भक्ति के बिना वे कहीं भी नहीं देखे जा सकते हैं ॥८३॥ क्रोध अथवा मत्सर के द्वारा भगवान् जनार्दन को कोई नहीं देख सकता है । वे देवता, तिर्यक्, मनुष्य तथा स्थावरों में व्यापक रूप से रहते हैं । वे सभी छोटी तथा बड़ी वस्तुओं में व्यापक हैं ॥८४॥ **रुद्र ने**

महादेव उवाच

इत्युक्त्वा सहसा दैत्यः प्रासादस्तम्भमात्मनः ।
ताडयामास हस्तेन प्रह्लादमिदमब्रवीत् ॥८७॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

अस्मिन्दर्शयतंविष्णुंयदिसर्वगतोभवेत् । अन्यथात्वांहनिष्यामिमिथ्यावाक्यप्रलापिनम् ॥८८॥

रुद्र उवाच

इत्युक्त्वा सहसा खड्गमाकृष्य दितिजेश्वरः ।
प्रह्लादोरसि चिक्षेप हन्तुं खड्गेन तं रुषा ॥८९॥

तस्मिन्क्षणे महाशब्दः स्तम्भेसंश्रूयतेभृशम् । सम्वर्ताशनिसंरावैःखमिवस्फुटितान्तरम् ॥९०॥
तेन शब्देन महता दैत्यश्रोत्रविघातिना । सर्वे निपातिता भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः ॥९१॥
बिभ्यति संप्लुतं दैत्या मेनिरे वै जगत्त्रयम् ।
तां स्थूणां तु द्विधा भित्त्वा निष्क्रान्तो वै महाहरिः ॥९२॥
चकार स महाघोरं जगत्क्षयनिभस्वनम् । तेन नादेन महता तारकाः पतिता भुवि ॥९३॥
नृसिंहवपुरास्थाय तत्रैवाऽऽविरभूद्धरिः । अनेककोटिसूर्याग्नितेजसा स समावृतः ॥९४॥
मुखेपञ्चाननप्रख्यः शरीरे मानुषाकृतिः । दंष्ट्राकरालवदनस्त्र्यक्षश्च त्रिसटोद्धतः ॥९५॥
ज्वालावलितकेशान्तस्सस्फुलिंगेक्षणोविभुः । सहस्त्रबाहुभिर्दीर्घैः सर्वायुधसमन्वितैः ॥९६॥
वृतो मेरुरिवाभाति बहुशाखानगान्वितः । दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥९७॥

कहा— प्रह्लाद के इस वचन को सुनकर दैत्यश्रेष्ठ ने क्रोध से आँखें लाल करके प्रह्लाद को डाँटते हुए कहा ॥८५॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा**— यह विष्णु यदि सर्वव्यापक हैं तो विष्णु को प्रत्यक्ष दिखलाओ बहुत अधिक बोलने से क्या लाभ है ?॥८६॥ **महादेवजी ने कहा**— इस तरह से कहकर उसने अपने महल के स्तम्भ में हाथ से मारकर प्रह्लाद से कहा ॥८७॥ यदि विष्णु सर्वव्यापक हैं तो इस स्तम्भ में उनको दिखाओ । अन्यथा मैं झूठ बातें कहने वाले तुमको मार देता हूँ ॥८८॥ **रुद्र ने कहा**— यह कहकर सहसा खड्ग खींचकर हिरण्यकशिपु उससे प्रह्लाद को मारने के लिए उनको खड्ग से मारा ॥८९॥ उसी क्षण स्तम्भ में महान् शब्द सुनायी पड़ा । संवतर्क के समान उसकी ध्वनि थी अथवा मेघ के फटने के समान वह ध्वनि थी ॥९०॥ उस महान् तथा दैत्यश्वर के कान को कष्ट देने वाले शब्द से सबके सब जिसकी जड़ काट दी गयी हो ऐसे वृक्ष के समान, पृथिवी पर गिर पड़े ॥९१॥ दैत्यों को लगा कि उससे त्रैलोक्य डर गया है । उस स्तम्भ को दो भागों में फाड़कर महाहरि निकल पड़े ॥९२॥ जगत्क्षय के समान अत्यन्त घोर ध्वनि उन्होंने की । उस महान् ध्वनि से तारे पृथिवी पर गिर पड़े ॥९३॥ वहाँ पर नृसिंह शरीर धारण करके श्रीहरि आविर्भूत हो गये । वे अनेक करोड़ सूर्य तथा अग्नि तथा अग्नियों के तेज से व्याप्त थे ॥९४॥ उनका मुख सिंह के समान था और शरीर मनुष्य के समान था । उनके भयङ्कर दाँत से मुख भयङ्कर लगता था । उनके तीन नेत्र थे तथा तीन आयाल थे ॥९५॥ उनके केशों के अग्रभाग ज्वाला से युक्त थे । उनके नेत्र से चिनगारियाँ निकल रही थीं । उनकी हजारों लम्बी भुजाएँ थीं उन सबों में वे आयुधों को धारण किए थे ॥९६॥ अनेक शाखाओं और पर्वतों से युक्त वे महासुमेरु पर्वत के समान लग रहे थे।

श्रीवत्सकौस्तुभोरस्को दिव्याभरणभूषितः। तस्थौ नृकेसरी तत्र संहर्तुं सर्वदानवान् ॥९८॥
तं दृष्ट्वा घोरसङ्काशं नरसिंहं महाबलम्। दग्धाक्षिपक्ष्मादैत्येन्द्रो विह्वलाङ्गः पपात ह ॥९९॥
प्रह्लादोऽपि तदा दृष्ट्वा नारसिंहोपमं हरिम्।
जयशब्देन देवेशं नमश्चक्रे जनार्दनम् ॥१००॥
ददर्श तस्य गात्रेषु नृसिंहस्य महात्मनः। लोकान्समुद्रान्सद्वीपान्सुरगन्धर्वमानुषान् ॥१०१॥
अजाण्डानांसहस्रं तु सटाग्रे तस्य दृश्यते। दृश्यन्ते तस्य नेत्रेषु सोमसूर्यादयस्तथा ॥१०२॥
कर्णयोरश्विनौ देवौ दिशश्च विदिशस्तथा। ललाटे ब्रह्मरुद्रौ च नभो वायुश्च नासिके॥१०३॥
इन्द्राग्नी तस्य वक्त्रान्ते जिह्वायां त सरस्वती।
दंष्ट्रासु सिंहशार्दूलाः शरभाश्च महोरगाः ॥१०४॥
कण्ठे च दृश्यते मेरुः स्कन्धेऽपि च महाद्रयः।
देवतिर्यङ्मनुष्याश्च बाहुष्वपिमहात्मनः ॥१०५॥
नाभौ चास्यान्तरिक्षं च पादयोःपृथिवीतथा। मेर्वादयःपर्वताश्चदृश्यन्तेऽङ्गुलिपङ्क्तिषु ॥१०६॥
रोमस्वोषधयः सर्वाःपादपानखपङ्क्तिषु। निःश्वासेषु च वेदाश्च साङ्गोपाङ्गसमन्विताः ॥१०७॥
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः। सर्वाङ्गेषु प्रदृश्यन्ते गन्धर्वाप्सरसश्च ये ॥१०८॥
इत्थं विभूतयस्तस्य दृश्यन्ते परमात्मनः। श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वनमालाविभूषितम्॥१०९॥
शङ्खचक्रगदाखड्गशार्ङ्गाद्यैर्हेतिभिर्युतम् । सर्वोपनिषदामर्थं दृष्ट्वा दैत्येश्वरात्मजः ॥११०॥

वे दिव्य माला और वस्त्र धारण किए थे तथा दिव्य चन्दन धारण किए थे ॥९७॥ उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न और कौस्तुभ मणि से सुशोभित था वहाँ पर सभी दैत्यों का संहार करने के लिए भगवान् नृसिंह वहाँ खड़े थे ॥९८॥ उन अत्यन्त भयङ्कर तथा महाबलवान् नृसिंह को देखर जिसके नेत्रों की पपनियाँ जल गयी थी ऐसे दैत्येन्द्र व्याकुल शरीर वाले होकर गिर पड़े ॥९९॥ प्रह्लाद भी नरसिंह के समान श्रीहरि को देखकर श्रीभगवान् का जय-जयकार करते हुए भगवान् जनार्दन को नमस्कार किए ॥१००॥ उन्होंने भगवान् नृसिंह के शरीर में सभी लोकों द्वीपों सहित पृथिवी, देवता, गन्धर्व और मनुष्यों को देखा॥१०१॥ उनकी सटा के अग्रभाग में हजारों ब्रह्माण्ड दिखायी दे रहे थे। उनके नेत्रों में सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि आदि दिख रहे थे ॥१०२॥ उनके दोनों कानों में दोनों अश्विनी कुमार तथा दिशाएँ और विदिशाएँ दिख रही थीं। उनके ललाट में ब्रह्माजी तथा शिवजी और नासिका में आकाश तथा वायु दिख रहे थे ॥१०३॥ उनके मुख के भीतर इन्द्र तथा अग्नि दिखते थे और जीभ पर सरस्वतीजी थीं। उनके दाँतों में सिंह और शार्दूल शरभ तथा बड़े-बड़े सर्प थे। उनके गले में सुमेरु पर्वत दिखता था और कन्धे पर बड़े-बड़े थे ॥१०४॥ उनके गले में सुमेरु पर्वत दिखता था और कन्धे पर बड़े-बड़े पर्वत थे। उनकी भुजाओं में देवता, तिर्यक् तथा मनुष्य विद्यमान थे ॥१०५॥ उनकी नाभि में अन्तरिक्ष था और पैरों में पृथिवी थी। उनकी सभी अङ्गुलियों में मेरु आदि पर्वत थे ॥१०६॥ उनके रोमों में औषधियाँ थीं और उनके नखों में वृक्षों का निवास था। उनके निःश्वासों में साङ्गोपाङ्ग वेद थे ॥१०७॥ आदित्य गण वसुगण, रुद्रगण, विश्वेदेव तथा मरुद्गण थे सभी अङ्गों में गन्धर्व तथा अप्सराएँ दिखती थीं ॥१०८॥ इस तरह श्रीभगवान् की विभूतियाँ दिखती थीं। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्न कौस्तुभमणि तथा वनमाला से विभूषित

हर्षाश्रुजलसिक्ताङ्गः प्रणनाम मुहुर्मुहुः । दैत्येन्द्रस्तु हरिं दृष्ट्वा क्रोधान्मृत्युवशे स्थितः ॥१११॥
योद्धुं खड्गं समुद्यम्य नृसिंहं तमभिद्रवत्। अथ दैत्यगणाः सर्वे लब्धसञ्ज्ञा महाबलाः ॥११२॥
स्वान्यायुधानि चाऽऽदाय हरिं जघ्नुस्त्वरान्विताः ।
पलालकाण्डानि यथा वह्नौ क्षिप्तान्यनेकशः ॥११३॥
तथैव भस्मतां यान्ति महास्त्राणि हरेस्तनौ । तान्यनीकानि दैत्यानां दृष्ट्वा नरहरिस्तदा ॥११४॥
सटैर्ददाह च ज्वालामालाविरचितास्फुटैः । नृकेसरिसटोद्भूतवह्निना दानवा भृशम् ॥११५॥
निहतास्तत्क्षणात्सर्वे निःशेषंतदभूद्बलम्। प्रह्लादं सानुगं हित्वाभस्मितेवीक्ष्यतद्बले ॥११६॥
क्रोधाद्दैत्यपतिः खड्गमाकृष्याऽभिप्रपद्यत। खड्गहस्तं तु दैत्येन्द्रं जग्राहैकेन बाहुना ॥११७॥
पातयामास देवेशो यथा शाखां महानिलः। गृहीत्वा पतितं भूमौ महाकायं नृकेसरी ॥११८॥
स्वोत्सङ्गे स्थापयामास ददर्शाऽसौ मुखं हरेः ।
विष्णुनिन्दाकृतंपाप द्रोहवैष्णवजंतथा ॥११९॥
नृसिंहस्पर्शनादेव निर्भस्मितभूत्तदा। अथ दैत्येश्वरस्याऽथ महद्गात्रं नृकेसरी ॥१२०॥
नखैर्विदारयामास तीक्ष्णैर्वज्रनिभैर्नखैः । सनिर्मलात्मा दैत्येन्द्रः पश्यन्साक्षान्मुखं हरेः॥१२१॥
नखनिर्भिन्नहृदयः कृतार्थो विजहावसून् । तद्गात्रं शतधा भित्त्वा नखैस्तीक्ष्णैर्महाहरिः ॥१२२॥

था ॥१०९॥ शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग तथा शार्ङ्ग धनुष इत्यादि आयुधों से युक्त उपनिषत् प्रतिपाद्य श्रीभगवान् को देखकर प्रह्लाद ने ॥११०॥ हर्ल जन्य आँसुओं के जल से उनके अङ्ग सिंच गये थे । उन्होंने श्रीभगवान को बार-बार प्रणाम किया । हिरण्यकशिपु तो श्रीहरि को देखकर कालवशात् क्रोध से खड्ग उठाकर नृसिंह की ओर युद्ध करने के लिए दौड़ा । उसके बाद आज्ञा प्राप्त करके महाबलवान् दैत्य समूह ॥१११-११२॥ अपने आयुधों को लेकर श्रीहरि को मारने के लिए शीघ्रता से प्रहार किये । वे अनेक आयुध पुआल के समान अग्नि में डाले गये के समान ॥११३॥ भस्म हो गये । श्रीभगवान् के शरीर पर महान अस्त्र भी भस्म हो जाते थे । उस समय भगवान् नृसिंह ने उन सेनाओं को देखकर जो ज्वालाएँ निकल रही थीं उससे उन सबों को जला दिया । भगवान् नृसिंह की सटाओं से उद्भूत अग्नि से बहुत अधिक दानव जल गये॥११४-११५॥ वे सब उसी क्षण मार दिये गये और हिरण्यकशिपु की सेवा समाप्त हो गयी । अपने अनुचर प्रह्लाद को छोड़कर सारी सेना के मार दिए गये देखकर ॥११६॥ दैत्यराज क्रोध पूर्वक खड्ग निकालकर उन पर टूट पड़े । हाथ में खड्ग लिए हुए हिरण्यकशिपु ने एक हाथ से पकड़ लिया ॥११७॥ उन्होंने उसको अपनी गोद में उसी तरह गिरा दिया जिस तरह महावायु किसी शाख को गिरा देती है । पृथिवी पर गिरे हुए महाकाय हिरण्यकशिपु को देखकर नृसिंह भगवान् उसको उठाकर अपनी गोद में रख लिए । उसने उनके मुख को देखा । उससे भगवान् विष्णु की निन्दाजन्य तथा वैष्णव का द्रोह करने से उत्पन्न पाप ॥११८-११९॥ भगवान् नृसिंह का स्पर्श करने मात्र से भस्म हो गया । उसके बाद दैत्येश्वर के विशाल शरीर को नृसिंह भगवान् ने ॥१२०॥ अपने वज्र के समान तीक्ष्ण नखों से फाड़ दिया । निर्मल बना हुआ हिरण्यकशिपु श्रीहरि के साक्षात् मुख को देखते हुए हृदय के नख से फाड़ दिए जाने के कारण अपने प्राणों का परित्याग कर दिया । उसके शरीर को सैकड़ों टुकड़ों में फाड़कर भगवान् नृसिंह ॥१२१-१२२॥ उसकी आँतों को निकालकर अपने गले में डाल लिए । उसके पश्चात् सभी देवता

आकृष्याऽन्त्राणि दीर्घाणि कण्ठे संसक्तवान्प्रियान् ।
अथ देवगणास्सर्वे दृष्ट्वा तत्र नृकेसरिम् ॥१२३॥
प्रदहन्तं जगद्दीपं कालाग्निमिव मेनिरे। अथ देवगणाः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥१२४॥
ब्रह्मरुद्रौ पुरस्कृत्य शनैः स्तोतुं समाययुः । ते प्रसादयितुं भीता ज्वलन्तंविश्वतोमुखम्॥१२५॥
मातरं जगतां धात्रीं चिन्तयामासुरीश्वरीम् । हिरण्यवर्णां हरिणींसर्वोपद्रवनाशिनीम्॥१२६॥
विष्णोर्नित्यानवद्याङ्गीं ध्यात्वा नारायणीं शुभाम् ।
देवीसूक्तजपैर्भक्त्या नमश्चक्रुः सनातनीम् ॥१२७॥
तैश्चिन्त्यमाना सा देवी तत्रैवाऽऽविरभूत्तदा। चतुर्भुजाविशालाक्षी सर्वाभरणभूषिता ॥१२८॥
दुकूलवस्त्रसहितां दिव्यमालानुलेपनाम् । तां दृष्ट्वा देवदेवस्य प्रियां सर्वे दिवौकसः॥१२९॥
ऊचुः प्राञ्जलयो देवीं प्रसन्नं कुरुते प्रियम्। त्रैलोक्यस्याऽभयंस्वामीयथा दद्यात्तथाकुरु ॥१३०॥

रुद्र उवाच

इत्युक्ता सहसादेवी प्रियं प्राप्य जनार्दनम्। प्रणिपत्य नमस्कृत्य साप्रसीदेत्युवाचतम्॥१३१॥
तां दृष्ट्वा महिषीं स्वस्य प्रियां सर्वेश्वरोहरिः ।
रक्षःशरीरजंक्रोधंतत्याजप्रीतवत्क्षणात् ॥१३२॥
अङ्कमादाय तां देवी समाश्लिष्य दयानिधिः ।
कृपासुधार्द्रदृष्ट्या वै निरैक्षतसुरान्हरिः ॥१३३॥
ततो जयजयेत्युच्चैः स्तुवतांनमतां तदा । तद्दयादृष्टिदृष्टानां सानन्दः सम्भ्रमोऽभवत्॥१३४॥

भगवान् नरहरि को देखकर ॥१२३॥ उनको जगत् को जला देने वाले दीप के समान तथा कालाग्नि के समान माने । उसके पश्चात् सभी देवता और तपोधन मुनिगण ॥१२४॥ ब्रह्माजी तथा शिवजी को आगे करके धीरे से श्रीभगवान् को प्रसन्न करने के लिए स्तुति करने के लिए आये । किन्तु श्रीभगवान् को चारो ओर जलते हुए देखकर वे डर गये ॥१२५॥ उन्होंने जगन्माता हिरण्यवर्णा, सबों के मन को आकृष्ट करने वाली तथा सभी उपद्रवों का नाश करने वाली लक्ष्मीजी का ध्यान किया ॥१२६॥ सदा विष्णु भगवान् की निर्दोष शरीर वाली नारायणी का ध्यान करके भक्ति पूर्वक देवी सूक्त के जप से सनातनी लक्ष्मी को नमस्कार किए ॥१२७॥ देवताओं द्वारा स्मरण की जाती हुयी लक्ष्मीजी वहाँ पर प्रकट हो गयीं । उनकी चार भुजाएँ थीं बड़े-बड़े नेत्र थे तथा वे सभी अलङ्कारों से अलंकृत थीं ॥१२८॥ वे दुकूल वस्त्र को धारण की थीं । दिव्य माला और चन्दन धारण की थीं । श्रीभगवान् की प्रिया पत्नी लक्ष्मीजी को देखकर सभी देवता ॥१२९॥ हाथ जोड़कर कहे कि आप श्रीभगवान् को प्रसन्न करें । जगत् के स्वामी श्रीभगवान् जिस तरह से जगत् को अभय बना दें वैसा ही आप उनको बना दें ॥१३०॥ **रुद्र ने कहा**— इस तरह से कहने पर लक्ष्मीजी सहसा अपने प्रियतम भगवान् जनार्दन को प्राप्त करके नमस्कार करके और कहीं प्रसन्न होइये ॥१३१॥ उन अपनी प्रियतमा लक्ष्मीजी को देखकर सर्वेश्वर श्रीहरि ने राक्षस के शरीर जन्य क्रोध को क्षण भर में त्यागकर प्रसन्न हो गये ॥१३२॥। उन देवी को अपने गोद में लेकर दयानिधि श्रीभगवान् ने उनका आलिङ्गन किया । कृपा रूपी अमृत से आर्द्र बनी दृष्टि से श्रीहरि ने देवताओं को देखा ॥१३३॥

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः। ऊचुः प्राञ्जलयो देवं नमस्कृत्य जगत्पतिम् ॥१३५॥

देवगणाऊचुः

द्रष्टुमत्यद्भुतं तेजो न शक्तास्ते जगत्पते ।। अत्यद्भुतमिदं रूपं बहुबाहुपदाङ्कितम्॥१३६॥

जगत्त्रयसमाक्रान्तं तेजस्तीक्ष्णतरं तव। द्रष्टुं स्थातुं न शक्ताःस्मः सर्व एवदिवौकसः॥१३७॥

महादेव उवाच

इत्यर्थितस्तु विबुधैस्तेजस्तदतिभीषणम्। उपसंहृत्य देवेशो बभूव सुखदर्शनः॥१३८॥

शरत्कोटीन्दुसङ्काशः पुण्डरीकनिभेक्षणः। सुधामयसटापुञ्जविद्युत्कोटिनिभः शुभः॥१३९॥

नानारत्नमयैर्दिव्यः केयूरः कटकान्वितैः। बाहुभिः कल्पवृक्षस्य शाखौघैरिव सत्फलैः॥१४०॥

चतुर्भिः कोमलैर्दिव्यैरन्वितः परमेश्वरः। जपाकुसुमसङ्काशैः शोभितः करपङ्कजेः॥१४१॥

शङ्खचक्रगृहीताभ्यामुद्बाहुभ्यां विराजितः। वरदाभयहस्ताभ्यामितराभ्यां नृकेसरी॥१४२॥

श्रीवत्सकौस्तुभोरस्को वनमालाविभूषितः। उद्यद्दिनरकराभ्यांचकुण्डलाभ्यांविराजितः ॥१४३॥

हारकेयूरकटकैर्भूषणैः समलङ्कृतः। सव्याङ्गस्याश्रिया युक्तो राजते नरकेसरी॥१४४॥

लक्ष्मीनृसिंहं तं दृष्ट्वा देवताः समहर्षयः। आनन्दाश्रुजलैः सिक्ता हर्षनिर्भरचेतसः॥१४५॥

आनन्दसिन्धुमग्नास्ते नमश्चक्रुर्निरन्तरम्। अर्चयामासुरात्मेशं दिव्यपुष्पसमर्पणैः॥१४६॥

रत्नकुम्भैः सुधापूर्णैरभिषिच्य सनातनम्। वस्त्रैराभरणैर्गन्धैः पुष्पैर्धूपैर्मनोरमैः॥१४७॥

उसके पश्चात् जोर से जय-जयकार करने वाले, स्तुति तथा नमस्कार करने वाले अपनी दया दृष्टि से देखे गये देवताओं को खूब आनन्द हुआ ॥१३४॥ उसके पश्चात् सभी देवता हर्ष भरे मन से हाथ जोड़कर नमस्कार करके जगत् के स्वामी श्रीभगवान् से कहे ॥१३५॥ **देव समूह ने कहा**— हे जगत्पते ! आपके अद्भुत रूप को देखने में असमर्थ अनेक भुजाओं और चरणों से युक्त आपके अद्भुत रूप को जो त्रैलोक्य को अतिक्रमण कर रहा था ऐसे आपके अत्यन्त तीक्ष्ण तेज को, हमलोग न तो सह सकते हैं और न तो उसके सामने ठहर सकते हैं ॥१३६-१३७॥ **महादेवजी ने कहा**— इस तरह से देवताओं द्वारा प्रार्थना किए जाने पर उस अत्यन्त भयङ्कर तेज को समेट कर श्रीभगवान् सौम्य हो गये ॥१३८॥ करोड़ों शरद् कालीन चन्द्रमा के समान तथा कमल के समान नेत्र वाले, सुधामय उनका सटा समूह करोड़ों विद्युत के समान हो गया। अनेक रत्नमय दिव्य केयूर तथा कटक से युक्त तथा कल्पवृक्ष की शाखा समूह से तथा सुन्दर फलों से युक्त के समान उनकी भुजाएँ थीं ॥१३९-१४०॥ कोमल तथा दिव्य भुजाओं वाले भगवान् अपने जपा कुसुम के समान लाल-लाल कमलों से सुशोभित हो गये ॥१४१॥ वे शङ्ख, चक्र धारण की हुयी ऊपर की दो भुजाओं से सुशोभित थे। दूसरे दोनों उनके हाथ अभय मुद्रा तथा वरद मुद्रा से युक्त थे। अपने हृदय में श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभ मणि को वे धारण किए थे वनमाला से विभूषित थे उदित होते हुए दो सूर्यों के समान चमकने वाले दो कुण्डलों से विराजमान थे ॥१४२-१४३॥ हार, केयूर, कटक इत्यादि भूषणों से वे समलंकृत थे। वाम भाग में उपविष्ट लक्ष्मीजी के साथ नृसिंह भगवान् विराजमान थे ॥१४४॥ उन लक्ष्मी नृसिंह को देखकर देवता तथा महर्षिगण आनन्दमय जल आंसू से सींच गये। उनका अन्तःकरण हर्ष से भर गया ॥१४५॥ वे आनन्द सागर में मग्न थे। भगवान् को निरन्तर नमस्कार कर रहे थे। उन आत्मेश श्रीभगवान् की वे लोग दिव्य पुष्पों से पूजा किए ॥१४६॥ अमृत से

दिव्यैर्निवेदितैर्दीपैरर्चयित्वा नृकेसरिम् । तुष्टुवुः स्तवनैर्दिव्यैर्नमश्चक्रुर्मुहुर्मुहुः ॥१४८॥
ततः प्रसन्नो लक्ष्मीशस्तेषामिष्टान्वरान्ददौ । ततो देवगणैः सार्धं सर्वेशो भक्तवत्सलः ॥१४९॥
प्रह्लादं सर्वदैत्यानां चक्रे राजानमव्ययम् । आश्वास्य भक्तं प्रह्लादमभिषिच्य सुरोत्तमैः ॥१५०॥
ददौ तस्मै वरानिष्टान्भक्तिंचाऽव्यभिचारिणीम् ।
ततोदेवगणैः सर्वैः स्तूयमानोनृकेसरी ॥१५१॥
विकीर्णपुष्पवर्षैश्च तत्रैवाऽन्तरधीयत। ततः सुरगणाः सर्वे स्वं स्वं स्थानं प्रपेदिरे॥१५२॥
पुनश्च यज्ञभागान्स्वान्बुभुजुः प्रीतमानसाः । ततो देवाः सगन्धर्वानिरातङ्कास्तदाऽभवन् ॥१५३॥
तस्मिन्हते महादैत्ये सर्वं एव प्रहर्षिताः । प्रह्लादस्तु तदा चक्रे राज्यं धर्मेण वैष्णवः ॥१५४॥
हरेः प्रसादाल्लब्धं तु राज्यं वैष्णवसत्तमः । बहुभिर्यज्ञदानाद्यैरर्चयित्वा नृकेसरिम् ॥१५५॥
काले हरिपदं प्राप योगिगम्यं सनातनम् । एतत्प्रह्लादचरितं ये तु शृण्वन्ति नित्यशः ॥१५६॥
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यास्यन्ति परमांगतिम् । एतत्ते कथितं देवि ! नृसिहं वैभवं हरेः ॥
शेषां च वैभवावस्थां शृणु देवि ! यथाक्रमम् ॥१५७॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशयात्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे नृसिंहप्रादुर्भावो नामाऽष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३८॥

परिपूर्ण रत्न निर्मित घट से सनातन श्रीभगवान् का अभिषेक करके दिव्य, वस्त्र, भूषण, चन्दन, पुष्प, धूप को निवेदित करके दीप आदि से नृसिंह भगवान् की पूजा करके दिव्य स्तुतियों से उनकी स्तुति करके बार-बार नमस्कार किए ॥१४७-१४८॥ उसके पश्चात् प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उनको अभीष्ट वरदान दिए । उसके पश्चात् देव समूह के साथ सबों के स्वामी तथा भक्त वत्सल श्रीभगवान् प्रह्लादजी को सभी दैत्यों का स्वामी बना दिए । भक्त प्रह्लाद को आश्वासन देकर उन्हें सभी देवताओं के साथ अभिषिक्त किए ॥१४९-१५०॥ उनको अभीष्ट वरदान तथा अव्यभिचारिणी भक्ति का वरदान दिए । उसके पश्चात् सभी देवताओं के द्वारा स्तुति किए जाते हुए श्रीभगवान् तथा वर्षा किए गये विकीर्ण पुष्पों से वहीं पर अन्तर्धान हो गये । उसके पश्चात् सभी देवता अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥१५१-१५२॥ और फिर प्रसन्न मन वाले वे अपने-अपने यज्ञभागों को प्राप्त किए । उससे देवता और गन्धर्व निर्भय हो गये॥१५३॥ उस महादैत्य के मारे जाने से सबके सब प्रसन्न हो गये । वैष्णव प्रह्लाद धर्म पूर्वक राज्य किए ॥१५४॥ वे वैष्णव श्रेष्ठ श्रीहरि की कृपा से प्राप्त राज्य को अनेक यज्ञों तथा दान आदि से नृसिंह भगवान् की पूजा करके ॥१५५॥ समय से योगियों के द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य श्रीभगवान् के लोक को प्राप्त किए । इस प्रह्लाद चरित को जो लोग प्रतिदिन सुनेंगे ॥१५६॥ वे सब पाप से रहित होकर परम गति को प्राप्त करेंगे । हे देवि ! इस तरह से मैंने आपको भगवान् का वैभव सुनाया । हे देवि ! अब शिष्ट भी हरि की विभव अवस्था को तुम क्रमशः सुनो ॥१५७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत नृसिंह प्रादुर्भाव नामक दो सौ अड़तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३८॥

दो सौ उनतालीसवाँ अध्याय

रुद्र उवाच

प्रह्लादस्य सुतो जज्ञे विरोचनइतीरितः। तस्य पुत्रो महाबाहुर्बलिर्वैश्वानरः प्रभुः ॥१॥
स तु धर्मविदां श्रेष्ठः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः।
हरेः प्रियतमोभक्तोनित्यंधर्मरतः शुचिः ॥२॥
स जित्वा सकलान्देवान्सेन्द्रांश्च समरुद्गणान्।
त्रीं ल्लोकान्स्ववशे स्थाप्य राज्यं चक्रे महाबलः ॥३॥
अकृष्टपच्या पृथिवी बहुसस्यफलप्रदा। गावः पूर्णदुघाः सर्वाः पादपाः फलपुष्पिताः ॥४॥
स्वधर्मनिरताः सर्वे नराः पापविवर्जिताः। अर्चयन्ति हृषीकेशं सततं विगतज्वराः ॥५॥
एवं चकार धर्मेण राज्यं दैत्यपतिर्बली। इन्द्रादित्रिदशास्तस्य किङ्कराः समुपस्थिताः ॥६॥
ऐश्वर्यं त्रिषु लोकेषु बुभुजे बलदर्पहृत्। भ्रष्टराज्यं सुतं दृष्ट्वा तस्याऽपि हितकाम्यया ॥७॥
कश्यपो भार्यया सार्द्धं तपस्तेपे हरिं प्रति। आदित्या सह धर्मात्मा पयोव्रतसमन्वितः ॥८॥
अर्चयामास देवेशं पद्मनाभं जनार्दनम्। ततो वर्षसहस्राणि तेन सम्पूजितो हरिः ॥९॥
तत्रैवाऽऽविरभूत्तस्य देव्या सह सनातनः। तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम्॥१०॥
इन्द्रनीलमणिश्यामं सर्वाभरणभूषितम्। स्फुरत्किरीटकेयूरहारकुण्डलशोभितम् ॥११॥
कौस्तुभोद्भासितोरस्कं पीतवस्त्रेण वेष्टितम्। श्रिया सह समासीनं मण्डपेन्द्रे महात्मनि ॥१२॥

बलिराज के उपाख्यान के अन्तर्गत वामन प्रादुर्भाव का वर्णन

रुद्र ने कहा— प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हुए उनके पुत्र महाबलवान् बलि हुए ॥१॥ वे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ सत्यवक्ता और जितेन्द्रिय थे। वे श्रीहरि के प्रियतम भक्त तथा सदा धर्मपरायण और पवित्र रहते थे ॥२॥ वे सभी इन्द्र आदि देवताओं को जितकर तीनों लोकों को अपने वश में करके महाबलवान् राज्य करते थे॥३॥ उस समय पृथिवी वे बिना जोते ही अनेक प्रकार के अन्नों को प्रदान करती थी। गायें इच्छानुसार दुग्ध देती थीं और वृक्ष फलों एवं पुष्पों से युक्त रहते थे ॥४॥ सभी निष्पाप मनुष्य अपने धर्म का पालन करते थे। वे निश्चिन्त होकर सदा भगवान् हृषीकेश की पूजा करते थे ॥५॥ इस प्रकार दैत्यों के स्वामी बलि धर्मपूर्वक राज्य करते थे। इन्द्र इत्यादि देवता उनके किङ्कर रूप से उपस्थित रहते थे ॥६॥ बल एवं दर्प से रहित वे त्रैलोक्य के ऐश्वर्य का भोग करते थे। अपने पुत्र को भ्रष्ट राज्य वाला देखकर उसके कल्याण की कामना से ॥७॥ धर्मात्मा तथा पयोव्रत करने वाले महर्षि कश्यप अपनी पत्नी अदिति के साथ श्रीहरि को प्रसन्न करने के लिए तपस्या किए ॥८॥ उन्होंने पद्मनाभ भगवान् जनार्दन की पूजा की। उसके पश्चात् एक हजार वर्ष तक उनके द्वारा अच्छी तरह से पूजित ॥९॥ सनातन श्रीलक्ष्मीजी के साथ वहीं प्रकट हो गये। कमल के समान नेत्र वाले शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण किए हुए श्रीभगवान् को इन्द्र नीलमणि के समान श्याम वर्ण वाले तथा सभी भूषणों से भूषित श्रीहरि को देखकर जो किरीट, केयूर, हार तथा कुण्डल से सुशोभित थे ॥१०-११॥ उनका वक्षःस्थल कौस्तुभमणि से सुशोभित था तथा पीताम्बर धारण

तं दृष्ट्वा जगतामीशं हर्षनिर्भरचेतसा। पत्न्या सह नमस्कृत्य तुष्टाव द्विजसत्तमः ॥१३॥

कश्यप उवाच

नमो नमस्ते लक्ष्मीश सर्वज्ञ जगदीश्वर !। सर्वात्मन्सर्वदेवेश ! सृष्टिसंहारकारक ! ॥१४॥
अनादिनिधनानन्तवपुषे विश्वधारिणे। नमस्ते वेदवेदाङ्गवपुषे सर्वचक्षुषे॥१५॥
सर्वात्मने नमस्तुभ्यं नमः सूक्ष्मतराय च। कल्याणगुणपूर्णाय योगिध्येयात्मने नमः ॥१६॥
नमो नित्यकुमाराय श्रीभूनीलाधिपाय च। नित्यमुक्तैकभोगाय परधाम्नि स्थिताय च ॥१७॥
चतुरात्मन्नमस्तुभ्यं चतुर्व्यूह नमोऽस्तुते। पञ्चावस्थाय वै तुभ्यं नमस्ते पाञ्चकालिक !॥१८॥
पाञ्चकालिकनिष्ठैस्तु योगिभिः पूज्यसे सदा।
पञ्चार्थतत्त्वविदुषां पञ्चसंस्कारशालिनाम् ॥१९॥
पञ्चावस्थं स्वरूपं ते विज्ञेयं सततं हरे !। चतुर्धापरिपूर्णात्मन्नियतं कवयो विदुः ॥२०॥
त्वत्प्रसूतिं जगत्सर्वं पुनन्तितव किङ्कराः। त्रयीमयाः कर्मनिष्ठा ये द्विजा भक्तवत्सलाः ॥२१॥
तेषां दयेक्षणादेव भवबन्धविमुक्तये। नमोऽस्तु त्रिजगद्धात्रे स्वयं धात्रेऽखिलात्मने॥२२॥
धात्रे विधात्रे विश्वाय विश्वरूपायते नमः। नारायणाय कृष्णाय वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ॥
विष्णवे जिष्णवे तुभ्यं शुद्धसत्त्वाय ते नमः ॥२३॥

महादेव उवाच

इत्यादिस्तुतिभिः सम्यक्स्तूयमानो महर्षिणा। प्राहगम्भीरयावाचा परितुष्टो जनार्दनः ॥२४॥

किए हुए, लक्ष्मीजी के साथ मण्डप श्रेष्ठ में बैठे हुए जगत् के स्वामी को देखकर हर्ष से परिपूर्ण अन्तःकरण से अपनी पत्नी के साथ नमस्कार करके वे ब्राह्मण श्रेष्ठ उनकी स्तुति किए ॥१२-१३॥ **कश्यप महर्षि ने कहा—** हे लक्ष्मीपते ! हे सर्वज्ञ जगदीश्वर ! हे सर्वात्मन् ! सभी देवताओं के स्वामिन् ! हे जगत् की सृष्टि और संहार करने वाले ! आपको बार-बार नमस्कार है ॥१४॥ अनादिनिधन तथा अनन्त शरीर धारण करने वाले तथा जगत् को धारण करने वाले आपको नमस्कार है। वेद वेदाङ्ग शरीरक तथा सबों के अनुरूप आपको नमस्कार है। सर्वात्मा तथा सूक्ष्मतर स्वरूप आपको नमस्कार है। कल्याण कारी गुणों से परिपूर्ण तथा यागिध्येय श्रीभगवान् को नमस्कार हैं ॥१५-१६॥ सदा कुमारावस्था में रहने वाले, तथा श्रीदेवी, भूदेवी तथा नीलादेवी के पति नित्य मुक्त जीवों के एक मात्र भोग्य तथा परंधाम में रहने वाले आपको नमस्कार है। चार शरीरों वाले तथा चार व्यूहों वाले आपको नमस्कार है। पाँच अवस्थाओं में रहने वाले पाञ्चकलि के आपको नमस्कार है ॥१७-१८॥ पाञ्चकालिकनिष्ठ योगियों के द्वारा आप सदा पूजित होते हैं। अर्थ पञ्चक के विद्वान तथा पञ्च संस्कारों से संस्कृत जीवों के द्वारा आप पूजे जाते हैं॥१९॥ हे हरे ! आपके पाञ्चों अवस्था में रहने वाला स्वरूप सदा विज्ञेय है। हे चार प्रकार से परिपूर्ण आत्मा वाले ! आपको योगिजन जानते हैं ॥२०॥ आपसे ही सारा जगत् उत्पन्न है। आपके जो भक्त हैं वे जगत् को पवित्र करते हैं। त्रयीमय कर्मों में निष्ठा रखने वाले, भक्तवत्सल ॥२१॥ उनके द्वारा दयापूर्वक देखा जाना संसार के बन्धन से विमुक्ति का कारण होता है। त्रैलोक्य के स्वामी अखिलात्मा धाता स्वरूप आपको नमस्कार है ॥२२॥ धाता, विधाता, विश्वस्वरूप तथा सम्पूर्ण जागत् स्वरूप नारायण तथा कृष्ण स्वरूप शार्ङ्गधनुषधारी वासुदेव आपको नमस्कार है। विष्णु जिष्णु तथा शुद्धसत्त्व स्वरूप आपको नमस्कार

श्रीभगवानुवाच

सन्तुष्टोऽहं द्विजश्रेष्ठ त्वयाभक्तया समर्चितः ।
वरंवृणीष्व भद्रंतेकरोमि तववाञ्छितम् ॥२५॥

महादेव उवाच

ततः प्राह हृषीकेशं भार्यया सह कश्यपः ॥२६॥

कश्यप उवाच

पुत्रत्वंममदेवेश ! सम्प्राप्य स्वर्गिणांहितम् । कुरुष्व बलिनादेव त्रैलोक्यं निर्जितंबलात् ॥२७॥
इन्द्रस्याऽवरजो भूत्वा उपेन्द्रइति विश्रुतः । येन केन च मार्गेण बलिंनिर्जित्य मायया ॥२८॥
त्रैलोक्यं मम पुत्राय देहि शक्राय शाश्वतम् ॥२९॥

महादेव उवाच

इत्युक्तस्तेन विप्रेण तथेत्याह जनार्दनः । संस्तूयमानस्त्रिदशैस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥३०॥
एतस्मिन्नेव काले तु कश्यपस्य महात्मनः । अदित्या गर्भमागच्छद्भगवान्भूतभावनः ॥३१॥
तस्मिन्काले बलिर्यागं दीर्घसत्रं महातपाः । यष्टुं महर्षिभिः सार्द्धमारेभे तद्विधानतः ॥३२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसंवादे वामनाप्रादुर्भावोनामैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३९॥

है ॥२३॥ **महादेवजी ने कहा—** इस प्रकार की स्तुतियों द्वारा महर्षि के द्वारा स्तुति किए जाने वाले भगवान् जनार्दन प्रसन्न होकर गम्भीर वाणी से उनसे कहे ॥२४॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! आपके द्वारा भक्ति पूर्वक पूजित होकर मैं प्रसन्न हूँ । आपका कल्याण हो आपके मनोवाञ्छित कार्य मैं करूँगा । **महादेवजी ने कहा—** उसके पश्चात् अपनी पत्नी के साथ कश्यप महर्षि ने कहा ॥२५-२६॥ हे देवेश देवताओं के हितकारी मेरे पुत्र होकर हे देव ! बलि से बलपूर्वक त्रैलोक्य को आप जीत लें॥२७॥ इन्द्र के छोटे भाई होकर, उपेन्द्र नाम से विख्यात आप किसी भी प्रकार से बलि को माया से जीतकर उनका राज्य मेरे पुत्र इन्द्र को सदा के लिए दे दें ॥२८॥ **महादेवजी ने कहा—** उस विप्र के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर भगवान् जनार्दन ने कहा ऐसा ही होगा ॥२९॥ उसी समय महात्मा कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ में श्रीभगवान् आ गये ॥३०॥ उसी समय महातपस्वी बलि दीर्घ सत्र वाले याग को महर्षियों के साथ विधान पूर्वक प्रारम्भ किये ॥३१॥

इस तरह से पद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत वामन के प्रादुर्भाव नामक दो सौ उनतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३९।।

दो सौ चालीसवाँ अध्याय

श्रीमहादेव उवाच

अथवर्षसहस्रान्ते सर्वलोकमहश्वेरम् । अदितिर्जनयामास वामनं विष्णुमच्युतम् ॥१॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं पूर्णेन्दुसदृशद्युतिम्। सुन्दरं पुण्डरीकाक्षमतिखर्वतनुं हरिम्॥२॥
बटुवेषधरं देवं सर्ववेदाङ्गगोचरम् । मेखलाजिनदण्डादिचिह्नैरङ्कितमीश्वरम् ॥३॥
तं दृष्ट्वा देवताः सर्वे शतक्रतुपुरोगमाः । स्तुत्वा महर्षिभिः सार्द्धं नमश्चक्रुर्महौजसम् ॥
ततः प्रसन्नो भगवान्प्रोवाच सुरसत्तमान् ॥४॥

वामन उवाच

किं कर्तव्यं मया चाऽद्य तद्ब्रूत् सुरसत्तमाः ॥५॥

श्रीशङ्कर उवाच

ततः प्रहृष्टास्त्रिदशास्तमूचुः परमेश्वरम् ॥६॥

देवाऊचुः

अस्मिन्काले बलेर्यज्ञो वर्त्तते मधुसूदन ! । अप्रत्याख्यानकलोऽयं तस्य दैत्यपतेःप्रभो !॥
याचित्वा त्रिदिवं लोकं तन्नस्त्वं दातुमर्हसि ॥७॥

शङ्कर उवाच

इत्युक्तस्त्रिदशैस्सर्वैराजगाम बलिं हरिः । यागदेशे समासीनमृषिभिस्सार्द्धमष्टभिः ॥८॥
अभ्यागतंतु तंदृष्ट्वा सहसोत्थाय दैत्यराट् । अभ्यागतः स्वयं विष्णुरितिहाससमन्वितः॥९॥
पूजयामास विधिना निवेश्य कुसुमासने। प्रणिपत्य नमस्कृत्य प्राह गद्गदया गिरा॥१०॥

वटु का वेष बनाये हुए वामन का बली के याग में जाकर यज्ञ करने के लिए तीन डग पृथिवी की याचना करना और उसकी स्वीकृति मिल जाने पर दो ही डग में भूलोक से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त नाप लेना ब्रह्माजी के कमण्डलु में गङ्गाजी की उत्पत्ति का वर्णन

श्रीमहादेवजी ने कहा— उसके बाद एक हजार वर्ष के अन्त में अदिति ने सभी लोकों के स्वामी वामन रूपधारी भगवान् विष्णु को जन्म दिया ॥१॥ उन्होंने श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभमणि के वक्षःस्थल पर धारण किए हुए पूर्ण चन्द्रमा के समान कान्ति वाले कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले अत्यन्त छोटे शरीर वाले श्रीहरि को जन्म दिया ॥२॥ वटुवेष को धारण किए हुए वेदाङ्गप्रतिपाद्य मेखला, मृगचर्म तथा दण्ड आदि चिह्नों से सुशोभित श्रीभगवान् को देखकर इन्द्र आदि सभी देवता महर्षियों के साथ स्तुति करके महातेजस्वी उनको नमस्कार किए । उसके बाद प्रसन्न हुए श्रीभगवान् उन श्रेष्ठ देवताओं से कहे ॥३-४॥ **वामन ने कहा—** आप लोग बतलायें कि मुझे क्या करना है ॥५॥ **श्रीशङ्करजी ने कहा—** उसके पश्चात् प्रसन्न होकर सभी देवता श्रीभगवान् से कहे ॥६॥ **देवताओं ने कहा—** हे मधुसूदन ! इस समय बलि का यज्ञ हो रहा है । अतएव वे इनकार नहीं कर सकते हैं । हे प्रभो ! उस दैत्यपति से स्वर्गलोक माँगकर आप हमलोगों को प्रदान कर दें ॥७॥ **शङ्करजी ने कहा—** देवताओं के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर श्रीहरि बलि के पास आये । उस समय बलि आठ ऋषियों के साथ याग में बैठे थे ॥८॥ उनको आये

बलिरुवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि सफलं मम जीवितम् ।
त्वामर्चयित्वा विप्रेन्द्र ! किं करोमि तव प्रियम् ॥११॥
आगतोऽसियदर्थन्त्वं मामुद्दिश्य द्विजोत्तम !। तत्प्रयच्छामि ते शीघ्रंब्रूहि वेदविदांवर ! ॥१२॥

शङ्कर उवाच

ततः प्रहृष्टमनसा तमुवाचमहीपतिम् ॥१३॥

वामन उवाच

शृणु राजेनद्र ! वक्ष्यामि ममागमनकारणम् ।
अग्निकुण्डस्य पृथिवीं देहि दैत्यपते ! मम ॥१४॥
मम त्रिविक्रममितां नान्यदिच्छामि मानद !। सर्वेषामेव दानानां भूमिदानमनुत्तमम् ॥१५॥
यो ददाति महीं राजा विप्रायाऽकिञ्चनाय वै ।
अङ्गष्ठमात्रामपिवा स भवेत्पृथिवीपतिः ॥१६॥
न भूमिदानसदृशं पवित्रमिह विद्यते। भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति॥१७॥
उभौ तौपुण्यकर्माणौनिधने स्वर्गगामिनौ। तस्माद्भूमिं महाराज ! प्रयच्छ त्रिपदींमम॥१८॥
एतदल्पां महीं दातुं माविशङ्क महीपते !। जगत्त्रयप्रदानं तन्नाम भूप ! भविष्यति॥१९॥

शङ्कर उवाच

ततः प्रहृष्टवदनस्तथेत्याह महीपतिः। तस्मै महीप्रदानं तु कर्त्तुं मेने विधानतः॥२०॥
तं दृष्ट्वा दैत्यराजं तं तदा तस्य पुरोहितः। उशना ह्यब्रवीद्वाक्यं मा राजन्दीयतां मही ॥२१॥

हुए देखकर वलि सहसा उठकर स्वयं भगवान् विष्णु आये हैं इस प्रकार से कहकर हँसते हुए ॥९॥ उनको कुश के आसन पर बैठाकर विधि पूर्वक उनकी पूजा किए । उन्होंने प्रणाम करके अत्यन्त गद्गद वाणी से कहे ॥१०॥ **बलि ने कहा—** मैं धन्य और कृत-कृत्य हूँ । मेरा जीवन हे विप्रेन्द्र आपकी पूजा करके मेरा जीवन सफल हो गया । मैं आपका कौन सा प्रिय काम करूँ ?॥११॥ हे द्विज श्रेष्ठ आप जिस कार्य के लिए आये हैं उसको मैं दूँगा आप शीघ्र बतलायें । हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ ! आप उसे शीघ्र बतलायें ॥१२॥ **शङ्करजी ने कहा—** उसके बाद प्रसन्न मन से श्रीभगवान् ने राजा से कहा ॥१३॥ **वामन ने कहा—** हे राजेन्द्र ! अपने आने के कारण को मैं वतलाता हूँ आप सुनें । हे दैत्यपते ! मेरे अग्निकुण्ड के लिए पृथिवी दे दें । मेरे तीन डग से नापी गयी पृथिवी को आप दे दें । मैं दूसरी कोई भी वस्तु नहीं चाहता हूँ । सभी दानों में भूमिदान उत्तम है ॥१४-१५॥ जो अकिञ्चन ब्राह्मण को अंङ्गूठे के बराबर भी भूमि देता है, वह पृथिवी का स्वामी होता है ॥१६॥ भूमिदान के सदृश इस लो में कोई भी पवित्र वस्तु नहीं है । जो भूमि का दान लेता है और जो भूमि देता है ॥१७॥ वे दोनों पवित्र कर्म करने वाले है और वे दोनों स्वर्ग जाते हैं । अतएव हे महाराज मुझे आप तीन डग पृथिवी दे दें ॥१८॥ हे राजन् ! इतनी कम पृथिवी देने में आप किसी भी प्रकार की शङ्का नहीं करें । हे राजन् ! आपकी त्रैलोक्य प्रदान करने वाली ख्याति होगी॥१९॥ **शङ्करजी ने कहा—** उसके बाद प्रसन्न होकर राजा ने कहा ठीक है । उन्होंने वामन को विधि पूर्वक पृथिवी

शुक्र उवाच

एषविष्णुःपरेशोऽथदेवैः सम्प्रार्थितोनृप ! । वञ्चयित्वामहींसर्वां त्वत्तःप्राप्तुमिहाऽऽगतः ॥२२॥
तस्मान्मही न दातव्या तस्मै राजन्महात्मने । अन्यमर्थं प्रयच्छस्व वचनान्मम भूपते !॥२३॥

श्रीशङ्कर उवाच

ततः प्रहस्य राजाऽसौ तं गुरुं प्राह धैर्यतः ॥२४॥

बलिरुवाच

प्रीतयेवासुदेवस्यसर्वं पुण्यंकृतंमया । अद्य धन्योऽस्म्यहं विष्णुः स्वयमेवाऽऽगतोयदि॥२५॥
तस्यप्रदेयमेवाऽद्य जीवितंचमहत्सुखम् । तस्मादस्मैप्रयच्छामि त्रिलोकीमपिमाचिरम्॥२६॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्त्वा भूपतिस्तस्यपादौ प्रक्षाल्यभक्तितः। वाञ्छितांप्रददौ भूमिंवारिपूर्वं विधानतः ॥२७॥
परिणीय नमस्कृत्य दत्त्वा वै दक्षिणां वसु। प्रोवाच तं बटुं विप्रं प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना॥२८॥

बलिरुवाच

धन्योस्मि कृतकृत्योऽस्मि तव दत्त्वा महीं द्विज ! ।
यत्रेष्टं तव विप्रेन्द्र ! तद्गृहाण महीमिमाम् ॥२९॥

श्रीशङ्कर उवाच

तमुवाच नृपं विष्णूराजंस्तव समीपतः। मापयामि पदेनाऽद्य पृथिवीं तव पश्यतः॥३०॥
इत्युक्त्वा सर्वरूपं तद्विहाय परमेश्वरः। त्रिविक्रमवपुर्भूत्वा जग्राह पृथिवीमिमाम्॥३१॥
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णां ससमुद्रमहीधराम्। ससागरां च सद्वीपां सदेवासुरमानुषाम् ॥३२॥

दान करने का मन बनाया । इन दैत्यराज को देखकर पुरोहित शुक्राचार्य ने उनसे कहा । राजन् ! इनको भूमि मत दीजिये । **शुक्राचार्य ने कहा**— ये परेश विष्णु है, देवताओं की प्रार्थना से प्रेरित होकर आपको धोखा देकर सम्पूर्ण पृथिवी को आपसे प्राप्त करने के लिए आये हैं ॥२०-२२॥ अतएव हे महाबुद्धिमान् राजन् इनको पृथिवी नहीं देना चाहिए । हे राजन् ! आप मेरे कहने से इनको कोई दूसरी वस्तु दे दीजिए ॥२३॥ **श्रीशङ्करजी ने कहा**— उसके बाद जोर से हँसकर राजा ने धैर्य पूर्वक अपने गुरु से कहा ॥२४॥ **बलि ने कहा**— भगवान् वासुदेव की ही प्रसन्नता के लिए मैंने सारा पुण्य किया है यदि आज स्वयं भगवान् विष्णु आ गये हैं तो मैं धन्य हो गया ॥२५॥ आज तो उनको देना है तो मैं अपना जीवन ही सुख पूर्वक दे दूँ । अतएव मैं इनको शीघ्र ही त्रिलोक भी दे सकता हूँ ॥२६॥ **श्रीशङ्करजी ने कहा**— यह कहकर राजा ने भक्ति पूर्वक उनके पैरो को धोकर उनको अभिप्रेत पृथिवी सङ्कल्प पूर्वक दे दिया ॥२७॥ उन्होंने सङ्कल्प करके नमस्कार करके बहुत अधिक धन दक्षिण में देकर वे प्रसन्न मन से उस ब्रह्मचारी ब्राह्मण से कहा ॥२८॥ **बलि ने कहा**— हे द्विज ! मैं आपको पृथिवी देकर धन्य और कृत-कृत्य हो गया । हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आपको जहाँ अभिप्रेत हो उसी भूमि को आप ले लें ॥२९॥ **श्रीशङ्करजी ने कहा**— उस राजा से भगवान् विष्णु ने कहा हे राजन् ! मैं आपके समीप ही पृथिवी को अपने पैर से मापता हूँ ॥३०॥ यह कहकर अपना वामन रूप त्यागकर श्रीभगवान् त्रिविक्रम शरीर वाला होकर इस भूमि को ले लिए ॥३१॥ पचास करोड़ में विस्तृत समुद्र तथा पर्वतों सागरों और द्वीपों सहित, देवताओं और मनुष्यों से युक्त पृथिवी

पादेनैकेन वपुषो विक्रम्य मधुसूदनः। उवाच दैत्यराजेंन्द्र किङ्करोमीति शाश्वतः ॥३३॥
तद्वै त्रैविक्रमं रूपमीश्वरस्य महौजसम्। हितार्थमपिदेवानामृषीणां च महात्मनाम् ॥३४॥

न द्रष्टुमपि शक्यं स्याद्ब्रह्मणः शङ्करस्यच ।
तत्पदं पृथिवीं सर्वामाक्रम्य गिरिजेशुभे ! ॥३५॥

अतिरिक्तं समभवच्छतयोजनमायतम्। दिव्यं चक्षुर्ददौ तस्मै दैत्यराजे सनातनः॥३६॥
तस्मै सन्दर्शयामास स्वकं रूपं जनार्दनः। तद्विश्वरूपं देवस्य दृष्ट्वा दैत्येश्वरो बलिः ॥३७॥
प्रहर्षमतुलं लेभे सानन्दाश्रुपरिप्लुतः । दृष्ट्वा देवं नमस्कृत्य स्तुत्वा स्तुतिभिरेव च ॥
प्राह गद्गदया वाचा प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना ॥३८॥

बलिरुवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि त्वांदृष्ट्वापरमेश्वरम् ।
लोकत्रयं त्वमेवैतद् गृहाणपरमेश्वर ! ॥३९॥

श्रीशङ्कर उवाच

अथ सर्वेश्वरो विष्णुर्द्वितीयं पदमव्ययम्। ऊर्ध्वं प्रसारयामास ब्रह्मलोकान्तमच्युतः॥४०॥
सनक्षत्रग्रहोपेतं सर्वदेवसमावृतम्। पदेन परिपूर्णोऽभूदच्युतस्य शुभानने ॥४१॥
ततः पितामहो ब्रह्मा चक्रपद्मादिचिह्नितम्। पादं तद्देवदेवस्य हर्षसङ्कुलचेतसा ॥४२॥

धन्योऽस्मीति वदन्ब्रह्मा गृहीत्वा स्वकमण्डलुम् ।
भक्तया प्रक्षालयामास तत्र संस्थितवारिणा ॥४३॥

अक्षय्यमभवत्तोयं तस्य विष्णोः प्रभावतः । तत्तीर्थं मेरुशिखरे पपात विमलं जलम्॥४४॥
जगतः पावनार्थं वै चतुर्दिक्षु प्रवाहितम्। सिता चाऽलकनन्दाच चक्षुर्भद्रा यथाक्रमम् ॥४५॥

को ॥३२॥ अपने एक ही डग में नापकर मधुसूदन ने दैत्यों के राजा बलि से कहा अब मैं क्या करूँ?॥३३॥ भगवान् ने उस महाओजस्वी रूप को जो देवताओं तथा ऋषियों का कल्याण के लिए धारण किया था उसको ब्रह्माजी और शङ्करजी भी देखने में समर्थ नहीं थे । हे पार्वति ! वह पैर सम्पूर्ण पृथिवी को नापकर उससे भी सौ योजन अधिक लम्बा हो गया । सनातन भगवान् विष्णु ने उस दैत्यराज को दिव्य नेत्र प्रदान कर दिया था ॥३४-३६॥ भगवान् ने बलि को अपना रूप दिखाया । श्रीभगवान् के उस विश्व रूप को देखकर बलि ॥३७॥ आनन्दाश्रु से परिपूर्ण होकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किए । उन्होंने प्रसन्न मन से अपनी गद्गद वाणी से कहा ॥३८॥ **बलि ने कहा—** हे परमेश्वर ! आपके इस रूप को देखकर मैं धन्य और कृत-कृत्य हो गया हूँ । हे परमेश्वर ! आप इस त्रैलोक्य को ले लें ॥३९॥ **श्रीशङ्करजी ने कहा—** उसके पश्चात् सर्वेश्वर भगवान् विष्णु ने अपना दूसरा डग ब्रह्मलोक पर्यन्त बढ़ा दिया ॥४०॥ नक्षत्रों, ग्रहों, तथा देवताओं से भरा हुआ भगवान् अच्युत का हो गया ॥४१॥ उस समय पितामह ब्रह्माजी ने चक्र तथा पद्म आदि से चिह्नित श्रीभगवान् के उस चरण को अपने प्रहर्षित मन से ॥४२॥ देखकर मैं तो धन्य हो गया यह कहकर अपने कमण्डलु में रखकर भक्ति पूर्वक उसमें विद्यमान जल से धोया ॥४३॥ वह जल भगवान् विष्णु के प्रभाव से जल अक्षय हो गया । वह स्वच्छ जल सुमेरु पर्वत के शिखर पर गिरा ॥४४॥

ततश्चाऽलकनन्दाच मेरोर्दक्षिणतःस्मृता। त्रिधानाम्ना त्रिपथगा त्रिस्पतालोकपावनी।।४६।।
स्वर्गे मन्दाकिनी प्रोक्ता त्वधो भोगवतीतथा ।
मध्ये वेगवतीगङ्गा पावनार्थं नृणांशिवा ।।४७।।
तां दृष्ट्वा मेरुमध्येतु प्रस्रवन्तीं शुभानने !। आत्मनः पावनार्थाय शिरसाऽहमधारयम्।।४८।।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु धृत्वा गङ्गाजलं शुभम्। शिवत्वमगमं देवि ! सर्वलोकेषु पूजितः।।४९।।
यो वहेच्छिरसा गङ्गातोयं विष्णुपदोद्भवम् । प्राशयेद्वा जगत्पूज्यो भविष्यतिनसंशयः।।५०।।
गङ्गागङ्गेति योब्रूयाद्यो जनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।।५१।।
ततो भागीरथो राजा गौतमश्च महातपाः। तपसा पूजयित्वा मां गङ्गार्थं समयाचत।।५२।।
सर्वलोकहितार्थाय तां गङ्गां वैष्णवीं शिवाम् ।
तयोरहं तामददां प्रीत्या देवि ! सरिद्वराम् ।।५३।।
गौतमेन समानीता गौतमी तेन कीर्त्तिता। भागीरथीति विख्याता तेनराज्ञा वृता यतः।।५४।।
प्रसङ्गात्ते समाख्यातं गङ्गाजन्माऽत्यनुत्तमम्। ततोनारायणः श्रीमान्बलेर्दैत्यपतेःप्रभुः ।।५५।।
रसातलं शुभं लोकं प्रददौ भक्तवत्सलः। सर्वेषां दानवानां तु नागानां यादसामपि।।५६।।
राजानं तु बलिं चक्रे यावदाभूतसम्प्लवम्। प्रतिगृह्य बलेर्लोकान्बटुवेषेण दैत्यहा।।५७।।
महन्द्राय ददौ प्रीत्या काश्यपो विष्णुरव्ययः ।
ततोदेवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च महौजसः ।।५८।।

संसार को पवित्र करने के लिए वह चारो दिशाओं में प्रवाहित हुआ । उन धाराओं का क्रमशः नाम सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा हुआ ।।४५।। वहाँ से अलकनन्दा सुमेरु पर्वत के दक्षिण की ओर प्रवाहित हुयी। वह तीन धाराओं में तीन नामों से त्रिपथगा होकर लोक को पवित्र करने वाली तीन स्रोतों वाली हुयी।।४६।। स्वर्ग में उसका नाम मन्दाकिनी हुआ, और नीची उसका नाम भोगवती हुआ और बीच में उसका नाम मनुष्यों को पवित्र वनाने के लिए वेगवती गङ्गा हुआ ।।४७।। हे शुभानने सुमेरु पर्वत के बीच में प्रवाहित होती हुयी उसको देखकर अपने को पवित्र करने के लिए मैंने उसे अपने शिर पर धारण किया।।४८।। देवताओं के एक हजार वर्ष पर्यन्त उस पवित्र गङ्गाजल को धारण करके हे देवि ! सभी लोक में पूजित मैंने शिवत्व को प्राप्त किया ।।४९।। भगवान् विष्णु के चरणों से उत्पन्न गङ्गाजी के जल को मैं अपने शिर पर धारण करता हूँ अथवा उस जल को जो पिये वह निश्चित रूप से जगत् पूज्य हो जाता है ।।५०।। जो सैकड़ों योजन दूर से गङ्गा-गङ्गा इस नाम का उच्चारण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ।।५१।। उसके पश्चात् राजा भगीरथ और महातपस्वी गौतम ऋषि तपस्या के द्वारा मेरी पूजा करके मुझे गङ्गा को माँगे ।।५२।। हे देवि ! लोक का कल्याण करने के लिए मैंने उस वैष्णवी गङ्गा नामक श्रेष्ठ नदी को प्रेम पूर्वक दोनों को प्रदान किया ।।५३।। गौतम महर्षि ने लेकर उसका नाम गौतमी रखा और उस राजा के द्वारा मुझसे लायी गयी का नाम भागीरथी हुआ ।।५४।। प्रसङ्गावशात् मैंने तुमको गङ्गा के जन्म का आख्यान सुनाया । उसके पश्चात् भगवान् नारायण ने दैत्यों के स्वामी बलि को ।।५५।। रसातल लोक प्रदान किया क्योंकि श्रीभगवान् भक्त वत्सल हैं । सभी दानवों नागों और यादसो को भी वही लोक प्रदान किया ।।५६।। उन्होंने बलि को महाप्रलय काल तक के लिए उन्होंने

तुष्टुवुः स्तवनैर्दिव्यैः पूजयामासुरच्युतम् । संक्षिप्य तन्महद्रूपं तेषां सन्दर्शनाय वै ॥५९॥
सम्पूज्यमानस्त्रिदशैरन्तर्द्धानं ययौ हरिः । इत्थं सुरक्षितः शक्रो विष्णुना प्रभविष्णुना ॥६०॥
त्रैलोक्यं महदैश्वर्यमवाप त्रिदिवेश्वरः । एतत्ते सर्वमाख्यातं वामनं वैभवं शुभम् ॥
शेषं यद्वैभवं देवि ! तद्वक्ष्यामि यथाक्रमात् ॥६१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वर सम्वादेवामनप्रादुर्भावो नाम चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४०॥

दो सौ एकतालिसवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

भृगुपुत्रो महानासीज्जामदग्निर्द्विजोत्तमः । समस्तवेदवेदाङ्गपारगश्च महातपाः ॥१॥
तपस्तेपे स धर्मात्मा महेन्द्रं प्रति भामिनि ! ।
सहस्रवर्षपर्यन्तं गङ्गायाः पुलिने शुभे ! ॥
ततः प्रसन्नः प्राहेदं भगवान्पाकशासनः ॥२॥

राजा बनाया दैत्यों को मारने वाले वामन वेषधारी श्रीभगवान् बलि के लोकों को लेकर कश्यप महर्षि के पुत्र श्रीभगवान् ने इन्द्र को प्रदान । उसके पश्चात् देवता, गन्धर्व तथा महाओजस्वी ऋषिगण ॥५७-५८॥ भगवान् अच्युत की दिव्य स्तुतियों से स्तुति करके उनकी पूजा किए । अपने उस महान् रूप को उन सबों के दर्शन के लिए उपसंहत करके ॥५९॥ देवताओं से पूजित होते हुए श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये । इस तरह से प्रभविष्णु भगवान् विष्णु ने इन्द्र को सुरक्षित किया ॥६०॥ त्रैलोक्य के महान् ऐश्वर्य को इन्द्र ने इस प्रकार से प्राप्त किया । इस तरह से मैंने तुमको श्रीवामन भगवान् के सम्पूर्ण ऐश्वर्य को सुनाया ॥६१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत वामन प्रादुर्भाव वर्णन नामक दो सौ चालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४०।।

श्रीपरशुराम चरित्र के अन्तर्गत जमदग्नि तथा हैहयाधिपति का कामधेनु की प्राप्ति के लिए विवाद और युद्ध का वर्णन जमदग्नि महर्षि का मारा जाना, श्रीपरशुरामजी द्वारा की गयी क्षत्रियहीन पृथिवी का वर्णन

ईश्वर ने कहा— महर्षि भृगु के पुत्र द्विजोत्तम महर्षि जमदग्नि थे । वे महातपस्वी समस्त वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत थे ॥१॥ उन्होंने इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए एक हजार वर्ष पर्यन्त गङ्गा के तट पर तपस्या किया । उसके पश्चात् प्रसन्न होकर इन्द्र ने कहा ॥२॥ **इन्द्र बोले**— हे विप्रेन्द्र ! आपके मन में जो

इन्द्र उवाच

वरं वृणीष्व विप्रेन्द्र ! यत्ते मनसि वर्त्तते ॥३॥

ईश्वर उवाच

ततः प्रोवाच विप्रर्षिः परितुष्टं शतक्रतुम् ॥४॥

जमदग्निरुवाच

सुरभिं देहि मे देव ! सर्वकामदुघां सदा ॥५॥

ईश्वर उवाच

ततः प्रसन्नो देवेशस्तस्मै विप्राय गोत्रभित्। प्रददौ सुरभिं देवीं सर्वकामदुघां तदा ॥६॥
स लब्ध्वा सुरभिं देवीं जमदग्निर्महातपाः। उवास महदैश्वर्यः शतक्रतुरिवाऽपरः ॥७॥
रेणुकस्य सुतां रम्यां रेणुकां नामनामतः। उपयेमे विधानेन जमदग्निर्महातपाः॥८॥
तयासह स धर्मात्मा रेमे वर्षाण्यनेकशः । पौलोम्या शुभयादेव्या यथासङ्क्रन्दनोविभुः ॥९॥
ततःसपुत्रकामत्वादिष्टिं चक्रेसुधार्मिकः। इष्ट्या सन्तोषयामास पाकशासनमीश्वरम् ॥१०॥
परितुष्टः शचीभर्त्ता ददौ पुत्रं महाबलम्। महौजसं महाबाहुं सर्वशत्रुप्रतापनम् ॥११॥

अथ कालेन विप्रेन्द्रो रेणुकायां शुचिस्मिते ! ।
पुत्रमुत्पादयामास महावीर्यं बलान्वितम् ॥१२॥

विष्णोरंशांशभागेन सर्वलक्षणलक्षितम्। तस्मिन्सुते महावीर्ये भृगुस्तस्य पितामहः ॥१३॥
नाम चास्मैददौ हर्षाद्विष्णोरंशोपलक्षितम् । चक्रेऽथ नामधेयन्तु रामइत्यस्यशोभनम्॥१४॥
जमदग्नेः समुत्पन्नो जामदग्न्य इतीरितः। तद्भार्गवान्वयः सोऽपि ववृधे द्विजपुङ्गवः॥१५॥
उपदीतस्तदा काले सर्वविद्याविशारदः। तपस्तप्तुं जगामाऽथ शालिग्रामाचलं प्रति ॥१६॥

हो वह वरदान माँगें ॥३॥ **ईश्वर ने कहा—** उसके पश्चात् उन विप्रर्षि ने प्रसन्न हुए इन्द्र से कहा ॥४॥ **जमदग्नि ने कहा—** हे देव ! आप मुझको सदा कामनाओं को पूर्ण करने वाली सुरभि गौ को प्रदान करें॥५॥ **ईश्वर ने कहा—** उसके पश्चात् गोत्रभित् इन्द्र ने उन विप्र को सर्वदा के लिए सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली सुरभि गौ को प्रदान किया ॥६॥ महातपस्वी जमदग्नि सुरभि को प्राप्त करके महान् ऐश्वर्य सम्पन्न होकर वे दूसरे इन्द्र के समान निवास करते थे ॥७॥ रेणुक की मनोहर पुत्री रेणुका के साथ महातपस्वी जमदग्नि ने विधि पूर्वक विवाह किया ॥८॥ उन्होंने धर्मात्मा रेणुका के साथ सुन्दर शचीदेवी के साथ इन्द्र के समान अनेक वर्षों तक रमण किया ॥९॥ उसके पश्चात् धार्मिक महर्षि ने पुत्र प्राप्ति की कामना से पुत्रेष्टि याग किया । उस इष्टि के द्वारा उन्होंन इन्द्र को प्रसन्न किया ॥१०॥ प्रसन्न हुए इन्द्र ने महा ओजस्वी, महाबाहू तथा सभी शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले महाबलवान् पुत्र को प्रदान किया ॥११॥ उसके पश्चात् समयानुसार महर्षि जमदग्नि ने रेणुका के गर्भ से बलवान् तथा महापराक्रमी पुत्र को उत्पन्न किया ॥१२॥ वह भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न सभी लक्षणों से युक्त था । उस महापराक्रमी पुत्र के उत्पन्न होने पर उसके पितामह महर्षि भृगु ने ॥१३॥ हर्ष पूर्वक विष्णु भगवान् से उपलक्षित राम यह सुन्दर नाम रखा ॥१४॥ महर्षि जमदग्नि से उत्पन्न होने के कारण उनका नाम जामादग्न्य हुआ । भृगुवंश में

ददर्श कश्यपं तत्र ब्रह्मर्षिममितौजसम्। दृष्ट्वा प्रणम्य हर्षेण पूजयामास भार्गवः ॥१७॥
तेन सम्पूजितस्सम्यङ्मरीचितनयो द्विजः। विधिना प्रददौ तस्मै मन्त्रं वैष्णवमव्ययम्॥१८॥
लब्धमन्त्रस्तदा रामः कश्यपात्त महात्मनः । पूजयामास विधिना सतदा कमलापतिम् ॥१९॥
षडक्षरं महामन्त्रं जपन्नेव दिवानिशम् । ध्यायन्कमलपत्राक्षं विष्णुं सर्वगतं हरिम् ॥२०॥
तपस्तेपे स धर्मात्मा बहुवर्षाणि भार्गवः । जितेन्द्रियस्तु यतवाक्तदा तस्थौ महातपाः ॥२१॥
जमदग्निस्तु विप्रर्षिः स्थितो गङ्गातटे शुभे । चकार विधिवद्धर्मं यज्ञदानादिकं महत् ॥२२॥

धेन्वाः प्रसादादिन्द्रस्य सम्पूर्णास्तस्य सम्पदः ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य हैहयाधिपतिः प्रभुः ॥२३॥

विजित्वा सर्वराष्ट्राणि सर्वसैन्यसमावृतः। भार्गवस्याऽऽश्रमम्प्राप्यजमदग्नेर्महीपतिः ॥२४॥
समीक्ष्य तं महाभागं ववन्दे मुनिसत्तमम् । पृष्ट्वा तु कुशलं तस्य महर्षेर्भावितात्मनः ॥२५॥
प्रददौ नृपतिस्तस्मै वस्त्राण्याभरणानि च। स च सम्पूजयामास राजानं गृहमागतम् ॥२६॥
मधुपर्केण विधिना पूजयित्वा नृपोत्तमम्। ससैन्याय नृपेन्द्राय भोजनं प्रददौ मुनिः ॥२७॥
प्रार्थिता सुरभिस्तेन भार्गवेण सुधीमता । सम्पूर्णमन्नपानादि ससर्ज शबला तदा ॥२८॥
अक्षप्यमन्नपानादि तया सृष्टं महातपाः। ससैन्याय नृपेन्द्राय प्रददौ मुनिसत्तमः ॥२९॥
तांदृष्ट्वा शबलांराजा कुतूहलसमन्वितः। स्पृहां चाऽप्यकरोद्राजा तस्यांगवि सुदुर्मतिः॥
अयाचत्सुरभिं तत्र जमदग्निं नृपोत्तमः ॥३०॥

उत्पन्न वे द्विजश्रेष्ठ बड़े हो गये ॥१५॥ सभी विद्याओं में निपुण उनका यज्ञोपवीत हुआ । वे तपस्या करने के लिए शालिग्राम पर्वत पर चले गये ॥१६॥ वहाँ पर उन्होंने महर्षि कश्यप का दर्शन किया । उनको देखकर उन्होंने हर्ष पूर्वक उनकी पूजा की ॥१७॥ उनके द्वारा पूजित होकर महर्षि मरीचि के पुत्र कश्यप महर्षि ने उनको विधि पूर्वक वैष्णव मन्त्र प्रदान किया ॥१८॥ उसके पश्चात् मन्त्र प्राप्त करके राम विधि पूर्वक लक्ष्मीपति श्रीभगवान् की पूजा किए ॥१९॥ वे रात-दिन महामन्त्र षडक्षर मन्त्र को जपते हुए तथा कमल नयन सर्वत्र व्याप्त भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए ॥२०॥ वे भार्गव महात्मा बहुत वर्षों तक तपस्या किए । वे महातपस्वी जितेन्द्रिय तथा मौन रहते थे ॥२१॥ विप्रर्षि जमदग्नि तो गङ्गा तट पर ही रहते थे । उन्होंने विधि पूर्वक यज्ञ इत्यादि धर्मों को किया ॥२२॥ इन्द्र की गौ की कृपा से उनकी सारी सम्पत्ति परिपूर्ण थी । एक समय हैहयाधिपति ॥२३॥ सभी राष्ट्रों को जीतकर अपनी सारी सेना के साथ महर्षि जमदग्नि के आश्रम में आये ॥२४॥ उन महाभाग मुनिश्रेष्ठ को देखकर उनकी वन्दना किए राजा ने परिपूर्ण महर्षि का कुशल पूछा और उनको वस्त्र एवं आभूषण प्रदान किया । महर्षि ने घर आये हुए राजा की पूजा की । मधुपर्क के द्वारा विधि पूर्वक राजा की पूजा करके सेना के साथ राजा को उन्होंने भोजन प्रदान किया ॥२५-२७॥ उन भार्गव महर्षि के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर शबला सुरभि ने सम्पूर्ण अन्न जल की सृष्टि कर दी ॥२८॥ उसने अक्षय अन्न फल की सृष्टि किया और महातपस्वी ने उसे सेना सहित राजा को प्रदान किया ॥२९॥ उस शबला को देखकर कुतूहल पूर्वक दुष्टमति वाले राजा ने उस शबला गौ को प्राप्त करने की इच्छा की । श्रेष्ठ राजा ने महर्षि जमदग्नि से उसकी याचना भी की ॥३०॥

कार्त्तवीर्योवाच

शबलां देहि मे विप्र ! कपिलां सर्वकामदाम् ।
अन्यथेनुसहस्त्राणि दास्यामि तव सुव्रत ॥३१॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्तस्तेन राज्ञाऽऽह जमदग्निर्महातपाः ॥३२॥

जमदग्निरुवाच

न देया शबला राजन्मया तव महीपते ! । इयं च देवदेवेन शक्रेण परिपालिता ॥
देवतानां धनं राजन्दातव्यं स्यात्कथं मया ॥३३॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्तः स तदा राजा क्रोधेन कलुषीकृतः ।
बलाज्जग्राह शबलां सर्वसैन्यसमावृतः ॥३४॥
ततः क्रुद्धा महाभागा शबला वरवर्णिनि ! ।
जघान तस्य सैन्यानि शृङ्गैः खुरतलैरपि ॥३५॥
घातयित्वा मुहूर्त्तेन तत्सैन्यंशबलाबलात् । अन्तर्द्धानंगता देवी ययौशक्रान्तिकंक्षणात्॥३६॥
स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा सोऽर्जुनः क्रोधमूर्च्छितः ।
मुष्टिना ताडयामास भार्गवंद्विजसत्तमम् ॥३७॥
ताडितस्तेन बहुशो विकलाङ्गः प्रकल्पितः । पपात सहसा भूमौ ममार द्विजसत्तमः॥३८॥
हत्वा मुनिवरं तत्र पापात्मा हैहयाधिपः । महासैन्यपरीवारो विवेश नगरं स्वकम्॥३९॥
रामस्तु देवदेवेशं पूजयामास भार्गवः । तेन सम्पूजितो देवः प्रसन्नः प्राह केशवः ॥४०॥

कार्त्तवीर्य ने कहा— हे विप्र ! सभी कामनओं को पूर्ण करने वाली सुरभि गौ को आप मुझे दे दें । हे सुव्रत ! मैं आपको हजार गौओं को दूँगा ॥३१॥ **ईश्वर ने कहा—** राजा के इस तरह कहने पर महातपस्वी महर्षि जमदग्नि ने कहा ॥३२॥ **जमदग्नि बोले—** हे महीपते राजन् ! मैं इस शबला को आपको नहीं दूँगा। इसका पालन सुरेश्वर इन्द्र ने किया है राजन् मैं देवता के धन को आपको कैसे दे सकता हूँ ॥३३॥ **ईश्वर ने कहा—** इस तरह से कहने पर वह राजा क्रुद्ध हो गया । सम्पूर्ण सेना के साथ विद्यमान उस राजा ने शबला को बल पूर्वक स्वयं ले लिया ॥३४॥ हे सुन्दरि ! उसके बाद शबला क्रुद्ध हो गयी । उसने राजा की सेनाओं को शृङ्ग तथा खूर से मार दिया ॥३५॥ मुहूर्त भर में सम्पूर्ण सेना का बल पूर्वक शबला ने मारकर वह देवी अन्तर्धान हो गयी क्षणभर में इन्द्र के पास चली गयी ॥३६॥ अपनी सेना को मरी हुयी देखकर राजा अर्जुन ने क्रोध करके जमदग्नि महर्षि को मुक्के से मारा ॥३७॥ उसके द्वारा बहुत अधिक मार दिए जाने के कारण विकल शरीर वाले महर्षि पृथिवी पर गिर पड़े और मर गये ॥३८॥ वहाँ मुनि श्रेष्ठ को मारकर पापी हैहयधिपति अपनी महासेना के साथ अपने नगर में चला गया । भृगुवंशीय राम ने विधि पूर्वक श्रीभगवान् की पूजा की । उनके द्वारा पूजित होकर प्रसन्न हुए भगवान् केशव ने कहा ॥३९-४०॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे वत्स ! नियमित रहने वाले तुमसे मैं प्रसन्न हूँ । हे विप्र !

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि तपसा वत्स ! भवतोनियतात्मनः ।
सम्प्रदास्यामितेविप्रमच्छक्तिंपरमांशुभाम् ॥४१॥
आवेशितोऽथ मच्छक्तया जहि दुष्टान्नृपोत्तमान् ।
भूभारकविनाशायदेवतानां हिताय वै ॥४२॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ देवः परशुं शत्रुधर्मणम्। वैष्णवं च महाच्चापं दिव्याण्यस्त्राण्यनेकशः॥
दत्त्वा प्रोवाच भगवाञ्जामदग्न्यं जनार्दनः ॥४३॥

श्रीभगवानुवाच

मदोत्कटान्नृपान्हत्वा बहुशः परवीरहा । गृहाण पृथिवीं सर्वां सागरान्तां द्विजोत्तम ! ॥४४॥
पालयस्व च धर्मेण वीर्येण महतावृतः । कालेन मत्पदं चाऽपि मत्प्रसादाद्गमिष्यसि॥४५॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्हितोदेवं वरंदत्त्वा द्विजन्मने । रामोऽपिचाऽथसहसाप्रययौपितुराश्रनम् ॥४६॥
पितरं निहतं दृष्ट्वा भार्गवः क्रोधमूर्च्छितः। निःक्षत्रां कर्तुमन्विच्छन्महींनृपसमाकुलाम् ॥४७॥
जगाम हैहयपतेर्नगरं नृपसम्वृतम् । क्रोधावेशज्वलद्गात्रो द्वार्यतिष्ठदुदायुधः ॥४८॥
तं दृष्ट्वा तत्पुरजना जामदग्न्यं महौजसम् । जाज्वल्यमानं वपुषाकालाग्निमिव मेनिरे ॥४९॥
भयार्त्ता विद्रुताः सर्वे राजानं हैहयाधिपम् । शशंसुस्तं महासत्त्वं सर्वायुधसमन्वितम् ॥
श्रुत्वा स राजा तद्वाक्यं प्राह विस्मितचेतसा ॥५०॥

हैहयाधिप उवाच

कोऽसौ ममपुरद्वारिसायुधःसंस्थितोबलात्। महेन्द्रोवायमोवाऽपिरुद्रोवाधनदोऽपिवा ॥५१॥

मैं तुमको अपनी परमा शक्ति को प्रदान करता हूँ ॥४१॥ मेरी शक्ति के द्वारा आविष्ट होकर दुष्ट राजाओं को मार दो । उससे पृथिवी का भार विनष्ट होगा और देवताओं का कल्याण होगा ॥४२॥ **ईश्वर ने कहा**— यह कहकर श्रीभगवान् ने उनको शत्रुओं को गराने वाला फरसा धनुष और अनेक अस्त्रों को प्रदान किया । उसे देकर भगवान् जनार्दन ने जमदग्नि पुत्र से कहा ॥४३॥ **श्रीभगवान् बोले**— हे द्विजोत्तम ! आप मदमत्त राजाओं को मारकर शत्रुओं को मारने वाले आप सागर पर्यन्त सम्पूर्ण पृथिवी को ले लें॥४४॥ और आप धर्म तथा पराक्रम पूर्वक उसका पालन करें । समय से आप मेरी कृपा से मेरे लोक में भी आयेंगे॥४५॥ **ईश्वर ने कहा**— यह कहकर श्रीभगवान् उन ब्राह्मण को वरदान देकर अन्तर्धान हो गये और राम भी साहस पूर्वक अपने पिता के आश्रम में चले गये ॥४६॥ अपने पिता को मारे हुए जानकर राम अत्यन्त क्रोध किए और राजाओं से व्याकुल बनी हुयी पृथिवी को क्षत्रिय विहीन करने की इच्छा से ॥४७॥ वे हैहयाधिप द्वारा पालित नगर में गये । उनका शरीर क्रोध से जल रहा था वे आयुध उठाये हुए राजा के द्वार पर ठहर गये ॥४८॥ उन महाओजस्वी राम को देखकर उस नगर के लोग जलते हुए शरीर वाले उनको कालाग्नि के समान माने ॥४९॥ भयभीत होकर वे सब भागते हुए राजा हैहयाधिप के पास आये।

सायुधो मत्पुरद्वारि स्थातुं शक्तो न कर्हिचित् ।।५२।।

महादेव उवाच

इत्युक्त्वा पार्थिवेन्द्रोऽसौ किङ्करान्सुमहाबलान् ।
प्रेरयामासतंदुष्टंगृह्णीतेत्याहदुर्मतिः ।।५३।।

ते गत्वा ददृशुर्वीरं पुरद्वारि महाबलम्। ज्वलन्तमिव कालाग्निं दुर्निरीक्ष्यं स्वतेजसा।।५४।।

तस्य सन्दर्शनेऽप्यत्र न शक्तास्ते महाबलाः ।
ग्रहीतुकामास्तं वीरं समन्तात्प्रययुर्भृशम् ।।५५।।

तान्दृष्ट्वा सायुधान्सर्वान्पार्थिवेन्द्रस्यकिङ्करान् ।
प्रहसन्प्राहविप्रेन्द्रोजामदग्न्योमहाबलः ।।५६।।

परशुराम उवाच

भार्गवस्य सुतो रामः सम्प्राप्तोऽहं नराधमाः ।
स्वपितुर्निधनात्सर्वान्हनिष्यामि नृपोत्तमान् ! ।।५७।।

कार्तवीर्यस्य रुधिरं मत्पित्रे तिलसंयुतम्। दास्यामि पिण्डदानं च तच्छिरः कबलेन वै।।५८।।

महादेव उवाच

इत्युक्तास्ते महावीर्याः किङ्करास्तस्य भूपतेः ।
शरैस्तं ताडयामासुः पलालैरिवपावकम् ।।५९।।

ततः क्रुद्धोमहावीर्योरामस्सत्यपराक्रमः। वैष्णवं चापमाकृष्य ज्यानिनादमथाऽकरोत् ।।६०।।

तेन नादेन महता पूरितं भुवनत्रयम्। देवानामपि सन्त्रासो बभूव महदद्भुतम्।।६१।।

ततः पावकसङ्काशैराशुगैः सुमहाबलः। ताडयामास तान्वीरान्किङ्करान्वै महाबलान् ।।६२।।

उन महासत्त्व तथा सभी आयुधों से युक्त उनके विषय में बतलाये । उस वाक्य को सुनकर आश्चर्यित राजा ने कहा ।।५०।। **हैहयाधिप बोले—** वह कौन है जो मेरे नगर के द्वार पर आयुध लेकर बल पूर्वक खड़ा है । वे इन्द्र हैं या यम हैं, या रुद्र हैं या कुबेर हैं ।।५१।। वह मेरे द्वार पर आयुध धारण करके कभी भी खड़ा होने में समर्थ नहीं है ।।५२।। **महादेवजी ने कहा—** इस तरह से कहकर राजा ने अपने महा बलवान् किंकरों से कहा कि उस दुष्ट को तुमलोग पकड़ लो ।।५३।। वे जाकर द्वार पर महाबलवान् जो जलती हुयी अग्नि के समान तथा अपने तेज से कालाग्नि के समान दुनिरीक्ष्य राम को देखे ।।५४।। वे महाबलवान् उनको देखने में भी समर्थ नहीं हुए । उनको पकड़ने की इच्छा से वे वीर उन्हें चारो ओर से घेर लिए ।।५५।। उन आयुध धारण किए हुए सभी राजा के किंकरों को देखकर जोर से हँसते हुए महाबलवान् जामदग्न्य ने कहा ।।५६।। **परशुरामजी ने कहा—** हे नराधमों ! मैं भार्गव के महाबलवान् पुत्र हूँ यहाँ आया हूँ अपने पिता के मारे जाने से सबों को मैं मार दूँगा ।।५७।। मैं अपने पिता को कार्तवीर्य के खून को तिल मिलाकर तिलाञ्जलि दूँगा । और उसके शिर रूप कवल से पिण्डदान करूँगा ।।५८।। **महादेवजी ने कहा—** इस तरह से कहे जाने पर वे राजा के किङ्कर अग्नि में डाले जाने वाले पुआल के समान बाणों से उन्हें मारे ।।५९।। उसके पश्चात् सत्य पराक्रम से सम्पन्न महापराक्रमी राम क्रुद्ध होकर वैष्णव धनुष की डोरी चढ़ाकर उसकी ज्या की ध्वनि किए ।।६०।। महान ध्वनि से त्रैलोक्य भर गया और देवताओं

हत्वा तु किङ्करांस्तस्य पार्थिवस्य महात्मनः ।
कालाग्निरिवसन्तस्थौ सर्वभूतभयङ्करः ॥६३॥
श्रुत्वा तु किङ्करान्स्वस्य हतान्रामेणधीमता। हैहयाधिपतिर्वीरः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥६४॥
निर्ययौ सहसैन्येनयत्राऽऽस्तेभार्गवोऽव्ययः । तं दृष्ट्वा घोरसङ्काशं ज्वलन्तंस्वेनतेजसा ॥६५॥
त्रस्ताः सर्वे जनास्तत्र शङ्कमानां जनक्षयम् । ततो युद्धं महाघोरं रामस्य नृपतेस्तदा ॥६६॥
शस्त्रास्त्रपातनैर्भीमैर्मेघरोरिव वर्षतोः । ततो रामो महातेजास्तत्सैन्यं नृपतेस्तदा ॥६७॥
निर्ददाह क्षणात्सर्वं वैष्णवास्त्रेणलीलया । ततः परशुना रामस्तीक्ष्णेनाऽमितविक्रमः ॥६८॥
चिच्छेद बाहुसाहस्त्रं कार्तवीर्यस्य दुर्मतेः । न शशाक महावीर्यो योद्धुं रामेण भूपतिः ॥६९॥
नष्टवीर्यो बभूवाऽत्र पापेन स्वेन दुर्मतिः । चिच्छेद तच्छिरः क्रुद्धो रेणुकातनयो बली ॥७०॥
महाद्रिशृङ्गं वज्रेण यथा देवपतिर्बली । हत्वा सहस्त्राबाहुं तं जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥७१॥
जघान पार्थिवान्सर्वान्क्रुद्धः परशुना मृधे । रामं दृष्ट्वा महारौद्रं पार्थिवाः पृथिवीतले ॥७२॥
भयार्त्ता विद्रुताः सर्वे नागाः केसरिणं यथा ।
विद्रुतानपि भूपालान्पितुर्निधनमन्युना ॥७३॥
जघान भार्गवः क्रुद्धो नागानिव खगेश्वरः । निःक्षत्रं कृतवान्सर्वं जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥७४॥
ररक्ष भगवानेकमिक्ष्वाकोः सुमहत्कुलम् । मातामहस्यान्वयत्वाद्रेणुकावचनादथ ॥७५॥
तान्भ्रष्टराज्यान्कृत्वा वै मातामहकुलोद्भवान्। न हत्वा मनुवंशांस्तान्रामो नृपकुलान्तकः ॥७६॥

को भी अद्भुत महाभय हो गया ॥६१॥ उसके पश्चात् अग्नि के समान बाणों से वे महाबलवान् उन महावीर तथा महावलवान किङ्करों को मारे ॥६२॥ उस राजा के द्वार पर महावलवान् परशुरामजी सभी जीवों को भयभीत करने वाले कालाग्नि के समान वहाँ खड़े रहे ॥६३॥ बुद्धिमान राम के द्वारा अपने किङ्करों को मारे गये सुनकर वीर हैहयाधिपति क्रोध से आँखे लाल करके ॥६४॥ अपनी सेना के साथ वहाँ गये जहाँ परशुराम विद्यमान थे । भयङ्कर तथा अपने तेज से देदीप्यमान उनको देखकर ॥६५॥ भयभीत सभी लोगों ने माना कि अब मनुष्यों का विनाश होने वाला है । उसके बाद राम और राजा का भयङ्कर युद्ध हुआ॥६६॥ वे दोनों मेघों के समान शस्त्रास्त्रों की वर्षा एक दूसरे पर कर रहे थे ॥६७॥ परशुरामजी ने क्षणभर में वैष्णवास्त्र से सभी अस्त्रों को भस्म कर दिया । उसके बाद निःसीम पराक्रमी परशुरामजी ने अपने तीक्ष्ण फरसे से कार्तवीर्य की हजार भुजाओं को काट दिया । वह राजा कार्तवीर्य परशुरामजी से युद्ध करने में समर्थ नहीं हुआ ॥६८-६९॥ वह दुर्मति अपने पाप के कारण नष्टवीर्य हो गया था और बलवान परशुराम जीं ने उसके शिर को काट दिया ॥७०॥ जिस तरह बलवान् इन्द्र ने वज्र से बड़े-बड़े पर्वतों को काट दिया था उसी तरह परशुरामजी ने उस सहस्त्रबाहु को मारकर ॥७१॥ उन्होंने युद्ध में अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने फरसे से मार दिया । पृथिवी पर महापराक्रमी राजा गण परशुरामजी को देखकर ॥७२॥ भयभीत होकर भाग चले फिर भी पिता की मृत्यु से क्रुद्ध हुए वे जिस तरह सिंह हाथियों को मार डालता है उसी तरह उन सबों को मार डाले ॥७३॥ क्रुद्ध परशुरामजी जिस तरह गरुड़ नागों को मार डालते हैं उसी तरह उन सबों को मार डाले । प्रतापी परशुरामजी ने पृथिवी को क्षत्रियों से रहित बना दिया ॥७४॥ परशुरामजी ने

सर्वं तु भूभृतां वंशं नाशयामास वीर्यवान्। कृत्वा चोर्वीं तु निःक्षत्रांजमदग्निसुतोबली ॥७७॥
अश्वमेधं महायज्ञं चकार विधिवद्द्विजः। प्रददौ विप्रमुख्येभ्यः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥७८॥
दत्त्वा महीं स विप्रेभ्यो जामदग्न्यःप्रतापवान् ।
तपस्तप्तुंययौसोऽथनरनारायणाश्रमम् ॥७९॥
एतत्ते कथितं देवि जामदग्न्यमहात्मनः । शक्त्यावेशावतारस्य चरितं शार्ङ्गिणः प्रभोः ॥८०॥
नोपास्यं हि भवेत्तस्यशक्त्यावेशानमहात्मनः ।
उपास्यो भगवद्भक्तैर्विप्रमुख्यैर्महात्मभिः ॥८१॥
रामकृष्णावतारौ तु परिपूर्णौ हि सद्गुणैः । उपास्यमानावृषिभिरपवर्गप्रदौ नृणाम् ॥८२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वर सम्वादे परशुरामचरितं नामैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४१॥

केवल इक्ष्वाकु वंश को अपने नाना के कहने से तथा रेणुका के कहने से छोड़ दिया ॥७५॥ अपने मातामह के वंश में उत्पन्नों को राज्य भ्रष्ट करके राजाओं के वंश का अन्त करने वाले परशुरामजी ने मनु के वंश में उत्पन्नों को भी नहीं मारा ॥७६॥ सम्पूर्ण राजाओं के वंश को पराक्रमी राम ने नष्ट कर दिया पृथिवी को क्षत्रीय से हीन करके बलवान् परशुरामजी ॥७७॥ ने विधि पूर्वक अश्वमेध यज्ञ किया । उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सप्तद्वीपा पृथिवी को दे दिया ॥७८॥ ब्राह्मणों को पृथिवी का दान देकर प्रतापी परशुरामजी तपस्या करने के लिए नर नारायणाश्रम में चले गये ॥७९॥ हे देवि ! मैंने आपको भगवान् विष्णु की शक्ति से आवेशावतार परशुरामजी का चरित बतलाया ॥८०॥ श्रीभगवान् के शक्त्यावेश के कारण परशुरामजी उपास्य नहीं है । भगवान् के भक्तों तथा मुख्य ब्राह्मणों के द्वारा रामावतार तथा कृष्णावतार को ही उपासना करने योग्य बतलाया है । ये दोनों अवतार सद्गुणों से परिपूर्ण हैं । ऋषियों के द्वारा उपासना किए जाने पर ये उनको मुक्ति प्रदान करने वाले हैं ॥८१-८२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत परशुराम चरित वर्णन नामक दो सौ एकतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४१।।

दो सौ बयालीसवाँ अध्याय

रुद्र उवाच

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं द्वादशार्णं महामनुम्। जजाप गोमतीतीरे नैमिषे विमले शुभे॥१॥
तेन वर्षसहस्रेण पूजितः कमलापतिः। मत्तो वरं वृणीष्वेति तं प्राह भगवान्हरिः॥२॥

मनुरुवाच

पुत्रत्वं भज देवेश! त्रीणि जन्मानिचाच्युत!।
त्वां पुत्रलालसत्वेन भजामि पुरुषोत्तमम्॥३॥

रुद्र उवाच

इत्युक्तस्तेन लक्ष्मीशः प्रोवाच सुमहागिरा॥४॥

विष्णुरुवाच

भविष्यति नृपश्रेष्ठ! यत्ते मनसि काङ्क्षितम्।
ममैव च महाप्रीतिस्तव पुत्रत्वहेतवे॥५॥
स्थितिप्रयोजने काले तत्र तत्र नृपोत्तम!। त्वयि जातेत्वहमपि जातोऽस्मि तवसुव्रत!॥६॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि तवाऽनघ!॥७॥

रुद्र उवाच

एवं दत्त्वा वरं तस्मै तत्रैवाऽन्तर्दधेहरिः। अस्याभूत्प्रथमं जन्म मनोः स्वायम्भुवस्यच॥८॥
रघूणामन्वयेपूर्वं राजा दशरथो ह्यभूत्। द्वितीयो वसुदेवोऽभूद्वृष्णीनामन्वये विभुः॥९॥
कलेर्दिव्यसहस्राब्दप्रमाणस्यान्त्यपादयोः। शम्भलग्रामके मुख्ये ब्राह्मणः सञ्जनिष्यते॥१०॥

श्रीरामावतार के वर्णन के प्रसङ्ग में स्वायम्भुव मनु द्वारा तपस्या किया जाना, त्रेतायुग में महाराजा दशरथ के गृह में श्रीराम का अवतार तथा श्रीराम के वनवास का वर्णन

रुद्र ने कहा— स्वयम्भुव मनु पहले द्वादशाक्षर महामन्त्र का गोमती के विमल तट पर नैमिषारण्य में जप किए॥१॥ उन्होंने एक हजार वर्ष पर्यन्त श्रीलक्ष्मीपति की पूजा की उसके पश्चात् श्रीहरि ने उनसे कहा कि तुम मुझसे वरदान माँगो॥२॥ **मनु ने कहा—** हे अच्युत! मेरे वंश में तीन जन्मों में पुत्रत्व को आप प्राप्त करें। हे पुरुषोत्तम! आपको पुत्र बनाने की कामना से मैंने आपका भजन किया है॥३॥ **रुद्र ने कहा—** उनके द्वारा इस तरह से कहे जाने पर लक्ष्मीपति ने अपनी महान् वाणी से कहा॥४॥ हे नृपश्रेष्ठ! आपने अपने मन में जो चाहा है, वह होगा मुझको भी आपका पुत्र होने में महान् प्रेम है॥५॥ हे नृपोत्तम! स्थिति तथा प्रयोजन के समय मैं विभिन्न स्थानों पर आपके उत्पन्न होने पर मैं भी आपके पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ हूँ॥६॥ हे अनघ! साधुजनों की रक्षा करने के लिए और पापियों का विनाश करने के लिए सब धर्म की स्थापना करने के लिए आपका पुत्र होता हूँ॥७॥ **रुद्र ने कहा—** इस प्रकार से उस राजा को वरदान देकर श्रीहरि वहीं पर अन्तर्धान हो गये। इनका प्रथम जन्म स्वयाम्भु मनु के रूप में हुआ॥८॥ वे रघुवंशियों के वंश में पूर्वकाल में राजा दशरथ हुए दूसरे में वृष्णि वंश में वसुदेव

ततो मुक्तिर्भवेत्तस्य मनोर्जन्मत्रयान्तरे। राघवः प्रथमं जज्ञे कृष्णास्तु तदनन्तरम्॥११॥
कल्किरूपी हरिः पश्चाद्ब्राह्मणस्य जनिष्यति ।
तस्य पत्नी महाभागा सुशीला नाम भामिनी ॥१२॥
कौसल्या समभूत्पत्नी राज्ञो दशरथस्य हि। यदुवंश्यस्य सवाऽथ देवकी नामविश्रुता ॥१३॥
हरिव्रतस्य विप्रस्य भार्या देवप्रभापुनः। एवंमातृत्वमापन्ना त्रीणि जन्मानि शार्ङ्गिणः ॥१४॥
पूर्वं रामस्य चरितं वक्ष्यामि तव सुव्रते !। यस्य स्मरणमात्रेण विमुक्तिः पापिनामपि॥१५॥
हिरण्यकहरण्याक्षौ द्वितीयं जन्मसंश्रितौ। कुम्भकर्णदशग्रीवावजायेतां महाबलौ॥१६॥
पुलस्त्यस्य सुतो विप्रो विश्रवानाम धार्मिकः ।
तस्य पत्नी विशालाक्षी राक्षसेन्द्रसुताऽनघे ! ॥१७॥
सुकेशितनया सा स्यात्सुमालेर्दानवस्य च । केकसी नाम कन्याऽऽसीत्तस्य भार्या दृढव्रता॥१८॥
कामोद्रिक्तात् सा देवी सन्ध्याकालेमहामुनिम् ।
रमयामास तन्वङ्गी यथेष्टं शुभदर्शना ॥१९॥
तत्कालसम्भवौ गर्भौतस्यां जातौमहाबलौ। रावणःकुम्भकर्णश्च राक्षसौलोकविश्रुतौ ॥२०॥
कन्याशूर्पणखानामजाताऽतिविकृतानना । कस्यचित्त्वथकालस्यतस्यांजातोविभीषणः ॥२१॥
सुशीलो भगवद्भक्तः सत्यवाग्धर्मवाञ्छुचिः। रावणः कुम्भकर्णश्च हिमवत्पर्वतोत्तमे ॥२२॥
महोग्रतपसा मां वै पूजयामासतुर्भृशम्। रावणस्त्वथ दुष्टात्मा स्वशिरःकमलैःशुभैः॥२३॥
पूजयामास मां देवि ! दारुणेनैव कर्मणा । ततस्तमब्रवं स्वभूः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२४॥

हुए॥९॥ एक हजार देवताओं के वर्ष प्रमाण वाले कलि के अन्तिम चरणों में मुख शाम्भल ग्राम में वे ब्राह्मण होयेंगे ॥१०॥ उसके बाद तीन जन्म के बाद में मनु की मुक्ति हो जायेगी । श्रीभगवान् सर्वप्रथम श्रीराम हुए, उसके बाद वे श्रीकृष्ण हुए ॥११॥ श्रीहरि बाद में कल्की के रूप में उत्पन्न होंगे । उनकी पत्नी महाभागा सुशीला नाम वाली होंगी ॥१२॥ राजा दशरथ की पत्नी कौसल्या हुयीं । यदुवंश में उत्पन्न वसुदेवजी की पत्नी वे ही देवकी हुयीं ॥१३॥ वे ही हरिव्रत नामक ब्राह्मण की पत्नी देवप्रभा हुयी इस तरह श्रीभगवान् के तीन जन्मों में ये मातृत्व को प्राप्त कीं ॥१४॥ हे सुव्रते ! मैं सर्वप्रथम श्रीराम का चरित तुम्हे सुनाता हूँ । उनके स्मरण करने मात्र से पापियों की भी मुक्ति हो जाती है ॥१५॥ हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष जो पूर्व जन्म में राक्षस थे वे दोनों महाबलवान् रावण एवं कुम्भकर्ण हुए ॥१६॥ महर्षि पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा नाम वाले धार्मिक हुए । उनकी बड़ी-बड़ी आँखों वाली पत्नी राक्षस राज की पुत्री हुयी॥१७॥ सुमाली नामक दानव की पुत्री सुकेशी हुयी । विश्वश्रवा की दृढव्रता पत्नी कैकसी हुयी ॥१८॥ सायंकाल में कामोद्रिक्त होने के कारण वह सुन्दरी महामुनि के साथ यथेष्ट रूप में रमण की ॥१९॥ उसी समय उत्पन्न गर्भ में महाबलवान् लोक विश्रुत राक्षस रावण और कुम्भकर्ण हुए ॥२०॥ विश्वश्रवा की पुत्री शूर्पणखा थी वह अत्यन्त विकृत मुख वाली थी । कुछ समय के वाद उसके गर्भ से विभीषण पैदा हुए ॥२१॥ वे सुशील, भगवद्भक्त, सत्यवादी, धार्मिक और पावित्र्य पालन करने वाले थे । रावण और कुम्भकर्ण उत्तम हिमवान् पर्वत पर अपनी उग्र तपस्या से मेरी पूजा किए । उसके वाद दुष्ट रावण अपने शिर रूपी कमलों

वरं वृणीष्व मे वत्स मनसि वर्त्तते। ततः प्रोवाच दुष्टात्मा देवदानवरक्षसाम् ॥२५॥
अवध्यत्वं प्रदेहीति सर्वलोकजिगीषया। ततोऽहं दत्तवांस्तस्मै राक्षसाय दुरात्मने ॥२६॥
देवदानवयक्षाणामवध्यत्वं वरानने !। राक्षसोऽसौ महावीर्यो वरदानात्तु गर्वितः ॥२७॥
त्रीँ ल्लोकान्पीडयामास देवदानवमानुषान्। तेन सम्बाध्यमानाश्च देवा ब्रह्मपुरोगमाः ॥२८॥
भयार्त्ताः शरणं जग्मुरीश्वरं कमलापतिम्। ज्ञात्वाऽथ वेदनां तेषामभयाय सनातनः ॥
उवाच त्रिदशान्सर्वान्ब्रह्मरुद्रपुरोगमान् ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच

राज्ञो दशरस्थस्याहमुत्पत्स्यामिरघोः कुले। हनिष्यामि दुरात्मानं रावणं सहबान्धवम् ॥३०॥
मानुषं वपुरास्थाय हन्मि दैवतकण्टकम्। नन्दिशापाद्भवन्तोऽपि वानरत्वमुपागताः ॥
कुरुध्वं मम साहाय्यं गन्धर्वाप्सरसोत्तमाः ॥३१॥

रुद्र उवाच

इत्युक्ता देवतास्सर्वा देवदेवेन विष्णुना। वानरत्वमुपागम्य जज्ञिरे पृथिवीतले ॥३२॥
भार्गवेण प्रदत्ता तु मही सागरमेखला। दत्ता महर्षिभिः पूर्वं रघूणां सुमहात्मनाम्॥३३॥
वैवस्वतमनोः पुत्रो राज्ञां श्रेष्ठो महाबलः। इक्ष्वाकुरिति विख्यातस्सर्वधर्मविदाम्वरः ॥३४॥
तदन्वये महातेजा राजा दशरथो बली। अजस्य नृपतेः पुत्रः सत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥३५॥
स राजा पृथिवींसर्वां पालयामासवीर्यतः। राज्येषु स्थापयामास सर्वान्पार्थिवसत्तमान्॥३६॥

से ॥२२-२३॥ हे देवि ! अपने दारुण कर्म से मेरी पूजा किया। हे सुभ्रू उसके पश्चात् मैं प्रसन्न होकर उससे कहा ॥२४॥ हे वत्स ! तुम्हारे मन में जो हो उस वरदान को तुम मुझसे माँगो उसके पश्चात् उस दुष्ट ने कहा देवता, दानव और राक्षसों से मुझे अवध्यता प्रदान करें। मैंने उस दुष्ट को देवता, दानव और यक्षों से अवध्यता का वरदान दे दिया। वह सभी लोकों को जीत लेना चाहता था। वह महापराक्रमी राक्षस मेरे वरदान से गर्वित होकर ॥२५-२७॥ देवताओं दानवों और मानवों को पीड़ित किया। उससे बाधित होकर ब्रह्मा आदि देवता ॥२८॥ भयभीत होकर भगवान् कमलापति के शरण में गये। उन देवताओं की वेदना को जानकर उनके अभयत्व के लिए सनातन भगवान् ब्रह्मा रुद्र आदि सभी देवताओं से कहे ॥२९॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— मैं रघुवंश में महाराज दशरथ के पुत्र रूप से उत्पन्न होऊँगा। और दुष्टात्मा रावण का मैं उसके बान्धवों के साथ वध करूँगा ॥३०॥ मैं मानव रूप धारण करके उस देवताओं के शत्रु का वध करूँगा। और नन्दी के शाप से आपलोग भी वानर योनि को प्राप्त करके गन्धर्व अप्सराएँ आदि भी मेरी सहायता करेंगे ॥३१॥ **रुद्र ने कहा**— इस तरह से भगवान् विष्णु के द्वारा कहे जाने पर सभी देवता वानरत्व को प्राप्त करके पृथिवी पर उत्पन्न हुए ॥३२॥ श्रीपरशुरामजी ने पहले समुद्र पर्यन्त पृथिवी को दिया था उस पृथिवी को महर्षियों ने रघुवंशियो को दे दिया था ॥३३॥ महाबलवान् और वैवस्त मनु के पुत्र और राजाओं में श्रेष्ठ, सभी धर्म ज्ञाताओं में श्रेष्ठ इक्ष्वाकु हुए ॥३४॥ उनके वंश में महातेजस्वी और बलवान् राजा दशरथ हुए। वे राजा अज के पुत्र सत्यवक्ता, शीलगुण सम्पन्न और पावित्र्य का पालन करने वाले थे ॥३५॥ वे राजा अपने पराक्रम से सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करते थे। उन्होंने राज्यों में श्रेष्ठ

कोसलस्यनृपस्याऽथ पुत्री सर्वाङ्गशोभना। कौसल्या नाम तांकन्यामुपयेमे स पार्थिवः ॥३७॥
मागधस्य नृपस्याऽथ तनया च शुचिस्मिता ।
सुमित्रानाम नाम्ना च द्वितीया तस्य भामिनी ॥३८॥
तृतीया केकयस्याऽथ नृपतेर्दुहिता तथा। भार्याऽभूत्पद्मपत्राक्षी कैकेयी नाम नामतः ॥३९॥
ताभिः स्म राजा भार्याभिस्तिसृभिर्धर्मसंयुतः ।
रमयामास काकुत्स्थः पृथिवीं चाऽनुपालयन् ॥४०॥
अयोध्यानामनगरी सरयूतीरसंस्थिता। सर्वरत्नसुसम्पूर्णा धनधान्यसमाकुला ॥४१॥
प्राकारगोपुरैर्जुष्टा हेमप्रकारसङ्कुला। उत्तमैर्गार्गतुरगैर्महेन्द्रस्ययथापुरी ॥४२॥
तस्यां राजा स धर्मात्मा उवास मुनिसत्तमैः ।
पुरोहितेन विप्रेण वसिष्ठेन महात्मना ॥४३॥
राज्यंच कारयामास सर्वं निहतकण्टकम्। यस्मादुत्पत्स्यते तस्यां भगवान्पुरुषोत्तमः॥४४॥
तस्मात्तुनगरीपुण्या साप्ययोध्येतिकीर्तिता। नगरस्यपरंधाम्नो नामतस्याप्यभूच्छुभे !॥४५॥
यत्राऽऽस्ते भगवान्विष्णुस्तदेव परमं पदम्। तत्र सद्यो भवेन्मोक्षः सर्वकर्मनिकृन्तनः॥४६॥
जाते तत्र महाविष्णौ नराःसर्वेमुदं ययुः । स राजा पृथिवी सर्वां पालयित्वाशुभानने ॥४७॥
अयजद्वैष्णवेष्ट्याच पुत्रार्थी हरिमच्युतम्। तेन सम्पूजितः श्रीशो राज्ञाः सर्वगतोहरिः॥४८॥
वैष्णवेन तु यज्ञेन वरदः प्राह केशवः। तस्मिन्नाविरभूदग्नौ यज्ञरूपो हरिस्तदा ॥४९॥
शुद्धजाम्बूनदप्रख्यः शङ्खचक्रगदाधरः। शुक्लाम्बरधरः श्रीमान्सर्वभूषणभूषितः ॥५०॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्को वनमालाविभूषितः। पद्मपत्रविशालाक्षश्चतुर्बाहुरुदारधीः ॥५१॥

राजाओं को स्थापित किया ॥३६॥ कोसल राज की सर्वाङ्ग सुन्दरी पुत्री कौसल्या थीं राजा ने उनसे विवाह किया ॥३७॥ उसके पश्चात् मगधराज की सुन्दर मुस्कान वाली पुत्री सुमित्रा थी वह उनकी दूसरी पत्नी हुयी॥३८॥ उसके पश्चात् उनकी तीसरी पत्नी केकय राज की कमलनयनी पुत्री हुयी और उसका नाम कैकेयी था ॥३९॥ उन तीनों पत्नियों के साथ काकुत्स्थ वंश में उत्पन्न राजा दशरथ धर्मानुसार रमण किए॥४०॥ सभी रत्नों से परिपूर्ण तथा धन-धान्य से भरी हुयी सरयू नदी के तट पर अयोध्या नाम की नगरी थी ॥४१॥ वह प्राकारों तथा गोपुरों से परिपूर्ण, स्वर्ण प्रकारों से भरी हुयी उत्तम कोटि के हाथियों और घोड़ों से युक्त इन्द्र की नगरी के समान थी ॥४२॥ उस नगरी में वे राजा मुनिश्रेष्ठों तथा पुरोहित महात्मा वसिष्ठ के साथ राज्य करते थे । उनका कोई भी शत्रु नहीं था चूकि श्रीभगवान् उस नगरी में जन्म लेंगे इसीलिए वह पवित्र नगरी भी अयोध्या कहलाती थी । उस नगर के अपर धाम होने के कारण हे शुभे! उसका अयोध्या नाम हुआ जहाँ पर भगवान् विष्णु हैं वह परम धाम है । वहाँ पर सभी कर्मों को विनष्ट करने वाला मोक्ष शीघ्र ही हो जाता है ॥४३-४६॥ वहाँपर मद्यविष्णु के उत्पन्न होने पर सभी लोग प्रसन्न हो गये । वे राजा सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करके ॥४७॥ उन्होंने श्रीहरि की आराधना पुत्रेष्टि याग से की। उन राजा के द्वारा पूजित होकर सर्वत्र व्याप्त श्रीहरि ॥४८॥ वैष्णव यज्ञ के द्वारा प्रसन्न होकर वरदान देने वाले यज्ञ रूप से श्रीभगवान् प्रकट हो गये ॥४९॥ वे शुद्ध सुवर्ण के समाने शङ्ख, चक्र और गदा धारण

सख्याङ्कस्थश्रिया सार्द्धमाविरासीद्रमेश्वरः। वरदोऽस्मीति तं प्राह राजानं भक्तवत्सलः॥५२॥
तं दृष्ट्वा सर्वलोकेशं राजा हर्षसमाकुलः। ववन्दे भार्यया सार्द्धं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥५३॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा। पुत्रत्वं मे भजेत्याह देवदेवं जनार्दनम् ॥
ततः प्रसन्नो भगवान्प्राह राजानमच्युतः ॥५४॥

विष्णुरुवाच

उत्पत्स्येऽहं नृपश्रेष्ठ ! देवलोकहिताय वै। परित्राणाय साधूनां राक्षसानां वधाय च ॥
मुक्तिं प्रदातुं लोकानां धर्मसंस्थापनाय च ॥५५॥

महादेव उवाच

इत्युत्तवापायसं दिव्यं हेमपात्रस्थितंशृतम्। लक्ष्म्याहस्मतस्थितं शुभ्रंपार्थिवायददौहरिः ॥५६॥

विष्णुरुवाच

इदं वै पायसं राजन्पत्नीभ्यस्तव सुव्रत !। देहि ते तनयास्तासु उत्पस्यन्ते मदंशजाः ॥५७॥

महादेव उवाच

इत्युक्त्वा मुनिभिःसर्वैः स्तूयमानोजनार्दनः। स्वात्मानंदर्शयित्वाऽथतथैवान्तरधीयत ॥५८॥
स राजा तत्र दृष्ट्वा च पत्नीं ज्येष्ठां कनीयसीम् ।
विभज्य पायसं दिव्यं प्रददौ सुसमाहितः ॥५९॥
एतस्मिन्नन्तरे पत्नी सुमित्रा तस्य मध्यमा। तत्समीपं प्रयातासापुत्रकामा सुलोचना॥६०॥
तां दृष्ट्वा तत्र कौसल्या कैकेयी च सुमध्यमा ।
अर्द्धमर्द्धं प्रददतुस्ते तस्यैपायसं स्वकम् ॥६१॥

किए थे। श्वेत वस्त्र धारण किए हुए वे सभी भूषणों से भूषित थे ॥५०॥ उनका हृदय श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभ मणि से सुशोभित था और वे वनमाला धारण किए हुए थे। उनके कमल दल के समान बड़े-बड़े नेत्र थे और उनकी चार भुजाएँ थीं श्रीभगवान् अपनी पत्नी लक्ष्मीजी के साथ आविर्भूत हुए थे। उन भक्तवत्सल ने राजा दशरथ से कहा मैं वरदान देना चाहता हूँ ॥५१-५२॥ सभी लोकों के स्वामी श्रीभगवान् को देखकर अत्यन्त हर्षित होकर वे अपनी पत्नी के साथ उनकी वन्दना प्रसन्न अन्तःकरण से किए ॥५३॥ वे हाथ जोड़कर और झुककर कहे आप मेरे पुत्र हो जायँ। उसके बाद प्रसन्न होकर भगवान् अच्युत राजा से कहे ॥५४॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** हे नृपश्रेष्ठ ! मैं देवताओं का कल्याण करने के लिए, सज्जनों की रक्षा करने के लिए, और राक्षसों का वध करने के लिए, लोकों को मुक्ति प्रदान करने के लिए तथा धर्म की स्थापना करने के लिए उत्पन्न होऊँगा ॥५५॥ **महादेवजी ने कहा—** यह कहकर पके हुए सुवर्ण पात्र में स्थित दिव्य पायस जो लक्ष्मीजी के हाथ में विद्यमान था उस शुभ पायस को राजा को प्रदान किए॥५६॥ **भगवान् विष्णु ने कहा—** राजन् आप इस पायस को अपनी पत्नियों को दे दें इससे मेरे अंश से आपके पुत्र होंगे ॥५७॥ **शिवजी ने कहा—** यह कहकर मुनियों से स्तुति किए जाते हुए भगवान् जनार्दन, दर्शन देकर उसी तरह से अन्तर्धान हो गये ॥५८॥ वे राजा वहाँ पर बड़ी पत्नी तथा छोटी पत्नी को सावधानी पूर्वक बाँट करके उस दिव्य पायस को प्रदान किए ॥५९॥ उसी समय राजा की मध्यमा पत्नी सुन्दर नेत्रों वाली सुमित्रा पुत्र की कामना से राजा के पास आयी ॥६०॥ उनको देखकर सुन्दरी

तत्प्राश्यपायसं दिव्यं राजपत्न्यःसुमध्यमाः । सम्पन्नगर्भाः सर्वास्ताविरेजुः शुभ्रवर्चसः ॥६२॥
तासां स्वप्नेषु देवेशः पीतवासा जनार्दनः । शङ्खचक्रगदापाणिराविर्भूतस्तदा हरिः ॥६३॥
अथ काले मनोरम्ये मधुमासि शुचिस्मिते । शुक्ले नवम्यां विमले नक्षत्रेऽदितिदैवते ॥६४॥
मध्याह्नसमये लग्ने सर्वग्रहशुभान्विते । कौसल्या जनयामास पुत्रं लोकेश्वरं हरिम् ॥६५॥
इन्दीवरदलश्यामं कोटिकन्दर्पसन्निभम् । पद्मपत्रविशालाक्षं सर्वाभरणशोभितम् ॥६६॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं सर्वाभरणभूषितम् । उद्यद्दिनकरप्रख्यकुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥६७॥
अनेकसूर्यसङ्काशं तेजसा महतावृतम् । परेशस्य तनो रम्यं दीपादुत्पन्नदीपवत् ॥६८॥
ईशानं सर्वलोकानां योगिध्येयं सनातनम् । सर्वोपनिषदामर्थमनन्तं परमेश्वरम् ॥६९॥
जगत्सर्गस्थितिलये हेतुभूतमनामयम् । शरण्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमयं विभुम् ॥७०॥
समुत्पन्ने जगन्नाथे देवदुन्दुभयो दिवि । विनेदुः पुष्पवर्षाणि ववृषुः सुरसत्तमाः ॥७१॥
प्रजापतिमुखा देवा विमानस्था नभस्तले । तुष्टुवुर्मुनिभिः सार्द्धं हर्षपूर्णाङ्गविह्वलाः ॥७२॥
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः । ववुःपुण्याःशिवा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥७३॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता विमलाश्चदिशो दश ।
ततस्स राजा हर्षेण पुत्रं दृष्ट्वा सनातनम् ॥७४॥
पुरोधसा वसिष्ठेन जातकर्मतदाऽकरोत् । नाम चाऽस्मैददौरम्यं वसिष्ठो भगवांस्तदा ॥७५॥

कौसल्या और कैकेयी अपना आधा-आधा पायस उनको प्रदान कीं ॥६१॥ उस दिव्य पायस को खाकर सुन्दरी सभी रानियाँ गर्भवती होकर सुशोभित हुयीं ॥६२॥ उन सबों को स्वप्न में श्रीभगवान् पीताम्बर धारण किए हुए शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए दर्शन दिए ॥६३॥ उसके पश्चात् मनोरम चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन अदिति दैवत नक्षत्र में ॥६४॥ दोपहर की बेला में कर्क लग्न में जब सभी ग्रह कल्याणकारी हो गये थे श्रीकौसल्याजी ने अपने पुत्र लोकेश्वर श्रीहरि को जन्म दिया ॥६५॥ वे नीलकमल दल के समान श्यामवर्ण के, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर, कमल दल के समान बड़े-बड़े नेत्र वाले, सभी आभूषणों से भूषित थे । उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न और कौस्तुभ मणि से सुशोभित था। वे उगते हुए दो सूर्यों के समान दो कुण्डलों से सुशोभित थे ॥६६-६७॥ वे अनेक सूर्यों के समान तेज से परिपूर्ण थे । श्रीभगवान् का शरीर दीपक से उत्पन्न दीपक के समान मनोहर था ॥६८॥ वे सभी लोकों के स्वामी के द्वारा ध्यान करने योग्य, सनातन सभी उपनिषदों के अर्थस्वरूप, अनन्त, परमेश्वर ॥६९॥ अनामय तथा जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय के कारण स्वरूप, सभी भूतों के रक्षक, सर्वभूतमय व्यापक॥७०॥ श्रीहरि के उत्पन्न हो जाने पर देवताओं ने दुन्दुभि बजायी और पुष्पों की वर्षा की ॥७१॥ ब्रह्मा आदि देवता, आकाश में विमान पर बैठकर मुनियों के साथ श्रीभगवान् की स्तुति किए । उस समय उनके अङ्ग हर्ष से परिपूर्ण थे ॥७२॥ गन्धर्वों के स्वामियों ने गीत गाया और अप्सराओं ने नृत्य किया । मङ्गलमय वायु बहने लगी और सूर्य सुन्दर प्रभा से युक्त हो गये ॥७३॥ सभी अग्नियाँ जल गयीं और सभी दिशाएँ शान्त और स्वच्छ हो गयीं । उसके पश्चात् राजा हर्ष पूर्वक अपने सनातन पुत्र को देखकर॥७४॥ अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठ से जातकर्म कराये । उस समय महर्षि वसिष्ठ ने इनका मनोहर नाम राम

श्रियः कमलवासिन्या रमणोऽयंमहान्प्रभुः । तस्माच्छ्रीरामइत्यस्यनामसिद्धंपुरातनम् ॥७६॥
सहस्रनाम्नां श्रीशस्य तुल्यं मुक्तिप्रदं नृणाम्। विष्णुमासे समुत्पन्नो विष्णुरित्यभिधीयते ॥७७॥
एवंनामाऽस्यदत्त्वाऽथ वसिष्ठो भगवानृषिः। परिणीयनमस्कृत्यस्तुत्वास्तुतिभिरेवच ॥७८॥
संकीर्त्यनामसाहस्रं मङ्गलार्थं महात्मनः। विनिर्ययौमहातेजास्तस्मात्पुण्यतमाद्गृहात् ॥७९॥
राजाऽथ विप्रमुख्येभ्यो ददौ बहुधनं मुदा । गवामयुतदानं च कारयामास धर्मतः ॥८०॥
ग्रामाणां शतसाहस्रं ददौ रघुकुलोत्तमः । वस्त्रैराभरणर्दिव्यैरसङ्ख्येयैर्धनैरपि ॥८१॥
विष्णोस्संतुष्टये तत्र तर्पयामास भूसुरान्। कौसल्याचसुतं दृष्ट्वा रामं राजीवलोचनम्॥८२॥
फुल्लहस्तारविन्दाभं पद्महस्ताम्बुजान्वितम्। तस्य श्रीपादकमले पद्माब्जे च वरानने ! ॥८३॥
शङ्खचक्रगदापद्मध्वजवज्रादिचिह्निते । दृष्ट्वा वक्षसि श्रीवत्सं कौस्तुभं वनमालया ॥८४॥
तस्याऽङ्गे सा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् । स्मितवक्त्रे विशालाक्षी भुवनानि चतुर्दश॥८५॥
निःश्वासे तस्य वेदांश्च सेतिहासान्महात्मनः । द्वीपानब्धीन्गिरींस्तस्यजघनेवरवर्णिनि ॥८६॥

नाभ्यां ब्रह्मशिवौ तस्य कर्णयोश्च दिशःशुभाः ।
नेत्रयोर्वह्निसूर्यौचघ्राणे वायुं महाजवम् ॥८७॥

सर्वोपनिषदामर्थं दृष्ट्वा तस्य विभूतयः । कृत्स्ना भीता वरारोहा प्रणम्य च पुनःपुनः॥
हर्षाश्रुपूर्णनयना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥८८॥

कौसल्योवाच

धन्याऽस्मि देवदेवेश ! लब्ध्वा त्वां तनयं प्रभो ! ।
प्रसीद मे जगन्नाथ ! पुत्रस्नेहं प्रदर्शय ॥८९॥

रखा ॥७५॥ ये महाप्रभु कमल वासिनी लक्ष्मीजी के पति हैं अतएव इनका प्राचीन नाम श्रीराम होगा॥७६॥ हजारों नाम वाले लक्ष्मीपति के समान ये मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं । ये विष्णु देवताक मास में उत्पन्न हुए हैं अतएव ये विष्णु कहे जाते हैं ॥७७॥ इस प्रकार से इनके नामों को रखकर महर्षि वसिष्ठ, नाम रखने के बाद नमस्कार करके तथा स्तुतियों द्वारा स्तुति करके ॥७८॥ श्रीभगवान् के मङ्गल के लिए विष्णु सहस्र नाम का उच्चारण करके वे महातेजस्वी उस पवित्रतम गृह से निकले ॥७९॥ राजा भी मुख्य ब्राह्मणों को प्रसन्नता पूर्वक बहुत अन्न प्रदान किए । उन्होंने दश हजार गौओं का दान कराया ॥८०॥ उन्होंने वस्त्र, आभूषण तथा असंख्य धन के साथ एक लाख ग्रामों का दान दिया ॥८१॥ उन्होंने भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए ब्राह्मणों को तृप्त किया । कौसल्याजी भी कमल के समान नेत्र वाले अपने पुत्र श्रीरामजी को देखकर ॥८२॥ विकसित कमल के समान हाथ वाले तथा हाथ में कमल धारण किए हुए तथा विकसित कमल के समान उनके चरण कमल में ॥८३॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, ध्वजा तथा वज्र का चिह्न देखकर वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभमणि तथा वनमाला से सुशोभीत शरीर में देवता, असुर तथा मनुष्य के साथ सम्पूर्ण जगत् को तथा मुस्कान युक्त मुख में उन्होंने चौदहों भुवनों को देखा ॥८४-८५॥ हे सुन्दरि ! श्रीभगवान् के निःश्वास में वेदों तथा इतिहासों को, उनकी जङ्घाओं में द्वीपों और समुद्रों को देखा । उनकी नाभि में ब्रह्माजी तथा शिवजी को तथा कानों में सभी दिशाओं को नेत्रों में अग्नि तथा सूर्य को और नासिका में अत्यधिक वेग सम्पन्न वायु को देखा ॥८६-८७॥ सम्पूर्ण उपनिषदों

ईश्वर उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो मात्रा सर्वगतो हरिः । मायामानुषतां प्राप्य शिशुभावाद्रुरोद सः ॥९०॥

अथ प्रमुदिता देवी कौसल्या शुभलक्षणम् ।
पुत्रमालिङ्ग्यहर्षेणस्तन्यं प्रादात्सुमध्यमा ॥९१॥
तस्याः स्तन्यं पपौ देवो बालभावात्सनातनः ।
उवास मातुरुत्सङ्गे जगद्भर्ता महाविभुः ॥९२॥

तस्मिन्दिने शुभे रम्ये सर्वकामप्रदे नृणाम् । उत्सवं चक्रिरे पौरा दृष्टा जानपदा नराः ॥९३॥
कैकेय्यां भरतो जज्ञे पाञ्चजन्यांशसम्भवः । सुमित्रा जनयामास लक्ष्मणंशुभलक्षणम्॥९४॥
शत्रुघ्नं च महाभागा देवशत्रुप्रतापनम् । अनन्तांशेन सम्भूतो लक्ष्मणः परवीरहा॥९५॥
सुदर्शनांशाच्छत्रुघ्नः सञ्जज्ञेऽमितविक्रमः । ते सर्वे ववृधुस्तत्र वैवस्तमनो कुले ॥९६॥
संस्कृतास्ते सुताः सम्यग्वसिष्ठेनमहौजसा । अधीतवेदास्ते सर्वेश्रुतवन्तस्तथा नृपाः ॥९७॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा धनुर्वेदे च निष्ठिताः । बभूवुः परमोदारा लोकानां हर्षवर्द्धनाः ॥९८॥
युग्मं बभूवतुस्तत्र राजानौ रामलक्ष्मणौ । तथा भरतशत्रुघ्नौ पायसांशवशात्स्वतः ॥९९॥
अथ लोकेश्वरी लक्ष्मीर्जनकस्य निवेशने । शुभक्षेत्रे हलोत्खाते सुनासा सुशुभेक्षणा ॥१००॥
बालार्ककौटिसङ्काशा रक्तोत्पलकराम्बुजा । सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥१०१॥

के प्रतिपाद्य भूत उनकी विभूतियों को देखकर उनको बार-बार प्रणाम कीं तथा पूर्ण रूप से डर गयी थी। हर्ष जन्य आँसू से उनके नेत्र भर गये थे और हाथ जोड़कर उन्होंने कहा ॥८८॥ **कौसल्याजी बोली—** हे देवदेवेश ! हे प्रभो ! मैं आपको पुत्र रूप में पाकर मैं धन्य हो गयी । हे जगन्नाथ ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये । मुझे आप पुत्र का स्नेह प्रदर्शित करें ॥८९॥ **ईश्वर ने कहा—** माता के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर सर्वव्यापक श्रीहरि माया मनुष्यत्व को प्राप्त करके शिशु भाव से रोने लगे ॥९०॥ इसके पश्चात् कौसल्या देवीं ने शुभ लक्षण वाले पुत्र का आलिङ्गन करके उनके मुख में स्तन डाल दिया ॥९१॥ श्रीहरि उनके स्तन के दुग्ध को बालभाव के कारण पीये । जगत् के स्वामी अपनी माँ की गोद में निवास किए।॥९२॥ मनुष्यों की सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले उस शुभ तथा मनोहर दिन को सभी जनपद और नागरिक उत्सव मनाये ॥९३॥ कैकेयी के गर्भ से भरतजी पैदा हुए । वे पाञ्चजन्य शंस के अंश से उत्पन्न हुए थे । महाभागा सुमित्रा देवी ने शुभ लक्षणों से सम्पन्न लक्ष्मणजी तथा शत्रुघ्नजी को जन्म दिया। शत्रुघ्न शत्रुओं को संतप्त करने वाले थे । लक्ष्मणीजी अनंत के अंश से उत्पन्न हुए थे ॥९४-९५॥ सुदर्शन चक्र के अंश से निःसीम पराक्रम सम्पन्न शत्रुघ्नजी उत्पन्न हुए थे । वे सभी वैवस्वत मनु के वंश में वहीं बड़े हुए ॥९६॥ महर्षि वसिष्ठ के द्वारा संस्कार सम्पन्न होकर वे सब वेदाध्ययन किए और उसी के तरह वेदों का श्रवण किए ॥९७॥ वे सभी शास्त्रों के तत्त्वज्ञ और धनुर्वेद में निष्ठित थे । लोगों के हर्ष को बढ़ाने वाले वे अत्यन्त उदार हुए ॥९८॥ राम और लक्ष्मण वे दोनों जोड़ा बन गये । पायसाशवशात् स्वतः एक साथ हो गये ॥९९॥ इसके पश्चात् स्वयं लोकेश्वरी लक्ष्मीजी महाराज जनक के यहाँ । हल से जोते गये यज्ञ क्षेत्र में सुन्दर नासिक और नेत्र वाली करोड़ों बाल सूर्य के समान कान्ति के समान, लाल कर

धृतवा वक्षसि चार्वङ्गी मालामम्लानपङ्कजाम् ।
सीतामुखे समुत्पन्ना बालभावेनसुन्दरी ॥१०२॥
तां दृष्ट्वा जनको राजा कन्यां वेदमयींशुभाम् ।
उद्धृत्याऽपत्यभावेनपुपोषमिथिलापतिः ॥१०३॥
जनकस्य गृहे रम्ये सर्वलोकेश्वरप्रिया । ववृधे सर्वलोकस्य रक्षणार्थं सुरेश्वरी ॥१०४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि ! कौशिको लोकविश्रुतः ।
सिद्धाश्रमे महापुण्ये भागीरथ्यास्तटेशुभे ॥१०५॥
क्रतुप्रवरमारेभे यष्टुं तत्र महामुनिः । वर्त्तमानस्य तस्यास्य यज्ञस्याऽथ द्विजन्मनः ॥१०६॥
क्रतुविध्वंसिनोऽभूवन्रावणस्य निशाचराः । कौशिकश्चिन्तयित्वाऽथरघुवंशोद्भवंहरिम् ॥१०७॥
आनेतुमैच्छद्धर्मात्मा लोकानां हितकाम्यया । स गत्वा नगरीं रम्यामयोध्यां रघुपालिताम् ॥१०८॥
नृपश्रेष्ठं दशरथं ददर्श मुनिसत्तमः ।
राजाऽपिकौशिकं दृष्ट्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥१०९॥
पुत्रैः सह महातेजा ववन्दे मुनिसत्तमम् । धन्योऽहमस्मीति वदन्हर्षेण रघुनन्दनः॥११०॥
अर्चयामास विधिना निवेश्य परमासने । परिणीय नमस्कृत्य किंकरोमीत्युवाच तम् ॥१११॥
ततः प्रोवाच हृष्टात्मा विश्वामित्रो महातपाः ॥११२॥

विश्वामित्र उवाच

देहि मे राघवं राजन्रक्षणार्थं क्रतोर्मम । साफल्यमस्तु मे यज्ञे राघवस्य समीपतः ॥
तस्माद्रामं रक्षणार्थं दातुमर्हसि भूपते ! ॥११३॥

कमल और पैरो वाली सभी लक्षणों से सम्पन्न तथा सभी भूषणों से भूषित ॥१००-१०१॥ सुन्दर अङ्गों वाली वे कभी भी नहीं मुरझाने वाले कमलों की माला धारण करके हल के फाल के अग्र भाग से बाल भाव से उत्पन्न हुयीं ॥१०२॥ राजा जनक वेदमयी उस शुभ कन्या को देखकर उसको सन्तान की भावना से उठाकर मिथिलापति ने पाला पोसा ॥१०३॥ जनकजी के घर में सम्पूर्ण लोकों की स्वामिनी सुरेश्वरी लोक की रक्षा करने के लिए बढ़ीं ॥१०४॥ इसी के बीच लोक विख्यात विश्वामित्र ऋषि भागरीरथी के तट पर अत्यन्त पवित्र सिद्धाश्रम में यज्ञ करने के लिए श्रेष्ठ यज्ञ प्रारम्भ किए। उन महर्षि के इस यज्ञ के होते रहने पर ॥१०५-१०६॥ रावण के राक्षस यज्ञ को विध्वंस करने वाले हो गये । कौशिक महर्षि विचार करके रघुवंश में उत्पन्न श्रीहरि को ॥१०७॥ संसार का कल्याण करने की कामना से लाने की इच्छा किये। रघुवंशियों द्वारा पालित अयोध्या नगरी में जाकर ॥१०८॥ वे मुनिश्रेष्ठ राजाओं में श्रेष्ठ महाराज दशरथ को देखे । राजा भी कौशिक मुनि को देखकर खड़ा होकर और हाथ जोड़कर ॥१०९॥ अपने पुत्रों के साथ मुनि श्रेष्ठ की वन्दना किए । हर्ष पूर्वक वे रघुनन्दन मैं तो धन्य हो गया कहकर ऋषि को श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर उनकी पूजा किए । सत्कार करके तथा नमस्कार करके उन्होंने कहा मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ॥११०-१११॥ उसके पश्चात् प्रसन्न होकर महातपस्वी विश्वामित्र बोले ॥११२॥ **विश्वामित्र महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! मेरे यज्ञ की रक्षा करने के लिए मुझे श्रीराघव को आप दे दें । श्रीराघव की संरक्षता

ईश्वर उवाच

तच्छ्रुत्वा मुनिवर्यस्य वाक्यं सर्वविदाम्वरः। प्रददौ मुनिकर्याय राघवं सह लक्ष्मणम् ॥११४॥
आदाय राघवौ तत्र विश्वामित्रो महातपाः। स्वमाश्रममतिप्रीतः प्रययौ द्विजसत्तमः ॥११५॥
ततः प्रहृष्टास्त्रिदशाः प्रयाते रघुसत्तमे !। ववृषुः पुष्पवर्षाणि तुष्टुवुश्च महौजसः॥११६॥
अथाजगाम हृष्टात्मा वैनतेयो महाबलः। अदृश्यस्सर्वभूतानां सम्प्राप्य रघुसत्तमौ ॥११७॥

ताभ्यां दिव्ये च धनुषी तूणी चाक्षयसायकौ ।
दिव्यान्यस्त्राणि शस्त्राणि दत्त्वा च प्रययौ द्विजः ॥११८॥
तौ रामलक्ष्मणौवीरौ कौशिकेन सहाऽध्वनि ।
गच्छन्तौविपिनेघोरेराक्षसींघोरदर्शनाम् ॥११९॥

नाम्ना तु ताटकांदेवि ! भार्यांसुन्दस्यरक्षसः। जघ्नतुस्तौ महावीरौबाणैर्दिव्यधनुश्च्युतैः॥१२०॥
निहता राघवेणाऽथ राक्षसी घोरदर्शना। त्यक्त्वा तनुं घोररूपां दिव्यरूपा बभूव सा॥१२१॥
जाज्वल्यमाना वपुषा सर्वाभरणभूषिता। प्रययौ वैष्णवं लोकं प्रणम्य च रघूत्तमौ॥१२२॥

तां हत्वा राघवः श्रीमान्कौशिकस्याऽऽश्रमं शुभम् ।
प्रविवेश महातेजा लक्ष्मणेन महात्मना ॥१२३॥

ततः प्रहृष्टा मुनयः प्रत्युद्गम्य रघूत्तमम्। निवेश्य पूजयामासुरर्घाद्यैः परमासने॥१२४॥
कौशिकः कृतदीक्षस्तु यष्टुं यज्ञमनुत्तमम्। आरेभे मुनिभिःसार्द्धं विधिना मुनिसत्तमः ॥१२५॥

में मेरा यज्ञ सफल हो जाय। अतएव रक्षा करने के लिए आप मुझे राघव को दे दीजिये ॥११३॥ **ईश्वर ने कहा—** मुनिवर्य के उस वाक्य को सुनकर सबकुछ जानने वालों में श्रेष्ठ महाराज दशरथ मुनिवर्य के साथ लक्ष्मण के साथ श्रीराम को दे दिए ॥११४॥ उन दोनों रघुवंशियों को लेकर महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक लौट गये ॥११५॥ उसके पश्चात् रघुश्रेष्ठ के चले जाने पर प्रसन्न होकर देवता पुष्पों की वर्षा किए और उनकी स्तुति किए ॥११६॥ उसके पश्चात् महाबलशाली गरुड़ आये। उनको जीव देख न सके रघुश्रेष्ठों को प्राप्त करके ॥११७॥ उन दोनों को दो दिव्य धनुष और जिनके बाण कभी समाप्त न हों ऐसे दो तुणीर प्रदान किए और दिव्य अस्त्र शस्त्रों को देकर वे चले गये ॥११८॥ वे दोनों राम और लक्ष्मण वीर महर्षि कौशिक के साथ मार्ग में जाते हुए वन में देखने में भयङ्कर और घोर राक्षसी को देखे ॥११९॥ हे देवि ! उसका नाम ताटका था और वह सुन्दर नामक राक्षस की पत्नी थी। वे दोनों दिव्य धनुष से छूटे हुए सैकड़ों बाणों से उसको मार दिए ॥१२०॥ श्रीराम के द्वारा मारी गयी वह देखने में भयङ्कर राक्षसी अपने भयङ्कर शरीर को त्यागकर दिव्य रूप वाली हो गयी ॥१२१॥ देदीप्यमान शरीर के द्वारा, सभी आभरणों से अलंकृत वह उन दोनों रघुश्रेष्ठों को प्रणाम करके भगवान् विष्णु के लोक में चली गयी ॥१२२॥ उसको मारकर श्रीमान राघव कौशिक मुनि के शुभ आश्रम में गये। वे महातेजस्वी महात्मा लक्ष्मणजी के साथ उस आश्रम में प्रवेश किए ॥१२३॥ उसके पश्चात् प्रसन्न होकर मुनिगण उन दोनों की अगवानी किए और उनको श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर अर्घ्य आदि से उनकी पूजा किए ॥१२४॥ कौशिक महर्षि यज्ञ करने के लिए दीक्षा ग्रहण किए और मुनियों के साथ उन्होंने यज्ञ को प्रारम्भ किया॥१२५॥

वर्त्तमाने महायज्ञे मारीचो नाम राक्षसः। भ्रात्रा सुबाहुना तत्र विघ्नं कर्तुमवस्थितः ॥१२६॥
दृष्ट्वा तौ राक्षसौ घोरौ राघवः परवीरहा। जघानैकेन बाणेन सुबाहुं राक्षसेश्वरम् ॥१२७॥
पवनास्त्रेण महता मारीचं तु निशाचरम्। सागरे पातयामास शुष्कपर्णमिवाऽनिलः ॥१२८॥
स रामस्य महावीर्यं दृष्ट्वा राक्षससत्तमः। न्यस्तशस्त्रस्तपस्तप्तुं प्रययौ महदाश्रमम् ॥१२९॥
विश्वामित्रो महातेजाः समाप्ते महातिक्रतौ। प्रहृष्टमनसा तत्र पूजयामास राघवम् ॥१३०॥
समाश्लिष्य महात्मानं काकपक्षधरं हरिम्। नीलोत्पलदलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥१३१॥
उपाघ्राय तदा मूर्ध्नि तुष्टाव मुनिसत्तमः। एतस्मिन्नन्तरे राजा मिथिलाया अधीश्वरः ॥१३२॥
वाजपेयं क्रतुं यष्टुमारेभे मुनिसत्तमैः। तं द्रष्टुं प्रययुस्सर्वे विश्वामित्रपुरोगमाः ॥१३३॥
मुनयो रघुशार्दूलसहिताः पुण्यचेतसः। गच्छतस्तस्य रामस्य पादाब्जेन महात्मनः ॥१३४॥
अभूत्सुरूपा वनिता समाक्रान्ता महाशिला। साऽपि शप्ता पुरा भर्त्रागौतमेनद्विजन्मना ॥१३५॥
अहल्या रघुनाथस्यपादस्पर्शाच्छुभाभवत्। अथ सम्प्राप्यनगरीं मिथिलां मुनिसत्तमाः ॥१३६॥
राघवाभ्यां तु सहिता बभूवुः प्रीतमानसाः। समागतान्महाभागान्दृष्ट्वा राजा महाबलः ॥१३७॥
प्रत्युद्गम्य प्रणम्याऽथ पूजयामास मैथिलः। रामं पद्मविशालाक्षमिन्दीवरदलप्रभम् ॥१३८॥
पीताम्बरधरं श्लक्ष्णं कोमलावयवोज्ज्वलम्।
अवधीरितकन्दर्पकोटिलावण्यमुत्तमम् ॥१३९॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वाभरणभूषितम्। स्वस्य हृत्पङ्कजे ध्येयं परेशस्य तनोर्हरिः ॥१४०॥

यज्ञ के होते रहने पर मारीच नामक राक्षस अपने भाई सुबाहु के साथ यज्ञ में विघ्न करके के लिए वहाँ आया ॥१२६॥ उन दोनों भयङ्कर राक्षसों को देखकर शत्रुओं के वीरों को मारने वाले श्रीराम एक ही बाण से राक्षसेश्वर सुबाहु को मार दिए ॥१२७॥ उन्होंने वायव्यास्त्र के द्वारा मारीच को मारे और जिस तरह वायु सूखे पत्ते को उड़ा देती है उसी तरह उसको समुद्र में गिरा दिये ॥१२८॥ वह राक्षस श्रेष्ठ श्रीराम के पराक्रम को देखकर शस्त्रों को त्यागकर अपने आश्रम में तपस्या करने के लिए चला गया ॥१२९॥ महातेजस्वी विश्वामित्र महायज्ञ के समाप्त होने पर प्रसन्न मन से श्रीराम की पूजा किए ॥१३०॥ काकपक्षधारी नीलकमल दल के समान श्याम वर्ण वाले तथा पद्मपत्र के समान विशाल नेत्र वाले श्रीरामचन्द्रजी का आलिङ्गन करके तथा उनके शिर को सूंघ कर महामुनि विश्वामित्र उनकी स्तुति किए। इसी के बीच में मिथिला के अधिपति ॥१३१-१३२॥ श्रेष्ठ मुनियों के साथ वाजपेय यज्ञ करना प्रारम्भ किए। उस यज्ञ को देखने के लिए विश्वामित्र आदि पवित्र मन वाले मुनिगण ॥१३३॥ श्रीरामचन्द्र को साथ ले कर गये। जाते हुए श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमल से स्पृष्ट होकर महाशिला महात्मा गौतम की पत्नी सुन्दर रूप वाली हो गयी। उसको भी पहले उनके पति महात्मा गौतम शाप दे दिए थे ॥१३४-१३५॥ अहल्या श्रीरामचन्द्र के चरणों का स्पर्श होने से सुन्दरी हो गयी इसके पश्चात् मिथिला नगरी में आकर मुनिश्रेष्ठ गण ॥१३६॥ दोनों रघुवंशियों के साथ प्रसन्न हो गये। आये हुए महाभागों को देखकर महाबलवान राजा ॥१३७॥ मैथिल उनकी अगवानी करके तथा प्रणाम करके पूजा किए। कमल के समान बड़े-बड़े नेत्रों वाले तथा नील कमल के समान कान्ति वाले श्रीराम को ॥१३८॥ जो पीताम्बर धारण किए थे, सभी आभरणों से

उत्पन्नं दीपवद्दीपात्सौशील्यगुणसागरम्। तं दृष्ट्वा रघुनाथं स जनको हृष्टमानसः ॥१४१॥
परेशमेव तं मेने रामं दशरथात्मजम् । पूजयामास काकुत्स्थं धन्योऽस्मीति ब्रुवन्नृपः॥१४२॥
प्रसादं वासुदेवस्य विष्णोर्मेने नरेश्वरः । प्रदातुं दुहितां तस्मै मनसा चिन्तयन्प्रभुः ॥१४३॥
आत्मजौ रघुवंशस्य ज्ञात्वा तत्र नृपोत्तमः। पूजयामास धर्मेण वस्त्रैराभरणैः शुभैः ॥१४४॥
ऋषीन्समर्चयामास मधुपर्कादिपूजनैः । ततोऽवसाने यज्ञस्य रामो राजीवलोचनः॥१४५॥

भङ्क्त्वा शैवं धनुर्दिव्यं जितवाञ्जनकात्मजाम् ।
अथाऽसौ वीर्यशुल्केन महता परितोषितः ॥१४६॥

मुदा धरणिजां तस्मै प्रददौ मिथिलाधिपः । केशवाय श्रियमिव यथा पूर्वं महार्णवः ॥१४७॥
स दूतं प्रेषयामास राघवं मिथिलाधिपः। पुत्राभ्यांसहधर्मात्मा मिथिलायां विवेश ह ॥१४८॥
वसिष्ठवामदेवाद्यैः प्रीतैः सह महीपतिः। उपवास नगरे रम्ये जनकस्य रघूत्तमः ॥१४९॥
तस्मिन्नेव शुभे काले रामस्य धरणीसुताम्। विवाहमकरोद्राजा मैथिलेन समर्चितः॥१५०॥
लक्ष्मणस्योर्मिलांनाम कन्यांजनकसम्भवाम् । जनकस्याऽनुजस्याऽथतनये शुभवर्चसौ ॥१५१॥
माण्डवीश्रुतकीर्तिश्च सर्वलक्षणलक्षिते । भरतस्य च सौमित्रेर्विवाहमकरोन्नृपः ॥१५२॥
निर्वर्त्यौद्वाहिकं तत्र राजा दशरथो बली । अयोध्यां प्रस्थितः श्रीमान्पौरैर्जानपदैर्वृतः॥१५३॥

भूषित थे, कोमल अङ्गों वाले तथा करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाले थे, सभी लक्षणों से सम्पन्न थे अपने हृदय कमल में ध्यान करने योग्य श्रीहरि के शरीर वाले को ॥१३९-१४०॥ और दीप से उत्पन्न दीप के समान वे सौशील्य गुण के सागर थे उनको देखकर जनकजी मन से प्रसन्न हो गये॥१४१॥ वे दशरथ पुत्र श्रीरामचन्द्रजी को परमात्मा के ही समान माने और काकुस्थ करके पूजा मैं तो धन्य हो गया। यह कहे ॥१४२॥ राजा उनको वासुदेव भगवान् विष्णु के प्रसाद के समान माने । वे अपने मन में उनको अपनी पुत्री को प्रदान करने का विचार किए ॥१४३॥ उन दोनों को रघुवंश का पुत्र जानकर श्रेष्ठ राजा जनक धर्म पूर्वक उन दोनों की पूजा शुभ वस्त्रों तथा आभूषणों से किए ॥१४४॥ मधुपर्क आदि के द्वारा उन्होंने ऋषियों की पूजा की । उसके पश्चात् यज्ञ के अन्त में कमल नयन श्रीराम ॥१४५॥ शिवजी के दिव्य धनुष को तोड़कर जनकात्मजा को जीत लिए । उसके पश्चात् राजा पराक्रम रूपी शुल्क के द्वारा अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥१४६॥ उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक पृथिवी की पुत्री सीताजी का उनके साथ उसी तरह से विवाह कर दिया जिस तरह महासागर ने लक्ष्मीजी को भगवान् केशव को प्रदान किया था ॥१४७॥ मिथिलाधिपति महाराज दशरथ के यहाँ दूतों को भेजे और वे अपने दो पुत्रों के साथ मिथिला में आये॥१४८॥ प्रसन्न होकर वे वसिष्ठ वामदेव आदि ऋषियों के साथ आये । वे रघूतम जनकजी के मनोहर नगर में निवास किए ॥१४९॥ उसी ही शुभ काल में राजा जनक के द्वारा पूजित होकर राजा ने श्रीराम का विवाह सीताजी के साथ किया । लक्ष्मणजी का विवाह जनकजी की पुत्री उर्मिला से हुआ । जनकजी के छोटे भाई की सुन्दर कान्ति वाली दो पुत्रियाँ थीं माण्डवी और श्रुतिकीर्ति, वे दोनों सभी लक्षणों से युक्त थीं उनका विवाह राजा ने भरतजी तथा शत्रुघ्नजी से कर दिया ॥१५०-१५२॥ वहीं पर वैवाहिक कर्मों को पूरा करके बलवान् राजा दशरथ नागरिकों तथा जनपद वासियों के साथ अयोध्या लौटे ॥१५३॥ महाराज जनक से

पारिबर्हं समादाय मैथिलेन च पूजितः । ससुतः सस्नुषः साश्वः सगजः सबलानुगः ॥१५४॥
तदध्वनि महावीर्यो जामदग्न्यः प्रतापवान्। गृहीत्वा परशुं चापं संक्रुद्धइव केसरी ॥१५५॥
अभ्यधावच्च काकुत्स्थं योद्धुकामो नृपान्तकः ।
सम्प्राप्य राघवंदृष्ट्वा वचनंप्राहभार्गवः ॥१५६॥

परशुराम उवाच

रामराममहाबाहो श्रृणुष्व वचनं मम । बहुशः पार्थिवान्हत्वा संयुगे भूरिविक्रमान् ॥१५७॥
ब्राह्मणेभ्यो महींदत्त्वा तपस्तप्तुमहंगतः। तव वीर्यबलं श्रुत्वा त्वयायोद्धुमिहाऽऽगतः॥१५८॥
इक्ष्वाकवो न वध्यामे मातामहकुलोद्भवाः । वीर्यं क्षत्रबलं श्रुत्वा न शक्यं सहितुं मम ॥१५९॥
रौद्रं चापं दुराधर्षं भज्यमानं त्वया नृप ! । तस्माद्वदान्य ! युद्धं मे दीयतां रघुसत्तम ! ॥१६०॥
इदं तु वैष्णवं चापं तेन तुल्यमरिन्दम ! । आरोपयस्ववीर्येण निर्जितोऽस्मि त्वयैवहि ॥१६१॥
अथवात्यज शस्त्राणि पुरस्तादूबलिनोमम । शरणंभजकाकुत्स्थ ! कातरोऽस्यपिचेदिह ॥१६२॥

ईश्वर उवाच

एवमुक्तस्तुकाकुत्स्थो भार्गवेण प्रतापवान्। तच्चापं तस्यजग्राह तच्छक्तिंवैष्णवीमपि ॥१६३॥
शक्तया वियुक्तस्सतदा जामदग्न्यःप्रतापवान्। निर्वीर्यो नष्टतेजाश्च कर्महीनोयथाद्विजः ॥१६४॥
विनष्टतेजसं दृष्ट्वा भार्गवं नृपसत्तमाः। साधुसाध्विति काकुत्स्थं प्रशशंसुर्मुहुर्मुहुः॥१६५॥
काकुत्स्थस्तन्महच्चापं गृहीत्वाऽऽरोप्य लीलया ।
सन्धाय बाणं तच्चापे भार्गवं प्राह विस्मितम् ॥१६६॥

दहेज लेकर और उनसे पूजित राजा अपने पुत्रों तथा पुत्र वधुओं के साथ, घोड़े, हाथी और अनुचरों के साथ अयोध्या के लिए चले ॥१५४॥ उनके मार्ग में प्रतापी परशुराम जी फरसा और धनुष लेकर क्रुद्ध सिंह के समान आये ॥१५५॥ राजाओं को मारने वाले वे श्रीराम के साथ युद्ध करने के लिए आये । श्रीराम को देखकर परशुरामजी ने कहा ॥१५६॥ **परशुरामजी बोले**— हे महाबाहो ! श्रीराम आप मेरी बात सुनें । अत्यन्त पराक्रमी अनेक राजाओं को युद्ध में मारकर मैंने पृथिवी को अनेक बार ब्राह्मणों को दान कर दिया । उसके बाद मैं तपस्या करने के लिए चला गया । तुम्हारे पराक्रम और बल को सुनकर तुम्हारे साथ युद्ध करने के लिए आया हूँ ॥१५७-१५८॥ मेरे मातामह के वंश में उत्पन्न इक्ष्वाकु वंशीय मेरे बध्य नहीं हैं किन्तु पराक्रम और क्षत्रिय बल को सुनकर उसे मैं बर्दास्त नहीं कर सकता हूँ । अतएव हे वदान्य ! आप मेरे साथ युद्ध करें ॥१५९-१६०॥ हे अरिन्दम यह भगवान् विष्णु का धनुष हैं । तुम अपने पराक्रम से चढ़ा दो तो इतने मात्र से मैं तुमसे पराजित अपने को मान लूँगा ॥१६१॥ अथवा बलवान् मेरे समय तुम शस्त्रों का परित्याग कर दो । हे काकुत्स्थ ! यदि तुम कायर हो तो फिर शरणागत हो जाओ ॥१६२॥ **ईश्वर ने कहा**— इस तरह परशुरामजी के कहने पर प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी ने उनके उस धनुष को लिया और उनकी वैष्णवी शक्ति को भी ले लिया ॥१६३॥ उस समय प्रतापी परशुरामजी शक्ति से विहीन हो गये । वे कर्महीन ब्राह्मण के समान पराक्रम हीन और तेजहीन हो गये ॥१६४॥ तेज रहित परशुरामजी को देखकर राजश्रेष्ठ ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा इस तरह श्रीरामचन्द्रजी को कहे ॥१६५॥

राम उवाच

अनेन शरमुख्येण किंकर्त्तव्यं मया द्विज !। छेद्मि लोकद्वयं चापि स्वर्गंवाहन्मि तेद्विज ॥१६७॥

ईश्वर उवाच

तं दृष्ट्वा घोरसङ्काशं बाणं रामस्य भार्गवः ।
ज्ञात्वा तं परमात्मानं प्रहृष्टो राममब्रवीत् ॥१६८॥

परशुराम उवाच

रामराममहाबाहो ! न वेद्मित्वां सनातनम्। जानाम्यद्यैव काकुत्स्थ ! तववीर्यगुणादिभिः॥१६९॥
त्वमादिपुरुषः साक्षात्परं ब्रह्मपरोऽव्ययः। त्वमनन्तो महाविष्णुर्वासुदेवः परात्परः ॥१७०॥
नारायणस्त्वं श्रीशस्त्वमीश्वरस्त्वं त्रयीमयः। त्वं कालस्त्वं जगत्सर्वमकाराख्यस्त्वमेव च ॥१७१॥
स्रष्टा धाता च संहर्त्ता त्वमेव परमेश्वरः । त्वमचिन्त्यो महद्भूतं विश्वरूपस्त्वणुर्महान्॥१७२॥
चतुः षट्पञ्चगुणवांस्त्वमेव पुरुषोत्तमः। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारस्त्रयीमयः ॥१७३॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्वं गुणभृन्निर्गुणः परः। स्तोतुं त्वाहमशक्तश्च वेदानामप्यगोचरम्॥१७४॥

यच्चाऽपमानंकृतवांस्त्वां युयुत्सुतया प्रभो ! ।
तत्क्षन्तव्यं त्वया नाथ ! कृपया केवलेन तु ॥१७५॥
तव शक्त्या नृपान्सर्वाञ्जित्वा दत्त्वा महीं द्विजान् ।
त्वत्प्रसादवशादेव शान्तिमाप्नोमि नैष्ठिकीम् ॥१७६॥

ईश्वर उवाच

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं जामदग्न्यो महातपाः ।
परिणीय नमस्कृत्य राघवंलोकरक्षकम् ॥१७७॥

श्रीरामचन्द्रजी उस महान् धनुष को लीला पूर्वक चढा दिए। उस धनुष पर बाण का सन्धान करके विस्मित परशुरामजी से कहे ॥१६६॥ **श्रीरामजी ने कहा—** हे द्विज ! इस मुख्यबाण से मैं क्या करूँ ? आपके दोनों लोकों को विनष्ट कर दूँ अथवा अपके स्वर्ग को विनष्ट कर दूँ ॥१६७॥ **ईश्वर ने कहा—** श्रीरामचन्द्रजी के अत्यन्त भयङ्कर उस बाण को देखकर परशुरामजी ने उनको परमात्मा जानकर प्रसन्न होकर कहे ॥१६८॥ **परशुरामजी बोले—** हे महाबाहो श्रीराम ! मैं आपको सनातन नहीं जानता था। काकुत्स्थ आज ही मैंने आपको पराक्रम और गुणों आदि के द्वारा जाना ॥१६९॥ आप साक्षत् आदि पुरुष हैं और अव्यय परब्रह्म हैं। आप ही अनन्त, महाविष्णु, परात्पर वासुदेव हैं ॥१७०॥ आपही नारायण, लक्ष्मीपति, और त्रयीमय ईश्वर हैं। आप काल है, सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं, अकार वाच्य भी आप ही हैं ॥१७१॥ आप ही सृष्टि करने वाले संहार करने वाले तथा परमेश्वर हैं। आप अचिन्त्य, अणु, महान् तथा सम्पूर्ण जगत् शरीरक हैं ॥१७२॥ चार, छह और पाँच गुण वाले आप ही पुरुषोत्तम हैं। आप ही यज्ञ, वषट्कार तथा त्रयीमय ओङ्कार हैं ॥१७३॥ आप व्यक्त स्वरूप तथा अव्यक्त स्वरूप हैं। आप गुणों से सम्पन्न और निर्गुण हैं। वेदों के भी अविषयभूत आपका वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ ॥१७४॥ हे प्रभो ! युद्ध करने की इच्छा से मैंने जो आपका अपमान किया है हे नाथ ! केवल कृपा करके आप उसे क्षमा कर दें ॥१७५॥ आपकी ही शक्ति से सभी राजाओं से पृथिवी को जीतकर मैंने ब्राह्मणों को दान दिया है। अव आपकी ही कृपा

शतक्रतुकृतं स्वर्गं तदस्त्राय न्यवेदयत्। राघवोऽथ महातेजा ववन्दे तं महामुनिम् ॥१७८॥
विधिवत्पूजयामास पाद्यार्घ्याचमनादिभिः। तेन सम्पूजितस्तत्र जामदग्न्यो महातपाः ॥१७९॥
तपस्तप्तुं ययौ रम्यं नरनारायणाश्रमम्। राजा दशरथः सोऽथ पुत्रैर्दारसमन्वितैः ॥१८०॥
स्वां पुरीं सुमुहूर्त्तेन प्रविवेश महाबलः । राघवो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नो भरतस्तथा॥१८१॥
स्वान्स्वान्दारानुपागम्य रेमिरे हृष्टमानसाः । तत्र द्वादशवर्षाणि सीतया सह राघवः ॥१८२॥
रमयामास धर्मात्मा नारायणइव श्रिया । तस्मिन्नेव तु राजाऽथ काले दशरथःसुतम् ॥१८३॥
ज्येष्ठंराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्यामहीपतिः । तस्यभार्याऽथ कैकेयी पुरा दत्तवराप्रिया॥१८४॥
अयाचत नृपश्रेष्ठं भरतस्याऽभिषेचनम्। विवासनं च रामस्य वत्सराणि चतुर्दश ॥१८५॥
स राजा सत्यवचनाद्रामं राज्यादहो सुतम् । विवासयामास तदा दुःखेन हतचेतनः॥१८६॥

शक्तोऽपि राघवस्तस्मिन्राज्यं सन्त्यज्य धर्मतः ।
दशग्रीववधार्थाय पितुर्वचनहेतुना ॥१८७॥

वनं जगाम काकुत्स्थो लक्ष्मणेनच सीतया। राजा पुत्रवियोगार्त्तः शोकेनच ममारसः ॥१८८॥

नियुज्यमानो भरतस्तस्मिन्राज्ये स मन्त्रिभिः ।
नैच्छद्राज्यं स धर्मात्मा सौभ्रात्रमनुदर्शयन् ॥१८९॥

वनमागम्य काकुत्स्थमयाचद्भ्रातरं ततः। रामस्तु पितुरादेशान्नैच्छद्राज्यमरिन्दमः॥१९०॥

से मैं नैष्ठिक शान्ति को प्राप्त कर रहा हूँ ॥१७६॥ **ईश्वर ने कहा—** इस तरह श्रीरामचन्द्रजी को कहकर महातपस्वी परशुरामजी उन लोकों की रक्षा करने वाले श्रीरामचन्द्रजी की प्रदक्षिणा और नमस्कार करके इन्द्र के द्वारा रचित स्वर्ग और उस अस्त्र को उन्होंने उन्हें दे दिया । उसके बाद महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी उन मुनि की वन्दना किए ॥१७७-१७८॥ उन्होंने उनकी पाद्य, अर्घ्य तथा अर्चना आदि से सविधि पूजा की। उनके द्वारा वहाँ पर पूजित होकर श्रीपरशुरामजी ॥१७९॥ तपस्या करने के लिए मनोहर वदरिकाश्रम मे चले गये । उसके बाद महाराज दशरथ पत्नियों के साथ अपने पुत्रों को लेकर सुन्दर मुहूर्त में अपनी नगरी में प्रवेश किए । श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ॥१८०-१८२॥ अपनी-अपनी पत्नियों को प्राप्त करके प्रसन्न मन से उनके साथ रमण किए । वहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के साथ बारह वर्षों तक लक्ष्मीजी के साथ नारायण के समान रमण किए । उसी समय महाराज दशरथ अपने पुत्र को देखकर ॥१८३॥ अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को प्रेम पूर्वक राज्य देने की इच्छा किए । तदनन्तर उनकी प्रिया पत्नी कैकेयी जिनको पहले ही राजा ने वर दिया था ॥१८४॥ उनहोंने राजा से भरत के अभिषेक की याचना की और श्रीराम को चौदह वर्षों के लिए वनवास माँगा ॥१८५॥ सत्यवादी राजा होने के कारण राजा दशरथ अपने पुत्र श्रीराम को राज्य से वन में भेज दिये । उस समय दुःख के कारण हतबुद्धि श्रीरामजी ॥१८६॥ समर्थ होकर भी उस राज्य को छोड़कर धर्मानुसार, पिता के वचन के कारण और रावण को मारने के लिए॥१८७॥ लक्ष्मण तथा सीताजी के साथ वन में चले गये । राजा भी अपने पुत्र के वियोग के कारण दुःखी होकर शोक करते हुए मर गये ॥१८८॥ भरतजी मन्त्रियों के द्वारा उस राज्य पर अभिषिक्त किये जाते हुए भ्रातृप्रेम को प्रदर्शित करते हुए राज्य लेना नहीं चाहे ॥१८९॥ वे उसके बाद वन में आकर अपने बड़े भाई से

स्वपादुके ददौ तस्मै भक्तयासोऽप्यग्रहीत्तथा ।
रामस्य पादुके राज्यमवाप्यभरतःशुभे ! ॥१९१॥

प्रत्यहं गन्धपुष्पैश्च पूजयन्कैकयीसुतः। तपश्चरणयुक्तेन तस्मिंस्तस्थौ नृपोत्तमः॥१९२॥
यावदागमनं तस्य राघवस्य महात्मनः। तावद्व्रतपराः सर्वे बभूवुः पुरवासिनः॥१९३॥
राघवश्चित्रकूटाद्रौ भरद्वाजाश्रमे शुभे। रमयामास वैदेह्या मन्दाकिन्या जले शुभे॥१९४॥
कदाचिदङ्के वैदेह्याः शेते रामो महामनाः। ऐन्द्रिः काकस्समागम्य तस्मिन्नेव चचारह॥१९५॥
स दृष्ट्वा जानकीं तत्र कन्दर्पशरपीडितः। विददार नखैस्तीक्ष्णैः पीनोन्नतपयोधरम् ॥१९६॥

तं दृष्ट्वा वायसं रामः कुशंजग्राह पाणिना ।
ब्रह्मणोऽस्त्रेण संयोज्य चिक्षेप धरणीधरः ॥१९७॥

तत्तृणं घोरसङ्काशं ज्वालारचितविग्रहम् । दृष्ट्वा काकः प्रदुद्राव विमुञ्चन्कातरं स्वरम्॥१९८॥
तं काकं प्रत्यनुययौ रामस्याऽस्त्रंसुदारुणम्। वायसस्त्रिषु लोकेषु बभ्राम भयपीडितः॥१९९॥

यत्र यत्र ययौ काकः शरणार्थी स वायसः ।
तत्र तत्र तदस्त्रन्तु प्रविवेश भयावहम् ॥२००॥

ब्रह्माणमिन्द्रं रुद्रं च यमं वरुणमेव च । शरणार्थी जगामाऽऽशु वायसः शस्त्रपीडितः॥२०१॥
तंदृष्ट्वावायसं सर्वे रुद्राद्या देवदानवाः । न शक्ताः स्मो वयं त्रातुमिति प्राहुर्मनीषिणः॥
अथ प्रोवाच भगवान्ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः ॥२०२॥

ब्रह्मोवाच

भोभोबलिभुजां श्रेष्ठ ! तमेव शरणं व्रज। स एव रक्षकः श्रीमान्सर्वेषां करुणानिधिः॥२०३॥

प्रार्थना किये; किन्तु श्रीराम अपने पिता के आदेश के कारण राज्य लेना नहीं चाहें ॥१९०॥ उन्होंने भरतजी को अपनी चरणपादुकाओं को प्रदान कर दिया वे भी उसे भक्ति पूर्वक स्वीकार कर लिए । श्रीरामजी की पादुकाओं को भरत ने सिंहासन पर स्थापित कर दिया ॥१९१॥ प्रतिदिन चन्दन और पुष्पों से उन दोनों पादुकाओं की पूजा करते हुए तपस्या करते हुए भरतजी अयोध्या में रहे ॥१९२॥ रामजी के वन में आने के काल तक अयोध्या पुरवासी व्रत परायण रहे ॥१९३॥ श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूट में भरद्वाज आश्रम में जानकीजी के साथ जाह्नवी के जल में क्रीडा करते थे ॥१९४॥ एक बार जानकीजी के गोद में श्रीरामचन्द्रजी सो रहे थे काकवेषधारी इन्द्र का पुत्र वहीं पर आकर विचरण करने लगा ॥१९५॥ वह जानकीजी को देखकर कामार्त हो गया । उसने अपने तीक्ष्ण नखों से जानकीजी के मोटे और उठे हुए स्तनों को चीर दिया ॥१९६॥ उस कौए को देखकर श्रीरामचन्द्रजी अपने हाथ में कुश ले लिए और उसको ब्रह्मास्त्र से संयुक्त करके श्रीभगवान् उसे फेकों ॥१९७॥ वह तृण भयङ्कर ज्वाला से युक्त हो गया उसको देखकर वह कौआ आर्त स्वर करता हुआ वहाँ से भाग चला ॥१९८॥ कौए के पीछे श्रीरामजी का वह भयङ्कर अस्त्र चलता गया । वह कौआ भयभीत होकर तीनों लोकों में घूमा ॥१९९॥ रक्षक प्राप्त करने के लिए वह कौआ जहाँ-जहाँ गया वहाँ-वहाँ भयङ्कर अस्त्र चलता गया ॥२००॥ ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, यम तथा वरुण के पास वह शरणार्थी काक गया क्योंकि वह शस्त्र से भयभीत था ॥२०१॥ उसको देखकर मनीषी रुद्र देवता

रक्षत्येव क्षमासारो वत्सलश्शरणागतान्। ईश्वरः सर्वभूतानां सौशील्यादिगुणान्वितः ॥२०४॥
रक्षिता जीवलोकस्य पितामातासखासुहृत् । शरणं व्रज देवेशं नान्यत्र शरणं द्विज ! ॥२०५॥

महादेव उवाच

इत्युक्तस्तेन बलिभुग्ब्रह्मणा रघुनन्दनम्। उपेत्य सहसा भूमौ निपपात भयातुरः ॥२०६॥
प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताऽथ वायसम्। त्राहित्राहीति भर्तारमुवाच विनयाद्विभुम्॥२०७॥
पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसं तदा। तच्छिरःपादयोस्तस्य योजयामास जानकी ॥२०८॥
समुत्थाप्य करेणाऽथ कृपापीयूषसागरः। ररक्ष रामो गुणवान्वायसं दययाऽर्दितः ॥२०९॥
तमाह वायसं रामो माभैरिति दयानिधिः। अभयन्तेप्रदास्यामि गच्छगच्छयथासुखम् ॥२१०॥
प्रणम्य राघवायाऽथ सीतायैच मुहुर्मुहुः। स्वर्ल्लोकं प्रययावाशु राघवेण च रक्षितः ॥२११॥
ततो रामस्तु वैदेह्या लक्ष्मणेन च धीमता। उवास चित्रकूटाद्रौ स्तूयमानो महर्षिभिः ॥२१२॥
तस्मिन्सम्पूज्यमानस्तु भरद्वाजेन राघवः। जगामात्रेस्सुविपुलमाश्रमं रघुसत्तमः ॥२१३॥
समागतं रघुवरं दृष्ट्वा मुनिवरोत्तमः। भार्यया सह धर्मात्मा प्रत्युद्गम्य मुदा युतः ॥२१४॥
आसने सुशुभे मुख्ये निवेश्यसह सीतया। अर्घ्यं पाद्यंतथाऽचामंवस्त्राणिविविधानिच ॥२१५॥
मधुपर्कं ददौ प्रीत्या भूषणं चाऽनुलेपनम्। तस्य पत्न्यनसूया तु दिव्याम्बरमनुत्तमम्॥२१६॥

और दानव कहे कि हमलोग रक्षा करने में समर्थ नहीं है । उसके पश्चात् त्रैलोक्य के स्वामी ब्रह्माजी ने कहा॥२०२॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे श्रेष्ठ काक ! तुम उनकी ही शरण में जाओ । वे करुणा सागर ही सबों की रक्षा करने वाले हैं ॥२०३॥ वे शरणागत वत्सल ही तुम्हारी रक्षा करेंगे । वे सभी जीवों के नियामक और सौशील्य आदि गुणों से परिपूर्ण हैं ॥२०४॥ वे सम्पूर्ण जीवों के रक्षक पिता, माता, सुहृत तथा सखा हैं । हे काक ! उन्हीं देवेश के शरण में जाओ दूसरी जगह कहीं भी तुम्हारा कोई रक्षक नहीं हैं ॥२०५॥ **महादेवजी ने कहा—** इस तरह ब्रह्माजी के द्वारा कहे जाने पर वह कौआ भगवान् श्रीराम के पास आकर भयभीत होकर सहसा पृथिवी पर गिर पड़ा ॥२०६॥ कौए को मरणासन्न देखकर जानकीजी विनय पूर्वक श्रीरामजी से कहीं, इसकी रक्षा कीजिए, इसकी रक्षा कीजिए ॥२०७॥ सामने कौए को पृथिवी पर गिरा हुआ देखकर उसके शिर को वे श्रीरामजी के चरणों से लगा दीं ॥२०८॥ उसके पश्चात् कृपा रूपी अमृत के सागर गुणवान् श्रीरामजी ने उस कौए की रक्षा की ॥२०९॥ उस कौए से दयासागर भगवान् राम ने कहा तुमको मैं अभय प्रदान करता हूँ जहाँ मन हो वहाँ जाओ ॥२१०॥ उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी को तथा सीताजी को बार-बार प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजी से रक्षित होकर वह शीघ्र स्वर्गलोक चला गया॥२११॥ उसके बाद श्रीरामजी जानकीजी तथा लक्ष्मणजी के साथ महर्षियों द्वारा स्तुति किए जाते हुए चित्रकूट पर्वत पर सुख पूर्वक निवास किए ॥२१२॥ वहाँ पर भरद्वाज महर्षि से पूजित होते हुए श्रीरामचन्द्रजी महर्षि अत्रि के विस्तृत आश्रम में गये ॥२१३॥ आये हुए श्रीरामचन्द्रजी को देखकर मुनियों में श्रेष्ठ वे अपनी पत्नी के साथ प्रसन्नता पूर्वक उनकी आगवानी किए ॥२१४॥ सुन्दर आसन पर सीताजी के साथ श्रीरामजी को बैठाकर, अर्घ्य, पाद्य, आचमन तथा अनेक प्रकार के वस्त्रों को प्रदान किए ॥२१५॥ उन्होंने प्रेमपूर्वक मधुपर्क प्रदान करके भूषण तथा चन्दन दिया । उनकी पत्नी अनसूया सर्वश्रेष्ठ दिव्य वस्त्र और चमकते हुए

सीतायै प्रददौ प्रीत्या भूषणानि द्युमन्तिच। दिव्यान्नपानभक्ष्याद्यैर्भोजयामासराघवम् ॥२१७॥
तेन सम्पूजितस्तत्र भक्त्या परमया नृपः। उवास दिवसं तत्र प्रीत्या रामस्सलक्ष्मणः॥२१८॥
प्रभाते विमले रामः समुत्थाय महामुनिम् । परिणीय प्रणम्याऽथ गमनायोपचक्रमे॥२१९॥
अनुज्ञातस्ततस्तेन रामो राजीवलोचनः। प्रययौ दण्डकारण्यं महर्षिकुलसङ्कुलम्॥२२०॥
तत्राऽतिभीषणं घोरं विराधं नाम राक्षसम्। हत्वाऽथ शरभङ्गस्य प्रविवेशाऽऽश्रमं शुभम्॥२२१॥
स तु दृष्ट्वाऽथ काकुत्स्थं सद्यःसंक्षीणकल्मषः ।
प्रययौ ब्रह्मलोकं तु गन्धर्वाप्सरसान्वितम् ॥२२२॥
सुतीक्ष्णस्याऽप्यगस्त्यस्यह्यगस्त्यभ्रातुरेवच । क्रमेण प्रययौ रामस्तैश्चसंपूजिस्तथा ॥२२३॥
पञ्चवट्यां ततो रामो गोदावर्यास्तटे शुभे। उवाच सुचिरं कालं सुखेन परमेण च॥२२४॥
तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठास्तापसा धर्मचारिणः। पूजयामासुरात्मेशं रामं राजीवलोचनम्॥२२५॥
भयं विज्ञापयामासुस्तस्य रक्षोगणोत्थितम् ।
तानाश्वास्य तु काकुत्स्थो ददौ चाऽभयदक्षिणाम् ॥२२६॥
ते तु सम्पूजितास्तेन स्वाश्रमान्सम्प्रपेदिरे। तस्मिंस्त्रयोदशाब्दानि रामस्य परिनिर्ययुः॥२२७॥
गोदावर्यास्तटे रम्ये पञ्चवट्यां मनोरमे। कस्यचित्त्वथ कालस्य राक्षसी घोररूपिणी॥२२८॥
रावणस्य स्वसा तत्र प्रविवेश दुरासदा। सा तु दृष्ट्वा रघुवरंकोटिकन्दर्पसन्निभम्॥२२९॥
इन्दीवरदलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम्। प्रोन्नतासं महाबाहुं कम्बुग्रीवं महाहनुम्॥२३०॥

आभूषण प्रदान की । उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को दिव्य, अन्न, जल तथा भक्ष्य पदार्थों से भोजन कराया ॥२१६-२१७॥ वहाँ पर उनके द्वारा अत्यन्त भक्ति पूर्वक पूजित होकर श्रीरामजी प्रेम पूर्वक लक्ष्मणजी के साथ एक दिन निवास किए ॥२१८॥ स्वच्छ प्रातकाल होने पर श्रीरामजी उठकर महामुनि की परिक्रमा तथा प्रणाम करके जाने के लिए तैयार हुए ॥२१९॥ महर्षि के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके राजीव लोचन रामजी महर्षि समूह के द्वारा सेवित दण्डकारण्य में गये ॥२२०॥ वहाँ पर अत्यन्त भयङ्कर विराध नामक राक्षस को मारकर उसके पश्चात् वे शरभङ्ग महर्षि के आश्रम में चले गये ॥२२१॥ वे काकुत्सथ भगवान् को देखकर निश्कल्मष होकर गन्धर्वों तथा अप्सराओं से सेवित शीघ्र ही सत्य लोक में चले गये ॥२२२॥ सुतीक्ष्ण, आगस्त्य तथा अगस्त्य महर्षि के भाई के आश्रम में वे क्रमशः गये । तथा उन लोगों के द्वारा पूजित श्रीरामजी पञ्चवटी के शुभ गोदावरी नदी के तट पर दीर्घकाल तक सुख पूर्वक निवास किए॥२२३-२२४॥ वहाँ पर जाकर तपस्वीगण धर्माचरण करने वाले आत्मेश श्रीरामचन्द्रजी की पूजा किए ॥२२५॥ उन्होंने वहाँ राक्षसों से होने वाले भय को भी उनको बतलाया । उन लोगों को आश्वस्त करके श्रीरामचन्द्रजी ने दक्षिणा में उन लोगों को अभय प्रदान किया ॥२२६॥ श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा पूजित होकर वे मुनिगण अपने-अपने आश्रमों में आ गये । उस आश्रम में श्रीरामचन्द्रजी के तेरह वर्ष बीत गये ॥२२७॥ गोदावरी के मनोहर तथा शुभ तट पर एक समय घोर रूप वाली राक्षसी आयी रावण की भयङ्कर बहन थी वही वहाँ आयी । उसने करोड़ों कामदेव के समान नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले एवं कमलदल के समान सुन्दर नेत्र वाले उठी हुयी नाक वाले तथा महाबाहु वाले शङ्ख के समान ग्रीवा वाले, महाहनु से युक्त

सम्पूर्णचन्द्रसदृशसस्मिताननपङ्कजम् । भृङ्गावलिनिभैः स्निग्धैः कुटिलैः शीर्षजैर्वृतम्॥२३१॥
रक्तारविन्दसदृशपद्महस्ततलाङ्कितम् । निष्कलङ्केन्दुसदृशनखपङ्क्तिविराजितम् ॥२३२॥
स्निग्धकोमलदूर्वाभं सौकुमार्यनिधिं शुभम् । पीतकौशेयवसनं सर्वाभरणभूषितम् ॥२३३॥
युवाकुमारवयसं जगन्मोहनविग्रहम् । दृष्ट्वा तं राक्षसी रामं कन्दर्पशरपीडिता ॥
अब्रवीत्समुपेत्याऽथ रामं कमललोचनम् ॥२३४॥

राक्षस्युवाच

कस्त्वं तापसवेषेण वर्त्तसे दण्डकावने। आगतोऽसि किमर्थं च राक्षसानां दुरासदे॥
शीघ्रमाचक्ष्व तत्त्वेन नाऽनृतं वक्तुमर्हसि ॥२३५॥

महेश्वर उवाच

इत्युक्तः स तदा रामः सम्प्रहस्याऽब्रवीद्वचः ॥२३६॥

राम उवाच

राज्ञो दशरथस्याऽहम्पुत्रो रामइतीरितः । असौममाऽनुजोधन्वीलक्ष्मणोनामचाऽनघः ॥२३७॥
पत्नी चेयं च मे सीता जनकस्याऽऽत्मजा प्रिया ।
पितुर्वचननिर्देशादहंवनमिहाऽगतः ॥२३८॥
विचरामो महारण्यमृषीणां हितकाम्यया। आगताऽसि किमर्थं त्वमाश्रमंमम सुन्दरि !॥
का त्वं कस्य कुले जाता सर्वं सत्यं वदस्व मे ॥२३९॥

महेश्वर उवाच

इत्युक्ता सा तु रामेण प्राह वाक्यमशङ्किता ॥२४०॥

राक्षस्युवाच

अहं विश्रवसः पुत्रीं रावणस्य स्वसा नृप ! ।
नाम्ना शूर्पणखानाम त्रिषुलोकेषु विश्रुता ॥२४१॥

सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान मुस्कान से युक्त मुख कमल वाले, भ्रमर समूह क समान चिकने तथा घुंघराले केशों वाले, लाल कमल के समान लाल-लाल हाथ और चरण कमल वाले तथा कलङ्क रहित चन्द्रमा के समान नख पंक्ति से सुशोभित ॥२२८-२३२॥ चिकने दुर्वा दल के समान कान्ति वाले सौकुमार्य के सागर, पीताम्वरधारी तथा सभी आभरणों से भूषित, युवा तथा कुमारावस्था वाले एवं जगत् को मोहित कर देने वाले शरीर वाले श्रीरामचन्द्र को देखकर कामार्त हो गयी । वह श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर कही ॥२३३-२३४॥ **राक्षसी ने कहा**— तुम कौन हो और तपस्वी के वेष में दण्डकारण्य में रहते हो। राक्षस आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते हैं । तुम किसलिए यहाँ आये हो ? यह मुझे शीघ्र बतलाओ॥२३५॥ **महेश्वर ने कहा**— इस तरह से कहने पर श्रीरामजी जोर से हँसकर कहे ॥२३६॥ **श्रीराम ने कहा**— मैं महाराज दशरथ का पुत्र हूँ । ये मेरे लक्ष्मण नाम के अनघ निष्पाप अनुज हैं ॥२३७॥ यह जनक की पुत्री सीता मेरी पत्नी है । पिता के वचन और निर्देश के कारण मैं यहाँ वन में आया हूँ ॥२३८॥ इस महारण्य में मैं ऋषियों का कल्याण करने के लिए विचरण करता हूँ । हे सुन्दरि ! तुम मेरे आश्रम में क्यों आयी हो ? तुम कौन हो ? किसके वंश में उत्पन्न हुयी हो मुझको सत्य बतलाओ ॥२३९॥ **महेश्वर ने कहा**—

इदं च दण्डकारण्यं भ्रात्रा दत्तं मम प्रभो ! ।
भक्षयन्त्यृषिसङ्घान्वै विचरामि महावने ॥२४२॥
त्वां तु दृष्ट्वा मुनिवरं कन्दर्पशरपीडिता । रन्तुकामात्वयासार्धमागताऽस्मिसुनिर्भया ॥२४३॥
मम त्वं नृपशार्दूल ! भर्ताभवितुमर्हसि । इमां तव सतीं सीतां भक्षयिष्यामि पार्थिव !॥२४४॥
वनेषु गिरिमुख्येषु विचरामि त्वया सह ॥२४५॥

महेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा राक्षसीं सीतां ग्रसितं वीक्ष्य चोद्यताम् ।
श्रीरामः खङ्गमुद्यम्य नासाकर्णौ प्रचिच्छिदे ॥२४६॥
रुदन्ती सभयं शीघ्रं राक्षसीविकृतानना । खरालयं प्रविश्याऽऽह तस्य रामस्यचेष्टितम्॥२४७॥
स तु राक्षससाहस्रैर्दूषणत्रिशिरोवृतः । आजगाम भृशं योद्धुं राघवं शत्रुसूदनम् ॥२४८॥
तान्रामः कानने घोरे बाणैःकालान्तकोपमैः ।
निजघानमहाकायान्राक्षसांस्तत्रलीलया ॥२४९॥
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं तु महाबलम्। रणे निपातयामास बाणैराशीविषोपमैः ॥२५०॥
निहत्य राक्षसान्सर्वान्दण्डकारण्यवासिनः । पूजितः सुरसङ्घैश्चस्तूयमानोमहर्षिभिः ॥२५१॥
उवास दण्डकारण्ये सीतया लक्ष्मणेन च । राक्षसानांवधं श्रुत्वारावणःक्रोधमूर्च्छितः ॥२५२॥
आजगाम जनस्थानं मारीचेन दुरात्मना । सम्प्राप्य पञ्चवट्यां तु दशग्रीवः स राक्षसः॥२५३॥
मायाविना मारीचेन मृगरूपेण राक्षसः । अपहृत्याऽऽश्रमाद्दूरे तौ तु दशरथात्मजौ॥२५४॥

इस तरह से श्रीराम के द्वारा कहे जाने पर वह बिना किसी भय के निःशङ्क होकर बोली ॥२४०॥ **राक्षसी ने कहा—** मैं विश्रवा की पुत्री हूँ तथा रावण की बहन हूँ। तीनों लोकों में विख्यात मेरा नाम सूर्पणखा है ॥२४१॥ यह दण्डकारण्य है, इसे मेरे भाई ने मुझे दे दिया है। ऋषि समूह को खाती हुयी मैं इस महावन में विचरण करती हूँ ॥२४२॥ तुम मुनिश्वर को देखकर मैं कामार्त हो गयी हूँ। अतएव तुम्हारे साथ रमण करने की इच्छा से यहाँ निर्भय होकर मैं आयी हूँ। हे नृपश्रेष्ठ ! तुम मेरे पति हो जाओ। राजन् ! मैं तुम्हारी इस पत्नी सीता को खा लेती हूँ। वन में तथा प्रधान पर्वतों पर मैं तुम्हारे साथ विचरण करूँगी ॥२४३-२४५॥ **महेश्वर ने कहा—** इस तरह से सीताजी को खाने के लिए उद्यत होती हुयी उस राक्षसी को देखकर श्रीराम खड्ग उठाकर उसके नाक और कान को काट लिए ॥२४६॥ भयभीत होकर रोती हुयी वह विकृत राक्षसी खर के घर जाकर राम की चेष्टाओं को वतलायी ॥२४७॥ वह खर हजारों राक्षसों को लेकर दूषण और त्रिशिरा आदि के साथ श्रीराम से युद्ध करने के लिए शत्रुओं को मारने वाले श्रीराम के पास आया ॥२४८॥ श्रीरामचन्द्रजी काल के समान भयङ्कर वाणों से बिना किसी प्रयास के ही उन बड़े-बड़े आकार वाले राक्षसों को मार डाले ॥२४९॥ खर, त्रिशिरा तथा महावलवान् दूषण को युद्ध में सर्पों के समान बाणों से मार डाले। सभी राक्षसों को मारकर दण्डकारण्य में रहने वाले देव समूह के द्वारा तथा महर्षियों के द्वारा पूजित होकर सीता और लक्ष्मणजी के साथ दण्डकारण्य में रहने लगे। राक्षसों का वध सुनकर क्रुद्ध होकर रावण जन स्थान में दुष्ट मारीच के साथ दण्डकारण्य में आया। पञ्चवटी में आकर वह रावण ॥२५०-२५३॥ मायावी तथा मृगरूप धारी मारीच के द्वारा वह रावण उस आश्रम से

जहार सीतां रामस्य भार्यां स्ववधकाङ्क्षया ।
ह्रियमाणां तु तां दृष्ट्वा जटायुर्गृध्रराड्बली ॥२५५॥
रामस्य सौहृदात्तत्र युयुधे तेन रक्षसा । तं हत्वा बाहुवीर्येण रावणः शत्रुचारणः॥२५६॥
प्रविवेश पुरीं लङ्कां राक्षसैर्बहुभिर्वृताम् । अशोकवनिकामध्ये निक्षिप्य जनकात्मजाम् ॥२५७॥
निधनं रामबाणेन काङ्क्षन्स्वगृहमाविशत् । रामस्तु राक्षसं हत्वा मारीचं मृगरूपिणम् ॥२५८॥
पुनराविश्य तत्राऽथ भ्रात्रासौमित्रिणाततः । राक्षसापहृतां भार्यांज्ञात्वा दशरथात्मजः ॥२५९॥
प्रभूतशोकसन्तप्तो विललाप महामतिः । मार्गमाणो वने सीतां पथि गृध्रं महाबलम् ॥२६०॥
विच्छिन्नपादपक्षं च पतितं धरणीतले । रुधिरापूर्णसर्वाङ्गं दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥२६१॥
पप्रच्छ राघवः श्रीमान्केन किं त्वं जिघासितः ।
गृध्रस्तु राघवं दृष्ट्वा मन्दम्मन्दमुवाच ह ॥२६२॥

गृध्र उवाच

रावणेन हृता राम ! तव भार्या बलीयसा । तेन राक्षसमुख्येन सङ्ग्रामेनिहतोऽस्म्यहम् ॥२६३॥

महेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा राघवस्याग्रे सोऽभवत्त्यक्तजीवितः ।
संस्कारमकरोद्रामस्तस्य ब्रह्मविधानतः ॥२६४॥
स्वपदं च ददौ तस्मै योगिगम्यं सनातनम् । राघवस्य प्रसादेन स गृध्रः परमम्पदम् ॥२६५॥
हरेः सामान्यरूपेण मुक्तिं प्राप खगोत्तमः । माल्यवन्तं ततो गत्वामतङ्गस्याऽऽश्रमेशुभे ॥२६६॥

दूर रामजी और लक्ष्मणजी को ले जाकर ॥२५४॥ श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी सीताजी का अपना वध कराने के लिए अपहरण कर लिया । ले जायी जाती हुयी सीता को देखकर बलवान् गृध्रराज जटायु ॥२५५॥ राम के साथ मित्रता होने के कारण उस राक्षस के साथ युद्ध किए । अपनी भुजाओं के पराक्रम से शत्रु को मारने वाला रावण जटायु को मारकर ॥२५६॥ बहुत से राक्षसों से भरी हुयी अपनी नगरी लङ्का में चला गया । अशोक वन में सीताजी को रखकर श्रीराम के बाणों से अपना वध चाहते हुए अपने घर में चला गया । श्रीरामचन्द्रजी मृगरूप धारी मारीच को मारकर ॥२५७-२५८॥ फिर अपने आश्रम में अपने भाई लक्ष्मण के साथ आये । राक्षस के द्वारा अपहृत अपनी पत्नी को जान कर श्रीरामचन्द्रजी ॥२५९॥ शोक के कारण अत्यन्त संतप्त होकर विलाप करने लगे । सीताजी को खोजते हुए रास्ते में महाबलवान् कटे हुए पैर और पङ्ख वाले तथा पृथिवी पर गिरे हुए, जिनका सारा अङ्ग रुधिर से भिंगा हुआ था ऐसे महाबलवान् गृध्र को देखे । उसे देखकर वे आश्चर्यित हो गये ॥२६०-२६१॥ श्रीरामचन्द्रजी ने उससे पूछा कि किसने और किस लिए तुमको मारा है । श्रीरामजी को देखकर गृध्र धीरे-धीरे कहा ॥२६२॥ **गृध्र ने कहा—** हे राम ! बलवान् रावण ने आपकी पत्नी सीता का अपहरण किया है । उस राक्षस राज के द्वारा मैं युद्ध में मारा गया हूँ ॥२६३॥ **महेश्वर ने कहा—** श्रीराम के समक्ष यह कहकर वह गृध्र मर गया श्रीराम चन्द्रजी ने उसका दाह संस्कार ब्रह्ममेध विधि से किया ॥२६४॥ उन्होंने योगियों का प्राप्त होने वाले अपने लोक को उसे प्रदान किया । श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से वह गृध्र परम्पद में श्रीहरि के साम्य को प्राप्त कर लिया और उत्तम मुक्ति को प्राप्त कर लिया । वहाँ से श्रीरामजी माल्यवान् पर्वत पर जाकर महर्षि मतङ्ग

अभ्यगच्छन्महाभागां शबरीं धर्मचारिणीम् । सा तु भागवतश्रेष्ठा दृष्ट्वा तो रामलक्ष्मणौ॥२६७॥
प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य निवेश्यकुशविष्टरे । पादप्रक्षालनं कृत्वा वन्यैः पुष्पैः सुगन्धिभिः॥२६८॥
अर्चयामास भक्तया वै हर्षनिर्भरमानसा । फलानि च सुगन्धीनि मूलानि मधुराणि च॥२६९॥
निवेदयामास तदा राघवाभ्यांदृढव्रता । फलान्यास्वाद्य काकुत्स्थस्तस्यैमुक्तिंददौपराम्॥२७०॥
ततः क्रौञ्चवटीं गत्वा राघवः शत्रुसदूनः । जघान राक्षसं तत्र कबन्धं घोररूपिणम् ॥२७१॥
तं निहत्य महावीर्यो ददाह स्वर्गतश्च सः । ततो गोदावरीं गत्वा रामो राजीवलोचनः॥२७२॥

पप्रच्छ सीतां गङ्गे ! त्वं कि तां जानासि मे प्रियाम् ।
न शशंस तदा तस्मै सा गङ्गा तमसावृता ॥२७३॥
शशाप राघवः क्रोधाद्रक्ततोया भवेति ताम् ।
ततो भयात्समुद्विग्ना पुरस्कृत्यमहामुनीन् ॥२७४॥

कृताञ्जलिपुटा दीना राघवं शरणं गता । ततो महर्षयस्सर्वे रामं प्राहुस्सनातनम्॥२७५॥

ऋषयऊचुः

त्वत्पादकमलोद्भूता गङ्गात्रैलोक्यपावनी । त्वमेव हि जगन्नाथ तां शापान्मोक्तुमर्हसि ॥२७६॥

महेश्वर उवाच

ततः प्रोवाच धर्मात्मा रामः शरणवत्सलः ॥२७७॥

राम उवाच

शबर्याः स्नानमात्रेण सङ्गता शुभवारिणा । मुक्ता भवतु मच्छापाद्गङ्गेयं पापनाशिनी॥२७८॥

के शुभ आश्रम में गये ॥२६५-२६६॥ वे महाभाग शबरी के आश्रम में गये । भागवत श्रेष्ठ वह श्रीराम लक्ष्मण को देखकर आगे से आकर उनको प्रणाम करके कुश के आसन पर उन्हें बैठायी । उनके दोनों चरणों को धोकर वनैले तथा सुगन्धित पुष्पों से ॥२६७-२६८॥ हर्ष से परिपूर्ण मन से उसने भक्ति पूर्वक पूजा की और सुगन्धित फलों और मधुर मूलों को ॥२६९॥ उन दोनों राम और लक्ष्मण को प्रदान की । उन फलों को खाकर श्रीरामजी ने उसको मुक्ति प्रदान किया ॥२७०॥ वहाँ से शत्रुओं को मारने वाले श्रीरामजी क्रौञ्चबती जाकर वहाँ भयङ्कर रूप वाले कबन्ध का वध किए ॥२७१॥ उसको मारकर श्रीराम ने उसको जला दिया जिसके कारण वह स्वर्ग चला गया । उसके बाद गोदावरी के तट पर राजीव लोचन श्रीरामचन्द्रजी ॥२७२॥ पूछे कि हे गङ्गे ! तुम मेरी प्रिया को जानती हो क्या ? तमोगुण व्याप्त वह गङ्गा उनसे कुछ नही बोली ॥२७३॥ उसके कारण श्रीरामचन्द्रजी ने उसको शाप दे दिया कि तुम लाल जलवाली हो जाओ । उसके पश्चात् भय से उद्विग्न होकर तथा मुनियों को आगे करके ॥२७४॥ हाथ जोड़कर दीन बनी हुयी गोदावरी श्रीरामचन्द्रजी की शरणागति की । उसके पश्चात् सभी महर्षिगण सनातन श्रीराम से कहे॥२७५॥ **ऋषियों ने कहा—** आपके चरणों से उद्भूत गङ्गा त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली है । आप जगत् के स्वामी हैं अतएव इसको आप शाप से मुक्त कर दें ॥२७६॥ **महेश्वर ने कहा—** उसके पाश्चात् धर्मात्मा एवं शरणागत वत्सल श्रीरामचन्द्रजी कहे ॥२७७॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** शबरी के स्नान करने मात्र से उसके द्वारा स्पृष्ट शुभजल ये सह पापनाशिनी गङ्गा मेरे शाप से मुक्त हो जाय ॥२७८॥ इस

एवमुत्तवा तु काकुत्स्थः शबरीतीर्थमुत्तमम्। गङ्गया सङ्गतं चक्रेशार्ङ्गकोट्यामहाबलः ॥२७९॥
महाभागवतानां च तीर्थं यस्योदरेऽभवत्। तच्छरीरं जगद्वन्द्यंभविष्यति न संशयः ॥२८०॥
एवमुत्तवा तु काकुत्स्थ ऋष्यमूकं गिरिं ययौ ।
ततः पम्पासरस्तीरे वानरेण हनूमता ॥२८१॥
संगतस्तस्य वचनात्सुग्रीवेण समागतः। सुग्रीववचनाद्धत्वा बालिनं वानरेश्वरम् ॥२८२॥
सुग्रीवमेव तद्राज्ये रामोऽसावभ्यषेचयत्। स तु सम्प्रेषयामासदिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥२८३॥
हनुमत्प्रमुखान्वीरान्वानरान्वानराधिपः । स लङ्घयित्वा जलधिं हनूमान्मारुतात्मजः ॥२८४॥
प्रविश्य नगरीं लङ्कां दृष्ट्वा सीतां दृढव्रताम् ।
उपवासकृशांदीनांभृशंशोकपरायणाम् ॥२८५॥
मलपङ्केनदिग्धाङ्गीं मलिनाम्बरधारिणीम्। निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिंच निवेद्यताम् ॥२८६॥
सप्तमन्त्रिसुतांस्तत्र रावणस्य सुतन्तथा। तोरणास्तम्भमुत्पाट्य निजघान स्वयं कपिः ॥२८७॥
समाश्वास्यच वैदेहीं बभञ्जोपवनं तदा। वनपालान्किङ्करांश्च पञ्चसेनाग्रनायकान् ॥२८८॥
रावणस्य सुतेनाऽथ निगृहीतो यदृच्छया। दृष्ट्वा च राक्षसेन्द्रन्तु सम्भाष्य तु तथैव च॥२८९॥
ददाह नगरीं लङ्कां स्वलाङ्गूलाग्निना कपिः। तया दत्तमभिज्ञानं गृहीत्वा पुनरागमत् ॥२९०॥
सोऽभिगम्य महातेजा रामं कमललोचनम्। न्यवेदयद्वानरेन्द्रो दृष्टा सीतेति तत्त्वतः॥२९१॥
सुग्रीवसहितो रामो वानरैर्बहुभिर्वृतः। महोदधेस्तटं गत्वा तत्राऽनीकं न्यवेशयत्॥२९२॥

तरह से कहकर श्रीरामचन्द्रजी उत्तम शबरी तीर्थ को गङ्गा से अपने धनुष के अग्रभाग को मिला दिए।।२७९॥ जिसके भीतर महाभागवतों का तीर्थ हुआ वह शरीर जगत्वन्द्य होगा इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥२८०॥ इस तरह से कहकर श्रीरामचन्द्रजी ऋष्यमूक पर्वत पर गये । वहाँ पम्पा सरोवर के तट पर हनुमान नामक वानर ॥२८१॥ द्वारा कहे जाने पर वे सुग्रीव से मिले । सुग्रीव के कहने से वानरों के स्वामी बाली को मारकर श्रीरामचन्द्रजी ॥२८२॥ सुग्रीव को ही उसके राज्य पर अभिषिक्त कर दिए । जानकीजी को देखने की इच्छा से सुग्रीव ने ॥२८३॥ हनुमान् आदि वानरों को उनका पता लगाने के लिए भेजा । मारुतात्मज हनुमान्‌जी समुद्र पार करके ॥२८४॥ लङ्का नगरी में प्रवेश करके दृढव्रत करने वाली तथा उपवास करने के कारण दुबली पतली, दीन तथा अत्यधिक शोक संतप्त मलरूपी कीचड़ से मलीन शरीर वाली मलिन वस्त्र को धारण करने वाली सीताजी को देखकर उनको अभिज्ञान प्रदान करके उनको सारा उद्योग बतलाकर ॥२८५-२८६॥ कपि ने मन्त्रियों को सात पुत्रों, तथा रावण के पुत्र अक्षय कुमार को तोरण के स्तम्भ को उखाड़कर मार दिया ॥२८७॥ सीताजी को आश्वासन प्रदान करके उपवन को उन्होंने नष्ट भ्रष्ट कर दिया । वन की रक्षा करने वाले किंकरों तथा सेना के पाँच अग्रनायकों को भी उन्होंने मार दिया॥२८८॥ उसके बाद रावण के पुत्र ने उनको अचानक निगृहीत कर लिया । रावण को देखकर उसके साथ बातें करके॥२८९॥ हनुमानजी ने अपनी पूंछ की अग्नि से लङ्का नगरी को जला दिया । फिर सीताजी के द्वारा दिए गये अभिज्ञान (पहचान) को लेकर वे फिर लौट आये ॥२९०॥ वे महातेजस्वी कमलनयन भगवान श्रीराम के पास जाकर उनसे कहे कि मैंने सीताजी को देख लिया है ॥२९१॥ सुग्रीव के साथ श्रीरामचन्द्रजी

रावणस्याऽनुजोभ्राता विभीषणइतीरितः। धर्मात्मा सत्यसन्धश्च महाभागवतोत्तमः ॥२९३॥
ज्ञात्वा समागतं रामं परित्यज्य स्वपूर्वजम्। राज्यं सुतांश्चदारांश्च राघवं शरणंययौ ॥२९४॥
परिगृह्य च तं रामो मारुतेर्वचनात्प्रभुः। तस्मैदत्त्वाऽभयंसौम्यं रक्षोराज्येऽभ्यषेचयत्॥२९५॥
ततस्समुद्रं काकुत्स्थस्तर्तुकामः प्रपद्य वै। सुप्रसन्नजलं तं तु दृष्ट्वा रामो महाबलः ॥२९६॥
शार्ङ्गमादायबाणोघैः शोषयामास वारिधिम्। ततस्तु सरितामीशः काकुत्स्थं करुणानिधिम्॥२९७॥
प्रपद्य शरणं देवमर्चयामास वारिधिः। पुनरापूर्य जलधिं वरुणास्त्रेण राघवः ॥२९८॥
उदधेर्वचनात्सेतुं सागरे मकरालये। गिरिभिर्वानरानीतैर्नलं सेतुमकारयत् ॥२९९॥
ततो गत्वा पुरींलङ्कां सन्निवेश्य महाबलम्। सम्यगायोधनं चक्रे वानराणांचरक्षसाम् ॥३००॥
ततो दशास्यतनयः शक्रजिद्राक्षसो बली। बबन्ध नागपाशैश्च तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥३०१॥
वैनतेयः समागत्य तान्यस्त्राणि प्रमोचयत्। राक्षसा निहतास्सर्वे वानरैश्च महाबलैः ॥३०२॥
रावणस्याऽनुजं वीरं कुम्भकर्णं महाबलम्। निजघान रणे रामो बाणैरग्निशिखोपमैः ॥३०३॥
ब्रह्मास्त्रेणेन्द्रजित्क्रुद्धः पातयामास वानरान्। हनूमता समानीतो महौषधिमहीधरः ॥३०४॥
तस्यानीतस्य च स्पर्शात्सर्वएव समुत्थिताः। ततो रामानुजो वीरः शक्रजेतारमाहवे ॥३०५॥
निपातयामास शरैर्वृत्रं वज्रधरो यथा। निर्ययावथ पौलस्त्यो योद्धं रामेण संयुगे ॥३०६॥
चतुरङ्गबलैः सार्द्धं मन्त्रिभिश्च महाबलः। समन्ततोऽभवद्युद्धं वानराणांच रक्षसाम् ॥३०७॥
रामरावणयोश्चैव तथा सौमित्रिणा सह। शक्त्या निपातयामास लक्ष्मणं राक्षसेश्वरः ॥३०८॥

अनेक वानरों के साथ महासमुद्र के तट पर जाकर वहाँ सेना को ठहराये ॥२९२॥ रावण का छोटा भाई जिसका नाम विभीषण था वह धर्मात्मा, सत्यवक्ता और उत्तम महाभागवत था ॥२९३॥ वह आये हुए श्रीरामचन्द्रजी को जानकर अपने बड़े भाई को तथा राज्य पुत्र तथा पत्नी का त्याग करके श्रीरामचन्द्रजी के शरण में आये ॥२९४॥ श्रीरामजी हनुमानजी के कहने से उनको अपनाकर उनको अभय प्रदान किए और राक्षस के राजपद पर अभिषिक्त कर दिए ॥२९५॥ उसके बाद समुद्र को पार करने की इच्छा से उन्होंने समुद्र की शरणागति किए। फिर भी स्वच्छ जल वाले समुद्र को देखकर महाबलवान् श्रीराम अपना शार्ङ्ग धनुष उठाकर बाण समूह से समुद्र को सुखाने लगे। उसके बाद समुद्र ने करुणा सागर ने श्रीराम की ॥२९६-२९७॥ शरणागति की। फिर भी राम ने वरुणास्त्र से समुद्र को भर दिया ॥२९८॥ समुद्र के कहने से समुद्र पर वानरों के द्वारा लाये गये पर्वतों से नल ने सेतु का निर्माण किया ॥२९९॥ उसके बाद लङ्कापुरी में जाकर वहाँ सेना को रखकर वानरों और राक्षसों के बीच भयङ्कर युद्ध हुआ ॥३००॥ उसके बाद रावण के पुत्र इन्द्रजीत ने नागपाश से राम और लक्ष्मण को बाँध दिया ॥३०१॥ गरुड़ आकर उनको अस्त्रों से मुक्त किये। महाबलवान् वानरों ने सभी राक्षसों को मार दिया ॥३०२॥ रावण के छोटे भाई कुम्भकर्ण को श्रीरामचन्द्र ने अग्नि शिखा के समान बाणों से मार दिया ॥३०३॥ क्रुद्ध होकर इन्द्रजित् ने ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से वानरों को गिरा दिया। हनुमानजी महौषधियों के पर्वत को लाये ॥३०४॥ उसके स्पर्श मात्र से सबके सब खड़े हो गये। उसके पश्चात् लक्ष्मणजी ने इन्द्रजीत को युद्ध में बाणों से मारकर उसी तरह से गिरा दिया जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर को मार दिया था। उसके पश्चात् रावण श्रीरामचन्द्रजी से युद्ध

ततःक्रुद्धो महातेजा राघवो राक्षसान्तकः। जघान राक्षसान्वीराञ्छरैः कालान्तकोपमैः ॥३०९॥
प्रदीप्तैर्बाणसाहस्रैः कालदण्डोपमैर्भृशम्। छादयामास काकुत्स्थो दशग्रीवंचरक्षसम् ॥३१०॥
स तु निर्भिन्नसर्वाङ्गो राघवास्त्रैर्निशाचरः। भयात्प्रदुद्राव रणाल्लङ्काम्प्रतिनिशाचरः ॥३११॥
जगद्राममयं पश्यन्निर्वेदाद्गृहमाविशत्। ततो हनूमता नीतो महौषधिमहागिरिः ॥३१२॥
तेन रामानुजस्तूर्णं लब्धसञ्ज्ञोऽभवत्तदा। दशग्रीवस्ततो होममारेभे जयकाङ्क्षया॥३१३॥
ध्वंसितं वानरेन्द्रैस्तदभिचारात्मकं रिपोः। पुनर्युद्धाय पौलस्त्यो रामेण सह निर्ययौ॥३१४॥
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य राक्षसैर्बहुभिर्युतः। ततः शतमखो दिव्यं रथं हर्यश्वसंयुतम् ॥३१५॥
राघवाय ससूतं हि प्रेषयामास बुद्धिमान्। रथं मातलिनाऽऽनीतं समारुह्य रघूत्तमः ॥३१६॥
स्तूयमानःसुरगणैर्युयुधे तेन रक्षसा। ततो युद्धमभूद्धोरं रामरावणयोर्महत्॥३१७॥
सप्ताहिकमहोरात्रं शस्त्रास्त्रैरतिभीषणम्। विमानस्थाः सुरास्सर्वे ददृशुस्तत्र संयुगम् ॥३१८॥
दशग्रीवस्य चिच्छेद शिरांसि रघुसत्तमः। समुत्थितानि बहुशो वरदानात्कपर्दिनः ॥३१९॥
ब्राह्ममस्त्रं महारौद्रं वधायाऽस्य दुरात्मनः। ससर्ज राघवस्तूर्णं कालाग्निसदृशप्रभम्॥३२०॥
तदस्त्रं राघवोत्सृष्टंरावणस्य स्तनान्तरम्। विदार्य धरणीं भित्त्वा रसातलतले गतम् ॥३२१॥
सम्पूज्यमानं भुजगैराघवस्य करं ययौ। सगतासुर्महादैत्यः पपात च ममार च ॥३२२॥

करने के लिए ॥३०५-३०६॥ चतुरङ्गिणी सेनाओं और मन्त्रियों के साथ वह निकला राक्षसों और वानरों का भयङ्कर युद्ध हुआ ॥३०७॥ राम और लक्ष्मण के साथ रावण का युद्ध हुआ। रावण ने शक्ति के द्वारा लक्ष्मणजी को मारकर गिरा दिया। उसके बाद क्रुद्ध होकर महातेजस्वी श्रीराम राक्षस वीरों को कालान्तर के समान वाणों से मार दिए ॥३०८-३०९॥ जलते हुए हजारो वाणों से जो कालदण्ड के समान थे उनसे श्रीरामचन्द्रजी ने रावण को ढंक दिया ॥३१०॥ वह राक्षस सम्पूर्ण अङ्गों के राम के अस्त्रों से छिद जाने के कारण भयभीत होकर लङ्का में भाग गया। निर्वेद के कारण सम्पूर्ण जगत् को राममय देखता हुआ वह लङ्का में प्रवेश कर गया ॥३११॥ उसके पश्चात् हनुमानजी द्वारा महौषधि पर्वत लाया गया ॥३१२॥ लक्ष्मणजी शीघ्र ही संज्ञा प्राप्त कर लिए। उसके बाद विजय प्राप्त करने के लिए रावण होम करना प्रारम्भ किया ॥३१३॥ वानरों ने उसके उस अभिचार कर्म को ध्वस्त कर दिया। फिर रावण राम के साथ युद्ध करने के लिए ॥३१४॥ दिव्य रथ पर बैठकर और बहुत अधिक राक्षसों के साथ निकला। उस समय इन्द्र ने हर्यश्व से युक्त दिव्य रथ ॥३१५॥ को सारथि के साथ श्रीरामजी के लिए भेजा। मातलि के द्वारा लाये गये रथ पर बैठकर श्रीरामचन्द्रजी ॥३१६॥ देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए उस राक्षस के साथ युद्ध किए। उसके बाद राम और रावण का भयङ्कर युद्ध हुआ ॥३१७॥ सात दिन तक दिन रात शस्त्रास्त्रों से भयङ्कर युद्ध चलता रहा। विमान पर चढ़े हुए सभी देवता उस युद्ध को देख रहे थे ॥३१८॥ श्रीरामचन्द्रजी ने रावण के शिरों को बहुत बार काट दिया किन्तु शिवजी के वरदान के कारण फिर उसके नए शिर निकल आते थे ॥३१९॥ रावण का वध करने के लिए श्रीरामचन्द्रजी ने कालाग्नि के समान ब्रह्मास्त्र का संधान किया ॥३२०॥ वह अस्त्र रावण के हृदय को छेदकर पृथिवी का भेदन करके रसातल में चला गया॥३२१॥ सर्पों द्वारा श्रीराम के हाथों को पूजित होकर वह रसातल मे चला गया। प्राणों के निकल

ततोदेवगणास्सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । ववृषुः पुष्पवर्षाणि महात्मनि जगद्गुरौ ॥३२३॥
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः । ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः॥३२४॥
तुष्टुवुर्मुनयः सिद्धा देवगन्धर्वकिन्नराः । लङ्कायां राक्षसश्रेष्ठमभिषिच्य विभीषणम् ॥३२५॥
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने रघुकुलोत्तमः । रामस्तत्राऽब्रवीद्वाक्यमभिषिच्यविभीषणम् ॥३२६॥

राम उवाच

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी। यावन्मम कथा लोके तावद्राज्यं विभीषणे॥३२७॥
गत्वा मम पदं दिव्यं योगिगम्यं सनातनम्। सपुत्रपौत्रः सगणः सम्प्राप्नुहिमहाबल ! ॥३२८॥

ईश्वर उवाच

एवं नत्त्वा वरं तस्मै राक्षसाय महाबलः । सम्प्राप्य मैथिलीं तत्र पुरुषं जनसंसदि ॥३२९॥
उवाच राघवः सीतां गर्हितं वचनं बहु । सा तेन गर्हितासाध्वी विवेश चाऽनलं महत्॥३३०॥
ततो देवगणास्सर्वे शिवब्रह्मपुरोगमाः । दृष्ट्वा तु मातरं वह्नौ प्रविशन्तीं भयातुराः॥
समागम्य रघुश्रेष्ठं सर्वे प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥३३१॥

देवाऊचुः

राम ! राम ! महाबाहो ! शृणु त्वं चाऽतिविक्रम ! ।
सीताऽतिविमला साध्वी तव नित्याऽनपायिनी ॥३३२॥
अनन्या हि त्वया सा तु भास्करेण प्रभायथा ।
सेयं लोकहितार्थाय समुत्पन्नामहीतले ॥३३३॥

माता सर्वस्य जगतः समस्तजगदाश्रया । रावणः कुम्भकर्णश्च भृत्यौ पूर्वपरायणौ॥३३४॥

जाने से वह दैत्य गिर पड़ा और मर गया ॥३२२॥ उसके पश्चात् देवताओं ने हर्षित मन से श्रीभगवान् के ऊपर पुष्पों की वर्षा की ॥३२३॥ गन्धर्वों ने गीत गाया और अप्सराओं ने नृत्य किया । पवित्र हवा बहने लगी और सूर्य की प्रभा सुन्दर हो गयी ॥३२४॥ मुनियों, सिद्धों, देवताओं, गन्धर्वों तथा किन्नरों ने स्तुति की । लङ्का में राक्षस श्रेष्ठ विभीषण अभिषिक्त करके ॥३२५॥ रघुकुलोत्तम श्रीरामचन्द्रजी अपने को कृतकृत्य माने । श्रीरामचन्द्रजी वहाँ पर विभीषण को अभिषिक्त करके कहे ॥३२६॥ **रामजी ने कहा—** जब तक सूर्य, चन्द्रमा और पृथिवी हैं । जब तक मेरी कथा संसार में होगी और विभीषण का राज्य होगा॥३२७॥ उसके बाद अपने पुत्रों, पौत्रों और गणों के साथ योगिगम्य मेरे दिव्य धाम में जाकर उसे प्राप्त करेंगे ॥३२८॥ **ईश्वर ने कहा—** इस तरह से विभीषण को वरदान देकर महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजी सीताजी को प्राप्त करके उस जन समूह में उन्होंने उन्हें कठोर वाणी कहा ॥३२९॥ श्रीराम ने सीताजी को बहुत सी निन्दित बातें कहा । उनके द्वारा निन्दित वे साध्वी अग्नि में प्रवेश कर गयीं ॥३३०॥ उसके पश्चात् सभी शिव ब्रह्मा आदि सीता माता को अग्नि में प्रवेश करती हुयी देखकर भयभीत हो गये । सबके सब श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर हाथ जोड़कर कहे ॥३३१॥ **देवताओं ने कहा—** हे अनन्त पराक्रम सम्पन्न महाबाहो आप हमलोगों की बात सुनें सीताजी अत्यन्त विमल हैं और आपसे कभी अलग होने वाली नहीं हैं ॥३३२॥ वे सूर्य की प्रभा के समान आपसे अनन्य हैं लोक कल्याण करने के लिए वे

शापात्तौ सनकादीनां समुत्पन्नौ महीतले। तयोर्विमुक्तये वैदेही गृहीता दण्डके वने ॥३३५॥
तावुभौ वै वधं प्राप्तो त्वया राक्षसपुङ्गवौ। तौ विमुक्तौ दिवं यातौ पुत्रपौत्रसहानुगौ ॥३३६॥

त्वं विष्णुस्त्वं परं ब्रह्म योगिध्येयः सनातनः ।
त्वमेव सर्वदेवानामनादिनिधनोऽव्ययः ॥३३७॥
त्वं हि नारायणः श्रीमान्सीता लक्ष्मीःसनातनी ।
माता सा सर्वलोकानां पिता त्वं परमेश्वर ! ॥३३८॥

नित्यैवैषा जगन्माता तव नित्याऽनपायिनी। यथा सर्वगतस्त्वं हि तथा चेयं रघूत्तम ! ॥३३९॥

तस्माच्छुद्धसमाचारां सीतां साध्वीं दृढव्रताम् ।
गृहाण सौम्य ! काकुत्स्थ ! क्षीराबधेरिव माचिरम् ॥३४०॥

ईश्वर उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र लोकसाक्षी स पावकः। आदाय सीतां रामाय प्रददौ सुरसन्निधौ ॥
अब्रवीत्तत्र काकुत्स्थं वह्निः सर्वशरीरगः ॥३४१॥

वह्निरूवाच

इयंशुद्धसमाचारा सीतानिष्कल्मषाविभो ! । गृहाणमाचिरं राम ! सत्यं सत्यं तथा ब्रवम्॥३४२॥

ईश्वर उवाच

ततोऽग्निवचनात्सीतां परिगृह्य रघूद्वहः। बभूव रामः संहृष्टः पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥३४३॥
राक्षसैर्निहता ये तु सङ्ग्रामे वानरोत्तमाः। पितामहवरात्तूर्णं जीवमानाः समुत्थिताः॥३४४॥
ततस्तु पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसन्निभम्। भ्रात्रा गृहीतं सङ्ग्रामे कौबेरं राक्षसेश्वरः ॥३४५॥

पृथिवी से उत्पन्न हुयीं ॥३३३॥ सम्पूर्ण जगत् की माता जगदाश्रय हैं । रावण और कुम्भकर्ण आपके भक्त पूर्व जन्म में थे ॥३३४॥ वे दोनों सनकादिक के शाप से पृथिवी पर उत्पन्न हुए थे । वे दोनों राक्षस श्रेष्ठ आपके धाम में जाकर उन दोनों को मुक्ति के लिए सीताजी दण्डकारण्य में रावण के द्वारा अपहत हुयीं। मुक्त होकर अपने पुत्रों, पौत्रों तथा अनुचरों के साथ वे दोनों स्वर्ग चले गये ॥३३५-३३६॥ आप योगिध्येय सनातन ब्रह्म भगवान् विष्णु हैं । आप ही सभी देवों में अनादि निधन हैं और अव्यय है ॥३३७॥ आप हीं नारायण हैं और सीताजी सनातनी लक्ष्मी हैं । वे सम्पूर्ण जगत् की माता हैं आप परमेश्वर और जगत् के पिता हैं ॥३३८॥ ये जगत् की माता हैं, आपकी नित्य ही अनपायिनी हैं । हे रघूत्तम जैसे आप सर्व व्यापक हैं वैसे ही ये भी सर्वत्र व्यापक हैं ॥३३९॥ अतएव शुद्ध आचरण वाली दृढव्रता सीताजी साध्वी हैं । हे काकुत्स्थ ! आप इनको क्षीर सागर के समान शीघ्र स्वीकार करें ॥३४०॥ **ईश्वर ने कहा—** उसी समय लोक साक्षी अग्नि सीता को लेकर देवताओं के सामने ही श्रीरामजी को प्रदान किए और उन्होंने श्रीरामजी से सर्वशरीर गत अग्नि ने कहा ॥३४१॥ **अग्नि ने कहा—** हे विभो ! शुद्धाचार वाली ये सीताजी निष्पाप हैं । इनको आप शीघ्र स्वीकार करें यह मैंने परम सत्य कहा है ॥३४२॥ **ईश्वर ने कहा—** उसके बाद अग्नि के कहने से श्रीरामजी सीताजी को स्वीकार करके प्रसन्न हुए और देवताओं ने उनकी पूजा की ॥३४३॥ जिन वानरों को राक्षसों ने मार दिया था वे सब ब्रह्माजी के वरदान से शीघ्र जीवित होकर खड़े हो गये ॥३४४॥ उसके बाद सूर्य के समान कान्तिमान पुष्पक नामक विमान जिसको

तद्राघवाय प्रददौ वस्त्राण्याभरणानि च । तेन सम्पूजितः श्रीमान्रामचन्द्रः प्रतापवान् ॥३४६॥
आरुरोह विमानाग्र्यं वैदेह्या भार्यया सह । लक्ष्मणेन च शूरेण भ्रात्रा दशरथात्मजः ॥३४७॥
ऋक्षवानरसङ्घातैः सुग्रीवेण महात्मना । विभीषणेन शूरेण राक्षसैश्च महाबलैः ॥३४८॥
यथा विमाने वैकुण्ठे नित्यमुक्तैर्महात्मभिः । तथा सर्वैः समारुह्य ऋक्षवानरराक्षसैः ॥३४९॥
अयोध्यांप्रस्थितो रामःस्तूयमानः सुरोत्तमैः । भरद्वाजाश्रमंगत्वा रामः सत्यपराक्रमः ॥३५०॥
भरतस्याऽन्तिकेतत्र हनूमन्तं व्यसर्जयत् । स निषादालयं गत्वागुहं दृष्ट्वाऽथ वैष्णवम्॥३५१॥
राघवागनमं तस्मै प्राह वानरपुङ्गवः । नन्दिग्रामं ततो गत्वा दृष्ट्वा तं राघवानुजम्॥३५२॥
न्यवेदयत्तथा तस्मै रामस्याऽगमनोत्सवम् । भरतश्चाऽगतंश्रुत्वा वानरेण रघूत्तमम् ॥३५३॥
प्रहर्षमतुलं लेभे सानुजः ससुहृज्जनः । पुनरागत्य काकुत्स्थं हनूमान्मारुतात्मजः ॥३५४॥
सर्वं शशंस रामाय भरतस्य च वर्तनम् । राघवस्तु विमानाग्र्यादवरुह्य सहाऽनुजः ॥३५५॥
ववन्दे भार्यया सार्द्धं भरद्वाजं तपोनिधिम् । स तु सम्पूजयामास काकुत्स्थं सानुजं मुनिः॥३५६॥
पक्वान्नैः फलमूलाद्यैर्वस्त्रैराभरणैरपि । तेन सम्पूजितस्तत्र प्रणम्य मुनिसत्तमम् ॥३५७॥
अनुज्ञातः समारुह्य पुष्पकं सानुगस्तदा । नन्दिग्रामं ययौ रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥३५८॥

मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च सानुजः केकयीसुतः ।
प्रत्युद्ययौ नृपवरैः सबलैः पूर्वजं मुदा ॥३५९॥

सम्प्राप्य रघुशार्दूलं ववन्दे सोऽनुगैर्वृतः । पुष्पकादवरुह्याऽथ राघवः शत्रुतापनः ॥३६०॥

रावण ने कुवेर को जीतकर ले लिया था ॥३४५॥ विभीषणजी ने श्रीरामजी को उसे दे दिया तथा वस्त्रों एवं आभूषणों को प्रदान किया । उनके द्वारा पूजित होकर प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी ॥३४६॥ उस श्रेष्ठ विमान पर अपनी पत्नी सीताजी के साथ बैठे तथा भाई लक्ष्मणजी के साथ बैठे ॥३४७॥ ऋक्षों तथा वानरों के समूह के साथ महात्मा सुग्रीव, शूरवीर विभीषण और महावलवान राक्षसों के साथ बैठे ॥३४८॥ जिस तरह वैकुण्ठ में नित्य मुक्त तथा माहात्माओं के साथ भगवान् वैठते हैं वैसे ही सभी ऋक्ष, वानर तथा राक्षसों के साथ वे बैठे ॥३४९॥ श्रेष्ठ देवताओं द्वारा स्तुति किये जाते हुए श्रीरामजी अयोध्या के लिए प्रस्थान किए । भरद्वाजाश्रम में जाकर सत्य पराक्रम श्रीरामजी ॥३५०॥ भरतजी के सन्निकट हनुमानजी को भेजे । वे निषाद के घर जाकर और वैष्णव गुह को देखकर ॥३५१॥ हनुमानजी भरतजी को श्रीरामगमन का समाचार नन्दी ग्राम में जाकर और भरतजी का दर्शन करके दिए । उन वानरेन्द्र के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी के आगमन को सुनकर ॥३५२-३५३॥ भरतजी अपने सुहृदों के साथ अत्यन्त प्रसन्न हुए । फिर हनुमान् जी श्रीरामजी के पास आकर ॥३५४॥ भरतजी के व्यवहार को पूर्ण रूप से वतलाये । श्रीरामजी उस श्रेष्ठ विमान से अपने अनुज के साथ उतरकर अपनी पत्नी के साथ महर्षि भरद्वाज की वन्दना किए । वे मुनि भी सानुज श्रीरामजी की पूजा किए ॥३५५-३५६॥ पके हुए अन्न, फल-मूल आदि वस्त्र तथा आभूषणों से उनके द्वारा पूजित होकर मुनि को प्रणाम करके ॥३५७॥ उनसे आज्ञा प्राप्त करके अपने अनुचरों के साथ पुष्पक विमान पर चढ़कर अपने सुहृदों के साथ श्रीभगवान् नन्दीग्राम गये ॥३५८॥ मन्त्रियों, मुख्य नागरिकों और शत्रुघ्नजी के साथ कैकेयी पुत्र श्रीभरतजी श्रेष्ठ राजाओं के साथ आगे से आकर अपने बड़े

भरतं चैव शत्रुघ्नमुपसम्परिषस्वजे । पुरोहितं वसिष्ठं च मातृवृद्धांश्च बान्धवान् ॥३६१॥
प्रणनाम महातेजाः सीतया लक्ष्मणेन च । विभीषणंच सुग्रीवं जाम्बवन्तं तथाऽङ्गदम् ॥३६२॥
हनुमन्तं सुषेणं च भरतःपरिषस्वजे। भ्रातृभिः सानुगैस्तत्र मङ्गलस्नानपूर्वकम् ॥३६३॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः। आरुरोह रथं दिव्यं सुमन्त्राधिष्ठितं शुभम् ॥३६४॥
संस्तूयमानस्त्रिदशैर्वैदेह्या लक्ष्मणेन च। भरतश्चैव सुग्रीवः शत्रुघ्नश्च विभीषणः॥३६५॥
अङ्गदश्च सुषेणश्च जाम्बवान्मारुतात्मजः। नीलो नलश्च सुभगः शरभो गन्धमादनः ॥३६६॥
अन्ये च कपयः शूरा निषादाधिपतिर्गुहः। राक्षसाश्च महावीर्याः पार्थिवेन्द्रा महाबलाः ॥३६७॥
गजानश्वान्रथान्सम्यगारुह्य बहुशः शुभान् । नानामङ्गलवादित्रैः स्तुतिभिः पुष्कलैस्तथा ॥३६८॥
ऋक्षवानररक्षोभिर्निषादवरसैनिकैः । प्रविवेश महातेजाः साकेतं पुरमव्ययम्॥३६९॥

आलोक्य राजनगरीं पथि राजपुत्रो राजानमेव पितरं परिचिन्तयानः ।
सुग्रीवमारुतिविभीषणपुण्यपादसञ्चारपूतभवनं प्रविवेश रामः ॥३७०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्त्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे
रामस्याऽयोध्याप्रवेशो नाम द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४२॥
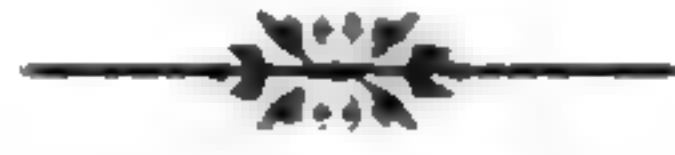
भाई को प्रेम पूर्वक प्राप्त करके अनुचरों के साथ उनकी वन्दना किए । उसके बाद शत्रुओं के संतप्त करने वाले श्रीरामजी पुष्पक विमान से उतर कर ॥३५९-३६०॥ भरतजी तथा शत्रुघ्नजी को अपने गले से लगाये पुरोहित वसिष्ठजी तथा वृद्ध माताओं के एवं बन्धुओं को महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी सीताजी तथा लक्ष्मणजी के साथ प्रणाम किए । विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान, अङ्गद, हनुमान तथा सुषेणजी का भरतजी ने आलिङ्गन किया । भ्राताओं और अनुचरों के साथ वहाँ पर मङ्गल स्नान करके ॥३६१-३६३॥ दिव्यमाला और वस्त्र धारण करके तथा दिव्य चन्दन लगाकर श्रीभगवान् सुमन्त्र के द्वारा अधिष्ठित दिव्य रथ पर चढ़े॥३६४॥ उस समय देवता उनकी स्तुति कर रहे थे सीता और लक्ष्मणजी के साथ भरत सुग्रीव, शत्रुघ्न तथा विभीषण, अङ्गद, सुषेण, जाम्बवान, हनुमान, नील, नल, सुभग, शरभ, गन्धमादन तथा दूसरे वानर वीर निषादाधिपति गुह, महापराक्रमी राक्षसगण और महाबलवान राजागण ॥३६५-३६७॥ हाथी, घोड़े तथा रथ पर अच्छी तरह से चढ़कर अनेक शुभों अनेक प्रकार के वाद्यो तथा बहुत अधिक स्तुतियों द्वारा॥३६८॥ ऋक्ष, वानर, राक्षस, श्रेष्ठ निषाद तथा श्रेष्ठ सैनिकों के साथ महातेजस्वी श्रीभगवान् अव्यय साकेत नगरी में प्रवेश किए । राजा की नगरी को देखकर राजकुमार अपने पिता की चिन्तन करते हुए सुग्रीव, हनुमान, विभीषण एवं श्रीरामचन्द्रजी अपने पूज्यपाद पिता के भवन में प्रवेश किये ॥३६९-३७०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीरामचन्द्रजी के अयोध्या में प्रवेश नामक दो सौ बयालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४२।।

दो सौ तिरालिसवाँ अध्याय

शङ्कर उवाच

अथ तस्मिन्दिने पुण्ये शुभलग्ने शुभान्विते ।
राघवस्याऽभिषेकार्थं मङ्गलं चक्रिरेजनाः ॥१॥

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः। मार्कण्डेयश्च मौद्गल्यः पर्वतो नारदस्तथा ॥२॥
एते महर्षयस्तत्र जपहोमपुरस्सरम्। अभिषेकं शुभं चक्रुर्मुनयो राजसत्तमम्॥३॥
नानारत्नमये दिव्ये हेमपीठे शुभान्विते। निवेश्य सीतया सार्द्धं श्रिया इव जनार्दनम् ॥४॥
सौवर्णकलशैर्दिव्यैर्नानारत्नमयैः शुभैः। सर्वतीर्थोदकैः पुण्यैर्माङ्गयद्रव्यसंयुतैः ॥५॥
दूर्वाग्रतुलसीपत्रपुष्पगन्धसमन्वितैः । मन्त्रपूतजलैः शुद्धैर्मुनयः संशितव्रताः॥६॥
अजपन्वैष्णवान्सूक्तांश्चतुर्वर्दमयाञ्छुभान् । अभिषेकंशुभं चक्रः काकुत्स्थं जगताम्पतिम् ॥७॥
तस्मिञ्छुभतमे लग्ने देवदुन्दुभयो दिवि। विनेदुः पुष्पवर्षाणि ववृपुश्च समन्ततः ॥८॥
दिव्याम्बरैर्भूषणैश्च दिव्यगन्धानुलेपनैः। पुष्पैर्नानाविधैर्दिव्यैर्देव्या सह रघूद्वहः ॥९॥
अलङ्कृतश्च शुशुभे मुनिर्भिर्वेदपारगैः। छत्रं च चामरं दिव्यं धृतर्वाल्लक्ष्मणस्तदा ॥१०॥
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तौ विवीजतुः। दर्पणं प्रददौ श्रीमान्राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥११॥
दधार पूर्णकलशं सुग्रीवो वानरेश्वरः। जाम्बवांश्च महातेजाः पुष्पमालां मनोहराम्॥१२॥
वालिपुत्रस्तु ताम्बूलं सकर्पूरं ददौ हरेः। हनुमान्दीपिकांदिव्यां सुषेणश्च ध्वजं शुभम्॥१३॥

रामाभिषेक पूर्वक श्रीरामजी का दर्शन करने के लिए शङ्करजी के साथ देवताओं का आना, विश्वरूप का दर्शन, शिवजी द्वारा सीतारामजी की स्तुति और उसके फल का वर्णन

शङ्करजी ने कहा— उसके बाद पवित्र शुभ लग्न से युक्त उसी दिन लोगों ने श्रीरामचन्द्रजी का अभिषेक करने के लिए मङ्गल किया ॥१॥ वसिष्ठ वामदेव, जाबालि, कश्यप, मार्कण्डेय, मौदगल्य, पर्वत और नारदजी ॥२॥ ये सभी महर्षि वहाँ पर जप तथा होम पूर्वक मुनियों ने राजश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी का अभिषेक किया ॥३॥ अनेक रत्नमय सुवर्ण रचित दिव्य सिंहासन पर श्रीरामजी को सीताजी के साथ लक्ष्मीजी के भगवान् जनार्दन के समान, सुवर्ण कलशों से जो अनेक दिव्य रत्नमय थे उनसे मङ्गलमय द्रव्यों से युक्त सभी तीर्थों के पवित्र जल से ॥४-५॥ दूर्वाग्र, तुलसी पत्र, पुष्प तथा चन्दन से युक्त मन्त्रों से पवित्र किये गये शुद्ध जल से प्रख्यात व्रत वाले मुनिगण ॥६॥ चतुर्वेदमय शुभ वैष्णव सूक्त का पाठ करते हुए संसार के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी का शुभ अभिषेक किए ॥७॥ उस अत्यन्त शुद्ध लग्न में, आकाश में देवताओं ने दुन्दुभि बजाया और चारो ओर फूल वर्षाया ॥८॥ श्रीरामचन्द्रजी दिव्यवस्त्रों, भूषणों दिव्य चन्दनानुलेपनों तथा दिव्य अनेक प्रकार के पुष्पों के द्वारा सीताजी के साथ ॥९॥ वेद पारङ्गत मुनियों द्वारा अलंकृत होकर सुशोभित हुए । उस समय लक्ष्मणजी छत्र और चामर धारण किया ॥१०॥ उनके बगल में भरतजी और शत्रुघ्नजी तालवृन्त से हवा किए । श्रीमान् राक्षसेन्द्र विभीषणजी श्रीभगवान् को दर्पण प्रदान किए ॥११॥ वानरेश्वर सुग्रीव ने जल भरे कलश को धारण किया । महातेजस्वी जाम्बवान् मनोहर पुष्प माला प्रदान किए ॥१२॥ बालि के पुत्र अङ्गदजी श्रीहरि को कर्पूर युक्त ताम्बूल प्रदान किए । हनुमानजी

परिवार्य महात्मानं मन्त्रिणः समुपासत । सृष्टिर्जयन्तो विजयः सौराष्ट्रो राष्ट्रवर्द्धनः ॥१४॥
अकोपोधर्मपालश्च सुमन्त्रो मन्त्रिणः स्मृताः ।
राजानश्च नरव्याघ्रा नानाजनपदेश्वराः ॥१५॥
पौराश्चनैगमा वृद्धा राजानं पर्युपासत। ऋक्षैश्च वानरेन्द्रैश्च मन्त्रिभिः पृथिवीश्वरैः ॥१६॥
राक्षसैर्द्विजमुख्यैश्च किङ्करैश्च समावृतः। परे व्योम्नि यथा लीनो दैवतैः कमलापतिः ॥१७॥
तथा नृपवरः श्रीमान्साकेते शुशुभे तदा । इन्दीवरदलश्यामं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥१८॥
आजानुबाहुं काकुत्स्थं पीतवस्त्रधरं हरिम्। कम्बुग्रीवं महोरस्कं विचित्राभरणैर्युतम् ॥१९॥
देव्या सह समासीनमभिषिक्तं रघूत्तमम् । विमानस्थाः सुरगणा हर्षनिर्भरमानसाः ॥२०॥
तुष्टुवुर्जयशब्देन गन्धर्वाप्सरसां गणाः । अभिषिक्तस्ततो रामो वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः॥२१॥
शुशुभे सीतया देव्या नारायण इव श्रिया । अतिमर्त्यतया रूपमुपमातीतमुल्बणम् ॥२२॥
दृष्ट्वा तुष्टाव हृष्टात्मा शङ्करो हृष्ठमानसः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सानन्दो गद्गदाकुलः ॥
हर्षयन्सकलान्देवान्मुनीनपि च वानरान् ॥२३॥

महादेव उवाच

नमो मूलप्रकृतये नित्याय परमात्मने । सच्चिदानन्दरूपाय विश्वरूपाय वेधसे ॥२४॥
नमो निरन्तरानन्दकन्दमूलाय विष्णवे। जगत्त्रयकृतानन्दमूर्त्तये दिव्यमूर्त्तये ॥२५॥
नमो ब्रह्मेन्द्रपूज्याय शङ्कराभयदाय च । नमो विष्णुस्वरूपाय सर्वरूप नमो नमः ॥२६॥

दिव्य दीपक और सुषेण ने ध्वज धारण किया ॥१३॥ सभी श्रीभगवान् को घेरकर उनकी सेवा करते थे। सृष्टि, जयन्त, विजय, सौराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन ॥१४॥ अकोप, धर्मपाल, सुमन्त्र ये आठ मन्त्री श्रीभगवान के कहे गये हैं । अनेक जपनदों के स्वामी नरश्रेष्ठ राजागण ॥१५॥ वैदिक नागरिक, वृद्धजन श्रीभगवान् की उपासना कर रहे थे, ऋक्षों, वानरेन्द्रों, मन्त्रियों तथा राजाओं ॥१६॥ राक्षसों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा किङ्करों से परम व्योम में जिस तरह कमलापति देवताओं से घिरे रहते हैं उसी तरह राजश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी साकेत में घिरे हुए सुशोभित हुए । नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले तथा कमल दल के समान विस्तृत नेत्र वाले ॥१७॥ आजानुबाहु पीताम्बर धारण किए हुए शङ्ख के समान कण्ठ वाले, विस्तृत वक्षस्थल वाले, अद्भुत आभरणों से सुशोभित सीताजी के साथ बैठे हुए अभिषिक्त श्रीरामचन्द्र को विमान पर बैठे हुए हर्ष से परिपूर्ण मन वाले देवता ॥१८-२०॥ भगवान् का जय-जयकार करते हुए गन्धर्व तथा अप्सरायें स्तुति कीं । उसके पश्चात् वसिष्ठ आदि महर्षियों के द्वारा अभिषिक्त श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मीजी के साथ नारायण के समान सीताजी के साथ सुशोभित हुए । उनका दिव्य रूप अनुपमेय था ॥२१-२२॥ ऐसे श्रीरामचन्द्रजी को देखकर प्रसन्न हुए शङ्करजी ने उनकी स्तुति गद्गद होकर तथा हाथ जोड़कर आनन्द पूर्वक की । यह देखकर देवता, मुनि और वानर हर्षित हो गये ॥२३॥ **महादेवजी ने कहा—** मूल प्रकृति स्वरूप नित्य परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप विश्वरूप तथा ब्रह्म श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२४॥ निरन्तर आनन्द रूपी कन्द के मूल स्वरूप, व्यापक, दिव्यमूर्ति तथा तीनों लोकों को आनन्दित करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है॥२५॥ ब्रह्मा तथा इन्द्र के पूज्य, शङ्करजी को अभय प्रदान करने वाले विष्णु स्वरूप तथा सभी रूपों से

उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणे त्रिगुणात्मने। नमोऽस्तु निर्गतोपाधिस्वरूपायमहात्मने॥२७॥
अनया विद्यया देव्या सीतयोपाधिकारिणे। नमः पुम्प्रकृतिभ्यांच युवाभ्यांजगतां कृते॥२८॥
जगन्मातापितृभ्यां च जनन्यै राघवाय च। नमः प्रपञ्चरूपिण्यै निष्प्रपञ्चस्वरूपिणे॥२९॥
नमो ध्यानस्वरूपिण्यै योगिध्येयात्ममूर्तये। परिणामापरीणामरिक्ताभ्यां च नमोनमः॥३०॥

कूटस्थबीजरूपिण्यै सीतायै राघवाय च।
सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुः सीता गौरी भवाञ्छिवः॥३१॥
सीता स्वयं हि सावित्री भवान्ब्रह्मा चतुर्मुखः।
सीता शची भवाञ्छक्रः सीता स्वाहाऽनलो भवान्॥३२॥

सीता संहारिणीदेवी यमरूपधरो भवान्। सीता हि सर्वसम्पत्तिः कुबेरस्त्वं रघूत्तम!॥३३॥
सीतादेवी च रुद्राणी भवान्रुद्रोमहाबलः। सीता तुरोहिणीदेवीचन्द्रस्त्वंलोकसौख्यदः॥३४॥

सीता संज्ञा भवान्सूर्यः सीता रात्रिर्दिवा भवान्।
सीता देवी महाकाली महाकालो भवान्सदा॥३५॥
स्त्रीलिङ्गं तु त्रिलोकेषु यत्तत्सर्वं हि जानकी।
पुन्नामलाञ्छितंयत्तुतत्सर्वंहिभवान्प्रभो!॥३६॥

सर्वत्र सर्वदेवेश! सीतां सर्वत्रधारिणि। तदा त्वमपि च त्रातुं तच्छक्तिर्विश्वधारिणी॥३७॥
तस्मात्कोटिगुणंपुण्यंयुवाभ्यांपरिचिह्नितम्। चिह्नितंशिवशक्तिभ्यांचरितंतव शान्तिदम्॥३८॥

सम्पन्न श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है॥२६॥ जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय करने वाले त्रिगुणात्मक तथा निरुपाधिक स्वरूप वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है॥२७॥ विद्या स्वरूप इस सीता देवी के द्वारा पुरुष तथा प्रकृति स्वरूप आप दोनों के द्वारा संसारियों के लिए उपाधि करने वाले॥२८॥ जगत् के माता-पिता, सीताजी तथा श्रीरामजी को नमस्कार है। प्रपञ्च स्वरूपिणी जानकीजी तथा प्रपञ्च रहित स्वरूप वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है॥२९॥ ध्यान स्वरूपिणी तथा योगिध्येय मूर्ति परिणाम तथा परिणाम रहित आप दोनों को बारम्बार नमस्कार है। कूटस्थ तथा बीज रूप वाली सीताजी तथा श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है। सीताजी लक्ष्मी हैं और आप विष्णु हैं, सीताजी गौरी हैं और आप शिवस्वरूप हैं, सीताजी शची स्वरूप हैं और आप इन्द्र स्वरूप हैं। स्वयं सीताजी सावित्री देवी हैं और आप चतुर्मुख ब्रह्मा स्वरूप हैं। सीताजी स्वाहा स्वरूप और आप अग्नि स्वरूप हैं॥३०-३२॥ सीताजी संहारिणी देवी हैं और आप यम रूप धारी हैं। सीताजी सर्वसम्पत्ति हैं और आप कुबेर स्वरूप हैं॥३३॥ सीताजी रुद्राणी स्वरूप हैं और आप महाबलवान् रुद्र हैं। सीताजी रोहिणी देवी हैं और आप चन्द्रमा स्वरूप संसार को सुख देने वाले हैं॥३४॥ सीताजी संज्ञा देवी हैं और आप सूर्य स्वरूप हैं। सीताजी रात्रि स्वरूप हैं और आप दिन स्वरूप हैं। सीताजी महाकाली हैं तो आप महाकाल हैं॥३५॥ सभी लोकों में जितने भी स्त्रीलिङ्ग है वह सबकुछ जानकी जी का रूप है और आप जगत् में जितने भी पुलिङ्ग शब्द से कहे जाने वाले हैं वे सबकुछ आप हैं॥३६॥ हे देवेश! सर्वत्र सबकुछ आप हैं और सीताजी सर्वत्ररूपिणी हैं। आप भी उसी समय जगत् की रक्षा करने में समर्थ हैं जबकि सीताजी आपकी विश्वधारिणी शक्ति होती हैं॥३७॥ पुण्य कर्म तब

आवांराम ! जगत्पूज्यौमम पूज्यौसदायुवाम् ।
त्वन्नामजापिनीगौरीत्वन्मन्त्रजपवानहम् ॥३९॥
मुमूर्षोमणिकर्ण्यां तु अर्द्धोदकनिवासिनः । अहं दिशामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मदायकम् ॥४०॥
अतस्त्वंजानकीनाथपरंब्रह्माऽसिनिश्चितम् । त्वन्मायामोहितास्सर्वेनत्वांजानन्तितत्त्वतः ॥४१॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्तः शम्भुना रामः प्रसादप्रवणोऽभवत् ।
दिव्यरूपधरः श्रीमानद्भुताद्भुतदर्शनः ॥४२॥
तं तथा रूपमालोक्य नरवानरदेवताः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते तेजसा महदद्भुतम् ॥४३॥
भयाद्वै त्रिदशश्रेष्ठाः प्रणेमुश्चाऽतिभक्तितः । भीता विज्ञाय रामोऽपि नरवानरदेवताः ॥
मायामानुषतां प्राप्य स देवानब्रवीत्पुनः ॥४४॥

रामचन्द्र उवाच

शृणुध्वं देवता यो मां प्रत्यहंस्तोष्यतेबुधः । स्तवेन शम्भुनोक्तेन देवतुल्यो भवेन्नरः ॥४५॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मत्स्वरूपं समश्नुते । रणे जयमवाप्नोति न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥४६॥
भूतवेतालकृत्याभिर्ग्रहैश्चाऽपि न बाध्यते । अपुत्रो लभते पुत्रं पतिं विन्दति कन्यका ॥४७॥
दरिद्रः श्रियमाप्नोति सत्त्ववाञ्छीलवान्भवेत् । आत्मतुल्यबलःश्रीमाञ्जायतेनाऽत्रसंशयः ॥४८॥
निर्विघ्नं सर्वकार्येषु सर्वारम्भेषु वै नृणाम् । यं यं कामयते मर्त्यः सुदुर्लभमनोरथम् ॥४९॥

करोड़ों गुणा हो जाता है जबकि वह आप दोनों से सम्बद्ध होता है । शिव तथा शक्ति स्वरूप आप दोनों से सम्बद्ध आपका चरित शान्ति प्रद है ॥३८॥ हे रामजी ! हमदोनों जगत् शून्य हैं और आप दोनों मेरे पूज्य हैं । गौरी आपके नाम का जप करती हैं और मैं आपका मन्त्र जपता हूँ ॥३९॥ मणिकर्णिका में आधे जल में रहने वाले मुमूर्षुओं को मैं ब्रह्म प्रदान करने वाले आपके तारक मन्त्र का उपदेश करता हूँ ॥४०॥ अतएव हे जानकीनाथ ! आप निश्चित रूप से ब्रह्म हैं । आपकी माया से मोहित सभी लोग आपको तत्त्वतः नहीं जानते हैं ॥४१॥ **ईश्वर ने कहा—** शम्भु के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर श्रीरामजी अत्यन्त प्रसन्न हो गये । वे दिव्य रूप धारण किए हुए अद्भुत रूप वाले थे ॥४२॥ श्रीरामजी को उस रूप को धारण किए हुए देखकर मनुष्य, वानर और देवता उनके अद्भुत तेज के कारण उन्हें देखने में भी समर्थ नहीं थे॥४३॥ भयभीत होने के कारण देव श्रेष्ठ उनको अत्यन्त भक्ति पूर्वक प्रणाम किए । श्रीरामचन्द्रजी भी नर, वानर और देवताओं को भयभीत जानकर माया मनुषत्व को प्राप्तकर फिर देवताओं से कहे ॥४४॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** हे देवताओं ! आपलोग सुनें जो मेरी प्रतिदिन स्तुति शङ्करजी द्वारा की गयी स्तुति से करेगा वह मनुष्य देवता के तुल्य होगा ॥४५॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त करेगा । वह युद्ध में विजय प्राप्त करेगा और कहीं भी पराजित नहीं होगा ॥४६॥ उसको भूत, बेताल, कृत्या और ग्रह करेंगे कभी भी बाधित नहीं होगा । पुत्रहीन पुत्र को तथा कन्या पति को प्राप्त करेगी॥४७॥ दरिद्र धन को प्राप्त करेगा, वह सत्यवादी तथा शील गुण सम्पन्न होगा । वह मेरे सदृश बलवान् और श्रीमान् होगा । इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥४८॥ उसके सभी मनुष्योचित कार्य निर्विघ्न होंगे । वह

षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति स्तवस्याऽस्य प्रसादतः ।
यत्पुण्यंसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुयत्फलम् ॥
तत्फलं कोटिगुणितं स्तवेनाऽनेन लभ्यते ॥५०॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्त्वारामचन्द्रोऽसौविससर्जमहेश्वरम् । ब्रह्मादि त्रिदशान्सर्वान्विससर्जसमागतान् ॥५१॥
अर्चिता मानवाः सर्वे ऋक्षवानरदेवताः। विसृष्टा रामचन्द्रेण प्रीत्या परमया युताः ॥५२॥
इत्थं विसृष्टाः खलु ते च सर्वे स्वं स्वं पदं जग्मुरतीवहृष्टाः ।
परं पठन्तः स्तवमीश्वरोक्तं रामं स्मरन्तो वरविश्वरूपम् ॥५३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वर सम्वादे विश्वदर्शनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४३॥

दो सौ चौवालिसवाँ अध्याय

शङ्कर उवाच

अथ रामस्तु वैदेह्या राज्यभोगान्मनोरमान् । बुभुजे वर्षसाहस्रं पालयन्सर्वतो दिशः ॥१॥

मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ जिन-जिन कामनाओं को करेगा ॥४९॥ वह इस स्तोत्र की कृपा से छह मास में सिद्धि प्राप्त कर लेगा । सभी तीर्थों तथा सभी यज्ञों के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल के करोड़ गुणा फल इस स्तोत्र से प्राप्त होगा ॥५०॥ **ईश्वर ने कहा—** यह कहकर रामचन्द्रजी ने शङ्करजी को विदा किया । उन्होंने आये हुए ब्रह्मा आदि सभी देवताओं को भी विदा किया ॥५१॥ उन्होंने सभी मानवों, ऋक्षों तथा वानरों को समादृत किया और परमप्रेम पूर्वक सभी लोगों को विदा किया ॥५२॥ इस तरह विदा किए गये सभी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थान पर शङ्करजी के स्तोत्र को प्रेम पूर्वक पढ़ते हुए श्रीरामचन्द्र के श्रेष्ठ रूप को स्मरण करते हुए चले गये ॥५३॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत विश्वरूप दर्शन नामक दो सौ तैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४३।।

उत्तम राम चरित के अन्तर्गत गर्भवती सीताजी को जनापवाद के भय से महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में त्याग, काल के साथ प्रतिज्ञा के बाद लक्ष्मणजी द्वारा द्वार की रक्षा में नियुक्त किया जाना, महर्षि दुर्वासा का आगमन, एकान्त में दुर्वासा ऋषि के आगमन की सूचना लक्ष्मणजी द्वारा दिया जाना, लक्ष्मणजी द्वारा दिव्य देह का धारण, श्रीरामचन्द्रजी का लोगों के साथ दिव्यधाम में पदार्पण

शङ्करजी ने कहा— उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के साथ एक हजार वर्ष तक मनोहर राज्य

अन्तःपुरजनास्सर्वे राक्षसस्यगृहेस्थिताम् । गर्हयन्तिस्म वैदेहीं तथा जानपदा जनाः ॥२॥
लोकापवादभीत्या च रामः शत्रुनिवारकः । दर्शयन्मानुषं धर्ममन्तर्वर्त्नीं नृपात्मजाम् ॥३॥
वाल्मीकेराश्रमे पुण्ये गङ्गातीरे महावने । विससर्ज महातेजा गर्भिणीं मुनिसंसदि॥४॥
सा भर्त्तुः परतन्त्रा हि उवास मुनिवेश्मनि । अर्चिता मुनिपत्नीभिर्वाल्मीकिमुनिरक्षिता ॥५॥
तत्रैवाऽसूत यमलौ नाम्ना कुशलवौ सुतौ। तौ च तत्रैव मुनिना ववृधाते सुसंस्कृतौ॥६॥

रामोऽपि भ्रातृभिस्सार्द्धं पालयामासमेदिनीम् ।
यमादिगुणसम्पन्नस्सर्वभोगविवर्जितः ॥७॥

अर्चयन्सततं विष्णुमनादिनिधनं हरिम् । ब्रह्मचर्यपरो नित्यं शशास पृथिवीं नृपः ॥८॥
शत्रुघ्नो लवणं हत्वा मथुरां देवनिर्मिताम्। पालयामास धर्मात्मा पुत्राभ्यां सहराघवः ॥९॥
गन्धर्वान्भरतो हत्वा सिन्धोरुभयपार्श्वतः । स्वात्मजौ स्थापयामास तस्मिन्देशे महाबलौ ॥१०॥
पश्चिमे मद्रदेशे तु मद्रान्हत्वा च लक्ष्मणः । स्वसुतौ च महावीर्यावभिषिच्य महाबलः ॥११॥
गत्वा पुनरयोध्यां तु रामपादावुपास्पृशत् । ब्राह्मणस्य मृतं बालं कालधर्ममुपागतम्॥१२॥

जीवयामास काकुत्स्थः शूद्रं हत्वा चतापसम् ।
ततस्तु गौतमीतीरे नैमिषेजनसंसदि ॥१३॥

इयाज वाजिमेधेन राघवः परवीरहा। काञ्चनीं जानकीं कृत्वा तया सार्द्धं महाबलः ॥१४॥
चकार यज्ञान्बहुशो राघवः परमार्थवित्। अयुतान्यश्वमेधानि वाजपेयानि च प्रभुः ॥१५॥

भोगों का भोग किए ॥१॥ अन्तःपुर के सभी लोग तथा जपनद के लोग राक्षस के गृह में रही हुयी वैदेही की निन्दा किए ॥२॥ शत्रुओं को मारने वाले श्रीरामचन्द्रजी लोकापवाद के भय से मनुष्य के धर्म का प्रदर्शन करते हुए गर्भवती सीताजी को ॥३॥ गङ्गा तट पर विद्यमान वाल्मीकि मुनि के पवित्र आश्रम में महान् वन में मुनियों की सभा में महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी गर्भिणी सीता को छोड़ दिए ॥४॥ अपने पति के परतन्त्र रहने वाली सीताजी ने मुनि के आश्रम में निवास किया । मुनियों की पत्नियों ने उनको समादृत किया और महर्षि वाल्मीकि के द्वारा वे रक्षित थीं ॥५॥ वहीं पर उन्होंने जुड़वे कुश तया लव को जन्म दिया । वे दोनों वहीं पर वढ़े और मुनि के द्वारा संस्कार सम्पन्न हुए ॥६॥ श्रीरामचन्द्र भी भाइयों के साथ धर्म पूर्वक पृथिवी का प्रशासन किए । वे यम आदि नियमों का पालन करते थे और सभी भोगों से पराङ्मुख रहते थे ॥७॥ वे भगवान् सदा अनादि निधन भगवान् विष्णु की पूजा करते थे । सदा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वे पृथिवी का पालन करते थे ॥८॥ धर्मात्मा शत्रुघ्नजी लवणासुर को मारकर देवताओं के द्वारा निर्मित मथुरा का अपने दोनों पुत्रों के साथ पालन किए ॥९॥ भरतजी ने सिन्धु नदी के दोनों किनारों के गन्धर्वों को मारकर उस देश में अपने महाबलवान् दोनों पुत्रों को स्थापित कर दिया ॥१०॥ पश्चिम में विद्यमान मद्रदेश के राजा मद्र को मारकर महाबलवान् लक्ष्मणजी अपने महाबलवान् पुत्रों को अभिषिक्त करके ॥११॥ फिर अयोध्या जाकर भगवान् श्रीराम के चरणों का स्पर्श किए । उसी समय ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हो गयी ॥१२॥ फिर श्रीरामचन्द्रजी ने तपस्वी शूद्र को मारकर उसको जीवित कर दिये । उसके पश्चात् गौतमी नदी के तट पर नैमिषारण्य में लोगों की सभा में ॥१३॥ शत्रुवीरों को मारने वाले रामजी

अग्निष्टोमं विश्वजितंगोमेधंवैष्णवंक्रतुम् । चकार विविधान्यज्ञान्परिपूर्णान्सदक्षिणान् ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाल्मीकिः सुमहातपाः । सीतामानीयकाकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥१७॥

वाल्मीकिरुवाच

अपापां मैथिलीं राम त्यक्तुं नाऽर्हसिसुव्रत ! ।
इयंतु विरजाःसाध्वीभास्करस्यप्रभायथा ॥
अनन्या तव काकुत्स्थ कस्मात्त्यक्ता त्वयाऽनघ ! ॥१८॥

राम उवाच

अपापं मैथिलीं ब्रह्मञ्जानामि वचनात्तव । रावणेन हृता साध्वी दण्डके विजने पुरा ॥१९॥
तं हत्वासमरेसीतांशुद्धामग्निमुखागताम् । पुनर्यातोऽस्म्ययोध्यायां सीतामादायधर्मतः ॥२०॥
लोकापवादः सुमहानभूत्पौरजनेषु च । त्यक्ता मया शुभाचारा तद्भयात्तव सन्निधौ ॥२१॥
तस्माल्लोकस्य सन्तुष्ट्यै सीता मम परायण ।
पार्थिवानां महर्षीणां प्रत्ययं कर्तुमर्हति ॥२२॥

महेश्वर उवाच

एवमुक्ता तदा सीता मुनिपार्थिवसंसदि। चकार प्रत्ययं देवी लोकाश्चर्यकरं सती ॥२३॥
दर्शयन्त्यस्य लोकस्यरामस्याऽनन्यतां सती । अब्रवीत्प्राञ्जलिः सीता सर्वेषांजनसंसदि ॥२४॥

सीतोवाच

यथाऽह राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये । तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति ॥२५॥
मनसाकर्मणावाचा यथा रामं समर्चये। तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति ॥२६॥

अश्वमेध याग किए । वे महाबलवान् सुवर्ण की सीताजी को बनवाकर उन्हीं के साथ यज्ञ किए ॥१४॥ परमार्थवेत्ता रामजी बहुत से यज्ञों को किये । उन्होंने दश हजार अश्वमेध तथा वाजपेय यज्ञों को किया॥१५॥ उन्होंने अग्निष्टोम, विश्वजित्, गोमेध आदि अनेक तथा दक्षिणा से परिपूर्ण यज्ञों को किया ॥१६॥ इसी के बीच में वहाँ पर महातपस्वी वाल्मीकि मुनि आये । सीता को लिवाकर वे रामचन्द्रजी से कहे ॥१७॥ **वाल्मीकि महर्षि ने कहा**— हे सुव्रत ! निष्पाप मैथिली नहीं त्यागें यह दोष रहित साध्वी तथा सूर्य की कान्ति के समान आप से अनन्य है, हे अनघ ! आपने इसका त्याग क्यों किया है ॥१८॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— हे ब्रह्मन् ! आपके कहने से इसको मैं निष्पाप जानता हूँ । पूर्वकाल में इस साध्वी का रावण ने दण्डकारण्य में अपहरण कर लिया था ॥१९॥ उसको युद्ध में मारकर अग्नि के मुख से निकली हुयी सीता को लेकर मैं अयोध्या गया ॥२०॥ उस समय नागरिकों ने बहुत अधिक लोकापवाद हुयी । उसी के भय के कारण मैंने पवित्र आचरण करने वाली भी इसको आपके समीप त्याग दिया ॥२१॥ अतएव मेरी भक्ति करने वाली यह सीता लोगों के सन्तोष के लिए राजाओं और महर्षियों के बीच विश्वास दिलाये ॥२२॥ **महेश्वर ने कहा**— इस तरह से कहने पर राजाओं और मुनियों की सभा मैं सीताजी ने आश्चर्यकारी प्रत्यय दिलाया ॥२३॥ राम के प्रति अनन्यता को प्रकाशित करती हुयी सती सीता ने सभी लोगों के बीच हाथ जोड़कर कहा ॥२४॥ **सीताजी ने कहा**— यदि मैं मन से भी राम से भिन्न किसी दूसरे पुरुष का चिन्तन नहीं करती हूँ तो पृथिवी देवी मुझको विवर प्रदान करें ॥२५॥ मन, वाणी और कर्म से यदि मैं राम की ही

यथैव सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं नच। तथा मे धरणी देवी विवरंदातुमर्हति ॥२७॥

महेश्वर उवाच

एवं शपन्त्यां वैदेह्यां धरणी सहसाऽभिनत् ॥२८॥

ततो रत्नमयं पीठं पृष्ठे धृत्वा खगेश्वरः। रसातलादाविरभूद्विस्मयं जनयन्नृणाम्॥२९॥

ततस्तु धरणीदेवीहस्ताभ्यांगृह्यमैथिलीम्। स्वागतेनाऽभिनन्द्यैनामासने संन्यवेशयत्॥३०॥

तामासनगतां दृष्ट्वा दिविदेवगणाभृशम्। पुष्पवृष्टिमविच्छिन्नांदिव्यांसीतामवाऽकिरन् ॥३१॥

साऽपि दिव्याप्सरोभिस्तु पूज्यमाना सनातनी।
वैनतेयं समारुह्य तस्मान्मार्गाद्दिवं ययौ ॥३२॥

दासीगणैः पूर्वभागो सम्वृता जगदीश्वरी। सम्प्राप परमं धाम योगिगम्यं सनातनम् ॥३३॥

रसातलप्रविष्टां तु तां दृष्ट्वा सर्वमानुषाः। साध्वीसाध्वीतिसीतेयमुच्चैःसर्वे प्रचुक्रुशुः ॥३४॥

रामः शोकसमाविष्टः संगृह्य तनयावुभौ। मुनिभिः पार्थिवेन्द्रैश्च साकेतं प्रविवेश ह॥३५॥

अथ कालेन महता मातरः संशितव्रताः। कालधर्मं समापन्ना भर्त्रा स्वर्गं प्रपेदिरे ॥३६॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। चकार राज्यं धर्मेण राघवः संशितव्रतः ॥३७॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य राघवस्यनिवेशनम्। कालस्तापसरूपेण सम्प्राप्तोवाक्यमब्रवीत्॥३८॥

काल उवाच

रामराममहाबाहो ! धात्रा सम्प्रेषितोऽस्म्यहम्।
यद्ब्रवीमि रघुश्रेष्ठ ! तच्छृणुष्व महामते ! ॥३९॥

अर्चा करती हूँ तो भूदेवी मुझे विवर प्रदान करें ॥२६॥ यदि मैंने यह सत्य कहा है कि राम से भिन्न मैं किसी दूसरे पुरुष को नहीं जानती हूँ तो भूदेवी मुझे विवर प्रदान करें ॥२७॥ **महेश्वर ने कहा—** इस तरह से सीताजी के शपथ करते ही पृथिवी फट गयी ॥२८॥ उसी समय रत्नमय सिंहासन को अपने पीठ पर धारण करके गरुड़ लोगों को आश्चर्यित करते हुए प्रकट हुए ॥२९॥ उसके बाद भूदेवी ने अपने दोनों हाथों से सीताजी को पकड़कर उनका स्वागत करके अभिनन्दन किया और उसी आसन पर उनको बैठा दिया॥३०॥ उनको आसन पर बैठी हुयी देखकर आकाश में देवतागण बहुत अधिक सीताजी के ऊपर पुष्पों की वृष्टि किए ॥३१॥ वह भी सनातनी देवी अप्सराओं से पूजित होती हुयी गरुड़ पर बैठकर उसी मार्ग से वैकुण्ठ चली गयीं ॥३२॥ पूर्वभाग में दक्षिणों से घिरी हुयी जगदीश्वरी योगिगम्य परम धाम में चली गयीं ॥३३॥ उनको रसातल में प्रवेश की हुयी देखकर सभी मनुष्य जोर से कहने लगे कि सीताजी साध्वी हैं ॥३४॥ शोक सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी अपने दोनों पुत्रों को स्वीकार करके मुनियों तथा राजओं के साकेत पुरी में चले गये ॥३५॥ उसके बहुत दिन बाद प्रशंसित व्रत वाली माताओं की मृत्यु हो गयी और वे स्वर्ग में अपने पति को प्राप्त कर लीं ॥३६॥ प्रशंसित व्रत वाले श्रीरामचन्द्रजी ग्यारह हजार वर्षों तक धर्म पूर्वक राज्य किए ॥३७॥ उसके पश्चात् कुछ समय बाद श्रीरामचन्द्रजी के गृह में तपस्वी के वेष में काल आया और उसने कहा ॥३८॥ **काल ने कहा—** हे महाबाहो श्रीराम ! ब्रह्माजी ने मुझे आपके पास भेजा है। हे महामते! जो मैं कहता हूँ उसे आप सुनें ॥३९॥ हम दोनों को एकान्त में बात करना चाहिए। उसके बीच में जो

द्वन्द्वमेवहि कार्यं स्यादावयो:परिभाषितम् । तदन्तरे प्रविष्टो यस्य वध्योहि भविष्यति ॥४०॥

महेश्वर उवाच

तथेति च प्रतिश्रुत्य रामो राजीवलोचनः । द्वाःस्थं कृत्वा तुसौमित्रिं कालेनसमभाषत ॥
वैवस्वतोऽब्रवीद्वाक्यं रामं दशरथात्मजम् ॥४१॥

काल उवाच

शृणु राम ! यथावृत्तं ममाऽऽगमनकारणम् ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥४२॥
वसाऽस्मिन्मानुषे लोके हत्वा राक्षसपुङ्गवान् ।
एवमुक्तः सुरगणैरवतीर्णोऽसि भूतले ॥४३॥
तदयं समयः प्राप्तः स्वर्लोकं गमितुं त्वया ।
सनाथाहि सुराःसर्वे भवन्त्वद्यत्वयाऽनघ ! ॥४४॥

महेश्वर उवाच

एवमस्त्विवति काकुत्स्थो रामःप्राह महाभुजः ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्रदुर्वासास्तुमहातपाः ॥
राजद्वारमुपागम्य लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥४५॥

दुर्वासा उवाच

मां निवेदय काकुत्स्थं शीघ्रं गत्वा नृपात्मज ! ॥४६॥

महेश्वर उवाच

तमब्रवील्लक्ष्मणस्तु असांनिध्यमितिद्विज ! । ततः क्रोधसमाविष्टः प्राह तं मुनिसत्तमः ॥४७॥

दुर्वासा उवाच

शापं दास्यामि काकुत्स्थं रामं न यदि दर्शये: ॥४८॥

कोई भी आयेगा वह आपका वध्य होगा ॥४०॥ **महेश्वर ने कहा**— ठीक है इस तरह की प्रतिज्ञा करके राजीव लोचन श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी को अपना द्वारपाल बनाकर काल से बातचित करने लगे । वैवस्वत् ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा ॥४१॥ **काल ने कहा**— हे राम ! मेरे आने का जो कारण है उसे आप सुनें। आपने राक्षस श्रेष्ठों को मारकर ग्यारह हजार वर्ष इस मनुष्य लोक में निवास किया । इस तरह से देव समूह के द्वारा कहे जाने पर आप अवतीर्ण हुए ॥४२-४३॥ अतएव आपके अपने लोक में जाने का समय हो गया है । हे नाथ ! आज आपके द्वारा सभी देवता सनाथ हो जायँ ॥४४॥ **महेश्वर ने कहा**— महान् भुजाओं वाले श्रीराम ने कहा ठीक है ऐसा ही होगा । उसी समय वहाँ पर महातपस्वी दुर्वासा मुनि आये। वे राजद्वार पर आकर लक्ष्मणजी से कहे ॥४५॥ **दुर्वासा महर्षि ने कहा**— हे नृपात्मज ! शीघ्र श्रीराम को मेरे आने की सूचना दो ॥४६॥ **महेश्वर ने कहा**— लक्ष्मणजी ने महर्षि से कहा हे द्विज ! इस समय वे एकान्त में हैं । उसके बाद क्रुद्ध होकर मुनिश्रेष्ठ ने कहा ॥४७॥ दुर्वासा महर्षि बोले यदि तुम मुझे काकुत्स्थ राम से नहीं मिलाये तो मैं उनको शाप दे दूँगा ॥४८॥ **महेश्वर ने कहा**— उस शाप के भय

महेश्वर उवाच

तस्माच्छापभयाद्विप्रं राघवाय न्यवेदयत् । तत्रैवाऽन्तर्दधे कालः सर्वभूतभयावहः ॥४९॥
पूजयामास तं प्राप्तमृषिं दुर्वाससं नृपः । अग्रजस्य प्रतिज्ञां तु विज्ञाय रघुसत्तमः ॥५०॥
तत्याज मानुषं रूपं लक्ष्मणः सरयूजले। विसृज्य मानुषं रूपं प्रविवेश स्वकां तनुम्॥५१॥
फणासहस्रसंयुक्तं कोटीन्दुसमवर्चसम् । दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥५२॥
नागकन्यासहस्रैस्तु सम्वृतः समलङ्कृतः । विमानं दिव्यमारुह्य प्रययौ वैष्णवं पदम् ॥५३॥
लक्ष्मणस्यगतिंसम्यग्विदित्वारघुसत्तमः । स्वयमप्यथकाकुत्स्थः स्वर्गं गन्तुमभीप्सितः ॥५४॥

अभिषिच्याऽथ काकुत्स्थः स्वात्मजौ च कुशीलवौ ।
विभज्य रथनागाश्वं सधनं प्रददौ तयोः ॥५५॥
कुशवत्यां कुशं तं च शरवत्यां लवं तथा ।
स्थापयामास धर्मेण राज्ये स्वं रघुसत्तमः ॥५६॥

अभिप्रायं तु विज्ञाय रामस्य विदितात्मनः । आजग्मुर्वानराःसर्वेराक्षसाः सुमहाबलाः ॥५७॥

विभीषणोऽथ सुग्रीवो जाम्बवान्मारुतात्मजः ।
नीलो नलःसुषेणश्चनिषादाधिपतिर्गुहः ॥५८॥

अभिषिच्य सुतौ वीरौ शत्रुघ्नश्च महामनाः । सर्व एते समाजग्मुरयोध्यां रामपालिताम् ॥५९॥
ते प्रणम्य महात्मानमूचुः प्राञ्जलयस्तथा ॥६०॥

वानरप्रभृतयऊचुः

स्वर्लोकं गन्तुमुद्युक्तं ज्ञात्वा त्वां रघुसत्तम ! ।
आगता स्मोवयंसर्वेतवाऽनुगमनं प्रति ॥६१॥

से लक्ष्मणजी ने मुनि के आगमन की सूचना श्रीरामजी को दे दी । सभी जीवों के लिए भयङ्कर काल वहीं पर अन्तर्धान हो गया ॥४९॥ राजा ने आये हुए ऋषि की पूजा की । अपने बड़े भाई की प्रतिज्ञा को जानकर लक्ष्मणजी ॥५०॥ सरयू के जल में जाकर अपने मनुष्य रूप का परित्याग कर दिया । वे मानव शरीर को त्यागकर अपने शरीर में प्रवेश कर गये ॥५१॥ हजारो फणाओं से युक्त करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति वाले दिव्य माला को धारण किए हुए और दिव्य चन्दन को धारण किए हुए वे ॥५२॥ हजारों नाग कन्याओं से घिरे हुए, दिव्य विमान से भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥५३॥ लक्ष्मणजी की गति को अच्छी तरह जानकर रघुश्रेष्ठ श्रीराम भी स्वयं स्वर्ग जाना चाहे ॥५४॥ श्रीरामजी भी अपने दोनों पुत्रों कुश तथा लव को अभिषिक्त करके बाँटकर रथ हाथी घोड़े और धन दे दिए ॥५५॥ कुशवती में कुश को तथा स्रावस्ती में लव को अपने राज्य को धर्म पूर्वक राज्य पर स्थापित किए ॥५६॥ श्रीरामचन्द्रजी के अभिप्राय को सभी मनुष्य, राक्षस, महाबली राक्षस, विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान् हनुमानजी, नल, नील, सुषेण और निषदाधिपति ॥५७-५८॥ अपने वीर पुत्रों को अभिषिक्त करके शत्रुघ्नजी इत्यादि भी श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा पालित अयोध्या में आये ॥५९॥ वे श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनसे कहे॥६०॥ **वानर आदि ने कहा**— हे रघुश्रेष्ठ ! आपको स्वर्गलोक में जाने के लिए तैयार जानकर हमलोग आपका

न शक्ताः स्मः क्षणं राम जीवितुं त्वां विना प्रभो ! ।
तस्मात्त्वया विशालाक्ष ! गच्छामस्त्रिदशालायम् ॥६२॥

महेश्वर उवाच

तैरेवमुक्तः काकुत्स्थो बाढमित्यब्रवीत्ततः। अथोवाच महातेजा राक्षसेन्द्रं विभीषणम्॥६३॥

राम उवाच

राज्यं प्रशाधि धर्मेण मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावतिष्ठति मेदिनी ॥
तावद्रमस्व सुप्रीतः काले मम पदं व्रज ॥६४॥

महेश्वर उवाच

इत्युक्त्वाऽथ स काकुत्स्थः स्वार्चा विष्णु सनातनम् ।
श्रीरङ्गशायिनं सौम्यमिक्ष्वाकुकुलदैवतम् ॥६५॥

सम्प्रीत्या प्रददौ तस्मे रामो राजीवलोचनः। हनुमन्तमथोवाच राघवः शत्रुसूदनः॥६६॥

राम उवाच

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोकेहरीश्वर !। तावद्रमस्व मेदिन्यां काले मां व्रज सुव्रत ! ॥६७॥

महेश्वर उवाच

तमेवमुक्त्वा काकुत्स्थो जाम्बवन्तमथाऽब्रवीत् ॥६८॥

राम उवाच

द्वापरे समनुप्राप्ते यदूनामन्वये पुनः। भूभारस्य विनाशाय समुत्पत्स्ये त्वहं भुवि॥६९॥
करिष्ये तत्र संग्रामं त्वया भल्लूकसत्तम ! ॥७०॥

महेश्वर उवाच

तमेवमुक्त्वाकाकुत्स्थःसर्वास्तानृक्षवानरान् । उवाचवाचागच्छध्वमितिरामोमहाबलः ॥७१॥

अनुगमन करने के लिए आये हैं ॥६१॥ हे प्रभो ! आपके बिना हमलोग क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकते हैं । अतएव हे बड़े-बड़े नेत्रों वाले आपके साथ हमलोग भी स्वर्ग जायेंगे ॥६२॥ **महेश्वर ने कहा—** उन सबों के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा ठीक है । इसके बाद वे विभीषणजी से कहे॥६३॥ **श्रीरामजी बोले—** तुम धैर्य पूर्वक राज्य का प्रशासन करो मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ मत बनाओ । जब तक सूर्य चन्द्रमा और पृथिवी हैं तब तक तुम राज्य करो और समय आने पर मेरे लोक में आना ॥६४॥ **महेश्वर ने कहा—** इस तरह से कहकर श्रीरामचन्द्रजी अपनी सनातन अर्चा मूर्ति उनको प्रदान किए । श्रीरङ्गनाथ की सुन्दर मूर्ति जो इक्ष्वाकु वंश की कुलदैवत थी ॥६५॥ राजीव लोचन श्रीरामचन्द्रजी ने उस मूर्ति को प्रेम पूर्वक प्रदान करके उसके बाद श्रीहनुमान् जी से कहा ॥६६॥ **रामजी ने कहा—** हे हरीश्वर! जब तक संसार में मेरी कथा होती रहे तब तक आप पृथिवी पर रहें समय आने पर मेरे लोक में आ जायँ॥६७॥ **महेश्वर ने कहा—** उनको इस प्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने जाम्बवान् से कहा ॥६८॥ **श्रीरामजी ने कहा—** द्वापर युग के आने पर यदुवंश में मैं पृथिवी का भार उतारने के लिए पुनः अवतीर्ण

मन्त्रिणो नैगमाश्चैव भरतः कैकयीसुतः। राघवस्यानुगमने निश्चितास्ते समाययुः ॥७२॥
ततः शुक्लाम्बरधरो ब्रह्मचारी ययौ परम्। कुशान्गृहीत्वा पाणिभ्यामाचम्य प्रययावथ ॥७३॥
रामस्य दक्षिणेपार्श्वे पद्महस्ता रमा गता। तथैव धरणी देवी दक्षिणेतरगा तथा ॥७४॥
वेदाः साङ्गाःपुराणानिसेतिहासानिसर्वतः। ॐकारोथवषट्कारः सावित्रीलोकपावनी ॥७५॥

अस्त्रशस्त्राणि च तदा धनुराद्यानि पार्वति ! ।
अनुजग्मुस्तथा रामं सर्वे पुरुषविग्रहाः ॥७६॥

भरतश्चैव शत्रुघ्नः सर्वे पुरनिवासिनः। सपुत्रदाराः काकुत्स्थमनुजग्मुः सहानुगाः ॥७७॥
मन्त्रिणो भृत्यवर्गाश्च किङ्करा नैगमास्तथा। वानराश्चैव ऋक्षाश्च सुग्रीवसहितास्तदा ॥७८॥
सपुत्रदाराः काकुत्स्थमन्वगच्छन्महामतिम्। पशवः पक्षिणश्चैवसर्वे स्थावरजङ्गमाः ॥७९॥
अनुजग्मुर्महात्मानं समीपस्थानरोत्तमाः। ये च पश्यन्तिकाकुत्स्थंस्वपथानुगतं प्रभुम् ॥८०॥
ते तथाऽनुगता रामं निवर्त्तन्ते न केचन। अथ त्रियोजनं गत्वा नदींपश्चान्मुखींस्थिताम् ॥८१॥
सरयू पुण्यसलिलां प्रविवेश सहानुगः। ततः पितामहो ब्रह्मा सर्वदेवगणावृतः ॥८२॥
तुष्टाव रघुशार्दूलमृषिभिः सार्द्धमक्षरैः। अब्रवीत्तत्र काकुत्स्थं प्रविष्टं सरयूजले ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

आगच्छ विष्णो ! भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद ! ।
भ्रातृभिस्सहदेवाभैः प्रविशस्व निजां तनुम् ॥८४॥

होऊँगा ॥६९॥ भालुश्रेष्ठ ! उस अवतार में मैं आप से संग्राम करूँगा ॥७०॥ **महेश्वर ने कहा—** उनको इस प्रकार से कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने सम्पूर्ण वानरों एवं भालुओं से कहा कि आपलोग आइये ॥७१॥ मन्त्रीगण, वैदिक, कैकेयीजी के पुत्र भरतजी, श्रीरामचन्द्रजी का अनुगमन करने के लिए निश्चित करके वहाँ आये ॥७२॥ उसके बाद श्वेत वस्त्र धारण किए हुए ब्रह्मचारी श्रीरामचन्द्रजी हाथ में कुश लेकर आचमन करके चल पड़े ॥७३॥ श्रीरामजी के दाहिन भाग में लक्ष्मीजी चलीं उसी तरह से भूदेवी भी उनके बाये दायें चल रही थीं ॥७४॥ साङ्गवेद, पुराण तथा सभी इतिहास ओङ्कार तथा वष्ट्कार तथा लोकों को पवित्र करने वाली सावित्री देवी ॥७५॥ हे पार्वति ! सभी अस्त्र-शस्त्र तथा धनुष आदि सबके सब पुरुष का शरीर धारण करके श्रीरामचन्द्रजी का अनुगमन किए ॥७६॥ भरतजी, शत्रुघ्नजी सभी नागरवासी अपने पुत्र, पत्नी तथा अनुचरों के साथ श्रीरामचन्द्रजी का अनुगमन किए ॥७७॥ मन्त्रिगण, भृत्यवर्ग, किङ्कर, नैगम, वानर, ऋक्ष, सुग्रीव तथा सभी अपने पुत्रों तथा पत्नी के साथ महामति श्रीरामचन्द्रजी के पीछे चले । पशुगण, पक्षीगण तथा सभी स्थावर एवं जङ्गम जीव तथा समीप में रहने वाले श्रेष्ठ मनुष्य श्रीरामचन्द्रजी के पीछे चले। जो लोग भगवान् रामजी को अपने मार्ग में देखते थे श्रीरामजी का अनुगमन करने लगते थे ॥७८-८०॥ वे सभी श्रीराम का अनुगमन करने वाले लौटते नहीं थे । वे तीन योजन पश्चिमाभि मुखी नदी के तट पर जाकर ॥८१॥ पुण्य सलिला सरयू में अपने अनुचरों के साथ श्रीरामजी प्रवेश किए । उस समय सभी देवताओं के साथ ब्रह्माजी ॥८२॥ ऋषियों के साथ श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति किए । सरयू जल में प्रवेश किए श्रीरामचन्द्रजी से **ब्रह्माजी ने कहा—** हे मानद ! भगवन् विष्णों ! आप भाग्यवशात् प्राप्त हुए

वैष्णवीन्तां महातेजां देवाकारांसनातनीम् । त्वं हि लोकगतिर्देव ! नत्वां केचित्तुजानते ॥८५॥
त्वामचिन्त्यं महात्मानमक्षरं सर्वसंग्रहम् । यमिच्छसि महातेजस्तां तनुं प्रविशस्व भोः ॥८६॥

महेश्वर उवाच

तस्मिन्सूर्यकराकीर्णे पुष्पवृष्टिनिपातिते । उत्सृज्य मानुषं रूपं स्वां तनुम्प्रविवेश ह ॥८७॥
अंशाभ्यां शङ्खचक्राभ्यां शत्रुघ्नभरतावुभौ । प्रपेदाते महात्मानौ दिव्यतेजस्समन्वितौ ॥८८॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गपद्महस्तश्चतुर्भुजः । दिव्याभरणसम्पन्नो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥८९॥
दिव्यपीताम्बरधरः पद्मपत्रनिभेक्षणः । युवा कुमारः सौम्याङ्गः कोमलावयवोज्ज्वलः॥९०॥
सुस्निग्धनीलकुटिलकुन्तलः शुभलक्षणः । नवदूर्वाङ्कुरश्यामः पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥९१॥
देवीभ्यां सहितः श्रीमान्विमानमधिरुह्य च। तस्मिन्सिंहासने दिव्ये मूलेकल्पतरोःप्रभुः ॥९२॥
निषसाद महातेजाः सर्वदेवैरभिष्टुतः । राघवानुगता ये च ऋक्षवानरमानुषाः ॥९३॥
स्पृष्ट्वैव सरयूतोयं सुखेन त्यक्तजीविताः। रामप्रसादात्ते सर्वे दिव्यरूपधराः शुभाः ॥९४॥
दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यमङ्गलवर्चसः। आरुरुहुर्विमानं तदसङ्ख्यतत्र देहिनः ॥९५॥
सर्वैःपरिवृतः श्रीमान्रामो राजीवलोचनः। पूजितः सुरसिद्धौघैर्मुनिभिस्तु महात्मभिः ॥९६॥
आययौ शाश्वतं दिव्यमक्षरं स्वपदं विभुः । यः पठेद्रामचरितं श्लोकं श्लोकार्धमेव वा ॥९७॥

हैं आइये । देवताओं के समान कान्ति वाले आप अपने शरीर में प्रवेश करें ॥८३-८४॥ महातेज सम्पन्न देवता के समान आकार वाले उस शरीर को कोई नहीं जानता है । हे देव ! आप ही सांसारिक जीवों के प्राप्य हैं आपको कोई नहीं जानता है ॥८५॥ सबों के संग्रह स्वरूप अक्षर पुरुष तथा अचिन्त्य आप जिस शरीर में चाहे उसमें प्रवेश कर जायँ ॥८६॥ **महेश्वर ने कहा—** सूर्य की ज्योति से परिपूर्ण तथा जिस पर फूलों की वर्षा कर दी गयी थी, उस मनुष्य के शरीर को त्यागकर अपने शरीर में प्रवेश गये ॥८७॥ शङ्ख और चक्र के अंशों वाले महात्मा भरत और शत्रुघ्न दोनों दिव्य तेज से सम्पन्न होकर शङ्ख और चक्र को प्राप्त कर लिए ॥८८॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म हाथ में धारण किए हुए चतुर्भुज, दिव्यालङ्कारों से सुशोभित दिव्य चन्दन का लेप लगाये हुए ॥८९॥ दिव्य पीताम्बर, धारण किए हुए, पद्म दल के समान नेत्र वाले, युवा कुमार तथा सौम्य अङ्ग वाले, कोमल अवयवों से सुशोभित ॥९०॥ चिकने घुंघराले केशों वाले शुभ लक्षणों से सम्पन्न नवीन दूर्वा के समान श्याम वर्ण वाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले ॥९१॥ श्रीदेवी और भूदेवी के साथ विमान पर बैठकर उस सिंहासन पर विद्यमान दिव्य कल्पतरु के मूल में ॥९२॥ महातेजस्वी सभी देवताओं से स्तुति किए जाते हुए बैठ गये । श्रीरामचन्द्रजी का अनुगमन करने वाले जितने ऋक्ष, वानर और मनुष्य थे ॥९३॥ सरयू के जल को स्पर्श करके ही सुख पूर्वक अपने जीवन को त्यागकर श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से वे सभी शुभ दिव्य रूप धारण करके ॥९४॥ दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किए हुए दिव्य मङ्गलमय कान्ति से सम्पन्न उस विमान पर असंख्य शरीर धारण किए हुए॥९५॥ चढ़ गये । सबों से घिरे हुए ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीरामजी सभी देवताओं और सिद्धों के द्वारा पूजित होकर मुनियों तथा महात्माओं ॥९६॥ के साथ अपने शाश्वत दिव्य एवं अक्षर अपने धाम में आये । जो कोई श्रीरामचरित के एक श्लोक अथवा आधे श्लोक को ॥९७॥ पढ़ता अथवा सुनता है अथवा भक्ति पूर्वक स्मरण करता

श्रृणुयाद्वा तथा भक्तया स्मरेद्वा शुभदर्शने ! ।
कोटिजन्मार्जितात्पापाज्ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतात् ।।९८।।
विमुक्तो वैष्णवं लोकं पुत्रदारैश्चबान्धवैः । समाप्नुयाद्योगगम्यमनायासेन वै नरः ।।९९।।
एतत्ते कथितंदेवि ! रामस्यचरितंमहत् ।
धन्योऽस्म्यहंत्वया देवि ! रामचन्द्रस्यकीर्त्तनात् ।।
किमन्यच्छ्रोतुकामाऽसि तद्ब्रवीमि वरानने ! ।।१००।।
इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे श्रीरामचरितकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२४४।।

दो सौ पैंतालिसवाँ अध्याय

श्रीपार्वत्युवाच
रघुनाथस्य चरितं साधूक्तं हि त्वया विभो ! ।
श्रुत्वा धन्याऽस्मि देवेश ! त्वत्प्रसादान्महेश्वर ! ।।१।।

है हे पार्वति ! वह करोड़ों जन्मों में अर्जित ज्ञात अथवा अज्ञात पापों से ।।९८।। मुक्त होकर पुत्र, पत्नी और बान्धवों के साथ विष्णु लोक में जाता है । वह बिना किसी प्रयास के ही योगियों को प्राप्त होने वाले परम्पद को प्राप्त कर लेता है ।।९९।। हे देवि ! इस महान् रामचरित का वर्णन मैंने किया । हे देवि ! रामचन्द्रजी का वर्णन करके मैं धन्य हो गया हूँ । अब दूसरी कौन सी बात तुम सुनना चाहती हो उसे मैं तुमको बतलाऊँ ।।१००।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीरामचरित वर्णन नामक दो सौ चौवालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४४।।

श्रीकृष्णावतार की कथा के प्रसङ्ग में कंस, जरासन्ध आदि राक्षसों के उत्पात से भयभीत पृथिवी का ब्रह्माजी के पास जाना, देवताओं के साथ ब्रह्माजी का भगवान् विष्णु के समीप जाकर उनकी प्रार्थना करना, पृथिवी के भार को दूर करने के लिए भगवान् विष्णु का आश्वासन देना, कारावास में विद्यमान वसुदेव के गृह में भगवान् कृष्ण का प्रादुर्भाव, भगवान् कृष्ण को वृन्दावन में लाया जाना, कंस के अत्याचार का बर्णन, पूतना आदि का मारा जाना, श्रीकृष्ण के द्वारा अनेक दिव्य लीला का प्रदर्शन और कंस का वध

श्रीपार्वतीजी ने कहा— हे विभो ! आपने श्रीरामचन्द्रजी के चरित का अच्छी तरह से वर्णन किया। हे देवेश ! हे महेश्वर ! उसको सुनकर मैं धन्य हो गयी ।।१।। वसुदेवजी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण के महान्

वसुदेवसुतस्याऽस्यकृष्णस्य चरितंमहत् । श्रोतुमिच्छामि देवेश ! चरितं कल्मषापहम्॥२॥

रुद्र उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामिकृष्णस्याऽस्य महात्मनः ।
चरितंवासुदेवस्य सर्वेषांफलदंनृणाम् ॥३॥

यदूनामन्वये देवि ! वसुदेवइतीरितः । देवमीढस्य पुत्रोऽभूत्सर्वधर्मविदांवरः ॥४॥
देवकस्याऽत्मजां देवि देवकीं देववर्णिनीम्। उपयेमे विधानेन मथुरायां नृपात्मजः ॥५॥
उग्रसेनस्य पुत्रोऽभूत्कंसः शूरो महाबलः । तयोरथ वरं तत्र चोदयामास सारथिः ॥६॥
समागतेषु तेष्वेवं पथि रम्ये शुभावहे । अन्तरिक्षेऽशरीरा वाक्प्राह गम्भीरया गिरा॥७॥

आकाशवागुवाच

अस्यास्तवाऽष्टमो गर्भः कंस प्राणान्हरिष्यति ॥८॥

रुद्र उवाच

तच्छ्रुत्वा हन्तुमारेभे कंसोऽपि भगिनीं तदा ।
तमब्रवीत्सुसंरब्धं वसुदेवः सुबुद्धिमान् ॥९॥

वसुदेव उवाच

नहन्तव्या महाभाग ! भगिनी धर्मतस्त्वया । गर्भानिवसमुत्पन्नाञ्जहि राजन्महाबल ! ॥१०॥

रुद्र उवाच

तथेत्याह तदा कंसो वसुदेवं च देवकीम् । निबध्य स्वगृहे रम्ये सर्वभोगे न्यवेशयत्॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि ! भूमिभारप्रपीडिता । जगाम धरणी देवी सहसा ब्रह्मणोऽन्तिकम्॥१२॥
समेत्य जगतामीशं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । प्राह गम्भीरया वाचा धरणी लोकधारिणी ॥१३॥

चरित को मैं सुनना चाहती हूँ । क्योंकि वह पापों का विनाश करने वाला है ॥२॥ **रुद्र ने कहा—** हे देवि! मैं भगवान् कृष्ण के चरित को बतलाता हूँ उसे तुम सुनो । वह मनुष्यों को सभी फलों को प्रदान करने वाला है ॥३॥ हे देवि ! यादवों के वंश में वसुदेव नामक देवमीढ के पुत्र थे । वे सभी धर्मज्ञों में श्रेष्ठ थे ॥४॥ देवक की पुत्री सुन्दरी देवकी के साथ उन्होंने विधि पूर्वक मथुरा में विवाह किया ॥५॥ उग्रसेन का पुत्र कंस, वीर और महाबलवान् था । उन दोनों को श्रेष्ठ रथ पर बैठाकर वह सारथि बनकर उसे हाँक रहा था ॥६॥ उन सबों को इस तरह सुन्दर तथा शुभ करने वाले मार्ग में गम्भीर शब्दों में आकाशवाणी हुयी । **आकाशवाणी ने कहा—** हे कंस ! इसका आठवाँ गर्भ तुमको मार देगा ॥७-८॥ **रुद्र ने कहा—** उसको सुनकर कंस उसी समय अपनी बहन को मारने लगा । अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेव उससे कहे । **वसुदेव ने कहा—** हे महाभाग ! आपको धर्मानुसार इसको नहीं मारना चाहिए । इसके उत्पन्न हुए गर्भो को ही आप मार दीजियेगा ॥९-१०॥ **रुद्र ने कहा—** उस समय कंस ने कहा ठीक है । वह उन दोनों को अपने मनोहर तथा भव्य गृह में बाँधकर रख दिया ॥११॥ हे देवि ! भार से अत्यन्त पीड़ित होकर पृथिवी सहसा ब्रह्माजी के पास चली गयी ब्रह्माजी के पास आकर पृथिवी ने गम्भीर वाणी में कहा ॥१२-१३॥ **पृथिवी ने कहा—** हे सुव्रत ! प्रजापते ! मैं लोक का भार नहीं धारण कर पा रही हूँ । मुझ पर पापी राक्षस

धरण्युवाच

प्रजापते ! न शक्ताऽस्मि धर्तुं लोकानिमान्प्रभो ! ।
राक्षसाः पापकर्माणः संस्थिता मयि सुव्रत ! ॥१४॥
जगतः सकलान्धर्मान्विध्वंसन्तो महाबलाः । अधर्मवर्तिनः सर्वे नराः पापविमोहिताः ॥१५॥
स्वल्पमल्पतरं धर्मं लोकेऽस्मिन्न च दृश्यते ।
धर्मेणैव धृता देव ! सत्यशौचयुतेन च ॥
तस्मादधर्मसम्भूतं न लोकं धर्तुमुत्सहे ॥१६॥

रुद्र उवाच

इत्युक्त्वा धरणी देवी तत्रैवाऽन्तरधीयत। ततः सुरगणाः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥१७॥
क्षीराब्धेरुत्तरं कूलमधिगम्य जगत्पतिम् । तुष्टुवुः स्तुतिभिर्दिव्यैर्मुनयश्च महौजसः ॥
ततः प्रसन्नः प्राहेशः सर्वांस्तान्मुनिसत्तमान् ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

भोभो ! देवगणास्सर्वे किन्निमित्तमिहाऽऽगताः ॥१९॥

रुद्र उवाच

ततः पितामहः प्राह देवदेवं जनार्दनम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव ! जगन्नाथ ! पृथिवी भारपीडिता । राक्षसा बहवो लोके समुत्पन्ना दुरासदाः ॥२१॥
जरासन्धश्च कंसश्च प्रलम्बो धेनुकादयः । दुरात्मानः प्रबाधन्ते सर्वलोकन्सनातनान् ॥
भारावतरणं कतु पृथिव्यास्त्वमिहाऽर्हसि ॥२२॥

रुद्र उवाच

एवमुक्तोहृषीकेशो ब्रह्मणा परमेष्ठिना । प्राह गम्भीरया वाचा जगतीपतिरव्ययः ॥२३॥

विद्यमान हैं ॥१४॥ वे महाबलवान् हैं और जगत् के सम्पूर्ण धर्मों को ध्वस्त कर रहे हैं पाप से मोहित होकर सभी मनुष्य अधार्मिक हो गये हैं ॥१५॥ इस लोक में स्वल्प अथवा अत्यन्त स्वल्प भी पुण्य नहीं दिखायी दे रहा है । हे देव ! धर्म, सत्य तथा पवित्रता के द्वारा ही लोक को धारण किया गया है । अतएव अधर्म भरे लोक को मैं धारण करने का उत्साह नहीं कर पाती हूँ ॥१६॥ **रुद्र ने कहा**— यह कहकर पृथिवी देवी वहीं अन्तर्धान हो गयी । उसके बाद ब्रह्मा, रुद्र इत्यादि सभी देवता ॥१७॥ क्षीर सागर के उत्तर तट पर आकर जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु की दिव्य स्तुतियों से स्तुति किए और महाओजस्वी दिव्य मुनिगण भी स्तुति किए । उसके पश्चात् प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उन सभी मुनिश्रेष्ठों से कहे ॥१८॥ **श्रीभगवान् बोले**— हे सभी देवगण ! आप सभी यहाँ पर किस कारण से आये हैं ॥१९॥ **रुद्र ने कहा**— उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने देवदेव भगवान् जनार्दन से कहा ॥२०॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— हे देवदेव ! हे जगन्नाथ पृथिवी भार से पीड़ित हो गयी हैं । संसार में बहुत से भयङ्कर राक्षस पैदा हो गये हैं ॥२१॥ जरासन्ध, कंस, प्रलम्बासुर, धेनुकासुर ये सभी दुष्ट सनातन सभी लोकों को कष्ट दे रहे हैं । आप पृथिवी

श्रीभगवानुवाच

अवतीर्याऽथ लोकेऽस्मिन्यदूनामन्वये सुराः ! ।
अवनीभारमव्यग्रमपास्यामि महाबलाः ॥२४॥

रुद्र उवाच

एवमुक्ताः सुरास्सर्वे नमस्कृत्य जनार्दनम् ।
स्वान्स्वाँल्लोकान्समासाद्य परेशं तेऽन्वचिन्तयन् ॥
ततो नारायणीं मायां परमेशःसमब्रवीत् ॥२५॥

श्रीभगवानुवाव

हिरण्याक्षस्य षट्पुत्रान्समानीयाऽवनीतले । वसुदेवस्य पत्न्यान्तु देवक्यां सन्निवेशय॥२६॥
अनन्तांशःसप्तमोऽत्र सम्प्रविष्टस्तुमाचिरम् । तस्याःसपत्न्यां रोहिण्यांददस्वशुभदर्शने ॥२७॥
ततोऽष्टमेममांशस्तु देवक्यांसम्भविष्यति । नन्दगोपस्य पत्न्यान्तु यशोदायां सनातनी ॥२८॥
तेंऽशभूतामहानिद्रा विन्ध्यं गत्वा महाचलम् ।
तत्रसम्पूज्यमाना हि देवैरिन्द्रपुरोगमैः ॥
हन्याद्दैत्यान्महावीर्याञ्छुम्भासुरपुरोगमान् ॥२९॥

रुद्र उवाच

तथेत्युक्त्वामहामाया हिरण्याक्षसुतांस्तदा । पर्यायेण च देवक्याषड्गर्भान्संन्यवेशयत् ॥३०॥
ताञ्जघान तदा कंसो जातमात्रान्महाबलः । ततस्तु सप्तमो गर्भो ह्यनन्तांशेन चोदितः ॥३१॥
वर्धमानं तु गर्भतं रोहिण्यां समुपानयत् । गर्भसङ्कर्षणात्तस्यां जातः सङ्कर्षणोऽव्ययः ॥३२॥

का भार उतार दें ॥२२॥ **रुद्र ने कहा**— परमेष्ठी ब्रह्माजी के इस तरह कहने पर, निर्विकार, संसार के स्वामी ने गम्भीर वाणी में कहा ॥२३॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— हे देवताओं ! मैं यदुवंश में अवतीर्ण होकर पृथिवी के अत्यन्त उग्र भार को दूर कर दूँगा ॥२४॥ **रुद्र ने कहा**— इस तरह से कहे जाने पर सभी देवता भगवान् जनार्दन को नमस्कार करके अपने-अपने लोकों में आकर श्रीभगवान् का चिन्तन करने लगे। उसके पश्चात् श्रीभगवान् नारायणी माया से कहे ॥२५॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— हिरण्याक्ष के छह पुत्रों को पृथिवी पर लाकर वसुदेव की पत्नी के गर्भ में डाल दो ॥२६॥ सातवें गर्भ में अनन्त के अंश शीघ्र ही प्रवेश करेंगे । उनको देवकी की सौत रोहिणी के गर्भ में दे देना ॥२७॥ उसके पश्चात् आठवें गर्भ में मेरा अंश देवकी के गर्भ में होगा । हे सनातनी ! नन्द की पत्नी यशोदा के गर्भ में तुम्हारे अंश स्वरूप महानिद्रा होगी । वह विन्ध्याचल पर्वत पर जाकर पूजित होगी इन्द्र आदि देवता भी उसकी पूजा करेंगे ॥२८॥ वह महाराक्षस शुम्भासुर आदि महापराक्रमी असुरों का वध करने का काम करेगी ॥२९॥ उसके बाद ठीक है, ऐसा कहकर महामाया हिरण्याक्ष के पुत्रों को देवकी छह गर्भों में क्रमशः डालती गयी॥३०॥ उन सबों को उत्पन्न होते ही महाबलवान् कंस ने मार दिया । उसके बाद सातवाँ गर्भ अनंत अंश से देवकी के गर्भ में आया ॥३१॥ बढ़ते हुए उस अंश को महामाया ने रोहिणी के गर्भ में डाल दिया । उस गर्भ का आकर्षण करने के कारण उसका नाम सङ्कर्षण हुआ ॥३२॥ भाद्र पद के कृष्ण पक्ष

कृष्णाष्टम्यान्तु रोहिण्यां प्रौष्ठपाद्यां शुभोदये ।
रोहिणी जनयामास पुत्रं सङ्कर्षणंप्रभुम् ॥३३॥
ततस्तुदेवकीगर्भमापेदे भगवान्हरिः । आपन्नागर्भां तां दृष्ट्वा कंसो भयनिपीडितः ॥३४॥
ततः सुरगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । तुष्टुवुर्देवकीं तत्र विमानस्था नभस्तले ॥३५॥
ततस्तु दशमे मासि कृष्णे नभसि पार्वति ! ।
अष्टम्यामर्द्धरात्रेच तस्यां जातो जनार्दनः ॥३६॥
इन्दीवरदलश्यामः पद्मपत्रायतेक्षणः । चतुर्भुजः सुन्दराङ्गो दिव्याभरणभूषितः ॥३७॥
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्को वनमालाविभूषितः । वसुदेवस्यजातोऽसौ वासुदेवः सनातनः ॥३८॥
तं दृष्ट्वा जगतां नाथं कृष्णमानकदुन्दुभिः । उवाचप्राञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्य जगन्मयम् ॥३९॥

वसुदेव उवाच

जातोऽस्मि मे जगन्नाथ ! भक्तकल्पतरो प्रभो ! ।
त्वमेव सर्वदेवानामनादिः पुरुषोत्तमः ॥४०॥
त्वमचिन्त्यं महद्भूतं योगिध्येयः सनातनः । मम पुत्रत्वमापन्नो धरण्यां धरणीधर ! ॥४१॥
दृष्ट्वैतदद्भुतं रूपमैश्वरं पुरुषोत्तमः । दानवाः पापकर्माणो न सहन्ते महौजसः ॥४२॥

रुद्र उवाच

इत्यर्थितः स्तुतस्तेन पद्मनाभः सनातनः । उपसंहृतवान्रूपं चतुर्भुजसमन्वितम् ॥४३॥
मानुषेणैव भावेन द्विभुजेन व्यरोचत । ये चाऽङ्गरक्षकाः सर्वे दानवास्तत्र संस्थिताः ॥४४॥
ते चापि मायया तस्या मोहितास्तमसावृताः ।
एतस्मिन्नन्तरे देवमादायानकदुन्दुभिः ॥४५॥

की अष्टमी तिथि को शुभ लग्न में रोहिणी ने सङ्कर्षण भगवान् को जन्म दिया ॥३३॥ उसके बाद देवकीजी के गर्भ में श्रीहरि भगवान् आये । देवकी को देखकर कंस भयभीत हो गया ॥३४॥ उसके पश्चात् सभी देवता अत्यन्त हर्षित होकर आकाश में विमान पर चढ़कर देवकीजी की स्तुति किए ॥३५॥ हे पार्वति ! उसके पश्चात् भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को उनके गर्भ से श्रीभवान् उत्पन्न हुए ॥३६॥ नील कमल दल के समान श्याम वर्ण वाले, कमल के समान नेत्र वाले, चार भुजाओं वाले, देखने में सुन्दर तथा दिव्य आभूषणों से भूषित वे वसुदेव के पुत्र भगवान् वासुदेव हुए । वे वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभ मणि को धारण किए हुए थे, वनमाला से विभूषित थे ॥३७-३८॥ उन जगत् स्वामी को देखकर वसुदेवजी श्रीभगवान् को हाथ जोड़कर नमस्कार करके कहे ॥३९॥ **वसुदेवजी ने कहा**— हे जगन्नाथ ! हे भक्तों के लिए कल्पतरो ! मैं आप से ही उत्पन्न हूँ । हे प्रभो ! आप ही सभी देवताओं में अनादि और पुरुषोत्तम हैं ॥४०॥ आप अचिन्त्य, महान् योगियों द्वारा चिन्तन किए जाने वाले सनातन हैं। हे धरणीधर ! आप पृथिवी पर मेरे पुत्र बन गये हैं ॥४१॥ आपके इस ईश्वर रूप को देखकर हे पुरुषोत्तम! पापी दानव आपके इस रूप को देखकर उसको वर्दास्त नहीं करेंगे ॥४२॥ **रुद्र ने कहा**— वसुदेवजी द्वारा इस तरह से प्रार्थना किए जाने वाले सनातन पद्मनाभ भगवान् ने अपने चतुर्भुज रूप को उपसंहत कर लिया॥४३॥ वे मनुष्य रूप से दो भुजाओं वाले होकर सुशोभित हुए । वहाँ पर अङ्गरक्षक रूप से जो

प्रययौ नगरात्तूर्णं सर्वदेवैरभिष्टुतः। पयोधरे वर्षमाने नागराजो महाबलः ॥४६॥
फणासहस्रेणाच्छाद्य भक्तयादेवं समन्वगात्। तौ गोपुरकपाटौतु तत्पादस्पर्शनात्तदा ॥४७॥
भिद्यमानौ सुविवृतौ तत्रस्थाश्च विमोहिताः। स्रोतस्विनी सुपूर्णा या यमुनाऽपि महात्मनः ॥४८॥
प्रवेशाज्जानुमात्रन्तु जलंसा चाप्युपावहत्। उत्तीर्ययमुनां सोऽथाव्रजत्तत्तीरसंस्थितम् ॥४९॥
संस्तूयमानस्त्रिदशैः प्रविवेश यदूत्तमः। तत्र नन्दस्य पत्नी सा प्रसूता गोव्रजे शुभे ॥५०॥
विमोहिता माययैव सुषुप्ता तमसावृता। तस्यास्तु शयने देवं विनिक्षिप्य स यादवः ॥५१॥
तां कन्यां समुपादाय प्रययौ मथुराम्पुनः। पत्न्यै दत्वाऽथतां बालामुवाससुसमाहितः ॥५२॥
रुरोद बालभावात्सा देवकीशयनंगता। अथ बालध्वनिं श्रुत्वा तद्गृहस्याऽङ्गरक्षकाः ॥५३॥
कंसायाऽऽवेदयामासुर्देवकीप्रसवं शुभम्। कंसस्तूर्णमुपेत्यैनां जग्राह बालिकां तदा ॥५४॥

चिक्षेप च शिलापृष्ठे साऽपि तूर्णं वियत्स्थिता।
तस्योत्तमाङ्गे स्वपदं दत्त्वा तूर्णं खमास्थिता ॥
उवाचाऽष्टभुजादेवी तदा राक्षसपुङ्गवम् ॥५५॥

देव्युवाच

किं मया क्षिप्तया मन्द! जातोयस्त्वां हनिष्यति।
सर्वस्यजगतः स्रष्टाधर्ताहर्ताचयःप्रभुः ॥
अस्मिँल्लोके समुत्पन्नः स ते प्राणान्हरिष्यति ॥५६॥

रुद्र उवाच

इत्युक्त्वा तेजसा देवी सहसा पूरयन्नभः। जगाम देवगन्धर्वैः स्तूयमाना हिमाचलम् ॥५७॥

दानव विद्यमान थे ॥४४॥ वे सब भी माया से मोहित हो गये। उसी बीच में भगवान् को लेकर वसुदेवजी॥४५॥ सभी देवताओं से स्तुति किये जाते हुए वे नगर से शीघ्र निकल पड़े। वर्षा होते रहने पर महाबलवान् शेषनाग ॥४६॥ हजारों फणाओं से ढंककर भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् का अनुगमन किए उनके चरण का स्पर्श होते ही गोपुर की किवाड़ ॥४७॥ टूटकर माया से मोहित होकर खुल गये। भरी हुयी यमुना भी श्रीभगवान् महात्मा वसुदेवजी के प्रवेश करने से घुटने भर जल वाली हो गयी। यमुना को पार करके वसुदेवजी दूसरे तट पर विद्यमान ॥४८-४९॥ देवताओं से स्तुति किए जाते हुए गोव्रज (गोकुल) में प्रवेश किए। वहाँ पर नन्द की पत्नी ने प्रसव किया था ॥५०॥ माया के द्वारा मोहित होने के कारण वह सुखपूर्वक सोयी थी। उनकी शय्या पर श्रीभगवान् को रखकर वसुदेवजी ॥५१॥ उस कन्या को लेकर फिर मथुरा आये। पत्नी को उस बालिका को देकर वे सावधानी पूर्वक रहे ॥५२॥ देवकी की शय्या पर जाकर वह बालिका बालभाव से रोने लगी। उस बालिका की ध्वनि को सुनकर उस घर के अङ्ग रक्षक ॥५३॥ कंस को देवकी के प्रसव की सूचना दे दिए। कंस शीघ्र देवकी के पास आकर शीघ्रता से उस बालिका को ले लिया ॥५४॥ उसने उसको पत्थर पर पटक दिया। किन्तु वह शीघ्रता से आकाश में जाकर स्थित हो गयी। वह उसके शिर पर पैर रखकर शीघ्र आकाश में स्थित हो गयी। वह अष्टभुजा देवी होकर उस राक्षस श्रेष्ठ से कही ॥५५॥ **देवी ने कहा**— हे मूर्ख! मुझको पटकने से क्या लाभ है ? तुमको जो मारेगा वह जन्म ले चुका है। वे ही प्रभु सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले और उसका विनाश करने

कंसस्तदोद्विग्नमनाः समाहूय स्वदानवान्। प्रलम्बचाणूरमुखानुवाच भयपीडितः ॥५८॥

कंस उवाच

अस्माद्भयात्सुरगणा उपेत्य क्षीरसागरम्। आचचक्षुर्हरेः सर्वं रक्षोविध्वंसनम्प्रति ॥५९॥
तेषान्तु वचनंश्रुत्वा धरण्यां धरणीधरः। मानुषेणैव भावेन समुत्पन्नो हि सोऽव्ययः ॥६०॥
तदद्य सर्वे यूयं वै राक्षसाः कामरूपिणः। समुद्रिक्तबलान्बालान्मारयध्वमाशङ्किताः ॥६१॥

रुद्र उवाच

इत्यादिश्यततःकंसो वसुदेवंचदेवकीम्। आश्वास्य मोचयित्वाऽथ स्ववेश्मान्तर्विवेशह ॥६२॥
वसुदेवस्ततो गत्वा नन्दव्रजमनुत्तमम्। तेन सम्पूजितस्तत्र निरीक्ष्य तनयं मुदा ॥
उवाच नन्दपत्नीं तां यशोदां यदुनन्दनः ॥६३॥

वसुदेव उवाच

सुभगे ! मत्सुतमिमं रोहिणीजठरोद्भवम्। स्वपुत्रमिव रक्षस्व भिया कंसादिहागतम् ॥६४॥

रुद्र उवाच

तथेत्याह तदा तन्वी नन्दपत्नी दृढव्रता। लब्ध्वैव पुत्रयुगलमुत्पुपोषमुदान्विता ॥६५॥
निक्षिप्य तनयौ गेहे नन्दगोपस्य यादवः। विश्रब्धः प्रययौ तूर्णं मथुरां कंसपालिताम् ॥६६॥
ततो गर्भः शुभदिने वसुदेवेन नोदितः। नन्दगोपव्रजं गत्वा तत्रस्थैः पूजितो द्विजः ॥६७॥
विधिना जातकं कर्मकृत्वा देवस्य गौकुले। नाम चात्राऽकरोद्दिव्यं पुत्रयोर्वासुदेवयोः ॥६८॥
सङ्कर्षणो रौहिणेयो बलभद्रो महाबलः। रामइत्यादिनामानि पूर्वजस्याऽकरोद्द्विजः ॥६९॥

वाले हैं। इस लोक में उत्पन्न होकर वे तुम्हारे प्राणों का हरण करेंगे ॥५६॥ यह कहकर वह देवी अचानक आकाश को अपने तेज से प्रकाशित करती हुयी देवताओं तथा गन्धर्वों द्वारा स्तुति की जाती हुयी हिमाचल पर चली गयी ॥५७॥ उस समय उद्विग्न होकर कंस अपने दानवों को बुलाकर भयभीत हुआ वह प्रलम्ब चाणूर आदि से कहा ॥५८॥ **कंस ने कहा—** हमारे भय से देवगण क्षीर सागर में जाकर श्रीहरि से सारी बातों को बतलाये कि राक्षस किस तरह से विध्वंस कर रहे हैं ॥५९॥ उन सबों के वचन को सुनकर भगवान् पृथिवी पर मनुष्य रूप से उत्पन्न हो गये हैं ॥६०॥ अतएव तुम सभी अपने मनोनूकूल रूप धारण करने वाले बल सम्पन्न सभी बालकों को निर्भय होकर मार डालो ॥६१॥ **रुद्र ने कहा—** इस तरह से आदेश देने के बाद कंस वसुदेव और देवकी को आश्वासन देकर और बन्धन मुक्त करके अपने घर के भीतर रखा ॥६२॥ वसुदेवजी उसके बाद नन्द वज्र में जाकर उनके द्वारा पूजित होकर अच्छी तरह से अपने पुत्र को देखकर प्रसन्नता पूर्वक नन्दजी की पत्नी से कहे ॥६३॥ **वसुदेवजी ने कहा—** हे सुभगे ! रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न यह मेरा पुत्र है अपने पुत्र के समान इसकी रक्षा करना, कंस के भय से यह यहाँ आया है ॥६४॥ **रुद्र ने कहा—** नन्दजी की दृढव्रता पत्नी ने कहा ठीक है। वह दोनों पुत्रों को प्राप्त करके प्रसन्नता पूर्वक उनका पालन करने लगी ॥६५॥ नन्दगोप के घर में अपने दोनों पुत्रों को छोड़कर वे विश्वस्त होकर कंस के द्वारा पालित मथुरा में शीघ्र चले गये ॥६६॥ उसके बाद गर्ग महर्षि वसुदेवजी के द्वारा प्रेरित होकर नन्दगोप के व्रज में जाकर वहाँ के लोगों से पूजित हुए ॥६७॥ उन्होंने विधिपूर्वक गोकुल में श्रीभगवान् का जात कर्म करके उनका शुभ नामकरण किया ॥६८॥ उन्होंने बलरामजी का नाम

श्रीधरः श्रीकरः श्रीमान्कृष्णोऽनन्तो जगत्पतिः ।
वासुदेवो हृषीकेशइत्याद्यवरजस्य च ॥७०॥
रामकृष्णाविति ख्यातिमस्मिँल्लोके गमिष्यतः ।
एवमुक्त्वा द्विजश्रेष्ठः सम्पूज्यपितृदेवताः ॥७१॥
सम्पूज्यमानो गोपालैराययौ मथुरां पुनः। कंसेन प्रेषिता रात्रौ पूतना बालघातिनी ॥७२॥
विषलिप्तं स्तनं प्रादात्कृष्णायाऽमिततेजसे ।
कृष्णास्तु राक्षसीं ज्ञात्वा पपौ गाढं स्तनं भृशम् ॥७३॥
प्राणैः सह महातेजा राक्षस्या यदुपुङ्गवः। सा विह्वलाङ्गी सहसा विच्छिन्नस्नायुबन्धना॥७४॥
पपात वेपमाना सा ममार च महास्वना । तस्याः शब्देन महता पूरितं च नभस्तलम्॥७५॥
त्रस्ताःसर्वे ततो गोपादृष्ट्वातां पतितांभुवि । कृष्णंचक्रीडमानन्तं राक्षस्यास्तु महोरसि॥७६॥
समुद्विग्नास्ततस्तूर्णमादाय तनयं तदा । रक्षोभिया तदा तस्मिन्गोपुरीषेण मूर्द्धनि॥७७॥
सम्मार्जयामास तदा गोबालेन तदाननम्। नन्दगोपः समभ्येत्य सुतमादाय भामिनी ॥७८॥
भगवन्नामभिस्तस्य सर्वाङ्गेषुप्रमार्जनम् । कृत्वातांतामसींभीमां बहिर्विन्यस्यगोव्रजात्॥७९॥
ददाह गोपवृन्दैश्च त्रासितैस्तत्र गोव्रजे । कदाचिच्छकटस्याऽधः शयानो भगवान्हरिः॥८०॥
प्रसार्य चरणौ तत्र रुरोद मधुसूदनः। तस्य पादप्रहारेण शकटं परिवर्तितम् ॥८१॥
विध्वस्तकुम्भभाण्डं तद्विपरीतं पपात वै । ततोगोप्यश्च गोपाश्च दृष्ट्वां तच्छकटं महत् ॥८२॥

संकषर्ण, रौहिणीय, बलभद्र महाबलराम इत्यादि रखा ॥६९॥ श्रीभगवान् का नाम श्रीधर, श्रीकर, श्रीमान, कृष्ण अनन्त, वासुदेव जगत्पति तथा हृषीकेश इत्यादि रखा ॥७०॥ उन्होंने कहा कि ये दोनों राम और कृष्ण के नाम से विख्यात होंगे । इस तरह से कहकर तथा नाम रखकर वे ब्राह्मण श्रेष्ठ पितरों तथा देवताओं की पूजा किए ॥७१॥ फिर गोपालों के द्वारा पूजित होकर वे पुनः मथुरा आये । कंस ने रात्रि में बालघातिनी पूतना को भेजा ॥७२॥ उसने विष से लिप्त अपने स्तन को अमित तेजस्वी भगवान् के मुख में डाल दिया । भगवान् उसको राक्षसी जानकर बहुत जोर से उसके स्तन को पीने लगे । उसके साथ वे राक्षसी के प्राण को भी पीते जा रहे थे । वह शीघ्र ही घबरा गयी और उसके स्नायु बन्धन छिन्न भिन्न हो गये ॥७३-७४॥ वह काँपती हुयी गिर पड़ी और जोर से चिल्लाकर मर गयी । उसके उस आवाज से आकाश तल व्याप्त हो गया ॥७५॥ उससे भयभीत होकर सभी गोप उसको भूमि पर गिरि हुयी देखा और उसके विशाल वक्षःस्थल पर खेलते हुए भगवान् कृष्ण को देखा ॥७६॥ उद्विग्न होकर शीघ्र ही अपने पुत्र को लेकर, राक्षसी के भय से उस समय बालक के शिर को गोबर से मार्जन किया ॥७७॥ और गौ के बाल से उसके मुख का मार्जन किया । नन्द गोप अपने पुत्र को लेकर अपनी पत्नी के पास आये ॥७८॥ श्रीभगवान् के नामों से उनके सभी अङ्गों का मार्जन किया । उस भयङ्कर राक्षसी को गोव्रज से निकालकर अग्नि में डाल दिया गया ॥७९॥ भयभीत गोपों ने उसके शरीर को जला दिया । एक बार श्रीभगवान् गाड़ी के नीचे सोये थे ॥८०॥ श्रीभगवान् अपने पैर को फैलाकर रोने लगे उनके चरणों के प्रहार से गाड़ी उलट गयी थी ॥८१॥ टूटे-फूटे घड़े और भाण्ड उनके दूसरी ओर जाकर गिरे । उसके पश्चात् गोपों और गोपियों

विस्मयं परमं जग्मुः किमेतदितिशङ्किताः। यशोदा च तदा तूर्णं बालं जग्राह विस्मिता॥८३॥
अल्पेनैव हि कालेन बालकौ तौ यदूत्तमौ। वर्द्धमानौ यशोदायाः स्तनपानेन पोषितौ ॥८४॥
जानुभ्यामथहस्ताभ्यां रिङ्गमाणौविरेजतुः। तृणावर्तस्तमादाय गोविन्दं वियतिस्थितः ॥८५॥
तं जघान जगन्नाथस्य पपात महासुरः। हत्वा तं राक्षसं घोरं तत्रैवाऽऽस्तेजगत्पतिः ॥८६॥
विचचार ततः सर्वं गोव्रजं मधुसूदनः। नवनीतं जहाराऽऽशु गोपीनां च गृहे गृहे ॥८७॥
तदा यशोदा कुपिता दाम्नामध्ये उलूखले। निबध्य कृष्णं प्रययौ विक्रेतुंगोरसादिकम् ॥८८॥
कर्षमाणस्तः कृष्णो दाम्ना बद्धउलूखले। यमलार्जुनयोर्मध्ये जगाम धरणीधरः॥८९॥
उलूखलेन गोविन्दः पातयामास तो द्रुमौ। भग्नस्कन्धौ निपतितौ स्वरेण धरणीतले ॥९०॥
तेन शब्देन महताऽऽजग्मुस्तत्र महौजसः। गोपवृद्धास्ततो दृष्ट्वा विस्मयं परमं गताः ॥९१॥
यशोदाऽपि समुद्विग्नाविमुच्यधरणीधरम्। तं विस्मितं समादायस्तनंप्रादान्महात्मने॥९२॥

यस्मान्निबध्यमानसतु दाम्ना मात्रा जगत्पतिः ।
तस्मान्महर्षिभिः सर्वैर्दामोदरइतीरितः ॥९३॥
तौ तु किन्नरतां प्राप्तौ विमुक्तौ यमलार्जुनौ ।
गोपवृद्धास्ततः सर्वे नन्दगोपपुरोगमाः ॥९४॥

महोत्पातमिमं ज्ञात्वा स्थानान्तरमुपाययुः। वृन्दावने मनोरम्ये यमुनायास्तटे शुभे ॥९५॥
निवासं चक्रिरे रम्यं गवां गोपीजनस्य च। तत्र तौ रामकृष्णौतु बर्द्धमानौ महाबलौ॥९६॥
वत्सपालयुतौ वत्सान्पालयामासतुस्तदा। गोवत्समध्यगं कृष्णं बको नाम महासुरः ॥९७॥

ने उस विशाल गाड़ी को देखा ॥८२॥ वे अत्यन्त आश्चर्यित हुए कि यह क्या हो गया ? यशोदा जी भी आश्चर्यित होकर शीघ्र ही बालक को उठा लीं ॥८३॥ थोड़े ही समय वे यदुवंश के दोनों बालक यशोदाजी के स्तन के पीने से बढ़ने लगे ॥८४॥ वे दोनों हाथों तथा घुटनों के बल चलते हुए सुशोभित होते थे। तृणावर्त नामक राक्षस श्रीभगवान् को लेकर आकाश में चला गया ॥८५॥ श्रीभगवान् ने उसको मार दिया और वह पृथिवी पर गिर गया । उस राक्षस को मार कर श्रीभगवान् उसी के ऊपर पड़े रहे ॥८६॥ उसके पश्चात् भगवान् सम्पूर्ण व्रज में घूमने लगे । वे गोपियों के घरों में माखन चुरा लेते थे ॥८७॥ उससे क्रुद्ध होकर यशोदाजी ने उनके कमर में रस्सी बाँध कर उसको ओखली में बाँध दिया । धरणीधर श्रीभगवान् जुड़वें अर्जुन वृक्ष के वीच में चले गये ॥८८-८९॥ उस ओखली से भगवान् ने उन दोनों वृक्षों को गिरा दिया स्कन्धों को टूट जाने से वे दोनों जोर से शब्द किए और पृथिवी पर गिर गये ॥९०॥ उस महान् शव्द से महातेजस्वी गोप वहाँ गये उसको देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए ॥९१॥ अत्यन्त आश्चर्यित यशोदाजी श्रीभगवान् को खोलकर विस्मित होकर उनको उठाकर अपना स्तन पिलाने लगीं ॥९२॥ चूंकि माता ने उनको दाम (रस्सी) से बाँध दिया इसीलिए सभी महर्षियों ने उनको दामोदर कहा ॥९३॥ वे दोनों यमलार्जुन किन्नर होकर मुक्त हो गये । उसके पश्चात् नन्दगोप आदि गोपवृद्ध ॥९४॥ उसको महान् उत्पात मानकर दूसरे स्थान पर चले गये । मनोहर उस वृन्दावन में यमुना के सुन्दर तट पर ॥९५॥ उन लोगों ने गौओं और गोपियों के लिए मनोहर निवास बनाया । वहाँ पर बढ़ने वाले वे दोनों श्रीराम और कृष्ण॥९६॥

बकरूपेण तं हन्तुमुद्युक्तोऽत्र यदूत्तमम्। तं दृष्ट्वा वासुदेवोऽपि लोष्टमुद्यम्य लीलया ॥९८॥
ताडयामास पक्षान्ते पपातोर्व्यां महासुरः। ततः कपितयाहस्सु गोवत्सान्पालयन्वने ॥९९॥
छायायां जम्बुवृक्षस्य प्रसुप्तौ पल्लवे मृदौ। एतस्मिन्नन्तरे देवो ब्रह्मादेवगणैर्वृतः ॥१००॥
द्रष्टुं कृष्णं समागम्य सुप्तौ दृष्ट्वा यदूत्तमौ ।
वत्सान्गोपशिशून्हत्वा जगामत्रिदिवंपुनः ॥१०१॥
प्रबुद्धौ तौ समालोक्य विनष्टाञ्छिशुवत्सकान् ।
गोवत्सा गोपबालाश्च क्व गताइति विस्मितौ ॥१०२॥
ज्ञात्वा कृष्णास्तु तत्कर्म प्रजापतिकृतं तदा। तथैव ससृजे बालान्गोवत्सांश्च सनातनः ॥१०३॥
यथावर्णं यथारूपं तथैव मधुसूदनः। ससर्ज वत्सान्गोपालानविता जगताम्प्रभुः ॥१०४॥
दृष्ट्वा सायाह्नसमये गावस्त्वेषांच मातरः। स्वान्स्वान्वत्सानुपागम्य यथापूर्वं प्रवर्तिताः ॥१०५॥
एवं सम्वत्सरेकाले गते तत्र महात्मनः। प्रजापतिः पुनस्तस्मै ददौवत्सान्सबालकान् ॥१०६॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा परिणीय प्रणम्य च। भयादुवाच गोविन्दं ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः ॥१०७॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्ते सर्वात्मंस्तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे। नित्यानन्दस्वरूपाय प्रयतात्मन्महात्मने ॥१०८॥
अणुवृहत्स्थूलतररूपसर्वगताव्यय ! । अनादिमध्यान्तरूप स्वरूपात्मन्नमोऽस्तुते ॥१०९॥
नित्यज्ञानबलैश्वर्य वीर्यतेजोमयाय च। महाशक्ते ! नमस्तुभ्यं पूर्णषाड्गुण्यमूर्तये ॥११०॥

एक साथ दोनों बछड़ों को पालने वाले वत्सपाल हो गये । गौ के बछड़ों के बीच में विद्यमान बक नाम महाअसुर भगवान् श्रीकृष्ण को ॥९७॥ बक का रूप धारण करके मारने के लिए तैयार हुआ । उसको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ढेला उठाकर लीला पूर्वक ॥९८॥ उसके पङ्ख के अन्तिम भाग में मारे और वह महान् असुर पृथिवी पर गिर पड़ा । उसके कुछ दिनों के पश्चात् वन में बछड़ों को चराते हुए ॥९९॥ जामुन के वृक्ष की छाया में कोमल पत्तों के ऊपर वे दोनों सो गये इसी बीच में देवताओं के साथ ब्रह्माजी॥१००॥ भगवान् श्रीकृष्ण को देखने के लिए आकर तथा उन दोनों यदूत्तमों को देखकर बछड़ों तथा गोप शिशुओं का हरण करके फिर स्वर्ग चले गये ॥१०१॥ जगकर उन दोनों लोगों ने विनष्ट हुए बच्चों और बछड़ों को देखकर गौओं के बछड़े और गोपाल कहाँ गये यह सोचकर आश्चर्यित हो गये ॥१०२॥ तब ब्रह्माजी ने यह काम किया है इस बात को जानकर उन्होंने उसी प्रकार के गौओं के बछड़ों और ग्वालों की सृष्टि कर दी ॥१०३॥ उन्हीं सबों के समान वर्ण और रूप वालों की श्रीभगवान् ने संसारियों की इन्द्रियों की रक्षा करने वाले प्रभु ने सृष्टि की ॥१०४॥ सायंकाल उन सबों को देखकर बछड़ों की माताओं ने अपने-अपने बछड़ों के पास आकर पहले के ही समान रहने लगीं ॥१०५॥ इस तरह से एक वर्ष का समय बिता देखकर ब्रह्माजी ने फिर उनको वत्सों और बालकों को दे दिया ॥१०६॥ हाथ जोड़कर उनकी परिक्रमा करके तथा उनको प्रणाम करके त्रैलोक्य के स्वामी ब्रह्माजी भयभीत होकर उनसे कहे । **ब्रह्माजी ने कहा—** हे सर्वात्मक ! तत्त्वज्ञान स्वरूप ! नित्यानंद स्वरूप प्रयतात्मा महात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को बारम्बार नमस्कार है ॥१०७-१०८॥ अणु, बृहत् एवं स्थूलतर रूप वाले सर्वत्र व्याप्त अव्यय, आदि मध्य और अन्त रहित रूप वाले तथा आत्मास्वरूप पराक्रम एवं तेजोमय, महाशक्ति सम्पन्न और षाड्गुण्य पूर्ण

त्वं वेदपुरुषो ब्रह्मन्महापुरुषएव च। शरीरपुरुषस्त्वं च छन्दःपुरुष एव च॥१११॥
चत्वारः पुरुषास्त्वं च पुराणः पुरुषोत्तमः। विभूतयस्तव ब्रह्मन्पृथिव्यग्न्यनिलादयः ॥११२॥
तव वाचा समुद्भूतौ क्ष्मावह्नी जगदीश्वर !। अन्तरिक्षं च वायुश्च सृष्टौ प्राणेनतेविभो ! ॥११३॥
चक्षुषा तव संसृष्टौ द्यौश्चदित्यस्तथाऽव्यय ! ।
दिशश्चचन्द्रमाःसृष्टाःश्रोत्रेणतवचाऽनघ ॥११४॥
अपां स्त्रावश्च वरुणो मनसा ते महेश्वरन ! ।
उक्तेः महति मीमांसे एवं ब्रह्म प्रचक्षते ॥११५॥
एतमेवाग्निमध्यवर्युरेतमेव महाव्रते। छन्दोगा एतमप्येतं दिव्येतं वायुरेवतत्॥११६॥
आकाशएतमप्स्वेतमोषधीष्वेकतमेव च। तथावनस्पतिष्वेतं चन्द्रमस्येतमेव च ॥११७॥
नक्षत्रेषु च सर्वेषु ग्रहेष्वेतं दिवाकरे। सर्वभूतेष्वेतमेव ब्रह्मेत्याख्याति च श्रुतिः ॥११८॥
तदेव परमं ब्रह्म प्रज्ञातं परितोऽमृतम्। हिरण्मयोऽव्ययो यज्ञः शुचिः शुचिषदित्यपि॥११९॥
वैदिकान्यभिधेयानि तवैवान्यस्य न क्वचित् ।
चक्षुर्मयं श्रोत्रमयं छन्दोमयमनोमयम् ॥१२०॥
वाङ्मयं परमात्मानं परेशं शंसति श्रुतिः। इति सर्वोपनिषदामर्थस्त्वं कमलेक्षण !॥१२१॥
स्तोतुं न शक्तोऽहं त्वां तु सर्ववेदान्तपारगम् ।
महापराधमेतत्ते वत्सापहरणं मया ॥
कृतं तत्क्षम्यतां नाथ ! शरणागतवत्सल ! ॥१२२॥

मूर्ति नित्य ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य (पराक्रम) तथा तेजोमय आपको नमस्कार है ॥१०९-११०॥ हे ब्रह्मन्! आप ही वेद पुरुष, महापुरुष, शरीर पुरुष और छन्दःपुरुष हैं ॥१११॥ हे पुराणपुरुषोत्तम ! आप ही ये चारो पुरुष हैं । हे ब्रह्मन् ! पृथिवी, अग्नि तथा वायु आदि आपकी विभूतियाँ हैं ॥११२॥ हे जगदीश्वर ! आपकी वाणी से पृथिवी और अग्नि उत्पन्न हुए हैं । हे विभो ! अन्तरिक्ष और वायु आपके प्राण से उत्पन्न है ॥११३॥ हे अव्यय आपके नेत्र से द्युलोक और सूर्य उत्पन्न हुए हैं । हे अनघ ! आपके नेत्र से दिशाएँ और चन्द्रमा उत्पन्न हुए हैं ॥११४॥ हे महेश्वर ! आपके मन से चन्द्रमा और वरुण उत्पन्न हुए हैं । आपकी उक्तियों से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए है हे ब्रह्म ! ऐसा ही कहा जाता है ॥११५॥ इसको ही अग्नि और आध्वर्यु इसी को महाव्रत, छन्दोग गण भी आपके दिव्य तेज से प्रकाशित होते हैं ॥११६॥ आकाश एत है, आकाश में जल में तथा ओषधियों में भी एत ही हैं । वनस्पतियों में भी एत ही हैं और चन्द्रमा में एत है ॥११७॥ सभी नक्षत्रों में, ग्रहों में, सूर्य में सभी भूतों में भी एत ही है । एत ही ब्रह्म कहलाता है यह श्रुति कहती है ॥११८॥ वह परंब्रह्म, प्रज्ञान, और अमृत है । वही हिरण्मय, अव्यय, यज्ञ, पवित्र तथा शुचिषद् भी है ॥११९॥ सभी वैदिक नाम आपके ही हैं किसी दूसरे के नहीं हैं चक्षुर्मय, श्रोत्रमय, छन्दोमय, मनोमय ॥१२०॥ वाङ्मय परमात्मा और परेश रूप से आपको ही श्रुति कहती है । अतएव हे कमलनयन ! आप ही सभी उपनिषदों के प्रतिपाद्य है ॥१२१॥ सभी वेदान्तों में पारङ्गत आपकी स्तुति करने में मैं समर्थ नहीं हूँ । वत्सापहार रूपी महा अपराध मैंने आपका किया है । हे शरणागत

महेश्वर उवाच

एवं स्तुत्वा हरिं वेधाः प्रणम्यवपुनःपुनः। वत्सान्दत्त्वा पुनस्तस्मैप्रययौस्वयमालयम्॥१२३॥

हृदि कृत्वा सदा देवि ! बालरूपं हरिं विधिः ।

उवास त्रिदशैःसार्द्धं हृष्टपुष्टो महातपाः ॥१२४॥

कृष्णेनसृष्टावत्सा वै पूर्ववत्सास्तथार्भकाः। अवापुरेकतां तत्र पश्यतां त्रिदिवौकसाम्॥१२५॥

कृष्णस्तु वत्सपालैर्वै प्रययौ नन्दगोकुलम् । ततः कतिपयाहस्सु गोपालैर्यदुपुङ्गवः ॥१२६॥

ह्रदं गत्वाऽथ कालिन्द्यास्तत्रस्थं सुमहाविषम् ।

सहस्रशीर्षबलिनंनागराजमथाऽच्युतः ॥१२७॥

निष्पिष्य फणसाहस्रं पादेनैकेन लीलया। प्राणसंशयमापन्नं चकार मधुसूदनः ॥१२८॥

स कालियो लब्धसञ्ज्ञस्तमेव शरणं ययौ। ररक्ष भगवान्कृष्णो नागं त्यक्तविषं तदा॥१२९॥

वैनतेयभयाद्भीतं स्वपदेनाङ्क्यमूर्द्धसु। ह्रदाद्विवासयामास कालिन्द्या यदुपुङ्गवः ॥१३०॥

त्यक्त्वा स तं ह्रदं तूर्णं पुत्रदारसमन्वितः। नमस्कृत्याऽथ गोविन्दं प्रययौ कालियस्तदा॥१३१॥

विषदग्धास्तुयेपूर्वंतत्तीरस्थाश्चशाखिनः ।

कृष्णेनवीक्षितास्तूर्णंफलिनःपुष्पिणोऽभवन् ॥१३२॥

अथ कालेन कौमारमवाप्य मधुसूदनः। गोवृन्दं पालयामास सर्वदेवमयः प्रभुः ॥१३३॥

स्वसमानवयोभिस्तु गोपालैस्तु यदूत्तमः। वृन्दावने मनोरम्ये स रामो विचचार ह ॥१३४॥

तत्र हत्वा महाघोरं सर्परूपं महासुरम्। अपहत्य महाकायं मेरुमन्दरगौरवम्॥१३५॥

वत्सल ! उसे आप क्षमा कर दें ॥१२२॥ **महेश्वर ने कहा**— इस तरह से ब्रह्माजी श्रीहरि की स्तुति करके तथा बार-बार प्रणाम करके और फिर उनको बछड़ों को प्रदान करके अपने लोक में चले गये ॥१२३॥ हे देवि ! ब्रह्माजी बाल रूप श्रीहरि का सदा हृदय में चिन्तन करते हुए, वे महातपस्वी हृष्ट-पुष्ट होकर देवताओं के साथ निवास किए ॥१२४॥ भगवान् कृष्ण के द्वारा सृष्ट बछड़े और बालक सभी पहले के बछड़ों के साथ एकत्व को सभी देवताओं सामने ही प्राप्त कर लिए ॥१२५॥ भगवान् श्रीकृष्ण भी गोप बालों के साथ नन्द गोकुल में चले गये । उसके पश्चात् कुछ दिनों के बाद गोपालों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण ॥१२६॥ कालिन्दी के ह्रद में वहाँ पर विद्यमान महा विषैले, हजार शिरों, वाले, नागराज (कालीय) के हजारों फणाओं के एक ही चरण से घायल करके उसको प्राण संकटापन्न बना दिये ॥१२७-१२८॥ वह कालीय होश में आकर भगवान् श्रीकृष्ण की शरणागति किया । उस विष रहित नाग की श्रीभगवान् ने रक्षा की ॥१२९॥ गरुड़ के भय से डरे हुए उसके शिरों को अपने चरणों की छाप से चिह्नित करके श्रीभगवान् ने कालिन्दी के उस ह्रद से निकाल दिया ॥१३०॥ उस ह्रद को त्यागकर कालीय शीघ्र ही अपने पुत्रों तथा पत्नियों के साथ भगवान् गोविन्द को प्रणाम करके चला गया ॥१३१॥ उस तट पर विद्यमान पहले विष से ही दग्ध हुए जो वृक्ष थे वे भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा देखे जाने के कारण फल एवं पुष्प से युक्त हो गये ॥१३२॥ उसके पश्चात् कुछ समय में श्रीभगवान् कुमारावस्था प्राप्त करके सर्वदेवमय श्रीभगवान् गायों को चराने लगे ॥१३३॥ अपने समान अवस्था वाले गोपालों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण

धेनुकस्य वनं प्राप्य तालहिन्तालगह्वरम्। धेनुकं पर्वताकारं खगरूपधरं सदा ॥१३६॥
पादौ गृह्य समुत्क्षिप्य तालेन विजघान ह । तत्क्षणादेव तत्पालास्तदन्ते रेमिरे तदा ॥१३७॥
निष्क्रम्य तद्वनात्तूर्णं भाण्डीरं वटमागताः । तत्र ते रामकृष्णाभ्यांचिक्रीडुर्बाललीलया॥१३८॥
गोपवेषेण तत्राऽगात्प्रलम्बो नाम राक्षसः । रामं स्वपृष्ठमारोप्य ययौ तूर्णं नभस्तलम्॥१३९॥
मत्वा तं राक्षसं रामो मुष्टिना तस्य मूर्द्धनि ।
ताडयामास रोषेण विह्वलाङ्गस्ततोऽपतत् ॥१४०॥
राक्षसेनैव रूपेण विनदन्भैरवं स्वनम् । भिन्नशीर्षतनुस्तत्र ममार रुधिरोक्षितः ॥१४१॥
ततः प्रदोषसमये गोव्रजेनन्दनन्दनः । उवास गोपकन्याभिः क्रीडन्कौमोदवर्चसि ॥१४२॥
अरिष्टनामा दैत्येशो गत्वा तत्र वृषाकृतिः । कृष्णं हन्तं समागत्य जगर्जचमहास्वनम् ॥१४३॥
तं दृष्टवा विद्रुताःसर्वे गोपालाभयपीडिताः । कृष्णोऽपि दृष्ट्वातं रौद्रमागतंदनुजाधिपम् ॥१४४॥
तालवृक्षं समुत्पाट्य शृङ्गमध्ये व्यपीडयत् । स तु भग्नशिरःशृङ्गो वमन्वैरुधिरं बहु ॥१४५॥
पपात भीमवेगेन निददंस्त्यक्तजीवितः । इत्थं हत्वा महाकायमरिष्टं दनुजाधिपम् ॥१४६॥
आहूय गोपबालांश्च तत्रैवोवास गोव्रजे। ततः कतिपयाहस्सु केशीनाम महासुरः ॥१४७॥
हयकायेन गोविन्दं हन्तुं व्रजमुपाययौ । स गत्वा गोव्रजं रम्यमुच्चैर्हेषामथाकरोत्॥१४८॥
तेन शब्देन महता पूरितं भुवनत्रयम्। भीताः सर्वे सुरगणाः शङ्कमाना युगक्षयम् ॥१४९॥

मनोरम वृन्दावन में बलरामजी के साथ विचरण करने लगे ॥१३४॥ वहाँ पर महाकाय सर्प का रूप बनाये हुए जो सुमेरु और मन्दराचल के समान भारी था महाअसुर को मारकर ॥१३५॥ धेनुकासुर के वन में जाकर जो ताल वृक्षों और हिन्तालों से भरा था, पक्षी का रूप बनाये हुए पर्वताकार धेनुक के चरणों को पकड़कर ताल वृक्ष पर पटक कर मार दिए । उसी क्षण उस वन की रक्षा करने वाले उनके सन्निकट आ गये ॥१३६-१३७॥ उस वन से निकलकर श्रीभगवान् भाण्डीर वट में आये । वहाँ पर वे सब राम और कृष्ण के साथ बाल लीला कर रहे थे ॥१३८॥ वहाँ पर गोप का वेष बनाकर प्रलम्व नामक राक्षस आया। वह बलरामजी को अपने पीठ पर चढ़ाकर शीघ्र ही आकाश में चला गया ॥१३९॥ उसको राक्षस जानकर बलरामजी उसके शिर पर क्रोध करके मुक्के से मारे । उसके कारण वह विह्वल अङ्गों वाला होकर गिर पड़ा ॥१४०॥ राक्षस का ही रूप धारण किए हुए वह भयङ्कर आवाज करता हुआ शिर के फट जाने के कारण वहीं पर खून उगलकर मर गया ॥१४१॥ उसके पश्चात् सायंकाल भगवान् श्रीकृष्ण गोकुल में चन्द्रमा की चाँदनी में गोप कन्याओं के साथ क्रीडा करते हुए निवास किए ॥१४२॥ बैल का रूप धारण करके दैत्यों का स्वामी वहाँ जाकर श्रीकृष्ण भगवान को मारने के लिए आकर जोर से गर्जना किया॥१४३॥ उसको देखकर सभी गोप भयभीत होकर वहाँ से भाग चले । भगवान् श्रीकृष्ण भी उस भयङ्कर राक्षस को आये हुए देखकर ॥१४४॥ ताड़ के वृक्ष को उखाड़कर उसके सींगों के बीच में मारे । वह सींगों के टूट जाने से खून उगलता हुआ ॥१४५॥ भयङ्कर वेग पूर्वक गिर पड़ा और जोर से शब्द करके मर गया । इस तरह से विशाल शरीर वाले दनुजाधिप आरिष्टासुर को मारकर ॥१४६॥ ग्वाल बालों को बुलाकर वहीं गोव्रज में रहे । उसके कुछ दिनों बाद केशी नामक महादैत्य ॥१४७॥ घोड़े का शरीर धारण करके भगवान्

तत्रस्था मोहिताः सर्वे गोप्यश्च विह्वलाः ।
लब्धसञ्ज्ञास्तु ते सर्वे विद्रुताश्च समन्ततः ॥१५०॥
गोप्यस्तु शरणं जग्मुः कृष्णं त्राहीति चाब्रुवन् ।
नभेतव्यंनभेतव्यमित्याहभक्तवत्सलः ॥१५१॥
समाश्वास्य ततस्तूर्णं मुष्टिनावासवानुजः । ताडयामास शिरसितस्य दैत्यस्य लीलया ॥१५२॥
विभिन्नदन्तनेत्रोऽसौ विननाद महास्वनम् । महाशिलांसमुत्क्षिप्यतसयाङ्गेवैन्यपातयत् ॥१५३॥
सतुचूर्णितसर्वाङ्गो निनदन्भैरवं स्वनम् । पपात सहसा भूमौ ममार च महासुरः॥१५४॥
केशिनं निहतंदृष्ट्वा दिविदेवगणाभृशम् । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि साधुसाध्वितिचाऽब्रवन् ॥१५५॥
इत्थं शिशुत्वे वै दैत्यान्हरिर्हत्वा बलोत्कटान् ।
स मुमोद सुखेनैव बलरामसमन्वितः ॥१५६॥
इन्दीवरदलश्यामः पद्मपत्रनिभेक्षणः । पीताम्बरधरः स्रग्वी वनमालाविभूषितः ॥१५७॥
कौस्तुभोद्भासितोरस्कश्चित्रमाल्यानुलेपनः । विचित्राभरणैर्युक्तःकुण्डलाभ्यांविराजितः ॥१५८॥
आमुक्ततुलसीमालः कस्तूरीतिलकाञ्चितः । सुस्निग्धनीलकुटिलकबरीकृतकेशवान् ॥१५९॥
बद्धैर्नानाविधैः पुष्पैर्बर्हिबर्हावतंसकः । रक्तारविन्दसदृशहस्तपादतलाधरः ॥१६०॥
वक्रमध्यगशीतांशुकलङ्कभ्रूलताननः । हारनूपुरकेयूरैः कटकाभ्यां विराजितः ॥१६१॥
वृन्दावने महारम्ये फलपुष्पविराजिते । रम्यं निनादयन्वेणुं तत्राऽऽस्ते युदनन्दनः॥१६२॥

श्रीकृष्ण को मारने के लिए व्रज में आया । वह गोव्रज में जाकर जोर से हिनहिनाया ॥१४८॥ उस महान् शव्द से त्रैलोक्य भर गया । युगक्षय की शङ्का करते हुए सभी देवता डर गये ॥१४९॥ वहाँ पर रहने वाले गोप तथा गोपीगण उसको सुनकर वेहोश हो गये । होश में आते ही वे सब जिधर-तिधर भाग गये॥१५०॥ गोपियाँ हे कृष्ण रक्षा कीजिए कहती हुयी भगवान् श्रीकृष्ण के शरण में चली गयीं । भक्त वत्सल भगवान् ने कहा डरो मत ॥१५१॥ इस तरह से उन सबों को आश्वस्त करके श्रीकृष्ण भगवान शीघ्र उसको अपने मुक्के से उसके शिर पर मारे ॥१५२॥ दाँतों और नेत्रों के फट जाने से वह जोर ने निनाद किया । बहुत बड़ी शिला उखाड़कर गरुड़ उसके शरीर पर मारे ॥१५३॥ उसके सभी अङ्ग चूर-चूर हो गये वह घोरनाद करके अचानक पृथिवी पर गिरकर मर गया ॥१५४॥ केशी को मरा हुआ देखकर आकाश में सभी देवता साधु-साधु कहते हुए बहुत अधिक फूलों की वर्षा किए ॥१५५॥ इसतरह से बाल्यावस्था में श्रीहरि बलोत्कट दैत्यों को मारकर बलरामजी के साथ बहुत अधिक हर्ष का अनुभव किए ॥१५६॥ नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले, कमल दल के समान विशाल नेत्रों वाले, पीताम्बर और माला धारण किए हुए वनमाला से विभूषित ॥१५७॥ कौस्तुभ मणि से प्रकाशित वक्षःस्थल वाले, अद्भुत अनुलेपन धारण किए हुए दोनों कुण्डलों से सुशोभित मोती तथा तुलसी की माला धारण किए हुए, कस्तूरी के तिलक से सुशोभित चिकने काले घुंघराले केशों की चोटी बनाये हुए जिसमें अनेक प्रकार के पुष्प लगे हुए थे । मयूर पिच्छ से सुशोभित, लाल कमल के समान हाथ पैर और अधर वाले ॥१५८-१६०॥ उनके मुख पर टेढी भ्रूलता से सुशोभीत होती थी, हार, नुपुर केयूर तथा दो कङ्कणों से सुशोभित ॥१६१॥ फलों तथा पुष्पों

अवधीरितकन्दर्पकोटिलावण्यमच्युतम् । सर्वा गोपस्त्रियो दृष्ट्वा मन्मथास्त्रेणपीडिता: ॥१६३॥
पुरा महर्षय: सर्वे दण्डकारण्यवासिन: । दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन्सुविग्रहम् ॥१६४॥
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्ना: समुद्भूतास्तु गोकुले । हरिं सम्प्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्॥१६५॥
क्रोधेनैव यथा दैत्या: समेत्यमधुसूदनम् । निधनं प्राप्य सङ्ग्रामे हता मुक्तिमवाप्नुयु: ॥१६६॥

कामक्रोधौ नृणां लोके निरयस्यैव कारणम् ।
हरिं समेत्यभावेन मुक्तागोप्य:सुरद्विष: ॥१६७॥
कामाद्भयाद्वा द्वेषाद्वा ये भजनित जनार्दनम् ।
ते प्राप्नुवन्तिवैकुण्ठं किम्पुनर्भक्तियोगत: ॥१६८॥

तस्य वेणुध्वनिं श्रुत्वा रजन्यांबल्लवाङ्गना: । शयनादुत्थिता:सर्वाविकीर्णाम्बरमूर्द्धजा: ॥१६९॥

त्यक्त्वा पतीन्सुतान्बन्धूंस्त्यक्त्वा लज्जां कुलं स्वकम् ।
जगत्पतिं समाजग्मु: कन्दर्पशरपीडिता: ॥१७०॥

समेत्यगोप्य: सर्वास्तु भुजैरालिङ्ग्यकेशवम् । बुभुजुश्चाधरं देव्य: सुधामृतमिवाऽमरा: ॥१७१॥
ताभि: सर्वाभिरात्मेश: क्रीडयामासगोव्रजे । तेनाऽपि ता:स्त्रिय:सवरिमिरेनिर्भयाव्रजे ॥१७२॥
इत्येवं रमयामासुरहन्यहनि केशवम् । वृन्दावने मनोरम्ये कालिन्दीपुलिनेतथा ॥१७३॥

पार्वत्युवाच

धर्मसंरक्षणार्थाय जगत्यामवतीर्य स: । परदाराभिगमनं कश्चं कुर्याज्जनार्दन: ॥१७४॥

से सुशोभित मनोहर वृन्दावन में मनोहर वंशी बजाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ॥१६२॥ अपने सौन्दर्य से करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाले श्रीकृष्ण भगवान् को देखकर सभी गोपियों कामार्त हो गयीं ॥१६३॥ पूर्वकाल में दण्डकारण्य में रहने वाली सभी महर्षिगण सुन्दर शरीरवाले भगवान् श्रीराम का दर्शनादि करते रहना चाहे थे ॥१६४॥ वे सब गोकुल में स्त्रीत्व को प्राप्त करके, काम पूर्वक श्रीहरि को प्राप्त करके संसार सागर से मुक्त हो गये ॥१६५॥ जिस तरह से दैत्य क्रोध के ही द्वारा भगवान् मधुसूदन को प्राप्त करके संग्राम में मृत्यु को प्राप्त कर लिए ॥१६६॥ यद्यपि काम और क्रोध संसार में मनुष्यों को नरक प्रदान करने का काम करते हैं, किन्तु काम भावना से श्रीहरि को प्राप्त करके गोपियाँ और दैत्य मुक्त हो गये ॥१६७॥ जो लोग काम, भय या द्वेष से श्रीहरि का भजन करते हैं वे भी वैकुण्ठ में चले जाते हैं तो फिर भक्तियो के द्वारा उनका भजन करने वालों के विषय में क्या कहना है ?॥१६८॥ उनकी वंशी की ध्वनि को सुनकर रात्रि में गोपियाँ, अपनी शय्या से उठकर सभी व्यस्त केशों तथा वस्त्रों वाली॥१६९॥ अपने पतियों तथा पुत्रों को त्यागकर काम के बाणों से पीड़ित होकर जगत् के स्वामी श्रीहरि के पास आयीं॥१७०॥ आकर सभी गोपियाँ श्रीभगवान् के अपनी भुजाओं से आलिङ्गन करके उनके ओष्ठों का पान उसी तरह से किया जिस तरह देवगण अमृत का पान किए ॥१७१॥ उन सबों के साथ गोव्रज में भगवान् क्रीडा किए । और वे सभी स्त्रियाँ भी श्रीकृष्ण भगवान् के साथ रमण कीं ॥१७२॥ इस तरह से वे सभी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ प्रतिदिन मनोहर वृन्दावन में तथा यमुना के तट में रमण करती थीं ॥१७३॥ **पार्वतीजी ने कहा—** संसार में धर्म की रक्षा करने के लिए अवतीर्ण होकर श्रीभगवान् पर स्त्रियों के साथ

रुद्र उवाच

स्वशरीरपरिष्वङ्गाद्रतिर्नास्ति शुभानो !। सर्वं जगच्च तस्याऽङ्गं पृथगत्र न विद्यते ॥१७५॥
स्त्रीपुम्भेदो न वै तस्य पुरुषस्य महात्मनः। निसर्गात्सर्वभर्तृत्वादात्मेशत्वाज्जगत्पतेः ॥१७६॥
तथाऽपहतपाप्मत्वसामर्थ्याद्व्यापिनःप्रभोः। दोषोऽत्र नास्तिसुभगेदेवस्यपरमात्मनः ॥१७७॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्त्वातु गिरिजां रुद्रः श्रीत्रिपुरान्तकः। कृष्णस्य शेषं चरितमाख्यातुंसम्प्रचक्रमे॥१७८॥

रुद्र उवाच

शरत्काले तु सम्प्राप्ते नन्दगोपपुरोगमाः। गोपामहोत्सवं कर्तु मारब्धास्त्रिदशेशितुः ॥१७९॥
तदुत्सवं तु गोविन्दो निवार्याऽथ शतक्रतोः।
गोवर्द्धनाद्रिराजस्य कारयामासवीर्यवान् ॥१८०॥
ततः क्रुद्धः सहस्राक्षो नन्दगोपस्य गोव्रजे। ववर्ष च महावृष्टिं सप्तरात्रं निरन्तरम् ॥१८१॥
गोवर्द्धनं समुत्पाट्य महाशैलं जनार्दनः। तेषां संरक्षणार्थाय धारयामास लीलया॥१८२॥
तस्यच्छायां गिरेः प्राप्य गोपागोप्यश्च सुव्रते !।
अवसंश्च सुखेनैव हर्म्यान्तरगताइव ॥१८३॥
ततः शक्रः सहस्राक्षो भीतःसम्भ्रान्तचेतसा।
वारयामास तद्वर्षंययौ नन्दस्य तद्व्रजम् ॥१८४॥
कृष्णोऽपि तं महाशैलं यथापूर्वं न्यवेशयत्।
गोपवृद्धाश्च ते सर्वे नन्दगोपपुरोगमाः ॥१८५॥

कैसे रमण किए ॥१७४॥ **रुद्र ने कहा—** हे शुभानने ! अपने शरीर का आलिङ्गन करने से रति नहीं होती है। सारा संसार श्रीभगवान् का अङ्ग है, संसार की कोई वस्तु उनसे भिन्न नहीं है ॥१७५॥ उन श्रीभगवान् में कोई भी स्त्री पुरुष का भेद नहीं है। स्वभावतः सबों के स्वामी होने के कारण तथा श्रीभगवान् के जगत् का स्वामी होने और सभी आत्माओं का स्वामी होने के कारण ॥१७६॥ तथा कर्मों के बन्धन से रहित होने के कारण सर्व समर्थ होने के कारण तथा व्यापक होने के कारण हे सुभगे ! श्रीभगवान् के ऐसा करने में कोई दोष नहीं है ॥१७७॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** इस प्रकार से पार्वतीजी से कहकर त्रिपुर का विनाश करने वाले शिवजी भगवान् श्रीकृष्ण के अवशिष्ट चरित को कहना प्रारम्भ किए॥१७८॥ **रुद्र ने कहा—** शरत् काल आने पर नन्द आदि गोप इन्द्र महोत्सव करना प्रारम्भ किए॥१७९॥ भगवान् गोविन्द इन्द्र के उस महोत्सव को रोकरकर पर्वतराज गोवधर्न का महोत्सव कराये ॥१८०॥ उससे क्रुद्ध होकर इन्द्र नन्द गोप के गोव्रज में सात रातों तक निरन्तर महावृष्टि कराये ॥१८१॥ भगवान् जनार्दन महापर्वत गोवर्धन को उखाड़कर उन सबों की रक्षा करने के लिए लीला पूर्वक उसे उठाये रहे ॥१८२॥ हे सुव्रते ! उस पर्वत की छाया प्राप्त करके गोप तथा गोपी उसके नीचे उसी तरह सुख पूर्वक रहे जैसे वे अपने घर में रहते थे ॥१८३॥ उससे भयभीत होकर इन्द्र घबराये हुए वर्षा को रोक दिए और नन्दव्रज में गये ॥१८४॥ भगवान् श्रीकृष्ण भी उस महान् पर्वत को पहले के ही स्थान पर रखकर वृद्धगोप तथा

परिपूज्य च गोविन्दं परं विस्मयमाययुः । ततः शतक्रतुर्देवं समेत्य मधुसूदनम् ॥
तुष्टाव प्राञ्जलिर्भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा ॥१८६॥

इन्द्र उवाच

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ! सर्वज्ञाऽमितविक्रम ! ।
त्रिगुणातीत सर्वेश विश्वस्यात्मन्नमोऽस्तुते ॥१८७॥
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः क्रतुर्हविः ।
त्वमेव सर्वदेवानां पिता माता च केशव ! ॥१८८॥

अग्रे हिरण्यगर्भस्त्वं भूतस्य समवर्त्तत । त्वमेवैकः पतिरसि पुरुषस्त्वं हिरण्मयः ॥१८९॥
पृथिवीं द्यामिमां देव ! त्वमेव धृतवानसि । आत्मदः फलदो यश्च स्यादेवं जगदीश्वर !॥१९०॥
अवाप्तं तच्च त्रिदशैः प्रकाशं जगताम्पतेः। अमृतं चैव मृत्युश्च च्छाया तव सनातन ॥१९१॥
तस्मै देवाय भवते विधेमहविषा वयम् । हेमवन्तइमे यस्य समुद्भूता हिरण्मयाः !॥१९२॥
समुद्रा रसना यस्य वाहस्तस्यैव केशव ! । इमा दिशः प्रतिदिशो वायुर्यस्य तवाप्यय ॥१९३॥
तस्मै देवाय भवते विधेमहविषावयम् । येन त्वया समारूढा पृथिवी वर्द्धिता पुनः ॥१९४॥

स्वर्लोकः स्तम्भितो येन त्वया ब्रह्मन्महेश्वर ! ।
त्वमन्तरिक्षे रजसोऽवसानः सर्वगोऽव्ययः ॥१९५॥

तस्मै देवाय भवते विधेम हविषा वयम् । यं क्रन्दसो राजमाने तप्तभासे गुणान्विते ॥१९६॥
अभ्यैक्षेतां च मनसा अवश्यं श्रीश्च सर्वदा। यत्राऽस्ति सूर उदितो विभाति परमे पदे ॥१९७॥
तस्मै देवाय भवते विधेम हविषा वयम् । यदापो वृहतीर्ब्रह्म विश्वमायं जनार्दनः ॥१९८॥

नन्द इत्यादि भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करके आश्चर्यित हुए उसके पश्चात् इन्द्र भगवान् के पास आकर हाथ जोड़कर तथा हर्ष से भरकर अपनी गद्गद वाणी से स्तुति किए ॥१८५-१८६॥ हे सर्वज्ञ ! हे पुण्डरीकाक्ष! हे अमित पराक्रमशाली, हे त्रिगुणातीत, हे सर्वेश, हे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा आपको नमस्कार है ॥१८७॥ आप ही यज्ञ हैं, वषट्कार और ओङ्कार स्वरूप हैं, क्रतु तथा हविष्य स्वरूप हैं । हे केशव आप ही सभी देवताओं के पिता और माता हैं ॥१८८॥ सृष्टि से पहले आप सभी भूतों के हिरण्यगर्भ थे, आप ही केवल सबों के स्वामी हैं और हिरण्मय पुरुष हैं ॥१८९॥ हे देव ! आपने ही पृथिवी और द्युलोक को धारण किया था । हे जगत् के स्वामिन् आप आत्मा, शरीर और फल प्रदान करने वाले हैं ॥१९०॥ हे सनातन! हे जगत् के स्वामिन् ! जिससे देवताओं ने प्रकाश प्रकाश किया अमृत तथा मृत्यु ये सब आपकी छाया हैं ॥१९१॥ उसी आपको हम हविष्य प्रदान करते हैं । जिनसे ये सुवर्णमय हिरण्मय उद्भूत हुए ॥१९२॥ सभी समुद्र जिनकी रसना हैं हे केशव ! ये सभी दिशाओं और विदिशाओं में प्रवाहित होने वाली वायु आपका वाह (प्रवाह) है उन्हीं आपकी हवा हविष्य प्रदान करते हैं । जिस आपके द्वारा आक्रान्त पृथिवी पुनः बढ़ी वहीं आपने स्वर्ग लोक को स्थिर किया हे ब्रह्मन् हे महेश्वर ! ॥१९३-१९५॥ उसी दिव्य गुण सम्पन्न आपको हम हविष्य प्रदान करते हैं । जिस भासमान पृथिवी और द्युलोक के सुशोभित होते रहने पर, तप्त कान्ति वाले तथा गुण सम्पन्न को श्रीदेवी अवश्य अवलोकन करें । जहाँ पर उदित होने वाले सूर्य परमपद में प्रकाशित होते हैं ॥१९६-१९७॥ उन्ही दिव्य गुण सम्पन्न आपको हम हविष्य से आराधना करते हैं ।

गर्भन्दधानाः सर्गेऽत्र जनयन्तीरघौघकृत्। समवर्तत देवानामसुरेकोऽव्ययो विभुः ॥१९९॥
तस्मै देवाय भवते विधेम हविषा वयम्। य आपो महिनादक्षं पर्यपश्यत्प्रजापतिम्॥२००॥
यज्ञं दधानास्तत्राऽदौ जनयन्तीर्हविः पुमान्। योदेवेष्वेकएवासीदधिदेवः परात्परः॥२०१॥
तस्मै देवाय भवते विधेम हविषावयम्। मा नो हिंसीज्जनिताय: पृथिव्याअव्ययःपुमान्॥२०२॥
यो वा दिवं सत्यधर्मा जजानाव्ययईश्वरः। यश्चन्द्रो बृहतीरपो जजान सकलं जगत्॥२०३॥
तस्मै देवाय भवते विधेम हविषा वयम्। एतानि विश्वजातानि बभूव परिताप्रभ !॥२०४॥
त्वदुत्पन्नप्रजाध्यक्षभविष्यद्भूतमच्युतः । यजामस्त्वां च यत्कामास्तन्नो अस्तु समासतः॥२०५॥
रयीणां पतयः स्यामतवकारुण्यवीक्षणात्। हिरण्याख्यः सपुरुषो हिरण्यश्मश्रुकेशवान्॥२०६॥

आप्रणखात्सर्वं हिरण्य सविता तु हिरण्यभाक् ।
असौ सर्वगतो ब्रह्मा यस्त्वादित्ये व्यवस्थितः ॥२०७॥

यथाकप्यासम्पुण्डरीकमक्षिणी तस्यनान्यतः। तद्वैदेवस्यसवितुर्वरेण्यंभर्गउत्तमम् ॥२०८॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष श्रीश सर्वेश केशव!। वेदान्तवेद्य यज्ञेश यज्ञरूप ! नमोऽस्तुते॥२०९॥
नमस्ते वासुदेवाय गोपवेषाय ते नमः। तत्सर्वध्वंसनादेव अपराधं मया कृतम्॥२१०॥

तत्क्षम्यतां जगन्नाथ ! वृणाब्धे पुरुषोत्तम ! ।
अल्पेनैव हि कालेन जहि कंसं दुरासदम् ॥
देवानां हि हितं कृत्वा सुखे स्थापय मेदिनीम् ॥२११॥

यह जल जिस आपकी बृहती ब्रह्म (प्रकृति) हैं हे जनार्दन ! यह सम्पूर्ण जगत् आपकी माया है ॥१९८॥ इस सृष्टि में पाप करने वालों को उत्पन्न करने वाले जो देवताओं के एक मात्र प्राण थे उन अव्यय तथा व्यापक दिव्यगुण सम्पन्न आपकी हम हविष्य से आराधना करते हैं । जो सूक्ष्म जल दक्ष प्रजापति को देखा ॥१९९-२००॥ वह सर्वप्रथम यज्ञ को धारण की हुयी हविष्य पुरुष को उत्पन्न किए । जो सभी देव में अकेले परात्पर अधिदेव थे ॥२०१॥ उन्हीं दिव्यगुण सम्पन्न आपकी हम हविष्य से आराधना करते हैं। जो पृथिवी को उत्पन्न करने वाले अव्यय पुरुष हैं वे हमलोगों को न मारें ॥२०२॥ जो सत्य सङ्कल्प अव्यय ईश्वर स्वर्ग लोक को उत्पन्न किए, जिन्होंने चन्द्रमा, विशाल जल तथा सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न किया उसी दिव्य गुण सम्पन्न आपकी आराधना हम हविष्य से करते हैं । ये सम्पूर्ण उत्पन्न चारो ओर कान्ति से सम्पन्न हुए ॥२०३-२०४॥ हे अच्युत ! आप भूतकालीन और भविष्य कालीन स्वामी हैं हम आपकी आराधना जिस कामना से करते हैं वह हमलोगों को संक्षेप में प्राप्त हो ॥२०५॥ आपके द्वारा करुणा पूर्वक देखने के कारण हम धनों के स्वामी हैं । वे हिरण्यमय तथा हिरण्यकेश वाले हिरण्य पुरुष॥२०६॥ नख से लेकर शिखा पर्यन्त सुवर्ण के समान देदिप्यमान है और सूर्य हिरण्यभागी हैं वे सर्वत्र व्यापक परब्रह्म हैं तथा जो सूर्य मण्डल में व्यवस्थित हैं विकसित कमल के समान मनोहर जिनके ही दोनों नेत्र हैं उनसे भिन्न वे नहीं है वे ही निश्चित रूप से सविता देवी के उत्तम तथा वरणीय तेज हैं । जो हमलोगों की बुद्धि में प्रकाशित होते हैं उनका ही हम सदा ध्यान करते हैं ॥२०७-२०८॥ हे लक्ष्मीपते! हे सर्वेश, हे केशव ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे वेदान्तवेद्य ! यज्ञेश, यज्ञ रूप आपको नमस्कार है ॥२०९॥ हे गोपवेषधारी भगवन् वासुदेव ! आपको नमस्कार है । उन सबों को ध्वस्त करने के कारण मैंने आपका

महादेव उवाच

इतिसंस्तुत्य गोविन्दं सर्वदेवेश्वरो हरिः । सुधामृतेनाभ्यषिञ्चद्दिव्याम्बरविभूषणैः ॥२१२॥
अर्चयित्वा तु देवेशं जगाम त्रिदिवं पुनः । गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च दृष्ट्वा तत्र शतक्रतुम् ॥२१३॥
तेन ते पूजिताश्चैव प्रहर्षमतुलं ययुः । रामकृष्णौ महावीर्यौ दिव्याभरणभूषितौ ॥२१४॥
नन्दस्य गोब्रजे रम्ये सुसुखेनैव तस्थतुः। एतस्मिन्नन्तरे देवि ! नारदो मुनिसत्तमः ॥२१५॥
सहसा मथुरां गत्वा कंसस्यान्तिकमाविशत् ।
राज्ञा सम्पूजितस्तत्र समासीनः शुभासने ॥२१६॥
सर्वं विज्ञापयामास चेष्टितं शार्ङ्गिणस्तदा । देवतानां समुद्योगं जन्म वै केशवस्य च॥२१७॥
तथा च वसुदेवेन पुनिक्षेपणं व्रजे । निधनं राक्षसानां च सर्पराजविवासनम्॥२१८॥
धारणं गिरिवर्यस्य शतक्रतुसमागमम् । निवेदयित्वा कंसस्य सर्वं निरवशेषतः ॥२१९॥
प्रययौ ब्रह्मभवनं पूजितस्तेन रक्षसा । कंसः समुद्विग्नमना मन्त्रिभिः परिवेष्टितः ॥२२०॥
मन्त्रयायास तैः साकमात्मनो निधनं प्रति। तत्र बुद्धिमतांश्रेष्ठमक्रूरं धर्मवत्सलम् ॥
उवाचाऽऽत्महितं कार्यं दानवेन्द्रो महाबलः ॥२२१॥

कंस उवाच

मद्भयात्रिदशाः सर्वे शतक्रतुपुरोगमाः । विष्णोः समीपमागत्य भक्तयार्त्ता शरणं गताः॥२२२॥
स तेषामभयं दत्वा भगवान्भूतभावनः। उत्पन्नो देवकीगर्भे मां हन्तुंमधुसूदनः ॥२२३॥

अपराध किया है ॥२१०॥ हे गुणों के सागर पुरुषोत्तम भगवन् उसे आप क्षमा करें । आप शीघ्र ही दुष्ट कंस का वध करें । आप देवताओं का कल्याण करके सुख पूर्वक पृथिवी को स्थापित करें ॥२११॥ **महादेवजी ने कहा—** इस तरह से भगवान् गोविन्द की स्तुति करके सभी देवताओं के स्वामी इन्द्र ने श्रीभगवान् को जल रूपी अमृत से अभिषिक्त करके दिव्य वस्त्रों एवं भूषणों को प्रदान किये ॥२१२॥ भगवान् गोविन्द की पूजा करके इन्द्र स्वर्ग लोक में चले गये । गोप वृद्धों तथा गोपियों ने इन्द्र को देखकर॥२१३॥ उनके द्वारा पूजित होकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए । दिव्य आभरण से अलंकृत श्रीकृष्णजी और बलरामजी ॥२१४॥ नन्दजी के गोव्रज में सुख पूर्वक स्थित रहे । हे देव ! इसी बीच मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी ॥२१५॥ जल्दी से मथुरा में जाकर कंस के पास गये । कंस के द्वारा पूजित होकर वे सुन्दर आसन पर बैठे ॥२१६॥ भगवान् श्रीकृष्ण उसको छिपी हुयी सारी बातों को बतलाये । देवताओं के उद्योग और भगवान् केशव के जन्म के भी विषय में ॥२१७॥ वसुदेवजी के द्वारा अपने पुत्र को व्रज में स्थापित करने राक्षसों की मृत्यु तथा सर्पराज कालीय को यमुना ह्रद से निकालना ॥२१८॥ गोवर्धन पर्वतको उनके द्वारा धारण किया जाना और इन्द्र समागम इन सारी बातों को कंस को बतलाकर ॥२१९॥ कंस के द्वारा पूजित होकर वे ब्रह्मलोक में चले गये । मन्त्रियों से घिरे हुए कंस अत्यन्त घबराकर ॥२२०॥ उन सबों के साथ अपनी मृत्यु के विषय में विचार किया । उसमें भी बुद्धिमानों ने श्रेष्ठ धर्मवत्सल अक्रूरजी से महाबलवान् ने अपने कल्याण कारी बातों को कहा ॥२२१॥ **कंस ने कहा—** मेरे भय से इन्द्र आदि देवता भयभीत होकर भगवान् के पास गये और उनकी शरणागति किए ॥२२२॥ जीवों का कल्याण

वसुदेवोऽपिदुष्टात्मा वञ्चयित्वातु मां निशि । पुत्रंनिक्षिप्तवान्गेहे नन्दस्य सुदुरात्मनः ॥२२४॥
बाल्येनैव दुराधर्षो विजघान महासुरान् । मां हन्तुमपि सन्नद्धो भवेदेव न संशयः ॥२२५॥
स तु हन्तुं न वै शक्तः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
उपायेनैव हन्तव्यः समानीय मया तदा ॥२२६॥
मदोत्कटैस्तु मातङ्गैर्मल्लैश्च वरवाजिभिः। येन केनाऽप्युपायेन हन्तुं शक्यमिहैव तु॥२२७॥
तस्मात्त्वं गोव्रजंगत्वा कृष्णं रामंच यादव ! ।
सर्वान्गोपालवृद्धांश्च नन्दगोपपुरोगमान् ॥
उपभोक्तुं धनुर्यागमिहाऽऽनय यदूत्तम ! ॥२२८॥

महादेव उवाच

तथेत्युक्त्वा यदुश्रेष्ठो रथमारुह्य वीर्यवान्। प्रययौ गोकुलं रम्यं कृष्णसन्दर्शनोत्सुकः ॥२२९॥
महाभागवतश्रेष्ठो गवां मध्ये व्यवस्थितम् । ददर्श कृष्णमक्लिष्टमक्रूरो विनयान्वितः ॥२३०॥
नीलनीरदसंकाशं सर्वाभरणभूषितम् । पद्मपत्रविशालाक्षं दीर्घबाहुमनामयम् ॥२३१॥
पीतवस्त्रेणसम्वीतं सर्वावयवसुन्दरम्। कौस्तुभोद्भासितोरस्कं रत्नकुण्डलशोभितम् ॥२३२॥
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं कस्तूरीतिलकाञ्चितम्। तुलसीवनमालाढ्यं वन्यपुष्पावतंसकम् ॥२३३॥
गोपकन्यापरिवृतं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनम् । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो हर्षाश्रुप्लुतलोचनः ॥२३४॥
अवरुह्य रथात्तस्मात्प्रणनाम यदूद्वहः । हर्षात्समेत्य गोपालं परिणीय प्रणम्य च ॥२३५॥

करने वाले वे भगवान् देवताओं को अभय प्रदान करके मधुसूदन देवकी के गर्भ से पैदा हुए ॥२२३॥ दुष्ट वसुदेव मुझको ठगकर अपने पुत्र को दुष्ट नन्द के यहाँ रख दिए ॥२२४॥ वे दुराधर्ष होने के कारण वाल्यावस्था से ही बड़े-बड़े राक्षसों को मार दिए । वे मुझको भी मारने के लिए तैयार होंगे इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥२२५॥ इन्द्र आदि देवता और सभी असुर मिलकर भी उनको नहीं मार सकते हैं । अतएव हमें उनको उपाय से ही बुलाकर उनको मार देना चाहिए ॥२२६॥ मदमत्त हाथी के द्वारा अथवा पहलवानों के द्वारा या श्रेष्ठ घोड़ों के द्वारा उनको किसी भी उपाय से यहीं पर मार देना चाहिए ॥२२७॥ अतएव आप गोव्रज में जाकर हे यादव कृष्ण और बलराम को तथा नन्दगोप आदि सभी यादवों का यहाँ पर धनुर्यज्ञ देखने के लिए लिवा लाइये ॥२२८॥ उसके बाद यदुवंशियों में श्रेष्ठ अक्रूरजी ठीक है यह कहकर रथ पर बैठकर भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिए गोकुल में चले गये ॥२२९॥ महाभागवतों में श्रेष्ठ अक्रूरजी गौओं के बीच में विद्यमान भगवान् श्रीकृष्ण को विनय पूर्वक देखे ॥२३०॥ श्याम वर्ण के मेघ के समान कान्ति वाले, सभी आभरणों से अलंकृत, कमलदल के समान विस्तृत नेत्र वाले, निर्दोष तथा लम्बी भुजाओं वाले ॥२३१॥ पीताम्बर धारण किए हुए, सभी सुन्दर अङ्गों वाले, कौस्तुभमणि से सुशोभित वक्षःस्थल वाले, रत्न निर्मित कुण्डल से सुशोभित ॥२३२॥ शरीर में हरिचन्दन लगाये हुए, कस्तूरी के तिलक से सुशोभित, तुलसी तथा वनमाला को धारण किए हुए, वनैले पुष्पों को अपने कानों में लगाये हुए ॥२३३॥ तथा गोप कन्याओं से घिरे हुए भगवान् जनार्दन को वहाँ देखकर रोमाञ्चित सभी अङ्गों वाले तथा हर्ष जन्य आँसू जिनके नेत्रों में भर गये थे ॥२३४॥ उस रथ से उतरकर अक्रूरजी ने

रक्तारविन्दसदृशे वज्रचक्राङ्कचिह्निते। स्वमूर्ध्निधृत्वा पादाब्जे प्रणनाम पुनःपुनः ॥२३६॥
कैलासशिखराभासं नीलाम्बरधरं प्रभुम् । शरत्पूर्णेन्दुसदृशं मुक्तादामविभूषितम् ॥२३७॥
बलरामं ततो दृष्ट्वा प्रणनाम स यादवः। हर्षेणोत्थाप्य तौ वीरौ परिगृह्य यदूत्तमौ ॥२३८॥
गृहमाजग्मतुर्वीरौ तेनाक्रूरेण वृष्णिना । नन्दगोपस्तु तं दृष्ट्वा यदुश्रेष्ठं समागतम् ॥२३९॥
अभिगम्य महातेजा निवेश्य परमासने। अर्चयामासविधिवदर्ध्यपाद्यादिभिर्मुदा ॥२४०॥
वस्त्रैः समर्हणैर्दिव्यैरर्चयामास भक्तितः । अक्रूरो रामकृष्णाभ्यां वस्त्राण्याभरणानिच॥२४१॥
प्रददौ नन्दगोपाय यशोदायै च यादवः। पृष्ट्वा कुशलममव्यग्रमासीनस्तु कुशासने ॥
राजकार्याणि सर्वाणि सम्पृष्टः प्राह बुद्धिमान् ॥२४२॥

अक्रूर उवाच

एषकृष्णो महातेजास्साक्षान्नारायणोऽव्ययः। देवतानांहितार्थाय साधूनां रक्षणायच ॥२४३॥
भूभारकविनाशाय धर्मसंस्थापनाय च। कंसादीनां तु दैत्यानां सर्वेषां निधनाय च॥२४४॥
सम्प्रार्थितः सुरगणैर्मुनिभिश्च महात्मभिः । देवकीजठरे जातः प्रावृट्काले महानिशि ॥२४५॥
भयात्कंसस्य देवेशमानीयानकदुन्दुभिः। तव गेहे तदा रात्रौ पुत्रं निक्षिप्तवान्हरिम् ॥२४६॥
तस्मिन्नेव तु कालेऽपि यशोदातु यशस्विनी ।
कन्यां मायांशसंभूतांप्रासूततुशुभाननाम् ॥२४७॥
तया सम्मोहितं सर्वमिदं व्रजकुलं शुभम्। मूर्च्छिताया यशोदायाः शयने यदुपुङ्गवम्॥२४८॥

उनको प्रणाम किया। हर्ष पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के पास आकर उनकी परिक्रमा करके तथा उनको प्रणाम करके ॥२३५॥ लाल कमल के समान तथा वज्र एवं चक्र के चिह्नों से युक्त भगवान् के चरण कमलों पर अपना शिर रखकर उन्होंने श्रीभगवान् को बार-बार प्रणाम किया ॥२३६॥ कैलास पर्वत के शिखर के समान चमकने वाले, नील वस्त्र धारण किए हुए, शरत् कालीन चन्द्रमा के समान कान्ति वाले मोती की माला से विभूषित बलरामजी को उसके पश्चात् देखकर उन्होंने प्रणाम किया। वे दोनों यदुश्रेष्ठ वीर हर्ष पूर्वक अक्रूरजी को उठाकर और उनका आलिङ्गन करके ॥२३७-२३८॥ उन वृष्णि वंशीय अक्रूरजी के साथ वे दोनों घर आये। नन्दगोप उन यदु श्रेष्ठ अक्रूरजी को देखकर ॥२३९॥ महातेजस्वी उनको श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर उनकी अर्घ्य पाद्य इत्यादि के द्वारा विधि पूर्वक पूजा किए ॥२४०॥ दिव्य तथा मूल्यवान् वस्त्रों से वे उनकी भक्ति पूर्वक पूजा किए। अक्रूरजी भी बलरामजी और कृष्ण भगवान् के लिए आभूषण तथा वस्त्र प्रदान किए ॥२४१॥ उन्होंने नन्दगोप तथा यशोदाजी के लिए भी वस्त्र दिया। कुशल पूछकर शान्ति पूर्वक कुश के आसन पर बैठे हुए अक्रूरजी से नन्दजी राजकार्य के विषय में पूछे ॥२४२॥ **अक्रूरजी ने कहा—** ये महातेजस्वी कृष्ण साक्षात् नारायण हैं। ये देवताओं का कार्य करने के लिए तथा सज्जनों का कल्याण करने के लिए ॥२४३॥ पृथिवी के भार को दूर करने के लिए और धर्म की स्थापना करने के लिए कंस आदि सभी दैत्यों का वध करने के लिए ॥२४४॥ देवताओं मुनियों और महर्षियों की प्रार्थना सुनकर बरसात के दिन में आधी रात को देवकीजी के गर्भ में उत्पन्न हुए ॥२४५॥ कंस के भय से इन भगवान् कृष्ण को वसुदेवजी लाकर रात्रि में आपके घर में रख दिए ॥२४६॥ उसी समय यशिवनी यशोदाजी माया के अंश से उत्पन्न सुन्दर मुखवाली कन्या को जन्म दी थीं ॥२४७॥ उसके द्वारा यह

कृष्णं निक्षिप्य तां कन्यामादाय स्वगृहं ययौ ।
तां तु निक्षिप्य देवक्याः शयने बहिरागमत् ॥२४९॥
सा रुरोद ततः क्षिप्रं देवकीशयनेस्थिता । तच्छ्रुत्वा सहसा कंसः कन्यामादायसुव्रत !॥२५०॥
भ्रामयित्वा शिलापृष्ठे चिक्षेपोत्पत्य वीर्यवान् ।
समुत्थाय च सा कन्या सायुधाऽष्टभुजान्विता ॥
गगनस्था रुषा कंसं प्राह गम्भीरया गिरा ॥२५१॥

कन्योवाच

योऽनन्तः सर्वदेवानामीश्वरः पुरुषोत्तमः । जातस्तव वधार्थाय गोव्रजे दानवाधम !॥२५२॥

अक्रूर उवाच

इत्युक्त्वा सा महामाया हिमवन्तं समाययौ । तदाप्रभृति दुष्टात्मा भयादुद्विग्नमानसः ॥२५३॥
दानवान्प्रेषयामास निधनाय महात्मनः । बालेनैव हताः सर्वे लीलयाऽनेन धीमता ॥२५४॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि कृतवान्परमेश्वरः । गोवर्द्धनाद्रिधरणं नागराजविवासनम् ॥२५५॥
समागमं महेन्द्रस्य निधनं सर्वरक्षसाम् । श्रुत्वा देवर्षिणा ख्यातमतीवभयपीडितः ॥२५६॥
इतो नीत्वा महाबाहू रामकृष्णौ दुरासदौ । मदोत्कटैर्महानागैर्मल्लैर्वा हन्तुमुद्यतः ॥२५७॥
कृष्णस्याऽऽनयनार्थाय प्रेरयामास मामिह । वसुदेवस्य दुष्टात्मा निग्रहं कृतवानसौ ॥२५८॥
एतत्सर्वं समाख्यातं चेष्टितं सुदुरात्मनः । उपभोक्तुं धनुर्यागं यूयं सर्वे व्रजौकसः ॥२५९॥
दध्याज्यादिगृहीत्वावै श्वोभूतेगन्तुमर्हथ । सहितारामकृष्णाभ्यां गोपाःसर्वेतदन्तिकम् ॥२६०॥

सम्पूर्ण व्रज कुल मोहित हो गया था । मूर्छित यशोदा की शय्या पर यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण को रखकर और उस कन्या को लेकर वे अपने घर चले गये और उसको देवकी की शय्या पर रखकर बाहर आ गये ॥२४८-२४९॥ देवकी की शय्या पर पड़ी हुयी वह कन्या उसी समय रोने लगी । हे सुव्रत ! उसके रुदन को सुनकर कंस सहसा उसे उठाकर ॥२५०॥ उसे घुमाकर शिला के ऊपर पटक दिया । वह कन्या उठकर आठो भुजाओं में आयुध लेकर आकाश में जाकर क्रोध पूर्वक कंस से गम्भीर वाणी में कही॥२५१॥ **कन्या ने कहा—** जो अनन्त सभी देवताओं के स्वामी और पुरुषोत्तम हैं हे दानवाधम ! वे गोव्रज में तुम्हारा वध करने के लिए उत्पन्न हो चुके हैं ॥२५२॥ **अक्रूरजी ने कहा—** इस तरह से कहकर वह कन्या हिमालय पर्वत पर चली गयी । उसी से दुष्ट कंस उद्विग्न होकर ॥२५३॥ इन श्रीभगवान् को मारने के लिए राक्षसों को भेजा । किन्तु इस बालक ने उन सबों को मार दिया ॥२५४॥ परमेश्वर ने अत्यन्त अद्भुत कार्यों को किया । गोवर्धन पर्वत को धारण करना तथा नागराज कालीय को विवासित करना॥२५५॥ इन्द्र के साथ समागम और सभी राक्षसों को मारना । इन सारी बातों को नारदजी के मुख से सुनकर कंस अत्यन्त भयभीत हो गया है ॥२५६॥ यहाँ पर लाकर महाबाहू तथा दुरासद बलराम तथा श्रीकृष्णजी को मदमत्त विशाल हाथियों तथा पहलवानों के द्वारा मरने के लिए उद्यत हो गया ॥२५७॥ उसने श्रीराम और कृष्ण को यहाँ लाने के लए मुझको भेजा है । उसने वसुदेवजी को निगृहीत कर लिया है ॥२५८॥ उन्होंने उस दुष्ट की सारी चेष्टाओं को बतलाया । उसने धनुर्याग देखने के लिए सभी व्रजवासियों को बुलाया है। अतएव दही और घी आदि को लेकर आपलोग कल चलें । राम और कृष्ण के साथ सभी गोप कंस के

कृष्णेन निहतः कंसो भविष्यति न संशयः ।
परित्यज्य भयं तस्मान्नमिष्यध्वं नृपाज्ञया ॥२६१॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्तवास तदा क्रूरतूष्णीमासीत्सुबुद्धिमान्। तस्यतद्वचनं श्रुत्वादारुणंरोमहर्षणम्॥२६२॥
नन्दगोपमुखाः सर्वे गोपवृद्धा भयातुराः। जग्मुस्ते च महादुःखसागरं शोकमोहिताः॥२६३॥
तानाश्वास्य हरिस्तत्र दृष्ट्वाकमललोचनः । नभीःकार्येति सम्प्राह राक्षसं प्रति वीर्यवान्॥२६४॥
विनाशाय प्रयास्यामि कंसस्यास्य दुरात्मनः ।
मथुरां सह रामेण भवद्भिः सह सङ्गतः ॥२६५॥
तत्रहत्वा दुरात्मानं कंसंदानवपुङ्गवम्। सर्वांश्च राक्षसान्हत्वा पालयिष्यामिमेदिनीम्॥२६६॥
तस्माच्छोकं परित्यज्य गच्छध्वं मथुरां पुरीम् ।
एवमुक्तास्तु हरिणा गोपा नन्दपुरोगमाः ॥२६७॥
मुहुर्मुहुः परिष्वज्य मूर्ध्न्याघ्राणं प्रचक्रिरे। अप्रमेयानि कर्माणि विचार्य सुमहात्मनः॥२६८॥
अक्रूरवचनाच्चैव गोपाःसर्वे गतव्यथाः । दुग्धदध्याजययुक्तानि शुचीनि विविधानि च॥२६९॥
पक्वान्नानि सुहृद्यानि स्वादूनि मधुराणि च ।
अक्रूराय ददौ सौम्यं यशोदा भोजनंबहु ॥२७०॥
सहितो रामकृष्णाभ्यां नन्दाद्यैर्गोपसत्तमैः । सुहृद्भिर्बालवृद्धैश्च भवने समलङ्कृते॥२७१॥
दत्तं यशोदया सौम्यं भोजनं कलुषापहम्। बुभुजे यादवश्रेष्ठो ह्यन्नं रोगापहं शुभम्॥२७२॥
भोजयित्वा यथान्यायं दत्त्वाऽऽचमनमम्भसा ।
सकर्पूरं सताम्बूलं ददौ तस्मै दृढव्रता ॥२७३॥

पास चलें ॥२५९-२६०॥ कंस निश्चित रूपसे मारा जायेगा । आपलोग निर्भय होकर चलें क्योंकि यह राजा की आज्ञा है ॥२६१॥ **ईश्वर ने कहा—** इस तरह से कहकर अक्रूरजी चूप हो गये । उनके उस भयङ्कर रोमहर्षक वचन को सुनकर ॥२६२॥ नन्द गोप इत्यादि सभी गोपवृद्ध भयभीत हो गये । शोक तथा मोह से मोहित होकर दुःख के सागर में पड़ गये ॥२६३॥ उन लोगों को देखकर कमलनयन श्रीहरि यह कहकर आश्वस्त किए और कहे कि आपलोग राक्षस से डरें नहीं ॥२६४॥ मैं प्रयास करके राम के साथ आपलोगों के साथ मथुरा जाकर दुष्ट कंस को मार दूँगा ॥२६५॥ वहाँ पर दुष्ट कंस को मारकर तथा सभी राक्षसों को मारकर पृथिवी का पालन करूँगा । अतएव शोक को छोड़कर आपलोग मथुरा चलें । इस तरह से श्रीहरि के द्वारा कहे जाने पर नन्द आदि गोप ॥२६६-२६७॥ भगवान् का बार-बार आलिङ्गन करके तथा उनके शिर को सूंघकर श्रीभागवान् के अद्भुत कार्यों का विचार करके ॥२६८॥ अक्रूर के कहने से ही सभी गोप सुखी हो गये । दुग्ध, दधि तथा घी और विविध प्रकार की पवित्र वस्तुओं को ॥२६९॥ पकवानों तथा हृद्य पदार्थों से स्वादिष्ट और मधुर एवं सुखद भोजन अक्रूरजी को दीं ॥२७०॥ यशोदा द्वारा प्रदत्त भोजन राम कृष्ण तथा नन्द आदि श्रेष्ठ गोपों के साथ मित्रों तथा बालकों एवं वृद्धों के साथ समलंकृत भवन में॥२७१॥ यशोदाजी के द्वारा सौम्य और पाप विनाशक रोग नाशक एवं शुभ भोजन किए ॥२७२॥

अस्तं याते दिनकरे सन्ध्यामन्वास्य यादवः ।
सहितो रामकृष्णाभ्यां भुक्तवा क्षीरान्नमुत्तमम् ॥२७४॥
ताभ्यामेव तदाऽक्रूरः शयनं समुपाविशत् । तस्मिंस्तु भवने श्रेष्ठे रम्ये दीपविराजिते ॥२७५॥
श्लक्ष्णेविचित्रपर्यङ्के नानापुष्पविराजिते । तस्मिञ्छेते हरिःकृष्णः शेषे नारायणोयथा ॥२७६॥
तं दृष्ट्वा सहसाऽक्रूरो हर्षाश्रुपुलकाञ्चितः । विहाय तामसीं निद्रां सुश्रेयः समुदीक्ष्य वै ॥२७७॥
पादसम्वाहनं विष्णोश्चक्रे भागवतोत्तमः । एतावता मे साफल्यं जीवितंचसुजीवितम् ॥२७८॥
इदं त्रैलोक्यमैश्वर्यमिदं वै सुखमुत्तमम् । इदं राज्यमिदं धर्म्यमिदं मोक्षसुखं परम् ॥२७९॥
न शक्यं मनसा स्मर्तं शिवब्रह्मादिदैवतैः । सनकाद्यैर्मुनीन्द्रैस्तु वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः ॥२८०॥
तच्छ्रीशस्यपदद्वन्दं शरदम्बुरुहोज्ज्वलम् । संस्पृष्टमिन्दिराश्लक्ष्णकराभ्यां सुसुखंपरम् ॥२८१॥
दिष्ट्या लब्धं मया विष्णोः श्रीपादाब्जयुगं शुभम् ।
इत्येवं वदतस्तस्य हरिपादाब्जसङ्गिनः ॥२८२॥
व्यतीता साक्षणाद्रात्रिस्तद्ब्रह्मानन्दगौरवात् । ततःप्रभाते विमले दिवि देवगणोत्तमैः ॥२८३॥
संस्तूयमानो बुबुधे तस्मात्तु शयनाद्धरिः । उपस्पृश्य यथान्यायं सह रामेण धीमता ॥२८४॥
पपात पादयोर्मातुः प्रयाणं चाभ्यरोचयत् । समुत्थाप्य यशोदा तु दुःखहर्षसमन्विता ॥२८५॥
अश्रुपूर्णमुखी पुत्रौ प्रेम्णा सम्परिषस्वजे । आशिषं प्रददौ देवी तनयाभ्यां दृढव्रता ॥२८६॥
विवसर्ज महावीरौ समालिङ्ग्य मुहुर्मुहुः । अक्रूरोऽपि यशोदायै प्रणम्यप्राह साञ्जलिः ॥२८७॥

औचित्यानुसार भोजन कराकर तथा आचमन शुभ भोजन किए । श्रीभगवान् कपूर सहित ताम्बूल उनको प्रदान किए ।२७३॥ सूर्यास्त हो जाने पर यादव श्रेष्ठ सन्ध्या करके राम कृष्ण के साथ उत्तम क्षीरान्न खाकर ॥२७४॥ अक्रूरजी बलरामजी और कृष्ण भगवान् के साथ ही दीपक से प्रकाशित उस श्रेष्ठ तथा मनोहर भवन में सोए ॥२७५॥ मृदु मनोहर और अनेक पुष्पों से सुशोभित शय्या पर वे उसी तरह से सोये जैसे शेष शय्या पर श्रीहरि सोते हैं ॥२७६॥ उनको देखकर अक्रूरजी सहसा हर्ष से रोमाञ्चित होकर तामसी निद्रा को छोड़कर तथा परम कल्याणप्रद श्रीहरि को देखकर ॥२७८॥ वे भागवत श्रेष्ठ श्रीभगवान् के पैर को दबाने लगे । वे सोच रहे थे कि इतने मात्र से मेरा सुन्दर जीवन सफल हो गया ॥२७८॥ यही मेरे लिए त्रैलोक्य के ऐश्वर्य, उत्तम सुख, राज्य, धार्मिक कार्य और मोक्ष जन्य परम सुख है ॥२७९॥ ब्रह्माजी और शिवजी मन से भी इसका स्मरण नहीं कर सकते हैं । सभी देवता सनकादि मुनीन्द्र और वसिष्ठ आदि महर्षि भी इसका स्मरण नहीं कर सकते हैं ॥२८०॥ श्रीभगवान् को शरत् कालीन कमल के समान सुन्दर चरणद्वय लक्ष्मीजी कोमल हाथों के ही द्वारा सुखपूर्वक स्पृष्ट करती हैं ॥२८१॥ श्रीहरि के ये दोनों चरण मुझे भाग्यवशात् ही प्राप्त हुए हैं । इस तरह से बोलते हुए श्रीहरि के चरण कमल के सङ्गी॥२८२॥ श्रीअक्रूरजी की रात्रि ब्रह्मानन्द के महत्त्व के कारण जैसे क्षण भर में बीत गयी । उसके बाद प्रातःकाल होने पर श्रेष्ठ देव समूह से आकाश में स्तुति किए जाते हुए श्रीहरि उस शय्या से जग गये । बलरामजी के साथ अपनी माता के चरणों का स्पर्श करके उनके चरणों पर गिर पड़े और जाने के लिए तैयार हो गये। यशोदाजी उनको दुःख एवं हर्ष से युक्त होकर उठायीं ॥२८३-२८५॥ उनके आंसू वहकर मुख पर आ

अक्रूर उवाच

प्रयास्यामि महाभागे प्रसादं कुरुमेऽनघे !। एषकृष्णो महाबाहुः कंसं हत्वा महाबलम् ॥२८८॥
सर्वस्यजगतो राजा भविष्यति न संशयः। तस्माच्छोकं परित्यज्य सुखीभव वरानने !॥२८९॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्तया तयाऽक्रूरो विसृष्टो यदुसत्तमः। सहितो रामकृष्णाभ्यामारुरोह रथोत्तमम्॥२९०॥
प्रययौ मथुरां शीघ्रं स्तूयमानोऽप्सरोगणैः। नन्दगोपमुखाः सर्वे गोपवृद्धास्तमन्वयुः॥२९१॥
पुनर्गृहीत्वा दध्याज्यं फलानि विविधानि च।
तं प्रयान्तं हरिंदृष्ट्वागोकुलाद्गोपयोषितः ॥२९२॥
अनुजग्मुर्विनिष्क्रान्तं रथस्थं मधुसूदनम्। निवर्त्तयामास हरिस्ताः सर्वागोपयोषितः ॥२९३॥
शोकसन्तप्तहृदया विलेपुः कमलेक्षणम्। हा कृष्णकृष्णकृष्णेति गोविन्देत्यरुदन्मुहुः ॥२९४॥
अश्रुपूर्णेक्षणादीना रुदन्त्यस्तत्रसंस्थिताः। अथाऽक्रूरोरथंदिव्यं चोदयामासगोव्रजात्॥२९५॥
सहितो रामकृष्णाभ्यां मथुरांप्रतियादवः। उत्तीर्य यमुनांशीघ्रं कूलेस्थाप्य रथोत्तमम्॥२९६॥
अवरुह्य रथात्तस्मात्स्नातुं तत्रोपचक्रमे। तथाचाऽऽवश्यकं कर्त्तुं निमज्ज्याऽथजलेशुभे॥२९७॥
तत्राऽघमर्षणं सम्यग्जपन्भागवतोत्तमः। ददर्श तौ जले तत्र रामकृष्णौ शुभान्वितौ ॥२९८॥
शरत्कोटीन्दुसङ्काशं नीलाम्बरधरंप्रभुम्। दिव्यचनन्दनदिग्धाङ्गमौक्तिकाभरणच्छविम् ॥२९९॥

गये थे। प्रेम पूर्वक अपने पुत्रों का आलिङ्गन की दृढव्रता देवी ने अपने दोनों पुत्रों को आशीर्वाद दिया॥२८६॥ उन दोनों वीरो का बार-बार आलिङ्गन करके वे विदा कीं। अक्रूरजी भी हाथ जोड़कर यशोदाजी को प्रणाम किए और कहे ॥२८७॥ **अक्रूरजी ने कहा—** हे महाभागे ! हे अनघे मैं जाना चाहता हूँ आप मेरे ऊपर कृपा बनाये रखेंगी ये महाबाहु कृष्ण महाबलवान् कंस को मारकर निश्चित रूप से सम्पूर्ण जगत् के राजा हो जायेंगे। अतएव हे वरानने आप शोक को छोड़कर सुखी हो जायँ ॥२८८-२८९॥ **ईश्वर ने कहा—** इस तरह से कही गयी यशोदाजी से विदा लेकर अक्रूरजी बलरामजी और कृष्ण भगवान् के साथ उत्तम रथ पर बैठ गये ॥२९०॥ अप्सरा समूह से स्तुति किए जाते हुए शीघ्र ही वे चले गये। नन्दगोप आदि सभी गोपवृद्ध उनके पीछे चले ॥२९१॥ फिर दघि, घी तथा अनेक प्रकार के फलों को लेकर वे जा रहे थे। श्रीहरि को गोकुल से जाते देखकर गोपिकाएँ ॥२९२॥ जाते हुए रथ पर बैठे हुए श्रीहरि के पीछे चल पड़ीं। श्रीहरि ने उन सभी गोपियों को लौटाया ॥२९३॥ कमलनयन श्रीहरि का नाम लेकर वे शोक संतप्त हृदय वाली होकर विलाप करने लगीं। वे रोती हुयी बार-बार कृष्ण, कृष्ण और गोविन्द शब्द का उच्चारण कर रही थीं ॥२९४॥ उनकी आँखों में आँसू भरा हुआ था और वे दीन हो गयी थीं वे रोती हुयी वहीं ठहर गयीं। उसके पश्चात् अक्रूरजी गोकुल से रथ को ॥२९५॥ मथुरा के लिए हाँके उनके साथ बलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् थे। वे शीघ्र यमुना को पार करके उसके तट पर रथ को खड़ा किए ॥२९६॥ उस रथ से उतरकर वहाँ पर स्नान करने का उपक्रम किए। तथा जल में स्नान करके आवश्यक कर्म करने के लिए ॥२९७॥ वहाँ पर अच्छी तरह से अघमर्षण मन्त्र को पढ़ते हुए वे भागवतोत्तम जल में बलरामजी को तथा नीले मेघ के समान कान्ति वाले श्रीकृष्ण भगवान् को देखे ॥२९८॥ वे भगवान् को करोड़ों

रक्तारविन्दनयनं पुण्डरीकावतंसकम्। रामं ददर्श कृष्णंच नीलनीरदसन्निभम्॥३००॥
दिव्यपीताम्बरधरं पुण्डरीकायतेक्षणम्। हरिचन्दनलिप्ताङ्गं नानारत्नविभूषितम्॥३०१॥
दृष्ट्वा तत्र यदुश्रेष्ठो विस्मयं परमं गतः। उत्थाय स्यन्दने तत्र तौ ददर्श महाबलौ॥३०२॥
पुनरप्यत्र निर्मज्ज्य जपन्मन्त्रद्वयं हरिम्। सुधाबधौशेषपर्यङ्के रमया सहितं हरिम्॥३०३॥
सनकाद्यैः स्तूयमानं सर्वैर्देवैरुपासितम्। दृष्ट्वा तस्मिञ्जले देवं विस्मयं परमं ययौ॥
तुष्टावाऽथ यदुश्रेष्ठो हरिं सर्वगमीश्वरम् ॥३०४॥

अक्रूर उवाच

कालात्मने नमस्तुभ्यमनादिनिधनाय च। अव्यक्ताय नमस्तुभ्यमविकाराय ते नमः॥३०५॥
भूतभर्त्रे नमस्तुभ्यं भूतव्याप्ताय ते नमः। नमस्ते सर्वभूतानां नियन्त्रे परमात्मने॥३०६॥
विकारायाविकाराय प्रत्यक्षपुरुषाय च। गुणभर्त्रे नमस्तुभ्यं नियमाय नमोनमः॥३०७॥
देशकालादिनिर्भेदरहिताय परात्मने। अनन्ताय नमस्तुभ्यमच्युताय नमोनमः॥३०८॥
गोविन्दाय नमस्तुभ्यं त्रयीनाथाय शार्ङ्गिणे। नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते नमः॥३०९॥
विष्णवे पुरुरूपाय शाश्वताय नमोनमः। पद्मनेत्राय नित्याय शङ्खचक्रधराय च॥३१०॥
उद्यत्कोटिरविप्रख्यभूषणाञ्चितवर्चसे। हरये सर्वलोकानामीश्वराय नमोनमः॥३११॥
सवित्रे सर्वजगतां बीजाय परमात्मने। सङ्कर्षणाय कृष्णाय प्रद्युम्नाय नमोनमः॥३१२॥

शरत्कालीन चन्द्रमा के समान कान्ति वाले, नीला वस्त्र धारण किए हुए, दिव्य चन्दन धारण किए हुए तथा मौक्तिक के आभूषणों से सुन्दर देखे ॥२९९॥ रक्त कमल के समान, आँखों वाले तथा कमल की माला धारण किए हुए बलरामजी को देखे और नील मेघ के समान भगवान् श्रीकृष्ण को देखे ॥३००॥ वे दिव्य पीताम्बर धारण किए हुए थे, कमल के समान उनके विस्तृत नेत्र थे। उनके अङ्गों में हरिचन्दन लगा था और वे अनेक रत्नों से विभूषित थे ॥३०१॥ वहाँ पर उन दोनों लोगों को देखकर वे अत्यन्त आश्चर्यित हुए। वे बाहर निकलकर देखे तो वे दोनों रथ में बैठे थे ॥३०२॥ फिर यहाँ डुबकी लगाकर द्वयमन्त्र का जप करते हुए श्रीहरि को क्षीर सागर में शेष शय्या पर लक्ष्मीजी के साथ देखे ॥३०३॥ सनकादि योगीन्द्र उनकी स्तुति कर रहे थे और सभी देवता उनकी उपासना कर रहे थे। जल में श्रीभगवान् को देखकर वे अत्यन्त आश्चर्यित हुए। उसके बाद उन्होंने सर्वत्र व्यापक श्रीहरि की स्तुति की ॥३०४॥ **अक्रूरजी ने कहा** काल स्वरूप तथा अनादिनिधन आपको नमस्कार है। अव्यक्त तथा विकार रहित आपको नमस्कार है॥३०५॥ सभी भूतों के स्वामी, सभी भूतों में व्यापक आपको नमस्कार है। सभी भूतों का नियमन करने वाले तथा परमात्मा आपको नमस्कार हैं ॥३०६॥ विकार स्वरूप तथा विकार रहित एवं प्रत्यक्ष पुरुष गुणों के स्वामी तथा नियमस्वरूप आपको बारम्बार नमस्कार है ॥३०७॥ देशकाल के भेदों से रहित, परमात्मा, अनन्त स्वरूप आप अच्युत भगवान् को बार-बार नमस्कार है ॥३०८॥ शार्ङ्ग धनुर्धारी, वेदों के स्वामी आप गोविन्द भगवान् को नमस्कार है। विश्व स्वरूप नारायण भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥३०९॥ शाश्वत तथा अनेक रूपों को धारण करने वाले आप भगवान् विष्णु का नमस्कार है। कमलनयन, नित्य तथा शङ्ख, चक्र धारण करने वाले आपको नमस्कार है ॥३१०॥ उदित होते हुए करोड़ों सूर्य के समान भूषणों से सुशोभित कान्ति वाले सभी लोकों के स्वामी श्रीहरि को नमस्कार है ॥३११॥ सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि

अनिरुद्धाय धात्रे च विधात्रे विश्वयोनये। सहस्रमूर्तये तुभ्यं बहुमूर्द्धाङ्घ्रिबाहवे॥३१३॥
सहस्रनाम्ने नित्याय पुरुषाय नमोनमः। नमस्ते नागपर्यङ्कशायिने सौम्यरूपिणे॥३१४॥
केशवाय नमस्तुभ्यं पीतवस्त्रधराय च। लक्ष्मीघनकुचाश्लेषविमर्दोज्ज्वलवक्षसे ॥
श्रीधराय नमस्तुभ्यं श्रीशायाऽनन्तरूपिणे ॥३१५॥

ईश्वर उवाच

स्नानकाले पठेद्यस्तु देवं ध्यायन्सनातनम्। इमं स्तवं नरो भक्त्या महद्भिर्मुच्यते ह्यघैः॥३१६॥
सर्वतीर्थफलं प्राप्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्। एवमन्तर्जले देवं स्तुत्वा भागवतोत्तमः॥३१७॥
अर्चयामास सजलैः कुसुमैश्च सुगन्धिभिः। कृतकृत्यस्तदाऽक्रूरो निर्गत्ययमुनाजलात्॥३१८॥
समेत्य रामकृष्णौ तु प्रणनामशुभान्वितः। तं दृष्ट्वा प्राह गोविन्दोविनीतंविस्मितंहरिः॥३१९॥

श्रीकृष्ण उवाच

किमाश्चर्यं जले तस्मिन्दृष्टवानसि यादव ! ॥३२०॥

ईश्वर उवाच

अक्रूरस्तु यदुश्रेष्ठं प्राह कृष्णं सुतेजसम् ॥३२१॥

अक्रूर उवाच

तव सर्वगतस्येश ! महिम्नो जगतः प्रभो ! ।
किमाश्चर्यं हृषीकेश ! जगत्सर्वं त्वमेव हि ॥३२२॥

त्वमापस्त्वं नभो वह्निस्त्वं भूमिरनिलस्तथा। चतुर्विधमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥३२३॥

करने वाले जगत् के बीज स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। सङ्कर्षण तथा प्रद्युम्न स्वरूप भगवान् कृष्ण को बारम्बार नमस्कार है ॥३१२॥ अनिरुद्ध स्वरूप, धाता एवं विधाता तथा सम्पूर्ण जगत् के उपादान कारण आपको नमस्कार है। अनेक शिर, पैर तथा पैरों वाले सहस्रमूर्ति आपको नमस्कार है ॥३१३॥ हजारों नाम वाले नित्य पुरुष को नमसकार है। नाग पर्यङ्क पर सोने वाले तथा सौम्य रूप वाले आपको नमस्कार है ॥३१४॥ पीताम्बरधारी आप केशव को नमस्कार है। लक्ष्मीजी के कठोर स्तनों को मर्दित करने वाले वक्षःस्थल वाले आपको नमस्कार है। लक्ष्मीपति श्रीधर आदि अनेक रूपों को धारण करने वाले आपको बारम्बार नमस्कार है ॥३१५॥ **ईश्वर ने कहा—** स्नान करने के समय श्रीभगवान् का ध्यान करते हुए जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इस स्तोत्र को पढ़ता है, बड़े-बड़े पापों से मुक्त हो जाता है ॥३१६॥ वह सभी तीर्थों के फल को प्राप्त करके भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है। इस तरह से जल के भीतर भगवान् विष्णु की स्तुति करके वे भागवतोत्तम ॥३१७॥ उनकी जल और सुगन्धित पुष्पों से पूजा किए। उसके पश्चात् कृत-कृत्य होकर अक्रूरजी यमुनाजी के जल से निकलकर ॥३१८॥ बलरामजी तथा भगवान् कृष्ण के पास आकर प्रणाम किए। उनको विनीत तथा विस्मित हुए देखकर श्रीहरि कहे ॥३१९॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—** हे यादव ! आपने जल के भीतर किस आश्चर्य को देखा है ?॥३२०॥ **ईश्वर ने कहा—** यदुश्रेष्ठ अक्रूरजी ने अत्यन्त तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ॥३२१॥ **अक्रूरजी ने कहा—** हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! हे जगत् के प्रभो ! यह सबकुछ आपकी महिमा है। हे हृषिकेश ! यह कौन सा आश्चर्य है। सम्पूर्ण जगत् आप ही हैं ॥३२२॥ आप ही जल, अग्नि, आकाश, भूमि तथा वायु

त्वत्तो नान्यद्वासुदेवजीमूतादमृतं यथा। त्वं यज्ञस्त्वंवषट्कारस्त्वमोंकारोहविस्तथा ॥३२४॥
त्वमेवसर्वदेवानामीश्वरः शाश्वतोऽव्ययः। नाकारणात्कारणाद्वा कारणाकारणात्परः ॥३२५॥
धर्मत्राणाय देवेश ! शरीरग्रहणं तव। मत्स्यकूर्मवराहादिवैभवत्वमुपागतः ॥
पासि सर्वमिमं लोकं त्वमेव त्वन्मयं विभो ! ॥३२६॥

ईश्वर उवाच

इतिसंस्तुत्य गोविन्दं प्रणम्य जगतां पतिम्। आरुरोह रथं दिव्यं ताभ्यां सह यदूत्तमः ॥३२७॥
ततस्तूर्णं समासाद्य मथुरां देवनिर्मिताम्। रामकृष्णौ पुरद्वारि निवेश्याऽन्तःपुरं ययौ॥३२८॥
तयोरागमनं तस्य निवेद्य नृपतेस्तदा। राज्ञा सम्पूजितस्तेन ततः स्वगृहमाविशत् ॥३२९॥
अथ सायाह्नसमये रामकृष्णौ महाबलौ। परस्परं करौ गृह्य मथुरायां समागतौ ॥३३०॥
गच्छन्तौ च महावीर्यौ राजमार्गे यदूत्तमौ। ददृशतुर्महात्मानौ रजकं वस्त्ररञ्जकम् ॥३३१॥
दिव्यवस्त्रवृतं राजगेहमायान्तमच्युतः। ययाचे तानि वस्त्राणि सह रामेण वीर्यवान्॥३३२॥
न दत्तवांस्तदा तस्मै रुषा वै वस्त्ररञ्जकः। बहूनि कटुवाक्यानि प्राह तत्राध्वनि स्थितः ॥३३३॥
ताडयामास तं कृष्णस्तलेनैव महाबलः। तत्रैव निहतो मार्गे वमन्वै रुधिरं बहु॥३३४॥
तानि वस्त्राणि रम्याणि गोपालैः सह बान्धवैः।
धारयामासतुर्वीरौ यथार्हं रामकेशवौ ॥३३५॥
मालाकारगृहं प्राप्य तेन दृष्टौ नमस्कृतौ। सुगन्धिभिर्दिव्यपुष्पैःपूज्यमानौ मुदान्वितौ ॥३३६॥

स्वरूप हैं। चार प्रकार का यह स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत् आप ही हैं ॥३२३॥ हे वासुदेव ! आपसे भिन्न कुछ उसी तरह नहीं है जैसे मेघ से भिन्न जल नहीं है। आप ही यज्ञ, वषट्कार ओङ्कार तथा हविष्य स्वरूप हैं ॥३२४॥ आप ही सभी देवताओं के शाश्वत तथा अव्यय ईश्वर हैं। कारण तथा अकारण से अथवा कारण एवं अकारण से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं होता है ॥३२५॥ हे देवेश ! आप धर्म की रक्षा करने के लिए शरीर धारण करते हैं। और आप मत्स्य, कूर्म तथा वाराह आदि रूपों को धारण करते हैं॥३२६॥ हे विभो ! यह जगत् आपमय हैं और आपही इस सम्पूर्ण लोक की रक्षा करते हैं, ईश्वर ने कहा इस तरह से गोविन्द की स्तुति करके तथा उनको प्रणाम करके उन दोनों के साथ यदुश्रेष्ठ अक्रूरजी रथ पर बैठ गये॥३२७॥ उसके पश्चात् शीघ्र ही मथुरा आकर राम और कृष्ण को नगर के द्वार पर रखकर वे नगर के भीतर चले गये ॥३२८॥ उन दोनों के आगमन को राजा को बतलाकर राजा के द्वारा पूजित होकर वे उसके पश्चात् अपने घर चले गये ॥३२९॥ उसके बाद सायंकाल महाबलवान् राम और कृष्ण एक दूसरे का हाथ पकड़कर मथुरा में आये ॥३३०॥ राजमार्ग पर जाते हुए वे महाबलवान् वस्त्र को रङ्गने वाले रजक को देखे ॥३३१॥ दिव्य वस्त्र को धारण किए हुए राजा के घर आते हुए उससे भगवान् अच्युत उन वस्त्रों को माँगे। उनके साथ बलरामजी विद्यमान थे ॥३३२॥ उसने वस्त्र नहीं दिया और क्रोध पूर्वक वह वस्त्र रङ्गने वाला बहुत सी कठोर वाक्यों को मार्ग में कहा ॥३३३॥ उसको महाबलवान् कृष्ण ने हथेली से ही मारे वह वहीं बहुत अधिक खून वमन करता हुआ मर गया ॥३३४॥ उन वस्त्रों को गोपालों तथा बान्धवों के साथ राम और केशव यथा योग्य धारण कर लिए ॥३३५॥ मालाकार के घर वे गये तो मालाकार उन

दददतुस्तौ वरं तस्मै वाञ्छितं यदुपुङ्गवौ । समागतौ पुनर्वीथ्यामायान्तींच शुभाननाम्॥३३७॥
कुब्जां स्त्रियं महाभागौ धृतचन्दनभाजनाम्। वक्राङ्गपृष्ठां वनितां दृष्ट्वागन्यमयाचताम् ॥३३८॥
प्रहसन्ती तदा ताभ्यां ददौ चन्दनमुत्तमम् । आदाय चन्दनं दिव्यमुपलिप्य यथेच्छया ॥३३९॥
तस्यैकान्ततरं रूपं दत्त्वाऽध्वनि समागतौ। निरीक्ष्यमाणौ योषिद्धिः सुकुमारौ शुभाननौ॥३४०॥
विविशतुर्महात्मानौ यज्ञशालां सहानुगैः । दृष्ट्वा समर्चितं दिव्यं कार्मुकं तत्र केशवः॥३४१॥
लीलयैव गृहीत्वाऽथ बभञ्ज मधुसूदनः। विभज्यमानं तच्चापं श्रुत्वा कंसः सुविह्वलः॥३४२॥
आहूय मल्लान्सूतांस्तु प्रमुखान्दैत्यपुङ्गवान्। विमृश्यमन्त्रिभिःप्राह चाणूरं दैत्यपुङ्गवः॥३४३॥

कंस उवाच

रामकृष्णौ समायातौ सर्वदैत्यविनाशकौ। प्रभाते मल्लयुद्धेन हन्येतामविशङ्कया ॥३४४॥
येनकेनाप्युपापेन हन्तव्यौ बलदर्पितौ । मदोत्कटैर्गजैर्वाऽपि मल्लमुख्यैश्च यत्नतः ॥३४५॥

ईश्वर उवाच

इत्यादिश्य ततो राजा सानुजः सचिवैःसह। आरुरोह भयात्तूर्णं दिव्यप्रासादमूर्द्धनि ॥३४६॥
द्वारेषु सर्वमार्गेषु गजान्मत्तानयोजयत्। मल्लान्मदोत्कटान्नागान्स्थापयामास सर्वतः ॥३४७॥
ज्ञात्वा कृष्णोऽपि तत्सर्वं सह रामेण धीमता ।
उवास रजनीं तत्र यज्ञगेहे सहानुगैः ॥३४८॥
ततो रजन्यां व्युष्टायां प्रभाते विमलेसति । शयनादुत्थितौ वीरौ रामकृष्णौकृतोदकौ ॥३४९॥

दोनों को देखकर प्रणाम किए । उन्होंने सुगन्धित दिव्य पुष्पों से प्रसन्नता पूर्वक उन दोनों को प्रणाम किया॥३३६॥ उन दोनों यदु श्रेष्ठों ने उसको बहुत अभिप्रेत वरदान दिया । फिर वे गली में आ गये और आती हुयी सुन्दर मुख वाली ॥३३७॥ चन्दन ली हुयी कुब्जा नामक स्त्री को वे महाभाग देखे । उसके अङ्ग और पीठ टेढ़े थे । उस स्त्री को देखकर वे उससे चन्दन माँगे ॥३३८॥ हंसती हुयी वह उन दोनों को चन्दन प्रदान की । चन्दन को लेकर अपनी इच्छा के अनुसार उसे लगाकर ॥३३९॥ उसको अत्यधिक सुन्दर रूप देकर वे फिर मार्ग में आ गये । सुन्दर मुख वाले तथा सुकुमार उन दोनों को स्त्रियाँ देख रही थीं ॥३४०॥ अपने अनुचरों के साथ यज्ञशाला में प्रवेश किए । वहाँ पर पूजित धनुष को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ॥३४१॥ आसानी से उसे उठाकर तोड़ दिए उस धनुष को टुटे हुए सुनकर कंस घबरा गया॥३४२॥ उसने पहलवानों तथा सूतों को बुलाकर तथा प्रमुख श्रेष्ठ दैत्यों को बुलाकर मन्त्रियों के साथ विचार करके चाणूर को कहा ॥३४३॥ **कंस ने कहा—** सभी राक्षसों का विनाश करने वाले बलराम और कृष्ण आये हैं । प्रात:काल मल्ल युद्ध के द्वारा बिना किसी सङ्कोच के इन दोनों को मार देना चाहिए ॥३४४॥ बल के दर्प से दृप्त इन दोनों को मारना चाहिए । मदमत्त हाथी के द्वारा अथवा मल्ल युद्ध के द्वारा प्रयत्न करके मारना चाहिए ॥३४५॥ **ईश्वर ने कहा—** इस तरह से आदेश देकर राजा कंस अपने छोटे भाई तथा मन्त्रियों के साथ भय के कारण शीघ्र ही दिव्य महल के ऊपर चढ़ गया ॥३४६॥ द्वार के सभी मार्गो पर उसने मदमत्त हाथियों को नियुक्त कर दिया । उसने मदमत्त पहलवानों को सभी ओर नियुक्त कर दिया॥३४७॥ भगवान् श्रीकृष्ण इन सारी बातों को जानकर बुद्धिमान बलरामजी के साथ उस यज्ञशाला में अपने अनुचरों के साथ रात्रि में निवास किए ॥३४८॥ उसके बाद रात के बीत जाने पर तथा निर्मल प्रभात हो जाने पर

स्वलङ्कृतौ च तौ भुक्त्वा संग्रामाभिमुखोत्सुकौ ।
विनिर्गतौ गृहात्तस्मात्सिंहाविव गुहामुखात् ॥३५०॥

राजद्वारि स्थितं नागं हिमाद्रिशिखरोपमम् । नाम्ना कुवलयापीडं कंसस्य जयवर्द्धनम् ॥३५१॥
देवकुञ्जरदर्पघ्नं महाकायं मदोत्कटम्। दृष्ट्वा तं च महानागं पञ्चास्य इव केशवः॥३५२॥
करेणैव करं गृह्य सम्यगुत्प्लुत्य लीलया । भ्रामयित्वाऽथ चिक्षेप धरण्यां धरणीधरः॥३५३॥
स तु चूर्णितसर्वाङ्गो निनदन्भैरवं स्वनम् । पपात सहसा भूमौ ममार च महागजः ॥३५४॥

हत्वा दन्तौ समुत्पाट्य गृहीत्वा रामकेशवौ ।
मल्लैरायोधनं कतु रङ्गं विविशतुस्तदा ॥३५५॥
तत्रस्था दानवा दृष्ट्वा गोविन्दस्य पराक्रमम् ।
भीताः प्रविद्रुताः सर्वेराज्ञोऽन्तःपुरमाययुः ॥३५६॥

कपाटौ सुदृढौ बद्ध्वा तत्रतस्थुःसहस्रशः । दृढबन्धकपाटांस्तु दृष्ट्वा कृष्णस्तु लीलया ॥३५७॥
ताडयित्वा पदेनैव पातयामास वीर्यवान्। तौ भग्नौ पातितौ तत्र सेनानीके व्यवस्थिते ॥३५८॥
तत्रस्था निहताःसर्वे चूर्णिताङ्गशिरोऽधराः । ततः प्रविश्य भवनं कंसस्यास्य महाबलौ॥३५९॥
भ्रामयन्तौ महानागशृङ्गौ पीनौ रणोत्सुकौ। ददृशाते महात्मानौमल्लौ चाणूरमुष्टिकौ ॥३६०॥

कंसोऽपि दृष्ट्वा गोविन्दं रामं च सुमहाबलम् ।
भयामाविश्य चाणूरं प्राह मल्लवरं तदा ॥३६१॥

वीर राम और कृष्ण जल क्रिया करके अपनी शय्या से उठे ॥३४९॥ अच्छी तरह से अलंकृत वे दोनों भोजन करके युद्ध में जाने के लिए उत्सुक हो गये । वे उस गृह से उसी तरह निकले जिस तरह सिंह अपनी गुफा से निकलता है ॥३५०॥ हिमालय के शिखर के समान राजद्वार पर स्थित कुबलयापीड नामक हाथी जो कंस को विजय दिलाने वाला था उसको ॥३५१॥ वह हाथी देवताओं के भी हाथियों के दर्प को विनष्ट करने वाला था । विशाल शरीर वाला और मदमत्त था । उसको जिस तरह सिंह हाथी को देखता है उसी तरह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ॥३५२॥ हाथ से ही उसकी सूंड को पकड़कर लीला पूर्वक उछालकर पकड़ लिये और उसको घूमाकर पृथिवी पर पटक दिए ॥३५३॥ सभी अङ्गों के चूर-चूर हो जाने के कारण जोर से चिग्घाड़ता हुआ हाथी शीघ्र ही पृथिवी पर गिरकर मर गया ॥३५४॥ उसको मारकर उसके दोनों दाँतों को उखाड़कर बलरामजी तथा भगवन् कृष्ण पहलवानों के साथ युद्ध करने के लिए रङ्गशाला में प्रवेश किए ॥३५५॥ वहाँ पर विद्यमान पहलवान् भगवान् गोविन्द के पराक्रम को देखकर भयभीत होकर भागे और राजा के अन्तःपुर में प्रवेश कर गये ॥३५६॥ किवाड़ों को अच्छी तरह बन्द करके वहाँ पर हजारों वीर एकत्रित हो गये । अच्छी तरह से बन्द किए गये किवाड़ों को देखकर लीला पूर्वक देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ॥३५७॥ पैर से ही मारकर किवाड़ को गिरा दिए । उन दोनों किवाड़ों के टूट जाने पर वहाँ विद्यमान सेना के व्यवस्थित हो जाने पर ॥३५८॥ उन सबों के शिर आदि को चूर-चूर करके मार दिए। उसके बाद कंस के भवन में प्रवेश करके वे महाबलवान् उस महान् हाथी के शृङ्ग को घुमाते हुए तथा युद्ध के लिए उत्सुक चाणूर और मुष्टिक नामक दो बड़े पहलवाना दिखायी पड़े ॥३५९-३६०॥ कंस भी

कंस उवाच

अस्मिन्नवसरे मल्ल ! जहि गोपालबालकौ ।
विभज्य तव राज्यार्द्धमहं दास्याम्ययत्नतः ॥३६२॥

ईश्वर उवाच

तस्मिन्नवसरे कृष्णो मल्लाभ्यां दृश्यते महान् ।
मध्ये वने च संग्रामे महामेरुरिवापरः ॥३६३॥

कंसस्य दृष्टिविषये सम्वर्त्ताग्निरिवाऽच्युतः। स्त्रीणांचसाक्षान्मदनः पित्रोः शिशुरिवापरः ॥३६४॥
त्रिदशानां हरिरिव गोपालानां सखा यथा। बहुरूपेण ददृशुस्तत्र सर्वगतं हरिम् ॥३६५॥
वसुदेवस्तथाऽक्रूरो नन्दगोपो महामतिः। अन्यं प्रसादमारुह्य ददृशुं: कदनं महत्॥३६६॥
स्त्रीभिरन्तः पुरस्थाभिर्देवकी तत्र संस्थिता। मुखं पुत्रेस्य ददृशे साश्रुपूर्णेक्षणा शुभा ॥३६७॥
ताभिराश्वासिता देवी भवनान्तरमाविशत्। ततो देवगणाःसर्वे विमानस्था नभस्तले ॥३६८॥
तुष्टुवुर्जयशब्देन पुण्डरीकाक्षमच्युतम्। जहि कंसमितिप्राहुरुच्चैर्देवा मरुद्गणाः॥३६९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र तूर्यघोषनिनादिते। आसेदतुर्महामल्लौ यदुसिंहौ महाबलौ॥३७०॥
चाणूरेण तु गोविन्दो मुष्टिकेन हलायुधः। ययुधाते महात्मानौ नीलश्वेताद्रिसन्निभौ ॥३७१॥
मल्लयुद्धविधानेन मुष्टिभिः पादताडनैः। बभूव कदनं घोरं देवानां च भयावहम् ॥३७२॥

चाणूरेण चिरं कालं क्रीडित्वाऽथ जनार्दनः ।
निष्पिष्य गात्रं मल्लस्य पातयामास लीलया ॥३७३॥

बलरामजी तथा कृष्ण भगवान् को देखकर भयभीत होकर अपने श्रेष्ठ पहलवान् चाणूर से कहा ॥३६१॥ **कंस ने कहा—** हे मल्ल ! इसी समय इन गोपाल बालकों को मार दो । मैं तुमको अपने राज्य के आधे भाग को तुम्हें विना प्रयास के दे दूँगा ॥३६२॥ **ईश्वर ने कहा—** उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उन दोनों पहलवानों द्वारा देखे गये । वन के बीच विद्यमान महासुमेरु के समान वे संग्राम में दिखते थे ॥३६३॥ कंस ने भगवान् अच्युत को संवर्ताग्नि के समान देखा । स्त्रियाँ उनको साक्षात् कामदेव के समान देखती थीं और उनके माता-पिता ने उनको छोटे बच्चे के समान देखा ॥३६४॥ देवता उनको श्रीहरि के समान देख रहे थे और ग्वाल बाल उनको अपने सखा के समान देखा । वे सब सर्वव्यापक श्रीहरि को अनेक रूपों में देखे ॥३६५॥ वसुदेवजी, अक्रूरजी तथा महाबुद्धिमान नन्दजी दूसरे प्रासाद पर चढ़कर उस महान् युद्ध को देख रहे थे ॥३६६॥ वहाँ पर अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ देवकीजी विद्यमान थीं । उन्होंने अपनी आँखों में आँसू भरे नेत्र से अपने पुत्र के मुख को देखा ॥३६७॥ उन सबों के द्वारा आश्वासित की गयीं वे भवन मै प्रवेश कर गयीं । उसी समय आकाश में विमान पर बैठे हुए ॥३६८॥ श्रीभगवान् का जयकार करते हुए देवता उनकी स्तुति किए और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा कि आप शीघ्र कंस को मार दें॥३६९॥ उसी समय वहाँ पर युद्ध का बाजा बज गया वे दोनों महामल्ल भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के साथ युद्ध करने के लिए आ गये ॥३७०॥ चाणूर के साथ गोविन्द और बलरामजी के साथ मुष्टिक वे दोनों महाबलवान् नीले और श्वेत महापर्वत के समान युद्ध करने लगे ॥३७१॥ मल्लयुद्ध की विधि से मुक्कों तथा पैरों के द्वारा ताड़न के द्वारा देवताओं के भी लिए भयङ्कर युद्ध हुआ ॥३७२॥ चाणूर के साथ

स पपात महीपृष्ठे सम्वमन्रुधिरं बहु । ममार च महामल्लो देवदानदुःखदः ॥३७४॥
मुष्टिकेन तथा रामश्चिरकालमयुध्यत । मुष्टिभिस्ताडयामास तस्य वक्षसि वीर्यवान् ॥३७५॥
भिन्नास्थिस्नायुबन्धोऽसौ पपात धरणी तले ।
ततस्तुदुद्रुवुः सर्वे मल्ला दृष्ट्वा पराक्रमम् ॥३७६॥
कंसो महद्भयं तीव्रमाविशद्वेदनातुरः । एतस्मिन्नन्तरे वीरौ रामकृष्णौ दुरासदौ ॥३७७॥
आरुह्य तु महात्मानौ चैत्यप्रासादमूर्जितम् । ताडयित्वा तलेनैव कंसं मूर्ध्नि जनार्दनः ॥३७८॥
अपातयद्धरापृष्ठे प्रासादशिखराद्धरिः । स तु निर्भिन्नसर्वाङ्गो धरण्यां त्यक्तजीवितः ॥३७९॥
कृष्णेन निहते कंसे रामोऽपि सुमहाबलः । तस्याऽनुजं सुनामानं मुष्टिनैव जघान ह ॥३८०॥
धरण्यां पातयामास सानुजं धरणीधरः । हत्वा कंसं दुरात्मानं सानुजं रामकेशवौ ॥३८१॥
पित्रोः समीपमागम्य भक्तया चैव प्रणेमतुः । देवकीवसुदेवश्च परिष्वज्य मुहुर्मुहुः ॥३८२॥
स्नेहेन मूर्ध्न्युपाघ्राणं चक्रतुः पुत्रलालसौ । तयोरुपरि देवक्याः स्तनौ क्षीरं ववृषतुः ॥३८३॥
तत आश्वास्य पितरौ रामकृष्णौ बहिर्गतौ । एतस्मिन्नन्तरे देवि ! देवदुन्दुभयो दिवि ॥३८४॥
विनेदुःपुष्पवर्षाणि ववृषुस्त्रिदशेश्वराः । स्तुत्वा मरुद्गणैर्दिव्यैर्नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥३८५॥
परं हर्षमनुप्राप्य लोकान्स्वान्स्वान्प्रपेदिरे । नन्दगोपं नमस्कृत्य गोपवृद्धांश्च केशवः ॥३८६॥
रामेण सह धर्मात्मा मुदा सम्पस्विस्वजे । बहुरत्नधनं तस्मै ददौ प्रीत्या जनार्दनः ॥३८७॥

देर तक क्रीडा करके भगवान् उस पहलवान् के शरीर को चूर-चूर करके पृथिवी पर गिरा दिए ॥३७३॥ वह बहुत अधिक खून वमन करता हुआ पृथिवी पर गिर पड़ा और देवताओं और दानवों को दुःख देने वाला वह मर गया ॥३७४॥ बलरामजी भी मुष्टिक के साथ देर तक युद्ध किए । उन्होंने अपने मुक्के से उसके वक्षःस्थल पर प्रहार किया ॥३७५॥ हडियों और स्नायुओं के टूट जाने से वह पृथिवी पर गिरकर मर गया । भगवान् के पराक्रम को देखकर वहाँ से सभी पहलवान् भाग गये ॥३७६॥ अत्यन्त वेदना से आतुर बना हुआ कंस भयभीत हो गया । इसी समय दुर्धर्ष बलराम और कृष्ण ॥३७७॥ उस ऊँचे प्रासाद पर चढ़कर भगवान् कृष्ण अपने थप्पड़ से ही कंस के शिर पर प्रहार करके ॥३७८॥ उससे प्रासाद के शिखर से पृथिवी पर गिरा दिए । और वह सभी अङ्गों के छिन्न-भिन्न हो जाने से मर गया ॥३७९॥ भगवान् कृष्ण के द्वारा कंस के मार दिए जाने पर महाबलवान् बलरामजी कंस के छोटे भाई सुनामा को मुक्के से मार दिए ॥३८०॥ श्रीभगवान् अनुज के साथ कंस को मारकर बलरामजी और कृष्ण भगवान्॥३८१॥ अपने माता-पिता के पास आकर भक्ति पूर्वक उनको प्रणाम किए । देवकी तथा वसुदेवजी उन दोनों को बार-बार आलिङ्गन करके ॥३८२॥ पुत्रों की लालसा वाले वे दोनों उनके माथा को बार-बार सूंघे । उन दोनों के ऊपर देवकीजी के स्तनों ने दुग्ध की वर्षा की ॥३८३॥ उसके पश्चात् अपने माता-पिता को आश्वस्त करके राम और कृष्ण बाहर निकले । हे देवि ! इसी बीच स्वर्ग में देवताओं न दुन्दुभि बजाया॥३८४॥ श्रेष्ठ देवताओं ने उनके ऊपर फूलों की वर्षा की । देवगण दिव्य स्तुतियाँ करके तथा भगवान् जनार्दन को नमस्कार करके ॥३८५॥ अत्यन्त हर्षित होकर अपने लोको में चले गये । भगवान् केशव वृद्ध गोपों तथा नन्दजी को प्रणाम करके ॥३८६॥ धर्मात्मा बलरामजी के साथ आलिङ्गन करके उनको प्रेम पूर्वक बहुत से

सर्वांस्तान्गोपवृद्धांश्च वस्त्रैराभरणादिभिः। बहुभिर्धनधान्यैश्च पूजयामास केशवः ॥३८८॥
विसृष्टास्तेन कृष्णेन नन्दगोपपुरोगमाः। प्रययुर्गोव्रजं दिव्यं हर्षशोकसमन्विताः॥३८९॥
मातामहं समासद्य रामकृष्णौदुरासदौ। बन्धाच्च मोक्षयित्वाऽथ समाश्वास्यमुहुर्मुहुः ॥३९०॥
चक्रे तस्याभिषेकं तु तद्राज्ये मधुसूदनः । अकारयद्द्विजश्रेष्ठैः स कंसस्यौर्ध्वदैहिकम् ॥३९१॥
अक्रूरप्रमुखान्राज्ये संस्थाप्य यदुपुङ्गवान्। राजानमुग्रसेनं तु कृत्वाधर्मेण मेदिनीम् ॥
पालयामास धर्मात्मा वसुदेवसुतो हरिः ॥३९२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरश्रीकृष्णचरिते कंसवधो नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४५॥

दो सौ छियालिसवाँ अध्याय

महेश्वर उवाच

अथोपनयनं नाम चकाराऽऽनकदुन्दुभिः । पुत्रयोर्वेदविधिना तस्मिन्वै रामकृष्णयोः ॥१॥
आचार्येण हि गर्गेण संस्कृतौ रामकेशवौ । पण्डितैर्वैष्णवैर्दिव्यैः स्नापनैर्विमलैः शुभैः॥२॥

रत्नों को प्रदान किए ॥३८७॥ उन सभी गोपवृद्धों को वस्त्रों तथा आभूषणों से तथा वहुत अधिक धन-धान्य से राम और कृष्ण दोनों ने पूजा की ॥३८८॥ भगवान् श्रीकृष्ण से विदा किए गये नन्द गोप आदि दिव्य व्रज में चले गये उस समय उन लोगों को हर्ष और शोक दोनों था ॥३८९॥ दुर्घर्ष रामकृष्ण अपने नाना के पास आकर उनको बन्धन मुक्त करके तथा बार-बार आश्वस्त करके ॥३९०॥ भगवान् मधुसूदन उनको उस राज्य पर अभिषिक्त कर दिये । उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणों से कंस की और्ध्वदैहिक क्रिया को कराया॥३९१॥ अक्रूर आदि प्रमुख यादवों को राज्य में स्थापित करके तथा धर्म पूर्वक राजा उग्रसेन को पृथिवी प्रदान करके । धर्मात्मा भगवान् श्रीकृष्ण पृथिवी का पालन किए ॥३९२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीकृष्ण चरित के प्रसङ्ग में कंस वध नामक दो सौ पैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४५।।

श्रीकृष्णचरित के अन्तर्गत बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् के उपनयन, सन्दीपनि के गृह में उन दोनों द्वारा विद्या का अध्ययन, जरासन्ध के साथ युद्ध तथा जरासन्ध को जीवन दान, काल यवन के साथ युद्ध तथा लीला करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का गुफा में प्रवेश करना कालयवन को देखकर मुचकुन्द का जगना, कालयवन की मृत्यु और मुचकुन्द की मुक्ति

महेश्वर ने कहा— उसके बाद वसुदेवजी ने भगवान् कृष्ण और बलरामजी का उपनयन संस्कार वैदिक विधि से किया ॥१॥ आचार्य गर्ग महर्षि ने बलरामजी तथा भगवान् कृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार

कृतसंस्कारकर्माणौ रामकृष्णौ महाबलौ। सान्दीपनेर्गृहं गत्वा नमस्कृत्य महात्मनः ॥३॥
अधीत्यवेदशास्त्राणि तस्मात्तौद्विजपुङ्गवात्। मृतं पुत्रं समानीय ददतुस्तस्यदक्षिणाम्॥४॥
आशिषो वचनं लब्ध्वा गुरोस्तस्मान्महात्मनः।
तस्मै प्रणम्य मथुरां जग्मतुर्यदुपुङ्गवौ ॥५॥
अथ कृष्णेन निहतं श्रुत्वा कंसं दुरासदम्। श्वशुरस्तस्य नृपतेर्जरासन्धो महाबलः ॥६॥
अक्षौहिणीसहस्त्रैस्तु सेनानीकैर्महाबलैः। कृष्णं हन्तुं समागत्य रुरोध मथुरांपुरीम् ॥७॥
रामकृष्णौ महावीर्यौनिर्विर्गत्यपुरोत्तमात्। गजवाजिसमाकीर्णं तद्बलौघमपश्यताम् ॥८॥
सस्मार वासुदेवस्तु पूर्वरूपं सनातनम्। तस्यस्मरणमात्रेण दारुको विष्णुसारथिः॥९॥
सुग्रीवपुष्पकं नाम समानीय महारथम्। वाजिभिर्दिव्यपुष्पाद्यैरुह्यमानं सनातनम्॥१०॥
दिव्यायुधैरुपेतं तं शङ्खचक्रगदादिभिः। वैनतेयपताकेन शोभितं देवदुर्जयम्॥११॥
अवनीं प्राप्य गोविन्दं प्रणम्य हरिसारथिः। प्रददौ स्यन्दनं शुभ्रं सायुधाश्वसमन्वितम्॥१२॥
दृष्ट्वा हर्षेण कृष्णोऽपि परिणीय महारथम्।
आरुरोहाऽग्रजेनैव स्तूयमानो मरुद्गणैः ॥१३॥
चतुर्भुजवपुर्भूत्वा शङ्खचक्रगदासिभृत्। किरीटी कुण्डली स्त्रग्वी संग्रामाभिमुखं ययौ॥१४॥
वलदेवोऽपि मुशलं लाङ्गलं गृह्य वीर्यवान्। तत्सैन्यं हनतुमरेभे महेश्वरइवापरः ॥१५॥
दारुकश्च रथं शीघ्रंनोदयामास तद्रणे। तृणगुल्मलताक्रान्तेकाननेऽग्निमिवानिलः ॥१६॥

पण्डितों, दिव्य वैष्णवों तथा स्वच्छ स्नान पूर्वक सम्पन्न कराया ॥२॥ संस्कार सम्पन्न होने के बाद महाबलवान् बलरामजी और कृष्णाजी आचार्य सन्दीपनि के घर जाकर तथा उनको नमस्कार करके ॥३॥ वे दोनों उनसे वेद शास्त्रों का अध्ययन करके उनके मरे हुए पुत्र को लाकर उसे दक्षिणा के रूप में प्रदान किए ॥४॥ उन महात्मा से आशीर्वाद प्राप्त करके उनको प्रणाम करके वे दोनों यदुश्रेष्ठ मथुरा आ गये ॥५॥ दुर्धर्ष कंस को कृष्ण के द्वारा मारे गये सुनकर उसके महाबलवान श्वसुर जरासन्ध ॥६॥ महान बलवान वह एक हजार अक्षौहिणी सेना के साथ कृष्ण को मारने के लिए आकर मथुरापुरी को घेर लिया ॥७॥ महापराक्रमी बलराम और भगवान् कृष्ण उस नगर से निकल कर हाथी और घोड़ों से भरे हुए उसकी सेना समूह को देखे ॥८॥ वासुदेव अपने पूर्वरूप का स्मरण किए। उनके स्मरण करते ही भगवान् विष्णु का सारथि दारुक ॥९॥ सुग्रीव पुष्पक नामक विशाल रथ को लाकर दिव्य पुष्प आदि घोड़ों से खींचे जाने वाले ॥१०॥ शङ्ख, चक्र आदि दिव्य आयुधों से युक्त तथा गरुड़ ध्वज से सुशोभित एवं देवताओं के लिए दुर्जय रथ को लाये॥११॥ पृथिवी पर भगवान् गोविन्द को प्राप्त करके तथा भगवान् गोविन्द को प्रणाम करके उनको आयुध तथा अश्वों से युक्त उस रथ को प्रदान किये ॥१२॥ उस रथ को देखकर हर्ष पूर्वक उसकी परिक्रमा करके अग्रज बलरामजी तथा देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उस पर बैठ गये॥१३॥ वे चतुर्भुज रूप धारण करके शङ्ख, चक्र गदा तथा कृपाण धारण किए हुए किरीट, कुण्डल, और माला धारण करके संग्रामाभिमुख होकर चले गये ॥१४॥ पराक्रमी बलदेवजी भी मुसल तथा हल धारण करके जरासन्ध की सेना को दूसरे महेश्वर के समान मारने लगे ॥१५॥ तृण, गुल्म तथा लता से भरे हुए वन

ततोगदाभिःपरिघैःशक्तिभिर्मुद्गरैस्तथा । तद्रथंछादयामासुर्जरासन्धस्य सैनिकाः ॥१७॥
चक्रेणैव हरिस्तूर्णं तानि चिच्छेद लीलया । बहूनि तृणकाष्ठानि महाविह्निरिवार्चिषा ॥१८॥
ततः शार्ङ्गं समादाय सायकैरक्षयैः शितैः । चिच्छेद तानि सैन्यानि न प्राज्ञायतकिञ्चन ॥१९॥
चक्रच्छिन्नास्यकमलाः केचित्तत्र महाबलाः । मदयाचूर्णिताः केचित्केचिदन्यैर्महारणे ॥२०॥

केचिच्चैवासिनाछिन्नास्तथाऽन्ये शरताडिताः ।
लाङ्गलाग्रहतग्रीवा मुशलाहतमसतकाः ॥२१॥

क्षणेन तद्बलं सर्वं निहत्य मधुसूदनः । शङ्खंदध्मौ यदुश्रेष्ठो लयाशनिनिभस्वनम् ॥२२॥

शङ्खरावविनिर्भिन्नहृदयास्ते महाबलाः ।
योधाः साश्वाः सनागाश्च पतितास्त्यक्तजीविताः ॥२३॥

अक्षौहिणीसहस्रं तु साश्वं सरथकुञ्जरम् । कृष्णेनैकेन निहतं निःशेषं तद्बृद्बलम् ॥२४॥
निहतं वासुदेवेन प्रहरार्द्धेन शार्ङ्गिणा । ततो देव गणाः सर्वे हर्षनिर्भरचेतसः ॥२५॥

ववृषुः पुष्पवर्षाणि साधुसाध्विति चाऽब्रुवन् ।
सर्वमप्यवनीभारं विमुच्य धरणीधरः ॥२६॥

संस्तूयमानस्त्रिदशैर्बभौ संग्राममूर्द्धनि । निहतं स्वबलं दृष्ट्वा जरासन्धोऽतिवीर्यवान् ॥२७॥
योद्धुमभ्याययौ तूर्णं बलदेवेन दुर्मतिः । तयोर्दुद्धभूद्धोरं संग्रामेष्वनिवर्तिनोः ॥२८॥
रामो लाङ्गलमादाय रथं तस्य ससारथिम् । विनिपात्य रणे शूरो गृहीत्वा तं महाबलम् ॥२९॥

में लगी हुयी आग को वायु के समान दारुक भी उस रण में रथ को शीघ्रता से चलाये । उसके बाद गदा, परिघ, शक्ति तथा मुद्गर के द्वारा जरासन्ध के सैनिक उस रथ को ढँक दिये ॥१६-१७॥ श्रीहरि भी शीघ्र ही अपने चक्र से उन सबों को बड़ी आसानी से जिस तरह अग्नि अपनी अर्चिष के द्वारा तृणों और काष्ठों को जला देती है उसी तरह भस्मक कर दिए ॥१८॥ उसके बाद भगवान् ने शार्ङ्ग धनुष उठाकर तीक्ष्ण तथा अक्षय बाणों से उन सैनिको को काट डाला और वे सब अपने को जान भी नहीं पाये ॥१९॥ चक्र के द्वारा काटे गये मुखरूपी कमल वाले कुछ महाबलवान मारे गये । कुछ के अङ्ग गदा से चूर-चूर हो गये । कुछ कृपाण से काटे गये तथा कुछ को भगवान् ने बाणों से मार दिया । कुछ की गर्दन हल से कट गयी कुछ के मस्तक मूसल से फट गये ॥२०-२१॥ क्षणभर में मधुसूदन उस सेना को मारकर यदुश्रेष्ठ भगवान् ने लय कालिक वज्र के समान ध्वनि करने वाले शङ्ख को बजाये ॥२२॥ शङ्ख की ध्वनि से जिनके हृदय फट गये थे ऐसे वे बलवान् योधा हाथी घोड़ों के साथ गिर पड़े और मर गये ॥२३॥ अकेले कृष्णजी ने हाथी, घोड़े तथा रथ से युक्त एक हजार अक्षौहिणी वाली सेना को मार दिया और वह सेना समाप्त हो गयी ॥२४॥ आधे प्रहर में ही शार्ङ्गधारी भगवान् श्रीकृष्ण ने उस सेना को मार दिया । उसके पश्चात् हर्ष भरे मन से देवगण ॥२५॥ पुष्पों की वर्षा किए और बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कहे । पृथिवी के सम्पूर्ण भार को भगवान् समाप्त करके ॥२६॥ देवताओं द्वारा रणाङ्गण में स्तुति किए जाते हुए सुशोभित हुए । मारी गयी अपनी सेना को देखकर महाबलवान् जरासन्ध ॥२७॥ वह मूर्ख बलदेवजी के साथ युद्ध करने आया । संग्राम से कभी नहीं लौटने वाले उन दोनों का भयङ्कर युद्ध हुआ ॥२८॥

उद्यम्य मुशलं तूर्णं तं हन्तुमुपचक्रमे। प्राणसंशयमापन्नं जरासन्धं नृपोत्तमम् ॥३०॥
कृतं रामेण बलिना सिंहेनेव महागजम्। दृष्ट्वा कृष्णोऽग्रजं प्राह न हन्तव्यइतिप्रभुः ॥३१॥
मोचयामासधर्मात्मा जरासन्धंमहामतिः। विमुच्यकृष्णवाक्येन शत्रुंसंकर्षणोऽव्ययः ॥३२॥
सानुजो रथमारुह्य मथुरां प्रविवेश ह। विनिर्जितो महावीरो रामेण मगधाधिपः ॥३३॥
परां व्रीडामुपागम्य पुरं स्वं न विवेश ह। स कालयवनं प्राप्य महावीर्यं बलान्वितम् ॥३४॥
पुत्रयोर्वसुदेवस्य समाचष्ट पराक्रमम्। दानवानां वधं चैव कंसस्य निधनन्तथा ॥३५॥
अक्षौहिणीनां च वधं तथा स्वस्य पराजयम्।
सर्वं निवेदयामास कृष्णस्य चरितं महत् ॥३६॥
तच्छ्रुत्वा यवनः क्रुद्धो महाबलपराक्रमैः। म्लेच्छकोटिसहस्रैस्तु सम्वृतो मदसंयुतैः ॥३७॥
मगधाधिपतेस्तस्य सहायार्थं महाबलः। तेनैव सहितस्तूर्णं जगाम मथुरां पुरीम् ॥३८॥
बलैराच्छाद्य पृथिवीं नानाजनपदान्विताम्। संनिवेश्य महासैन्यं रुरोध मथुरां पुरीम् ॥३९॥
कृष्णोऽपि चिन्तयित्वाऽथ पौराणां कुशलं तदा।
ययाचे सागरं भूमिं निवासार्थं जलस्य च ॥४०॥
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं ददौ कृष्णस्य सागरः। असृजत्पयसां मध्ये तत्र द्वारवतींपुरीम् ॥४१॥
बहुप्रासादसंयुक्तां हेमप्रकारतोरणाम्। नानामणिमयैर्दिव्यैर्गृहपङ्क्तिभिरावृताम् ॥४२॥
उद्यानैश्च तथा रम्यैस्तडागैर्बहुभिर्युताम्। असृजत्पुण्डरीकाक्षोयथेन्द्रस्याऽमरावतीम् ॥४३॥

बलरामजी हल उठाकर उसके सारथि के साथ रथ को युद्ध में गिराकर वे वीर उस महाबलवान् को मूसल उठाकर उसको शीघ्र मार देना चाहे। राजश्रेष्ठ जरासन्ध को प्राण संशयापन्न बलवान् बलरामजी ने उसी तरह बना दिया जैसे कोइ सिंह किसी हाथी को बना देता है। भगवान् कृष्ण बलवान् बलरामजी को देखकर कहे इसको मारिये मत ॥२९-३१॥ महामति बलरामजी ने कृपा करके जरासन्ध को छोड़ दिया। कृष्ण के कहने से अव्यय बलराजी ॥३२॥ अपने अनुज के साथ रथ पर बैठकर मथुरा में प्रवेश किए। महावीर जरासन्ध बलवान् बलरामजी से पराजित होकर ॥३३॥ अत्यन्त लज्जित होकर अपने नगर में नहीं गया। वह महापराक्रमी तथा बलवान् कालयवन के पास जाकर ॥३४॥ वसुदेवजी के दोनों पुत्रों के पराक्रम को उसे बतलाया। उसने उसे दानवों के वध तथा कंस की मृत्यु को भी बतलाया ॥३५॥ अक्षौहिणियों के वध और अपने पराजय को भी। उसने कृष्ण के सम्पूर्ण चरित का वर्णन किया ॥३६॥ उसको सुनकर यवन क्रुद्ध होकर महान् बल तथा पराक्रम वाले मद से युक्त एक हजार करोड़ म्लेच्छों की सेना के साथ॥३७॥ महाबलवान् जरासंध की सहायता के लिए उसके साथ ही शीघ्र मथुरा के लिए प्रस्थान किया॥३८॥ अनेक जनपदों से युक्त पृथिवी को सेना से आच्छादित करके महासेना को टिकाकर मथुरापुरी को घेर लिया॥३९॥ भगवान् कृष्ण भी नागरिकों के कुशल का विचार करके सागर से जल वाली भूमि की याचना किए ॥४०॥ सागर ने भवगान् कृष्ण को तीस योजन भूमि दिया। वहाँ पर जल के बीच में उन्होंने द्वारका पुरी की रचना कर दी ॥४१॥ वह पुरी अनेक महलों से युक्त तथा सुवर्ण के परकोटे से युक्त अनेक दिव्य मणियों से युक्त थी ॥४२॥ मनोहर उद्यानों सरोवरों से युक्त थी वहाँ श्रीभगवान् ने इन्द्र की अमरावती के

सुषुप्तान्मथुरायां तु पौरांस्तत्र जनार्दनः। उद्धृत्य सहसा रात्रौ द्वारवत्यां न्यवेशयत् ॥४४॥
प्रबुद्धास्ते जनाःसर्वे पुत्रदारसमन्विताः। हेमहर्म्यतले विष्टा विस्मयं परमं ययुः॥४५॥
बहुभिर्धनधान्यैश्च दिव्यवस्त्रविभूषणैः। परिपूर्णैर्निरातङ्कैर्गृहमुख्यैः समावृताः ॥४६॥
तस्मिन्प्रहृष्टाः सन्तस्थुर्दिवि देवगणा इव। यवनेन तदा योद्धं रामकृष्णौ महाबलौ ॥४७॥
विनिर्ययतुरात्मेशौ मथुराया बहिस्तदा। रामो लाङ्गलमादाय मुशलं च महारथः ॥४८॥
जघान समरे क्रुद्धो यवनानां महद्बलम्। कृष्णास्तु शार्ङ्गमासज्य बाणैरग्निशिखोपमैः ॥४९॥
निर्ददाह बलं सर्वं म्लेच्छानां देवकीसुतः। निहतं स्वबलं दृष्ट्वा सकालयवनो बली॥५०॥
युयुधे वासुदेवेन गदया यवनेश्वरः। कृष्णोऽपि कदनं तेन कृत्वा चिरमनामयः॥५१॥
विमुखःप्राद्रवत्तस्मात्सङ्ग्रामात्कमलेक्षणः। सोऽनुयातोऽतिवेगेनतिष्ठतिष्ठेति चब्रुवन् ॥५२॥
वेगात्कृष्णो गिरिगुहां प्रविवेश महामतिः। तत्र प्रसुप्तोराजाऽसौ मुचुकुन्दोमहामुनिः॥५३॥

अदृश्यस्तस्य नृपतेः संस्थितो भगवान्हरिः।
यवनोऽपि महावीरो गदामुद्यम्य पाणिना ॥५४॥
कृष्णं हन्तुं समारब्धो गुहां तां प्रविवेश ह।
दृष्ट्वा शयानं राजानंमत्वाकृष्णंजनार्दनम् ॥५५॥

पादेन ताडयामास मुचुकुन्दं महामुनिम्। ततः प्रबुद्धो भगवान्मुचुकुन्दो महामुनिः॥५६॥
क्रोधात्संरक्तनयनो हुङ्कारं कृतवानसौ। तस्य हुङ्कारशब्देन तथा क्रोधनिरीक्षणात् ॥५७॥
निर्दग्धो भस्मतां प्राप यवनस्त्यक्तजीवितः। ततस्तु कृष्णो ददृशे राजर्षेः पुरतः प्रभुः ॥५८॥

समान उसे बनाया ॥४३॥ मथुरा में अच्छी तरह से सोए हुए नागरिकों को श्रीभगवान् उठाकर अचानक द्वारवती में पहुँचा दिया ॥४४॥ पुत्रों तथा पत्नियों के साथ जगे हुए वे लोग सुवर्णमय भवन में अपने को देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए ॥४५॥ अनेक प्रकार के धन धान्यों और दिव्य वस्त्रों तथा भूषणों से परिपूर्ण आतंक रहित गृह मुख्यों से युक्त ॥४६॥ उसमें प्रसन्नता पूर्वक देवताओं के समान रहने लगे। यवन के साथ युद्ध करने के लिए महबलवान् बलराम तथा कृष्णजी ॥४७॥ दोनों मथुरा से बाहर निकले। महारथ राम हल तथा मुसल लेकर निकले ॥४८॥ वे क्रुद्ध होकर युद्ध में यवनों की विशाल सेना को मार दिए। भगवान् कृष्ण अपने शार्ङ्ग धनुष को चढ़ाकर अग्नि शिखा के समान तीक्ष्ण बाण से ॥४९॥ यवनों की सारी सेना को भस्म कर दिए। अपनी सेना को मारी गयी देखकर कालयवन भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गदा लेकर युद्ध किया। भगवान् भी उस के साथ देर तक युद्ध करके ॥५०-५१॥ वे महामती कमल नयन उस युद्ध से पराङ् होकर पर्वत की गुफा में प्रवेश कर गये। वहाँ पंर महामुनि राजा मुचकुन्द सोए थे ॥५२-५३॥ उस राजा से अदृश्य होकर भगवान् श्रीहरि खड़े हो गये। महावीर यवन भी अपने हाथ में गदा उटाकर भगवान् कृष्ण को मारने के लिए तैयार उस गुफा में प्रवेश कर गया। राजा को सोये हुए देखकर उन्हीं को कृष्ण समझकर ॥५४-५५॥ महामुनि मुचकुन्द को अपने पैर से मारा। उससे जगकर महामुनि मुचकुन्द ॥५६॥ क्रोध से अपनी आँखे लालकर हुङ्कार किए उनके हुङ्कार के शब्द से तथा क्रोध पूर्वक देखने के कारण ॥५७॥ कालयवन जलकर भस्म हो गया और मर गया उसके पश्चात् भगवान् कृष्ण

नीलोत्पलदलश्यामः पुण्डरीकनिभेक्षणः । शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः ॥५९॥
दृष्ट्वा तं सहसोत्थाय राजर्षिरमितौजसम्। अहोभाग्यमहोभाग्यमित्युवाच महामुनिः ॥६०॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः सानन्दाश्रुजलाकुलः । स्तुवन्वै जयशब्देन प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥६१॥

मुचुकुन्द उवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि दर्शनात्परमेश्वर ! ।
अद्यमेसफलं जन्म जीवितंसफलं मम ॥६२॥

नमस्ते वासुदेवाय जगन्नाथाय शार्ङ्गिणे । दामोदराय देवाय तेजसां निधये नमः ॥६३॥
अधोक्षजाय हरये नृसिंहवपुषे नमः। राघवाय नमस्तुभ्यं पुण्डरीकेक्षणाय च ॥६४॥
अच्युताय विकाराय तथानन्तायतेनमः । गोविन्दाय नमस्तुभ्यं विष्णवेजिष्णवे नमः ॥६५॥
नारायणाय श्रीशाय कृष्णाय परमात्मने । मुकुन्दाय नमस्तुभ्यं चतुर्व्यूहाय ते नमः ॥६६॥
नमःपरमकल्याण ! नमस्ते परमात्मने। वासुदेवाय शान्ताय यदूनाम्पतये नमः ॥६७॥

महेश्वर उवाच

एवं स्तुत्वा तु गोविन्दं प्रणनाम पुनःपुनः । सन्तुष्टो भगवान्प्राह मुचुकुन्दंमहामुनिम् ॥६८॥

श्रीभगवानुवाच

वरं वृणीष्व राजर्षे ! यत्ते मनसि वर्त्तते ॥६९॥

महेश्वर उवाच

सोऽपि मुक्तिंययाचेऽथपुनरावृत्तिवर्जिताम् । तस्मैददौ तदाकृष्णोदिव्यंलोकंसनातनम् ॥७०॥

राजा मुचकुन्द के समक्ष आये ॥५८॥ नील कमल के समान श्याम वर्ण के कमल दल के समान सुन्दर नेत्र वाले, हाथ में शङ्ख चक्र और गदा धारण किए हुए तथा पीताम्बरधारी भगवान् जनार्दन भगवान् उनके सामने आये ॥५९॥ उनको देखकर सहसा खड़ा होकर महामुनि राजर्षि निःसीम पराक्रम सम्पन्न श्रीभगवान् को देखकर मैं अहोभाग्य हूँ ॥६०॥ उनके सारे अङ्ग रोमाञ्चित थे आनन्द के आँसू से उनके नेत्र भरे थे जयकार करके श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए उनको बार-बार प्रणाम किए ॥६१॥ **मुचकुन्द ने कहा—** हे परमेश्वर ! आपके दर्शन से मैं धन्य और कृत-कृत्य हो गया हूँ आज मेरे जन्म और जीवन दोनों सफल हो गये ॥६२॥ शार्ङ्गधारी जगत् के स्वामिन् हे भगवन् ! आपको नमस्कार है । दामोदर भगवान तेजों के आकर को नमस्कार है ॥६३॥ अधोक्षज नृसिंह रूप धारी पुण्डरीक के समान नेत्र वाले श्रीरामजी को नमस्कार है । अच्युत तथा विकार रहित परमात्मा श्रीकृष्ण को नमस्कार है । हे मुकुन्द ! आपको नमस्कार है तथा चार व्यूह वाले आपको नमस्कार है ॥६४-६६॥ हे परम कल्याण स्वरूप भगवन् ! आपको नमस्कार है । परमात्म शान्त स्वभाव वाले तथा यादवों के स्वामी भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥६७॥ **महेश्वर ने कहा—** इस तरह से स्तुति करके वे गोविन्द भगवान् को बार-बार प्रणाम किए । प्रसन्न होकर भगवान् मुचकुन्द महामुनि को कहे ॥६८॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे राजर्षे ! आपके मन में जो हो उस वरदान को आप माँगे ॥६९॥ **महेश्वर ने कहा—** वे भी पुनरावृत्ति रहित मुक्ति को माँगे । भगवान् कृष्ण

राजा तु मानुषं रूपं विहायाऽथ महामतिः ।
समानं रूपमास्थाय देवस्य परमात्मनः ॥
वैनतेयं समारुह्य शाश्वतं पदमाविशत् ॥७१॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वर सम्वादे श्रीकृष्णचरिते मुचुकुन्दमोक्षो नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४६॥

दो सौ सैतालिसवाँ अध्याय

रुद्र उवाच

हत्वाऽथ यवनं तत्र मुचुकुन्देन धीमता । दत्त्वा तस्मै वरं मुक्तिं निष्क्रान्तो यदुनन्दनः ॥१॥
हतं च यवनं श्रुत्वा जरासन्धःसुदुर्मतिः । युयुधे रामकृष्णाभ्यां स्वबलेन समावृतः॥२॥
कृष्णेन निहतं सैन्यं सर्वं तस्य दुरात्मनः । सोऽपि रामेण सङ्ग्रामेद्वन्द्वयुद्धं चकारह ॥३॥
मुसलेनाहनद्रामो वक्षस्यस्य दुरात्मनः । स पपात महीपृष्ठे मूर्च्छितो मगधाधिपः ॥४॥
चिरेण लब्ध्वा सञ्ज्ञां तु विह्वलाङ्गो भयातुरः ।
न शशाक रणे योद्धं रामेणमगधेश्वरः ॥५॥
विमुखः प्राद्रवत्तूर्णं हतशेषबलानुगः । अजेयाविति तौ मत्वा रामकृष्णौ महाबलौ॥६॥

ने उनको सनातन दिव्य लोक प्रदान किया ॥७०॥ उसके पश्चात् महामुनि राजा मानव शरीर को त्यागकर श्रीभगवान् के ही समान रूप धारण करके ॥७१॥ गरुड़ पर बैठकर शाश्वत पद में प्रवेश कर गये ॥७२॥
इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीकृष्ण चरित के प्रसङ्ग में मुचकुन्द मोक्ष नामक दो सौ छियासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४६।।

जरासन्ध पराजय के साथ द्वारका जाकर भगवान् श्रीकृष्ण का अनेक राज कन्याओं के साथ विवाह करना, रुक्मिणी स्वयम्बर में रुक्मि के साथ विरोध होने के कारण विदर्भ सेना का विध्वंस

रुद्र ने कहा— बुद्धिमान मुचकुन्द के द्वारा यवन को मारकर उनको मुक्ति का वरदान देकर भगवान् श्रीकृष्ण उस गुफा से बाहर निकले ॥१॥ यवन को मरा हुआ सुनकर मूर्ख जरासन्ध अपनी सेना को साथ लेकर राम और कृष्ण के साथ युद्ध करता रहा ॥२॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने उसकी सारी सेना को मार दिया वह भी बलरामजी के साथ द्वन्द युद्ध करता रहा ॥३॥ बलरामजी उसके वक्षःस्थल में मुसल से प्रहार किया वह मगधाधिप मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥४॥ दीर्घकाल के बाद होश में आकर व्याकुल अङ्गों वाला भयभीत होकर वह मगधेश्वर बलरामजी के साथ युद्ध नहीं कर सका ॥५॥ वह युद्ध पराङ्मुख होकर

तयोर्विरोधं त्यक्त्वाऽथ नगरीं स्वां विवेश ह ।
अथ तौ वसुदेवस्य तनयौ सह सेनया ॥७॥
मथुरां त्यज्य नगरीं प्रविष्टौद्वारिकां पुरीम् । इन्द्रेण प्रेषितोवयुःसभांतत्र दिवौकसाम् ॥८॥
कृष्णाय प्रददौ प्रीत्या निर्मितां विश्वकर्मणा। वज्रवैडूर्यरचितां बह्वासनविचित्रिताम्॥९॥
नानारत्नमयैर्दिव्यैः स्वर्णच्छत्रैर्विराजिताम् । तां प्राप्य रम्यांतु सभामुग्रसेनादयोनृपाः ॥१०॥
मोदन्ते नैगमैः सार्द्धं दिविदेवगणा इव । इक्ष्वाकुवंशसम्भूतो रैवतो नाम पार्थिवः ॥११॥
कन्यां दुहितरं स्वस्य सर्वलक्षणसंयुताम् । रामाय प्रददौ प्रीत्या रेवतीं नामनामतः ॥१२॥
उपयेमे विधानेन स रामस्तां च रेवतीम् । रमयामास च तया शच्येव तु सुरेश्वरः ॥१३॥
विदर्भराजो धर्मात्मा भीष्मको नाम धार्मिकः ।
बभूवुस्तस्य पुत्रास्तु रुक्मप्रभृतयः शुभाः ॥१४॥
तेषामवरजा कन्या रुक्मिणी वरवर्णिनी । कमलांशेन सम्भूता सर्वलक्षणसंयुता॥१५॥
राघवत्वेऽभवत्सीतारुक्मिणीकृष्णजन्मनि । अन्येष्वेवावतारेषुविष्णोरेषासहायिनी ॥१६॥
हिरण्यकहिरण्याक्षौ सम्भूतौ द्वापरे पुनः । शिशुपालो दन्तवक्र इतिनाम समन्वितौ॥१७॥
चैद्यान्वये समुद्भूतौ महाबलपराक्रमौ । रुक्मिणीं शिशुपालाय दातुमैच्छत्तदात्मजः ॥१८॥
तं तु नैच्छत्पतिं तु शिशुपालं शुभानना। बाल्यात्प्रभृति वै विष्णुमनुरक्ता दृढव्रता॥१९॥
उद्दिश्य कृष्णम्भर्त्तारं सुराणामर्चनंसदा। चकाररुक्मिणीकन्या दानानिविविधानि च॥२०॥

शीघ्रता से अपनी बची हुयी सेना के साथ उन राम और कृष्ण को अजेयमान कर उन दोनों के साथ विरोध करना छोड़कर अपने नगर में प्रवेश कर गया । उसके बाद बलराम और श्रीकृष्ण भगवान् अपनी सेना के साथ ॥६-७॥ मथुरा नगरी को छोड़कर द्वारकापुरी में प्रवेश कर गये । इन्द्र के द्वारा भेजे गये वायु वहाँ देवों की सुधर्मा सभा को ॥८॥ भगवान् श्रीकृष्ण को प्रेम पूर्वक प्रदान किया । उसका विश्वकर्मा ने बनाया था । हीरा तथा वैडूर्य मणि से बनायी गयी तथा अनेक आसनों से विचित्र ॥९॥ अनेक दिव्य रत्नमय तथा सुवर्ण के छत्र से सुशोभित, उस सभा को प्राप्त करके उग्रसेन आदि राजा ॥१०॥ वैदिकों के साथ स्वर्ग में देवताओं के समान सुशोभित होते थे इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न रैवत नामक राजा ॥११॥ सभी लक्षणों से युक्त अपनी पुत्री जिसका नाम रेवती था । उसको बलरामजी को प्रदान किया ॥१२॥ बलरामजी उस रेवती के साथ विधि पूर्वक विवाह किए । वे शची के साथ इन्द्र के समान उसके साथ रमण करते थे ॥१३॥ विदर्भ देश के राजा भीष्मक धार्मिक थे । उनके रुक्मी आदि पुत्र थे ॥१४॥ उन सवों की छोटी वहन रुक्मिणी थी । वह लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न तथा सभी लक्षणों से सम्पन्न थी ॥१५॥ जव भगवान् श्रीराम हुए तो वे सीता हो गयीं और जब भगवान् कृष्ण हुए तो वह रुक्मिणी हो गयी । भगवान् के दूसरे अवतारों में विष्णु भगवान् की यह सहायिका थीं ॥१६॥ द्वापर युग में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष शिशुपाल और दन्तवक्त्र नाम वाले ॥१७॥ चैद्यवंश में उत्पन्न थे वे महान् बल और पराक्रम से सम्पन्न थे । राजा के पुत्र ने रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ करना चाहा ॥१८॥ वह सुन्दरी शिशुपाल को अपना पति नहीं बनाना चाही । वह दृढव्रता बाल्य काल से ही भगवान् विष्णु में ही अनुरक्त थी ॥१९॥ वह

व्रतचर्यापरा भूत्वा ध्यायन्ती पुरुषोत्तमम् । आत्मेशं स्वस्य भर्त्तारमुवास पितृमन्दिरे॥२१॥
कर्त्तुं तां शिशुपालाय विवाहं पार्थिवोत्तमः। चकार यत्नं पुत्रेण रुक्मिणा सह धीमता ॥२२॥
पुरोहितसुतं विप्रं प्रेषयामास रुक्मिणी। उद्दिश्य कृष्णं भर्त्तारं स तूर्णं द्वारकां ययौ ॥२३॥
समेत्य कृष्णं रामं च ताभ्यां विधिवदर्चितः ।
एकान्ते सर्वमाचष्ट रुक्मिणीभाषितं तयोः ॥२४॥
तच्छ्रुत्वा रामकृष्णौ तु सह विप्रेण धीमता। सर्वशस्त्रास्त्रसम्पूर्णं रथमाकाशगंप्रभू ॥२५॥
आरुह्य सूतमुख्येन दारुकेण महात्मना । विदर्भनगरीं तूर्णं जग्मतुः पुरुषोत्तमौ ॥२६॥
राजानःसर्वराष्ट्रेभ्यो विवाहं द्रष्टुमागताः । जरासन्ध्यमुखाः सर्वे शिशुपालस्यधीमतः ॥२७॥
तस्मिन्नुद्वाहसमये रुक्मिणी रुक्मभूषणा। निःसृताऽर्चयितुं दुर्गां सखीभिर्नगराद्बहिः ॥२८॥
एतस्मिन्नेव काले तु संप्राप्तो देवकीसुतः। रथस्थां तां च जग्राह बलवान्मधुसूदनः ॥२९॥
सहसा रथमारोप्य ययौ तूर्णं स्वमालयम्। ततः क्रोधसमाविष्टा जरासन्ध्यमुखानृपाः ॥३०॥
रुक्मिणा राजपुत्रेण युद्धाय समुपस्थिताः । अनुयाता हरिं क्रुद्धाश्चतुरङ्गबलान्विताः ॥३१॥
बलभद्रो महाबाहुरवरुह्य रथोत्तमात् । लाङ्गलं मुशलं गृह्य निजघान क्षणादरीन् ॥३२॥
रथानश्वान्महानागांस्तथा पादचरानपि । लाङ्गलमुशलाभ्यां वै निजघान बलाद्रणे ॥३३॥
तस्य लाङ्गलपातेन चूर्णिता रथपङ्क्तयः। नागाश्च पतिता भूमौ वज्रेणेव महीधराः ॥३४॥

भगवान् श्रीकृष्ण को अपने पति के रूप में प्राप्त करने के लिए सदा देवताओं का पूजन करती थी । उसने अनेक प्रकार के दानों को भी किया था ॥२०॥ व्रत करती हुयी वह अपने स्वामी पुरुषोत्तम का ध्यान करती हुयी पिता के ही घर में रहती थी ॥२१॥ उसका विवाह शिशुपाल के साथ करने के लिए राजा अपने पुत्र रुक्मी के साथ प्रयत्न किए ॥२२॥ रुक्मिणी अपने पुरोहित के पुत्र को भगवान् श्रीकृष्ण को अपना पति बनाने के लिए भेजी और वे शीघ्र द्वारका गये ॥२३॥ राम और कृष्ण दोनों से मिलकर और उन दोनों से विधि पूर्वक पूजित होकर एकान्त में उन दोनों के समक्ष रुक्मिणी की बातों को वे कहे॥२४॥ यह सुनकर बलरामजी और कृष्ण उस ब्राह्मण के साथ सभी शस्त्रों से परिपूर्ण आकाश में चलने वाले रथ पर बैठकर सारथियों में मुख्य दारुक के साथ वे दोनों पुरुषोत्तम विदर्भ नगरी में गये ॥२५-२६॥ जरासन्ध आदि सभी राष्ट्रों के राजा बुद्धिमान शिशुपाल के विवाह को देखने के लिए आये थे ॥२७॥ उस विवाह के समय स्वर्णाभूषणों से भूषित रुक्मिणी अपनी सखियों के साथ नगर से बाहर दुर्गा की पूजा करने के लिए निकली ॥२८॥ उसी समय आकर भगवान श्रीकृष्ण अपने रथ पर बैठी हुयी उसको बल पूर्वक पकड़कर बलवान् भगवान् श्रीकृष्ण सहसा अपने रथ पर बैठाकर शीघ्र अपने गृह की ओर चले गये । उसके पश्चात् क्रोधित होकर जरासन्ध आदि राजागण ॥२९-३०॥ राजकुमार रुक्मि के साथ युद्ध करने के लिए उपस्थित हुए । चतुरङ्गिणी सेना के साथ क्रुद्ध होकर श्रीहरि का पीछा किए ॥३१॥ महाबाहु बलभद्र रथ से उतरकर हल और मुसल लेकर क्षणभर में शत्रुओं को मार डाले ॥३२॥ वे रण में रथ, घोड़े, हाथी तथा पैदल सेना को अपने हल तथा मुसल से मार डाले ॥३३॥ उनके हल के प्रहार से रथ समूह चूर-चूर हो गये । जिस तरह से वज्र से पर्वत गिर गये थे वैसे हाथी भी पृथिवी पर गिर पड़े ॥३४॥ सब के

निर्भिन्नमस्तकाः सर्वे वमन्तो रुधिरं बहु । क्षणेनैव हतं सैन्यं बलरामेण वै तदा ॥३५॥
साश्वं सनागं सरथं सपदाति महारणे । समन्तात्समरे तत्र सुस्त्रुवुः शोधितापगाः ॥३६॥
प्रभग्नाः पार्थिवाः सर्वे दुद्रुवुर्भयपीडिताः । कृष्णेन कदनं चक्रे रुक्मी क्रोधवशाद्बली ॥३७॥
धनुरुद्यम्यबाणौघैस्ताडयामास शार्ङ्गिणम् । ततः प्रहस्य गोविन्दः शार्ङ्गमादाय लीलया ॥३८॥
जघानैकेन बाणेन रथाश्वांस्तस्य सारथिम् । रथं ध्वजं पताकां च चिच्छेद धरणीधरः ॥३९॥
विरथः खड्गमादाय धरण्यां स उपस्थितः ।
कृष्णस्तु खड्ग चिच्छेदबाणेनैकेन वीर्यवान् ॥४०॥
ततः स मुष्टिमुद्यम्य कृष्णं वक्षस्यताडयत् । तं जग्राह रणे वीरं निवध्य निबिडं हरिः ॥४१॥
तीक्ष्णं क्षुरप्रमादाय प्रहसन्मधुसूदनः । शिरसोमुण्डनं कृत्वा मुमोच च जनार्दनः ॥४२॥
स तु शोकसमाविष्टो निःश्वसन्नुरगो यथा। आविवेशपुरंस्वीयं स तु तत्रैवचाऽवसत् ॥४३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे श्रीकृष्णचरिते विदर्भसेनाविध्वंसनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४७॥

मस्तक के फूट जाने से वहुत अधिक रुधिर वमन करते हुए बलरामजी के द्वारा सारी सेना क्षण भर में मार दी गयी ॥३५॥ अश्व, हाथी, रथ, पैदल सेना युद्ध में चारो ओर खून की नदी बहा दिए ॥३६॥ सभी राजा डर कर भाग चले । बलवान रुक्मी कृष्णजी के साथ युद्ध करता रहा ॥३७॥ उसने धनुष उठाकर बाण समूह से भगवान् श्रीकृष्ण को मारा । उसके बाद जोर से हँसकर गोविन्द शार्ङ्ग धनुष उठाकर लीला पूर्वक ॥३८॥ एक ही बाण से उसके रथ, घोड़े और सारथि को मार दिए । उसके रथ, ध्वज और पताका को श्रीभगवान् काट दिए ॥३९॥ रथ हीन वह खड्ग लेकर पृथिवी पर खड़ा हो गया । भगवान् श्रीकृष्ण भी एक ही बाण से उसके खड्ग को काट दिए ॥४०॥ तीक्ष्ण छुरी लेकर भगवान् मधुसूदन हँसते हुए उसके शिर का मुण्डन करके उसे छोड़ दिए । शोक मग्न होकर सर्प के समान लम्बी श्वास लेते हुए उसने वहीं पर अपनी पुरी बसायी और स्वयं भी वहीं बस गया ॥४१-४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवादा के अन्तर्गत विदर्भ सेना के विध्वंस नामक दो सौ सैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४७।।
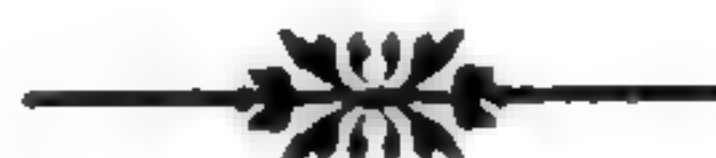
दो सौ अड़तालिसवाँ अध्याय

रुद्र उवाच

अथ कृष्णस्तु रामेण रुक्मिण्या दारुकेण च ।
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य ययौ तूर्णं स्वमालयम् ॥१॥
ततः प्रविश्य नगरीं द्वारकां देवकीसुतः । शुभेऽह्नि शुभलग्ने वै वेदोक्तविधिना हरिः ॥२॥
उपयेमे नृपसुतां रुक्मिणी रुक्मभूषिताम् । तस्मिन्नुद्वाहसमये देवदुन्दुभयो दिवि ॥३॥
विनेदुः पुष्पवर्षाणि ववृषुः सुरसत्तमाः । वसुदेवोग्रसेनौ च तथाऽक्रूरो यदूत्तमः ॥४॥
बलभद्रो महातेजा ये चान्ये यदुपुङ्गवाः । चक्रुःकृष्णस्य रुक्मिण्या विवाहं सुसुखंयथा ॥५॥
नन्दगोपोऽथ गोपालैर्गोपवृन्दैःसमागतः । स्वलङ्कृताभिर्योषाभिर्यशोदा च समागता ॥६॥
वसुदेवस्त्रियः सर्वा देवकीप्रमुखास्तथा। रेवतीरोहिणी देवी याश्चान्याः पुरयोषितः ॥७॥
सर्वाण्युद्वाहकर्माणि चक्रुर्हर्षसमन्विताः। सुराणामर्चनं प्रीत्या कर्त्तव्यं तत्र देवकी ॥८॥
वृद्धाभिर्नृपयोषिद्भिश्चकार विधिना तदा। सर्वमौद्वाहिकं कर्म उत्सवं हि द्विजोत्तमैः ॥९॥
ब्राह्मणान्भोजयामास वस्त्रैराभरणैः शुभैः। उग्रसेनादयस्तत्र राजानश्च सुपूजिताः ॥१०॥
नन्दगोपादयो गोपा यशोदाद्याश्च योषितः। बहुभिः स्वर्णरत्नाद्यैर्वासोभिः सविभूषणैः ॥११॥
पूजिताः सम्प्रहृष्टास्ते तद्विवाहमहोत्सवे। तौ दम्पती समाश्लिष्य प्रणतौ जातवेदसम्॥१२॥
वेदविद्भिर्विप्रमुख्यैराशीर्भिरभिनन्दितौ । तस्यां विवाहवेद्यां तु शुशुभाते वधूवरौ॥१३॥

श्रीकृष्ण चरित के अन्तर्गत रुक्मिणी विवाह का वर्णन

रुद्र ने कहा— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी, रुक्मिणी और दारुक के साथ दिव्य रथ पर बैठकर अपने घर आये ॥१। उसके बाद अपनी नगरी में प्रवेश करके भगवान् श्रीकृष्ण शुभ दिन को शुभ लग्न में वेदोक्त विधि से ॥२॥ राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी के साथ विवाह किए । उस विवाह के समय देवताओं ने दुन्दुभि बजायी ॥३॥ और पुष्पों की वर्षा श्रेष्ठ देवों ने की । वसुदेवजी, उग्रसेनजी तथा यदुश्रेष्ठ अक्रूरजी ॥४॥ बलभद्रजी तथा दूसरे महातेजस्वी यादव श्रेष्ठ थे वे सब सुख पूर्वक श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ विवाह कराये ॥५॥ नन्दगोप, गोपालों तथा गोप वृद्धों के साथ आये । अलंकृत स्त्रियों के साथ यशोदाजी भी आयी ॥६॥ वसुदेवजी की सारी देवकी आदि स्त्रियाँ, रेवती, रोहिणी देवी तथा दूसरी जो नगर की स्त्रियाँ थी ॥७॥ हर्षित होकर सभी विवाह के कर्मों को सम्पन्न कीं देवताओं की पूजा प्रेम पूर्वक देवकीजी ने ॥८॥ राजा की बृद्धा स्त्रियों के साथ विधि पूर्वक कीं । सम्पूर्ण वैवाहिक कर्मों को तथा उत्सव को श्रेष्ठ ब्राह्मणों से करवायीं ॥९॥ उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन कराया और शुभ वस्त्रों तथा भूषणों से उग्रसेन इत्यादि जो राजागण थे उनकी पूजा की ॥१०॥ नन्दगोप आदि गोप तथा यशोदा आदि स्त्रियाँ बहुत अधिक सुवर्ण तथा रत्न आदि से तथा भूषणों से ॥११॥ उस विवाह महोत्सव में पूजित होकर अत्यन्त प्रसन्न हुयीं । भगवान् कृष्ण दम्पती एक साथ सटकर अग्नि को प्रणाम किए ॥१२॥ वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मणों ने उस दम्पती को आशीर्वाद दिया । उस विवाह की वेदी पर वर और वधू दोनों सुशोभित

ब्राह्मणेभ्योऽथ वृद्धेभ्यो राजन्यःसह भार्यया ।
ववन्दे देवकीपुत्रो ज्येष्ठस्य भ्रातुरेवच ॥१४॥
एवमौद्वाहिकं सर्वनिर्वर्त्य मधुसूदनः । व्यसर्जयन्नृपान्सर्वान्ये च तत्र समागताः ॥१५॥
प्रस्थिता हरिणा तत्र पूजिता नृपपुङ्गवाः । ब्राह्मणाः सुमहात्मानो निर्ययुःस्वकमालयम् ॥१६॥
रुक्मिणया सह धर्मात्मा देवकीनन्दनोऽव्ययः ।
उवास सुसुखेनैव दिव्यहर्म्यतले शुभे ॥१७॥
तया वै रमयामास नारायणइव श्रिया। संस्तूयमानो मुनिभिर्दिवि देवगणैरपि॥१८॥
अहन्यहनि हृष्टात्मा सुखेनैव जनार्दनः। अथोवास सुशोभायां द्वारवत्यां सनातनः ॥१९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे श्रीकृष्णचरिते रुक्मिणीविवाहकथनं नामाष्टाचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४८॥

हुए ॥१३॥ उसके पश्चात् बृद्ध ब्राह्मणों को और राजाओं की तथा बलरामजी को उनकी पत्नी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण ने वन्दना की ॥१४॥ इस तरह से वैवाहिक सम्पूर्ण कर्म को पूरा करके भगवान् मधुसूदन वहाँ पर आये हुए सभी राजाओं को विदा किए ॥१५॥ श्री हरि के द्वारा पूजित सभी श्रेष्ठ राजागण चले गये । महात्मा तथा ब्राह्मण गण अपने-अपने घर गये ॥१६॥ रुक्मिणी के साथ धर्मात्मा अव्यय भगवान् श्रीकृष्ण सुख पूर्वक दिव्य भवन में निवास किए ॥१७॥ वे रुक्मिणीजी के साथ उसी तरह रमण किए जिस तरह लक्ष्मीजी के साथ भगवान् नारायण रमण करते हैं । स्वर्ग में देवगण उनकी उस समय स्तुति करते थे॥१८॥ प्रत्येक दिन प्रसन्नमन वाले सनातन श्रीभगवान् शोभा सम्पन्न द्वारका में निवास करते थे ॥१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीकृष्ण चरित के प्रसङ्ग में रुक्मिणी विवाह वर्णन नामक दो सौ अड़तालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४८।।

दो सौ उनचासवाँ अध्याय

श्रीरुद्र उवाच

सत्राजितस्य तनया नाम्ना सत्या यशस्विनी ।
पृथिव्यंशेन सम्भूता भार्या कृष्णस्य चाऽपरा ॥१॥
वैवस्वतीमहाभागा कालिन्दीनामनामतः । तृतीया तस्य भार्या सानीलांशेनसमुत्थिता ॥२॥
विन्दानुविन्दस्यसुतां मित्रविन्दां शुचिस्मिताम् ।
स्वयम्वरस्थितांकन्यामुपयेमेजनार्दनः ॥३॥
पाशेनैकेन बद्ध्वा तान्वृषभान्सप्तदुर्मदान् । तां वीर्यशुक्लां जग्राह पद्मपत्रायतेक्षणः ॥४॥
सत्राजितो महारत्नं स्यमन्ताख्यं महीपतिः । अनुजाय ददौ सोऽयं प्रसेनाय महात्मने ॥५॥
ययाचे तं मणिवरं कदाचिन्मधुसूदनः । उवाच वासुदेवं तं प्रसेनः प्रसभं तदा ॥६॥

प्रसेन उवाच

भारानष्टसुवर्णानां नित्यं प्रसवते मणिः । तस्मात्कस्य न दातव्यंस्यमन्ताख्यमिदंमया ॥७॥

महादेव उवाच

कृष्णस्तु तदभिप्रायं ज्ञात्वा तूष्णीमुवासह । कदाचिन्मृगयां कर्त्तुं कृष्णः सवर्यदूत्तमैः ॥८॥

सत्यभामाा विवाह एवं स्यमन्तक मणि का उपाख्यान, सत्राजित् के पुत्र प्रसेन का वन में सिंह के द्वारा मारा जाना, और उसके द्वारा स्यमन्तक मणि का हरण, जाम्बवान के द्वारा सिंह का मारा जाना और उनको मणि की प्राप्ति, मणि हरण के विषय में भगवान् कृष्ण का अपवाद और उस अपवाद को दूर करने के लिए मणि की खोज करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का जाम्बवान् के साथ युद्ध और जाम्बवान् की पराजय, पूर्वजन्म में भगवान् राम के द्वारा की गयी प्रतिज्ञा को बार-बार स्मरण करके जाम्बवान् के द्वारा भगवान् कृष्ण की प्रार्थना, जाम्बवती का विवाह, मद्रराज के पुत्रियों के साथ भगवान् का विवाह नरका सुर का वध, सत्यभामा का शची के द्वारा अपमान, उसका प्रतिशोध करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कल्पवृक्ष को उखाड़कर गरुड़ पर रखा जाना, इन्द्र द्वारा भगवान् कृष्ण की प्रार्थना शची के द्वारा सत्यभामा का सम्मान

श्रीरुद्र ने कहा— सत्राजित् की पुत्री का नाम सत्यभामा था । वह यशिस्वी पृथिवी के अंश से उत्पन्न हुयी थी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की दूसरी पत्नी थी ॥१॥ सूर्य की पुत्री महाभागा कालिन्दी भगवान् श्रीकृष्ण की तीसरी पत्नी थी । वह नीला देवी के अंश से उत्पन्न हुयी थीं ॥२॥ अनुविन्द की पुत्री विन्दा मनोहर मुस्कान वाली मित्र विन्दा जो स्वयम्बर में विद्यमान थी उसके साथ भगवान् ने विवाह किया ॥३॥ एक ही पाश से दुर्मद सात वृषभों को बाँधकर उस वीर्य शुल्का को भगवान् कमल नयन ने ग्रहण किया॥४॥ राजा सत्राजित् स्यमन्तक नामक महारत्न को अपने छोटे भाई महात्मा प्रसेन को दे दिए ॥५॥ एक बार भगवान् मधुसूदन उस श्रेष्ठ मणि को माँगे । उस समय प्रसेन ने भगवान् वासुदेव को बहुत कुछ कहा ॥६॥ **प्रसेन ने कहा**— यह मणि प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण को उत्पन्न करती है । अतएव मैं इस

प्रविवेश महारण्यं प्रसेनाद्यैर्महाबलैः । प्रत्येकं वै मृगान्हन्तुमनुयाताः सहस्रशः ॥९॥
एकएवमहारण्ये प्रसेनो दूरमागतः । तं सिंहो दृप्तमासाद्य हत्वा रत्नं जहार सः ॥१०॥
तं सिंहं जाम्बवान्हत्वा मणिं गृह्य महाबलः ।
प्रविवेश बिलं तूर्णं दिव्यस्त्रीभिर्निषेवितम् ॥११॥
तस्मिन्नस्तं गते सूर्ये वासुदेवः सहानुगः । चतुर्थ्यामुदितं चन्द्रं दृष्ट्वा स्वं पुरमाविशत् ॥१२॥
ततः सर्वे पुरजनाः कृष्णं प्रोचुःपरस्परम् । हत्वा प्रसेनं गोविन्दो मृगव्याजेन कानने ॥१३॥
स्यमन्तकं मणिवरमग्रहीदविशङ्कया । तदाकर्ण्य हरिस्तस्मिन्द्वारकाजनभाषितम् ॥१४॥
अज्ञलोकभयात्सर्वैर्यदुभिर्गहनं ययौ । दर्शयामास तान्सर्वान्सिंहेन निहतं वने ॥१५॥
लब्धाऽऽत्मशुद्धिस्तत्रैव संस्थाप्य महतीं चमूम् ।
एकः शार्ङ्गगदापाणिर्जगाम गहनं वनम् ॥१६॥
तस्मिनगुहामुखे सिंहं हतं जाम्बवता तदा। दृष्ट्वा महाबिलं कृष्णः प्रविवेशाऽविशाङ्कितः॥१७॥
तत्र नामामणिवरद्योतिते विमले गृहे । सुतं जाम्बवतो धात्री दोलामारोप्य लीलया ॥१८॥
दोलामुखे मणिं धृत्वा दोलयन्गायतीमुदा। सिंहःप्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ॥१९॥
सुकुमारकमारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः । तच्छ्रुत्वावासुदेवोऽथ शङ्खंदध्मौप्रतापवान् ॥२०॥
तेन नादेन महता निर्जगामाऽत्र जाम्बवान् । तयोर्यद्धमभूद्धोरं दशरात्रं निरन्तरम्॥२१॥

स्यमन्तक नामक रत्न को किसी को भी नहीं दे सकता हूँ ॥७॥ **महादेवजी ने कहा**— भगवान् श्रीकृष्ण उसके अभिप्राय को जानकर चुप हो गये । एक बार आखेट करने के लिए सभी यदुश्रेष्ठों के साथ ॥८॥ प्रसेन आदि महाबलवान् के साथ वन में प्रवेश किए । प्रत्येक के साथ मृगों को मारकर हजारों उनके अनुयायी गये ॥९॥ उस महावन में प्रसेन बहुत दूर अकेले चले गये । उस दृप्त को मारकर सिंह ने उस मणि को ले लिया ॥१०॥ महाबलवान् जाम्बवान् उस सिंह को मारकर उससे मणि ले लिए और दिव्य स्त्रियों से सुसेवित गुफा में शीघ्र प्रवेश कर गये ॥११॥ सूर्यास्त हो जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण अपने अनुगन्ताओं के साथ । चतुर्थी तिथि के उगते हुए चन्द्रमा को देखकर अपने नगर में प्रवेश किए ॥१२॥ उसके बाद सभी नगरवासी भगवान् कृष्ण के विषय में कहने लगे । श्रीकृष्ण मृगया के बहाने प्रसेन को मारकर ॥१३॥ निःशङ्क होकर स्यामन्तक मणि को ले लिए । श्रीहरि द्वारका के लोगों द्वारा कही गयी उस बात को सुनकर ॥१४॥ मूर्खों के भय से सभी यदुवंशियों के साथ गहन वन में गये । उन सबों का उन्होंने प्रसेन को सिंह से मारे हुए दिखाये ॥१५॥ आत्मशुद्धि को प्राप्त करके वहीं पर विशाल सेना को रखकर हाथ में शार्ङ्ग तथा गदा लेकर अकेले उस गहन वन में प्रवेश किए ॥१६॥ उसके बाद उस गुफा के द्वारा जाम्बवान् के द्वारा मारे गये सिंह को देखकर उस महाविल में प्रवेश कर गये ॥१७॥ वहाँ पर अनेक श्रेष्ठ मणियों से प्रकाशित स्वच्छ गृह में जाम्बवान् के पुत्र को झूले पर धाई लीला पूर्वक बैठाकर झूले के सामने मणि को रखकर झुलाती हुयी और प्रसन्नता पूर्वक गीत गा रही थीं । सिंह ने प्रसेन को मार दिया, जाम्बवान् ने सिंह को मारा ॥१८-१९॥ हे सुकुमार ! मत रोओ यह स्यमन्तक तुम्हारा ही है । उसको सुनकर भगवान् ने शङ्ख को बजाया ॥२०॥ उस महान शब्द को सुनकर जाम्बवान् निकले । उन दोनों का दश रात तक लगातार युद्ध होता रहा ॥२१॥ वज्र के समान मुक्के से सभी भूतों को भयभीत करने वाला

मुष्टिभिर्वज्रकल्पैश्च सर्वभूतभयावहम् । कृष्णस्य बलवृद्धिं च तथाऽऽत्मबलसंक्षयम् ॥२२॥
अवेक्ष्य पूर्ववचनं बुबुधे परमात्मनः । सोऽयं रामोऽवतीर्णोऽत्र धर्मात्राणाय वै पुनः ॥२३॥
स आगतो मम स्वामी दातुं मम मनोरथम् ।
एवं ज्ञात्वाऽथ ऋक्षेशो निर्वर्त्यरणकर्मतत् ॥२४॥
प्राञ्जलिः प्राह गोविन्दं को भवानिति विस्मयात् ।
निर्वर्त्य कदनं शौरिः प्रोचे गम्भीरया गिरा ॥२५॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुत्रोऽहं वसुदेवस्य वासुदेव इतीरितः । ममरत्नं स्यमन्ताख्यं हृतवांस्त्वं सुनिर्भयः ॥
तद्दीयतां च शीघ्रं मे अन्यथा वधमेष्यसि ॥२६॥

महादेव उवाच

तच्छ्रुत्वाजाम्बवान्हृष्टःप्रणनामाऽथदण्डवत् । परिणीय नमस्कृत विनयात्प्राहकेशवम् ॥२७॥

जाम्बवानुवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि तवसन्दर्शनात्प्रभो ! ।
दासोऽहंपूर्वभावेन तव देवकिनन्दन ! ॥२८॥
दत्तवानसि गोविन्द ! कदनं पूर्वकाङ्क्षितम् ।
मयेदं कदनं मोहाद्यत्कृतं स्वामिना त्वया ॥
तत्क्षम्यतां जगन्नाथ ! करुणाकर ! शाश्वत ! ॥२९॥

महादेव उवाच

इत्युत्तवा प्रणतो भूत्वा नमस्कृत्य पुनःपुनः ।
नानारत्नमये पीठे निवेश्य विनयात्प्रभुम् ॥३०॥

वह युद्ध था । भगवान् श्रीकृष्ण के बल की बृद्धि को देखकर तथा अपने बल के क्षय को देखकर ॥२२॥ परमात्मा के पूर्व वचन को वे स्मरण किए । उन्होंने सोचा धर्म की रक्षा करने के लिए पुनः श्रीभगवान् अवतीर्ण हो गये हैं ॥२३॥ वे ही मेरे स्वामी मेरे मनोरथ को पूर्ण करने के लिए आये हुए हैं । इस तरह से जानकर जाम्बवान् ने युद्ध करना बन्द कर दिया ॥२४॥ वे हाथ जोड़कर विस्मय पूर्वक भगवान् गोविन्द से पूछे कि आप कौन हैं ? श्रीभगवान् भी युद्ध बन्द करके गम्भीर वाणी से कहे ॥२५॥ **भगवान् श्रीकृष्ण बोले—** मैं वसुदेवजी का पुत्र हूँ मेरा नाम वासुदेव है । तुम मेरे रत्न को निर्भय होकर ले लिए हो । उसको शीघ्र दे दो नहीं तो मैं शीघ्र ही तुम्हें मार दूँगा ॥२६॥ **महादेवजी ने कहा—** उसको सुनकर प्रसन्न हुए जाम्ववान् भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किए । उनकी परिक्रमा करके तथा उन्हें नमस्कार करके कहे॥२७॥ **जाम्बवान् ने कहा—** हे प्रभो ! मैं तो आपका दर्शन करके धन्य और कृतकृत्य हो गया हे देवकी नन्दन! पूर्वजन्म के ही समान मैं आपका दास हूँ ॥२८॥ हे गोविन्द ! मेरे द्वारा पूर्व जन्म में अभिप्रेत आपने आज मुझे युद्ध प्रदान किया है । मैं अज्ञान के कारण आप स्वामी के साथ युद्ध किया । हे करुणाकर ! हे शाश्वत ! उसे आप क्षमा करें ॥२९॥ **महादेवजी ने कहा—** इस तरह से कहकर तथा प्रणत होकर

शारदाब्जनिभौ पादौ प्रक्षाल्य शुभवारिणा। मधुपर्कविधानेन पूजयित्वा यदूद्वहम् ॥३१॥
वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैः पूजयित्वा विधानतः। पुत्रीजाम्बवतीं नामकन्यांलावण्यसंयुताम्॥३२॥
कन्यारत्नं ददौतस्मैभार्यार्थममितौजसे। अन्यैश्च मणिमुख्यैश्चस्यमन्ताख्यंददौमणिम् ॥३३॥
तत्रैवोद्वाह्य तां कन्यां प्रहृष्टः परवीरहा। ददौ तस्मै परां मुक्तिं प्रीत्या जाम्बवते हरिः ॥३४॥
गृहीत्वा तनयांतस्यकन्यां जाम्बवतीम्मुदा। विनिर्गत्यबिलात्तस्मात्प्रययौद्वारकांपुरीम् ॥३५॥
सत्राजिते ददौ रत्नं स्यमन्ताख्यं यदूत्तमः। दुहित्रे प्रददौ सोऽपिकन्यायैमणिमुत्तमम् ॥३६॥
मासि भाद्रपदे शुक्ले चतुर्थ्यांचन्द्रदर्शनम्। मिथ्याभिदूषणंप्राहुस्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥३७॥
तत्प्राप्य दर्शनं तत्र चतुर्थ्यां शीतगोर्नरः। स्यमन्तस्यकथांश्रुत्वामिथ्यावादात्प्रमुच्यते ॥३८॥

सुलक्षणा नाग्नजिती सुशीला च यशस्विनी।
मद्रराजसुतास्तिस्रः कन्यकास्ताः शुभाननाः ॥३९॥
स्वयम्बरस्थास्ताः कृष्णं वरयामासुरुज्ज्वलाः।
एकस्मिन्दिवसे तास्तु उपयेमे यदूद्वहः ॥४०॥
अष्टोमहिष्यस्ताः सर्वा रुक्मिण्याद्या महात्मनः।
रुक्मिणी सत्यभामा च कालिन्दी च शुचिस्मिता ॥४१॥

मित्रविन्दाजाम्बवतीनाग्नजित्यः सुलक्षणा। सुशीलानामतन्वङ्गी महिषीचाष्टमीस्मृता॥४२॥
भूमिपुत्रो महावीर्यो नरको नाम राक्षसः। जित्वा देवपतिं शक्रं सर्वांश्चैव सुरान्रणे॥४३॥

श्रीभगवान् को बार-बार नमस्कार करके विनय पूर्वक श्रीभगवान् को अनेक रत्नमय सिंहासन पर वैठाकर॥३०॥ शुभ जल से उनके शरत् कालीन कमल के समान मनोहर चरण कमल को धोकर तथा मधुपर्क विधि से श्रीकृष्ण भगवान् की पूजा करके ॥३१॥ वस्त्रों तथा दिव्य आभूषणों से उनकी पूजा करके अपनी पुत्री जाम्बवती को जो सुन्दरी थी उसको ॥३२॥ श्रीभगवान् को पत्नी बनाने के लिए अपने कन्या रत्न को प्रदान किए तथा दूसरी मुख्य मणियों के साथ श्रीभगवान् को उन्होंने स्यमन्तक मणि भी प्रदान कर दिये। वहीं पर उस बाला के साथ विवाह करके शत्रुओं को मारने वाले श्रीभगवान् प्रसन्नता पूर्वक जाम्बवान् को परमा मुक्ति प्रदान किए ॥३३-३४॥ उनकी पुत्री जाम्बवती को लेकर प्रसन्नता पूर्वक उस गुफा से निकलकर द्वारका चले गये ॥३५॥ उन्होंने सत्राजित् को स्यमन्तक रत्न प्रदान किया। उन्होंने भी उस मणि को अपनी पुत्री सत्यभामा को दे दिया ॥३६॥ भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि को चन्द्रमा को नहीं देखना चाहिए; क्योंकि उस दिन चन्द्रमा को देखने से झूठा कलङ्क लगता है, वह शास्त्रों में वतलाया गया है। अतएव उस दिन चन्द्र दर्शन न करे ॥३७॥ यदि मनुष्य को उस दिन चन्द्रमा का दर्शन हो भी जाय तो उसे स्यमन्तक मणि की कथा सुननी चाहिए; ऐसा करने से वह कलङ्क नहीं लगता है ॥३८॥ सुलक्षणा, नग्नजिती तथा यशस्विनी सुशीला ये सभी तीन मद्रराज की कन्यायें सुन्दरी थीं ॥३९॥ अपने स्वयम्बर में विद्यमान उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण का वरण किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने एक ही दिन में उन तीनों के साथ विवाह किया ॥४०॥ श्रीभगवान् की इसतरह आठ पटरानियाँ थीं। रुक्मिणी, सत्यभामा तथा सुन्दरी कालिन्दी ॥४१॥ मित्रविन्दा, नाग्नजिती, जाम्बवती, सुलक्षणा तथा सुशीला नाम की सुन्दरी

अदित्यादेवमातुश्च कुण्डले च सुवर्चसी। बलाज्जग्राह देवानां रत्नानि विविधानि च ॥४४॥
ऐरावतं महेन्द्रस्य तथैवोच्चैःश्रवो हयम्। माणिक्यादि धनेशस्य शङ्खपद्मनिधिं तथा ॥४५॥
स्त्रियश्चाप्सरसश्चैव हृतवान्क्षितिनन्दनः। वज्रादिहेतीस्तेषांच बलाद्धृत्वादिवौकसाम् ॥४६॥
तैरेव सुसुरान्हत्वा सभां मयविनिर्मिताम्। उवास व्योमगे दिव्ये नगरे विमलेऽम्बरे ॥४७॥
ततो देवगणाः सर्वे पुरस्कृत्य शचीपतिम्। भयार्ताःशरणं जग्मुःकृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥४८॥
कृष्णोऽपि तदुपश्रुत्य सर्वं नरकचेष्टितम्। देवानामभयं दत्त्वा वैनतेयं व्यचिन्तयत् ॥४९॥
तस्मिन्क्षणे हरेस्तस्य वैनतेयो महाबलः। प्राञ्जलिः पुरतस्तस्थौ सर्वदेवनमस्कृतः ॥५०॥
तमारुह्य द्विजश्रेष्ठं सत्यया सह केशवः। संस्तूयमानो मुनिभिः प्रययौ राक्षसालयम् ॥५१॥
प्रदीप्यमानमाकाशे यथा सूर्यस्य मण्डलम्। राक्षसैर्बहुभिर्युक्तं दिव्यैराभरणैर्युतम् ॥५२॥
ददर्श तत्पुरं कृष्णो दुर्भेद्यं त्रिदशैरपि। तदावरणजालानि वीक्ष्य चक्रेण वीर्यवान् ॥५३॥
चिच्छेद तेजसा दीप्त्या तमांसीव दिवाकरः।
ततस्ते राक्षसाः सर्वे शतशोऽथसहस्रशः ॥५४॥
उद्यम्य शूलानि तदा युद्धायाऽभिमुखंययुः। ततस्तु तोमरैर्दिव्यैर्भिण्डिपालैः सुपट्टिशैः ॥५५॥
केशवं ताडयामासुः पलालैरिव पावकम्। ततस्तु शार्ङ्गमादाय भगवान्गरुडध्वजः ॥५६॥
दिव्यशस्त्राणि चिच्छेद बाणैरग्निशिखोपमैः। तेषां शिरोधरान्नागानश्वांश्चैवतरस्विनः ॥५७॥

उनकी ये आठ रानियाँ थीं ॥४२॥ भूमि देवी का पुत्र नरक नामक महापराक्रमी राक्षस था। उसने युद्ध में इन्द्र तथा सभी देवताओं को जीत लिया ॥४३॥ वह देवमाता अदिती के सुन्दर देदीप्यमान दोनों कुण्डलों को तथा देवताओं के अनेक रत्नों को बल पूर्वक ले लिया ॥४४॥ इन्द्र के ऐरावत हाथी को तथा उच्चैःश्रवा नामक घोड़े को तथा कुबेर के माणिक्य आदि को एवं तथा शङ्ख एवं पद्म नामक निधियों को॥४५॥ उस पृथिवी के पुत्र ने अप्सरा आदि स्त्रियों को भी देवताओं से छिन लिया। उसने देवताओं के वज्र आदि आयुधों को छिन लिया ॥४६॥ उन्हीं आयुधों से देवताओं को मारकर मय नामक दैत्य के द्वारा निर्मित देवताओं की सभा को लेकर आकाशस्थित स्वच्छ नगर में रहने लगा ॥४७॥ उसके बाद सभी देवता इन्द्र को आगे करके अक्लिष्ट कर्म करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में गये ॥४८॥ भगवान् कृष्ण भी उस नरकासुर की सारी चेष्टाओं को सुनकर देवताओं को अभय प्रदान करके गरुड़ का स्मरण किये। उसी क्षण गरुड़ श्रीभगवान् के सामने उपस्थित हो गये और सभी देवताओं से नमस्कृत वे श्रीभगवान् के समक्ष खड़े हो गये ॥४९-५०॥ उन पक्षी श्रेष्ठ पर सत्यभामा के साथ श्रीभगवान् मुनियों द्वारा स्तुति किए जाते हुए उस राक्षस की नगरी में गये ॥५१॥ वह आकाश में सूर्य मण्डल के समान चमक रही थी। वह अनेक राक्षसों से युक्त तथा दिव्यालङ्कारों से अलंकृत नगरी थी ॥५२॥ भगवान् ने उस देवताओं की नगरी, जो देवताओं के लिए भी दुर्भेद्य थी देखे। उसके आवरण जाल को उन्होंने अपने चक्र से ॥५३॥ उसी तरह से काट दिया जिस तरह सूर्य नारायण अपने प्रकाश से अन्धकार को विनष्ट कर देते हैं। उसके पश्चात् दैत्य अपने त्रिशूल को उठाकर श्रीभगवान् के साथ युद्ध करने के लिए गये। उन सबों ने दिव्य भिन्दिपालों तथा पट्टिशो से उसी तरह से भगवान् को मारा जैसे कोई पुआल से अग्नि को मारता है।

चक्रेणैव प्रचिच्छेद वीर्यवान्पुरुषोत्तमः। केचिच्चक्रेण संछिन्नास्तथाऽन्येशरताडिताः ॥५८॥
गदयानिहताः केचिद्राक्षसास्तद्रणाजिरे। एवं ते राक्षसाः सर्वे पातिता धरणीतले ॥५९॥
शक्रोत्सृष्टेन वज्रेण निर्भिन्ना इव भूधराः। निहत्य दानवान्सर्वान्पुण्डरीकायतेक्षणः ॥६०॥
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं प्रदध्मौ पुरुषोत्तमः। ततः स नरको दैत्यो धनुरादाय वीर्यवान् ॥६१॥
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य ययौ युद्धाय केशवम्। तयोर्युद्धमभूद्धोरं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥६२॥
बहुभिर्बाणसाहस्रैर्मेघयोरिव वर्षतोः। ततोऽर्द्धचन्द्रबाणेन वासुदेवः सनातनः ॥६३॥
तस्य राक्षसमुख्यस्य धनुश्छिच्छेद वीर्यवान्। ससजास्त्रं महादिव्यं नरकस्यमहोरसि ॥६४॥
स तेन भिन्नहृदयः पपातोर्व्यां महासुरः। शक्रवज्रेण निर्भिन्नो महाचल इवोन्नदन् ॥६५॥
उपगम्य ततः कृष्णः समीपं तस्य रक्षसः। भूम्या सम्प्रार्थितःप्राह वरंवृण्वितिराक्षसम् ॥
स चाऽऽह राक्षसः कृष्णं गरुडोपरि संस्थितम् ॥६६॥

नरक उवाच

न मे कृत्यं वरेणाऽस्ति नरकोऽहं तथापि च ।
अन्यलोकहितार्थाय वृणेऽहं वरसुत्तमम् ॥६७॥

मृताहनि तु मे कृष्ण सर्वभूतेश्वरेश्वर !। ये नरा मङ्गलस्नानं कुर्वन्ति मधुसूदन ! ॥
न तेषां निरयप्राप्तिर्भवत्वेवं भयापह ! ॥६८॥

महादेव उवाच

एवमस्त्विति गोविन्दो ददौ तस्मै वरं प्रभुः ।
ततःपश्यन्हरेः साक्षाच्छरदम्बुजसन्निभौ ॥६९॥

उसके वाद भगवान् गरुड़ध्वज शार्ङ्ग धनुष को उठाकर उन दिव्य शस्त्रों को बाण रूपी अग्नि शिखा से उन सबों की गला को, हाथियों को तथा तेज चलने वाले अश्वों को काट दिए ॥५४-५७॥ इन सवों को श्रीभगवान् चक्र से ही काट दिए। कुछ चक्र से कट गये और कुछ बाण लगने से मर गये ॥५८॥ उस रणाङ्गण में कुछ राक्षस गदा से मारे गये। इस तरह सभी दैत्यों को उन्होंने मार दिया। इस तरह सभी राक्षस पृथिवी पर उसी तरह गिर पड़े जिस तरह इन्द्र के वज्र के प्रहार से सभी पर्वत पृथिवी पर गिर पड़े थे। सभी दैत्यों को मारकर कमल नयन श्रीभगवान् ॥५९-६०॥ पाञ्चजन्य नामक शङ्ख को पुरुषोत्तम ने बजाया। उसके बाद पराक्रमी नरक नामक दैत्य धनुष धारण करके ॥६१॥ दिव्य रथ पर बैठकर भगवान् केशव के साथ युद्ध करने के लिए गया। उन दोनों का अत्यन्त भयङ्कर घोर युद्ध हुआ ॥६२॥ वे दोनों अनेक हजार बाणों की वर्षा कर रहे थे। उसके पश्चात् सनातन भगवान् वासुदेव अर्द्ध चन्द्र बाण से॥६३॥ उस राक्षस मुख्य के धनुष को काटकर गिरा दिए। उन्होंने नरकासुर के विस्तृत वक्षःस्थल में महास्त्र से प्रहार किया ॥६४॥ उसके हृदय के फट जाने से वह राक्षस पृथिवी पर गिर पड़ा। इन्द्र के द्वारा मारे गये अत्यन्त ऊँचे पर्वत के समान वह प्रतीत हो रहा था ॥६५॥ उसके बाद श्रीभगवान् उस राक्षस के समीप जाकर भूदेवी के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर उससे कहे कि तुम मुझसे वरदान माँगो। गरुड़ पर स्थित श्रीभगवान् से उस राक्षस ने कहा ॥६६॥ **नरक बोले**— मुझे वरदान से कोई काम नहीं है फिर भी मैं नरक ही हूँ। दूसरे लोगों के कल्याण के लिए मैं उत्तम वरदान माँगता हूँ ॥६७॥ हे सम्पूर्ण जगत् के

चरणौ वज्रवैडूर्यनुपुराभ्यां विराजितौ। अर्चितौ विधिरुद्राद्यैस्त्रिदशैर्मुनिभिस्तथा ॥७०॥
त्यक्त्वा प्राणान्महीपुत्रः सारूप्यमगमद्धरेः। ततो देवगणाःसर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ॥७१॥
ववृषुः पुष्पवर्षाणि तुष्टुवुश्च महर्षयः। प्रविश्य नगरं तस्य कृष्णः कमललोचनः ॥७२॥
बलात्तेन गृहीतानि रत्नानि त्रिदिवौकसाम्। कुण्डले देवमातुश्च तथैवोच्चैःश्रवोहयम्॥७३॥
ऐरावतं गजश्रेष्ठं प्रदीप्तं मणिपर्वतम्। सर्वमेतद्यदुश्रेष्ठो ददौ शक्राय वज्रिणे ॥७४॥
पार्थिवान्सर्वराष्ट्रेभ्यो जित्वाऽसौनरकोबली। कन्याषोडशसाहस्रं हृतवान्नरकस्तदा ॥७५॥
सन्निरुद्धास्तु ताः सर्वा नरकान्तःपुरे तदा। दृष्ट्वा कृष्णं महावीर्यं कन्दर्पशतसन्निभम् ॥७६॥
भर्तारंवव्रिरे सर्वाः पतिं विश्वस्य सर्वगम्। एतस्मिन्नेवकालेतुगोविन्दोऽनन्तरूपवान् ॥७७॥
तासां करग्रहं चक्रे विधिना पुरुषोत्तमः। नरकस्य सुताः सर्वे पुरस्कृत्य महीं तदा॥७८॥
गोविन्दं शरणं जग्मुस्तानरक्षद्घृणानिधिः ।
तद्राराज्ये स्थाप्य तान्सर्वान्पृथिव्या वाक्यगौरवात् ॥७९॥
ऐन्द्रं विमानमारोप्य ताश्च सर्वावरस्त्रियः। देवदूतैर्महाभागैर्द्वारवत्यां न्यवेशयत् ॥८०॥
वैनतेयं समारुह्य सत्यया सह केशवः। स्वर्लोकं प्रययौ तूर्णं द्रष्टुं तां देवमातरम्॥८१॥
प्रविश्य नगरीं तत्र देवराजो जनार्दनः। अवरुह्य द्विजश्रेष्ठात्पत्न्या सह महाबलः ॥८२॥

स्वामिन् ! मेरी मृत्यु के दिन हे मधुसूदन ! जो मनुष्य मङ्गल स्नान करेगा उसको हे भगवन् ! भयावह नरक का भय न हो ॥६८॥ **महादेवजी ने कहा—** श्रीभगवान् गोविन्द ने कहा ऐसा ही होगा यह वरदान दिया । उसके पश्चात् श्रीहरि का दर्शन करते हुए वह श्रीभगवान् के शरत् कालीन कमल के समान ॥६९॥ चरणों को जो वज्र, वैडूर्य तथा नूपुरों के सुशोभित थे तथा जो ब्रह्मा, रुद्र आदि देवों तथा मुनियों से पूजित॥७०॥ उनको देखते हुए अपने प्राणों का परित्याग करके श्रीभगवान् के सारूप्य को प्राप्त कर लिया। उसके पश्चात् सभी देवताओं ने प्रसन्न होकर ॥७१॥ पुष्पों की वर्षा किए और श्रीभगवान् की स्तुति किए। उसके नगर में कमलनयन भगवान् प्रवेश करके ॥७२॥ उसने देवताओं के जिन रत्नों को बल पूर्वक ले लिया था उन सबों को तथा देवमाता के कुण्डलों को एवं उच्चैःश्रवा घोड़े को ॥७३॥ ऐरावत नामक श्रेष्ठ हाथी को तथा चमकते हुए मणि पर्वत को इन सारी वस्तुओं को वज्रधारी इन्द्र को दे दिए ॥७४॥ वह बलवान् नरक सभी राष्ट्रों को जीतकर सोलह हजार कन्याओं का हरण कर लिया था ॥७५॥ उन सबों को नरकासुर अपने अन्तःपुर में बाँध दिया था । वे सब करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर ॥७६॥ सर्वत्र व्यापक श्रीभगवान् को अपने पति के रूप में वरण कर लिया । उस समय अनन्त रूपों वाले श्रीहरि ने ॥७७॥ उन सबों का पाणिग्रहण विधि पूर्वक किया । नरक के सभी पुत्र भूदेवी को आगे करके ॥७८॥ भगवान् की शरणागति किए और श्रीहरि ने उन सबों की रक्षा की । नरकासुर के राज्य पर उन सबों को पृथिवी देवी के वाक्य को महत्त्व देते हुए स्थापित किए । इन्द्र के विमान पर बैठाकर उन सभी श्रेष्ठ स्त्रियों को श्रीभगवान् देवदूतों द्वारा द्वारका में भेज दिए ॥७९-८०॥ भगवान् केशव सत्यभामा के साथ गरुड़ पर सवार होकर शीघ्र ही देवलोक में देवमाता का दर्शन करने के लिए चले गये ॥८१॥ उस नगर में देवताओं के स्वामी श्रीभगवान प्रवेश किए । वे पत्नी के साथ गरुड़ से उतरकर महाबलवान्

ववन्दे मातरं देवीमदितिं त्रिदिवौकसाम्। सम्परिष्वज्य बाहुभ्यामदितिःपुत्रवत्सला ॥८३॥
निवेश्यासनमुख्ये तु पूजयामास भक्तितः। आदित्या वसवो रुद्राः शतक्रतुपुरोगमाः ॥८४॥
तत्र सम्पूजयामासुर्यथार्हं परमेश्वरम्। शचीगृहं समागम्य सत्यभामायशस्विनी ॥८५॥
तया समर्चिता देव्या समासीना सुखासने। तस्मिन्काले सुपुष्पाणि पारिजातस्य किङ्कराः ॥८६॥
शच्यै देव्यै ददुः प्रीत्या सहस्राक्षेणचोदिताः ।
प्रगृह्यतानि पुष्पाणि शचीदेवीसुमध्यमा ॥८७॥
नीलनिर्मलकेशे च बबन्ध स्वयमूर्धनि। अवमान्य शची तत्र सत्यभामां यशस्विनीम्॥८८॥
अनर्हामानुषी चेयं देवार्हं कुसुमं शुभम्। इतिकृत्वा मतिं तस्यै न ददौ कुसुमानि सा ॥८९॥
विनिष्क्रम्य पुरात्तस्मात्सत्या कोपसमन्विता ।
समेत्य कृष्णंभर्त्तारमुवाचकमलेक्षणा ॥९०॥

सत्योवाच

एषा शची यदुश्रेष्ठ ! पारिजातेन गर्विता । अदत्त्वा मम गोविन्द ! बबन्ध स्वस्य मूर्द्धनि॥९१॥

महादेव उवाच

सत्याया भाषितं श्रुत्वा वासुदवो महाबलः। उत्पाट्य पारिजातं तु निवेश्यगरुडोपरि ॥९२॥
आरुह्य सत्यया तूर्णं वैनतेयं महाबलम्। प्रययौ द्वारकां रम्यां नगरीं देवकीसुतः ॥९३॥
ततः कोपसमाविष्टो देवराजः शतक्रतुः। रुद्रैर्वसुभिरादित्यैः साध्यैश्च मरुतांगणैः ॥९४॥
ऐरावतं समारुह्य ययौ युद्धाय केशवम्। ततो देवगणाः सर्वे परिवार्य जनार्दनम्॥९५॥

श्रीभगवान ॥८२॥ देव माता आदिति की प्रार्थना किए । पुत्र वत्सला आदिति ने उनको अपने दोनों हाथों से पकड़कर आलिङ्गन किया ॥८३॥ उन्होंने श्रेष्ठ आसन पर श्रीभगवान् को बैठाकर भक्ति पूर्वक उनकी पूजा किया । आदित्य, गण, वसुगण तथा रुद्रगण इन्द्र के साथ श्रीभगवान् का यथा योग्य पूजन किए । यशस्विनी सत्यभामाजी शची के घर आकर ॥८४-८५॥ शची के द्वारा पूजित होकर सुखासन पर बैठीं । उसी समय उनके किङ्कर पारिजात के सुन्दर पुष्पों को लाये ॥८६॥ इन्द्र के द्वारा प्रेरित होकर उन सबों ने उसे शची देवी को प्रदान किया । इन सभी पुष्पों को लेकर सुन्दरी शची देवी ने ॥८७॥ अपने काले तथा स्वच्छ केश में बाँध लिया । वहाँ शची ने सत्यभामाजी का अपमान किया ॥८८॥ यह सोच करके यह पुष्प देवताओं के योग्य है यह मानुषी इसके योग्य नहीं है, उन्होंने उन पुष्पों को नहीं दिया ॥८९॥ उस नगर से कमल नयनी सत्यभामाजी निकलकर अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण के पास आकर कहीं ॥९०॥ **सत्यभामाजी ने कहा—** हे यदुश्रेष्ठ ! यह गर्वीली शची पारिजात से है । उसने उसके पुष्पों को मुझे न देकर अपने केशों में बाँध लिया ॥९१॥ **महादेवजी ने कहा—** सत्यभामाजी की बात को सुनकर महाबलवान् श्रीभगवान् पारिजात को उखाड़कर उसे गरुड़ पर रखकर ॥९२॥ सत्यभामाजी के साथ शीघ्र गरुड़ पर चढ़कर मनोहर द्वारका नगरी में चले गये ॥९३॥ उसके बाद क्रुद्ध होकर इन्द्र रुद्रों, वसुओं तथा आदित्यों, तथा मरुद् गणों के साथ ॥९४॥ ऐरावत हाथी पर चढ़कर युद्ध करने के लिए चले । उसके पश्चात् सभी देवगण श्रीभगवान् को घेरकर ॥९५॥ जिस तरह मेघ महापर्वत पर वर्षा करता है उसी तरह श्रीभगवान् पर

ववृषुः शस्त्रवर्षाणिमेघाइव महाचलम् । कृष्णश्चिच्छेद चक्रेणतान्यस्त्राणिदिवौकसाम् ॥९६॥
वैनतेयस्तु संक्रुद्धः पक्षपातेन वीर्यवान् । पातयामास तान्देवांस्तालानिव महानिलः ॥९७॥
ततः क्रुद्धः सहस्राक्षो देवानामीश्वरः प्रभुः । मुमोच सहसा दीप्तं वज्रं कृष्णजिघांसया ॥९८॥
जग्राह कृष्णस्तं वज्रं हस्तेनैकेन लीलया । ततो भीतः सहस्राक्षो नागेन्द्रादरुह्य सः ॥९९॥

प्राञ्जलिः पुरतः स्थित्वा नमस्कृत्य जनार्दनम् ।
प्राह गद्गदया वाचा स्तुत्वा स्तुतिभिरेव च ॥१००॥

इन्द्र उवाच

देवयोग्यमिदं कृष्ण ! पारिजातं त्वयापुरा । दत्तं मम सुराणां च कथं स्थास्यति मानुषे॥१०१॥

महादेव उवाच

ततः प्रोवाच भगवान्सहस्राक्षमुपस्थितम् । शच्यावमानिता सत्या तव गेहे सुरेश्वर ! ॥१०२॥
अदत्त्वा पारिजातानि सत्यायैसापुलोमजा । स्वयमेवस्वशिरसि धारयामास ते प्रिया ॥१०३॥

अस्या निमित्तं देवेन्द्र ! पारिजातोहृतो मया ।
अस्यै प्रतिश्रुतं दातुं मया सुरगणेश्वर ! ॥१०४॥

तव गेहे पारिजातं स्थापयामीति वासव !। तस्मादद्य न दातव्यः पारिजातः सुरेश्वर ! ॥१०५॥
देवतानां हितार्थाय प्रापयिष्यामि भूतले । तावत्तिष्ठतु देवेन्द्र ! पारिजातो ममाऽऽलये॥
मयि स्वर्गगते शक्र ! गृहाण त्वं यथेच्छया ॥१०६॥

महादेव उवाच

एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठस्तस्मै वज्रं ददौ स्वयम् ।
एवमस्त्वितिगोविन्दंनमस्कृत्यसवज्रभृत् ॥१०७॥

शस्त्रों की वर्षा किए भगवान् कृष्ण चक्र से देवताओं के उन समस्त अस्त्रों को काट दिए ॥९६॥ गरुड़ ने क्रुद्ध होकर अपने पङ्खों के प्रहार से उसी तरह से देवताओं को गिरा दिया जिस तरह महावायु ताल वृक्षों को गिरा देती है ॥९७॥ उसके पश्चात् क्रुद्ध होकर इन्द्र ने भगवान् कृष्ण को मारने की इच्छा से वज्र को चलाया । उसको भगवान् ने अपने एक हाथ से लीला पूर्वक पकड़ लिया । उसके पश्चात् भयभीत इन्द्र हाथी से उतरकर ॥९८-९९॥ हाथ जोड़कर तथा उनके सामने खड़े होकर भगवान् को नमस्कार करके अपनी गद्गदवाणी से श्रीभगवान् की स्तुति करके कहे ॥१००॥ **इन्द्र बोले—** हे भगवन् ! आपने यह देवताओं के योग्य पारिजात है, यह कहकर मुझे और देवताओं को दिया था वह मनुष्य लोक में कैसे रहेगा? ॥१०१॥ **महादेवजी ने कहा—** उसके पश्चात् श्रीभगवान् ने इन्द्र से कहा हे सुरेश्वर ! तुम्हारे घर पर शची ने सत्यभामा का अपमान किया है ॥१०२॥ उस पुलोमजा ने सत्यभामा को पारिजात नहीं दिया उस तुम्हारी पत्नी ने अपने ही शिर पर उसे धारण कर लिया ॥१०३॥ हे देवेन्द्र ! इसी के लिए मैंने पारिजात का हरण किया है । हे इन्द्र ! मैंने इसी को देने के लिए प्रतिज्ञा की है ॥१०४॥ मैंने कहा कि तुम्हारे घर में मैं पारिजात को लगा देता हूँ, अतएव हे सुरेश्वर ! आज मैं इसे नहीं दे सकता हूँ ॥१०५॥ अतएव देवताओं का कल्याण करने के लिए इसे पृथिवी पर स्थापित करूँगा । हे देवेन्द्र ! यह पारिजात

प्रययौ स्वपुरं दिव्यं सह देवगणैर्वृतः ।
कृष्णोऽपि सत्यया देव्या गरुडोपरि संस्थितः ॥१०८॥
संस्तूयमानो मुनिभिर्द्वारवत्यां विवेश ह । सत्याया निकटे स्थाप्य पारिजातंसुरद्रुमम् ॥१०९॥
रमयामास भार्याभिः सर्वाभिः सर्वगोहरिः। निशासुतासां सर्वासां गृहेषु मधुसूदनः ॥
विश्वरूपधरः श्रीमानुवास ससुखप्रदः ॥११०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे श्रीकृष्णचरिते श्रीवासुदेवविवाहकथनं नाम एकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४९॥

दो सौ पचासवाँ अध्याय

श्रीरुद्र उवाच

रुक्मिण्यां कृष्णस्य प्रद्युम्नो मदनांशेन जज्ञे ॥१॥ असौ मदनसम्भूतो महाबलः शम्बरंजघ्निवान् । तस्य रुक्मिणः सुतायामनिरुद्धो जज्ञे । सोऽपि बाणपुत्रीमुषां नाम कन्यामुपयेमे ॥२॥ सा तु स्वप्ने

तब तक मेरे यहाँ बना रहेगा जब तक मैं भूलोक पर रहूँगा । मेरे स्वर्ग लोक चले जाने पर इसे तुम अपनी इच्छानुसार ले लेना ॥१०६॥ **महादेवजी ने कहा—** यह कहकर श्रीभगवान् स्वयम् इन्द्र को वज्र दे दिए। इन्द्र ने कहा ठीक है यह कहकर तथा भगवान् को नमस्कार करके इन्द्र ॥१०७॥ देवताओं के साथ अपने दिव्य नगर में चले गये । भगवान् श्रीकृष्ण भी सत्या देवी के साथ गरुड़ पर चढ़कर ॥१०८॥ मुनियों द्वारा स्तुति किए जाते हुए द्वारका में प्रवेश कर गये । सत्यभामजी के निकट पारिजात नामक देववृक्ष को स्थापित करके ॥१०९॥ सर्वत्र व्यापक श्रीहरि सभी पत्नियों के साथ रात्रि में रमण करते थे । रात्रियों में उन सबों के साथ गृहों में मधुसूदन विश्वरूप धारण करके सुख प्रदान करते हुए निवास करते थे ॥११०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीकृष्ण चरित के प्रसङ्ग में श्रीवासुदेव के विवाहों का वर्णन नामक दो सौ उनचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४९।।

बाणासुर संग्राम के प्रसङ्ग में उषा तथा अनिरुद्ध का प्रणय, बाणासुर द्वारा अनिरुद्ध को कारागृह में डाला जाना, नारदजी की सूचना के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा आक्रमण, वहाँ वैष्णव तथा माहेश्वर अस्त्रों का युद्ध, ज्वर की उत्पत्ति, भगवान् कृष्ण द्वारा महादेवजी को मूर्छित किया जाना, पार्वतीजी की प्रार्थना से मूर्छा का हरण और शङ्करजी द्वारा की गयी भगवान् कृष्ण की स्तुति

श्रीरुद्र ने कहा— रुक्मिणीजी के गर्भ से कामदेव के अंश से प्रद्युम्नजी उत्पन्न हुए ये कामदेव स्वरूप थे और शम्बरासुर को मारे ॥१॥ प्रद्युम्न के रुक्मी की पुत्री के गर्भ से अनिरुद्ध नामक पुत्र उत्पन्न

नीलोत्पदलश्यामं पुण्डरीकनिभेक्षणं महाबाहुं विचित्राभरणोपेतां षोडशसमवयस्कं रक्तारविन्दवक्त्रं यथावदुपभुज्य प्रबुद्ध्य तं पुरतो न दृष्ट्वा मदनेन पीडिता भ्रान्तचित्ता मां तु त्यक्तवा क्वाऽसि क्वयासीति बहुधा विललाप ।।३।। ततस्तस्याः सखी चित्रलेखेति नाम कन्यां तादृशीमवस्थां गतां विलोक्य किंनिमित्तं विभ्रान्तचित्ताऽसीति पप्रच्छ । साऽपि स्वप्रलब्धं पतिं यथावदाचष्ट । साऽपि सकलदेवमानुषादिश्रेष्ठान्पटे विलिख्य तस्यै दर्शयामास ।।४।। यदुवंशसम्भूतान्कृष्णसंकर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धादीनपि सम्यङ्निवेदयामास । सा तेषां कृष्णमनुमान्यप्रद्युम्नानन्तरमनिरुद्धं दृष्ट्वा सइत्येष इत्यालिलिङ्ग ।।५।। अथ चित्रलेखा बह्वीभिर्मायावतीभिर्दैत्यस्त्रीभिर्द्वारवतीं गत्वा रात्रावन्तःपुरे सुप्तमनिरुद्धं दृष्ट्वा गृहीत्वा मोहयित्वा महाष्मित्यां बाणस्यान्तःपुरे चैत्यप्रासादादियुक्ते तस्या बाणपुत्र्याः शय्यायां चिक्षेप ।।६।। सोऽपि प्रबुद्धोऽतिरम्ये श्लक्ष्णे पर्यङ्के संस्थितामुषां सर्वलक्षणलक्षितां विचित्राभरणवसनगन्धमाल्यालङ्कृतां काञ्चनवर्णां सुकेशीं सुजातस्तनीं दृष्ट्वा गाढमालिङ्ग्य करिण्यागन्यहस्तीव तयाऽतिप्रीतिसंयुक्तया यथासुखं रमयामास ।।७।। एवं मात्रमासं निरन्तरतयाऽनिरुद्धं रममाणं कदाचिदन्तःपुरनिवासिन्यो वृद्धा दैत्यस्त्रियो ज्ञात्वा राज्ञे निवेदयामासुः । स राजा क्रोधताम्राक्षः परं विस्मयं गत्वा तमिहानयतेति पुरः किङ्करान्प्रेषयामास । तेऽपि तूर्णं नृपप्रसादमारुह्य राजपुत्र्याः संस्थितमनिरुद्धं ग्रहीतुमाजग्मुः। सतान्समारब्धान्दृष्ट्वा प्रासादस्तम्भमेकं हेलयोत्पाट्य नियुतसङ्ख्या-

---

हुए । वे भी बाणासुर की पुत्री उषा नाम की कन्या से विवाह किए ।।२।। उसने स्वप्न में नील कमल के समान श्यामवर्ण वाले महाबाहु, विचित्र आभरणों को धारण किए हुए सोलह वर्ष के अपने समान उम्र वाले, लाल कमल के समान मुख वाले को अपनी इच्छा के अनुसार उपभोग करके जगकर उनको अपने सामने न देखकर कामार्त बनी हुयी भ्रान्त चित्त वाली वह मुझको छोड़कर कहाँ हो, कहाँ जा रहे हो । इस तरह अनेक प्रकार से विलाप की ।।३।। उसके बाद उसकी चित्रलेखा नाम की सखी उषा की इस तरह की अवस्था को देखकर किस कारण से तुम विभ्रान्त चित्तवाली हो गयी हो ? यह पूछी उसने भी स्वप्न में प्राप्त हुए पति का ठीक-ठीक वर्णन किया । चित्रलेखा ने भी सभी श्रेष्ठ देवों तथा मनुष्यों का चित्र वस्त्र पर बनाकर उषा को दिखायी ।।४।। यदुवंश में उत्पन्न हुए कृष्ण, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध आदि को भी उसने अच्छी तरह दिखाया । उषा उन सबों में कृष्ण को स्वीकार करके प्रद्युम्न के पश्चात् अनिरुद्ध को देखकर यह वही है; यह कहकर उनका आलिङ्गन की ।।५।। उसके पश्चात् चित्रलेखा बहुत सी माया करने वाली दैत्यों की स्त्रियों के साथ द्वारका जाकर रात्रि में अन्तःपुर में सोये हुए अनिरुद्ध को देखकर उनको मोहित करके उठाकर माहिष्मती में चैत्य प्रासाद से युक्त बाणासुर के अन्तःपुर में बाणासुर की पुत्री की शय्या पर रख दी ।।६।। वे भी जगकर कोमल शय्या पर स्थित सभी लक्षणों से युक्त विचित्र आभूषण वस्त्र, चन्दन तथा माला आदि से अलंकृत सुवर्ण के समान वर्ण वाली, सुन्दर केशों वाली तथा सुन्दर स्तनों वाली, उसका गाढालिङ्गन करके हस्तिनी के साथ मदमत्त हाथी के समान अत्यन्त प्रेम से युक्त उसके साथ अपने मन के अनुसार रमण किए ।।७।। इस तरह एक मास तक अनिरुद्ध के साथ सदैव रमण करने वाले अनिरुद्ध को एक बार अन्तःपुर में रहने वाली दैत्यों की वृद्ध स्त्रियों ने जानकर राजा को बतलाया। वह राजा क्रोध से आँखें लाल करके अत्यन्त आश्चर्यित होकर उसको मेरे सामने लाओ इस प्रकार कहकर किङ्करों को भेजा । वे भी शीघ्र ही राजा के महल पर चढ़कर राजकुमारी की शय्या पर बैठे हुए अनिरुद्ध

कान्किङ्करान्मुहूर्तमात्रेणैव स्तम्भेन चूर्णितागात्रांश्चकार ॥८॥ अथ दैत्यपतिर्निहितान्किङ्करान्दृष्ट्वा कौतूहलं गत्वा असौ श्रीकृष्णपौत्रइति देवर्षिणा प्रोक्तो धनुरादाय स्वयमेवाऽनिरुद्धं ग्रहीतुं तत्समीपमाजगाम॥९॥ अनिरुद्धोऽपि योद्धुमायान्तं सहस्रबाहुं राजानं दृष्ट्वा तत्परिघं भ्रामयित्वा बाणस्योपरि चिक्षेप । सतु स्वचापनिर्मुक्तेन बाणेन तं परिघं चिच्छेद ॥१०॥ अनन्तरमुरगास्त्रेणअनिरुद्धं निबिडं बद्ध्वा स्वान्तःपुरे निवेशयामास । अथ कृष्णोऽप्येवंविधमेव देवर्षिणा ज्ञात्वा बलदेवप्रद्युम्नसहितः स्वसेनया विहङ्गमेन्द्रमारुह्य तस्य बाणस्य भुजवनं छेत्तुमाजगाम ॥११॥ बलिपुत्रेण पुराशङ्करोऽर्चितः प्रसन्नो वरं वृणीष्वेत्युवाच । तमीश्वरं बाणो मम पुरद्वारि रक्षार्थं सर्वदोपविश्य समागतं परसैन्यं जहीत्येवं वरमयाचत ॥१२॥ तं तथेत्युक्त्वा शङ्करोऽपि तस्य पुरद्वारि सायुधः सपुत्रः सगणः समासीनस्तस्मिन्नेव काले रुषा स्वसेनया समागतं वासुदेवं दृष्ट्वा वृषमारुह्य सर्वायुधोपेतः स्वपुत्रगणसंवृतो योद्धुं निश्चक्राम ॥१३॥ कृष्णोऽपि तं भूतपतिं गजचर्मकपालभस्मधरं ज्वलितोरगाकल्पं पिङ्गलं त्रिलोचनं त्रिशूलधरं सर्वभूतगणसंहतिकर्त्तारं सर्वभूतभयावहं संवर्त्ताग्निप्रभं पुत्रद्वयसमन्वितं समस्तगणावृतं त्रिपुरान्तकं दृष्ट्वा सेनां सुदूरे पृष्ठतो निवेश्य बलभद्रप्रद्युम्नसहितस्तेन रुद्रेण सह प्रहसन्निव योद्धुमारेभे ॥१४॥ प्रथमं तद्बभूवद्धोरं कृष्णशङ्करयोस्तयोः । पिनाकशार्ङ्गनिर्मुक्तैर्बाणैः सम्वर्त्तकोपमैः ॥१५॥

को पकड़ने के लिए आये । अनिरुद्ध उन सबों को तैयार देखकर प्रासाद के स्तम्भ को आसानी से उखाड़कर दश हजार संख्या वाले किङ्करों को मुहूर्त भर में स्तम्भ से चूर्णित अङ्गों वाला बना दिए ॥८॥ उसके बाद दैत्यों के स्वामी मारे गये किङ्करों को सुनकर धनुष लेकर स्वयं ही अनिरुद्ध को नारदजी द्वारा श्रीकृष्ण का पौत्र है यह जानकर पकड़ने के लिए उनके समीप आया ॥९॥ अनिरुद्ध भी युद्ध करने के लिए आते हुए हजार भुजाओं वाले उस परिघ को घुमाकर बाणासुर के ऊपर फेंके । वह भी अपने धनुष से छूटे हुए बाण से उस परिघ को काट दिया ॥१०॥ उसके पश्चात् उसने सर्पास्त्र से अनिरुद्ध को अच्छी तरह से बाँधकर अपने अन्तःपुर में डाल दिया । उसके पश्चात् भगवान् कृष्ण भी नारदजी से इस तरह की बात को सुनकर अपनी सेना के द्वारा बलदेवजी तथा प्रद्युम्नजी के साथ गरुड़ पर सवार होकर उस बाणासुर की भुजा रूपी वन को काटने के लिए आये ॥११॥ बलि के पुत्र बाणासुर के द्वारा पहले ही पूजित प्रसन्न होकर मैंने उससे वर माँगने के लिए कहा । उन शङ्करजी से बाणासुर ने कहा मेरे नगर के द्वार पर रक्षा करने के लिए सर्वदा बैठकर आयी हुयी शत्रु की सेना को आप मार दें इस वरदान को माँगा ॥१२॥ बाणासुर को ठीक है ऐसा कहकर शङ्करजी भी उसके नगर के द्वार पर आयुध लेकर पुत्रों तथा गणों के साथ बैठ गये । उसी समय क्रुद्ध होकर अपनी सेना के साथ आये हुए वासुदेव को देखकर बैलपर बैठकर तथा सभी आयुधों से युक्त अपने पुत्रों तथा गणों के साथ युद्ध करने के लिए शङ्करजी निकले ॥१३॥ भगवान् श्रीकृष्ण भी भूतों के स्वामी; गन्धर्व, कपाल तथा भस्म धारण किए हुए जलते हुए सर्प के समान पीले, तीन नेत्र वाले त्रिशूल धारी सभी जीव समूह का संहार करने वाले सभी जीवों के लिए भयङ्कर संवर्ताग्नि के समान कान्ति वाले अपने दोनों पुत्रों के साथ विद्यमान सभी गणों से घिरे हुए त्रिपुरान्तक शिवजी को देखकर सेना को अपने पीछे दूर रखकर बलभद्र तथा प्रद्युम्नजी के साथ शङ्करजी के साथ जोर से हँसकर युद्ध करना प्रारम्भ किए ॥१४॥ भगवान् कृष्ण और शङ्करजी के बीच वह भयङ्कर युद्ध हुआ ।

रामो ऽपि गजवक्त्रेण प्रद्युम्नः षण्मुखेन च ।
युयुधाते महावीर्यौ सिंहाविव बलोत्कटौ ॥१६॥
विनायकः स्वदन्ताभ्यां जघानोरसि यादवम् ।
रामो मुशलमादाय तस्य दन्तमताडयत् ॥१७॥
निर्भिन्नदन्तः सहसा प्रदुद्रावाऽऽखुवाहनः। तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्हतदन्तो गणेश्वरः ॥१८॥
देवदानवगन्धर्वैरेकदन्त इतीरितः । प्रद्युम्नेन समं युद्धं चकार शिखिवाहनः॥१९॥
गणान्विद्रावयामास मुशलेन हलायुधः। कृष्णेन सुचिरं कालं युद्ध्वाऽसौ नीललोहितः॥२०॥
तापज्वरं महादीप्तमस्मिन्संयोज्य सायके। कोपान्मुमोच तदसौ भृशं संरक्तलोचनः ॥२१॥
तदस्त्रंवारयामास कृष्णःशीतज्वरेण तु। ताभ्यांहरिहराभ्यां तु विसृष्टौताविमौज्वरौ ॥२२॥
विशतुर्मानुषेलोकेतयोरेवाऽऽज्ञया भृशम्। हरिशङ्करयोर्युद्धं येतुश्रृण्वन्ति मानवाः ॥२३॥
ते सर्वे जवरनिर्मुक्ताः प्राप्नुवन्ति निरामयम् ।
ततःसतु हृषीकेशोमोहनास्त्रं दुरासदम् ॥२४॥
नियुज्य बाणं भूतेशे मुमोच मधुसदूनः । मुहुर्मुहुर्व्यजम्भद्वै तेनास्त्रेण विमोहितः॥२५॥
पपात मूर्च्छितो भूमौ शङ्करस्त्रिदशेश्वरः । पितरं मोहितं दृष्ट्वा शक्तिमुद्यम्य वीर्यवान् ॥२६॥
योद्धुमभ्याययौ कृष्णं षण्मुखः शिखिवाहनः ।
हुङ्कारेणैव तं कृष्णश्चकाराऽत्र पराङ्मुखम् ॥२७॥
एवंजित्वा यदुश्रेष्ठः शूलपाणिंत्रिलोचनम्। महास्वनंपाञ्चजन्यं शङ्खंदध्मौप्रतापवान् ॥२८॥

पिनाक तथा शार्ङ्ग से छूटे हुए साँवर्तक के समान कान्ति वाले बाणों से युद्ध हुआ ॥१५॥ बलरामजी भी गणेशजी से और प्रद्युम्नजी कार्तिकेय से ये दोनों महापराक्रमी बल से उत्कट होकर युद्ध करने लगे ॥१६॥ गणेशर्जी अपने दोनों दाँतों से बलरामजी के वक्षःस्थल पर प्रहार किए । बलरामजी भी मुसल लेकर उनके दाँतों पर प्रहार किए ॥१७॥ दाँत के सहसा टूट जाने से मूषक वाहन गणेशजी वहाँ से भाग चले । उसी समय से इस लोक में एक दाँत के टूट जाने से गणेशजी ॥१८॥ को देवता, दानव और गन्धर्व एकदन्त कहते हैं । प्रद्युम्नजी के साथ कार्तिकेयजी ने युद्ध किया ॥१९॥ बलरामजी ने गणों को मुसल के प्रहार से भगा दिया । कृष्णजी के साथ शङ्करजी दीर्घकाल तक युद्ध करके ॥२०॥ उन्होंने धनुष पर ताप ज्वर से चढाकर आँखें लाल करके क्रोध पूर्वक शङ्करजी ने छोड़ा ॥२१॥ उस अस्त्र को भगवान् कृष्ण ने शीत ज्वर से रोका श्रीहरि और शङ्करजी के द्वारा सृष्टि वे दोनों मनुष्य लोक में उन दोनों की आज्ञा से प्रवेश कर गये । जो मनुष्यश्रीहरि और शङ्करजी के इस युद्ध की कथा का श्रवण करते हैं ॥२२-२३॥ वे सभी ज्वर से मुक्त होकर निरोग हो जाते हैं । उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण दुर्धर्ष मोहनास्त्र को ॥२४॥ बाण को धनुष पर चढ़ाकर शङ्करजी पर छोड़े । उस अस्त्र से बार-बार जम्भाई लेते हुए शिवजी मूर्छित हो गये॥२५॥ मूर्छित होकर शङ्करजी पृथिवी पर गिर पड़े । अपने पिता को मूर्छित देखकर शक्ति उठाकर ॥२६॥ शिखिवान् कार्तिकेयजी भगवान् श्रीकृष्ण से युद्ध करने आये । किन्तु अपने हुङ्कार मात्र से श्रीभगवान् ने उनको युद्ध पराङ्मुख बना दिया ॥२७॥ इस तरह त्रिशूलपाणि शङ्करजी को जीतकर बहुत अधिक ध्वनि करने वाले

कृष्णेननिर्जितं श्रुत्वा सात्मजं शङ्करं तदा। बाणः स्यन्दनमास्थाय ययौ युद्धायकेशवम् ॥२९॥
सदृष्ट्वा सहसाकृष्णं गरुडोपरि संस्थितम्। छादयामास गोविन्दं बहुशस्त्रास्त्रवृष्टिभिः ॥३०॥
गदाभिः परिघैः शूलैः शक्तिभिस्तोमरैरपि। भिण्डिपालैश्च खड्गैश्च चक्रैर्बाणैर्निरन्तरम् ॥३१॥
तानि सर्वाणि चिच्छेद चक्रेणैव जनार्दनः। ससर्ज तस्य बाहूनां छेदनार्थं सुदर्शनम् ॥३२॥
मुक्तं दनुजराजस्य सहस्रारं सदुर्शनम्। तद्बाहुकाननंतूर्णं छिन्नं चक्रे सहस्त्रधा॥३३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि पार्वती संशितव्रता। हरेः समीपमागत्य कृताञ्जलिरभाषत॥३४॥

पार्वत्युवाच

कृष्णकृष्णजगन्नाथ नारायण ! दयानिधे ! ।
दास्यस्मि तव देवेश ! पूर्वभावे यदूत्तम ! ॥३५॥

त्वया दत्तं वरं मह्यं तदा कौशलपर्वते। सौभाग्यं शाश्वतं सौम्य ! प्रसन्नेन महात्मना॥३६॥
तव मुख्यं सहस्रस्य नाम्नामन्यतमं विभो !। गौरीसौभाग्यदातेति मुनिभिः परिकीर्तितम्॥३७॥

तत्सत्यं कुरु गोविन्द ! गरुडारूढ ! शाश्वत ! ।
तस्मान्मम पतिं देव ! त्वं जीवयितुमर्हसि ॥३८॥

रुद्र उवाच

एवमुक्तस्ततो देव्या ! कृष्णः कमललोचनः ।
अस्त्रंसंहारयामास येनाऽसौ मोहितः पतिः ॥३९॥

कृष्णास्त्रेण विनिर्मुक्तः सर्वभूतपतिःशिवः। उत्थायप्राञ्जलिर्भूत्वा तुष्टाव जगतापतिम्॥४०॥

शङ्कर उवाच

कृष्णकृष्णजगन्नाथ ! जाने त्वां पुरुषोत्तमम् ।
परेशं परमात्मानमनादिनिधनं परम् ॥४१॥

प्रतापवान भगवान् कृष्ण ने पाञ्चजन्य शङ्ख को बजाया ॥२८॥ उस समय अपने पुत्रों के साथ शङ्करजी को पराजित सुनकर बाणासुर रथ पर बैठकर युद्ध करने के लिए भगवान केशव के समक्ष आया ॥२९॥ उसने गरुड़ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण भगवान् को देखकर अनेक शास्त्रास्त्रों से भगवान् श्रीकृष्ण को ढँक दिया ॥३०॥ गदाओं, परिघों, शूलों, शक्तियों, तोमरों, भिन्दिपालों खड्गों, चक्रों तथा बाणों से निरन्तर प्रहार करके उसने ढँक दिया ॥३१॥ उन सबों को श्रीभगवान् ने चक्र से ही काट दिया उन्होंने उसकी भुजाओं को काटने के लिए सुदर्शन चक्र को छोड़ा ॥३२॥ छोड़े गये दैत्य राजा की भुजाओं को सुदर्शन चक्र ने उसके भुजावन को शीघ्र ही काट दिया ॥३३॥ इसी बीच पार्वतीदेवी श्रीहरि के समीप आकर हाथ जोड़कर कहीं॥३४॥ हे दयासागर ! जगत् के स्वामिन् कृष्ण ! पूर्वजन्म में मैं आपकी उत्तम दासी थी ॥३५॥ उस समय आपने कौशल पर्वत पर प्रसन्न होकर मुझको सदा सौभाग्य सम्पन्न रहने का वरदान दिया था ॥३६॥ हे विभो ! आपके सहस्रनामों में मुख्य अन्यतम नाम महर्षि गण गौरीसौभाग्यदाता पढ़ते हैं ॥३७॥ हे गरुड़ारुढ शाश्वत भगवन् ! उसे आप सत्य कर दें। अतएव आप मेरे पतिदेव को जीवन दान दें ॥३८॥ **रुद्र ने कहा—** देवी के द्वारा इस तरह से कहने पर कमलनयन भगवान् जिस अस्त्र से उनके पति को मूर्छित किए थे उस अस्त्र का संहरण कर दिए ॥३९॥ कृष्णास्त्र से परिमुक्त सभी भूतों के स्वामी शिवजी

अवतीर्णं मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका। लीलेयं सर्वलोकस्य तव चेष्टोपलक्षणा।।४२।।
प्रसीद मे नमस्तुभ्यं प्रसीद मम शाश्वत ! । प्रसीद मे जगत्स्वामिन्प्रसीदाऽच्युता केशव !।।४३।।
त्वमेव जगतां स्रष्टा धाता हर्त्ता जगद्गुरु । त्वमेव चिदचिद्वस्तु रूपं ब्रह्म सुरेश्वरः ।।४४।।
त्वमादिस्त्वमनादिस्त्वमीश्वरः शेष एव च । त्वं महत्त्वं परं ब्रह्म प्रत्यगात्मा त्वमेवहि ।।४५।।
समस्तामरवर्यस्त्वममर्त्यस्त्वं सुरेश्वर ! । त्वं मर्त्त्येन समानश्च सौशील्येन तव प्रभो !।।४६।।
तौ शाश्वतौ विषूचीनौ परजीवौ सनातनौ । तथा पञ्चाऽपि भूतानि तव वात्सल्यगौरवात् ।।४७।।
क्षराक्षरे पारेधाम्निरुचोनित्यं सुराश्रये। अधिविश्वेनिधेषि त्वं दास्यकर्मणि नान्यथा ।।४८।।

यस्त्वां न वेदलोकेऽस्मिन्समूढः सर्वभावनः ।
परावरेश्वरं धाम विदुर्दास्ये मनीषिणः ।।४९।।

ते वै समासते युक्तास्तत्पदे त्रिदशैः समम्। समान्यो भजते दूरेगन्तुं नित्यं पदं तव।।५०।।
तस्थतुर्जागरूकेऽमिन्स्वसारौ युवती इव। मिथुनानि तवाऽध्यक्ष ब्रूवते यदुशाश्वत !।।५१।।

तव नामानि कर्माणि गुणानि शाश्वतानि च ।
ऐश्वर्याणि गुणातीत ब्रुवते चोत्तमेइमे ।।५२।।

कर्मज्ञानमये रूपे इमे पूर्वोत्तरे श्रुते। स्वसारौ प्रोक्ते स्तोतारौ तव केशव !।।५३।।
त्वं प्रज्ञानं परं ब्रह्म त्या प्राज्ञेन शाश्वत !। जीवयैतेन प्राज्ञेण परेणैवात्मना त्वया ।।५४।।

उठकर हाथ जोड़कर जगत् के स्वामी की स्तुति किए ।।४०।। **शङ्करजी ने कहा**— हे जगत् के स्वामिन्! भगवन् कृष्ण मैं आपको पुरुषोत्तम जानता हूँ । आप परेश, परमात्मा तथा अनादिनिधन है ।।४१।। मनुष्यों में अवतीर्ण होकर आपकी शरीर ग्रहणात्मिका लीला सभी लोकों की उपलक्षण स्वरूप चेष्टा है ।।४२।। आप मेरे ऊपर प्रसन्न होएँ हे शाश्वत ! आप मुझ पर प्रसन्न हों । हे जगत् स्वामिन् ! हे अच्युत हे केशव! आप मुझ पर प्रसन्न हों ।।४३।। आप ही जगत् की सृष्टि करने वाले, धारण करने वाले, हरण करने वाले, जगद्गुरु हैं । आप चेतनाचेतन वस्तु शरीरक ब्रह्म तथा देवताओं के स्वामी हैं ।।४४।। आप ही आदि, अनादि, शेष और ईश्वर हैं । आप ही महत्व, परब्रह्म और प्रत्यगात्मा हैं ।।४५।। हे सुरेश्वर ! आप ही सभी देवताओं में श्रेष्ठ और अमर्त्य हैं । आप सौशील्य गुण के कारण मनुष्यों के समान हैं ।।४६।। आप अपने वात्सल्य गुण के गौरव के कारण पाञ्चों भूत हैं शाश्वत, विषूचीन, परजीव और सनातन आप दोनों हैं।।४७।। देवताओं के आश्रय भूत क्षर, अक्षर तथा परधाम में नित्य ज्योति हैं । सम्पूर्ण विश्व को आप दास्य कर्म में नियुक्त करते हैं ।।४८।। जो लोग इस लोक में आपको नहीं जानते हैं वे हर प्रकार से मूर्ख हैं । मनीषी पुरुष दास्य कर्म के द्वारा ही आपको परमेश्वर जानते हैं ।।४९।। वे निश्चित रूप से देवताओं के साथ उस पद पर समान आसन पर नियुक्त होकर आपके नित्य पद को प्राप्त करना सामान्य मानते हैं ।।५०।। दो वहने वतियों के समान इस लोक में जागरुक बने रहती हैं । हे यदुशाश्वत पति-पत्नियी के जोड़ आपको ही अध्यक्ष बतलाते हैं ।।५१।। ये उत्तम लोग आपके नामों, कर्मों तथा शाश्वत ऐश्वर्यों को गुणातीत बतलाते हैं ।।५२।। पूर्व एवं उत्तर मीमांसाओं में कर्म तथा ज्ञानमय ये दो आपके रूप सुने गये हैं । श्रुतियाँ और स्मृतियाँ ये दोनों युवती बहनों के समान बतलायी गयी हैं । ये दोनों आपकी स्तुति करती हैं ।।५३।। हे शाश्वत ! आप प्रज्ञान और परब्रह्म हैं ये आपके द्वारा है । आप अपने प्राज्ञ परात्मा के द्वारा इन्हें जीवित

तस्माच्छरीरादुत्क्रम्य कृपया तव केवलम् । आमुष्मिके परे स्वर्गे त्वया दत्तात्मबोधवान् ।।५५।।
प्रज्ञानं चैव विज्ञानं मेधां दृष्टिं तथा धृतिम्। सर्वान्कामानवाप्नोति अमृतं स भवेत्तदा ।।५६।।
एतत्संज्ञानमात्मानं यदेतद्धदि यन्मनः । मनीषा चैव युक्तिश्च स्मृतिः संकल्पएव च ।।५७।।
तपश्च क्रतवः कामो वशइत्यादि ते प्रभो ! ।
भवन्ति नामधेयानि प्रज्ञानस्यघृणानिधेः ।।५८।।
एष त्वं परमं ब्रह्म एष त्वं वै प्रजापतिः। एष त्वमिन्द्रो रुद्रश्च एष त्वं सर्वदेवताः ।।५९।।
एतानि सर्वभूतानि त्वमेव परमेश्वर ! । सुतमित्राणिजीवायुस्तथाऽन्यानि सनातन् ! ।।६०।।
जरायुजाण्डजातानि स्वेदजान्युद्भिजानि च । अश्वा गावश्च पुरुषा हस्तिनश्चेतराणि च ।।६१।।
यत्किञ्चित्प्राणिजातं च जङ्गमाश्चैव जन्तवः। स्थावरायेचवैनाथसर्वेत्वत्तोभवन्ति च ।।६२।।
त्वां हि सर्वगतं चेत्थं वदन्ति श्रुतयो हरिम् ।
त्वयैवप्रेरितालोकाश्चेष्टन्तो साध्वसाधुषु ।।६३।।
तस्मान्मया कृतं यच्च अपराधिमिदं प्रभो ! ।
क्षमस्व करुणासिन्धो ! गुणैः शुभतमैस्तव ।।६४।।
नमस्ते पुरण्डरीकाक्ष ! गोविन्दाऽच्युतमाधव ! ।
वासुदेव जगद्वन्द्य नारायण ! नमोऽस्तु ते ।।६५।।
नमस्यामि जगत्स्वामिन्नृसिंह करुणाकर ! । श्रीशसर्वगतश्रीमन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ।।६६।।
निजावसथवैकुण्ठनित्यमुक्तार्चितप्रभो ! । त्रयीनाथ ! नमस्तुभ्यं राम राजीवलोचन ! ।।६७।।
भूभारकविनाशाय कृष्णानन्दस्वरूपिणे । विष्णवे जिष्णवे तुभ्यं नमस्ते यदुनन्दन ! ।।६८।।
एवं स्तुत्वाऽथ गोविन्दं प्रणिपत्यउमापतिः । प्राञ्जलिः प्राह भूतेशो वाक्यं गम्भीरया गिरा।।६९।।

करें ।।५४।। केवल आपकी ही कृपा से इस शरीर से निकलकर परलोक में वैकुण्ठ में आपने इन्हे आत्मबोध बनाया ।।५५।। आत्मज्ञानी प्रज्ञान, विज्ञान, मेधा, दृष्टि तथा धैर्य इन सारी कामनाओं को प्राप्त करता है और वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।।५६।। यही संज्ञान, आत्मा तथा हृदय और मन, मनीषा, युक्ति स्मृति और सङ्कल्प है ।।५७।। हे प्रभो ! तपस्या यज्ञ तथा काम ये सबके सब आपके वश में हैं । ये गुणों के सागर प्रज्ञान के नाम हैं ।।५८।। हे परमेश्वर ! आप ही सम्पूर्ण जगत् हैं । हे सनातन ! पुत्र, मित्र, जीव, आयु तथा अन्य सारी वस्तुएँ आप ही हैं ।।५९-६०।। जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिजंन, अश्व, गौ, पुरुष हस्ती तथा इन सबों से भिन्न भी आप ही हैं ।।६१।। जो कोई भी प्राणी समूह तथा जङ्गम जीव हैं। हे नाथ ! जो स्थावर जीव हैं ये सबके सब आपसे ही उत्पन्न हैं ।।६२।। आप श्रीहरि को श्रुतियाँ इसी प्रकार का बतलाती है । आप से ही प्रेरित होकर लोग अच्छे एवं बुरे कर्मों में लग जाते हैं ।।६३।। अतएव हे प्रभो ! मैंने जो अपराध किया है हे करुणासागर ! आप अपने अत्यन्त शुभ गुणों से उसे क्षमाकर दें।।६४।। हे पुण्डरीकाक्ष ! गोविन्द, अच्युत, माधव, वासुदेव, जगद्वन्द्य एवं नारायण आपको नमस्कार है।।६५।। हे जगत् स्वामिन् ! हे नृसिंह ! हे करुणाकर ! हे श्रीश ! हे सर्वत्र व्यापक ! श्रीमान् परमात्मन् आपको नमस्कार है ।।६६।। अपने निवास स्थान वैकुण्ठ में नित्य तथा मुक्त जीवों द्वारा पूजित प्रभो हे त्रयीनाथ ! हे राजीवलोचन राम ! आपको नमस्कार है ।।६७।। पृथिवी का भार विनष्ट करने के लिए, आनन्द स्वरूप जिष्णो विष्णो युदनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार है ।।६८।। इस तरह से भगवान् गोविन्द की स्तुति करके तथा उनको प्रणाम करके भूतेश शङ्करजी हाथ जोड़कर अपनी गम्भीर

रुद्र उवाच

मया दत्तवरो ह्येष बाणो बलिसुतः प्रभो ! ।
अहं च दत्तवांस्तस्मैपुराऽनेनाऽर्थितोवरम् ॥७०॥
अमरत्वं यदुश्रेष्ठ सर्वं कर्तं त्वमर्हसि। तस्मादेनं बलिसुतं त्रातुमर्हसि मे प्रियम्॥७१॥
तथेत्युक्त्वा च भगवान्बाणं बलिसुतं तदा। प्राणसंशयमापन्नंच्छिन्नबाहुमसृक्च्चितम् ॥७२॥
संहृत्य चक्रं गोविन्दो मुमोच करुणानिधिः ।
मोचयित्वाबलिसुतंशङ्करः संशितव्रतः ॥७३॥
वृषभेन्द्रं समारुह्य पार्वत्या सहितः प्रभुः। ययौ च वसतिस्थानं कैलाशं धरणीधरम् ॥७४॥
स तु बाणो नमस्कृत्य रामकृष्णौ महाबलौ ।
ताभ्यां वै नगरीं गत्वा मुमोच मदनात्मजम् ॥७५॥
वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैः पूजयित्वा यथार्हतः। उषां सम्प्रददौ तस्मै कृष्णपौत्राय शौरये ॥७६॥
उद्वाह्य रामकृष्णौ तमनिरुद्धं यथाविधि। बाणेन पूजितौ तत्र प्रद्युम्नसहितौ तदा ॥७७॥
उषया सहितं तत्राऽनिरुद्धं वै जनार्दनः। आरोप्य स्यन्दने दिव्ये ययौ द्वारवतीं तदा॥७८॥
रामप्रद्युम्नसहितस्सेनया सहितो हरिः। प्रविवेश पुरीं रम्यां त्रिदशैर्मघवानिव॥७९॥
अनिरुद्धो बाणपुत्र्या नानारत्नमये गृहे। अनिशं रमयामास नानाभोगैर्मुदान्वितः ॥८०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे बाणासुरसङ्ग्रामकथनं नाम पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५०॥
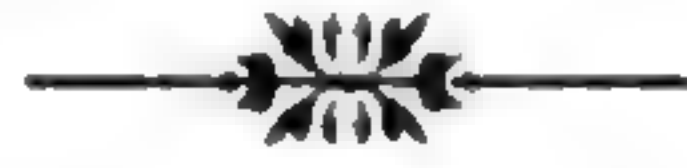
वाणी से कहे ॥६९॥ **रुद्र ने कहा**— हे प्रभो ! मैंने बलि के पुत्र बाणासुर को वरदान दिया है। पूर्वकाल में इसके द्वारा पूजित होकर मैंने इसको ॥७०॥ अमरता का वरदान दिया है। हे यदुश्रेष्ठ ! आप इसको अमर बना दें। अतएव इस बलि के पुत्र की रक्षा आप करें ॥७१॥ ठीक है यह कहकर भगवान् बलि के पुत्र बाणासुर को जो प्राण संशयापन्न था, उसकी भुजाएँ कट गयी थीं। वह खून से लथपथ हो गया था ॥७२॥ अपने चक्र को उपसंहत करके करुणासागर भगवान् गोविन्द उसको छोड़ दिए। बलि के पुत्र को छोड़कर प्रशंसित व्रत वाले शङ्करजी ॥७३॥ वृषभेन्द्र पर पार्वतीजी के साथ अपने निवास स्थान कैलास पर चले गये ॥७४॥ वह बाण महाबलवान् बलराम और भगवान् कृष्ण को नमस्कार करके उन दोनों लोगों के साथ अपने नगर में जाकर अनिरुद्धजी को छोड़ दिया ॥७५॥ यथायोग्य दिव्य वस्त्रों तथा आभरणों से पूजा करके उस भगवान् कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को उषा को प्रदान कर दिया ॥७६॥ राम और कृष्ण दोनों अनिरुद्ध का विधि पूर्वक विवाह करके प्रद्युम्नजी के साथ पूजित उन दोनों को ॥७७॥ उषा के साथ अनिरुद्ध को भगवान् जनार्दन दिव्य रथ पर बैठाकर द्वारवती नगरी में चले गये ॥७८॥ बलरामजी तथा प्रद्युम्नजी के साथ सेना सहित अपनी मनोहर नगरी में देवताओं के साथ इन्द्र के समान प्रवेश किए ॥७९॥ अनिरुद्धजी बाणासुर की पुत्री उषा के साथ अनेक रत्नमय गृह में अनेक प्रकार के भोगों को भोगते हुए रमण किए ॥८०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत बाणासुर संग्राम वर्णन नामक दो सौ पचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२५०॥

दो सौ एकयावनवाँ अध्याय

श्रीरुद्र उवाच

अथ पौण्ड्रकवासुदेवः काशिराजो वाराणस्यां विविक्ते द्वादशवर्षमहेशमर्चयन्निराहारः पञ्चाक्षरं जजाप। पौराश्चरणिकान्ते शङ्करं स्वनेत्रकमलेन पूजयामास ॥१॥ ततः शूलपाणिरुमापतिः प्रसन्नो वरं वृणीष्वेति तमाह । असौ पञ्चवक्त्रं सर्वभूतपतिं शिवं प्रसन्नं वरद ! मम वासुदेवसमानरूपं प्रयच्छेत्युवाच॥२॥ शिवस्तस्मै शङ्खचक्रगदापद्मयुतचतुर्भुजं पुण्डरीकदलनिभलोचनं वासुदेवसमानकिरीटललितकुन्तलं पीतवस्त्रकौस्तुभाभरणादिचिह्नान्यपि मह्यं देहीति याचितः शिवः सर्वमपि तस्मै प्रददौ ॥३॥ स तु वासुदेवोऽहमिति सर्वलोकान्मोहयामास । कदाचित्स्वर्गतो मदबलोत्कटं तं काशिपतिं नारदोऽभ्येत्य वसुदेवसुतं कृष्णमजित्वा वासुदेवत्वं न विद्यत इत्युवाच ॥४॥ स तु तस्मिन्नेव क्षणे कृष्णं जेतुं गरुडपताकायुतं रथमारुह्य चतुरङ्गाक्षौहिणीबलेन द्वारकामवाप !॥५॥ तत्र पुरद्वारि स्वर्णयाने संस्थितो वासुदेवोऽहं युद्धार्थं सम्प्राप्तोऽस्मि मामजित्वा तव वासुदेवत्वं नास्तीति दूतं प्रेषयामास । विष्णुरपि तच्छ्रुत्वा वैनतेयमारुह्य पौण्ड्रकेण योद्धुं पुरद्वाराद्विनिष्क्रम्याऽक्षौहिणीबलेन स्यन्दने समासीनं शङ्खचक्रगदापद्महस्तं पौण्ड्रकं ददर्श ॥६॥ कृष्णोऽथ शार्ङ्गमादाया सम्वर्ताग्निप्रभैर्बाणैस्तस्य रथाश्वगजपदातियुक्तं महदक्षौहिणीबलं मुहूर्तमात्रेण निःशेषं ददाह ॥७॥ शरेणैकेन् तस्य । हस्तावसक्त-

---

श्रीकृष्णाचरित के प्रसङ्ग में काशिराज पौण्ड्रक वासुदेव का वध तथा काशिराज के पुत्र दण्डपाणि की कृत्या के विध्वंस का वर्णन

रुद्र ने कहा— पौण्ड्रक वासुदेव काशिराज वाराणसी में निर्जन स्थान में बारह वर्ष पर्यन्त महेश्वर की पूजा करते हुए निराहार रहे और पञ्चाक्षर मन्त्र का जप किए । पुरश्चरण के अन्त में शङ्करजी की पूजा अपने नेत्र कमल से किए ॥१॥ उसके बाद शूलपाणि शङ्करजी प्रसन्न होकर कहे वरदान माँगो । वह पाँचमुख वाले शङ्करजी को प्रसन्न देखकर कहा हे वरद ! मुझको वासुदेव के समान रूप प्रदान करें ॥२॥ शिवजी उस को शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म से युक्त चार भुजाएँ, कमलदल के समान नेत्र, वासुदेव के समान किरीट से सुशोभित केश, पीताम्बर कौस्तुभ मणि रूपी आभूषण आदि चिह्नों को भी मुझे प्रदान करें इस तरह से याचना किए गये शिवजी इन सारी वस्तुओं को उसे प्रदान किए ॥३॥ उसने सभी लोगों को मैं वासुदेव हूँ यह कहकर मोहित कर दिया । एक बार स्वर्ग में गये हुए मद तथा बल से मदमत्त उस काशिराज को नारदजी आकर कहें वसुदेव के पुत्र कृष्णको जीते बिना तुम वासुदेव नहीं हो सकते हो ॥४। वह उसी क्षण गरुड़ पताका से युक्त रथ पर बैठकर चतुरङ्ग अक्षौहिणी सेना के साथ द्वारका गया ॥५॥ वहाँ पर नगर के द्वार पर स्वर्णरथ पर बैठे हुए मैं वासुदेव हूँ युद्ध करने के लिए आया हूँ । मुझको जीते बिना तुम वासुदेव नहीं हो सकते हो यह कहकर दूत को भेजा । भगवान् विष्णु भी गरुड़ पर चढ़कर पौण्ड्रक के साथ युद्ध करने के लिए, नगर के द्वार पर निकलकर अक्षौहिणी सेना के साथ रथ पर बैठे हुए, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म से युक्त हाथ वाले पौण्ड्रक को देखे ॥६॥ उसके पश्चात् भगवान् कृष्ण शार्ङ्ग धनुष लेकर संवर्ताग्नि के समान कान्ति वाले बाणों से उसके रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदल से युक्त

शङ्खचक्रगदादिहेतीरपि लीलयैव छिच्छेद । पवित्रेण सुदर्शनेन किरीटकुण्डलयुतं तस्य शिरःकमलं छित्त्वा वाराणस्यामन्तःपुरे निपातयामास ॥८॥ तद्दृष्ट्वा सर्वे काशीनिवासिनः किमेतदित्याशङ्क्य विस्मिता बभूवुः ॥९॥ तस्य पौण्ड्रकस्य सुतो दण्डपाणिरिति वासुदेवेन भगवता निहतं स्वपितरं श्रुत्वा महता मन्युना समाविष्टः स्वपुरोहितेनाऽभियुक्तो माहेश्वरणे क्रतुना शङ्करमियाज ॥१०॥ स तु प्रसन्नः कृष्णजिघांसायां समर्थां माहेश्वरीं कृत्यां तस्मै सम्प्रीत्या च दत्तवान् ॥११॥ स काशिराजस्तां माहेश्वरीं जवालाकुलोपचितविग्रहां सन्दीप्तसटाकलापां पिङ्गलनेत्रां ज्वलत्करालवदनां त्रिशूलहस्तां भस्माङ्गरागलिप्तां नरमुण्डमालाविभूषितां सर्वदेवभयङ्करीं रुद्रदत्तां नग्नां कृत्यां समीक्ष्य पुत्रदारबान्धवसहितं कृष्णं जहीति प्रेरयामास ॥१२॥ सा तु सर्वलोकभयावहा सर्वां पृथ्वीं स्वतेजसा निर्दहन्ती प्रलयाशानिनिर्भरस्वनं नदन्ती द्वारकामवाप ॥१३॥ तत्रत्याः सर्वे जनास्तां दृष्ट्वा महाप्रलयोऽयमिति मत्वा हाहाकारं कुर्वन्तः कृष्णं निवेदयामासुः ॥१४॥ कृष्णोऽपि तान्सर्वान्न भेतव्यमित्युक्त्वा प्राकारतोरणेस्थितां महारौद्रां कृत्यां तथाविधां दृष्ट्वा सकलशस्त्रास्त्रनिवारणसमर्थं सहस्रारं सुदर्शनं तस्यां कृत्यायां सहसा मुमोच ॥१५॥ सा तु कल्पान्तार्ककोटिसमवर्चसा शतयोजनोद्गतं सकलदीप्तास्त्रयुतं हिरण्मयं प्रभापूर्णं सकलजगत्प्रलयस्थितिसमर्थं सहस्रारं सर्वदेवनमस्कृतं जगच्छरणभूतं महासुदर्शनं विलोक्य विनष्टतेजा भयार्त्ता क्रोशन्ती वाराणसीं प्रति दुद्राव ॥१६॥ सुदर्शनोऽपि तां

विशाल अक्षौहिणी सेना को पूर्ण रूप से एक ही मुहूर्त में भस्म कर दिए ॥७॥ एक बाण से उसके शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म आयुधों को भी लीला पूर्वक ही काट दिए । पवित्र, सुदर्शन चक्र से किरीट तथा कुण्डल से युक्त उसके शिर रूपी कमल को काटकर वाराणसी के अन्तःपुर में गिरा दिए ॥८॥ उसको देखकर सभी काशी निवासी यह क्या हुआ इस तरह से शङ्का करके आश्चर्यित हो गये ॥९॥ उस पौण्ड्रक के पुत्र दण्डपाणि वासुदेव के द्वारा मारे गये अपने पिता को सुनकर अत्यन्त क्रोध से भर गये । अपने पुरोहित के द्वारा नियुक्त वह माहेश्वर याग से शङ्करजी का पूजन किया ॥१०॥ प्रसन्न होकर शङ्करजी भगवान् कृष्ण को मारने में समर्थ माहेश्वरी कृत्या को प्रसन्नता पूर्वक प्रदान किए ॥११॥ वह काशिराज उस माहेश्वरी ज्वाला समूह से समृद्ध शरीर वाली, देदीप्यमान जटा समूह वाली, पीले नेत्रों वाली जलते हुए भयङ्कर मुख वाली, त्रिशूल हाथ में ली हुयी, भस्म का अङ्गराम लगायी हुयी, मनुष्य के मुण्डों की माला को पहने हुयी, सभी देवताओं को भयभीत करने वाली, रुद्र के द्वारा प्रदत्त कृत्या को देखकर पुत्र, पत्नी तथा बान्धवों के साथ कृष्ण को मार दो यह कहकर उसे प्रेरित किया ॥१२॥ सभी लोगों को भयभीत करने वाली वह सम्पूर्ण पृथिवी को अपने तेज से जलाती हुयी, प्रलय कालीन वज्र के समान आवाज करती हुयी तथा चिल्लाती हुयी द्वारका पहुँच गयी ॥१३॥ सभी लोग उसको देखकर यह महाप्रलय होने वाला है । इस तरह से मानकर हाहाकार करते हुए भगवान् कृष्ण को बतलाये ॥१४॥ भगवान् कृष्ण भी सभी लोगों से डरो मत इस तरह से कहकर प्रकार के तारेण पर स्थित अत्यन्त भयङ्कर उस प्रकार की कृत्या को देखकर सभी शस्त्र का निवारण करने में समर्थ हजारों आर वाले सुदर्शन को उसके कृत्या के ऊपर अचानक फेंके॥१५॥ कल्पान्त करोड़ों सूर्य के समान तेजस्विनी वह योजन भर में उत्पन्न सम्पूर्ण देदीप्मान् अस्त्रों से युक्त सुवर्णमय कान्ति से परिपूर्ण जगत् की स्थिति एवं प्रलय करने में समर्थ सहस्रार, जो सभी देवताओं

कृत्यां भृशमन्वगात् ॥१७॥ साऽपि भयार्ता क्रोशन्ती काशिपतेस्तस्याऽन्तःपुरं प्रविवेश ॥१८॥ सुदर्शनोऽपि तां वाराणसीं पुरीं प्राप्य सभृत्यबलवाहनं पौण्ड्रकसुतं दण्डपाणिं नाम काशिराजं बहुप्रासादहर्म्यमालिनीं पुरीं माहेश्वरीमपि भस्मावशेषां कृत्वा सकलदेवमहर्षिभिः पूज्यमानः पुनरेव द्वारवत्यां कृष्णहस्तं सुसौम्यं कल्पमिव आविवेश ॥१९॥

अत्रच श्लोकागीयन्ते

शस्त्रास्त्रमोक्षमजरं दग्ध्वा तद्बलमोजसा। कृत्याभस्मावशेषांतांततोवाराणसींपुरीम् ॥२०॥
प्रभूतरथमातङ्गां साश्वां पुंस्त्रीसमन्विताम् । साशेषकोषकोष्ठां तां दुर्निरीक्ष्या सुरैरपि॥२१॥
द्वारोपलंक्षिताशेषगृहप्राकारचत्वराम् । प्रददाह हरेश्चक्रं सकलामेव तां पुरीम् ॥२२॥
अक्षीणगतिसामर्थ्यमसाध्यकृतसाधनम् । तच्चक्रं प्रस्फुरद्दीप्तं विष्णोरभ्याययौ करम् ॥२३॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वर सम्वादे श्रीकृष्णाचरितेपौण्ड्रकपुत्रकृत्याविध्वंसनंनामैकपञ्चाशदिधिद्विशततमोऽध्यायः ॥२५१॥

से नमस्कृत जगत् के रक्षक महा सुदर्शन को देखकर विनष्ट तेज वाली होकर वह कृत्या भयभीत होकर चिल्लाती हुयी वाराणसी भाग चली ॥१६॥ सुदर्शन ने भी उस कृत्या का पीछा किया ॥१७॥ वह भी चिल्लाती हुयी काशिराज के अन्तःपुर में प्रवेश कर गयी ॥१८॥ सुदर्शन चक्र भी उस वाराणसीपुरी में आकर भृत्य, सेना तथा वाहन के साथ पौण्ड्रक के पुत्र दण्डपाणि नामक काशिराज को तथा अनेक महलों की माला वाली माहेश्वरी काशीपुरी को भी भस्म करके सभी देवताओं और महर्षियों से पूजित होकर पुनः द्वारका में आकर अत्यन्त सौम्य भगवान् कृष्ण के हाथ में प्रवेश कर गये ॥१९॥ **इस विषय में निम्नाङ्कित श्लोक गाये जाते हैं ।** शस्त्रास्त्रों के मोक्ष स्वरूप, जरा रहित काशिराज की उस सेना को अपने ओज से जलाकर, कृत्या को भस्म करके प्रख्यात वाराणसी पुरी को जो प्रभूत मात्रा में रथ, हाथी, घोड़े, पुरुष, स्त्री से युक्त थी उसको तथा सम्पूर्ण कोश से युक्त वाराणसी को तथा देवता भी जिसको बड़ी कठिनाई से देख पाते थे ऐसी काशी पुरी को भस्म करके ॥२०-२१॥ द्वारपालों के द्वारा उपलक्षित सम्पूर्ण गृह, प्राकार तथा चत्वर से युक्त वाराणसी को पूर्ण रूप से श्रीहरि के चक्र ने जला दिया ॥२२॥ जिसकी गति और सामर्थ्य कभी क्षीण नहीं हुए थे, किए गए साधनों के लिए असाध्य चकमता हुआ वह चक्र भगवान् विष्णु के हाथ में चला गया ॥२३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीकृष्ण चरित के प्रसङ्ग में पौण्ड्रक के पुत्र की कृत्या का विध्वंस नामक दो सौ एकावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५१।।

दो सौ बावनवाँ अध्याय

श्रीरुद्र उवाच

अथ मगधाधिपः कंसवधानन्तरं द्विषन्नेव यादवान्सदा पीडयामास ॥१॥ ते दुःखिताः कृष्णमूचुः॥२॥ स च भीमार्जुनावाहूय सम्मन्त्रयामास ॥३॥ कृष्णोऽनेन रुद्रः पूजितस्तत्प्रसादाच्छस्त्रैरवध्यः परं केनाऽपि प्रकारेण हन्तव्यइति ॥४॥ अथ विचार्य भीममाह, एनं प्रति मल्लयुद्धं कुरु तत्तेन प्रतिज्ञातम्॥५॥ अथ सकलचराचरजगद्वन्द्यो वासुदेवो भीमार्जुनसहितो जरासन्धस्य पुरीं गत्वा विप्रवेषेण तस्याऽन्तःपुरमवाप ॥६॥ सोऽपि महावीर्यान्क्षत्रियान्युद्धे निर्जित्य बलाद्गृहीत्वा स्ववेश्यमनि निरुध्य मासि मासि कृष्णचतुर्दश्यामेकैकं हत्वा तद्रक्तेनैव बलिं भैरवायाऽकरोत् ॥७॥ एवम्विधं सकलजनपार्थिववधं कुर्वतो जरासन्धस्य वधे समुद्यच्छन्भीमार्जुनसहितस्तस्य गृहे विप्रवेषेणैव विवेश॥८॥ स तु तान्दृष्ट्वा दण्डवत्प्रणतो भूत्वा यथोचितासनेषु निवेश्य मधुपर्कविधानेन सम्पूज्य धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि किमर्थं भवन्तो मे समीपआगतास्तद्वक्तव्यमहं तत्सर्वं भवद्भ्यो दास्यामीत्युवाच ॥९॥ तेषां वासुदेवः प्रहसन्पार्थिवं तमुवाच ॥१०॥ कृष्णभीमार्जुना युद्धार्थमागताः स्मोऽस्माकमन्यतमं द्वन्द्वयुद्धार्थं वृणीष्वेत्यवदत् ॥११॥ सोऽपि तथेत्यवदत्ततो द्वन्द्वयुद्धार्थं मारुतिं वरयामास ॥१२॥ ततो भीमजरासन्धयोरभितो भयङ्करं मल्लयुद्धं निरन्तरं पञ्चविंशतिवासरमभूत् ॥१३॥ ततः कृष्णेनैव

श्रीकृष्ण चरित के अन्तर्गत जरासन्ध वध पूर्वक भगवान् कृष्ण द्वारा अपने सहपाठी सुदामा का सादर सम्मान, उनको धनपतित्व प्रदान और महाभारत युद्ध की कथा का वर्णन

श्रीरुद्र ने कहा— कंस वध के पश्चात् मगध के राजा जरासन्ध बैर के कारण यादवों को सदा पीड़ित करता था ॥१॥ वे दुःखी होकर भगवान् कृष्ण से कहे ॥२॥ भगवान् श्रीकृष्ण भीम तथा अर्जुन को बुलाकर मन्त्रणा किए ॥३॥ भगवान् कृष्ण ने कहा इसने रुद्र की पूजा करके उनसे शस्त्रों द्वारा अवध्यत्व का वरदान प्राप्त किया है, किन्तु उसको किसी भी प्रकार मरना ही चाहिए ॥४॥ इस तरह से विचार करके भगवान् ने भीम से कहा आप जरासन्ध से मल्लयुद्ध करें । भीम ने भी मल्लयुद्ध करने की प्रतिज्ञा की॥५॥ उसके पश्चात् सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् के पूज्य भगवान् वासुदेव भीम तथा अर्जुन के साथ जरासन्ध की नगरी में ब्राह्मण का वेष बनाकर उसके अन्तःपुर में गये ॥६॥ जरासन्ध ने भी महा पराक्रमी क्षत्रियों को पराजित करके बल पूर्वक उन सबों को पकड़ कर अपने घर में बाँधकर प्रत्येक मास में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन एक-एक राजा को मारकर उनके खून से भैरव को बलि प्रदान करता था ॥७॥ इस प्रकार सभी राजओं का वध करने वाले जरासन्ध के वध का प्रयास करते हुए भीम तथा अर्जुन के साथ भगवान् उसके घर ब्राह्मण वेष में ही प्रवेश किए ॥८॥ वह उन सबों को दण्डवत् प्रणाम करके यथोचित आसनों पर बैठाकर मधुपर्क विधि से उन सबों की पूजा करके, मैं तो धन्य और कृत-कृत्य हो गया, आप लोग मेरे पास किसलिए आये हैं ? उसे बतलायें मैं उन सारी वस्तुओं को आपलोगों को दूँगा यह कहा ॥९॥ तुम उन सबों में जोर से हँसते हुए वासुदेव हमलोगों में से किसी एक को द्वन्द्व युद्ध करने के लिए चुनो यह कहे ॥१०-११॥ उसने भी कहा ठीक है उसके बाद वह द्वन्द्वयुद्ध युद्ध के लिए वायु के पुत्र भीम को

सञ्चोदितो वायुपुत्रस्तस्य शरीरं द्विधाकृत्य भूमौ निपातयामास ॥१४॥ एवं जरासन्धं पाण्डुपुत्रेण हत्वा ताञ्जरासन्धनिरुद्धान्वासुदेवोऽपि पार्थिवान्मोचयामास ॥१५॥

अत्र श्लोकौ भवतः

निहत्य वायुपुत्रेण जरासन्धं यदूद्वहः। तद्गृहेसन्निरुद्धांस्तु मोचयामासपार्थिवान्॥१६॥

ते च तत्र नमस्कृत्य स्तुत्वा च मधुसूदनम् ।
स्वान्स्वाञ्जनपदान्सर्वे जग्मुः कृष्णेन रक्षिताः ॥१७॥

अथ ताभ्यामिन्द्रप्रस्थं गत्वा वासुदेवस्तत्र महाक्रतुं राजसूयं युधिष्ठिरं कारयामास ॥१८॥ तत्र समाप्ते क्रतौ अग्रपूजां भीष्मानुमतेन कृष्णाय दत्तवान् ॥१९॥ तत्र शिशुपालः कृष्णं बहून्याक्षेप-वाक्यान्युक्तवान् ॥२०॥ कृष्णोऽपि सुदर्शनेन तस्य शिरश्चिच्छेद ॥२१॥ असौ जन्मत्रयावसाने हरेः सारूप्यमगमत् ॥२२॥ अथ शिशुपालं निहतं श्रुत्वा दन्तवक्त्रः कृष्णेन योद्धुं मथुरामाजगाम॥२३॥ कृष्णास्तु तच्छ्रुत्वा रथमारुह्य तेन योद्धुं मथुरामाययौ ॥२४॥ दन्तवक्त्रवासुदेवयोरहोरात्रं मथुरापुरद्वारि यमुनातीरे संग्रामः समवर्त्तत ॥२५॥ कृष्णास्तु गदया तं जघान ॥२६॥ स तु चूर्णितसर्वाङ्गो वज्रनिर्भिन्नमहीधर इव गतासुरवनितले पपात ॥२७॥ सोऽपि हरेःसायुजयं योगिगम्यं नित्यानन्दसुखं शाश्वतं परमं पदमवाप ॥२८॥ इत्थं जयविजयौ सनकादिशापव्याजेन केवलं भगवतो लीलार्थं संसृतावववतीर्य जन्मत्रयेऽपि तेनैव निहतौ जन्मत्रयावसाने मुक्तिमवाप्तौ ॥२९॥ कृष्णोऽपि तंहत्वा

चुना ॥१२॥ उसके पश्चात् भीम और जरासन्ध का पूर्ण रूप से भयङ्कर मल्लयुद्ध पचीस दिनों तक हुआ॥१३॥ तत् पश्चात् कृष्ण के ही द्वारा प्रेरित होकर भीम उसके शरीर को दो भागों में चीरकर पृथिवी पर फेंक दिए॥१४॥ इस तरह से जरासन्ध को भीम के द्वारा मारकर जरासंध के द्वारा बाँधे गये राजाओं को भगवान् श्रीकृष्ण ने मुक्त कर दिया ॥१५॥ **इस विषय में दो श्लोक हैं** भीम के द्वारा जरासन्ध को मारकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके घर में बँधे हुए राजाओं को मुक्त कर दिया ॥१६॥ वे सब भगवान् मधुसूदन को नमस्कार करके तथा उनकी स्तुति करके भगवान् कृष्ण के द्वारा रक्षित होकर अपने-अपने जनपदों में चले गये ॥१७॥ उसके बाद भीम तथा अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ जाकर वासुदेव महाराज युधिष्ठिर के महाक्रतु राजसूय याग कराये ॥१८॥ वहाँ पर क्रतु की समाप्ति के अवसर पर भीष्मजी के मतानुसार अग्रपूजा भगवान् कृष्ण की हुयी ॥१९॥ इस पर शिशुपाल ने भगवान् कृष्ण को बहुत से आक्षेप वाक्यों को कहा॥२०॥ कृष्ण भगवान् ने भी सुदर्शन चक्र के द्वारा उसके शिर को काट दिया ॥२१॥ वह तीन जन्मो के अन्त में श्रीहरि के सारूप्य को प्राप्त कर लिया ॥२२॥ उसके बाद शिशुपाल को मारा गया सुनकर दन्तवक्त्र कृष्ण के साथ युद्ध करने के लिए मथुरा आया ॥२३॥ कृष्ण भगवान् इस बात को सुनकर रथ पर बैठकर उसके साथ युद्ध करने के लिए मथुरा आये ॥२४॥ मथुरापुरी के द्वार पर यमुना के तट पर भगवान् कृष्ण और दन्तवक्त्र का दिन रात संग्राम चलता रहा ॥२५॥ भगवान् कृष्ण ने उसको गदा से मार दिया ॥२६॥ वह सम्पूर्ण अङ्गों के चूर-चूर हो जाने से वज्र से मारे गये पर्वत के समान प्राणों के निकल जाने से पृथिवी पर गिर पड़ा ॥२७॥ उसने भी योगिगम्य नित्यानंद सुख स्वरूप श्रीहरि के सायुज्य को तथा शाश्वत परम पद को प्राप्त किया ॥२८॥ इस तरह जय और विजय सनकादि महर्षियों के शाप के व्याज से केवल श्रीभगवान् की लीला के लिए संसार में अवतीर्ण होकर तीनों जन्मों में श्रीभगवान् के ही

यमुनामुत्तीर्य नन्दव्रजं गत्वा प्राक्तनौ पितरावभिवाद्य आश्वास्य ताभ्यां साश्रुकण्ठमालिङ्गितः सकलगोपवृद्धान्प्रणम्याऽऽश्वास्य रत्नाभरणादिभिस्तत्रस्थान्संतर्पयामास ॥३०॥ कालिन्द्याः पुलिने रम्ये पुण्यवृक्षसमावृते । गोपनारीभिरनिशं क्रीडयामास केशवः ॥३१॥ रम्यकेलिसुखेनैव गोपवेशधरो हरिः । बद्धप्रेमरसेनाऽत्र मासद्वयमुवास ह ॥३२॥ अथ ततस्था नन्दगोपादयः सर्वे जनाः पुत्रदारसहिताः पशुपक्षिमृगादयश्च वासुदेवप्रसादेन दिव्यरूपधरा विमानमारूढाः परमं वैकुण्ठलोकमवापुः ॥३३॥ कृष्णस्तु नन्दगोपव्रजौकसां सर्वेषां परमं निरामयं स्वपदं दत्त्वा दिवि देवगणैः संस्तूयमानो द्वारवतीं श्रीमतीं विवेश ॥३४॥ तत्र वसुदेवोग्रसेनसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाक्रूरादिभिः प्रत्यहं सम्पूजितः षोडशसहस्र-भार्याभिरष्टाभिर्दिव्यमहिषीभिश्च विश्वरूपधरोदिव्यरत्नमयनानागृहान्तरेषु सुरतकुसुमाञ्चितश्लक्ष्णतरपर्यङ्केषु रमयामास ॥३५॥ अथ रामकृष्णसतीर्थ्यो विप्रो बालसखा सदाऽत्यन्तदारिद्र्यपीडितः कुचेलो मुष्टिमात्रान्याचनाप्तपृथुकाञ्जीर्णवाससिंनिबध्य वासुदेवं द्रष्टुं श्रीमतीं द्वारकानगरीमाजगाम ॥३६॥ स तु रुक्मिण्यन्तःपुरद्वारि क्षणं तूष्णीं तस्थौ ॥३७॥ कृष्णोऽपि समागतं ब्राह्मणं ज्ञात्वा प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य करं गृहीत्वा गृहान्तरे स्वासने निवेश्य भयाद्वेपमानं तं रुक्मिणीहस्तगतसुवर्णकलशजलेन पादौ प्रक्षाल्य मधुपर्केण पूजयामास ॥३८॥ सुधामृतोपमैरन्नपानाद्यैस्तर्पयित्वा तस्य जीर्णवस्त्रान्तरे याचनाप्तपृथुकान्स्वयमेव हस्तेन गृहीत्वा प्रहसञ्ज्ग्रास ॥३९॥ कृष्णेन पृथुके भक्षिते तस्मिन्नेव क्षणे तस्य बहुधनधान्ययुतंवस्त्राभरणसम्भृतं महदैश्वर्यमभूत् ॥४०॥ स तु कृष्णेन विसृष्टो मम किञ्चिद्वस्त्रं

द्वारा मारे जाकर तीन जन्मों के अन्त में मुक्ति प्राप्त कर लिए ॥२९॥ भगवान् कृष्ण भी उसको मारकर यमुना को पार करके नन्द व्रज में जाकर पहले के अपने माता-पिता को प्रणाम करके उन दोनों को आश्वासन देकर, उन दोनों के द्वारा गद्गद कण्ठ से आलिङ्गित होकर, सभी गोपवृद्धों को प्रणाम करके तथा उनको आश्वस्त करके रत्नाभरण के द्वारा उन सबों को तृप्त किए ॥३०॥ पवित्र वृक्ष से भरे हुए कालिन्दी के मनोहर तट पर गोपियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण निरन्तर क्रीडा किए ॥३१॥ मनोहर केलि सुख पूर्वक गोपों का वेष धारण किए हुए श्रीहरि सुदृढ़ प्रेम रस के द्वारा वहाँ दो महीनों तक निवास किए ॥३२॥ उसके पश्चात् वहाँ के नन्दगोप आदि सभी लोग, पुत्र तथा पत्नी के साथ पशुपक्षी तथा मृग आदि भी वासुदेव की कृपा से दिव्य रूप धारण करके विमान पर चढ़कर परम वैकुण्ठ लोक को प्राप्त किए ॥३३॥ भगवान् कृष्ण नन्दगोप वज्र में रहने वाले सबों को निरामय अपना धाम प्रदान करके स्वर्ग में देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए एश्वर्य सम्पन्न द्वारका में चले गये ॥३४॥ वहाँ पर प्रतिदिन वसुदेव, उग्रसेन, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि के द्वारा पूजित होकर सोलह हजार पत्नियों तथा आठ दिव्य महीषियों के साथ दिव्य रूप धारण किए हुए । दिव्य रत्नमय अनेक गृहों में देवपुष्प से युक्त अत्यन्त कोमल शय्याओं पर रमण किए । उसके पश्चात् बलरामजी तथा भगवान् कृष्ण के सहपाठी बालसखा, ब्राह्मण, सदा दारिद्र्य से पीड़ित रहने वाले कुचेल माँगने से मिले हुए एक मुट्ठी मोटा चावल को फटे वस्त्र में बाँधकर भगवान् वासुदेव का दर्शन करने के लिए ऐश्वर्य सम्पन्न द्वारका नगरी में आये ॥३५-३६॥ वे रुक्मिणी के अन्तःपुर के द्वार पर एक क्षण रुके ॥३७॥ भगवान् कृष्ण भी आये हुए ब्राह्मण को जानकर उनके सामने आकर तथा उन्हें प्रणाम करके उनका हाथ पकड़कर गृह के भीतर अपने आसन् पर बैठाकर भय के कारण काँपते

वा धनं वा कृष्णेन न दत्तमिति मन्यमानः स्वपुरं विवेश ॥४१॥ अथ बहुधनधान्ययुतं स्वगृहं दृष्ट्वा तत्प्रसादादिदं लब्धमिति वदन्प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना दिव्यवस्त्राभरणादिना भार्यया सह सर्वान्कामान्भुक्त्वा हरिसन्तुष्ट्यै बहुयज्ञानिष्ट्वा तत्प्रसादेन परमं नित्यं स्वर्गसुखमवाप ॥४२॥ अथ धृतराष्ट्रतनयो दुर्योधनः पाण्डुतनयान्कपटद्यूतव्याजेन राज्यमपहृत्य स्वराष्ट्राद्विवासयामास ॥४३॥ ते तु युधिष्ठिरभीमार्जुननकुलसहदेवाः स्वपत्न्या द्रौपद्या सह महारण्यं गत्वा तत्र द्वादशाब्दान्स्थित्वा सम्वत्सरपर्यन्तमज्ञाताः सर्वे मत्स्यदेशाधिपतेर्विराटस्य निवेशने स्थित्वा वासुदेवेन सहायेन धार्तराष्ट्रान्योद्धु माजग्मुः ॥४४॥ तेषां धार्तराष्ट्रपाण्डुपुत्राणां नानादेशाधिपनृपैः कुरुक्षेत्रे महापुण्ये देवानामपि भयङ्करो महान्सङ्ग्रामोऽभवत् ॥४५॥ अथ श्रीकृष्णोऽप्यर्जुनसारथ्यं कुर्वन्नर्जुने स्वशक्तिमावेश्य तेन दुर्योधनभीष्मद्रोणप्रमुखान्सर्वान्पार्थिवानेकादशाक्षौहिणीबलसहितान्कुरुक्षेत्रे हत्वा पाण्डवान्राज्ये स्थापित्वा निःशेषेण सर्वभूभारमपास्य स्वां पुरीं प्रविवेश ॥४६॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य कतिपयाहनि वैदिको ब्राह्मणो मृतं पञ्चवार्षिकं बालमादाय राजद्वारि निधाय बहुशो विलपन्बहून्याक्रोशवाक्यानि कृष्णं जगाद ॥४७॥ कृष्णास्तमाक्रोशं श्रुत्वा तूष्णीमुवास ॥४८॥ स तु ममपञ्चपुत्राः पूर्वं हता अयं तु

हुए उनको रुक्मिणी के हाथ में विद्यमान सुवर्ण कलश के जल से उनके दोनों चरणों को धोकर मधुपर्क के द्वारा उनकी पूजा किए ॥३८॥ अमृत के समान अन्न तथा जल से उनको तृप्त करके उनके फटे पुराने वस्त्र के भीतर माँगने से मिले हुए मोटे चावल को स्वयम् अपने हाथ से लेकर जोर से हँसते हुए खा लिए॥३९॥ भगवान् कृष्ण के द्वारा उन मोटे चावलों के खाये जाते ही उसी क्षण उनके बहुत धन-धान्य सम्पन्न वस्त्रों एवं आभरणों से परिपूर्ण महान् ऐश्वर्य हो गया ॥४०॥ भगवान् श्रीकृष्ण से विदा होकर वे सोच रहे थे कि कृष्ण ने तो मुझे कोई वस्त्र भी नहीं दिया और न धन दिया । ऐसा मानकर वे अपने नगर में आये ॥४१॥ उसके पश्चात् बहुत अधिक धन-धान्य से युक्त अपने घर को देखकर वे कहने लगे श्रीभगवान् की कृपा से मैंने यह सब कुछ प्राप्त किया है । अपने प्रहृष्ट अन्तःकरण से दिव्य वस्त्रों एवं आभूषणों आदि को धारण कर तथा अपनी पत्नी के साथ अपने समस्त काम्य भोगों को भोगकर, अनेक यज्ञों को करके श्रीभगवान् की कृपा से नित्य ही परम स्वर्ग सुख को वे प्राप्त किए ॥४२॥ धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन पाण्डु के पुत्र को कपट द्यूत के बहाने राज्य का अपहरण करके अपने राष्ट्र से उन सबों को निकाल दिया ॥४३॥ वे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव अपनी पत्नी द्रौपदी के साथ महावन में जाकर वहाँ पर बारह वर्ष रहकर एक वर्ष पर्यन्त अज्ञात वास करके सभी मत्स्य देश के राजा विराट के गृह में रहकर वसुदेव के द्वारा सहायता प्राप्त कर धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ युद्ध करने के लिए आये॥४४॥ उन धृतराष्ट्र तथा पाण्डु के पुत्रों का अनेक देश के राजाओं के साथ महापवित्र, कुरुक्षेत्र में देवताओं को भी भयभीत कर देने वाला महासंग्राम हुआ ॥४५॥ उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुन का सारथ्य करते हुए अर्जुन में अपनी शक्ति का प्रवेश कराकर उसके द्वारा दुर्योधन, भीष्म तथा द्रोण आदि ग्यारह अक्षौहिणी सेना के साथ सभी राजाओं को कुरुक्षेत्र में मारकर पाण्डवों को राज्य पर स्थापित करके पूर्ण रूप से पृथिवी के सम्पूर्ण भार को दूर करके अपनी नगरी में चले गये ॥४६॥ कुछ दिनों के बाद वैदिक ब्राह्मण अपने पाञ्च वर्ष के मरे हुए बालक को लेकर राजद्वार पर रखकर बहुत अधिक विलाप करता

षष्ठः एनं कृष्णो न जीवयिष्यति तर्हि राजद्वारि मरिष्यामीत्युवाच ॥४९॥ तस्मिन्काले अर्जुनः कृष्णं द्रष्टुमागत स्तथाविधं तं पुत्रशोकेन विलपन्तं ददर्श । अर्जुनोऽपि कालधर्ममुपागतं पञ्चवार्षिकं बालकं दृष्ट्वा कृपयाविष्टस्तव पुत्रमहं जीवयिष्यामीति ॥५०॥ ब्राह्मणायाऽभयं दत्त्वा प्रतिश्रुतवान् । ब्राह्मणस्तु तेनाऽऽश्वासितो हृष्टवान् ॥५१॥ अथैतं ब्राह्मणशिशं बहुभिः सञ्जीवनास्त्रैरभिमन्त्र्य अलब्धजीवितं दृष्ट्वा वृथाप्रतिज्ञामवाप्य बहुशोकसमन्वितस्तेनैव प्राणांस्त्यक्तुमैच्छत् ॥५२॥ कृष्णस्तु तत्सर्वं ज्ञात्वाऽन्तःपुराद्विनिष्क्रम्य तं वैदिकं प्राह तव पुत्रान्सर्वानहं दास्यामीत्युक्त्वाऽऽश्वास्य वैनतेयमारुह्याऽर्जुनसहितो वैष्णवंलोकमाजगाम ॥५३॥ तत्र दिव्यमणिमण्डपोद्देशे देव्या सह समासीनं नारायणं दृष्ट्वा कृष्णार्जुनौ नमश्चक्रतुः ॥५४॥ स तौ बाहुभ्यां परिष्वज्य किमर्थमागतावित्युवाच ॥५५॥ कृष्णश्च भगवन्वैदिकस्य तनयान्मम देहीत्युवाच ॥५६॥ स तु नारायणस्तादृग्वयसिसंस्थितान्ब्राह्मणपुत्रान्कृष्णाय सन्ददौ ॥५७॥ श्रीकृष्णोऽपि तान्वैनतेयस्कन्धे समारोप्य हर्षसमन्वितोऽर्जुनसहितः स्वयमप्यारुह्य दिवि देवगणैः संस्तूयमानो द्वारवतीमाविवेश ॥५८॥ तस्मै ब्राह्मणाय पञ्चवर्षवयः-स्थान्षट्पुत्रान्ददौ । सोऽप्यत्यन्तहर्षसमन्वितः कृष्णं वद्धस्वेत्याशिषं प्रायच्छत् ॥५९॥ अर्जुनस्तु सफलां प्रतिज्ञामवाप्य कृष्णं नमस्कृत्य युधिष्ठिरपालितां स्वां पुरीमाजगाम ॥६०॥ कृष्णस्य षोडशहसस्र-भार्यास्वयुतसाहस्रपुत्रा जज्ञिरे तेषां पुत्रपौत्रसङ्ख्यां वक्तुं न शक्यते ॥६१॥

हुआ बहुत से आक्रोश भरे वाक्यों को भगवान् कृष्ण को कहा ॥४७॥ श्रीकृष्ण उस आक्रोश को सुनकर चुप रहे ॥४८॥ उसने कहा मेरे पाँच पुत्र, पहले ही मर चुके हैं, यह छठा है यदि इसको भगवान् कृष्ण नहीं जीवित करेंगे तो फिर मैं इस राजद्वार पर ही मर जाऊँगा ॥४९॥ उसी समय अर्जुन भगवान् कृष्ण को देखने के लिए आये उस प्रकार से उसको पुत्र शोक से विलाप करते हुए अर्जुन भी मरे हुए पाँच वर्ष के बालक को देखकर दया द्रवित होकर कहे तुम्हारे पुत्र को मैं जीवित करूँगा ॥५०॥ ब्राह्मण को अभय प्रदान करके उन्होंने प्रतिज्ञा की । उनके आश्वासन पाकर ब्राह्मण प्रसन्न हो गया ॥५१॥ उसके बाद इस ब्राह्मण बालक को बहुत से सञ्जीवनास्त्र से अभिषिक्त करके, उसको जीवित नहीं होते हुए देखकर अपनी प्रतिज्ञा को व्यर्थ मानकर अत्यधिक शोक से युक्त अर्जुन ही अपना प्राण त्याग करना चाहे ॥५२॥ भगवान् कृष्ण उन सारी बातों को जानकर अन्तःपुर से बाहर निकलकर उस वैदिक ब्राह्मण से कहे मैं तुम्हारे सभी पुत्रों को दूँगा । यह कहकर तथा ब्राह्मण को आश्वस्त करके अर्जुन के साथ गरुड़ पर चढ़कर वैष्णव लोक में आये ॥५३॥ वहाँ दिव्य मणि मण्डप के एक भाग में लक्ष्मीदेवी के साथ बैठे हुए भगवान् नारायण को देखकर कृष्ण और अर्जुन उनको नमस्कार किए ॥५४॥ भगवान् नारायण उन दोनों लोगों को अपनी दोनों भुजाओं से आलिङ्गन करके पूछे आप दोनों किस लिए आये हैं ॥५५॥ भगवान् कृष्ण उनसे कहे; भगवन् आप वैदिक के पुत्रों को मुझे दे दें ॥५६॥ भगवान् नारायण उस तरह की अवस्था में विद्यमान वैदिक के पुत्रों को दे दिए ॥५७॥ भगवान् कृष्ण भी उन सबों को गरुड़ के स्कन्ध पर बैठाकर अर्जुन के साथ प्रसन्न होकर गरुड़ पर बैठकर स्वर्ग में देवताओं द्वारा स्तुति किये जाते हुए द्वारका में आये ॥५८॥ उस ब्राह्मण को पाँच वर्ष की अवस्था वाले छह पुत्रों को प्रदान किए । वह ब्राह्मण भी अत्यन्त हर्ष पूर्वक भगवान् कृष्ण को तुम्हारी वृद्धि हो इस तरह से आशीर्वाद दिया ॥५९॥ अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा को सफल जानकर भगवान्

अत्राऽपिश्लोक:

अष्टौ शतानि पुत्राणां सहस्राण्ययुतं तथा ।
प्रद्युम्नः प्रथमस्तेषां सर्वेषां रुक्मिणीसुतः ॥६२॥

असङ्ख्यैस्तैर्यादवैरियं पृथिवी सम्वृताऽभवत् । पुनरप्यवनीभारशङ्कया कृष्णस्तु तानृषिशापव्याजेन संहर्तुमैच्छत् ॥६३॥ कदाचित्सर्वं कुमारा नर्मदायां विहर्तुमाजग्मुः । तत्र तपन्तमं कण्वं महर्षिं दृष्ट्वा जाम्बवत्याः पुत्र योषिद्वेषं कृत्वा तस्योदरे कार्ष्णायसं मुसलं बद्ध्वा ऋषेः समापमागत्य सर्वे नमस्कृत्य पत्नीरूपं साम्बं कुमारं तस्य पुरतो निधाय अस्या गर्भे स्त्री वा पुरुषो वा भविष्यतीति ब्रूहीत्यूचुः ॥६४॥ स तु मनसा तद्विज्ञाय तानमर्षमाणः सर्वाननेन मुसलेन यूयं सर्वे निहता भवतेत्युवाच॥६५॥ सर्वे समुद्विग्नमनसः कृष्णं समेत्य महर्षिणोक्तं तत्कर्म निवेदयामासुः । कृष्णोऽपि तदायसं मुसलं चूर्णीभूतं ह्रदे निपातयामास ॥६६॥ तदयश्चूर्णीभूतबीजसमुद्भूतावज्रसन्निभा महाकाशा संबभूवुः । तत्र तं मुसलावशिष्टं कनिष्ठाङ्गुलिमात्रं मत्स्यो जग्रास ॥६७॥ तं मत्स्यं निषादो गृहीत्वा तदुदरस्थं मुशलखण्डमादाय बाणाग्रे फलकमकरोत् । कदाचित्सर्वे यादवा रामकृष्णप्रद्युम्नादयो महाबलास्तिस्रः कोट्यो महोत्सवयात्रां कर्त्तुं तन्महाह्रदसमीपं जग्मुः ॥६८॥ तत्र च बहुमद्यमांसानि भुक्त्वा सर्वे मत्ताः क्रीडार्थं तन्महाह्रदसमुद्भूतान्महाकाशानुत्पाट्य तैर्वज्रधारासन्निभैः परस्परं जघ्नुः। तेन सर्वे प्रद्युम्नादयो यादवा निश्शेषं त्यक्तजीविता बभूवुः ॥६९॥ ते सर्वे स्वान्स्वांस्त्रिदशान्प्रतिपेदिरे।

कृष्ण को नमस्कार करके युधिष्ठिर के द्वारा पालित अपने नगर में आये ॥६०॥ भगवान् श्रीकृष्ण के सोलह हजार पत्नियों के गर्भ से दश हजार पुत्र उत्पन्न हुए । उन सबों के पुत्र पौत्रों की संख्या को नहीं बतलाया जा सकता है ॥६१॥ **इसके विषय में यह श्लोक है** दश हजार आठ सौ पुत्रों में सबसे बड़े प्रद्युम्नजी थे । वे रुक्मिणीजी के पुत्र थे ॥६२॥ असंख्य उन यादवों से यह पृथिवी भर गयी । फिर पृथिवी के भार की शङ्का से उन सबों का ऋषियों के शाप के बहाने संहार करने की इच्छा किए ॥६३॥ एक बार सभी कुमार नर्मदा में बिहार करने के लिए आये । वहाँ पर तपस्या करते हुए कण्व महर्षि को देखकर जाम्बवती के पुत्र को स्त्री का वेष बनाकर उसके उदर में लोहे के मूसल को बाँधकर ऋषि के समीप आकर सभी नमस्कार करके पत्नी का रूप बनाये हुए साम्ब कुमार को उनके समक्ष खड़ा करके कहे इसके गर्भ में स्त्री है अथवा पुरुष है आप बतलायें ॥६४॥ उसको जानकर उन सबों पर क्रोध करते हुए कहे तुम सभी लोग इस मुसल के द्वारा मारे जाओ ॥६५॥ वे सभी उद्विग्न मन वाले होकर भगवान् कृष्ण के पास आकर महर्षि के द्वारा कहे गये उस कर्म को बतलाये । भगवान् कृष्ण भी उस चूर्ण किए गये लोहे के मुसल को ह्रद में डाल दिए ॥६६॥ उस लोहे के चूर्ण रूपी बीज से उत्पन्न महाकाश वज्र के समान हो गये । वहाँ पर चूर्ण से बचे हुए कनिष्ठा अङ्गुलि के बराबर भाग को मछली ने खा लिया ॥६७॥ उस मछली को निषाद पकड़कर उसके उदर में विद्यमान मुसल के खण्ड को लेकर अपने बाण के अग्रभाग में फलक बनाया । एक बार रामकृष्ण, प्रद्युम्न आदि महाबलवान् तीन करोड़ यादव महोत्सव यात्रा को करने के लिए उस महाह्रद के समीप गये ॥६८॥ वहाँ पर बहुत अधिक मद्य तथा मांस खाकर मदमत्त हुए सभी लोग क्रीडा करने के लिए, उस महाह्रद में उत्पन्न महाकाशों को उखाड़कर वज्र की धार के समान उन सबों से परस्पर

एवं मुशलेन संहत्य सर्वं स्वयमेको देवो बहुगुल्मसमाकीर्णमहाद्रुमछायायां सुप्तश्चतुर्विधव्यूहगतं वासुदेवात्मकमात्मानं चिन्तयञ्जानूपरि पदं निधायाऽऽत्मनोमानुषं वपुस्त्यक्तुमनुनिषसाद ।।७०।। एतस्मिन्नन्तरे मृगयाजीविको हरेः स तदा कालप्रभावेण चक्रवज्रध्वजांकुशादिचिह्नितमतिरक्ततमं हरेः पादकमलं दृष्ट्वा तन्मृगपोतं मत्वा सकलयदुवंशहरमुसलशकलनिर्मितायकेन जघान ।।७१।। तदनन्तरं श्रीकृष्णं ज्ञात्वा सुमहाभयार्त्तः प्रवेपमानः कृताञ्जलिपुटो महापराधो मया कृत इतिवदंस्तं प्रणनाम । श्रीकृष्णस्तथाभूतं दृष्ट्वा सुधामयकराभ्यां तमुत्थाप्य भवता नाऽपराधः कृत इतिवदन्महाभयपीडितमाश्वासयन्नुवाच ।।७२।। ततो योगिगम्यमपुनरावृत्तिशाश्वतं सर्वोपनिषन्मयं वैष्णवं लोकं प्रददौ । असौ तस्मिन्नेव मुहूर्ते मानुषं रूपं विहाय पञ्चोपनिषन्मयं सकलपुत्रदारसहितो दीप्तिमयं वैष्णवं लोकं दिव्यं विमानमास्थाय सहस्रार्कद्युतिसदृशं दिव्याप्सरोगणाकीर्णं हिरण्मयं वासुदेवलोकं जगाम ।।७३।। तस्मिन्काले दारुको रथमारुह्य विष्णोः समीपं विवेश । कृष्णोऽपि मत्स्वरूपमर्जुनं पूर्वमानयस्वेति प्रेषयामास । स तु मनोजवस्यन्दनमारुह्याऽर्जुनसमीपमाजगाम । एतस्मिन्नन्तरे देव्यर्जुनस्तदारुह्य परिणीय नमस्कृत्य किंकरोमीति पुटाञ्जलिरुवाच ।।७४।। कृष्णस्तु तमाह पार्थ! अहं स्वलोकं यास्यामि त्वं तु द्वारवतीं गत्वा तत्रस्था रुक्मिण्याद्यष्टभार्या आनीय मम शरीरे

में प्रहार किए उससे प्रद्युम्न आदि सभी यादव पूर्ण रूप से मर गये । वे सभी अपने-अपने देवत्व को प्राप्त हो गये । इस तरह से मुसल के द्वारा सब कुछ का संहार करके स्वयं अकेले भगवान् बहुत अधिक गुल्म से भरे हुए महावृक्ष की छाया में सोये हुए चार प्रकार के व्यूहों में विद्यमान वासुदेवात्मक अपनी आत्मा का चिन्तन करते हुए घुटने के ऊपर पैर को रखकर अपने मनुष्य शरीर को त्यागने की इच्छा से सो गये।।६९-७०।। इसी बीच आखेट से जीने वाला निषाद काल के प्रभाव से चक्र, वज्र, ध्वजा तथा अङ्कुश आदि के चिह्न से चिह्नित अतिरिक्त श्रीहरि के चरण कमल को देखकर उसको मृग का बच्चा मानकर सम्पूर्ण यदुवंश का विनाश करने वाले मुसल के टुकड़े से निर्मित बाण से मारा ।।७१।। उसके पश्चात् उन्हें श्रीकृष्ण जानकर अत्यन्त भयभीत होकर काँपते हुए हाथ जोड़कर मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है इस तरह से कहता हुआ श्रीभगवान् को प्रणाम किया । भगवान् श्रीकृष्ण वैसे हुए उसको देखकर अमृतमय अपने हाथों से उसको उठाकर कहे तुमने अपराध नहीं किया है इस तरह से अत्यन्त भयभीत उसको कहे।।७२।। उसके बाद उसको उन्होंने योगियों को प्राप्त होने वाले पुनरावृत्ति से रहित शाश्वत सम्पूर्ण उपनिषदमय वैष्णव लोक प्रदान किए । वह उसी ही मुहूर्त में अपने मनुष्य शरीर को त्यागकर पञ्चोपनिषन्मय अपने सम्पूर्ण पुत्रों तथा पत्नी के साथ प्रकाशमय विष्णुलोक में दिव्य विमान पर बैठकर हजारों सूर्य की कान्ति के समान दिव्य अप्सरा समूह से परिपूर्ण हिरण्मय वासुदेव के लोक में चला गया ।।७३।। उसी समय दारुक रथ पर चढ़कर भगवान् विष्णु के समीप आया । भगवान् कृष्ण भी मेरे स्वरूप भूत अर्जुन को पहले लाओ यह कहकर उसे भेजे । वह मन के समान वेग वाले रथ पर बैठकर अर्जुन के समीप आया । उसी समय अर्जुन उस पर बैठकर भगवान् की परिक्रमा और नमस्कार करके हाथ जोड़कर मैं क्या करूँ इस तरह कहे ।।७४।। भगवान् कृष्ण ने उससे कहा अर्जुन मैं अपने लोक जा रहा हूँ । तुम द्वारका जाकर वहाँ पर रुक्मिणी आदि आठ पत्नियों को लाकर मेरे शरीर में प्रवेश करा दो । अर्जुन दारुक के साथ द्वारका आये।

प्रेषय। स दारुकेण सहितो नगरीमाजगाम । एतस्मिन्नन्तरे देवा विमानस्था नभसि संस्थिताःस्वर्लोकं यियासन्तं कृष्णं दृष्ट्वा ऋषिभिः सार्द्धं स्तुत्वा पुष्पवर्षाणि ववृषुः । कृष्णोऽपि मानुषदेहं संन्यस्य सकलजगत्स्थितिसंहारहेतुभूतं सकलक्षेत्रज्ञान्तर्यामियोगिध्येयमनामयं वासुदेवात्मकं देहं धृत्वा वनतेयमारुह्य महर्षिभिः स्तूयमानो जगाम ॥७५॥ अर्जुनो वसुदेवोग्रसेनाभ्यां रुक्मिण्यादिमहिषीभ्यस्तत्सर्वं कथयामास। तच्छ्रुत्वा सर्वे पौरजनाः स्त्रियश्च द्वारवतीमुत्सृज्याऽन्तःपुराद्बहिर्निष्क्रम्य सर्वास्ताः कृष्णवल्लभा वसुदेवोग्रसेनसहिताः शीघ्रमेव हरेः समीपं जग्मुः ॥७६॥ ते सर्वे वसुदेवोग्रसेनाक्रूरादयो यदुवृद्धास्तान्निहतान्रामकृष्णप्रद्युम्नानिरुद्धादीन्सर्वान्यादवान्दृष्ट्वा महता शोकेन सन्तप्ताः स्वदारसहिता महान्तमग्निं प्रज्वाल्य तस्मिन्प्रविश्य निर्दग्धास्त्यक्तजीविता बभूवुः ॥७७॥ तत्सुरतरूचन्दनागरुकाष्ठैश्चितिं कारयित्वा तस्मिन्वैदिगाग्निं प्रज्वाल्य तस्मिन्कृष्णस्य शरीरं निक्षिप्य वेदोक्तविधिना संस्कारमर्जुनश्चकार। कृष्णपत्न्यो रुक्मिणीसत्यभामाकालिन्दीमित्रविन्दाजाम्बवती नाग्नजित्सुशीलासुलक्षणा एताः सर्वामहिष्यस्तमग्निं प्रविश्य च भर्तृशरीरं परिष्वज्य तेनाग्निनानिर्दग्धाः स्वान्स्वानंशान्समेत्य दिव्यविमानाधिरूढाः सकलदेवगणसम्पूज्यमाना दिव्याऽप्सरोगणसंकुला वासुदेवलोकमाजग्मुः ॥७८॥ रेवती च बलभद्रशरीरं परिष्वज्याऽग्निं प्रविश्य तस्मिन्देहं त्यक्त्वा दिव्यं देहं प्राप्य दिव्यविमानारूढा भर्तुः स्थानं संकर्षलोकं दिव्यमवाप ॥७९॥ तथैव प्रद्युम्नेन सह रुक्मिपुत्री तथाऽनिरुद्धेनोषाऽपि सर्वाश्च यादवस्त्रियः स्वस्वभर्तुः शरीराणि परिष्वज्याऽग्निप्रवेशं चक्रुः ॥८०॥ तेषां सर्वेषामर्जुनऔर्द्ध्वदैहिकं

इसी के बीच में देवता विमान पर बैठकर आकाश में स्थित होकर स्वलोक जाने की इच्छा वाले भगवान् कृष्ण को देखकर ऋषियों के साथ स्तुति करके पुष्पों की वर्षा किए । कृष्ण भी मानुष शरीर को त्यागकर सम्पूर्ण जगत् की स्थिति और संहार के कारण भूत सभी जीवों के अन्तर्यामी, योगियों द्वारा ध्यान करने योग्य निर्दोष वासुदेवात्मक शरीर को धारण करके गरुड़ पर चढ़कर महर्षियों द्वारा स्तुति किए जाते हुए चले गये ॥७५॥ अर्जुन वसुदेव और उग्रसेन तथा आठ महर्षियों को सारी बात बतलाये । उसको सुनकर सभी नागरिक और स्त्रियाँ द्वारका को त्यागकर तथा अन्तःपुर से बाहर निकलकर वे सभी कृष्ण भगवान् की प्रियतमाएँ, वसुदेव तथा उग्रसेन तथा अक्रूर आदि के साथ शीघ्र ही श्रीहरि के समीप चले गये ॥७६॥ वे सभी वसुदेव, उग्रसेन तथा अक्रूर इत्यादि यदुवृद्धों को देखकर अत्यन्त शोक से संतप्त होकर अपनी पत्नियों के साथ अत्यधिक अग्नि को जलाकर और उसमें प्रवेश करके जलकर अपने प्राणों को त्याग दिए।।७७।। देववृक्ष, चन्दन और अगरु के काष्ठ से चित्ता बनाकर और उसमें वैदिकाग्नि को जलाकर उस पर भगवान् कृष्ण के शरीर को रखकर वैदिक विधि से अर्जुन ने संस्कार किया । भगवान् कृष्ण की पत्नियाँ रुक्मिणी, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्र विन्दा, जाम्बवती, नाग्नजीती, सुशीला और सुलक्षणा ये सभी पत्नियाँ उस अग्नि में प्रवेश करके अपने पति के शरीर का आलिङ्गन करके उस अग्नि के द्वारा प्रज्ज्वलित शरीर वाली होकर अपने-अपने अंशों को प्राप्त करके दिव्य विमान पर बैठकर सभी देव समूह से पूजित होती हुयी दिव्य अप्सरागण के साथ वासुदेव के लोक में चली गयीं ॥७८॥ रेवतीजी बलरामजी के शरीर का आलिङ्गन करके, अग्नि में प्रवेश करके उसमें अपने शरीर का त्याग करके तथा दिव्य शरीर को प्राप्त करके दिव्य विमान पर बैठकर अपने पति के स्थान दिव्य सङ्कर्षण लोक में चली गयीं । उसी तरह प्रद्युम्न के साथ रुक्मी की पुत्री तथा अनिरुद्धजी के साथ उषा भी, इसी तरह सभी यादव स्त्रियाँ

कृतवान् ॥८१॥ तस्मिन्काले दिव्यवाजिसमायुक्तं सुग्रीवाख्यकं सर्वरत्नोपेतं दिव्यं स्यन्दनमारुह्य दारुकोऽपि वैष्णवं लोकं जगाम । पारिजाततरुर्देवसभासुधर्मा च त्रिदशेन्द्रलोकमयाताम् । तस्मिन्समये द्वारवतीपुरी महोदधौ निमग्नाऽभूत् ॥८२॥ ततः सर्वाः षोडशसहस्रस्त्रियः कृष्णभार्या अर्जुनो गृहीत्वा स्वां पुरीमगच्छत् । तस्मिन्नध्वनि एकेनाऽर्जुनेन समानीतं स्त्रीधनं दस्यवो दृष्ट्वा तदपहर्तुं सत्त्वरमाययुः। तान्समारबधान्म्लेच्छान्दृष्ट्वाऽर्जुनोऽपि तैर्योद्धं धनुरादाय तज्ज्या रोपितुमपि शक्तोनाऽभूत् । धनुर्ग्रहणेऽप्यशक्तमर्जुनं दस्यवो दृष्ट्वा सर्वा योषितो जगृहुः । ताः पूर्वं देवगन्धर्वयोषितो ह्यष्टावक्त्रं महामुनिं दृष्ट्वा जहसुस्ततस्तेन शप्ता वेश्याभविष्यथेति ततस्ताभिः प्रसादितः पूजितश्च तत्प्रसादात्सर्वलोकैश्च नमस्कृतं वासुदेवं भर्तारमवाप्याऽपि तेनैव दस्युहस्तंगता अभवन् ॥८३॥ अर्जुनोऽपि दस्युभिर्निर्जितः शोकसमाविष्टो मम भुजबलं सवीर्यं कृष्णेनैव सह सर्वमैश्वर्यं निर्यातमिति मत्वा अद्य मम भाग्यक्षय इतिवदन्सायं सन्ध्यारविरिव निःशेषविनष्टतेजाः स्वां पुरीं समाजगाम॥८४॥ एवं हितार्थाय सर्वदेवानां समस्तभूभारविनाशाय च यदुवंशेऽवतीर्य सकलराक्षसविनाशं कृत्वा महान्तमपि चोर्वीभारं नाशयित्वा नन्दव्रजद्वारकामथुरानिवासिनः सर्वान्स्थावरजङ्गमान्कालभवबन्धैर्मोचयित्वा परमैश्वर्ये शाश्वते योगिगम्ये हिरणमये रम्ये सात्त्विके संस्थाप्य नित्यं दिव्यमहिष्यादिसंसेव्यमानो वासुदेवउवास॥८५॥

अपने-अपने पति के शरीरों का आलिङ्गन करके अग्नि में प्रवेश कर गयीं । उन सबों का अर्जुन ने और्ध्व दैहिक कर्म किया ॥७९-८०॥ उसी समय दिव्य अश्वों से युक्त दिव्य रत्न वाले सुग्रीव नामक दिव्य रथ पर बैठकर दारुक भी वैष्णव लोक में चले गये । पारिजात वृक्ष तथा सुधर्मा सभा भी इन्द्र के लोक में चले गये । उसी समय द्वारकापुरी महासमुद्र में डूब गयीं ॥८१॥ उस समय सोलह हजार स्त्रियाँ जो भगवान् कृष्ण की पत्नियाँ थीं उन सबों को लेकर अर्जुन अपनी नगरी के लिए चल पड़े । उस मार्ग में एक ही अर्जुन के द्वारा ले जाये जाते हुए स्त्री धन को देखकर लुटेरे उसे लूटने के लिए आ गये ॥८२॥ उन एकत्रित लुटेरों म्लेच्छों को देखकर अर्जुन भी उन सबों के साथ युद्ध करने के लिए धनुष लेकर उसकी डोरी को चढ़ाने में समर्थ नहीं हुए । धनुष को धारण करने में भी असमर्थ अर्जुन को देखकर वे सभी स्त्रियों को लूट लिए । वे सब देव गन्धर्वो की स्त्रियाँ अष्टावक्त्र मुनि को देखकर उनका माखौल उड़ायी थीं । उसके कारण उनके द्वारा तुमलोग वेश्या हो जाओगी इस तरह से अभिशप्त होकर उसके पश्चात् उन सबों से प्रसन्न किए जाकर तथा पूजित होकर उनकी कृपा से सभी लोकों से नमस्कृत वासुदेव भगवान् को अपने पति के रूप में प्राप्त करोगी, इस तरह से कहने के कारण वे सब लुटेरों द्वारा लूट ली गयीं ॥८३॥ अर्जुन भी लुटेरों से पराजित होकर शेकाविष्ट होकर; हमारे पराक्रम और बल भगवान् श्रीकृष्ण के ही साथ चले गये इस तरह से मानकर आज हमारे भाग्य का क्षय हो गया, इस तरह से कहते हुए सायंकालीन सूर्य के समान पूर्णरूप से तेज के नष्ट हुए वे अपनी नगरी में आये ॥८४॥ इस तरह देवताओं का कल्याण करने के लिए तथा पृथिवी के भार को विनष्ट करने के लिए यदुवंश में अवतीर्ण होकर सभी राक्षसों का विनाश करके तथा महान् पृथिवी के भार को नष्ट करके नन्दव्रज, मथुरा तथा द्वारका निवासियों तथा सभी स्थावर जंगमों को काल से होने वाला संसार बन्ध से मुक्त करके परम ऐश्वर्य सम्पन्न शाश्वत योगिप्राप्य हिरण्यमय मनोहर सात्त्विक लोक में स्थापित करके नित्य ही दिव्य महीषियों आदि से सेवित होकर भगवान् अपने लोक में निवास किए ॥८५॥ **इस विषय में ये श्लोक हैं** । दूसरे सभी अवतारों से

अत्र श्लोका:

अन्ये सर्वेऽवताराःस्युः कृष्णस्य चरितं महत् ।
भूभारकविनाशाय प्रादुर्भूतो रमापतिः ॥८६॥
एतत्कृष्णस्य चरितं दुष्टानां नाशहेतवे। श्रीकृष्णः करुणासिन्धुर्वैकुण्ठे मोदते सदा॥८७॥
अत्यद्भुतमिदं देवि ! कृष्णस्य चरितं शुभम् ।
संग्रहेण मयैवोक्तं तव सर्वफलप्रदम् ॥८८॥
वासुदेवस्य चरितं यः पठेद्धरिसंनिधौ। स्मरेद्वा शृणुयाद्भक्तया स याति परमं पदम् ॥८९॥
महापातकयुक्तो वा तथोपपातकसंयुतः। बालकृष्णस्य चरितं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते॥९०॥
द्वारवत्यां समासीनं रुक्मिमणीसहितं हरिम् ।
स्मरन्वै महदैश्वर्यमनेनाऽऽप्नोत्यसंशयम् ॥९१॥
संग्रामे सङ्कटे दुर्गे शत्रुभिः परिवेष्टिते। नेतारं सर्वदेवानां ध्यातवा सुविजयी भवेत्॥९२॥
यः स्मरेद्गोपकन्याभिः क्रीडन्तं गोव्रजे शुभे ।
सर्वकामानवाप्नोति सौभाग्यं चैव विन्दति ॥९३॥
महोपसर्गरोगाद्यैर्युक्तो यस्तु सनातनम्। जेतारं च महारौद्रीं कृतं काशीपुरे स्थिताम् ॥९४॥
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वकालेषु चाप्युमे !। कृष्णाय नमइत्येवं मन्त्रमुच्चारयेद्बुधः ॥९५॥
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ॥९६॥
इमं मन्त्रे जपन्देवि ! भक्तया प्रतिदिनं नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥९७॥

भगवान् श्रीकृष्ण का चरित महान है । पृथिवी के भाग का विनाश करने के लिए श्रीभगवान् अवतीर्ण हुए॥८६॥ भगवान् श्रीकृष्ण का यह चरित दुष्टों के नाश के लिए है । भगवान् कृष्ण करुणा सागर हैं वे सदा वैकुण्ठ में आनन्दित होते हैं ॥८७॥ हे देवि ! भगवान् श्रीकृष्ण का चरित अत्यन्त अद्भुत है । मैंने इसे तुमको संक्षेप में सुनाया है यह सभी फलों को प्रदान करने वाला है ॥८८॥ भगवान् वासुदेव के चरित को जो श्रीहरि के सन्निकट पढ़ता है, या स्मरण करता है या भक्ति पूर्वक सुनता है वह परम पद को प्राप्त करता है ॥८९॥ चाहे वह महापातक से युक्त हो या उपपातक से युक्त हो वह बाल कृष्ण के चरित को सुनकर पापों से मुक्त हो जाता है ॥९०॥ द्वारवती में रुक्मिणी देवी के साथ रहने वाले श्रीहरि को स्मरण करने वाला मनुष्य निश्चित रूप से महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥९१॥ संग्राम में, दुर्गम सङ्कट में, अथवा शत्रुओं के द्वारा घेर लिए जाने पर सभी देवताओं के स्वामी श्रीभगवान् का ध्यान करके मनुष्य विजयी हो जाता है ॥९२॥ जो गोप कन्याओं के साथ गोव्रज में कीड़ा करते हुए श्रीभगवान् का स्मरण करता है वह अपनी सारी कामनाओं को प्राप्त करके सौभाग्य को प्राप्त करता है ॥९३॥ महान् उपसर्गों अथवा रोगों आदि से युक्त सनातन काशीपुरी में स्थित महारौद्री कृत्या को जीतने वाले श्रीभगवान् का जो स्मरण करता है वह सौभाग्य को प्राप्त करता है ॥९४॥ इस विषय में बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है हे उमे ! विद्वानों को चाहिए कि वे सदा कृष्णाय नमः इस मन्त्र का उच्चारण करते रहें ॥९५॥ कृष्ण, वासुदेव, श्रीहरि, परमात्मा, शरणात जीवों के कष्ट को नष्ट करने वाले भगवान् गोविन्द को बारम्बार

सर्वेषामेव देवानामीश्वरोऽसौ जनार्दनः। रक्षणाय च लोकनामवस्थान्तरमेति वै ॥९८॥
त्रिपुरं हन्तुकामेन मया सम्पूजितो हरिः। बुद्धरूपधरः श्रीमान्मोहयामास तद्रिपून् ॥९९।
मोहितास्तेन शास्त्रेण सर्वधर्मविवर्जिताः। नारायणास्त्रेण मया निहता देवशत्रवः ॥१००॥
अवतीर्य कलावन्ते ब्राह्मणस्य निवेशने। हनिष्यति तथा रौद्रान्म्लेच्छान्सर्वाञ्जनार्दनः ॥१०१॥
तैस्तैर्भावैर्मयाऽवस्थाः सर्वाः प्रोक्ता जगत्पतेः।
किमन्यच्छ्रोतुकामाऽसि तद्ब्रवीमि शुभानने ! ॥१०२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणेपञ्चपञ्चाशात्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वर सम्वादे श्रीकृष्णाचरितेश्रीकृष्णास्वधामगमननिरूपणं नाम द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५२॥

दो सौ तिरपनवाँ अध्याय

श्रीपार्वत्युवाच

भगवन्सर्वमाख्यातं वैभवावस्थितं हरेः। एतस्मिन्रामकृष्णाभ्यां चरित्रमतिविस्मितम् ॥१॥
अहो रामस चरितं कृष्णस्य च महात्मनः। शृण्वन्त्या मम देवेश ! कल्पान्तरशतैरपि ॥२॥

नमस्कार है ॥९६॥ हे देवि ! इस मन्त्र को प्रतिदिन भक्ति पूर्वक जप करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक को प्राप्त करता है ॥९७॥ ये भगवान् जनार्दन सभी देवताओं के स्वामी हैं वे लोकों की रक्षा करने के लिए दूसरी अवस्था को प्राप्त करते हैं ॥९८॥ त्रिपुर को विनष्ट करने के लिए मैंने श्रीहरि की पूजा की तो श्रीभगवान् बुद्ध का रूप धारण करके देवताओं के शत्रुओं को मोहित कर दिए ॥९९॥ श्रीभगवान् के द्वारा शास्त्र के द्वारा मोहित किए गये वे सभी धर्मों से रहित हो गये। तब मैंने उन देव शत्रुओं का वध नारायणास्त्र से किया ॥१००॥ कलि के अन्त में भगवान् जनार्दन, ब्राह्मण के घर में अवतार लेंगे और सभी भयङ्कर म्लेच्छों को विनष्ट करेंगे ॥१०१॥ मैंने विभिन्न प्रकार के भावों वाले जगत् के स्वामी की सभी अवस्थाओं का वर्णन किया। तुम अब क्या सुनना चाहती हो ? उसे मैं बतलाता हूँ ॥१०२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत श्रीकृष्ण चरित के प्रसङ्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन का वर्णन नामक दो सौ बावनवें अध्याय का शिप्रवसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५२।।

उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत भगवान् विष्णु की पूजा के विधान के साथ वैष्णवों के आचार का वर्णन

श्रीपार्वतीजी ने कहा— हे भगवन् ! आपने श्रीभगवान् के सभी विभवावस्थाओं का वर्णन किया। इसमें भगवान् राम और भगवान् श्रीकृष्ण के चरित अत्यन्त विस्मित करने वाले हैं ॥१॥ धन्य है भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण का चरित। हे देवेश ! इसको सौ कल्पों तक भी सुनते रहने पर मुझको

तृप्तिं नैवैति भूतेश ! चेतो हरिकथामृतम् ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।।
तत्पूजनविधिं देव ! श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ।।३।।

श्रीरुद्र उवाच

श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि हरेश्च सुमहात्मनः। स्थापनं च स्वयंव्यक्तं द्विविधंतत्प्रकीर्त्तितम् ।।४।।
शिलामृद्दारुलोहाद्यैः कृत्वा प्रतिकृतिं हरेः। श्रौतस्मार्तागमप्रोक्तक्रियासंस्थापनं हि यत् ।।५।।
तत्स्थापनमिति प्रोक्तं स्वयं व्यक्तं हि मे श्रृणु ।
यस्मिन्संनिहितो विष्णुः स्वयमेव नृणां भुवि ।।६।।
पाषाणदार्वोरात्मेशः स्वयं व्यक्तंहितत्स्मृतम्। स्वयं व्यक्तंस्थापितम्वापूजयेन्मधुसूदनम्।।७।।
देवतानां महर्षीणामर्चनार्थे सनातनः। स्वयमेव जगन्नाथः सान्निध्यं याति केशवः ।।८।।
यस्य यद्विग्रहे भोग्यं तदेवाऽऽविरभूद्भुवि। तदेव पूजयेन्नित्यं तस्मिन्नेव रमेत्सदा ।।९।।
श्रीरङ्गशायीदेवेशोविधिनाऽर्च्यः सुरोत्तमः। स एवेक्ष्वाकुनाथानांतपसाऽऽविरभूद्भुवि ।।१०।।
ममाऽपि काश्यां सम्पूज्यो माधवः कलुषापहः ।
यत्रयत्र गृहे रम्ये स्वयं व्यक्तः सनातनः ।।११।।
तत्रतत्र समागम्य रमेऽहंसम्व्यवस्थितः। नाऽष्टाङ्गयोगे यज्ञेशस्त्वर्चायांविन्दते नृणाम्।।१२।।
चक्षुपोर्विषय प्राप्य ददाति वरमीप्सितम्। सर्वावस्थासु सौलभ्यमर्चायां लभ्यते जनैः ।।१३।।
अज्ञानामपि सान्निध्यं सर्वदा पृथिवीतले। जन्बूद्वीपे महापुण्ये वर्षे वै भारते शुभे।।१४।।

तृप्ति नहीं हो सकती है ।।२।। हे भूतेश ! हरिकथा रूपी अमृत से अन्तःकरण तृप्त नहीं होता है । अब मैं भगवान् विष्णु के उत्तम माहात्म्य को सुनना चाहती हूँ । तथा हे देव श्रीभगवान् के पूजन विधि को सुनना चाहती हूँ ।।३।। **श्रीरुद्र ने कहा—** हे देवि सुनो ! महात्मा श्रीहरि की स्वयं व्यक्त स्थापना दो प्रकार की है ।।४।। शिला, मिट्टी, काष्ठ अथवा लोहा अदि से श्रीहरि की मूर्ति बनाकर श्रौत स्मार्त आगम में वतलायी गयी जो स्थापना की प्रक्रिया है । उस प्रक्रिया को स्थापना प्रक्रिया कहते हैं जो स्व्यंव्यक्तं को मैं बतलाता हूँ । उसमें भगवान् विष्णु स्वयं विद्यमान रहते हैं ।।५-६।। पाषाण अथवा काष्ठ में श्रीभगवान् को स्वयं व्यक्त बतलाया गया है । श्रीभगवान् की स्वयं व्यक्त अथवा स्थापित भगवान् की पूजा करनी चाहिए।।७।। देवताओं अथवा महर्षियों के लिए ही सनातन श्रीभगवान् सन्निध्य को प्राप्त करते हैं ।।८।। जिसका जो भोग्य होता है उसी में श्रीहरि अविर्भूत हो जाते हैं उसी में उनकी पूजा करे और सदा उसी में आनन्दमग्न रहे ।।९।। देवताओं में श्रेष्ठ श्रीरङ्गशायी श्रीभगवान् की विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिए । वे ही इक्ष्वाकु वंश के राजाओं की तपस्या से पृथिवी पर स्वयमाविर्भूत हुए ।।१०।। काशी में माधव भगवान् मेरे भी पूज्य हैं वे पापों का विनाश करते हैं । जहाँ-जहाँ मनोहर गृह में स्वयं व्यक्त भगवान् रहते हैं वहाँ-वहाँ मैं आकर खूब अच्छी तरह से निवास करता हूँ । अष्टाङ्गयोग के द्वारा यज्ञेश भगवान् की प्राप्ति मनुष्यों को नहीं होती है ।।११-१२।। वे भगवान् दर्शन देकर अभिप्रेत वरदान को देते हैं । सभी अवस्थाओं की अपेक्षा मनुष्य अर्चावतार में श्रीभगवान् को सुलभता पूर्वक प्राप्त करते हैं ।।१३।। इस अवस्था में अज्ञानियों को भी पृथिवी

अर्चायां सन्निधौ विष्णुर्नेतरेषु कदाचन। तत्तस्माद्भारते वर्षे मुनिभिस्त्रिदशैरपि ॥१५॥
सेवितः सततं देवि ! तपोयज्ञक्रियादिभिः। भारतेऽस्मिन्महावर्षे नित्यं सन्निहितो हरिः ॥१६॥
ऐन्द्रद्युम्ने तथा कौर्मे सिंहाद्रौ करवीरके। काश्यां प्रयागे सौम्ये च शालग्रामाचलेतथा॥१७॥
द्वारवत्यां नैमिषे च तथा बदरिकाश्रमे। कतशौचे हरेत्पापंपौण्डरीके च दण्डके॥१८॥
माथुरे वेङ्कटाद्रौ च श्वेताद्रौ गरुडाचले। काञ्च्यामानन्तशयने श्रीरङ्गे वासवाचले ॥१९॥
नारायणाचले सौम्ये वाराहे वामनाश्रमे। एवमाद्याःस्वयं व्यक्ताः सर्वकामफलप्रदाः ॥२०॥

स्वयमेव हि सान्निध्यं यस्मिन्याति जनार्दनः ।
तस्मिन्नेव स्वयं व्यक्तं वदन्ति मुनयः शुभाः ॥२१॥

महाभागवतश्रेष्ठो विधिनास्थाप्यकेशवम्। मन्त्रेणकुर्यात्सांनिध्यं स्थापनंतद्विशिष्यते ॥२२॥
तस्मिन्सम्पूजयेद्देवं ग्रामेषु च गृहेषु च। शालग्रामशिलायां तु गृहार्चा सद्भिरिष्यते॥२३॥
अर्चनं मन्त्रपठनं यागयोगो महात्मनः। नामसङ्कीर्तनं सेवा तच्चिह्नैरङ्कनं यथा ॥२४॥
तदीयाराधनं च स्यान्नवधा भिद्यते शुभे। नवकर्मविधानेज्या विप्रस्य सततं स्मृता ॥२५॥
महाभागवतश्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम्। सर्वेषामेव लोकानामसौ पूज्यो यथा हरिः ॥२६॥
तापादिपञ्चसंस्कारी नवेज्याकर्मकारकः। अर्थपञ्चकविद्विप्रो महाभागवतः स्मृतः ॥२७॥
नवकर्मविधानेज्या क्षत्रियस्य विधीयते। तच्चिह्नैरङ्कनं सेवा तदीयानां च पूजनम् ॥२८॥

पर भगवान का सान्निध्य अत्यन्त पवित्र जम्बूद्वीप में, उसमें भी भारत वर्ष में ही प्राप्त होता है ॥१४॥ केवल भारत वर्ष में ही भगवान् अर्चामूर्ति में विद्यमान रहते हैं। दूसरे वर्षों में नहीं। इसीलिए मुनियों तथा देवताओं के द्वारा सेवित भगवान् विष्णु हे देवि ! सदा तपस्या तथा यज्ञ आदि के द्वारा सेवित श्रीहरि इस भारत वर्ष में सदा विद्यमान रहते हैं ॥१५-१६॥ इन्द्रद्युम्न पर्वत पर, कूर्म पर्वत पर, सिंहाचल पर, करवीरक में, काशी में, सौम्य प्रयाग में, तथा शालग्राम क्षेत्र में, द्वारका भौमिषारण्य बदरिकाश्रम, कतशौच में पुण्डारीक वन में तथा दण्डकारण्य में, मथुरा, वेङ्कटाद्रि, श्वेताचल, गरुडाचल, काञ्ची, अनन्तशयन, श्रीरङ्गम्, वासवाचल, नारायणाचल, सौम्य वाराहातीर्थ तथा वामनाश्रम में रहकर स्वयं व्यक्त भगवान् सभी कामनाओं की पूर्ति रूपी फल प्रदान करते हैं ॥१७-२०॥ जिसमें भगवान् स्वयं ही जाते हैं, उसी में मुनिजन भगवान् को स्वयं व्यक्त बतलाते हैं ॥२१॥ महाभागवतों में श्रेष्ठ पुरुष विधि पूर्वक श्रीभगवान् की स्थापना करके मन्त्र के द्वारा उनका सान्निध्य कराते हैं उसी विधि को स्थापना विधि कहते हैं ॥२२॥ उसमें श्रीभगवान् की ग्रामों तथा नगरों में करे, शालिग्राम शिला में सज्जनों ने गृहार्चा बतलाया है ॥२३॥ श्रीभगवान् की अर्चना, उनका मन्त्र पढ़ना, यागयोग नाम संकीर्तन, सेवा तथा श्रीभगवान् के चिह्नों से चित्र बनाना तथा भागवतों का आराधन हे देवि ! नव प्रकार की पूजा है ॥२४॥ इन नव कर्मों को विधान से ब्राह्मण की पूजा बतलायी गयी ॥२५॥ महाभागवत श्रेष्ठ ब्राह्मण मनुष्यों का गुरु होता है। वह सभी मनुष्यों के लिए श्रीहरि के समान पूज्य है ॥२६॥ ताप आदि पञ्चसंस्कारों से सम्पन्न तथा नव प्रकार की इज्या कर्म को करने वाला तथा अर्थपञ्चक को जानने वाला ब्राह्मण महाभागवत कहा गया है ॥२७॥ कर्म विधान से क्षत्रिय की इज्या बतलायी गयी। श्रीभगवान् के चिह्न से चिह्नित होना, भगवान् की सेवा

मन्त्रवर्णस्य जपनं नामसङ्कीर्तनं हरेः । वन्दनं च विशां प्रोक्तं षट्कर्मेज्या विधानतः॥२९॥
नामसङ्कीर्तनं सेवा पूजनं वन्दनं तथा । अर्चनं च तदीयानां पञ्चेज्या शूद्रजन्मनः ॥३०॥
साधारणेन सर्वेषां मानसेज्यानृणांप्रिये !। स्वाधिकारानुरू च कार्याचेज्या जगत्पतेः ॥३१॥
अनन्यदेवताभक्तैरनन्यफलसाधकैः । वेदविद्ब्रह्मतत्त्वज्ञैर्वीतरागैर्मुमुक्षुभिः ॥३२॥
गुरुभक्तिसमायुक्तैः सुप्रसन्नैः सुसाधुभिः । ब्राह्मणैरितरैश्चाऽपि पूजनीयो हरिः सदा ॥३३॥
यथोचिता च वर्णस्य कार्या इज्या हरेर्नृणाम् ।
वर्णाश्रमानुरूपं च कर्त्तव्यं वैष्णवैः शुभैः ॥३४॥
श्रुतिस्मृत्युदितंसम्यङ्नित्यमत्रसमाचरेत् । श्रुतिस्मृत्युक्तकर्माणिनातिक्रामेतबुद्धिमान् ॥३५॥
श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं यो न सेवेत वैष्णवः। स च पाखण्डमापन्नो रौरवे नरके वसेत्॥३६॥
तस्माद्वर्णानुरूपां वै कुर्यादिज्यां जगत्पतेः। तस्मात्स्मृत्युक्तमाचारंकुर्याद्धिमानवः सदा ॥३७॥
साधारणं हि सर्वेषां मानसेज्या शुभे नृणाम् ।
स्वाधिकारंनिरीक्ष्यैवकर्मकुर्यादतन्द्रितः ॥३८॥
शमो दमस्तपः शौचं सत्यमामिषवर्जनम् । अस्तेयमेवाऽहिंसा च सर्वेषा धर्मसाधनम्॥३९॥
तस्माद्वर्णानुरूपेण पूजयेन्मधुसूदनम्। रात्रावन्ते समुत्थाय उपस्पृश्य यथाविधि ॥४०॥
नमस्कृत्य गुरूनस्वस्य संस्मरेदच्युतं हृदि । सहस्रनामभिर्भक्त्या कीर्तयेद्वाग्यतः शुचिः ॥४१॥

भागवतों की पूजा, मन्त्रों का जप, श्रीहरि के नामों का संकीर्तन तथा वन्दना यह षट्कर्म वाली इज्या वैश्यों के लिए बतलायी गयी हैं ॥२८-२९॥ भगवन्नाम संकीर्तन, श्रीभगवान् की सेवा, पूजन, वन्दन तथा भागवतों की पूजा यह पाँच प्रकार की इज्या शूद्रों की है ॥३०॥ हे प्रिये ! साधारण ढंग से सबों की मनसा इज्या होती है । अपने अधिकार के अनुसार ही श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥३१॥ अनन्य देवता के भक्त, तथा अनन्य फल के साधक, वेदज्ञ, ब्रह्मताव के ज्ञाता बीतराग मुमुक्षु पुरुषों के द्वारा ॥३२॥ गुरु भक्ति से सम्पन्न सदा प्रसन्न रहने वाले सज्जन ब्राह्मणों अथवा दूसरे लोगों को सदा श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए ॥३३॥ वर्णों के अनुसार ही मनुष्यों को श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए । शुभ वैष्णवों को भी वर्णों तथा आश्रमों के अनुरूप ही इज्या करनी चाहिए ॥३४॥ इस विषय में श्रुतियों तथा स्मृतियों में बतलायी गयी ही विधि का पालन करना चाहिए । बुद्धिमान को चाहिए कि वह श्रुतियों तथा स्मृतियों में कहे गये कर्मों का कभी अतिक्रमण न करे ॥३५॥ श्रुतियों तथा स्मृतियों में उक्त आचार का जो वैष्णव सेवन नहीं करता है वह पाखण्डत्व को प्राप्त करके रौरव नरक में जाता है ॥३६॥ अतएव अपने वर्ण के अनुसार ही श्रीहरि की इज्या करे । अतएव मनुष्य को सदा श्रुतियों तथा स्मृतियों में उक्त आचार का पालन करना चाहिए ॥३७॥ हे शुभे ! सभी मनुष्यों के लिए साधारण रूप से मानसिक इज्या कही गयी है । अपने अधिकार को ध्यान में ही रखकर सावधानी पूर्वक कर्म करना चाहिए ॥३८॥ शम, दम, तपस्या, पावित्र्य पालन, सत्य बोलना, मांस नहीं खाना, चोरी न करना, और अहिंसा ये सभी धर्म के साधन हैं॥३९॥ अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह अपने वर्ण के अनुसार ही भगवान् मधुसूदन की पूजा करे । रात्रि के अन्त में उठकर विधि पूर्वक आचमन करके ॥४०॥ अपने गुरुजनों को नमस्कार करके श्रीहरि का स्मरण हृदय में करना चाहिए । मौन होकर श्रीहरि के सहस्रनामों से उनका कीर्तन करे ॥४१॥ गाँव से

बहिर्ग्रामात्समुत्सृज मलमूत्रं यथाविधि। शौचं कृत्वा यथान्यायमाचम्यप्रयतः शुचिः ॥४२॥
दन्तधावनपूर्वं तु स्नानं कुर्याद्यथाविधि। आदाय तुलसीमूलमृदं तत्पत्रसंयुताम् ॥४३॥
मूलमन्त्रेणाऽभिमन्त्र्य गायत्र्या च शुभानने ! ।
मन्त्रेणैवाऽनुलिप्ताङ्गः स्नायात्कृत्वाऽघमर्षणम् ॥४४॥
हरिपादोद्भवां गङ्गां तत्राऽऽवाह्य सुनिर्मले । निमज्ज्याऽऽशु जपेत्सूक्तमघर्षणमुत्तमम् ॥४५॥
आचम्य मार्जनं कुर्यात्पौरुषोक्तक्रमादथ। पश्चादप्सु निमज्ज्याऽथ मूलमन्त्रजपेद्बुधः ॥४६॥
अष्टाविंशतिवारं वा शतमष्टोत्तरं च वा। प्रार्थयेदभिमन्त्र्याऽथ जलं मन्त्रेण वैष्णवः ॥४७॥
आचम्यतर्पयेद्देवानृषींश्चैव पितृंस्तथा। निपीड्य वस्त्रमाचम्प धौतवस्त्रेण वेष्टितः ॥४८॥
विमलां मृत्तिकां रम्यामादाय द्विजसत्तमः ।
मन्त्रेणैवाऽभिमन्त्र्याऽथ ललाटादिषु वैष्णवः ॥४९॥
धारयेदूर्द्ध्वपुण्ड्राणियथासङ्ख्यमतन्द्रितः । उपास्यविधिवत्सन्ध्यांसावित्रींचजपेद्बुधः ॥५०॥
संयतात्मा गृहंगत्वा पादौप्रक्षाल्यवाग्यतः । आचम्यैकाग्रमनसा पूजामण्डपमाविशेत् ॥५१॥
रम्ये शुभ्रतरे पीठे पुष्पोपचयशोभिते। तस्मिन्निवेश्य देवं तं लक्ष्मीनारायणं प्रभुम् ॥५२॥
पूजयेद्विधिना सम्यग्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । स्थापने वा स्वयंव्यक्ते गृह्यार्चायांविधानतः ॥५३॥
धौतस्मार्तागमोक्तनामर्चनं विधिनाद्विजः। कुर्य्याद्भक्तयायथार्ध्चविष्णोःप्रयतमानसः ॥५४॥
यथोपदिष्टं गुरुणा तथाकुर्वीत वैष्णवः । श्रौतं वैखानसम्प्रोक्तंवासिष्ठंस्मार्तमुच्यते ॥५५॥
पाञ्चरात्रविधानं च दिव्यागममितीरिताम्। क्रियालुप्तं न कर्त्तव्यंविष्णोराराधनं परम् ॥५६॥

बाहर जाकर विधि पूर्वक मल-मूत्र त्याग करे । नियमानुसार शुद्धि करके सावधानी पूर्वक आचमन करें।।४२।। दन्तधावन विधि पूर्वक स्नान करे । तुलसी पत्र से युक्त तुलसी के जड़ की मिट्टी लेकर उसको मूल-मन्त्र अथवा गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसे मन्त्र के द्वारा अङ्गों में लगाये फिर अघमर्षण करके स्नान करना चाहिए ।।४३-४४।। वहाँ पर निर्मल जल में श्रीहरि के चरणों से उत्पन्न गङ्गाजी का आवाहन करके डूबकी लगाकर अघमर्षण सूक्त का पाठ करे ।।४५।। आचमन करके पुरुष सूक्त के क्रम से मार्जन करे । उसके पश्चात् डुबकी लगाकर मूल मन्त्र का जप करे ।।४६।। चाहे अठाइस बार या एक सौ आठ बार जप करे । उसके बाद अभिमन्त्रित करके जल की प्रार्थना वैष्णव को करना चाहिए ।।४७।। फिर आचमन करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करना चाहिए । वस्त्र को गारकर आचमन करे फिर धोती पहने।।४८।। श्रेष्ठ ब्राह्मण स्वच्छ मिट्टी लेकर उसे मन्त्र से अभिमन्त्रित करे ललाट आदि में ऊर्ध्वपुण्ड्र की संख्या के अनुसार धारण करे । फिर सन्ध्या करके विधि पूर्वक गायत्री का जप करे । संयत मन वाला घर जाकर मौन होकर अपने दोनों पैरों को धोकर फिर एकाग्रमन से आचमन करके पूजा मण्डप में जाय ।।४९-५१।। मनोहर श्वेत पीठ पर जो पुष्प समूह से सुशोभित हो उस पर भगवान् लक्ष्मी नारायण को बैठाकर ।।५२।। विधि पूर्वक चन्दन, पुष्प तथा अक्षतों से अच्छी तरह से पूजा करे । स्थापित अथवा स्वयं व्यक्त विधि पूर्वक गृहाच करे ।।५३।। श्रौत स्मार्त आगमों में उक्त विधि से भक्ति पूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करे।।५४।। वैष्णव को चाहिए कि वे आचार्योपदिष्ट विधि से पूजा करें । वैखानस प्रोक्त विधि श्रौत विधि

आवाहनासनार्घ्याद्यैर्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलाद्यैर्नमस्कृतैः ॥५७॥
कूर्यादाराधनं विष्णोर्यथाशक्ति मुदान्वितः। प्रत्युचं परुषसूक्तेने मूलमन्त्रेण वैष्णवः ॥५८॥
मन्त्रद्वयेन कुर्वीत षोडशैरुपचारकैः। भूयः प्रत्युपचारेषु दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ॥५९॥
आवाहयेज्जगन्नाथं मुद्रया चैव वैष्णवः। आसनं तु यथा दद्यात्पुष्पकेण च मुद्रया॥६०॥
दीपार्घ्याचमनं स्नानं पात्रस्थैर्विमलैर्जलैः। मङ्गलद्रव्यसंयुक्तस्तुलसीदलमिश्रितैः ॥६१॥
दद्यात्प्रत्युपचारं तु मूलमन्त्रद्वयेन च। सुवासितेन तैलेन कुर्यादभ्यञ्जनं ततः ॥६२॥
कस्तूर्या चन्दनेनाऽपि कुर्यादुद्वर्त्तनादिकम् । सुगन्धवासितैस्तोयैः स्नाप्य मन्त्रयुतैः शुभैः ॥६३॥
वस्त्रैराभरणैर्दिव्येरलङ्कृत्य यथाविधि। मधुपर्कं ततो दद्याद्गन्धं दद्यात्सुवासितम्॥६४॥

सुरभीणि सुपुष्पाणि भक्तया सम्यङ्निवेदयेत् ।
धूपं दशाङ्गमष्टाङ्गं दीपं च सुमनोहरम् ॥६५॥

नैवेद्यं विविधं दद्यात्पायसापूपमिश्रितम्। कर्पूरं तु सताम्बूलं भक्तया चैव निवेदयेत्॥६६॥
दीपैर्नीराजनं कृत्वा पुष्पमालां समर्पयेत्। परिणीय प्रणम्याऽथ स्तुत्वास्तोत्रैरनुत्तमैः ॥६७॥
गरुडाङ्के शाययित्वा मङ्गलार्घ्यं निवेदयेत्। संकीर्त्यनामभिःपुण्यैःपश्चाद्धोमंसमाचरेत् ॥६८॥
हरेर्नैवेद्यशेषेण जुहुयाद्वह्निमण्डले। प्रच्यृचं पौरुषं सूक्तं श्रीसूक्तं मङ्गलाह्वयम्॥६९॥

है तथा वसिष्ठ स्मृति में प्रोक्त विधि स्मार्त विधि है ॥५५॥ पाञ्चरात्र विधि को दिव्यागम विधि कहा गया है। भगवान् की आराधना के पश्चात् क्रिया का लोप न करे ॥५६॥ आवाहन, आसन, अर्घ्य आदि के द्वारा चन्दन, पुष्प तथा अक्षत आदि से धूप, दीप, नैवेद्य ताम्बूल तथा नमस्कार आदि से ॥५७॥ भगवान् विष्णु की आराधना प्रसन्नता पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार करनी चाहिए। पुरुष सूक्त के प्रत्येक मन्त्र से अथवा मूल मन्त्र से अथवा द्वय मन्त्र से भगवान् विष्णु की षोडशोपचार पूजा करे। फिर प्रत्युपचार के द्वारा श्रीभगवान् की पुष्पाञ्जलि करे ॥५८-५९॥ वैष्णव को चाहिए कि वह मुद्रा के द्वारा ही श्रीभगवान् का आवाहन करे और पुष्पक मुद्रा से श्रीभगवान् को आसन प्रदान करे ॥६०॥ दीप, अर्घ्य, आचमन, स्नान पात्र में विद्यमान स्वच्छ जल समर्पित करे। मङ्गलद्रव्य से युक्त तथा तुलसी दल से मिश्रित जल को होना चाहिए ॥६१॥ मूल मन्त्र तथा द्वयमन्त्र से श्रीभगवान् को प्रत्युपचार दे। भगवान् का तेल मर्दन सुगन्धित तेल से करना चाहिए ॥६२॥ कस्तूरी तथा चन्दन से श्रीभगवान् को उद्वर्तन (उबटन) लगाये । सुगन्धित जल से शुभ मन्त्रों द्वारा श्रीभगवान् को स्नान कराकर ॥६३॥ विधि पूर्वक श्रीभगवान् को वस्त्र तथा आभूषणों से अलंकृत करे। उसके बाद भगवान को मधुपर्क तक सुगन्धित चन्दन प्रदान करे ॥६४॥ सुगन्धित पुष्पों को भगवान को भक्ति पूर्वक निवेदित करे। धूप को दशाङ्ग अथवा अष्टाङ्ग होना चाहिए तथा दीप को मनोहर होना चाहिए ॥६५॥ पायस (क्षीरान्न) तथा पूजा मिश्रित अनेक प्रकार का नैवेद्य निवेदित करे। फिर भक्ति पूर्वक कर्पूर मिश्रित ताम्बूल प्रदान करे ॥६६॥ दीपों के द्वारा भगवान् की आरती करके उन्हें माला निवेदित करे। परिक्रमा करके तथा प्रणाम करके उत्तम स्तोत्रों से उनकी स्तुति करके ॥६७॥ उनको गरुड़ की गोद में सुलाकर मङ्गलार्घ्य निवेदित करे। श्रीभगवान् के पवित्र नामों से उनका संकीर्तन करे उसके पश्चात् होम करे ॥६८॥ श्रीभगवान् के नैवेद्य से बचे हुए अंश से अग्नि मण्डल में होम करे।

होतव्यमाज्यसंमिश्रं हविषा वैदिकानले। प्रोक्तेन मन्त्ररत्नेन जुहुयाद्भक्तिसंयुतम् ॥७०॥
अष्टोत्तरशतवारमष्टाविंशतिमेव च। यज्ञरूपं महाविष्णुं ध्यायन्वै जुहुयाद्धविः ॥७१॥
शुद्ध जाम्बूनदनिभं शङ्खचक्रगदाधरम्। समस्तवेदवेदान्तसाङ्गोपाङ्गयुतं प्रभुम् ॥७२॥
देव्या श्रिया समासीनं घ्यात्वा होमं समाचरेत्।
एवैकामाहुतिं पश्चान्नामभिर्जुहुयाद्धविः ॥७३॥
नित्यान्भक्तान्समुद्दिश्य महाभागवतोत्तमः। भूनीला विमलाद्याश्च शक्तयः प्रथमं क्रमात् ॥७४॥
अनन्तविहगेन्द्रादिदेवतास्तदनन्तरम्। वासुदेवादयः पश्चात्तथा शक्त्यादिदेवताः ॥७५॥
मूर्त्तयः केशवाद्याश्च तथा संकर्षणादयः। मत्स्यकूर्मादयश्चैव तथा चक्रादिहेतयः ॥७६॥
कुमुदादयश्च त्रिदशास्तथा चन्द्रादिदेवताः। इन्द्रादिलोकपालाश्च तथा धर्मादिदेवताः ॥७७॥
होतव्याः क्रमशस्तस्मिन्सम्पूज्याश्च विशेषतः।
एतद्वैकुण्ठहोमं तु महाभागवतोत्तमः ॥७८॥
नित्यार्चनविधौ नित्यं कुर्वीत सुसमाहितः। गृहार्चने गृहद्वारि पञ्चयज्ञविधानतः ॥७९॥
दत्त्वा बलिं विधानेन पश्चादाचमनं चरेत्। उपविश्याऽऽसने शुभ्रे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥८०॥
मन्त्रयोगं प्रकुर्वीत भोगार्थं सुखमात्मनः। सम्यक्पद्मासनासीनो भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥८१॥
प्राणायामत्रयं कुर्यान्मन्त्रेण विजितेन्द्रियः। उदङ्मुखं ततः कृत्वा हृत्पङ्कजमनुत्तमम् ॥८२॥
विकासंतस्यकुर्वीतविज्ञानरविणा हृदि। तत्कर्णिकायां वह्न्यर्कशशिबिम्बान्यनुक्रमात् ॥८३॥

मङ्गलमय पुरुष सूक्त तथा श्रीसूक्त के प्रत्येक मन्त्र से ॥६९॥ वैदिकाग्नि में घृत मिश्रित हविष्य से होम करे। फिर द्वयमन्त्र से भक्ति पूर्वक होम करे ॥७०॥ एक सौ आठ बार अथवा अठाइस बार यज्ञ स्वरूप भगवान विष्णु का ध्यान करते हुए हविष्य से होम करे ॥७१॥ शुद्ध सुवर्ण के समान शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण किए हुए समस्त वेद तथा वेदाङ्ग युक्त श्रीहरि को ॥७२॥ लक्ष्मीदेवी के साथ उपविष्ट श्रीभगवान् का ध्यान करके होम करे। उसके बाद श्रीभगवान् के प्रत्येक नामों से हविष्य का होम करे ॥७३॥ श्रीभगवान् के नित्य भक्तों की तृप्ति के लिए महाभागवत होम करे। पहले श्रीदेवी, भूदेवी तथा नीलादेवी तथा विमला आदि शक्तियों को क्रमशः आहुति देकर ॥७४॥ उसके पश्चात् अनन्त, गरुड़, आदि देवता को उसके बाद वासुदेव आदि तथा शक्ति आदि देवताओं का क्रमशः केशव आदि मूर्तियों तथा संकर्षण आदि को तथा मत्स्य कूर्म आदि को और उसके पश्चात् चक्र आदि आयुधों को ॥७५-७६॥ कुमुद आदि देवताओं को तथा चन्द्रमा आदि देवताओं को इन्द्र आदि लोकपालों तथा धर्म आदि देवताओं को ॥७७॥ आहुती देना चाहिए और उनके विधि पूर्वक पूजा करे। महाभागवतोत्तम इस वैकुण्ठ होम को विशेष रूप से करे ॥७८॥ अच्छी तरह से सावधान होकर नित्य ही पूजन करे। गृहार्चन में गृह के द्वार पर पञ्चयज्ञ के विधान से बलि देकर फिर आचमन करे। श्वेत आसन पर बैठकर काले मृग चर्म तथा उसके ऊपर कुशासन होना चाहिए ॥७९-८०॥ फिर मन्त्रयोग को भोग के लिए तथा अपने सुख के लिए करे। अच्छी तरह से पद्मासन से बैठकर भूत शुद्धि करे ॥८१॥ फिर तीन प्राणायाम, जितेन्द्रिय होकर करना चाहिये। हृदय कमल को उत्तराभिमुख करके ॥८२॥ उसका मन्त्र रूपी सूर्य के द्वारा विकास करे। कर्णिका में अग्नि सूर्य

त्रयं त्रयीमये तस्मिंश्चिन्तयेद्वैष्णवोत्तमः। नानारत्नमयं पीठं तेषामुपरि चिन्तयेत् ॥८४॥
तस्मिन्हृत्पद्ममूलान्ते बालार्कसदृशद्युति। अष्टैश्वर्यदलं पद्मं मन्त्राक्षरमयं चरेत् ॥८५॥
तस्मिन्देव्या समासीनं कोटिशीतांसुसन्निभम्। चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥८६॥
पद्मपत्रविशालाक्षं सर्वलक्षणलक्षितम्। श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं पीतवस्त्रधरं प्रभुम् ॥८७॥
विचित्राभरणैर्युक्तं दिव्यमण्डनमण्डितम्। दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पोपशोभितम् ॥८८॥
तुलसीकोमलदलवनमालाविभूषितम्। बालार्ककोटिसदृशं कान्त्या देव्या श्रिया सह ॥८९॥
सर्वलक्षणलक्षण्या समावूलष्टतनुं शिवम्। एवं ध्वात्वा जपेन्मन्त्रं समाहितमनाःशुनि ॥९०॥
सहस्त्रं शतवारं वा यथाशक्तयथवाऽपि च। मनसैवाऽर्चनं कृत्वा विरमेत्तत्र भक्तित्र ॥९१॥
तदीयानर्चयेद्भक्त्या तस्मिन्काले समागतान्। तपयित्वाऽन्नपानाद्यैरनुव्रज्य विसर्जयेत् ॥९२॥
अर्चयित्वा पितृन्देवांसतर्पयेच्च विधानतः। सम्पूज्याऽतिथिभृत्यांश्चभुञ्जीयातांचदम्पती ॥९३॥

यक्षराक्षसभूतानामर्चनं वर्जयेत्सदा।
यो मोहात्कुरुते विप्रः स चाण्डालो भवेद्ध्रवुम् ॥९४॥

यक्षाणां च पिशाचानां मद्यमांसभुजां तथा। दिवौकसांतु भजनं सुरापानसमंस्मृतम् ॥९५॥
ब्रह्मराक्षसवेतालयक्षभूतार्चनं नृणाम्। कुम्भीपाकमहाघोरनरक्रप्राप्तिसाधनम् ॥९६॥
कोटिजन्मकृतं पुण्यं यज्ञदानक्रियादिकम्। सद्यः सर्वं लयं याति यक्षभूतादिपूजनात् ॥९७॥

तथा चन्द्र मण्डल के क्रम से ॥८३॥ उसमें तीनों को ऋग्यजुः एवं साम रूप से वैष्णवोत्तम को ध्यान करना चाहिए। उसके ऊपर अनेक रत्नमय सिंहासन का ध्यान करना चाहिए ॥८४॥ उस हृदय कमल के मूल में बाल सूर्य की कान्ति वाले पीठ पर आठ ऐश्वर्य दल रूपी कमल को मन्त्र के अक्षर मय बनाये॥८५॥ उस पर श्रीदेवी के साथ बैठे हुए चार भुजाओं वाले, सुन्दर शरीर वाले, शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए श्रीभगवान् का ध्यान करे ॥८६॥ कमल दल के समान विशाल नेत्र वाले, सभी लक्षणों से युक्त वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न तथा कौस्तुभमणि को धारण किए हुए, पीताम्बर धारण किए हुए, सबों के स्वामी ॥८७॥ विचित्र आभूषणों से युक्त, दिव्यालङ्कार से अलंकृत, अङ्गों में दिव्यचन्दन लगाये हुए, दिव्य पुष्पों से सुशोभित ॥८८॥ तुलसी के कोमल दल की बनमाला से सुशोभित, करोड़ों सूर्य के समान कान्ति वाली श्रीदेवी, जो सभी लक्षणों से सम्पन्न हैं उनके साथ आश्लिष्ट शरीर वाले, कल्याणमय भगवान् का ध्यान कर मन्त्र का जप समाहित मना और पवित्र होकर करे ॥८९-९०॥ हजार बार या सौ बार अथवा अपनी शक्ति के अनुसार जप करके श्रीभगवान् की मानसिक अर्चना करके भक्ति पूर्वक विराम करे ॥९१॥ उस समय आये हुए श्रीभगवान् के भक्तों की भक्ति पूर्वक पूजा करे उनको अन्न तथा जल से तृप्त करके कुछ दूर तक उनके पीछे चलकर विदा करे ॥९२॥ पितरों तथा देवताओं का पूजन करके विधि पूर्वक उनका तर्पण करे। अतिथियों और भृत्यों को भोजन कराकर फिर पति पत्नी दोनों भोजन करें ॥९३॥ यक्ष, राक्षस तथा भूतों की पूजा कभी न करे। जो ब्राह्मण अज्ञान वशात् उनकी पूजा करता है वह चाण्डाल हो जाता है ॥९४॥ यक्षों, पिशाचों तथा मद्य एवं मास खाने वाले देवताओं का पूजन करना मदिरा पीने के समान कहा गया है ॥९५॥ ब्रह्मराक्षस, बेताल, यक्ष तथा भूतों की पूजा मनुष्य के लिए अत्यन्त भयंकर कुम्भीपाक आदि नरकों के साधन हैं ॥९६॥ करोड़ों जन्मों में किए गये यज्ञ, दान सबके सब क्षण भर में

नारी वा पुरुषो वाऽपि यक्षभूतादिकार्चनात् ।
कल्पकोटिसहस्त्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥९८॥
कृमिर्भूत्वाऽथ विष्टायां पितृभिः सह मज्जति ।
यक्षाणां च पिशाचानां तामसानां दिवौकसाम् ॥९९॥

निवेदितान्नंयोऽश्नातिपूयशोणितभुगीवेत् । यक्षान्भूतगणांश्चान्यान्क्रूरान्वैब्रह्मराक्षसान् ॥१००॥
उद्दिश्य भुङ्क्तेयोविप्रः सद्यश्चाण्डालएव सः। यानारीपूजयेद्यक्षान्पिशाचोरगराक्षसान् ॥१०१॥
सा याति नरकं घोरं कालसूत्रमधोमुखी। पतिना सह कल्पान्तमुषित्वा तत्र दारुणे ॥१०२॥
लिह्यान्मूत्रपुरीषं वै कृच्छ्रात्सूचिमुखैस्तथा। कृमिभिर्भक्ष्यमाणाङ्गायावदाभूतसम्प्लवम् ॥१०३॥
पश्चाद्भूमौ दशाहेषु जायते शतसंख्यया। तस्माद्यक्षादिकानां च देवानामर्चनं त्यजेत् ॥१०४॥
स्वतन्त्रपूजनं यत्र वैदिकानामर्पि त्यजेत्। अर्चयित्वा जगद्वन्द्यं देवं नारामणं हरिम् ॥१०५॥
तदावरणसंस्थानं देवस्य परितोऽर्चयेत्। हरेर्भुक्तावशेषेण बलिं तेभ्यो विनिक्षिपेत् ॥१०६॥
होमं चैव प्रकुर्वीतं तच्छेषेणैव वैष्णवः। हरेर्निवेदितं सम्यग्देवेभ्यो जुहुयाद्धविः ॥१०७॥
पितृभ्यश्चाऽपि तद्दद्यात्सर्वमानन्त्यमाप्नुयात्। प्राणिनांपीडनंयत्तद्विदुषां निरयाय वै ॥१०८॥
अदत्तं चैव यत्किञ्चित्परस्वं गृह्यते नरैः। स्तेयं तद्विद्धि गिरिजे ! नरकस्यैव कारणम्॥१०९॥
लशुनं मद्यपानादिमूलकं गृञ्जनं तथा। तिलपिष्टं शिग्रबिल्वं तथा कोशातकीं तथा॥११०॥

अलाबुं चैव वार्ताकं बीजालीं कवचानि च ।
एवमन्यान्यभक्ष्याणि शास्त्रदृष्टानि वै नरः ॥१११॥

ही यक्षों तथा भूतों आदि की पूजा से विनष्ट हो जाते हैं ॥९७॥ नर हो या नारी यक्ष तथा भूत आदि की पूजा करने से करोड़ों हजार तथा करोड़ों सौ कल्पों तक विष्टा के कृमि होकर अपने पितरों के साथ उसमें डूब जाते हैं । यक्षो, पिशाचों तथा तामस देवताओं ॥९८-९९॥ को चढ़ाये हुए अन्न को जो खाता है वह मल, मूत्र, खून को खाने वाले हो जाते हैं । यक्षों, भूतों तथा क्रूर ब्रह्मराक्षसों ॥१००॥ की तृप्ति के लिए जो ब्राह्मण भोजन करता है वह शीघ्र ही चाण्डाल हो जाता है । जो नारी यक्षों, पिशाचों, सर्पों तथा राक्षसों की पूजा करती है ॥१०१॥ वह नीचे मुँह करके कालसूत्र नामक नरक में डाल दी जाती है । उस भयंकर नरक में अपने पति के साथ कल्पान्त पर्यन्त रहकर ॥१०२॥ मल मूत्र को सूई के समान मुख होने के कारण बड़े ही कष्ट से चाटती रहती है । महाप्रलय काल पर्यन्त उसको कीड़े काटते रहते हैं ॥१०३॥ फिर दश दिनों के लिए वह सौ बार आती है । अतएव यक्षादिकों तथा वैसे देवताओं की पूजा न करे ॥१०४॥ स्वतन्त्र रूप से वैदिकों का भी जहाँ पूजन हो तो उसको भी त्याग दे । जगदवन्द्य श्रीभगवान् की पूजा करके॥१०५॥ उसके बाद श्रीभगवान् के चारो ओर आवरण की पूजा करे और श्रीहरि के भुक्तवशिष्ट नैवेद्य से ही उन सबों को बलि प्रदान करे ॥१०६॥ वैष्णव को चाहिए कि वह उसके अवशिष्ट अंश से होम भी करे श्रीहरि को निवेदित हविष्य का देवताओं के लिए होम करना चाहिए ॥१०७॥ उसे पितरों को भी प्रदान करे तो वह आनन्त्य को प्राप्त करता है । जिससे प्राणियों को कष्ट मिलता है उससे विद्वानों को भी नरक होता है ॥१०८॥ हे गिरजे ! बिना दी गयी कोई भी दूसरे की वस्तु को जो मनुष्य ले लेता है । वह भी चोरी ही है और वह नरक प्राप्ति का कारण ही होता है ॥१०९॥ लशुन, मदिरापान, मूली, गृञ्जन, तिल की खली, शिग्रु, विल्व, कोशतकी ॥११०॥ गोललौकी, वार्ताक, बीजाली, कवच, इसी प्रकार की

खादन्नरकमाप्नोति विचित्रमशिवं तथा। अवैष्णवानां यच्चाऽन्नं पतितानां तथैव च॥११२॥
अनर्पितं तथा विष्णोः श्वमांससदृशं भवेत्। यक्षाक्षसभूतान्नं सुरामद्यञ्च गृञ्जनम्॥११३॥
योऽश्नाति निरयं याति पूयशोणितभोजनम्। एतैः संस्थापनस्पर्शसहवासादिभिर्नरः॥११४॥
येऽपि यान्त्येव निरयं विण्मूत्रकृमिभोजनम्। पतितानांच संसर्गात्पाखण्डानांतथैव च॥११५॥
सर्वयज्ञस्य भोक्तारं पुराणं पुरुषोत्तमम्। ज्ञात्वासर्वं प्रकुर्वीतनित्यनैमित्तिकाः क्रियाः॥११६॥
यक्षराक्षसभूताश्च कूष्माण्डगणभैरवाः।
नाऽर्चनीयाःसदा देवि! स्वर्गलोकमभीप्सुभिः॥११७॥
यक्षराक्षसभूतानामर्चनं वर्जयेद्द्विजः। पैशाचत्वमवाप्नोति कल्पकोटिशतत्रयम्॥११८॥
तस्माद्राक्षसभूतानामर्चनं प्रतिषिध्यते। कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च॥११९॥
रौरवं नरकं याति यक्षभूतगणार्चनात्। शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरेः॥१२०॥
रहितः सर्वधर्मेभ्यः प्रच्युतो नरकम्व्रजेत्। अगम्यागमनाद्धिंसापरद्रव्यापहारणात्॥१२१॥
अभक्ष्यभक्षणात्सद्योनरकंसमवाप्नुयात्। यस्तुपाणिगृहीतांचहित्वान्यांऽयोषितंव्रजेत्॥१२२॥
अगम्यागमनं तद्धि सद्यो नरककारकम्। पतितानां च संसर्गात्पाखण्डानां तथैव च॥१२३॥
विकर्मस्थानां च तथा यात्येव निरयं नरः। संसर्गिणां च संसर्गतत्संसर्गमपित्यजेत्॥१२४॥
वैष्णवः कुलमेकं तु वर्जयेत्पापसंयुतम्। एकान्ती सन्त्यजेद्ग्रामं महापातकमिश्रितम्॥१२५॥

दूसरी वस्तुएँ मनुष्य के लिए शास्त्रीय दृष्टि से अभक्ष्य हैं॥१११॥ इन सबों को खाने वाला नरक में जाता है, वह विचित्र तथा अकल्याणकारी है। अवैष्णवों का तथा पतितों का अन्न॥११२॥ भगवान् विष्णु को निवेदित किये बिना अन्न, कुत्ते के मांस के समान होता है। यक्षों, राक्षसों तथा भूतों का अन्न मदिरा तथा गृञ्जन॥११३॥ इन सबों को जो खाता है वह पीब तथा शोणित के भोजन के समान होता है। इन सबों के रखने, स्पर्श करने तथा सहवास आदि से मनुष्य॥११४॥ नरक में जाते हैं और उन सबों को मल-मूत्र तथा कृमि खाना पड़ता है। पतितों तथा पाखण्डियों के संसर्ग से बचना चाहिए॥११५॥ सभी यज्ञों के भोक्ता पुराण पुरुषोत्तम को जानकर नित्य और नैमित्तिक क्रियाओं को करना चाहिए॥११६॥ यक्ष, राक्षस, भूत, कुण्माण्ड समूह तथा भैरव की पूजा हे देवि! स्वर्ग लोक को चाहने वालों को नहीं करनी चाहिए॥११७॥ ब्राह्मण को चाहिये कि वह यक्ष, राक्षस तथा भूतों की पूजा त्याग दे। इनकी पूजा करने वाला तीन सौ करोड़ कल्पों तक पिशाच बना रहता है॥११८॥ इसीलिए राक्षसों और भूतों की पूजा का निषेध किया जाता है। इनकी पूजा करने वाला हजारों करोड़ तथा हजरों सौ कल्पों तक रौरव नरक में निवास करता है। शङ्ख, चक्र, ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रिय चिह्नों से॥११९-१२०॥ रहित मनुष्य सभी धर्मों से च्युत होकर नरक में जाता है। अगम्यागमन करने, हिंसा करने तथ दूसरे के द्रव्य को चुराने से॥१२१॥ अभक्ष्य भक्षण करने से मनुष्य शीघ्र ही नरक में चला जाता है। जो अपनी पाणिगृहीता पत्नी को त्यागकर दूसरी स्त्री के साथ सङ्गम करता है॥१२२॥ वह भी अगम्यागमन ही है और वह सद्यः नरक प्रदान करने वाला है। पतितों तथा पाखण्डों के सम्बन्ध से॥१२३॥ तथा निन्दित कर्म करने वाला मनुष्य नरक में जाता है। इन सबों के साथ संसंर्ग रखने वाले के साथ संसर्ग को भी

तथैव परमैकान्ती तद्देशमपि वर्जयेत्। स्वकर्मज्ञानभक्त्यादिसाधनं वैष्णवं स्मृतम् ॥१२६॥
हरेराज्ञानुरूपेण कर्मज्ञानादि यश्चरेत् । स एकान्ती भवेद्विप्रो वासुदेवपरारयण: ॥१२७॥
अकृत्यं वैष्णव: पापबुद्ध्या सम्यक्परित्यजेत् ।
एकान्ती सन्त्यजेच्छास्त्रं दूषणान्मनसाऽपि च ॥१२८॥
तथैव परमैकान्तीहेयबुद्ध्यापरित्यजेत्। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कृत्यंतुत्रिविधंस्मृतम् ॥१२९॥
ज्ञानंतथैवलोकेऽस्मिन्मुनिभि:सम्प्रकीर्त्तितम् । कृत्याकृत्यविवेकञ्चपरलोकस्यचिन्तनम् ॥१३०॥
तत्प्राप्तिसाधनं विष्णो: स्वरूपज्ञानमेव च। भक्तियुक्तो भवेद्भक्तो नवधा सा प्रकीर्त्तिता ॥१३१॥
सुदर्शनोद्र्ध्वपुण्ड्रादितच्चिह्नैरङ्कनं शुभम्। सद्गुरोर्मन्त्रपठनमर्चनं विधिना हरे: ॥१३२॥
स्मरणं कीर्त्तनं विष्णो: सेवा च परमात्मन: ।
प्रणामस्तास्यपुरतस्तदीयानाञ्च पूजनम् ॥१३३॥
प्रसादतीर्थसेवा च भक्तिर्नवविधा स्मृता। यस्मात्प्रपद्यते देवं शरणं वैष्णवो हरिम् ॥१३४॥
प्रपत्ति: सा तु विज्ञेया त्रिविधा सम्प्रकीर्त्तिता ।
तामसी राजसी चैव सात्त्विकी त्रिविधा स्मृता ॥१३५॥
सापित्रिधाकृतासिद्धि:सामान्यासर्वदेहिनाम् । एतच्चतुष्टयं देवि ! हेयं सन्त्यज्य वैष्णव: ॥१३६॥
उपायभूतं ब्रह्मैवमवलम्बेत वैष्णवम्। उपायभावात्सन्त्यज्य कर्मज्ञानादिकं नर: ॥१३७॥
कुर्वीत भगवत्प्रीत्यै महाभागवतोत्तम: । त्रिकालमर्चयेद्विष्णुं भक्तया वै पुरुषोत्तमम् ॥१३८॥

त्याग देना चाहिए ॥१२४॥ वैष्णव को चाहिये कि वह पापी वंश का भी परित्याग कर दे । एकान्ती को चाहिए कि वह महापातक युक्त ग्राम का ही त्याग कर दे ॥१२५॥ उसी तरह परमैकान्ती को उस पाप कर्म को करने वाले देश का भी परित्याग कर देना चाहिए । अपने कर्म, ज्ञान तथा भक्ति आदि को सिद्ध करने वाला वैष्णव कहलाता है ॥१२६॥ श्रीहरि की आज्ञा के अनुसार कर्म तथा ज्ञान का अनुष्ठान करना चाहिए। भगवान् विष्णु का भक्त ब्राह्मण एकान्ती होता है ॥१२७॥ वैष्णव को चाहिये कि अकृत्य को पाप समझकर त्याग दे । एकान्ती को शास्त्र में दोष दर्शन मन से भी त्याग दे ॥१२८॥ परमैकान्ती, नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मो को हेय बुद्धि से त्याग दे ॥१२९॥ इसी तरह से इस लोक में कृत्याकृत्य विवेक तथ परलोक के चिन्तन को मुनियों ने ज्ञान कहा है ॥१३०॥ उसकी प्राप्ति का साधन भगवान् विष्णु के स्वरूप का ज्ञान ही है । जो भगवद् भक्ति से युक्त हैं वह भक्त है । वह भक्ति नव प्रकार की होती है॥१३१॥ सुदर्शन तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि से चिह्नित होना शुभ है । सद्गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र को पढ़ना, विधि पूर्वक श्रीहरि की पूजा ॥१३२॥ भगवान् विष्णु का स्मरण, उनके नामों का कीर्तन, तथा श्रीभगवान् की पूजा, श्रीभगवान् के समक्ष जाकर उनको प्रणाम करना, भगवद् भक्तों की पूजा ॥१३३॥ भगवत् प्रसाद तथा तीर्थ का सेवन, इस तरह से भक्ति नव तरह की बतलायी गयी है । चूकि वैष्णव भगवान् की शरण में जाता है ॥१३४॥ उसी को प्रपत्ति कहते हैं । वह तीन प्रकार की होती है । सात्त्विकी, राजसी और तामसी ये प्रपत्ति के तीन भेद हैं ॥१३५॥ वह तीनों प्रकार के प्रपत्ति करने से सभी शरीधारियों की सामान्य सिद्धि है । हे देवि ! इन चार हेयों को त्यागकर मनुष्य वैष्णव हो जाता है ॥१३६॥ श्रीभगवान् ही अपनी प्राप्ति में उपाय है इस तरह से वैष्णव को जानना चाहिए । मनुष्य कर्म ज्ञान आदि में उपाय की भावना

नैमित्तिके विशेषेण पूजयेद्विधिना शुभे। प्रत्यहं कार्त्तिके मासि जातीपुष्पैः समर्चयेत्॥१३९॥
दद्यादखण्डंदीपंचनियतात्मा दृढव्रतः ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वाऽन्तेहरिसायुज्यमाप्नुयात् ॥१४०॥
धनुष्युषसि देवेशं मासमेकं निरन्तरम् । अर्चयेदुत्पलैर्देवि ! करवीरैः सितासितैः ॥१४१॥
धूपदीपैश्चनैवेद्यैर्यथाशक्तया निवेदयेत् । समाप्तौ भोजयेद्विप्रान्महाभागवतोत्तमान्॥१४२॥
अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यसंशयम्। तपोमास्युदिते भानौ स्नात्वा नद्यां विशेषतः॥१४३॥
अर्चयेन्माधवं पुष्पैरुत्पलैश्च शुभानने !। पायसं सघृतं दिव्यं भक्त्या तत्र निवेदयेत्॥१४४॥
स्नात्वा सम्पूजयेद्विष्णुं मासमेकं निरन्तरम् । शर्कराम्बुयुतं नित्यमुद्यानं विनिवेदयेत्॥१४५॥
वैष्णवान्पूजयेद्भक्तया मासान्ते शुभदर्शने ! । मधुमासि तथा नित्यं बकुलैश्चम्पकैरपि॥१४६॥
पूजयेज्जगतामीशं गुडान्नञ्च निवेदयेत् । मासान्ते वैष्णवान्विप्रान्भोजयेत्सुसमाहितः॥१४७॥
सहस्रवार्षिकीं पूजां प्रति नित्यमवाप्नुयात्। माधवे पूजयेद्देवं शतपत्रैर्महोत्पलैः ॥१४८॥
पूजयित्वा विधानेन दध्यन्नं फलसंयुतम् । गुडोदकं भक्तया वै तस्मिन्देवि ! निवेदयेत्॥१४९॥
लक्ष्म्यायुक्तो जगन्नाथः प्रीतोभवति पार्वति ! ।
शुक्रे तु शुक्लकमलैः पाटलैः कुमुदोत्पलैः ॥१५०॥

को त्यागकर जो श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए कर्मों तथा ज्ञानों को अपनाता है वह उत्तम महाभागवत है । उसे भक्ति पूर्वक तीनों कालों में श्रीभगवान् की अर्चना करनी चाहिए ॥१३७-१३८॥ नैमित्तिक कर्मों में भगवान् विष्णु की सविधि पूजा विशेष रूप से करनी चाहिए । कार्तिक के महीने में प्रतिदिन भगवान की जाती के पुष्प से पूजा करे ॥१३९॥ दृढव्रत मनुष्य श्रीभगवान् को अखण्ड दीप प्रदान करे । ब्राह्मणों को भोजन कराने वाला अन्त में भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है ॥१४०॥ हे देवि ! धनुर्मास में लगातार एक मास में काले तथा उजले करवीर के पुष्पों तथा नील कमल से पूजा करे ॥१४१॥ अपनी शक्ति के अनुसार भगवान को धूप, दीप तथा नैवेद्य समर्पित करे और धनुर्मास की समाप्ति होने पर महाभागवतोत्तम ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥१४२॥ ऐसा करने वाला हजारों अश्वमेध याग करने का फल निश्चित रूप से प्राप्त करता है । माघ मास में सूर्योदय हो जाने पर नदी में विशेष रूप से स्नान करके॥१४३॥ श्रीभगवान् की पूजा हे शुभानने ! नील कमल के पुष्प से करे । भगवान् को घृत मिश्रित दिव्य पायस भक्ति पूर्वक निवेदित करे ॥१४४॥ एक मास तक इस तरह से स्नान करके भक्ति पूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करे और प्रतिदिन भगवान् को चीनी का शर्वत नित्य ही उदपान के रूप में निवदित करे । हे शुभ दर्शने ! महीने के अन्त में वैष्णवों की पूजा करे । चैत्र के महीने में बकुल पुष्प तथा चम्पा के पुष्पों से नित्य पूजा करे ॥१४५-१४६॥ और श्रीभगवान् को गुड़ का खीर निवेदित करे । मास के अन्त में सावधान रहकर वैष्णव ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥१४७॥ ऐसा करने वाला हजारों वर्षों तक पूजा करने का फल प्रतिदिन प्राप्त करता है । वैशाख के महीने में श्रीभगवान् की पूजा शतदल कमल से करे॥१४८॥ विधि पूर्वक पूजा करके फल के साथ दध्योदन श्रीभगवान् को भोग लगाये । हे देवि ! उस महीने में भक्ति पूर्वक भगवान् को गुड़ के शर्वत का भोग लगाये ॥१४९॥ हे पार्वति ! ऐसा करने से श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के साथ प्रसन्न होते हैं । ज्येष्ठ के महीने में श्वेत कमल, गुलाब, पाटल, पुष्प तथा

अर्चयित्वा हृषीकेशमन्नं चूतफलैर्युतम् । निवेदयित्वा भक्त्या वै गवां कोटिप्रदो भवेत्॥१५१॥
वैष्णवान्भोजयित्वाऽथ सर्वमानन्त्यमाप्नुयात् ।
आषाढे देवदेवेशं लक्ष्मीभर्तारमच्युतम् ॥१५२॥
श्रीपुष्पैरर्चयेन्नित्यं पायसान्नं निवेदयेत् । मासान्ते भोजयेद्विप्रान्महाभागवतोत्तमान् ॥१५३॥
षष्टिवर्षसहस्रस्य पूजां प्राप्नोत्यसंशयम् । नभोमास्यर्चयेद्विष्णुं पुन्नागैः केतकीदलैः ॥१५४॥
अर्चयित्वाऽच्युतं भक्त्या न भूयो जन्मभाग्भवेत् ।
दद्यादपूपान्भक्त्याऽथ शर्कराघृतमिश्रितान् ॥१५५॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्तद्वत्सर्वमानन्त्यमाप्नुयात् । नभस्येऽप्यर्चयेदीशं कुन्दैः कुरबकैरपि ॥१५६॥
क्षीरान्नं गुडसम्मिश्रं भक्त्या तत्र निवेदयेत् । गवां कोटिप्रदानस्य प्रत्यहंफलमाप्नुयात् ॥१५७॥
नीलोत्पलैरिषे मासि पूजयेन्मधुसूदनम् । भक्त्या निवेदयेत्तस्मिन्क्षीरमापूपमिश्रितम्॥१५८॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । वैष्णवं लोकमाप्नोति मुदितः स्वजनैर्वृतः ॥१५९॥
ऊर्जे मासि तथा देवि ! कोमलैस्तुलसीदलैः ।
पूजयित्वाऽच्युतं भक्त्या तत्सायुज्यमवाप्नुयात् ॥१६०॥
क्षीराज्यशर्करोपेतमन्नं वै पायसं तथा । अपूपं च क्रमेणैव भक्त्या सम्यङ्निवेदयेत् ॥१६१॥
अमायां मन्दवारे च वैष्णवर्क्षे तथैव च । रविसंक्रमे व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥१६२॥
विशेषेणार्चयेद्विष्णुं यथाशक्त्या वरानने !। गुरोरुत्क्रान्तिदिवसे जन्मर्क्षेषु तथा हरेः ॥१६३॥

कुमुद से ॥१५०॥ श्रीभगवान् की पूजा करके आम के फल के साथ अन्न का भोग लगाकर मनुष्य करोड़ों गोदान करने के फल को प्राप्त करता है ॥१५१॥ अन्त में ब्राह्मणों को भोजन कराकर अनन्त फल को प्राप्त करता है । आषाढ के महीने में लक्ष्मीपति श्रीभगवान् को ॥१५२॥ श्रीपुष्पों से नित्य पूजा करें और परमान्न का भोग लगाये । महीने के अन्त में उत्तम महाभागवत ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥१५३॥ ऐसा करने वाला साठ हजार वर्षों तक पूजा करने का फल प्राप्त करता है । श्रावण के महीने में पुन्नाग पुष्पों तथा केतकी पुष्पों से भगवान् विष्णु की पूजा करे ॥१५४॥ इस तरह से पूजा करने वाला मनुष्य पुनः इस संसार में नहीं आता है । वह शर्करा तथा घृत मिश्रित पूओं का भोग लगाये ॥१५५॥ उसी तरह ब्राह्मणों को भोजन कराये तो उसका किया हुआ सब कुछ अनन्त गुणा हो जाता है । भाद्रपद के महीने में श्रीभगवान् की पूजा कुन्द तथा कुरुक पुष्पों से करे ॥१५६॥ उस महीने में गुड़ मिश्रित क्षीरान्न का श्रीभगवान् को भक्ति पूर्वक भोग लगाये । ऐसा करने वाला प्रतिदिन करोड़ों गौओं के दान करने का फल प्राप्त करता है ॥१५७॥ आश्विन के महीने में श्रीभगवान् की पूजा नील कमल से करे । उस मास में पूओं के साथ दूध का भगवान् को भोग लगाये ॥१५८॥ ऐसा करके मनुष्य करोड़ो हजार कल्पों तथा सैकड़ों कल्पों तक प्रसन्नता पूर्वक भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है ॥१५९॥ कार्तिक के महीने में हे देवि ! कोमल तुलसी दलों से भगवान् की भक्ति पूर्वक पूजा करके श्रीभगवान् के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है ॥१६०॥ दूध, घी, तथा चीनी मिश्रित अन्न तथा पायस तथ पूए का क्रमशः भोग अच्छी तरह से लगाये ॥१६१॥ आमावस्या, शनिवार तथा वैष्णव नक्षत्र में सूर्य की संक्रानित तथा व्यतीपात योग में चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण के अवसर पर ॥१६२॥ हे वरानने ! अपनी शक्ति के अनुसार भगवान् विष्णु

इष्टिंच वैष्णवीं कुर्याच्छत्तया वै द्विजसत्तमः ।
दद्यात्पुष्पाञ्जलिं तत्र प्रत्यृचं वेदसंमितम् ॥१६४॥
पारणञ्चाऽपि चरुणा पायसेन वा। वैष्णवान्भोजयेद्विप्राञ्छत्तया दद्याच्च दक्षिणाम्॥१६५॥
कुलकोटिं समुद्धृत्य वैष्णवं पदमाप्नुयात्। सर्ववेदैरशक्तश्चेद्यष्टुं भागवतोत्तमः ॥१६६॥
वैष्णवैरनुवाकैर्वा सप्तरात्रं निरन्तरम्। पुष्पाञ्जलिसहस्रन्तु होमं च प्रत्यहं चरेत् ॥१६७॥
प्रीयते वा भगवतः प्रतिश्लोकं यजेद्बुधः। अथवा मन्त्ररत्नं हि सप्तरात्रं निरन्तरम् ॥१६८॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु जुहुयाद्धविषा यजेत्। विशेषेणाऽर्चयेद्विद्वान्महाभागवतोत्तमान् ॥१६९॥
अन्तेचाऽवभृथं कुर्याद्यथाविभवसारतः। वैष्णवैरनुवाकैश्च कुर्यादवभृथं द्विजः ॥१७०॥
अत्र स्नात्वा विधानेन यथाशत्तयाद्विजोत्तमः ।
शुभेपात्रान्तरेरम्ये पादौप्रक्षाल्यभक्तितः ॥१७१॥
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रैराभरणादिभिः । ताम्बूलेन फलैर्वाऽपि यथाशत्तया समर्चयेत्॥१७२॥
भोजयित्वाऽन्नपानाद्यैः प्रणम्य च पुनःपुनः। आसीमान्तमनुव्रज्य नमस्कृत्यविसर्जितम् ॥१७३॥
पुनः प्रणम्य भत्तयाऽथ शनैस्तत्रनिवर्तितः । गृहं प्रविश्य देवेशं पूजयेत्प्रयतात्मवान् ॥१७४॥
एवमभ्यर्चयेद्विष्णुं यावज्जीवमतन्द्रितः । तदीयांश्च विशेषेण पूजयेत्सर्वदा शुभे ! ॥१७५॥
आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम् । तस्मात्परतरं देवि ! तदीयानां समर्चनम् ॥१७६॥

की विशेष रूप से पूजा करे । गुरु के उत्क्रमण के दिन तथा श्रीहरि के जन्म नक्षत्रों में ॥१६३॥ द्विजश्रेष्ठ को चाहिए कि वह अपनी शक्ति के अनुसार वैष्णवी इष्टी करे । उसमें वेद सम्मित प्रत्येक ऋचाओं से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे ॥१६४॥ चरु तथा पायस से पारण करे । वैष्णव ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा प्रदान करे ॥१६५॥ ऐसा करने वाला अपने करोड़ों कुलों का उद्धार करके भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । यदि भागवतोत्तम सभी वेदों के प्रत्येक मन्त्रों से पूजा करने में असमर्थ हो तो ॥१६६॥ केवल वैष्णव अनुवाकों से ही सात रातों तक हजार पुष्पाञ्जलि दे और प्रतिदिन होम करे ॥१६७॥ अथवा प्रत्येक श्लोक से श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए उनकी पूजा करे । अथवा सात रातों तक निरन्तर मन्त्र रत्न का जप करे ॥१६८॥ एक हजार आठ बार हवष्यि से श्रीभगवान् की पूजा करे । विद्वान् को चाहिए कि वह विशेष रूप से उत्तम भागवतों की पूजा करे ॥१६९॥ अन्त में अपने विभव के अनुसार अवभृथ स्नान करे । द्विज को चाहिए कि वैष्णव अनुवाकों से अवभृथ स्नान करे॥१७०॥ विधि पूर्वक अवभृथ स्नान करके ब्राह्मण को चाहिए कि वह सुन्दर पात्रों में भागवतों के पैर को भक्ति पूर्वक धोकर ॥१७१॥ चन्दन पुष्प आदि से तथा वस्त्रभरण से उनकी पूजा पान तथा फल से अपनी शक्ति के अनुसार करनी चाहिए ॥१७२॥ उनको अन्न तथा जल से भोजन कराकर तथा बार-बार प्रणाम करके, अपनी सीमा पर्यन्त उनके पीछे चलकर प्रणाम करके उन्हें विदा करे ॥१७३॥ फिर भक्ति पूर्वक उनको प्रणाम करके धीरे-धीरे वहाँ से लौटकर अपने घर में आकर श्रीभगवान् की पूजा मौन होकर करे ॥१७४॥ इस तरह निरालस रहकर जीवन भर भगवान् विष्णु की पूजा करे । हे शुभे ! विशेष रूप से भगवद् भक्तों की पूजा करे ॥१७५॥ सभी आराधानाओं में भगवान् विष्णु की आराधना श्रेष्ठ है । हे

अर्चयित्वाऽपि गोविन्दं तदीयान्नाऽर्चयेत्पुनः ।
न स भागवतो ज्ञेयः केवलं दाम्भिकः स्मृतः ॥१७७॥
पुमांस्तस्मात्प्रयत्नेन वैष्णवान्पूजयेत्सदां। सर्वं तरति दुःखौघं महाभागवतार्चनात्॥१७८॥
एवमुक्तं मया देवि ! विष्णोराराधनं परम्। नित्यमैमित्तिकं चैव तदीयानां च पूजनम्॥१७९॥
पौरुषं तस्य याथात्म्यं फलसाधनमेव च। तस्याऽऽवसथभेदं च कर्माद्यदि चतुष्टयम्॥
तव प्रोक्तं मया देवि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१८०॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वरसम्वादे विष्णुपूजाविधानवैष्णवाचारकथनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५३॥

दो सौ चौवनवाँ अध्याय

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्ता तु सा देवी पतिना शूलपाणिना। प्रणिपत्य महात्मानमुवाच प्राञ्जलिस्तदा॥१॥

पार्वत्युवाच

साधूक्तंहि त्वया नाथ ! वैष्णवं धर्ममुत्तमम् ।
गुह्याद्गुह्यतमंविष्णोः स्वरूपंपरमात्मनः ॥२॥

देवि ! उससे भी श्रेष्ठ भागवतों की आराधना है ॥१७६॥ भगवान गोविन्द की पूजा करके भी जो भगवद् भक्तों की आराधना नहीं करता है, उसको भागवत नहीं दम्भिक समझना चाहिए ॥१७७॥ इसलिए पुरुषों को चाहिए कि वह सदा वैष्णवों की आराधना करे। महाभागवतों की अर्चना करके वह सम्पूर्ण दुःखों को पार कर जाता है ॥१७८॥ हे देवि ! इस प्रकार से मैंने आपको सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णु की आराधना को सुनाया। नित्य नैमित्तिक तथा भागवतों की पूजा ॥१७९॥ श्रीभगवान् के यथार्थ स्वरूप, फलों की साधनता उनके गृहों के भेद तथा कर्मादि इन चारों को हे देवि ! मैंने तुम्हें सुनाया। अब दूसरी कौन सी बात सुनना चाहती हो ?॥१८०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत भगवान् विष्णु की पूजा का विधान तथा वैष्णवों के अचार का वर्णन नामक दो सौ तिरपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२५३॥

महर्षि वामदेव के द्वारा पार्वतीजी को भगवान् विष्णु के दिव्य सहस्र नाम का उपदेश, श्रीराम शब्द की व्याख्या, महादेवजी द्वारा सहस्रनाम तुल्यता का प्रतिपादन और भगवान् रामचन्द्र के अष्टोत्तर शत नामों का वर्णन

वसिष्ठजी ने कहा— अपने पति त्रिशूलपाणि शङ्करजी द्वारा इस तरह से कहे जाने पर लक्ष्मीजी ने शङ्करजी को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा ॥१॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे नाथ ! आपने बहुत

धन्याऽस्मि कृतकृत्याऽस्मि सर्वदेवनमस्कृत ! ।
तव प्रसादाद्देवेशमर्चयामि सनातनम् ॥३॥

वसिष्ठ उवाच

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा स भवस्त्रिपुरान्तकः । समाश्लिष्याऽवदद्देवीं प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना ॥४॥

रुद्र उवाच

साधुसाधु ! महादेवि ! साधु साधु वरानने ! ।
अर्चयस्व हृषीकेशं लक्ष्मीभर्त्तारमच्युतम् ॥५॥
कृतकृत्योऽस्म्यहं भद्रे ! वैष्णव्या भार्यया त्वया ।
गुरुणातवचार्वङ्गि ! वामदेवेन धीमता ॥६॥
अनुज्ञाताऽर्चयस्वेशं पुराणं पुरुषोत्तमम् । गुरूपदेशमार्गेण पूजयित्वैव केशवम् ॥
प्राप्नोति वाञ्छितं सर्वं नाऽन्यथा भूधरात्मजे ! ॥७॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्ता तदा देवी वामदेवान्तिकं नृप ! । जगाम सहसा हृष्टा विष्णुपूजनलालसा ॥८॥
समेत्य तं गुरुं देवी पूजयित्वा प्रणम्य च । विनीताप्राञ्जलिर्भूत्वा उवाच मुनिसत्तमम् ॥९॥

पार्वत्युवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन सम्यगाराधनं हरेः । करिष्यामि द्विजश्रेष्ठ ! त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्तस्तु तया देव्या वामदेवो महामुनिः । तस्यै मन्त्रवरं श्रेष्ठं ददौ स विधिनागुरुः ॥११॥

अच्छी तरह से उत्तम वैष्णव धर्म का वर्णन किया आप भगवान् विष्णु के अत्यन्त गोपनीय स्वरूप को को मुझे बतलायें ॥२॥ हे सर्वदेव नमस्कृत ! मैं धन्य तथा कृतकृत्य हो गयी ! हे देवेश ! मैं आपकी कृपा के कारण सनातन भगवान्विष्णु की अर्चना करती हूँ ॥३॥ **वसिष्ठजी ने कहा—** पार्वतीजी के उस वचन को सुनकर त्रिपुरान्तक शङ्करजी पार्वतीजी का आलिङ्गन करके अपने प्रसन्न मन से कहे ॥४॥ **रुद्र ने कहा—** हे देवि ! हे सुन्दरि ! तुमने बहुत अच्छा कहा । तुम लक्ष्मीजी के पति भगवान् अच्युत की पूजा करो ॥५॥ हे भद्रे ! तुम जैसी वैष्णवी पत्नी को पाकर मैं तो कृतकृत्य हो गया । हे देवि ! तुम्हारे बुद्धिमान गुरु वामदेवजी द्वारा आज्ञा प्राप्त करके तुम पुराण पुरुषोत्तम श्रीभगवान् की अर्चना करो । गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से श्रीभगवान् केशव की पूजा करके हे पार्वति ! कोई भी अपने वाञ्छित मनोरथों को प्राप्त करता है, दूसरे प्रकार से नहीं ॥६-७॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! इस तरह से कहने पर देवी पार्वती सहसा प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु की पूजा करने की लालसा से अपने गुरु वामदेव महर्षि के पास गयीं ॥८॥ गुरु के पास आकर पार्वतीजी उनकी पूजा करके तथा उनको प्रणाम करके नम्र होकर हाथ जोड़कर उन मुनिश्रेष्ठ से कही ॥९॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! भगवन् आपकी कृपा से मैं श्रीहरि की अच्छी तरह से आराधना करना चाहती हूँ अतएव आप मुझे आज्ञा प्रदान करें ॥१०॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** उस देवी के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर महामुनि वामदेवजी ने उनको श्रेष्ठ मन्त्र विधि

नाम्नां सहस्रं विष्णोश्च प्रोक्तवान्मुनिसत्तमः । निवेदयित्वापूजायाविधानमपि देशिकः ॥
उवाच परमप्रीत्या पार्वतीं संशितव्रताम् ॥१२॥

वामदेव उवाच

अर्चयित्वा हृषीकेशं प्रातर्नित्यं वरानने !। सहस्रनामपठनं कुरुष्व तदनन्तरम् ॥१३॥

वसिष्ठ उवाच

इत्युक्ता तेन गुरुणा प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना। पूजयित्वा नमस्कृत्य पुनरागात्स्वमालयम्॥१४॥
शिक्षिता गुरुणा तेन वामदेवेन पार्वती । तथा समर्चयामास नित्यं भक्त्या सनातनम्॥१५॥
जपन्ती नामसाहस्रं प्रतिनित्यमतन्द्रिता । उवाच सुसुखेनैव पतिना संशितव्रता॥१६॥
ततः कतिपयाहस्सु द्वादश्यां वृषभध्वजः। कैलासशिखरे रम्ये विष्णुमाराध्य शङ्करः ॥
उपविष्टततो भोक्तुं पार्वतीं शङ्करोऽब्रवीत् ॥१७॥

शङ्कर उवाच

पार्वत्येहि मया सार्द्धं भोक्तुं भुवनवन्दिते ! ॥१८॥

वसिष्ठ उवाच

तमाह पार्वती देवी जप्त्वानामसहस्रकम्। ततो भोक्ष्याम्यहंदेव भुज्यतां भवता प्रभो !॥
ततस्तां पार्वतीं प्राह प्रहसन्परमेश्वरः ॥१९॥

शङ्कर उवाच

धन्याऽसि कृतकृत्याऽसि विष्णुभक्ताऽसि पार्वति ! ।
दुर्लभा वैष्णवी भक्तिर्भागधेयं विनेश्वरि ! ॥२०॥
रमन्तेयोगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । तेन रामपदेनाऽसौ परं ब्रह्माऽभिधीयते ॥२१॥

पूर्वक प्रदान किया ॥११॥ उन मुनिश्रेष्ठ ने भगवान् विष्णु के सहस्रनामों को बतलाकर विधान भी बतलाकर वे आचार्य प्रसंशित व्रत वाली पार्वतीजी से अत्यन्त प्रेम पूर्वक कहे ॥१२॥ **वामदेव महर्षि ने कहा—** हे वरानने ! प्रतिदिन प्रातः भगवान् विष्णु की पूजा करके उसके बाद सहस्रनाम का पाठ करो ॥१३॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा—** इस तरह प्रसन्न मन से गुरु के द्वारा कही गयी पार्वतीजी उनको नमस्कार करके तथा उनकी पूजा करके अपने घर आयीं ॥१४॥ अपने गुरु वामदेव महर्षि के द्वारा शिक्षित पार्वतीजी उसी प्रकार से सनातन भगवान् विष्णु की नित्य पूजा करती थीं ॥१५॥ प्रतिदिन नित्य ही भगवान् के सहस्रनाम का पाठ करती हुयी प्रशंसित व्रत वाली वे अपने पति के साथ सुख पूर्वक रहती थीं ॥१६॥ उसके कुछ दिन बाद वृषभध्वज शिवजी मनोहर कैलास पर्वत पर द्वादशी के दिन भगवान् विष्णु की आराधना करके भोजन करने के लिए बैठे और पार्वतीजी से कहे ॥१७॥ **शङ्करजी ने कहा—** हे भुवनवन्दिते ! पार्वति मेरे साथ भोजन करने के लिए तुम आओ ॥१८॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** उनको पार्वतिजी ने कहा हे प्रभो ! हे देव ! आप भोजन करें मैं सहस्रनाम का पाठ करके भोजन करूँगी । उसके बाद जोर से हँसते हुए शङ्करजी ने पार्वतीजी से कहा **शङ्करजी ने कहा—** हे पार्वति ! तुम धन्य और कृत-कृत्य हो भगवान् विष्णु की भक्ता हो हे पार्वति ! सौभाग्य के बिना भगवान् विष्णु की भक्ति होना दुर्लभ है ॥१९-२०॥ ज्ञान

रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनामतत्तुल्यं रामनाम वरानने ! ॥२२॥
रकारादीनि नामानि शृण्वतो मम पार्वति। मनः प्रसन्नतां याति रामनामाभिशङ्कया ॥
रामेत्युक्त्वा महादेवि ! भुङ्क्ष्व सार्धं मयाऽधुना ॥२३॥

वसिष्ठ उवाच

ततो रामेति नामोक्त्वासहभुत्तवाऽथपार्वती। रामेत्युत्तवामहादेवीशम्भुनासहसंस्थिता ॥
पप्रच्छ शङ्करं देवं प्रीतिप्रवणमानसा ॥२४॥

पार्वत्युवाच

सहस्रनामभिस्तुल्यंरामनामत्वयोदितम् । तस्याऽपराणिनामानि सन्तिचेद्रावणद्विषः ॥
कथ्यतां मम देवेश ! तत्र मे भक्तिरुत्थिता ॥२५॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु नामानि वक्ष्यामि रामचन्द्रस्य पार्वति ! ।
लौकिका वैदिकाः शब्दा ये केचित्सन्ति पार्वति ! ॥२६॥

नामानि रामचन्द्रस्य सहस्रन्तेषुचाधिकम्। तेषुचात्यन्तमुख्यं हि नाम्नामष्टोत्तरंशतम् ॥२७॥
विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकं मतम् । तादृङ्नामसहस्राणि रामनामसमानि च॥२८॥
यत्फलं सर्ववेदानां मन्त्राणां जपतःप्रिये ! । तत्फलं कोटिगुणितं रामनाम्नैव लभ्यते॥२९॥
नामानि शृणु रामस्यमुख्यानि शुभदर्शने !। ऋषिभिःपरिगीतानितानिवक्ष्यामितेप्रिये ! ॥३०॥
ॐश्रीरामो रामचन्द्रश्च रामभद्रश्च शाश्वतः। राजीवलोचन श्रीमान्राजेन्द्रो रघुपुङ्गवः॥३१॥

स्वरूप सत्यानन्द स्वरूप अनन्त में ही योगिजन सदा आनन्दानुभव करते है अतएव ही रामशब्द के द्वारा परंब्रह्म का अभिधान होता है ॥२१॥ हे वरानने ! मनोहर राम, रामेति रामेति, रमे रामे यह कहना सहस्रनाम पाठ के तुल्य है ॥२२॥ हे पार्वति ! जिन नामों के आदि में रकार होता उसको सुनते ही मेरा मन रामनाम की शङ्का से प्रसन्न हो जाता है । हे महादेवि ! राम शब्द का उच्चारण करके तुम भोजन मेरे साथ करो॥२३॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** उसके बाद श्रीभगवान् के राम नाम का उच्चारण करके पार्वतीजी ने शङ्करजी के साथ भोजन कीं । वे राम इस पद का उच्चारण करके शङ्करजी के साथ भोजन करने बैठ गयीं । उन्होंने प्रसन्न मन से शङ्करजी से पूछा ॥२४॥ **पार्वतीजी ने कहा—** आपने कहा है कि राम नाम सहस्रनाम के समान है । रावण से द्वेष करने वाले भगवान् राम के यदि दूसरे नाम हैं तो हे देवेश ! उन्हें आप मुझे बतलाये ॥२५॥ **श्रीमहादेवजी ने कहा—** हे पार्वति ! भगवान् रामचन्द्र के नामों को मैं बतला रहा हूँ उन सबों को तुम सुनो । हे पार्वति ! जितने भी लौकिक और वैदिक शब्द हैं वे सबके सब रामचन्द्रजी के ही नाम हैं; उनमें उनके एक हजार नाम अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । उनमें भी भगवान् के अष्टोत्तरशत नाम अत्यन्त मुख्य हैं ॥२६-२७॥ भगवान् विष्णु के एक-एक नाम सभी वेदों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । उसी तरह भगवान् राम के सहस्रनाम के समान हैं ॥२८॥ हे प्रिये ! सभी वेदों का पाठ करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसके करोड़ गुणा फल राम नाम से होता है ॥२९॥ हे शुभ दर्शने ! भगवान् श्रीराम के मुख्य नामों को तुम सुनो । वे सभी ऋषियों के द्वारा गाये गये हैं मैं उन्हीं सबों को तुम्हें बतला रहा हूँ ॥३०॥ ओम् श्रीराम, रामचन्द्र, रामभद्र, शाश्वत, राजीवलोचना, श्रीमान्, राजेन्द्र, रघुपुङ्गव ॥३१॥

जानकीवल्लभो जैत्रो जितामित्रो जनार्दनः । विश्वामित्रप्रियो दान्तः शरणागतवत्सलः ॥३२॥
वालिप्रमथनो वाग्मी सत्यवाक्सत्यविक्रमः ।
सत्यव्रतो व्रतफलः सदा हनुमदाश्रयः ॥३३॥
कौशलेयः खरध्वंसी विराधवधपण्डितः । विभीषणपरित्राता दशग्रीवशिरोहरः ॥३४॥
सप्तताल प्रभेता च हरकोदण्डखण्डनः । जामदग्न्य महादर्पदलनस्ताडकान्तकृत् ॥३५॥
वेदान्तपारो वेदात्मा भवबन्धैकभेषजम् । दूषणत्रिशिरोऽरिश्च त्रिमूर्तिस्त्रिगुणात्मकः ॥३६॥
त्रिविक्रमस्त्रिलोकात्मा पुण्यचारित्रकीर्त्तनः । त्रिलोकरक्षको धन्वी दण्डकारण्यवासकृत् ॥३७॥
अहल्यापावनश्चैव पितृभक्तो वरप्रदः । जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितलोभो जगद्गुरुः ॥३८॥
ऋक्षवानरसङ्घाती चित्रकूटसमाश्रयः । जयन्तत्राणवरः सुमित्रापुत्रसेवितः ॥३९॥
सर्वदेवाधिदेवश्च मृतवानरजीवनः । मायामारीचहन्ता च महाभागो महाभुजः ॥४०॥
सर्वदेवस्तुतः सौम्यो ब्रह्मण्यो मुनिसत्तमः । महायोगी महोदारः सुग्रीवस्थिरराज्यदः ॥४१॥
सर्वपुण्याधिकफलः स्मृतः सर्वाघनाशनः । आदिपुरुषो महापुरुषः परमः पुरुषस्तथा ॥४२॥
पुण्योदयो महासारः पुराणपुरुषोत्तमः । स्मितवक्त्रो मितभाषी पूर्वभाषी च राघवः ॥४३॥
अनन्तगुणगम्भीरो धीरोदान्तगुणोत्तरः । मायामानुषचारित्रो महादेवाधिपूजितः ॥४४॥
सेतुकृज्जितवारीशः सर्वतीर्थमयो हरिः । श्यामाङ्गः सुन्दरः शूरः पीतवासा धनुर्द्धरः ॥४५॥
सर्वयज्ञाधिपो यज्ञो जरामरणवर्जितः । शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता सर्वाधगणवर्जितः ॥४६॥
परमात्मापरब्रह्मसच्चिदानन्दविग्रहः । परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः ॥४७॥
परेशः पारगः पारः सर्वभूतात्मकः शिवः ।
इति श्रीरामचन्द्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥४८॥

जानकीबल्लभ, जैत्र, जितामित्र, जनार्दन, विश्वामित्रप्रिय, दान्त, शरणागत वत्सल ॥३२॥ बालि प्रमथनः, वाग्मी, सत्यवाक्, सत्य विक्रम, सत्यव्रत, व्रतफल, सदा हनुमदाश्रय ॥३३॥ कौसलेय, खरध्वंसी, विराधेवध पण्डित, विभीषण परित्राता, दशग्रीव शिरोहरः ॥३४॥ सप्तताल प्रभेता, हरकोण्ड खण्डन, जामदग्न्य महादर्प दलन, ताडकान्त कृत्, वेदान्तपार, वेदात्मा, भवबन्धक भेषज, दूषणत्रिशिरोऽरिः, त्रिमूर्ति, त्रिगुणात्मक ॥३५-३६॥ त्रिविक्रमः, त्रिलोकात्मा, पुण्यचारित्रकीर्तनः, त्रिलोकरक्षक, धन्वी, दण्डकारण्य वासकृत॥३७॥ अहल्या पावन, पितृभक्तः, वरप्रद, जितेन्द्रिय, जितक्रोध, जितलोभ, जगद्गुरु ॥३८॥ ऋक्षवानर संघाती, चित्रकूट समाश्रय, जयन्तत्राणवरद, सुमित्रापुत्र सेवित ॥३९॥ सर्वदेवाधिदेव, मृतवानरजीवन, मायामरीच हनन, महाभाग, महाभुज ॥४०॥ सर्वदेवस्तुत, सौम्य, ब्रह्मण्य, मुनिसत्तम, महायोगी, महोदार, सुग्रीवस्थिर राज्यदः ॥४१॥ सर्वपुण्याधिकफल, स्मृतः, सर्वाघनाशन, आदि पुरुष, महापुरुष, परमपुरुष ॥४२॥ पुण्योदय, महासार, पुराण पुरुषोत्तम, स्मितवक्त्र, मितभाषी, पूर्वभाषी, राघव ॥४३॥ अनन्तगुण गम्भीर, धीरोदात्त गुणोत्तर, मायामानुष चरित्र, महादेवाधि पूजित ॥४४॥ सेतुकृत, जितवारीश, सर्वतीर्थमय, हरि, श्यामाङ्ग सुन्दर, शूर, पीतवासा, धनुर्धर ॥४५॥ सर्वयज्ञाधिप, यज्ञ, जरामरणवर्जितः, शिवलिङ्ग प्रतिष्ठाता, सर्वाघगण वर्जितः ॥४६॥ परमात्मा, परंब्रह्म, सच्चिदानन्द विग्रह, परंज्योतिः, परंधाम, पराकाश, परात्पर ॥४७॥ परेशः, पारगः, पारः सर्वभूतात्मकः, शिवः ये श्रीरामचन्द्रजी के अष्टोत्तर शत नाम हैं ॥४८॥ अति गोपनीय

गुह्याद्गुह्यतरं देवि ! तव स्नेहात्प्रकीर्त्तितम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि भक्तियुक्तेन चेतसा ॥४९॥
सर्वैः प्रमुच्यतेपापैःकल्पकोटिशतोद्भवैः । जलानि स्थलतांयान्तिशत्रवोयान्तिमित्रताम् ॥५०॥
राजानो दासतां यान्ति वह्नयो यान्ति सौम्यताम् ।
आनुकूल्यं च भूतानि स्थैर्यं यान्ति चलाः श्रियः ॥५१॥
अनुग्रहं ग्रहा यान्ति शान्तिमायान्त्युपद्रवाः । पठतो भक्तिभावेन नरस्य गिरिसम्भवे ! ॥५२॥
यः पठेत्परया भक्त्या तस्य वश्यं जगत्त्रयम् ।
यं यं कामं प्रकुरुतेतन्तमाप्नोति कीर्त्तनात् ॥५३॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । वैकुण्ठे मोदते नित्यं दशपूर्वैर्दशापरैः ॥५४॥
रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् । स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्नतेसंसारिणोजनाः ॥५५॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥५६॥
इमं मन्त्रं महादेवि ! जपन्नेव दिवानिशम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥५७॥
इति ते रामचन्द्रस्य माहात्म्यं वेदसम्मितम् । कथितंवैमयासुभ्रूस्तवप्रीत्या शुभाह्वयम् ॥५८॥

वसिष्ठ उवाच

तच्छ्रुत्वा शङ्करेणोक्तं माहात्म्यं परमात्मनः । प्रहर्षमतुलं लेभे आनन्दाश्रुजलाप्लुता ॥
प्रणम्य प्राह देवेशं भर्तारं वृषभध्वजम् ॥५९॥

पार्वत्युवाच

अहो माहात्म्यमतुलं रामस्य परमात्मनः । श्रोत्रतृप्तिर्हि मे न स्यात्कल्पायुतशतैरपि ॥६०॥

हैं इन सबों को तुम्हारे प्रेम के कारण मैंने प्रकाशित किया है । जो भक्ति युक्त अन्तःकरण से इसको पढ़ता अथवा सुनता है ॥४९॥ करोड़ों कल्पों में उत्पन्न पापों से वह मुक्त हो जाता है । जल भी उसके लिए सील बन जाते हैं और शत्रु भी मित्र हो जाते हैं ॥५०॥ राजागण उसके दास हो जाते हैं और अग्नियाँ भी उसके लिए शीतल हो जाती हैं । सभी जीव अनुकूल हो जाते हैं और चञ्चल लक्ष्मी भी स्थिर हो जाती है ॥५१॥ सभी ग्रह अनुग्रह करने वाले हो जाते हैं और सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं । पार्वति भक्ति पूर्वक पढ़ने से मनुष्य के ये सब हो जाते हैं ॥५२॥ जो इसको पराभक्ति से पढ़ता है उसके वश में त्रैलोक्य हो जाता है । वह जो-जो कामना करता है, उन सबों को प्राप्त कर लेता है ॥५३॥ हजारों करोड़ तथा सैकड़ो करोड़ कल्पतक वह वैकुण्ठ में पहले की दश पीढ़ी के तथा दश पीढ़ी बाद के पुरुषों के साथ निवास करता है ॥५४॥ दुर्वादल के समान श्याम वर्ण वाले कमल के समान नेत्र वाले तथा पीताम्बरधारी श्रीराम का इन दिव्य नामों से जो लोग स्तुति करते हैं वे संसारी नहीं हैं ॥५५॥ **रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे । रघुनाथायनाथाय सीतायां पतये नमः ।।५६।।** हे महादेवि ! इस मन्त्र को दिन-रात जपने वाला सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥५७॥ इस तरह से मैंने वेद के समान श्रीरामचन्द्र के माहात्म्य को सुनाया हे सुभ्रु ! तुम्हारे प्रेम के कारण इस शुभ कारक माहात्म्य को मैंने सुनाया ॥५८॥ **वसिष्ठजी ने कहा—** शङ्करजी से उस श्रीभगवान् के माहात्म्य को सुनकर पार्वती आनन्दाश्रु के जल से भींग गयीं और अत्यधिक प्रसन्न हुयीं । उन्होंने देवेश अपने पति को प्रणाम करके कहा ॥५९॥ **पार्वतीजी ने कहा—** धन्य है अतुलनीय श्रीरामचन्द्रजी का माहात्म्य । इसके सुनने से तो दश हजार कल्पों में भी मेरे कानों को तृप्ति नहीं हो सकती है ॥६०॥ हे अनघ ! आपने

धन्याऽहंकृतकृत्याऽस्मिसर्वमुक्तंत्वयाऽनघ ! ।
त्वत्प्रसादाद्धरेर्भक्तिर्जन्मजन्मनिचाऽस्तुमे ॥६१॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्त्वा स्वभर्तारं गौरी भागवतोत्तमा ॥६२॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे। रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥६३॥
जपन्तीमं मन्त्ररत्नं सर्वावस्थासु पार्वती । उवास च सुखेनैव कैलासे शम्भुना सह ॥६४॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतमं नृप !। साक्षाद्रुद्रेणकथितं शुद्धसत्त्वतरं महत् ॥६५॥
रुद्रप्रोक्तानि शास्त्राणि तामसान्येवपार्थिव !। सम्मोहनार्थंलोकानांप्रोक्तवान्वृषभध्वजः ॥६६॥
रहसि प्रोक्तवान्देव्या इदमेकं हरः प्रभुः । यथार्थमर्थं गुह्यं च सारं मन्त्रस्य भूपते ! ॥६७॥
देव्याः प्रीत्यै महादेवः कथयामास तत्परः। औमामहेश्वरं राजन्सम्वादमिममद्भुतम् ॥६८॥
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि भक्तियुक्तेनचेतसा । स सर्ववन्द्यः सर्वज्ञो महाभागवतो भवेत् ॥६९॥
सर्वधर्मविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमम्पदम् । धन्यः खलुभवाँल्लोके पार्थिवेन्द्र ! महाबल !॥७०॥
त्वदन्वये हरिः श्रीमान्पुराणः पुरुषोत्तमः । उत्पत्स्यते दाशरथिः सर्वलोकहिताय वै ॥७१॥
तस्मादिक्ष्वाकवः पूज्याः सुराणामपि पार्थिव ! ।
येषां जातो हि भगवान्रामो राजीवलोचनः ॥७२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायां उत्तरे खण्डे उमामहेश्वर सम्वादे रामचन्द्राष्टोत्तरशतनामकथनं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५४॥

मुझे सबकुछ सुना दिया । उससे मैं तो धन्य और कृतकृत्य हो गयी आपकी कृपा से मुझमें जन्म जन्मान्तरों तक मुझमें भक्ति होए ॥६१॥ **वसिष्ठजी ने कहा—** इस तरह से गौरी ने अपने पति को कहकर **रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे रघुनाथाय सीतायाः पतये नमः** ॥६२-६३॥ इस मन्त्ररत्न को सभी अवस्थाओं में जपती हुयी पार्वतीजी सुख पूर्वक कैलास पर शङ्करी के साथ निवास कीं ॥६४॥ हे राजन् ! इस तरह मैंने आपको सर्वाधिक गोप्य बातों को सुनाया । इसको साक्षात् रुद्र ने कहा है और वे अत्यन्त शुद्ध हैं॥६५॥ हे राजन् ! रुद्र के द्वारा कहे गये सभी शास्त्र तामस ही हैं शङ्करजी ने संसारियों का सम्मोहन करने के लिए कहा है ॥६६॥ शङ्करजी ने इसे एकान्त में पार्वतीजी को बतलाया है । यह यथार्थ में गोपनीय तथा मन्त्रों का सार है ॥६७॥ देवी की प्रसन्नता के लिए इसे शङ्करजी ने तत्पर होकर कहा । हे राजन् ! यह उमामहेश्वर सम्वाद अद्भुत है ॥६८॥ जो भक्तिपूर्ण अन्तःकरण से पढ़ता और सुनता है वह सर्वज्ञ सर्ववन्द्य महाभागवत हो जाता है ॥६९॥ सभी धर्मों से रहित भी परम्पद को प्राप्त कर लेता है । हे महाबलवान् राजश्रेष्ठ ! आप संसार में धन्य हैं ॥७०॥ तुम्होर वंश में श्रीभगवान् पुराण पुरुषोत्तम श्रीहरि सम्पूर्ण संसार का कल्याण करने के लिए दशरथ के पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे ॥७१॥ हे राजन् ! इसी कारण इक्ष्वाकुवंशीय देवताओं के लिए भी वन्दनीय हैं । उन सबों के वंश में राजीवन् लोचन भगवान् राम उत्पन्न हुए ॥७२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के उमामहेश्वर संवाद के अन्तर्गत रामचन्द्र अष्टोत्तर शत नाम वर्णन नामक दो सौ चौवनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५४।।

दो सौ पचपनवाँ अध्याय

दिलीप उवाच

कथितं भवता ब्रह्मन्सर्वधर्ममशेषतः। सामान्यं च विशिष्टं च स्वरूपं परजीवयोः ॥१॥
स्वर्गापवर्गौ कथितौ साधनंच तयोरपि । धन्योऽस्म्यहं द्विजश्रेष्ठत्वत्प्रसादात्सदागुरो !॥२॥
एकस्तुसंशयश्चित्ते ममाऽस्ति द्विजसत्तम !। कथामन्यांद्विजश्रेष्ठपृच्छामित्वांकुतूहलात् ॥३॥
कथयस्व यथातथ्यमपि वात्सल्यगौरवात्। महाभागवतश्रेष्ठो रुद्रस्त्रिपुरघातकः ॥४॥
कस्माद्विगर्हितं रूपं प्राप्तवान्सह भार्यया । योनिलिङ्गस्वरूपं च कथंस्यात्सुमहात्मनः ॥५॥
पञ्चवक्त्रश्चतुर्बाहुः शूलपाणिस्त्रिलोचनः । कथं विगर्हितं रूपं प्राप्तवान्द्विजपुङ्गव ! ॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व मित्रवरुणनन्दन ! ॥६॥

वसिष्ठ उवाच

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यन्मांपृच्छसि गौरवात् ।
विशुद्धेहृदयेपुंसां बुद्धिः श्रेयसि जायते ॥७॥

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं मन्दरे पर्वतोत्तमे । जगाम मुनिभिः सार्द्धं दीर्घसत्रमनुत्तमम् ॥८॥
तस्मिन्समागताः सर्वे मुनयः संशितव्रताः। नानाशास्त्रविदः श्रेष्ठा बालसूर्यानलप्रभाः ॥९॥
सर्ववेदविदो विप्राः सर्वधर्मपरायणाः । वर्तमाने महासत्रे मुनयः क्षीणकल्मषाः ॥१०॥
अन्वेष्टुं देवतातत्त्वं मिथः प्रोचुस्तपोधनाः । विप्राणां वेदविदुषां कः पूज्यो देवतावरः ॥११॥

वसिष्ठ दिलीप संवाद के अन्तर्गत भृगु महर्षि के द्वारा महर्षियों के अनुरोध से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के सात्त्विकत्व की परीक्षा तथा श्रीविष्णु भगवान् के श्रेष्ठत्व का प्रतिपादन एवं पद्मपुराण के सुनने का फल वर्णन

दिलीप ने कहा— हे ब्रह्मन् ! आपने सभी धर्मों को पूर्णरूप से मुझे सुनाया । परमात्मा और जीवों के सामान्य और विशिष्ट स्वरूप को भी बतलाया ॥१॥ आपने स्वर्ग और मोक्ष के स्वरूप का तथा उनकी प्राप्ति के साधन को भी बतलाया । हे गुरो ! मैं आपकी कृपा से धन्य हो गया ॥२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे मन में एक संशय है । हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं दूसरी कथा को आप से कुतूहलवशात् कहता हूँ ॥३॥ आप मुझे अपने वात्सल्य गौरव के कारण मुझे उसे बतलायें । त्रिपुरान्तक शङ्करजी तो महाभागवतों में श्रेष्ठ हैं ॥४॥ उन्होंने अपनी पत्नी के साथ क्यों निन्दित रूप धारण किया । उन महात्मा का स्वरूप योनिलिङ्ग स्वरूप क्यों हैं ॥५॥ वे पाँच मुख, चार भुजाएँ, तीन नेत्र वाले और त्रिशूल अपने हाथ में लिए रहते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! उन्होंने अत्यन्त निन्दित रूप कैसे प्राप्त किया ? । हे मित्रावरुण नंदन ! आप इन सारी वातों को बतलायें ॥६॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! जो तुम पूछते हो उसे मैं तुम्हारे गौरव के कारण कहता हूँ उसे सुनो । विशुद्ध हृदय वाले पुरुष के हृदय में बुद्धि भी श्रेष्ठ होती है ॥७॥ पूर्वकाल में स्वायम्भुव मनु मन्दराचल पर्वत पर मुनियों के साथ उनके उत्तम दीर्घसत्र में गये ॥८॥ उसमें प्रशंसित व्रत वाले सभी मुनिगण आये । वे अनेक शास्त्रों के जानने वाले थे उनकी कान्ति बाल सूर्य तथा अग्नि के समान थीं ॥९॥ सभी वेदों को जानने वाले वे ब्राह्मण सभी धर्मों का पालन करने वाले थे । महासत्र के

ब्रह्मविष्णुमहेशानां कः स्तुतो मुक्तिदो नृणाम् ।
कस्य पादोदकं सेव्यं भुक्तोच्छिष्टं च पावनम् ॥१२॥
कोऽव्ययः परमं धाम परमात्मा सनातनः । कस्य प्रसादं तीर्थं च पितॄणांतृप्तिदंभवेत् ॥१३॥
तेषां समुपविष्टानामिति वादो महानभूत् । रुद्र एक इति प्रोचुः केचिदत्र महर्षयः ॥१४॥
ब्रह्मैव पूज्यइत्यन्ये वदन्ति मुनिसत्तमाः । सूर्य एवात्मनां पूज्यइत्यन्ये प्राहुरुत्तमाः ॥१५॥
योऽसौ सर्वगतःश्रीमाञ्छ्रीपतिःपुरुषोत्तमः । अव्ययः पुण्डरीकाक्षो वासुदेवः परात्परः ॥१६॥
अनादिनिधनो विष्णुः सएव परमेश्वरः । सम्पूज्यो देवताश्रेष्ठ इत्यन्ये चोचिरे द्विजाः ॥१७॥
तेषां विवदतांतत्रमनुःस्वायम्भुवोऽब्रवीत् । शुद्धसत्त्वमयो योऽसौकल्याणगुणवान्प्रभुः ॥१८॥
पुण्डरीकेक्षणः श्रीमाञ्छ्रीपतिः पुरुषोत्तमः । विप्राणां वेदविदुषामेकएवार्चितः प्रभुः ॥
विप्राणां नेतरे पूज्या रजस्तमोविमिश्रिताः ॥१९॥

वसिष्ठ उवाच

इतितस्य वचः श्रुत्वा सर्व एव महर्षयः । भृगुं तपोनिधिं विप्रं प्रोचुः प्राञ्जलयस्तथा ॥२०॥

ऋषयऊचुः

अस्माकं संशयं छेत्तुं त्वं समर्थोऽसिसुव्रत ! ।
ब्रह्माविष्णुमहेशानामन्तिकं व्रज सुव्रत ! ॥२१॥
गत्वा तेषां समीपं तु तथा दृष्ट्वातु विग्रहान् ।
शुद्धसत्त्वगुणंतेषांयस्मिन्सम्विद्यते मुने ! ॥२२॥

प्रारम्भ होने पर निष्पाप मुनिगण ॥१०॥ देवता तत्त्व का अन्वेषण करने के लिए तपस्वीगण आपस में कहे। वेदज्ञ ब्राह्मणों के लिए पूज्य सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है ?॥११॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश में से मनुष्यों को मुक्ति देने वाले देवता कौन हैं ? किसका चरणोदक सेवनीय है और किसके भोजन का उच्छिष्ट पवित्र होता है ॥१२॥ कौन अव्यय, परमधाम है, तथा सनातन परमात्मा है ? किसका प्रसादा और तीर्थ पितरों को तृप्त करने वाला हैं ?॥१३॥ उन बैठे हुए ऋषियों में बहुत बड़ा वाद हुआ । कुछ लोगों ने कहा रुद्र ही ऐसे हैं कुछ महर्षियों ने कहा ॥१४॥ ब्रह्माजी ही पूज्य है और दूसरे लोगों ने कहा सूर्य ही जीवों के लिए पूज्य हैं और कुछ लोगों ने कहा जो सर्वव्यापक पुरुषोत्तम हैं वे ही अव्यय, पुण्डरीकाक्ष वासुदेव और परात्पर हैं ॥१५-१६॥ विष्णु अनादि निधन हैं और वे ही परमेश्वर हैं पूज्य श्रेष्ठ देवता हैं इस तरह से दूसरे ब्राह्मणों ने कहा ॥१७॥ इस तरह से विवाद करने वाले उन लोगों से स्वायम्मुख मनु ने कहा उनलोगों में जो देवता शुद्ध सत्त्वगुणमय हैं वे ही कल्याण गुणवान है ॥१८॥ वे कमलन् के समान नेत्र वाले, श्रीमान, लक्ष्मीपति और पुरुषोत्तम हैं । वेदज्ञ ब्राह्मणों से केवल वे ही पूजित हैं । रजोगुण एवं तमोगुण मिश्रित कोई भी देवता उन विप्रों का पूज्य नहीं हैं ॥१९॥ **वसिष्ठजी ने कहा—** उनकी इस वाणी को सुनकर महर्षियों ने तपोनिधि भृगु महर्षि से हाथ जोड़कर कहा ॥२०॥ **ऋषिगण बोले—** हे सुव्रत ! हमलोगों के संशय को दूर करने में आप ही समर्थ हैं आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश के पास जायँ ॥२१॥ उन लोगों के समीप जाकर और उनके शरीर को देखकर ! जिसमें शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्नता हो ॥२२॥ वही

सएवपूज्यो विप्राणां नेतरस्तु कदाचन। शुद्धसत्त्वमयः साक्षाद्ब्रह्मण्यः स भविष्यति॥२३॥
तीर्थप्रसादवाँल्लोके विप्राणां स भविष्यति। देवतानांपितॄणांचतस्योच्छिष्टंसुपावनम् ॥२४॥
तस्माद्याहि मुनिश्रेष्ठ ! विबुधानां निवासनम् ।
क्षिप्रं कुरु मुनिश्रेष्ठ ! सर्वलोकहितं प्रभो ! ॥२५॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्तो भृगुस्तूर्णं कैलासं मुनिसत्तमः। जगाम वायुमार्गेण यत्राऽऽस्ते वृषभध्वजः॥२६॥
गृहद्वारमुपागम्य शङ्करस्य महात्मनः। शूलहस्तं महारौद्रं नन्दिनं चाऽब्रवीद्द्विजः॥२७॥
सम्प्राप्तोऽहं भृगुर्विप्रो हरं द्रष्टुं सुरोत्तमम्। निवेदयस्व मां शीघ्रं शङ्कराय महात्मने॥२८॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नन्दी सर्वगणेश्वरः। उवाच परुषं वाक्यं महर्षिममितौजसम्॥२९॥
असान्निध्यं प्रभोस्तस्य देव्या क्रीडतिशङ्करः ।
निवर्त्तस्वमुनिश्रेष्ठ ! यदिजीवितुमिच्छसि ॥३०॥

वसिष्ठ उवाच

एवं निराकृतस्तेन तत्राऽतिष्ठन्महातपाः। बहूनि दिवसान्यस्मिन्गृहद्वारि महेशितुः ॥
तत्र क्रोधसमाविष्टो भृगुः शापमदान्मुनिः ॥३१॥

भृगुरुवाच

निविष्टस्तमसा मूढो मां न जानातिशङ्करः। नारीसङ्गममत्तोऽसौयस्मान्मामवमन्यते ॥३२॥
योनिलिङ्गस्वरूपं वै तस्मात्तस्य भविष्यति। ब्राह्मणं माऽवजानाति तमसासमुपागतः॥३३॥
अब्रह्मण्यत्वमापन्नो ह्यपूज्योऽसौद्विजन्मनाम्। तस्मादन्नंजलंपुष्पंतस्मै दत्तं हविस्तथा ॥
निर्माल्यमस्य तत्सर्वं भविष्यति न संशयः ॥३४॥

हम ब्राह्मणों का पूज्य है दूसरा कोई नहीं। शुद्ध सत्त्वमय वही ब्रह्मण्य होगा ॥२३॥ लोक में वहीं ब्राह्मणों से तीर्थ और प्रसाद लेने योग्य होगा। उसी का उच्छिष्ट देवताओं और पितरों के लिए पवित्र होगा ॥२४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप शीघ्र देवताओं के निवास स्थान पर जायँ। हे प्रभो ! आप शीघ्र ही मुनिश्रेष्ठ ! संसार का कल्याण करें ॥२५॥ **वसिष्ठजी ने कहा—** इस तरह से कहने पर भृगु महर्षि शीघ्र ही वायुमार्ग से कैलास पर्वत पर गये वहीं पर भगवान् शिव रहते हैं ॥२६॥ वे शङ्करजी के द्वार पर जाकर हाथ में त्रिशूल लिए हुए भयङ्कर नन्दी से कहे ॥२७॥ मैं देवश्रेष्ठ ! शङ्करजी का दर्शन करने के लिए भृगु नामक ब्राह्मण आया हूँ अतएव महात्मा शङ्करजी को मेरे आने की सूचना शीघ्र दो ॥२८॥ उनके उस वचन को सुनकर सभी गुणों के स्वामी नन्दी अमित तेजस्वी महर्षि को कठोर वचन कहे ॥२९॥ इस समय शङ्करजी देवी के साथ क्रीडा कर रहे है। अतएव वे मिल नहीं सकते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! यदि जीवित रहना चाहते हो तो लौट जाओ ॥३०॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** इस तरह से उसके द्वारा अनादृत किए जाने पर वे महर्षि वहीं रुके रहे। वे महेश के द्वार पर कई दिन रहे उसके बाद क्रोध करके वे मुनि शाप दे दिया॥३१॥ **भृगु महर्षि ने कहा—** तमोगुण से युक्त मूर्ख शङ्कर मुझको नहीं जानता है। नारी के साथ सङ्गम करने के कारण मदमत्त चूकि मेरा अपमान करता है ॥३२॥ इसलिए इसका स्वरूप योनि लिङ्ग

वसिष्ठ उवाच

एवं शप्त्वा महातेजाः शङ्करंलोकपूजितम् । उवाच गणमत्युग्रं नन्दिनं शूलपाणिकम्॥३५॥

भृगुरुवाच

रुद्रभक्ताश्च ये लोके भस्मलिङ्गास्थिधारिणः ।
ते पाखण्डत्वमापन्ना वेदबाह्या भवन्तु वै ॥३६॥

वसिष्ठ उवाच

इतितस्य वचःश्रुत्वा रुद्रस्त्रिपुरघातकः । भृगुं हन्तुं समारेभे महता तमसावृतः ॥३७॥
शूलं हस्ते प्रगृह्याऽथ पार्वती विनयान्विता । न्यवर्तयन्महादेवं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥३८॥
ततो ललाटनयनं कोटिसूर्याग्निसन्निभम् । भृगुः पश्यन्महातेजाः स्थितोगौर्यानिवारितः ॥३९॥
मुनिस्तु पादे नयनं प्रदर्श्य प्रहसन्ययौ । अमोघो मम शापस्तु कुरूपी त्वं न संशयः ॥४०॥

ततः प्रभृति विप्राणां तस्य पादोदकादिकम् ।
अग्राह्यमभवद्राजन्सर्वभूताधिपस्य तु ॥४१॥

पाषण्डैः पूज्यमानस्तु लिङ्गरूपधरः शिवः । एवं शप्त्वा मुनिस्तत्र रुद्रं त्रिपुरघातकम् ॥४२॥
जगाम ब्रह्मलोकं वै सर्वलोकनमस्कृतम् । तत्र देवैः सहासीनं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्॥४३॥
दृष्ट्वा प्राञ्जलिना देवं प्रणनाम महामतिः। प्रणम्य पुरतस्तस्य तूष्णीमास्ते महातपाः ॥४४॥
तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलं रजोगुणसमावृतः । नाऽर्चयामास धाताऽसौ महर्षि समुपागतम्॥४५॥

प्रत्युत्थानं प्रियं वाक्यं न कृतं तस्य वेधसा ।
ऐश्वर्येणैव महता तस्थौ तत्राऽम्बुजासनः ॥४६॥

स्वरूप हो जाये । मुझ ब्राह्मण का अपमान करने के कारण यह तमोगुण युक्त हो जाय ॥३३॥ यह अब्रह्मण्य और ब्राह्मणों का अपूज्य है । अतएव इसको प्रदत्त, अन्न, जल, पुष्प तथा हविष्य सबकुछ निर्माल्य हो जायेगा इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥३४॥ **वसिष्ठजी ने कहा—** इस तरह से लोक पूजित शङ्करजी को शाप देकर वे महातेजस्वी उन्होंने त्रिशूल हाथ में लिए हुए अत्यन्त उग्र नन्दी से कहा ॥३५॥ संसार में जो रुद्र भक्त भस्म तथा अस्थि धारण करने वाले हैं वे पाखण्डी वेदबाहय हो जायँ ॥३६॥ **वसिष्ठजी ने कहा—** यह बात सुनकर त्रिपुर विनाशक शङ्करजी भृगु महर्षि को अत्यन्त तमोगुण युक्त होकर मार देना चाहे ॥३७॥ वे हाथ में त्रिशूल ले लिए तब नम्र होकर पार्वतीजी ने प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनको लौटाया ॥३८॥ उसके बाद करोड़ों सूर्य और अग्नि के समान नेत्र वाले शङ्करजी को देखकर महातेजस्वी गौरीजी द्वारा रोके जाने पर मुनि वहाँ ठहरे ॥३९॥ मुनि अपने चरणों में नेत्र दिखाकर जोर से हँसते हुए चले गये । उन्होंने कहा मेरा शाप अमोघ है तुम कुरूप हो जाओगे ॥४०॥ उसी समय से हे राजन् ! सभी भूतों के स्वामी शङ्करजी का चरणोदक इत्यादि ब्राह्मणों के लिए अग्राह्य हो गया॥४१॥ पाखण्डियों के द्वारा पूजे जाने वाले शिवजी लिङ्ग का रूप धारण करने वाले हो गये इस तरह से त्रिपुरघातक शिवजी को शाप देकर मुनि ॥४२॥ सभी लोकों से नमस्कृत ब्रह्माजी के लोक में गये । वहाँ पर देवताओं के साथ बैठे हुए परमेष्ठी ब्रह्माजी को ॥४३॥ देखकर हाथ जोड़कर महामति ब्रह्माजी को नमस्कार किये ओर उनके सामने चुपचाप खड़े रहे ॥४४॥ उन मुनिश्रेष्ठ को देखकर तमोगुण सम्पन्न होकर ब्रह्माजी आये

तं दृष्ट्वा राजसोद्रिक्तं महर्षिः पङ्कजासनम्। व्याजहार महातेजा वाक्यं लोकपितामहम् ॥४७॥

भृगुरुवाव

रजसा महतोद्रिक्तो यस्मान्मामवमन्यसे। तस्मात्त्वं सर्वलोकानामपूज्यत्वंसमाप्नुहि ॥४८॥

वसिष्ठ उवाच

एवं शप्त्वा महात्मानं ब्रह्माणं लोकपूजितम् ।
जगाम सहसा विप्रो भगवन्मन्दिरंभृगुः ॥४९॥

तस्माद्देवैर्मनुष्यैश्च राक्षसैर्मुनिसत्तमैः। अपूज्यत्वमवाप्यैव स्थितवान्स पितामहः ॥५०॥
प्रविश्य वैष्णवं लोकं क्षीराब्धेरुत्तरे तटे। तत्रस्थितैर्महाभागैः पूज्यमानो यथार्हतः ॥५१॥
तत्रानिवार्यमाणस्तु प्रविष्टोऽन्तरःपुरं द्विजः। प्रविश्य तस्मिन्विमले विमाने रविसन्निभे ॥५२॥
शयानं नागपर्यङ्के ददर्श कमलापतिम्। लक्ष्मीकरसरोजाभ्यां मृज्यमानपदद्वयम्॥५३॥

तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलो भृगुः कोपसमन्वितः ।
सव्यं पादं प्रचिक्षेप विष्णार्वक्षसिशोभने ! ॥५४॥

तूर्णमुत्थाय भगवान्धन्योऽस्मीति वदन्मुदा। हस्ताभ्यां चरणं तस्य पीडयामास हर्षितः ॥५५॥
शनैर्मुदित्वातत्पादं मधुरंवाक्यमब्रवीत्। धन्योऽस्म्यद्यैवविप्रर्षे ! कृतकृत्योऽस्मिसर्वदा ॥
त्वत्पादस्पर्शनाद्देहे मङ्गलं मे भविष्यति ॥५६॥

समस्तसंपत्समवाप्तिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥५७॥

हुए महर्षि का पूजन नहीं किए ॥४५॥ खड़ा होकर ब्रह्माजी ने उनको प्रिय वाक्य भी नहीं कहा । महान् ऐश्वर्य सम्पन्न वे कमलासन पर बैठे रहे ॥४६॥ महर्षि ब्रह्मर्षि भृगु रजोद्रिक्त ब्रह्माजी को देखकर लोक पितामह को देखकर कहे ॥४७॥ **भृगु महर्षि ने कहा—** चूकि आप अत्यधिक रजोगुण युक्त होने के कारण मेरा अपमान कर रहे हैं, अतएव सभी लोगों के लिए आप अपूज्य हो जायँ ॥४८॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** इस तरह से लोक पूजित ब्रह्माजी को शाप देकर भृगु महर्षि भगवान् विष्णु के लोक में गये॥४९॥ इसीलिए देवता, मनुष्य, राक्षस तथा श्रेष्ठ मुनियों द्वारा अपूजित होकर ब्रह्माजी बने रहे ॥५०॥ वैष्णव लोक में प्रवेश करके क्षीर सागर के उत्तर तट पर वहाँ पर विद्यमान महाभागों के द्वारा पूजित होने वाले ॥५१॥ वहाँ किसी के द्वारा रोके बिना ही महर्षि अन्तःपुर में प्रवेश कर गये । प्रवेश करके सूर्य के समान विमल विमान पर ॥५२॥ सोये हुए लक्ष्मीपति श्रीभगवान् को देखे । उस समय लक्ष्मीजी अपने हस्तकमलों से श्रीभगवान् के दोनों चरणों को दबा रही थीं ॥५३॥ उनको देखकर मुनिश्रेष्ठ भृगु क्रोध करके भगवान् विष्णु के सुन्दर वक्षःस्थल पर बायें पैर को रख दिए ॥५४॥ श्रीभगवान् शीघ्रता से उठकर; मैं धन्य हूँ इस तरह से प्रसन्नता पूर्वक कहते हुए प्रसन्न होकर अपने दोनों हाथों से मुनि के चरणों को दबाने लगे ॥५५॥ धीरे-धीरे उनके चरणों को दबाकर मधुरवाणी में कहे हे विप्रर्षे ! आज ही मैं धन्य हो गया और सर्वदा के लिए कृतकृत्य हो गया मेरे शरीर में आपके चरणों का स्पर्श हो जाने से मेरा कल्याण होगा॥५६॥ समस्त सम्पत्तियों को प्रदान करने वाले, होने वाली विपत्ति के विनाश के लिए धूमकेतु के

विप्रपादरजो यस्य देहे तिष्ठति सर्वदा । गङ्गादिसर्वतीर्थानि तस्य तिष्ठन्त्यसंशयम् ॥५८॥
इत्युक्त्वासहसोत्थायदेव्यासार्धंजनार्दनः । भक्त्यासमर्चयामासदिव्यस्त्रक्चन्दनादिभिः ॥५९॥
तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलो हर्षपूर्णाश्रुलोचनः । उत्थायासनमुख्यात्तं प्रणनाम दयानिधिम् ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हर्षात्प्राह महातपाः ॥६०॥

श्रीभृगुरुवाच

अहोरूपमहोशान्तिरहोज्ञानमहो दया। अहो सुनिर्मला शान्तिरहो सत्त्वगुणं हरेः ॥६१॥
नैसर्गिकंशुभं सत्त्वंतथैव गुणवारिधेः । नाऽन्येषां विद्यते किञ्चित्सर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥६२॥
ब्रह्मण्यश्चशरण्यश्च त्वमेव पुरुषोत्तमः । ब्राह्मणानां त्वमेवेशोनान्यः पूज्यःसुरः क्वचित्॥६३॥
येऽचर्यन्ति सुरानन्यांस्त्वांविनापुरुषोत्तम !। तेपाखण्डत्वमापन्नाः सर्वलोकविगर्हिताः ॥६४॥
विप्राणां वेदविदुषां त्वमेवेज्यो जनार्दनः। नान्यः कश्चित्सुराणांतु पूजनीयः कदाचन ॥६५॥
अनर्च्याब्रह्मरुद्राद्या रजस्तमोविमिश्रिताः । त्वंशुद्धसत्त्वगुणवान्पूजनीयोऽग्रजन्मनाम् ॥६६॥

त्वतपादसलिलं सेव्यं पितृणां च दिवौकसाम् ।
सर्वेषां भूसुराणां च मुक्तिदं कल्मषापहम् ॥६७॥
त्वद्भुक्तोच्छिष्टशेषं वै पितृणांच दिवौकसाम् ।
सर्वेषां भूसुराणांचमुक्तिदं कल्मषापहम् ॥६८॥

इतरेषां तु देवानामन्नंपुष्पंजलं तथा। अस्पृश्यं तु भवेत्सवं निर्माल्यं सुरया समम्॥६९॥

समान, अपार संसार सागर के ऊपर सेतु के समान ब्राह्मण के चरणों की धूलि मुझे पवित्र बना दे ॥५७॥ जिसके शरीर पर ब्राह्मण के चरणों की धूलि सर्वदा लगी रहती है उसके गङ्गा आदि सभी तीर्थों का फल प्राप्त होता है ॥५८॥ यह कहकर लक्ष्मीजी के साथ भगवान् जनार्दन की भक्ति पूर्वक दिव्य, वस्त्र माला तथा चन्दन से पूजा किए ॥५९॥ श्रीभगवान् को देखकर महर्षि भृगु अत्यन्त हर्षित होकर उस मुख्य आसन से उठकर दयानिधि श्रीभगवान् को प्रणाम किए । हाथ जोड़कर वे महातपस्वी हर्ष से कहे ॥६०॥ **श्रीभृगु महर्षि ने कहा—** श्रीहरि के रूप, शान्ति, ज्ञान, दया अत्यन्त निर्मल शान्ति तथा सत्त्वगुण धन्य हैं॥६१॥ स्वाभाविक कल्याण तथा सत्त्वगुण, गुण सागर श्रीभगवान् से भिन्न किसी भी देवता में नहीं है ॥६२॥ हे पुरुषोत्तम ! आप ही ब्रह्मण्य और शरण्य हैं । आप ही ब्राह्मणों के पूज्य हैं, कोई दूसरा देवता उनका पूज्य नहीं है ॥६३॥ हे पुरुषोत्तम ! आपको छोड़कर जो लोग दूसरे देवता का पूजन करते हैं वे लोग पाखण्डत्व को प्राप्त करके सारे लोकों से निन्दित हो जाते हैं ॥६४॥ वेदज्ञ ब्राह्मणों के आप ही हे जनार्दन पूज्य हैं। कभी उनके लिए कोई भी देवता पूज्य नहीं हो सकता है ॥६५॥ रजोगुण तथा तमोगुण के मिश्रण से युक्त ब्रह्मा तथा रुद्र आदि पूज्य नहीं है । आप शुद्धसत्त्वगुण युक्त हैं अतएव विप्रों के लिए आप पूज्य हैं॥६६॥ आपका चरणोदक देवताओं और पितरों के द्वारा सेवनीय है । आप सभी ब्राह्मणों को मुक्ति देने वाले तथा उनके पापों का विनाशक करने वाले हैं ॥६७॥ आपका उच्छिष्ट प्रसाद पितरों तथा देवताओं के लिए तथा सभी ब्राह्मणों को मुक्ति देने वाला और उनके पापों को विनष्ट करने वाला है । वह ब्राह्मणों के लिए सेवनीय है और किसी देवता का उच्छिष्ट नहीं ॥६८॥ दूसरे देवताओं का उछिष्ट अन्न और जल तथा पुष्प

तस्माद्वै ब्राह्मणो नित्यं पूजयित्वा सनातनम् ।
त्वत्तीर्थं भुक्तमन्नञ्च भजेतैवाऽनिशंबुधः ॥७०॥
नान्यं देवं तु वीक्षेत ब्राह्मणो न च पूजयेत् ।
नान्यप्रसादं भुञ्जीत नान्यस्यायततं विशेत् ॥७१॥
न ददातीह यो विप्रः पितॄणां श्राद्धकर्मणि। त्वद्भुक्तमन्नं तीर्थं च तत्सर्वं निष्फलंभवेत् ॥७२॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च। पतन्ति पितरस्तस्य नरके पूयशोणिते ॥७३॥
निवेदितं तव विभो ! यो जुहोति ददाति वा ।
देवातानां पितॄणां च तृप्तिरानन्त्यमश्नुते ॥७४॥
तस्मात्त्वमेव विप्राणां पूज्यो नान्योऽस्ति कश्चन ।
मोहाद्यः पूजयेदन्यान्स पाखण्डी भविष्यति ॥७५॥
त्वंहिनारायणःश्रीमान्वासुदेवः सनातनः। विष्णुः सर्वगतोनित्यः परमात्मा महेश्वरः ॥७६॥
त्वमेव सेव्यो विप्राणां ब्रह्मण्यः शुद्धसत्त्ववान् ।
पूज्यत्वाद्ब्राह्मणानां वै शुद्धसत्त्वगुणादपि ॥७७॥
सर्वेषामेव देवानां ब्राह्मणत्वमवाप्नुहि। त्वामेवहि सदा विप्रा भजन्ति पुरुषोत्तमम् ॥७८॥
ब्राह्मणास्ते बभूवुस्तु नान्ये तत्र न संशयः। ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः॥७९॥
ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युतः ।
ब्रह्मण्योभगवान्कृष्णो वासुदेवोऽच्युतो हरिः ॥८०॥
ब्रह्मण्योनारसिंहःस्यात्तथानारायणोऽव्ययः । ब्रह्मण्यःश्रीधरःश्रीशोगोविन्दोवामनस्तथा ॥८१॥

अस्पृश्य तथा मदिरा के समान निर्माल्य हो जाता है ॥६९॥ इसीलिए ब्राह्मण को चाहिए कि वह नित्य ही सनातन भगवान की पूजा करके आपके तीर्थ और भुक्त अन्न को सदा खाया करें ॥७०॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह किसी दूसरे देवता को न तो देखे और न उनकी पूजा करे दूसरे देवता के प्रसाद को न तो खाय और न दूसरे देवता के मन्दिर में जाय ॥७१॥ जो विप्र श्राद्ध कर्म में आपके भुक्त अन्न तथा तीर्थ को पितरों को नहीं देता है उसका सब कुछ किया हुआ निष्फल हो जाता है ॥७२॥ उसके पितृगण हजारों करोड़ और सैकड़ों करोड़ कल्पों तक पीव तथा शोणित के नरक में पड़े रहते हैं ॥७३॥ हे विभो ! आपको निवेदित अन्न का जो होम करता है और पितरों एवं देवताओं को देता है तो उससे देवता और पितृगण अनन्त काल तक तृप्त रहते हैं ॥७४॥ आप ही ब्राह्मणों के लिए पूज्य हैं कोई दूसरा देवता नहीं जो अज्ञानवशात् किसी दूसरे देवता का पूजन करता है वह पाखण्डी हो जाता है ॥७५॥ आप ही नारायण, श्रीमान्, वासुदेव, सनातन विष्णु सर्वव्यापक नित्य परमात्मा और महेश्वर हैं ॥७६॥ आप ही ब्राह्मणों के लिए सेव्य ब्रह्मण्य और शुद्धसत्त्व गुण सम्पन्न हैं ब्राह्मणों का पूज्य होने के कारण तथा शुद्ध सत्त्वगुण से भी सम्पन्न ॥७७॥ सभी देवताओं में आप ही ब्राह्मणत्व को प्राप्त करें । आपका ही पुरुषोत्तम रूप से जो ब्राह्मण सदा भजन करते हैं ॥७८॥ वे ही ब्राह्मण हैं दूसरा कोई भी नहीं है । भगवान् देवकी पुत्र, ब्रह्मण्य हैं, मधुसूदन ब्रह्मण्य हैं ॥७९॥ पुण्डरीकाक्ष ब्रह्मण्य हैं तथा अच्युत भगवान् विष्णु ब्रह्मण्य हैं॥८०॥ भगवान् नरसिंह ब्रह्मण्य हैं तथा अव्यय भगवान नारायण ब्रहण्य हैं । श्रीधर, श्रीश तथा गोविन्द

ब्रह्मण्यो यज्ञवाराहः केशवः पुरुषोत्तमः । ब्रह्मण्यो राघवः श्रीमान्रामो राजीवलोचनः ॥८२॥
ब्रह्मण्यः पद्मनाभः स्यात्तथा दामोदरःप्रभुः । ब्रह्मण्यो माधवो यज्ञस्तथा त्रिविक्रमःप्रभुः ॥८३॥
ब्रह्मण्यश्च हृषीकेशः पीतवासा जनार्दनः । नमो ब्रह्मण्यदेवाय वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ॥८४॥
नारायणाय श्रीशाय पुण्डरीकेक्षणाय च । नमो ब्रह्मण्यदेवाय वासुदेवाय विष्णवे॥८५॥
कल्याणगुणपूर्णाय नमस्ते परमात्मने। नमो ब्रह्मण्यदेवाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥८६॥
वाराहवपुषे नित्यं त्रयीनाथाय तेनमः। नमो ब्रह्मण्यदेवाय नागपर्यङ्कशायिने ॥८७॥
राजीवदलनेत्राय राघवाय नमोनमः। मायया मोहिताः सर्वे देवाश्च ऋषयस्तव ॥८८॥
न जानन्ति महात्मानं सर्वलोकेश्वरं प्रभो !। त्वां न जानन्ति भगवन्सर्ववेदविदोऽपिहि ॥८९॥
नामरूपगुणैः श्रीशचारित्रैरपि दुष्कृतैः। परत्वसूचकं सत्त्वं तव वेदितुमीश्वरः॥९०॥

महर्षिभिः प्रेषितोऽहमागतोऽस्मितवाऽन्तिकम् ।
तव शीलगुणाज्ज्ञातुं चरणं मम केशव ॥९१॥

दत्तं वक्षसि गोविन्दतत्क्षन्तव्यं कृपानिधे !। एवमुक्त्वा भृगुर्देवं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः॥९२॥
दिव्यैर्महर्षिभिस्तत्र पूज्यमानो महात्मभिः । पुनर्जगाम हृष्टात्मा यज्ञभूमिं शुभाह्वयाम् ॥९३॥
समागतं महात्मानं तत्र दृष्ट्वामहर्षयः। प्रत्युत्थाय नमस्कृत्य पूजां चक्रुर्विधानतः॥९४॥
तेषां विज्ञापयायास तत्सर्वं मुनिपुङ्गवः । रजस्तमोगुणोद्रिक्तौ विधीशानौ सुरोत्तमौ ॥९५॥

शप्तौ मया न पूज्यौ तौ विप्राणामृषिसत्तम ! ।
अब्रह्मण्यत्वमापन्नो गर्हितं रूपमास्थितः ॥९६॥

भगवान् ब्रह्मण्य हैं ॥८१॥ भगवान् यज्ञ बाराह ब्रह्मण्य हैं, केशव तथा पुरुषोत्तम ब्रह्मण्य हैं तथा राघव तथा राजीव लोचन श्रीमान् राम ब्रह्मण्य हैं ॥८२॥ पद्मनाभ तथा दामोदर भगवान् ब्रह्मण्य हैं, माधव, यज्ञ तथा भगवान् त्रिविक्रम ब्रह्मण्य हैं ॥८३॥ हृषीकेश, पीताम्बरधारी जनार्दन ब्रह्मण्य हैं । शार्ङ्ग धनुषधारी ब्रह्मण्य देव भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥८४॥ नारायण, श्रीश, पुण्डरीकाक्ष तथा ब्रह्मण्य देव विष्णु भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥८५॥ कल्याणगुण से परिपूर्ण परमात्मा को नमस्कार है सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कारण भूत ब्राह्मण्य देव को नमस्कार है ॥८६॥ हे वाराह शरीरधारी तथा त्रयी नाथ ! आपको सदैव प्रणाम है । ब्रह्मण्य देव तथा नागपर्यङ्क पर शयन करने वाले भगवान् को नमस्कार है ॥८७॥ कमलदल के समान नेत्र वाले भगवान् राघव को बारम्बार नमस्कार है । सभी देवता और ऋषिगण आपकी माया से मोहित हैं ॥८८॥ हे प्रभो ! लोक के स्वामी तथा महान आत्मा आपको नहीं जानते हैं । हे भगवन् ! सर्ववेद वेत्ता भी आपको नहीं जान पाते हैं ॥८९॥ हे श्रीश ! नाम, रूप, गुण तथा दुष्कर चरित्र के द्वारा परत्व सूचक आपके सत्त्व को तथा ईश्वरत्व को जानने के लिए ॥९०॥ महर्षियों के द्वारा भेजा हुआ मैं आपके पास आया हूँ । आपके शील गुण को जानने के लिए हे केशव ! मैंने अपने चरण को ॥९१॥ आपके वक्षःस्थल पर रखा है । हे कृपानिधे ! गोविन्द उसको आप क्षमा कर दें इस तरह से कहकर महर्षि श्रीभगवान् को बार-बार प्रणाम करके ॥९२॥ वहाँ पर विद्यमान दिव्य महर्षियों द्वारा पूजित होकर वहाँ से शुभ यज्ञ भूमि पर चले गये ॥९३॥ आये हुए महर्षि को देखकर महर्षियों ने खड़ा होकर उनकी पूजा किया और नमस्कार किया ॥९४॥ उन्होंने उन लोगों को सारी बातों को बतलाया कि ब्रह्माजी और शिवजी उद्रिक्त

शप्तः कैलासशिखरे शङ्करस्तमसावृतः। शुद्धसत्त्वमयो विष्णुः कल्याणगुणसागरः ॥९७॥
नारायणः परंब्रह्म विप्राणां दैवतं हरिः। ब्रह्मण्यः श्रीपतिर्विष्णुर्वासुदेवो जनार्दनः ॥९८॥
ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो गोविन्दोहरिरच्युतः। स एव पूज्यो विप्राणां नेतरः पुरुषर्षभः ॥९९॥

मोहाद्यः पूजयेदन्यं स पाखण्डी भविष्यति ।
स्मरणादेव कृष्णस्य विमुक्तिः पापिनामपि ॥१००॥
तस्य पादोदकं सेव्यं भुक्तोच्छिष्टं च पावनम् ।
स्वर्गापवर्गदंनृणां ब्राह्मणानांविशेषतः ॥१०१॥

विष्णोर्निवेदितंनित्यं देवेभ्यो जुहुयाद्धविः। पितृभ्यश्चैव तद्दद्यात्सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥१०२॥
योनदद्याद्धरेर्भुक्तं पितॄणां श्राद्धकर्मणि। अश्नन्ति पितरस्तस्य विण्मूत्रं सततंद्विजाः ॥१०३॥

तस्माद्विष्णोः प्रसादो वै सेवितव्यो द्विजन्मनाम् ।
इतरेषां तु देवानां निर्माल्यं गर्हितं भवेत् ॥१०४॥

सकृदेवहि योऽश्नान्ति ब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः। निर्माल्यंशङ्करादीनांसचाण्डालोभवेद्ध्रुवम् ॥१०५॥
कल्पकोटिसहस्राणि पच्यते नरकाग्निना। निर्माल्यंभोद्विजश्रेष्ठा रुद्रादीनांदिवौकसाम् ॥१०६॥
रक्षोयक्षपिशाचान्नं मद्यमांससमं स्मृतम्। तद्ब्राह्मणैर्न भोक्तयं देवानामर्पितं हविः ॥१०७॥
तस्मादन्यं परित्यज्य विष्णुदेवं सनातनम्। पूजयध्वं द्विजश्रेष्ठा यावज्जीवमतन्द्रिताः ॥१०८॥

रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त हैं ॥९५॥ मैंने उन दोनों को शाप दे दिया है। हे ऋषि श्रेष्ठ ! वे दोनों ब्राह्मणों के पूज्य नहीं हैं। अब्रह्मण्य को प्राप्त तथा निन्दित रूप धारण करने वाले ॥९६॥ शङ्करजी को मैंने कैलास के शिखर पर शाप दिया है। शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न भगवान् विष्णु कल्याण गुणों के सागर हैं। नारायण परब्रह्म हैं और ब्राह्मणों के देवता श्रीहरि हैं। श्रीपति, भगवान् विष्णु ही ब्रह्मण्य हैं वे ही वासुदेव और जनार्दन हैं ॥९७-९८॥ गोविन्द, श्रीहरि अच्युत ही पुण्डरीकाक्ष और ब्रह्मण्य हैं पर वे ही पुरुष श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिए पूज्य हैं दूसरा कोई देवता ब्राह्मणों के पूज्य नहीं है ॥९९॥ जो अज्ञान वशात् दूसरे देवता की पूजा करता है वह पाखण्डी हो जाता है। भगवान् विष्णु का स्मरण करने से पापियों की मुक्ति हो जाती है ॥१००॥ उनका ही उच्छिष्ट प्रसाद और चरणोदक ब्राह्मणों के लिए सेवनीय है। वह मनुष्यों को स्वर्ग एवं अपवर्ग देने वाला है और विप्रों को विशेष रूप से मुक्ति देने वाला है ॥१०१॥ भगवान् को निवेदित वस्तुओं की तृप्ति के लिए होम करना चाहिए। पितरों को भी उसे दे ऐसा करने वाले के सभी पुण्य कर्म आनन्त्य को प्राप्त कर लेते हैं ॥१०२॥ जो श्राद्ध कर्म में भगवत् प्रसाद को पितरों को नहीं समर्पित करता है। हे द्विजों ! उसके पितृगण सदा मल-मूत्र को ही खाते हैं ॥१०३॥ इसलिए ब्राह्मणों ! आपलागों को भगवान् विष्णु के ही प्रसाद का सेवन करना चाहिए। दूसरे देवताओं का निर्माल्य निन्दित होता है ॥१०४॥ जो ज्ञानहीन ब्राह्मण शङ्कर आदि का निर्माल्य एक बार भी खा लेता है वह चाण्डाल हो जाता है। इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१०५॥ वह हजारों कल्प पर्यन्त नरक की अग्नि में पकाया जाता है। हे द्विज श्रेष्ठों ! शङ्करजी आदि देवताओं का निर्माल्य तथा राक्षसों, यक्षों और पिशाचों का भी निर्माल्य मदिरा और मांस के समान कहा गया है। अतएव देवताओं को समर्पित भी हविष्य ब्राह्मणों को नहीं खाना चाहिए ॥१०६-१०७॥ अतएव हे ब्राह्मणों ! आप लोग दूसरे देवता का

तद्विष्णोः परमं धाम यास्यन्त्येव न संशयः ।
तापादिपञ्चसंस्कारैरन्विष्टाः शुभचेतसः ॥१०९॥
अप्राकृतं हरिं सम्यगर्चयध्वं द्विजर्षभाः । चक्राङ्कितभुजा विप्रा भवन्त्यप्राकृताःशुभाः ॥११०॥
चक्रलाञ्छनहीनास्तु प्राकृतास्तामसाः स्मृताः ।
तस्मात्प्राकृतसंसर्गपापोघदहनं हरेः ॥१११॥
प्रतप्तंबिभृयाच्चक्रंशङ्खंच भुजमूलयोः । उर्द्ध्वपुण्ड्राणि चाङ्गेषु धृत्वाशास्त्रोक्तमार्गतः॥११२॥
अर्चयेन्मन्त्ररत्नेन विधिना पुरुषोत्तमम्। तस्य प्रसादसेवां च कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥११३॥
तस्याऽऽवरणपूजायां त्रिदशानर्चयेत्सदा । तमेव सर्वयज्ञानां भोक्तारं परमेश्वरम् ॥
ज्ञात्वा वै जुहुयाद्दद्याज्जपेद्वै सततं द्विजाः ॥११४॥

वसिष्ठ उवाच

एवमुक्तास्तु ते सर्वे ऋषयः क्षीणकल्मषाः ।
नमस्कृत्य भृगुं सम्यगूचुः प्राञ्जलयस्तदा ॥११५॥

ऋषयऊचुः

भगवन्संशयच्छेत्ता त्वमेव द्विजसत्तम ! । अन्धे तमसि मज्जन्ति ब्राह्मणास्तमसावृताः ॥११६॥
त्वत्प्रसादद्वयंविष्णुं जानीमः पुरुषोत्तमम्। सर्वे सनाथास्सुखिनो भवेम द्विजसत्तम ! ॥११७॥
त्वं वै लोकगतिर्ब्रह्मंस्त्वमेव परमागतिः। त्वमेव परमो धर्मस्त्वमेव परमं तपः ॥
त्वत्प्रसादाद्वयं विप्र ! भविष्यामो हि नान्यथा ॥११८॥

परित्याग करके सनातन भगवान् विष्णु की ही जीवन भर बिना आलस्य रहित होकर पूजा करें ॥१०८॥ पञ्च संस्कारों से युक्त शुद्ध अन्तःकरण वाले निश्चित रूप से प्रख्यात भगवान् विष्णु के ही धाम में जाते हैं ॥१०९॥ जिनके भुजमूल चक्र के चिह्न से युक्त हैं वे ब्राह्मण अप्राकृत हैं । हे द्विजश्रेष्ठों ! आपलोग अप्राकृत भगवान् विष्णु की ही पूजा करें ॥११०॥ चक्र के चिह्न से रहित ब्राह्मण प्राकृत और तामसी हैं। अतएव प्रकृत संसर्ग जन्य पाप समूह को श्रीहरि भस्म कर देते हैं ॥१११॥ अपने भुजमूल में प्रतप्त ही शङ्ख और चक्र को धारण करना चाहिए । शास्त्रीय पद्धति से ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करके ॥११२॥ मन्त्र रत्न के द्वारा विधि पूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए । नित्य ही निरालस होकर उनके ही प्रसाद का सेवन करना चाहिए ॥११३॥ भगवान् की आवरण पूजा में देवताओं की भी पूजा करनी चाहिए । सभी यज्ञों का उपभोग करने वाले भगवान् विष्णु को ही जानकर ब्राह्मणों को होम करना चाहिए उनके ही मन्त्र का सदा जप करना चाहिए ॥११४॥ **वसिष्ठजी ने कहा—** इस तरह से कहने पर निष्पाप ऋषिगण महर्षि भृगु को नमस्कार करके और हाथ जोड़कर कहे ॥११५॥ **ऋषियों ने कहा—** भगवन् ऋषि श्रेष्ठ ! आप ही संशय का विनाश करने वाले हैं । अज्ञानाच्छन्न तामस ब्राहाण घोर अन्धकार में डूब जाते हैं ॥११६॥ आपकी ही कृपा से हमलोग पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की कृपा को जानते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! हम सभी सनाथ और सुखी हो गये ॥११७॥ हे ब्रह्मन् ! आप ही लोक गति हैं और आप ही परमागति हैं । आप ही परम धर्म और परम तप हैं आपकी ही कृपा से हमलोग ब्राह्मण होयेंगे ॥११८॥ **वसिष्ठ महर्षि ने**

वसिष्ठ उवाच

एवं स्तुत्वा भृगुं विप्रं सर्वएव महर्षयः। तस्मात्सम्प्राप्तमन्त्रा वै पूजयामासुरच्युतम्॥११९॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं प्रसङ्गात्पार्थिवोत्तम !। भृगुशापान्महेशस्य योनिलिङ्गस्वरूपता ॥१२०॥
रामस्य हस्तकमलस्पर्शनाद्वै नृपोत्तम !। भविष्यत्यमलं तच्च रूपं लोकविगर्हितम् ॥
राघवः सर्वदेवानां पावनः पुरुषोत्तमः ॥१२१॥
स्पृष्टा दृष्टाश्च तेनैव विमलाः शङ्करादयः। सर्वेषामपि देवानां पिता माता जनार्दनः ॥१२२॥
त्राता च सर्वलोकानां वात्सल्यगुणसागरः। तमेव शरणं गच्छ यदीच्छसि परं पदम्॥१२३॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं पुराणं वेदसम्मितम्। ब्रह्मणा कथितं राजन्मनोः स्वायम्भुवोऽन्तरे॥१२४॥
विष्णुभक्तिविनीतस्य शुद्धसत्त्वस्य नान्यथा। तस्य संश्रावयेन्नित्यं विमुक्ता सा हरेः कथा॥१२५॥

शङ्खचक्रोद्ध्र्वपुण्ड्रादिविहितो वाचकः पुमान्।
तन्मुखाच्छूयतां नित्यं पुत्रीभवसि नान्यथा ॥१२६॥

यस्त्विदं श्रावयेन्नित्यं पठेद्वा सुसमाहितः। अनन्यभक्तिः श्रीशस्य जायते तस्य सर्वदा ॥१२७॥
विद्यार्थीलभतेविद्यांधर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्। मोक्षार्थीलभतेमोक्षं कामार्थीलभतेसुखम् ॥१२८॥
द्वादश्यां श्रवणार्केच सङ्क्रान्तौ ग्रहणेतथा। अमायां पौर्णमास्याञ्चपठेद्भक्तिसमन्वितः ॥१२९॥

श्लोकार्द्धं श्लोकपादम्वा पठेद्यस्तु समाहितः।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥१३०॥

इत्येतत्कथितं गुह्यं पुराणं संहितात्मकम्। अर्चयस्व हृषीकेशं यदीच्छसि परं पदम्॥१३१॥

कहा— इस तरह से भृगु महर्षि की स्तुति करके सभी महर्षिगण उनसे ही मन्त्र को प्राप्त करके भगवान् विष्णु की पूजा किए ॥११९॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! इस तरह से मैंने सबकुछ आपको बतला दिया भृगु के शाप के कारण शङ्करजी योनिलिंग स्वरूप हैं ॥१२०॥ हे नृपोत्तम ! श्रीराम के हस्तकमल का स्पर्श हो जाने से वह लोक निन्दित स्वरूप अत्यन्त निर्मल हो जायेगा । श्रीराम सभी देवताओं को अत्यन्त पवित्र बनाने वाले पुरुषोत्तम हैं ॥१२१॥ उनके द्वारा स्पर्श किए जाने तथा देखे जाने के कारण शङ्करजी आदि देवता विमल हैं । भगवान ही सबों के माता-पिता हैं ॥१२२॥ वे सभी लोकों की रक्षा करने वाले और कल्याण गुणों के सागर हैं । यदि आप परम पद चाहते हैं तो आप उनके ही शरण में जायँ ॥१२३॥ इस तरह से मैंने वेद सम्मित इस सम्पूर्ण पुराण को सुनाया । राजन् ! इसे स्वायम्भुव मन्वन्तर में ब्रह्माजी ने सुनाया था ॥१२४॥ भगवान् विष्णु की भक्ति से विनीत तथा शुद्ध सत्त्व सम्पन्न को ही इसे सुनाना चाहिए। यह श्रीहरि की कथा मुक्ति प्रदान करने वाली है ॥१२५॥ इसके वाचक पुरुष को शङ्ख, चक्र आदि के चिह्न से चिह्नित होना चाहिए । ऐसे ही ब्राह्मण के मुख से आप कथा नित्य, सुनें तो आपको पुत्र होगा अन्यथा नहीं ॥१२६॥ जो इसे सावधानी पूर्वक पढ़ता है अथवा सुनता है उसकी श्रीपति में अनन्या भक्ति हो जाती हैं ॥१२७॥ द्वादशी के दिन और श्रवण नक्षत्र के सूर्य के होने पर संक्रान्ति के दिन और ग्रहण के समय, आमावास्या के दिन और पूर्णिमा के दिन इसे भक्ति के साथ पढ़ने से विद्यार्थी विद्या को प्राप्त कर लेता है धर्मार्थी धर्म प्राप्त करता है, मोक्ष चाहने वाला मोक्ष को तथा कामार्थी काम को प्राप्त कर लेता है ॥१२८-१२९॥ प्रतिदिन समाहित होकर आधा श्लोक अथवा श्लोक के एक चरण को भी पढ़ने वाला

सूत उवाच

एवमुक्तो वसिष्ठेन गुरुणा नृपसत्तमः । प्रणम्य च गुरुं राजा पूजयित्वा यथार्हतः ॥१३२॥
तस्मात्संप्राप्तमन्त्रोऽसौ विधिनाद्विजसत्तमम् । अर्चयित्वाहृषीकेशं यावज्जीवमतन्द्रितः ॥
काले हरिपदं प्राप योगिगम्यं सनातनम् ॥१३३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्यां संहितायां वैयासिक्यामुत्तर खण्डे
भृगुपरीक्षाकथनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२५५॥
सम्पूर्णमिदमादिखण्डापरनामकमाद्युत्तरखणं उत्तरखण्डं वा ।

निश्चित रूप से हजारों अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥१३०-१३१॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से गुरु वसिष्ठजी के द्वारा कहे जाने पर राजश्रेष्ठ उनको प्रणाम करके तथा यथा योग्य पूजा करके ॥१३२॥ उनसे मन्त्र प्राप्त करके विधि पूर्वक उन द्विजश्रेष्ठ की पूजा करके अपने जीवन भर भगवान् हृषीकेश की निरालस पूजा करके समयानुसार योगि प्राप्य सनातन परम पद को प्राप्त किए ॥१३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के अन्तर्गत महर्षि भृगु द्वारा परीक्षा वर्णन नामक दो सौ पचपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५५।।

इस तरह उत्तर खण्ड सम्पूर्ण हुआ ।

शुभ हो ! कल्याण हो !!